CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

राधाकृष्ण भक्त-कोश

सं. भगवतीप्रसाद सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1-3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधाकृष्ण भक्तकोश

तृतीय खण्ड

संपादक
भगवती प्रसाद सिंह
निवर्तमान आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सह-संपादक
डॉ० वासुदेव सिंह
प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सत्-शास्त्र प्रकाशन
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा-१
१९८८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक :
सत्-शास्त्र प्रकाशन
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा-१

© प्रकाशक
प्रथम संस्करण १९८८

मूल्य : चार सौ रुपये

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी. २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी,
मलदहिया, वाराणसी-२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

RADHAKRISHNA BHAKTAKOSH

VOLUME THREE

Editor
BHAGWATI PRASAD SINGH
Professor & Head, Deptt. of Hindi (Retd.)
Gorakhpur University, Gorakhpur

Co-Editor
Dr. BASUDEO SINGH
Professor, Deptt. of Hindi
Kashi Vidyapith, Varanasi

SAT-SHASTRA PRAKASHAN
SHRIKRISHNA-JANMASTHAN SEVA-SANSTHAN
MATHURA-1
1988

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publisher
Sat-Shastra Prakashan
Shri Krishna-Janmasthan Seva-Sansthan
Mathura-1

© Publisher
First Edition : 1988

Price : Rupees Four Hundred

Printed by
Shivam Printers
C. 27/273, Indian Press Colony,
Maldahiya, Varanasi-2

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

राधाकृष्ण भक्तकोश का तृतीय-खंड सुधी पाठकों की सेवा में सादर प्रस्तुत है। हिन्दीतर प्रदेशों के कृष्ण-भक्तों के चरित संग्रह का यह अन्तिम स्तवक है। इसके अंतर्गत मणिपुरी (२५) मराठी (७५), मलयालम (६१), मैथिली (३७) संस्कृत (१४७) तथा सिन्धी (३२) के कुल मिलाकर ३७७ कृष्ण-भक्तों के वृत्त संकलित हैं।

इस खंड में संगृहीत सामग्री की अपनी कुछ अलग विशेषताएँ हैं—

मणिपुर की घाटी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ही उत्कृष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं, मुख्य रूप से संकीर्तन पद्धति तथा रासनृत्य, के लिए विश्रुत है। ये दोनों कलाएँ उसके कृष्णभक्त-शासकों की व्यक्तिगत रुचि तथा प्रोत्साहन से अंकुरित हुईं और राज्याश्रय में ही इनका विकास हुआ। यहाँ के उदाराशय राजाओं ने वैष्णव-भक्ति-पद्धति को प्रजातांत्रिक प्रणाली के माध्यम से लोकप्रिय बनाया। इम्फाल के राजभवन में स्थित गोविन्दजी का मन्दिर ही इस प्रदेश की जनता की सारी धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र है और आराध्यदेव गोविन्दजी ही उसके प्रेरक तथा नियामक हैं।

महाराष्ट्र को संतकाव्य की उद्भवस्थली माना जाता है। चक्रधरस्वामी, ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, समर्थगुरु रामदास जैसे क्रान्तदर्शी महापुरुषों को जन्म देकर उसने इस देश के इतिहास में नए परिच्छेद जोड़े हैं। मानवमात्र की एकता के प्रतिपादन, सामाजिक विषमता के विरोध तथा कर्म, उपासना एवं ज्ञान के समन्वय द्वारा जनसाधारण के लिए उपासना का सुगम-मार्ग प्रदर्शित कर इन्होंने विकासोन्मुख समाज को परम्परागत सड़ी-गली मान्यताओं को ध्वस्त करने के लिए अपूर्व नैतिक शक्ति प्रदान की। संत ज्ञानेश्वर ने इसकी प्रेरणा भगवद्गीता से प्राप्त की थी। बारकरी तथा दत्त-सम्प्रदाय के भक्तों ने इस संदेश को जन-जन तक पहुँचाया। भगवान् विट्ठल इनके साक्षात् प्रेरणास्रोत बने। इनकी यह ज्ञान-योग समन्वित भावभक्ति ही उत्तरी भारत के भक्ति आन्दोलन की आधारशिला बन गई।

मलयालम का कृष्ण-भक्ति-काव्य मणिप्रवाल, कथकलि तथा ओट्टनतुल्लल जैसी लोकरंजक काव्यशैलियों के लिए सुख्यात है। उत्तरी भारत में अपनी प्रगाढ़ कृष्ण-निष्ठा के लिए प्रसिद्ध, 'कृष्ण कर्णामृत' के रचयिता बिल्वमंगल-यहीं के निवासी थे। केरलीय जनमानस को भक्ति पूर्ण काव्यों से रससिक्त करने वाले कविवर पूंतानं नंपूतिरि हिन्दी के सूरदास की भाँति ही श्रीकृष्ण की बाललीला के अन्यतम गायक थे। इसी प्रकार महाकवि तुंचत्तेषुत्तच्छन कृत भागवत, महाभारत और श्रीकृष्णस्तोत्र मध्यकालीन मलयालम कृष्ण-भक्तिधारा की अमूल्य निधियाँ हैं। ज्ञान-भक्ति, शिव, दुर्गा तथा राम-कृष्ण में अभेदभाव पूरित केरलीय कृष्ण-भक्तों की उदारभावना परवर्ती वैष्णवकवियों के लिए अध्यात्म क्षेत्र में पथप्रदर्शक बन गई।

मिथिला वैष्णवाग्रणी श्री चैतन्य महाप्रभु, महापुरुष शंकरदेव और रामानंदराय के प्रेरणास्रोत विद्यापति ठाकुर तथा परमहंस विष्णुपुरी की जन्म एवं साधना भूमि रही है। उसे समस्त पूर्वी तथा उत्तरी भारत को वैष्णव-भक्ति भावापन्न पदावली की उद्भव-स्थली होने का गौरव प्राप्त है। उसकी दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है वैष्णव-भक्तों द्वारा शिव-शक्ति विषयक काव्य रचना। आदिकालीन मैथिली साहित्य की यह उदार तथा सहिष्णु प्रवृत्ति उसके मध्ययुगीन कवियों द्वारा पोषित एवं पल्लवित हुई। बंगला, उड़िया, असमिया, गुजराती तथा हिन्दी का पदावली साहित्य, चाहे वह राम-भक्तों द्वारा विरचित हो या कृष्णोपासकों द्वारा, उसी से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर विकसित हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत वाङ्मय अन्य भारतीय धर्म साधनाओं की भाँति राधाकृष्ण-भक्ति का भी मूलाधार है। श्रीकृष्ण के चरित, भक्ति एवं दर्शन सम्बन्धी सारी मान्यताएँ विभिन्न कालों में निर्मित संस्कृत भाषा के ग्रंथों पर ही आधृत हैं। वैष्णव आचार्यों तथा उनके अनुयायी भक्तों के अतिरिक्त उसे श्रीधरस्वामी जैसे भागवत के अन्यतम भाष्यकार और 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव जैसे रससिद्ध कवि की सेवाएँ प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके आदर्श पर भारत की विभिन्न भाषाओं में भक्ति-शृंगार परक मुक्तक रचना की एक परम्परा ही चल पड़ी जो कालान्तर में कृष्ण-भक्ति के देशव्यापी प्रसार में सहायक हुई।

लीलापुरुषोत्तम की इस भक्तमाला की अंतिम कड़ी सिन्धी-भक्तों की चरितावली है। भारत के धुर पश्चिमी छोर पर स्थित होने के कारण आरंभ से ही यह प्रदेश विदेशी आक्रमणकारियों के दानवी अत्याचारों का शिकार होता रहा है। मुहम्मद बिन कासिम की सिन्धविजय के पश्चात् ७१२ ई० में स्थापित विधर्मी शासन ने इसकी परम्परागत साहित्यिक तथा धार्मिक मान्यताओं को ध्वस्त कर इस्लामी संस्कृति और अरबी-फारसी भाषा का प्रचार किया। यह भगवत्कृपा ही थी कि इन विषम परिस्थितियों में भी यहाँ के बचे-खुचे हिन्दुओं ने अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का लोप नहीं होने दिया। इसमें सूफी संतों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। उनके दीर्घकालीन सम्पर्क के फलस्वरूप कालान्तर में उत्तरी भारत के वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन के प्रभाव से यहाँ कृष्ण-भक्ति की जो लहर फैली वह निर्गुण-सगुण के विवाद से परे, बाह्याडंबर विरोधी तथा कर्म-ज्ञान-भक्ति समन्वित थी। इस क्षेत्र के अधिकांश कृष्ण-भक्त सम्प्रदाय निरपेक्ष तथा गृहस्थाश्रमी थे। उनकी एक अन्य विशेषता थी मातृभाषा सिन्धी के साथ हिन्दी में भी पदरचना।

देश विभाजन के बाद सिन्ध के पाकिस्तान का अंग बन जाने से यहाँ जो हिन्दूविरोधी भावना फैली और अराजकता का जैसा तांडव हुआ उससे उसका अधिकांश साहित्य नष्ट हो गया। फिर भी जो बच गया है वह इस भूभाग की धर्म-प्राण हिन्दू-जनता की कृष्ण के प्रति गहरी आस्था का द्योतक है। यह संयोग की ही बात है कि अपनी भावभक्ति की अभिव्यक्ति में हिन्दी को महत्व देने वाले इन सिन्धी-भक्तों के बाद राष्ट्रभाषा हिन्दी की बहुआयामी तथा विशाल कृष्णभक्त परम्परा का परिचय आगामी चतुर्थ तथा पंचम खंड में दिया जा रहा है।

सामान्यतया भारत की उपरिनिर्दिष्ट सभी भाषाओं के साहित्येतिहासों, शोधग्रंथों, भक्तवृत्त-संग्रहों तथा आलोचनात्मक ग्रंथों में अपने-अपने क्षेत्र के भक्तों के जीवनवृत्त, साधना तथा कृतित्व विषयक सामग्री न्यूनाधिक मात्रा में मिलती है किन्तु सभी भाषाओं के वैष्णव-भक्ति की किसी एक धारा के, विशेषकर कृष्णाश्रयी भक्तों के, वृत्त एक स्थान पर संकलित नहीं किये गये हैं। इस विचार से राधाकृष्ण-भक्तकोश-योजना के व्याज से राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों की १८ भाषाओं में प्राप्त प्रतिनिधि कृष्ण-भक्तों के वृत्त संग्रह के इस विनम्र प्रयास की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। इस विराट् देश में विभिन्न कालों तथा अंचलों में आविर्भूत भक्तों के चरित तथा कृतियाँ धर्म, जाति, वर्ग, भाषा तथा क्षेत्र की भौतिक सीमाओं से उत्पन्न वाह्यभेदों के बावजूद उसकी आन्तरिक एकता का परिचय देती हैं। एक विन्दुविशेष पर किस प्रकार सारा देश एक ही प्रकार से सोचता तथा आचरण करता है और एक ही 'लला' तथा 'लली' की लाली में रँगा है—सहस्राब्दियों से इसकी रग-रग में व्याप्त कृष्ण आस्तिका संचेतना, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। संतोष का विषय है कि इधर श्री राधाकृष्ण-भक्तिधारा एशिया, अमेरिका तथा यूरोप के आस्तिक देशों को ही नहीं तथाकथित नास्तिक देशों को भी अपने अंचल में समेटने की दिशा में तेजी से बढ़ रही है। यह उसकी प्रासंगिकता, अपार अंतःशक्ति, जीवन्तता तथा उज्ज्वल भविष्य का संकेतक है।

प्रबोधनी एकादशी, सं० २०४५
साकेत, वेतियाहाता, गोरखपुर

भगवती प्रसाद सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

मणिपुर में श्री राधा कृष्ण-भक्ति का विकास : १-६४
डॉ० जगमल सिंह

मणिपुर के कृष्ण-भक्त : ६५-११२

अतोम बापू शर्मा ६५, (महाराजा) कियाम्बा (कयाम्बा) ६७, (महाराज) कुलचन्द्र सिंह ६९, (महाराज) गम्भीरसिंह ७०, (महाराजा) गरीबनिवाज (पामहैबा) ७३ (महाराज) चन्द्रकीर्ति सिंह ७७, चमू वैष्णवी ८०, (महाराज) चराईरोङ्बा ८२, (राजर्षि) चिंथंखोम्बा (भाग्यचन्द्र सिंह) ८३, (महाराज) चूड़ाचाँद सिंह ८७ (महाराज) चौरजीत सिंह ८९, (महाराज) जदुसिंह ९१, (महाराज) देवेन्द्र सिंह ९२, (महाराज) नरसिंह ९२, (महाराज) बोधचन्द्र सिंह ९५, (महाराज) मधुचन्द्रसिंह ९६, माइमोम थानिलसिंह 'संगीतरत्न' ९७, (महाराज) मारजीतसिंह ९८, युम्नाम नातूम सिंह (इबोचौबा) ९९, (महाराज) लावण्यचन्द्र सिंह १०१, शोराम अङाहल सिंह १०२, (महाराजकुमारी) सिजा लैरोबी बिम्बावती मंजुरी 'देवप्रिया' १०५, (महाराज) सूरचन्द्र सिंह १०७, हबाइबम नवद्वीप चन्द्रसिंह १०८, हाओमोम इबोतोन सिंह १११।

मराठी कृष्ण-काव्य की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि : ११३-१३६
डॉ० र० श० केलकर

महाराष्ट्र में श्री कृष्ण-भक्ति : १३७-१४८
श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

महाराष्ट्रीय कृष्ण-भक्ति : परम्परा और वैशिष्ट्य : १४९-१६८
डॉ० प्रह्लाद नरहरि जोशी

महाराष्ट्र के कृष्ण-भक्त : १६९-३०२

अनंत फंदी १६९, अमृतराय १६९, आजरेकर बाबासाहेब १७७, आनन्दतनय १७७, उद्धव चिद्घन १७९, एकनाथ १७९, एल्हण १८४, कचेश्वर १८४, कर्ममेला १८५, कान्हुपात्रा १८५, कान्हो पाठक १८६, कान्होबा १८६, कृष्णदयार्णव १८७, कृष्णदास (कवि डिंभमुनि) १८७, कृष्णदास दामा १८८, कृष्णदास नामा १८८, कृष्णदास महानुभाव (संतोष मुनि) १८९, कृष्णदास सामा १८९, कृष्ण मुनि १९०, कृष्ण याज्ञवल्की १९०, कृष्णानन्द निमग्न १९०, कृष्णा महाराज गारवडेकर १९१, केशव राव महाराज देशमुख १९१, केशवस्वामी नागानगरकर १९२, गुलाबराव महाराज १९२, गोरा कुम्हार १९५, चक्रधर महाराज १९६, चक्रपाणि यलम्बकर १९८, चांगदेव २०१, चोखामेला २०२, जगमित्र-नागा २०४, जनाबाई २०५, जनार्दन स्वामी २०८, जोग विष्णु बोवा २०९, ज्ञानेश्वर २१०, ज्योति-पन्त दादा महाभागवत २१७, तुकाराम २१८, दयालनाथ २२२, दासगणु २२३, देवनाथ २२४, नरहरि (सोनार) २२७, नरेन्द्र कवि २२८, नाना महाराज साखरे २२९, नामदेव २२९, निरंजन माधव २३९, निर्मला बाई २४१, निलोबा पिंपलनेरकर २४३, निवृत्तिनाथ २४४, परिसा भागवत २५०, प्रेमाबाई २५०,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंकट स्वामी महाराज २५३, बंका २५३, बहिणाबाई २५४, बाबाजी महाराज पंडित २५६, भाऊसाहेब काटकर महाराज २५७, भानुदास २५७, मध्वमुनीश्वर २६०, महदम्बा (महदायिसा) २६२, महादजी शिंदे २६३, माणिक प्रभु २६९, मुक्ताबाई २७१, मोरोपन्त बारामतीकर २७३, रमावल्लभदास २७५, राजाराम प्रासादी २७९, वामनपंडित २८१, विनायकबुवा साखरे दादा महाराज २८३, विष्णुदास माहुरकर २८३, शिव कल्याण २८४, श्रीधर नाझारेकर २८५, समर्थ रामदास स्वामी २८७, सावता माली २९२, सातारकर दादा महाराज २९३, सेना न्हावी २९४, सोपानदेव २९७, सोयराबाई २९९, सोहिरोबा आंबिये ३०० ।

मलयालम का कृष्ण-भक्ति काव्य : ३०३–३१६
डॉ० एन० रामन नायर

मलयालम के कृष्ण-भक्त : ३१७–३६४

आम्पाडी कुंजुकृष्ण पुतुवाल ३१७, कटत्तनाट्टु वासुनम्पी ३१७, कावक्करोरी भट्टतिरि ३१७, कुंचन नंपियार ३१७, कुटल्लूर नारायणन ३२०, कुरूरम्मा ३२०, कृष्णन नम्पूरी (नम्पूतिरी) ३२०, के०सी० केशव पिल्लै ३२०, कोच्चुगोविन्द वारियर ३२१, कोड्डुङल्लूर विद्वान् इलयतंपुरान ३२१, कोषिक्कोट्टु मानवेद राजा ३२१, गोविंदनाथन ३२२, चन्द्रशेखर वारियर ३२२, चीरकुषि भवदासन नम्पूतिरि ३२२, चेंबै वैद्यनाथ भागवतर ३२३, चेन्नास नारायणन नंपूतिरिपाट ३२३, चेरुश्शेरी नंपूतिरि ३२४, तरवकल वारियर ३२८, ताषमण परमेश्वर भट्टतिरि ३२९, तुंचत्तु एषुत्तच्छन ३२९, देवनारायणन ३३२, नारायण नंपूतिरि ३३२, निरणं अथवा कण्णश कवि ३३२, पट्टत्तुकुंजुण्णी नम्पियार ३३३, पन्नियूर कृष्णन नंपूतिरि ३३३, परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (प्रथम) ३३३, परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (द्वितीय) ३३४, परमेश्वर मंगलत्तु चन्द्रशेखरवार्यर ३३४, पांडवचरितकार ३३४, पून्तानम् नम्पूतिरि ३३५, पूर्णं सरस्वती ३३९, भ्रमरसंदेशकार (अज्ञातनाम) ३४०, मपमंगलत्तु नारायणन नम्पूतिरि ३४१, मातृदत्त ३४२, माधव पणिक्कर ३४२, मानविक्रम महाराजा ३४४, मानवेद राजा ३४४, मेल्पुत्तूर नारायण भट्टतिरि ३४५, मेल्पत्तूर मातृदत्त भट्टतिरि ३४८, यदुनाथचरितकार ३४८, रविवर्मन तंपी ३४९, राम पणिक्कर ३४९, रामपुरत्तु वारियर ३५०, वपट्टल्लो भास्करन मूसत् ३५२, वासुदेव यमक कवि ३५३, वासुदेवस्तवकार (अज्ञातनाम भक्त कवि) ३५३, विद्वान् किलिमानूर राजराजवर्मा कोयितंपुरान ३५४, विल्वमंगल स्वामियार ३५४, वी० के० गोविन्दन नायर ३५५, वेट्टत्तुनाट रविवर्मतंपुरान ३५७, वेण्मणि अच्छन् नंपूतिरिप्पाट् ३५७, वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाट् ३५८, शंकर कवि ३५८, शंकरनाथ ज्योत्स्य ३५९, शंकर पणिक्कर ३६०, श्रीकण्ठ वारियर ३६१, श्रीकुमारन नंपूरि ३६१, स्वाति तिरुनाल रामवर्मा (राजा) ३६१ ।

मैथिली कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा : ३६५–३६८
डॉ० राधाकृष्ण चौधरी

मिथिला के कृष्ण-भक्त : ३६९–४०५

उमानन्द ओझा ३६९, उमापति उपाध्याय ३७०, कंसनारायण ३७१, गुणवन्त लालदास ३७२, गोविंददास (प्रथम) ३७३, गोविंददास (द्वितीय) ३७४, गोविंददास ठाकुर ३७५, चतुर चतुर्भुज ३७५, चन्द्रकला ३७८, देवानन्द ३८०, नन्दीपति ३८०, परमानन्ददास ३८१, प्रतापसिंह ३८१, भवप्रीतानन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओझा (अभिनव विद्यापति) ३८१, मनबोध ३८३, रतिपति भगत ३८४, रत्नपाणि झा ३८४, रमापति उपाध्याय ३८४, राधाकान्त झा 'अनूप' ३८५, रामदास झा ३८५, रामनाथ ३८६, लक्ष्मीपति गोसाईं ३८७, लखिमारानी ३८८, विद्यापति ठाकुर ३८९, विश्वासदेवी ३९२, विष्णुपुरी (परमहंस) ३९३, शंकरदत्त ३९५, शंकरदेव ३९५, शंकर मिश्र ३९६, श्यामलाल चौधरी ३९६, श्यामसुन्दर-दास ३९६, श्रीकान्त गणक ३९७, सदानन्द ३९७, साहेब रामदास ३९८, सिद्धिनरसिंहमल्ल ४०३, हर्षनाथ ४०५।

परिशिष्ट : ४०५–४०६

मिथिला की अल्पख्यात कवयित्रियाँ :

डा० मोहनानंद मिश्र

रूपमती-राजमती ४०५, लखिमा ठकुराइन ४०५, लालमती ४०५, सोरभदेवी ४०६, ह्रासिनीदेवी ४०६।

संस्कृत-वाङ्मय में श्रीकृष्ण-भक्ति का विकास : ४०७–४२८

डॉ० अमरनाथ पाण्डेय

संस्कृत के कृष्ण-भक्त : ४२९–५९८

अगस्त्य ४२९, अनन्तदेव ४२९, अनन्तभट्ट ४३२, अनादि मिश्र ४३२, अमोलकराम शास्त्री ४३३, ईश्वर-पुरी ४३४, उमापति उपाध्याय ४३६, उमापतिधर ४३८, कर्णपूर ४३८, कर्णपूर कविराज ४४२, कवि-डिण्डिम जीवदेवाचार्य ४४३, कुमारताताचार्य ४४४, कुलशेखर आलवार ४४५, कृष्णदत्त ४५२, कृष्ण-नाथ सार्वभौम भट्टाचार्य ४५२, कृष्णलाल द्विज ४५३, कृष्णलाल शास्त्री 'कान्हजी' ४५३, केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ४५४, केशवसेन ४५७, गिरिधर स्वामी ४५७, गिरिराज ४५८, गोकुलनाथ गोस्वामी ४५९, गोपक ४५९, गोपालभट्ट ४५९, गोपीनाथ गोस्वामी ४६०, गोपेश्वर योगी ४६०, गोवर्धन शर्मा ४६०, गोविंद सामन्तराय ४६०, चतुर्भुज ४६०, चिन्तामणि ४६१, जनार्दन प्रसाद चौधरी (भोलाबाबू) ४६१, जयदेव (गीतगोविंदकार) ४६२, जीवगोस्वामी ४६५, जीवनजी ४६८, जीवराम याज्ञिक ४६८, त्रिविक्रम भट्ट ४६८, देवकीनन्दन ४६९, देवीदत्त ४७०, द्वारकानाथ ४७२, नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी ४७४, नन्दीपति ४७५, नारायण भट्ट ४७५, निम्बार्क ४७७, नीलकण्ठ दीक्षित ४८०, पंडितराज जग-न्नाथ ४८१, पद्मराज ४८५, परमानन्ददास ४८५, पुरुषोत्तम ४८५, पुरुषोत्तमाचार्य ४८६, प्रबोधानन्द सरस्वती ४८७, प्रियादास (रीवाँवाले) ४८९, प्रियादास शास्त्री ४९०, प्रियालाल गोस्वामी ४९२, बलदेव विद्याभूषण ४९३, बालकृष्ण ४९४, बालकृष्ण भट्ट ४९५, बोपदेव ४९६, भट्ट नारायण ४९७, भानु-दत्त ४९९, भास ५००, भुवनेश्वर प्रसाद चौधरी 'भुवनेश' ५०५, भोलानाथ ५०६, मठपतिकल्याण-भट्ट ५०७, मथुरादास ५०७, मथुरानाथ शास्त्री भट्ट ५०७, मधुसूदन सरस्वती ५१०, मध्वाचार्य ५१२, महाप्रभु चैतन्य ५१५, माघ ५१९, माधवेन्द्रपुरी पाद ५२१, मानवेदराजा ५२५, मित्रमिश्र ५२६, रंगीलाल गोस्वामी ५२७, रघुनाथ गोस्वामी ५२८, रघुनाथदास गोस्वामी ५३०, रघुनाथ भट्ट ५३१, रघुपति उपाध्याय ५३१, रणवीर सिंह ५३२, रमापति उपाध्याय ५३२, रसिकोत्तंस ५३३, राघवेन्द्र ५३३, राजचूड़ामणि दीक्षित ५३४, राधाकृष्ण तिवारी ५३५, राधामोहनदास ५३६, राधारमणदास गोस्वामी ५३६, रामकृष्ण मिश्र ५३७, रामचन्द्र ५३८, रामचन्द्र गौड़ ५४०, रामचन्द्र वेल्लाल ५४१, रामनारायण मिश्र ५४१, रामप्रताप शास्त्री ५४३, रामप्रपन्नाचार्य ५४३, रामवर्मा ५४६, रामानन्द राय ५४७, रामेश्वर शास्त्री दाधीच ५४८, रुद्रधर ५४८, रूपगोस्वामी ५४९, लक्ष्मणसेन ५५२,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लच्छीराम प्राणाचार्य ५५२, लीलाशुक ५५३, लोकनाथ भट्ट ५५७, लोलिम्बराज ५५७, वंशीलाल गोस्वामी ५५८, वत्सराज ५५८, वल्लभाचार्य ५५९, वासुदेव ५६२, विजयध्वज ५६२, विट्ठलनाथ ५६२, विद्याधर शास्त्री ५६४, विद्यावागीश ५६४, विश्वनाथ चक्रवर्ती ५६५, वीरराघवाचार्य ५६५, वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी ५६५, वेंकटनाथ ५६६, वेंकटवरद ५६८, वेंकटाचार्य ५६९, वेंकटाध्वरि ५६९, वेल्लङ्कोण्डरामराय कवीन्द्र ५६९, वैद्यनाथ ५७१, व्रजभूषणशरणदेव ५७१, व्रजराजशरण देवाचार्य ५७२, शंकरकवि ५७३, शंकराचार्य ५७५, शिव ५७५, शुकदेव ५७६, शेषकृष्ण ५७६, श्रीदेवाचार्य ५७७, श्रीधर स्वामी ५७८, श्रीनिवासाचार्य ५८०, श्रीवरजीशास्त्री चतुर्वेदी ५८१, श्रीहरि ५८२, सनातन गोस्वामी ५८३, सुदर्शन सूरि ५८४, सुन्दर भट्टाचार्य ५८४, सोमनाथ ५८५, स्फुलिंग (मल्लिकार्जुन) ५८६, स्वामी ब्रह्मानन्द ५८६, हरिकृष्णजी 'कमलेश' ५८६, हरिराय ५८७ ।

सिन्ध में कृष्ण-भक्ति का विकास : ५८९-६००
डॉ० घनश्याम तोलानी

सिन्ध के राधाकृष्ण-भक्त : ६०१-६५८

कँवरराम (भगत) ६०१, कलाचन्द (स्वामी) ६०२, किसनदास 'बेबस' ६०४, किशोरदास ६०७, कुन्दीबाई (माता) ६०९, गिरधारी लाल ६११, गुड़ी बहन ६१२, चेलाराम (दादा) ६१४, जयकृष्णदास ६१६, जवाहरलाल शर्मा ६१८, जीवतसिंह (साइं) ६१९, टउँरराम शर्मा ६२१, टी० एल० वास्वानी (साधु) ६२२, ठाकुरदास शर्मा ६२५, दामोदर शर्मा ६२५, देवीदिनाराम ६२८, नयनाराम शर्मा ६२९, नारायणदास हंस (स्वामी) ६३१, परसराम शहाणी ६३३, प्रह्लादराम ६३५, प्रियतमदेव शर्मा ६३६, प्रेमदास (स्वामी) ६३८, बसन्तराम (स्वामी) ६४०, भगवानदास ६४२, मेवाराम ६४४, रसिकाशरण ६४६, रामदास ६४८, शीतलदास ६५०, श्यामदास ६५१, श्यामसनेही श्यामाशरण ६५३, सूरतसिंह ६५५, हरनामदास स्वामी ६५७ ।

नामानुक्रमणिका : ६५९-६९०

ग्रन्थानुक्रमणिका : ६९१-७१५

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेतिका

ज० सिं०	डा० जगमल सिंह
प्र० न० जो०	डा० प्रह्लाद नरहरि जोशी
वि० पं०	डा० विजयमाला पंडित
अ० प्र० का०	डा० अशोक प्रभाकर कामथ
जा० रावत	प्रा० जानकी रावत
एन० रा० ना०	डा० एन० रामन नायर
एस० तं० अ०	डा० एस० तंकमणि अम्मा
रा० चौ०	डा० राधाकृष्ण चौधरी
मो० मि०	डा० मोहनानंद मिश्र
प्रे० शं० सिं०	डा० प्रेमशंकर सिंह
अ० पां०	डा० अमरनाथ पांडेय
ल० च० गो०	श्री ललिताचरण गोस्वामी
श्या० श० वा०	डा० श्यामशर्मा वाशिष्ठ
प्रे० ना० श्री०	डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव
न० च० बं०	डा० नरेशचन्द्र बंसल
गो० ना० शु०	डा० गोवर्धननाथ शुक्ल
त० ना०	डा० तपेश्वरनाथ
श्या० बि० खं०	श्री श्याम बिहारी खंडेलवाल
रा० प्र० कु०	डा० राम प्रकाश कुलश्रेष्ठ
रा० कृ० श०	डा० रामकृष्ण शर्मा
त्रि० ना० शु०	डा० त्रिभुवननाथ शुक्ल
ब्र० न०	डा० ब्रह्मानंद
वि० कु० जा०	श्री विजयकुमार जालान
घ० तो०	डा० घनश्याम तोलानी
द० आ०	डा० दयाल आशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहयोगी लेखक

मणिपुरी

१. डा० जगमलसिंह, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इम्फाल (मणिपुर)

मराठी

१. डा० प्रह्लाद नरहरि जोशी, रेणुका, लक्ष्मीपार्क, नवीपेठ, पुणे-३० (महाराष्ट्र)
२. डा० अशोक प्रभाकर कामथ : प्राध्यापक हिंदीविभाग, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर केन्द्र, गरवारे महाविद्यालय, पुणे
३. डा० (श्रीमती) विजयमाला पंडित, रेणुका, लक्ष्मीपार्क, नवीपेठ, पुणे-३० (महाराष्ट्र)
४. डा० र० श० केलकर, सहायक मंत्री, साहित्य एकाडेमी, (नयी दिल्ली)

मलयालम

१. डा० एन० रामन नायर, आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दीविभाग, कोचीन विश्वविद्यालय, कोचीन-६८२०२२ (केरल)
२. डा० (श्रीमती) एस० तंकमणि अम्मा, प्रवक्ता हिन्दी विभाग, पत्राचार संस्थान, केरल विश्वविद्यालय करिवट्टम, त्रिवेन्द्रम् ६९५५-८१ (केरल)

मैथिली

१. स्व० डा० राधाकृष्ण चौधरी, शांति निवास, वमपास टाउन, देवघर (बिहार)
२. डा० मोहनानंद मिश्र, चिताभूमि, चन्द्रदत्त द्वारी मार्ग : बिलासी टाउन, देवघर (बिहार)
३. डा० प्रेमशंकर सिंह प्रोफेसर, मैथिली विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

संस्कृत

१. डा० अमरनाथ पण्डेय, आचार्य तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी २ (उत्तर प्रदेश)
२. आचार्य ललिताचरण गोस्वामी, यमुना पुलिन, बड़वाला मुहल्ला, वृन्दावन-२८११२१ (उत्तर प्रदेश)
३. डा० श्यामशर्मा वाशिष्ठ-स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)
४. डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, प्राच्यदर्शन महाविद्यालय, वृन्दावन-२८११२१ (उत्तर प्रदेश)
५. डा० नरेशचन्द्र बंसल, श्रीवास-निलयम्, जयजयराम वार्ड, कासगंज २०७१२३ (उत्तर प्रदेश)
६. स्व० डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, आचार्य तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)
७. डा० तपेश्वरनाथ, प्रोफेसर हिन्दी विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)
८. श्री श्यामबिहारी खंडेलवाल, द्वारा / श्री किशोरीशरण अलि, सेवाकुंज, वृन्दावन-२८११२१ (उत्तर प्रदेश)
९. डा० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ, भगवती निलयम्. १ त २ जवाहर नगर, जयपुर ३०२००४ (राजस्थान)
१०. डा० रामकृष्ण शर्मा, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, के० ए० बागला महाविद्यालय, कासगंज (एटा) २०७१२३ (उत्तर प्रदेश)
११. डा० त्रिभुवन नाथ शुक्ल, रीडर हिन्दी विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर (मध्यप्रदेश)
१२. डा० ब्रह्मानंद, रीडर हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
१३. श्री विजयकुमार जालान, साहबगंज, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

सिन्धी

१. डा० घनश्याम तोलानी, पाथरटलेन, पंचवटी, नासिक-३ (महाराष्ट्र)
२. डा० दयाल आशा (महाराष्ट्र)

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

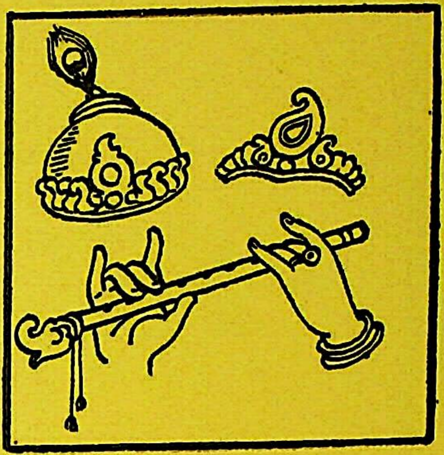

मणिपुर में श्री राधाकृष्ण भक्ति का विकास

—डा० जगमल सिंह

मणिपुर के कृष्णभक्त

—डा० जगमल सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुर के श्रीकृष्णमंदिर

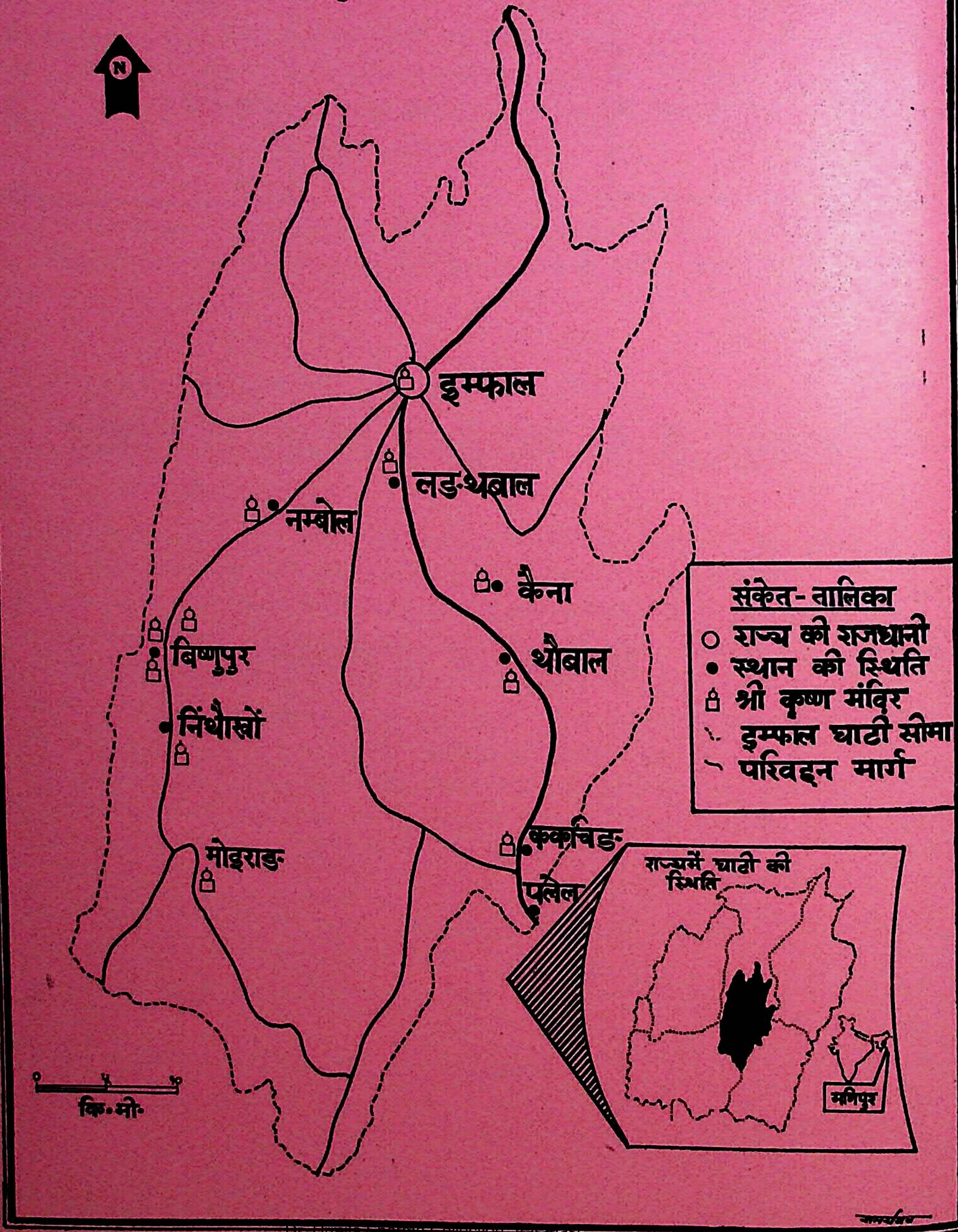

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुर में श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का विकास

मणिपुर प्रदेश महाभारत-काल से ही कृष्ण-कथा से सम्बद्ध रहा है। यहाँ के राजा अपने-आपको अर्जुन का वंशज मानते हैं। अर्जुन अज्ञातवास के समय मणिपुर आये थे। उस समय के अपने तीन वर्ष के प्रवास-काल में उन्होंने मणिपुर के गन्धर्ववंशी राजा चित्रभानु की कन्या चित्रांगदा से विवाह किया था। युधिष्ठिर द्वारा आयोजित अश्वमेध के सन्दर्भ में अर्जुन दूसरी बार मणिपुर आये। उस समय यहाँ का शासन उन्हीं के पुत्र बभ्रुवाहन के हाथ में था। कहा जाता है कि बभ्रुवाहन ने अपने पिता अर्जुन से अश्वमेध के घोड़े के लिए युद्ध की तैयारी कर ली थी, किन्तु चित्रांगदा के कहने से यह युद्ध टल गया था।[1]

सृष्टि के सम्बन्ध में मणिपुर में यह विश्वास प्रचलित है कि अत्यागुरु शिदबा की आज्ञा से भगवान् विष्णु ने विश्व की सृष्टि की थी।[2] मणिपुर के इतिहास के अध्येताओं का एक वर्ग ऐसा है, जो यह मानता है कि मणिपुर में विष्णु-पूजा पड़ोसी राज्य कामरूप से आये हुए प्रव्रजनकारियों द्वारा प्रचलित की गयी। गुप्त-शासनकाल में कामरूप वैष्णव-मत के प्रभाव में आ चुका था। माना जाता है कि इस मत के प्रव्रजनकारी मणिपुर आये और आजकल विष्णुपुर नाम से प्रसिद्ध स्थान पर रहने लगे। इस प्रकार मणिपुर में विष्णु-पूजा-सम्बन्धी कई मत उपलब्ध हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रदेश में वैष्णव-प्रभाव पर्याप्त प्राचीन है।

नौथिंखों (सन् ६६३ ई०) के समय में सातवीं शताब्दी में तथा फयेङ ताम्रपत्रों के आधार पर आठवीं शताब्दी में वैष्णव-धर्म के मणिपुर में प्रचलित होने का उल्लेख मिलता है।[3] उस काल में प्रयुक्त लेखीनराल (लक्ष्मीनारायण), लाखोनदास (लक्ष्मणदास) जैसे वैष्णवी शब्द भी इस तथ्य को पुष्ट करते हैं। सन् १४७० ई० में महाराजा कियम्बा के शासनकाल में पोङ के राजा द्वारा उन्हें भगवान् विष्णु की मूर्ति भेंट किये जाने का उल्लेख मिलता है।[4] उसी समय कियाम्बा ने चीनी कारीगरों से (जो युद्ध-बन्दी थे) भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर चीनी-पद्धति से बनी छोटी-छोटी ईंटों से बनाया गया था।

वैष्णव-भक्ति का उत्थान

सन् १४७० ई० से मणिपुर में भगवान् विष्णु की पूजा पोङ के राजा द्वारा भेंट किये गये विग्रह से आरम्भ हुई। इसके सम्बन्ध में इससे अधिक विवरण उपलब्ध नहीं है। महाराज चराईरौङ्बा (पीताम्बर सिंह) के शासनकाल (सन् १६९७ ई०–१७०९ ई०) को वैष्णव-धर्म का उत्थान-काल कह सकते हैं। इनके समय में मध्वाचार्य-सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव-मत के प्रचार के लिए मणिपुर आये। महाराज ने स्वयं सपरिवार यज्ञोपवीत धारण किया। किन्तु उन्होंने हिन्दू-धर्म के साथ-साथ प्राचीन मैतै-धर्म की लाई (देव) पूजा भी जारी रखी। डॉ० एम० कीर्तिसिंह ने लिखा है कि आठवीं शताब्दी से ही वैष्णव-धर्म मणिपुर में पनप रहा था, जो १५वीं शताब्दी में कियाम्बा के समय सुदृढ़ हुआ और आगे चलकर चराईरौङ्बा के समय में और भी विकसित हुआ। इनके शासनकाल में, 'बामन खुङ् थोकलोन' (प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ) के अनुसार त्रिपुरा, बंगाल, मथुरा और उड़ीसा से ब्राह्मणों का प्रव्रजन हुआ (पृ० १२०)। अक्तूबर सन् १७०३ ई० में कृष्णाचार्य उपनाम राय बनमाली अपने सहयोगियों के साथ पुरी से मणिपुर आये। उन्होंने ही राजा को वैष्णव-धर्म से परिचित कराया। उन्हें राजा ने एक गाँव, एक पर्वत तथा १०० एकड़ भूमि गुरु-दक्षिणा में दी। चराईरौङ्बा ने इम्फाल के ब्रह्मपुर गुरु अरिबामलैकाई में ईंटों से राधा-कृष्ण का एक मन्दिर बनवाया था। महाराजा ने कीर्तन-परम्परा भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरम्भ की, जो आज भी बंगदेश या अखिबा पाला (प्राचीन समूह) के नाम से जानी जाती है (पृ० १२१)। राम-कृष्ण-गोविन्द से आरम्भ होनेवाले ये कीर्तन-पद न केवल गोविन्दजी के मन्दिर में, बल्कि गाँव-गाँव में गाये जाते हैं। इस प्रकार मणिपुर में कृष्ण-भक्ति का बीजवपन महाराज चराईरौङ्बा के समय से हुआ।

महाराज गरीबनिवाज (सन् १७०९ से १७४८ ई०) मणिपुर के प्रसिद्ध वैष्णव-भक्त शासक माने जाते हैं। इनके समय में ही वैष्णव-धर्म (गौड़ीय वैष्णव-मत) राज्य-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।[५] इन्होंने वैष्णव-धर्म के निषेधों का पालन न करने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था की। सन् १७१७ ई० में महाराज पामहैबा उपनाम गरीबनिवाज को गुरु गोपालदास ने दीक्षा दी।[६] एक मत यह भी है कि गरीबनिवाज ने रामानन्दी मत के प्रचारक शान्तिदास से भी दीक्षा ग्रहण की थी। सन् १७२८–३५ ई० के बीच शान्तिदास की देखरेख में ही सीता-राम और हनुमान् के मन्दिर बनवाये गये थे। उन्हींके द्वारा श्रीकृष्ण तथा राधा की विग्रह-प्रतिष्ठा भी की गयी। एफ० बावर्स ने लिखा है कि महाराज गरीबनिवाज के समय से ही चैतन्य-सम्प्रदाय के नियम मणिपुर के धार्मिक जीवन के आधार बन गये। सन् १७०० ई० में गरीबनिवाज द्वारा इसे राज्य-धर्म घोषित कर दिया गया। तब से इसका मणिपुर के जन-जीवन पर एकच्छत्र राज्य है।[७] किन्तु इतिहासकार बावर्स के इस मत से सहमत नहीं हैं। २२ अगस्त १७२२ ई० को गरीबनिवाज ने निङ्थेम पुखरी वाङ्खैलैकाई में श्रीकृष्ण (वृन्दावनचन्द्र) और कालिका की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।[८] इससे स्पष्ट है कि उस समय कृष्ण-पूजा के साथ शक्ति-पूजा भी प्रचलित थी।

चैथरोल कुमबाबा (राजवंश का हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थ) में लिखा है कि सन् १७२६ ई० में गरीबनिवाज ने सुअर और मुर्गी आदि के पालने की निषेधाज्ञा जारी की थी। यह भी कहा जाता है कि गरीबनिवाज ही प्रथम राजा थे, जिन्होंने शव के दाह-संस्कार की व्यवस्था लागू की। उनके पुत्र सनाहल मुरली की मृत्यु पर शव के साथ उनकी दो पत्नियों के सन् १७२५ ई० में सती होने का भी उल्लेख मिलता है।[९]

श्री एल० इबूङ्होहल सिंह ने लिखा है कि गरीबनिवाज की पुत्री ही वह प्रथम मणिपुरी महिला थी, जिसने वृन्दावन-यात्रा की थी (पृ० ९१)। महाराज गरीबनिवाज के शासनकाल से ही संचित अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करने की परम्परा चली। तब से मृतक की सन्तान या किसी अन्य तीर्थयात्री के साथ अस्थियों को गंगा में विसर्जित करने ले जाया जाने लगा। इस प्रकार चराईरौङ्बा एवं महाराज गरीबनिवाज के समय से मणिपुर में कृष्ण-भक्ति का उत्थान हुआ। उसी समय महाभारत और रामायण के मणिपुरी में आंशिक अनुवाद के प्रयास भी आरम्भ हुए।

मणिपुर के धार्मिक सम्प्रदाय

शैव एवं शाक्त-मत

विद्वानों का मत है कि अत्यागुरु शिदबा और देवी लैमारेन शिदाबी शिव और पार्वती के ही नामान्तर हैं। इस प्रकार मणिपुर में शैव-मत का प्रचलन सृष्टि के जन्म के साथ जुड़ जाता है। किन्तु यहाँ भगवान् शंकर अकेले नहीं पूजे जाते, उनके साथ देवी पार्वती भी पूजी जाती हैं और लिंग-पूजा का भी प्रचलन है। ङोपोक निंथौ और पांथोइबी को शिव-पार्वती का अवतार माना जाता है। इनके सम्बन्ध में प्रचलित मणिपुरी पौराणिक कथा के अनुसार पांथोइबी विवाहिता थी, किन्तु अपने पति को त्यागकर उसने ङोपोक निंथौ से प्रेम किया तथा उन्हींके साथ रहने लगी थी। इस प्रकार मणिपुर के शैव-मत का अपना अलग रूप है, जिसमें परकीया भाव, शिव के साथ पार्वती की पूजा तथा लिंग-पूजा का विधान है। विद्वानों का अनुमान है कि परवर्ती काल में जब मणिपुर में गौड़ीय वैष्णव-धर्म आया तो परकीया भाव के पूर्व प्रचलन के कारण यहाँ उसका स्वागत हुआ।[१०]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद मागध ने कालिकापुराण, योगिनीतन्त्र, महाभारत आदि कृतियों और अभिलेखों के आधार पर शिवोपासना को असम का प्राचीन धर्म कहा है तथा उसके प्रमुख केन्द्रों में मणिकणेश्वर का नाम दिया है।[११] मणिकणेश्वर मणिपुर भी हो सकता है और न भी हो तो मणिपुर का असम पड़ोसी राज्य था, अतः वहाँ जिस धर्म की प्रधानता थी उसका प्रचलन मणिपुर में होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। मणिपुर के इतिहासकारों ने भी इसकी पुष्टि की है। फयेङ् के ताम्रपत्र भी इस तथ्य के प्रमाण हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है मणिपुर में शिवलिंग की पूजा का विधान था तथा उसके साथ पार्वती की भी अर्चना की जाती थी। आधुनिक शोध से भी शाक्त-मत का प्रचलन प्रमाणित हो चुका है।[१२] पार्वती की पूजा दुर्गा, काली या अम्बा नाम से की जाती है और इनको ङो मपोक पांथोइबी, इराई लैमा, सौबोन लैइरेमा, पांथोइबी, थोइबी आदि विभिन्न स्थानीय देवियों के रूप में पूजा जाता है।

वैष्णव-सम्प्रदाय

१. निम्बार्क-सम्प्रदाय

श्री आर० के० सनाहल सिंह ने मणिपुर के इतिहास में निम्बार्क-सम्प्रदाय के संन्यासियों के धर्म-प्रचार हेतु मणिपुर आने का उल्लेख किया है तथा यह भी लिखा है कि लोगों ने निम्बार्क-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का स्वागत किया (पृ० ४७-४८)। 'विजय पंचाली (भाग दो)' में चराईरौङ्बा के निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होने का उल्लेख किया गया है।

२. विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय

एल० इबुङ्ोहल सिंह तथा एन० खेलचन्द्र सिंह ने चराईरौङ्बा के विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय में दीक्षित होने का उल्लेख किया है और यह भी कहा है कि यह मध्वाचार्य का मत था।[१३] किन्तु लेखक की यह धारणा साधार नहीं प्रतीत होती।

३. असमी वैष्णव-सम्प्रदाय

६ अगस्त, १७१५ ई० को तेखाओ (असम) से ३९ भक्तों और एक धर्मोपदेशक के मणिपुर में आने का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि सीताराम नामक मणिपुर का एक ब्राह्मण असम की यात्रा पर गया था और वहाँ से भागवत पुराण लाया था। अतः असम के वैष्णव-सम्प्रदाय का मणिपुर पर प्रभाव पड़ा होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है।[१४] महाराजा जयसिंह (भाग्यचन्द्र) आठ वर्ष तक असम में रहे थे। वहाँ वे शंकरदेव के द्वारा स्थापित एकशरणिया-सम्प्रदाय के सत्रों में कीर्तन, नाटक आदि देखते थे। अतः असम के वैष्णव-धर्म के मणिपुरी वैष्णव-धर्म पर प्रभाव की सम्भावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

४. रामानन्दी सम्प्रदाय

गोस्वामी शान्तिदास अधिकारी के १७१६ से १७२८ ई० के बीच मणिपुर में आने का उल्लेख पाया जाता है। वे कब और कहाँ से आये, यह अभी तक विवाद का विषय है।[१५] परन्तु शान्तिदास के भगवानदास तथा नारायणदास नामक शिष्यों के साथ मणिपुर आने का उल्लेख 'चैथरोल कुमबाबा' में भी है। शान्तिदास ने महाराजा गरीबनिवाज को रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित किया था। शान्तिदास के कारण ही महाराजा एवं जनता ने रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षा ली और राम की पूजा की परम्परा आरम्भ की। निंथेम-पुखरी के किनारे राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गयी। गरीबनिवाज के ज्येष्ठ पुत्र श्यामशाह हनुमान्‌जी के परम भक्त थे। १६ जून १७२९ को इम्फाल नदी के तट पर महाबली मन्दिर का निर्माण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया गया।[१६] मणिपुर के धार्मिक इतिहास में इसके पूर्व भी श्री वैष्णव-सम्प्रदाय के १२वीं शताब्दी में प्रचार का उल्लेख मिलता है। राजा थावनाथाबा (सन् ११९५–१२३१ ई०) तथा राजा चलाम्बा (सन् १५४५ से १५६२ ई०) के समय में निर्मित रामजी व हनुमान् ठाकुर के मन्दिर इसके प्रमाण हैं। उस समय से ही राम, हनुमान् व सीताजी की पूजा का मणिपुर में प्रचलन हुआ था, जिसकी परम्परा आज तक चली आ रही है।

५. चैतन्य-सम्प्रदाय

चराईरौङ्बा और उनके पुत्र द्वारा गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षित होने की बात कही जाती है। किन्तु 'चैथरोल कुमबाबा' में गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का उल्लेख प्रथम बार महाराज गरीबनिवाज के प्रसंग में ही हुआ है। 'भाग्यचन्द्रचरित' में १५ अक्तूबर १७१६ ई० के दिन रामगोपाल वैरागी द्वारा गरीबनिवाज को गौड़ीय वैष्णव-मत की दीक्षा देने का उल्लेख पाया जाता है (पृ० २८–२१०)। गौड़ीय गुरु-प्रणाली के अनुसार भी महाराज भाग्यचन्द्र, जो गरीबनिवाज के पौत्र थे, रामगोपाल वैरागी के शिष्य ठहरते हैं। महाराज भाग्यचन्द्र (जयसिंह) बाल्यकाल से ही गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने बाद में रामानन्दी सम्प्रदाय के स्थान पर गौड़ीय वैष्णव-मत को ही राजधर्म घोषित कर दिया था।

गरीबनिवाज के पश्चात् अजितशाह और भरतशाह राजा हुए, किन्तु इनके समय में इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई।

डॉ० एम० कीर्तिसिंह का कथन है कि साहित्यिक साक्ष्य से प्रमाणित हो जाता है कि हिन्दू-धर्म के विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, निम्बार्क तथा शैव-सम्प्रदाय मणिपुर में प्रचलित थे। इनके साथ ही मणिपुर के आदिम धर्म के देव सनामही, पाखंबा, पांथोइवी भी पूजे जाते थे। उस समय धार्मिक सहिष्णुता थी और धार्मिक विश्वासों को लेकर कोई विवाद नही था (पृ० १२३)। इससे स्पष्ट है कि मणिपुर में वैष्णव-धर्म का स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा से कोई विरोध नहीं था। महाराज गरीबनिवाज के शासनकाल से महाराजा चन्द्रकीर्ति (१८९१ ई०) के समय तक वैष्णव-धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। राज्याश्रय में वैष्णव-भक्ति, विशेष रूप से श्रीकृष्ण-भक्ति, चैतन्य-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर विकसित हुई।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का विकास

प्रथम चरण

महाराजा चराईरौङ्बा द्वारा १७०३ ई० में श्रीराधाकृष्ण मन्दिर की स्थापना से ही मणिपुर में कृष्ण-भक्ति का बीज-वपन हुआ, जो उनके पुत्र गरीबनिवाज के शासनकाल में अंकुरित हुआ। इसके फलस्वरूप गौड़ीय वैष्णव-भक्ति राज्य-धर्म-पद्धति घोषित की गयी और निंथैम पुखरी के पास श्री वृन्दावनचन्द्र के मन्दिर का निर्माण (१७२२ ई० में) हुआ। इसके प्रचार हेतु महाराजा चराईरौङ्बा ने बंगला-कीर्तन-पद्धति का श्रीगणेश किया और गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-संकीर्तन की व्यवस्था की। गरीबनिवाज के समय से ही मणिपुर की संस्कृति एवं साहित्य पर कृष्ण-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सन् १७१७ से १७३७ ई० के बीच महाभारत के कुछ पर्वों का मणिपुरी में प्रथम बार अनुवाद किया गया। सन् १७२७-१७२८ ई० के बीच रामायण के भी कतिपय छन्दों का मणिपुरी में अनुवाद हुआ। संस्कृत शब्दों का मणिपुरी भाषा में उसी समय प्रयोग आरम्भ हुआ। बंगाली ग्रन्थों का अनुवाद भी गरीबनिवाज के समय से आरम्भ हुआ। उन्होंने 'लक्ष्मी-चरित' का स्वयं अनुवाद किया था। उन्हींके समय में मन्दिरों का निर्माण किया गया तथा पूजा भी आरम्भ की गयी। इस काल के शिल्प और स्थापत्य-कला पर कृष्ण-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। गरीबनिवाज के प्रयासों का जनता ने विरोध किया। इसके बावजूद राम-कृष्ण-भक्ति का उनके शासन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काल में प्रचार-प्रसार हो गया था तथा कृष्ण-भक्ति के साथ-साथ स्थानीय प्राचीन मैतै-धर्म के देवी-देवताओं की पूजा भी प्रचलित रही। दोनों धर्मों में समझौता हो गया। किन्तु इन देवताओं की पूजा में भी वैष्णव-पूजा-पद्धति अपनायी गयी।[१७] बलि-प्रथा एवं मांस-मदिरा का सेवन बन्द कर दिया गया। चैराओबा, लाईहरौबा जैसे स्थानीय पर्व-त्योहार भी इस नवीन धर्म-पद्धति के साथ-साथ चलते रहे। मस्तक पर गौड़ीय वैष्णव-मत के अनुसार चन्दन-तिलक की परम्परा भी तभी से प्रारम्भ हुई और पुरुषों में सिर पर पगड़ी या साफा बाँधने की प्रथा चल पड़ी।

द्वितीय चरण

गौड़ीय वैष्णव-भक्ति महाराज चराईरौङ्बा और गरीबनिवाज के पश्चात् महाराज भाग्यचन्द्र (जयसिंह) के अद्भुत व्यक्तित्व का प्रश्रय पाकर पल्लवित एवं पुष्पित हुई। महाराज जयसिंह अद्भुत योद्धा, कुशल सेनापति, सुयोग्य शासक तथा दूरदर्शी राजपुरुष थे। इनके अतिरिक्त वे धर्म-पालक एवं धर्म-रक्षक भी थे। उनका धार्मिक चरित्र इतना प्रखर था कि मणिपुर के लोग और इतिहासकार उन्हें एक भक्त के रूप में अधिक सम्मान देते हैं। इसीलिए उनका 'राजर्षि' नाम ही अधिक लोकप्रिय है। उनकी कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी अनेक किंवदन्तियाँ मणिपुर से असम तक प्रचलित हैं। उनके भक्त-चरित्र की कुछ घटनाएँ मणिपुर के राजवंश के इतिहास 'चैथरोल-कुमबाबा' तथा असम के राजवंश के इतिहास 'बुरंजी' में अंकित हैं। असम-नरेश राजेश्वर सिंह स्वर्गदेव के यहाँ सत्य-क्रिया की पूर्व रात्रि को श्री गोविन्दजी ने राजर्षि को स्वप्न में दर्शन देकर उन्हें पुनः राज्य-प्राप्ति का वरदान दिया था। गोविन्दजी के आज्ञानुसार ही राजर्षि ने कैना नामक स्थान से कटहल का वृक्ष कटवाया और इम्फाल में लाकर उससे श्री गोविन्दजी के विग्रह बनवाये थे।

राजा ने मूर्ति बनवाने के लिए कैना के कटहल वृक्ष को बढ़ई लोगों को सौंपा और उनको अभिनय के द्वारा स्वप्न में देखे गये भगवान् के त्रिभंगी रूप को समझाया, जिससे वे श्री गोविन्दजी की प्रतिमा को वह रूप दे सकें। भाग्यचन्द्र महाराज निरन्तर श्रीकृष्ण-भक्ति में डूबे रहते थे। उन्हें मूर्ति की चिन्ता रात-दिन सताती थी। वे स्वयं कारीगरों के कार्यों का निरीक्षण करते थे। यह कार्य लमाङ्दौङ् (वर्तमान विशुनपुर) में किया जा रहा था। उन दिनों वहीं मणिपुर की राजधानी थी। प्रथम विग्रह बनकर तैयार हुआ। इससे राजा प्रसन्न तो हुआ, किन्तु मूर्ति में अभी भी कुछ कमी थी। स्वप्न में देखे गये श्री गोविन्दजी के रूप में और इसमें किंचित् अन्तर था। इसलिए क्रमशः विग्रह बनाये जाते रहे। अन्ततोगत्वा श्री गोविन्दजी का सही विग्रह बन गया। कैना के कटहल से बनी मूर्तियों की क्रमशः निम्नलिखित स्थानों पर प्रतिष्ठा की गयी तथा अधोलिखित व्यक्तियों को मन्दिर का पुजारी नियुक्त किया गया :[१८]

श्री विग्रह का नाम	स्थान	पुजारी
१. श्री विजय गोविन्द	सगोल वन्द	अनन्तशाह मन्त्री
२. श्री गोपीनाथ	निंथौंखौं	कीर्तिध्वज (कालराजा)
३. श्री मदनमोहन	कोंबा	हंगोइबाम चूरा शर्मा
४ श्री गोविन्दजी	इम्फाल राजमहल-परिसर	महाराजा स्वयं

इन मूर्तियों के बनने में कई महीने का समय लगा। जब वे बनकर तैयार हो गयीं तो राजा ने लमांदों से अपनी राजधानी लांथवाल (वर्तमान कांचीपुर, जहाँ मणिपुर विश्वविद्यालय है) बना ली। अक्तूबर १७७९ ई० में लांथवाल में रासमण्डल में मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी। इस प्रतिष्ठा का उत्सव पाँच दिन तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चला।[१९] यह समारोह बहुत धूमधाम से मनाया गया। सम्पूर्ण मणिपुर की घाटी में आनन्द छा गया। श्री गोविन्दजी की विग्रह-प्रतिष्ठा ने मणिपुर के इतिहास में एक नये अध्याय की शुरुआत की।[२०] श्री गोविन्दजी ही उस दिन से मणिपुर की सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किये गये। राजा स्वयं गोविन्दजी का प्रतिनिधि बन गया। गोविन्दजी के नाम से मणिपुर के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अनेक संस्थाओं एवं परिषदों का गठन किया गया, जिनका राजा अध्यक्ष था और गोविन्दजी के नाम और आज्ञा से ही राज्य-कार्य चलते थे। विग्रह-प्रतिष्ठा के समय मणिपुर के गाँव-गाँव से लोग आये और इस महान् धार्मिक-ऐतिहासिक उत्सव में भाग लिया।

महाराज भाग्यचन्द्र प्रतिभाशाली एवं दूरदर्शी थे। उन्होंने अपने पितामह गरीबनिवाज के शासनकाल में प्रजा और दरबारियों के द्वारा रामानन्दी सम्प्रदाय को थोपे जाने पर किये गये विरोध से शिक्षा ग्रहण की। अतः उन्होंने गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-पद्धति को प्रजातान्त्रिक प्रणाली के माध्यम से लोकप्रिय बनाया। प्रत्येक संस्था एवं परिषद् में प्रजा के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये। उनके परामर्श से नयी परम्पराओं की नींव रखी गयी। मन्दिरों में नित्य पूजा-अनुष्ठान के नियम, परम्पराएँ, पूजा-सामग्री, पूजा-गीतों, वस्त्र-अलंकरण आदि के सम्बन्ध में निर्णय इन्हीं संस्थाओं के द्वारा लिये जाते थे। ब्राह्मण और विद्वान् पण्डितों से इसके लिए विचार-विमर्श किया जाता था।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि श्री गोविन्दजी की पूजा की सम्पूर्ण प्रक्रिया में राजा के साथ उनकी धर्म-प्राण प्रजा भी थी, जिसने राजा के साथ-साथ श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के चमत्कारों को देखा था। आदिम जाति की महिलाएँ, बढ़ई और अन्य कलाकार इस प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार थे। यह धर्म या परम्पराएँ अनुकरण मात्र न होकर स्थानीय जन-मानस की उपज थीं, जो कालान्तर में लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन गयीं। इस प्रकार राजा के साथ-साथ प्रजा ने भी गोविन्दजी को मात्र एक मूर्ति नहीं, बल्कि एक जीवन्त-संस्था मानकर हृदयंगम कर लिया। भाग्यचन्द्र महाराज ने प्रजा को श्री गोविन्दजी के रूप में एक जीवित देवता और प्राणवान् धार्मिक विश्वास दिया। उन्होंने किसीका अनुकरण न करके मणिपुर की प्रकृति के अनुकूल एक नवीन कृष्ण-भक्ति का विकास किया। भगवान् श्रीकृष्ण का मणिपुर में यह नवीन अवतार था जो प्रत्येक मणिपुरी के हृदय में निवास करने के लिए हुआ था। विचार-विमर्श के पश्चात् स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार पूजा-अनुष्ठान और भोग की वस्तुओं में स्थानीय उत्पादनों को प्रमुख स्थान दिया गया। राजर्षि के शासनकाल में मणिपुर के जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। प्रतिदिन प्रातःकाल घर-घर में स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ, सन्ध्या-आरती, माथे पर तिलक लगाना और स्वच्छता जीवन के अनिवार्य अंग बन गये। स्वभाव में विनम्रता और ईश्वर-भक्ति का प्रचलन हो गया। परिणामस्वरूप मणिपुर के घरों की, शरीर की, वस्त्रों की तथा बर्तनों की स्वच्छता स्पृहणीय बन गयी। घर-घर में मन्दिर, तुलसी-चौरा, गले में तुलसी-माला और भजन-कीर्तन जीवन के अभिन्न अंग बन गये। कला, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि श्री कृष्ण-भक्ति के इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। इन सबके अतिरिक्त भाग्यचन्द्र के शासनकाल की दो और अनुपम देन हैं—रास-लीला और संकीर्तन।

रास-लीला

राजर्षि को असम-प्रवासकाल में स्वप्नदर्शन में श्री गोविन्दजी ने दो आज्ञाएँ दी थीं—एक विग्रह-स्थापना और दूसरा रास-लीला का आयोजन। श्री गोविन्दजी के पूर्वोक्त चार विग्रह स्थापित करने के पश्चात् राजा को रास-लीला-आयोजन की चिन्ता हुई। वे बार-बार प्रभु से मार्ग-निर्देशन की प्रार्थना कर रहे थे। हरि-इच्छा प्रबल थी। उन्होंने स्वप्न में श्री गोविन्दजी को राधा व गोपियों के साथ रास-लीला करते देखा। इसके पश्चात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वप्न को साकार करने के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। राजर्षि की ज्येष्ठा पुत्री बिम्बावती मंजुरी, जो बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण की भक्त थी, को राधा के अभिनय का उत्तरदायित्व सौंपा गया। कलाकारों ने रासेश्वरी श्री राधा की मूर्ति का आधार महाराजकुमारी बिम्बावती मंजुरी की शारीरिक संरचना को बनाया। स्वयं राजा तथा उनके काका ने क्रमशः मृदंग-वादन एवं गायन प्रस्तुत किया।[२१] राजा की पुत्री ने कार्तिक-पूर्णिमा को सन् १७७९ ई० में लाङ्थबाल में आयोजित भव्य रास-मण्डल की प्रथम रास-लीला में राधाजी का अभिनय किया तथा उसकी सखियों ने गोपियों का। यह महारास का अनुकरण था, जो भगवान् कृष्ण ने निभृतनिकुंज में राधाजी और गोपियों के साथ कात्यायनी-पूजा के निमित्त किया था।

रास-लीला में जिन गीतों तथा संवादों का प्रयोग किया गया वे श्रीमद्भागवत महापुराण के सम्बद्ध अंशों पर आधारित थे। ब्रजबुली और बंगाली भाषा के संवाद एवं गीत अपनाये गये, किन्तु मणिपुरी भाषा के एक भी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया।[२२]

अनिन्द्य सुन्दरी बिम्बावती मंजुरी ने राधा की भूमिका में अप्रत्याशित श्रेष्ठ अभिनय प्रस्तुत किया तथा उनकी सखियों ने गोपियों का। वेष-भूषा, साज-सज्जा आदि सभी दृष्टियों से यह प्रथम रास-लीला अपूर्व थी। इसी दिन से मणिपुर में रास-लीला की परम्परा का श्रीगणेश हुआ और मणिपुरी रास-लीला कालान्तर में भारत का एक प्रमुख शास्त्रीय नृत्य बन गया, जो आज भी देश-विदेश में विख्यात है। रास-लीला मणिपुर के धार्मिक जीवन का सार है, जिसमें भक्त निष्ठापूर्वक भगवान् से तादात्म्य स्थापित करता है। रास-लीला के आयोजन के समय निम्नांकित नियमों का पालन करने की परम्परा प्रचलित है—

१. रास का आयोजन मध्यरात्रि के बाद किया जाता है, जो प्रातःकाल तक चलता है।

२. निश्चित समय पर तथा निश्चित स्थान, जैसे—मन्दिर या पर्वत के पास ही इसका आयोजन किया जा सकता है।

३. रास-लीला-मण्डप में केवल मणिपुरी वैष्णव ही प्रवेश कर सकते हैं। विजातीय लोगों का मण्डप में प्रवेश वर्जित है।

४. रास-स्थल पवित्र माना जाता है। किसी भी व्यक्ति को नर्तकों के पास जाने की अनुमति नहीं दी जाती है।

५. प्रणाम-भंगिमा के समय हँसना, बोलना या बाहर जाना पाप माना जाता है।

६. दर्शक-वृन्द को भगवद्-भक्ति में लीन रहना पड़ता है।

७. कृष्ण की भूमिका में ७-८ वर्ष की आयु का बालक होता है। इससे अधिक अवस्था के व्यक्ति के लिए कृष्ण की भूमिका निषिद्ध है। हाँ, गोपियों की आयु के सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

८. रास-लीला राधाकृष्ण की गोपियों एवं ग्वालों के साथ रसात्मक लीला है, जिसमें राधा और कृष्ण के आध्यात्मिक एवं अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। रास-लीला को राधाकृष्ण की अन्तरंग और गोपनीय लीला मानते हैं, अतः उसके सम्बन्ध में कुछ भी बताना या कहना वर्जित है। कृष्ण आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं और गोप तथा गोपियाँ बाह्य जगत् का। रास-लीला मणिपुरी वैष्णव के लिए आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया है।[२३]

राजर्षि ने मणिपुर की प्रतिभा तथा प्राचीन नृत्य-परम्परा की उर्वर भूमि को श्रम से सींचकर श्री गोविन्द जी के आज्ञापालनार्थ महारास को नवीन दार्शनिक आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित किया और स्थानीय नृत्य-पद्धति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के आधार पर नवीन नृत्याभिनय का आविष्कार किया। संगीत के क्षेत्र में भी अनेक नये प्रयोग किये गये। महाराजश्री स्वयं प्रतिभावान् कवि, अभिनेता, संगीतज्ञ और गायक थे। मणिपुर का लोक-नृत्य लाईहरौबा राजर्षि की प्रतिभा से इस प्रकार परिवर्तित एवं संशोधित किया गया कि वह रास का ही एक अभिन्न अंग वन गया। इसके विकास में 'नाट्य-शास्त्र' और 'अभिनय-दर्पण' की प्रमुख भूमिका रही है। भागवत पुराण तो इसका आधार है ही। असम में राजर्षि का आठ वर्ष का लम्बा प्रवासकाल रास-लीला की पृष्ठभूमि के निर्माण में सहायक हुआ। कारण कि शंकरदेव (सन् १४४९ से १५६८ ई०) की वैष्णव-भक्ति-भावना वहाँ के जन-जीवन का अंग बन चुकी थी। डॉ० एम० निओग ने अपनी पुस्तक 'शंकरदेव एण्ड हिज़ टाइम्स' (पृ० २७२) में मणिपुरी-रास पर असम की सत्र-परम्परा का अत्यधिक प्रभाव बताया है। 'चैथरोल कुमबाबा' में भी असम की तत्कालीन राजधानी गरगाँव में महाराजा जयसिंह के द्वारा वैष्णव नाटकों के अवलोकन का उल्लेख प्राप्त होता है। सम्भवतः महाराजा ने वहीं राधाकृष्ण-भक्ति को मणिपुर में नृत्य एवं संगीत के द्वारा लोकप्रिय बनाने का निर्णय लिया होगा[२४] और वहीं उनके मानस-पटल पर एक कल्पना अंकित हुई होगी, जिसको उन्होंने यथावसर साकार किया।

मणिपुरी रास को निम्नांकित भागों में विभक्त किया जा सकता है :

रास का प्रकार	समय
महारास	कार्तिक पूर्णिमा
कुञ्जरास	आश्विन अष्टमी
वसन्तरास	चैत्र पूर्णिमा
नित्यरास	प्रतिदिन किसी भी समय
दिवारास	सभी ऋतुओं में दिन में
नर्तनरास	निर्धारित समय पर
अष्ट गोपी और अष्ट श्यामरास	वसन्तोत्सव पर

महारास श्री गोविन्दजी के मन्दिर में किया जाता है, रासेश्वरी श्री राधा और कृष्ण की मूर्तियाँ रास-मण्डप के मध्य रखी जाती हैं। गोपियाँ इनको घेरकर एक वृत्त में नृत्य करती हैं। किन्तु कुञ्जरास और वसन्तरास को, विजय-गोविन्दजी के मन्दिर में सम्पन्न होने के कारण, विजय-गोविन्दरास भी कहा जाता है। कुञ्ज व वसन्तरास में राधाकृष्ण के अभिसार का अभिनय एवं प्रदर्शन किया जाता है।[२५]

रास-लीला या रास-नृत्य श्री गोविन्दजी (श्रीकृष्ण का लोकप्रिय मणिपुरी सम्बोधन) मन्दिर के अतिरिक्त सभी प्रमुख मन्दिरों, घरों और गाँव-गाँव में किया जाता है। भक्तजन, दर्शक, नर्तक, गायक, वादक रूप में उसमें उपस्थित होते हैं। वे रास-मण्डल में नंगे पाँव आते हैं और राधाकृष्ण की भक्ति में लीन हो जाते हैं। राधा या गोपियों के वियोग के नृत्याभिनय व गान के समय भक्तजनों की आँखों से अविरल अश्रु-प्रवाह देखा जा सकता है।

रास-मण्डल में विभिन्न प्रकार के रास के लिए निर्धारित वेष-भूषा में राधाकृष्ण एवं गोपियाँ सुसज्जित होकर प्रवेश करती हैं। मण्डप एवं रंगमंच को खूब सजाया जाता है। तेल के बड़े-बड़े दीपक प्रकाश की व्यवस्था हेतु प्रज्वलित किये जाते हैं। नटपाला (कीर्तन-दल) सन्ध्या समय से ही रास-नृत्य की भूमिका के रूप में आरम्भ हो जाता है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु और महाराजा जयसिंह के जीवन-चरित्र-सम्बन्धी पद गाये जाते हैं। अन्त में वृन्दावन-शोभा के पद गाये जाते हैं। नटपाला अपने सिर पर बँधे साफे उतारकर मण्डप से प्रस्थान करते हैं और मण्डप के केन्द्र में पूजा आरम्भ होती है। मण्डप के उत्तर-पश्चिमी भाग में संगीत-मण्डली अपने वाद्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यन्त्रों (मृदंग, इसराज या तम्बूरा, बाँसुरी, करताल, झाँझ, शंख आदि) के साथ आसन ग्रहण करती है। दो महिला गायिकाएँ और कुछ पुरुष गायक वैष्णव-पदावली गाते हैं, जिसे नर्तक अपनी भावभंगिमाओं से अभिनीत करते हैं। एकाकी, द्वैत और सामूहिक गान क्रमशः गाये जाते हैं। दो महिला सूत्रधार पृष्ठसंगीत (बैक ग्राउण्ड म्यूजिक) के रूप में राधा-विरह के गीत गाती हैं। किन्तु कृष्ण-वियोग के गीत पृष्ठसंगीत के रूप में पुरुष-दल द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। वहाँ कृष्ण की मूर्ति विराजमान रहती है। लगभग २२ गोपियाँ रास में भाग लेती हैं, जो नाचती-गाती हैं और संवाद भी बोलती हैं। इनके भी गीत एकाकी, द्वैत या सामूहिक होते हैं। गाते समय ये भावभंगिमाओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। भाव-प्रदर्शन की शैली अत्यन्त उत्कृष्ट होती है। प्रत्येक नृत्य का उत्तरदायित्व रासधारी पर होता है, जो नृत्य-गुरु, निदेशक और संचालक होता है। वह स्वयं मृदंग-वादक के रूप में नृत्य में भाग लेता है। श्रृंगार-रस ही रास-लीला का प्रमुख रस होता है, जिसके सहायक के रूप में अन्य रसों का भी समावेश किया जाता है। नृत्य में नर्तक परेङ् अर्थात् माला बनाते हैं, जो राधा-कृष्ण की परिक्रमा करती है। मणिपुरी रास-नृत्य में भंगी परेङ् अचौबा, खुरुम्बा परेङ् तथा वृन्दावन परेङ् लास्य-शैली में प्रस्तुत की जाती हैं, जबकि शेष ताण्डव-शैली में।

रास-लीला में एकाकी तथा संयुक्त हस्तमुद्राएँ मुख्य हैं। किन्तु स्वानुगता, अनुगता और गुणका या गमका मुद्राएँ भी स्वीकृत हैं। इसमें गति, बोल और चाली (पद-संचालन) का बहुत महत्त्व माना जाता है। चार से १२० ताल और लय का तालप्रबन्ध रास-नृत्य की विशेषता है। मणिपुर के रास-नृत्य में त्रिताल, रूपक, झपताल, दादरा, कहरवा, ब्रह्मताल, दस-कुश आदि प्रमुख हैं। मंजीरा तथा मृदंग ताल और गति को नियन्त्रित रखते हैं।[२६]

सूर्योदय के साथ राधा-कृष्ण के सम्मुख प्रज्वलित आरती के थाल लाये जाते हैं और आरती के साथ ही रास-लीला समाप्त हो जाती है। मन्त्र-मुग्ध दर्शक सूर्यास्त से सूर्योदय तक भक्तिभाव में निमग्न रहने के पश्चात् भौतिक लोक में लौट आते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि रास-लीला मणिपुर की घाटी के लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है। प्रत्येक मैतै बालिका की मनोकामना या जीवन-ध्येय होता है कि वह रास-लीला में राधा या गोपी की भूमिका निभाये। इससे रास-लीला के मणिपुर में प्रचार-प्रसार और लोकप्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

उपर्युक्त छः प्रकार के रास आज भी प्रचलित हैं किन्तु राजर्षि भाग्यचन्द्र के समय केवल प्रथम तीन रास ही प्रारम्भ हुए थे। महाराज भाग्यचन्द्र सम्भवतः यह जानते थे कि वे एक गौरवशाली परम्परा की स्थापना कर रहे हैं जो यथावसर परिवर्तित एवं संशोधित होती रहेगी। वास्तव में इस नृत्य-परम्परा का निरन्तर परिष्कार एवं संस्कार हो रहा है। प्रो० एन० तोम्बी सिंह ने ठीक ही कहा है कि मणिपुर की बुनाई एवं नृत्य-परम्परा कभी भी स्थिर नहीं रही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी ने अपनी प्रतिभा से इन दोनों कलाओं को सजाया और सँवारा है (पृष्ठ ३२)। भाग्यचन्द्र महाराज द्वारा स्थापित नट-संकीर्तन एवं रास-नृत्य की परम्परा का आगे चलकर महाराज गम्भीर सिंह के समय में संस्कार किया गया। महाराज नरसिंह और चन्द्रकीर्ति सिंह ने इसका सम्यक्रूपेण निर्वाह किया। मणिपुर का रास-नृत्य, कृष्ण-भक्ति की, मणिपुर को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को एक विलक्षण देन है।

नट-संकीर्तन

नट-संकीर्तन के अभाव में रास-नृत्य का अध्ययन-विवेचन अपूर्ण ही रहेगा। नट-संकीर्तन, रास-नृत्य को संगीत और गान प्रदान करता है। महाराज चराईरोङ्बा के समय (१७०३ ई०) में कीर्तन-परम्परा आरम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई थी जो आज भी अरिबापाला के नाम से प्रचलित है। महाराजा गरीबनिवाज ने मणिपुरी पद-गान-परम्परा को निषिद्ध घोषित करके बंगाली, ब्रजबुली, मैथिली और संस्कृत की वैष्णव-पदावली गाने की परम्परा आरम्भ की थी।[२७] महाराज भाग्यचन्द्र ने पाला-लोईसङ् अर्थात् नर्तक एवं संगीतज्ञ-दल की सन् १७७६ ई० में स्थापना की। मणिपुरी संगीत-नृत्य-कला के विकास में पाला-लोईसङ् की स्थापना एक महत्त्वपूर्ण कदम था। राजर्षि के द्वारा स्थापित इस परम्परा को उनके उत्तराधिकारियों ने विकसित किया।[२८] कीर्तन-परम्परा गौड़ीय वैष्णव-भक्ति की देन है, जिसमें कीर्तन को भक्ति का महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। पाला-लोईसंङ् एक राजकोय संस्था थी, जिसके द्वारा गौड़ीय वैष्णव-भक्ति के सिद्धान्तों की कीर्तन के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी।[२९] नट-संकीर्तन का दूसरा समूह अनौबा-पाला (नया समूह) के नाम से जाना जाता है। ये दोनों मणिपुर-नट-संकीर्तन की दो प्रमुख परम्पराएँ हैं।

गौड़ीय वैष्णव-धर्म के प्रभाव के कारण मणिपुर में नट-संकीर्तन का जन्म हुआ। संकीर्तन के आयोजन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

१. राधा-कृष्ण की प्रतिमाओं और चार कलशों की स्तुति।

२. जहाँ कीर्तन किया जाना है, वहाँ मण्डली के अधिवास का आरम्भ।

३. गुरु की पूजा एवं स्तुति।

४. पाँच वैष्णव-सन्त एवं भक्तों की उपासना।

५. रात्रि-जागरण और ईश्वर-स्तुति।

धर्मशास्त्रों के निर्देशानुसार बाँस के खंभों से एक सुन्दर कीर्तन-मण्डप बनाया जाता है। मण्डप के केन्द्र में पूजा, वेदो-सामग्री और चारों कोनों में चार कलश स्थापित किये जाते हैं। मण्डप के केन्द्र में कलाकार-समूह और मण्डप के दाहिनी और बायीं ओर मृदंग-वादक घुटनों के बल बैठते हैं। बायीं ओर दोहार (दोहराने-वाला) तथा अन्य गायक होते हैं। दाहिनी ओर भी गायक-दल होता है और केन्द्र में मुख्य गायक, ईशै हनबा, रहता है। यह गायक-वादक-दल समस्त उपस्थित लोगों को दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मण्डप स्वामी (मपु) कलाकारों को पुष्पादि भेंट करता है और कहता है, 'बोलो, प्रेम से कहो श्री राधाकृष्ण, बोलो प्रभु निताई-चैतन्य-अद्वैत, सन्तो, साधो, मधु रस वाणी, हरे-हरे। इसके साथ ही मृदंग पर 'तेन-तेन ता ताक तांग' बोल के साथ वादक ताल देते हैं। मृदंग के पहले ताल के साथ ही शंख फूँका जाता है। फिर आलाप और करताल-ध्वनि आरम्भ होती है। इसके पश्चात् मुख्य गायक सभा-वन्दना, गुरु-वन्दना, गौर-चन्द्रिका के पद गाता है।

राजमेल-संकीर्तन

राजमेल नामक नृत्य मणिपुरी नट-कीर्तन का प्रमुख अंग है। विलम्बित लय से मध्य लय और मध्य से द्रुत लय में यह नृत्य छः भागों में प्रस्तुत किया जाता है। मृदंग-वादन करते हुए नर्तक बायें से दाहिनी ओर घूमते हैं और इनकी गति उड़ते हुए गरुड़ का प्रतीकात्मक प्रदर्शन देती है, जो राधाकृष्ण को लेकर उड़ता है। गायक गान में गरुड़ के राधाकृष्ण को लेकर उड़ने का वर्णन करते हैं। मृदंग से पक्षी उड़ने-गरजने और पशु-पक्षियों की ध्वनि उत्पन्न की जाती है। द्रुत लय में नर्तकों का एक पाँव पर घूमना और उछलना दर्शनीय है। कीर्तन के बोल गौरांग महाप्रभु के जन्म, राधाकृष्ण के रस से भरे और गौड़ीय गोस्वामियों के जीवन-चरित्र से सम्बद्ध होते हैं। नट-पाला के ये बोल श्रोताओं की भावनाओं को इतना उद्दीप्त करते हैं कि वे रोने लगते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नट-संकीर्तन रास-लीला की भूमिका होता है। यह सन्ध्या से मध्य रात्रि तक चलता है। इसकी समाप्ति पर रास-लीला का आयोजन किया जाता है। नट-पाला को पुङ्-चोलम या मृदंग-नृत्य भी कहा जाता है, जो दो मृदंग-वादकों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। धूमल-नृत्य एक सौ मृदंग-वादक प्रस्तुत करते हैं। नूपी-पाला या पुरुषों का करताल-नृत्य भी नट-संकीर्तन में प्रस्तुत किया जानेवाला प्रमुख नृत्य है।

नूपी-पाला-संकीर्तन

नूपी (स्त्री) पाला (समूह) कीर्तन के साथ स्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किया जानेवाला नृत्य है। यह रासेश्वरी और जलकेली पाला के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसका आयोजन झूलन-यात्रा, देवी-पूजा आदि धार्मिक अवसरों पर भी छोटी करताल के साथ किया जाता है और इसमें पूरा गाँव भाग लेता है।

मनोहर शाही-संकीर्तन

मणिपुरी मनोहर शाही खोल (मृदंग) और करताल पर प्रस्तुत किया जानेवाला कीर्तन-नृत्य है, जो नट-संकीर्तन के नृत्यों से भाव, भूषा एवं वाद्य-यन्त्रों के कारण भिन्न है। यह महाराजा चन्द्रकीर्ति के समय में आरम्भ किया गया था।[३०]

संकीर्तन में मणिपुर की मौलिकता

संकीर्तन को गौड़ीय वैष्णव-भक्ति में प्रमुख स्थान दिया गया है। यह बंगाल से मणिपुर में आया है, अतः मणिपुर को कृष्ण-भक्ति की महत्त्वपूर्ण देन है। बंगाल का संकीर्तन या कीर्तन मणिपुर की कलात्मक भूमि पर आकर नट-संकीर्तन के रूप में परिवर्तित हो गया। क्योंकि मणिपुर में गीत या पदावली को केवल गाया नहीं जाता, अपितु उसको नृत्याभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाता है अतः यहाँ संकीर्तन से पूर्व नट शब्द जुड़ गया है।

मणिपुर के नट-संकीर्तन की मौलिकता से सम्बद्ध महाराजा चौरजीत सिंह के समय (सन् १८०३–१८१३ ई०) की एक प्रसिद्ध घटना है। बंगाली घोप-शैली में कीर्तन करनेवाले एक गुरु ने मणिपुरी शैली के संकीर्तन-गायक को शास्त्रीय पद्धति से न गाने के लिए चुनौती दी। मणिपुरी गुरु ने आरोप का उत्तर देते हुए कहा कि मणिपुरी राग-रागिनी की शैली और संगीत किसी शास्त्रीय संगीत का अनुकरण नहीं है, बल्कि यह तो स्वयं भगवान् गोविन्दजी के द्वारा दिया गया वरदान है। विवाद के फलस्वरूप दोनों गुरुओं के बीच संगीत-प्रतियोगिता आरम्भ हुई और जब मणिपुरी गुरु ने श्यामकौड़ा राग प्रस्तुत किया तो मण्डप में एक चिड़िया ने प्रवेश किया और वह संगीतज्ञ के कंधे पर आकर बैठ गयी। इस घटना को भगवत्-कृपा मानकर महाराजा सहित सभी श्रोताओं ने संगीतज्ञ को प्रणाम किया। तब संगीत-गुरु ने स्पष्ट किया कि मणिपुरी संगीत-शैली का यह अन्तर क्षेत्रीयता और विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा की देन है।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति के क्षेत्र में मणिपुर का योगदान

गौड़ीय वैष्णव-भक्ति का प्रादुर्भाव गौड़देश (बंगाल) में हुआ और वह बाद में मणिपुर में प्रसारित हुई। गौड़ीय वैष्णव-भक्ति की जन्मस्थली नवद्वीप में शाक्त धर्म के प्रभाव के परिणामस्वरूप गौड़ीय भक्ति-पद्धति की छवि अत्यन्त धूमिल हो गयी थी। गौड़ीय वैष्णव-भक्ति की जन्मस्थली में जाकर उसके पुनर्जागरण का श्रेय मणिपुरेश्वर जयसिंह को है, जिन्होंने अपनी गंगा-यात्रा के दौरान नवद्वीप जाकर वहाँ के राजा कृष्णचन्द्र राय (जो कट्टर शाक्त थे) को धर्म-युद्ध के लिए ललकारा।[३१] श्री नवद्वीपचन्द्र का विग्रह वहाँ भूमिगत था, महाराज जयसिंह ने राजा से मिलकर उसकी पुनः प्रतिष्ठा करवायी तथा उनसे साढ़े सोलह बीघा भूमि और साढ़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सात रुपये वार्षिक मन्दिर के लिए स्वीकार करवाये। उन्होंने नवद्वीप में रहकर गौड़ीय वैष्णव-धर्म को पुनर्जीवन प्रदान किया। इसीलिए महाराज भाग्यचन्द्र गौड़ीय सम्प्रदाय में द्वितीय गौरांग के नाम से जाने जाते हैं।[३२]

महाराजा जयसिंह अपनी इस अन्तिम यात्रा के दौरान चैतन्य महाप्रभु के पूर्वजगृह ढाका-दक्षिण भी गये, जहाँ उन्होंने एक कीर्तन-मण्डली स्थापित की। अद्वैत-जन्मस्थली अम्बिका में जाकर उन्होंने कीर्तन-परम्परा को पुनर्जीवित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने नरोत्तम ठाकुर के अखाड़े में जाकर श्री गौर-गोविन्द की लुप्त पूजा-परम्परा को भी पुनर्जीवन दिया।

इन यात्राओं में उनकी पुत्री सिजा लैइरोबी (देवप्रिया) बिम्बावती मंजुरी भी उनके साथ थी। वह अपने साथ श्री अनुप्रभु की मूर्ति लेकर गयी थी। नवद्वीप में श्री अनुप्रभु के विग्रह की प्रतिष्ठा करके उसने स्वयं सेवा की। उस मन्दिर का नाम मणिपुर-राजा-कुंज और उस मार्ग का नाम मणिपुर-मार्ग है।

इस प्रकार श्री राधाकृष्ण-भक्ति के उसकी मूलभूमि बंगाल में भी पुनरुद्धार का श्रेय मणिपुर को जाता है।

सन्दर्भ :

१. (क) डॉ० एम० कीर्तिसिंह : रिलिजियस डेवलपमेंट इन मनीपुर इन दी एट्टीन्थ ऐण्ड नाइंटींथ सेंच्युरीज़, मणिपुर स्टेट कला अकादमी, इम्फाल, पृ० ६-७।
(ख) श्री एल० इबुङ्गोहल सिंह : इन्ट्रोडक्शन टु मणिपुर, पृ० ५१-५२।
(ग) श्री डब्लु० युमुजाओ सिंह : ऐन अर्ली हिस्ट्री आफ मनीपुर, पृ० ७ से ३३।
(घ) श्री आर० सी० मजूमदार : एक्सपैंशन आफ आर्यन कल्चर इन ईस्टर्न इण्डिया, पृ० ४३-४५।
(ङ) श्री अतोम बापू शर्मा : मैतै कीर्तन, पृ० ८०-८२ तथा मणिपुर इतिहास, पृ० २३८-२६९।
२. (क) श्री एच० कुलविधु सिंह : मनीपुरी डांस, पृ० १६।
(ख) श्री डब्लु० युमुजाओ सिंह : उपरि १(ग), पृ० २४।
३. (क) प्रो० एन० तोम्वी सिंह : मणिपुर ऐण्ड दि मेन स्ट्रीम, पृ० ४१।
(ख) श्री डब्लु० युमुजाओ सिंह : रिपोर्ट आन आरक्योलॉजिकल स्टडीज इन मणिपुर बुलेटिन नं० १ (१९३५)।
४. (क) श्री बी० सी० रेलन : डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ असम, वाल्युम ९, पृ० १९, शिलॉंग (१९०५)।
(ख) प्रो० एन० तोम्वी सिंह : उपरि ३(क), पृ० ४१।
(ग) श्री आर० के झलजीत सिंह : ए शार्ट हिस्ट्री आफ मणिपुर, पृ० ८२।
५. डॉ० सरोज नलिनी पैराट : दी रिलिजन आफ मणिपुर, पृ० १४४।
६. चैथरोल कुमबाबा : मणिपुर के राजवंश का हस्तलिखित इतिहास।
७. श्री एफ० बावर्स : दी डांस इन इण्डिया, पृ० १२३।
८. (क) श्री एल० इबुङ्गोहल सिंह : उपरि १(ख)।
(ख) श्री एन० खेलचन्द सिंह : अरिबा मणिपुरी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५-३८।
(ग चैथरोल कुमबाबा : उपरि ६, पृ० २८ तथा ७३-७५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० १२५ ।
१०. (क) डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरिवत्, पृ० २८० ।
(ख) श्री अतोम बापू शर्मा : मणिपुर का सनातन धर्म, पृ० १८–२७ व मैतै धर्म अरिबा, पृ० २३ ।
(ग) श्री एन० जी० कुलचन्द्र : मैतै लाई हरौबा, पृ० १ ।
११. डॉ० कृष्णनारायण प्रसाद मागध : असम प्रान्तीय राम-साहित्य, पृ० २२ ।
१२. (क) श्री अतोम बापू शर्मा : मणिपुर का सनातन धर्म, पृ० १५ ।
(ख) डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० २८७ ।
१३. (क) श्री एल० इबूङोहल सिंह : भाग्यचन्द्र, भारत की अचौबा सिंह, इम्फाल, १९६५ ।
(ख) श्री एन० खेलचन्द्र सिंह : अरिबा मणिपुरी साहित्यगी इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ११९-१२० ।
१४. डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० १२५-१२६ ।
१५. उपरिवत्, पृ० १२७ ।
१६. उपरिवत्, पृ० १२८-१२९ ।
१७. श्री टी० सी० हडसन : दा मैतैज, पृ० ९५–९९ ।
१८. (क) डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० १४५ ।
(ख) श्री एन० तोम्बी सिंह : उपरि १(क), पृ० १८–२३ ।
(ग) श्री मुतुम झूलन सिंह : विजय पंचाली, पृ० १०६ (१९४७) ।
१९. चैथरोल कुमबावा, उपरि ६, पृ० ११६, ११७ ।
२०. प्रो० एन० तोम्बी सिंह : उपरि ३(क), पृ० २४ ।
२१. (क) सुश्री सविता एन० मेहता : दी फिलासॉफी आफ मणिपुरी डांसिग, पृ० १९ ।
(ख) श्री एफ० बावर्स : उपरि ७, पृ० १३५ ।
(ग) चैथरोल कुमबावा, उपरि ६, पृ० ११६–११७ ।
२२. प्रो० एन० तोम्बी सिंह : उपरि ३(क), पृ० ३१ ।
२३. श्री एफ० बावर्स : उपरि (७), पृ० ११५–१३१ ।
२४. डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० २१२ ।
२५. उपरिवत्, पृ० २१३ ।
२६. उपरिवत् ।
२७. श्री एल० इबूङोहल सिंह : उपरि १(ख), पृ० ५५–६० ।
२८. डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० १९४ ।
२९. उपरिवत् ।
३०. डॉ० एम० कीर्तिसिंह : उपरि १(क), पृ० २०९ ।
३१. श्री एस० एन० सेन : प्राचीन पत्र बंगला संकलन, कलकत्ता, वि० वि० (१९४२), पृ० २९ ।
३२. श्री आर० के० सनाहल, बी० कॉम० : चिंयां खोम्बा महाराज गंगा चतूपा, पृ० १३ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुर को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का सांस्कृतिक अवदान

मणिपुर में श्री राधाकृष्ण-भक्ति की अखण्ड परम्परा का उद्‌भव राजा चराईरोङ्बा (सन्‌ १६९७–१७०६ ई०) के शासन-काल में और विकास १८वीं एवं १९वीं शताब्दी ई० में हुआ। श्री राधाकृष्ण-भक्ति ने मणिपुर वासियों की जीवन-पद्धति, साहित्य, संस्कृति एवं कलाओं के विकास में अपूर्व योगदान किया। इस प्रदेय का सम्यक्‌ रूप से आकलन करने हेतु प्रस्तुत आलेख को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा रहा है—

श्री राधाकृष्ण-भक्ति का :

१. मणिपुर के जन-जीवन पर प्रभाव।
२. मणिपुर की विधि-व्यवस्थाओं पर प्रभाव।
३. मणिपुर के संस्कारों पर प्रभाव।
४. मणिपुर की भाषा एवं साहित्य पर प्रभाव।
५. मणिपुर की संगीत-कला पर प्रभाव।
६. मणिपुर की नृत्य-कला पर प्रभाव।
७. मणिपुर की मूर्ति-कला पर प्रभाव।
८. मणिपुर की वास्तु-कला पर प्रभाव।
९. मणिपुर की नाट्य-कला पर प्रभाव।
१०. मणिपुर की चित्र-कला पर प्रभाव।
११. मणिपुर की शिक्षा-प्रणाली पर प्रभाव।
१२. मणिपुर की पर्व-त्योहार-परम्परा पर प्रभाव।
१३. मणिपुर की दार्शनिक विचारधारा पर प्रभाव।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति का जन-जीवन पर प्रभाव

मणिपुर के आदिम धर्म के विषय में मतभेद है। उसे शैव, शाक्त, सनामही, मैतै आदि अनेक नाम देने के प्रयत्न इतिहासकारों ने किये हैं। पाश्चात्य इतिहासकारों ने इस सम्बन्ध में अनेक भ्रामक धारणाएँ फैलायीं। उनका अनुसरण भारतीय एवं मणिपुरी इतिहास लिखनेवालों ने भी किया और महाराजा कयम्बा (सन्‌ १५४५–८६ ई०) के शासन-काल से मणिपुर में धर्म-परिवर्तन किये जाने की बात कही। इन विद्वानों ने एक मूलभूत तथ्य की उपेक्षा की है। वह यह कि हिन्दू कोई बनता नहीं है, वह जन्म लेता है। ईसाई तथा मुस्लिम-मत में धर्म-परिवर्तन किया जाता है और विधर्मी लोग भी धर्म-परिवर्तन करके ईसाई या मुसलमान बन सकते हैं। किन्तु हिन्दू-धर्म में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। निश्चय ही यह सिद्धान्त पहले अंग्रेज लेखकों ने अपने राजनैतिक एवं धार्मिक उद्देश्यों के पूर्ति-हेतु प्रतिपादित किया था जिसका परवर्ती भारतीय विद्वानों ने अन्धानुकरण किया और किसी विशिष्ट उद्देश्य से उन्हीं बातों को दोहराया। वास्तव में यह धर्म-परिवर्तन नहीं था। मणिपुर के आदिम धर्म में बलि-प्रथा, मदिरा-पान आदि का विधान था और नवीन वैष्णव-धर्म के प्रभाव के कारण अहिंसा और मदिरा-पान या नशीली वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इन्हीं निषेधों को धर्म-परिवर्तन का नाम देकर विघटनकारी दृष्टिकोण को जन्म दिया गया। ये योजनाबद्ध प्रयास वर्षों पूर्व आरम्भ किये गये और इसके दुष्परिणाम अब स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आज मणिपुर में भारत से अलग एक स्वतन्त्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्य की स्थापना की माँग और उसके लिए भूमिगत विद्रोही गतिविधियाँ तथा वैष्णव-मन्दिरों को तोड़ना आदि बातें इसी भ्रामक धारणा के परिणाम हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस भ्रम को दूर करने हेतु सही दिशा में शोध की जाय तथा तथ्यों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत किया जाय। जैसे विगत दो-ढाई शताब्दी से योजनाबद्ध ढंग से इस धारणा का प्रचार किया गया है, उसी प्रकार लोगों के सम्मुख वास्तविकता प्रस्तुत की जाय कि मणिपुर का आदिम धर्म जो भी रहा हो, किन्तु वह हिन्दू-धर्म-विरोधी कभी नहीं था और हिन्दू-धर्माचार्यों में धर्म-परिवर्तन की कोई भावना न पहले कभी थी, न आज ही है।

वैष्णव-धर्म के आगमन और उसके पश्चात् गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रभाव के परिणामस्वरूप मणिपुर के जन-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। मणिपुर की घाटी के निवासी 'मैतै' लोग अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखने लगे। अतः नर-बलि एवं पशु-बलि की परम्परा शनैः शनैः समाप्त हो गयी। मदिरा-पान तो दूर, किसी भी मादक वस्तु का प्रयोग तक बन्द कर दिया गया। इस सम्बन्ध में यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि मछली खाना बन्द नहीं किया गया। किन्तु विशेष पूजा-अनुष्ठानों अथवा भोज के अवसर पर रसोई में मछली खाना भी वर्जित है। बंगाल की संस्कृति के प्रभाव के परिणामस्वरूप मणिपुर में भी दुर्गा-पूजा और काली-पूजा की जाती है। असम के प्रभाव के कारण कामाख्या देवी की पूजा भी प्रचलित है। किन्तु इन देवियों की पूजा में दी जानेवाली पशु-पक्षी-बलि का मणिपुर में सर्वथा अभाव है। मणिपुर की जनता ने श्री राधाकृष्ण-भक्ति के परिणामस्वरूप पूर्ण अहिंसक प्रवृत्ति को ग्रहण कर लिया। यहाँ तक कि सूअर व मुर्गा-पालन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गाय की पूजा भी प्रचलित हुई।

शारीरिक स्वच्छता, वस्त्राभूषण, घर तथा बर्तनों की स्वच्छता भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति की देन है। मणिपुर के आबाल-वृद्ध प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व बिस्तर छोड़ देते हैं। चारपाई से उतरने से पूर्व श्री राम, कृष्ण, हरि, सनामही, पाखंबा आदि का नाम लेकर नमन करते हैं। दैनन्दिन कार्यों से निवृत्त होकर मिट्टी से हाथ धोते हैं तथा स्नान करके पूजा-पाठ करना उनका नित्य नियम है। पूजा-पाठ के समय प्रत्येक स्त्री-पुरुष को रेशमी या मूँगा का वस्त्र पहनना आवश्यक होता है। चन्दन-तिलक, श्री राधाकृष्ण अथवा गौरांग महाप्रभु के नाम के छापे बाँहों, वक्षःस्थल आदि पर नित्यप्रति लगाये जाते हैं तब जल का आचमन करने के उपरान्त तुलसी-चौरे पर (जो प्रत्येक घर के आँगन में होता है) श्री राधाकृष्ण एवं अन्य देवताओं को पुष्पाञ्जलि दी जाती है। गीता, गोपालसहस्रनाम आदि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करना होता है, तब जलपान किया जाता है। हरि-भक्ति-विलास के अनुसार इन क्रियाओं के पूर्व मणिपुरी वैष्णव कोई वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता है।

सूर्यास्त के समय भी सन्ध्या-आरती की जाती है, तुलसी-चौरे पर दीप जलाया जाता है, जप किया जाता है एवं भजन गाये जाते हैं, तब रात्रि का भोजन किया जाता है। रात्रि में सोने के समय भी लोग ईश्वर का नाम लेकर विश्राम करते हैं। प्रतिदिन स्नान के पश्चात् स्वच्छ धुले हुए वस्त्र धारण करना और शौच जाने के बाद भी स्नान करना अनिवार्य है।

इन नित्य-नियमों का प्रभाव मणिपुरी जन-जीवन पर पड़ना स्वाभाविक ही है। आज कोई भी मणिपुरी व्यक्ति न तो गन्दा रहता है और न ही वह गन्दे वस्त्र पहनता है। श्री राधाकृष्ण-भक्ति ने शारीरिक स्वच्छता को मणिपुरी जन-जीवन का अभिन्न अंग बना दिया है। घर की स्वच्छता भी देखते ही बनती है। नित्यप्रति सूर्योदय से पूर्व पूरे घर, रसोई-घर एवं आँगन को न केवल झाड़ू देकर साफ किया जाता है, बल्कि मिट्टी से लीपा भी जाता है। परिणामस्वरूप घर-आँगन चमकते रहते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक बर्तन को भी मिट्टी-राख आदि से मलकर चमका दिया जाता है। भोजन के उपरान्त भी बर्तनों को साफ किया जाता है। प्रत्येक घर में निवास के कमरों, अतिथि-गृह तथा रसोई-घर के अतिरिक्त एक आँगन रहता है, जिसमें तुलसी-चौरा होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। आँगन के पार घर के अग्रभाग में शङ्गोई (या बिना कमरों से जुड़ा बरामदा) होता है, जिसमें भजन, कीर्तन, नृत्य, सामूहिक भोज आदि होते हैं। प्रत्येक घर में एक छोटा बगीचा होता है। घर के चारों ओर कँटीले पौधों या बाँस की बाड़ होती है। शूमां या घर के बरामदे में दिन के समय स्त्रियाँ कपड़ा बुनती हैं। घर के पृष्ठभाग में रहने के स्थान से पर्याप्त दूरी पर शौचालय होता है। प्रत्येक घर के परिसर में एक पोखरी या जलाशय होता है, जिसमें नहाने-धोने के अतिरिक्त मछली-पालन भी किया जाता है। इस प्रकार राधाकृष्ण-भक्तिभावित मणिपुरी लोगों की शारीरिक, वस्त्र-सम्बन्धी, घर की तथा बर्तनों की सफाई देखते ही बनती है।

मणिपुर के स्थानों एवं व्यक्तियों के नाम गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के नामों से जुड़े हैं। ये नाम या शब्द श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव के ही परिणाम हैं। पुरुष के नाम के पूर्व श्री और स्त्री नाम के आरम्भ में श्रीमती/कुमारी तथा अन्त में देवी लगाना तथा चैतन्य, निमाई, विश्वम्भर, नित्याई, हरिदास, नरोत्तम, राधा, चन्द्रसखी, सुवदनी, वैजयन्ती, तुलसी, वेदान्ती, वन्दना आदि नाम रखना श्री राधाकृष्ण-भक्ति का गहरा प्रभाव व्यक्त करता है।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रचार के कारण ही हिन्दू-वर्ण-व्यवस्था का मणिपुर के जन-जीवन पर प्रभाव प ा। राजा तथा उसके परिवार के लोग अपने को क्षत्रिय कहते हैं। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण भी प्रचलित हुए। राजा लोगों ने वर्णाश्रम-व्यवस्था का पालन करके भी अपनी भक्ति-भावना का परिचय दिया। ब्राह्मणों द्वारा धार्मिक अनुष्ठान, पूजा-पाठ तथा अध्यापन करना भी वर्ण-व्यवस्था में मणिपुरी जन-जीवन की आस्था को प्रकट करता है। व्यापारी लोग वैश्य कहलाये और इन्होंने दान-दक्षिणा देकर श्री राधाकृष्ण के मन्दिरों का निर्माण करवाया। मणिपुर के शूद्र भी भक्ति-भावना से तथा शुद्ध कार्यों का पालन करके वर्ण-व्यवस्था की उच्च कोटि में प्रवेश कर सकते हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम-व्यवस्था भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति की देन है। किन्तु यह भारत के अन्य भागों की भाँति कठोर न होकर लचीली है। यहाँ उच्चवर्ण का व्यक्ति भी अपने हीन कर्मों से शूद्र हो जाता है तथा निम्नवर्ण का व्यक्ति सदाचार से उच्चवर्ण में जा सकता है।

वैष्णव-विनम्रता यों तो विख्यात है ही, किन्तु मणिपुर के जन-जीवन में उसका अनूठा रूप देखा जा सकता है। मणिपर में आप किसीको ऊँची आवाज में बोलते चीखते या चिल्लाते हुए नहीं सुन सकते। धीमी आवाज में प्रेम से बोलना, बोलते समय मुँह पर हाथ रखना, अपने गुरुजनों को खुरमजरी (दण्डवत् प्रणाम) करना, सभा या व्यक्तियों के बीच से निकलते समय थोड़ा झुककर दाहिने हाथ को भूमि की तरफ फैलाकर रास्ता माँगते हुए गुजरना मणिपुर के जन-जीवन को श्री राधा-कृष्ण-भक्ति का अवदान है। अपशब्द या गाली-गलौज का प्रयोग नहीं किया जाता है। यहाँ तक कि विवाद होने पर क्रोध में गुत्थमगुत्थ या हाथा-पाई हो जाने पर दो व्यक्ति लहू-लुहान होते देखे गये हैं किन्तु न तो वे चीखते हैं, न चिल्लाते हैं, न ही अपशब्द बोलते हैं। तात्पर्य यह कि श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना ने जहाँ विनम्रता एवं शिष्टाचार सिखाया है वहाँ कठोर सामाजिक अनुशासन द्वारा अपशब्द-प्रयोग एवं गाली बकने तथा निन्दा करने की प्रवृत्ति ही समाप्त कर दी है।

भक्ति-भावना ने ही मणिपुर को बन्धुत्व के प्रगाढ़ सूत्र में बाँध दिया है। प्रत्येक मणिपुरी वैष्णव एक गुरु-प्रणालिका में विश्वास रखता है और इस गुरु-प्रणाली का प्रारम्भ चैतन्य महाप्रभु से होता है। अतः सभी लोग बन्धुत्वभाव में आबद्ध हैं। प्रत्येक उत्सव, सामाजिक कार्य एवं संस्कार के समय भ्रातृभावना का अनुपम उदाहरण देखने को मिलता है। ऐसे अवसरों पर सभी लोग भेंट एवं दक्षिणा देकर प्रयोजक को आर्थिक बोझ से बचा लेते हैं। विवाह हो चाहे श्राद्ध-संस्कार, सभी लोग ससम्मान भेंट एवं दक्षिणा देकर व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामूहिक उत्तरदायित्व बना देते हैं जिससे कोई भी संस्कार आर्थिक दृष्टि से भारी नहीं रह जाता। ऐसे अवसरों पर पुरुष श्वेत वेष-भूषा में तथा स्त्रियाँ हल्के भगवे या गेरुए रंग का फनेक व श्वेत चादर ओढ़कर उत्सव, पर्व, त्योहार आदि में भाग लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति नंगे पाँव होता है और वेष-भूषा की समानता उनकी एकता की द्योतक होती है। सभी लोग बिना किसी भेद-भाव के एक ही पंगत में बैठकर भोजन करते हैं। ऐसे अवसरों पर भोजन ब्राह्मणों (केवल पुरुषों) द्वारा बनाया जाता है। भोजन बनाने में ही नहीं, भोजन परोसने में भी स्वच्छता एवं पवित्रता का ध्यान रखा जाता है, इसीलिए परोसनेवाला ब्राह्मण अपने नाक व मुँह पर वस्त्र बाँधे रखता है, जिससे छींकने, खाँसने अथवा बोलने पर मुँह या नाक से थूक आदि भोजन में न गिरने पाये। मणिपुर के अतिरिक्त भारत के अन्य भागों में स्वच्छता एवं पवित्रता का इतना ध्यान कहीं और शायद ही रखा जाता हो।

मणिपुर की भाषा-साहित्य के क्षेत्र में भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति का अनुपम अवदान है। यहाँ 'मैतै मयेक' या मणिपुरी लिपि के स्थान पर बंगला-लिपि का प्रयोग किया जाता है। मणिपुरी भाषा में संस्कृत, बंगला, ब्रजी एवं मैथिली भाषाओं के शब्दों की अधिकता का कारण भी राधाकृष्ण-भक्ति है। साहित्य में भी संस्कृत एवं बंगला भाषा के वैष्णव-ग्रन्थों के अनुवाद की प्राचीन परम्परा रही है। इन अनूदित ग्रन्थों का पाठ मणिपुर में बहुत लोकप्रिय है। संस्कृत व बंगला भाषा सीखने हेतु यहाँ के जिज्ञासु लोग वृन्दावन, काशी एवं नवद्वीप जाते रहे हैं और आज भी जाते हैं।

तीर्थ-यात्रा करना मणिपुर के जन-जीवन का चरम लक्ष्य बन गया है। प्रत्येक मणिपुरी व्यक्ति की जीवन में एक ही अभिलाषा रहती है कि वह श्री राधाकृष्ण की लीला-भूमि व्रज, काशी, प्रयाग, जगन्नाथपुरी एवं नवद्वीप की यात्रा करे। वृद्धावस्था में तो यहाँ के साधनसम्पन्न लोग मृत्युपर्यन्त इन्हीं स्थानों पर जाकर निवास भी करते हैं। वृन्दावन एवं नवद्वीप आदि स्थानों पर मणिपुरी बस्तियाँ हैं, यहाँ के लोगों के मकान हैं और वहाँ लघु मणिपुर की छवि देखी जा सकती है। यहाँ के राजा-महाराजा तथा स्त्री-पुरुष विगत तीन शताब्दी से वहाँ जाते रहे हैं। अस्थि-विसर्जन के लिए भी गंगा-यात्रा की जाती है।

चैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तानुसार माधुर्य भाव से भगवान् की भक्ति करना मणिपुर के लोगों का आदर्श है। वे महाप्रभु की रागात्मिका भक्ति-पद्धति के अनुयायी हैं और ईश्वर की अहेतुकी कृपा में आस्था रखते हैं। वे श्री राधाकृष्ण को दिव्य प्रियतम के रूप में ग्रहण करके अलौकिक आनन्द का रसास्वादन करते हैं। चैतन्य-मत के प्रभाव के कारण मणिपुरी जन-जीवन में भावों का अतिशय उद्रेक देखा जा सकता है। 'शङोइ' में आये दिन पूजा, भजन तथा कीर्तन होते रहते हैं। उनमें भाग लेनेवाले नर्तक-गायक एवं दर्शकों को भावविह्वल होकर रोते देखा जा सकता है। श्री राधाकृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं पर आधारित नाटकों का प्रचलन है, जिन्हें 'शूमांलीला' या 'जात्रावाली' कहा जाता है। आये दिन होनेवाले भजन-कीर्तन, नाटकों और नियमपूर्वक पूजा के कारण मणिपुरी जीवन श्री राधाकृष्ण-भक्ति से ओत-प्रोत हो गया है।

मणिपुर के पर्व-त्योहारों पर दृष्टिपात करने से भी यह तथ्य स्पष्ट होता है कि वे सभी श्री राधाकृष्ण से सम्बद्ध हैं। इन त्योहारों पर भजन-कीर्तन, नृत्याभिनय, सामूहिक भोज, व्रत-अनुष्ठान आदि किये जाते हैं।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना के प्रचार के परिणामस्वरूप साहित्य, संगीत, नाटक, वास्तुकला आदि भी प्रभावित हुए। किन्तु इससे जो महान् उपलब्धि हुई वह है जन-सामान्य के दृष्टिकोण में सुरुचि एवं हर्षोल्लास का प्राधान्य। सुरुचि-सम्पन्न जन-मानस इन सभी कलाओं का प्रेमी बन गया, अतः इनका निरन्तर परिमार्जन एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिष्कार होता रहा। कलाकारों के हृदय में एक अघोषित प्रतिस्पर्द्धा के भाव ने जन्म लिया। जन-मानस से साधुवाद पाने के लिए ये कलाएँ सँवरती चली गयीं। साथ ही दैनिक जीवन में भी सुरुचि एवं संस्कार के स्थायी मूल्यों की स्थापना हो गयी। वैष्णव-नैतिकता के मानदण्ड जन-जीवन के अभिन्न अंग बन गये।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में श्री राधाकृष्ण का नाम-स्मरण करना तथा उन्हें नमन करना लोगों का स्वभाव बन गया। अपनी सफलता का श्रेय श्री राधाकृष्ण को देने के कारण उनके अन्तस् में अहंकार को भावना के जन्म का प्रश्न ही नहीं उठता। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि मणिपुर का जन-जीवन श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव से श्री राधा-गोविन्दमय हो गया है तथा श्री राधाकृष्ण-भक्ति मणिपुरी की सभ्यता-संस्कृति की पर्याय बनकर रह गयी है।

'दि रिलीजन ऑफ मनीपुर' में डॉ० सरोज नलिनी पैराट ने लिखा है – "यह सम्भव है कि चैतन्य वैष्णव-सम्प्रदाय ने मणिपुर के सामान्य यौन-आचरण के नियमों एवं नैतिक मूल्यों को ढीला कर दिया हो।" आगे उन्होंने मेकक्लॉच को उद्धृत करते हुए यह कहा है कि उसने मणिपुरी नारी के सतीत्व और मणिपुरी मैतै-समाज में यौन-सम्बन्धों की पवित्रता की प्रशंसा की है। (पृ० १७३) एक ओर डॉ० पैराट ने राधाकृष्ण-भक्ति के परकीया भाव को यौन-आचरण में पवित्रता भंग करने के लिए उत्तरदायी ठहराया है तो दूसरी ओर वे स्वयं ही इसका विरोध करते हुए लिखती हैं कि "यह सम्भव है कि गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय की लोकप्रियता के कारण जिसमें श्रीकृष्ण के श्रीमती राधा के साथ सम्बन्धों को गौरवपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है, साथ ही श्रीकृष्ण की राधा व अन्य गोपियों से छेड़-छाड़ तथा बढ़ते हुए रसात्मक साहित्य में कृष्ण का विभिन्न स्त्रियों से प्रेम दिखाया गया है, नैतिक मूल्यों के पतन के आधार रहे हों।" एक ओर वे राधाकृष्ण-भक्ति को यौन-आचरण-सम्बन्धी नियमों के पतन का कारण बताती हैं तो दूसरी ओर स्वयं ही कहती हैं कि "यह आश्चर्य का विषय है कि राज्याश्रयप्राप्त गौड़ीय कृष्ण-भक्ति की, जिसमें उन्मुक्त रसात्मक एवं यौन-सम्बन्धी क्रीड़ाओं की प्रधानता थ, पवित्रता की रक्षा के लिए व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था थी।" उनकी (डॉ० पैराट की) बात से ही पता चल जाता है कि राधाकृष्ण व गोपियों का प्रेम आध्यात्मिक था। गौड़ीय वैष्णव-मत में भगवान् के प्रेम को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता है। चैतन्य के अनुसार, इस प्रेम के माध्यम से ही आत्मा परमात्मा के प्रेमामृत का उसी प्रकार पान करती है जिस प्रकार मधुमक्खी शहद पीती है और वह (आत्मा) तब तक पान करती है जब तक परमात्मा में अपने अस्तित्व को भूलकर लीन न हो जाय। यह भक्ति के द्वारा ही सम्भव है। राधाकृष्ण-भक्ति के परकीया भाव को लेकर इस पर आरोप लगानेवाले लोग इसके पीछे जो आध्यात्मिक दर्शन है उसको भूल जाते हैं। वास्तव में श्री राधाकृष्ण-भक्ति ने यौन-सम्बन्ध में पवित्रता की प्रतिष्ठा की है। मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता और पवित्रता जिस भक्ति-भावना के लिए अनिवार्य हो वह भक्ति अनैतिकता को कैसे प्रोत्साहन दे सकती है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का विधि एवं व्यवस्था पर प्रभाव

अन्यत्र मणिपुर में कृष्ण-भक्ति के विकास की चर्चा करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १७०६ ई० में महाराज चराईरौङ्बा के शासनकाल में श्री राधाकृष्ण-भक्ति का विकास एवं उत्थान हुआ था। गौड़ीय वैष्णव-मत की प्रतिष्ठा के साथ ही वैष्णव-धर्म के विधि-निषेधों का पालन करने की राजाज्ञा प्रसारित की गयी तथा इन (विधि-निषेधों) का पालन न करने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था की गयी। इसके परिणामस्वरूप चैतन्य-सम्प्रदाय के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाने लगा। महाराजा चराईरौङ्बा ने स्वयं यज्ञोपवीत धारण किया। किन्तु 'मैतै' धर्म के परम्परागत देवी-देवताओं की पूजा पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। वैष्णव-धर्म एवं परम्परागत धर्म साथ-साथ चलते रहे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराजा गरीबनिवाज (सन् १७०९–४८) के शासनकाल में वैष्णव-धर्म राज्य-धर्म घोषित कर दिया गया। वैष्णव-धर्म-विरोधी गतिविधियाँ करने या आदिम धर्म को मानने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था की गयी। चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण श्री कृष्ण भगवान् ही भक्ति के परम साध्य के रूप में मणिपुर में प्रतिष्ठित हुए तथा उनके साथ श्रीमती राधा भी। सामूहिक नृत्य, गान एवं कीर्तन श्री राधाकृष्ण-भक्ति के साधन बन गये। इस भक्ति-साधना का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग कीर्तन उसी समय से आरम्भ हुआ जिसकी परम्परा आज भी अक्षुण्ण है।

गौड़ीय वैष्णवों के परम्परानुसार मणिपुरी वैष्णव भी मस्तक पर तिलक लगाते हैं। ललाट के अतिरिक्त बाँहों, गले एवं सीने पर चन्दन के छापे लगाये जाते हैं। चन्दन से राधाकृष्ण एवं गौरांग महाप्रभु के नाम शरीर के ऊपरी भाग पर अंकित किये जाते हैं। प्रत्येक मणिपुरी वैष्णव के गले में तुलसी की माला अवश्य होती है। स्त्री-पुरुष एवं आबाल-वृद्ध आज भी इस नियम का पालन करते हैं। तिलक लगाने के पश्चात् वे आचमन करते हैं तथा श्री राधाकृष्ण एवं अन्य देवी-देवताओं को तथा तुलसी के पौधे को पुष्पादि अर्पित करते हैं। गीता, गोविन्द-सहस्रनाम आदि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करते हैं। इतना करने के बाद ही वे अन्न-ग्रहण करते हैं।

अस्त होते हुए सूर्य की पूजा करके सन्ध्या-आरती की जाती है। सनामही लैमरेन एवं तुलसी-चौरे पर अगरधूप जलाया जाता है। तुलसी-चौरे पर नित्य दीपक प्रज्वलित करके जप किया जाता है और सन्ध्या-आरती के समय भजन गाये जाते हैं। तब सन्ध्या का भोजन करके सोना होता है। प्रत्येक कार्य के आरम्भ में ईश्वर का नाम लिया जाता है। ये वे नित्य-नियम हैं जिनका प्रत्येक मणिपुरी वैष्णव पालन करता है।

महाराजा चराईरौङ्बा के शासन-काल से पूर्व मणिपुरी जनता एवं राजा के द्वारा मांस खाने एवं मदिरा पीने के उल्लेख 'चैथरोल कुमबाबा' में मिलते हैं। इसी ग्रन्थ में खुमान-वंश की एक महिला के मदिरा-पान का उल्लेख भी है। किन्तु महाराजा गरीबनिवाज ने श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव से मांस-मदिरा का सेवन राजाज्ञा द्वारा निषिद्ध घोषित कर दिया था। इसी ग्रन्थ में आगे उल्लेख है कि गो-मांस एवं अन्य मांस खाने-वाले लोगों को सार्वजनिक स्थान पर पीटा जाता था। मुर्गा और सुअर पालने पर प्रतिबन्ध था। इसका उल्लंघन करनेवालों को आर्थिक दण्ड देना पड़ता था और उन्हें सुदूर गाँवों अथवा 'लोई' में भेज दिया जाता था। इससे पूर्व शवों को दफनाने की प्रथा प्रचलित थी, किन्तु अब दाह-संस्कार की प्रथा अनिवार्य कर दी गयी। गंगा-स्नान की प्रथा का भी इसी समय से श्रीगणेश हुआ। महाराज गरीबनिवाज के पुत्र अनन्तशाह ने अपने पिता का श्राद्ध-कर्म सम्पन्न करके श्राद्ध की परम्परा आरम्भ की।

महाराजा भाग्यचन्द्र के शासनकाल में श्री राधाकृष्ण-भक्ति की परम्पराओं को स्थायित्व प्राप्त हुआ। गो-हत्या और गो-चोरी को महाभियोग माना जाने लगा। प्रायश्चित्त की परम्परा भी प्रचलित हुई। ब्रह्म-हत्या महापाप माना जाने लगा। ब्राह्मणों को दण्ड देने की व्यवस्था नहीं थी। महाराज भाग्यचन्द्र के शासन-काल में महाराजा को बताये बिना एक ब्राह्मण को अधिकारियों द्वारा मृत्यु-दण्ड दिये जाने पर स्वयं भाग्यचन्द्र महाराज ने राज्य-सिंहासन त्यागकर प्रायश्चित्त-हेतु गंगा-यात्रा की थी।

गरीबनिवाज के पूर्व गोत्र से बाहर विवाह होता था या नहीं इसके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार के उपरान्त गोत्र से बाहर विवाह करनेवालों के लिए कठोर नियम बन गये। विवाह-पद्धति में यह नवप्रवर्तन भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति की देन है। महाराजा भाग्यचन्द्र के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शासन-काल में चैथरोल कुमबाबा में लिखा है कि यौन-आचरण-सम्बन्धी कठोर नियम बने। जो व्यक्ति किसी बर्मी, जनजातीय या मुसलमान के साथ यौन-सम्पर्क स्थापित करेगा उसको बहिष्कृत करके उसी समुदाय में भेज दिया जायगा। उस समुदाय या लोई (बहिष्कृत लोगों की बस्ती) में भेजने से पूर्व उनको सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाये जाते थे। पुरुष व्यभिचारी को अक्सर मृत्यु-दण्ड दिया जाता था, जबकि स्त्री को सार्वजनिक रूप से कोड़े लगाये जाते थे।

वैष्णव-धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर गर्भपात को अपराध माना जाने लगा। उसके लिए व्यभिचार के समान ही दण्ड की व्यवस्था मणिपुर में आरम्भ हुई। इस प्रकार की घटनाओं को रोकने के लिए यौनाचरण एवं विवाह-सम्बन्धी कठोर नियम बनाये गये।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति का मणिपुर के विधि-विधान पर अमिट प्रभाव पड़ा है। आधुनिक सभ्यता की आँधी भी कुछ अपवादों को छोड़कर इस विधि-व्यवस्था को उखाड़ने में असमर्थ रही है।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति का संस्कारों पर प्रभाव

मणिपुरी समाज के संस्कारों को श्री राधाकृष्ण-भक्ति ने बहुत प्रभावित किया है। जन्म, विवाह एवं मृत्यु-संस्कारों को वैष्णव-पद्धति ने संशोधित एवं परिवर्द्धित किया, किन्तु साथ ही उनमें स्थानीय विशेषता का पुट भी बना रहा। दीक्षा-संस्कार एवं उपनयन-संस्कार मणिपुर में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव से ही आये हैं। मणिपुरी संस्कारों में वैष्णव-धर्म के भोजन-सम्बन्धी निषेध में एक प्रमुख अन्तर यह है कि यज्ञोपवीत-संस्कार से पूर्व बच्चों पर भोजन-सम्बन्धी निषेध लागू नहीं होते। यहाँ तक कि वे मांस भी खा सकते हैं। ब्राह्मण-बच्चों को ९ से १४ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत धारण करना पड़ता है जिसमें ९ धागे होते हैं, जबकि क्षत्रिय-बालकों को १४ से १६ वर्ष की अवस्था में ६ धागेवाला यज्ञोपवीत धारण करना पड़ता है। दीक्षा-संस्कार में यज्ञोपवीत धारण करने के साथ ईश्वर का नाम लेने की दीक्षा भी दी जाती है। यज्ञोपवीत ब्राह्मण देता है जबकि गुरु-मन्त्र गुरु के द्वारा या राजा के द्वारा दिया जाता है।

जन्म, विवाह एवं मृत्यु के संस्कार हिन्दू-शास्त्र-पद्धति के अनुसार ही सम्पन्न होते हैं। किन्तु शैशवावस्था एवं प्रसवकाल में मरनेवाली स्त्री का मृत्यु-संस्कार हिन्दू-संस्कारों के अनुसार नहीं किया जाता है। इन दो अपवादों को छोड़कर तीसरा अपवाद है आत्महत्या करनेवालों का। उनका न दाह-संस्कार किया जाता है और न श्राद्ध ही। पहले लाङोल पर्वत पर उनके शव फेंक दिये जाते थे, परन्तु अब ऐसा नहीं किया जाता। ऐसा माना जाता है कि शव को दाह-क्रिया की प्रथा मणिपुर को वैष्णव-धर्म की देन है। इससे पहले शव को भूमि में गाड़ने की परम्परा थी, इसलिए आज भी शव को लकड़ी के संदूक में रखकर ले जाया जाता है तथा चिता में एक छोटी-सी नौका व धागा रखा जाता है।

इन संस्कारों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्राद्ध हो, जन्म-संस्कार हो या विवाह-संस्कार, सभी अवसरों पर संकीर्तन अनिवार्य है। यद्यपि परिवार और विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं में मणिपुरी लोगों ने वैष्णव-सिद्धान्तों को अपनाया है, किन्तु अपनी परम्पराओं एवं स्थानीय आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन भी किया है। स्त्रियों में विवाह के पूर्व या पश्चात् पर्दा करने की प्रथा नहीं है, न बाल-विवाह का प्रचलन है, न विधवा-विवाह पर प्रतिबन्ध। सामान्यतया भक्ति और अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित वैष्णव-संस्कार मणिपुर में ग्रहण किये गये हैं, किन्तु उनमें स्थानीय लोक-विश्वासों एवं परम्पराओं का भी समावेश हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री राधाकृष्ण-भक्ति का मणिपुर की भाषा और साहित्य पर प्रभाव

भाषा

मणिपुर की घाटी में बसनेवाले 'मैतै' या मणिपुरी लोगों की भाषा मणिपुरी है, जिसे स्थानीय भाषा में 'मैतै लोन ('रोन')' कहा जाता है। मणिपुर की घाटी के चारों ओर फैले पर्वतीय भू-भाग में बसी जन-जातियों की २९ भाषाएँ हैं तथा अनेक बोलियाँ भी, किन्तु मणिपुर की भाषाओं में सबसे उन्नत एवं समृद्ध भाषा मणिपुरी ही है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मणिपुरी चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार के तिब्बती-बर्मा उप-वर्ग की एक भाषा है, जिसकी अपनी लिपि भी है, जिसको 'मैतै मयेक' कहा जाता है। मणिपुरी भाषा एवं लिपि में लिखा गया ८वीं शताब्दी का एक ताम्रपत्र उपलब्ध है। मणिपुरी भाषा अत्यन्त प्राचीन मानी जाती है। इतिहासकारों का मत है कि महाराजा पामहैबा उपनाम गरीबनिवाज (सन् १७०९ से १७४८) के शासन-काल में मणिपुर में शान्तिदास नामक रामानन्दी वैष्णव मणिपुर में आये थे, जिनकी प्रेरणा से महाराजा ने प्राचीन भाषा-लिपि के ग्रन्थों को जला डाला था। इसी समय से मणिपुरी लिपि के स्थान पर बंगला-लिपि का प्रयोग किया जाने लगा। उन्होंने राजाज्ञा जारी कर दी जिसके अनुसार मणिपुरी भाषा में कोई गीत नहीं गाया जा सकता। साथ ही यह भी घोषणा हुई कि जो इस आज्ञा का पालन नहीं करेगा उसे पाप लगेगा। मणिपुरी में गीत गानेवाला यदि दिन में मरेगा तो कौआ और रात में मरेगा तो उल्लू के रूप में जन्म लेगा। 'पेना' नामक स्थानीय वाद्य-यन्त्र पर गानेवाला नरक में जायगा। इस शाप तथा दण्ड के भय से मणिपुरी भाषा में साहित्य-रचना एवं गायन की प्रथा समाप्त हो गयी। महाराजा गम्भीर सिंह (सन् १८२५–३४) का एक ताम्रपत्र आन्द्रो नामक स्थान पर मिला है जो बंगला-लिपि में लिखा गया है। किन्तु महाराजा नरसिंह (सन् १८४४–१८५०) की राजाज्ञा, जो पत्थर पर खुदी हुई है, प्राचीन मणिपुरी भाषा एवं लिपि में है। अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मणिपुरी-लिपि का प्रयोग कब से बंद हुआ या बंगला एवं मणिपुरी लिपि का प्रयोग कब तक उसके साथ-साथ चलता रहा। किन्तु इतना निश्चित है कि महाराज गरीब निवाज के शासनकाल में ही मणिपुर में बंगला-लिपि का प्रचलन हो गया था। यद्यपि बंगला-लिपि का प्रचलन १८वीं शताब्दी के आरम्भ में हो गया था, किन्तु महाराजा गरीबनिवाज द्वारा प्रचारित मुद्राओं पर देवनागरी-लिपि में शब्द अंकित हैं। श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव के कारण महाराजा भाग्यचन्द्र की मुद्राओं पर 'श्रीमद् राधा-गोविन्द-पदारविन्द-मकरन्द-मधुकर' नागरी-लिपि में अंकित है। परवर्ती राजाओं की मुद्राओं पर भी इसी प्रकार के श्री राधाकृष्ण-सम्बन्धी शब्द नागरी-लिपि में अंकित हैं। स्पष्ट है कि बंगला-लिपि एवं नागरी-लिपि का मणिपुर में प्रचार-प्रसार श्री राधाकृष्ण-भक्ति की ही देन है। कालान्तर में देवनागरी-लिपि का प्रचलन समाप्त हो गया और अब मणिपुरी भाषा बंगला-लिपि में लिखी जाती है।

साहित्य

महाराजा गरीबनिवाज के समय प्राचीन साहित्यिक एवं पुराण-ग्रन्थ जिन्हें स्थानीय भाषा में 'पुया' कहा जाता है, जला दिये गये थे, अतः मणिपुरी साहित्य का इतिहास प्रमुख रूप से वैष्णव-धर्म के उत्थान-काल के साथ आरम्भ होता है। मणिपुरी भाषा के गाने गाये जाने की प्रथा भी प्राचीन साहित्य के जलाये जाने के साथ ही समाप्त हो गयी। १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही मणिपुरी भाषा में संस्कृत एवं बंगला के शब्दों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। अङोम नामक कवि ने उसी समय रामायण और महाभारत का मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया।

गरीबनिवाज के शासन-काल से लेकर आधुनिक काल तक का मणिपुरी साहित्य वैष्णव-साहित्य कहा जा सकता है जिसमें श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-साहित्य की प्रमुखता है। गरीबनिवाज के शासनकाल में जिस भक्ति-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य-परम्परा की नींव पड़ी थी उसका आगे चलकर विकास हुआ। महाराजा भाग्यचन्द्र की प्रतिभा का मणि-काञ्चन संयोग पाकर मणिपुरी साहित्य में श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-साहित्य का वर्चस्व स्थापित हो गया। भाग्यचन्द्र स्वयं कवि, संगीतज्ञ, अभिनेता एवं कलाकार थे। बंगाल तथा असम-प्रवास से पड़ोसी राज्यों में प्रचलित साहित्य एवं कला का ज्ञान उन्हें प्राप्त हो सका। उस ज्ञान का उन्होंने मणिपुर के परम्परागत साहित्य एवं कलाओं के परिष्कार हेतु उपयोग किया तथा मणिपुरी साहित्य को श्री राधाकृष्ण-भक्ति के रंग में रँग दिया। उन्होंने गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-पद्धति को राज्य-धर्म घोषित किया। परिणामस्वरूप बंगला, संस्कृत, ब्रजबुली तथा मैथिली भाषा के शब्दों का प्रचलन मणिपुरी भाषा में आरम्भ हुआ।

मणिपुरी साहित्य वैष्णव-भक्ति-साहित्य का ऋणी है। उस समय से विद्वानों के लिए संस्कृत एवं बंगला भाषा-साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। मणिपुरी विद्वानों ने उस समय संस्कृत एवं बंगला भाषा में भी रचनाएँ लिखीं। महाराजा जयसिंह स्वयं कवि तथा राधाकृष्ण के परम भक्त थे। अतः उन्होंने स्वयं कई पुस्तकों की रचना की जिनमें से कुछ ही उपलब्ध हैं। इनके भक्ति-भावनायुक्त पद आज भी गाये जाते हैं। रास-लीला में गाये जानेवाले पदों की रचना का श्रेय भी इन्हींको है। रास-लीला केवल नृत्य नहीं है, उसमें संवाद भी हैं और इन संवादों की रचना भी उन्हींके द्वारा की गयी है। उनकी पुत्री सिजा लैइरौबी बिम्बावती मंजुरी ने भी श्री राधाकृष्ण-भक्तियुक्त अनेक पदों की रचना की। महाराज-कुमार नवानन्द ने १७८० ई० में महाभारत के विराट्पर्व का मणिपुरी अनुवाद किया। महाराजा भाग्यचन्द्र एवं महाराज-कुमारी बिम्बावती मंजुरी की पद-रचना का विवरण उनके जीवन-चरित में दिया जायगा है, अतः यहाँ उदाहरण देना अनावश्यक है। मयेंगा वृन्दावन, वाहेंबाम माधोराम तथा लोंजाम परशुराम आदि ने अश्वमेध-यज्ञ, अर्जुन-बभ्रुवाहन-युद्ध, जनमेजय-सर्पयज्ञ आदि रचनाओं को मणिपुरी भाषा में अनूदित किया। युमखाइबाम चन्द्रसिंह ने अष्ट काल-लीला एवं मथुरा-विरह नामक रचनाओं का प्रणयन किया। इस प्रकार श्री राधाकृष्ण-भक्ति ही मणिपुरी साहित्य का उपजीव्य बन गयी तथा इन ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार से मणिपुर में नव प्रचलित श्री राधाकृष्ण-भक्ति को स्थायित्व प्राप्त हुआ। यह भक्ति-भावना मणिपुरी लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन गयी।

महाराजा गम्भीर सिंह एवं चन्द्रकीर्ति सिंह के शासनकाल में भागवत-पुराण, विष्णु-पुराण, स्मृति-शास्त्र, चैतन्य-चरितामृत तथा गीत-गोविन्द जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का मणिपुरी भाषा में अनुवाद हुआ। १९वीं शताब्दी में वैष्णव-पदावली तथा पदों का बंगाली से मणिपुरी में अनुवाद किया गया। लगभग २०० वर्ष के लिए मणिपुरीसाहित्य की गति अवरुद्ध हो गयी और मौलिक रचना के स्थान पर यहाँ पर अनुवाद-कार्य अधिक हुआ। वैष्णव धार्मिक ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने या अनुवाद करने तक ही साहित्य सीमित रहा। बहुत कम मौलिक रचनाएँ लिखी गयीं और जो भी लिखी गयी हैं उन पर संस्कृत एवं बंगला-भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत एवं बंगाली-भाषा के कवि, लेखक और अनुवादक श्री राधाकृष्ण-भक्ति की देन हैं। ज्ञातव्य है कि महाराजा भाग्यचन्द्र के समय से संस्कृत, बंगला, ब्रजबुली एवं मैथिल. के पद गाने की परम्परा थी। यह आरम्भ ई आज भी प्रचलित है। २०वीं शताब्दी के आरम्भ से मणिपुरी भाषा में अनूदित पद गाये जाने की परम्परा भी चल पड़ी है। महाराजा गम्भीर सिंह के शासनकाल में ही 'श्रीकृष्ण-रससंगीत-संग्रह' नामक संकलन ठाकुर भक्ति-सिद्धान्त द्वारा किया गया था। 'गोविन्द-संगीत-लीला-विलास' मणिपुरी नृत्य-शास्त्र है और संस्कृत की रचना है। इसका रचयिता अज्ञात है, किन्तु लोगों का अनुमान है कि यह महाराज भाग्यचन्द्र की रचना है। 'धरणी-संहिता' महाराजा गम्भीर सिंह के शासनकाल में लिखी गयी कृति है जिसमें मणिपुर की घाटी एवं उसके निवासियों की वैष्णव-जीवन-चर्या तथा श्री राधाकृष्ण-भक्ति-पद्धति के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण उपलब्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १८०३ ई० का भागवत का एक असमी भाषा का अनुवाद डब्लु० युमुजाओ सिंह ने खोजा है जो अगर के पत्तों पर लिखा हुआ है। सन् १७८२ ई० में लिखित 'विजय पंचाली' (गरीबनिवाज-चरित) भी उपलब्ध है जिसकी रचना महाराजा जयसिंह के शासनकाल में राजकुमार मंत्री कीर्तिचन्द्र लाईरिकयेंबा तथा तुलसी नारायण नामक व्यक्तियों ने की थी।

महाराजा जयसिंह के यात्रा-वृत्तान्त एवं भक्ति-भावना से सम्बद्ध दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं—(१) 'चिथां-कोम्बा वृन्दावन चत्पा' अर्थात् जयसिंह की वृन्दावन-यात्रा तथा (२) 'चिथांकोम्बा गंगा चत्पा' अर्थात् जयसिंह की गंगा-यात्रा 'गोविन्द-निरूपण' नामक ग्रन्थ में भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना का प्राधान्य है।

श्री सनातन गोस्वामी की रचना भागवतामृतम् तथा श्री जीवगोस्वामी की रचनाएँ सन्दर्भ एवं मणिपुरी शब्दार्थ सहित यहाँ लिखी गयीं। 'भक्ति-रसामृत सिन्धु', 'उज्जल-नीलमणि' नामक श्री राधाकृष्ण-भक्तिपरक रचनाएँ भी जो रूपगोस्वामी द्वारा रचित हैं, मणिपुर के धार्मिक ग्रन्थों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सन् १८?० ई० में ओनामचा प्रजानन्द ने गीता का मणिपुरी अनुवाद किया। यह अनुवाद मात्र न होकर लेखक के मौलिक चिन्तन से युक्त है। इसमें भागवत तथा तन्त्र-पुराणों से भी कथाएँ ली गयी हैं। इसका प्रारम्भ भगवान् कृष्ण की लीलाओं से होता है। इसमें विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं का भी वर्णन है। समुद्र-मन्थन की कथा भी समाविष्ट की गयी है। भगवान् कृष्ण की द्रौपदी पर कृपा का भी वर्णन है। चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के अवतार हैं, इसका भी उल्लेख किया गया है। इसके परिणामस्वरूप गीता-रहस्य की चर्चा यहाँ का जन-प्रिय विषय है। मणिपुरी वैष्णव के लिए गीता का भौतिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व है। इसके माध्यम से मणिपुर में कर्म-सिद्धान्त का प्रचार और प्रसार हुआ है।

'धनञ्जय लाइबुङ्म्बिा' तथा 'सोनामानिक' नामक कथा-ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं जो आधुनिक उपन्यास से भिन्न हैं। डब्लु० माधवराम सिंह नामक व्यक्ति को पुरातत्त्वविद् डब्लु० युमुजाओ सिंह 'सोनामानिक' ग्रन्थ का लेखक मानते हैं। वैष्णव-धर्म-ग्रन्थों के कारण संस्कृत ज्योतिष एवं आयुर्वेदिक ग्रन्थों का भी मणिपुर में व्यापक प्रचार हुआ।

आधुनिक साहित्य पर श्री राधाकृष्ण-भक्ति का प्रभाव नगण्य है। ए० मिनिकेतन सिंह, आर० के० झलजीत सिंह, श्यामकन्हाई, पारिजात आदि को छोड़कर श्री राधाकृष्ण-भक्तिपरक रचनाएँ लिखनेवाले कवि कम हुए हैं। आधुनिक नाटककार या एकांकीकार, उपन्यासकार तथा कहानीकारों ने भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से विमुख हो सामाजिक एवं ऐतिहासिक साहित्य की रचना की है। किन्तु रंगमंच पर अभिनीत होनेवाले नाटकों में आज भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना से ओत-प्रोत नाटकों का प्राधान्य है।

मणिपुर की जनता अधिकांशतः शिक्षित तथा साक्षर है। यहाँ के लोग शिक्षा को महत्त्व देते हैं। आँकड़ों के आधार पर भी केरल के पश्चात् शिक्षित लोगों की संख्या मणिपुर में सर्वाधिक है। मणिपुर के जन-जीवन पर वैष्णव-साहित्य के प्रभाव की अमिट छाप देखी जा सकती है। स्त्री-पुरुष प्रौढ़ावस्था में प्रायः धार्मिक ग्रन्थों का नियमित पारायण करते हैं तथा जीवन का अन्तिम भाग नवद्वीप या वृन्दावन में भक्ति-भावना में लीन होकर व्यतीत करने की इच्छा रखते हैं।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का संगीत-कला पर प्रभाव

यह कहा जा चुका है कि महाराजा गरीबनिवाज ने राजाज्ञा द्वारा परम्परागत मणिपुरी गान एवं संगीत की परम्परा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। किन्तु परवर्ती राजाओं ने इस निषेधाज्ञा को स्वीकार नहीं किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिणामस्वरूप संगीतज्ञों एवं गायकों ने प्राचीन राग-रागिनियों एवं लय-ताल आदि का प्रयोग वैष्णव-संगीत में करना आरम्भ कर दिया।

मणिपुर के संकीर्तन-साहित्य का मध्यकाल (सन् १७५०-१९००) गायन एवं संगीत के क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। यह समय श्री राधाकृष्ण-भक्ति के मणिपुर में विकास का चरम उत्कर्षकाल माना जाता है, जिसमें अधिकतर रचनाएँ ब्रजबुली, बंगाली, संस्कृत तथा मैथिली में की गयीं और चण्डीदास, विद्यापति तथा जयदेव की रचनाएँ गाने की परम्परा रही। आज भी इन कवियों की रचनाएँ ही विभिन्न अवसरों पर गायी जाती हैं। जयदेव के गीतगोविन्द के दशावतार के वर्णन का श्री गोविन्दजी मन्दिर में तथा रथयात्रा में गान एक अनुष्ठान बन गया। पद-कल्पतरु, पदामृतम्, समुद्रलास्य आदि गौड़ीय वैष्णव-धर्म के कवियों के ग्रन्थ मणिपुरी भक्तों के बीच बहुत ही लोकप्रिय हुए और आज भी हैं। गोविन्ददास, कृष्णदास तथा नरोत्तम ठाकुर की रचनाएँ भी मणिपुर में बहुत लोकप्रिय हुईं। ये आज भी गायी जाती हैं।

इनके अतिरिक्त 'श्रीकृष्ण-रससंगीत-संग्रह' एवं 'गोविन्द-संगीत लीला-विलास' मणिपुरी संगीत-साहित्य की अपूर्व निधि हैं। चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित हर्षोन्मादपूर्ण भक्ति-संगीत जितना अपने जन्मस्थान बंगाल में लोकप्रिय है, उससे कहीं अधिक मणिपुर में है। मणिपुरी संकीर्तन मणिपुर की जीवन-पद्धति है। भक्ति-रस का यह अजस्र स्रोत है। इन भक्तिपूर्ण गीतों में मणिपुर का धार्मिक जीवन पूर्णतया प्रतिबिम्बित है। कृष्ण-रति पर आधारित यह भक्ति-भावना मणिपुर के धार्मिक जीवन का अभिन्न अंग है। जब राधा अभिसारिका नायिका का अभिनय करती है तो दर्शकगण की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती है। आज भी संकीर्तन में दर्शकों की आँखों से बहते हुए अश्रु देखे जा सकते हैं। संकीर्तन मणिपुरी भक्त की साधना का अभिन्न अंग है, जो विशेष उत्सवों एवं पर्वों के अवसर पर कला के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। महाराजा चन्द्रकीर्ति (सन् १८५०–८६) के शासनकाल में बंगाल घराने के चौंसठ भक्ति-रसों का चौंसठ अधिवेशनों में नृत्य-गान प्रस्तुव किया गया था।

'पाला लोइसं' नामक नर्तक-गायक समूह की स्थापना मणिपुरी संगीत की प्रमुख देन है। इसकी स्थापना महाराजा भाग्यचन्द्र के शासनकाल में सन् १७७६ ई० में की गयी थी। उनके उत्तराधिकारियों ने इस परम्परा का संरक्षण ही नहीं, संशोधन, परिवर्तन एवं परिमार्जन भी किया। इसके माध्यम से संगीत एवं गायन के क्षेत्र में नवीन आविष्कार किये गये। यह राज्याश्रय में स्थापित एवं विकसित संस्था है, जो मणिपुर की सांस्कृतिक गतिविधियों पर नियन्त्रण रखती है तथा उनका प्रतिनिधित्व करती है। राजा के द्वारा गुरु या 'ओझा' मनोनीत किये जाते थे जो अपने शिष्यों को नृत्य-गान की शिक्षा देते थे। मणिपुरी संस्कृति की विशिष्टता है—गुरु-प्रणालिका। आज भी गुरु-परम्परा की लम्बी श्रृङ्खला गान, नृत्य एवं मृदंग-वादन में मानी जाती है। इस संस्था के द्वारा बहुमूल्य रचनाएँ सुरक्षित रखी गयी हैं जिनमें से अनेक ऐसी हैं जिनका सम्पादन-प्रकाशन अभी होना है।

किसी व्यक्तिविशेष द्वारा विरचित गान को पाला लोइसं के द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। इसके द्वारा स्वीकृत रचनाएँ ही मन्दिर में गायी जा सकती हैं। मणिपुरी रचनाकारों ने बंगाली भाषा में भी रचनाएँ की हैं। स्वयं महाराजा भाग्यचन्द्र एवं उनकी पुत्री बिम्बावती मंजुरी ने श्री राधाकृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी पदों की रचना की थी। इस परम्परा का निर्वाह उनके उत्तराधिकारियों ने भी किया। किसी अज्ञात मणिपुरी कवि की निम्नलिखित रचना भी उपलब्ध है जो महाराजा भाग्यचन्द्र के शासनकाल में लिखी गई थी ;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जय जय राधे कृष्ण गोविन्द श्याम
संगे रस रंगे निकुञ्जे मन्दिरे
मदन मोहन मोहिनी धानी राधे,
जय जय राधे गोविन्द देव
श्रीला भाग्यचन्द्र नृपवर सेवा।

मणिपुरी भक्ति-पद्धति में महाराजा गरीबनिवाज के समय से ही कीर्तन का विशेष महत्त्व रहा है। कीर्तन में भी मणिपुर के दो घराने रहे हैं—जिनका क्रमशः वर्णन आगे किया जा रहा है। मणिपुर के ये दोनों संकीर्तन-घराने श्री राधा-कृष्ण-भक्ति की मणिपुर को अनुपम देन है।

१. पाला अरिबा अथवा पाला बंगदेश

'पाला अरिबा' तथा प्राचीन 'पाला बंगदेश' बंगाल से आयी संकीर्तन-पद्धति है। महाराजा चराईरौङ्बा अथवा गरीबनिवाज ने भक्ति-संगीत को संरक्षण प्रदान किया। उनके शासनकाल में संगीत-गुरु (मणिपुरी में ओझा) लैपाकमचा को 'कोनथौजम ओझा' की उपाधि से विभूषित किया गया। उन्हीं कोनथौजम ओझा ने प्राचीन संकीर्तन अथवा संगीत-गान की परम्परा का विकास किया। प्राचीन संकीर्तन का आरम्भ 'रामकृष्ण गोविन्द' शब्दों के सरगम पर होता है। श्री गोविन्दजी मन्दिर और अन्य देवालयों में आज भी यह प्राचीन संकीर्तन-पद्धति प्रचलित है। इस संकीर्तन के उद्‌भव के सम्बन्ध में दो मत हैं—प्रथम मत के अनुसार इस पद्धति के संकीर्तन का विकास बंगाल से आनेवाले किसी संगीतज्ञ के द्वारा किया गया। जबकि दूसरे मत के अनुसार बंगाली भाषा के पद गाने तथा चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का गान होने के कारण इसको 'बंगदेश-पाला' कहा जाता है। इस संकीर्तन में चलन-गठन को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता है। नृत्य, गीत, राग एवं मृदंग के ताल आदि के विषय में भी इस पद्धति में अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता है। संगीत-विशेषज्ञों के अनुसार इस संकीर्तन के संगीत पर असम की 'ओझा पाली' संगीत-परम्परा का पर्याप्त प्रभाव है। मणिपुर के संगीतज्ञों ने इस कीर्तन की धुनों का आधार प्राचीन पुराण-ग्रन्थों को बनाया था, इसलिए इसको 'अरिबा-पाला' कहा जाता है।

प्राचीन संकीर्तन-दल के दो उप-दल हैं। प्रथम दल को सेवक-पाला कहा जाता है, जो कोनथौजम ओझा की संकीर्तन-पद्धति का अनुसरण करते हैं तथा अपने सफेद साफे पर काला धागा बाँधते हैं।

दूसरा दल है 'थौबाल-पाला' या थौबाल (स्थानविशेष) का दल अथवा 'लैबाक-पाला' अर्थात् वे लोग जो इस पद्धति में दीक्षित होने से पूर्व जल में लैबाक (मिट्टी) मिलाकर उसका आचमन करके परम्परा-निर्वाह की शपथ ग्रहण करते हैं। थौबाल-पाला के विषय में कहा जाता है कि बर्मी आक्रमण के उपरान्त जब सात वर्ष तक मणिपुर बर्मी शासन में रहा तो इस दल के लोगों ने 'थौबाल' नामक स्थान पर श्री गोविन्दजी की आरती के लिए इस संकीर्तन का उपयोग किया। जब कछार से महाराजा नरसिंह श्री गोविन्दजी की मूर्ति लेकर आये तो थौबाल से संकीर्तन-दल बुलाया गया जिसने श्री गोविन्दजी की पुनःप्रतिष्ठा के अवसर पर संकीर्तन प्रस्तुत किया। थौबाल-पाला की संकीर्तन-मण्डली के कलाकार पीला साफा और ङाबों नामक कमरबन्द बाँधते हैं। इनके मृदंग के दोनों छोर बड़े होते हैं और इनकी झाँझ का आकार भी बड़ा होता है जिसमें छोटा धागा बँधा होता है। यह इस दल की पहचान है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. अनौबा-पाला

अनौबा अर्थात् नवीन पाला अर्थात् दल। इस नवीन संकीर्तन-दल का सम्बन्ध राजर्षि भाग्यचन्द्र से है। इस दल के भी तीन भेद हैं—नूपा (पुरुष) पाला, नूपी (स्त्री) पाला एवं नूपामचा (बच्चा) पाला। नूपा-पाला के विभिन्न अवसरों से सम्बन्ध होने के कारण झाल-पाला, नाम-पाला आदि उप-भेद भी हैं। नूपी-पाला के दो प्रमुख भेद हैं—रसेश्वरी-पाला तथा जलकेली-पाला। छोटे बच्चों का संकीर्तन-पाला नूपामचा (बच्चा) पाला कहा जाता है।

अनौबा-पाला में ५० से ६० गायक, दो मृदंग-वादक जिन्हें 'पूंग-याइबा' कहा जाता है, तथा एक शंख-वादक होता है जिसे 'मोइबूङ खोङ्बा' कहा जाता है। इसको नट-संकीर्तन-पाला भी कहते हैं। इसमें गान, मृदंग के ताल, करताल की झंकार के साथ पाँवों एवं शरीर की गति की संगत आवश्यक है।

संकीर्तन-दल के पुरुष कलाकार घुटनों तक धोती बाँधते हैं जिस पर वे त्रिअष्ट अर्थात् तीन गाँठोंवाले कमरबन्द बाँधते हैं जिनका एक छोर बायें, दूसरा नाभि से घुटनों तक तथा तीसरा कमर से नीचे पूँछ की तरह लटकता है। सिर पर ये लोग सफेद साफे बाँधते हैं। जिस समय संकीर्तन-मण्डप में कलाकार प्रवेश करते हैं उनके सिर पर साफा रहता है किन्तु गाने-बजाने के समय ये अपने साफे उतार देते हैं। संकीर्तन समाप्त होने पर फिर साफे बाँध लेते हैं। तात्पर्य यह है कि मण्डप में प्रवेश एवं प्रस्थान के समय कलाकारों के सिर पर साफे होते हैं। स्त्री-कलाकार पूंगौ फनेक (एक विशेष प्रकार का मणिपुरी स्त्रियों द्वारा पहना जानेवाला तहमत) तथा शाल या चादर ओढ़कर संकीर्तन में भाग लेती हैं। वे स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित होकर ही मण्डप में प्रवेश करती हैं।

राग-रागिनी

मणिपुरी संकीर्तन-दल के गायक या वादकों के लिए राग-रागिनी का विशेष महत्त्व है। नट-पाला के द्वारा आलाप का प्रयोग लय को जन्म देता है। 'गोविन्द-लीलामृत' एवं 'संगीत-दामोदर' आदि संगीत-ग्रन्थों के आधार पर मणिपुर में छः राग एवं छत्तीस रागिनियों का प्रयोग किया जाता है। इन राग-रागिनियों का वर्गीकरण राधाकृष्ण के क्रियाकलापों के अनुसार किया गया है। संकीर्तन का प्रमुख आधार ही राधाकृष्ण-भक्ति है।

संकीर्तन एवं नृत्य के विविध रूप मणिपुर को श्री राधाकृष्ण-भक्ति की विशिष्ट देन है। संकीर्तन से पूर्व श्रीराधाकृष्ण की स्तुति की जाती है, चार कलश संकीर्तन-मण्डप में रखे जाते हैं जो चैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैत और भक्तों के प्रतीक होते हैं। मण्डली में अधिवास का प्रारम्भ गुरु-वन्दना तथा पाँच वैष्णव-सन्तों एवं भक्तों की उपासना से किया जाता है। तब रात्रि-जागरण होता है जिसमें संकीर्तन तथा श्री राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया जाता है। बीच-बीच में 'बोल प्रेम से, कह श्री राधाकृष्ण' बल-प्रभु-नित्याई चैतन्य अद्वैत कथा, सन्तो साधो मधुरस वाणी हरे-हरे' के नारे संकीर्तन-मण्डप में गूँजते रहते हैं। सभा-वन्दना, गुरु-वन्दना, गौरचन्द्रिका तथा पदावली-गीत सभी अवसरों पर गाये जाते हैं।

'राजमेल' नामक नृत्य में मृदंग पर नृत्य प्रस्तुत किया जाता है तथा नर्तक अपनी क्रिया के द्वारा गरुड़ का अभिनय करते हैं जो राधाकृष्ण को लेकर उड़ता है। गरुड़ के उड़ने की ध्वनि मृदंग द्वारा प्रकट की जाती है। करताल-चोलम (नृत्य) तथा पूंग (मृदंग) चोलम (नृत्य) मूल रूप में संकीर्तन के ही अंश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। पूंग-चोलम, दो मृदंग-वादक नर्तकों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है किन्तु 'धूमेल' नामक पूंग-चोलम में एक सौ मृदंग-वादक भाग लेते हैं। प्रमुख धूमेल व उनके संरक्षक राजाओं के नाम यहाँ प्रस्तुत हैं :

धूमेल का प्रकार	संरक्षक राजा
१. महा धूमेल	महाराजा भाग्यचन्द्र
२. नित्याई धूमेल	महाराजा मारजित
३. गौर धूमेल	महाराजा नरसिंह
४. लैईरैमा (देवी) धूमेल	महाराजा चन्द्रकीर्ति

मृदंग-वादक-कलाकार जब मृदंग पर बादलों का गर्जन, चिड़ियों और पशुओं के स्वर ध्वनित करते हैं तो दर्शकगण मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। प्रारम्भ में नर्तकों की गति मन्द होती है किन्तु शनैः-शनैः वह तीव्र होती जाती है। एक पाँव पर नर्तक जब मृदंग बजाते हुए अपने करतब दिखाते हैं तो दर्शक आत्मविभोर हो जाता है। उनका उछलना, कूदना एवं पद-संचालन अत्यन्त आकर्षक होता है।

मणिपुरी संकीर्तन कला की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है जिसका विकास इस प्रदेश के प्रतिभावान् कलाकारों ने शताब्दियों तक की गयी साधना से किया है। प्रतिदिन मन्दिरों के प्रांगण में, श्राद्ध आदि सामाजिक तथा विभिन्न धार्मिक अवसरों जैसे जन्माष्टमी, राधाष्टमी, रथयात्रा आदि पर आये दिन संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। मणिपुर के जन-जीवन का यह प्रमुख अंग बन गया है।

मणिपुरी मनोहरशाही

खोल (एक प्रकार का मृदंग जिसका मध्यभाग लकड़ी का न होकर मिट्टी का होता है। इसका दाहिना सिरा बड़ा और बायाँ सिरा छोटा होता है) और करताल के साथ मनोहरशाही या कीर्तन किया जाता है। महाराजा चन्द्रकीर्ति से पूर्व खोल मिट्टी की बनायी जाती थी किन्तु उन्होंने लकड़ी की खोल का प्रचलन किया। नट-संकीर्तन के समान ही मनोहरशाही का प्रारम्भ तथा अन्त गौरचन्द्रिका एवं निताई-पदों से किया जाता है। आलाप, नैवेद्य आदि बातें मनोहरशाही में भी कीर्तन के समान ही होती है। इसमें प्रार्थना, भजन एवं लालसा की भावना से युक्त पद गाये जाते हैं। मनोहरशाही की युगल-मूर्ति की धारणा, धोती एवं कमरबन्द के बाँधने के ढंग, गान, ताल और लघु-गुरु के क्रम में भिन्नता होती है, इसीलिए यह संकीर्तन से भिन्न है। इसके गायक-वादक मृदंग के स्थान पर खोल का प्रयोग करते हैं तथा सिर पर पगड़ी नहीं बाँधते। इसमें ३० विभिन्न मात्राओंवाले तालों का प्रयोग किया जाता है। खोल के बोल भी विशिष्ट होते हैं। मनोहरशाही में पुरुष-दल ढब और करताल या झाल का प्रयोग करता है तथा राग और गीत नट-संकीर्तन के समान होते हैं। इसके गीतों में रूप और सनातन के बंगाल के नवाब के दरबार से निकलने एवं चैतन्य महाप्रभु से मिलने की कथा रहती है। मनोहरशाही की यह अपनी विशेषता है।

वास्तव में नट-संकीर्तन और मनोहरशाही दोनों ही चैतन्य-सम्प्रदाय की सांस्कृतिक देन हैं। इनमें दर्शकगण को समाधिस्थ कर देनेवाली श्रेष्ठ कला का दर्शन होता है। मणिपुरी संस्कृति का केन्द्रीय भाव है संगीत और संकीर्तन। संकीर्तन एक सामूहिक संगीत एवं नृत्याभिनय-कला है। संकीर्तन-मण्डप में बैठे दर्शकों को यह ऐसे भावोन्माद में ले जाता है जहाँ उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है, वे सिसक-सिसककर रोने लगते हैं तो कभी चीख उठते हैं। श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ही इस संकीर्तन-संगीत की जननी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का नृत्य-कला पर प्रभाव

मणिपुर में लाइहराओबा नृत्य की परम्परा सृष्टि के आरम्भ से मानी जाती है। नृत्य-गान की प्राचीन एवं समृद्ध परम्परा यहाँ पहले से चली आ रही थी। बाद में जब श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का प्रचार-प्रसार हुआ तो कुछ नवीन नृत्यों का आयोजन प्रारम्भ हुआ। इनमें से प्रमुख नृत्य निम्नलिखित हैं :

१. मणिपुरी रास-नृत्य।

२. सनसेनबा या ग्वाला-नृत्य।

३. गोपाल-गोष्ठ-लीला।

४. गौड़-लीला।

५. उलूखल-लीला।

६. वासक तथा खुबाक-ईशै (गान)।

मणिपुरी रास-नृत्य

मणिपुरी का रास-नृत्य विश्वविख्यात है। रास-नृत्य की यह परम्परा श्री राधाकृष्ण-भक्ति का ही प्रसाद है। यह वृन्दावन से रास-लीला के नाम से मणिपुर पहुँचा। मणिपुर की धरती नृत्य, गान, अभिनय आदि कलाओं के लिए बहुत ही उर्वर रही है। व्रज की रास-लीला का इस उर्वरा भूमि पर आकर संस्कार हुआ। मणिपुरी रास-लीला का मूल व्रज की रास-लीला रही किन्तु यहाँ इसका परिवर्तित एवं संशोधित रूप भारतीय शास्त्रीय नृत्यों में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ हुआ। भरत-नाट्य तथा कत्थक-नृत्यों की उत्कृष्ट परम्परा में ओडिसी और मणिपुरी रास की भी गणना की जाती है। मणिपुर ने हिन्दू-संस्कृति की अनेक परम्पराओं को ग्रहण किया किन्तु इस ऋण को उसने व्याजसहित चुकाया। मूल रास-लीला को मणिपुर के स्थानीय कलाकारों ने अपनी प्रतिभा से सजा-सँवारकर एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय नृत्य का रूप प्रदान किया, जो आज रास की अपेक्षा 'मणिपुरी नृत्य' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

रास-लीला के मणिपुर में प्रचलन का बहुत रोचक इतिहास है। सन् १७५६ ई० में महाराजा चिंथंखोबा उपनाम जयसिंह मणिपुर के सिंहासन पर अपने बड़े भाई गौरशाह के साथ बैठाये गये। ये दोनों मणिपुर के महाराजा बने। सन् १७६४ ई० में मणिपुर पर पड़ोसी बर्मा के राजा ने आक्रमण कर दिया। महाराजा जयसिंह के मामा, जो मोइराङ के राजा थे, की सहायता से बर्मा की सेना मणिपुर पर अधिकार करने में सफल रही। अतः महाराजा जयसिंह को भागकर कछार और बाद में असम के राजा राजेश्वरसिंह स्वर्गदेव के यहाँ शरण लेनी पड़ी। महाराजा जयसिंह बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके पिता श्यामशाह को हनुमान्‌जी का इष्ट था। महाराजा जयसिंह, जो बाद में भाग्यचन्द्र और 'कर्त्ता महाराज' के नाम से बहुत लोकप्रिय हुए, श्री गोविन्दजी के परम भक्त थे। बाल्यकाल से ही पितामह की गोद में आपने कृष्ण-भक्ति की दीक्षा ग्रहण की थी। राजेश्वरसिंह स्वर्गदेव को जयसिंह के विरोधियों ने झूठी सूचना दी कि आपका अतिथि वास्तविक जयसिंह नहीं है। उस समय तक जयसिंह के चमत्कार-पूर्ण कार्यों की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। अतः महाराजा जयसिंह को स्वर्गदेव तथा असम की प्रजा के सम्मुख, मत्तगज के सम्मुख उनकी वास्तविकता की परीक्षा के निमित्त छोड़ा गया। कहते हैं कि परीक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पूर्व रात्रि में श्री गोविन्दजी ने महाराज को स्वप्न में दर्शन दिये तथा मत्तगयन्द का निडर होकर सामना करने की आज्ञा दी। किन्तु साथ ही उनसे वचन लिया कि तुम मणिपुर का राज्य पुनः प्राप्त करने पर मेरा व श्रीमती राधाजी का विग्रह वहाँ प्रतिष्ठित करोगे तथा रास-लीला का आयोजन करोगे। भगवत्कृपा से मत्त हाथी महाराज के सम्मुख नतमस्तक हो गया।

सन् १७६७ ई० में महाराजा भाग्यचन्द्र ने मणिपुर पर फिर अधिकार कर लिया। उसके बाद श्री गोविन्दजी के आज्ञानुसार उन्होंने कटहल-वृक्ष से श्री गोविन्दजी के विग्रह बनवाये और उनकी प्रतिष्ठा की। इस अवसर पर महाराजा भाग्यचन्द्र ने मणिपुर में रास-लीला का आयोजन किया। रास-लीला कैसे की जाय, यह समस्या थी। गोविन्दजी ने उन्हें फिर स्वप्न में दर्शन दिये तथा रास-लीला-आयोजन की विधि समझायी। महाराज की ज्येष्ठा पुत्री बिम्बावती मंजुरी बाल्यकाल से ही कृष्ण-भक्ति में मग्न रहती थी। अतः उसको रास-लीला में राधा की भूमिका निभाने के लिए चुना गया।

लङ्थबाल, जिसे अब काञ्चीपुर कहा जाता है, तत्कालीन राजधानी थी। वहाँ रास-लीला के लिए मण्डप बनवाया गया। यमुना नदी के प्रतीकस्वरूप एक बड़ा जलाशय एवं नाला बनवाया गया। जलाशय और उस नाले के (जिसे चन्द्रनदी नाम दिया गया) मध्य रास-मण्डप का निर्माण करवाया गया। बिम्बावती मंजुरी जो अनिन्द्यसुन्दरी थीं, के रूप एवं आकार के आधार पर कलाकारों ने श्रीमती राधा की मूर्ति तैयार की। कई महीने तक रास-नृत्य का अभ्यास किया गया। संस्कृत, मैथिली और ब्रजबुली की रचनाओं का तथा वाद्य-यन्त्रों का चयन किया गया। रासेश्वरी श्रीमती राधा तथा सखियों के लिए वस्त्राभूषण निश्चित किये गये।

ज्ञातव्य है कि मणिपुर में अत्यन्त प्राचीन काल से लाइहराओबा-नृत्य की परम्परा थी और आज भी है। लाइहराओबा यद्यपि एक प्रकार का लोक-नृत्य होने के साथ ही धार्मिक अनुष्ठान भी है। इसमें नृत्य, गान, अभिनय, संवाद एवं संगीत की सुदीर्घ एवं सुन्दर परम्परा पहले से ही विद्यमान थी। इस लाइहराओबा की पृष्ठभूमि पर ही रास-लीला का विकास हुआ।

महीनों तक रास-लीला-आयोजन की तैयारी की गयी और अन्त में सन् १६७७ ई० की कार्तिक पूर्णिमा के दिन लाङ्थबाल में भव्य रास-मण्डल में प्रथम रास-लीला आयोजित की गयी। मण्डप में श्रीराधा व गोविन्दजी की मूर्तियाँ रखी गयीं। बिम्बावती मंजुरी ने राधा की भूमिका निभायी तथा अन्य मणिपुरी कन्याओं ने गोपियों की। स्वयं महाराजा भाग्यचन्द्र व उनके काका अनन्तशाई ने क्रमशः मृदंग-वादन एवं गायन प्रस्तुत किया। मणिपुर की प्रथम रास-लीला उस महारास का अनुकरण थी, जो भगवान् कृष्ण ने निभृत-निकुञ्ज में राधा और गोपियों के साथ कात्यायनी-पूजा के उपलक्ष्य में किया था। रास-लीला में जिन संवादों तथा गीतों का उपयोग किया गया वे श्रीमद्भागवत महापुराण के सम्बद्ध अंशों पर आधारित थे। ब्रजबुली और बंगाली भाषा के संवाद एवं गीत अपनाये गये किन्तु मणिपुरी भाषा के एक भी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया।

अप्रतिम सुन्दरी बिम्बावती मंजुरी ने राधा की भूमिका में अप्रत्याशित अभिनय प्रस्तुत किया तथा उसकी सखियों ने गोपियों का। वेष-भूषा, साज-सज्जा आदि सभी दृष्टियों से यह प्रथम रास-लीला अपूर्व थी। उस दिन से मणिपुर की रास-लीला की परम्परा आरम्भ हुई जो कालान्तर में भारत का प्रमुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय नृत्य बन गया। मणिपुरी रास-लीला यहाँ के धार्मिक जीवन का सार है, जिसमें भक्त निष्ठापूर्वक भगवान् की लीला का रसास्वादन करता है। रास-लीला के समय निम्नलिखित निषेधों के पालन की परम्परा है :

१. रास का आयोजन मध्य रात्रि से प्रातःकाल तक किया जाता है।

२. मन्दिर, सरिता-तट या पर्वतांचल में ही रास का आयोजन होता है।

३. रास-लीला-मण्डप में केवल वैष्णव ही प्रवेश कर सकते हैं, विधर्मी या विजातीय नहीं।

४. रास-मण्डल पवित्र स्थल है जहाँ नर्तकों के पास किसी दर्शक को जाने की अनुमति नहीं है।

५. प्रणाम-भंगिमा के समय हिलना, बोलना या बाहर जाना मना है।

६. दर्शक-वृन्द के लिए भगवान् की भक्ति में लीन रहना अनिवार्य है।

७. कृष्ण की भूमिका में ७-८ वर्ष की आयु से अधिक का बालक भाग नहीं ले सकता है। किन्तु गोपियों की आयु पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

८. रास-लीला राधा और कृष्ण की गोपियों एवं ग्वालों के साथ सम्पन्न होनेवाली रसात्मक लीला है, जिसमें राधा और कृष्ण के आध्यात्मिक एवं अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। यह आराध्य-युगल की अन्तरंग एवं गोपनीय लीला है, अतः इसके सम्बन्ध में कुछ बताना या कहना निषिद्ध है। एक मणिपुरी पौराणिक कथा के अनुसार भी रास-लीला की गोपनीयता अनिवार्य है। इस कथा के अनुसार एक दिन श्रीमती राधा और कृष्ण एक रमणीय निर्जन उपत्यका में रास-नृत्य कर रहे थे। उनकी इच्छा थी कि कोई भी व्यक्ति उनके इस युगल-नृत्य को न देख सके, क्योंकि यह उनकी रहस्यमय लीला थी। अतः उन्होंने भगवान् शंकर को प्रहरी नियुक्त किया और यह आदेश दिया कि वे किसीको भी यह नृत्य न देखने दें। भगवान् शंकर प्रहरी बनकर बैठ गये। पार्वतीजी भगवान् शंकर को ढूँढ़ते हुए उस स्थान पर आ पहुँचीं और उन्होंने उपत्यका में जाने की इच्छा व्यक्त की किन्तु भगवान् शंकर ने उन्हें इसके लिए मना किया। पार्वतीजी की जिज्ञासा भगवान् शंकर के मना करने से और अधिक बढ़ गयी। अतः उन्होंने उनसे छिपकर श्री राधाकृष्ण की लीला को देखा। उन्होंने भोलेनाथ से आग्रह किया कि वे भी इसी प्रकार का नृत्य करें। शंकर भगवान् की तो पार्वतीजी की बात मानने की आदत रही है, अतः वे मान गये। इसके लिए उन्होंने एक घाटी की खोज आरम्भ की। घाटी तो ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मिल गयी किन्तु वह चारों ओर पर्वतों से घिरी तथा जल से परिपूर्ण थी। अतः भगवान् शंकर ने अपने त्रिशूल से पर्वतों में तीन छेद कर दिये जिससे उसका जल बह निकला और वह जल-रहित समतल भूमि के रूप में परिवर्तित हो गयी। इसी सूखी समतल भूमि पर भगवान् शंकर ने पार्वतीजी और अनेक देवी-देवताओं को साथ लेकर सात दिन-रात तक नृत्य किया। यह देवताओं की प्रसन्नता (लाइ=देवताओं + हराओबा=प्रसन्नता) का नृत्य था। शेषनाग ने प्रकाश की व्यवस्था हेतु मणियाँ लाकर रख दीं जिनसे समस्त नृत्य-भूमि आलोकित हो उठी। इसलिए वह मणियों का देश अथवा मणिपुर कहलाया।

इस कथा से स्पष्ट है कि मणिपुर में जो प्रथम नृत्य किया गया था वह श्रीराधाकृष्ण की रास-लीला के अनुकरण पर शिव-पार्वती ने देवी-देवताओं के साथ किया था। उन्हीं देवी-देवताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के वंशज मणिपुरी लोग प्रतिवर्ष लाइहराओबा नृत्य करते हैं, जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति तथा विकास का सम्पूर्ण इतिहास रहता है। उनके पूर्वजों ने श्री राधाकृष्ण के अनुकरण पर प्रथम रास किया था अतः वे भी उस रास-परम्परा का अनुकरण करते हुए विविध प्रकार के रास-नृत्य भिन्न-भिन्न अवसरों पर करते हैं। क्योंकि प्रथम रास का कोई दर्शक नहीं था और वह श्रीराधाकृष्ण की रहस्यमयी एवं गोपनीय लीला थी अतः आज भी उसकी गोपनीयता बनाये रखना अनिवार्य माना जाता है। कृष्ण आत्मा के और गोप-गोपियाँ जगत् अथवा प्रकृति के प्रतीक हैं। रासलीला मणिपुरी वैष्णवों के लिए आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया है।

राजर्षि ने मणिपुर की प्रतिभा तथा प्राचीन नृत्य-परम्परा की उर्वर भूमि को सुरुचि एवं श्रम से सींचकर श्री गोविन्दजी के आज्ञा-पालनार्थ महारास को नवीन दार्शनिक आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने स्थानीय नृत्य-पद्धति के आधार पर नवीन नृत्याभिनय का आविष्कार किया। इसके साथ ही संगीत में भी कई नवीन प्रयोग किये। वे स्वयं प्रतिभावान् कवि, अभिनेता, संगीतज्ञ और गायक थे। मणिपुर का लोक-नृत्य लाइहराओबा राजर्षि की प्रतिभा से इस प्रकार परिवर्तित एवं संशोधित किया गया कि वह रास का अभिन्न अंग बन गया है। इसके विकास में 'नाट्य-शास्त्र' और 'अभिनय-दर्पण' की प्रमुख भूमिका रही है। भागवत पुराण तो इसका आधार है ही। असम में राजर्षि का आठ वर्ष का लम्बा प्रवासकाल रास-लीला की पृष्ठभूमि हो सकता है, जहाँ शंकरदेव (सन् १४४९-१५६८ ई०) की वैष्णव-भक्ति-भावना जन-जीवन का अंग बन चुकी थी। डॉ० एम० नियोग ने अपनी पुस्तक 'शंकरदेव ऐण्ड हिज़ टाइम्स' (पृ० २७२) में मणिपुरी रास पर असम की सत्र-परम्परा का अत्यधिक प्रभाव बताया है। 'चैथरोल कुमबाबा'[1] में भी असम की राजधानी (गर-गाँव) में महाराजा जयसिंह के द्वारा असमिया वैष्णव नाटकों के अवलोकन का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः महाराजा ने राधाकृष्ण-भक्ति को मणिपुर में नृत्य एवं संगीत के द्वारा लोक-प्रिय बनाने का निर्णय वहीं लिया होगा।

मणिपुरी रास को निम्नांकित भागों में विभक्त किया जा सकता है :

महारास – समय : कार्तिक पूर्णिमा
कुञ्जरास – समय : आश्विन अष्टमी
वसन्तरास – समय : चैत्र पूर्णिमा
नित्यरास – समय : प्रतिदिन किसी भी समय
दिवारास – समय : सभी ऋतुओं में दिन के समय
नर्तनरास – समय : निर्धारित समय पर
अष्टगोपी और अष्टश्यामरास – समय : वसन्तोत्सव पर

महारास, जो श्रीगोविन्दजी मन्दिर में किया जाता है, में रासेश्वरी राधा और कृष्ण की मूर्ति रास-मण्डप के मध्य रखी जाती है और गोपियाँ उनको घेरकर एक वृत्त में नृत्य करती हैं। किन्तु कुञ्जरास और वसन्तरास को 'विजय-गोविन्द-रास' की संज्ञा दी जाती है और इनमें राधाकृष्ण के अभिसार का अभिनय एवं प्रदर्शन किया जाता है।

१. चैथा रोल कुमबाबा—मणिपुर के राजवंश का प्राचीन हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रास-लीला या रास-नृत्य श्रीगोविन्दजी (कृष्ण का मणिपुरी लोकप्रिय नाम) मन्दिर के अतिरिक्त सभी प्रमुख मन्दिरों, घरों और गाँव-गाँव में किया जाता है। भक्तजन, दर्शक, नर्तक, गायक, वादक के रूप में उसमें सम्मिलित होते हैं। वे रास-मण्डल में नंगे पाँव आते हैं और राधाकृष्ण की भक्ति में लीन हो जाते हैं। राधा या गोपियों के वियोग के नृत्याभिनय व गान के समय भक्तजनों की आँखों में अश्रु-प्रवाह देखा जा सकता है। नीचे प्रत्येक रास का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :

महारास

महारास का आधार 'रास-पञ्चाध्यायी' है। शरद् पूर्णिमा की दुग्ध-धवल ज्योत्स्ना में भगवान् कृष्ण अन्तःप्रेरणा से रास-नृत्य का आयोजन करते हैं। मणिपुरी रास-नृत्य का आधार यही है। श्रीकृष्ण संकेत-स्थल पर पहुँचते हैं। वहाँ राधा को न पाकर वे अपनी मुरली की मधुर तान छेड़ते हैं। राधा तथा गोपियाँ सभी लोक-लाज छोड़कर और तन-मन की सुध भूलकर वहाँ आ जाती हैं। भगवान् कृष्ण उनको पतिव्रत-धर्म का उपदेश देते हैं तथा घर लौट जाने को कहते हैं। किन्तु गोपियाँ मन्त्र-मुग्ध-सी वहीं खड़ी रहती हैं। तब श्रीकृष्ण अपने चारों ओर एक मण्डल बनाकर तथा स्वयं राधा के साथ उसके केन्द्र में रहकर रास रचाते हैं।

रास-पञ्चाध्यायी में कृष्ण, राधा तथा गोपियों का मिलन संयोग, मान, वियोग आदि का रसात्मक वर्णन मिलता है। इसी आधार पर मणिपुरी रास का आयोजन होता है। जब कृष्ण के साथ नृत्य करते-करते गोपियाँ आत्मविभोर हो जाती हैं तो वे राधा के साथ निभृत निकुञ्ज में जा छिपते हैं। राधा व गोपियों को कृष्ण के इस विशेष अनुग्रह के कारण अभिमान हो जाता है। कृष्ण उनके अभिमान को चूर करने के लिए उसी समय अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियाँ कृष्ण को न पाकर विरहाकुल हो जाती हैं। उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होती है तथा वे वृन्दावन में उन्हें खोजती हैं और प्रत्येक पौधे, पेड़ और लता से कृष्ण के विषय में पूछताछ करती हैं। इसी क्रम में विरहव्यथिता राधाजी मिलती हैं जो प्रियतम के वियोग से व्याकुल हो रो रही हैं। उनकी अभिमान की भावना तिरोहित हो जाती है। इसके बाद राधा और गोपियों का मिलन होता है। सभी मिलकर समवेत स्वर में कृष्ण को पुकारती हैं। राधाकृष्ण के विरह में प्राणत्याग करने का निर्णय करती हैं, समस्त निश्व सन्त्रस्त हो जाता है, तब कृष्ण एक नहीं, अनेक रूपों में प्रकट होते हैं — जितनी गोपियाँ उतने ही श्याम। फिर रास प्रारम्भ होता है। प्रातःकाल होने पर रास समाप्त होता है, सभी गोपियों को कृष्ण अपने-अपने घर लौटने को कहते हैं।

वास्तव में रास आध्यात्मिक भावों से भरा अनुपम नृत्य है। जीवात्मा परमात्मा में मिलना चाहती है। वह उनसे विलग होकर विरह-व्यथित होती है, रोती-बिलखती है, उनको खोजती है। किन्तु जब तक अहंभाव तिरोहित नहीं होता, यह मिलन सम्भव नहीं है। रास-नृत्य में इसी अहंभाव का तिरोहित होना दिखलाया जाता है। सामान्य जन को रास के विषय में ऐसा भ्रम होना सम्भव है कि यह राधाकृष्ण की शृङ्गारमयी लीला है और इसमें काम-भाव प्रमुख है किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। रास-लीला ज्ञान, योग, कर्म और भक्ति-मार्ग की सरणि है। इसमें भगवान् कृष्ण का कामविजयी रूप और दर्शकों को काम-विजय-फल-प्राप्ति प्रदर्शित की जाती है। माधुर्य-भक्ति में भगवान् कृष्ण की लीलाओं के वर्णन के द्वारा उनके सौन्दर्य, शील और शक्ति को व्यक्त किया जाता है। इनके माध्यम से भक्त जन भगवान् का स्वरूप हृदयंगम करते हैं। रास-लीला के प्रभाव की परिधि अन्य लीलाओं की अपेक्षा व्यापक है, क्योंकि आध्यात्मिकता के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स थ ही साथ लौकिक धरातल पर यह अनुकरणात्मक और दृश्य लीला है। गोलोक या वृन्दावन में श्रीकृष्ण अपने आनन्द-विग्रह से आनन्दप्रसारिणी शक्तियों के साथ रासमग्न रहते हैं। उनकी यह आनन्दमयी क्रीड़ा अनादि और अनन्त है। गोपियों के लौकिक काम का शमन और अलौकिक काम की पूर्ति निष्काम कृष्ण की कृपा द्वारा होना ही इसका मूलभाव है। इसमें लौकिक काम-भाव का अभाव है और संसार से निवृत्ति होती है। रास से काम का उद्रेक न होकर शमन होता है। रास-लीला द्वारा भक्त काम की आहुति भगवान् में करता है। भागवत-पुराण में कहा गया है कि यह लीला कामरूपी हृदय-रोग का नाश करनेवाली है।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्दयः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमपाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

अर्थात् जो व्यक्ति श्रद्धान्वित होकर व्रज-बालाओं के साथ की गयी भगवान् विष्णु की इस क्रीड़ा का श्रवण या कीर्तन करेगा, वह परमधीर भगवान् में पराभक्ति प्राप्त करके मानसिक काम-रोग से मुक्त हो जायगा।

इससे स्पष्ट है कि रासलीला काम-लीला न होकर काम-विजयलीला है।

रासलीला ब्रह्मानुरूप रहस्य की अभिव्यक्ति है। भगवान् कृष्ण परमात्मा हैं, गोपियाँ प्रकृति या अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं। जीवात्मा परमात्मा के साथ विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करके भगवत्स्वरूप को प्राप्त करता है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में रासलीला का प्रयोजन श्रीकृष्ण के प्रेम या हित-तत्त्व का विकास है। लीला का प्रयोजन जीव का कल्याण है। श्रीकृष्ण और गोपियों के उत्कृष्ट प्रेम को उपास्य एवं आराध्य मानकर जीवात्मा कामविजय प्राप्त करता है। रासलीला राधा को प्रमुदित करने का क्रीड़ा-कौतुक है जिसमें 'तत्सुख-सुखित्व' का भाव निहित है। इसका पर्यवसान लोक-कल्याण में होता है। इस लीला की भावना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इसका भौतिक रूप में अनुकरण भी अभीष्ट है। अनुकरण द्वारा राधा के प्रति कृष्णानुराग का स्वरूप सांसारिक जीवों में भी व्यक्त होता है।

महारास द्वारा यह स्पष्ट प्रदर्शित होता है कि भगवान् सच्चे प्रेम के वशीभूत हैं तथा आत्मबोध या साक्षात्कार हेतु अहं का त्याग आवश्यक है।

कुञ्जरास

श्रीराधाकृष्ण की नित्य-कुञ्जलीला का प्रदर्शन कुञ्जरास में किया जाता है। कुञ्जरास का आधार 'गोविन्द-लीलामृत' में प्राप्त श्रीराधाकृष्ण की कुञ्ज-लीलाओं का वर्णन है। कुञ्जरास का प्रारम्भ श्रीकृष्ण की राधा के प्रति शृङ्गाररसमयी क्रीड़ाओं से होता है, राधा उन्हें रोकने का या बाधा देने का बहाना करती हैं। फिर आरम्भ होता है अभिसार और मिलन। इस नृत्य में 'भंगीपरेंग' बनायी जाती है। वृन्दावन-वर्णन, रूप-वर्णन एवं प्रार्थना, कुञ्जरास के अन्तिम भाग की विषयवस्तु है। नृत्य की समाप्ति पर भी प्रार्थना चलती रहती है और कुञ्ज-आरती की जाती है, जिसमें सभी उपस्थित दर्शक भाग लेते हैं। यह रास दशहरा के अवसर पर भी किया जाता है।

वसन्तरास

यह रास चैत्र पूर्णिमा के दिन किया जाता है, जिसमें राधा और गोपियों के साथ श्रीकृष्ण भाग लेते हैं। वसन्तरास केवल नृत्य नहीं, रंग-अबीर का आनन्दपूर्ण त्योहार भी है। महाकवि जयदेव ने अपने

३/५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत-गोविन्द में वसन्तरास का अति सुन्दर वर्णन किया है। इस नृत्य की विशेषता यह है कि चन्द्रावली श्रीमती राधा की प्रतिद्वन्द्वी बनकर आती है। नारी-मनोविज्ञान एवं सौतियाडाह की इस नृत्य में सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि गौड़ीय वैष्णव-धर्म में श्रीमती राधा को कृष्ण के प्रेम की प्रमुख अधिकारिणी माना जाता है और मणिपुरी वैष्णव-मत में तो विशेष रूप से। अतः वसन्तरास में चन्द्रावली का राधाकृष्ण के प्रेम के बीच बाधक बनकर आने के कारण मणिपुरी कलाकारों ने इसको नारी-मनोविज्ञान के आधार पर भव्य रूप प्रदान किया है। वसन्तरास श्री विजयगोविन्द-मन्दिर में आयोजित किया जाता है। वसन्तरास के तीन भाग हैं :

१. प्रथम भाग में सूत्रधार आकर रास-मण्डल में, जहाँ पहले से ही श्रीमती राधा तथा कृष्ण की मूर्ति रखी होती है, वैष्णव-पदावली के वे पद गाता है, जिनमें वृन्दावन की प्रशंसा होती है। इस प्रारम्भिक गायन की समाप्ति के साथ राधाजी और गोपियाँ अभिसारिका के रूप में रास-मण्डल में प्रवेश करती हैं।

२. द्वितीय भाग में श्रीकृष्ण भगवान् आते हैं और अबीर-खेल से रास-नृत्य आरम्भ होता है। श्रीकृष्ण राधाजी की उपेक्षा करके चन्द्रावली के साथ नृत्य करते हैं। राधाजी ईर्ष्याभाव से जल उठती हैं। वे नीलवस्त्र का घूँघट धारण करती हैं और रास-मण्डल से चली जाती हैं। नील वस्त्र का घूँघट राधा के क्रुद्ध होने का प्रतीक है।

३. तृतीय भाग में श्रीकृष्ण राधाजी को खोजते हैं। राधाजी ईर्ष्या एवं आक्रोश के कारण जाते समय अपना नीला घुँघटवाला वस्त्र फेंक जाती हैं। कृष्ण को वह वस्त्र मिल जाता है, किन्तु राधा नहीं। श्रीकृष्ण ललिता एवं विशाखा की सहायता से राधा के पास पहुँचते हैं। राधा मान किये बैठी हैं। वे कृष्ण की ओर देखती भी नहीं हैं। श्रीकृष्ण राधाजी से अनुनय-विनय करते हैं, क्षमा-प्रार्थना करते हैं। 'देहि देहि पद पल्लव मधुरम्....' कहते हैं और यह भी कि मैं तुम्हारे प्रेमाभाव में जीवित नहीं रह सकूँगा। राधाजी का मान भंग हो जाता है। वे उग्र रूप का त्याग करती हैं। श्रीकृष्ण राधा की बाँह पकड़कर उन्हें पुनः रास-मण्डल में ले जाते हैं, फिर अबीर-खेल से रास आरम्भ होता है और अबीर खेलते हुए ही समाप्त होता है।

वसन्तरास में अबीर का खेल, राधा व चन्द्रावली की प्रणय-लीला, राधा का सौतियाडाह, मान-मनुहार एवं मानभंग में नर्तक, गायक व वादक मानव-मन के सूक्ष्म भावों को अभिनय, संगीत एवं गीतों से प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्त करते हैं। वसन्तरास के सम्बन्ध में एक निषेध का पालन किया जाता है। जब तक यह विजयगोविन्दजी के मन्दिर में आयोजित नहीं किया जाता है, तब तक अन्य मन्दिरों में इसका आयोजन सम्भव नहीं। वर्ष का प्रथम रास विजयगोविन्दजी के मन्दिर में होता है और उसके पश्चात् गाँव-गाँव और गली-गली में इसका आयोजन किया जाता है।

नित्यरास

नित्यरास एवं महारास में केवल यह अन्तर है कि इसमें महारास की भाँति श्रीकृष्ण विलुप्त नहीं होते और राधा एवं गोपियों का विरह-वर्णन नहीं रहता। नित्यरास में राधा तथा गोपियों के अभिसार और कृष्ण के साथ मात्र प्रणय-लीला का प्रदर्शन किया जाता है। इस रास का प्रचलन महाराज चन्द्रकीर्ति सिंह के शासन-काल में हुआ था। इसकी परम्परा आज भी जीवित है। इसमें अन्य रासों के आयोजन की भाँति समय का प्रतिबन्ध नहीं है। यह किसी भी दिन और किसी भी समय किया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिवारास

कालक्रम की दृष्टि से इसका प्रचलन २०वीं शताब्दी में महाराजा चूडाचाँद के शासन-काल में हुआ था, अतः यह अपेक्षाकृत परवर्ती रास-नृत्य है। इसकी विशेषता केवल इतनी है कि यह किसी भी ऋतु में दिन के समय आयोजित किया जा सकता है।

नर्तनरास

नर्तनरास का प्रचलन महाराजा चन्द्रकीर्ति के समय से माना जाता है। यह रास किसी भी निश्चित दिन आयोजित किया जा सकता है। नर्तनरास का सम्बन्ध श्रीगोविन्दजी के पर्व, यात्रा-महोत्सव आदि से नहीं है और यह नित्यरास के समान ही है।

अष्टगोपी अष्टश्यामरास

यह रास वसन्तोत्सव पर श्रीगोविन्दजी-मन्दिर में आयोजित किया जाता है। इसमें ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुंगविद्या, इन्दुरेखा, रम्भा तथा सुदेवी नामक अष्ट-गोपियाँ भाग लेती हैं और अष्ट-कृष्ण भी। इसीलिए इसको अष्ट-गोपी-अष्टश्यामरास कहा जाता है।

उपर्युक्त सात रास-लीलाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित लीलाएँ भी प्रचलित हैं।

सनसेनबा या ग्वाला-नृत्य

सनसेनबा या ग्वाला-नृत्य, गोष्ठ-लीला एवं उलूखल-लीला-नृत्यों का आरम्भ महाराजा गम्भीरसिंह (सन् १८२५-३४ ई०) के शासन-काल में हुआ था। गुरु सझयरङ ने इन नवीन नृत्यों को रचना महाराजा गम्भीरसिंह की आज्ञा से की थी। कृष्ण के बाल्यकाल की वृन्दावन की घटनाओं के आधार पर इन नवीन नृत्यों का जन्म हुआ।

सनसेनबा-नृत्य लगभग २०० बालकों द्वारा किया जाता है। ये बालक भगवान् कृष्ण की वेष-भूषा पहनकर तथा हाथ में बाँसुरी लेकर नृत्य करते हैं, जिसमें गायें चराने का अभिनय सम्मिलित होता है।

गोपाल-गोष्ठ-लीला

श्री गोविन्दजी-मन्दिर के मण्डप में प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला सप्तमी को गोपाल-गोष्ठ-लीला का आयोजन किया जाता है। इसमें श्रीकृष्ण के बाल्यकाल की क्रीड़ाओं (लीलाओं) और उनके ग्वाल मित्रों के साथ गायें चराते समय के खेलों का प्रदर्शन किया जाता है। बालक कृष्ण के प्रति यशोदा के स्नेह की अभिव्यक्ति इस नृत्य में की जाती है। नारद मुनि बालकृष्ण एवं बलराम को गायें चराने की कला सिखाते हैं। गोप आकर यशोदा से कृष्ण एवं बलराम को गायें चराने के लिए भेजने की प्रार्थना करते हैं किन्तु माता यशोदा राक्षसों एवं दैत्यों के भय से उन्हें भेजना नहीं चाहती हैं। जब कृष्ण भी यशोदा से गाय चराने जाने का आग्रह करते हैं तो यशोदा उन्हें अनुमति दे देती हैं। कृष्ण, बलराम एवं गोप वन में कन्दुक-क्रीड़ा करते हैं। वे तालवन में जाते हैं और वन के वृक्षों को उखाड़ते हैं। वे भूख लगने पर वन-फल खाते हैं। वन-रक्षक धेनुकासुर उन्हें मारने के लिए दौड़ा आता है। बलराम और धेनुकासुर में घमासान युद्ध होता है। उसके बाद वे पुनः खेल आरम्भ करते हैं। उसी समय कंस का भेजा हुआ बकासुर नामक राक्षस आ पहुँचता है। वह दैत्याकार रूप धारण करता है और कृष्ण के पृष्ठभाग को पकड़ता है। कृष्ण बकासुर का वध करते हैं। गोष्ठ-लीला में उक्त घटनाओं को संगीत एवं नृत्याभिनय द्वारा ताण्डव-शैली में प्रस्तुत किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौड़-लीला

गौड़-लीला-नृत्य वास्तव में नृत्य-नाटक कहा जा सकता है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु के जीवन एवं लीलाओं का नृत्याभिनय प्रस्तुत किया जाता है। गौड़-लीला को मणिपुरी शास्त्रीय नृत्यों का सार कहा जाता है। चैतन्य महाप्रभु के बाल्य-काल के नटखटपन, उनके द्वारा विष्णु-अवतार की घोषणा, कीर्तन, जगाई-मधाई की विजय, केशव भारती की प्रेरणा से निमाई एवं चैतन्य का संन्यास लेना तथा विष्णुप्रिया का विरह—गौड़-लीला में प्रदर्शित की जानेवाली प्रमुख घटनाएँ हैं। गौड़-लीला न्यूनाधिक मात्रा में रास-लीला कही जा सकती है किन्तु इसमें हास्य और प्रहसन होते हैं जो इसको रास-लीला से अलग करते हैं। इसके मुख्य पात्र निताई और चैतन्य का अभिनय बालक करते हैं, जबकि जगन्नाथ मिश्र, शची, जगाई-मधाई और केशव भारती आदि का अभिनय प्रौढ़ कलाकार करते हैं। गौड़-लीला-कीर्तन में २० से ३० लड़के भाग लेते हैं। इसमें मृदंग और करताल-नृत्य प्रस्तुत किये जाते हैं। बीच-बीच में संगीत भी चलता है।

उलूखल-लीला

इस नृत्य का आधार कृष्ण के बाल्य-काल का नटखटपन और गोप-गोपियों के साथ विनोद है। वे अपने ग्वाल सखाओं के साथ दही-माखन की चोरी करते हैं। पकड़े जाने पर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करते हुए वे सारा दोष दूसरों के सिर मढ़ते हैं। वे गोपियों के साथ स्वयं छेड़-छाड़ करते हैं। उन्हें चिढ़ाते हैं और अपने साथी ग्वालों को भी ऐसा ही करने को प्रेरित करते हैं। गोपियाँ यशोदा के पास जाकर कृष्ण की शिकायत करती हैं। माता यशोदा गोपियों की शिकायत को सुनकर बालकृष्ण को उलूखल से बाँधती हैं। कृष्ण रस्सी के बन्धन से अपने को मुक्त कर लेते हैं। वे उलूखल को घसीटकर ले जाते हैं। अन्ततोगत्वा यह उलूखल दो वृक्षों से जा टकराता है और वे दोनों वृक्ष उखड़ जाते हैं। तब यह नृत्य समाप्त हो जाता है।

वासक तथा खुबाक-ईशै

वासक एवं खुबाक-ईशै नामक दो नृत्य राधा और उनकी सखियों के हैं। अतः इनमें केवल बालिकाएँ ही भाग ले सकती हैं। वासक तथा खुबाक-ईशै नृत्य में विशेष अन्तर नहीं है। वासक-ईशै को खुबाक-ईशै नृत्य का एक भेद भी कहा जा सकता है। दोनों नृत्यों के केन्द्रीय भाव में समानता है। कंस के बुलाने पर भगवान् कृष्ण व बलराम अक्रूर के साथ मथुरा जाने के लिए रथ पर सवार होते हैं। राधाजी कृष्ण-वियोग की वेदना से व्यथित होती हैं। राधाजी के वियोग-व्यथित हृदय की भावनाओं को 'खुबाक-ईशै' नृत्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। चैतन्य महाप्रभु अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जब पुरी में रहते थे, तो रथयात्रा के अवसर पर वे राधाजी की विरह-व्यथा के भावों में डूबकर भाव-विह्वल हो जाते थे। मणिपुरी लोग गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों में आस्था रखते हैं अतः मणिपुर में भी पुरी के अनुकरण पर रथयात्रा निकाली जाती है और रथ के सम्मुख खुबाक-ईशै नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। संकीर्तन भी किया जाता है। खुबाक-ईशै नृत्य में एक मृदंग-वादक संगत करता है। इस नृत्य की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें करतल-ध्वनि के द्वारा नर्तक संगीत की धुनें उत्पन्न करते हैं। वासक-ईशै नृत्य वर्ष में कभी भी किया जा सकता है, जबकि खुबाक-ईशै नृत्य का आयोजन केवल रथयात्रा के अवसर पर किया जाता है। वासक-ईशै नृत्य में करतल-ध्वनि के बजाय छोटे आकार के झाँझ-मजीरों का प्रयोग किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता है। खुबाक-ईशै के दो रूप हैं : ताण्डव एवं लास्य। इसका ताण्डव रूप पौरुष की उत्तम अभिव्यक्ति है, जबकि लास्य रूप में कला की। भरतमुनि के नाटचशास्त्र तथा नृत्य-अभिनय-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों में ताल-रास, डण्डा-रास और मण्डल-रास का उल्लेख मिलता है। खुबाक-ईशै ताल-रास है, क्योंकि इसमें करतल-ध्वनि द्वारा संगीत उत्पन्न किया जाता है। गोष्ठ-रास को इस दृष्टि से डण्डा-रास के अन्तर्गत रखा जा सकता है, क्योंकि गोपाल एवं ग्वालों के हाथ में डण्डे होते हैं और ये लोग डण्डों के साथ नृत्य करते हैं। अन्य प्रकार के मणिपुरी रास मण्डल-रास के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। रास का अर्थ वृत्ताकार या मण्डलाकार समूहनृत्य है किन्तु परवर्ती शास्त्रों में इसकी गणना रूपक के एक भेद या उपरूपक के रूप में भी की जाने लगी थी।

उपर्युक्त नृत्य श्रीराधाकृष्ण-भक्ति की देन हैं। इनमें भक्ति-भावना का प्राधान्य है। यथावसर ये नृत्य-गान चलते रहते हैं। कलाकार एवं दर्शक सभी श्री राधाकृष्ण के प्रति पूर्ण भक्ति-भावना से इन नृत्यों में भाग लेते हैं। आज भी इनका आयोजन होता है और गायक एवं नर्तकों की कला निरन्तर श्रेष्ठता की ओर अग्रसर हो रही है।

रास-नृत्य : वेष-भूषा, आभूषण एवं शृंगार

मणिपुरी रास-लीला के वस्त्राभूषण एवं शृङ्गार का आधार है श्री गोविन्दजी के द्वारा महाराजा भाग्यचन्द्र को स्वप्न में दिये गये निर्देश। वर्षों से उसी परम्परा का पालन किया जा रहा है। रास-नृत्य के वस्त्राभूषण पोतलाइ सेतपा (वह मनुष्य जो वस्त्राभूषण रखता है) से रास के कलाकार भाड़े पर लेते हैं। एक वेष-भूषा लगभग ५० वर्ष तक चलती है, क्योंकि इसका उपयोग बहुत कम होता है। मणिपुरी विवाह-संस्कार में यही वस्त्र वधू के लिए भी उपयोग में लाये जाते हैं।

राधा और गोपियों की वेष-भूषा दिवारास को छोड़कर सभी रासों में एक समान रहती है। दिवारास में राधा और गोपियाँ सामान्य साड़ी धारण करती हैं। राधा और गोपियों की वेष-भूषा रास-लीला का प्रमुख आकर्षण-केन्द्र होती है, क्योंकि यह बहुत ही मनोरम होती है। राधा-गोपियों का शृङ्गार-प्रसाधन देखते ही बनता है। वे कमर से नीचे 'कुमिन' पहनती हैं जो एक छतरीनुमा लहँगा होता है। राधा का लहँगा (कुमिन) हरे रंग का होता है जब कि गोपियों का लहँगा लाल होता है जिसमें विभिन्न रंगों की धारियाँ होती हैं। लहँगे पर एक काछनी बाँधी जाती है। कंचुकी, लहँगे एवं काछनी पर गोटे, जरी, सलमा-सितारों और काँच के टुकड़ों का कलात्मक काम देखते ही बनता है। कंचुकी को मणिपुरी में 'रेशम फुरित्' कहा जाता है। यह लाल या हरे रंग की होती है। राधा और गोपियों के सिर पर एक ओढ़नी होती है। ओढ़नी के घूँघट से मुँह ढँका रहता है किन्तु यह इतनी बारीक मलमल की होती है कि उसमें मुख और नेत्रों के हाव-भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। इस ओढ़नी पर भी अभ्रक, चाँदी, सोने के सितारे जड़े रहते हैं। सिर पर नोकदार छतरीनुमा 'कोकदुम्बी' और 'मैखुम' का झोना घूँघट रहता है। सिर, कान, नाक, वक्षःस्थल, कमर, गले, हाथों और बाँहों पर विभिन्न प्रकार के स्वर्णाभूषण होते हैं जो नर्तकियों के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं और दर्शक की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करते हैं। कृष्ण और राधाजी के हाथों, बाँहों व पैरों के आभूषण एक समान होते हैं।

श्रीकृष्ण नीले रेशम की धोती पहने होते हैं जबकि परम्परागत रूप से उन्हें पीले रंग की धोती पहननी चाहिए। इसका कारण यह है कि रास-लीला में श्रीकृष्ण का मुख गोरे रंग का दिखाया जाता है अतः नीले रंग के प्रतीक के रूप में उनकी धोती नीले रंग की होती है। श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के शृङ्गार-प्रसाधन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए एक नियम का भी पालन किया जाता है। उनका शृङ्गार नख से आरम्भ किया जाता है और शिखा तक क्रमशः ले जाया जाता है। कृष्ण के मस्तक पर मोर-मुकुट होता है। शरीर पर कंगन, बाजूबंद और पाँवों में छल्लों के अतिरिक्त वक्षःस्थल पर मणिमाल आदि आभूषण होते हैं। हाथ में फूलों से सजी चाँदी की मुरली रहती है।

प्रत्येक रास के समय केश-विन्यास में भिन्नता रहती है। महारास में नर्तकियों के सिर के मध्यभाग में जूड़ा बनाया जाता है। कुञ्जरास में केश-राशि को सिर के एक ओर करके उसमें गाँठ लगायी जाती है, जबकि वसन्त तथा अन्य रासों में केश पीठ पर रहते, एवं चोटी में बाँधे जाते हैं। नर्तकों की केश-सज्जा में एक उल्लेखनीय बात यह है कि उनमें ताजे फूल भी सजाये जाते हैं।

रास-मण्डल में विभिन्न प्रकार के रास के लिए निर्धारित वेष-भूषा में राधा, कृष्ण एवं गोपियाँ सुसज्जित होकर प्रवेश करती हैं। मण्डप एवं रंगमंच को भी खूब सजाया जाता है। तेल के बड़े दीपक प्रकाश की व्यवस्था हेतु प्रज्वलित किये जाते हैं। नटपाला-कीर्तन संध्या समय से ही रास-नृत्य की भूमिका के रूप में आरम्भ होता है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु और महाराजा जयसिंह (भाग्यचन्द्र) के जीवन-चरित्र-सम्बन्धी पद गाये जाते हैं। अन्त में वृन्दावन-शोभा के पद गाये जाते हैं। नटपाला-कीर्तन-दल अपने सिर पर बँधे साफे उतारकर मण्डप से प्रस्थान करते हैं और मण्डप के केन्द्र में पूजा आरम्भ होती है। मण्डप के उत्तर-पश्चिमी भाग में संगीत-मण्डली अपने वाद्य-यन्त्रों—मृदंग, इसराज, तम्बूरा, बाँसुरी, करताल, झाँझ, शंख आदि के साथ आसन ग्रहण करते हैं। दो महिला गायक और कुछ पुरुष गायक वैष्णव-पदावली गाते हैं, जिसे नर्तक अपनी भाव-भंगिमाओं से अभिनीत करते हैं। एकाकी, द्वैत और सामूहिक गान क्रमशः गाये जाते हैं। दो महिला सूत्रधार पृष्ठ-संगीत के रूप में राधा-विरह के गीत गाती हैं, जबकि कृष्ण-वियोग के गीत (पृष्ठ संगीत के रूप में) पुरुष-दल द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। वहाँ कृष्ण की मूर्ति रहती है। लगभग २२ गोपियाँ रास में भाग लेती हैं, जो नाचती-गाती हैं और संवाद भी बोलती हैं। इनके गीत एकाकी, द्वैत और सामूहिक भी होते हैं। गाते समय भाव भंगिमाओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। भाव-प्रदर्शन की शैली अत्यन्त उत्कृष्ट होती है। प्रत्येक नृत्य का उत्तरदायित्व 'रासधारी' पर होता है जो नृत्य-गुरु, निदेशक और संचालक होता है। वह स्वयं मृदंग-वादक के रूप में नृत्य में भाग लेता है। शृङ्गार-रस ही रास-लीला का प्रमुख रस होता है, जिसके अंगी रस के रूप में अन्य रसों का भी समावेश किया जाता है। नृत्य में नर्तक परेङ् अर्थात् माला बनाते हैं जो कृष्ण की परिक्रमा करती है। मणिपुरी नृत्य में भंगी परेङ्, अचौबा परेङ्, खुरुम्बा परेङ् तथा वृन्दावन परेङ् लास्य-शैली में प्रस्तुत की जाती है, जबकि शेष ताण्डव-शैली में। रास-लीला में एकाकी हस्त एवं संयुक्त हस्त-मुद्राएँ प्रमुख हैं। किन्तु स्वानुगता, अनुगता और गुणका या गमक मुद्राएँ भी प्रदर्शित होती हैं। इस नृत्य में गति, बोल और चाली (पद-संचालन) का बहुत महत्त्व माना जाता है। चार से १२० ताल और लय का ताल-प्रबन्ध रास-नृत्य की विशेषता है। मणिपुर के रास-नृत्य में त्रिताल, रूपक, झपताल, दादरा, कहरवा, ब्रह्मताल, दसकुश आदि प्रमुख हैं। मजीरा और मृदंग ताल एवं गति को नियन्त्रित रखते हैं।

सूर्योदय के साथ राधाकृष्ण के सम्मुख प्रज्वलित आरती के थाल लाये जाते हैं और आरती के साथ ही रास-लीला समाप्त हो जाती है। मन्त्रमुग्ध दर्शक सूर्यास्त से सूर्योदय तक भक्ति-भाव में निमग्न रहते हैं और वे राधाकृष्ण व गोपियों के साथ भाव-तादात्म्य स्थापित करते हैं—एक आध्यात्मिक लोक में निमग्न रहने के पश्चात् भौतिक लोक में लौट आते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि रासलीला मणिपुर की घाटी में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोगों के जीवन का अभिन्न अंग है और प्रत्येक 'मैतै' (मणिपुरी) बालिका की मनोकामना या जीवन-ध्येय होता है कि वह रासलीला में राधा या गोपी की भूमिका निभाये। इससे रासलीला के मणिपुर में प्रचार-प्रसार और लोकप्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

उपर्युक्त छः प्रकार के रास आज प्रचलित हैं किन्तु राजर्षि भाग्यचन्द्र के समय केवल प्रथम तीन रास ही आरम्भ हुए थे। महाराज भाग्यचन्द्र सम्भवतः यह जानते थे कि वे एक गौरवशाली परम्परा की स्थापना कर रहे हैं जो यथावसर परिवर्तित एवं संशोधित होगी। वास्तव में इस नृत्य-परम्परा का निरन्तर परिष्कार एवं संस्कार होता रहा है। प्रो० एन० तोम्बी सिंह ने ठीक ही कहा है कि मणिपुर की बुनाई एवं नृत्य-परम्परा कभी भी स्थिर नहीं रही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी ने अपनी प्रतिभा से इन दोनों कलाओं को सजाया एवं सँवारा है। नट-संकीर्तन एवं रास-नृत्य की परम्परा महाराज भाग्यचन्द्र द्वारा स्थापित की गयी। आगे चलकर महाराजा गम्भीरसिंह के शासनकाल में इसका संस्कार किया गया। इस परम्परा का नरसिंह और चन्द्रकीर्ति महाराज ने भी निर्वाह किया। मणिपुर का रास-नृत्य कृष्ण-भक्ति की मणिपुर को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को एक विलक्षण देन है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का मूर्ति-कला पर प्रभाव

इतिहास साक्षी है कि मणिपुर ने प्राकृतिक एवं मानवीय विपदाएँ झेली हैं, फिर भी उसने अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखा है। मार्च १८६८ ई० में मणिपुर में भयंकर भूकम्प आया जिससे कई मन्दिर ढह गये। इस भूकम्प के अतिरिक्त बाद में भी भूकम्प आते रहे, बाढ़ें आयीं और यहाँ की उन्नत एवं समृद्ध संस्कृति की देन को नष्ट कर गयीं किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। इसी प्रकार बर्मा की सेनाओं ने कई बार मणिपुर पर आक्रमण किया और यहाँ की जनता को निकटवर्ती पड़ोसी राज्यों में जाकर रहना पड़ा। सन् १७५५ ई० से सन् १८२६ ई० के बीच वर्मी सेना ने एक के बाद एक आक्रमण किये तथा मणिपुर की संस्कृति को नष्ट करने का प्रयत्न किया। इसके फलस्वरूप श्रीराधा-गोविन्द की मूर्ति को लेकर यहाँ के राजा कछार चले गये। सात वर्ष के लम्बे समय तक मणिपुर पर बर्मा का शासन रहा और उ ने उस समय मणिपुर की संस्कृति को नष्ट करने का पूरा प्रयास किया। गरीबनिवाज के शासनकाल में ही रामानन्दी सम्प्रदाय के प्रचारक शान्तिदास की प्रेरणा से न केवल प्राचीन ग्रन्थ जलाये गये किन्तु भाषा-साहित्य तथा संगीत के प्रयोग पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया और मूर्तियों को भूमि में गाड़ दिया गया। मणिपुरी संस्कृति ने इस धर्मोन्माद के धक्के को भी सहन किया।

स्पष्ट है कि मणिपुर की मूर्ति-कला ने भी अनेक संकट झेले। आक्रान्ताओं के भी, प्राकृतिक प्रकोप के भी और साथ ही अपने ही राजा के भी। निश्चय ही इन विपत्तियों का मणिपुरी कला पर बुरा प्रभाव पड़ा। परम्परागत कलाकृतियाँ काल-कवलित हो गयीं। फिर भी मणिपुर के मन्दिरों में स्थापित श्रीराधाकृष्ण की काष्ठ एवं प्रस्तर-प्रतिमाएँ यहाँ की मूर्ति-कला पर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

मणिपुर राज्य के पुरातत्त्व-संग्रहालय में मत्स्यावतार एवं गरुड़ की मूर्तियाँ हैं जो लगभग सौ साल पुरानी हैं। मुतुआ-संग्रहालय में नरसिंह, वराह, वामन एवं कृष्ण की मूर्तियाँ संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त बलराम, वृन्दादेवी और गरुड़ की मूर्तियाँ भी वहाँ हैं। ये सब लगभग १०० से २०० वर्ष पुरानी हैं। भगवान् कृष्ण एवं बलराम की एक युगल मूर्ति भी संग्रहीत है।

श्रीगोविन्दजी मन्दिर, श्रीविजयगोविन्दजी मन्दिर एवं श्री गोपीनाथ मन्दिर की मूर्तियाँ तो कैना पर्वत से काटकर लाये गये कटहल-वृक्ष से बनायी गयी हैं। श्रीराधाकृष्ण की युगल-मूर्ति ही मणिपुर के सभी मन्दिरों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में (एक-दो अपवाद छोड़कर) प्रतिष्ठित हैं। इससे श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का प्रभाव मणिपुर की मूर्ति-निर्माण-कला पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का वास्तु-कला पर प्रभाव

वास्तु-कला पर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव-विवेचन से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि विगत शताब्दी के अन्तिम भाग में ही मणिपुर में वास्तु-कला का विकास हुआ। उससे पूर्व वास्तु-कला का सम्बन्ध केवल मन्दिरों से ही था। विष्णुपुर (विशेनपुर) के विष्णु-मन्दिर का निर्माण मणिपुर के राजा कयाम्बा ने सन् १५०७ ई० में किया था। मणिपुर का यह सबसे प्राचीन मन्दिर या भवन है जो ४७९ वर्ष पुराना है। कहा जाता है कि इस मन्दिर के निर्माण में प्रयुक्त ईंटों का निर्माण चीनी युद्ध-बन्दियों ने किया था। मन्दिर का निर्माण ईंटों एवं गारे (मिट्टी) से किया गया है। मन्दिर की बनावट के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। किन्तु परसी ब्राउन ने इस मन्दिर की घोड़ियों युक्त मेहराब के आधार पर इसे बर्मी वास्तु-कला का नमूना बताया है। घोड़ियाँ या ताखा-युक्त मेहराब मीरपुरखास, भीतरगाँव एवं बौद्ध गया में देखी जा सकती हैं। उस समय तक भारत के अन्य प्रदेशों में इस पद्धति का प्रयोग नहीं होता था। बर्मा की मध्यकालीन वास्तु-कला एवं भवनों में इस पद्धति का प्रयोग देखा जा सकता है। पेट्रूक पगोडा पागन (बर्मा) में भी इसी प्रकार की मेहराब हैं। इसलिए इस मन्दिर का निर्माण बर्मी वास्तु-कला-पद्धति पर हुआ होगा। अन्य वास्तु-कलाविज्ञ इस विष्णु-मन्दिर को भारतीय एवं बर्मी पद्धति के मन्दिरों के बीच की कड़ी मानते हैं। विशेष रूप से जावा द्वीप के मन्दिरों, जिन्हें चण्डी कहा जाता है, और विष्णु-मन्दिर में निम्नलिखित समानताएँ पायी जाती हैं :

(क) ईंटों से बनी दो मंजिली इमारत जिसमें एक संकीर्ण ड्योढ़ी या ओसारा रहता है।
(ख) संकीर्ण ड्योढ़ी जिसमें घोड़ियोंवाली मेहराब रहती है।
(ग) खिड़कियों जैसे छिद्र जिनसे हवा आ-जा सके।

मणिपुरी वास्तु-कला का यही प्राचीनतम नमूना है जो समय के प्रहारों को झेलता हुआ आज भी अच्छी स्थिति में है।

भगवान् कृष्ण का मन्दिर

राजा चराईरौङ्बा (सन् १६९७–१७०९ ई०) ने इम्फाल नगर की गुरु अरिबम लैकाई (बस्ती) में भगवान् कृष्ण का मन्दिर बनवाया जिसमें पक्की ईंटों का प्रयोग किया गया है। इस मन्दिर की छत गुम्बदनुमा है जिस पर दो कलश हैं, एक के ऊपर एक। ऊपरवाले कलश पर नीलचक्र लगा हुआ है। इसी प्रकार का नीलचक्र हिमाचल प्रदेश के चम्बा-मन्दिर में भी लगा हुआ है। प्रमुख मन्दिर का हॉल ४ × ४ मीटर है और यह ड्योढ़ी से जुड़ा हुआ है। बंगाल में भी इसी प्रकार के मन्दिर बनाये जाते हैं, जिन्हें झोपड़ीनुमा मन्दिर कहा जाता है। त्रिपुरा के उदयपुर जिले में भी ऐसा मन्दिर बना हुआ है। बंगाल के गौड़ीय वैष्णव धर्म-प्रचारकों के निर्देशन में ही सम्भवतः राजा चराईरौङ्बा ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया होगा।

थाङ्ल जनरल का मन्दिर

राजमहल के उत्तर-पूर्व में सन् १८७९ ई० में इम्फाल नगर में थाङ्ल जनरल ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया था। इस मन्दिर के परिसर में बंगाली झोपड़ीनुमा मन्दिरों के चार प्रतिरूप भी हैं। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

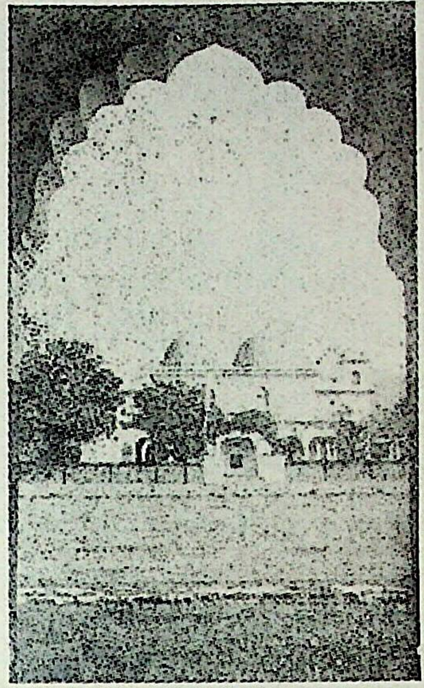

श्री गोविन्दजी-मंदिर : इम्फाल (मणिपुर), पृ० ४१,५०

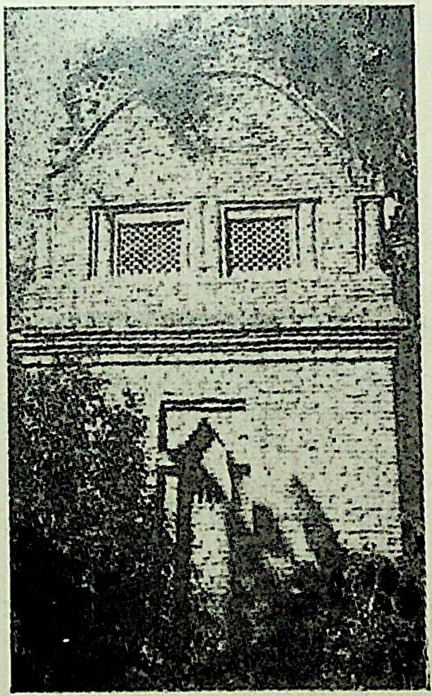

श्री विष्णुमंदिर : विशुनपुर (मणिपुर), पृ० ६५

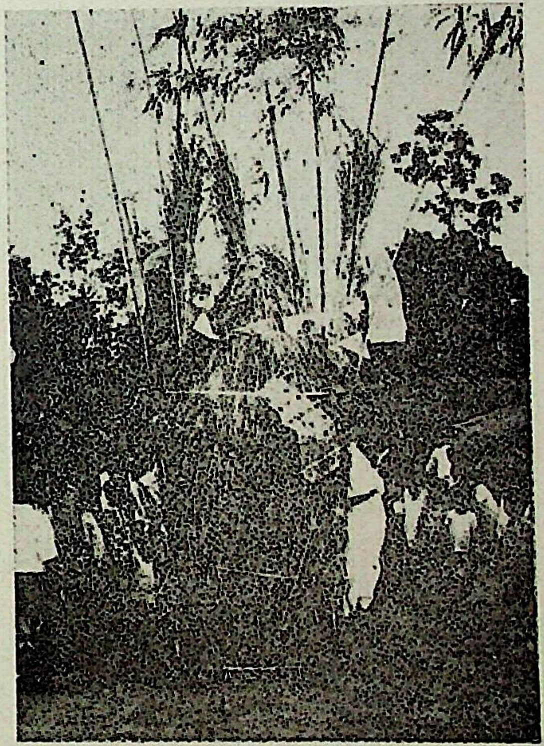

याओसङ् (होली) प्रज्वलित करने हेतु बनाई गई झोंपड़ी पृ० ५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

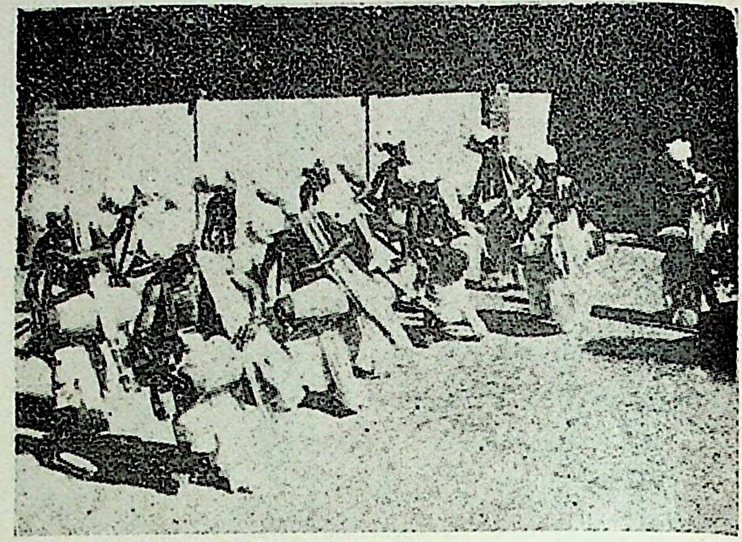

मनोहर शाही कीर्तन का एक दृश्य, पृ० ११,२७

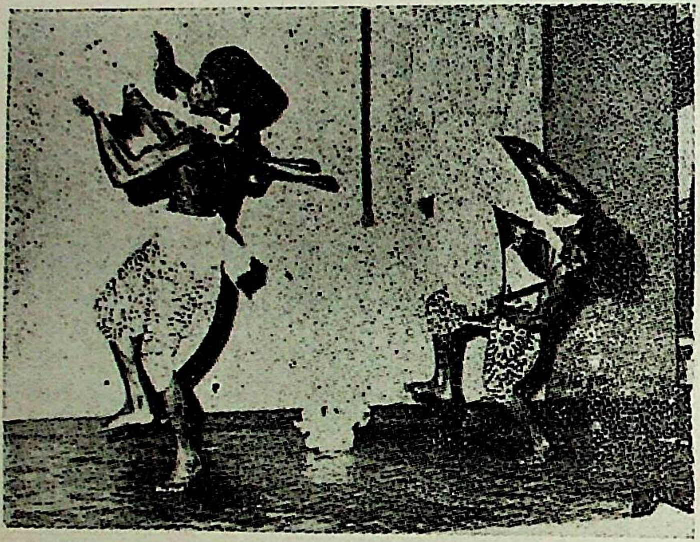

अनोबा पाला संकीर्तन का पूङ्-चोलम-नृत्य : मृदंग-वादक-मृदंग पर करतब दिखाते हुए, पृ० २६

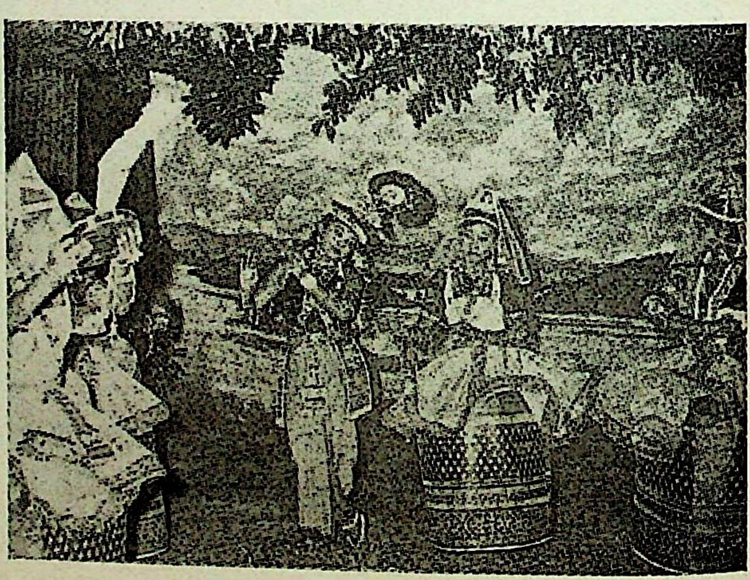

वसन्त रास : श्री विजयगोविन्द जी के मन्दिर के प्राङ्गण में, पृ० ३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुम्बद पर कलश स्थापित किया गया है। इस मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ बना हुआ है।

श्रीगोविन्दजी मन्दिर, काङ्ला

इम्फाल के मध्य भाग में जहाँ इस समय चतुर्थ असम राइफल्स का मुख्यालय है, यह मन्दिर बना हुआ है। इसका निर्माण राजा नरसिंह ने सन् १८४७ ई० में करवाया था, किन्तु मार्च १८६८ ई० के भूकम्प के कारण यह मन्दिर टूट गया था। सन् १८६९ ई० में इसका पुनर्निर्माण करवाया गया। इस मन्दिर में भी श्रीराधा और गोविन्दजी की पूजा की जाती है। इस मन्दिर पर भी गुम्बद बना हुआ है, किन्तु गुम्बद ऊपर से समतल है। मन्दिर के पूर्व भाग में मण्डप बना हुआ है। मन्दिर की लम्बाई ३७.५ मीटर और चौड़ाई ३०.७ मीटर है तथा मण्डप २४.५ मीटर × ७ मीटर है। मन्दिर के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ बना हुआ है।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रभाव का वास्तु-कला की दृष्टि से जो विवरण ऊपर दिया गया है उससे स्पष्ट है कि मणिपुर में इस कला का विशेष विकास नहीं हो सका। इसका कारण यह है कि भूकम्प के भय से यहाँ पर लोग पक्के मकान नहीं बनाते थे। लकड़ी, बाँस, घास-फूस से ही मकान बनाने की परम्परा रही, अतः वास्तु-कला का उत्कर्ष सम्भव नहीं हो सका। यदि यहाँ भी पक्के मकान बनाये जाते तो निश्चय ही यहाँ के प्रतिभावान् कलाकार अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखा सकते थे। इन मन्दिरों में भी उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया ही है।

वास्तु-कला का विकास न होने का एक कारण और था। यहाँ की ईश्वर-भक्त जनता इस निषेध का पालन करती रही कि जब भगवान् का मन्दिर इंटों से बनाया जाता है तो भक्तों के घर इंटों से कैसे बनाये जायँ। विगत शताब्दी के अन्तिम भाग तक इस निषेध का पालन किया जाता रहा है। प्राचीन काल के मन्दिर यदि रहे भी हों तो बर्मी सेना के बार-बार मणिपुर पर आक्रमण करने से नष्ट होते रहे हैं। वास्तविकता यह है कि अन्य मन्दिर विगत शताब्दी तक बाँस व लकड़ी से बनाये जाते रहे, उन्हें बार-बार तोड़ा जाता और फिर से बनाया जाता रहा। बीसवीं शताब्दी में अधिकतर मन्दिरों को नागर शिल्प-पद्धति से बनाया गया है। यों तो मणिपुर के प्रायः प्रत्येक घर में श्री राधाकृष्ण का मन्दिर है और प्रत्येक गली व बस्ती में सामूहिक मन्दिर भी। मणिपुर के प्रसिद्ध एवं प्रमुख श्री राधाकृष्ण-मन्दिरों की सूची नीचे दी जा रही है—

मन्दिर का नाम/स्थान	बनवानेवाले का नाम	प्रथम बार बनवाने का समय
१. श्रीकृष्ण-मन्दिर, ब्रह्मपुर गुरु अरिबम लैकाइ, इम्फाल	राजा चराईरौङ्बा (१६९७–१७०९ ई०)	१८वीं शताब्दी
२. श्रीकृष्ण-मन्दिर, ब्रह्मपुर नहाबम लैकाइ, इम्फाल	अज्ञात	१८वीं शताब्दी
३. श्रीगोविन्दजी-मन्दिर, काङ्ला, इम्फाल	श्री चन्द्रकीर्ति	१९वीं शताब्दी
४. श्री श्रीगोविन्दजी-मन्दिर, राजबाड़ी, इम्फाल	सर चूराचाँद सिंह	२०वीं शताब्दी
५. श्रीविजय गोविन्द-मन्दिर सगोलबन्द, इम्फाल	मन्त्री अनन्तशाह	१८वीं शताब्दी
६. श्रीगोपालजी-मन्दिर सगोलबन्द, शापम लैकाइ, इम्फाल	मन्त्री अनन्तशाह	१८वीं शताब्दी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. श्रीमदनमोहन-मन्दिर कोङ्बा, इम्फाल	महाराज भाग्यचन्द्र	१८वीं शताब्दी
८. श्री निताईनन्द माधव आर० एम० सी० रोड, इम्फाल	महाराज भाग्यचन्द्र	१८वीं शताब्दी
९. थाङ्ल जनरल का मन्दिर, वाङ्खे, इम्फाल	थाङ्ल जनरल	१८७९ ई०
१०. श्रीवृन्दावनचन्द्र का मन्दिर, काङ्ला, इम्फाल	युवराज वीर टिकेन्द्रजीत	१९वीं शताब्दी
११. श्रीराधारमन-मन्दिर, काञ्चीपुर, इम्फाल	सर चूराचाँद सिंह	१९वीं शताब्दी
१२. गोपीनाथ-मन्दिर, निङ थौखोङ	महाराज भाग्यचन्द्र	१८वीं शताब्दी
१३. श्रीअद्वैत-मन्दिर, लमांदोङ (विष्णुपुर)	महाराज भाग्यचन्द्र	१८वीं शताब्दी
१४. काइना-मन्दिर (श्रीराधाकृष्ण), काइना	महाराज भाग्यचन्द्र	१८वीं शताब्दी
१५. श्रीवृन्दावनचन्द्र का मन्दिर, झांखै लैकाइ, इम्फाल	महाराज गरीबनिवाज	१७२६ ई०

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का नाट्य-कला पर प्रभाव

यह कहा जा चुका है कि मणिपुर में नृत्य एवं संगीत-परम्परा का जन्म सृष्टि-काल से हुआ और यहाँ का लाइ-हराओबा नृत्य देवताओं के द्वारा किया गया नृत्य माना जाता है। नाटक लाइहराओबा का ही एक अभिन्न अंग है। अतः मणिपुर की नाट्य-कला की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ से मानी जाती है। नाटच-कला मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम रही है। प्रारम्भिक नाटच-परम्परा में महाराजा भाग्यचन्द्र एवं गम्भीरसिंह के शासन-काल में एक नवीन मोड़ आया। महाराजा भाग्यचन्द्र अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में असम के राजाराजेश्वर राव स्वर्गदेव के यहाँ आठ वर्ष तक अतिथि रहे थे। उन दिनों असम में महापुरुष शंकरदेव (सन् १४४९ से १५६८ ई०) तथा माधवदेव (सन् १४८९ से १५९६ ई०) के द्वारा स्थापित सत्रों के कीर्तन-घर (नामधरों) में अंकिया नाटक तथा झूमरा नाटक खेले जाते थे। इन नाटकों की विषयवस्तु मुख्य रूप से श्री राधाकृष्ण की लीलाओं पर आधारित होती थी। अतः असम से लौटने के उपरान्त महाराज भाग्यचन्द्र ने, श्रीराधाकृष्ण-भक्त होने के कारण, मणिपुर की नाटच-परम्परा की विषयवस्तु में परिवर्तन किया। श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं पर आधारित नाटकों का मंचन आरम्भ हुआ। सन्ध्या-लीला एवं कालिय-दमन, नौका-लीला, द्रौपदी-वस्त्र-हरण, चित्रापद, उलूखल-बन्धन आदि नाटकों का मंचन किया गया। श्रीगौरांग चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों द्वारा चलायी गयी 'जात्रावली नाट्य-परम्परा' का भी मणिपुरी नाट्य-कला पर प्रभाव पड़ा।

असम एवं बंगाल की नाट्य-परम्परा के प्रभाव के परिणामस्वरूप मणिपुरी नाट्य जिन्हें 'शूमांलीला' अथवा 'जात्रावली' कहा जाता है श्रीराधाकृष्ण-चरित्र पर मुख्य रूप से आधारित हैं। मध्यकालीन नाटकों की कथावस्तु श्रीमद्भागवत एवं अन्य वैष्णव-ग्रन्थों से ली गयी है, अतः मध्यकालीन मणिपुरी नाटक श्रीराधाकृष्ण की भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। राजप्रासाद से लेकर घर-घर के प्रांगण (शुमां) में इन नाटकों का प्रदर्शन होता रहा है। आधुनिक मणिपुरी नाटकों में यद्यपि ऐतिहासिक, सामाजिक आदि विषय भी सम्मिलित कर लिये गये हैं फिर भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना से पूर्ण नाटकों की लोकप्रियता कम नहीं हुई है। आज भी मणिपुर के प्रेक्षागृहों में तथा शूमांलीला-मण्डलियों द्वारा लोक-मंच पर दिखाये जानेवाले नाटकों में श्रीराधाकृष्ण के जीवन की घटनाओं पर आधारित नाटक अभिनीत किये जाते हैं, जिन्हें देखने के लिए अपार जनसमूह उमड़ पड़ता है। राधाष्टमी, जन्माष्टमी आदि विशिष्ट अवसरों पर इन धार्मिक नाटकों का मंचन किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का चित्रकला पर प्रभाव

चित्रकला मणिपुर में विशेष उन्नत नहीं हो सकी। इसके दो कारण बताये जाते हैं, प्रथम तो मणिपुर वर्षों तक बर्मा से युद्ध करता रहा था अतः चित्रकला का विकास नहीं हुआ और दूसरा कारण यह माना जाता है कि यहाँ के चित्रकारों में एक अन्धविश्वास प्रचलित है कि यदि उनके चित्र में किसी तरह की भूल या कमी रह गयी तो उनके अपंग या दोषयुक्त सन्तान जन्म लेगी। कुछ अंग्रेज अफसरों ने मणिपुर के सम्बन्ध में जो पुस्तकें लिखी हैं उनमें स्पष्ट लिखा है कि मणिपुरी लोगों को रंगों के प्रति गहरी रुचि है, किन्तु उन्हें ड्राइंग या पेंटिंग की कोई जानकारी नहीं है।

वास्तविकता इससे भिन्न है। मणिपुरी जन्मजात कलाकार होते हैं। मणिपुर-निवासियों को ईश्वर की यह अनुपम देन है। इतिहास में प्रमाण मिलते हैं कि प्रत्येक राजा के पास एक चित्रकार होता था जो उसके लिए पाखंबा नामक देवता का चित्र बनाता था, जिसकी राजा द्वारा पूजा की जाती थी। यही नहीं, मणिपुरी लोकगाथा 'खम्बाथोइबी' से सम्बद्ध तथा अन्य लोकगाथाओं तथा पौराणिक कथाओं पर आधारित छोटे और बहुत बड़े (६ फुट × ६ फुट तक के) चित्र यहाँ बनाये जाते रहे हैं और आज भी बनाये जाते हैं। बिना परम्परा के कला का उत्कृष्टरूप सम्भव नहीं है। आज भी यहाँ की चित्रकला उन्नत है और मृत या जीवित व्यक्तियों के चित्र यहाँ से बनवाकर लोग देश के विभिन्न भागों में ले जाते हैं। निश्चय ही यह उत्कृष्ट चित्रकला एक सुदीर्घ परम्परा की देन है। कुछ राजाओं के आदमकद चित्र भी इस बात के प्रमाण हैं।

महाराज भाग्यचन्द्र जब असम में थे तो उन्हें स्वप्न में भगवान् ने दर्शन दिया था। उन्होंने स्वप्न में देखे रूप का वर्णन अपने कलाकार वाखें पण्डित गोपीराम पचाहानबा से किया। उसने वर्णन के आधार पर श्री गोविन्दजी का चित्र बना दिया था। महाराजा चन्द्रकीर्ति ने तो कारीगर लोइसं (विभाग) की स्थापना कर दी थी, जिसका कार्य ही चित्रकारी करना, मूर्तियाँ बनाना आदि था।

मणिपुर में चैतन्य महाप्रभु के सुन्दर व्यक्तित्व के अनेक चित्र बनाये गये हैं और उनके संकीर्तन-दृश्य भी चित्रित किये गये हैं। मणिपुर में महाराजा गम्भीरसिंह के शासन-काल से रथयात्रा और पुनर्यात्रा का त्योहार मनाया जाता है। रथयात्रा के रथ को चारों ओर से बड़े-बड़े चित्रों से सजाया जाता है। प्रतिवर्ष रथ को सुसज्जित करने हेतु चित्रकार श्रीराधाकृष्ण के जीवन की घटनाओं पर आधारित बड़े-बड़े चित्र बनाते हैं।

इम्फाल शहर में 'चैराप' एवं पंचाइ न्यायालय-भवन महाराजा चूड़ाचाँद सिंह के शासन-काल में सन् १९०५ ई० मे बनवाये गये थे। आज उन्हीं भवनों में सत्र-न्यायालय एवं कार्यालय हैं। इन दो भवनों की दीवारों पर ५३ भित्ति-चित्र बने हैं। इनके सम्बन्ध में यहाँ के विद्वानों का विचार है कि इन भित्ति-चित्रों को छोड़कर उत्तर-पूर्वी भारत में कहीं भी भित्ति-चित्र प्राप्त नहीं हैं। इन चित्रों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक महत्त्व है। ये भित्ति-चित्र धार्मिक एवं नैतिक भावों के आधार पर बनाये गये हैं। ये चित्र महाराज चूड़ाचाँद सिंह के दरबारी चित्रकार भद्र (सन् १८६१ से १९२७ ई०) ने बनाये हैं। उत्तर-पूर्वाञ्चल में भद्र के चित्रों से पुराने चित्र उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए ये ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। इतनी बड़ी संख्या और आकार में बड़े चित्र अन्यत्र दुर्लभ हैं। 'भद्र' ने मणिपुर के कलात्मक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवन को इन चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। मणिपुर की लोकप्रिय पौराणिक गाथाओं को भी चित्रकार ने रंगों एवं रेखाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में अभिव्यक्त किया है। इन भित्ति-चित्रों पर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मीनाववतार, पूतना-वध, मथुरा-गमन तथा राधाकृष्ण-मिलन के चित्र श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के मणिपुरी चित्रकला पर प्रभाव के प्रमाण हैं।

उपलब्ध चित्रों को देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि मणिपुरी चित्रकारों को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना ने प्रभावित किया है। कलाकार तो अपने परिवेश का चितेरा होता है। वह कला के माध्यम से अपने परिवेश की अभिव्यक्ति करता है। मणिपुर के राधा-गोविन्दमय जीवन की झाँकी यहाँ की चित्रकला में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। श्रीराधाकृष्ण से सम्बद्ध अनेक चित्रों के अतिरिक्त द्रौपदी-चीर-हरण आदि के चित्र भी उपलब्ध हैं। भगवान् कृष्ण की विभिन्न लीलाओं—माखन-चोरी, गोचारण, रास-नृत्य, गोप-नृत्य, उलूखल-बन्धन, कालिय-दमन, कंस-वध, हाथी के सम्मुख भगवान् कृष्ण, अक्रूर के साथ कृष्ण का मथुरा-गमन आदि प्रसंगों पर अनेक चित्र बनाये जाते रहे हैं। मणिपुर का भक्ति-भावना से परिपूर्ण जीवन भी इन चित्रों में अंकित है। रथयात्रा के चित्र, जिसमें रथ खींचते हुए भक्तजन, संकीर्तन-दल, श्राद्ध आदि के समय के कीर्तन के चित्र, मणिपुर के नर-नारी एक ही वेष-भूषा में धार्मिक कृत्यों का पालन करते हुए, सामूहिक भोज आदि ऐसे चित्र हैं जिन पर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का शिक्षा पर प्रभाव

मणिपुर में प्राचीनकाल में शिक्षा मूल रूप से सैनिक-प्रशिक्षण, शारीरिक व्यायाम, घुड़सवारी एवं विभिन्न हथियारों के संचालन तक सीमित थी। लिखने-पढ़ने का कार्य माइबा-माइबी की देखरेख में किया जाता था। उस समय की पाठशाला को माइबा सङलेन कहा जाता था और उसमें सागई (वंश), इतिहास, जादू तथा उमंलाई की पूजा-अनुष्ठान का विज्ञान सिखाया जाता था।

गरीबनिवाज महाराजा के शासन-काल से वैष्णव-धर्म की शिक्षा की परम्परा आरम्भ हुई। इस शिक्षा-पद्धति का आधार वैष्णव-धर्म-ग्रन्थ हुआ करते थे। यह परवर्ती शिक्षा-पद्धति पूर्व प्रचलित शिक्षा-पद्धति से भिन्न थी। 'लोइसङ' नामक राज्य द्वारा संचालित संस्था, गाँवों में बने मण्डप तथा अध्यापक के घर शिक्षा-केन्द्र थे। शिक्षा-पद्धति अनौपचारिक थी तथा अध्यापन-व्यवसाय वंशानुक्रम से चलता था। 'गुरु बोरिबा' या गुरु-अभिषेक के दिन गुरुजी को शिष्य के माता-पिता वस्त्र एवं धन अर्पित करते थे। पाठ्यक्रम में संस्कृत व्याकरण, स्मृति, काव्य, वेद एवं चैतन्य-सम्प्रदाय के ग्रन्थों का अध्ययन सम्मिलित था। शिष्य को गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। कथा-प्रवचन, संगीत एवं चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा भी दी जाती थी। यह पाठ्यक्रम ५ से १० वर्ष तक का होता था। वैष्णव-सिद्धान्तों के प्रचार के लिए गुरुओं के मणिपुर से कछार, होजाई (असम) त्रिपुरा और बर्मा तक जाने के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। साथ ही वैष्णव-धर्म एवं गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रचारकों का भारत के अन्य भागों से मणिपुर आने के भी प्रमाण सुरक्षित हैं। राजा-महाराजाओं के द्वारा विद्वानों को विभिन्न उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं। यहाँ से जिज्ञासु नवद्वीप और वृन्दावन वैष्णव-पदावली संग्रह करने तथा वैष्णव-संगीत की शिक्षा लेने जाते थे। चन्द्रकीर्ति महाराज ने बेनीमाधव शर्मा को वेदों एवं पुराणों के अध्ययन हेतु काशी भेजा था। महाराजा भाग्यचन्द्र, गम्भीरसिंह, चौरजीत, मारजीत तथा चन्द्रकीर्ति ने संस्कृत एवं बंगला के अध्ययन को संरक्षण प्रदान किया। संगीत, नृत्य आदि की शिक्षा के लिए विभिन्न राजकीय विभाग स्थापित किये गये थे।

संस्कृत एवं बंगाली भाषा के ग्रन्थों का मणिपुरी भाषा में अनुवाद भी किया गया। सुन्दर हस्तलेखवाले शिक्षित लोगों को राज्य की ओर से वैष्णव एवं गौड़ीय सम्प्रदाय के ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के लिए नियुक्त किया गया। 'मैतैंचे' या मणिपुरी कागज, तालपत्र एवं अगरपत्र पर बाँस की कलम से दीपक की कालिख से बनी स्याही द्वारा लेखन-कार्य किया जाता था।

इस धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार का कारण था, श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना। लोग मन्दिरों में एकत्र होकर संस्कृत एवं बंगाली भाषा के धार्मिक गान-भजन सुनते थे, साथ ही उनका भाष्य भी। २०वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार तक शिक्षा का सम्बन्ध श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-ग्रन्थों, चिकित्सा (आयुर्वेद) शास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्र तक ही सीमित रहा। सन् १८२७ ई० में मणिपुर में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति आरम्भ की गयी थी, किन्तु प्रारम्भ में विशेष लोकप्रिय नहीं हुई, क्योंकि लोग इसे म्लेच्छ भाषा समझते थे तथा अंग्रेजी पढ़ने का अर्थ स्वधर्म की हानि मानते थे।

आज २१वीं शताब्दी के द्वार पर पहुँचकर भी मणिपुर में संस्कृत टोल चलाये जा रहे हैं और अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के उपरान्त भी लोग अपने बच्चों को इन संस्कृत पाठशालाओं में भेजते हैं, जहाँ वे संस्कृत के साथ धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर सकें। इन संस्कृत पाठशालाओं का समय आधुनिक स्कूल-कॉलेज के समय से भिन्न रहता है और धर्म-परायण लोग प्रातः-सायं अपने बच्चों को इनमें भी भेजते हैं। यह भी राधाकृष्ण-भक्ति का ही प्रभाव है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का पर्व-त्योहार-परम्परा पर प्रभाव

मणिपुर के पर्व-त्योहारों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) स्थानीय त्योहार, (२) पौराणिक पर्व-त्योहार एवं (३) श्रीराधाकृष्ण से सम्बद्ध त्योहार। स्थानीय त्योहारों में चैराओबा (नववर्ष का त्योहार), लाइहराओबा (देवताओं को प्रसन्न करने का त्योहार), मेरा हौचोङबा (पर्वतीय एवं घाटी के लोगों का त्योहार), निङोन चाक्कौबा (भैयादूज), हियाङ तान्नबा (नौका-दौड़) प्रमुख त्योहार हैं, जबकि पौराणिक त्योहारों में रामनवमी, अक्षय तृतीया, रक्षाबन्धन, गणेश-पूजन, वामन-जन्म, विश्वकर्मा-पूजा, दुर्गा-पूजा, दशहरा, दीवाली, तुलसी-पूजन, सरस्वती-पूजन, शिवरात्रि, चिङगोई इरुप्पा (वारुणी) या भगवान् शंकर की पूजा प्रमुख हैं। श्रीराधाकृष्ण से सम्बद्ध त्योहारों में जलकेली, काङ चिङबा और बाङ्लेन (रथयात्रा और पुनर्यात्रा), हरि-शयन एवं हरि-उत्थान, झूलन, कृष्ण जन्माष्टमी, ठौरानी-जन्म या राधाष्टमी, गोवर्धन-पूजा, मेरा वायुंबा और वाफूकपा, याओसङ (होली) तथा हलंकार प्रमुख त्योहार हैं। सुविधा की दृष्टि से मणिपुर के पर्व-त्योहारों को इन तीन भागों में विभाजित किया गया है, किन्तु वास्तविकता यह है कि स्थानीय त्योहारों के मूल रूप को तथा पौराणिक त्योहारों के मूल रूप को भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना ने प्रभावित किया है। साथ ही स्थानीय त्योहार-परम्परा का प्रभाव श्रीराधा-कृष्ण से सम्बद्ध त्योहारों पर भी पड़ा है। आगे के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा। मणिपुरी संस्कृति की विशेषता यही है कि उसने एक ओर जहाँ वेद-पुराण-परम्परा से कुछ लिया है तो दूसरी ओर कुछ अपना भी दिया है। वर्तमान संस्कृति व त्योहार-परम्परा का रूप इसी आदान-प्रदान-प्रक्रिया की देन है।

हियाङ तान्नबा या हैक्रु हिदोङबा (नौका-दौड़)

हियाङ (हि=नाव, याङ=तेज) तान्नबा (दौड़) वास्तव में नौका-दौड़ है। इसीको हैक्रु (आँवला की माला पहनकर) हिदोङबा (या नाविक-दल) भी कहा जाता है, क्योंकि नौका-दौड़ के समय नाविक-दल गले में आँवले की माला पहनता है। इस त्योहार की परम्परा ईसा सन् के हजारों वर्ष पूर्व से बतायी जाती है। किन्तु इस त्योहार पर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का प्रभाव सन् १७६१ ई० से पड़ा होगा। क्योंकि यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्योहार तब से श्री विजयगोविन्द के मन्दिर की परिखा में आयोजित किया जाता है। यह त्योहार कार्तिक शुक्ला एकादशी के दिन आयोजित किया जाता है। श्री विजयगोविन्द मन्दिर के पुजारी अनन्तशाह द्वारा सन् १७६१ ई० में इस त्योहार को मनाने का उल्लेख है। महाराजा गरीबनिवाज के शासन-काल में एक नाव पर महाराजा और एक पर भगवान् विष्णु की मूर्ति रखी जाती थी। किन्तु महाराजा भाग्यचन्द्र के समय से बड़ी नौका में श्रीविजयगोविन्दजी एवं रासेश्वरी राधा की मूर्तियाँ रखी जाती हैं। दूसरी नौका में नाविक-दल होता है। इन दोनों नौकाओं की दो बार प्रतियोगितापूर्ण दौड़ होती है। इस त्योहार की प्राचीन परम्परा जो भी रही हो, किन्तु आजकल इसका सम्बन्ध श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से है। इस प्रकार यह स्थानीय त्योहार होते हुए भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से जुड़ गया है।

चैराओबा : मणिपुर का नव वर्ष

चैराओबा का शाब्दिक अर्थ है—'चै' अर्थात् छड़ी और राओबा (शुद्ध लाओबा) अर्थात् चिल्लाना। अतः लकड़ी के साथ चिल्लाना, उसका शाब्दिक अर्थ हुआ। किन्तु कुछ विद्वान् 'चै' में 'राओबा' शब्द को 'लौबा' शब्द का विकृत रूप मानकर इसका अर्थ छड़ी लेना भी करते हैं, और वे चैराओबा को ही 'चैलौबा' कहते हैं। किन्तु इसीका एक तीसरा नाम भी प्रचलित है—चैहौबा, जिसके अनुसार चै शब्द का मूल चही अर्थात् वर्ष हौबा अर्थात् प्रारम्भ माना जाता है। इसके अनुसार वर्ष का प्रारम्भ अर्थ हुआ। चौथा मत है, जिसके अनुसार चीरौबा कहा जाता है और 'ची' (जनजातीय शब्द-अर्थ नमक) हौबा (शुद्ध लौबा या लेना) के अनुसार राजाओं के द्वारा प्रथम बार नमक लेना अर्थ भी लिया जाता है। इस प्रकार चैराओबा शब्द के लिए चार शब्द मणिपुरी भाषा में प्रचलित हैं और इनमें से प्रत्येक का भिन्न अर्थ है।

चैराओबा मनाने का दिन

इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ जो भी रहा हो, है चैराओबा नव वर्ष का त्योहार, जो साधारणतः सजिबू या चैत्र मास के प्रथम दिन मनाया जाता है। प्राचीन काल में राजा इस त्योहार को वर्ष की समाप्ति के दिन मनाता था, जिससे प्रजा को वर्ष की समाप्ति की सूचना प्राप्त हो सके। किन्तु मीतै (मणिपुरी) धर्म के समर्थक राजा द्वारा एक नये व्यक्ति को विशेष काम सौंपने के दिन को लोग चैथाबा के नाम से जानते थे। जिस दिन से नये वर्ष के साथ नये काम की घोषणा की जाती थी, वही दिन चैराओबा कहलाता था।

तीन बार

प्राचीन मैते-धर्म के परम्परानुसार चैत्र मास की प्रथम तिथि को जिसको मणिपुरी पंचांग के अनुसार सजिबू की प्रथम तिथि माना जाता है, को चैराओबा मनाया जाता है।

किन्तु वैष्णव-धर्म की मान्यता एवं गौड़ीय धर्म के प्रभाव के परिणामस्वरूप यह त्योहार बंगला पंचांग के आधार पर बंगाल की चरक-पूजा के दिन मनाते हैं।

मणिपुर के नये पंचांग जिसे 'मीतै थापालोन' कहते हैं, के अनुसार वाकचीङ अर्थात् पौष मास के प्रथम दिन यह त्योहार मनाया जाता है।

कुछ लोग जनवरी के प्रथम दिन व दिसम्बर की आखिरी रात को भी चैराओबा मनाते हैं। इस प्रकार मणिपुर के जन-जीवन में चैराओबा के मनानें के दिनों में अन्तर हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम्परा

प्राचीनकाल में नये वर्ष की सूचना देने के लिए एक लम्बे बाँस पर झण्डा और घण्टियाँ बाँधी जाती थीं और चैथाबा (घोषणा करनेवाले का पदविशेष) इस बाँस को लेकर गली-गली घूमता था और घण्टियाँ बजाकर वर्ष की समाप्ति या नव वर्ष के आगमन की सूचना चिल्लाकर देता था। प्राचीन काल में यह त्योहार वर्ष के अन्तिम दिन मनाया जाता था। इस पर्व के शक संवत् १४०७ से मनाने का उल्लेख चैथरोल कुमबाबा नामक मणिपुरी राजवंश के इतिहास की हस्तलिखित पुस्तक में पाया जाता है। किन्तु कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ईसा से बहुत पूर्व से चैराओबा मनाया जाता रहा है। इसका आधार मणिपुर के प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिन्हें पुया कहा जाता है।

राजा कयाम्बा (शासन-काल १४६७–१५०८ ई०) के समय में इस त्योहार के मनाने के दिन में परिवर्तन हुआ। वर्ष के अन्तिन दिन के बजाय, इनके समय से, नव-वर्ष के प्रथम दिन से यह उत्सव मनाया जाने लगा। यह भी कहा जाता है कि कयाम्बा के समय से पूर्व जंगल से बाँस लाकर जमीन में गाड़ा जाता था और फिर उसके चारों ओर लोग एकत्र होकर चिल्ला-चिल्लाकर यह त्योहार मनाते थे। किन्तु बाद में उस बाँस को लेकर घूमने व चिल्लाने की परम्परा आरम्भ हो गयी। नव-वर्ष की सूचना देने का काम एक व्यक्ति को सौंपा गया—जिसको 'चैथाबा' अर्थात् लकड़ी पकड़नेवाला कहा जाने लगा।

मनाने की विधि

राजाओं के शासन-काल से नव-वर्ष के दिन प्रातःकाल लोग नहा-धोकर, स्वच्छ वस्त्र धारण करके तिलक लगाकर श्रीगोविन्दजी मन्दिर में जाने लगे। गोविन्दजी की पूजा, आरती व प्रणाम करने के बाद जहाँ मण्डप में राजा अपने सामन्तों, मन्त्रियों एवं जनता के बीच बैठता है वहाँ राज-पण्डित नव-वर्ष के लिए गृह-राज एवं गृह-मन्त्री की घोषणा करता है, उसके साथ ही नव-वर्ष हेतु भविष्यवाणी भी।

उसके बाद पुराने वर्ष का चैथाबा नव-वर्ष के चैथाबा को अपनी छड़ी देकर कार्य-भार सौंपता है। इस समय दोनों चैथाबा आगामी वर्ष के लिए राजा व प्रजा की भलाई के लिए प्रार्थना तथा भविष्यवाणी करते हैं।

प्रातःकाल ही प्राचीन धर्म के पुजारी, जिन्हें 'मायबा-मायबी' कहते हैं, सभी दिशाओं में देवी-देवताओं एवं प्रेतात्माओं के लिए भोजन रख देते हैं तथा उनसे राजा व प्रजा के मंगल का वरदान माँगते हैं। इसको 'सरोइ-खाङबा' कहते हैं। वर्ष के अन्तिम दिन की रात को राज्य-वैद्य एवं उसके लोग हैबोकचीङ पर्वत पर जाकर देवताओं को तृण अर्पित करते हैं और उनसे राजा-रानी, सामन्तों आदि की भलाई के लिए प्रार्थना करते हैं। मणिपुर के प्राचीन देवता लाईनिङथौ पाखङबा को भी नये वस्त्र भेंट करने की परम्परा है। लाईनिङथौ नौसबा, सुमजाओ लाइरेम्मा देवी, लाईनिङथौ सनामही देवता तथा अन्य देवी-देवताओं को नये वस्त्र एवं छत्र चढ़ाये जाते हैं। जल में ङमु नामक मछली छोड़कर महाराजा के मंगल की कामना की जाती है।

चैराओबा के छः दिन पूर्व से घरों की सफाई की जाती है, नये वस्त्र, बर्तन आदि भी क्रय किये जाते हैं। लोग अपने-अपने मन्दिरों में चैराओबा के दिन प्रातःकाल पूजा-पाठ करते हैं, नयी सब्जियाँ अर्पित की जाती हैं, नव-वर्ष के लिए वर माँगे जाते हैं, परिवार के गुरुजनों को प्रणाम किया जाता है, स्वर्गस्थ देवी-देवताओं को प्रणाम किया जाता है तथा नव-वर्ष हेतु मंगल वरदान माँगे जाते हैं। लोहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बने चूल्हे (योस्सबी) से कालिख लेकर उसको हल्दी व चावल के साथ मिलाकर घर के चारों ओर फेंककर प्रेतात्माओं को भगाया जाता है। भोजन बनाकर लाईचाकथाबा अर्थात् देवताओं को भोजन देने के लिए घर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर पका हुआ भोजन रखा जाता है, प्रार्थनाएँ की जाती हैं तथा आशीर्वाद माँगा जाता है। तब सामूहिक भोज होता है। भोज के उपरान्त गुरुजनों को प्रणाम किया जाता है तथा उन्हें वस्त्र एवं नकद रुपये भेट में दिये जाते हैं।

चैराओबा के एक दिन पूर्व बाजार से सब्जियाँ खरीदी जाती हैं अतः उस दिन के बाजार को चैराओ कैथेल अर्थात् चैराओ का बाजार कहा जाता है।

सन्ध्या समय भोजन करने के बाद चैराओचीङ नामक पहाड़ पर सभी लोग चढ़ते हैं। चैराओचीङ इम्फाल में है, अतः दूसरी बस्तियों के लोग अपने-अपने पास के पर्वतों पर चढ़ते हैं और वहाँ शिवजी, दुर्गा, गणेश आदि के साथ अपने आदिम स्थानीय देवता की पूजा करते हैं। पर्वत से उतरकर आने के पश्चात् रात में थाबल चोङ्बा अर्थात् चाँदनी रात का नृत्य किया जाता है, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष भाग लेते हैं।

इस प्रकार नव-वर्ष का आरम्भ बहुत ही धूमधाम से किया जाता है। चैराओबा के बाद पाँच दिन तक विभिन्न खेल जैसे काङसान्नबा, युवी लाकपी, सगोल काङ, जै आदि खेले जाते थे, जिन्हें 'सिल्हेनबा' कहा जाता था, किन्तु अब 'सिल्हेनबा' केवल एक दिन के लिए होता है।

यद्यपि चैराओबा मणिपुर का प्राचीन एवं परम्परागत स्थानीय त्योहार है, किन्तु इस पर भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का प्रभाव स्पष्ट है और श्रीगोविन्दजी मन्दिर में पूजा-आरती भी इससे जुड़ गयी है। चैथाबा की नियुक्ति भी श्रीगोविन्दजी मन्दिर में ही की जाती है।

जलकेली

मणिपुर का जलकेली-त्योहार राधाकृष्ण की भक्ति-भावना पर आधारित त्योहार है। श्रीकृष्ण भगवान् ने श्रीमती राधा के साथ यमुना नदी (धीर समीर) में जल-क्रीड़ा की थी। श्रीराधाकृष्ण की इसी लीला को आधार मानकर मणिपुर में श्रीगोविन्द-मन्दिर एवं अन्य मन्दिरों में जलकेली-लीला का आयोजन किया जाता है। ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन लोग व्रत रखते हैं और मन्दिरों में जाकर जलकेली की लीला देखते हैं।

जलकेली-लीला के दिन मन्दिरों में संकीर्तन आयोजित किये जाते हैं जिनमें जलकेली-लीला से सम्बद्ध पद (धार्मिक ग्रन्थों से) गाये जाते हैं जो संस्कृत, ब्रजबुली एवं बंगला भाषा में होते हैं। श्रीराधा के अभिसार और संयोग-शृङ्गारप्रधान गीत जलकेली-संकीर्तन में गाये जाते हैं। श्रीराधाकृष्ण की पूजा-अर्चना भी की जाती है।

कार्तिक पूर्णिमा (सन् १८४५ ई०) के दिन महाराजा नरसिंह ने राधाकृष्ण-यात्रा के आधार पर मणिपुर में जलकेली का प्रथम बार आयोजन किया था, तब से यहाँ प्रतिवर्ष जलकेली का त्योहार मनाया जा रहा है। जलकेली-त्योहार को महाराजा नरसिंह ने स्थानीय रंग दिया था, अतः यह शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

रथयात्रा और पुनर्यात्रा

मणिपुर में श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का सन् १६९७ ई० से व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। तब से श्रीराधाकृष्ण से सम्बद्ध विभिन्न पर्व-त्योहार एवं उत्सव यहाँ मनाये जाने लगे। किन्तु कुछ त्योहारों और पर्वों की परम्परा बहुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रथ-यात्रा का त्योहार :
सड़क पर रथ के सम्मुख एक स्त्री नृत्य-मुद्रा में
तथा कक्ष-संकीर्तन करते हुए भक्त वृन्द, पृ० ४.

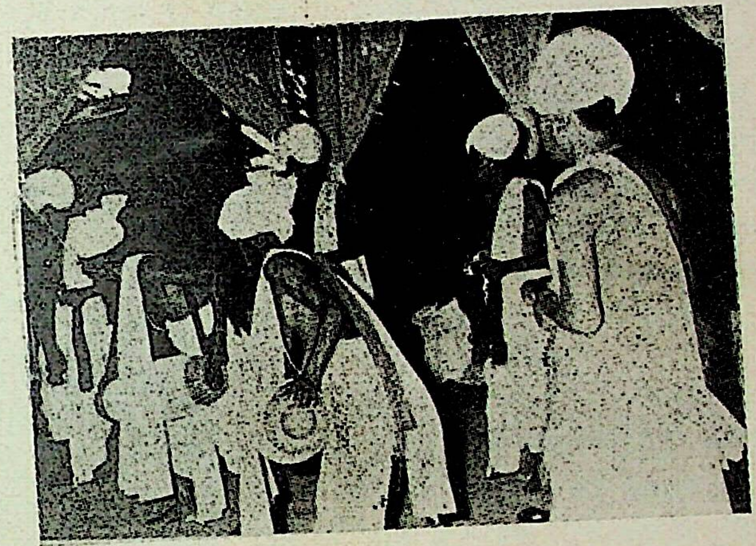

संकीर्तन-मंडप में पाला-अरिबा के 'पूङचोलम्' नृत्य
का दृश्य, पृ० २५

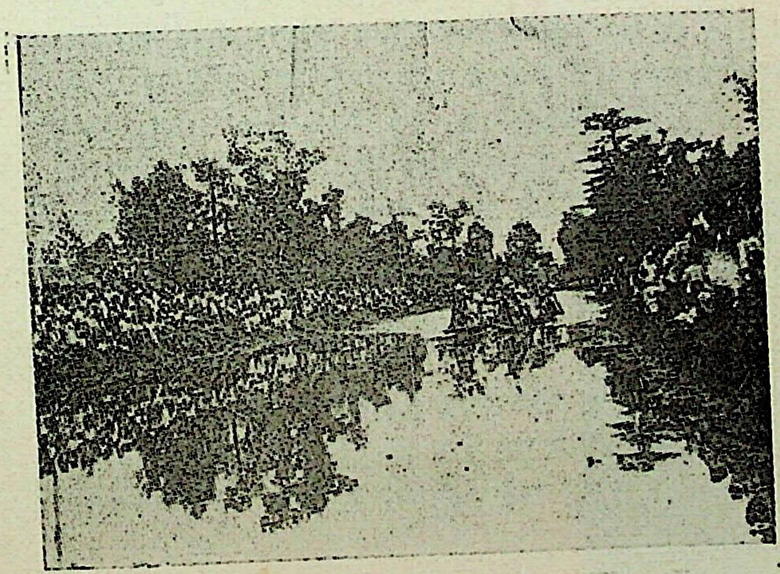

हैकु हिदोंगबा (नाव-दौड़)
श्री विजयगोविन्द मन्दिर की परिखा में
नौका-दौड़, पृ० ४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुरी कृष्णभक्तों के प्रेरणास्रोत

मणिपुरी रास-नृत्य (महारास) का एक दृश्य, पृ० ३२

अष्ट-गोपी-अष्ठ-श्याम-रास
श्री गोविन्दजी मंदिर (इम्फाल) के प्राङ्गण में,
पृ० ३१,३५

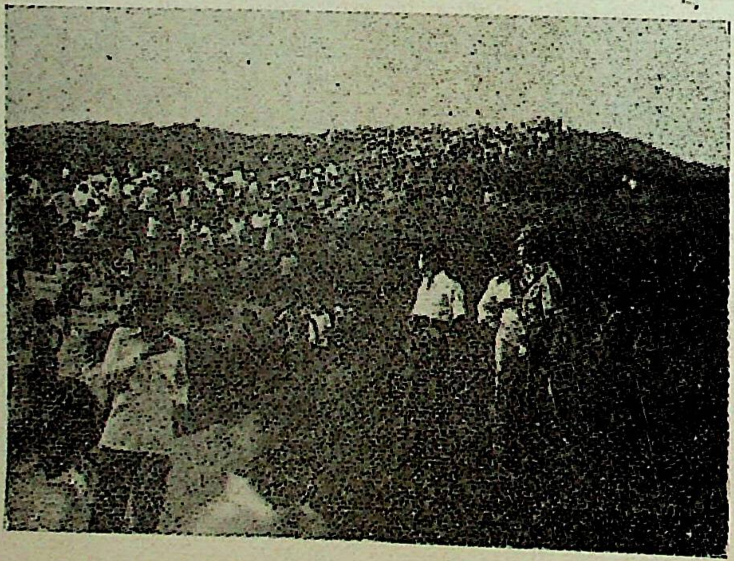

चैराओबा (नववर्ष का त्यौहार) के अवसर पर पर्वत पर पूजा के बाद उतरते-चढ़ते भक्त-वृन्द, पृ० ४५,४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाद में मणिपुर में आयी। रथयात्रा का त्योहार भी मणिपुर में बाद के वर्षों में मनाया जाने लगा। मणिपुर के महाराजा गम्भीरसिंह ने अपने शासन-काल (सन् १८२५-३४ ई०) में रथयात्रा और पुनर्यात्रा-त्योहार का श्रीगणेश किया था। मणिपुरी भाषा में इसको काङ्चिङ्बा अर्थात् रथ खींचना कहा जाता है। आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा को महाराजा गम्भीरसिंह ने प्रथम रथयात्रा का आयोजन किया था। आज भी यह इसी दिन मनाया जाता है। 'चैथरोल कुमबाबा' नामक मणिपुर के राजवंश के इतिहास में प्रथम रथयात्रा का वर्णन उपलब्ध है। वास्तव में रथयात्रा पुरी (उड़ीसा) में श्रीजगन्नाथ स्वामी के मन्दिर का प्रमुख त्योहार है। चैतन्य महाप्रभु के कारण उसका प्रचलन बंगाल में हुआ और वहाँ से यह मणिपुर में आ पहुँचा। महाराजा गम्भीरसिंह को अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष कछार या सिल्हट-प्रवास में व्यतीत करने पड़े थे। वहाँ रथयात्रा का त्योहार बहुत धूमधाम से मनाया जाता था। उन्हीं दिनों की बात है कि रथयात्रा और मुहर्रम त्योहार एक दिन पड़ गये। अतः गोनारखान, जो कछार के नवाब थे, ने हिन्दू प्रजा से कहा कि रथयात्रा एक दिन बाद में मनायी जाय। बात बढ़ गयी और हिन्दू-मुस्लिम प्रजा में विवाद उठ खड़ा हुआ। किन्तु महाराजा गम्भीरसिंह ने अपने सैनिकों की सहायता से सम्भावित साम्प्रदायिक दंगे को टाल दिया और दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने अपने त्योहार शान्ति से मनाये।

जगन्नाथ-क्षेत्र से महाराजा गम्भीरसिंह ने एक पण्डा बुलवाया और मणिपुर में प्रथम बार श्रीजगन्नाथ, बलराम व सुभद्रा की मूर्तियाँ बनवायीं। उसी पण्डे की देखरेख में त्रिमूर्ति एवं ४० फुट ऊँचे बारह पहियों-वाले रथ का निर्माण किया गया। महाराजा ने अपने सामन्तों के साथ स्वयं इस रथ को खींचा। रथ के आगे-आगे संकीर्तन-दल संस्कृत कवि जयदेव के गीत-गोविन्द के पद गाते हुए तथा नृत्याभिनय करते हुए चले। महाराजा गम्भीरसिंह के द्वारा चलायी गयी इस परम्परा का आज भी मणिपुर में उत्साह से पालन किया जाता है।

रथयात्रा का वर्तमान स्वरूप

मध्यकाल में यह त्योहार राजमहल में आयोजित किया जाता था। फिर उसके अनुकरण पर प्रत्येक गाँव-गली में भी इसका आयोजन किया जाने लगा। रथ पर बनायी जानेवाली अम्बाड़ी का आकार ब्रह्मा के बौद्ध पगोडा की तरह होता था। सम्प्रति यह रथ चार पहियों का होता है। रथ के निर्माण के लिए पहले राजकोष से धन दिया जाता था। अब रथ प्रजा द्वारा दी गयी दक्षिणा से बनाया जाता है या बस्ती का कोई धनी व्यक्ति रथ का निर्माण करवाता है। रथ को चारों ओर से श्रीजगन्नाथ प्रभु के बड़े-बड़े चित्रों से सजाया जाता है। रथ पर त्रिमूर्ति अम्बाड़ी के नीचे प्रतिष्ठित की जाती है, जिसके दोनों ओर दो कन्याएँ चँवर डुलाती खड़ी रहती हैं। दो ब्राह्मण पुजारी मूर्तियों के सामने पूजा-आरती के लिए खड़े रहते हैं। रथ को रस्सियों से भक्तजन खींचते हैं। प्रत्येक घर के सम्मुख रथ को रोका जाता है, जहाँ गृह-स्वामी वर्तिका, फल एवं पुष्प अर्पित करता है। पुजारी वर्तिका को प्रज्वलित करके भक्तों को लौटाते हैं, जिसकी राख को वे अपने ललाट पर लगाते हैं तथा बाद में उसे अपने द्वार पर ले जाकर रखते हैं। लोक-विश्वास है कि इस वर्तिका के द्वार पर रखने से उस घर पर दुरात्माओं का प्रभाव नहीं हो सकेगा। सामूहिक दक्षिणा से तैयार किया गया खिचड़ी का प्रसाद उपस्थित जनसमूह में पुजारी बाँटते चलते हैं।

रथ के आगे संकीर्तन-दल मृदंग, झाल, करताल, घण्टे व शंख बजाते नाचते-गाते हुए चलते हैं। संकीर्तन-दल जो नृत्य-संगीत प्रस्तुत करते हैं, वह विशिष्ट शास्त्रीय संगीत पर आधारित होता है। प्रत्येक भक्त एवं संकीर्तन-दल का सदस्य नंगे पाँव होता है। सभी पुरुष सफेद धोती और कुर्त्ता व सफेद चादर ओढ़े हुए होते हैं,

३/७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जबकि महिलाएँ भगवे रंग का फनेक (लुंगी-तहमत) और सफेद रंग की चादर ओढ़कर रथयात्रा में भाग लेती हैं। नर्तक पुरुष-दल सफेद धोती और कमर पर सफेद कपड़े की मेखला (कमरबन्द) बाँधते हैं। सिर पर ये लोग सफेद रंग के साफे बाँधे होते हैं।

रथयात्रा का रथ श्रीगोविन्दजी-मन्दिर से सर्वप्रथम दिन के अन्तिम भाग में निकाला जाता है और सन्ध्या समय पुनः मन्दिर में लौट आता है। पुरी में रथ एवं त्रिमूर्ति उसी दिन मन्दिर में नहीं लौटायी जाती है। पुरी की रथयात्रा से मणिपुर की रथयात्रा इस दृष्टि से भिन्न है। पुरी में रथयात्रा केवल श्रीजगन्नाथ स्वामी के मन्दिर से, किन्तु मणिपुर में अनेक मन्दिरों से और प्रत्येक गाँव-गली से निकाली जाती है। रथयात्रा की रात्रि से ९ रातों तक, प्रत्येक मन्दिर में, भक्त-जन मण्डप में एकत्र होते हैं। (प्रत्येक मन्दिर में मण्डप अवश्य होता है।) इस अवसर पर 'खुबाक ईशैं' नामक भजन-कीर्तन किया जाता है। ताली बजाकर 'नट चोलम' नामक एक विशेष नृत्य भी किया जाता है। उल्लेखनीय तथ्य है कि मणिपुर के नृत्य एवं राग-रागनियाँ विशेष पर्व-त्योहारों की देन हैं। 'खुबाक ईशैं' रथयात्रा-त्योहार का आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण अंश है। यह स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, जो उनकी कोमलता के अनुकूल है। 'नट चोलम' विशिष्ट मृदंग-नृत्य है, जो कुशल कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। ये नृत्य एवं गायन विशेष शास्त्रीय पद्धति से प्रस्तुत किये जाते हैं और इनमें भाग लेनेवाले कलाकार महीनों तक पूर्वाभ्यास करते हैं।

इस अवसर पर जयदेव-रचित दशावतार के पद भी गाये जाते हैं। इस पर्व के गीतों में श्रीकृष्ण के अक्रूर के साथ गोकुल से मथुरा जाने का वर्णन तथा राधा और गोपियों की विरह-व्यथा का चित्रण रहता है।

पुनर्यात्रा

आषाढ़ शुक्ला दशमी को पुनर्यात्रा का आयोजन किया जाता है। रथयात्रा के दिन की भाँति ही पुनः रथ निकाले जाते हैं और सन्ध्या समय जब रथ लौटकर मन्दिर में आता है तब तीनों मूर्तियों को पुनः मन्दिर में यथास्थान रखा जाता है। रथयात्रा के दिन रथ के लौटकर आने पर मूर्तियों को मन्दिर में नहीं बल्कि मण्डप में रखा जाता है।

पुनर्यात्रा के दिन कहा जाता है कि कुछ वर्ष पूर्व तक एक-दूसरे पर कीचड़ या पानी आदि फेंकने की परम्परा थी, किन्तु अब ऐसा नहीं किया जाता है।

रथयात्रा और पुनर्यात्रा के दिन दोपहर के बाद नगर व गाँवों में बस आदि सवारियों का चलाया जाना बन्द कर दिया जाता है, ताकि रथयात्रा के जुलूस निकाले जा सकें। मणिपुर की सम्पूर्ण घाटी में उत्सव का वातावरण छा जाता है। नौ दिन तक मध्यरात्रि तक मन्दिर-प्रांगणों में नृत्य, गान एवं संगीत चलता है तथा घरों में सन्ध्या का भोजन नहीं बनाया जाता है, मन्दिर में ही सामूहिक भोज होते हैं, जिसमें खिचड़ी खायी जाती है और केवल कमल के पत्ते पर। समान वेष-भूषा में सजे लोगों का बिना किसी भेद-भाव के एक ही पंगत में बैठकर खाना श्लाघनीय है। दर्शक के चर्म-चक्षुओं को यह त्योहार अपूर्व आनन्द प्रदान करता है, तो प्रज्ञा-चक्षुओं के द्वारा वह भक्ति-भाव में निमग्न होता है और वह मणिपुर-घाटी के लोगों के धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैभव का अनुभव कर सकता है। नृत्य, गान, संगीत एवं अभिनय की कलात्मक श्रेष्ठता एवं शास्त्रीय नियमबद्धता से वह अभिभूत हो जाता है।

इस प्रकार रथयात्रा एवं पुनर्यात्रा-त्योहार-परम्परा श्रीकृष्ण-भक्ति की देन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरि-शयन एवं हरि-उत्थान

आषाढ़ शुक्ला द्वादशी के दिन मणिपुर में हरि-शयन का उत्सव मनाया जाता है। सभी भक्त श्रीजगन्नाथ स्वामी को प्रणाम करते हैं, सन्ध्या समय संकीर्तन का आयोजन किया जाता है। 'शयनो द्वादशी दिनी सन्ध्या राती समय का' संकीर्तन का पद श्री गोविन्दजी तथा अन्य मन्दिरों में गाया जाता है। लोक-विश्वास है कि श्री जगन्नाथ स्वामी आषाढ़ शुक्ला द्वादशी से कार्तिक शुक्ला द्वादशी तक शय्या पर विश्राम करते हैं, निद्रामग्न हो जाते हैं। अतः इन दिनों के बीच मन्दिर के कपाट बन्द रहते हैं। इस समय मण्डप में उत्सव भी हो तो भी मन्दिर के कपाट नहीं खोले जाते हैं।

मन्दिर के कपाट हरि-उत्थान-कार्तिक शुक्ला द्वादशी को ही खोले जाते हैं। उस दिन हरि-उत्थान-उत्सव का प्रत्येक मन्दिर में आयोजन किया जाता है। उस दिन भी संकीर्तन का आयोजन किया जाता है।

इन दोनों उत्सवों पर मणिपुरी युवक-युवतियों द्वारा फूल तोड़ने की परम्परा प्रचलित है। रात्रि के समय वे एक साथ बैठकर एकत्र फूलों की मालाएँ बनाते हैं। रात्रिभर जागकर ये युवक-युवतियाँ 'लिकोल' (कौड़ी का विशेष प्रकार का खेल) खेल खेलते हैं। कुछ वर्ष पहले युवक-युवतियों का यह प्रिय त्योहार था, किन्तु इन दिनों इन उत्सवों पर वह उत्साह नहीं देखा जाता है।

झूलन-यात्रा

झूलन-यात्रा का त्योहार मणिपुर में श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा (पाँच दिन) तक मनाया जानेवाला त्योहार है। यह त्योहार श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर या उसके माण्डव या मण्डप में मनाया जाता है। वृन्दावन में श्रावण तृतीया से झूलन-लीला आरम्भ होती है। महाराजा नरसिंह (सन् १८४४–५० ई०) ने झूलन-यात्रा-त्योहार मनाने की परम्परा आरम्भ की थी और इस अवसर पर भक्तिभाव से पूर्ण गीत गाने की प्रथा चलाई थी। किन्तु कुछ लोग झूलन-यात्रा-त्योहार का प्रारम्भ महाराजा गम्भीरसिंह (सन् १८२५–३४ ई०) से मानते हैं। उनके शासनकाल में रचित श्रीकृष्ण-रस-संगीत में झूलन-लीला का उल्लेख है, इसी आधार पर झूलन-यात्रा का प्रारम्भ उन्हींके शासनकाल से माना जाता है।

मणिपुर में मन्दिरों में सर्वप्रथम श्रीराधाकृष्ण की पूजा की जाती है और उसके बाद उनकी युगल-मूर्ति को निकालकर मण्डप में झूलन-लीला की जाती है। उपस्थित भक्त-वृन्द इसको भक्ति-भावनापूर्वक देखते हैं। युगल-मूर्ति पर एक फौआरे से जल प्रवाहित किया जाता है, जिससे ग्रीष्म-ताप-तप्त श्रीराधाकृष्ण को शीतलता प्राप्त हो। युगल-मूर्ति को एक झूले में बैठाकर झुलाया जाता है। लोक-विश्वास के अनुसार उस फौआरे के जल की एक बूँद पीने पर वर्षभर दैहिक या मानसिक शान्ति रहती है। इस अवसर पर गोविन्द अधिकारी कृत 'शुक शारदेन्दु' के संकीर्तन-पद गाये जाते हैं। झूलन का यह त्योहार श्रीराधाकृष्ण-भक्ति की ही देन है।

जन्माष्टमी

पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण भगवान् ने श्रावण कृष्णाष्टमी के दिन वासुदेव-देवकी के यहाँ कारागार में अवतार लिया था, अतः श्रीकृष्ण-भक्त मणिपुरी जनता जन्माष्टमी के दिन को महान् त्योहार के रूप में मनाती है। सभी स्त्री-पुरुष इस दिन व्रत रखते हैं। प्रातःकाल ही स्वच्छ एवं रंग-बिरंगे वस्त्रों में सज्जित हो फूल लेकर श्री श्रीगोविन्दजी-मन्दिर में जाकर प्रणाम करते हैं और पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हैं। यह त्योहार बालक-बालिकाओं के लिए विशेष आनन्द का दिन है, क्योंकि उस दिन उनको नये वस्त्र दिये जाते हैं, नकद दक्षिणा भी। रात्रि के समय बालक-बालिकाएँ लिकोल (कौड़ी का खेल) खेलते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधाष्टमी या ठकुरानी-जन्म

हिन्दी शब्दसागर (काशी नागरी प्रचारिणी सभा) में लिखा है कि राधा श्रीकृष्ण के बायें अंग से उत्पन्न हुई थीं। इसके साथ ही गोलोक-धाम के रास-मण्डल में उनके जन्म का उल्लेख भी मिलता है। यह भी कहा जाता है कि वे जन्म लेने के साथ ही पूर्ण वयस्का हो गयीं थीं। मणिपुर में उनके जन्म के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि श्रीमती राधिका ने भाद्रपद शुक्लाष्टमी के ठीक दोपहर में अभिजित मुहूर्त में अनुराधा से योग करते हुए अवतार ग्रहण किया। उनके पिता राजा वृषभानु और माता कीर्तिदा महारानी थीं। मणिपुर के श्रीराधा-कृष्ण-भक्त लोग श्रीमती राधा का जन्म-दिन भाद्रपद शुक्लाष्टमी को मनाते हैं और इसको ठौरानी-जन्म कहते हैं। जन्माष्टमी के दिन की भाँति ही व्रत रखना, मन्दिर में जाकर पुष्प चढ़ाना तथा बालक-बालिकाओं द्वारा 'लिकोल' खेलना इस त्योहार की विशेषता है।

मेरा वायुङबा और वाफूक्पा

मेरा वायुङ्बा आश्विन पूर्णिमा के दिन आयोजित किया जानेवाला त्योहार है। मेरा वायुङ्बा के दिन प्रत्येक घर के तुलसी-चौरे के पास एक लम्बा बाँस गाड़ा जाता है और उसके शिखर पर कार्तिक पूर्णिमा के दिन तक दीप जलाया जाता है। मेरा वायुंबा के दिन श्री गोविन्द-मन्दिर में कुञ्ज-रास का आयोजन किया जाता है। उस दिन मणिपुर के स्त्री-पुरुष व्रत रखते हैं, रात्रि के समय मन्दिर में कीर्तन में भाग लेते हैं और कुन्ज-रास देखते हैं।

वाफूक्पा त्योहार कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है और उस दिन व्रत रखा जाता है। बाँस को उस दिन निकाल दिया जाता है। रात्रि के समय श्रीगोविन्दजी-मन्दिर में जाकर संकीर्तन में भक्त-वृन्द सम्मिलित होते हैं तथा मध्य रात्रि से आयोजित महारास देखते हैं। कुञ्ज-रास एवं महारास की परम्परा सन् १७७९ ई० में महाराज भाग्यचन्द्र ने आरम्भ की थी, जो आज तक चली आ रही है। कुञ्ज-रास एवं महारास का परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

गोवर्धन-पूजा

कृष्ण के द्वारा इन्द्र-पूजा बन्द करने पर इन्द्र कुपित हो गये थे और उन्होंने ब्रज पर प्रलयंकारी वर्षा आरम्भ कर दी थी। तब भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसकी रक्षा की थी। इसलिए दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन-पूजा की जाती है। मणिपुर में घरों एवं मन्दिरों में सामूहिक भोज का आयोजन किया जाता है और सन्ध्या समय धार्मिक पुस्तकों का पाठ किया जाता है। इस अवसर पर गोबर से पर्वत की तथा मिट्टी से गाय की मूर्ति बनायी जाती है और इन दोनों की पूजा की जाती है। गोवर्धन-पूजा भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध त्योहार है।

याओसङ या होली

फाल्गुन पूर्णिमा के दिन मणिपुरी नर-नारी उपवास रखते हैं। मणिपुरी वैष्णव गौड़ीय-सम्प्रदाय में विश्वास रखते हैं। चैतन्य महाप्रभु का जन्म-दिन भी यही है। कृष्ण के अवतार चैतन्य महाप्रभु ने ५०० वर्ष पूर्व बंगाल के नदिया नामक स्थान पर फाल्गुन पूर्णिमा को जन्म लिया था। उनका जन्म एक नीम के वृक्ष के नीचे याओ (भेड़) सङ (झोपड़ी) में हुआ था। उसको पवित्रता की दृष्टि से जला दिया गया था। अतः उसी परम्परा का पालन करते हुए मणिपुरी वैष्णव प्रतिवर्ष फाल्गुन पूर्णिमा को एक बाँस व घास की बनी झोपड़ी में नाचते, गाते और कीर्तन करते हुए चैतन्य महाप्रभु की मूर्ति को ले जाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखते हैं। सन्ध्या समय कीर्तन के बाद मूर्ति को झोपड़ी से निकाल लेते हैं और उसमें आग लगा देते हैं। उस समय मुख्य पुजारी 'हरि बोला' बोलता है और उसके उत्तर में उपस्थित जनसमूह 'है होरी !' बोलता है। जब तक याओसङ जलता है ये नारे आकाश में गूँजते रहते हैं। जब झोपड़ी जल जाती है तो उसकी राख को लोग अपने घरों में ले जाकर रखते हैं, जिससे घर पर दुरात्माओं का प्रभाव न पड़े।

चैतन्य महाप्रभु के जन्म के अतिरिक्त याओसङ जलाने के पीछे भगवान् कृष्ण के जीवन की उस घटना का भी उल्लेख किया जाता है. जिसमें जटिला और कुटिला के बाधा उपस्थित करने पर कृष्ण राधाजी से मिल नहीं पाये थे तब उन्होंने राधा के घर के भेड़ रखने के स्थान में आग लगा दी थी जटिला व कुटिला जब भेड़ों को बचाने गयी तो कृष्ण और राधा का मिलन सम्भव हुआ था। इन दोनों घटनाओं के साथ-साथ भक्त प्रह्लाद एवं होलिका की घटना का सम्बन्ध भी याओसङ जलाने से जोड़ा जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उनमें चैतन्य महाप्रभु की जीवन-लीलाओं का वर्णन रहता है तथा राधाकृष्ण के वियोग और मिलन की उक्त घटना का भी उल्लेख रहता है। ये पद मणिपुरी भाषा के नहीं होते। इस अवसर पर संस्कृत, बंगला व मैथिली भाषा के धार्मिक पद गाने की परम्परा है।

थाबल-चोङबा

थाबल (चाँद) चोङबा (उछलना) अर्थात् चाँदनी रात का नृत्य। फाल्गुन पूर्णिमा को वसन्त के मादक पवन का स्पर्श पाकर युवा-मन उन्मत्त हो जाता है। याओसङ जलाने के बाद मणिपुर के प्रत्येक गाँव और गली के मैदान में ढोलक बजानेवाले को केन्द्र बनाकर युवक-युवती क्रमशः एक-दूसरे का हाथ थामकर गोल घेरा बना लेते हैं और आरम्भ होता है थाबल चोङबा नृत्य। बायें से दायें वृत्त की परिधि पर एक-दूसरे का हाथ थामे पहले दाहिना फिर बायाँ पाँव आगे निकालते हुए और वृत्त के भीतर-बाहर जाते-आते हुए युवा नर्तक नाचते हैं, गाते हैं। ढोलक-वादक के पास ही एक गायक भी खड़ा होता है, जो किसी प्रेम-गीत की पंक्ति गाता है, जिसे नर्तक दोहराते हैं। रंग-बिरंगी वेश-भूषा में सजी युवतियाँ और युवक चाँदनी रात में उल्लास एवं हर्ष के साथ नाचते और गाते हैं। कभी-कभी नाचते-नाचते भोर हो जाता है। परम्परानुसार हलंकार की रात्रि को वर्ष का अन्तिम नृत्य होना चाहिए, किन्तु आजकल यह १५ दिन से ३० दिन तक भी चलता है और बस्ती-बस्ती में बजनेवाले ढोल की ध्वनि वसन्त की चाँदनी रात में अपूर्व रस घोलती है।

थाबल चोङबा मणिपुर का सृष्टि के आदिकाल से प्रचलित नृत्य माना जाता है। अत्यागुरु शिदबा अर्थात् आदिदेव ने अपने पुत्र पाखंबा के मनोरंजन के लिए सात अप्सराएँ भेजी थीं, जिन्होंने चाँदनी रात में प्रथम बार थाबल चोङबा नृत्य किया था, तब से मणिपुर में यह नृत्य-परम्परा अक्षुण्ण है।

पैसा-पीरो

पैसा-पीरो अर्थात् पैसा दो। याओसङ जलाने के दूसरे दिन बड़े सबेरे ही बालक-बालिकाएँ दल बनाकर सड़क व मार्ग पर खड़े हो जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति व वाहन को रोककर 'पैसा-पीरो' कहते हैं। बिना पैसे दिये कोई जा नहीं सकता। स्त्री-पुरुष भी दल बनाकर घर-घर जाकर धन एवं खाद्य-सामग्री माँगते हैं। पैसा-पीरो चार दिन तक चलता है। पाँचवें दिन एकत्र धन-राशि व खाद्य-सामग्री से सामूहिक भोज आयोजित किये जाते हैं।

रंग-अबीर

होली रंगों का त्योहार है। अतः पैसा-पीरो के साथ आरम्भ होकर हलंकार के दिन तक रंग-अबीर खेलने की परम्परा मणिपुर में प्रचलित है। किन्तु कीचड़ आदि नहीं लगाया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोल जात्रा

दोल-जात्रा अर्थात् दल-यात्रा। चैत्र कृष्ण एकम (प्रतिपदा) को प्रातःकाल से इम्फाल के श्रीगोविन्दजी-मन्दिर में स्त्री-पुरुषों के दल आने लगते हैं। प्रत्येक दल ढोल पर कीर्तन प्रस्तुत करता है। श्रेष्ठ दल पुरस्कृत किये जाते हैं। चार दिन तक श्रीगोविन्दजी-मन्दिर के प्रांगण में नृत्य, संकीर्तन एवं रंग की बौछार चलती है। उसी अवसर पर गोप-गोपी-नृत्य भी किया जाता है। दल-यात्रा के आधार पर होली या फगुआ या याओसङ के साथ इस त्योहार को मणिपुर में दोल-जात्रा के नाम से भी जाना जाता है।

याओसङ या होली का त्योहार यद्यपि प्रह्लाद एवं होलिका की प्रसिद्ध कथा से सम्बद्ध है, परन्तु मणिपुर की धरती पर आकर यह भी श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के रंग से सराबोर हो गया है। ब्रज की होली विश्वविख्यात है ही। उसी परम्परा का यहाँ पालन किया जाता है। इसके साथ ही इसमें चैतन्य महाप्रभु के जन्म-दिन की घटना भी सम्मिलित हो गयी। इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में एक ओर चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का वर्णन रहता है तो दूसरी ओर राधाकृष्ण के वियोग-संयोग का। इस प्रकार याओसङ या होली के त्योहार का भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति से सम्बन्ध है।

हलंकार

होली से आरम्भ होनेवाले ये वसन्तोत्सव हलंकार नामक त्योहार के साथ समाप्त होते हैं। सामूहिक भोज के उपरान्त विभिन्न दल अपने-अपने झण्डे लेकर पुरुष पीले साफे तथा पीला, लाल या सफेद कुर्ता-धोती पहनकर तथा स्त्रियाँ गोपियों के वेश, मणिपुरी फनेक (तहमत) और चादरवाली पोषाक में श्रीविजय गोविन्दजी के मन्दिर में पहुँचते हैं। वहाँ दिनभर भजन-कीर्तन तथा मृदंग पर नृत्य होता है। अपराह्न में शुरू होती है रंग की बौछार और गोपों का गोपियों से हास-परिहास तथा छेड़छाड़। तब राधा और गोपियाँ अपनी-अपनी रंगीन कलात्मक छड़ी लेकर उन पर टूट पड़ती हैं। ग्वाले कई बार भागते हैं और कई बार लौटकर फिर वही छेड़छाड़ करते हैं—फिर भगाये जाते हैं। दर्शक उनके संवाद सुनकर तथा गोप-गोपियों का अभिनय, रंग खेलना देखकर हर्षित होते हैं। इसी हलंकार के बाद रात्रि के समय वर्ष का अन्तिम थावल-चोङ्बा होता है।

इस प्रकार होली से हलंकार तक मणिपुर की घाटी नाचती है, गाती है, रंग में सराबोर होती है और हर्षोल्लास में डूबती-उतराती है। किन्तु भारत के अन्य भागों में होली पर होनेवाले हुड़दंग और अश्लीलता के सर्वथा अभाव के साथ ही बहुत ही शालीनता, अनुशासन और धार्मिक पवित्रता के साथ मणिपुर की होली हलंकार तक पहुँचती है। होली और हलंकार का सम्बन्ध श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से है।

श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का दर्शन पर प्रभाव

मणिपुरी वैष्णव-धर्म की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी संन्यासियों द्वारा प्रतिपादित ईश्वरवाद या अवतारवाद पर आधारित है। १८वीं तथा १९वीं शताब्दी में वैष्णव-धर्म के सिद्धान्तों को मणिपुर के राजाओं द्वारा संरक्षण प्राप्त हुआ। चैतन्य-सम्प्रदाय के गोस्वामी नित्यानन्द और अद्वैताचार्य के शिष्य मणिपुर आये थे। उन्होंने वैष्णव-भक्ति के स्वरूप को यहाँ के लोगों को समझाया था। शैव, शाक्त एवं तान्त्रिक विद्या वैष्णव-धर्म के आगमन से पूर्व ही मणिपुर में प्रचलित थी। परिणामस्वरूप मणिपुर में वैष्णव-भक्ति का जो स्वरूप विकसित हुआ वह गौड़ीय वैष्णव-भक्ति पर आधारित होते हुए भी विशिष्ट था। उसमें स्थानीय, तान्त्रिक और शैव-शाक्त-तत्त्व मिश्रित हो गये थे। मणिपुरी वैष्णव गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अनुयायी होने के कारण भागवत, रासपञ्चाध्यायी, चैतन्य-चरणामृत तथा वृन्दावन के छः गोस्वामियों की रचनाओं को अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक मानते हैं।

सगुण-निर्गुण के सिद्धान्त के साथ ही त्रिदेव की मान्यता मणिपुर में भी पायी जाती है, किन्तु उनके नाम भिन्न हैं—संसार का पालनकर्ता अत्यागुरु शिदबा को माना जाता है, जबकि पाखम्बा को विनाशक और सनामही को स्रष्टा माना जाता है। पौराणिक हिन्दू-धर्मशास्त्रों के त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और महेश का यहाँ स्थानीयकरण हुआ है। मणिपुरी गीता, जो मणिपुर की पुराण है, में 'हरि' को सिदबा अर्थात् ब्रह्मा, अजर-अमर, निर्गुण चिन्तामणि, हरी सिदबा अर्थात् अन्तर्यामी निरञ्जन आदि कहकर सर्वोच्च कहा गया है। कृष्ण, विष्णु और हरि को मणिपुरी पुराण के अनुसार सभी देवी-देवताओं से श्रेष्ठ माना गया है। भगवान् के इस सर्वोत्तम रूप की कल्पना के साथ द्वैतभाव जुड़ा हुआ है और कृष्ण के साथ राधाजी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। मणिपुरी वैष्णवों के लिए सर्वोच्च सत्ता श्रीगोविन्दजी हैं, जो अनन्य रूप से रसेश्वरी (राधा का मणिपुरी नाम) से जुड़े हैं। इन दोनों का आधार धार्मिक ग्रन्थ न होकर महाराजा भाग्यचन्द्र का असम-प्रवास में देखा गया ऐतिहासिक स्वप्न है। मणिपुरी वैष्णव-सिद्धान्त श्रीकृष्ण के लघु और गौर रूप से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। उस रूप को अनुप्रभु का नाम दिया गया है।

व्यूह और परा-सिद्धान्त मणिपुर में बहुत अधिक प्रचलित नहीं है। मणिपुरी सिद्धान्तों में अवतारवाद, मूर्ति और अन्तर्यामी रूप को विशेष महत्त्व दिया जाता है। गौड़ीय सम्प्रदाय को मानने के कारण यहाँ श्रीकृष्ण के विभिन्न अवतारों में भी विश्वास किया जाता है। चैतन्य महाप्रभु को श्रीराधाकृष्ण का अवतार माना जाता है। मणिपुरी दर्शनानुसार कृष्ण के त्रिभंगी और चतुर्भुज रूप का वर्णन किया गया है, किन्तु साथ ही उन्हें विश्वरूप और निराकार भी माना गया है।

मणिपुरी दर्शन अधिभूत देह की रचना पंचतत्त्व तथा २४ श्रेणियों से मानता है। वास्तव में २४ श्रेणियों की गणना मणिपुरी दर्शन का वैशिष्ट्य है। उन २४ श्रेणियों में त्रिगुण, छः ॠतु, सात दिन और आठ प्रकृति की गणना की जाती है। माया शब्द का प्रयोग मणिपुरी गीता में विभिन्न अर्थों में किया गया है। अज्ञान माया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जब तक व्यक्ति गुरु-दीक्षा प्राप्त नहीं करता है, वह अज्ञान माया में डूबा रहता है। अविद्या माया में व्यक्ति धन-सम्पत्ति, भौतिक सुख-साधनों आदि में ही फँसा रहता है। अविद्या माया में बुद्धिहीनता और ज्ञान के अभाव का भी उल्लेख है। विश्वमाया मनुष्य की आत्मा को सांसारिक क्रियाओं में आबद्ध कर लेती है। प्रकृति ईश्वर का ही रूप है, माया ईश्वर की शक्ति है, जो आत्मा और उसके दिव्यगुणों को छिपा देती है। गौड़ीय प्रभाव के कारण योग-माया का उल्लेख भी मणिपुरी दर्शन में पाया जाता है। ईश्वर, जीव और माया की सम्बन्ध भावना मणिपुरी दर्शन-ग्रन्थों तथा गीता में भारतीय वैष्णव-दर्शन पर ही आधारित है। जीव ईश्वर का अंश है। वह जब तक माया से लिप्त रहेगा तब तक ईश्वर से नहीं मिल सकता है, यह मान्यता प्रचलित है।

चैतन्य-सम्प्रदाय में भक्ति को मुक्ति से श्रेष्ठ माना गया है। अतः मणिपुरी वैष्णव भी शुद्ध भक्ति से सन्तुष्ट रहता है। मणिपुरी भक्ति-सिद्धान्त के अनुसार मुक्ति का अर्थ है वृन्दावन के श्रीकृष्ण से आत्मा का मिलन। अतः मणिपुरी भक्त सदा वृन्दावन की ओर देखता है जो भगवान् कृष्ण का विहार स्थान है। वह किसी भी रूप में जन्म ग्रहण करके रास-नृत्य देखना चाहता है। रास-लीला को वह ईश्वरीय लीला और उसको देखना परम भाग्य मानता है।

गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के समान मणिपुरी लोग रागात्मक एवं भावात्मक भक्ति में विश्वास रखते हैं। मुक्ति भक्ति से तथा ईश्वर की अहैतुकी कृपा से प्राप्त की जा सकती है। ज्ञान एवं कर्म के सिद्धान्त का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरोध नहीं है। किन्तु मणिपुरी लोग ईश्वर की विश्वास के साथ पूजा करने तथा संकीर्तन एवं रास-नृत्य के द्वारा उसे पाने में विश्वास करते हैं। मणिपुरी भक्ति-पद्धति की यही एक ऐसी विशेषता है, जो उसे विशिष्टता प्रदान करती है। मणिपुरी भक्ति-पद्धति असमी और बंगाली वैष्णव-भक्ति से भिन्न नहीं है और आत्मसाक्षात्कार करके ईश्वरीय ज्योति को अपने ही शरीर में देखने में विश्वास करते हैं। मणिपुर में आत्मा को अजर-अमर माना गया है, जो शरीररूपी वस्त्र को पुराना होने पर बदल देती है।

हिन्दू पौराणिक शास्त्रों के आधार पर धर्म, अर्थ, काम से मोक्ष को श्रेष्ठ माना जाता है। प्रत्येक मणिपुरी व्यक्ति को आंगिक पूजा-विधि की दीक्षा दी जाती है, जिससे वह नित्य पूजा, अनुष्ठान एवं साधना द्वारा अपना ध्यान ईश्वर की ओर केन्द्रित करे, जिससे उसकी आत्मा मरने पर ईश्वर से मिल सके। मोक्ष का तात्पर्य केवल जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति नहीं है, बल्कि मणिपुरी दर्शन के अनुसार आत्मा का वृन्दावन-चन्द्र कृष्ण से मिलन-मोक्ष है। मणिपुरी दर्शन में मन-वचन-कर्म की शुद्धता, अहिंसा, सत्य आदि के पालन के नियमों के साथ विनम्रता का भी विशेष महत्त्व है। आचरण की शुद्धता और शारीरिक पवित्रता को भी बहुत महत्त्व दिया जाता है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि मणिपुरी दर्शन को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ने अत्यन्त प्रभावित किया है। श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के प्रचार के साथ ही वैष्णव-धर्मग्रन्थों एवं उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों ने मणिपुर के प्राचीन दर्शन को परिवर्तित किया। कुछ सिद्धान्तों में समानता थी, और कुछ को वैष्णव-भक्ति से जन्मे नये दर्शन ने अंगीकार किया। वास्तव में मणिपुरी दर्शन का वर्तमान रूप विभिन्न दर्शनों का मिश्रण है, किन्तु वर्चस्व वैष्णव-दर्शन का है।

विगत पृष्ठों में मणिपुर की संस्कृति को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति के अवदान का आकलन किया गया है। उसके लिए मणिपुर के जनजीवन, संगीत, नृत्य, भाषा, साहित्य, नाट्य, चित्र, वास्तु, मूर्ति आदि कलाओं के साथ स्थानीय दर्शन पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विवेचन विभिन्न शीर्षकों में किया गया है। मणिपुर की भौगोलिक स्थिति को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह भारत के सुदूर उत्तर-पूर्वी अञ्चल में स्थित एक छोटा राज्य है, जो सदा से भारत के अन्य भागों से अलग-थलग रहा है। यह पर्वतीय प्रदेश दुर्गम है और अनादिकाल से भारत की मुख्य धारा से कटा रहा है। मणिपुर को भारत की मुख्य सांस्कृतिक धारा से जोड़ने का अद्भुत कार्य श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ने किया। मध्यकाल में उत्तरी भारत तथा बंगाल से गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के विचरणशील सन्त-महात्माओं ने जब आवागमन के साधन नहीं थे, इस दुर्गम पर्वतीय राज्य में आकर श्रीराधाकृष्ण-भक्ति की लहर से इस राज्य के जनमानस को आप्लावित किया। मणिपुर के आदिम धर्म एवं शाक्त-शैव-मत से लोगों को विमुख करने में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी। प्रजा के प्रारम्भिक विरोध के कारण मणिपुर में धर्म-युद्ध हुआ। उनके मार्ग को अवरुद्ध करने के लिए अनेक बाधाएँ आयीं, किन्तु उन्होंने उन सब पर विजय प्राप्त करके मणिपुर में श्रीराधाकृष्ण-भक्ति की पताका फहराने में सफलता प्राप्त की।

मध्यकाल में मणिपुर तक पहुँचना कितने साहस एवं जोखिम का कार्य था, इसका अनुमान केवल इससे लगा सकते हैं कि आज भी मणिपुर आने के लिए केवल दो स्थल-मार्ग हैं—एक नागालैण्ड के दीमापुर स्टेशन से (८ घण्टे की बस-यात्रा) तथा दूसरा असम के सिलचर स्टेशन से (१२ घण्टे की बस-यात्रा)। इन दो स्थल-मार्गों के अतिरिक्त कलकत्ता या गौहाटी से वायु-मार्ग द्वारा भी मणिपुर की राजधानी इम्फाल आ सकते हैं। आज भी ये यात्राएँ श्रम एवं व्ययसाध्य हैं। स्थल-मार्ग से आनेवाले व्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

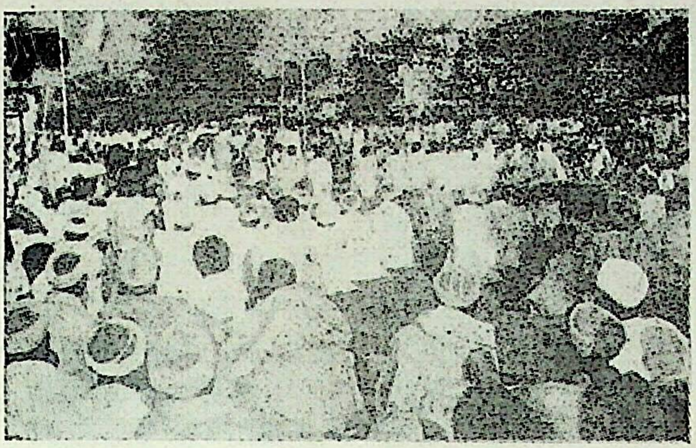

श्री विजयगोविन्द-मंदिर (इम्फाल) में हलंकार
(होली का छठा दिन) महोत्सव

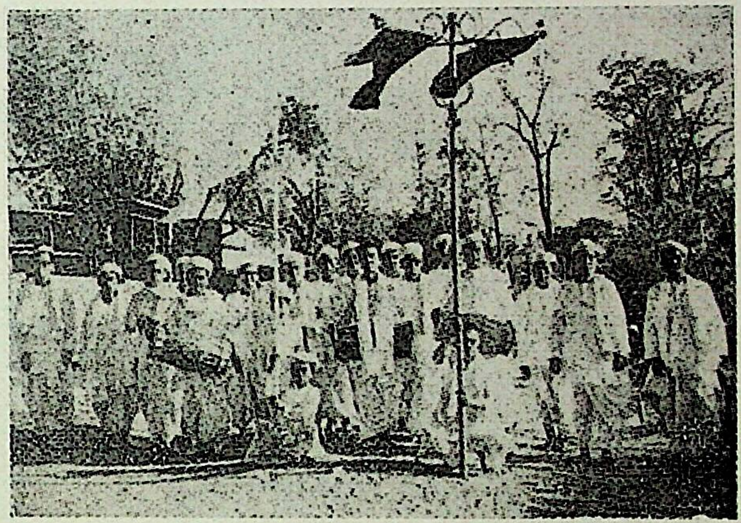

दोल-जात्रा (पुरुष-दल)
श्री गोविन्दजी मंदिर में दोलजात्रा पर आया
नर्तक-दल, पृ० ५४

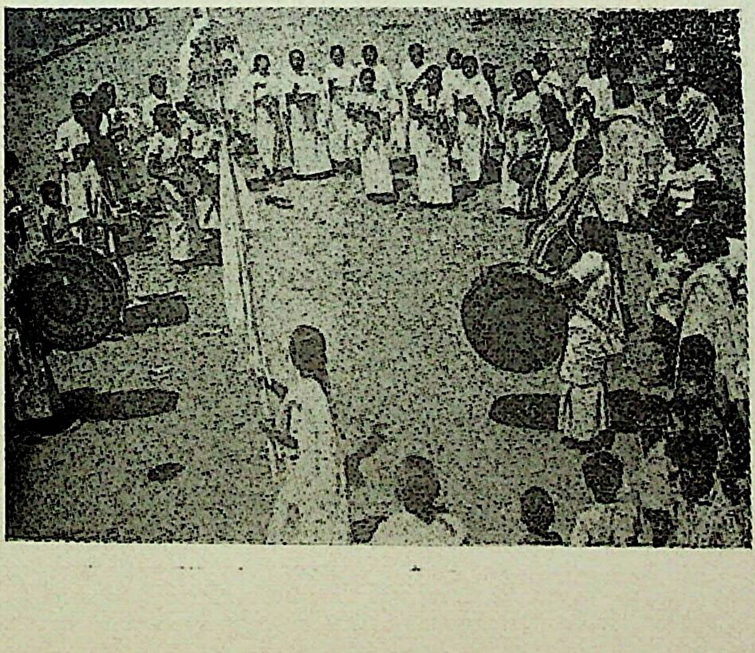

दोलजात्रा (स्त्री-दल), पृ० ५४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतोमबापू शर्मा, पृ० ६५-६६

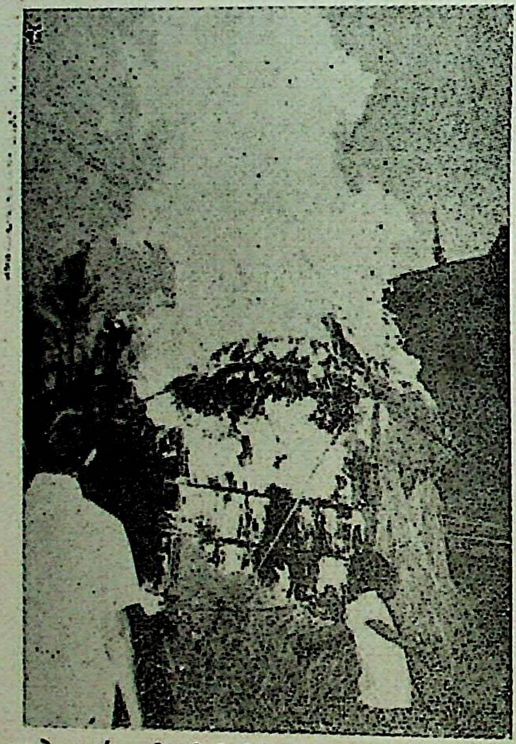

याओसङ् (जलती हुई होली) : इम्फाल (मणिपुर), पृ० ५२

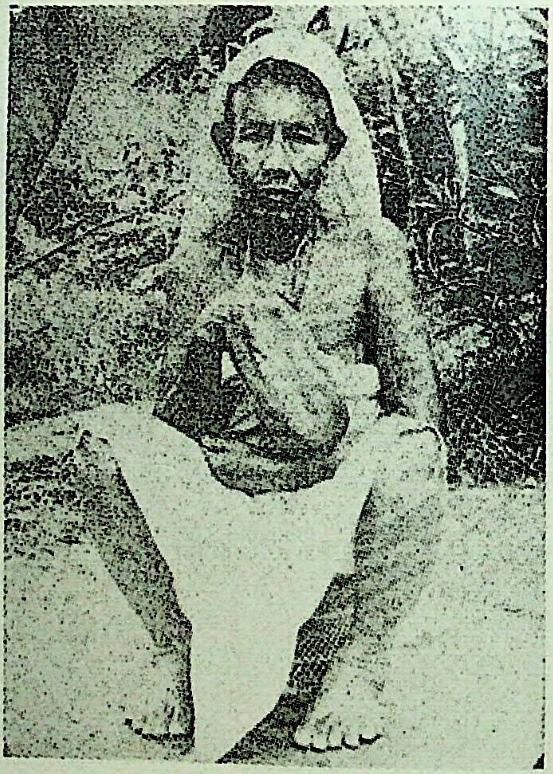

चमूवैष्णवी, पृ० ८०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के तो धैर्य की परीक्षा हो जाती है और दीमापुर या सिलचर में रात्रि-विश्राम के उपरान्त ही बस-सेवाएँ उपलब्ध होती हैं। कारण कि दोनों ही स्थानों से केवल प्रातःकाल ७ बजे तक ही बसें उपलब्ध होती हैं। जब आज भी यह स्थिति है तो अनुमान कीजिये कि द्वितीय विश्व-युद्ध से पूर्व जिन दिनों ये दोनों स्थल-मार्ग भी नहीं थे और पैदल, घोड़ों या बैलगाड़ियों पर यात्रा करनी होती थी तो उस समय किस प्रकार ये धर्म-प्रचारक मणिपुर पहुँचे होंगे।

मणिपुर भारत के अन्य भागों से विच्छिन्न था। इन धर्म-प्रचारकों के प्रयत्नों से ही यह भारत की सांस्कृतिक धारा से जुड़ सका। यहाँ के लोगों ने वैष्णव धार्मिक तीर्थ-स्थलों की यात्रा आरम्भ की। वृन्दावन, प्रयाग, हरिद्वार, गंगा-यात्रा, नवद्वीप, जगन्नाथपुरी आदि स्थानों की यात्राएँ की जाने लगीं। प्रत्येक मणिपुरी नर-नारी के लिए इन स्थानों की यात्रा जीवन का लक्ष्य बन गया तथा वह यथासम्भव इस यात्रा पर जाता है। कुछ लोग तो अपने जीवन-काल में चार-पाँच बार तक धार्मिक यात्राएँ कर लेते हैं। इन सभी क्षेत्रों में जाकर स्थायी निवास करना तथा वहीं मरना भी लोग अपना सौभाग्य मानते हैं। परिणामस्वरूप अनेक धार्मिक तीर्थ-स्थलों पर मणिपुरी बस्तियाँ बस गयी हैं और वहाँ मणिपुर के लोगों के स्थायी निवास बने हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ने मणिपुर को भारत की मुख्य जीवन-धारा से जोड़ा।

मणिपुर के जन-जीवन को श्रराधाकृष्ण-भक्ति-भावना ने नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की, जिससे लोगों के जीवन में सुरुचि एवं वैष्णव-संकारों को स्थायित्व प्राप्त हो सका। मणिपुर की स्थिति भारत के अन्य राज्यों से भिन्न थी। यहाँ सन् १८९१ ई० से पूर्व विजातीय शासन एवं संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। मणिपुर की संस्कृति विदेशी शासन (विशेष रूप से मुस्लिम-शासन) से अछूती रही। हाँ, बर्मा ने यहाँ की संस्कृति को पदाक्रान्त करने का असफल प्रयत्न किया, किन्तु श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना ने मणिपुर के जनमानस एवं महाराजाओं को अपरिमित नैतिक शक्ति प्रदान की, जिससे मणिपुर अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने में सफल रहा तथा बर्मा की सेनाओं को अपनी सीमा से खदेड़कर बाहर करने में भी सफल रहा।

मणिपुर की घाटी में रहनेवाले 'मैतै' (वैष्णव) लोगों को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ने बन्धुत्व के सूत्र में आबद्ध किया, क्योंकि गुरु-प्रणाली के अनुसार वे भावात्मक एकता के प्रगाढ़ सूत्र में बँध गये हैं। जाति-वर्ण आदि के भेद-भाव की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर वे एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं। यहाँ तक कि एक ही गुरु के शिष्य और शिष्या में बहन-भाई का पवित्र सम्बन्ध माना जाता है और वे आपस में विवाह नहीं कर सकते। इस प्रकार के विवाह को महापाप माना जाता है। इस प्रकार राधाकृष्ण-भक्ति ने मणिपुर की घाटी के लोगों को बन्धुत्व की भावना में आबद्ध किया तथा भारत की संस्कृति की मुख्य धारा से सुसम्बद्ध किया।

मणिपुरी संस्कृति के विभिन्न तत्त्वों के आकलन एवं विश्लेषण के परिणामस्वरूप यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मणिपुरी संस्कृति ने श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से बहुत कुछ ग्रहण किया है, किन्तु उसको यथातथ्य रूप में ग्रहण न करके स्थानीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुरूप ढाल लिया है। इस सम्मिश्रण, समन्वय एवं संश्लेषण ने एक नवीन वैष्णव-संस्कृति को जन्म दिया है, जिसको मणिपुरी वैष्णव-संस्कृति कहा जा सकता है। यह नवोदित संस्कृति भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर तथा अविभाज्य अंग है। सबसे आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि बंगाल के गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय की विशेषताओं को मणिपुरी संस्कृति ने आत्मसात् किया और एक दिन ऐसा आया जब विलुप्त गौड़ीय वैष्णव-भक्ति को उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्म-स्थान पर जाकर मणिपुर के राजा-महाराजाओं ने पुनर्जीवन प्रदान किया। नृत्य के क्षेत्र में रास और संगीत के क्षेत्र में संकीर्तन भारतीय कला को मणिपुरी का अविस्मरणीय अवदान है। यह रास एवं संकीर्तन मणिपुर को श्रीराधाकृष्ण-भक्ति की अमूल्य देन है।

मणिपुर के जीवन में श्रीराधाकृष्ण-भक्ति ने निश्चय ही क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है और मणिपुरी समाज ने वैष्णव-संस्कृति से परस्पर आदान-प्रदान के उपरान्त भारतीय संस्कृति में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। सम्प्रति मणिपुरी संस्कृति पर भी आधुनिक भौतिकतावाद एवं विज्ञान का प्रभाव पड़ रहा है और उसमें परिवर्तन आ रहे हैं, जो अवश्यम्भावी हैं। लोग शनैः शनैः श्रीराधाकृष्ण-भक्ति से विमुख हो रहे हैं। यद्यपि अभी तक सभी परम्पराएँ स्थिर हैं और आज भी श्रीगोविन्दजी मणिपुर के जीवन में सर्वोच्च सत्ता हैं, किन्तु भविष्य में भी यही स्थिति रहेगी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कालान्तर में जो हो, किन्तु श्रीराधाकृष्ण-भक्ति का मणिपुरी संस्कृति को अवदान ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है और रहेगी। यह तथ्य असन्दिग्ध है। युग-युगों तक इस बहुमूल्य प्रदेय को विस्मृत नहीं किया जा सकेगा।

मणिपुर में कृष्ण-संचेतना का विकास

अज्ञातकाल से वैष्णव-भक्ति का क्षेत्र होते हुए भी आधुनिक युग में मणिपुर के वैष्णव-धर्म को भयंकर विरोध का सामना करना पड़ रहा है। प्राचीन 'मैतै' (मणिपुरी) धर्म को हिन्दू-धर्म से अलग सिद्ध करनेवाले अंग्रेजों के कुटिल प्रचार से तथा अपनी पुस्तकों में पूर्व हिन्दू-काल एवं परवर्ती हिन्दू-काल में उन्होंने मणिपुर के इतिहास को विभाजित करके लगभग सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जो विष-बेल बोयी थी उसीको परवर्ती भारतीय इतिहासकारों, प्राच्यविदों और अन्य लेखकों ने सींचा। परिणामस्वरूप वही बेल आज विघटनकारी फूल-फलों के भार से आक्रान्त हो रही है। मैतै-धर्म और संस्कृति के प्रबल समर्थक उसे हिन्दू-धर्म से भिन्न सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों एवं परम्पराओं को सन्दर्भ से विलग करके परस्पर विरोधी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यहाँ तक कि मन्दिरों की तोड़फोड़ की भी कुछ घटनाएँ कुछ वर्ष पूर्व सुनी गयीं।

जिन दिनों वैष्णव-धर्म पर संकट के ये काले बादल मँडराने लगे, उसी समय इस प्राचीन वैष्णव-राज्य की घाटी में श्रीकृष्ण-भक्ति का स्वर अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण-संचेतना-समाज (International Society for Krishna Conciousness) के माध्यम से पुनः गूँज उठा है। यह एक सुखद आश्चर्य तथा अपूर्व संयोग है।

श्रीकृष्ण-संचेतना-सम्प्रदाय को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने और इसकी स्थापना करने का श्रेय ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद को जाता है। जुलाई १९६६ ई० में इस सम्प्रदाय की स्थापना संयुक्त राज्य अमेरिका में की गयी। प्रभुपाद इस सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य हैं। वे मणिपुर को एक विशुद्ध प्राचीन वैष्णव-राज्य मानते थे, जिसने उच्चकोटि के वैष्णव-भक्तों को जन्म दिया। इसीलिए श्रील प्रभुपाद ने श्रीमद्भागवतम् का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया था :

इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम्।
मणिपुरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः॥ (९.२२.३२)

अर्थात् अर्जुन को उलूपी के गर्भ से इरावान और मणिपुर-नरेश की पुत्री से बभ्रुवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पूर्वनिश्चित बात के आधार पर मणिपुर के गन्धर्वराज चित्रसेन का उत्तराधिकारी बना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमद्भागवत के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए प्रभुपाद ने लिखा था—"यह ज्ञातव्य है कि पार्वती अत्यन्त प्राचीन पर्वतीय राज्य मणिपुर के राजा की पुत्री थी। पाँच हजार वर्ष पूर्व जब पाण्डव राज्य करते थे तब मणिपुर तथा उसके राजा का भी अस्तित्व था। इसलिए यह अत्यन्त प्राचीन वैष्णव-राजवंश द्वारा शासित प्रदेश है। यदि इस राज्य को वैष्णव-राज्य स्वीकार कर लिया जाता है तो यह तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है कि विगत पाँच हजार वर्ष से इसने अपनी पहचान बनाये रखी है। यदि यहाँ पुनः वैष्णव-भावना को पुनर्जीवन दिया जा सके तो यह एक आश्चर्यजनक स्थान बन जायगा तथा सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हो जायगा।" मणिपुर के वैष्णव यों भी वैष्णव-सम्प्रदाय में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वृन्दावन तथा नवद्वीप में मणिपुर के राजाओं के द्वारा बनाये गये कई मन्दिर हैं। मणिपुर के कुछ भक्त कृष्ण-संचेतना में भी हैं। श्रीकृष्ण-संचेतना-आन्दोलन परम्परागत राधाकृष्ण-भक्तों के माध्यम से ही मणिपुर में प्रचारित किया जा रहा है।

प्रभुपाद की हार्दिक इच्छा थी कि वे इस छोटे-से वैष्णव-राज्य की यात्रा करें, श्री-श्री राधा-गोविन्द के दर्शन करें तथा इस पुनीत भूमि के वैष्णवों को भी देखें। आपकी योजना थी कि मणिपुर में कृष्ण-संचेतना-सम्प्रदाय के एक भव्य एवं विशाल मन्दिर का निर्माण किया जाय, जहाँ से कृष्ण-संचेतना के ज्ञान, विज्ञान एवं दर्शन की शिक्षा का प्रचार मणिपुर में तथा आसपास के क्षेत्रों के लाभ के लिए किया जा सके। उन्होंने अपने ये विचार उन मणिपुरवासियों के सम्मुख रखे थे जो उनके दर्शन कर सके थे। श्री एल० कुलविधु सिंह और स्वर्गीय ए० के० मणि सिंह, क्वाकैथेल, (इम्फाल) के प्रसिद्ध व्यापारी और 'मणिपुर-गीता-मण्डल' के सक्रिय सदस्य थे। सन् १९७६ ई० में मणिपुर-गीता-मण्डल ने प्रभुपाद को मणिपुर पधारने का निमन्त्रण दिया। प्रभुपाद अपने साथ दो-तीन विदेशी भक्तों को लाना चाहते थे, जो उनके सचिव थे। उनके अतिरिक्त वे कृष्ण-संचेतना के अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रदाय की प्रशासक परिषद् के कमिश्नर एवं आचार्य भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी श्रीपाद को भी मणिपुर लाना चाहते थे। किन्तु मणिपुर या पूर्वांचल में विदेशियों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध है। उन्हें सरकार से इनर लाईन परमिट (Inner Line permit) प्राप्त करना होता है। यह अनुमति प्राप्त नहीं की जा सकी। साथ ही, दूसरी समस्या यह थी कि भक्तिस्वरूप दामोदरदास स्वामी उस समय संयुक्त राज्य अमेरिका में थे और वे अमेरिका से तत्काल लौटने में असमर्थ थे। प्रभुपाद अपनी मणिपुर-यात्रा में स्वामी दामोदरदास का साथ आवश्यक मानते थे। परिणामस्वरूप प्रभुपाद की मणिपुर-यात्रा में विलम्ब हुआ। इसी बीच उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे १४ नवम्बर १९७७ को गोलोकवासी हो गये।

मणिपुर में कृष्ण-संचेतना-केन्द्र की स्थापना के विवेचन से पूर्व श्रील दामोदर स्वामी का परिचय देना आवश्यक है। आपका जन्म मणिपुर के थौबाल नामक गाँव में ९ दिसम्बर १९३७ ई० के दिन एक वैष्णव-परिवार में हुआ था। इनके पिता स्वयं कृष्ण-भक्त थे और जब श्रील दामोदर स्वामी बालक ही थे, पिता का देहान्त हो गया। आपकी देखभाल का भार बड़ी बहन ने उठाया। बालक दामोदर बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण तथा चैतन्य महाप्रभु के भक्त थे। जब बालक दामोदर १२ वर्ष के हुए तो बहन का विवाह हो गया तब इन पर परिवार के दैनन्दिन कार्यों का भार आ पड़ा, परन्तु इन्होंने फिर भी पाठशाला जाना नहीं छोड़ा।

बालक दामोदर एक मेधावी एवं प्रतिभाशाली छात्र रहे। उन्होंने विभिन्न परीक्षाओं में उच्चतम अंक प्राप्त करके अनेक छात्रवृत्तियाँ एवं पुरस्कार प्राप्त किये। डी० एम० कॉलेज, इम्फाल में पढ़ते हुए आपने सन् १९६१ ई० में रसायन शास्त्र में गौहाटी विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में ऑनर्स की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद सन् १९६४ ई० में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मास्टर ऑफ टेकनालॉजी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हें सन् १९६४ से '६६ ई० तक विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग द्वारा रिसर्च फेलोशिप दी गयी। इसी बीच बफैलो विश्वविद्यालय (Buffalo University) न्यूयार्क राज्य द्वारा उनको शोध-वृत्ति प्राप्त हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फिर वे संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये जहाँ उन्होंने कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय, इरविन से सन् १९७४ ई० में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

सन् १९७० ई० में उन्हें अपनी माता के देहान्त की सूचना अमेरिका में मिली और वे जन्म और मृत्यु, सांसारिक दुःखों एवं सत्य के विषय में चिन्तन करने लगे। जिन दिनों वे गम्भीर मानसिक चिन्तन में मग्न थे उन्हीं दिनों उन्होंने लेगुना बीच पर कुछ अमेरिकी भक्तों को 'हरे कृष्ण' कीर्तन करते हुए देखा। यह सुनकर कि श्रीकृष्ण-संचेतना के संस्थापक आचार्य लास-ऐन्जिल्स में हैं, ये अपने मित्र डॉ० राव के साथ उनके दर्शनार्थ वहाँ गये।

प्रभुपाद ने उन्हें प्रथम भेंट के समय कहा—"वैष्णव होने के नाते तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम सनातन धर्म का सन्देश प्रत्येक व्यक्ति के पास पहुँचाओ। इसलिए तुम वही क्यों नहीं करते जो मैं कर रहा हूँ ? जिज्ञासुओं को कुछ अमूल्य वस्तु दो।"

प्रभुपाद ने युवक दामोदर से यह बात अत्यन्त अन्तरंग और गम्भीर रूप में कही। दामोदरजी को लगा जैसे वे एक-दूसरे से वर्षों से परिचित हों। फिर वे नित्य प्रभुपाद के दर्शन के लिए जाने लगे तथा सन् १९७१ ई० में उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसी समय उन्हें दामोदरदास नाम दिया गया। सन् १९७४ ई० तक वे प्रभुपाद की आज्ञा से पी-एच० डी० करते रहे। उन्हें गुरुदेव का निर्देश था कि वे वैज्ञानिकों को कृष्ण-संचेतना के सिद्धान्तों का उपदेश दें। सन् १९७६ ई० तक वे अमेरिका में वैज्ञानिक के रूप में कार्य करते रहे, किन्तु जनवरी १९७७ ई० में आपने सांसारिक प्रपञ्चों का त्याग करके प्रभुपाद के आध्यात्मिक मिशन को पूरा करने के प्रति अपने-आपको समर्पित कर दिया। आज वे भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी श्रीपाद, प्रशासक परिषद् के कमिश्नर तथा कृष्ण-संचेतना के आचार्य हैं। इस प्रकार डॉ० टी० दामोदर सिंह एक वैज्ञानिक से भक्ति के आचार्य-पद पर पहुँच गये।

श्रील प्रभुपाद के गोलोकवासी होने के पश्चात् श्रीकृष्ण-संचेतना का इम्फाल में केन्द्र स्थापित करने का उत्तरदायित्व स्वामी दामोदरदास पर पड़ा। सन् १९७४ ई० में वे पी-एच० डी० करने के पश्चात् मणिपुर में पधारे थे। उस समय आपने मणिपुर की शिक्षण-संस्थाओं तथा विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक पीठों में श्रीकृष्ण-संचेतना के सिद्धान्तों पर भाषण दिये और मणिपुर में कृष्ण-संचेतना के ब्रह्मचारी वैज्ञानिक आचार्य एवं भक्त के रूप में सम्मान अर्जित किया।

अगस्त १९७४ ई० में आपने सर्वश्री एल० कुलविधु सिंह, एम० सूरचन्द्र सिंह, एम० नीलमणि सिंह तथा अन्य लोगों से मिलकर मणिपुर में कृष्ण-संचेतना-केन्द्र की स्थापना के विषय में विचार-विमर्श किया। केन्द्र की स्थापना हेतु प्रयत्न चलते रहे और अन्त में २५ दिसम्बर १९७७ ई० को प्रातः ८ बजे ठाकुरबाड़ी नटमण्डप, इम्फाल में श्रीकृष्ण-संचेतना-सम्प्रदाय का उद्घाटन-समारोह आयोजित हुआ जिसमें इम्फाल के प्रमुख नागरिक सम्मिलित हुए। इस समारोह के अवसर पर सभा द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया कि श्रीकृष्ण-संचेतना अन्तर्राष्ट्रीय सम्प्रदाय ही मानव-समाज को नैतिक एवं आचरण-सम्बन्धी पतन से बचा सकता है, अतः इस सम्प्रदाय को पूरा सहयोग दिया जाय जिससे श्रीकृष्ण-संचेतना के दर्शन, ज्ञान तथा विज्ञान को प्रसारित किया जा सके और जीवात्मा-परमात्मा के सम्बन्ध तथा प्रत्येक प्राणी को आध्यात्मिक कर्तव्य का ज्ञान कराया जा सके। श्री भक्तिचारु स्वामी को, जो वहाँ श्रीकृष्ण-संचेतना के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे, मणिपुर के श्रीकृष्ण-संचेतना मन्दिर का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसके साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही एक कार्यकारिणी समिति का गठन श्रीकृष्ण-संचेतना की गतिविधियों तथा सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार हेतु हुआ।

२९ जनवरी १९७८ ई० को एक अस्थायी मन्दिर का निर्माण करके उसमें श्री श्रीराधाकृष्ण का चित्र स्थापित कर एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। श्री दामोदरदासजी अपने साथ बम्बई से पाँच श्रीकृष्ण-संचेतना के भक्त तथा बहुत सी पुस्तकें इस अवसर पर लेकर आये थे। निरन्तर पूजा-आरती हो रही थी और नगर के मध्य में स्थित होने के कारण आरती में तथा भगवद्गीता-प्रवचन सुनने के लिए अनेक भक्तजन वहाँ आते थे। स्थानीय समाचारपत्रों ने श्रीकृष्ण-संचेतना-केन्द्र की इम्फाल में स्थापना किये जाने का समाचार प्रकाशित किया तथा इस बात को मणिपुर के लिए गौरव का विषय बताया कि मणिपुर-निवासी स्वामी दामोदरदास, जो श्रीकृष्ण-संचेतना के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त आचार्य हैं, इस केन्द्र के संस्थापक हैं। ३१ जनवरी १९७८ ई० को प्रथम बार इम्फाल में नगर-संकीर्तन का आयोजन हुआ जिसका संचालन स्वामी दामोदरदासजी ने स्वयं किया।

७ अप्रैल १९७८ ई० को हरे कृष्ण-महोत्सव का आयोजन किया गया। इसमें इम्फाल के गण्यमान्य नागरिकों के अतिरिक्त देश के विभिन्न भागों से श्रीकृष्ण-संचेतना के आचार्य तथा भक्तों ने भी भाग लिया। श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों की प्रदर्शनी लगायी गयी, स्थानीय विद्वानों तथा भक्तों के भाषण हुए तथा विचार-विमर्श भी। यह महोत्सव तीन दिन तक कालीमाई मन्दिर के पास के प्रथम मणिपुर राइफल्स बटालियन के मैदान में सम्पन्न हुआ। इस महोत्सव तथा नगर-संकीर्तन के कार्यक्रमों के कारण इम्फाल और उसके आसपास के क्षेत्र में श्रीकृष्ण-संचेतना-सम्प्रदाय की लोकप्रियता बढ़ने लगी।

१९ अप्रैल १९७८ ई० को संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राज़ील तथा यूरोप के अनेक भक्तों ने इस नव-स्थापित केन्द्र की यात्रा की। श्री विजयगोविन्दजी के मन्दिर में भागवत-सभा का आयोजन किया गया जिसमें बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने भाग लिया। ये विदेशी भक्त यहाँ तीन दिन रुके थे। उन लोगों ने श्रीकृष्ण-संचेतना के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप पर प्रकाश डाला। उन लोगों ने यह भी कहा कि भागवत-धर्म एक बड़ा शब्द-कोश है जबकि ईसाई-धर्म एक छोटे शब्द-कोश के समान है। अतः हम श्रीकृष्ण-संचेतना में अधिक जानने के लिए आये हैं। भागवत-धर्म के विराट् स्वरूप की इस व्याख्या से लोग बहुत प्रभावित हुए।

कालीमाई मन्दिर में हरे कृष्ण-महोत्सव के पश्चात् तथा श्री विजयगोविन्द मन्दिर में भागवत-विमर्श के उपरान्त स्थानीय प्रतिक्रियावादी समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं ने निराधार तथा शत्रुतापूर्ण समाचार, समीक्षाएँ एवं सम्पादकीय लिखकर श्रीकृष्ण-संचेतना के विरोध में प्रचार आरम्भ किया। कुछ भक्तों के साथ मार-पीट की घटनाएँ भी घटित हुईं। इन कठिनाइयों के बावजूद श्रीकृष्ण-संचेतना के समर्पित भक्त अपने मिशन को पूरा करने में निरन्तर जुटे रहे।

ता० २७-८-'७८ ई० को श्रीकृष्ण-संचेतना के मन्दिर एवं कार्यालय को ठाकुरबाड़ी नटमन्दिर से पावना बाजार की एक दूकान में ले जाया गया। यह स्थान मन्दिर के लिए उपयुक्त नहीं था। १८ जुलाई १९८० ई० को स्वर्गीय मुरलीधर जालान ने इम्फाल से ४ कि० मी० की दूरी पर हवाई अड्डे के निकट अपनी भूमि का एक अंश श्रीकृष्ण-संचेतना-केन्द्र हेतु दान दिया। १७-८-'८० ई० को इसी भूमि पर एक मन्दिर का निर्माण किया गया। २९-११-'८० ई० को एक स्थायी मन्दिर एवं केन्द्र की स्थापना के लिए नींव रखी गयी। तीन वर्ष में इस तीन मंजिले मन्दिर एवं केन्द्र-भवन के निर्माण का योजना बनी। नटमन्दिर, पाठशाला-भवन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आश्रम तथा अन्य भवनों का निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ। श्री एल० कुलविधु सिंह ने भी अपनी भूमि इस कार्य के लिए दान की तथा कुछ भूमि क्रय भी की गयी। अब मन्दिर का निर्माण हो चुका है। भक्तिवेदान्त-मिशन पाठशाला आरम्भ कर दी गयी है। केन्द्र एवं मन्दिर में भक्त तथा अध्यापक रहते हैं। मन्दिर में पूजा-आरती तथा प्रसाद-वितरण की समुचित व्यवस्था हो गयी है।

इन वर्षों में श्रीकृष्ण-संचेतना केन्द्र में अनेक भक्त आते-जाते रहे हैं। प्रतिवर्ष जन्माष्टमी पर महोत्सव, संकीर्तन, शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक गोष्ठियाँ, रास-लीला आदि का आयोजन किया जाता है। श्रीकृष्ण-संचेतना के मणिपुर-केन्द्र से पुस्तकें, पत्रिकाएँ तथा पत्रक मणिपुरी भाषा में प्रकाशित किये जाते हैं। इनके माध्यम से मणिपुर को जनता में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार प्रसार किया जा रहा है। श्री श्री राधा-गोविन्द एवं श्री विजयगोविन्द मन्दिर में आयोजित विभिन्न उत्सवों में श्रीकृष्ण-संचेतना के स्वामी एवं भक्त उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं।

श्रीकृष्ण-संचेतना-आन्दोलन मणिपुर की धरती में अपनी जड़ें फैला रहा है। मणिपुर शताब्दियों से कृष्ण-भक्त रहा है, अतः कृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए यह स्थल एवं क्षेत्र सर्वथा उपयुक्त है। प्रतिक्रियावादी विरोधी शक्तियों से लोहा लेते हुए कृष्ण-भक्ति का यह दूसरा दौर अपना इतिहास बना रहा है।

इस प्रकार श्रील प्रभुपाद का मणिपुर में श्रीकृष्ण-संचेतना का स्वप्न साकार हो गया है। कृष्ण-भक्ति के विरोध में जब मुट्ठीभर लोग विरोधी प्रचार तथा तोड़-फोड़ के कार्यों में संलग्न थे, उसी समय कृष्ण-भक्ति का श्रीकृष्ण-संचेतना के माध्यम से नयी चेतना के रूप में उन्मेष हुआ। वैष्णव-भक्ति-भावना को जो धक्का लगा है उसको सहने की क्षमता के साथ प्रतिक्रियावादी तत्त्वों से संघर्ष का नैतिक बल, श्रीकृष्ण-संचेतना-केन्द्र की स्थापना से मणिपुर की वैष्णव-जनता को मिला है। मणिपुर में वैष्णव-भक्ति के दीपक की मन्द होती हुई लौ स्वामी दामोदरदास के प्रयत्नों से पुनः तीव्र गति से प्रज्वलित हो उठी है और विरोधी हवा का झोंका अब उसको रञ्चमात्र भी कम्पित कर सकेगा, इसमें सन्देह है।

यद्यपि श्री हरेकृष्ण-संचेतना-सम्प्रदाय का जन्म मणिपुर में हुए अभी एक दशक भी नहीं बीता है, किन्तु इसकी गतिविधियों एवं उपलब्धियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वैष्णव-भक्ति की उर्वर भूमि में यह अवश्य ही आशातीत रूपधरा में फले-फूलेगा। जिस धरा पर भाग्यचन्द्र जैसे भक्त-शिरोमणि का अवतरण हुआ था, उसी ण्य भूमि ने श्री हरेकृष्ण-संचेतना के आचार्य भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी को जन्म दिया है जो कृष्ण-संचेतना-आन्दोलन में विश्व-स्तर पर अपनी पहचान बना चुके हैं। यह एक आकस्मिक घटना न होकर कृष्ण-भक्ति-धारा के अजस्र प्रवाह का भगवदायोजित विधान प्रतीत होता है।

मणिपुरी कृष्ण-भक्ति-साहित्य का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य

मणिपुर का प्राचीन इतिहास महाभारत-काल से सम्बद्ध माना जाता है, किन्तु उसके सूत्र अन्धकाराच्छन्न हैं। उसका कमबद्ध विवरण उत्तर मध्यकाल से ही प्राप्त होता है। सन् १७६३ ई० से यहाँ जो राजा हुए उन्होंने अपने पूर्वज राजा चराईरौङ्बा (सन् १६९७–१७०६ ई०) तथा राजा गरीबनिवाज (सन् १७०९–१७४८ ई०) का अनुसरण करते हुए राज्य-सत्ता के साथ-साथ श्री राधाकृष्ण-भक्ति-परम्परा का भी निर्वाह किया। ये सभी गृहस्थ भक्त थे, राजमहलों में रहते हुए भी श्री राधाकृष्ण के प्रति निष्ठावान् थे तथा इन्होंने भक्ति-भावना का जनता में प्रचार-प्रसार किया। अतः मणिपुर के राजा-महाराजाओं का भक्त रूप में परिचय शीर्षक पाठक को चौंका सकता है, किन्तु परिचय पढ़ने के पश्चात् पाठकों को स्पष्ट हो जायगा कि ये वास्तव में निष्ठावान् भक्त थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्धृत पदों की भाषा के सम्बन्ध में एक तथ्य बता देना आवश्यक है। मणिपुर राज्य की भाषा अज्ञात-काल से मणिपुरी रही है और इसकी अपनी लिपि भी थी। किन्तु महाराजा गरीबनिवाज ने राजाज्ञा द्वारा मणिपुरी लिपि का प्रयोग निषिद्ध कर दिया था, तब से इस प्रदेश में मणिपुरी भाषा बंगला लिपि में ही लिखी जाती है। इतना ही नहीं, गरीबनिवाज महाराज ने धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के अवसर पर मणिपुरी भाषा के गीत, भजन आदि गाना वर्जित कर दिया था। पर्वों, त्योहारों, उत्सवों, संस्कारों तथा सामाजिक अथवा धार्मिक कृत्यों के अवसर पर संस्कृत, बंगला या व्रजबोली के गीतों या रचनाओं का पाठ अनिवार्य कर दिया गया था। अतः भक्तों की जो रचनाएँ उद्धृत की गयी हैं उनकी अधिकांशतः भाषा या तो बंगला है या बंगला और व्रजबोली का मिश्रण है। मणिपुरी भाषा में इस दीर्घावधि में बहुत कम रचना की गयी। महाराजा गरीबनिवाज ने राजाज्ञा द्वारा मणिपुरी भाषा में गीत गाने या रचने पर प्रतिबन्ध लगाते हुए यह भी कहा था कि "यदि कोई व्यक्ति दिन के समय मणिपुरी भाषा का गीत गायेगा तो वह दूसरे जन्म में कौआ बनेगा तथा रात में गायेगा तो उल्लू।" इस प्रतिबन्ध के कारण बीसवीं शताब्दी के लगभग द्वितीय दशक तक मणिपुरी भाषा में अत्यल्प साहित्य-रचना की जा सकी, यद्यपि मणिपुर की अपनी भाषा मणिपुरी है।

हर्ष का विषय है कि इधर मणिपुरी में प्रचुर कृष्णभक्ति-काव्य-रचना होने लगी है। उसके उदाहरण रूप में महाराज कुमार गुणेश्वर सिंह की एक भावपूर्ण रचना दी जाती है।

उनकी मणिपुरी भाषा में एक 'प्रार्थना' प्रस्तुत है—

श्री राधे गोविन्द कृष्ण! काउहनबिनु नखोङ थम्बान,
निङजबन चन्दन ओइदुन, नुंशिबन तुलसि ओइ,
कत्चरि नखोङ थम्बान्द ऐगी लैजब असितनि॥ १॥

राधे वृन्दावनेश्वरी! खङजदे भजन साधनसु,
हैजदे मन्त्र यन्त्रसु, निङजबगी इपाक् थक्त,
ताउजरि वावयै हिदोमगुम्, साबियु हिनाउ नखोङ्न॥ २॥

राधे याउहन्बियु नङ्गी, अथुप्प राग भक्तिगी,
फंहन्बियु चरण सेबा, रागानुगा भक्ति कौबी,
रागमयी प्रेम सेवा, श्री गोविन्द सेवा सम्भोग॥ ३॥

अनंग अम्बुज कुण्डद शान्नब श्री गोविन्दन
सिद्धि मञ्जरी सेवाद अनंग मञ्जरीद तिंजदुन
योओहन्बियु प्रेम सेवा, सम्भोगात्मा समर्पण॥ ४॥

रस हुम्फुमरिदगी, अथोइब श्रृंगार रस,
कौरिबनि कान्ता रस, अरोइब अथोइब रस,
राधे बृन्दावनेश्वरी सेवा द सिद्धि मञ्जरी॥ ५॥

रति लीलागी मनुङ्द, इबेम्मन इबुंङोद
आत्म निवेदन तौजखि हे प्राणनाथ इबुंङो
राधा कौबी ऐगी प्राणबु हूरिब नङ्गी अथुप्प॥ ६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुप्तांग रसराजबु ननाइद दर्शन पोबियु
श्रीगोविन्दगी निजरूप गुप्तांग मणि अशङ्ब
अनंग मणि अङौब निजअंग सना मचु ॥ ७ ॥

मचु अहुम्‌सिन तिन्ब, रसराज मूर्तिदुबु,
इबेम्मद दर्शन पोखरे, नायिकान हायब याथं
नायक ओइबन इन्‌बबु स्वाधीन भर्तृका रसने ॥ ८ ॥

सखिसिंगी लीलामयी राधिकागी रागमयी
फङम्द्रब लीलारस राधे वृन्दावनेश्वरी
नखोङ् थम्बालगी लैहिबु चूप्हन्बियु आत्मा खोइमु ॥ ९ ॥

अनुवाद

'हे राधे-गोविन्द ! मुझे अपने चरणों को मत भूलने दीजिये। मैं तुम्हारे प्रेम में तुलसी और आराधना में चन्दन बन सकता हूँ। मेरे पास इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। बस, इतना ही है जो मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ ॥ १ ॥

हे राधे ! वृन्दावनेश्वरी ! मैं भजन-साधन नहीं जानता। मैं मन्त्र-यन्त्र से भी अनभिज्ञ हूँ। मैं तो आपके अनुराग-सागर पर एक नौका के समान चल रहा हूँ। आप अपने चरणों से इसे छू दीजिये। आप ही मेरी इस नौका के कर्णधार बन जाइये ॥ २ ॥

हे राधाजी ! आपकी भक्ति रहस्यमयी रही है। कृपा करके मुझे भी उसमें स्थान दीजिये। मुझे अपने चरणों की सेवा करने दीजिये। आपकी रागानुगा भक्ति, रागमयी प्रेम-सेवा और श्री गोविन्द-सेवा संभोग-युक्त है ॥ ३ ॥

श्री गोविन्दजी अनंग-अम्बुज कुण्ड में रमण करते हैं। उनकी सिद्धि-मञ्जरी सेवा में मुझे भी अनंग-मञ्जरी में समाकर संभोगात्मा समर्पित करके प्रेम-सेवा का अवसर दीजिये ॥ ४ ॥

चौंसठ रसों में शृङ्गार-रस श्रेष्ठ माना जाता है। इसको कान्ता-रस भी कहा जाता है। क्योंकि यही अन्तिम एवं श्रेष्ठ रस है। हे वृन्दावनेश्वरी ! आप सिद्धि-मञ्जरी हैं, मुझे अपनी सेवा में रहने दीजिये ॥ ५ ॥

हे राधाजी ! आपने रति-लीला के मध्य कृष्ण से आत्म-निवेदन किया था। आप मेरे प्राणों की आत्मा हैं, स्वामिनी हैं। हे राधाजी, आपका रहस्य मेरे प्राणों का हरण कर लेगा ॥ ६ ॥

हे अनंग गौरमणि, आप अपने स्वर्णिम अंगों का दर्शन कराइये। श्री गोविन्द-निरूपण एवं गुप्तांग नीलमणि का रहस्य समझाइये ॥ ७ ॥

तीन रंगों के मिश्रण से युक्त रसराज मूर्ति ने श्रीमती राधा को दर्शन दिये। जब नायक नायिका की आज्ञा का पालन करता है तो उसे स्वाधीनभर्तृका-रस कहते हैं ॥ ८ ॥

सखियों के साथ लीलाएँ करनेवाली हे अनुरागमयी राधाजी ! आपका लीला-रस मुझे अप्राप्य है। अतः हे राधे वृन्दावनेश्वरी ! अपने चरण-कमलों का मधुर-रस मेरे आत्मारूपी भ्रमर को भी पीने दीजिये' ॥ ९ ॥

— डॉ० जगमल सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मणिपुर के कृष्ण-भक्त

अतोम बापू शर्मा

अतोम बापू शर्मा के पिता का नाम फुराइलातपम निकुञ्जबिहारी शर्मा और माता का नाम मालतीदेवी था। कहा जाता है कि इनके पूर्वज कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और कन्नौज (उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में इनके पूर्वपुरुष भानुनारायण के राजा कियाम्बा के समय में मणिपुर आने का उल्लेख मिलता है। पण्डितराज अतोम बापू शर्मा का जन्म भानुनारायण की पाण्डित्य तथा आचारमण्डित वंश-परम्परा में सातवीं पीढ़ी में ३१ जनवरी १८८९ ई० को हुआ था।

अतोम बापू के अनुसार भानुनारायण को ही मणिपुर में विष्णु-पूजा का श्रेय जाता है। इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध हैं कि पन्द्रहवीं शताब्दी में बर्मा के राजा पोङ को शालिग्राम की मूर्ति मिली थी। कहा जाता है कि यह मूर्ति आकाश से अग्निपिण्ड के रूप में गिरी थी, जो उन्होंने मणिपुर के राजा कियाम्बा (कयाम्बा) को भेंट की थी। पोङ राजा और कियाम्बा के बीच सन्धि होने पर, पोङ राजा ने मणिपुर-नरेश को अनेक वस्तुएँ भेंटस्वरूप दीं, जिनमें शालिग्राम (विष्णु) की मूर्ति भी थी। राजा कियाम्बा को स्वप्न में भगवान् ने आज्ञा दी कि इस मूर्ति को मन्दिर बनवाकर उसमें रखो तथा इसकी पूजा ब्राह्मण से करवाओ। उसी समय भानुनारायण ने भगवान् विष्णु की पूजा आरम्भ की तथा राजा ने लमांदों (वर्तमान बिशनपुर) नामक प्राचीन राजधानी में विष्णु-मन्दिर बनवाकर उस स्थान का नाम बिशनपुर रखा।

अतोम का अर्थ है सबसे छोटा तथा बापू का अर्थ है ब्राह्मण। भानुनारायण के वंशज होने के कारण अतोम बापू शर्मा को बाल्यकाल से ही श्रीराधाकृष्ण में अगाध निष्ठा थी। इनकी शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई थी। वयस्क होने पर इनका विवाह भाग्यवती देवी से हुआ, जिनकी मृत्यु सन् १९४४ ई० में हो गयी। पण्डितराज अतोम बापू के तीन पुत्र व तीन पुत्रियाँ हुईं, किन्तु सबसे बड़े लड़के की मृत्यु नौ वर्ष की अवस्था में ही हो गयी थी।

इनके पिता निकुञ्जबिहारी शर्मा संस्कृत, व्याकरण एवं ज्योतिष के विद्वान् थे। अपने पिता से इन्होंने संस्कृत, व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य, अलंकार, स्मृति तथा ज्योतिष का और मणिपुर के तत्कालीन राज्य-व्यवस्थाकारी नूतनेश्वर शर्मा से हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त की। इनको अल्पायु में ही विद्या-रत्न की उपाधि से विभूषित किया गया। मणिपुर एवं पूर्वी राज्यों में ये विद्यारत्न के नाम से प्रख्यात थे। बाद में इन्होंने वेदों का भी अध्ययन किया।

बाल्यकाल से ही इनका जीवन संयम एवं अनुशासनयुक्त रहा। बिस्तर पर न सोकर ये सदैव भूमि पर चटाई बिछाकर सोते थे। रात में केवल तीन-चार घंटे सोते थे और शेष समय स्वाध्याय में व्यतीत करते थे। यद्यपि इन्होंने अपने स्वास्थ्य पर कभी ध्यान नहीं दिया, किन्तु संयमपूर्ण जीवन के कारण इनका स्वास्थ्य अच्छा रहा तथा इन्हें कोई रोग न लग सका। ये कुछ ही दिन बीमार रहने के पश्चात् २ सितम्बर १९६३ ई० को स्वर्गवासी हुए।

शर्माजी अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे। इनकी माता का देहान्त बाल्यकाल में ही हो गया था और पिता सदैव बीमार रहते थे, अतः इन्हें उनकी सेवा करनी पड़ती थी। इनमें पितृभक्ति थी और पिता को, जो इनके गुरु भी थे, ये ईश्वर के तुल्य मानते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। अतोम बापू में पिता के तथा अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध श्रद्धा एवं भक्ति थी। इनके व्यक्तित्व में अत्यन्त विनम्रता थी। मातृभूमि की सेवा को पिता के ये आशीर्वाद का परिणाम मानते थे। वास्तव में शर्माजी ने जीवनपर्यन्त मातृभूमि की सेवा की। इनके जीवन का मुख्य ध्येय था संस्कृत-शास्त्रों, वेदों एवं पुराणों का मणिपुर के जन-जीवन में प्रचार-प्रसार करना। ये हिन्दू-धर्म तथा मणिपुरी संस्कृति के महान् प्रेमी थे। इन्होंने ऋषियों की भाँति वेद-पुराणों के सन्देश को मणिपुर के लोगों तक पहुँचाया।

पण्डितराज ने पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही धार्मिक उपदेशक तथा गुरु का कार्य आरम्भ कर दिया था। अपने यजमानों के परिवार में जाकर ये भागवत पुराण और भगवद्गीता का पाठ करते थे और मणिपुरी भाषा में उनकी व्याख्या भी। बीस वर्ष की अवस्था में ये संस्कृत टोल के मुख्य पण्डित नियुक्त किये गये। पचीस वर्ष की अवस्था में इन्हें जॉन्स्टन स्कूल में संस्कृत-अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। इन्होंने आजीवन संस्कृत शास्त्रों तथा धर्म-ग्रन्थों की शिक्षा दी और संस्कृत को लोक-प्रिय बनाने में दत्तचित्त रहे।

इन्होंने वेदों का मणिपुरी भाष्य आरम्भ किया था, किन्तु ये उसका प्रथम भाग ही प्रकाशित कर सके। अप्रैल १९६३ में इन्होंने सांग-वेद-आश्रम की स्थापना, वेद एवं मणिपुरी संस्कृति के प्रचार के लिए की। इस संस्था की स्थापना के चार महीने बाद ही ये परलोकवासी हो गये। पण्डितराज को तीस वर्ष की अवस्था में संस्कृत एवं ज्योतिष के ज्ञान के आधार पर महाराज चूड़ाचाँद सिंह ने अपने दरबार में राज-पण्डित नियुक्त किया था। राज-पण्डित के रूप में आपको भारत के सभी तीर्थस्थानों तथा नगरों की यात्रा का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इनका कार्यक्षेत्र केवल सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र या संस्कृत एवं मणिपुरी संस्कृति के प्रचार-प्रसार तक ही सीमित नहीं था, बल्कि व्याख्यानों तथा पत्रकारिता के माध्यम से भी इन्होंने मणिपुर की प्रजा में राजनीतिक चेतना जागृत की। इन्होंने प्राचीन मैतै धर्म की नयी व्याख्या की तथा उसका हिन्दू-धर्म एवं संस्कृति से सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। एक ओर इन्हें मणिपुरी भाषा एवं संस्कृति का पूरा ज्ञान था तो दूसरी ओर वेद, पुराण एवं शास्त्रों पर भी इनका असाधारण अधिकार था। अतः इन्होंने अपने व्यापक ज्ञान के आधार पर संस्कृति की विश्रृङ्खलित कड़ियों को जोड़कर समन्वय एवं एकतामूलक महान् कार्य किया।

मणिपुर की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है। भाषा एवं देश-काल के भेद के कारण मणिपुर की प्राचीन संस्कृति को भारतीय एवं वैदिक सभ्यता तथा संस्कृति से पृथक् सिद्ध करने का प्रयास अंग्रेजों ने पूर्वाञ्चल में शासन-स्थापना के साथ ही आरम्भ कर दिया था। उनका मूल उद्देश्य 'फूट डालो तथा राज करो' के साथ ईसाई-धर्म का प्रचार करना था। वे अपने दोनों उद्देश्यों में सफल हुए। उनका शासन समाप्त हो गया, किन्तु जो विष-बेल वे बो गये थे, वह आज सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल में व्यापक रूप से फैल रही है। उससे प्रभा-वित आधुनिक इतिहासकार एवं विद्वान् भी मणिपुर के धर्म की चर्चा करते हुए हिन्दू-संस्कृति पूर्वकाल और हिन्दू-संस्कृति परवर्तीकाल कहकर एक विघटन-कारी और पृथक्तावादी विभाजन-रेखा खींच रहें हैं।

इसके विपरीत अतोम बापू शर्मा ने मणिपुर की पौराणिक गाथाओं का हिन्दू-संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध किया। इन्होंने अपने गहन अध्ययन द्वारा नोपोक निंथौ, पान्थोइबी या खम्बा तथा थोइबी की मणिपुरी पौराणिक गाथाओं का सम्बन्ध शिव एवं उमा से स्थापित किया। इन कथाओं में जो परकीया भाव का वर्चस्व था उसीके आधार पर राधाकृष्ण के परकीया भाव को मणिपुर की संस्कृति के अनुकूल प्रमाणित किया। हिन्दू-धर्म एवं मणिपुर की प्राचीन संस्कृति के संश्लिष्ट रूप की व्याख्या करके अतोम बापू शर्मा ने मणिपुरी संस्कृति की भारतीय संस्कृति से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकात्मता स्थापित की। श्री शर्मा की यह महान् देन है। खेद का विषय है कि आज भी अंग्रेजों से प्रभावित विद्वान् अंग्रेजों के विघटनकारी उद्देश्य को न समझकर उन्हींकी विचारधारा का पिष्टपेषण कर रहे हैं और मणिपुर की संस्कृति को भारतीय संस्कृति से पृथक् मानने की भयंकर भूल कर रहे हैं।

अतोम बापू शर्मा एक व्यक्ति से कहीं अधिक एक संस्था थे। इस आधुनिक ऋषि ने समन्वयवादी दृष्टिकोण द्वारा मणिपुरी संस्कृति की व्याख्या करके राष्ट्रीय एकता-स्थापन के क्षेत्र में महान् योगदान किया है। मणिपुरी भाषा में आपने श्रीमद्भागवत पुराण, ऋग्वेद-संहिता, जयदेव के गीत-गोविन्द, रास-पञ्चाध्यायी, गोपाल सहस्रनाम, मार्कण्डेय-चण्डी, चैतन्य-चरितामृत-श्लोक-माला, उज्ज्वल-नील-मणि-किरण, हरिभक्ति-रसामृत-सिन्धु-बिन्दु, लक्ष्मीनारायण-हृदय आदि ग्रन्थों की रचना, अन्वय, अनुवाद एवं व्याख्या के रूप में की तथा उन्हें लोकप्रिय बनाया। मणिपुरी के अतिरिक्त संस्कृत, हिन्दी, बंगला तथा अंग्रेजी भाषा में इन्होंने शताधिक ग्रन्थों की रचना की। भारतीय जनता इस आधुनिक महर्षि के महान् कार्य को शताब्दियों तक स्मरण करेगी।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति तो उनकी पैतृक रिक्थ थी जिसका इन्होंने तो जीवनपर्यन्त निर्वाह किया ही, किन्तु उसकी आधुनिक ढंग से व्याख्या करके उसको मणिपुर के जन-जन के हृदय में प्रतिष्ठित करने का कार्य इन्होंने मणिपुरी भाषा के माध्यम से किया। मणिपुरी भाषा में धार्मिक कार्य, पूजा-पाठ आदि वर्जित थे। शर्माजी ने इस वर्जना का उल्लंघन करके वैष्णव भक्ति-भावना का घर-घर प्रचार-प्रसार किया। ये चैतन्य-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने परकीया भाव की शास्त्रीय व्याख्या ईश्वर-भक्ति के आदर्श के रूप में की।

शर्माजी के घर में जैसा कि प्रत्येक मणिपुरी घर में होता है, एक मन्दिर है। उसमें श्री राधाकृष्ण, चैतन्य महाप्रभु तथा नित्यानन्द की मूर्तियाँ स्थापित हैं। वहाँ इनके जीवन-काल की भाँति आज भी सन्ध्या-वन्दन-आरती होती हैं। उसके पास ही शर्माजी ने एक दूसरा मन्दिर भी बनवाया था जिसमें नोंपोक निंथौ को शिवजी तथा पान्थोइबी को पार्वती के रूप में प्रतिष्ठित किया था। पान्थोइबी मणिपुरी वेष-भूषा में सुसज्जित है, इनके सम्मुख ही शिव-लिंग स्थापित है। इस प्रकार शर्माजी ने हिन्दू वैष्णव, शैव तथा शाक्त देवी-देवताओं के साथ मणिपुरी देवी-देवताओं की प्रतिष्ठा करके दोनों संस्कृतियों की अभिन्नता सिद्ध की। पण्डितराज अतोम बापू शर्मा ने हिन्दू-धर्म का दर्शन एवं संस्कृति का मणिपुरी जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित किया इसीलिए ये मणिपुर में ही नहीं, सारे पूर्वाञ्चल में आधुनिक महर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शर्माजी राजपण्डित के रूप में मणिपुर के दरबार के सभासद रहे थे। वैष्णव-धर्म की परम्पराओं और मान्यताओं को स्थिर रखने के लिए उन्होंने अपने राजपण्डित-पद का सदुपयोग किया। संस्कृत भाषा-साहित्य एवं धार्मिक ग्रन्थों तथा वैष्णव-पदावली की 'मैतै' (मणिपुरी) भाषा में व्याख्या करके उन्होंने मणिपुरी जन-जीवन को राष्ट्रीय जीवन-धारा से जोड़ने का महान् कार्य किया। पुरोहित एवं धार्मिक उपदेशक के साथ ही आप मणिपुर के प्रथम पत्रकार थे, जिन्होंने अनेक दैनिक, मासिक, त्रैमासिक एवं वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा श्री राधाकृष्ण-भक्ति का प्रचार प्रसार किया। महाराजा भाग्यचन्द्र के पश्चात् वैष्णव-भक्ति को मणिपुर में स्थायित्व प्रदान करनेवाले व्यक्तियों में अतोम बापू शर्मा का स्थान अन्यतम है।

ज० सिं०

(महाराजा) क्रियाम्बा (कयाम्बा)

महाराजा कियाम्बा या कयाम्बा २४ वर्ष की आयु में सन् १४६७ ई० में मणिपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे। इन्होंने पोङ (बर्मा) के राजा चौका खेखोम्बा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से घनिष्ठ मित्रता स्थापित कर ली। पोङ के राजा चौका खेखोम्बा के पूर्ववर्ती राजा मणिपुर से भगवान् विष्णु का विग्रह विजय-प्रतीक के रूप में बर्मा ले गये थे। इस विष्णु-विग्रह को खेखोम्बा ने महाराजा कियाम्बा को लौटा दिया। इसका उल्लेख एल० इबूङोहल सिंह ने अपनी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु मणिपुर (पृ० १७०) में किया है। इससे यह स्पष्ट है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व भगवान् विष्णु का विग्रह मणिपुर में था और उसकी पूजा भी होती होगी। श्री आर० के० झलजीत सिंह के अनुसार भगवान् विष्णु का पत्थर का लघु आकार का विग्रह सन् १४७० ई० में पोंग के राजा ने यह कहकर दिया था कि यह तुम्हारे राज्य में मिला था। (पीप्स इन टू मणिपुर-पृ० १४८)। वास्तव में भगवान् विष्णु का यह विग्रह मणिपुर में वैष्णव-भक्ति के उद्‌भव एवं विकास की कुंजी है और इतिहासकारों द्वारा इस दिशा में शोध की अपेक्षा है। उपर्युक्त दोनों इतिहासकारों के मत से यह स्पष्ट है कि मणिपुर में हिन्दू-धर्म प्राचीन काल से प्रचलित था और बाद में इतिहासकारों ने राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि तथा विघटनकारी दृष्टिकोण का भ्रामक प्रचार करने हेतु महाराजा गरीबनिवाज़ के शासन-काल में मणिपुरी जनता को बलात्-हिन्दू-धर्म में परिवर्तित करने की बात फैलायी है।

आर० के० झलजीत सिंह के अनुसार भगवान् विष्णु का विग्रह जिस स्थान पर रखा हुआ था, वहाँ से निकला और राजा कियाम्बा को (स्वप्न में) यह आदेश दिया कि तुलसी-दल एवं खीर से ब्राह्मणों के द्वारा मेरी पूजा करवाओ। राजा ने अपने स्वप्न की बात सुबह मन्त्रियों को बतायी तथा उनसे इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया। मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार ब्राह्मणों की खोज आरम्भ हुई, क्योंकि उस समय मणिपुर में ब्राह्मण कठिनाई से मिलते थे। बड़ी खोज के बाद राजा के सेवक भानुनारायण नामक ब्राह्मण को लेकर आये। उसी ब्राह्मण ने तुलसी-दल एवं खीर के साथ विष्णु-पूजा आरम्भ की और राजा को सारी विधियाँ भी समझायीं। उस दिन से राजा ब्राह्मणों की सहायता से राजमहल में भगवान् विष्णु की पूजा करने लगा।

राजा का महल इम्फाल से दक्षिण-पश्चिम में १८ मील की दूरी पर एक पर्वत पर स्थित था। इस स्थान का नाम लमाङदौं था, किन्तु विष्णु-पूजा के उपरान्त इसका नाम विष्णुपुर रखा गया। अब इसको बिशेनपुर नाम से पुकारा जाता है। इन दिनों यहीं बिशेनपुर जिले का मुख्यालय है।

राजा ने भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण इसी स्थान पर करवाया। यह मन्दिर चीन के कारीगरों द्वारा चीनी पद्धति से बनायी गयी ईंटों से निर्मित है। इस मन्दिर का निर्माण सन् १५०७ ई० में किया गया था। मणिपुर का यह प्राचीनतम मन्दिर है जो ४८० वर्ष पुराना है। इस मन्दिर के निर्माण में बर्मी वास्तुकला का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इसमें घोड़ियाँ या ताखा युक्त मेहराब हैं। वास्तुकलाविद् इसको भारतीय एवं बर्मी वास्तुकला के बीच की कड़ी मानते हैं।

इससे यह बात स्पष्ट विदित होती है कि महाराजा कियाम्बा मणिपुर के प्रथम विष्णुपूजक भक्त हैं। आपने विष्णु-पूजा की जो परम्परा डाली उसे परवर्ती राजाओं ने भलीभाँति निभाया। यहाँ तक कि सन् १८९१ ई० में जब मणिपुर अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा तब भी विष्णु-पूजा की परम्परा चलती रही। ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त महाराजा चूड़ाचाँद सिंह व उनके उत्तराधिकारी आज भी इस परम्परा को जारी रखे हुए हैं।

ऐसा लगता है कि वैष्णव-धर्म एवं साहित्य महाराजा कियाम्बा से पूर्व ही मणिपुर में न केवल प्रचलित था, किन्तु लोकप्रिय भी था। लगभग ७०० ई० के पश्चात् मणिपुर की जनता में रामायण और महाभारत का अध्ययन आरम्भ हुआ, साथ ही नल-दमयन्ती आदि की कथाएँ भी यहाँ लोकप्रिय रहीं। परन्तु इनका प्रभाव महाराजा गरीबनिवाज़ के समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से बहुत अधिक बढ़ गया। कियाम्बा के समय से इन ग्रन्थों के साथ विष्णु-पुराण, गीता और भागवत की कथा ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की।

मणिपुर में नौका-दौड़ जिसको हियाङ ताम्बा कहा जाता है, अज्ञातकाल से प्रचलित त्योहार है। प्रत्येक नौका-दौड़ में अन्य नौकाओं के अतिरिक्त दो नौकाएँ ऐसी होती हैं जिनमें से एक भगवान् विष्णु तथा दूसरी राजा के लिए होती है। भगवान् विष्णु की नौका पर राजा कियाम्बा के द्वारा दिया गया विष्णु भगवान् का विग्रह रहता है। यह प्रथा राजा कियाम्बा के शासन-काल से चली आ रही है। मणिपुर के शासक भगवान् विष्णु के इस विग्रह को, जब भी किसी धार्मिक या अन्य यात्रा पर जाते हैं, अपने साथ रखते हैं।

भगवान् विष्णु के इस विग्रह की आज भी पूजा होती है। किन्तु इसको कोई देख नहीं सकता है। अतोम बापू शर्मा 'विद्यारत्न' ने इस मूर्ति को देखा था। उनके अनुसार विग्रह में भगवान् विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ हैं। उनके चार हाथों में, शंख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं। यह लगभग ५ इंच ऊँचा है। केवल पृष्ठभाग को छोड़कर यह पूरा विग्रह स्वर्ण-मण्डित है।

महाराज कियाम्बा का देहावसान सन् १५०८ ई० में हुआ। वे मणिपुर के प्रथम महाराजा हैं जिनके शासन-काल में भगवान् विष्णु की पूजा का उल्लेख मिलता है। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर वे प्रथम भक्त हैं जिनके शासनकाल से विष्णु भगवान् की पूजा की परम्परा का उल्लेख प्राप्त है। उनसे पहले का इतिहास उपलब्ध नहीं है, किन्तु प्राप्त साक्ष्यों से पूर्णतया सिद्ध है कि वैष्णव-धर्म की परम्परा उनसे भी पहले मणिपुर में प्रचलित थी।

ज० सिं०

(महाराज) कुलचन्द्र सिंह

महाराज सूरचन्द्र सिंह सन् १८८६ ई० में मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए थे। उस समय से ही राजवंश के आठों भाइयों में वैमनस्य चल रहा था। महाराजा चन्द्रकीर्ति की मृत्यु के बाद सूरचन्द्र महाराज बनाये गये और कुलचन्द्र युवराज नियुक्त किये गये थे। यह वैमनस्य इतना प्रबल हो उठा कि सितम्बर १८९० ई० में एक रात को सूरचन्द्र सिंह के महल पर आक्रमण कर दिया गया। फलतः सूरचन्द्र महाराजा ने अपने पद का त्याग कर दिया और वृन्दावन चले गये। उसी समय कुलचन्द्र को महाराजा बनाया गया। किन्तु अंग्रेजों ने महाराजा कुलचन्द्र को महाराजा सूरचन्द्र के महल पर आक्रमण करने-वाले महाराज-कुमारों व अपराधियों को सौंपने के लिए दबाव डाला। किन्तु महाराज कुलचन्द्र ने इसे अपने राज्य का आन्तरिक मामला कहकर उनकी बात को अस्वीकार कर दिया। ज्ञातव्य है कि उस समय तक मणिपुर एक स्वतन्त्र राज्य था। इस विवाद के फलस्वरूप अंग्रेजों ने मणिपुर पर आक्रमण कर दिया। स्वतन्त्रता-प्रेमी मणिपुरी जनता ने उस आक्रमण का मुकाबला किया, किन्तु अंग्रेजों की विशाल सेना से मणिपुर की मुट्ठीभर सेना कैसे जीत सकती थी? थौबाल व खोमजोम के युद्ध में अनेक मणिपुरी वीरों ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान किया। अन्त में मणिपुर की पराजय हुई और महाराजा कुलचन्द्र व अन्य महाराज-कुमार बन्दी बना लिये गये। इन सब पर इम्फाल में एक विशेष न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। न्याय के नाम पर एक नाटक किया गया और वीर टिकेन्द्रजीत सिंह सेनापति तथा जनरल थांगाल को १३ अगस्त १८९१ ई० को इम्फाल के पोलो-ग्राउण्ड में फाँसी की सजा दी गयी। उसके साथ महाराज कुलचन्द्र और अङौसना को आजीवन कारावास का दण्ड मिला। मणिपुर की जनता अंग्रेजों के इस व्यवहार से क्रुद्ध थी। अतः एक रात को ने गोपनीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ढंग से महाराजा कुलचन्द्र व अङ्गौसना को इम्फाल से तेजपुर जेल में ले गये और वहाँ से अलीपुर। अन्त में दोनों बन्दियों को अंडमान-निकोबार भेज दिया गया। महाराजा कुलचन्द्र व अङ्गौसना की वहीं मृत्यु हुई।

महाराजा कुलचन्द्र का राज्यकाल अत्यल्प था और वह भी अशान्तिपूर्ण, अतः उनकी भक्ति-भावना के सम्बन्ध में विशेष उल्लेख प्राप्त नहीं होता। किन्तु एक बात निश्चित है कि वे भी अपने पूर्वजों की भाँति श्रीराधाकृष्ण के भक्त थे। प्रमाणस्वरूप उनका एक पद प्रस्तुत है :

श्री राधा गोविन्द पदे
राङा चरण कमलपद्म राधे।
जुगल चरणके रविचन्द्र
राङा चरण कमलपद्म राधे।
प्रति जन्मे-जन्मे रहत
तब पदाश्रय प्रति जन्मे जन्मे
पशु जन्म पाप करि
ना छाड़िह श्री चरणे।
अधम जानिया दया कर नाथ अमारे।
मामपि कृपया निजदासी गणय
दीनहीन कुलचन्द्र एइ रस पिये।

'श्री राधा-गोविन्दजी, मुझे अपने चरणों में रखिये। हे राधाजी! अपने चरण-कमलों में मुझे स्थान दीजिये। आपके युगल चरण रवि-चन्द्र के समान हैं, उनमें मुझे शरण दीजिये। प्रत्येक जन्म में मुझे आपका पदाश्रय प्राप्त हो। यदि मैं पशु के रूप में जन्म लूँ अथवा पाप भी करूँ तो भी मैं आपके श्रीचरणों को न छोड़ूँ। मुझे अधम जानकर हे नाथ! मुझ पर दया कीजिये। अपना दास मानकर मुझ पर कृपा कीजिये। दीन-हीन कुलचन्द्र को उन्हीं श्रीचरणों का रस पीने दीजिये।'

ज० सिं०

(महाराज) गम्भीरसिंह

मणिपुर राज्य का इतिहास महाराज भाग्यचन्द्र के सन् १९९८ ई० में गंगा-यात्रा पर जाने के साथ ही करवट लेता है और राज्य में अस्थिरता एवं गृह-कलह का जन्म होता है। बर्मा के राजा का आक्रमण होता है, गृह-कलह के परिणामस्वरूप राज्यसत्ता की तराजू का पलड़ा निरन्तर गिरता-उठता है। महाराज भाग्यचन्द्र के आठ पुत्र परस्पर लड़ते हैं। उन्हें भागकर पड़ोसी राज्य कछार और बर्मा में शरण लेनी पड़ती है। महाराजा गम्भीरसिंह भी भागकर कछार में शरण लेते हैं। अशान्ति एवं अस्थिरता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण की मूर्ति को भी मणिपुर से भागनेवाले महाराज-कुमार कछार ले जाते हैं। कछार में गोविन्दजी-विग्रह की स्थापना की गयी और जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुईं तो ये निर्वासित महाराजा और महाराज-कुमार मणिपुर लौट आये। वे श्री गोविन्द-विग्रह को भी अपने साथ लाये।

सन् १८१९ ई० में जब बर्मी सेना ने मणिपुर पर आक्रमण किया तो महाराज मारजीत भागकर कछार चले गये, जहाँ चौरजीत एवं गम्भीरसिंह पहले से ही निर्वासन भोग रहे थे। कछार के राजा को मारजीत, चौरजीत एवं गम्भीरसिंह ने पराजित करके सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया। परिणामस्वरूप कछार का राजा गोविन्दचन्द्र सिलहट भाग गया। बर्मी सेना को अंग्रेजों की सहायता से तीनों भाइयों ने मणिपुर से निकाल बाहर किया। चौरजीत एवं मारजीत ने स्वास्थ्य एवं अवस्था के आधार पर मणिपुर का राजा बनना अस्वीकार किया। तब महाराज गम्भीरसिंह को सन् १८२५ ई० में मणिपुर का राज्य-सिंहासन सौंपा गया और नरसिंह को सेना-पति नियुक्त किया गया। महाराज गम्भीरसिंह वीर पुरुष थे। उन्होंने मणिपुर को बर्मी पराधीनता से मुक्त किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराजा गम्भीरसिंह (१८२५–१८३४ ई०) अपने बाल्यकाल से ही श्री गोविन्दजी के अनन्य भक्त थे। उन्होंने मणिपुर-विजय के उपरान्त श्री विजय गोविन्दजी के विग्रह को ७ वर्ष पर्यन्त निर्वासन के पश्चात् पुनः मणिपुर में लाकर लङ्‌थबाल के राजप्रासाद में प्रतिष्ठित किया। शासन सँभालने के पश्चात् उन्होंने सबसे पहला काम सिल्हट की राजबाड़ी से श्री गोविन्दजी के विग्रह को लाने का किया था। ९ नवम्बर १८२७ ई० के दिन लङ्‌थबाल के नवनिर्मित मन्दिर में श्री गोविन्दजी-विग्रह की प्रतिष्ठा की गयी। जब मूर्ति को मणिपुर लाया गया तो बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। विष्णुपुर से लङ्‌थबाल तक का मार्ग केले के पत्तों से सजाया गया। जिस पालकी पर विग्रह को लाया गया था, उसको हीरे-जवाहरातों से अलंकृत किया गया था। पालकी की शोभा-यात्रा के साथ नर-नारी झण्डे, छत्र लेकर घण्टियाँ बजाते हुए चल रहे थे। संगीतज्ञ भजन-कीर्तन के द्वारा लोगों के मन में भक्ति-भावना जागृत कर रहे थे तो मायबा (पुजारी लोग) उपस्थित लोगों का विभिन्न प्रकार से मनोरंजन कर रहे थे। नृत्य-संगीत-मय इस उत्सव ने मणिपुर की जनता को भक्तिभाव में निमग्न कर दिया था। वर्षों के बाद श्री गोविन्दजी मणिपुर में पधार रहे थे, अतः उनके दर्शन के लिए मणिपुरी जनता उमड़ पड़ी थी। मणिपुर के धार्मिक इतिहास की यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है जिसका उल्लेख चैथरोल कुमबाबा में किया गया है। महाराजा ने श्री गोविन्दजी-विग्रह की पुनः प्रतिष्ठा जिस धूमधाम से की उससे उनकी श्रीराधाकृष्ण के प्रति गहरी निष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने ही लङ्‌थबाल की टेकरी पर नये राजप्रासाद का निर्माण करवाया और टेकरी के चारों ओर नौका-दौड़ हेतु एक परिखा बनवायी। उन्होंने श्री गोविन्दजी का प्रथम बार एक इंटों का मन्दिर लङ्‌थबाल में शुक्रवार १६ जनवरी १८२८ ई० के दिन बनवाना आरम्भ किया।

जब महाराजा गम्भीरसिंह खासी-विद्रोह को दबाने के लिए सिल्हट गये थे तो उन्होंने वहाँ पर हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे को शान्त किया। घटना इस प्रकार है—मुहर्रम और रथयात्रा के मुस्लिम एवं हिन्दू-त्योहार एक ही दिन पड़े थे। सिल्हट के नवाब गोनारखान ने हिन्दुओं को रथयात्रा का आयोजन दूसरे दिन करने को कहा। इसी बीच मुसलमान प्रजा ने कानून-व्यवस्था अपने हाथ में ले ली और हिन्दुओं को रथयात्रा स्थगित करने के लिए बाध्य किया और मार-पीट शुरू कर दी। महाराज गम्भीरसिंह ने अपनी सेना की सहायता से इस दंगे को शान्त किया तथा रथयात्रा का उत्सव निश्चित दिन और समय पर सम्पन्न हुआ। राजा तथा उनके सैनिकों ने भी उत्सव में भाग लिया। सिल्हट की जनता ने हिन्दू-धर्म के रक्षक के रूप में उनकी प्रशंसा की। इस ऐतिहासिक घटना से भी महाराज की श्री राधाकृष्ण के प्रति निष्ठा व्यक्त होती है।

महाराज गम्भीरसिंह ने पुरी की श्री जगन्नाथजी की रथयात्रा के अनुकरण पर मणिपुर में रथयात्रा-उत्सव का श्रीगणेश किया था, जो आज तक प्रति-वर्ष रथयात्रा और पुनर्यात्रा के नाम से मणिपुर में मनाया जाता है। मणिपुर की संस्कृति में रथयात्रा अथवा काङ चिङ्‌बा त्योहार का प्रचलन करके उन्होंने एक नया अध्याय जोड़ा। मणिपुर में प्रथम बार श्री जगन्नाथ स्वामी की मूर्ति बनवायी गयी और साथ ही बलराम एवं सुभद्रा की मूर्तियाँ भी बनीं। उन्होंने जगन्नाथ-क्षेत्र के एक ब्राह्मण पण्डे को रथयात्रा-उत्सव का भार सौंपा। बारह पहियोंवाला रथ बनवाया गया और उस पर उक्त त्रिमूर्ति चँदोवा के नीचे प्रतिष्ठित की गयी। मूर्तियों के साथ दो ब्राह्मण एवं दो मणिपुरी कन्याएँ खड़ी की गयीं जो चँवर डुला रही थीं। बारह पहियों के लगभग २० फुट ऊँचे रथ को भक्त जनों के द्वारा खींचा गया। रथ को प्रत्येक घर के सम्मुख रोका गया तथा भक्तजनों ने घरों से निकलकर वर्तिका-पुष्पादि अर्पित किये। रथयात्रा के आगे-आगे भक्त-जन-समूह मृदंग, झाल, करताल, घण्टियाँ व शंख बजाते, कीर्तन करते और नाचते-गाते चला। खिचड़ी का प्रसाद वितरित किया गया तथा विशाल मण्डप में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्ध्या समय सामूहिक भोज का आयोजन किया गया जिसमें सबने केवल खिचड़ी खायी। इस अवसर पर किये जानेवाले कीर्तन को खुबाक इशै कहा जाता है। इसमें भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन एवं नृत्याभिनय किया जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि इस उत्सव के अन्तिम दिन लोग एक-दूसरे पर कीचड़, पानी आदि फेंकते थे जैसा होली के त्योहार पर भारत के अन्य भागों में किया जाता है, किन्तु अब यह परम्परा समाप्त हो चुकी है। २० मई १८३२ ई० से आज तक यह त्योहार मणिपुर में प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन मनाया जाता है और अब प्रत्येक मोहल्ले में चार पहियों का रथ भक्तों के द्वारा दी गयी दक्षिणा से बनाया जाता है। मणिपुर के धार्मिक इतिहास में महाराजा गम्भीरसिंह का यह दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान है, जो उनकी श्री राधाकृष्ण-भक्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। आषाढ़ शुक्ला दशमी के दिन रथयात्रा जैसा ही पुनर्यात्रा का उत्सव भी मनाया जाता है। यह पुनर्यात्रा भी महाराज गम्भीरसिंह ने ही आरम्भ की थी।

महाराजा गम्भीरसिंह के शासन-काल में ही 'श्रीकृष्ण-रस-संगीत' नामक ग्रन्थ का सम्पादन उनकी आज्ञा से किया गया था। उसमें झूलन नामक उत्सव मनाने का उल्लेख है। कहा जाता है कि वृन्दावन के झूलन-उत्सव के अनुकरण पर आपने मणिपुर में श्रावण शुक्ला एकादशी से पूर्णिमा तक श्री गोविन्दजी मन्दिर में झूलन-महोत्सव का आयोजन आरम्भ किया जो आज भी प्रचलित है। अब इसको झूलन-यात्रा कहा जाता है। श्री गोविन्द-मन्दिर में फव्वारे के सम्मुख श्रीराधाकृष्ण-विग्रह को एक झूले पर बैठाकर झुलाया जाता है। इस अवसर पर वैष्णव धर्म-ग्रन्थों तथा वैष्णव कवियों के संयोग शृङ्गार के पद गाये जाते हैं।

महाराजा गम्भीरसिंह साधु, सन्तों एवं ब्राह्मणों के भी भक्त थे। आपके शासन-काल में चैतन्य-सम्प्रदाय के महाशय ठाकुर (श्री निधिराम आचार्य के उत्तराधिकारी), नवकिशोर गोसाइँ (श्री अद्वैत के उत्तराधिकारी) तथा एक अन्य गोसाइँ जो श्री नित्यानन्द के वंशज थे, मणिपुर पधारे थे। महाराजा ने इन तीनों सन्तों का भव्य स्वागत किया तथा इन्हें पर्याप्त दक्षिणा देकर बिदा किया था।

महाराजा गम्भीरसिंह ने मणिपुर में वैष्णव-भक्ति के तान्त्रिक रूप का प्रचार किया, जो सफल नहीं हुआ, क्योंकि मणिपुर की जनता तान्त्रिक वैष्णव भक्ति में विश्वास नहीं रखती थी। इस तान्त्रिक भक्ति के प्रचार से सम्बद्ध महाराजा के जीवन की एक घटना प्रसिद्ध है—कहते हैं कि वे मणिपुर के आदिकालीन देवता पाखङबा का भगवान् विष्णु के रूप में दर्शन करना चाहते थे। उन्होंने अपनी इस प्रबल इच्छा के सम्बन्ध में राजदरबार के पण्डित मुङयाम्बा से कहा। मुङयाम्बा ने राजा से कहा कि आप बिना पाखङबा के दर्शन के दीर्घ काल तक जीवित रह सकते हैं, किन्तु दर्शन के पश्चात् आपकी मृत्यु शीघ्र हो जायगी। महाराज मृत्यु को अंगीकार करने के लिए तैयार हो गये। यह उनकी जिद थी। पण्डित मुङयाम्बा ने पाखङबा को मन्त्रशक्ति द्वारा आमन्त्रित किया। कहते हैं कि काङला स्थित ङुङजेङ पोखरी के किनारे रविवार १८ नवम्बर १८३३ ई० को उन्हें पाखङबा ने विष्णु भगवान् के रूप में दर्शन दिये। ११ नवम्बर १८३३ ई० के दिन महाराजा ने लङथबाल में एक कुटिया का निर्माण करवाया था जिसमें वे तपस्या करते थे। भगवान् के दर्शन के बाद महाराजा के जीवन की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया, किन्तु अन्त में मंगलवार ९ जनवरी १८३४ ई० के दिन एक छोटे-से सर्प के काटने से उनकी मृत्यु हो गयी।

आपके दो पद उपलब्ध हैं। वे नीचे दिये जाते हैं—

(१)

हा हा प्राण राधे कृष्ण एइबार करुणा करे।
निकुञ्ज मन्दिर मांझे कुसुम शयन राजे।
कबे से देखिब दुहाकार।
श्री कृष्ण मुजुरी सखो निज प्राण प्रिय सखी
अनुचरी हइबे गनन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृपा दृष्टि करि मोर दुइ श्रीचरण तले ए
दासिनी मृदु संवाहन
निभृत निकुञ्ज बने नित्य विलासिनी राधे।
करुणा करू मुजि नव हेम गौरी राधे।
दुहुँ श्री चरणे प्राण समर्पिलु।
सुगन्धि चन्दन लया दुहुँ अंगे लेपन दिया।
जत्ने पुष्पेर माला दुहूँ गले पढ़ाइब।
दीनहीन गम्भीरसिंह एइ अभिलाष।
निति-निति जुगल सेवाएइ अभिलाष।

'हे राधाकृष्णजी, आप मेरे प्राण हैं, मुझ पर एक बार करुणा कीजिये। निकुञ्ज मन्दिर में आप दोनों कुसुम-शय्या पर सुशोभित हैं। मैं आप दोनों को कब देख सकूँगा? हे राधाजी! आप श्रीकृष्ण भगवान् की प्राणप्रिया सखी हैं और आपकी गणना उनकी सेविकाओं में होती है। हे राधाजी! आप निभृत निकुञ्ज और वन में नित्य विलास करती हैं। मुझ पर कृपा-दृष्टि कीजिये तथा अपने श्रीचरणों की सेवा का अवसर दीजिये। हे नव हेम राधाजी! आप मुझ पर करुणा कीजिये। मेरे प्राण आप दोनों के श्रीचरणों में समर्पित हैं। सुगन्धित चन्दन लेकर आप दोनों के अंगों का लेपन किया गया है। मैं आप दोनों के कण्ठ में यत्नपूर्वक पुष्पमाला बनाकर पहनाऊँगा। दीनहीन गम्भीरसिंह के मन में एक ही अभिलाषा है कि मैं आपकी युगल मूर्ति की नित्यप्रति सेवा करूँ।'

(२)

गौरांग प्रार्थना

एमन दयाल प्रभु कुथा पाबे आर,
ताहर चरण भक्ति लेश नाहि मोर।
अति कुष विषय ज्यों प्रवाह नदीर,
ताहाते भासिया डुबिल उपाय नाहि मोर॥
जदि तुम्हार श्री चरण भजन करिताम।
तबे विषय प्रवाह हइते उद्धार पाइतम॥
श्रद्धा वा अश्रद्धा यदि गाइमु तुम्हार नाम।
गाइते-गाइते मोर जाङक जीवन॥
श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु दासेर अनुदास।
दीनहीन गम्भीरसिंह एइ अभिलास॥

'हे मन! तुम प्रभु-सा दयालु और कहाँ पाओगे? हे प्रभु! तुम्हारे चरणों में मेरी लेशमात्र भक्ति नहीं है। नदी के अति प्रबल प्रवाह के समान ही विषय-वासना का कुटिल प्रवाह है जिसमें मैं डूब रहा हूँ। इससे उद्धार का मेरे लिए कोई उपाय नहीं है। यदि मैं आपके श्रीचरणों का भजन करूँ तो इस विषय-प्रवाह से मेरा उद्धार सम्भव है। यदि मैं श्रद्धा या अश्रद्धापूर्वक आपके नाम का जप करता रहूँ और आपका गुणगान करते हुए मेरा जीवन व्यतीत हो तो मेरा उद्धार सम्भव है। दीन-हीन गम्भीरसिंह के मन में केवल एक अभिलाषा है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु मुझे अपना दास बना लें।'

महाराज गम्भीरसिंह के द्वारा प्रचारित स्वर्ण एवं रजत-मुद्राओं पर 'श्री श्री राधा गोविन्द पदारविन्द मनो मधुकरस्य' तथा 'श्री राधा गोविन्द चरण सेवकस्य' शब्द अंकित हैं, जो उनकी प्रगाढ़ भक्ति के परिचायक हैं।

ज० सिं०

(महाराजा) गरीबनिवाज़ [पामहैबा]

महाराजा चराईरौङ्बा ने सन् १७०४ ई० में यज्ञोपवीत धारण किया था और १७०७ ई० में भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाया था। उनकी दूसरी रानी निङथिन चाइबी की कोख से भगवान् की कृपा से मायम्बा या पामहैबा का जन्म हुआ था। ये कालान्तर में महाराजा गरीबनिवाज़ के नाम से सन् १७०९ ई० में मणिपुर के सिंहासन पर बैठे। मणिपुर में श्री राधाकृष्ण-भक्ति का श्रीगणेश इन्हींके द्वारा हुआ। इनके राजसिंहासन पर आसीन होने के साथ मणिपुर में एक नये युग का पदार्पण हुआ। महाराजा गरीबनिवाज़ की तुलना मणिपुर के इतिहासकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत के इतिहास में सम्राट् हर्षवर्द्धन से करते हैं। मणिपुर को शताब्दियों से एक योग्य शासक और नेता की आवश्यकता थी। महाराज गरीबनिवाज़ द्वारा इस अभाव की पूर्ति हुई। उन्होंने अपने बाहुबल से जहाँ एक ओर बर्मा की राजधानी आवा पर विजय प्राप्त की वहीं दूसरी ओर मणिपुर में धार्मिक क्रान्ति का भी सूत्रपात किया।

मायम्बा उपनाम पामहैबा के जन्म से ईश्वर-कृपा की एक कथा जुड़ी हुई है। उन दिनों मणिपुर में पटरानी के अतिरिक्त यदि किसी अन्य रानी की कोख से पुत्र जन्म लेता था तो उसकी हत्या कर दी जाती थी। यह परम्परा इसलिए प्रचलित थी कि राज्य-सिंहासन को लेकर भाई-भाई आपस में न झगडें। पामहैबा का जन्म दूसरी रानी के गर्भ से हुआ था अतः उनकी हत्या निश्चित थी। उनके नाना ने नवजात बालक को चुपचाप राजधानी से दूर अपने किसी नागा मित्र के यहाँ पहुँचा दिया तथा रानी ने राजा को यह बता दिया कि उनके गर्भ से एक पत्थर का जन्म हुआ है। इस प्रकार शिशु पामहैबा के प्राणों की रक्षा हुई। यह ईश्वर-कृपा का चमत्कार ही था।

चराईरौङ्बा की पटरानी के कोई सन्तान नहीं हुई। कहते हैं कि एक बार जब वे नागा-क्षेत्र के दौरे पर गये तो उन्होंने पामहैबा को देखा। बालक के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन्होंने नागा-जाति के मुखिया के सम्मुख बालक को गोद लेने का प्रस्ताव किया, जिसे नागा-प्रधान ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस प्रकार पामहैबा पुनः अपने खोये हुए स्थान पर लौट आये।

यह कथा भी प्रचलित है कि पामहैबा के जन्म के चार वर्ष बाद जब पटरानी को उनके जन्म का समाचार और नागा-प्रधान के द्वारा पालन-पोषण की खबर गुप्तचरों से प्राप्त हुई तो उन्होंने गोपनीय रूप से उनकी हत्या का षड्यन्त्र किया किन्तु पुनः भगवत्-कृपा से बालक पामहैबा बच गये। बाद में उनकी माता ने पति को पामहैबा के जन्म व पालन-पोषण सम्बन्धी बात बता दी और महाराजा ने उन्हें युवराज के रूप में स्वीकार कर लिया। अतः युवराज पामहैबा पिता की मृत्यु के बाद मणिपुर के सिंहासन पर बैठे।

महाराजा गरीबनिवाज़ पामहैबा का अछूत नागा-जाति में पालन-पोषण होने के कारण उन्हें नागावंशी कहकर कुछ लोगों ने विरोध भी किया, किन्तु उनकी माता एवं नाना ने उनका राजवंशी होना सिद्ध कर दिया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि शान्तिदास अधिकारी नामक वैष्णव सन्त, जो वैष्णव-धर्म के प्रचार हेतु उस समय मणिपुर आये हुए थे, ने पामहैबा के राजवंशी होने के तथ्य की पुष्टि की थी। इन्होंने अपने शासन-काल में कई बार बर्मा पर आक्रमण किये और विजय प्राप्त की।

चैथरोल कुमबाबा नामक हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थ में महाराजा गरीबनिवाज़ के सन् १७१७ ई० में उपनयन-संस्कार का उल्लेख और गुरु गोपालदास नामक किसी वैष्णव साधु के द्वारा उन्हें दीक्षा देने का वर्णन है। गुरु गोपालदास किस मत के अनुयायी थे इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। भाग्यचन्द्र-चरित नामक ग्रन्थ में रामदास वैरागी द्वारा उन्हें दीक्षा देने का उल्लेख है। गरीबनिवाज़ के द्वारा रामानन्दी सम्प्रदाय से पूर्व गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की बात भी कुछ इतिहासकार कहते हैं। सत्य जो भी हो, तथ्य यह है कि गरीबनिवाज़ ने गौड़ीय वैष्णव-धर्म को अपने शासन-काल में मणिपुर का राज्य-धर्म घोषित किया था।

महाराजा गरीबनिवाज़ ने सन् १७२२ ई० में भगवान् श्रीकृष्ण का मन्दिर बनवाया था। सन् १७१६ ई० में इनके द्वारा कालिका मन्दिर बनवाने के प्रमाण भी उपलब्ध हैं। सन् १७२५ ई० में इन्होंने निंथैम पुखरी का निर्माण करवाया और उसके किनारे मन्दिर बनवाकर वृन्दावनचन्द्र और कालिका की मूर्तियों की स्थापना करवायी। सन् १७२६ ई० में इन्होंने घरों में सूअर व मुर्गी पालने की निषेधाज्ञा जारी की थी। उसी समय से वैष्णव भोजन-सम्बन्धी नियमों के कड़ाई से पालन करने के आदेश दिये गये। सन् १७३२ ई० में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किरोइ नामक वंश के लोगों द्वारा गोमांस खाने पर उन्हें सार्वजनिक रूप से पीटा गया। जो लोग सूअर पालते थे, उन्हें अर्थ-दण्ड के साथ ही गाँवों से निर्वासित कर दिया गया।

चैथरोल कुमवाबा के अनुसार सन् १७२४ ई० में राजा ने अपने पूर्वजों की अस्थियों को भूमि में से खोदकर निकलवाया और निङ्थी नदी के किनारे ले जाकर उनका दाह-संस्कार कराया। उसी समय से मणिपुर में दाह-संस्कार तथा अस्थि-संचय की प्रथा आरम्भ हुई। मणिपुर में सती-प्रथा का कभी प्रचलन नहीं था, किन्तु सन् १७२५ ई० में राजा के पुत्र सनाहल मुरारी के मरने पर उनकी दो पत्नियों के सती होने का उल्लेख मिलता है। उनकी पुत्री प्रथम मणिपुरी महिला थी जो वृन्दावन गयी थी। उसके बाद ही स्त्री-पुरुषों के वृन्दावन जाने की परम्परा चल पड़ी, जो आज भी कायम है।

सन् १७१६ ई० में सिलहट से किसी शान्तिदास अधिकारी के अपने दो शिष्यों भगवानदास एवं नरसिंहदास के साथ मणिपुर आने का वर्णन है। इनका महाराजा द्वारा भव्य स्वागत-सम्मान किया गया। गोसाइँ शान्तिदास ने राजा तथा सामन्तों को रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित किया तथा स्थानीय सनामही धर्म की तुलना में रामानन्दी सम्प्रदाय की श्रेष्ठता सिद्ध की। महाराजा के पुत्र श्यामशाह तथा सेनापति हाओबम अकोङ ने भी उनका समर्थन किया। कार्तिक पूर्णिमा के दिन सन् १७३७ ई० में लिलौंग नामक स्थान पर राजा ने ३०० व्यक्तियों के साथ यज्ञोपवीत धारण किया। इसके बाद के वर्षों में अन्य लोगों को भी यज्ञोपवीत तथा दीक्षा दी गयी और उनसे मांस-मदिरा न खाने की शपथ दिलायी गयी। इसी समय इम्फाल नदी के किनारे रामजी प्रभु का मन्दिर बनवाया गया तथा उसमें राम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गयी। यह मन्दिर आज भी विद्यमान है। सन् १७२९ ई० में महाबली हनुमान् ठाकुर के मन्दिर का निर्माण किया गया। इस प्रकार शान्तिदास महन्त की प्रेरणा से गरीबनिवाज़ ने मणिपुर में धार्मिक क्रान्ति की नींव डाली। कहा जाता है कि मणिपुर के प्राचीन धर्म के देवताओं को गाड़ दिया गया। इतना ही नहीं, मणिपुरी भाषा में कीर्तन या प्रार्थना करना निषिद्ध कर दिया गया तथा 'मैतै मयेक' या मणिपुरी लिपि का प्रयोग बन्द कर दिया गया। उसके स्थान पर बंगला लिपि का प्रयोग आरम्भ हुआ। कहते हैं कि राजा से मिलकर शान्तिदास ने १२० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों को जला डाला, जिनमें केवल छः ग्रन्थ बचे, जो अग्नि में नहीं जल सके। इस प्रकार गरीबनिवाज़ ने मणिपुरी धार्मिक ग्रन्थ, जिन्हें 'पुया' कहा जाता है, को नष्ट करवा दिया।

सम्भवतः संसार में शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ पर्व-त्योहारों पर या संस्कारों के अवसर पर अपनी भाषा के लोक-गीत न गाये जाते हों, किन्तु इस निषेधाज्ञा के उपरान्त किसी भी धार्मिक कृत्य, संस्कार या पर्व-त्योहार पर केवल बंगला, संस्कृत, मैथिली एवं ब्रज भाषा के पद गाये जाने लगे। फलतः लोकगीतों एवं स्थानीय भाषा के गीतों की परम्परा एकदम समाप्त हो गयी। राजा की घोषणा के अनुसार जो व्यक्ति इसका पालन नहीं करेगा, उसे पाप लगेगा। मणिपुरी भाषा में भजन या गीत गानेवाला यदि दिन में मरेगा तो कौआ और रात में मरेगा तो उल्लू के रूप में दूसरा जन्म लेगा। 'पेना' या एकतारा पर गानेवाला व्यक्ति नरक में जायगा। इस राजाज्ञा के फलस्वरूप मणिपुरी लोकगीतों के गान की प्रथा समाप्त हो गयी, यह शताब्दियों के बाद वर्तमान युग में पुनर्जीवित हुई।

गंगा-स्नान एवं प्रायश्चित्त की परम्परा भी महाराजा गरीबनिवाज़ के समय में आरम्भ की गयी। उनके शासन-काल में गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का वर्चस्व स्थापित हो गया, किन्तु उसे दो पक्षों से विरोध का सामना करना पड़ा—एक तो रामानन्दी एवं निम्बार्क आदि सम्प्रदायों के द्वारा और दूसरा स्थानीय 'मैतै' धर्म के कट्टर समर्थकों द्वारा। इस कड़े विरोध के उपरान्त भी चैतन्य-सम्प्रदाय की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभुता मणिपुर में स्थापित हो ही गयी। यह प्रभाव यहाँ के जन-जीवन पर आज भी बना हुआ है।

बीसवीं शताब्दी में महाराज चूड़ाचाँद सिंह के समय में मणिपुरी भाषा में गीत गाने की स्वतन्त्रता फिर से दी गयी। परिणामस्वरूप मणिपुरी भाषा-साहित्य के विकास का अवरुद्ध मार्ग पुनः प्रशस्त हो गया। जब महाराज चूड़ाचाँद सिंह से विद्यार्थियों ने होली के अवसर पर मणिपुरी भाषा में गीत गाने की अनुमति माँगी तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि मणिपुरी भाषा में भी गायन हो सकता है। यद्यपि तब से 'डोल-यात्रा' (दल-यात्रा) के दल मणिपुरी भाषा में गीत गाते हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त तो सारे गीत बंगला, संस्कृत, ब्रजबोली आदि भाषाओं के ही गाये जाते हैं।

स्थानीय 'मैतै' धर्म के आदि देवताओं की पूजा-अर्चना महाराजा गरीबनिवाज़ के समय से निषिद्ध कर दी गयी। मणिपुर के इतिहासकारों ने इस घटना को 'धार्मिक क्रान्ति' नाम दिया है। किसी भी समाज के खान-पान, रीति-रिवाज एवं धार्मिक कृत्यों में इतना महान् परिवर्तन शायद ही कभी हुआ हो। मणिपुर के जीवन की सम्पूर्ण शैली ही गरीबनिवाज़ के शासन-काल में बदल गयी। महाराज ने जीवन के अन्तिम काल में वर्णाश्रम-धर्म परम्परानुसार संन्यास ले लिया था।

महाराजा गरीबनिवाज़ के शासन-काल में देश के विभिन्न भागों से धर्म-प्रचारकों के मणिपुर में आने का उल्लेख मिलता है। सन् १७१४ ई० में कृष्णदास और १७१५ ई० में ३९ वैरागियों एवं एक धर्मोपदेशक के असम से यहाँ आने का प्रमाण मिलता है। सन् १७२८ ई० में शान्तिदास अधिकारी नामक गोसाँई आये। शान्तिदास सिल्हट से आये थे और उन्होंने मणिपुर में श्री राम की सर्वोच्च देवता के रूप में पूजा करने की परम्परा स्थापित की और सन् १७३७ ई० में महाराज गरीबनिवाज़ को दीक्षा दी थी।

गरीबनिवाज़ ने लगभग चालीस वर्ष तक मणिपुर पर शासन किया। ये एक महान् वैष्णव शासक थे जिनमें क्षत्रियोचित वीरता के साथ वैष्णव विनम्रता का अद्भुत सम्मिश्रण था। उन्होंने गरीबनिवाज़ की उपाधि पायी तथा गरीबों के उद्धार के कार्य भी किये। इस फारसी विरुद को अपनाने से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि मणिपुर पर उस समय मुस्लिम धर्म का प्रभाव प्रारम्भ हो चुका था। इनका वास्तविक नाम गोपालसिंह बताया जाता है।

असमी इतिहासकार श्री आर० एम० नाथ का मत है कि गरीबनिवाज़ उपाधि इन्हें दिल्ली के सम्राट् से प्राप्त हुई थी। इनके शासन-काल में विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों के धर्म-प्रचारकों के आने तथा उनको प्रभावित करने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। इस सम्बन्ध में विवाद भी हैं, किन्तु इतना सत्य है कि इनके शासन-काल में ही वैष्णव-धर्म राज्य-धर्म घोषित किया गया तथा उसे राजकीय संरक्षण प्रदान किया गया। वैष्णव धार्मिक ग्रन्थों एवं गायन-परम्परा का प्रचलन भी इसी समय हुआ और उसे लोकप्रियता प्राप्त हुई। इनके द्वारा निर्मित मन्दिर एवं परम्पराएँ अब भी उनके वैष्णव-भक्त होने के प्रमाण के रूप में बच रही हैं, अन्य साक्ष्य कालकवलित हो चुके हैं।

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि इनके धार्मिक विचारों का विरोध जनता तथा सामन्तों द्वारा किया गया था। अजितशाह नामक उनका पुत्र विद्रोही बन गया था। जब गरीबनिवाज़ बर्मा से लौट रहे थे तो अजितशाह के आदमियों ने माङ्लूं नदी के किनारे उनके ज्येष्ठ पुत्र शामशाह, कुछ दरबारियों और शान्तिदास व उनके १७ शिष्यों की हत्या कर दी। अजितशाह ने ये हत्याएँ इसलिए करवायी थीं कि वह गरीबनिवाज़ के धार्मिक कार्यों से घोर असन्तुष्ट था। किन्तु कुछ इतिहासकारों का मत है कि अजितशाह को इन्होंने राज्य-सिंहासन सौंप दिया था और शामशाह, जो वास्तविक उत्तराधिकारी थे, को उसकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इच्छा से राजसिंहासन के अधिकार से वंचित कर दिया था। यद्यपि शामशाह ने स्वेच्छा से अपने अधिकार का त्याग किया था, किन्तु अजितशाह को यह सन्देह हो गया था कि गरीबनिवाज़ उन्हें राजसिंहासन पर आसीन करना चाहते हैं। इसलिए उसने इन सबकी हत्या करवा दी। इन नृशंस हत्याओं की खबर जब मणिपुर की जनता को मिली तो उसने अजितशाह को अपदस्थ करके उनके स्थान पर अनन्तशाह को राज्यसिंहासन पर बैठाया। अजितशाह (उपनाम चितशाह) को निर्वासित कर दिया गया। इस घटना से मणिपुरी जनता में गरीबनिवाज़ की लोकप्रियता का पता चलता है। अनन्तशाह ने अपने पिता गरीबनिवाज़ का श्राद्ध विधि-विधान के साथ किया।

मणिपुर में गौड़ीय वैष्णव-धर्म के संस्थापक एवं परमभक्त के रूप में महाराज गरीबनिवाज़ अनन्त काल तक स्मरण किये जायँगे।

ज० सि०

(महाराज) चन्द्रकीर्ति सिंह

महाराज चन्द्रकीर्ति सिंह (१८५० -'८८ ई०) महाराज गम्भीरसिंह के पुत्र थे। जिस समय महाराज गम्भीरसिंह की मृत्यु हुई तब आपकी अवस्था केवल दो वर्ष की थी। इन्हें सन् १८३४ ई० में मणिपुर के राजसिंहासन पर बैठाया गया तथा सेनापति नरसिंह इनके संरक्षक नियुक्त किये गये। महाराजा चन्द्रकीर्ति के नाम से सन् १८३४ से १८४४ ई० तक नरसिंह ने शासन-कार्य चलाया, किन्तु बाद में एक षड्यन्त्र के कारण इनकी माँ महारानी कुमुदिनी देवी सन् १८४४ ई० में पुत्र को लेकर कछार चली गयीं। महारानी एवं चन्द्रकीर्ति सिंह के मणिपुर से चले जाने के बाद सन् १८४४ ई० में नरसिंह मणिपुर के महाराजा बन गये। चन्द्रकीर्ति सिंह को नरसिंह के मृत्युकाल (सन् १८५० ई०) तक कछार एवं सुरमा घाटी में निर्वासन में जीवन व्यतीत करना पड़ा। वहाँ ये गोसाईं राधावल्लभ चक्रवर्ती के सम्पर्क में आये। इनका बाल्यकाल भी नरसिंह महाराज के संरक्षण में श्री राधाकृष्ण-भक्ति के वातावरण में ही व्यतीत हुआ था। कछार-प्रवास में वह भक्ति-भावना और प्रगाढ़ हुई।

सन् १८५० ई० में मणिपुर लौटने पर महाराजा चन्द्रकीर्ति ने अपने शासन-काल में श्री राध कृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक उल्लेखनीय कार्य किये। सन् १८६७ ई० की अक्षय तृतीया से आपने भागवत-सप्ताह का आयोजन किया। इस समारोह की अन्तिम रात्रि में महाराज चन्द्रकीर्ति को स्वप्न में श्रीराम और श्रीकृष्ण भगवान् ने नटवर वेष में दर्शन दिये तथा आज्ञा दी कि तुम हमारे विग्रह श्री गोविन्दजी मन्दिर में प्रतिष्ठित करो। ५ जुलाई १८६८ ई० को इन्होंने विग्रहों की प्रतिष्ठा करवाकर उक्त आज्ञा का पालन किया। इस अभिषेकोत्सव पर सात नट संकीर्तन-दलों ने क्रमशः संकीर्तन किया। राजा चन्द्रकीर्ति ने श्री राम-कृष्ण आरती के प्रमुख गायक के रूप में संकीर्तन में भाग लिया था। आज तक इन विग्रहों की मणिपुर में पूजा की जाती है। महाराज चन्द्रकीर्ति ने श्री राम एवं सीताजी आदि की मूर्तियों को उरिपोक से लाकर निंथेमपुखरी नामक स्थान पर प्रतिष्ठित किया। इन सब घटनाओं के साथ 'चैथरोल कुमबाबा' में लिखा है कि आपने अनेक विग्रह बनवाकर उनका जनता में वितरण किया तथा विभिन्न केन्द्रों की स्थापना करके मणिपुर में श्री राधाकृष्ण-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया।

राजवंश के इतिहास-ग्रन्थ 'चैथरोल कुमबाबा' में यह भी लिखा है कि महाराज चन्द्रकीर्ति के शासन-काल में कई बार अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई। एक बार ७ महीने तक वर्षा नहीं हुई। अतः श्री गोविन्दजी मन्दिर में 'बर कीर्तन' का आयोजन किया गया, जिससे वर्षा हुई। एक अन्य अवसर पर १०८ गायों का दूध श्री गोविन्दजी मन्दिर में वर्षा के लिए अर्पित किया गया था। प्रत्येक पूजा के बाद वर्षा होने से मणिपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जनता की श्री राधाकृष्ण के प्रति भक्ति-भावना अधिक प्रगाढ़ हुई।

महाराज चन्द्रकीर्ति ने श्री राधाकृष्ण-भक्ति के सिद्धान्तों को क्रियान्वित करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। उन्होंने भक्तों, भक्ति-संगीत के गायकों तथा धार्मिक ग्रन्थों के अनुवादकों को सम्मान दिया। ये समय-समय पर उन्हें टांगा नामक स्वर्ण या रजत-मुद्राएँ भेंट करके प्रोत्साहित करते थे।

इनके शासनकाल में श्री गोविन्दजी की कृपा-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई। सन् १८६९ ई० में मणिपुर में भयंकर भूकम्प आया। परिणाम-स्वरूप श्री गोविन्दजी मन्दिर तथा विग्रह को हानि पहुँची और पुजारी मन्दिर की ईंटों के नीचे दब गया। दो दिन के बाद जब उसको ईंटों के ढेर व मलबे के नीचे से निकाला गया तो श्री गोविन्दजी की कृपा के कारण वह जीवित पाया गया था। मन्दिर एवं विग्रह का आपने पुनर्निर्माण करवाया।

श्री गोविन्दजी के मन्दिर के पुनर्निर्माण के बाद १ जुलाई १८६९ ई० को उद्घाटन-समारोह आयोजित किया गया। राज्य की ओर से नवद्वीप, वृन्दावन, अम्बिका व पुरी में भी यह उत्सव आयोजित करवाया गया। इम्फाल में इस अवसर पर भव्य उत्सव का आयोजन हुआ। इस अवसर पर आयोजित कीर्तन में १९ संकीर्तन-दलों ने भाग लिया। साठ ब्राह्मण खाद्य-सामग्री बनाते रहे और प्रसाद के रूप में एक पक्ष तक यह प्रसाद जनता को वितरित किया गया। महाभारत के सभापर्व का एक दृश्य जनता के मनोरंजनार्थ नाटक के रूप में प्रस्तुत किया गया।

महाराजा चन्द्रकीर्ति सिंह ने सन् १८७५ ई० में श्री गोविन्दजी मन्दिर में दो बड़े घण्टे समर्पित किये। इनमें से एक खण्डित घण्टा आज भी श्री गोविन्दजी मन्दिर के दक्षिणी-पश्चिमी कोने में रखा है, जिसकी ऊँचाई ३ फुट ८ इंच और परिधि ८ फुट ८ इंच है। इसका वजन १६ मन है। आपने श्री हनुमान्जी एवं गरुड़जी की मूर्तियाँ बनवाकर श्री गोविन्दजी के मन्दिर के मुख्य द्वार पर प्रहरी के रूप में स्थापित करवायीं।

इनके शासनकाल में धार्मिक मेलों का आयोजन किया जाता था, जिनमें कलाकार अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन करने का अवसर पाते थे। इन मेलों में आनेवाले दर्शनार्थियों को श्री गोविन्दजी का प्रसाद वितरित किया जाता था। प्रसाद की सामग्री का एक ऊँचा टीला खड़ा किया जाता था। ५ मई १८८० ई० के दिन, मेले की समाप्ति के समय 'भक्त प्रह्लाद' नाटक का आयोजन किया गया था।

महाराजा चन्द्रकीर्ति सिंह मणिपुर से विद्वानों को नवद्वीप एवं वृन्दावन भेजते थे जिससे कि वे लोग वहाँ से वैष्णव धर्म-ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ संग्रह करके लायें। इनके शासनकाल में श्री राधाकृष्ण-भक्ति चरम विकास को पहुँची। इनका शासनकाल मणिपुर की संस्कृति का पुनर्जागरण-काल कहा जाता है। राजप्रासाद की लोइसङ्ब नामक संस्था में देश के विभिन्न भागों से संग्रहीत पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखने का कार्य महाराजा चन्द्रकीर्ति ने ही प्रारम्भ किया था। वैष्णव-धर्म के गोस्वामियों और बंगाली उपदेशकों से आपने रास-साहित्य की रचना करवायी थी, जिसकी मणिपुर के पण्डितों द्वारा प्रतियाँ तैयार करायी गयीं। वैष्णव भक्ति-ग्रन्थों की शिक्षा के प्रचलन का भी श्रेय महाराजा चन्द्रकीर्ति सिंह को ही है। प्रत्येक गाँव-गली में इन धार्मिक ग्रन्थों की पण्डित शिक्षा देते थे और उपदेश भी। सम्पूर्ण राज्य में, पर्वतों को छोड़कर, बहुत बड़े पैमाने पर भक्ति एवं धार्मिक सिद्धान्तों की जन-शिक्षा की व्यवस्था एक अद्भुत उदाहरण है। आपके शासनकाल में देश के विभिन्न भागों से साधु-महात्माओं के आने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। महाराजा उनका स्वागत-सत्कार करते थे, साथ ही धार्मिक प्रवचन, वाद-विवाद आदि का भी आयोजन किया जाता था और जब ये लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लौटते थे तो इन्हें पर्याप्त भेंट व दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया जाता था।

आपने ब्रह्मपुर के श्री मोहन राय ठाकुर के मन्दिर में एक बहुत बड़ा घण्टा समर्पित किया था जो आज तक सुरक्षित है। 'श्रीहितर-इतिवृत्त' में महाराजा चन्द्रकीर्ति द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु के पैतृक गृह के श्री मन्दिर में दो मन वजन का एक बड़ा घण्टा व बहुमूल्य सामग्री भेंट करने का उल्लेख है।

महाराजा चन्द्रकीर्ति धार्मिक सहिष्णुता के लिए भी प्रसिद्ध हैं। हिन्दू-धर्म के अन्य सम्प्रदाय जैसे, शैव, शाक्त, रामानन्दी वैष्णव आदि के प्रति भी आपकी सम्मानपूर्ण भावना के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इनके शासनकाल में इन विभिन्न सम्प्रदायों के साधु-सन्त मणिपुर में आये। राजा ने उनका स्वागत किया तथा प्रवचन देने की सुविधा प्रदान की। इतना ही नहीं, उन्हें स्थानीय कृष्ण-भक्तों और पण्डितों के साथ सभाएँ आयोजित करके वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श का भी अवसर दिया। इतिहासकारों की मान्यता है कि ब्रह्मानन्द पुरी नामक एक तान्त्रिक को महाराजा ने अपने दरबार में आमन्त्रित किया था। तब से मणिपुर में सम्भवतः काली-पूजा की परम्परा आरम्भ हुई। यही नहीं, इनके शासनकाल में मुसलमान जनता के साथ भी सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया जाता था। परम्परानुसार प्रत्येक प्रजाजन को राजा के सम्मुख झुककर प्रणाम करना पड़ता था। जब महाराजा चन्द्रकीर्ति को ज्ञात हुआ कि इस्लाम-धर्म और कुरान के अनुसार खुदा के अतिरिक्त किसीके सम्मुख सिर झुकाना निषिद्ध है तो उन्होंने राजाज्ञा द्वारा मुसलमानों को सिर झुकाकर नमस्कार करने के स्थान पर केवल 'सलाम' करने की अनुमति दे दी। इन्होंने उस समय के मुस्लिम मुखिया को नवाब की उपाधि प्रदान करके अपनी धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का परिचय दिया। आपने प्राचीन मणिपुर के धर्म का समादर कर उसके देवताओं की भी पूजा आरम्भ करवायी। श्री राधाकृष्ण-भक्ति में इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने शाक्त मत का भी संस्कार करके उसे मणिपुर में अहिंसक रूप दिया। इनके द्वारा जिरिबाम (कस्बा) में १८५१ ई० में देवी-पूजा का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके द्वारा नोङमाइचिङ पर्वत, जो शैव मत का केन्द्र है, पर मन्दिर एवं कुण्ड बनवाने तथा लक्ष्मी एवं सरस्वती-पूजा आरम्भ करने का भी उल्लेख मिलता है।

महाराज चन्द्रकीर्ति को स्थानीय कथाओं एवं रचनाओं में मणिपुर के प्राचीन धर्म तथा उनके देवताओं के विधि-विधान का उद्धारक माना जाता है। उन्होंने प्राचीन धर्म एवं देवताओं का वैष्णव-धर्म और उसके देवताओं के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध दिखानेवाले ग्रन्थों की रचना करायी और इस प्रकार प्राचीन मैतै धर्म को वैष्णव-धर्म के रंग में रँग डाला। सनामही लाईहुई नामक ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है। ये श्री गोविन्दजी के साथ ही ङोसाबा, पाखम्बा तथा सनामही (स्थानीय देवताओं) को भी पूजा करते थे।

महाराजा चन्द्रकीर्ति स्वयं एक कुशल संगीतज्ञ एवं गायक थे। संकीर्तन के क्षेत्र में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा है। इनके शासनकाल में ६४ भक्ति-रसों, जो कि बंगाल-संगीत घराने की विशेषता थी, के आधार पर मणिपुर में ६४ संकीर्तन-सत्रों का आयोजन करके जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। लैरैमा धूमल नामक राग इन्हींकी देन है। मणिपुरी मनोहरशाही राग के साथ खोल और करताल का प्रयोग किया जाता है। चन्द्रकीर्ति महाराजा के समय में लकड़ी की बनी खोल का प्रयोग आरम्भ किया गया। नृत्य के क्षेत्र में महाराजा चन्द्रकीर्ति की उल्लेखनीय देन है—नित्यरास, जिसमें श्री राधाकृष्ण के अभिसार और शृङ्गार-रसपूर्ण नृत्य का आयोजन किया जाता है। आपने नर्तन-रास की परम्परा भी स्थापित की। रास-नृत्य से परे (शृङ्खला या माला) का घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण को केन्द्र बनाकर उनके चारों ओर नर्तकियाँ एक वृत्त बनाती हैं, जिसे परें कहा जाता है। ये नर्तकियाँ उस वृत्त की परिधि पर नृत्य करती हैं। रास-नृत्य की परम्परा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में महाराज भाग्यचन्द्र ने 'भांगी-परें-अचौबा' की परम्परा आरम्भ की थी। आज भी प्रत्येक रास का आरम्भ उसीसे होता है। महाराज चन्द्रकीर्ति ने 'खुरम्बा-परें' और 'वृन्दावन-परें' नामक लास्य की नवीन पद्धतियों को जन्म दिया तथा प्रचलित किया। इस प्रकार श्री राधाकृष्ण-भक्तिपरक नृत्य-संगीत के क्षेत्र में भी महाराज चन्द्रकीर्ति का विशिष्ट योग-दान है।

इनके शासनकाल में सन्ध्या-लीला, नौका-लीला एवं कालियदमन नाटकों का नदी के किनारे अभिनय किया गया। मणिपुर के प्राचीन ग्रन्थों में महाराज चन्द्रकीर्ति के पुत्र महाराज-कुमार कामा के द्वारा कालियदमन नाटक-लीला में कृष्ण की भूमिका निभाने का उल्लेख है। द्रौपदी-वस्त्र-हरण, चित्रपद, उलूखल-बन्धन आदि अनेक नाटक किये जाते थे जिन्हें लीला कहा जाता था। द्रौपदी की भूमिका महाराज-कुमार गन्धारसिंह (चन्द्रकीर्ति सिंह के पुत्र) निभाते थे। तात्पर्य यह कि महाराजा चन्द्र-कीर्ति के शासन-काल में श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं पर आधारित नाटक बहुत लोकप्रिय थे और इसका श्रेय उनकी श्री राधाकृष्ण-भक्ति को ही जाता है।

महाराज चन्द्रकीर्ति बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। मणिपुर के इतिहास में आपका राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान है। अपने ३५ वर्ष के दीर्घ शासनकाल में इन्होंने श्री राधाकृष्ण-भक्ति को घर-घर में प्रचारित कर दिया। दैवयोग से ये ५४ वर्ष की अल्पायु में ही सन् १८८६ ई० में दिवंगत हो गये, किन्तु मणिपुर के जनमानस पर अपना तथा श्री राधाकृष्ण-भक्ति का अमिट प्रभाव छोड़ गये।

श्री राधाकृष्ण-सम्बन्धी आपका एक पद मिलता है। वह इस प्रकार है—

प्राणनाथ गोविन्द श्री राधिका जीवने,
हे वृषभानुनन्दिनि कृष्ण सुख स्वरूपिनी,
श्री चरणे करि निवेदन।
ललितादि सखी संगे, नानालीला करि रंगे,
एकबार देख्याह नयाने॥
तुमा दुहा श्री चरणे सखी संगे सुसेवन
देह मोरे हया सकरुण।
मुञि से असत मति,
तुमाते नाहिक रति पड़िछे विषयतिमिरे॥
मोर कर्म ना विचारी करू मोरे,
अंगिकारो राख मोरे तुया कुण्ड तीरे।
श्री राधावल्लभ नाथ व्रजांगनागन साथ,
मोर वांच्छा करुक पुरन॥
दीनहीन चन्द्रकीर्ति नाहि मोरे
आर गति भरसा करये श्रीचरणे॥

'हे प्राणनाथ श्री गोविन्दजी! जीवनदात्री श्रीमती राधिकाजी! हे वृषभानुसुता! आप कृष्ण के लिए सुख-स्वरूपिणी हैं, मैं आपके श्रीचरणों में निवेदन करता हूँ। आप ललितादि सखियों के साथ विभिन्न लीलाएँ करती हैं। आप दोनों के श्रीचरणों में ये सखियाँ सेवारत हैं, आप मुझ पर कृपा कीजिये तथा एक बार दर्शन का अवसर दीजिये। मेरी बुद्धि कलुषित है अतः विषय-तिमिर में पड़कर मैं आपसे अनुराग नहीं कर पाता हूँ। आप मेरे कर्मों पर विचार न कीजिये और मुझे अंगीकार करके अपने कुण्ड के तट पर निवास करने का अवसर दीजिये। हे श्री राधाजी! हे वल्लभनाथजी, आप व्रजांगनाओं के साथ मुझ पर कृपा कीजिये और मेरी आकांक्षा पूर्ण कीजिये। दीनहीन चन्द्रकीर्ति अन्त में कहता है कि आपके श्रीचरणों का ही मुझे भरोसा है और मेरी कोई गति सम्भव नहीं है।'

ज० सिं०

चमू वैष्णवी

चमू वैष्णवी का जन्म सन् १८८४ ई० में तखैल लैकाइं में हुआ था। इनके पिता का नाम ख्वाइरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कपम शोरा सिंह और माता का नाम मेलांखोम्बी देवी था। माता-पिता के स्नेह के साथ इन्हें भक्ति-भावना की शिक्षा भी प्राप्त हुई। बचपन से ही भजन-संकीर्तन में भाग लेने तथा रास-लीला देखने में इनकी गहरी रुचि थी। इनका विवाह कोनजेंलेकाई निवासी चिंगावम याइमा सिंह के साथ सम्पन्न हुआ। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद भी पति-पत्नी ईश्वर-भक्ति में लीन रहते थे। नित्य-नियम पालन के साथ-साथ ये गृह-कार्य में भी दक्ष थीं। अतः उन्होंने सन्तान का पालन-पोषण भी किया और पति की सेवा भी।

गृहस्थ के कामों से समय निकालकर ये भगवद्-भजन, व्रत-उपवास भी करती थीं। वास्तव में इनका जीवन एक सती-साध्वी का जीवन था। ये चरखे पर सूत कातती थीं और भजन गाती रहती थीं। ईश्वर में इनकी अटूट आस्था थी। गौरांग महाप्रभु की स्तुति ये नियमपूर्वक करती थीं। भक्ति-भावना के कारण इन्होंने पति के साथ अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्राएँ कीं। ये वृन्दावन, नवद्वीप आदि स्थानों पर एकाधिक बार दर्शनार्थ गयीं।

हरिनाम-जप को ये बहुत महत्त्व देती थीं। इन्होंने अपने पौत्र श्री निशान सिंह को बाल्यकाल में हरि-नाम-जप का महत्त्व समझाया। श्री निशान, चमू वैष्णवी की बातें करते हुए बचपन की मधुर स्मृतियों में खो जाते हैं। एक बार वे कहने लगे कि मेरी दादी को उनकी भक्ति-भावना तथा धार्मिक कार्यों में लीन रहने के कारण लोग चमू वैष्णवी के नाम से पुकारते थे। दादी अनुगत लोगों को और मुझे बार-बार हरि-नाम-जप की महत्ता समझाती थीं और कहती थीं कि वे एक बार वृन्दावन-यात्रा पर गयीं तो तृतीय श्रेणी के रेल-डिब्बे में सफर कर रही थीं, पति भी साथ में थे। डिब्बे में कोई तान्त्रिक आया। भीड़-भाड़ के कारण यात्रियों से तान्त्रिक का झगड़ा हो गया। तान्त्रिक बहुत ही क्रोधित हो उठा और उसने झगड़ा करनेवाले यात्रियों को अपनी मन्त्र-शक्ति से मूर्च्छित कर दिया। चमू देवी ने यात्रियों की यह दशा देखी तो तिल एवं चावल लेकर हरि-नाम का जप किया और अपने पति को दिये कि ये तिल-चावल इन मूर्च्छित व्यक्तियों पर डाल दो। पति ने ऐसा ही किया, परिणामस्वरूप यात्रियों की मूर्च्छा टूट गयी। इस घटना को सुना-कर वे हरि-नाम का महत्त्व समझाती थीं और कहती थीं कि यह सभी रोगों या शोक के लिए अभेद्य कवच है। संसार के रोग-शोक से बचने तथा मोक्ष प्राप्त करने का यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है। अपने क्षेत्र तथा मणिपुर में इस भक्ति-भावना के कारण इन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की और निरन्तर लोगों को ईश्वर-भक्ति की प्रेरणा देती रहीं।

ये समय-समय पर अपने घर में धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन करती थीं। अपने घर के शूगाङ (आँगन) में इन्होंने तीन बार गोष्ठ-लीला का आयोजन करवाया था। गोष्ठ-लीला का आयोजन सामान्यतः सार्वजनिक मन्दिरों में किया जाता है। किन्तु कभी-कभी श्रद्धालु भक्त अपने घर के आँगन में भी इसकी व्यवस्था करते हैं। महीनों पहले नृत्य एवं संगीत-गुरु गोष्ठ-लीला के बाल कलाकारों को अपनी मण्डली सहित भक्त के घर की 'शंघोइ' (आँगन के पार घर के अग्रभाग में बना बरामदा, जिससे सटे कमरे आदि नहीं होते हैं तथा इसमें भजन, कीर्तन, सामूहिक भोज, विवाह आदि सभी कार्य सम्पन्न होते हैं) में अभ्यास कराते हैं। जब तक अभ्यास चलता है नृत्य-संगीत-गुरु एवं उनकी मण्डली तथा बाल कलाकारों को गृहस्वामी अपने यहाँ भोजन कराते हैं। लीला के दिन के उपरान्त गृहस्वामी को एक सामूहिक भोज का आयोजन करना पड़ता है, जिसमें नृत्य एवं संगीत-मण्डली तथा कलाकारों के अतिरिक्त गली-मोहल्ले या बस्ती के लोग भी सम्मिलित होते हैं, साथ में सगे-सम्बन्धी भी। यह विशाल भोज एक व्ययसाध्य कार्य होता है। जीवन में जहाँ एक बार भी ऐसी लीला का घर में आयोजन करना सम्भव नहीं हो पाता, वहाँ चमू वैष्णवी ने तीन-तीन बार गोष्ठ-लीला एवं सामूहिक भोज का आयोजन किया था। इससे भी उनकी भक्ति-भावना प्रकट होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन दिनों इनकी 'शंघोइ' में भजन-कीर्तन होते रहते थे। अपने ही घर के प्रांगण में स्थापित श्री राधाकृष्ण-मन्दिर में ये स्वयं नृत्य करती थीं। राधा-वियोग के गीत गाते-गाते ये इतनी भाव-विह्वल हो जाती थीं कि इनकी आँखों से निरन्तर आँसू बहते थे।

साध्वी चमू वैष्णवी ने संयमित जीवन-यापन किया था अतः वृद्धावस्था में भी इनका स्वास्थ्य अच्छा था। नब्बे वर्ष की दीर्घायु भोगकर सन् १९७४ ई० में इनका गोलोकवास हो गया। परमभक्ता चमू वैष्णवी ने अपना सम्पूर्ण जीवन कृष्ण-भक्ति में व्यतीत किया। अन्तिम समय तक ये श्री राधाकृष्ण-विग्रह के सम्मुख नाचती व गाती थीं। इन्होंने कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी पदों की रचना की अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। किन्तु इनके पौत्र निशानजी का कथन है कि ये नित्य-प्रति निम्न-पद गाती थीं। यह पद इनके द्वारा रचित है या अन्य किसी मणिपुरी कवि का है, यह बताना कठिन है। यहाँ उक्त पद अनुवाद सहित प्रस्तुत है—

गिरधारी मुकुन्द मुरारी,
चङ्जरी खुया खादा।
ननायबू लग्बजिगबियु,
जहाकती अटोल अतागी मपु नी॥

'हे गिरधर मुकुन्द मुरारी! आप शरण में आने-वालों को शरण में लीजिये। आप हमारे मार्ग-दर्शक बनिये। आप ही दीन-हीन निर्धन लोगों के स्वामी हैं।'

अपने जीवनकाल में ही ये एक महान् भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो गयी थीं। इन्होंने न केवल अपना जीवन भक्ति-भावना में व्यतीत किया, अपितु सम्पर्क में आनेवाले लोगों में भी राधाकृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार तथा तीर्थयात्रा में अपना तन-मन-धन समर्पित कर दिया। अतः ये आज भी लोगों द्वारा श्रद्धापूर्वक स्मरण की जाती हैं।

ज० सिं०

(महाराज) चराईरौङ्बा

सन् १४६७ ई० से १६९७ ई० के बीच मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन होनेवाले सभी राजे विष्णु-भक्त थे। किन्तु किसी धर्मगुरु ने उन्हें वैष्णव-धर्म में दीक्षित नहीं किया था। चराईरौङ्बा मणिपुर के प्रथम राजा हैं, जिनकी शास्त्रीय विधि द्वारा दीक्षा हुई थी।

ये मणिपुर के सिंहासन पर सन् १६९७ ई० में बैठे थे। चैथरोल कुमबाबा नामक राजवंश के इतिहास-ग्रन्थ में सन् १७०४ ई० में राजा एवं कुछ अन्य लोगों के द्वारा व्रत के उपरान्त यज्ञोपवीत धारण करने का उल्लेख है। उनसे पूर्व राजा व अन्य लोगों के मांस-मदिरा-सेवन करने का उल्लेख मिलता है। सन् १७०४ ई० में पुरी से आनेवाले कृष्णाचार्य या रायवनमाली नामक ब्राह्मण गुरु ने चराईरौङ्बा, उनके परिवार एवं कुछ दरबारियों को शास्त्रीय विधि से दीक्षा दी थी तथा उन्हें यज्ञोपवीत धारण करवाया था। उस गुरु के वंशज आज भी मणिपुर में हैं और गुरु अरिबाम (पुराना गुरु) नामक वंश के माने जाते हैं।

राजा चराईरौङ्बा ने ब्रह्मपुर नामक बस्ती में, जो इम्फाल नगर-परिषद्-क्षेत्र में स्थित है, श्री वृन्दावनचन्द्र के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह मन्दिर ईंटों से बनवाया गया है। आज भी गुरु अरिबाम-वंश के पुजारी इस मन्दिर में पूजा करते हैं। सन् १७०७ ई० में चराईरौङ्बा के द्वारा ही भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख मिलता है। उसके साथ ही कालिका मन्दिर के निर्माण का भी वर्णन है। स्पष्ट है कि विष्णु एवं कृष्ण भगवान् की पूजा के साथ-साथ उस समय काली-पूजा से भी कोई विरोध नहीं था। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि उस समय वैष्णव एवं शाक्त देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा भी प्रचलित थी। उस समय कीर्तन-परम्परा के आरम्भ होने के साक्ष्य भी उपलब्ध हैं, जो यह सिद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हैं कि इस धरती पर चैतन्य-सम्प्रदाय के प्रभाव का सूत्रपात् भी हो चुका था।

ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में महाराजा चराईरौङ्बा के शासन-काल के सम्बन्ध में विस्तार से कुछ भी कहना कठिन है। उनके धार्मिक कृत्यों के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। परन्तु उनके यज्ञोपवीत धारण करने की बात निश्चित है। साथ ही यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि गौड़ीय वैष्णव-पद्धति के अनुसार कीर्तन-प्रणाली का उनके समय से ही प्रचलन हो चुका था, किन्तु कुछ इतिहासकारों का मत है कि वे मध्वाचार्य-मत में दीक्षित थे। डॉ० के० वी० सिंह के मतानुसार सन् १७०४ ई० में निम्बार्क-सम्प्रदाय के सन्त भी मणिपुर मे आये थे। उनके अनुसार चराईरौङ्बा ने सन् १७०४ ई० में निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की थी। कुछ अन्य इतिहासकार १७वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में नरोत्तम ठाकुर के शिष्यों के मणिपुर में आने तथा राजा को चैतन्य-सम्प्रदाय में दीक्षित करने की बात भी कहते हैं। चराईरौङ्बा ने किस सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की थी यह बताना सम्भव नहीं है। किन्तु इतना निश्चित है कि उनके शासन-काल में वैष्णव-धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त हो चुका था और उन्होंने बंग देश की गौड़ीय कीर्तन-पद्धति या अरिबा पाला की स्थापना की थी।

ज० सिं०

(राजर्षि) चिथंखोम्बा (भाग्यचन्द्र सिंह)

मणिपुर के महाराजा गरीबनिवाज़ के पुत्र श्यामशाह के दो पुत्र थे—गौरशाह और चिथंखोम्बा। चिथंखोम्बा को भक्ति के संस्कार अपने पितामह एवं पिता से प्राप्त हुए थे। कहा जाता है कि चिथंखोम्बा ने बाल्यकाल में श्री रामगोपाल वैरागी से दीक्षा ग्रहण की थी और उनके शिष्य बन गये थे। किन्तु बाद में उन्होंने अपने कछार-प्रवास के समय चैतन्य महाप्रभु के पूर्वजों के जन्म-स्थान ढाका-दक्षिण (सिल्हट) की यात्रा की, जहाँ वे श्री रामनारायण शिरोमणि के शिष्य बन गये थे। गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् चिथंखोम्बा श्री रामनारायण शिरोमणि के साथ मणिपुर लौटे थे। उन्होंने शिरोमणिजी के साथ पाँच मन का एक घण्टा बनवाकर ढाका-दक्षिण (सिल्हट) के श्री मन्दिर के लिए भेजा था।

चिथंखोम्बा सन् १७५६ ई० से १७६४ ई० तक अपने ज्येष्ठ भ्राता गौरशाह के साथ संयुक्त राजा बने, किन्तु सन् १७६४ ई० में पूर्ण रूप से राजा बनकर मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए। संयोगवश इसके पश्चात् भी वे मणिपुर पर निरन्तर शासन नहीं कर सके। सन् १७६४ से '९३ ई० के बीच उन्होंने तीन बार सत्ता खोयी और पुनः प्राप्त की। सन् १७६३ ई० से '७६ ई० के मध्य बर्मा के राजा ने मणिपुर पर आक्रमण किया और चिथंखोम्बा महाराज को भागकर कछार में शरण लेनी पड़ी। वहाँ से वे असम के महाराजा स्वर्गदेव राजेश्वर सिंह से जाकर मिले।

राजा राजेश्वर सिंह ने मणिपुर के महाराज चिथंखोम्बा का स्वागत किया और उन्हें राजकीय आतिथ्य प्रदान किया। बर्मा के राजा द्वारा मणिपुर के सिंहासन पर नाममात्र का एक राजा बैठाया गया जो बर्मा के राजा के हाथ की कठपुतली मात्र था। उसने चिथंखोम्बा के विरुद्ध षड्यन्त्र किया और राजेश्वरसिंह के पास एक पत्र भेजा कि चिथंखोम्बा नामक महाराज बनकर जो व्यक्ति आपके यहाँ ठहरा हुआ है, नकली है। यह पत्र स्वर्गदेव को उस समय मिला था जब कि वे चिथंखोम्बा से विचार-विमर्श करके उन्हें मणिपुर का राज्य-सिंहासन पुनः दिलवाने की योजना को अन्तिम रूप दे रहे थे। चिथंखोम्बा के असम की राजधानी पहुँचने से पूर्व ही स्वर्गदेव ने उनकी भक्ति और आध्यात्मिक शक्तियों की कहानियाँ सुन रखी थीं। अतः स्वर्गदेव ने महाराज चिथंखोम्बा की परीक्षा लेने का निश्चय किया। उनसे कहा गया कि तुम्हें एक पागल हाथी के सामने छोड़ा जायगा, यदि तुम वास्तविक चिथंखोम्बा हो तो तुम मत्त हाथी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को वश में कर लोगे, नहीं तो हाथी तुम्हें मार डालेगा।

महाराज चिथंखोम्बा मानो इस परीक्षा के लिए तैयार ही थे। उन्होंने रात को श्री गोविन्दजी की आराधना की। अर्द्धरात्रि के बाद महाराज को नींद आयी। नींद में श्री गोविन्दजी ने उन्हें दर्शन दिये तथा हाथी से रक्षा करने का वचन दिया। उन्हें खोये हुए राज्य की पुनःप्राप्ति का वरदान भी दिया। किन्तु उन्हें आदेश दिया कि "जब तुम पुनः सिंहासनारूढ़ होओगे तो तुम्हें कैना (स्थान) से कटहल का वृक्ष कटवाकर मेरा विग्रह बनवाना होगा तथा अपनी राजधानी में मन्दिर बनवाकर उसमें उस विग्रह की प्रतिष्ठा करनी होगी। मेरे बायीं ओर श्रीमती राधा की मूर्ति की प्रतिष्ठा करनी होगी। विग्रह-प्रतिष्ठा के बाद एक रास-मण्डल बनाकर मेरी मूर्ति रखकर उसमें रासलीला का आयोजन भी करना होगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल चिथंखोम्बा महाराज निडर होकर परीक्षा-स्थल पर मत्त गज के सम्मुख बढ़ने लगे। राजेश्वर सिंह एवं असम की प्रजा दाँतों तले उँगली दबाये यह दृश्य देख रही थी। उन्मत्त गज की ओर चिथंखोम्बा एक हाथ में पुष्पहार एवं दूसरे में जपमाला लिये बढ़ रहे थे। एक बार मत्त गयन्द राजा की ओर लपका और लोगों ने सोचा कि अब तो महाराज को गज कुचल डालेगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि हाथी पर भगवान् कृष्ण कुशल महावत के रूप में सवार थे। उन्होंने हाथी को दूसरी ओर मोड़ लिया। चिथंखोम्बा के अतिरिक्त किसीने भी भगवान् कृष्ण के दर्शन नहीं किये। अपने त्रिभंगी रूप में भगवान् हाथी पर खड़े मुरली बजा रहे थे, अतः चिथंखोम्बा हाथी के पीछे दौड़े, क्योंकि वे उन्हें पुष्पहार अर्पित करना चाहते थे। गज शान्त दिखाई दे रहा था। उसने चिथंखोम्बा महाराज के निकट पहुँचने पर उन्हें अपनी सूँड़ से उठाकर अपने सिर पर बैठा लिया। हाथी पर पहुँचते ही महाराज ने श्रीकृष्ण को पुष्पहार अर्पित किया। उसी दिन से उन्हें भाग्यचन्द्र जयसिंह कर्त्ता के नाम से जाना जाने लगा।

महाराज स्वर्गदेव ने महाराज भाग्यचन्द्र को सेना आदि की अपेक्षित सहायता दी। परिणामस्वरूप भाग्यचन्द्र महाराज पुनः मणिपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इसके बाद वे श्रीगोविन्दजी द्वारा असम में दी गयी आज्ञा को भूल गये।

एक दिन अचानक कैना नाम पर्वत से एक पर्वतीय महिला ने आकर महाराज भाग्यचन्द्र से कहा कि मुझे कैना पर्वत पर एक बालक मिला जिसने मुझसे कहा कि मैं तुम्हारे पास जाकर अपने वचन का स्मरण दिलवाऊँ। महिला ने बालकृष्ण का रूप-वर्णन भी किया, जिसको सुनकर महाराज मूर्च्छित होकर गिर पड़े। महाराज महिला के साथ निर्दिष्ट स्थान (कैना) पर गये, जहाँ महिला ने राजा को वह कटहल का वृक्ष दिखलाया जिससे विग्रह निर्माण होने थे।

महाराजा ने पूजा-पाठ के बाद उस वृक्ष को कटवाया। फिर उसको इरिल नदी तक लाया गया, जिससे कि नदी के मार्ग से उसको इम्फाल ले जाया जा सके। नदी में डालने पर वृक्ष नदी में डूब गया। इसीलिए जहाँ यह वृक्ष डूबा था उस स्थान पर आज भी उरूप नामक गाँव बसा है (उ = वृक्ष, रूप = डूबा)। वहाँ पूजा-पाठ करने के उपरान्त वृक्ष का तना नदी में बहने लगा। कुछ आगे चलने पर पुनः वृक्ष रुक गया तब फिर आरती की गयी। जहाँ आरती की गयी वहाँ आज भी इरिल नदी के तट पर आरती गाँव बसा हुआ है। अन्त में लिलोंग नामक स्थान पर इरिल नदी से वृक्ष को निकाला गया और राजधानी लमाङ्दोङ (विष्णुपुर) लाया गया।

वहाँ श्री सापम लक्ष्मणसिंह नामक एक मणिपुरी कलाकार को वृक्ष की लकड़ी से श्री गोविन्दजी की त्रिभंगी मूर्ति बनाने का आदेश दिया गया। राजा ने स्वप्न में देखे गये श्रीकृष्ण के त्रिभंगी रूप का अभिनय करके दिखाया तथा वैसी ही मूर्ति बनाने की आज्ञा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दी। मूर्ति बनायी जाने लगी। राजा घण्टों कलाकार के पास बैठते थे तथा प्रगति का स्वयं निरीक्षण करते थे। ग्यारह महीने तक मूर्ति बनाने का काम चलता रहा। महाराज भाग्यचन्द्र व्यग्रता से मूर्ति बनने की प्रतीक्षा करते रहे।

राजा के निर्देशानुसार प्रथम विग्रह तैयार हुआ, किन्तु राजा को उससे सन्तोष नहीं हुआ। यद्यपि वह विग्रह सुन्दर था और उत्कृष्ट भी, किन्तु राजा को स्वप्न में देखे गये कृष्ण के त्रिभंगी रूप से उसमें कुछ कमी दिखाई दे रही थी। राजा ने प्रथम विग्रह को श्री विजय गोविन्दजी नाम दिया तथा उसे अपने मन्त्री अनन्तशाह को दिया जिन्होंने सगोलबंद नामक स्थान पर मन्दिर बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा की। इसके बाद श्री गोपीनाथ और श्री नित्यानन्द (मदनमोहन) के विग्रह तैयार हुए जिन्हें निङथोखोङ और कोङबा में क्रमशः प्रतिष्ठित किया गया। अन्तिम विग्रह श्री गोविन्दजी का था।

जिस समय कृष्ण-विग्रह तैयार हो रहे थे, राजा अपनी राजधानी विष्णुपुर से लंथबाल (वर्तमान—काञ्चीपुर) ले आये थे। लंथबाल में रास-मण्डल का निर्माण किया गया तथा वहीं श्री गोविन्दजी की प्रतिष्ठा सन् १७७९ ई० में की गयी। लंथबाल में राजमहल के प्रांगण में श्री गोविन्दजी की प्रतिष्ठा का समारोह मणिपुर के इतिहास में अभूतपूर्व घटना कही जाती है। क्योंकि महाराजा ने सम्पूर्ण राज्य की प्रजा को घोषणा करके इस अवसर पर आमन्त्रित किया था। सारे मणिपुर में उत्सव का वातावरण छा गया। राजा ने उत्सव में भाग लेने हेतु आनेवाले लोगों का आतिथ्य किया। पाँच दिन तक यह उत्सव चलता रहा।

श्री गोविन्दजी की प्रतिष्ठा के साथ ही अनेक संस्थाएँ बनायी गयीं जो मणिपुर के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों की देखरेख करने लगीं। राजा श्री गोविन्दजी का मात्र प्रतिनिधि रह गया। सर्वोच्च सत्ता अब श्री गोविन्दजी को माना जाने लगा। श्री गोविन्दजी एक मूर्तिमात्र न होकर एक जीवित देवता हैं। श्री गोविन्दजी कृष्ण भगवान् के मणिपुरी अवतार हैं। पूजा की स्थानीय पद्धति, परम्परा, अनुष्ठान, भोग, वस्त्राभूषण, प्रार्थनाएँ, भजन, संगीत, गानविधि आदि के लिए विभिन्न संस्थाएँ बनायी गयीं, जो विचार-विमर्श के बाद पूर्ण प्रजातान्त्रिक प्रणाली से उपर्युक्त विषयों से सम्बद्ध नियम बनाती थीं और आज भी बनाती हैं। इस प्रकार मणिपुर में श्री गोविन्दजी की प्रतिष्ठा के बाद यहाँ के जन-जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया। राजा एवं प्रजा ने सम्मिलित रूप से श्री गोविन्दजी की भक्ति आरम्भ कर दी। सम्पूर्ण मणिपुर श्री गोविन्दजीमय हो गया। घर-घर मन्दिर बनवाये गये और उनमें राधाकृष्ण की पूजा आरम्भ की गयी। मणिपुर के प्रत्येक घर में मन्दिर हैं, साथ ही प्रत्येक बस्ती में अनेक सार्वजनिक मन्दिर भी हैं।

विग्रह-प्रतिष्ठा के बाद राजा ने श्री गोविन्दजी की अन्तिम आज्ञा का पालन किया। अपनी ज्येष्ठा पुत्री बिम्बावती मंजुरी को राधा के रूप में रासलीला में अभिनय के लिए तैयार किया तथा कार्तिक पूर्णिमा के दिन महारास का आयोजन किया गया। महाराजकुमारी बिम्बावती मंजुरी के कद और अंगों की अनुकृति पर रासेश्वरी श्रीमती राधा का विग्रह बनाया गया था। श्री गोविन्दजी के बायें पार्श्व में उन्हें भी प्रतिष्ठित किया गया। महाराजा स्वयं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने स्वयं ने इस प्रथम रास के अवसर पर मृदंग-वादन किया था।

इस प्रकार महाराजा भाग्यचन्द्र ने मणिपुर में श्रीमती राधा एवं श्री गोविन्दजी की पूजा-अर्चना एवं भक्ति की परम्परा का सूत्रपात किया और भगवान् के स्वप्नादेश का पालन किया।

महाराज भाग्यचन्द्र ने मणिपुर के धार्मिक जीवन में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी, किन्तु उनके भाग्य में राजसत्ता का सुखभोग नहीं था। एक ब्राह्मण ने एक वृद्धा की हत्या कर दी। इस पर ब्राह्मण को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राज्याधिकारियों ने मृत्यु-दण्ड दे दिया। जब महाराज को इसका पता चला तो वे इसे ब्रह्महत्या मानकर अपना राज्य अपने पुत्र लावण्यचन्द्र को सौंपकर २० जनवरी १७९८ ई० को प्रायश्चित्त करने के लिए गंगा-यात्रा करते हुए ढाका-दक्षिण पहुँचे, जहाँ उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के मन्दिर में संकीर्तन-दल समर्पित किया। वहाँ से वे कृष्णनगर होते हुए नवद्वीप पहुँचे। यात्रा में उनके साथ उनकी तीन पुत्रियाँ और तीन पुत्र भी थे। बिम्बावती मंजुरी भी उनके साथ गयी थी।

नवद्वीप के पास ही अम्बिका नामक स्थान पर जाकर महाराजा ने अद्वैत के जन्मस्थान पर संकीर्तन का आयोजन किया। वहाँ से वे नवद्वीप लौटे। नवद्वीप से उन्होंने अपने वकील रासबिहारी के साथ भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली के पास एक प्रार्थना-पत्र भेजकर नवद्वीप में अपने लिए तीर्थस्थल के रूप में कुछ भूमि देने की प्रार्थना की जो उन्हें प्राप्त हो गई। श्री नवद्वीपचन्द्र की मूर्ति वहाँ मुसलमानों के भय से भूमिगत कर दी गयी थी। फिर शाक्त धर्म के वर्चस्व के कारण भी वहाँ गौड़ीय वैष्णव-भक्ति लुप्त हो चली थी। महाराज भाग्यचन्द्र नदिया के राजा कृष्णचन्द्र रे से जाकर मिले। राजा रे कट्टर शाक्त था। महाराज भाग्यचन्द्र ने नदिया के राजा से श्री नवद्वीपचन्द्र की सार्वजनिक पूजा के प्रतिबन्ध को हटाने का आग्रह किया और न मानने पर युद्ध के लिए भी चुनौती दी, किन्तु कुछ वाद-विवाद के उपरान्त नदिया का राजा मान गया। उसने साढ़े सोलह बीघा भूमि भी श्री कृष्ण-मन्दिर के लिए महाराज भाग्यचन्द्र को भेंट की।

नवद्वीप के प्रवासकाल में महाराज भाग्यचन्द्र ने लुप्तप्राय गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-पद्धति की पुनः प्रतिष्ठा की। जब गौड़ीय वैष्णव-भक्ति अपने ही जन्म-स्थान में मृतप्राय हो चुकी थी तो रामदास बाबाजी की सहायता से महाराज भाग्यचन्द्र ने उसे फिर से जीवित कर दिया। इसलिए गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय में महाराज भाग्यचन्द्र को द्वितीय गोरांग कहा जाता है।

नवद्वीप से महाराज भाग्यचन्द्र नाव से वृन्दावन के लिए रवाना हुए। मुर्शिदाबाद जिले के श्रीपत-क्षेत्र में जाकर रुके। वहाँ उन्होंने राधाकृष्ण मन्दिर की स्थापना की। नरोत्तम ठाकुर महाशय के अखाड़े में जाकर उन्होंने गौरगोविन्द की मूर्ति की पूजा की। श्रीपत-क्षेत्र के भागबंगोला नामक स्थान पर अक्तूबर १७९९ ई० में आपकी मृत्यु हुई। उनकी अन्तिम क्रिया के सम्बन्ध में दो बातें प्रचलित हैं। एक मान्यता तो यह है कि वे गंगा की लहरों के द्वारा बहाकर ले जाये गये। किन्तु दूसरा मत यह है कि महाराज की मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्य जब उनकी चिता तैयार कर रहे थे तो एक महापुरुष ने आकर आदेश दिया कि चिता मत बनाओ। पास के टीले को खोदो, जहाँ नरोत्तमदास ठाकुर की चिता दबी हुई है। कहते हैं कि नरोत्तम ठाकुर की इस स्थान पर अन्तिम क्रिया के लिए चिता बनायी गयी थी, किन्तु चिता को प्रज्वलित करने से पूर्व ही, गंगा की लहरें उठीं और उनकी लाश को बहाकर ले गयी थीं। अतः वह चिता वहीं मिट्टी में दबी हुई थी। उसी चिता पर महाराज भाग्यचन्द्र को अन्तिम क्रिया की गयी थी। महाराज भाग्यचन्द्र को नरोत्तम ठाकुर का अवतार भी माना जाता है और कहा जाता है कि इसीलिए उन्हें नरोत्तम ठाकुर की चिता के अवशेषों पर जलाया गया था।

महाराज भाग्यचन्द्र के अनेक नामों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्रत्येक नाम के पीछे ऐतिहासिक घटना था। किन्तु अन्त में महाराजा भाग्यचन्द्र को लोगों ने राजर्षि नाम दिया, जो उपयुक्त ही है। क्योंकि वे राजा होते हुए भी परम भक्त थे और उन्होंने अपनी प्रतिभा से मणिपुर की जीवन-धारा को कृष्ण-भक्ति की ओर उन्मुख कर दिया। सम्भवतः ऐसे भक्त राजा के उदाहरण इतिहास में खोजने पर भी न मिलें। कवि, कलाकार, संगीतकार, योग्य शासक आदि अनेक गुणों के कारण महाराज भाग्यचन्द्र मणिपुर एवं भारत के इतिहास में अमर हो गये हैं। उनके द्वारा रचित अनेक राधा-कृष्ण-भक्ति-सम्बद्ध पद हैं जो भाग्यचन्द्र-चरित नामक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुस्तक में दिये गये हैं। यहाँ नमूने के लिए दो पद दिये जा रहे हैं।

आपके द्वारा प्रचारित स्वर्ण, रजत एवं कांस्य-मुद्राओं पर 'श्रीमद् राधा गोविन्दपदारविन्द मकरन्द मधुकरस्य' एवं 'श्री श्री गोविन्द पद सुमन मधुकरस्य' शब्द अंकित हैं, जो आपकी श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रमाण हैं।

(१)

जय जय राधा गोविन्द देव।
श्रील भाग्यचन्द्र नृपवर सेव॥
जय राधे कृष्ण हे।
मयि करुणा करु हे॥
प्रणमामि सेद नब चरणे।
हाथ जुरि-जुरि केय वा मंजुरी,
राङा पदतले विनय करे॥
हा राधा गोविन्द,
आमरा दासी कभु ना छाडिए॥

'हे राधागोविन्द देव! आपकी जय-जय! आप नृपवर भाग्यचन्द्र की सेवा स्वीकार कीजिये। हे राधे, हे कृष्ण! मुझ पर दया कीजिये। मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ, हाथ जोड़-जोड़कर आपसे पदतल में रखने की प्रार्थना करता हूँ। हा राधा-गोविन्द! आप अपने दास को कभी न छोड़िये।'

(२)

भज मन गौरांग चरण।
अन्य ना भाविय मन भिन्न ना सुनिय कान,
ए कान्त स्मरण जाङ मन॥
देख अपरूप गौरविधु जगत जनेर बन्धु,
इहे लोक गति नाहि आर।
दिवा-रात्रि नाम जप ध्यान कर गौररूप,
सदा सेवा चरण ङपार॥
बिजुरी शानिया रंग ननिर पुतुलि अंग,
कोन विधि करिल निर्म्माण।
सदा निरमिते आस,
दीन भाग्यचन्द्रदास पूर आशा एइ निवेदन॥

'हे मन! श्री गौरांग महाप्रभु के चरणों का भजन कर। उनको छोड़कर अन्य किसीकी ओर आकर्षित न हो तथा किसी अन्य की बातें कान से मत सुन। हे मन! तुम उनका एकान्त ध्यान-स्मरण करो और जागो। जगतबन्धु गौरविधु का अपूर्व रूप देख। इस लोक में तुम्हारी उनको छोड़कर कोई गति सम्भव नहीं है। रात-दिन उस गौरांग महाप्रभु के नाम का जप एवं ध्यान कर। सदा उनके चरणों की सेवा कर और भवसागर पार कर। विद्युत्-छटा जै-सा उनका रंग है। वे ही किसी विधि से निर्वाण या मोक्ष प्रदान करेंगे। अन्त में भाग्यचन्द्र कहते हैं कि मैं आपका दास हूँ तथा मेरे मन में सदा एक ही आशा है कि आप मेरा उद्धार कीजिये।'

ज० सिं०

(महाराज) चूड़ाचाँद सिंह

मणिपुर के महाराजा कुलचन्द्र को आजन्म कारावास दण्ड देने के बाद भारत-सरकार के गवर्नर जनरल ने महाराजा नरसिंह के पौत्र और श्री चौबीयाइमा के पुत्र चूड़ाचाँद सिंह को १८ सितम्बर १८९१ ई० के दिन मणिपुर का महाराजा नियुक्त किया। साथ ही मणिपुर को ब्रिटिश सरकार का पूर्ण अधीनस्थ राज्य घोषित कर दिया। राज्याभिषेक के समय महाराजा चूड़ाचाँद की अवस्था मात्र छः वर्ष की थी। महाराजा के वयस्क होने तक शासन-सूत्र-संचालन के सारे अधिकार पोलिटिकल एजेण्ट के हाथों सौंप दिये गये और अगस्त १८९५ ई० से जुलाई १९०१ ई० तक उन्हें मेयो कॉलेज, अजमेर में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया गया।

महाराजा चूड़ाचाँद सिंह के अभिषेक के साथ ही उनके पारिवारिक पुजारियों एवं पुरोहितों को श्री गोविन्दजी मन्दिर में नियुक्त किया गया तथा श्रीगोविन्दजी मन्दिर के पुराने (अरिबा) ब्राह्मण-पुजारियों को सेवा-निवृत्त कर दिया गया और उनके स्थान पर नया पुजारी-दल (असौबा , नियुक्त किया गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराजा गरीबनिवाज् के शासन-काल (सन् १७२६ ई०) में मणिपुर में मणिपुरी भाषा में गीत गाना, भजन-कीर्तन करना निषिद्ध कर दिया गया था। उस समय के बाद मणिपुर में संस्कृत, बंगला या ब्रजबोली के भजन-कीर्तन, गीत आदि गाये जाने लगे। मणिपुरी भाषा में गीत गाने की परम्परा समाप्त हो गयी थी। उसे पुनर्जीवित करने का श्रेय महाराज चूड़ाचाँद को है। सन् १९२० ई० के आसपास जॉन्स्टन स्कूल के छात्र महाराजा चूड़ाचाँद के पास गये और उन्होंने प्रार्थना की कि दोल्जाबा (होली) के अवसर पर विद्यार्थी-दल को श्री गोविन्दजी मन्दिर में मणिपुरी भाषा में होली गाने की अनुमति दी जाय। महाराजा को इस बात पर आश्चय हुआ कि मणिपुरी भाषा में भी होली गायी जा सकती है। जब वे सन्तुष्ट हो गये तो उन्होंने दोल-यात्रा के अवसर पर श्री गोविन्दजी मन्दिर में आकर संकीर्तन प्रस्तुत करनेवाले दलों को अपनी भाषा में गाने की अनुमति प्रदान कर दी। किन्तु राजा की ओर से भाग लेनेवाले दल अभी भी मणिपुरी भाषा के गीतों से परहेज करते थे। आगे चलकर मणिपुरी भाषा में गीत गाने का प्रचलन हुआ।

वास्तव में २०वीं शताब्दी के आरम्भ तक मणिपुरी जन-जीवन मध्यकाल की खुमारी में डूबा हुआ था। इस तन्द्रा को महाराजा चूड़ाचाँद सिंह ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार द्वारा भंग किया। आपके शासन-काल में मणिपुर का कायाकल्प हुआ। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। किन्तु हम यहाँ महाराजा के धार्मिक कृत्यों का ही विवेचन करेंगे।

अपने पूर्वजों से महाराजा चूड़ाचाँद सिंह को श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना विरासत में प्राप्त हुई थी। आपने अपने जीवनकाल में वैष्णव-धर्म के प्रमुख स्थलों की यात्रा की। वर्तमान श्री गोविन्दजी मन्दिर, जो राजमहल के निकट है, का निर्माण आपने ही करवाया था। उन्होंने मणिपुर में अखिल मणिपुरी हिन्दू-सम्मेलन का सन् १९३४ ई० में आयोजन किया, जिसमें कछार, सिल्हट, गौहाटी, जोरहाट, नवद्वीप, वृन्दावन, बर्मा व मलाया में बसनेवाले मणिपुरी लोगों के प्रतिनिधि भाग लेने इम्फाल आये थे। सन् १९२४ ई० में महाराज के प्रयत्नों से मणिपुरी भाषा की दसवीं कक्षा के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने मान्यता प्रदान की। आपके शासन-काल में ही मणिपुरी भाषा में मौलिक कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास लिखे जाने लगे और विभिन्न भाषाओं से मणिपुरी भाषा में अनुवाद भी होने लगे।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति के क्षेत्र में आपकी उल्लेखनीय सेवाओं के उपलक्ष्य में सन् १९३७ ई० में नवद्वीप की वैष्णव सभा ने आपको गौर-भक्ति-रसरनव (रसार्णव) की उपाधि से विभूषित किया। मेयो कॉलेज, अजमेर और इम्पीरियल केडेट कोर में शिक्षा प्राप्त करने तथा अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृति के सम्पर्क में आने के उपरान्त भी महाराज के पारिवारिक संस्कार श्री राधाकृष्ण-भक्ति के ही रहे। उन्होंने श्री गोविन्दजी और उनसे सम्बद्ध संस्थाओं का संरक्षण किया तथा श्री राधाकृष्ण-भक्ति की परम्परा का विकास किया। सन् १९४१ ई० में राजपद का भार ज्येष्ठ पुत्र बोधचन्द्र सिंह को सौंपकर आप नवद्वीप चले गये। वहाँ जाने से पूर्व ही जीवनभर महाराजा श्री राधाकृष्ण-भक्ति में डूबे रहे और जीवन का अन्तिम भाग उन्होंने नवद्वीप में व्यतीत किया। २०वीं शताब्दी में भी उन्होंने श्री राधाकृष्ण-भक्ति की अपने पूर्वजों की गौरवशाली परम्परा को निभाया। महाराज चूड़ाचाँद की नवद्वीप में नवम्बर १९४१ ई० में मृत्यु हो गयी। निम्नांकित पद आपकी श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना की प्रगाढ़ता प्रदर्शित करता है—

जय राधे जय कृष्ण करि निवेदने।
हा गोविन्द प्राणनाथ श्री राधिका जीवन॥
कृपामयि श्री राधिके करि आगे कारण।
जन्मे जन्मे देह मोरे ओ राङ॥
हा हा प्राणेश्वरी राधे करि आस्वादन।
दीनहीन चुडाचांद एइ गुणगान॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हे राधाजी ! हे कृष्ण भगवान् ! आपकी जय हो। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। हे गोविन्दजी, आप मेरे प्राणनाथ हैं और श्री राधा मेरा जीवन ! हे कृपामयी श्री राधाजी ! मुझे अंगोकार कीजिये। जन्म-जन्मान्तर में आप मुझे अपनी भक्ति दीजिये और अपने श्रीचरणों में रखिये। हे प्राणेश्वरी राधाजी ! इस दीनहीन चूड़ाचाँद को आशीर्वाद दीजिये कि वह आपके गुणगान का आस्वाद करता रहे।'

जं० सिं०

(महाराज) चौरजीत सिंह

महाराज चौरजीत सिंह विख्यात राधाकृष्ण-भक्त महाराज भाग्यचन्द्र के पाँचवें पुत्र थे। वे बाल्यकाल से ही भक्ति-भावना में लीन रहते थे। इनका पारिवारिक वातावरण भी भक्ति-भावना से परिपूर्ण था। इनकी बहन बिम्बावती मंजुरी बाल्यावस्था से ही राधाकृष्ण-भक्ति में डूबी रहती थी तो पिता भाग्यचन्द्र का जीवन ही राधाकृष्ण की सेवा में समर्पित था। परिणामस्वरूप चौरजीत सिंह के हृदय में बाल्यकाल से ही राधाकृष्ण-भक्ति के संस्कार पड़ गये। मणिपुर के राजवंश के इतिहास 'चैथरोल कुमबाबा' में लिखा है कि महाराज-कुमार चौरजीत सिंह गंगा-यात्रा के लिए गये और शनिवार २ अक्तूबर १७९४ ई० को मणिपुर लौटे थे। जब महाराज भाग्यचन्द्र सन् १७९८ ई० में नवद्वीप-यात्रा पर रवाना हुए थे तो चौरजीत सिंह भी उनके साथ थे और वैष्णव-धर्म और गौड़ीय वैष्णव-भक्ति के प्रमुख केन्द्रों की अपने पिता के साथ यात्रा की थी।

१२ जनवरी १८०४ ई० शनिवार के दिन महाराज चौरजीत का औपचारिक राज्याभिषेक हुआ था। 'चैथरोल कुमबाबा' में उनके अभिषेक का वर्णन है तथा लिखा है कि मयांग (अमणिपुरी) कुंजदास ने महाराज के सिर पर राधाकुण्ड का जल छिड़का था। उनको १८० ब्राह्मण-कन्याओं ने अभिषेक से पूर्व-स्नान करवाया। महाराज ने बहुत बड़े भोज का आयोजन किया तथा साधु-संन्यासियों को विभिन्न वस्तुएँ दक्षिणा में दीं। 'विजय-पंचाली' नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि महाराज चौरजीत ने वर्तमान राज्यपाल-भवन के वृक्षों के नीचे तपस्या की थी तथा ध्यान लगाकर बैठे रहते थे। उन्होंने वहीं एक बड़ा तालाब भी खुदवाया था।

इन्होंने वर्तमान श्रीश्री गोविन्दजी मन्दिर का निर्माण करवाया, जिसका उद्घाटन-समारोह शनिवार ३ अप्रैल १९०७ ई० को हुआ था। इस मन्दिर के उद्घाटन-समारोह के अवसर पर महाराज चौरजीत ने १,१५,००० सेल लाख (तत्कालीन मणिपुरी मुद्रा) और गंगा नामक चाँदी के सिक्के ब्राह्मणों एवं वैष्णव-भक्तों में वितरित किये थे। इतना ही नहीं, इन्होंने श्री गोविन्दजी के नाम से सात सांस्कृतिक संस्थाएँ भी स्थापित की थीं।

'चैथरोल कुमबाबा' तथा मणिपुर के धार्मिक साहित्य से ज्ञात होता है कि हुइनिङ नागा लोगों ने चौरजीत की भाभी से ९ जून १८०४ ई० मंगलवार के दिन वृन्दावनचन्द्र की मूर्ति चुरा ली, जो कि मणिपुर की प्राचीन मूर्तियों में से एक थी। राजा चौरजीत हुइनिङ नागाओं से मूर्ति वापस लाने में सफल हुए और फिर इस मूर्ति की उन्होंने तमपाकमयुम अर्थात् युवराज-निवास में उसी महीने की २५ तारीख गुरुवार को स्थापना करवायी। तब से १८९१ ई० तक प्रत्येक युवराज के द्वारा वृन्दावनचन्द्र की नित्यसेवा की परम्परा चलती रही।

चौरजीत महाराज चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द प्रभु की भक्ति में मग्न रहते थे। राजमहल में रहते हुए भी वे सदा भक्ति-भावना में तल्लीन रहा करते थे। उन्होंने श्री राधा-गोविन्द को महारास और १४ मृदंग का कीर्तन समर्पित किया। इसके बाद सात दिन तक संकीर्तन-उत्सव का आयोजन किया गया। परिणामस्वरूप महाराज चौरजीत पर नवद्वीप एवं अम्बिका (बंगाल) के स्वामी भगवान् कृष्ण प्रसन्न हो गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् ने प्रसन्न होकर उनको जो वरदान दिया वह कल्पनातीत है। कहते हैं कि नवद्वीप के गौर नित्याई मन्दिर के द्वार ७ दिन तक बन्द रहे। इन सात दिनों तक पूजा-भोग और आरती भी मन्दिर के बाहर ही की जाती रही, क्योंकि भगवान् की आज्ञा थी कि सात दिन तक मन्दिर के द्वार न खोले जायँ, क्योंकि मैं इन सात दिनों तक एक लीला करूँगा। सातवें दिन रात्रि को मुख्य पुजारी को गौरांग एवं नित्याई प्रभु ने स्वप्न में दर्शन दिये तथा कहा कि वे सात दिन के लिए महाराज चौरजीत के यहाँ मणिपुर में संकीर्तन में भाग लेने गये थे। गौरांग महाप्रभु ने पुजारी को यह भी कहा कि वहाँ सब्बरै (सुगन्धित पुष्पयुक्त पौधा) से उनकी पूजा-अर्चना की गयी। उन्होंने आगे यह भी कहा कि जब वे मणिपुर से लौट रहे थे तो मार्ग में वर्षा हो रही थी और धोती में कीचड़ लग गया है। प्रातःकाल जब पुजारी ने मन्दिर के द्वार खोले तो सब्बरै नामक पौधे के पुष्प एवं पत्तों की सुगन्ध मन्दिर में व्याप्त थी और मूर्ति की धोती में कीचड़ लगा हुआ था। संबरै का पौधा जो बंगाल में नहीं होता था, उसकी सुगन्ध से गौरांग महाप्रभु इतने प्रभावित हुए कि अपने साथ संबरै का पौधा मणिपुर से ले गये जो आज भी नवद्वीप के मन्दिर में पाया जाता है और पूजा की सामग्री में उसकी पत्तियाँ व पुष्प अभी भी अर्पित किये जाते हैं। इस घटना से नवद्वीप एवं अम्बिका के वैष्णव-भक्तों ने महाराज चौरजीत की भक्ति-भावना की महानता को समझा तथा उन्होंने पत्र भेजकर महाराज चौरजीत को इस घटना का विवरण भेजा।

सन् १८०५ ई० में महाराज चौरजीत सिंह ने वसन्तरास की परम्परा स्थापित की। वसन्तरास का आयोजन इनके शासन-काल से मणिपुर में आरम्भ हुआ, जो आज तक एक परम्परा के रूप में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन श्री गोविन्द मन्दिर में और चैत्र कृष्ण पंचमी के दिन हलंकार के नाम से श्री विजयगोविन्द मन्दिर में आयोजित किया जाता है। यह तथ्य भी महाराज चौरजीत की श्रीराधाकृष्ण-भक्ति-भावना को प्रमाणित करता है।

पूजा-अर्चना के व्यय के निमित्त महाराज चौरजीत ने मणिपुर से वृन्दावन, पुरी और नवद्वीप के मन्दिरों में स्वर्ण-मुद्राएँ भेजीं। इन्होंने देश के विभिन्न भागों में बसनेवाले वैष्णव-भक्तों का हृदय अपनी भक्ति-भावना से जीत लिया। इन्हींके शासन-काल से मणिपुर-निवासी कुछ भक्त नवद्वीप में जाकर निवास करने लगे थे। वे स्वयं भी अपने पुत्र एवं पत्नी के साथ जीवन के अन्तिम दिनों में नवद्वीप में ही जाकर रहे थे। नवद्वीप में अनुप्रभु के मन्दिर के प्रमुख पुजारी तब से आज तक उन्हींके उत्तराधिकारी होते हैं। अपने पिता और बड़ी बहन बिम्बावती मंजुरी की भाँति ही महाराज चौरजीत को भी उत्तरमध्यकालीन भक्तों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इन्होंने बंगाल के नवाब से वैष्णव-धर्म की रक्षा की। इसके फलस्वरूप मणिपुर और नवद्वीप में इनके शासन-काल में वैष्णव-संप्रदाय और राधाकृष्ण-भक्ति को फलने-फूलने का पूरा अवसर मिला।

महाराज चौरजीत की श्री राधाकृष्ण-भक्ति-निष्ठा का साक्ष्य उनके द्वारा सन् १८१५ ई० के लगभग जारी की गयी एक वर्गाकार रजत-मुद्रा है, जिस पर 'श्रीमद् राधा गोविन्दजी पदारविन्द मकरानन्दमनो मधुकर' अंकित है।

सन् १८१९ ई० में मणिपुर में महाराज मारजीत राज्य कर रहे थे, उसी समय मणिपुर पर बर्मा की सेना का आक्रमण हुआ था। महाराज को भागकर कछार जाना पड़ा था, जहाँ उनके भाई गम्भीरसिंह शासन कर रहे थे। मणिपुर से भागकर कछार जाते समय मारजीत अपने साथ श्री गोविन्दजी की पवित्र प्रतिमा भी लेकर गये थे, जिसे उन्होंने अपने भाई चौरजीत को सौंप दिया। चौरजीत महाराज ने सिलहट राजबाड़ी में श्री गोविन्दजी-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। लगभग सात वर्ष बाद यह प्रतिमा महाराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गम्भीरसिंह द्वारा पुनः मणिपुर लायी गयी और लंथबाल में इसकी पुनः प्रतिष्ठा की गयी।

महाराज चौरजीत ने अपने जीवन के अन्तिम दिन नवद्वीप में व्यतीत किये। सन् १८२४ ई० में वे कछार से नवद्वीप चले गये थे और अपने जीवन का शेष भाग वहीं व्यतीत किया था।

महाराज चौरजीत का गौरांग-प्रार्थना-सम्बन्धी निम्नांकित पद उपलब्ध है—

हरि हरि हा हा विधि केमने लेखिले;
नवद्वीप माझारे भाविया छे तुमारे,
कान्दिते पड़े भूमितले।
काधिर अग्रेते धरिया छे,
कि कहब जराग्रष्ट चित्ते॥
तिलेमात्र नाहि विश्राम करहि,
भाविते दुःखेर चित्ते।
पतितपावन नाम सुनि आइलु तुमास्थाने,
हाहा हा प्रभु देहो दरशन॥
दासेर अनुदास चौरजित,
मने आशा कबे हब एइ आशा मने॥

'हे हरि! विधि ने न जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा है? मैं नवद्वीप में तुम्हारे द्वार पर कातर होकर भूमि पर पड़ा हूँ। मैं अपने जराग्रस्त चित्त को तुम्हारे सम्मुख रखकर कातरभाव से प्रार्थना करता हूँ। मेरे दुःखी चित्त को तिलमात्र विश्राम नहीं है। मैं पापी हूँ और आपका पतितपावन नाम सुनकर स्थान पर आया हूँ। हे प्रभु! आप मुझे दर्शन दीजिये। मैं आपके दासों का दास 'चौरजीत' आपकी शरण में आया हूँ, मेरे मन की आशा कब पूर्ण होगी, अर्थात् कब आपके दर्शन सम्भव होंगे?'

ज० सिं०

(महाराज) जदुसिंह

महाराज जदुसिंह के जीवन-परिचय के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना प्राप्त नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे महाराजा गरीबनिवाज़ के जामाता थे। सन् १८१९ ई० में मणिपुर के महाराजा मारजीत सिंह और बर्मा के राजा के बीच संघर्ष हुआ और बर्मा की सेना ने मणिपुर पर आक्रमण किया। मारजीत युद्ध में पराजित होकर कछार भाग गये। उनके चले जाने के बाद कुछ समय के लिए बर्मा के राजा की आज्ञा से जदुसिंह को मणिपुर का शासन सौंपा गया था। किन्तु जन-समर्थन के अभाव में वे कुछ ही दिन यहाँ शासन कर सके थे। शुबाल सिंह, जो नरसिंह के भाई थे, ने उनसे सत्ता छीन ली और वे महाराजा बन बैठे थे।

महाराज जदुसिंह भी श्री राधाकृष्ण के परमभक्त थे। प्रस्तुत पद उनकी भक्ति-भ.वना का प्रमाण है—

हरि हरि ए दुःख कहिमु काहारे,
जन्मिला कि कइलोम मायेर सेवा,
धिक-धिक जीवन आमार।
जनम अवधि मोर दूर देशे,
फिरि-फिरि पुनः आसि वास मनिपुर,
संसार सागर माझे पड़िया रहेलु मिछाकाज,
केमने करिला हइयु पार॥
हा हा प्रभु भद्र सिंह संगे भाया रतन सिंह,
एइ देशे पालन करय।
दीन जदु सिंह दास मने एइ अभिलाष,
जन्मे जन्मे तुमार तनय॥

'हे ईश्वर! मैं अपना यह दुःख किससे कहूँ? मैंने जन्म से ही माया की सेवा की, अतः मेरे जीवन को धिक्कार है, धिक्कार है। मेरा जन्म अति दूर देश मणिपुर में हुआ है। मुझे मोक्ष-प्राप्ति की आशा नहीं है, अतः मुझे पुनः इसी मणिपुर में लौटकर आना होगा। मैं मिथ्या कार्यों में उलझा हूँ और संसार-सागर में पड़ा हूँ। मैं इसे किस प्रकार पार कर सकता हूँ? हे प्रभु! मेरा भद्रसिंह के और रतनसिंह के साथ इस देश मणिपुर में पालन कीजिये। दीन जदुसिंह, जो आपका दास है, उसके मन में एक ही अभिलाषा है कि मैं जन्म-जन्मान्तर तक आपका ही पुत्र बनकर जन्म लूँ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराजा जदुसिंह के सिंहासन पर बैठने से पूर्व ही महाराजा मारजीत श्री गोविन्दजी-विग्रह को कछार ले गये थे। फिर भी जदुसिंह ने श्री राधाकृष्ण-भक्ति-परम्परा को मणिपुर में बनाये रखा, इससे उनकी श्रीराधाकृष्ण में प्रगाढ़ निष्ठा व्यंजित होने का प्रमाण है। बर्मा के राजा के हाथ की कठपुतली होते हुए भी उन्होंने श्री राधाकृष्ण की भक्ति का त्याग नहीं किया तथा पूर्ववर्ती राजाओं की भक्ति-परम्परा को कायम रखा।

ज० सिं०

(महाराज) देवेन्द्रसिंह

सन् १८५० ई० में महाराज नरसिंह की मृत्यु हो गयी। तब उनके भाई देवेन्द्रसिंह मणिपुर के महाराजा बने। सिंहासन के वास्तविक उत्तराधिकारी महाराजकुमार चन्द्रकीर्ति उस समय अपनी माता के साथ कछार में थे। महाराजा नरसिंह देवेन्द्रसिंह को सत्ता सौंपने के पक्ष में नहीं थे। उनकी इच्छा थी कि युवराज चन्द्रकीर्ति को ही सत्ता सौंपी जाय। उन्होंने अपने तीन पुत्रों को कछार भेजा कि वे चन्द्रकीर्ति को सत्ता प्राप्त करने में सहायता करें। देवेन्द्रसिंह नरसिंह की मृत्यु के उपरान्त महाराजा तो बन गये थे, किन्तु प्रजा उनके पक्ष में नहीं थी। उधर नरसिंह के पुत्र चन्द्रकीर्ति को लेकर मणिपुर की ओर बढ़े। महाराजा देवेन्द्रसिंह ने चन्द्रकीर्ति सिंह से युद्ध किया, किन्तु सेना एवं सामन्तों ने उनका साथ नहीं दिया। परिणामस्वरूप तीन महीने के शासन के उपरान्त उन्हें भी कछार भागना पड़ा। कछार से भी देवेन्द्रसिंह ने महाराजा चन्द्रकीर्ति को अपदस्थ करने के लिए दो बार आक्रमण किये, किन्तु वे दोनों ही बार असफल रहे। दूसरी बार तो वे ब्रिटिश सेना द्वारा बन्दी बना लिये गये और उन्हें ढाका भेज दिया गया, जहाँ उन्हें सत्तर रुपये प्रतिमास पेंशन दी जाती थी। वे सन् १८७१ ई० में ढाका में ही दिवंगत हो गये।

महाराजा देवेन्द्रसिंह के जीवन-परिचय के विषय में इससे अधिक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हैं। किन्तु इतना स्पष्ट है कि वे भी श्री राधाकृष्ण के परम भक्त थे। उनका भक्ति भावना से सम्बद्ध एक पद उपलब्ध हो सका है, जो इस प्रकार है —

राधे कृष्ण दुहा तुमा करि निवेदन।
सदाइ आमा हिये भावना करे॥
युगल चरण ये राधे।
अधम चंडाल आमि भक्ति नाहि जाने।
उपेक्षिले मोर गति नाहि।
कतहु मिनति करि देवेन्द्रसिंह आशा।

'हे श्री राधाकृष्ण! मैं आप दोनों से निवेदन करता हूँ। मेरे हृदय में सदैव आपके युगल चरणों की भावना निवास करे। मैं अधम चंडाल हूँ, मैं भक्ति नहीं जानता हूँ। यदि आप मेरी उपेक्षा करेंगे तो मेरी गति सम्भव नहीं है। अतः हे राधाकृष्ण! मैं देवेन्द्रसिंह मोक्ष की आशा से आपसे विनती करता हूँ।'

ज० सिं०

(महाराज) नरसिंह

महाराज गम्भीरसिंह के प्रारम्भ में कोई सन्तान नहीं थी। अतः उनकी मृत्यु के उपरान्त नरसिंह का महाराजा होना प्रायः निश्चित ही था। किन्तु उनकी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व सन् १८३१ ई० में महाराज-कुमार चन्द्रकीर्ति का जन्म हुआ। नरसिंह भक्त-प्रवृत्ति के व्यक्ति थे अतः बालक चन्द्रकीर्ति के जन्म से उन्हें कोई दुःख एवं निराशा न हुई। उनके हृदय में सिंहासन के प्रति कोई मोह नहीं था। जब महाराज गम्भीरसिंह की मृत्यु हुई तब युवराज चन्द्रकीर्ति की अवस्था केवल दो वर्ष की थी। अतः सन् १९३४ ई० में नरसिंहजी ने चन्द्रकीर्ति महाराजा के संरक्षक के रूप में मणिपुर का शासन-सूत्र सँभाला। यद्यपि नरसिंहजी ने सेनापति के रूप में विगत युद्ध में न केवल नेतृत्व किया था, बल्कि भरपूर वीरता का भी प्रदर्शन किया था, किन्तु सिंहासन के लोभी लोगों ने उन्हें कभी शान्ति से शासन नहीं करने दिया। सन् १८३८ ई० में तरें कोम्बा (रबिनचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र) ने अपने तीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सौ सैनिकों के साथ मणिपुर पर आक्रमण किया। उसको नरसिंह ने परास्त किया। उसके पश्चात् महाराज मारजीत सिंह के पुत्र जोगिन्द्रसिंह ने भी मणिपुर पर असफल आक्रमण किया। इसके बाद त्रिभुवन सिंह एवं रामसिंह (महाराजा चौरजीत के पुत्रों) ने भी ऐसे ही विफल प्रयास किये। सन् १८४४ ई० में महाराजा की माँ महारानी कुमुदिनी देवी ने भी नरसिंहजी के विरुद्ध षड्यन्त्र किया, किन्तु असफल होकर वे अपने पुत्र के साथ कछार चली गयीं। तब नरसिंह ने औपचारिक रूप से महाराजा का पद ग्रहण किया। कुछ दिनों के अनन्तर मलाई रोम्बा ने भी नरसिंह पर कछार से आक्रमण किया, किन्तु विफल रहे।

महाराजा नरसिंह के जीवन की श्री राधाकृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध एक ऐतिहासिक घटना है। एक दिन जब नरसिंह श्री गोविन्दजी मन्दिर में भक्तिभाव में तन्मय थे उन पर नवीनसिंह ने महारानी के कहने से आक्रमण कर दिया। भगवत्कृपा से नरसिंहजी बच गये। षड्यन्त्र असफल हो जाने से महारानी अपने पुत्र बालक महाराजा चन्द्रकीर्ति को लेकर कछार चली गयीं। अब नरसिंह को राज्य-सिंहासन पर आसीन होना पड़ा। यह उनकी भक्ति-भावना का ही फल था जो श्री राधाकृष्ण की कृपा से प्राप्त हुआ। जिस सिंहासन व उसके अधिकारी महाराजा चन्द्रकीर्ति की रक्षा करना ही नरसिंह ने अपना धर्म एवं कर्तव्य समझा और दस वर्ष तक संरक्षक बनकर उनकी रक्षा करते रहे, उसी सिंहासन पर परिस्थितियों के कारण उन्हें आसीन होना पड़ा। यह भगवद्-भक्ति का ही फल था। अन्यथा नरसिंह तो महाराज गरीबनिवाज़ के पर-पौत्र थे और मणिपुर के सिंहासन पर परम्परानुसार उनका आसीन होना सम्भव नहीं था। उन्होंने अपनी नेतृत्व-शक्ति एवं महाराज गम्भीरसिंह के साथ अनेक युद्ध जीतकर गोविन्दजी की कृपा से हो सन् १८३४ ई० से १८४४ ई० तक संरक्षक के रूप में और १८५० ई० तक महाराजा के रूप में शासन किया।

उनके श्री राधाकृष्ण-निष्ठाव्यंजक अनेक तथ्य उपलब्ध हैं। उनके शासन-काल में कुलीनमयुम एवं गोसाईं मयुम नामक ब्राह्मण-परिवार मणिपुर में आये तथा यहाँ के स्थायी निवासी बन गये। कोई ब्राह्मण उन्हींके शासन-काल में शान्तिपुर से मणिपुर आया जो गोपाल-पूजक था। तात्पर्य यह कि जो ब्राह्मण या साधु-सन्त उनके शासन-काल में मणिपुर आये महाराजा ने उनका स्वागत किया तथा उन्हें बसने की सुविधा प्रदान की। उनके शासन-काल में अगरतला, असम एवं बंगाल से ब्राह्मणों के आगमन एवं मणिपुर में स्थायी निवास के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इसी प्रकार महाराज नरसिंह ने पुरी, सिलहट एवं नवद्वीप से आनेवाले भक्तों का भी स्वागत किया। ठाकुर महाशय को महाराजा नरसिंह ने एक हजार रुपये और वस्त्र भेंट किये थे। सिलहट-प्रवासकाल में आपने वहाँ नरसिंह-टीला अखाड़ा की स्थापना की थी। मणिपुर आने के पश्चात् उन्होंने वहाँ गोपालदास नामक एक संन्यासी को पूजा करने के लिए नियुक्त किया। इन ऐतिहासिक घटनाओं के प्रमाण 'बामन खुंथोकलोन' नामक प्राचीन ग्रन्थ में उपलब्ध हैं।

महाराज नरसिंह की श्री राधाकृष्ण-भक्ति की अमिट छाप मणिपुरी शिल्प, स्थापत्य और कला पर आज तक विद्यमान है। उन्होंने अपने राज्य-काल में मन्दिरों का पुनर्निर्माण करवाया। मणिपुर के इतिहास-लेखकों ने इन्हें श्री राधाकृष्ण के विभिन्न विग्रहों की स्थापना का श्रेय भी दिया है। उन्होंने २० अक्टूबर १८४१ ई० को खवराइबन्द बाजार, इम्फाल में शुक्रवार के दिन रामचन्द्र प्रभु की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी थी। आपने गोविन्दजी मन्दिर में श्री गोविन्दजी का अभिषेकोत्सव भी बहुत धूमधाम से मई २५, १८४४ ई० के दिन आयोजित किया था। श्री नित्यानन्द प्रभु एवं चैतन्य महाप्रभु का भी आपने अभिषेकोत्सव आयोजित किया था। आपने सनामही एवं पाखंबा नामक स्थानीय देवताओं की मूर्तियों को कछार से लाकर ६ मार्च १८४८ ई० के दिन मणिपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में पुनः प्रतिष्ठित किया। मणिपुर के इतिहास में महाराज नरसिंह के इन सभी धार्मिक कृत्यों का उल्लेख मिलता है।

सन् १८२४ ई० के मणिपुर-बर्मा-युद्ध के उपरान्त महाराजा नरसिंह ने ही धार्मिक कृत्यों एवं क्रियाओं का पुनरुद्धार किया तथा युद्ध-काल में विलुप्त धार्मिक कृत्यों की पुनःप्रतिष्ठा की। उन्होंने नवधा-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया, जिससे मणिपुर का दैनिक जीवन धर्ममय हो गया। उसका प्रभाव आज भी इस प्रदेश के जन-जीवन पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

'जलकेलि-उत्सव' की परम्परा भी महाराजा नरसिंह ने ही स्थापित की थी। सन् १८४५ ई० में ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन श्री राधाकृष्ण की जलयात्रा या जल-क्रीड़ा के अनुकरण पर इन्होंने मणिपुर में प्रथम जलकेलि-उत्सव का आयोजन किया था। 'विजय पंचाली' नामक ग्रन्थ में इस उत्सव का उल्लेख है। वहाँ यह भी लिखा है कि इस उत्सव को महाराजा नरसिंह ने स्थानीय रंग दिया था। अतः मणिपुरी जनता पर इसका तुरन्त प्रभाव पड़ा तथा जनता ने जलकेलि-उत्सव को अपना लिया। उन्होंने धार्मिक विचार-विमर्श हेतु अनेक संस्थाओं की स्थापना की तथा उन्हें संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने भक्ति, नृत्य, संगीत एवं गान को भी प्रेरणा-प्रोत्साहन तथा संरक्षण प्रदान किया, जिससे विशेष रूप से संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि दिखाई देती है। कछार-प्रवास-काल में महाराजा नरसिंह ने श्री कृष्णदास ठाकुर नामक चैतन्य-सम्प्रदाय के भक्त से भक्ति-संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी तथा उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया था। झूलन-यात्रा महोत्सव, जो महाराज गम्भीरसिंह ने आरम्भ किया था, पर गीत-भजन गाने की परम्परा नहीं थी, महाराजा नरसिंह ने उस परम्परा का श्रीगणेश किया।

इस प्रकार महाराजा नरसिंह ने मणिपुर के जन-जीवन को भक्तिमय बना दिया था। उन्होंने भजन, सन्ध्यावन्दन और नगर-कीर्तन की परम्परा की नींव डाली। भक्तजन का समूह प्रातःकाल कड़ाके की शीत सहते हुए नगर की गली-गली में भजन-कीर्तन गाते हुए प्रभात-फेरी लगाते हैं। यह प्रभात-फेरी भी महाराज नरसिंह के शासन-काल में नगर-कीर्तन के नाम से प्रारम्भ की गयी, जो आज तक चली आ रही है। 'सप्ताह' नामक कीर्तन का कार्यक्रम ७ दिन या ७ सप्ताह के लिए करने की प्रथा भी आपने ही आरम्भ की। सन्ध्यावन्दन के साथ घर-घर में भजन-कीर्तन, आरती आदि धार्मिक कृत्य भी उन्हींके समय प्रचलित हुए।

भक्ति-संगीत के क्षेत्र में महाराजा नरसिंह का उल्लेखनीय योगदान रहा है। उनके आदेशानुसार कीर्तन में भाग लेनेवाले नटों को अपने सिर पर भारी पगड़ी या साफा बाँधने की परम्परा अनिवार्य हो गयी। उन्हें गले में एक सफेद चादर गुंजा के रूप में पहननी पड़ती है तथा कमर में मेखला। करताल का लम्बा धागा भी बाँधने की परम्परा का उन्होंने ही श्रीगणेश किया। इस प्रकार आपने भक्ति-संगीत का न केवल भक्ति-भावना के कारण प्रचार-प्रसार किया, किन्तु आपकी भक्ति-संगीत के क्षेत्र में वेष-भूषा आदि की देन भी अपूर्व है।

इन्होंने श्रीगोविन्द मन्दिर में नव-दण्ड-चक्र समर्पित किया। इनके शासन-काल में प्रसिद्ध भक्त एवं सन्तों के द्वारा वैष्णव-धर्म और भक्ति के उपदेशों का आयोजन समय-समय पर किया जाता था। भागवत पुराण, प्रेम-तरंगिणी आदि धार्मिक ग्रन्थों के पाठ एवं व्याख्या भी इन्हींके शासन-काल में लोकप्रिय हुई। आपने श्री नित्याई के वंशज एक गोस्वामी द्वारा श्री वृन्दावनचन्द्र के मन्दिर में २० जून १८३० ई० से भागवत पुराण का अखण्ड पाठ आरम्भ करवाया, जो मंगलवार १ जुलाई १८४६ ई० तक (१५ साल तक) चलता रहा। इस महान् धार्मिक कृत्य का उल्लेख उपर्युक्त घटनाओं के साथ 'चैथरोल कुमबाबा' में है।

इस प्रकार महाराज नरसिंह ने भगवत्-भजन करते हुए अपना जीवन-यापन किया और सन् १८५०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ई० में हैजे के प्रकोप से दिवंगत हुए। श्री राधाकृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार में आपका उल्लेखनीय योगदान रहा। महाराज नरसिंह द्वारा प्रचलित स्वर्ण एवं रजत-मुद्राओं पर एक ओर 'मणिपुरेश्वर श्री नरसिंह नृपस्य शक १७६३' अंकित है तो दूसरी ओर श्री राधाकृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा का चित्र अंकित है। श्री राधाकृष्ण का चित्र महाराजा नरसिंह के अतिरिक्त अन्य किसी राजा की मुद्रा पर अंकित नहीं है।

श्री राधाकृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी आपके दो पद प्रस्तुत हैं :

(१)

श्रीराधे, राधे, राधे कंचन लतिके !
प्रकट ए देह छाड़ि जसित जनम धरि,
दासीगन खेल श्रीराधि हे ॥
श्री रूप मंजुरी आदि प्रिय नर्म सखी,
तति सेवन करिबे चारि पाछे।
ताहा एक सेवा करि देह मोरे ॥
दीनहीन नरसिंह दिवानिशी युगल सेवा,
एइ मने करि अभिलाष।

'हे श्री राधे ! कंचनलता श्री राधे ! आप प्रकट हो मुझे दर्शन दें, अन्यथा मैं यह देह छोड़ दूँगा। हे श्री राधेजी ! आपने दासीजन हेतु ही जन्म-धारण किया था। आप श्री रूप-मंजरी हैं, आप भगवान् को प्रिय हैं तथा उनकी अभिन्न सखी हैं। उनकी आप सेवा करती हैं। कृपा करके सेवा का मुझे भी एक अवसर दीजिये। दीनहीन नरसिंह को रात-दिन आप दोनों सेवा का अवसर दीजिये। यही अभिलाषा मेरे मन में है।'

(२)

नरसिंह महाराज की गौरांग प्रार्थना

हा हा प्रभु इष्ट गुरु कृपा गुणनिधि
काहा प्रभु प्रेम भक्ति सिद्धान्त विद्याधि
श्रीकृष्ण भजनपथ आपना सिखाई
मायाज्वाले बान्धि हया ताहा नाइये
श्रीचरण अदर्शन नाहि मोरगति
कृपा करि सिद्ध एइत काकूति
दीन नरसिंह रुचि नाम संकीर्तन
श्रीकृष्ण चैतन्य बलिया जाङक जीवन।

'हे गौरांग महाप्रभु ! आप मेरे इष्टगुरु एवं कृपा-निधि हैं। आपने ही प्रेम-भक्ति-सिद्धान्त की विद्या तथा श्रीकृष्ण का भजन-पथ दिखाया है। मैं माया के जाल में फंसा हूँ, अतः आप तक नहीं पहुँच पाता हूँ, जब तक श्रीचरणों के दर्शन नहीं होंगे, मेरी गति नहीं होगी। दीन नरसिंह की नाम-संकीर्तन में रुचि है। वह श्रीकृष्ण-चैतन्य पर अपना जीवन निछावर करता है।'

ज० सि०

(महाराज) बोधचन्द्र सिंह

महाराजा चूड़ाचाँद सिंह के नवद्वीप चले जाने के बाद महाराजा बोधचन्द्र सिंह सन् १९४१ ई० में मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए। मई १९४२ ई० से जापानी बमवर्षक वायुयानों ने इम्फाल पर बमवर्षा आरम्भ कर दी। सारी घाटी तथा इम्फाल के लोग घरों को छोड़कर पर्वतों में भाग गये। १६ मई १९४२ ई० को इम्फाल पर जो हवाई हमला जापानी वायुसेना ने किया उससे इस क्षेत्र की कानून-व्यवस्था की स्थिति बहुत खराब हो गयी। युद्ध ने मणिपुर को तहस-नहस कर दिया। उधर आजाद हिन्द फौज ने भी इम्फाल पर आक्रमण कर दिया। १४ अप्रैल १९४४ ई० को मोइराङ सहित लगभग १५०० वर्ग मील का क्षेत्र आजाद हिन्द फौज ने जीत लिया और उस पर लगभग ६ महीने तक अधिकार किये रही। किन्तु अन्त में भयंकर युद्ध में आजाद हिन्द फौज के सैनिक और जापानी सैनिक या तो मारे गये या पकड़े गये। आजादी के दीवाने आजाद हिन्द फौज के सैनिक टिड्डिम-मार्ग से मणिपुर में घुसे थे। उनके पास लड़ने के लिए न पर्याप्त हथियार थे, न पहनने को कपड़े। जंगली पेड़-पौधों के पत्ते खाते हुए ये लोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत-भूमि में पहुँच गये। आज भी प्रत्यक्षदर्शी लोगों का कहना है कि ये लोग नग्न अवस्था में भारत में घुसे थे। बहुत से लोग दवा के अभाव में बीमारी, विशेष रूप से मलेरिया से, मर गये। किन्तु इन वीरों ने विषम परिस्थितियों में भी साहस न छोड़ा। जापानी वायुसेना इन्हें भोजन नहीं पहुँचा सकी, अतः इम्फाल में ब्रिटिश सेना के भण्डार को प्राप्त करने के लिए इम्फाल की घाटी एवं पर्वतों में घमासान युद्ध के बाद आजाद हिन्द फौज व जापान की सेना के लोग पराजित हुए।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि युद्ध के दौरान भी महाराजा अपनी राजधानी में बने रहे तथा श्री गोविन्दजी मन्दिर में नित्य नियमपूर्वक पूजा-पाठ व सन्ध्या-वन्दन होता रहा। महाराजा बोधचन्द्र को सिंहासन के साथ श्री राधाकृष्ण-भक्ति-परम्परा भी विरासत में प्राप्त हुई थी। आपने पूर्वजों के द्वारा स्थापित श्री गोविन्दजी से सम्बद्ध सभी संस्थाओं को संरक्षण प्रदान किया तथा धार्मिक प्रथाओं एवं परम्पराओं का पालन किया। ये कीर्तन में स्वयं भाग लेते थे और मृदंग बजाते थे। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन एक गृहस्थ वैष्णव संन्यासी के रूप में व्यतीत किया। इनका शासन-काल सन् १९५५ ई० तक रहा। महाराजा बोधचन्द्र सिंहजी का श्री राधाकृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी निम्न पद उपलब्ध है—

जय रे श्री राधाकृष्ण करि निवेदन।
तुमा दुहा श्रीचरने सर्मपिलु पंच प्राणे॥
पहु निजदास मध्ये गणिया राखिय।
ताते एक करि आतमा संर्पपिये॥
श्रील श्रीयुक्त चुराचाँद अनुगत बुद्धचन्द्र।
नित-निति जुगल चरण॥

एइ आसा मने हइल।
जन्मे-जन्मे निज दासी॥
प्रेम सेवा दिवे दान।
दीन-हीन कृष्णदास एइगुण गान॥

'श्रीराधाकृष्ण की जय हो! मैं आप दोनों के श्रीचरणों में सविनय अपने पंचप्राण समर्पित करता हूँ। आप मेरी भी अपने दासों में गणना कीजिये। मैं श्री चूड़ाचाँद का अनुगत (पुत्र) बुद्धचन्द्र नित्य आपके युगल चरण की वन्दना करता हूँ। मेरे मन में एक ही आशा है कि आप मुझे जन्म-जन्म तक अपना दास बनाइये और अपनी प्रेम-भक्ति का दान दीजिये। मैं दीनहीन हूँ, श्रीकृष्ण-दास हूँ, सदैव उन्हीं-का गुणगान करता हूँ।'

ज० सिं०

(महाराज) मधुचन्द्र सिंह

महाराजा मधुचन्द्र सिंह मणिपुर के महाराजा भाग्यचन्द्र के तृतीय पुत्र थे। महाराज मधुचन्द्र सिंह को भी श्री राधाकृष्ण-भक्ति विरासत में प्राप्त हुई थी तथा उनके परिवार में राधाकृष्ण-भक्ति का वातावरण भी था। अतः मधुचन्द्र सिंह बाल्यकाल से ही श्री राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। भाग्यचन्द्र अपने द्वितीय पुत्र लावण्यचन्द्र को मणिपुर का राज्य सौंपकर चले गये, किन्तु जब षड्यन्त्रकारियों ने उनकी हत्या कर दी तो महाराजकुमार मधुचन्द्र ने मणिपुर का राज्य-सिंहासन सँभाला। मधुचन्द्र ने अपने भाई चौरजीत को युवराज नियुक्त किया तथा मारजीत को सेना-पति। किन्तु चौरजीत कुछ ही दिन बाद सिंहासन प्राप्त करने की चेष्टा में असफल होकर नवद्वीप चले गये। वहाँ से लौटकर उन्होंने पुनः मणिपुर पर आक्रमण किया और सेनापति मारजीत उनके साथ मिल गया, अतः मधुचन्द्र को भागकर कछार में शरण लेनी पड़ी। इन्होंने कछार के राजा कृष्णचन्द्र की सहायता से पुनः मणिपुर के सिंहासन पर अधिकार करने का प्रयास किया, किन्तु विष्णुपुर में चौरजीत के हाथों मौत के घाट उतार दिये गये।

महाराज मधुचन्द्र के जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। किन्तु श्री राधा-कृष्ण के भक्त होने का प्रमाण इनकी निम्न रचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। कहा जाता है कि वे नित्य नियमपूर्वक श्री राधा-कृष्ण की भक्ति में तल्लीन रहते थे और अत्यन्त भावुकतापूर्ण स्वर में निम्न पद गाया करते थे :

बन्दे हुँ श्री गुरु पादपद्म।
भक्तिर कल्पतरु मूर्तिधारी।
संचक रससिन्धु वर मूर्तिधाम।
श्री गुरु करुणा सिन्धु,
भाग्यचन्द्र दीनबन्धु मोर दुर्भाग्य,
प्रकट ना हैल ॥
हृदय मन्दिर थाकि चर्म चक्षु नाहिं देखी,
भावचाया गुप्त रहिल,
वृन्दावन मध्यस्थल जोगपिठ रत्न मूल,
कुर्म्म पृष्ठे सुमन्दिर राजे।
प्रेम मंजुरी संगे सेवा करे नाना रंगे,
किशोरा-किशोरी पदाम्बुजे।
हा हा प्रभु कर दया लुया अनुगत,
हइया सदाइ राखह मोर प्राण।
विषयी विषम बन्ध माया,
ए मोहित अन्ध मधुचन्द्र करये प्रार्थना ॥

'मैं श्री गुरुजी के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जो भक्ति के मूर्तिमान् कल्पतरु हैं। वे श्रेष्ठ मूर्ति-धाम हैं, जिनमें भक्ति-रस संचारित होता रहता है। श्री गुरुजी करुणा के सागर हैं, भाग्यचन्द्र हैं तथा दीनबन्धु भी हैं। किन्तु मेरा यह दुर्भाग्य है कि वे प्रकट नहीं हो रहे हैं। भगवान् मेरे हृदय-मन्दिर में निवास करते हैं और चर्म-चक्षुओं से उनके दर्शन सम्भव नहीं हैं। वे भावों की भाँति गुप्त रहते हैं। उनका वृन्दावन के मध्यभाग में रत्नमूल जोगपीठ है और कूर्म्मपीठ पर बना उनका सुन्दर मन्दिर सुशोभित है। उनके पद-पद्मों में प्रेममंजरी राधा और विभिन्न किशोर-किशोरियाँ सेवारत हैं। हे प्रभु ! मैं तुम्हारा अनुगत हूँ, दया करो। सदा मेरे सहायक बनो तथा मेरे प्राणों की रक्षा करो। विषय-वासना एवं माया के विषम बन्धनों में बँधकर मैं आसक्त हूँ, अंधा हूँ, अतः आपसे प्रार्थना करता हूँ।'

महाराज मधुचन्द्र ने अपने पितृश्री के द्वारा मणिपुर की उर्वर धरती पर लगाये गये श्री राधा-कृष्ण-भक्ति के पौधे को अपने अल्प काल के शासन में भलीभाँति सँभाला-सँवारा।

ज० सिं०

माइमोम थानिलसिंह 'संगीतरत्न'

माइमोम थानिलसिंह का जन्म सन् १५ जुलाई १९०५ ई० को नम्बोल अवांजिरि में हुआ था। आपके पिता का नाम माइमोम तोम्बासिंह तथा माता का नाम असेम चनु पदनीदेवी था। बाल्यकाल में ही परिवार की परम्परानुसार आपको गौड़ीय धर्म में दीक्षा दी गयी। आपके पिता एवं पितामह श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। माताजी भी साध्वी स्त्री थीं। इस प्रकार थानिल का पालन-पोषण धार्मिक वातावरण में हुआ और माताजी ने स्तनपान के साथ ही आपको श्रीकृष्ण-भक्ति की भी शिक्षा दी। धार्मिक संस्कार के उद्देश्य से मणिपुरी के अतिरिक्त इन्हें संस्कृत एवं बंगला भाषाओं की भी शिक्षा दी गयी।

धार्मिक शिक्षा के परिणामस्वरूप थानिल ने १२ वर्ष की अवस्था से ही भजन-कीर्तन गाना आरम्भ कर दिया। इन्होंने भक्तिभाव से परिपूर्ण अनेक गीतों की रचना की है। इन गीतों में गौरावतार, युगलरूप, गोष्ठलीला, नित्यलीला तथा गौर भावी प्रमुख हैं। ये अपने समय के प्रसिद्ध कीर्तन-गायक थे। नम्बोल के अतिरिक्त आपको मणिपुर की घाटी के विभिन्न गाँवों से संकीर्तन-गायन के लिए निमन्त्रण प्राप्त होते थे और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये उन बस्तियों में कीर्तन करने जाते थे। इनकी गान-प्रतिभा जन्मजात थी, स्वर में जादुई प्रभाव था। इनका कीर्तन सुनने के लिए आसपास के गाँवों के लोग एकत्र हो जाते थे। इनके कीर्तन-स्वर के उतार-चढ़ाव के साथ श्रोता भाव-विह्वल हो जाते थे।

आपके कीर्तन की लोकप्रियता के परिणामस्वरूप मणिपुर संकीर्तन परिषद्, इम्फाल द्वारा आपको 'संगीत-रत्न' की उपाधि से विभूषित किया गया था। मणिपुर के संकीर्तन-गायकों में ये अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना गये हैं। इनके भक्ति-भावनायुक्त पद आकाशवाणी के इम्फाल केन्द्र से आज भी प्रसारित किये जाते हैं।

सार्वजनिक जीवन में तो ये भक्ति-संगीत-गायक के रूप में प्रसिद्ध थे ही, इनका व्यक्तिगत जीवन भी भक्ति-भावना से पूर्ण था। नियमित रूप से पूजा-पाठ एवं सन्ध्यावन्दन ये निरन्तर करते थे। गौड़ीय वैष्णव-धर्म में दीक्षित होने के कारण इनका जीवन एक गृहस्थ संन्यासी का जीवन था। इनकी रचनाओं में भक्ति-भावना की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। आपकी रचना का एक उदाहरण अनुवाद-सहित प्रस्तुत है—

गौरावतार

हे राधे ! नवद्वीपता पोवलुरगनि
नन्द घरबु थनमलगनि
सखी-सखा लोइनदुना
भक्त ओइना पोवलुरगनि।

'हे राधे ! मैं नवद्वीप में जन्म लूँगा। मैं नन्द के घर को छोड़कर आऊँगा और अपनी सखियों एवं सखाओं के साथ मैं भक्त के रूप में अवतार लूँगा।'

युगलरूप

यमुना गी लम्बी दा
कदम्ब गी मखों दा

'यमुना के मार्ग पर तथा कदम्ब के नीचे।'

आजीवन भक्तिभावपूर्ण संकीर्तन-गान करके इन्होंने सन् १९८१ ई० में परधाम-यात्रा की।

ज० सिं०

(महाराज) मारजीत सिंह

महाराजा मारजीत महाराज भाग्यचन्द्र के आठ पुत्रों में से एक थे। ये भी बाल्यकाल से ही राधाकृष्ण-भक्त थे। जब मधुचन्द्र मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए तो इन्होंने मारजीत को अपना सेनापति नियुक्त किया। किन्तु बाद में मारजीत ने चौरजीत का साथ दिया तथा मधुचन्द्र को पदच्युत करके चौरजीत को मणिपुर के सिंहासन पर अधिकार करने में सहायता दी। चौरजीत से भी इनकी नहीं निभ सकी। अतः इन्हें बर्मा और कछार में शरण लेनी पड़ी। बाद में बर्मा के अवा के राजा की सहायता से इन्होंने महाराजा चौरजीत को अपदस्थ किया तथा सन् १८१३ ई० में मणिपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए। ये प्रारम्भ में बर्मा के अधीनस्थ राजा के रूप में मणिपुर के राजा बने थे, किन्तु बाद में इन्होंने उस अधीनता के जुए को उतार फेंका।

इन्होंने अपने छः वर्ष के संक्षिप्त राज्यकाल में मणिपुर में अनेक विकास-कार्य किये। इन्होंने राजमहल का पुनर्निर्माण करवाया तथा उसे अधिक सुन्दर रूप दिया। इन्होंने सड़कें भी बनवायीं। बर्मा के राजा के साथ बहुत दिनों के सम्पर्क के प्रभाव के कारण इन्होंने बर्मी शिल्प-स्थापत्य आदि कलाओं का अनुकरण भी किया। छः वर्ष के शासन-काल के उपरान्त बर्मा के राजा ने पुनः सन् १८१९ ई० में मणिपुर पर आक्रमण किया। अतः महाराज मारजीत को भागकर कछार जाना पड़ा। यहाँ इनकी भक्ति-भावना के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वह कछार जाते समय श्री गोविन्दजी की प्रतिमा (बर्मी सेना से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्षा करने के लिए) साथ ले गये। वहाँ उन्होंने अपने भाई चौरजीत को प्रतिमा का भार सौंपा। इससे मारजीत की श्री राधाकृष्ण के प्रति निष्ठा प्रकट होती है।

महाराजा भाग्यचन्द्र ने मृदंग-नृत्य जिसे स्थानीय भाषा में 'पूङचलम या चोलम' कहते हैं, जो नट-संकीर्तन का प्रमुख अंग है, में महाधूमल नामक मृदंग-नृत्य का आविष्कार एवं प्रचलन किया था। उसी परम्परा में महाराज मारजीत ने 'नित्याई-धूमल' नामक मृदंग-नृत्य का प्रचलन किया, इससे मारजीत महाराज की श्री राधाकृष्ण-भक्ति में निष्ठा प्रकट होती है। महाराजा मारजीत के सिक्के पर 'श्री श्री राधा गोविन्द पदारविन्द मनोमधुकरस्य' अंकित है। इससे श्री राधाकृष्ण के काव्यों में इनकी प्रगाढ़ आस्था व्यंजित होती है।

महाराज मारजीत सिंह के जीवन एवं भक्ति-भावना के सम्बन्ध में इतना ही विवरण उपलब्ध है, शेष काल-कवलित हो चुका है। आपकी एक रचना उपलब्ध हो सकी है, जो नीचे दी जा रही है—

गौरांग-प्रार्थना

देख देख चैतन्यरूप मनोहर।
उछलन रात्रिदिन छारिते नारिल मन॥
मुखचन्द्र नूतन आकार।
अलका आवृत मुख देखिया मनेर सुख॥
कृपा करि मोरे देखा दिल।
अति उच्च वक्षःस्थल शोभियाछे॥
क्षीणकंठि अंग देखि अति तृष्णा बाढे।
आद्वैतादि भक्त संगे हरि संकीर्तन रंगे॥
राधा भावे आचाम्बिते पड़े।
आजानुलम्बित भुजे चन्दन वलया साजे॥
रक्तोत्पल जिनि पदतले।
कृपा दडिबांधि मोरे॥
टानिया राख पदतले।
एइ आशा मारजीत करे॥

'चैतन्य महाप्रभु के मनोहर रूप को देख-देखकर मेरा हृदय रात-दिन उछलता है और वह उछलना छोड़ता ही नहीं है। महाप्रभु का मुखचन्द्र नवीन आकार धारण करता है, केश-राशि से आवृत गौरांग प्रभु को देखने पर मन को सुख प्राप्त होता है। उन्होंने कृपा करके मुझे अपना रूप दिखला दिया है। प्रभु का वक्षःस्थल उन्नत है, जिस पर पुष्पमाला एवं उत्तरीय शोभित हैं। उनके वस्त्र अरुण रंग के हैं और उन्होंने धोती धारण की है। उनकी क्षीणकण्ठी को देखकर मन में तृष्णा बढ़ती है। अद्वैत आदि भक्त उनके साथ हैं तथा संकीर्तन के रंग में डूबे हैं। राधा-भाव का उन्होंने आचमन किया है। वे आजानुबाहु हैं तथा उनके चन्दन के कंगन सुशोभित हैं। हे रक्तोत्पल चरणोंवाले गौरांग प्रभु! आप मुझे अपने चरणों में बाँधकर रखिये। मारजीत आपका दास है, उसको अपने पदतल में रखिये।'

—ज० सि०

युम्नाम नातूमसिंह (इबोचौबा)

युम्नाम नातूमसिंह मणिपुर के प्रसिद्ध नटसंकीर्तनाचार्य एवं कवि माने जाते हैं। ये भगवान् कृष्ण के परमभक्त और गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनका जन्म युम्नाम लैकाई लाइरेम्बी, इम्फाल में हुआ था। सन् १८९१ ई० से ये परिस्थितिवश अपने परिवार के सदस्यों के साथ सगोलबंद अखाम लैकाई में रहने लगे थे। इनका बाल्यकाल का नाम इबोचौबा था, किन्तु नटसंकीर्तन-गायक एवं कवि के रूप में ये अपने उपनाम युम्नाम नातूमसिंह के नाम से ही मणिपुर और अन्यत्र प्रसिद्ध हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका विवाह क्वाकैथेल थौनाओजम् लैकाई, इम्फाल की कुमारी अङ्गोदेवी के साथ हुआ था। गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए में छः पुत्र और दो पुत्रियों के पिता हुए।

युम्नाम नातूमसिंह को बचपन से मणिपुरी भाषा के साथ ही संस्कृत और बंगला भाषा की भी शिक्षा दी गयी। आपने तीनों ही भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त करके मणिपुरी के साथ-साथ संस्कृत एवं बंगला में भी काव्य-रचना की। इनकी रचनाएँ श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना से ओतप्रोत हैं। ये स्वरचित कविताओं को गाते थे और अपने शिष्यों को भी सिखाते थे। नटसंकीर्तन-गायक के रूप में इनकी मणिपुर में बहुत प्रतिष्ठा थी। अतः मणिपुर की घाटी के वैष्णव-बहुल क्षेत्रों में इन्होंने अनेक संगीत-यात्राएँ कीं। इनका सारा जीवन श्री राधाकृष्ण की भक्ति-भावना के लिए समर्पित था। इस निमित्त से इन्होंने मांडले (ब्रह्मा), ढाका (बंगला देश) की कई यात्राएँ कीं। मणिपुर के पड़ोसी राज्य असम, त्रिपुरा तथा बंगाल की कीर्तन-यात्रा के साथ ये इसी क्रम में दिल्ली और पटना भी गये।

मणिपुर एवं मणिपुर के बाहर श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना के प्रचार-प्रसार में ये आजीवन संलग्न रहे। अपने काव्य-प्रतिभा एवं मधुर स्वर के बल पर ये जहाँ भी गये वैष्णव-धर्म-भावना के प्रसार में अद्भुत सफलता प्राप्त करके लौटे। कहते हैं कि इन्होंने लगभग एक हजार से अधिक पदों की रचना की थी, किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इनका अधिकांश काल के गाल में विलुप्त हो चुका है। आपके दो कविता-संग्रह जीर्ण अवस्था में उपलब्ध हो सके हैं। मणिपुरी नट-संकीर्तन-गायक कलाकारों को आज भी इनके द्वारा रचित पद कण्ठस्थ हैं और इनकी अधिकांश कृतियाँ मौखिक परम्परा में भी सुरक्षित हैं।

युम्नाम नातूमसिंह मणिपुर के महाराजा सर चूड़ाचाँद सिंह एवं महाराज बुद्धचन्द्र सिंह के संगीत-गुरु थे। राजगुरु होने के कारण वे राजवेष धारण करते थे अर्थात् हाथों में स्वर्णकंगन, खामेनचत्प नामक धोती, तान, मेन तथा पाम्बोम्याइ नामक अलंकार पहनते थे। महाराज सर चूड़ाचाँद सिंह (सन् १८९१–१९४१ ई०) तथा महाराज बुद्धचन्द्र सिंह के संगीताचार्य होने के कारण ये मणिपुर में अपने समय के सबसे शक्तिशाली गुरुओं में गिने जाते थे। राजगुरु होने के लिए गायक या कलाकार को खुली प्रतियोगिता में अपने समय के कलाकारों को पराजित करना पड़ता है। इसके बाद ही वह व्यक्ति राजगुरु-पद का अधिकारी बनता है। महाराज बुद्धचन्द्र के जीवन-काल में ही युम्नाम नातूमसिंह का सन् १९४४ ई० के आसपास देहान्त हो गया।

बंगाली संकीर्तन-परम्परा में मणिपुर के आप प्रथम कलाकार थे जिनका कार्यक्रम आकाशवाणी के कलकत्ता-केन्द्र से प्रसारित किया गया था। अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर इन्होंने देश-विदेश में प्रचुर ख्याति प्राप्त की। अपने जीवनकाल में इन्हें अनेक पुरस्कार तथा पदक प्राप्त हुए। ये श्री श्री गोविन्द मन्दिर के सनापाला (सर्वश्रेष्ठ) संकीर्तन-दल के मुख्य गायक थे। मुख्य गायक को मणिपुरी भाषा में ईशैहन्बा या ईशैशक्प कहते हैं। ईशैहन्बा पद और वह भी सनापाला का, अपने-आपमें महान् एवं गौरवशाली उपलब्धि है।

ये ६४ धुनों में संकीर्तन गा सकते थे। इनके निम्नलिखित काव्य-ग्रन्थों के प्रकाशित होने की सूचना प्राप्त हो सकी है, किन्तु उनमें से अधिकांश उपलब्ध नहीं हैं—

१. योगीवेश के गीत,
२. गोपीतानी वेश के गीत,
३. मुरली शाखा के गीत,
४. मोहिनी वेश के गीत,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. रासलीला के गीत,
६. मधुर रस के गीत तथा
७. उपरस के गीत।

इनके अतिरिक्त उनकी निम्नलिखित अप्रकाशित रचनाओं का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है—

गोष्ठलीला के गीत,
अनुराग के गीत,
अभिसार के गीत तथा
अन्य गीत।

आपके अधिकांश पद बंगाली भाषा में लिखे गये हैं और कुछ संस्कृत में। मणिपुरी भाषा में भी आपने काव्य-रचना की है। एक मणिपुरी भाषा का पद देखिये—

गौरांगगी रूप, सनागी, थम्बौबु ङमजरबा।
पाम्बोम, अनित, वांन थांगत्तुन
लैन-लैन जगोइ शारी॥

'गौरांग महाप्रभु का गौर रूप स्वर्ण से भी सुन्दर है। आप कमलनाल से अधिक सुन्दर दोनों भुजाओं को उठाकर झूम-झूमकर नाच रहे हैं।'

ज० सि०

(महाराज) लावण्यचन्द्र सिंह

मणिपुर के महाराज भाग्यचन्द्र उपनाम जयसिंह जब गंगा-यात्रा पर नवद्वीप गये तो सन् १७९८ ई० में राज्यसिंहासन का भार अपने द्वितीय पुत्र रविचन्द्र अथवा लावण्यचन्द्र को सौंप गये थे। भाग्यचन्द्र महाराज के कुल ८ पुत्र थे। उनमें राज्यसिंहासन के लिए परस्पर संघर्ष चल रहा था। दाओजी उपनाम खाङजयङबा तथा गम्भीरसिंह अपने चाचाओं के साथ मिलकर षड्यन्त्र रच रहे थे। महाराज लावण्यचन्द्र केवल तीन वर्ष तक ही मणिपुर पर शासन कर सके थे कि एक दिन पोलो खेलकर जब लौट रहे थे तो उनकी हत्या कर दी गयी।

महाराज लावण्यचन्द्र की श्री राधाकृष्ण-भक्ति-भावना के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इन्होंने पिता के द्वारा स्थापित राधाकृष्ण-भक्ति तथा उसकी परम्पराओं और प्रथाओं का अपने शासनकाल में पालन किया। राधाकृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध इनकी निम्नलिखित प्रार्थना उपलब्ध है जो इनकी भक्ति-भावना का प्रमाण मानी जा सकती है। इन्होंने अपने पिता का अनुसरण करते हुए उत्साह एवं निष्ठा के साथ राधाकृष्ण-भक्तिमय जीवन व्यतीत किया तथा अपने शासन-काल में उसका प्रचार-प्रसार किया।

अपने शासन-काल में इन्होंने विद्वानों की नियुक्ति की तथा उन्हें राजपरिवार की नवद्वीप एवं गंगा-यात्रा का वर्णन लिखने की आज्ञा दी। ज्ञातव्य है कि महाराज लावण्यचन्द्र भी अपने पिता के साथ इस यात्रा पर गये थे। इन्होंने पिता के द्वारा स्थापित श्री राधाकृष्ण-भक्ति का पूर्ण रूप से अनुसरण किया। पिता के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को इन्होंने आत्मसात् कर लिया था। अपने तीन वर्ष के शासन-काल में इन्होंने मणिपुर राज्य में श्री राधाकृष्ण-भक्ति की जड़ें सुदृढ़ कीं।

महाराजा लावण्यचन्द्र द्वारा जारी की गयी स्वर्ण एवं रजत-मुद्राओं पर 'श्रीमद् राधा गोविन्द पदारविन्द मकरन्द मनोमधुकरस्य' अंकित है। इनकी शक संवत् १७२६ की एक अन्य मुद्रा पर 'श्री श्री राधा गोविन्द पदसेवक' भी अंकित है। ये प्राचीन मुद्राएँ इम्फाल के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं तथा इन पर अंकित देवनागरी लिपि के उपर्युक्त शब्द पढ़े जा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके द्वारा रचित एक प्रार्थना नीचे दी जाती है :

जय जय वृन्दावनचन्द्र ।
व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ।।
भक्त चकर रस तृष्ण ।
लोकनाथ गोपी प्रेमानन्द ।।
राधा प्रिय भ्रमर गोपीगन ।
प्राणेश्वर हा हा कृष्ण मोर प्राणार्पन ।।
वृन्दावने विहरन राधा संगे गोपीगन ।
रसराज मुरली वदन ।।
व्रज बिनद नागर प्रेमरस सागर ।
व्रजवासी जनेर पराण ।।
प्राणनाथ दयावान मोरे देय सेवादान ।
लावण्यचन्द्र दास हृदि ध्यान ।।

'हे वृन्दावनचन्द्र ! व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण ! आपकी जय हो । आप लोकनाथ हैं और गोपीजन के साथ प्रेमानन्द में मग्न रहते हैं । रस-तृषित भक्त भ्रमर आपके चारों ओर मँडराते हैं । आप प्राणेश्वर हैं । हे कृष्ण ! मैं अपने प्राण आपको अर्पित करता हूँ । आप वृन्दावन में राधा और गोपीजनसहित विहार करते हैं तथा रसमय वंशी-वादन करते हैं । हे प्रेमरस-सागर नागर ! आपकी वेणु के स्वर व्रजमण्डल में निनादित होते हैं । आप व्रजवासी जन के प्राण हैं । लावण्यचन्द्र आपका दास है जिसके हृदय में सदैव आपका ही ध्यान है । हे प्राणनाथ ! हे दयावान् ! मुझे सेवा करने का वरदान दान के रूप में दीजिये ।'

महाराज लावण्यचन्द्र की दूसरी एक रचना और उपलब्ध है, जिसमें इन्होंने गौरांग महाप्रभु से प्रार्थना की है—

शुन शुन प्राणनाथ कृपार सागर ।
पतित दुर्जनवास पापेर भूषण ।।
अन्ध आर्काचिना कृपाये प्रचुर ।
कृष्ण ज्ञानामृत शिक्षा प्रभुपाद ।।
सेविदान बांछातरे सेवा इच्छापूरं ।
प्रभु नवद्वीप जात्रा लोक शिक्षा मन भावे ।।
अभाग्येर दास पतितेर ।
हा हा चन्द्रवदन अदर्शने प्राण जाई ।।
कृपा करी देओ दरशन ।
प्रभु भाग्यचन्द्र कोने दिने दया दबे ।।
लावण्यचन्द्र दास आसा मने ।।

'हे प्राणनाथ ! कृपासागर ! सुनिये, मैं पतित, दुर्जन और पापों का आभूषण हूँ, माया-मोह में अन्धा हूँ । अतः आप मुझ पर कृपा कीजिये । हे कृष्ण ! हे ज्ञानामृत ! हे प्रभु ! आप सेवा की आकांक्षा रखनेवालों की इच्छा पूरी करते हैं । हे प्रभु ! आपने नवद्वीप की यात्रा करके लोगों को मनभावनी शिक्षा प्रदान की । अभागे एवं पतित दास-भक्तों का उद्धार कीजिये । आपके चन्द्रवदन के दर्शन के बिना मेरे प्राण ही चले जायेंगे, इसलिए आप कृपा करके दर्शन दीजिये । हे प्रभु ! आपकी किस दिन मुझ पर कृपा होगी ? आपके दर्शन की आशा लावण्यचन्द्र के मन में है ।'

ज० सिं०

शोराम अङाहल सिंह

अङाहल सिंह का जन्म सन् १९०१ ई० के दिसम्बर मास में सेगारोड तेखेलमवम लैकाई नामक ग्राम के एक ऐसे परिवार में हुआ था जिसमें भक्ति की सुदृढ़ परम्परा थी । आपके परदादा खोमदोन मणिपुर के महाराजा चन्द्रकीर्ति सिंह के शासनकाल में श्री गोविन्द मन्दिर के अरिबापाला में 'हंजबा' अर्थात् प्रमुख मृदंग-वादक थे । 'हंजबा' का पद राजा की ओर से प्रतियोगिता के बाद प्रदान किया जाता था । जो व्यक्ति इस पद पर नियुक्त किया जाता था उसको 'हंजबा पूङ्यैबा हिदङ' कहा जाता था । अतः इन्हें कृष्ण-भक्ति वंश-परम्परा से विरासत में प्राप्त हुई थी । इनके पिता का नाम अतोनसिंह व माता का नाम अमूबीदेवी था ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाल्यकाल से ही इनकी हरि-भक्ति में रुचि थी। इन्होंने सम्पूर्ण जीवन श्री गौरहरि-संकीर्तन में व्यतीत किया था। बाल्यकाल में नृत्याभिनय-सम्बन्धी कुशलता के कारण इनको 'शनशेनबा' या गोष्ठलीला के उत्सव में महाराजा चूड़ाचाँद सिंह की सुपुत्री महाराजकुमारी तम्पाक सना के साथ 'मकोर्कचिबा' (अर्थात् प्रमुख गोपी (नायिका) के अनुगामी) के रूप में भाग लेने का अवसर दिया गया था। 'शनशेनबा' नामक लीला में भाग लेने के लिए श्री गोविन्दजी मन्दिर में ही नहीं, अन्य गाँवों में भी इन्हें विशिष्ट रूप से आमन्त्रित किया जाता था। गौरलीला में ये हरिदास, नित्यानन्द एवं गौरांग महाप्रभु का भी अभिनय करते थे। यही नहीं, बाल्यकाल में ही आपने 'निपा मचा पाला' (बाल-नृत्य संकीर्तन-दल) में 'ईशैहनब' या प्रमुख गायक के रूप में भाग लेना आरम्भ कर दिया था। इनके कण्ठ में सरस्वती विराजती थीं। ये जब गाते थे तो अपने मधुर स्वर से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते थे।

बचपन के संस्कार प्रबल होते हैं। ये बचपन से ही विभिन्न नृत्य-संगीत गुरुओं के साथ रहे और उनसे गायन, नृत्य, अभिनय और मृदंग-वादन की शिक्षा प्राप्त की। जन्मजात प्रतिभा के कारण इन्होंने भक्ति-संगीत में विशेष योग्यता अर्जित की। मणिपु में संगीत भक्ति का अभिन्न अंग है और संगीत-साधना भक्ति-साधना का पर्याय मानी जाती है। इस साधना के बल पर ही ये नट-संकीर्तन के प्रमुख गुरु-पद पर पहुँचे। श्री गोविन्दजी मन्दिर मणिपुर की सर्वोच्च संस्था है तथा श्री गोविन्दजी सर्वोच्च सता। राजा, राज्य, नृत्य, संगीत आदि संस्थाएँ इसीके अंग हैं। अङाहलजी नट-संकीर्तन एवं संगीत-संस्थाओं से बाल्यकाल से ही सम्बद्ध रहे और जीवन के अन्तिम दिनों में इनके शीर्ष स्थानों पर पहुँचे। कला की साधना द्वारा इन्होंने गौड़ीय वैष्णव-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। जन्म, विवाह या श्राद्ध के अवसरों पर घर-घर में नट-संकीर्तन का आयोजन और श्रेष्ठ कलाकारों को उसमें आमन्त्रित किया जाता है। अङाहलजी मणिपुर के गाँव-गाँव में संकीर्तन हेतु अपने गायक-वादक-दल के साथ जाते थे। श्रेष्ठ गायन-वादन एवं अभिनय के कारण इन्हें ससम्मान आमन्त्रित किया जाता था। तत्कालीन प्रसिद्ध गुरु खोमद्रोम गुलामजात सिंह और हमोम तोम्बासिंह से शिक्षा-दीक्षा लेकर नट-संकीर्तन-सम्बन्धी गायन, वादन या राग-सम्बन्धी विवाद अथवा नयी रचना के निर्णायक मण्डल के सदस्य भी बन गये। चूड़ाचाँद महाराजा के समय महाराजकुमार द्रुमसिंह के वृन्दावनचन्द्र पाला (दल) का आपको नेता नियुक्त किया गया। श्री गोविन्दजी के 'थोक पाला' गायक दल में इन्हें 'दाहार या दुहार'–संकीर्तन एवं रास-नृत्य में, मुख्य गायक के बोल को दोहरानेवाला नियुक्त किया गया और महाराजा द्वारा स्वर्ण का कड़ा, बाजूबन्द एवं राजा द्वारा पहनी जानेवाली रंगीन मखमली धोती पुरस्कारस्वरूप प्रदान की गयी। श्री श्री गोविन्दजी मन्दिर की विभिन्न संस्थाओं के नृत्य-गान में विभिन्न प्रतियोगिताओं में ये सर्वश्रेष्ठ गायक थे। मणिपुर के अतिरिक्त आपने पड़ोसी राज्य असम, त्रिपुरा एवं बंगाल की धार्मिक यात्राएँ कीं और वहाँ अनेक संकीर्तन-कार्यक्रम प्रस्तुत किये। दिल्ली, वृन्दावन एवं मथुरा के मन्दिरों में इन्हें संकीर्तन के लिए सादर आमन्त्रित किया गया। आकाशवाणी के इम्फाल-केन्द्र से भी इनकी संगीत-रचनाएँ समय-समय पर प्रसारित की जाती रही हैं।

अङाहलजी के अनेक शिष्य हैं जो आज भी मणिपुर एवं पड़ोसी राज्यों में भक्ति-भावना के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। भक्ति-संगीत के माध्यम से आपने पूर्वांचल में भक्ति-प्रचार की परम्परा स्थापित की थी। इनको थाङजम के नाम से भी जाना जाता है। 'ईशै हनबा' (मुख्य गायक) एवं 'दुहार' के रूप में आपका नाम अमर हो गया है। पूङ् चोलम्' या मृदंग-नृत्य में ये अभिनय, नृत्य तथा गान प्रस्तुत करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक ही व्यक्ति में एक साथ इतने गुण ईश्वर की अद्भुत देन मानी जाती है। मणिपुर-साहित्य परिषद्, इम्फाल ने आपको 'नट-गुरु' की उपाधि से विभूषित तथा पुरस्कार एवं प्रमाण-पत्र आदि द्वारा सन् १९६८ ई० में सम्मानित किया था।

इन्होंने नट-संकीर्तन में मृदंग एवं करताल के छोटे ताल की रचना का आविष्कार किया जो संगीत-क्षेत्र में एक नया आविष्कार माना जाता है। इनके द्वारा निर्मित इन तालों से सम्बद्ध पुस्तक जवाहरलाल नेहरू नृत्य-अकादमी, इम्फाल में एम० ए० के पाठ्यक्रम में सम्मिलित की गयी है। इन्होंने भक्ति-संगीत को भक्ति-साधना के रूप में अपनाया और अन्तिम समय तक उसमें लीन रहे। इनका गोलोकवास ३ फरवरी १९६८ ई० को हुआ।

शोराम अङहल सिंह द्वारा विरचित छोटे ताल का एक गीत प्रस्तुत है :

प्रिय सजनी केमने सहिब प्राण।
प्राण सखी बिशाखे किहेतु जीबन राखिब।
गुणि गुणि आमार प्राण धरिते नारे।
बन्धुर लागिया प्राण सहिते नारे ॥ ० ॥

घरे बसि राख तुया कुलेर धरम,
अभायगिनी करिब उचित कर मोरे।
प्राण सखी। प्राण सखी ओगो ललिते।
हामु नारी कुलबाला ना जानि
कि करिल काला नारी ना हइताम
यदि संगे याम निरबधि।
शुनगो ललिता कि हइल राधा पाप
कपाले बिधि सिरिजिलो।
हा हा बिधि मोरे केने एतय दुःख दिले ॥ ० ॥

पिरीति विषम जाला किसहे अबला-बाला।
कालिन्दि जले प्रबेशिब राधा प्राण तेजिब ॥
(शुन प्राण सखीहे)
मरम कथा तोरे बलि। तोमाबिने कारे बलि,
दुखेर दुःखी सुखेर सुखी शिशु बेला संगिनी।
घरे रइते सुख नाइ सदाइ कलंक पाइ,
कंलक्किनी प्राण तेजिब ॥ ० ॥

मरिब मरिब सखी निश्चये मरिब।
मरब समये सखी कृष्ण नाम श्रबने गुणओ।
मृत्यु काले कृष्ण नाम शुनि यदि मइलेम
राधा पुन जन्मे मार चरण दासिनी हबा ॥ ० ॥

'हे सखी ! कृष्ण-वियोग को मेरे प्राण क्योंकर सह सकेंगे ? मैं अपने प्रियतम के अभाव में किसलिए प्राण रखूँगी ? मेरे प्राण प्रियतम के सम्बन्ध में विचार कर-कर धैर्यहीन हो रहे हैं। मेरे प्राण अपने बन्धुजन (कुटुम्बियों) के साथ भी नहीं रहना चाहते हैं।

उनके (कृष्ण के) चले जाने के पश्चात् भी हम अपने घर रहकर अपनी कुल-मर्यादा की रक्षा करेंगी। हम अभाग्य की मारी हैं। हमारे लिए उचित कार्य यही है। हे प्राणप्रिय सखी ! हम कुल-बालाएँ हैं, हम नहीं जानतीं कि हमारे लिए क्या उचित कर्म है ? विधाता ने हमें स्त्री क्यों बनाया है ? राधा और ललिता के भाग्य में विधाता ने क्या लिख दिया है ? उसने हमें इतने दुःख क्यों दिये हैं ?'

प्रिय के विषम वियोग की ज्वाला को हम अबला-बालाएँ कैसे सहन करें ? मैं अपनी मर्म-कथा हे सखी ! तुम्हें ही सुना रही हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त कहें भी तो किससे ? तुम शैशव-काल से ही मेरी सखी हो और मेरे दुःख में दुःखी तथा सुख में सुखी होती हो। इस घर में रहकर अब सुख नहीं है, क्योंकि यहाँ तो सदा ही मुझ पर कृष्ण के प्रेम का कलंक लगा है। अतः अब यह कलंकिनी अपने प्राणों का त्याग कर देगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हे सखी ! अब मैं निश्चय ही मरूँगी। मरते समय भी हे सखी ! मैं कृष्ण का नाम सुनूँगी तथा स्मरण करूँगी। मरते समय यदि मुझे कृष्ण का नाम सुनने को मिला तो यह राधा पुनर्जन्म लेकर भी उन्हींकी दासी बनेगी।'

शोराम अङाहल सिंह रचित मृदंग एक ताल—

गिन्नग्र

+ +
धत् धें तां थँ ताँ तक् खिँत ता धिन
गिन्न धिन्ट धेब

+
तक् खित्त तकँ खित्त तकँ खित्त तकँ
+
खित् तक् तें ताँ तकँ

+
तेन्त खित्त खित्तँ तेन्त खित्तँ तधिनन्
+
धिन् गिन्न धिन्ट धेँब

गिन्नग्र

यह 'प्रिय सजनी······ सहिते नारे' तक का ताल है। यह बार-बार बजाया जाता है।

जं० सिं०

(महाराजकुमारी) सिजा लैरोबी—बिम्बावती मंजुरी 'देवप्रिया'

महाराज-कुमारी बिम्बावती मंजुरी मणिपुर के महाराजा राजर्षि भाग्यचन्द्र की ज्येष्ठा पुत्री थीं। इन्हें पितामह श्यामशाह और पिता से भक्ति-भावना रिक्थ में प्राप्त हुई थी। ये बाल्यकाल से ही कृष्ण-प्रेम में मग्न रहती थीं। इनकी कृष्ण-भक्ति के सम्बन्ध में 'राजर्षि भाग्यचन्द्र' पुस्तक (पृ० २५) में निम्नांकित पंक्तियाँ मिलती हैं :

अन्य नाहि माने गोविन्द मात्रबिना,
नीर झरे निरंजन सतल भावना।
गोविन्द नार्पित वस्तु कभु नाहि खाय
भक्ष्यपाण सब वस्तु समर्पिले खाय ॥

इस पद से स्पष्ट है कि ये बाल्यकाल से ही कृष्ण-भक्ति में मग्न रहती थीं। जब राजर्षि भाग्यचन्द्र ने श्री गोविन्दजी की आज्ञा से प्रथम रासलीला का आयोजन किया तो रासेश्वरी राधा के अभिनय के लिए महाराज-कुमारी बिम्बावती मंजुरी का चयन किया गया। वे अनिन्द्य सुन्दरी थीं। श्री गोविन्दजी की मूर्ति के साथ रासेश्वरी राधा की जो मूर्ति स्थापित है, वह बिम्बावती मंजुरी का प्रतिरूप है। ये आजन्म कुमारी रहीं तथा श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानकर पूजती रहीं। अतः लोग इन्हें मणिपुरी मीरा व अन्दाल कहते हैं। इनकी सुन्दरता पर मोहित होकर अनेक पड़ोसी राजकुमारों ने विवाह का प्रस्ताव किया, किन्तु इन्होंने सभी प्रस्तावों को ठुकरा दिया। इनकी कृष्ण-भक्ति को देखकर अन्त में राजर्षि भाग्यचन्द्र ने इनका विवाह गोविन्दजी से ही कर दिया। यह संस्कार मणिपुरी विवाह की परम्पराओं के अनुसार सम्पन्न किया गया।

प्रथम महारास में बिम्बावती ने राधा की भूमिका बहुत ही कुशलतापूर्वक निभायी। इन्होंने अपनी सखियों के साथ तत्कालीन राजधानी लङ्ग्यबाल में निर्मित रासमण्डल में प्रथम रास किया, जो आगे चलकर मणिपुरी रासलीला के नाम से विश्वविख्यात शास्त्रीय नृत्य बन गया। यही नहीं, प्रत्येक मणिपुरी बालिका बिम्बावती का अनुकरण करना चाहती है और एक बार रास-नृत्य में राधा या गोपी की भूमिका निभाने में अपने जीवन की सार्थकता मानती है।

बिम्बावती मंजुरी की कृष्ण-भक्ति को देखकर लोग उन्हें सिजा (देव) अङोओबी (दीवानी—पागल)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहने लगे। आगे चलकर इन्हें सिजा लैरोबी के नाम से पुकारा जाने लगा, जिसका अर्थ है वह महाराज-कुमारी जिसका विवाह देवता से हुआ हो। अब बिम्बावती मंजुरी के स्थान पर लोग इन्हें केवल देवप्रिया (सिजा लैरोबी) नाम से ही जानते हैं।

देवप्रिया बिम्बावती मंजुरी से सम्बद्ध अनेक आख्यान मणिपुर में प्रचलित हैं। कहते हैं कि श्री गोविन्दजी मन्दिर के कपाट बन्द हो जाने पर ये रात को छिपकर मन्दिर में चली जाती थीं। जब इस घटना का लोगों को पता चला तो श्री गोविन्दजी के शयन-समय में इनका मन्दिर में जाना रोकने हेतु प्रहरी बैठा दिये गये। इसलिए रात्रि-आगमन के साथ ही देवप्रिया निम्न पद गाती थी और रातभर रोती थी :

निशि निशि भाग्यवती अनुरागमय।
कांदि कांदि श्रीगोविन्द दर्शता कांखाहय।।
हा गोविन्द प्राण हरि मोर मन।
ना देखिले नहि र बे र बे कि पराण।।

रात्रि से समय बिम्बावती के हृदय में अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति अनुराग बढ़ जाता था। वे श्री गोविन्दजी के दर्शनों के लिए विरह-व्याकुल हो उठती थीं। वे 'हा गोविन्द ! प्राण हरि !' पुकारती थीं और कहती थीं कि आपके दर्शन के अभाव में अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। बिम्बावती मंजुरी ने श्री गोविन्दजी को अपने हृदय में बसा लिया था, वह गोविन्दप्रिया थीं, इसीलिए वे देवप्रिया नाम से विख्यात हुईं। वे यह मानती रहीं कि उनका जन्म गोविन्दजी की इच्छामात्र से हुआ है, यथा :

सेइ हैते देवप्रिया नाम हइला,
गोविन्दे र इच्छा मात्र जनमें मानिला।

जब महाराज भाग्यचन्द्र ने नवद्वीप तथा गंगा-यात्रा का निश्चय कर लिया तो बिम्बावती ने भी श्रीधाम नवद्वीप-यात्रा की हठ ठान ली। भक्त कवयित्री के शब्दों में :

दिवा निशि मने-मने विचार करिला।
हा हा नवद्वीप बलि अनेक कान्दिल।।
केन मते नवद्वीप दर्शन पाइब।
गोविन्दजी के आमि के मने छाड़िब।।

'बिम्बावती रात-दिन श्रीधाम-नवद्वीप की यात्रा के विषय में विचार करती। उसके सम्मुख केवल एक ही प्रश्न था कि किस प्रकार नवद्वीप जाकर वह अपने प्रियतम के दर्शन करें। उसके मन में एक ही संशय हो रहा था कि श्री गोविन्दजी मुझे अपनायेंगे अथवा नहीं। इसी अनिश्चय की स्थिति में वह रात-दिन रोती रहती थी। अन्त में श्री गोविन्दजी ने उसे स्वप्न में दर्शन दिये और कहा' :

शुन भाग्यवती तोमी चिन्ता न कोरह।
नवद्वीप राहे द्वारे अमार भजिह।।
द्रवर तरे दृढ़ प्रेम एकथा जानिह।
तोमी स्थाने निति-निति आसिबे जानिह।।

'हे भाग्यवती ! सुनो, तुम चिन्ता न करो। तुम नवद्वीप जाकर मेरा भजन करो। मैं तुम्हारे दृढ़ प्रेम की कथा जानकर द्रवित हूँ। मैं नित्य तुम्हारे स्थान पर आऊँगा, यह निश्चय जानो।'

श्री गोविन्दजी के इस आश्वासन के बाद बिम्बावती ने प्रतिज्ञा की :

दासी हवँ एह मने।
आशा दिलाय तोमा स्थाने।।
श्री चरण भरसा करिया,
यदि कृपा ना करिले,
नवदिपे पदतले,
मरिवेह गरल भखिया।

'मेरे मन में आपकी दासी बनने की प्रबल भावना है। आपने आश्वासन भी दिया है। मैंने आपके श्री-चरणों का भरोसा भी कर लिया है। किन्तु यदि आपने कृपा नहीं की तो मैं नवद्वीप में आपके पदतल में विषपान करके प्राण त्याग दूँगी।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्त में महाराज-कुमारी बिम्बावती मंजुरी अपने पिता महाराज भाग्यचन्द्र के साथ नवद्वीप-यात्रा पर सन् १७९५ ई० में चल पड़ीं। वे मणिपुर से जाते समय अपने साथ अनुप्रभु की मूर्ति भी ले गयीं। नवद्वीप में अनुप्रभु का मन्दिर बनवाकर उस मन्दिर में वे उनकी सेवा करने लगीं। वे रात-दिन भजन-कीर्तन करती रहती थीं। देवप्रिया तो प्रेम-पुजारिन थी, जिसने अपने बाल्यकाल से मृत्यु-पर्यन्त श्री गोविन्द के गुणगान किये। आज भी उस मन्दिर को मणिपुर राजाकुंज नाम से तथा उस मार्ग को मणिपुर-मार्ग के नाम से जाना जाता है। वे नवद्वीप से श्रीपात खेतरी गयीं जहाँ उन्होंने धार्मिक मेले का अवलोकन किया। वहाँ से आप राधाकुण्ड (गोवर्धन) गयीं। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिन राधाकुण्ड में ही व्यतीत किये। कहा जाता है कि एक रात्रि में उन्होंने एक तमाल-वृक्ष के नीचे राधाकुण्ड में ही समाधि ले ली। बिम्बा-वती मंजुरी इस प्रकार उत्तर-मध्यकाल में वैष्णव-भक्ति के इतिहास और साहित्य में अमर पद प्राप्त कर मणिपुरी मीरा के नाम से विख्यात हो गयीं।

इनके द्वारा रचित निम्नांकित प्रार्थना अत्यन्त प्रसिद्ध है—

के बोले करुणामय ये अवतार।
हा हा श्री गौरांग विधु रसराज ॥
मोय केहनु ना होयलो दया।
नन्द सुत प्रधन्या शिला मुखब जयमृदु
बंशीधारी !
जीव निस्तार हेतु नोदिया बिहारे !
मोय केनु ना होयलो दया !

'हे करुणामय ! हे अवतार ! ओ गौरांग विधु रसराज ! आपकी मुझ पर दया क्यों नहीं हो रही है ? हे नन्दसुत ! आप सर्वोपरि हैं, आप ओंठों पर मृदु वंशीधारण करते हैं, आपने जीवों के निस्तार हेतु नदिया में अवतार लिया। आप मुझ पर दया क्यों नहीं करते हैं ?'

देवप्रिया बिम्बावती मंजुरी-रचित पदों में अपने प्रियतम श्री गोविन्दजी के प्रति विनय-भावना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

ज० सिं०

(महाराज) सूरचन्द्र सिंह

सन् १८८६ ई० में महाराज चन्द्रकीर्ति की मृत्यु हो गयी। तब महाराज सूरचन्द्र सिंह मणिपुर के सिंहासन पर बैठे। दूसरी रानी के पुत्र कुलचन्द्र सिंह को युवराज और तृतीय रानी के पुत्र वीर टिकेन्द्रजीत सिंह उपनाम कोइराङ (सिंह) को सेनापति नियुक्त किया गया। ज्ञातव्य है कि सन् १८३५ ई० में मणिपुर में पोलिटिकल एजेंट की नियुक्ति हो चुकी थी। महाराजा चन्द्रकीर्ति के आठ पत्नियाँ थीं और दस पुत्र। इन भाइयों में परस्पर अनबन रहती थी। अतः सितम्बर १८९० ई० में रात के समय अङोसना, टिकेन्द्रजीत और जिलाङबा ने सूरचन्द्र के महल पर आक्रमण कर दिया। महाराज सूरचन्द्र ने उनसे युद्ध करने के बजाय पलायन का मार्ग अपनाया तथा तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट ग्रिमवुड के पास जाकर रेजिडेंसी में शरण ली। इसके पश्चात् महाराजा ने ग्रिमवुड से प्रार्थना की कि उनके वृन्दावन जाने का प्रबन्ध कर दिया जाय। महाराजा सूरचन्द्र की इच्छा-नुसार उनकी वृन्दावन-तीर्थयात्रा का प्रबन्ध कर दिया गया।

इतिहासकारों का मत है कि ग्रिमवुड महाराजा सूरचन्द्र को नहीं चाहता था। क्योंकि महाराज पक्के वैष्णव थे और वे ग्रिमवुड से अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण मिलना पसन्द नहीं करते थे। इसलिए वह उनसे नाराज था। यहाँ तक कि महाराजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूरचन्द्र ने ग्रिमवुड को हिन्दू स्त्रियों के चित्र (फोटो) लेने की निषेधाज्ञा की थी। यह भी महाराज के कट्टर वैष्णव दृष्टिकोण का सूचक है।

महाराज सूरचन्द्र के वृन्दावन चले जाने के बाद मणिपुर में सन् १८९० ई० में तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। सूरचन्द्र के पश्चात् राजसत्ता प्राप्त करनेवाले महाराज कुलचन्द्र को अंग्रेज सेना से युद्ध करना पड़ा, फलतः मणिपुर अपनी स्वतन्त्रता से सदा-सर्वदा के लिए हाथ धो बैठा। इस कारण महाराज सूरचन्द्र के संक्षिप्त राज्यकाल में उनके द्वारा किये गये धार्मिक कार्यों का उल्लेख नहीं मिलता है। इतिहासकारों और लेखकों का ध्यान उनके समय में चलनेवाले भाइयों के झगड़े या उसके बाद मणिपुरी सेना व ब्रिटिश सेना के बीच युद्ध पर ही केन्द्रित रहा है।

उपलब्ध तथ्यों से सूरचन्द्र सिंह की वैष्णवी निष्ठा का पता चलता है—अंग्रेज पोलिटिकल एजेन्ट ग्रिमवुड से भेट करने में वैष्णवी संस्कारों के कारण इनकी अनिच्छा, हिन्दू स्त्रियों का चित्र खींचने से उसे मना करना तथा वृन्दावन-यात्रा का प्रस्ताव—इसके प्रमाण हैं।

इसके अतिरिक्त महाराजा सूरचन्द्र लिखित निम्नलिखित रचना भी राधाकृष्ण में उनकी आस्था व्यक्त करती है :

हा गोविन्द प्राणनाथ श्रीमतीराधिका साथ,
हा हा प्रभु व्रजेन्द्रनन्दन हे।
हा हा बृषभानुसुते कृष्ण प्रेम विभुषिते,
कृपा करि देह प्रेम धन ॥

हा हा विधुमुखी हा हा कमल मुखी,
नतिनोर शिरमनि राधे।
दुहूँ नाम मधुरूप मोर चित भृंग ताप,
उदय मरिया पियाइव ॥

हा हा वृन्दावनचन्द्र मोरं प्रभु गोकुलेन्द्र,
कोन दिने पुनः बांछा हव।
हा हा प्राणेश्वरी राधे सिद्धि कर मोरे साथे,
देह मोरे वृन्दावन बास ॥

तुमा दुँहा श्री चरणे निवेदये,
दीनहीन राधा वल्लभ दासेर दास।
हा हा प्रभु चन्द्रकीर्ति नाहि मोर,
आर गति सूरचन्द्र करू निवेदन ॥

'श्री गोविन्द, जो मेरे प्राणनाथ हैं, के साथ श्रीमती राधाजी हैं। हे प्रभु व्रजेन्द्रनन्दन ! हे वृषभानुसुता ! आप श्रीकृष्ण भगवान् के प्रेम से विभूषित हैं, कृपा करके मुझे भी आप प्रेमधन दीजिये। हे कमलमुखी ! हे विधुमुखी ! शिरोमणि राधाजी ! आप दोनों का नाम तो अत्यन्त मधुर है। मेरा चित्त भ्रमर है, जिसमें सांसारिक ताप उदय हुए हैं। हे वृन्द्रावनचन्द्र ! प्रभु गोकुलचन्द्र ! किस दिन मेरी वांछा पूरी होगी ? अतः हे प्राणेश्वरी श्रीमती राधाजी ! आप मरी इच्छा पूरी कीजिये और मुझे वृन्दावन-निवास प्रदान कीजिये। मैं आप दोनों के श्रीचरणों में यह निवेदन करता हूँ। मैं दीनहीन हूँ और हे राधावल्लभ ! मैं आपके दासों का दास हूँ। हे प्रभु चन्द्रकीर्ति ! मेरी और कोई गति नहीं है, अतः सूरचन्द्र आपसे ही निवेदन करता है।'

ज० सिं०

हवाइबम नवद्वीप चन्द्रसिंह

हवाइबम नवद्वीप चन्द्रसिंह का जन्म ६-११-१८९७ ई० शनिवार के दिन डरिपोक हाओबम देवान लेकाइ, इम्फाल में हुआ था। आपके पिता का नाम हवाइबम थाबलसिंह और माता का नाम ओंगबी अङगंगजा ओबीदेवी था। माता-पिता गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित सद्गृहस्थ थे, अतः नवद्वीप सिंह को श्री राधा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्ण-भक्ति-भावना परम्परया प्राप्त हुई थी। बाल्यकाल में रोगग्रस्त होने से बालक नवद्वीप का एक पैर बेकार हो गया था। किन्तु अपंग होने के उपरान्त भी ये अत्यन्त मेधावी छात्र रहे और खेलकूद में भी प्रथम पुरस्कार प्राप्त करते रहे थे।

सन् १८९१ ई० में जब महाराजा कुलचन्द्र सिंह का शासनकाल समाप्त हुआ तो इनके पिता की आर्थिक दशा बहुत खराब हो गयी। परिवार की आर्थिक विपन्नता के कारण आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद नवद्वीप चन्द्रसिंह ने अध्यापन-कार्य आरम्भ कर दिया।

भगवान् की भक्ति में ये बाल्यकाल से ही लीन रहते थे। ज्योतिष, गणित, बीजगणित आदि का इन्होंने स्वतः अध्ययन किया। ईश्वर की कृपा से इन्हें सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त हुई। ईश्वर-भक्ति और निष्ठापूर्वक कर्म में लीन रहने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में आपने विशेष योगदान दिया। अध्यापकों के लिए आयोजित रचना-लेखन-प्रतियोगिता में इन्हें प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया। तत्कालीन महाराजा चूड़ाचाँद सिंह ने इन्हें स्वर्ण-पदक उपहार-स्वरूप प्रदान किया।

नवद्वीप चन्द्रसिंह गीता के कर्म-सिद्धान्त को मानते थे। इन्होंने अध्यापन के साथ-साथ अपने परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए एकदम नये घरेलू उद्योग स्थापित किये जिनमें प्रमुख थे सफेद चीनी तथा साबुन बनाना। इन्होंने एक मुद्रणालय भी स्थापित किया। इन धन्धों से प्राप्त धन का उपयोग ये विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति देने के लिए करते थे। जब भी किसी निर्धन विद्यार्थी ने इनसे आर्थिक सहायता माँगी इन्होंने उसको अपेक्षित सहायता अवश्य दी। इन्होंने मणिपुर में अनेक शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना की। मणिपुर में शिक्षा का प्रचार-प्रसार एवं वाद-विवाद-प्रतियोगिता का आरम्भ करनेवाले ये व्यक्ति थे।

भक्त तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के साथ ही ये एक अच्छे कवि एवं लेखक भी थे। 'याकाइरोल' नामक मासिक पत्रिका में इनकी कविताएँ प्रकाशित होती थीं। 'तोनुलाइजिगलेम्बी' नामक आपकी धार्मिक रचना होली के अवसर पर किये जानेवाले लोक-नृत्य थाबल-चोंगबा में गायी जाती है। वसन्त पंचमी के दिन सरस्वती की आरती के रूप में भी इनके द्वारा रचित गीत गाये जाते हैं।

गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित होने के कारण इन्होंने बंगला एवं मणिपुरी भाषाओं में अनेक भक्तिपूर्ण रचनाएँ कीं। मेघनाद-वध (बंगला) का इन्होंने मणिपुरी भाषा में अनुवाद किया तथा 'निमाइ संन्यास' नामक खण्ड-काव्य की रचना की। इनकी धार्मिक कविताएँ 'ङसि थाखाइगी चेफों' नामक पत्रिका में निरन्तर छपती रहीं। मणिपुरी साहित्य के इतिहास में इनका नाम एक भक्त कवि के रूप में लिया जाता रहा है।

ये जीवनभर एक गृहस्थ संन्यासी बने रहे तथा भक्ति-भाव, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि के साथ सामाजिक कार्यों में भी रुचि लेते रहे। विनम्र स्वभाव तथा सन्त-प्रकृति के नवचन्द्रजी का दिनांक २३-६-१९४६ ई० को स्वर्गवास हो गया।

इनके घर में श्री राधाकृष्ण का मन्दिर है जिसमें अब भी निश्चित समय पर पूजा-आरती की जाती है। इनकी भक्ति-भावना का प्रभाव इनके पुत्र श्री एच० रणवीर सिंह, आई० ए० एस० के जीवन पर स्पष्ट दिखाई देता है। वे भी नित्य-नियमपूर्वक पिता की भाँति पूजा-अर्चना में लीन और राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त करने के उपरान्त धार्मिक एवं सामाजिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यों में व्यस्त रहते हैं। वे अपनी उन्नति एवं प्रवृत्ति का श्रेय पिता से प्राप्त भक्ति-भावना को देते हैं। पिता को ईश्वर-अनुकम्पा से प्राप्त भगवदनुग्रह को ही वे अपने परिवार की समृद्धि का कारण मानते हैं।

नवचन्द्र सिंह की कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो चुका है, जिसका शीर्षक है—'खोमजिनबा रचनाओं में शैरेङ'। उसमें संकलित प्रगाढ़ भक्ति-भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

इनकी दो कविताएँ अनुवाद-सहित प्रस्तुत हैं :

(१)

'श्रीकृष्ण न मथुरा लेंगलदा राधागी उक्ति'

सखि ! (ऐना ; हिंगदुना करि कान्नरिबगे ?
इबुंङो माबु (श्रीकृष्णबु) उद्रबद करम तौना
हिंगलसिगे

(उन उन पेंर्जाखिद्रब बदन कमल अदुबु)

माइथों थम्बाल उजङंगी,
चित्र दर्शन फंगजङंगी, (श्रीकृष्ण गी)

प्रेम-भक्ति कचचदुना श्रीचरण अनिद,
चत्ना थमजरि थम्मोइलका-नुंगसिद।

निपानि खल्लुदे इबुंङोबु,
नूपीनि निंगजदे ऐहाकपु,

प्रेमगी इपाक अचौब नोंगम-नोंगम चाउखत्ले,
(ममैद) ङमखै उखिद्रे, मपाल नाइदन पाकखरे।

कृष्ण प्रेमगी इपाक्त,
ङागी मतौ ओइजबी,

लपाक वाथोक चाउरबी, इमुं वाहौ तोईरबी,
गुरुजनन ताथिरबो, लाइबक थिबी राधानि।

तमथिरब बिधि सूर्य न,
खाइनब प्रलय मँचाक न,

प्रेमगी समुद्र अचौबा लँक्रक थोकन कंहल्लै,
अचौ अधिक नाइदन जीव अपूम्ब शिहल्ले।

श्रीकृष्ण के मथुरा-गमन के अवसर पर
राधा की उक्ति

'हे सखी ! अब जब मैं श्रीकृष्ण को नहीं देख सकती तो मेरे जीवित रहने से लाभ ही क्या है और बिना उन्हें देखे मैं जीवित भी कैसे रह सकती हूँ ? मैं श्रीकृष्ण के कमल-वदन को देखकर या उनके चित्र के दर्शन करके ही जीवित हूँ। मैं प्रेम एवं भक्तिपूर्वक अपने-आपको उनके श्रीचरणों में समर्पित कर चुकी हूँ। मेरे हृदय में उनके श्रीचरण दृढ़तापूर्वक जमे हैं।

मैं उन्हें केवल पुरुष नहीं, बल्कि अपना स्वामी भी समझती हूँ। मैं अपने को केवल स्त्री नहीं समझती, बल्कि उनकी पत्नी मानती हूँ। मेरे हृदय में प्रेम-सागर का विस्तार हो रहा है। वह अनन्त मेरे हृदय में असीम और व्यापक हो गया है।

मैं कृष्ण के प्रेम-सागर की मछली हूँ। (मैं परकीया प्रेम के कारण) देश-समाज, परिवार एवं गुरुजनों से विद्रोह करनेवाली अभागी राधा हूँ।

वियोग का ताप प्रलयकालीन भयंकर सूर्य बन गया है। विधि की विडम्बना है कि प्रेम का महान् समुद्र सूख गया है और उसमें दरारें दिखायी दे रही हैं। प्रेमसागर में निवास करनेवाले सभी जीव कृष्ण-वियोग में मर रहे हैं।'

(२)

थिजबा

नहाकपु थिबदा हौखेर पुन्सि,
फंगबरे नहाक्पु मफम कँदसु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताकपियु-ताकपियु कैदनो अपोकपा !
पुन्सिगी लेंगदबा मरूप ओइरिबा !
चाकखूबा मैनुंगदा लै बरा इबूंङो ।
इंखूबा लाइजदा काइदों ओइबरा ।। नहाकपु····

वाहन्दुना मशाबु मांहन्बा मीदु—
चानबरा महाकपु नहाकना इबुंङो ।
मशाबु योक्तुना नुङाइना थम्लिबा
मीदुबु नंगना हेन्दोक्ना याबरा ।। नहाकपु ··

नङोन्दा चंगलगा नहाकना पेन्बरा
जीवना पेल्लगा नहाकना याबरा
चङजबबु चान्बिबा चङदबबु चान्दबा
अदुगुम्बा मदुरा इचा-मिचा नाइबिबा ।।
नहाकपु ···

मथौदा लाइनिं ओइबदो नंगी
थौजानगी मित्यें फंगद्रबा मादि
नहाक्पु कौदुना कप्तुना लैबा
ननाइना फंगब्रा महाक्की थौजान ?
नहाकपु थिबदा हौखेरपुन्सि
फंगदरे नहाक्पु मफम कैदसु ।

खोज

'हे ईश्वर ! तुम्हारी खोज में मेरा जीवन बीत गया, किन्तु तुम कहीं नहीं मिले ।

हे पिता ! (भगवान्) बताइये, आप कहाँ हैं ? आप मेरे जीवन के निश्चित साथी हैं । क्या आप प्रज्वलित अग्नि में निवास करते हैं या आप शीतल जल पर आसीन हैं ?

जो व्यक्ति दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करता है क्या तुम उससे प्रेम करते हो ? या तुम उस व्यक्ति को चाहते हो, जो सुख और वैभव में जीवन व्यतीत करता हो ?

क्या तुम अपनी शरण में आनेवाले व्यक्ति से सन्तुष्ट होते हो ? जीव के सन्तुष्ट होने को आप क्या मानते हैं ? क्या तुम शरणागत को स्वीकार करते हो और शरण में न आनेवाले को अस्वीकार ? क्या तुम सबके स्वामी होते हुए भी अपने-पराये का भेद मानते हो ?

जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य में लीन रहता है क्या उसको तुम्हारी दया-दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती है ? जो व्यक्ति तुम्हें रो-रोकर पुकारता है क्या उसे अपना दास नहीं बनाते हो ?'

ज० सिं०

हाओमोम इबोतोन सिंह

हाओमोम इबोतोन सिंह का जन्म सन् १९२७ ई० में विष्णुपुर नामक कस्बे में हुआ था, जो अपने प्राचीन विष्णु-मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम हाओमोम तोयाह्मा सिंह और माता का नाम अमुबीदेवी था। इनके परिवार में गौड़ीय वैष्णव-भक्ति की परम्परा कई पीढ़ियों से चली आ रही थी। अतः बालक इबोतोन को भी गौड़ीय वैष्णव भक्ति-उपासना की दीक्षा दी गयी।

बालक इबोतोन प्रतिभा के धनी थे। ये बाल्यकाल से ही भक्ति-भावना एवं भजन-कीर्तन में लीन रहते थे। इनके पिता स्वयं वैष्णव-भक्त और संगीतज्ञ थे। उन्होंने अपने पुत्र की भक्ति-भावना के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था की और इन्हें मणिपुरी, बंगला एवं संस्कृत भाषा की शिक्षा दी गयी। बाल्यकाल में ही इन्होंने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। अपने पिता से इन्होंने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। इन्हें बचपन में ही 'पूङ चोलम' या मृदंग-नृत्य सिखाया गया और इन्होंने मृदंग-वादन एवं मृदंग-नृत्य में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त कर ली। १२ वर्ष की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोटी अवस्था में ही ये मृदंग-वादन में पारंगत हो गये थे। मृदंग-वादन के साथ पिता के निर्देशन में इबोतन स्वर-साधना में भी तल्लीन रहते थे। पिता ने जब देखा कि बालक को ईश्वर की कृपा से मधुर स्वर मिला है और उसने विभिन्न राग-रागिनियों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है तो उन्होंने इबोतोन को आज्ञा दी कि तुम 'पूङ चोलम' के स्थान पर संकीर्तन में गायन-कार्य करो। पितृभक्त इबोतोन ने तब से गायन प्रारम्भ किया। यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पूङ चोलम नृत्य-संकीर्तन एवं रास-नृत्य की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पूङ चोलम, रास-लीला एवं संकीर्तन मणिपुरी गौड़ीय वैष्णव-भक्ति-पद्धति के अनिवार्य अंग हैं। नृत्य-गान का अभ्यास मणिपुर के भक्तों की प्रमुख विशेषता है।

इबोतोन सिंह कालान्तर में एक प्रसिद्ध भक्त गायक बन गये। इनके कीर्तन एवं भजनों का प्रसारण आकाशवाणी के इम्फाल-केन्द्र से इनके जीवनकाल में बराबर होता रहा और आज मृत्यु के बाद भी उनके रेकार्ड प्रसारित किये जाते हैं। मणिपुर-घाटी के गाँवों तथा नगरों में आयोजित धार्मिक समारोहों तथा संकीर्तनों में ये बराबर भाग लेते थे। ये बंगला भाषा में भी गाते थे अतः मणिपुर के बाहर भी इन्होंने संकीर्तन-गायन प्रस्तुत करके ख्याति अर्जित की। इस माध्यम से इन्होंने पुरी, नवद्वीप तथा वृन्दावनधाम की यात्राएँ भी कीं। जीवनभर भक्ति-भावना में तल्लीन रहकर ये संकीर्तन के द्वारा श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार-प्रसार करते रहे। विभिन्न वैष्णव कवियों के पदों के साथ ये स्वरचित पदों का भी गान करते थे। इन्होंने अपनी लिखी कोई कविता, भजन तथा कीर्तन प्रकाशित नहीं किया, किन्तु इनके शिष्य आज भी इनके पद गाते हैं। इनके दो पद यहाँ हिन्दी अनुवाद-सहित प्रस्तुत हैं :

(१)

भक्तशिंगा लोइनना श्री गौर हरि ना
श्रीवास की शंगाइ यौरवलै
कोइशिल्ले भक्तना लै चन्दन
कतथुना हरि संकीर्तन हौरकले।

'भक्तों के साथ श्री गौरहरि श्रीवास के आँगन में आ पहुँचे हैं। भक्तों की भीड़ लग गयी। भक्तों ने उन्हें घेर लिया, पुष्प-चन्दन आदि अर्पित किये तथा हरि-संकीर्तन आरम्भ किया।'

(२)

हान्न लाकपा लम्बी
मशक मुन्ना खंजिलहै
हनबदा चतनबा अखंबदा
हंजिलहौं, हौरकफम लम्बी दो
मांब माद्रबनि, हनबद हौरकफमदा
हनग दौरिबनि।

'हमें अपने उस मार्ग को भलीभाँति पहचान लेना चाहिए जिससे हम आये हैं, क्योंकि हमें वापस लौटना जरूरी है। यदि हमें उस मार्ग का ज्ञान नहीं है तो ज्ञानी लोगों से पूछ लेना चाहिए। क्योंकि वह मार्ग लुप्त नहीं हो सकता, हमें उस मार्ग पर जाना ही होगा।'

इबोतोन सिंह सन् १९८० ई० में गोलोकवासी हुए।

ज० सिं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

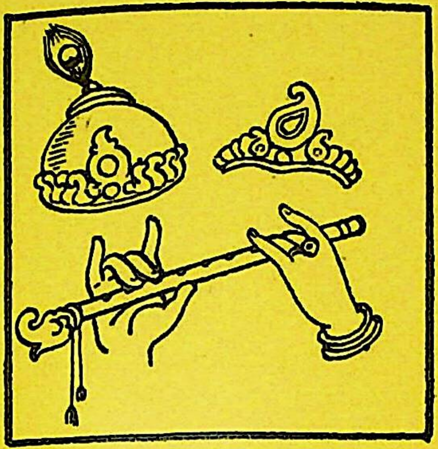

मराठी-कृष्णकाव्य की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

—डा० र० श० केलकर

महाराष्ट्र में श्रीकृष्णभक्ति

—श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

महाराष्ट्रीय कृष्णभक्ति : परंपरा और वैशिष्ट्य

—डा० प्रह्लाद नरहरि जोशी

महाराष्ट्र के कृष्णभक्त

—डा० प्रह्लाद नरहरि जोशी

—डा० विजयमाला पंडित

—डा० अशोक प्रभाकर कामथ

—डा० जानकी रावत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मराठी कृष्ण-काव्य की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि[1]

मराठी आदि-काव्य के आध्यात्मिक रूप के परीक्षण से प्रतीत होता है कि ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व महाराष्ट्र में विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं का प्रचार, चातुर्वर्ण्य, तन्त्र, ग्रामदेवताओं की उपासना आदि के सम्मिलन से लोक में धार्मिक विषमताएँ तथा पाखंड प्रबल हो उठे थे तथा आचार-विचारों के बवंडर में जनता सच्चे धर्म से विमुख होने लगी थी। दक्षिण में वैष्णव और शैवों का परस्पर विरोध, नाथों के गोरख-धन्धे, महायान-सम्प्रदाय की मठ-व्यवस्था, ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड, शाक्तों का बलि-विधान, शैवों का तन्त्र, हठयोग आदि व्यवस्थाएँ जनसाधारण को गलत मार्ग की ओर अग्रसर कर रही थीं। इसीके प्रतिक्रियास्वरूप जनसाधारण की धर्म-भावना को उच्च स्तर पर उठाने के लिए मराठी के आदि-काव्य का प्रादुर्भाव हुआ और वह नाथ, महानुभाव, वारकरी, दत्त, समर्थ आदि धर्म-ग्रन्थों के आश्रय में अंकुरित एवं पल्लवित हुआ। वस्तुतः महाराष्ट्र के महानुभाव तथा वारकरी दोनों पन्थों का प्रादुर्भाव जन-साधारण के उत्थान के लिए ही हुआ था। इन दोनों पन्थों ने मोक्ष-मार्ग का ही प्रचार किया यद्यपि वारकरी-पन्थ का झुकाव प्रवृत्तिपरक भक्ति की ही ओर अधिक रहा। प्राथमिक आवश्यकता की दृष्टि से इन दोनों पन्थों के निवृत्ति-मार्ग की ओर झुकाव का कारण तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति ही थी। वह काल धर्म-ग्लानि का काल था। विदेशी आक्रमण तथा विविध उपासना-पद्धतियों के कारण वैदिक परम्परा निष्प्रभ-सी हो गयी थी तथा परिवर्तनशील परिस्थिति में समाज को नयी प्रेरणा देने की सामर्थ्य इस धर्मसंस्था में नहीं रही थी। धर्म केवल यज्ञ-याग, व्रत-वैकल्य, जप-जाप तक ही सीमित हो गया था। उच्च वर्ग में भोग-विलास का बोलबाला था। ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्त्तव्यच्युत हो गये थे। जैन और लिंगायत-पन्थ शूद्रों को धर्मज्ञान देने का प्रयत्न कर रहे थे, इसका स्पष्ट चित्र रामदेव राव द्वारा पण्ढरपुर के मन्दिर के जीर्णोद्धार तथा हेमाद्रि जैसे पण्डितों द्वारा स्मृति-ग्रन्थों पर रचित टीकाओं में देखा जा सकता है। निश्चय ही ये प्रयत्न वैदिक धर्म के पुनरुज्जीवन की दिशा में हुए थे। तुकाराम के वचन—**'अर्थे लोपलीं पुराणें', 'नाश केला शब्द ज्ञानें', 'विषय लोभी मनें', 'साधनें बुडविली'**, कुछ शताब्दियों बाद ही क्यों न हो, ऐसी ही परिस्थिति के अस्तित्व को व्यक्त करते हैं। इस धार्मिक पुनरुज्जीवन का मुख्य उद्देश्य जनसाधारण का उत्थान होने के कारण ही महानुभाव-पन्थ के आचार्यों ने ग्रन्थ-रचना संस्कृत में न करके लोक-भाषा मराठी में करने पर जोर दिया—**'न को गा केशव दयाः येणे माझीया म्हातारीया नागवतिल'** यही दृष्टि ज्ञानेश्वर की भी थी।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार महानुभाव तथा वारकरी-पन्थों का झुकाव निवृत्ति-मार्ग की ओर होने के कारण ही भगवद्गीता को प्रमाण मानकर महाराष्ट्र में कृष्ण-भक्ति का विकास हुआ। परिस्थितियों की इस पार्श्वभूमि को समझने के लिए मराठी कृष्ण-काव्य के उत्थान तथा क्रमिक विकास पर विहंगम दृष्टि डाल लेना उपयोगी होगा।

मराठी के आद्य कवि मुकुन्दराज माने जाते हैं। इनके निश्चित काल के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। इनकी भाषा-शैली भी इतनी प्राचीन नहीं जान पड़ती जितनी ज्ञानेश्वर की है, तथापि वे ज्ञानेश्वर

१. 'मराठी और हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' से साभार।

३/१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से लगभग एक शताब्दी पूर्व के कवि माने जाते हैं। मुकुन्दराज नाथ-सम्प्रदाय के कवि थे और उन्होंने 'ओंवी' नामक मराठी अक्षर-छन्द में 'विवेकसिन्धु' और 'परमामृत' नामक दो ग्रन्थों की अद्वैत वेदान्त पर रचना की है। इस समय महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु समस्त भारत में वेदान्त का प्रचार था। वेदान्त चातुर्वर्ण्य पर आधारित होने के कारण समाज के दैनिक व्यवहार में भी जाति-भेद की विषमता फैली हुई थी। समस्त मराठी समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय निम्न वर्णों को हीनता की दृष्टि से देखते थे। इतना ही नहीं, उन्हें वैदिक मार्ग से वंचित भी रखा जाता था। वैदिक धर्म के अन्तर्गत अनेक देवताओं की उपासना की प्रथा थी। शंकराचार्य के 'केवलाद्वैत-सिद्धान्त' तथा 'पंचायतन' की स्थापना से सभी देवताओं की उपासना का प्रचलन महाराष्ट्र में रूढ़ हो गया था। हेमाद्रि पण्डित के 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' में भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासना करने के लिए वर्ष में लगभग दो हजार व्रतों का आयोजन किया गया था। इस वर्ग-विधान के कारण समाज का निम्न वर्ग बुरी तरह से पिस रहा था। चातुर्वर्ण्य की इस विषमता से बचने के लिए गौतम बुद्ध ने वेदों की प्रामाणिकता पर आक्रमण करके चातुर्वर्ण्य मिटा डालने का प्रयत्न किया था, पर वे इस प्रयत्न में सफल नहीं हो सके। ठीक ऐसा ही प्रयत्न महावीर ने भी किया था, पर वे भी इस प्रयत्न में असफल रहे। चातुर्वर्ण्य से टक्कर लेने के कारण बौद्ध-धर्म की जड़ें हिल गयीं और जैन-धर्म को तो अन्त में वर्ण-व्यवस्था का ही आश्रय लेना पड़ा। महाराष्ट्र के दक्षिण में कन्नड़ प्रदेशवासी वसव ने लिंगायत-सम्प्रदाय की स्थापना करके वैदिक धर्म को ललकारा था। इस सम्प्रदाय ने बाल-विवाह की प्रथा की उपेक्षा करके प्रौढ़-विवाह तथा विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा चलायी थी। लगभग इसी काल में महानुभाव-पन्थ कर्म-जागृति का कार्य कर रहा था। महानुभाव-पन्थ के प्रवर्त्तक स्वामी चक्रधर ने यादवकालीन महाराष्ट्र की इन विषम परिस्थितियों को समझा था। इसीलिए बहुदेववाद और कर्मकाण्ड की उपेक्षा करके उन्होंने एकेश्वरवाद और निवृत्ति-मार्ग को महत्त्व दिया। सभी उपासनाओं का अन्तिम साध्य मोक्ष होने के कारण उन्होंने जनता को मोक्ष का मार्ग दिखाया। बहुदेववाद के निर्मूलन के लिए उन्हें द्वैत-सिद्धान्त का प्रतिपादन करना पड़ा। इसी प्रकार गीता के आधार पर उन्होंने मोक्ष का मार्ग स्त्री और शूद्रों के लिए भी खोल दिया। इतना ही नहीं, चातुर्वर्ण्य का खण्डन करने के लिए उन्होंने पन्थ के आचार-धर्म में चारों वर्णों के घरों से भिक्षा स्वीकार करने का आदेश दिया है।

'चातुर्वर्ण्यं चरेत् भैक्ष्यम्'

स्वामी चक्रधर के पूर्व दक्षिण के आलवार भक्तों ने और रामानुजाचार्य ने वैष्णव-भक्ति का प्रचार करके कृष्ण और विष्णु के अभेद को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर लिया था। प्राचीन परम्परा के आधार पर स्वामी चक्रधर के लिए यह कल्पना जनता को भ्रम में डालनेवाली लगी। अतः सबसे पहले उन्होंने श्रीकृष्ण को परमेश्वर का अवतार मानकर उन्हें विष्णु से भिन्न प्रमाणित किया। स्वामी चक्रधर ने एक-दो स्थानों पर स्वयं अपने को भी कृष्ण का अवतार माना है। शंकराचार्य के केवलाद्वैत-सिद्धान्त का खण्डन करके सच्चे धर्म की प्रतिष्ठापना को ही उन्होंने अपना अवतार-कार्य समझा।

यादवकालीन महाराष्ट्र की इन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण ही महानुभाव-पन्थ के आचार और तत्त्वज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। स्पष्ट ही तत्कालीन महाराष्ट्रीय जनता में धर्म-भावना की कमी नहीं थी, अपितु उसकी धर्म-भावना इतनी प्रबल थी कि वह अनेक देवताओं की उपासना के बवंडर में सात्वत धर्म से विमुख होने लगी थी। इसीलिए महानुभाव कृष्ण-काव्य में तत्त्व-निरूपण और आचार को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ब्राह्मण-धर्म का घोर विरोधी होने के कारण इस पन्थ के ग्रन्थों की रचना सकल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन्दरी, अंक, वज्र, सुभद्रा, सिंह, मांडल्य आदि लिपियों में हुई। महानुभाव-पन्थ के ग्रन्थ लिपि-बद्ध होने के कारण तथा इस पन्थ में निवृत्ति-मार्ग का ही स्वीकार होने के कारण इस पन्थ का तत्त्वज्ञान उच्च आदर्शों पर आधारित होते हुए भी साधारण गार्हस्थ्य जीवन तक नहीं पहुँच सका। इस पन्थ को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते हुए भी बहुत ही कम लोग उसका अनुसरण कर सके। आश्चर्य की बात तो यह है कि लिपि-बद्ध होने के कारण महानुभाव-ग्रन्थ कई शताब्दियों तक अप्रकाशित ही पड़े रहे। १९२५ में य० खु० देशपाण्डे ने 'महानुभावीय मराठी वाङ्मय' की रचना करके इस पन्थ पर कुछ प्रकाश डाला था। बाद में वि० भि० कोलते ने अपने प्रबन्ध 'महानुभावांचे तत्त्वज्ञान' में इस पन्थ के तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म विवेचन करके मराठी जनता को उसका महत्त्व समझाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। महानुभाव-पन्थ की अलिपिबद्ध कविता की सर्जना मराठी की आद्य कवयित्री महदम्बा ने की। महदम्बा महानुभाव-पन्थ के प्रवर्त्तक स्वामी चक्रधर के मुख्य शिष्य नागदेवाचार्य की चचेरी बहन थीं। इस कवयित्री ने विवाह-प्रसंग पर गाने योग्य कृष्ण-भक्ति-रस से परिपूर्ण 'धवले' लिखे हैं, जो अभंग छन्द की ही भाँति चार समान चरणोंवाला अनियमित अक्षर-संख्या का छन्द है। महदम्बा के 'धवलों' द्वारा मराठी की अतुकान्त कविता का आरम्भ माना जाता है। स्वामी चक्रधर के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य भावे व्यास ने 'पूजावसर' ग्रन्थ की रचना की, जिसमें श्री चक्रधर का जीवन-चरित दिया गया है।

महानुभाव-पन्थ निवृत्ति-निष्ठ वेद-विरोधी और सामान्य जनता से दूर होने के कारण ही महाराष्ट्र में वैदिक धर्म को सुरक्षा के लिए सन्त ज्ञानेश्वर का प्रादुर्भाव हुआ। सन्त ज्ञानेश्वर ब्राह्मण होते हुए भी शूद्र-वर्ग में धकेल दिये गये थे। शूद्र-वर्ग और स्त्री-जाति के लिए वैदिक परम्परा ने आध्यात्मिक उन्नति के द्वार बन्द कर रखे थे। केवल गीता ने ही उन्हें आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बताया था। शूद्रों तथा स्त्रियों को धर्म का अधिकार देने के लिए स्वामी चक्रधर पहले ही गीता को प्रमाण मान चुके थे। सन्त ज्ञानेश्वर ने भी गीता का ही आश्रय लिया। १२९० ई० में उन्होंने 'ज्ञानेश्वरी' की रचना की। 'ज्ञानेश्वरी' भगवद्गीता के अठारह अध्यायों पर नौ हजार ओवियों की पदात्मक टीका है तथा मराठी-साहित्य में उसका अपूर्व स्थान है। 'ज्ञानेश्वरी' में वे लिखते हैं—

वेद सम्पन्नु होय ठाईं। परी कृपणु ऐसा आनु नाहीं।
जे कानीं लागला तिहीं। वर्णाचाचि॥
येरां भवव्यथा ठेलियां। स्त्री शूद्रादिकां प्राणियां।
अनवसरु मांडूनियां। राहिला आहे॥
तरी मज पाहतां तें भागेल उणें। फेडावया गीतापणें।
वेदु वेठला भलतेणें। सेव्य होआवया॥

(वेद सम्पन्न अवश्य हैं, पर उन जैसा कोई कृपण भी नहीं है, क्योंकि वे केवल तीनों वर्णों को ही श्रुति-गोचर हैं। उन्होंने स्त्री और शूद्रों को वंचित रखा है। मेरे विचार में इस कमी को दूर करने के लिए ही वेद पुनः गीता के रूप में प्रकट हुए हैं।)

वस्तुतः शूद्र और स्त्री-वर्ग के उद्धार के लिए ही ज्ञानेश्वर ने गीता पर टीका लिखी है। उनके इस कार्य का जनता पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा। परम्परावादी होने के कारण सन्त ज्ञानेश्वर ने चातुर्वर्ण्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बनाये रखने में ही योग दिया तथा अद्वैत का समर्थन किया। बौद्ध और जैन-धर्मों की ही भाँति महानुभाव-पन्थ ने भी संन्यास को आध्यात्मिक दृष्टि से प्रधानता दे रखी थी। स्वामी चक्रधर ने कहा था—

कर्म-धर्म-विधि विखोत्यजुनि परमेश्वरांशरण रिगावे।

(कर्म, धर्म, विषय आदि सब-कुछ छोड़कर ईश्वर की शरण जाओ।)

कर्म और विषय-त्याग के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता। केवलाद्वैतवादी शंकराचार्य ने भी संन्यास को आवश्यक माना था, परन्तु संसार के सब लोगों को संन्यास ग्रहण करना सम्भव नहीं था। इसीलिए ज्ञानेश्वर ने संन्यास-मार्ग को स्वीकार नहीं किया। वे गृहस्थाश्रम में रहकर ही ईश्वर-प्राप्ति का मन्त्र जनता को देना चाहते थे। अतः ज्ञानेश्वरी में उन्होंने निष्काम कर्मवाद का समर्थन किया। निष्काम-बुद्धि से अपने कर्म करते हुए ईश्वर-पूजा करने से ही परमेश्वर सन्तुष्ट होता है। इसीलिए वे कहते हैं—

तया सर्वात्मका ईश्वरा। स्वकर्म कुसुमांची वीरा।
पूजा केली होय अपारा। तोषालागीं।

(सर्वात्म ईश्वर की अपने कर्मरूपी पुष्पों से पूजा करने से ही वह सन्तुष्ट होता है।)

आध्यात्मिक क्षेत्र में सब वर्णों को तथा पापियों को समान अधिकार देते हुए गीतोक्ति को प्रमाण मानकर सन्त ज्ञानेश्वर कहते हैं—

यापरी पापयोनी ही अर्जुना। कां वैश्य शूद्र अंगना।
मातें भजतां सदना। माझिया येती।

(स्त्री, वैश्य, शूद्र, पापी, सब मेरा भजन करने से मुझे प्राप्त होते हैं।)

ज्ञानेश्वरी की रचना में सामाजिक विषमता और चातुर्वर्ण्य का विरोध ही मुख्य रूप से प्रेरक रहा है। ज्ञानेश्वरी के द्वारा कर्म, योग और भक्ति का सुन्दर समन्वय करके सन्त ज्ञानेश्वर ने जनसाधारण को उपासना का एक सुगम मार्ग दिखाया।

'ज्ञानेश्वरी' के अतिरिक्त सन्त ज्ञानेश्वर ने 'अमृतानुभव' तथा कुछ स्फुट अभंगों की भी रचना की है। ज्ञानेश्वर के समकालीन कई अन्य सन्त-कवि हो गये हैं जिनमें से अधिकांश नीची जाति के थे। नामदेव, जनाबाई, गोरा कुम्हार, सावता माली, विसोबा खेचर, नरहरि सुनार, बंका महार, चोखा मेला, परसा भागवत, कान्होपात्रा पतुरिया, सेना नाई, सजन कसाई आदि इसी कोटि में आते हैं। ये सब वारकरी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। वारकरी-सम्प्रदाय कृष्ण-भक्तिपरक था।

ज्ञानेश्वरी के ही समान वारकरी-काव्य भी कृष्ण-भक्तिपरक था तथा जाति-भेद की विषमता की पार्श्वभूमि पर ही उभरा था। काव्य के इतिहास की दृष्टि से इन सन्तों में नामदेव तथा एकनाथ उल्लेखनीय हैं। सन्त नामदेव जाति के दर्जी थे। उनका काल १२७०–१३५० ई० माना जाता है। अपनी जाति के कारण ही उन्हें अनेक उपेक्षाओं और अपमानों का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणों ने उन्हें बुरी तरह से दुत्कारा था और उन्हें अपने साथ न बैठाकर मन्दिर के एक कोने में बैठाया था। इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए नामदेव कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति नाहीं त्यासी कायसी पंगती ।
नेणोनी एकांती बैसवीलें ॥

(जातिहीन होने के कारण अपनी पंक्ति में न बैठाकर ब्राह्मणों ने उन्हें एक कोने में बैठाया ।)

जाति-भेद पर प्रहार करते हुए वे आगे कहते हैं—

कुश्चल भूमीवरी उगवली तुळशी,
अपवित्र तियेसी म्हणों नये ।
नामा म्हणे तैसा जातीचा मी शिंपी,
उपमा जातीची देऊं नये ।

(अपवित्र स्थान पर यदि तुलसी का पौधा उग आये तो उसे अपवित्र नहीं कहना चाहिए । उसी तरह, नामदेव कहते हैं, मैं भी जाति का दर्जी हूँ, अतः जाति की उपमा न दीजिये ।)

इसी प्रकार एक हिन्दी-पद में वे कहते हैं—

हीन दीन जात मोरी पंढरी के रामा ।
ऐसा तुमने नामा दरजी कायकू बनाया ॥
टाल बिना लेकर नामा राउल में आया ।
पूजा करते बह्मन उन्हें बाहेर ढकाया ॥

इन उल्लेखों से दिखाई देता है कि निम्न जाति में उत्पन्न होने के कारण उस समय सन्त भी ब्राह्मणों द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते थे । इसी वर्ण-व्यवस्था से त्रस्त होकर सेना नाई कहता है—

मी तो आहे जाति हीन, माझा राखा अभिमान ॥

(मैं जातिहीन हूँ । मेरी प्रतिष्ठा आपके हाथ में है । आप ही उसे बनाये रख सकते हैं ।)

चोखा महार के अभंगों में भी यही दैन्य व्यक्त हुआ है । चोखा मेला के निम्नलिखित अभंग से शूद्रों की तत्कालीन स्थिति का सही-सही दर्शन होता है ।

जोहार मायबाप जोहार । तुमच्या महाराचा मी महार ।
बहु भुकेला जाहलों । तुमच्या उष्ट्यासाठी आलों ।
बहु केली आस । तुमच्या दासाचा मी दास ।
चोखा म्हणे पाटी । आणिली तुमच्या उष्ट्यासाठी ।

(प्रणाम माय-बाप प्रणाम । मैं तुम्हारे चमार का भी चमार हूँ । बहुत भूखा हो गया था । इसीलिए आपकी जूठन के लिए बड़ी आशा से आ पहुँचा हूँ । मैं आपके दासों का भी दास हूँ । चोखा कहता है, आपकी जूठन ले जाने के लिए टोकरी लाया हूँ ।)

जाति-भेद के कठोर नियंत्रण के कारण ही यज्ञयागादि से वंचित शूद्र जाति में उत्पन्न वारकरी सन्तों ने विट्ठल-भक्ति का मार्ग अपनाया और भक्तिपूर्ण अभंगों की रचना की । वारकरी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक सन्त नामदेव माने जाते हैं । उनकी रचना सूर की तरह मुख्यतः पदों में हुई है तथा उनमें यत्र-तत्र कृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रासलीलाओं से सम्बद्ध शृंगार-प्रधान पद भी समाविष्ट हैं। परन्तु ऐसे पद उत्तान-शृंगार की मादक झाँकी प्रस्तुत न करके भाव-दर्शन और परम्परा को ही चरितार्थ करते हैं।

सन्त ज्ञानेश्वर और नामदेव के पूर्व ही उत्तर भारत में यवन राजाओं ने मूर्तियों को तोड़ना आरम्भ कर दिया था। ज्ञानेश्वर के समाधिस्थ होने के एक वर्ष पूर्व, १२९५ में अलाउद्दीन खिलजी का दक्षिण हिन्दुस्तान पर आक्रमण आरम्भ हो गया था। इस आक्रमण में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर अधिकार जमाकर अपार धन-सम्पत्ति लूटी और यादव राजाओं को अपना माण्डलिक बना लिया। सन् १३०९ में मलिक काफूर द्वारा रामदेवराव यादव पकड़ लिया गया और बाद में मुक्त कर दिया गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद हरपालदेव सिंहासन पर बैठा, परन्तु मुसलमानों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करने के कारण अलाउद्दीन की आज्ञा से मलिक काफूर ने खाल खींचकर उसकी हत्या कर डाली। हरपालदेव की मृत्यु के साथ ही सन् १३१५ में महाराष्ट्र का स्वातन्त्र्य-दीप बुझ गया और परतन्त्रता का नैराश्य चारों ओर छा गया। सामन्तों और क्षत्रियों ने मुसलमान शासकों की दासता स्वीकार कर ली। मुसलमान शासक एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में कृपाण लिये हुए आगे बढ़ रहे थे, अतः वे हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना रहे थे। कई ब्राह्मणों ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था। 'बरार के पाथरी गाँव के भैरव कुलकर्णी तथा उसके बेटे तिमाभट ने इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया था। इस तिमाभट ने ही आगे चलकर अहमदनगर में निज़ामशाही की स्थापना की। एलिचपुर (बरार) की इमादशाही का स्थापक फतेहअली भी ब्राह्मण ही था।'

मुसलमानों के सम्पर्क एवं आधिपत्य के कारण ब्राह्मणों के आचार में अब इस्लाम को भी महत्त्व मिलने लगा था तथा हिन्दू सन्तों के समान फकीरों और पीरों की पूजा भी चल पड़ी थी। इन्हीं परिस्थितियों में दत्त-सम्प्रदाय तथा सन्त एकनाथ का प्रादुर्भाव हुआ।

चौदहवीं शताब्दी में दत्त-सम्प्रदाय के प्रणेता नृसिंह सरस्वती तथा जनार्दन स्वामी का अवतरण हुआ। दत्त-सम्प्रदाय की स्थापना में श्री दत्तात्रेय के रूप में अनेक देवताओं का एकीकरण हुआ तथा आचार पर जोर देकर मुसलमानी सत्ता एवं धर्म से हिन्दू-धर्म की रक्षा की गयी। इस दृष्टि से दत्त-सम्प्रदाय पूर्ण रूप से समन्वयवादी रहा है। उपर्युक्त सन्तों के शिष्य गंगाधर सरस्वती 'गुरु-चरित्र' के रचयिता माने जाते हैं। 'गुरु-चरित्र' दत्तात्रेय-सम्प्रदाय का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है तथा उसका मुख्य विषय है कर्मकाण्ड। महाराष्ट्र में यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है तथा आज भी हजारों लोग नियमपूर्वक उसका पठन-पाठन करते हैं। वस्तुतः मुसलमानी राज-सत्ता तथा इस्लाम-धर्म के सम्मुख अपने आचरण के बल पर ही स्वामी नृसिंह सरस्वती ने वैदिक चातुर्वर्ण्य की स्थापना करके स्त्री-पुरुषों को आचार-धर्म का मार्ग दिखाया। संक्षेप में नृसिंह सरस्वती तथा 'गुरु-चरित्र' का सिद्धान्त है—

समस्त सृष्टी ईश्वराची। स्थावर जंगम रचिली साची।
सर्वत्र देव असे साची। तर्क भेद असंख्य ॥

(जड़ और चेतन, समस्त विश्व की सृष्टि ईश्वर ने ही की है। हर वस्तु में भगवान् विद्यमान है। परन्तु तर्क और भेद असंख्य हैं।) 'गुरु-चरित्र' का रचना-काल सन् १५५७ माना जाता है।

सन्त एकनाथ का काल १५३३–१५९९ ईस्वी माना जाता है। एकनाथ ने 'भागवत', 'भावार्थ-रामायण', 'रुक्मिणी-स्वयंवर' आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। अन्य वारकरी सन्तों की भाँति एकनाथ का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दृष्टिकोण भी समन्वयवादी रहा है तथा जाति-भेद का उन्होंने घोर विरोध किया है। 'ज्ञानेश्वरी' के पश्चात् प्राचीन मराठी काव्य में एकनाथ की भागवती टीका अत्यन्त लोकप्रिय हुई है तथा साहित्यिक गुणों में किसी भी तरह 'ज्ञानेश्वरी' से कम नहीं है। भागवती टीका के माध्यम से एकनाथ ने संस्कृत भागवत को सर्वसाधारण तक पहुँचाकर उसे लोकानुरंजिनी तथा लोकोपयोगी बना दिया। एकनाथ का काव्य तुलसीदास के समान सरल, साधारणीकरण-युक्त तथा अर्थ-सुलभ है, इसीलिए वह अधिक प्रसादपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ।

सन्त एकनाथ ने अहंकार-रहित सौजन्य, सबके प्रति समान दृष्टि, दीनों की सहायता तथा कीर्तन-प्रवचन और सदाचार का उपदेश जनता को दिया और हिन्दू धर्म में एक नयी चेतना उत्पन्न की। पीर-पूजा का निषेध करते हुए वे कहते हैं—

घेऊनि दहा अवतार। करिसी दुष्टांचा संहार।
पुढे कलीचा प्रथम चरण। देवतें राहिलीं लपून॥
तीर्थे सांडोनी महिमान, अठरा वर्ण एक झाले।
म्लेच्छें गांजिलें देवभक्तां, महिमा उच्छेदिला सर्वथा।
न चले जपतप तत्त्वता, एक रूप सर्व झाले।
बया दार लाव।

(दशावतार धारण करके तुमने दुष्टों का संहार किया। अब कलियुग का प्रथम चरण आया है। तीर्थ छोड़कर देवता छिप रहे हैं। अठारह वर्ण एक हो गये हैं। म्लेच्छों ने देव-भक्तों को विकल कर दिया है। उनकी महिमा का उच्छेद कर दिया है। जप-तप काम नहीं देता। सब लोग एकरूप हो गये हैं। हे देवी, अब तो दरवाजा बन्द करो!)

एकनाथ की परम्परा के मुख्य कवि दासोपंत (१५५१–१६१५ ई०), त्र्यम्बकराज (१५८० ई० के लगभग), शिवकल्याण (१५६८–१६३८ ई०) तथा रमावल्लभदास आदि हैं। इनके काव्य में सर्वत्र कृष्ण-प्रेम की ही अभिव्यंजना हुई है। त्र्यम्बकराज का ग्रन्थ 'बालबोध' वेदान्त तथा ओंकारोपासनापरक है। शिवकल्याण ने 'नित्यानन्दैक्य दीपिका', 'रास पंचाध्यायी', 'ब्रह्मस्तुति' आदि ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका मुख्य विषय श्रीकृष्ण-चरित्र-गायन ही है। रमावल्लभदास की गीता पर 'चमत्कारी टीका' प्रसिद्ध है। 'चमत्कारी टीका' में गीता के अध्यात्म को और भी सुबोध एवं ग्राह्य बनाया गया है तथा समस्त ग्रन्थ कृष्ण-भक्ति-रस से ओत-प्रोत है।

प्राचीन मराठी काव्य की अन्तिम कड़ी के रूप में मुक्तेश्वर का नाम आता है। इनके काल के विषय में अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर अधिकतर विद्वान् इन्हें सन्त एकनाथ का भानजा मानते हैं तथा उनका समय १६०० से १६५० के आसपास निश्चित करते हैं। मुक्तेश्वर की सबसे प्रसिद्ध रचना 'महाभारत' है, पर वह सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है। उसके आदि, सभा, वन, विराट तथा सौप्तिक पाँच ही पर्व आज उपलब्ध हैं। मुक्तेश्वर की कविता में लोकोत्तर प्रसाद, दिव्य ओजस्विता तथा सृष्टि-सौन्दर्य की अनुपम शोभा संग्रहीत है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है आख्यान कविता की सर्जना, जिसके सर्वप्रथम प्रवर्त्तक मुक्तेश्वर रहे हैं। सन्त ज्ञानेश्वर को यदि सन्त-साहित्य का भित्ति-चालक कहा जा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकता है तो मुक्तेश्वर को लौकिक साहित्य की नींव डालनेवालों में अग्रगण्य माना जा सकता है। महाभारत के अतिरिक्त मुक्तेश्वर ने कुछ स्फुट प्रकरणों तथा आरतियों की भी रचना की है जिनमें कई नीति-पद भी हैं।

प्रस्तुत विषय की सीमाओं के अन्तर्गत कृष्ण-भक्ति-परम्परा के अन्तिम मुख्य सन्तकवि के रूप में तुकाराम उल्लेखनीय हैं। तुकाराम का जन्म-काल १६०८ ई० माना जाता है। तुकाराम ने अपने काव्य की रचना अभंगों में की है। उनके सभी अभंग भजनोपयोगी हैं। संकीर्तन उनके आचार का प्रधान अंग होने के कारण उनके सभी अभंग हृदय से प्रस्फुटित हुए हैं। इसीलिए उनमें गेयता के साथ-साथ हृदयगत भावों के आरोह-अवरोह का सुन्दर चित्र अंकित हुआ है। तुकाराम के अभंग परमेश्वर-विषयक, अनुनय-विनय, उपालंभ, दास्य, प्रेम, वात्सल्य-भावों से ओत-प्रोत हैं तथा उनका काव्य स्वानुभूत एवं हृदय से स्फुरित होने के कारण महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। तुकाराम ने कृष्ण-गोपी-लीलाओं को लेकर भी कुछ अभंगों की रचना की है, पर वे संख्या में बहुत कम और परम्परानुरूप होने के कारण उनमें सन्त तुकाराम की स्वाभाविक भावुकता तथा विह्वलता के, जो अन्य अभंगों में कूट-कूटकर भरी हुई है, दर्शन नहीं होते। कबीर की भाँति सन्त तुकाराम ने भी व्यावहारिक दम्भ और पाखण्ड को आड़े हाथों लिया है तथा कबीर की ही भाँति उनकी रचनाएँ भी लोकोक्ति-रूप बन गयी हैं।

तुकाराम के खण्डनात्मक एवं ओजस्वी अभंगों ने भौतिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक नैतिक बल-संवर्धन का कार्य किया है। इस खण्डन के साथ-ही-साथ धर्माभिमान, स्वामिनिष्ठा, शरीर-सुख की उपेक्षा, धर्म-नीति का श्रेष्ठत्व, धर्म-कर्म की अपेक्षा, चित्त-शुद्धि तथा सदाचार का महत्त्व आदि उच्चतर जीवन-मूल्यों का परिचय सन्त तुकाराम ने सर्वसाधारण जनता को कराया। उनके इस विधायक कार्य ने ही शिवाजी के कार्य के लिए उपयोगी, ध्येयनिष्ठ, सुसंघटित तथा कार्यक्षम मराठा-समाज तैयार किया।

सन् १६४६ में महाराष्ट्र में स्वराज्य-स्थापना के बाद यवन-संस्कारों को उखाड़ फेंकने और भारतीय संस्कृति की पुनः स्थापना करने का भरसक प्रयत्न होने लगा। शान्ति के इस युग में संस्कृत-ग्रन्थों का अध्ययन हुआ और साथ ही पौराणिक और संस्कृत-ग्रन्थों का मराठी में अनुवाद भी होने लगा। संस्कृत छन्दों का मराठी में अधिकाधिक प्रयोग होने लगा और भाषा भी संस्कृत के ढंग पर लिखी जाने लगी। शान्ति और समृद्धि के इस युग ने मराठी के पण्डित कवियों को जन्म दिया। पण्डित कवियों की प्रवृत्ति काव्य-गुणों और शृङ्गारिक वर्णनों की ओर अधिक थी। यह प्रवृत्ति कृष्ण-लीला-वर्णनों में अधिक प्रकट हुई है। परन्तु प्राचीन परम्परा, सन्त-काव्य और स्वराज्य-काल के नैतिक बन्धनों के कारण उनके शृंगार में हिन्दी-उत्तान-शृङ्गार का रङ्ग अधिक नहीं चढ़ सका। पेशवा-काल में जब महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का दीप हतप्रभ होने लगा और विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी तब यही शृङ्गारिक प्रवृत्ति अश्लील लावणियों में मुखरित हो उठी।

उपर्युक्त परिस्थितियों से स्पष्ट हो जाता है कि महाराष्ट्रीय सन्तों ने गीता और महाभारत के कृष्ण को ही अपने काव्य का विषय क्यों बनाया। वास्तव में कृष्ण के इन रूपों का गुणगान करके पथभ्रष्ट समाज में धर्म की पुनःस्थापना करना ही इन सन्तों को अभीष्ट था। इसीलिए भागवत-पुराण का पर्याप्त प्रचार होते हुए भी उन्होंने कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं को अपने काव्य में अधिक महत्त्व नहीं दिया, वरन् परम्परा से ज्ञात कृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के योगेश्वर रूप का ही मुख्यतः वर्णन किया है। शृङ्गारिक और बाल-लीलाओं का वर्णन प्रासंगिक मात्र है। इस दृष्टि से मराठी कृष्ण-कविता बहुविध है। उसमें हिन्दी की भाँति एकरसता दृष्टिगत नहीं होती।

मराठी कृष्ण-काव्य के स्वरूप-निर्धारण में महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। महाराष्ट्र पहाड़ी प्रदेश है। उत्तर भारत की भाँति वहाँ की भूमि उपजाऊ नहीं है। बिना कठिन परिश्रम के फसल नहीं होती। अतः यहाँ की जनता उत्तर भारत की अपेक्षा धनहीन है। बिना एड़ी-चोटी का पसीना एक किये पेट भरना जनता के लिए असम्भव है। इसीलिए महाराष्ट्र के लोग स्वभाव से ही परिश्रमी हैं। वे बुद्धिजीवी और श्रमजीवी एक साथ हैं। जीवन का सारा समय जीवन-यापन में व्यतीत होने के कारण विलासिता की ओर प्रवृत्त होने के लिए न तो उनके पास समय है, और न साधन। जनता की इन स्वाभाविक और प्रदेश की भौगोलिक विशेषताओं का भी मराठी के कृष्ण-काव्य पर प्रचुर मात्रा में प्रभाव पड़ा है और इसीलिए मराठी कवियों की प्रवृत्ति कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं की ओर उतनी नहीं रही जितनी अन्य प्रदेशों के कृष्ण-भक्त कवियों की रही है। मराठी कृष्ण-काव्य पर राष्ट्रीयता का अनूठा रंग चढ़ा हुआ दृष्टिगत होता है।

कर्नाटक का प्रभाव तथा विट्ठल की कल्पना

दक्षिण में आचार्यों द्वारा कृष्ण-भक्ति की स्थापना और महाराष्ट्र में कृष्ण-भक्ति की स्थापना लगभग एक ही काल तथा एक-सी ही परिस्थितियों में सम्पन्न हुई-सी प्रतीत होती है। दक्षिण की ही भाँति महाराष्ट्र में भी कृष्ण-भक्ति-मार्ग पर आलवारों का विशेष प्रभाव अभिलक्षित होता है। आलवारों की भाव-विह्वलता तथा रससिक्त भजनों की लोकप्रियता ही वह कारण प्रतीत होती है जिससे विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा कृष्णावतार को लेकर ही भक्ति-काव्य की सर्जना हुई। इतना अवश्य है कि कृष्ण-भक्ति में कृष्ण को पुराणों की परम्परानुसार विष्णु का ही पूर्ण अवतार मानकर उपासना को प्रश्रय मिला। कृष्ण और विष्णु के अभेद की इस कल्पना के लिए जिस प्रकार पुराणों का समन्वयवादी दृष्टिकोण उत्तरदायी रहा है, उसी प्रकार न्यूनाधिक मात्रा में महाराष्ट्र पर कर्नाटक का प्रभाव भी उत्तरदायी रहा है। महानुभाव-पन्थ द्वारा निवृत्ति-मार्ग का स्वीकार तथा वारकरी-पन्थ में विट्ठल की कल्पना इस दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं।

पहले कहा गया है कि विट्ठल कर्नाटक की कल्पना है। पाण्डुरंग मन्दिर के शिला-लेख में संस्कृत तथा कन्नड़ भाषा का प्रयोग भी विट्ठल का कर्नाटक से आना निर्दशित करता है। विट्ठल की मूर्ति की प्राचीनता भी इसी बात को सूचित करती है। मैसूर राज्य के एक शिलालेख के अनुसार पुण्डलीक का समय शालिवाहन शक के प्रथम शक के लगभग निश्चित होता है। विट्ठल अथवा पाण्डुरंग की प्राचीनता प्राचीन सन्त-वाणी में भी व्यक्त हुई है। आद्य शंकराचार्य कहते हैं :

परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम्।

नामदेव उन्हें अट्ठाईस युग से ईंट पर खड़ा हुआ पाते हैं—

'युगे अट्ठावीस विटेवरी उभा।'

(अट्ठाईस युगों से ईंट पर खड़े हैं।)

३/१६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानदेव नामदेव के मत की पुष्टि करते हुए कहते हैं—

'हे नव्हे आजिकालिचें, युगे अट्ठावीसांचे।'

(ये आजकल ही नहीं, अट्ठाईस युगों से यों ही खड़े हैं।)

तुकाराम का कथन है—

'युगे झाली अट्ठावीस अजुनी न म्हणशी बैस।

(अट्ठाईस युग हो गये, परन्तु अब भी बैठने की बात नहीं कहते।)

उपर्युक्त सभी उल्लेख विट्ठल की प्राचीनता की पुष्टि करते हैं। पर विट्ठल के प्राचीन होते हुए भी महाराष्ट्र में विट्ठल-भक्ति का प्रचार कई शताब्दियों के बाद होना इस बात को स्पष्ट रूप से सूचित करता है कि महाराष्ट्र में प्रविष्ट होने के पूर्व विट्ठल-भक्ति कर्नाटक देश में विद्यमान थी। मूर्ति के मस्तक पर शिवलिंग का अस्तित्व भी कर्नाटक में प्राचीन काल में विद्यमान शिव और विष्णु के भेद एवं तदनन्तर ऐक्य का द्योतक है। बदामी में विद्यमान चार प्राचीन मन्दिरों में से एक में हरिहर की मूर्ति इसी कथन की पुष्टि करती है।

दक्षिण की भाँति महाराष्ट्र में भी वैष्णव-शैव-विरोध का सर्वथा अभाव रहा है। ऐसी दशा में विट्ठल-मूर्ति में शिव-विष्णु का ऐक्य महाराष्ट्र की किसी धार्मिक प्रवृत्ति-विशेष को सूचित नहीं करता।

कर्नाटक में विट्ठल-भक्ति का प्रचार अन्य कई बातों से भी प्रमाणित होता है। ई० स० १२८० के लगभग रुद्रभट नामक कन्नड़ कवि ने जगन्नाथ को ही विट्ठल कहा है। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में विद्यमान कन्नड़ कवि चौडरस ने पण्ढरी-क्षेत्र का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। कन्नड़ कवि हरिदास तो पक्के विट्ठल-भक्त ही थे। आन्ध्र देश में आज भी पाण्डुरंग के कई मन्दिर बने हुए हैं। इसी प्रकार तेलुगु लोकगीतों में पाण्डुरंग तथा पण्ढरी के कई वर्णन मिलते हैं। कर्नाटक के हरिदासों का विट्ठल-भक्ति में विशेष हाथ रहा है।

वारकरी-पन्थ के आचारधर्म के अन्तर्गत विष्णु और शिव का ऐक्य, अन्य धर्मों के प्रति उदारता, जाति-भेद का खण्डन आदि में भी कर्नाटक का विशेष हाथ रहा है। कन्नड़ के प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि अन्य धर्मों के प्रति कर्नाटक का दृष्टिकोण आरम्भ से ही अत्यन्त उदार रहा है। पर आश्चर्य की बात यह है कि ईसा की सातवीं शताब्दी तक कर्नाटक में कृष्णोपासना का कोई भी स्पष्ट ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता। द्वितीय विक्रमादित्य द्वारा निर्मित विरुपाक्षया लोकेश्वर, काशी विश्वनाथ, मल्लिकार्जुन आदि प्राचीन मन्दिरों के स्तम्भों पर श्रीकृष्ण-जीवन-विषयक कथाओं के शिल्प से इतना अवश्य विदित होता है कि सातवीं शताब्दी के पूर्व लोक में कृष्ण-कथाओं का बहुलता से प्रचार हो चुका था। यही स्थिति अल्पाधिक मात्रा में गुजरात की भी रही है। ऐसी दशा में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मराठी कृष्ण-काव्य को, कर्नाटक की देन, विट्ठल की कल्पना, हरिहर-ऐक्य तथा धार्मिक सहिष्णुता ही रही है, पर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में कृष्णोपासना के स्वतंत्र रूप से आरम्भ में विशेषतया गुजरात का ही हाथ रहा है जो महानुभाव-पन्थ के उदय में अभिलक्षित होता है।

गुजरात का प्रभाव और महानुभावों के कृष्ण

मराठी काव्य पर गुजरात के प्रभाव का विवेचन करने के पूर्व प्राचीन गुजरात में कृष्ण-भक्ति के स्वरूप पर विहंगम दृष्टि डालना समीचीन होगा। गुजरात और काठियावाड़ के प्राचीन शिल्प के अवलोकन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्रतीत होता है कि ईसा की चौथी-पाँचवीं शताब्दी में गुप्त-राजवंश के आगमन के पूर्व गुजरात में वैष्णव-उपासना का कोई भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में गुजरात में शैव-धर्म का ही प्रचार था। तत्पश्चात् बौद्ध एवं जैन-धर्मों के बढ़ते हुए प्रचार के प्रक्रियास्वरूप सातवीं शताब्दी के लगभग गुजरात में लकुलेश पाशुपत-सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ तथा वह समस्त गुर्जर देश में लोकप्रिय हो गया। इस सम्प्रदाय का उल्लेख आदि शंकराचार्य ने भी किया है।

इस वस्तुस्थिति का समर्थन गुजरात के प्राचीन मन्दिरों एवं शिलालेखों के अवलोकन से भी होता है। गुजरात के सभी प्राचीन मन्दिर या तो शिव के हैं या शिव-विष्णु के। विष्णु के स्वतंत्र मन्दिर के सम्बन्ध में केवल एक ही प्राचीन शिलालेख उपलब्ध है। इसी प्रकार श्रीधर की देवपाटण-प्रशस्ति से रोहिणी-स्वामी मन्दिर का पता चलता है। यद्यपि मन्दिर में केशवादि की ही मूर्तियाँ थीं, तथापि उसके नामकरण से प्रतीत होता है कि उसका निर्माण बलभद्र तथा रोहिणी की पुण्य-स्मृति में हुआ था। गुजरात में स्वतन्त्र रूप से कृष्ण-भक्ति का सर्वप्रथम ऐतिहासिक प्रमाण अनावाद का शिलालेख है जो सन् १३४८ का माना जाता है। इस शिलालेख में कृष्ण-पूजा के लिए दान तथा उसमें गीतगोविन्द के आरम्भिक पदों के उद्धरण से प्रतीत होता है कि गुजरात में सर्वप्रथम कृष्ण-भक्ति का स्वतन्त्र रूप से प्रचार गीतगोविन्द की रचना के पश्चात् हुआ। अतः आवश्यक था कि गुजरात की प्रारम्भिक कृष्ण-भक्ति में भागवत पर आधारित जयदेव की शृंगार-प्रधान भक्ति तथा प्राचीन वासुदेव-सम्प्रदाय की कृष्ण-भक्ति दोनों का प्रभाव पड़ता। यह प्रभाव स्वामी चक्रधर द्वारा प्रवर्तित महानुभाव-पन्थ के तत्त्व-निरूपण में दृष्टिगोचर होता है।

महाराष्ट्र के आदि धार्मिक सम्प्रदाय महानुभाव-पन्थ के प्रवर्त्तक स्वामी चक्रधर माने जाते हैं। स्वामी चक्रधर स्वयं महाराष्ट्रीय नहीं थे। वे भरवस (वर्तमान भड़ोंच) के गुजराती राजा विशालदेव के पुत्र थे तथा उनका पहले का नाम हरिपालदेव था। यही हरिपालदेव आगे चलकर महाराष्ट्र में 'चक्रधर' के नाम से प्रसिद्ध हुए तथा महानुभाव-पन्थ के प्रवर्त्तक बने। जन्मतः गुजराती होते हुए भी महात्मा चक्रधर ने धार्मिक कार्य के लिए गुजरात को छोड़कर महाराष्ट्र को चुना तथा महानुभाव-तत्त्वज्ञान का लोक-भाषा मराठी में प्रचार करके जनता को सच्चे धर्म की ओर अग्रसर किया। धर्म-प्रचार के लिए महात्मा चक्रधर का गुजरात की अपेक्षा महाराष्ट्र को चुनना दो बातों पर प्रकाश डालता है। एक यह कि उस समय गुजरात में पाशुपत, जैन तथा बौद्ध-धर्मों के अत्यधिक प्रचार के कारण वहाँ किसी भी नूतन धार्मिक विचारधारा का उद्रेक असम्भव था, तथा दूसरे, महाराष्ट्र में बहुदेववाद के अस्तित्व, उसके प्रति जनता की असीम आस्था तथा सामाजिक दुर्दशा के कारण सबसे पहले महाराष्ट्र को ही मार्ग-दर्शन की आवश्यकता थी। स्वयं महात्मा चक्रधर के वचन 'महाराष्ट्री असावे' (महाराष्ट्र में रहना चाहिए) इसी पार्श्वभूमि को सूचित करते हैं। अतः महानुभाव-पन्थ के तत्त्वज्ञान तथा उसके अन्तर्गत कृष्ण के स्वरूप का विवेचन करने से पहले उन परिस्थितियों पर विचार करना अनिवार्य है जो इस पन्थ के आविर्भाव के कारण बनीं।

मराठी काव्य-ग्रन्थों का आरम्भ लगभग बारहवीं शताब्दी से होता है। जिस समय महात्मा चक्रधर का महाराष्ट्र में आगमन हुआ, तब से लेकर उनके प्रयाण-काल तक महाराष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन था तथा परतन्त्रता के दुष्परिणामों का उसे तनिक भी अनुभव नहीं था। यह वह काल था जब महाराष्ट्र पर यादव राजाओं का राज्य था। यादव राजा स्वयं धर्मशील थे तथा वेदान्त में उनकी पूर्ण आस्था थी। ऐसी दशा में आवश्यक था कि अनेक विद्वान् पण्डित राजाश्रय प्राप्त करते और वस्तुस्थिति भी यही थी। राजाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की उदार एवं सहिष्णु-प्रवृत्ति के कारण जैन, लिंगायत, जोगी, नाथ, बौद्ध आदि संप्रदायों के अनुयायी भी अपने-अपने मतों का यत्र-तत्र प्रचार कर रहे थे। ई० स० ११८८ में मुकुन्दराज द्वारा रचित 'विवेक सिन्धु' से इसी वस्तुस्थिति का पता चलता है। पर राजाश्रय के कारण मुख्यतः वैदिक धर्म का ही बोलबाला था। दूसरे शब्दों में, महात्मा चक्रधर के आगमन के पूर्व महाराष्ट्र में चातुर्वर्ण्य अत्यन्त विषम रूप धारण किये हुए था तथा उसकी विषमता केवल आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न रहकर दैनिक व्यवहार में भी व्याप्त हो चुकी थी। इस विषमता के फलस्वरूप समाज का निम्न वर्ग तथा स्त्रियाँ धर्म से वंचित रह गयी थीं। तत्कालीन हेमाद्रि पण्डित की 'चतुर्वर्ग चिन्तामणि' के 'व्रतखण्ड' में विभिन्न देवताओं की उपासना के लिए वर्ष में लगभग दो हजार व्रतों के आयोजन से पता चलता है कि इस समय अनेक देवताओं की उपासना के साथ-साथ अनेक व्रतों का पालन करना धर्म का एक आवश्यक अंग बन चुका था, जो स्पष्ट रूप से अन्य वर्णों पर ब्राह्मणों की सत्ता को सिद्ध करता है। अनेक देवताओं की उपासना के कारण ही आचार में भी अनेक तत्त्व समाविष्ट हो गये थे, यथा गोकुल-अष्टमी, गणेश-चतुर्थी के व्रत और नवरात्र में देवी की पूजा के साथ-साथ विजयादशमी को भैंसे का बलिदान। इस प्रकार एक ही ध्येय तक पहुँचने के लिए एक साथ अनेक मार्गों का अनुशीलन हो रहा था। महात्मा चक्रधर ने इसके परिणाम को समझा और बहुदेववाद के दुष्परिणाम को रोकने के लिए एकेश्वरवाद पर जोर दिया। अपने प्रतिपादन में ईश्वर-निर्मित एक सृष्टि में उन्होंने ८१ कोटि, सवा लाख दस देवताओं को माना तथा उनके न्यूनाधिक सामर्थ्य के अनुसार उनके फलों को भी भिन्न-भिन्न बताया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए अनेक छोटे-बड़े देवताओं की उपासना करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वास्तव में ये सब देवता ईश्वर के अधीन हैं तथा मोक्ष देने में सर्वथा असमर्थ हैं। मोक्ष केवल ईश्वर ही दे सकता है, अतः अनन्य भाव से उसीकी उपासना करने से जीव उन्हींके फल को प्राप्त करता है। पुण्य का क्षय होते ही फिर से अपनी मूल अवस्था में पहुँच जाता है। एकेश्वरवाद के प्रतिपादन के लिए महात्मा चक्रधर ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन करके द्वैत को माना है तथा अनेक देवी-देवताओं की उपासना से जीव-मात्र को मुक्त करने के लिए उन्होंने वेदों को अयोग्य बतलाया, क्योंकि उनके मतानुसार वेदों की दृष्टि केवल माया अथवा चैतन्य देवता तक ही सीमित है—

'कव्हणी एकु वेदु विभागु चैतन्याचेया अस्तित्वातेजाणे'

(वेदों की दृष्टि केवल चैतन्य देवता अथवा माया तक ही सीमित है।) और माया है परमेश्वर की दासी। वेद विषमता का मूल आधार होने के कारण उन्होंने उनकी अयोग्यता सिद्ध की तथा इस प्रकार चातुर्वर्ण्य की शृंखला से समाज को मुक्त करने का प्रयत्न किया। साथ ही अपने अनुयायियों को 'चातुर्वर्ण्यं चरेत् भैक्ष्यम्' का उपदेश देकर उन्होंने आहार-सम्बन्धी भेदाभेद का खण्डन किया। उन्होंने शूद्र और स्त्री —दोनों को संन्यास का अधिकारी माना तथा आवश्यकता पड़ने पर अछूतों की बस्ती में जाकर भी धर्म का ज्ञान प्राप्त करना स्वीकार किया—

'महारवाडाहोनि धर्मु काढावा'

इसी प्रकार उन्होंने छुआछूत का विरोध करके मद्य को निषिद्ध माना—'मत्त द्रव्य न सेवा गा' तथा अहिंसा के साथ संन्यास को प्रधानता दी। अतः हम देखते हैं कि महात्मा चक्रधर ने उन सभी तत्त्वों को अंगीकार किया जो जनता को उन्नति की ओर ले जानेवाले थे। इन सभी तत्त्वों का बीज गीता में होने के कारण उन्होंने गीता को प्रमाण-ग्रन्थ माना तथा कृष्ण को साक्षात् परमेश्वर का अवतार मानकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शंकराचार्य के पंचायतन को अस्वीकार करते हुए श्री दत्तात्रेय (एकमुखी) श्रीकृष्ण, श्री चक्रपाणि, श्री गोविन्द प्रभु तथा श्री चक्रधर को साकार परमेश्वरावतार मानकर 'पंचकृष्ण' की उपासना को मान्यता दी।

महानुभाव-तत्त्वज्ञान का मुख्य आधार गीता होने के कारण महानुभाव-तत्त्वज्ञान के रूप में एक प्रकार से गीता के ही सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति-सी प्रतीत होती है। जिस प्रकार गीता में प्राचीन ज्ञान, कर्म और भक्ति को एकसूत्र करके विभिन्न साधना-पद्धतियों में सामंजस्य स्थापित किया गया है, उसी प्रकार महात्मा चक्रधर ने सभी प्रचलित धर्म-सम्प्रदायों के श्रेयस्कर तत्त्वों को एकसूत्र करके वास्तविक धर्म का स्वरूप निश्चित किया। उनका कथन—

सकळही शास्त्रें या शास्त्रासि मिळेतिः परि हें कव्हणाहीं न मिळे

(सभी शास्त्र इसमें आ जाते हैं, परन्तु यह स्वयं सबसे भिन्न है।)

इसी सत्य की ओर निर्देश करता है।

महानुभाव-पन्थ श्रीकृष्ण का उपासक होते हुए भी वैष्णव-पन्थ नहीं है, क्योंकि वह कृष्ण को अन्य वैष्णव-सम्प्रदायों की भाँति विष्णु का अवतार न मानकर साकार परमेश्वरावतार मानता है।

"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन"

के आधार पर ब्रह्मलोकसहित सभी लोक पुनर्जन्म लेने के लिए बाध्य हैं। तब भला विष्णु का वैकुण्ठ अविनाशी कैसे हो सकता है और विष्णु-उपासना का फल है वैकुण्ठ-प्राप्ति।

"तद्यदिह कर्मजित् लोकः क्षीयते एवमेवमुभावे व पुण्यजितः लोकः क्षीयते"

में भी पुण्य द्वारा प्राप्त किये हुए परलोक का क्षय माना गया है। इस प्रकार महानुभाव-पन्थ के कृष्ण की कल्पना दक्षिण के वैष्णव-सम्प्रदायों से प्रभावित न होकर कृष्ण-विषयक प्राचीन मान्यताओं पर आधारित है तथा उसका सीधा सम्बन्ध द्वारावती या द्वारका से है जहाँ ईसा-पूर्व लगभग दूसरी शताब्दी तक कृष्ण विष्णु के अवतार न समझे जाकर परमेश्वरावतार माने जाते थे। अतः इस मान्यता में प्राचीन परम्परा का ही निर्वाह अभिलक्षित होता है जिसे परवर्ती सन्तों ने भी यत्र-तत्र स्वीकार किया है, यद्यपि साधना के क्षेत्र में वे पूर्णरूपेण वैष्णव ही थे। सन्त रामदास के वचन—

वैकुण्ठनाम विष्णुभृंगाचें। सत्य लोक नाम ब्रह्मभृंगाचें।
अमरावती इंद्राचें, स्थल खालते ॥ १३ ॥
येथें ज्या देवाचें भजन करावें। तेथें त्या देवलोकीं रहावें ॥ २३ ॥
सुकृत आहे तवं भोगिती, सुकृत सरतांच ढकलून देती।
आपण देवते असती। जैसे तैसे ॥ २६ ॥

(विष्णुलोक का नाम वैकुण्ठ है और ब्रह्मलोक का सत्यलोक। इन्द्र का स्थान अमरावती उनसे नीचा है। यहाँ जिस देवता की भक्ति करोगे उसीके लोक में पहुँचोगे। जब तक पुण्य होगा सुखों का उपभोग करोगे। पुण्य समाप्त होते ही पुनः मृत्युलोक में जाना पड़ता है, परन्तु देवता जैसे थे वैसे हो रहते हैं।)

महानुभावपन्थी इसी मान्यता का समर्थन करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्त एकनाथ कहते हैं—

न लगे भुक्ति मुक्ति न लगे स्वर्गवास,
नको वैकुण्ठवास देवराया।
न लगे योग याग अष्टांग साधन,
न चुके बन्धन येणें काहीं॥

(न मुझे मुक्ति चाहिए, न भुक्ति। न स्वर्ग-सुख। न वैकुण्ठ। योग-याग आदि अष्टांग साधनों की भी मुझे आवश्यकता नहीं, क्योंकि इनसे भव-बन्धन नहीं टूटता।)

इसी प्रकार सन्त तुकाराम भी वैकुण्ठ के सुख को नाशवान् मानते हैं—

"नको वैकुण्ठीचा वास। असे तया सुखा नाश।"

(मुझे वैकुण्ठ का सुख नहीं चाहिए, ऐसे सुख का नाश होता है।)

श्रीकृष्ण को परमेश्वरावतार मानने के साथ-साथ महानुभाव-पन्थ ने भागवत में वर्णित कृष्ण-लीलाओं को भी मान्यता दी है। कृष्ण और गोपियों का रास अलौकिक क्रीड़ा है तथा उसमें हिन्दी-कृष्ण-काव्य की भाँति लौकिकता का कहीं भी पुट नहीं है। इसी प्रकार महानुभाव-पन्थ के सन्त-कवियों ने राधा और कृष्ण को लेकर भक्ति-शृङ्गार के पदों से काव्य-भण्डार को नहीं भरा है। अपने सिद्धान्त-निरूपण में उन्होंने प्रेमदान को अवश्य स्वीकार किया है, पर वहाँ प्रेम का स्वरूप शुद्ध प्रेम-भाव है, क्योंकि परमेश्वर स्वभावतः कृपालु है तथा वह अवतार भी भक्तों के उद्धार के लिए तथा उन्हें अपना सान्निध्य प्रदान करने के लिए ही धारण करता है। भक्तों को मोक्ष प्रदान करना उसे अत्यन्त प्रिय है जिसके लिए वह स्वयं बारम्बार साकार होता है।

"परमेश्वर निर्वेवो निराकारु असे, परिकृपावशें सावेवो'
साकारु होए, अवतरे, आपुलें सन्निधान दे।"

(परमेश्वर निर्विकार, निराकार है, किन्तु कृपावश वह साकार होकर अवतार लेता है तथा भक्तों को अपना सान्निध्य प्रदान करता है।)

शंकराचार्य की भाँति केवल ज्ञान को ही मोक्ष का साधन न मानकर महानुभाव-पन्थ के आचार्यों ने ज्ञान और भक्ति दोनों को मान्यता दी है। परमेश्वर की अनन्य-भक्ति के लिए ईश्वर, जीव, देवता और प्रपंच का यथार्थ ज्ञान आवश्यक है। जो जैसा है, उसे वैसा जानना ही ज्ञान है—

"जे जैसे असे ते तैसे जाणिजे तें ज्ञान"

(जो जैसा है, उसे वैसा समझना ही ज्ञान है और यही ज्ञान की सार्थकता है।)

इस प्रकार मराठी भक्ति-काव्य को महानुभाव आचार्यों की देन है—अनेक देवी-देवताओं को छोड़कर केवल परमेश्वर की ही अनन्य-भक्ति-भाव से उपासना, विष्णु से भी श्रेष्ठ परमेश्वर के रूप कृष्ण का स्वीकार, परमेश्वर का मूल रूप में निराकार होना तथा कृपावश भक्तों के लिए साकार होना, दलित और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोषित-वर्ग को धर्म का अधिकार, हिंसा और मादक द्रव्यों का निषेध तथा संन्यास की आवश्यकता। इन सभी बातों का परवर्ती मराठी-काव्य पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है।

महानुभाव-पन्थ के प्रमुख ग्रन्थ सात माने जाते हैं—१. 'वत्स-हरण', २. 'शिशुपाल-वध', ३. 'उद्धव-गीता', ४. नरेन्द्र कवि-कृत 'रुक्मिणी-स्वयम्वर', ५. 'ऋद्धपुर-वर्णन', ६. 'सह्याद्रि-वर्णन' तथा ७. 'ज्ञान-प्रबोध'। इन ग्रन्थों के आधार-स्तम्भ श्रीमद्भगवद्गीता तथा भागवत होने के कारण 'वत्स-हरण', 'शिशुपाल-वध' तथा 'रुक्मिणी-स्वयम्वर' में भक्ति-शृङ्गार की ही बहुलता दृष्टिगोचर होती है। 'रुक्मिणी-स्वयम्वर' में शृङ्गार-रस की प्रधानता होने के कारण यह ग्रन्थ इतना लोकप्रिय हुआ कि परवर्ती-काल में इसकी देखादेखी कई कवियों ने रुक्मिणी-स्वयम्वर लिखे। उपर्युक्त ग्रन्थों में शृङ्गार की प्रचुरता अवश्य रही है, परन्तु वह महानुभाव-पन्थ की मान्यता न होकर कवियों की व्यक्तिगत रुचि को ही सूचित करती है। उदाहरण के लिए 'शिशुपाल-वध'-जैसे शृङ्गार-प्रधान तथा लोक-प्रिय ग्रन्थ की रचना करने के पश्चात् भास्करभट्ट बोरीकर ने जब ग्रन्थ अपने गुरुबन्धु भावे व्यास को दिखाया तब वे कह उठे, "भटोः हा ग्रन्थ निका झाला असेः परि निवृत्तीजोगा नव्हेचिः हा शृङ्गारियां प्रवृत्तां जोगा जाला असेः" (भटो, ग्रन्थ सुन्दर बन पड़ा है, पर वह निवृत्ति-मार्गानुगामी के लिए न होकर शृङ्गारिक प्रवृत्ति-मार्गानुगामी के योग्य है।) गुरुभाई के अभिमत से कवि इतना आहत हुआ कि अगले वर्ष उसने भागवत के एकादश स्कन्ध पर 'उद्धव-गीता' नामक निवृत्ति-परक टीका लिखी। शृङ्गार प्रधान काव्य में भी महानुभाव कवियों ने रुक्मिणी और कृष्ण को ही अपने शृङ्गार का विषय बनाया है जो दाम्पत्य या कान्त-भाव पर ही आधारित है। हिन्दी भक्ति-काव्य की भाँति उसमें राधा का सर्वत्र अभाव है। महानुभाव कवियों द्वारा प्रवर्तित इसी परम्परा को अन्य परवर्ती साम्प्रदायिक कवियों ने भी निभाया, जिसके फलस्वरूप मराठी भक्ति-काव्य में राधा और गोपियों को लेकर विशद शृङ्गारिक काव्य का समावेश न हो सका, जैसा उत्तर भारत के भक्ति-काव्य में उपलब्ध होता है।

जयदेव की गीति-परम्परा और तेलुगु कृष्ण-गीतों का पद और भजन-साहित्य पर प्रभाव

मराठी भजन और पद-साहित्य पर जयदेव की गीति-परम्परा और तेलुगु कृष्ण-गीतों के प्रभाव का विवेचन करने से पूर्व, दक्षिण और उत्तर में भक्ति के स्वरूप तथा भजन एवं पद-साहित्य की सर्जना के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है।

हम पहले देख चुके हैं कि ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी तक वासुदेव की उपासना के रूप में अनन्य भक्ति का प्रचलन महाराष्ट्र में विद्यमान था। ईसा की चौथी शताब्दी से संस्कृत-साहित्य में भक्ति की प्रधानता अभिलक्षित होती है तथा दसवीं शताब्दी तक यह प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती हुई दिखाई देती है। दसवीं शताब्दी तमिल, बंगाली, मराठी, कन्नड़ आदि प्रान्तीय भाषाओं का उदय-काल होने के कारण भक्ति की इस पूर्व-पीठिका का उन पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक का प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य भक्ति-प्रधान साहित्य रहा है। इतना अवश्य है कि प्रत्येक प्रान्तीय भाषा में प्रान्तीय विशेषता तथा भाषानुरूप भक्ति का स्वरूप बदलता रहा। दक्षिणी साहित्य में कर्मठता, मराठी-साहित्य में बुद्धिवाद तथा समाज-हित, हिन्दी में शृङ्गार तथा रंगीनता और बंगला में स्वप्निलता इसी प्रान्तीय विशेषता को सूचित करती हैं।

संस्कृत के बाद परम्परावश प्राकृत भाषा में भी भक्ति की प्रधानता रही। तमिल आलवार कवियों का साहित्य वैष्णव-भक्ति का सबसे प्राचीन प्राकृत साहित्य है। आलवार भक्त-कवि परब्रह्म की उपासना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् वासुदेव के रूप में करते थे। उनकी भक्ति ऐकांतिक भक्ति थी तथा उसमें मधुर भाव की प्रधानता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। आण्डाल कोदै के पदों में तो कान्त-भाव का अत्यन्त सुन्दर निरूपण हुआ है। शाण्डिल्य-सूत्रों में भक्ति-निरूपण के लिए यत्र-तत्र मानवीय प्रेम के उल्लेखों के पश्चात् सर्वप्रथम आलवार भक्त-कवियों के पदों में ही मधुर भाव का सर्वप्रथम दर्शन होता है और सम्भवतः भागवत-पुराण में प्रतिपादित मधुरा-भक्ति पर भी आलवारों की मधुरा-भक्ति का विशेष प्रभाव रहा है। भागवत तथा पद्मपुराणों में द्राविड़ देश के नारायणीय भक्तों का उल्लेख सम्भवतः आलवारों को लेकर ही हुआ है तथा उपर्युक्त सम्भावना की पुष्टि करता है। वैसे भी आलवारों का आरम्भ ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी से माना जाता है तथा भागवत-पुराण का रचनाकाल ईसा की छठी से लेकर आठवीं शताब्दी से पहले नहीं पहुँचता।

आलवारों की मधुरा-भक्ति तथा भागवत-पुराण के रास-वर्णन के योग से ही समस्त भारत में चौदहवीं शताब्दी में समस्त शास्त्रों एवं दर्शनों को एक ओर ठेलकर कृष्ण-भक्ति की प्रचण्ड धारा प्रवाहित हो उठी तथा मधुर भाव के लिए लक्ष्मी अथवा रुक्मिणी योग्य न होने के कारण राधा का प्रादुर्भाव हुआ। कृष्ण की सखी के रूप में राधा का ऐतिहासिक उल्लेख अमोघवर्ष राजा की ९८० की प्रशस्ति में मिलता है।

भागवत में श्रीकृष्ण की रास-क्रीड़ा का अत्यन्त सरस वर्णन है। इसी प्रकार बाल-क्रीड़ा-वर्णन, ऋतु-वर्णन, गोप-क्रीड़ा, वेणुनाद-वर्णन, गोपी-वस्त्रहरण, शरद्-ऋतु-दर्शन, कृष्ण-गोपी-संवाद, गोपियों की प्रार्थना, गोपियों का विरह, विलाप, श्रीकृष्ण-दर्शन, कृष्ण द्वारा गोपियों का समाधान आदि शृङ्गार-भक्ति के अनेक विवरण भागवत में हैं। भागवत ने शृङ्गार-भक्ति का आश्रय अलौकिक तत्त्वज्ञान के निरूपण के लिए लिया है तथा भक्ति के नौ प्रकार माने हैं—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

नारद-सूत्र में गुण-माहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दासासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्म-निवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति आदि भक्ति के ग्यारह प्रकारों में कान्तासक्ति तथा परमविरहासक्ति को भी मान्यता दी गयी है तथा इसीका विशद वर्णन भागवत में हुआ है।

इस प्रकार शृङ्गार-भक्ति के मूल में अलौकिक तत्त्व-ज्ञान के निरूपण का ध्येय होते हुए भी सरस वर्णन-शैली तथा उसमें विरह, मिलन, आसक्ति आदि भासमान लौकिक गुणों का समावेश होने के कारण भक्ति के क्षेत्र में मधुर भाव को प्रधानता मिली, जिसके परिणामस्वरूप ईसा की बारहवीं शताब्दी में दक्षिण में निम्बार्काचार्य द्वारा राधा और कृष्ण की भक्ति पर विशेष बल दिया गया तथा विष्णुस्वामी ने भी इसी भक्ति-पद्धति को स्वीकार किया। ईसा की दसवीं शताब्दी में पतनोन्मुख बौद्ध-धर्म के प्रभाव में बंगाल में निर्वाण का एकमात्र साधन गुरु के सम्मुख शरीर समर्पण करना माना जाने लगा था तथा प्रचलित रास-लीलाओं तथा लोक-गीतों के कारण राधा और कृष्ण का प्रेम लोक-प्रिय बन चुका था। इन दोनों धाराओं की पार्श्व-भूमि पर उमापति ने ग्यारहवीं और विद्यापति ने बारहवीं शताब्दी में राधा और कृष्ण को लेकर सम्भोग और विप्रलम्भ शृङ्गार में भक्ति का पुट देकर सुन्दर चित्र आँके तथा भक्ति के निरूपण के लिए शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का आश्रय लेने की एक प्रथा-सी चल पड़ी। इसके पूर्व ब्रह्मानन्द की अभिव्यक्ति के लिए सबसे श्रेष्ठ सुखानन्द के रूप में मानवी शृङ्गार का आश्रय लिया गया था, क्योंकि ब्रह्मानन्द की अनुभूति को व्यक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के लिए कोई भी भाषा समर्थ नहीं है। अतः अलौकिक सुख की एक अवस्था-विशेष को यत्किंचित् अनुभूतिगम्य बनाने के लिए ही सम्भोगजनित मानव-सुलभ सुखद अनुभूति की उपमा दी गयी। जेम्स प्रैट ने भी भाषा की असमर्थता को ही धर्म में शृङ्गार के समावेश का कारण माना है। इतना ही नहीं, अपने मत की पुष्टि के लिए उसने सन्त प्लाटिनस को भी उद्धृत किया है। सन्त प्लाटिनस कहते हैं—

"Those to whom this heavenly love is unknown may get some conception of it from earthly love, and what joy it is to obtain possession of what one loves most."

शृंगार के माध्यम से ब्रह्मानन्द की अनुभूति का यह प्रकार केवल भारतीय भक्ति-काव्य में ही नहीं मिलता, अपितु संसार के सभी धर्मों में उसके दर्शन होते हैं। सूफी-पन्थ में इश्कबाज़ी को (मानवी प्रेम को) इश्क़ हक़ीक़ी (ईश्वरी प्रेम) का एक सोपान माना गया है। सूफी-पन्थ की यह मान्यता भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।

आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए मानवी शृङ्गार को माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने के कारण विषय-निरूपण तथा रस-निष्पत्ति के लिए शृङ्गार के सभी उपादानों का प्रासंगिक चित्रण आवश्यक है। इस आवश्यकता-पूर्ति के लिए शृङ्गारिक हाव-भावों के विशद वर्णन और जनसाधारण में आध्यात्मिक अनुभूति के अस्तित्व के अभाव के कारण परिणाम में अनुभवगम्य होने के कारण ही शृङ्गार, जो वस्तुतः माध्यम होता है, जनसाधारण के लिए प्रधान बन जाता है और भक्ति गौण रह जाती है। मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति-काव्य की रीतिकाल के उत्तान शृङ्गार-प्रधान काव्य में परिणति का यही रहस्य है।

मानवीय शृंगार अथवा अध्यात्म-तत्त्व आश्रयानुकूल अनुभूतिगम्य और भाव-गहन होने के कारण रस-स्थिति में आश्रय की अभिव्यक्ति का संक्षिप्त, गहन तथा संगीतमय होना आवश्यक है। मध्ययुगीन पदों तथा भक्ति-गीतों की सर्जना के पीछे यही सत्य कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। मध्य-युग का समस्त भारतीय भक्ति-काव्य स्वानुभूति पर आधारित होने के कारण संगीतात्मक है, तथापि कृष्ण को लेकर शृङ्गार-प्रधान भक्ति-पदों एवं गीतों के स्रष्टा के रूप में आंडाल कोदै के पश्चात् ही जयदेव आते हैं, परन्तु कृष्ण, राधा और दूती को लेकर शृंगार-प्रधान भक्ति-पदों की रचना में जयदेव प्रथम सिद्ध होते हैं। जयदेव के काव्य में शृङ्गार के साथ भक्ति का सुन्दर समन्वय होते हुए भी उनका गीतगोविन्द प्राथमिक रूप में शृङ्गार-प्रधान गीति-काव्य है। भाषा-सौष्ठव, शैली की नवीनता, रसनिष्पत्ति और वाक्चातुर्य तथा चित्रण की विशिष्टता के साथ-साथ काव्य का विषय राधा और कृष्ण होने के कारण गीतगोविन्द अत्यन्त अल्पकाल में लोकप्रिय बना तथा शीघ्र ही समस्त भारत के भक्ति-साहित्य में उसे अनुपम स्थान मिला। भक्ति और शृङ्गार के मधुर संमिश्रण तथा मधुर संगीत के साथ-साथ कोमलकान्त-पदावली के कारण रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक के सभी श्रेष्ठ कवियों पर जयदेव का प्रभाव अभिलक्षित होता है। इतना ही नहीं, परवर्ती साहित्य-शास्त्रकारों ने अनुराग, विरह, उत्कण्ठा, मिलन तथा अभिसार आदि के विवेचन के आधार के रूप में जयदेव का ही उपयोग किया है। काव्य-प्रकाशकार मम्मट तथा 'साहित्य-दर्पण'-कार विश्वनाथ ने जयदेव के अलंकार-वैभव पर मुग्ध होकर अपने ग्रन्थों में उसके उदाहरण दिये हैं। वस्तुतः जनता को कृष्ण-गीत गाने के लिए स्फूर्ति प्रदान करनेवाले काव्यों में गीतगोविन्द का सर्वप्रथम स्थान है। अनावद के शिलालेख (सन् १३४८ ई०) में गीतगोविन्द के आरम्भिक पदों का उल्लेख गीतगोविन्द की लोकप्रियता ही सिद्ध नहीं करता, वरन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य प्रदेशों पर उनके प्रभाव को भी निर्दशित करता है। तेलुगु कृष्ण-गीतों में जयदेव की पदावली का प्रभाव स्पष्ट रूप से अभिलक्षित होता है, क्योंकि एक तो गीतगोविन्द संस्कृत की रचना थी तथा एक श्रेष्ठ भक्ति-काव्य के नाते भारत का कोई भी प्रदेश उससे अनभिज्ञ न था और दूसरे जबकि तेलुगु कृष्ण-गीतों की रचना ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पश्चात् आरम्भ हुई थी ताल्लपाक अण्णम्माचार्य (ई० स० १४२८—१५०६) ने सूर की ही भाँति कृष्ण-भक्ति से प्लावित शृङ्गारपरक हजारों पद लिखे हैं, पर उनकी शृङ्गारिक रचनाओं में मादक वासना न होकर भावों की स्वाभाविक मधुरिमा है। अण्णम्माचार्य तेलुगु पद-साहित्य के प्रणेता माने जाते हैं। तेलुगु के कृष्ण-गीत एवं पद जयदेव की ही भाँति शृङ्गारपरक हैं। इस दृष्टि से तेलुगु-पद-साहित्य पर जयदेव का प्रभाव केवल विषय-चयन की ही दृष्टि से अभिलक्षित होता है, गीतात्मकता की दृष्टि से नहीं, क्योंकि तेलुगु स्वयं ही संगीत-मधुर भाषा है तथा गहन भावानुभूति की अभिव्यक्ति संगीत द्वारा ही सम्भव हो सकती है। फिर भी यह न भूलना चाहिए कि तेलुगु कृष्ण-गीतों पर जयदेव का प्रभाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप में ही दृष्टिगत होता है, क्योंकि तेलुगु कृष्ण-गीतकारों का विषय वस्तुतः गीतगोविन्द का ही विषय न होकर लोक-रुचि का भी विषय था। गीतगोविन्द ने इस लोक-रुचि को काव्य-बद्ध करके कृष्ण-भक्तिपरक शृङ्गारिक पदों की परम्परा चलायी। इस परम्परा-निर्वाह में ही अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में जयदेव का प्रभाव अन्तर्निहित है।

मराठी में भी जयदेव का प्रभाव शृङ्गारिक काव्य की परम्परा के रूप में ही देखा जा सकता है, क्योंकि आरम्भ से ही मराठी काव्य शान्त-रस-प्रधान रहा है। ऐसी दशा में यत्र-तत्र शृङ्गारिक निरूपणों का समावेश, जो शान्त भाव का पूरक नहीं है, प्राचीन निरूपण-शैली तथा लोक-रुचि को ही चरितार्थ करता-सा प्रतीत होता है। पहले कहा गया है कि मराठी कृष्ण-भक्ति-काव्य में श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी को लेकर कान्तभाव को ही प्रश्रय मिला है। यत्र-तत्र गोपी-भाव का समावेश लोक-रुचि के समाधान के लिए ही हुआ है। समस्त मराठी काव्य में कृष्ण का रुक्मिणी-पति अथवा रुक्मिणी-वर के रूप में वर्णन इस कथन की पुष्टि करता है। मराठी भक्ति-काव्य की विशालता में मधुर-भाव-विषयक पदों का नगण्यप्राय समावेश भी लोक-रुचि के रूप में वाह्य प्रभाव को ही सूचित करता है। सर्वश्री चक्रधर, ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम आदि के वचनों में जो थोड़ा-सा शृङ्गार का पुट मिलता है, वह केवल तत्त्व-निरूपण के लिए ही हुआ है। इन उल्लेखों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक में परमेश्वर और जीव-सम्बन्धी निरूपण के लिए पति और पत्नी का रूपक आता है और दूसरे भाग में कृष्ण-लीला-विषयक परम्परा-निर्वाह अथवा कृष्ण की गोपियों के साथ लीलाओं के उल्लेख। इन दोनों प्रकार के वर्णनों में शृंगार के स्थूल उपकरणों का शायद ही कहीं आश्रय लिया गया हो। सभी स्थलों पर भाव को ही प्रधानता दी गयी है। उदाहरण के लिए ज्ञानेश्वर के निम्नलिखित अभंगों का उद्देश्य पति और पत्नी के आलिंगन का चित्र अंकित करना न होकर परमेश्वर और जीव के अद्वैत तथा दोनों के मिलन से होनेवाले आनन्द का आभास करा देना भर है—

तिये आलिंगन वेळीं, होय आपे आप कवळी।
तेथ जळ जैसे जळीं, वेगळें न दिसे॥
कां आकाशीं वायु हरपे। तेथ दोन्ही हे भाष लोपे।
तैसें सुखचि उरे स्वरूपें। सुरतीं तिये॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(आलिंगन के समय स्त्री अपने-आप अत्यन्त कोमल बन जाती है तथा जिस प्रकार जल में जल मिलने से एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार स्त्री अपने पति से भिन्न नहीं दिखाई देती। जिस प्रकार आकाश में व्याप्त वायु आकाश से भिन्न नहीं कही जाती तथा उसके लिए दो की भाषा का प्रयोग नहीं होता, उसी प्रकार पति से आलिंगनबद्ध होते ही स्त्री का निजी अस्तित्व न रहकर सुरति के रूप में केवल आनन्द की ही अनुभूति बनी रहती है।)

ज्ञानदेव के एक दूसरे उदाहरण—

'तुजविण वेल्हाळा कै सुख सोहळा।
रखुमादेवी वरा विठ्ठल सेजे न लगे डोळा'।

(तुम्हारे बिना कैसा सुख और कैसा मनोरंजन! विट्ठल के बिना तो शय्या पर आँख भी नहीं लगती।)

से भी मिलन की आतुरता ध्वनित होती है, विलास की उत्तेजना नहीं।

पाहे पां वल्लभाचे नित्याजें, तिया व्रजांगनांची निजें।
भजमीनलीया काय माझे । स्वरूप नव्हती।

(गोकुल की गोपिकाएँ यदि मुझे पति समझकर अपने अन्तःकरण मुझे सर्मपित करने लगें तो क्या वे बिना मुक्त हुए रह जायेंगी ?)

क्योंकि—

अगावरी फोडावयाची लागी। लोहो मिळो कां परिसाचे आंगीं।
का जे मिळतिये प्रसंगी। सोनेंच होईल॥

(अरे, लोहे के घन से भी पारस तोड़ा जाय, तो भी पारस के स्पर्श से लोहा सोना ही बन जायगा।)

उपर्युक्त दोनों अभंगों से शुद्ध प्रेम ही अभिव्यंजित होता है।

स्वामी चक्रधर ने भी अपनी अमृत वाणी में शृङ्गारिक वर्णनों को स्थान न देकर विषय-वृत्ति को पाशवी वृत्ति माना है। परमेश्वर को भिन्न देवो-देवताओं के क्षेत्र में भी उन्होंने विषय को केवल भावरूप माना है—

'यंत्रारूढा होइजे, तो उसीटा विखो भोगणें कीं'।
विखो तों हावभावींचि भोगो सरे।

(शारीरिक सम्भोग तो जूठा सम्भोग है। सम्भोग तो हाव-भावों में ही समाप्त हो जाता है।)

नामदेव के अभंगों में शृङ्गारिक पदों का विपुल वर्णन मिलता है, पर उसका आधार भागवत-पुराण ही रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐकतांचि नाद गोकुळींच्या नारी, पाहावया हरि निघताती।
स्तन देतां बाळें टाकिलीं भूमि-सी, मोकळिया केशी निघताती॥

(वंशी की ध्वनि सुनते ही हरि के दर्शन के लिए गोपियाँ शिशुओं को दूध पिलाते-पिलाते अपने बाल बाँधे बिना ही दौड़ पड़ती हैं।)

इस पद में वर्णित गोपियों को तन्मयता तथा भाग-दौड़ भागवत-पुराण के वर्णन से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। और फिर कृष्ण और गोपियों की केलि-क्रीड़ाओं का विपुल वर्णन करने के पश्चात् निम्न-लिखित अभंग में नामदेव को बताना पड़ा है कि समस्त गोपियों का 'काम' शान्त करने पर भी कृष्ण की 'वीर्यच्युति' नहीं हुई—

जळक्रीडा करी लक्ष्मीचा पती, लाळ घोटताती देवस्त्रिया।
धन्य त्या गोपिका धन्य त्यांचें पुण्य, भोगिता ही कृष्ण पूर्ण ब्रह्म॥
नामा म्हणे होय कामाची ते पूर्ती। नव्हे वीर्यच्युती गोविंदाची॥

(जल-क्रीड़ा में श्रीकृष्ण को रममाण देखकर देवांगनाएँ भी ललचा रही हैं। वे गोपियाँ धन्य हैं, उनका पुण्य धन्य है जो पूर्ण-ब्रह्म कृष्ण को भोग रही हैं। नामदेव कहते हैं कि गोपियों का काम तो पूर्ण होता है, पर कृष्ण की वीर्यच्युति नहीं होती।)

नामदेव की भाँति तुकाराम ने भी गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं पर अभंग लिखे हैं, पर वे बहुत थोड़े और परम्परा के निर्वाह के लिए ही लिखे गये प्रतीत होते हैं, क्योंकि वस्तुतः उनके आराध्य विठोबा गोपी-नायक कृष्ण न होकर वात्सल्य से परिपूर्ण मातृरूप परमेश्वर हैं। वे कहते हैं—

जेथे जातो तेथे, तू माझा सांगाती,
चालवीसी हाती धरोनीया।
चालों वाटे आम्ही तुझाचि आधार,
चालविसी भार सवे माझा।
बोलों जातां बरल करिसी तें नीट,
गेली लाज धीट केलो देवा॥

(जहाँ भी जाता हूँ, तुम मेरे साथ होते हो और मेरा हाथ पकड़कर तुम मुझे चलाते रहते हो। मैं अपना मार्ग-यापन तुम्हारे ही सहारे करता हूँ। अपना समस्त भार तुम पर छोड़कर चलने का मुझे अभ्यास-सा हो गया है। मेरी अनर्गल बातों को तुम्हीं सुधारते रहते हो और मेरे संकोच को दूर करके तुम्हीं-ने मुझे ढीठ बनाया है।)

इस विवेचन से उपर्युक्त कथन की सम्पुष्टि होती है कि मराठी सन्त-कवियों की कविता में जहाँ कहीं भी सम्भोग या विप्रलम्भ शृङ्गार का उल्लेख हुआ है, वहाँ उसका स्वरूप लौकिक न होकर अधिकतः आध्यात्मिक ही रहा है। दूसरी स्मरणीय बात यह है कि नामदेव, तुकाराम आदि प्राचीन मराठी सन्त-कवि निम्न जातियों में उत्पन्न हुए थे तथा संस्कारवश उन्हें अपने काव्य में निम्न जातियों में प्रचलित कृष्ण की रास-लीलाओं को स्थान देना पड़ा। इस परम्परा-निर्वाह तथा शृङ्गारपरक वर्णनों में विद्यमान उनकी तटस्थता के कारण ही उनके शृङ्गारिक पद स्वानुभूति पर आधारित नहीं हैं और न ही उन्होंने रति के उपादानों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा संचारी आदि भावों का ही कोई वर्णन किया है, जैसा कि जयदेव, विद्यापति आदि में मिलता है। संक्षेप में, उनकी पहुँच लौकिकता से अलौकिकता की ओर अभिलक्षित होती है, जबकि जयदेव, विद्यापति आदि ने अलौकिक का आधार लौकिक के लिए ग्रहण किया है। जयदेव कहते हैं—

त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे।
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन्मूढो मृडानीपतिः ॥
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो निक्षिप्य वामाञ्चलं।
राधायाः स्तनकोरकोपरिचलन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥

इन पंक्तियों से यदि राधा और कृष्ण के नामों को हटा दिया जाय तो वे एक उच्च कोटि का शृंगार-काव्य कही जा सकती हैं। इन कवियों के शृंगारिक वर्णनों की मार्मिकता तथा चित्रण भी स्वानुभूत होने के कारण वे भक्ति की अपेक्षा मानवी शृंगार के ही अधिक द्योतक हैं। इस दृष्टि से मराठी सन्त-कवियों पर जयदेव का यत्किंचित् प्रभाव भी दृष्टिगत नहीं होता। परम्परा-निर्वाह में तेलुगु, कर्नाटक, तमिल आदि कृष्ण-गीतों का अवश्य कुछ प्रभाव रहा है। लोकोक्ति है—

'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द'

कृष्ण-भक्ति का प्रचार कर्नाटक के कवियों ने 'रगले' (भाव-गीत) गाकर किया है तथा मराठी का कृष्ण-लीला-विषयक सभी परवर्ती काव्य गीतों के रूप में ही निर्मित हुआ है। तेलुगु-साहित्य संगीत-प्रधान साहित्य रहा है। इतना ही नहीं, आन्ध्र प्रदेश दक्षिणी संगीत-पद्धति का उत्पत्ति-क्षेत्र माना जाता है तथा तेलुगु का कृष्ण-भक्ति-काव्य सम्पूर्णतः गीतात्मक है। अतः आन्ध्र के साथ निकट सम्बन्ध होने के कारण मराठी काव्य पर भी तेलुगु की गीतात्मकता, नाद, लय तथा कलेवर का निश्चित रूप से प्रभाव दृष्टिगत होता है तथा यह विषय स्वतन्त्र गवेषणा की अपेक्षा रखता है।

लोक-गीतों का मराठी कृष्ण-काव्य पर प्रभाव

हमारा जीवन सदा से संगीतमय रहा है। प्रत्येक उत्सव, पर्व और त्योहार के अवसर पर समयोचित गीत गाकर मनोरंजन करना हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग है। यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग में भी इन पर्वों के अवसर पर मनोहर गाथाओं के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। मैत्रायणी संहिता में विवाह के अवसर पर 'गाथा' गाने की विधि का उल्लेख है। वाल्मीकीय रामायण में राम-जन्म के समय तथा श्रीमद्भागवत में कृष्ण-जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

वैदिक साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर हुआ है, वे ही हमारे लोक-गीतों का पूर्व रूप प्रतीत होती हैं। 'गाथा' का अर्थ है पद्य या गीत। इसी अर्थ में गाथा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में हुआ है। गाथाओं की इस परम्परा का निर्वाह महाभारत-काल में भी हुआ है। महाभारत के आदिपर्व में दुष्यन्त के पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ मिलती हैं जो अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती हैं। वैदिक गाथाओं के समान ही अवेस्ता में भी कई प्राचीन गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। पालि भाषा में लिखी हुई गाथाओं में तत्कालीन विख्यात लौकिक कहानियों का सारांश प्रस्तुत किया गया है। बौद्धों की जातक कथाएँ भी गाथाओं का ही एक अन्य रूप हैं। इससे प्रतीत होता है कि भारतीय लोक-गीतों का स्वरूप चाहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो रहा हो, उनका प्रचलन बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। सच तो यह है कि आरम्भ से ही भारतीय संस्कृति दो विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होती चली आयी है। शिक्षित-वर्ग में वह वेद, उपनिषद् आदि के रूप में प्रवाहित हुई है और अशिक्षित-वर्ग में लोक-कथाओं और लोक-गीतों के रूप में। इसीलिए आचार्य पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लोक-गीतों को आर्येतर सभ्यता के वेद कहा है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि वे लोक-गीतों को मरण-धर्मा साहित्य की श्रेणी से पृथक् करके यह कहना चाहते हैं कि लोक-गीत-साहित्य अमर और अनादि है। लोक-गीत जीवन से उद्भूत होने के कारण उनमें उद्दाम वासनाओं के चित्र कहीं-कहीं अश्लीलता तक पहुँच गये हैं, परन्तु जीवन की सम्पूर्णता में काम का अस्तित्व होने के कारण उन्हें अश्लील नहीं कहा जा सकता। ये गीत जीवन की विभिन्न अनुभूतियों से उद्भूत होने के कारण ही समाज के सभी ऊँच-नीच वर्गों में समान भाव से गाये जाते हैं तथा विभिन्न प्रदेशों में एक भाव से चालू रहते हैं। सार्वजनिक सम्पत्ति होने के कारण उनका प्रभाव-क्षेत्र सीमित नहीं होता। यदि जन्म, विवाह आदि विषयक अन्तरप्रान्तीय गीतों का अध्ययन किया जाय, तो उनमें सादृश्य और समानता ही अधिक मिलेगी। इतना अवश्य है कि संचरणशीलता के कारण ये गीत देश-काल के अनुरूप अपना परिधान बदल लेते हैं और उन्हें पहचानना कठिन हो जाता है। यह स्थानीय प्रभाव ही उन्हें भिन्न संज्ञा प्रदान करता है। लोक-गीतों का जन-जीवन से सीधा सम्बन्ध होने के कारण उनमें जीवन की समस्त अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। मुखरित जीवन के ये स्वर कभी तीखे, कभी अट्टहासपूर्ण तो कभी कोमल, कभी विवेकशील तो कभी चीत्कारपूर्ण होकर गूँज उठते हैं। इन गीतों में ऐहिक जीवन की अनुभूतियों के साथ-साथ जनता-जनार्दन की धर्म-भावना तथा लोक-नायकों के चरित्रों की भी अभिव्यक्ति होती रही है। भारत के लगभग सभी प्रदेशों के लोक-गीतों में राम और कृष्ण अत्यन्त प्राचीन समय से लोक-जीवन के आदर्श रहे हैं। अतः हमारे लोक-गीतों में एक ओर धर्म की पुनीत भावना अभिव्यक्त हुई है, तो दूसरी ओर उद्दाम वासनाएँ। जीवन के विविध प्रसंगों और प्रकृति की परिवर्तनशील ऋतुओं को लेकर अनेक लोक-गीतों का निर्माण हुआ है। इनमें से कुछ लोक-गीत, जो कृष्ण-काव्य से सम्बन्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, वे हैं—होली, झूला, रसिया, कजरी, बारहमासा, लावणी, गवळणी, विरहिणी, दधिकाला। इनमें से होली, झूला, रसिया, कजरी और बारहमासा आदि का प्रचलन उत्तर भारत में है और लावणी, गवळणी, विरहिणी और दधिकाला का महाराष्ट्र में।

लावणी की उत्पत्ति कई विद्वान् पेशवाकालीन कवियों के अपरिमित कल्पना-वैभव तथा भाषा-शिल्प से मानते हैं, किन्तु यह मत युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि पेशवा-काल से बहुत पहले लावणी लोक-गीत का प्रचलन महाराष्ट्र की ब्राह्मण, अहीर तथा चमार जातियों में था। ये लोकगीत खेतों में चावल के पौधे लगाते समय गाये जाते थे, इसीलिए इनका नाम 'लावणी' पड़ा। आज भी छोटा नागपुर, छत्तीसगढ़ आदि भागों में ये गीत चावल के पौधे लगाते समय बड़ी भावभंगी से गाये जाते हैं। ये गीत कुछ खास व्यक्ति ही गाते हैं और शेष स्त्री-पुरुष केवल सुर-में-सुर मिलाकर उनका साथ देते हैं। ये गीत कथा-प्रधान होते हैं तथा इनका स्वरूप भी घरेलू-सा सरल और स्वाभाविक होता है। लावणी लोक-गीतों का यह मूल रूप पेशवाकालीन 'शाहिरी' काव्य से सर्वथा भिन्न है। इन गीतों के निश्चित स्वरूप का पता लगाने के लिए पिछले कई वर्षों से प्रयत्न हो रहा है और जब तक पर्याप्त शोध-कार्य नहीं होता तब तक इनकी कथा-वस्तु के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अनुचित होगा। इतना अवश्य है कि महाराष्ट्र में स्वराज्य की स्थापना होते ही पराक्रम के साथ वैभव की भी वृद्धि होने लगी और शिवाजीकालीन सीधे, सरल और गद्य सदृश 'पोवाडा' काव्य-प्रकार को पीछे छोड़कर वीर-श्री और शृंगार से युक्त लावणी-गीतों की नयी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम्परा चल पड़ी। ये श्रृंगार-रस-प्रधान लावणी-गीत महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। कई लावणी-गीतों में गीतों का वर्ण्य-विषय राधा और कृष्ण का विलास है। यथा,

'होळी खेळतो हरी करुनि राधा नट आपण नटी'

(स्वयं नटी बनकर और राधा को नट बनाकर कृष्ण होली खेल रहे हैं।)

रामजोशी, प्रभाकर, होनाजी आदि लावणीकारों ने राधा-कृष्ण-प्रेम तथा गोप-गोपियों के विलास को लेकर कई लावणी-गीत लिखे हैं। अनन्तफन्दी के 'चन्द्रावल' लावणी-गीत का विषय यद्यपि कृष्ण-गोपी-प्रेम ही है, फिर भी उसमें उद्दाम लौकिक श्रृङ्गार का ही मादक वर्णन हुआ है। परशुराम के लावणी-गीतों में राधा और कृष्ण के विलास-वर्णन पर अध्यात्म का रंग चढ़ाने का प्रयत्न भी दिखाई देता है। प्रभाकर के कई लावणी-गीतों के नायक स्वयं बाजीराव पेशवा थे। उनका विलास-वर्णन करते समय कवि ने उन्हें कृष्ण बना डाला है।

गवळणी का अर्थ मराठी में 'ग्वालिनें' होता है। 'गवळण' या 'गौळण' मराठी का वह लोक-गीत है जिसमें गोपियों के कृष्ण-प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। महाराष्ट्र में इन लोक-गीतों की लोकप्रियता के कारण ही सम्भवतः मराठी सन्त-कवियों ने 'गौळण' शीर्षक के अन्तर्गत गोपियों के कृष्ण के प्रति प्रेम को चित्रित किया है। नामदेव, एकनाथ और तुकाराम के 'गौळणी' अभंगों में कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं और गोपियों के विरह की अत्यन्त मनोहारी अभिव्यंजना हुई है। अपनी सरसता और स्वाभाविकता के कारण ही इन सन्तों के ये 'गौळणी' अभंग महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। गोपियों के कृष्ण-प्रेम की कितनी सरल और प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना एकनाथ के निम्नलिखित 'गौळण' में हुई है—

आजी वो कांही कृष्ण नाहीं आला।
म्हणोनी खेद करी गौळणी बाला॥
काय हो ऐसें देहीं लागला वो चाळा।
कां रे न येसी बाळा नंदाचिया॥
कवण देवा नवसीं नवसूं।
कवणा गुरुतें मार्ग पुसूं॥
कै भेटेल हा हृषिकेशू।
म्हणोनि मन जहते उदासू॥

(भावार्थ है: शाम को वन से लौटने में कृष्ण को देर हो जाती है। गोपियाँ चिन्तित हैं। प्रस्तुत अभंग में गोपियों की मनोदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है। कवि कहता है कि अभी तक कृष्ण को न आया देखकर गोपियाँ दुखी हो रही हैं। वे मन-ही-मन कृष्ण से अनुनय-विनय करती हैं और नन्द-नन्दन को बुलाती रहती हैं। कभी उनके मन में किसी देवी-देवता की मानता करने का विचार आता है, तो कभी किसी गुरु से मार्ग पूछने का। भाव है, किसी भी उपाय से क्यों न हो, कृष्ण शीघ्र ही घर वापस आ जायें। उनके न आने से गोपियों का मन अत्यन्त उदास हो रहा है।)

विरहिणी अथवा विराणी गीतों में कृष्ण के वियोग में गोपियों की मनोव्यथा का चित्रण मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। विराणी लोक-गीत महाराष्ट्र के श्रम-जीवी निम्न-वर्ग में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इन लोकगीतों का सामान्य जनता में प्रचार होने के कारण ही सम्भवतः मराठी सन्त कवियों ने, अल्प संख्या में ही क्यों न हो, 'विरहिणी' पदों की रचना' को है। सन्त एकनाथ के 'विरहिणी' अभंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

दधिकाला अथवा गोपालकाला महाराष्ट्र का वह सार्वजनिक उत्सव है जिसका सीधा सम्बन्ध बाल-कृष्ण की लीला से है। इसका आयोजन जन्माष्टमी के दूसरे दिन होता है। एक हाँडी में दही, मक्का की खीलें, जीरा आदि मिलाकर उसे किसी सार्वजनिक स्थान में बहुत ऊँचे पर लटका दिया जाता है। उस हाँडी तक पहुँचने के लिए किसी अन्य साधन का निषेध होता है। बस बालकों को एक-दूसरे के कन्धे पर चढ़कर ही इस तक पहुँचना होता है। अतः बस्ती के बालक एक-दूसरे के कन्धे पर इस प्रकार खड़े होने की व्यवस्था करते हैं जिससे किसी अन्य सहारे के बिना सबसे ऊपरवाला बालक हाँडी तक पहुँच जाय। जो बालक इस व्यूह-रचना के सहारे हाँडी तक पहुँचने में सफल होता है वही हाँडी तोड़ता है। तत्पश्चात् हाँडी की सामग्री सभी आबाल-वृद्ध-वनिता प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं। महाराष्ट्र में इसकी प्रतियोगिताएँ भी होती हैं। स्पष्ट ही इस खेल का सम्बन्ध कृष्ण की गोरस-चोरी से है। इसका प्रचलन महाराष्ट्र में कब से है, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता, किन्तु कृष्ण-लीलाओं से सम्बद्ध यह खेल महाराष्ट्र में अत्यन्त लोक-प्रिय रहा है। सच तो यह है कि केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, अपितु समस्त भारत में कृष्ण-लीलाओं का इतना प्रभाव पड़ा है कि सर्वत्र इन लीलाओं से सम्बद्ध पदों, खेलों, नृत्यों आदि का प्रचलन है। प्राचीन मराठी सन्त-कवियों ने 'गौळणी', 'विरहिणी' आदि कतिपय अभंगों में कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं को जो थोड़ा-बहुत स्थान दिया है, वह भी सम्भवतः लोक-परम्परा का ही परिणाम है। यह परम्परा महाराष्ट्र में अवश्य ही बलवती रही होगी, क्योंकि हालसातवाहन की प्राकृत 'गाथा सप्तशती' में राधा का सर्वप्रथम उल्लेख उपलब्ध होता है और विद्वानों की धारणा है कि गाथा सप्तशती की रचना महाराष्ट्र में ईसा-पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी में हुई थी तथा उसमें महाराष्ट्र का जीवन ही चित्रित है।

—डॉ० र० श० केतकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराष्ट्र में श्रीकृष्ण-भक्ति

परमात्मा के अनन्त अवतार हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे, किन्तु श्रीकृष्णावतार में एक अद्भुत विशेषता है। इसीसे कहा है **'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।'** परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य अवतारों का महत्त्व कुछ कम है। कहने का आशय केवल इतना ही है कि भगवान् ने अपना षड्गुणैश्वर्य जितना इस अवतार में प्रकट किया, उतना अन्य अवतारों में नहीं। वहाँ प्रकट करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। चतुर्थी अथवा अष्टमी का चन्द्रमा ही पूर्णिमा के दिन अपनी समस्त कलाओं के साथ प्रकाशित होता है। श्री रामचन्द्रजी का अवतार रेल की पटरी की तरह बिल्कुल सीधा है, श्रीकृष्णावतार की विविधता उसमें नहीं है। श्रीकृष्ण-चरित्र के रहस्यों का समझना बड़ा कठिन है परन्तु यदि भगवत्कृपा से कहीं एक बार समझ में आ जाय, तो फिर उसके समान मधुर वस्तु और कोई है भी नहीं। श्रीकृष्ण जन्मते ही माया से अलग हो गये और फिर अपनी नाना लीलाओं के बीच बड़े हुए। उन्होंने बाल्यावस्था में ही पूतनादि को मुक्ति-सुख प्रदान किया, माता यशोदा को विश्वरूप का दर्शन कराया, अल्पवयस्क बालक होते हुए भी कंस-जैसे दुर्धर्ष दुष्टों का संहार किया तथा गोप-गोपिकाओं को भक्ति-सुखामृत-पान कराया। पूर्ण ब्रह्म होते हुए भी माखन चुरानेवाला, **'यद्यदाचरति श्रेष्ठः'** इस तत्त्व का जगत् को उपदेश करके भी स्वयं व्यभिचार का (कल्पित) दोष ग्रहण करनेवाला, सोलह हजार स्त्रियों को रखकर भी संसार के सामने ब्रह्मचर्य का अपूर्व उदाहरण उपस्थित करनेवाला यदि कोई अब तक हुआ है तो वह भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। उन्होंने गोपियों को संग-दान करके भी निस्संग बनाया, भोग से योग की प्राप्ति करायी, कर्म से कर्मबन्धनों को काट दिया, भोग भोगते हुए ही मोक्ष-सुख की प्राप्ति का मार्ग लोगों को दिखला दिया और सब कर्म करते रहकर भी संसार के सामने अपना अकर्तृत्वभाव प्रकट कर दिया। उन्होंने भुक्ति, मुक्ति तथा भक्ति अर्थात् संसार, ज्ञान और भक्ति अथवा भोग, त्याग और स्वानन्द इन तीनों को एक पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। ऐसा अद्भुत कार्य श्रीकृष्णावतार के अतिरिक्त और कहाँ प्रकट हुआ है? श्रीमद्भगवद्गीता-जैसा अमूल्य ग्रन्थरत्न संसार के हाथ में देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ही तो हैं! विषयों को जीतकर ही जन्म लेनेवाले श्री शुकदेवजी-जैसे महाविरक्त और ज्ञानसम्पन्न को सगुण-चरित्र की माधुरी का आस्वादन करानेवाले आप ही हैं। अधिकारानुसार कर्म, ज्ञान तथा भक्ति के योग का दान देनेवाले, ज्ञानी-अज्ञानी को अपनी सगुण लीला से मोहित करनेवाले, कर्मियों में कर्मी, ज्ञानियों में ज्ञानी, योगियों में योगी तथा भोगियों में भोगी श्रीकृष्ण ने अपनी सुन्दर दिव्य लीलाओं के द्वारा भक्ति का सुलभ और सीधा मार्ग दिखला दिया। धन्य है वह व्रज, धन्य हैं वे गोप-गोपिकाएँ तथा गौएँ, धन्य है वह भारत-भूमि तथा धन्य हैं हम भारतीय प्राणी, जिन्होंने श्रीकृष्ण के चरण-रज की छत्र-छाया से संसार के अन्दर चिरकाल तक परम सुख का उपभोग किया और कर रहे हैं।

यों तो श्रीकृष्णावतार की सभी लीलाएँ मनोहर हैं, फिर भी उनकी बाल और किशोर-अवस्था की लीलाओं ने तो भारत के भावुक भक्तों को शताब्दियों से मोहित कर रखा है। तमिल-प्रदेश के वैष्णव-भक्त तथा सूरदास, मीराबाई, गौरांग महाप्रभु, नरसी मेहता, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि सर्वप्रदेशीय महावैष्णव-भक्त श्रीकृष्ण की बाललीलाओं पर ही मुग्ध हुए हैं। श्रीकृष्णजी ने गीता में संसार को भक्तियोग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उपदेश दिया है; किन्तु उस भक्ति का दिव्य और मधुर रस प्रकट हुआ उनकी बाललीलाओं में ही। गोपियों के साथ की गयी लीलाओं को धर्म के अन्दर भगवत्प्रेम का सार समझना चाहिए। **'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** गीता के इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण गोपियों की प्रेम-लीलाओं में ही मिलता है। श्रीकृष्ण के रूप से, उनके ध्यान से, सर्वस्व समर्पण-भक्ति से, अनन्यता से और तन्मयता से गोपियाँ पागल-सी बन गयी थीं। गोपिका तथा श्रीकृष्ण के पारस्परिक अनन्य प्रेम से संसार को भक्ति-सुख का अक्षय भण्डार मिल गया। गोपियाँ विषय-सुख की इच्छा से ही कृष्णानुगामिनी बनी थीं, परन्तु श्रीकृष्ण की ऐसी महिमा है कि जिससे वे सकाम गोपियाँ निष्कामभाव से आत्मरत हो गयीं। फिर उन्हें निष्काम-भक्ति के परम आनन्द की प्राप्ति हुई। श्रीकृष्ण आकर्षण की मूर्ति थे, उनकी बात-बात में मोहकता थी, इस दशा में यदि सरलहृदया गोप-बालाएँ तन, मन, धन से उनकी ओर आकृष्ट हो गयीं तो उन्हें कोई दोष नहीं देगा, बल्कि उनके महाभाग्य की प्रशंसा ही करेगा। श्री वल्लभाचार्य के एक श्लोक के अनुसार श्रीकृष्ण की प्रत्येक बात मधुर थी[1]—अधर मधुर, वदन मधुर, नेत्र मधुर, बोलना-चलना, हँसना-देखना, उठना-बैठना सभी मधुर; उनकी मुरली, उनके चरण-नूपुर, उनकी छवि, उनके नाम और उनकी सभी लीलाएँ—सभी कुछ अति मधुर था। गोपियों के लिए ये सब बातें इतनी हृदयाकर्षक हुईं कि वे ज्ञान-योगादि साधनों से भी दुर्लभ परमात्मा में तन्मय होकर भवसागर से अनायास पार हो गयीं। गोपिकाओं की जो दशा हुई, वही गोप-बालकों की भी हुई। श्रीकृष्ण के बालसखा गोप-बालक भी—जो उनके साथ खेले-कूदे, हँसे-बोले, प्रेम के साथ लड़े-झगड़े—गोपियों के समान ही श्रीकृष्ण के प्रेम में डूब गये थे। व्रज के बड़े-बूढ़े तो अपने बाल-बच्चों से भी अधिक श्रीकृष्ण पर प्रेम करते थे। कहाँ तक कहें, वहाँ के पशु-पक्षी भी कृष्ण-प्रेम में पागल थे। सारांश यह कि आबाल-वृद्ध-वनिता—सभी के प्रेम के विषय श्रीकृष्ण ही थे। वह उनकी आत्मा और वे सब उनकी देह थे। व्रज के हृदय पर श्रीकृष्ण का ही पूर्ण साम्राज्य था। श्रीकृष्ण की लीला उपनिषदों का ही मूर्तिमान् रहस्य है, यह सब पर प्रकट हो गया। संसार परमार्थमय बना और विषय नारायणरूप। पानी के हौज में लाल रंग डालने से सारे शहर के नलों का पानी लाल हो जाता है। वैसे ही गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण की मूर्ति अखण्डरूप से क्रीड़ा करती रहने के कारण उनकी इन्द्रियाँ भी श्रीकृष्ण के रंग में रँग गयीं। जैसे रँगा हुआ जल किसी कपड़े के ऊपर छिड़क देने से वह कपड़ा भी उसी रंग से रँग जाता है, वैसे ही जिस विषय पर उन गोपियों की दृष्टि जाती थी, वही श्रीकृष्ण-रंग से रँग जाता था। इस प्रकार गोपियों का सारा संसार ही कृष्णमय हो गया था। ज्ञान से जिसकी प्राप्ति होती है, योग से जिसकी सिद्धि होती है और जिसकी प्राप्ति के लिए अनन्त साधनों का कष्ट उठाया जाता है वह परब्रह्म गोपियों के सारे शरीर में श्रीकृष्ण के अखण्ड चिन्तन से ओतप्रोत हो गया। एक तरह से **'न तत्र वाग्गच्छति नो मनः'** यह श्रुति-सिद्धान्त उनके विषय में निरर्थक हो गया। उनके लिए गूढ़ परमात्मा प्रत्यक्ष हुआ, दुर्लभ सुलभ बना, जो इन्द्रियों के अगोचर था, वह इन्द्रियग्राह्य हुआ। सारे बाह्य जगत् में वही भर गया। अति उज्ज्वल भक्तियोग के कारण परमात्मा गोप-गोपियों के लिए अत्यन्त सुलभ हो गया।

प्राचीन और अर्वाचीन भक्तों ने भी परमात्मा के साक्षात्-सुख का अनुभव किया है और वह प्रसाद संसार के लोगों को भी प्राप्त हो जाय इसलिए उन्होंने प्राकृत भाषा में श्रीकृष्ण-गीत का गान किया है। इस प्रकार पूरे भारत में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार हो गया। महाराष्ट्र के सन्तों ने भी सारे महाराष्ट्र में

१. अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्। हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रसार किया। उन्होंने श्रीकृष्ण के बालरूप को 'विट्ठल' नाम दिया और पण्ढरपुर के विट्ठल की मूर्ति की भक्ति में ब्राह्मण से लेकर चाण्डालपर्यन्त सबको लगा दिया। **ज्ञानेश्वर महाराज** (शाके ११९५—१२१५) और **नामदेव** ने तेरहवीं शताब्दी में महाराष्ट्रभर में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार किया तथा सारी महाराष्ट्र-भूमि को कृष्ण-भक्ति-रस के प्रवाह से प्लावित कर दिया। कुशलता यह कि, वर्णसङ्कर तो होने नहीं दिया, परन्तु जातिभेद की तीव्रता नष्ट कर दी। द्वेष, मत्सर तथा अहङ्कार आदि क्षुद्र विकारों का नाश किया। देहभाव को नष्ट करके सर्व जातियों को एक कर दिया। यह उनकी बड़ी भारी राष्ट्र-सेवा है। ज्ञानेश्वर के समय में ही महाराष्ट्र में महानुभाव अथवा मानभाव नामक एक पन्थ उत्पन्न हुआ था। उस पन्थ में भास्कर, महीन्द्र, भावे, देवव्यास, केशवराज सूरि, दामोदर पण्डित आदि कवि हुए। उन्होंने मराठी भाषा में काव्य-रचना की, जो कि मुख्यतया श्रीकृष्ण-भक्तिपरक थी। परन्तु यह पन्थ तथा इसका काव्य महाराष्ट्र को मान्य नहीं हुआ। यद्यपि इस पन्थ के कोई-कोई ग्रन्थ भक्तिरसयुक्त तथा कवित्वपूर्ण हैं तथापि इस पन्थ की गूढ़ लिपि तथा इसकी सर्वसाधारण से पृथक् रहने की वृत्ति के कारण एवं कुछ अन्य कारणों से इसकी श्रीकृष्णविषयक वाणी से महाराष्ट्र अपरिचित-सा रह गया। इधर कुछ समय से लोगों की दृष्टि इस पन्थ के ग्रन्थों की ओर गयी है। परन्तु सारे महाराष्ट्र में फैला हुआ तथा महाराष्ट्र-मण्डल पर अपनी छाप रखनेवाला सम्प्रदाय तो पण्ढरपुर का भागवत-सम्प्रदाय—जिसे वारकरी पन्थ कहते हैं—है। श्री ज्ञानेश्वर तथा नामदेव इसके आदिप्रचारक और एकनाथ एवं तुकाराम इसके संवर्धक थे। पहली जोड़ी तेरहवीं शताब्दी की है और दूसरी पन्द्रहवीं के अन्त और सोलहवीं के पूर्वार्ध में हुई है। इन महात्माओं ने तथा इनके अनुयायी और भावुक भक्तों ने श्रीकृष्ण-भक्ति को घर-घर में फैला दिया। **निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, सोपानदेव** तथा इनकी बहन **मुक्ताबाई** और ज्ञानेश्वर के शिष्य **चांगदेव, विसोबा खेचर,** विसोबा खेचर के शिष्य **नामदेव,** नामदेव की दासी **जनाबाई** तथा इनके अतिरिक्त **कान्हो पाठक, परिसा भागवत, जोगा, परमानन्द तेली, नरहरि सुनार, साँवता माली, गोरा कुम्हार, सेना नाई, बहिरा पिसा, चोखामेला महार** और उसकी **स्त्री** एवं मेहुणा **बाँका** आदि विभिन्न जातियों, स्थितियों और अधिकारों के बहुत-से वैष्णव-भक्त एक ही काल में हुए। ज्ञानदेव इस भक्त-समुदाय के अध्यक्ष थे और नामदेव उपाध्यक्ष। इन दोनों ने महाराष्ट्र के भागवत-पन्थ का दृढ़ सङ्गठन किया। उनका ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ (शाके १२१२) श्रीमद्भगवद्गीता की विस्तृत टीका है। यह ग्रन्थ अत्यन्त सम्मान्य और लोकप्रिय है। काव्य की दृष्टि से, तत्त्वज्ञान की दृष्टि से, भाषा-शैली की दृष्टि से, धर्मग्रन्थ की दृष्टि से तथा किसी भी दृष्टि से यह आद्य और अद्वितीय है। मराठी भाषा में इसके जोड़ का बस, एक ही ग्रन्थ है, जिसका नाम है एकनाथी भागवत। ज्ञानेश्वरजी के सभी ग्रन्थों में श्रीकृष्ण-भक्ति ओतप्रोत है। जहाँ केवल 'श्रीकृष्ण बोले' इतना ही कहना आवश्यक था, वहाँ भी ज्ञानेश्वरी में ज्ञानेश्वरजी ने श्रीकृष्ण-प्रेम की तरंगें लहरा दीं। उदाहरणार्थ **'असें श्रीकृष्णजी पांडवाप्रति बोलिल।'** अर्थात् श्रीकृष्ण पाण्डव से बोले 'वे श्रीकृष्ण कैसे थे ?—वह चराचर के भाग्य, ब्रह्मा तथा ईश के पूजने योग्य, सकल कलाओं की कला, परमानन्द की मूर्ति, विश्व के प्राण के प्राण (ज्ञाने० अ० ८), श्यामसुन्दर परब्रह्म, निजजनानन्द, जगदादि-कन्द, निर्मल, निष्कलङ्क, लोककृपालु, शरण्य, सुर-सहायशील, लोक-लालनशील, प्रणत-प्रतिपालक, धर्मकीर्तिधवल, अगाध दातृत्व में सरल, भक्तवत्सल, प्रेमीजन-प्राञ्जल'—**'तो श्रीकृष्ण वैकुण्ठीचा। चक्रवर्ती निजांचा। सांगे येरु दैवाचा। आइकत असे।'** (अ० १२) 'वह वैकुण्ठाधीश चक्रवर्ती कह रहे थे और भाग्यवान् (अर्जुन) सुन रहा था।' ज्ञानेश्वरजी ने अपने तथा अर्जुन के मुख से भगवान् के लिए जिन विशेषणों का उपयोग किया है, उनका संग्रह करने पर सहज ही श्रीकृष्ण-सहस्रनाम तैयार हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके काव्य में भी श्रीकृष्ण-वर्णन-सम्बन्धी तथा कृष्ण-स्तुति-सम्बन्धी पद्य बहुत सुन्दर हैं। इन पद्यों में गोकुल के श्रीकृष्ण ही पण्ढरपुर में विठ्ठलरूप में खड़े हैं। निर्गुण परमात्मा ही सगुण साकाररूप से प्रकट हुए हैं। वही जीवों के अन्तर्बाह्य लीला करते हैं और अपनी मोहिनी मुरली के मधुर रव से गोपियों को और अन्य सबको आत्मसुख के रंग में रँग रहे हैं। देखिये कैसा सुन्दर वर्णन है—

लक्ष लावुनि अंतरीं कृष्णा पाहती नरनारी।
लावण्यसागरू हरी परमानन्दु॥
छंदें छंदें वेणु वाजे त्रिभुवनीं घनु गाजे।
उतावेळ मन माझें भेटावया॥
ब्रह्मविद्येचा पुतळा गाई राखितो गोवला।
श्रुति नेणवे ते लीला वेदां सनकादिकां॥

अर्थात् 'लावण्यसागर परमानन्द हरि का अन्तःकरण में ध्यान धरकर नर-नारी उन्हें निहारते हैं। अनेक छन्दों में मुरली बज रही है जिसकी मधुर ध्वनि त्रिभुवन में भर रही है। जो गोपाल ब्रह्मविद्या की मूर्ति हैं, जिसकी महिमा श्रुति, सनकादि को भी मालूम नहीं होती, उससे मिलने के लिए मेरा मन अत्यन्त छटपटा रहा है।' विट्ठल-स्तवन में 'वृन्दावन में ब्रह्मानन्द' 'वसुदेवकुमार देवकीनन्दन' 'खेलें रास वृन्दावन में' ······ और—

त्रिभंगी देहुडा ठाण मांडूनियां राहे।
कल्पद्रुमातळीं वेणु वाजवीत आहे॥
गोविंदु गे माये गोपाळु गे माय।
सबाह्याभ्यन्तरीं अवघा परमानन्दु वो॥

● ● ●

सावळें सगुण सकल जीवांचें जीवन।
घनानन्दमूर्ति पाहतां हारपलें मन॥
शून्य स्थावर जंगम व्यापूनि राहिला अकल।
बाप रखुमादेवीवर विठ्ठलु सकल॥

अर्थात् 'तीन जगह से टेढ़ा गोविन्द कल्पवृक्ष के नीचे वेणु बजा रहा है, जिससे अन्तरबाह्य में केवल परम-आनन्द ही भर जाता है।'····'उस साँवले सगुण सकल जीवों के जीवन घनानन्द मूर्ति के दर्शन से उसमें मन तल्लीन हो गया और मालूम होता है कि वह जगज्जनक रुक्मिणीवर विट्ठल सर्व चराचर को व्याप्त करके निष्कल ही रहा है।'

ज्ञानेश्वर, नामदेव तथा सभी सन्तों के काव्य में 'कृष्णाई, कान्हाई, विठाई' आदि शब्दों से जैसे बालक माता को पुकारता है वैसे ही अत्यन्त प्रेमयुक्त शब्दों में स्तवन किया गया है। भगवान् को मातृरूप मानकर **'तूं माय माऊली जीवीचा जिह्वाळा'** अर्थात् 'ऐ मेरी माता, तू मेरे प्राणों का प्राण है' उनकी यह कोमल वाणी सारे समाज के हृदय में बस गयी। कौए के पेड़ से उड़ जाने पर किसी अतिथि के आने की पूर्वसूचना समझी जाती है। इसके सम्बन्ध में मराठी में **'काव काव सोन्याचे पाव। पाहुणा येत असला तर उडून**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जांव' यह एक कहावत है। इसके आधार पर **'उड उड रे काऊ। तुझें सोन्यानें मढवित पाऊ। पाहुणे पंढरीराणे घरा कै येती।'** अर्थात् 'हे कौए, तू उड़ जा पंढरीराना—पंढरीश-विट्ठल अतिथिरूप में आ जायेंगे तो मैं तेरे पैरों में सोना मढ़वा दूँगी' यह एक पद्य ज्ञानेश्वरजी का बनाया हुआ है और इसमें **'दहि भाताची उंडी। लाविन तुझें तोंडीं। दूधें भरूनि वाटी। लाविन तुझें ओठीं।'** 'तुझे दही-भात खिलाऊँगा, कटोरी भर-भरकर दूध पिलाऊँगा' कहकर कौए को लालच भी दिया है जिससे कौआ उड़ जाय और इस शकुन से यह निश्चित हो जाय कि 'विट्ठल' आयेंगे—**'विठो येईल कायी ?'** महाकवि कालिदास की उक्ति के अनुसार मिलन के लिए विह्वल हुए मन को चेतन-अचेतन का भेद नहीं दिखलायी पड़ता। ज्ञानेश्वरजी की 'घोंगडी' भी बड़ी लाजवाब है। घोंगडी का अर्थ है कम्बल; और इस कम्बल का अर्थ यदि रूपक से देह मानकर इसे पढ़ें तो हमारा कम्बल अर्थात् हमारी देह कैसी है ? वह काम, कर्म, अविद्या और पञ्चभूतों से बुनी हुई एवं षड् विकारों तथा षड्रिपुओं से भरी हुई है और यह तो प्रकट ही है कि उसमें नौ छेद हैं **'नवद्वारे पुरे देही'** इसके विपरीत भगवान् का कम्बल अर्थात् उनकी देह देखिये, कितनी सुन्दर है—

स्वगत सच्चिदानंदें मिळोनी। शुद्ध सत्त्वगुणें विणलो रे।
षड्गुण-गोंडें रत्नजडित तुज। श्यामसुंदरा शोभली रे।
कान्हा तुझि घोंगडी चांगली। आम्हांसि का दिली वांगली रे।

'वह सत् चित् आनन्द और शुद्ध सत्त्वगुणों से बुनी हुई है, जिसमें षड्गुणरूपी रत्न जड़े हुए हैं। हे कान्ह ! तेरा कम्बल तो बहुत अच्छा है फिर हमें ही तूने यह चिथड़ा क्यों दे रखा है ?' इस प्रकार इन सन्त-महात्माओं ने वेदान्त के रहस्यों को सर्वसाधारण की भाषा में विनोदात्मक तथा विवेचनात्मक पद्यों के द्वारा इस खूबी के साथ व्यक्त किया है कि उससे वे लोगों की समझ में सरलता से आ जाते हैं और अनायास ही वे उन्हें आचरण में ला सकते हैं। इनके ये पद्य महाराष्ट्र के घर-घर में स्त्रियों और बच्चों तक की जीभ पर रहते हैं।

नामदेव (शाके ११९२—१२७२) बड़े प्रेमी विट्ठल-भक्त थे। विट्ठल-भक्ति का प्रचार करने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। इनका जन्म दर्जी-जाति में हुआ था। इन्हें उद्धवजी का अवतार मानते हैं। कहते हैं कि तीन सौ वर्ष के अनन्तर तुकाराम के रूप में इन्हींका अवतार हुआ था। इनके माँ-बाप, चार लड़के, चार लड़कियाँ, चार बहुएँ, पत्नी, बहन और जनाबाई, इस तरह इनका सारा परिवार ही इनकी संगति से विट्ठल-भक्त बन गया था। इन सभी के अभंग[१] प्रसिद्ध हैं। उनमें से नामदेव और जनाबाई के अभंग बहुत प्रेमपूर्ण हैं। नामदेव के लगभग तीन-चार हजार और जनाबाई के तीन सौ पचास अभंग उपलब्ध हैं। जनाबाई और मुक्ताबाई के 'झूले के गीत' बड़े ही आकर्षक हैं। ये सभी लोग अध्यात्मरंग में रँगे हुए ज्ञानीभक्त थे। उपनिषदों का परब्रह्म ही श्रीकृष्णरूप अर्थात् विट्ठलरूप से प्रकट हुआ है ऐसी इनकी पूर्ण निष्ठा थी। ज्ञान के साथ-साथ भक्ति का संयोग हो जाने से इनकी वाणी में अतीव मृदुता और मधुरता आ गयी थी। अद्वैत परमात्मा और विट्ठल में इनके मन में रत्तीभर भी भेद नहीं था, परन्तु परमात्मा नामरूप से प्रकट होकर इन्द्रियगम्य बने, इस बात में ये आनन्द मानते थे। इस तरह महाराष्ट्र में ब्रह्म-रस और भक्ति-रस का ऐक्य हो गया। 'तू आकाश मैं भूमि, तू चन्द्रमा मैं समुद्र' यह नामदेव का अभंग देखने

१. मराठी भाषा का छन्दविशेष।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योग्य है। 'तू तुलसी में मञ्जरी, तू कृष्ण में रुक्मिणी, तू जहाज में नौका, तू वेद में स्तवन करनेवाला, तू आत्मा में देह, और हे भगवन्! तेरा प्रेम इस प्रकार मेरे अन्दर भर गया है, फिर भी दोनों तुम ही हो। यह अद्वैतानन्द भी श्री गुरु की कृपा से मेरे हृदय में जमा हुआ है। हे पण्ढरीनाथ! देह रहे या न रहे, तेरे चरणों में दृढ़भाव रहना चाहिए।' इसी भावना के अनुसार नामदेव तथा इस सारी भक्त-मण्डली का श्रीकृष्ण-चरणों में दृढ़ विश्वास था।

तुझिया सत्तेनें वेदासी बोलणें। सूर्यासी चालणें तुझिया सत्ते।
मेघानीं वर्षावें पर्वतीं बैसावें। वायूनें हिंडावे सत्ता तुझी॥

अर्थात् 'तेरी सत्ता से वेद बोलते हैं, सूर्य घूमता है, बादल बरसते हैं, पर्वत स्थिर हैं और वायु सञ्चार करता है।' इस चरण में श्रुति का अनुवाद है।

यवढा वेळ का लाविला। कोण्या भक्तानें गोविला?
झडकरि येई गा विठ्ठला। कंठ आळवितां सोकला।
नामा गहिंवरें दाटला। पूर धरणिये लोटला।

'भगवन्, जल्दी आइये, पुकारते-पुकारते गला सूख गया, शरीर पुलकित हो गया और अश्रुधाराओंसे पृथिवी भींग गयी। हे दीनदयालु! आने में इतनी देर क्यों कर रहे हो? किसी भक्त के यहाँ तो नहीं फँस गये?' ये भक्त ऐसे प्रेम-विह्वल शब्दों से भगवान् को पुकारते थे। नामदेव पूछते हैं—'ऐसा कौन है जो श्रीकृष्ण-भक्ति के बिना भवसागर से तर गया हो?'

पतितपावन नाम ऐकुनी आलों मी द्वारां।
पतितपावन न होसि म्हणुनी जातो माघारा॥

'तेरा पतिनपावन नाम सुनकर मैं तेरे द्वार पर दौड़ा आया, किन्तु तुझमें यह गुण न पाकर मैं वापस लौट रहा हूँ।' नामदेव के इस तरह के प्रेम-कलह के बड़े ही अच्छे अभंग हैं। भगवान् के रूप, उनके नाम, उनके धाम तथा उनकी सगुण लीलाओं के अमृतमय महोदधि में सभी भक्त गोते लगा रहे हैं। 'हमारा व्रत एकादशी, देव केशव और तीर्थ तुलसी, व्यवसाय हरिकीर्तन, संग सन्तों का, खजाना प्रेम-धन का है।" इस मत के सन्तों का यह समुदाय तेरहवीं शती में पण्ढरी के बालू के मैदान में यमुनातीर-विहारी श्रीकृष्ण का मुक्तकण्ठ से प्रेम-भजन करता और नाम-संकीर्तन के सुख के सामने अन्य साधनों को हेय समझता था। इस समुदाय में ज्ञानेश्वरादि ब्राह्मण, दर्जी, सुनार, नाई, तेली, माली और महार, चमार आदि सभी जातियों के मनुष्य वर्णाश्रम-धर्म की हानि तथा संकरता उत्पन्न न करते हुए ही श्रीकृष्ण-प्रेम के प्राङ्गण में एक हो जाते थे। इनमें स्त्री-पुरुष तथा बालक भी थे। वह स्वराज्य-काल था। महाराष्ट्र में उस समय यादवों का साम्राज्य था। नामदेव की वृद्धावस्था में यहाँ मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ और यहीं सन्तों का प्रथम काल समाप्त हुआ।

मुसलमानों के जमाने में भी महाराष्ट्र में दस-पाँच सन्त-कवि हुए। **बहिरापिसा** नामक कवि ने भागवत पर पहला मराठी ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखा, पर सर्वसाधारण को इसका पता नहीं लगा। यह ग्रन्थ दशम स्कन्ध की विस्तृत टीका है। इसमें ७५००० ओवी हैं और श्रीकृष्ण-चरित्र का विशेष विस्तार के साथ वर्णन है। इससे पाँच सौ साल पूर्व की महाराष्ट्र की संस्कृति की भी कल्पना हो जाती है। **दामाजी पंत**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विट्ठल-भक्त थे और बेदर के दरबार में नौकरी करते थे। अकाल में इन्होंने अनाज का सरकारी भण्डार लुटाकर हजारों भूखों को बचाया था, जिसके बदले में भगवान् ने इन्हें राजदण्ड से मुक्त किया, यह सभी जानते हैं। इस प्रसङ्ग का **'वारी संकट हरि दामाजीचें। कौतुक देवाचें।'** यह गीत महाराष्ट्र के बच्चे-बूढ़े सभी को मालूम है। ज्ञानेश्वरजी के बाद उन्हींके समान एक और महात्मा अवतीर्ण हुए। उन्होंने भागवत-धर्म की अर्थात् श्रीकृष्ण-भक्ति की अभिरुचि सभी लोगों में उत्पन्न की। यह महात्मा **एकनाथ** थे। उनके बड़े दादा **भानुदास** भी श्री विट्ठल के भक्त थे। **एकनाथ** (शाके १४५०–१५२०) और **तुकाराम** (शाके १५३०–१५७२) दोनों ही एक के बाद एक बड़े भारी वैष्णव हुए। इन्होंने और इनके शिष्य-प्रशिष्यों ने महाराष्ट्र के कोने-कोने में श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रसार किया। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम, ये चारों महाराष्ट्र में श्रीकृष्ण (विट्ठल) भक्ति के महान् आचार्य हुए। एकनाथजी की एकादश-स्कन्ध की मराठी टीका अत्यन्त रसयुक्त एवं प्रेम-परिपूर्ण, भक्ति-ज्ञान-समन्वित और सर्वमान्य है। **'ब्रह्मज्ञान सखोल। त्यावरी प्रेमाची बोल'** गम्भीर तत्त्वज्ञान के साथ प्रेमार्द्रतामिश्रित यह ग्रन्थ सचमुच अद्वितीय है। उसकी ओवी-संख्या बीस हजार से अधिक है। एकनाथी भागवत मराठी भाषा में श्रीकृष्ण-भक्ति का अति उत्कृष्ट ग्रन्थ है। जिसे भागवत-धर्म का श्रीकृष्ण-भक्तियुक्त परमरहस्य एक स्थान पर देखना हो, उसे चाहिए कि वह एकनाथी भागवत के कम-से-कम पहले पाँच अध्याय जरूर देख ले। श्री दत्तात्रेय के चौबीस गुरु करने की सुरम्य कथा अध्याय ७, ८, ९ में है। एकादश स्कन्ध के सभी विषय एकनाथजी की प्रासादिक वाणी से ही सुनने चाहिए। उस स्कन्ध का रहस्य, जिस प्रकार उन्होंने प्रतिपादित किया है वैसा किसी भी भाषा में मिलना कठिन है। **'श्रीकृष्ण-कीर्तीचें तारूं। घालितां आहे भवसागरू', 'कृष्णकीर्तिप्रताप प्रकाशें। संसारु कृष्णमय दिसे', 'श्रीकृष्णकीर्ति नामाक्षरें। रिघतांचि श्रवणद्वारें। भीतरील तम एकसरें। निघे बाहेरी गजबजोनी', 'श्रीकृष्ण देखिला ज्या दिठी। ते परतोनी मागुती नुठी'**। नाथजी के ऐसे कितने ही चरण मन को मोहित करनेवाले हैं। एकनाथजी ने अपनी भागवत के बारहवें अध्याय में गोपियों की कृष्ण-भक्ति का रहस्य कहा है। श्रुतियों को भगवत्-प्राप्ति नहीं हुई, उन्हें भगवत्-संग का सुख नहीं मिला, इसलिए वे ही गोपीरूप से प्रकट हुईं और रासक्रीड़ा के मिस से एकान्त में उन्हें मेरे सुख की प्राप्ति हुई। चक्की पीसने, चावल कूटने, दही बिलोने, झाड़ू देने, बालकों की देखरेख, गो-दोहन, पति-सेवा आदि सारे घर-गृहस्थी के कार्यों को करते समय वे सदा प्रेमपूर्ण हृदय से विह्वल होकर श्रीकृष्ण का गुणगान करती थीं। इस ध्यान-चिन्तन के कारण उन्हें श्रीकृष्ण की विस्मृति कभी भूलकर भी नहीं होती थी। उनका मन अखण्ड रूप से श्री हरि में संलग्न था; मन-बुद्धि हरिरूप हो जाने के कारण वे घर-बार, पति-पुत्र आदि सबको भूल-सी गयी थीं—**'विसरल्या विषयसुख। विसरल्या द्वन्द्वदुखि। विसरल्या तहानभूक। माझेनि एक निदिध्यासें।'** चित्त तो देह, पति, पुत्र आदि को ही अपना आप्त मानता है, परन्तु उनका चित्त श्रीकृष्ण के ही साथ सम-रस हो गया था। वे अपने नामरूप को भूलकर श्रीकृष्णमय बन गयी थीं। इस सम्बन्ध में यदि कोई—

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः।
ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगात् शतसहस्रशः॥

भागवत के इस श्लोक के आधार पर कहें कि कामासक्त और भगवत्स्वरूप को न जाननेवाली गोपियाँ श्रीकृष्ण को प्रेमी और जार समझकर पागल हुई थीं, तथापि वे ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हुईं। यह कैसी बात है? तो इसका उत्तर यही है कि यही तो श्रीकृष्ण परमात्मा की महिमा है! कृष्ण के स्वरूप पर जब बड़े-बड़े

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योगी और तपस्वी तक मोहित हो गये, फिर इन भावुक अबलाओं की क्या बात है ? प्राण छोड़ते समय परम ज्ञानी भीष्मपितामह भी श्रीकृष्ण के रूप का ही वर्णन करते हैं। जैसे अँधेरे में भी गुड़ खाने से वह कड़ुवा नहीं लगता, वैसे ही विषयान्ध गोपियाँ सकामरूप से भी कृष्णानुगामिनी बनकर ही अन्त में निष्काम श्रीकृष्ण-संग से श्रीकृष्णरूप—अमृतरूप बन गयीं। यह तो वस्तुमाहात्म्य की शक्ति है। यह तो वैसी ही बात है जैसे कोई अज्ञान से काँच उठाये और वह हीरा निकल पड़े। पारस को मामूली पत्थर समझकर उस पर लोहे का घन पीटे और वह घन ही सोने का हो जाय।

विष म्हणोनि अमृत घेतां। मरण जाऊनि ये अमरता॥
तेंवि जार-बुद्धि मातें भजतां। माझी सायुज्यता पावल्या॥

'विष समझकर अमृत पीने से मृत्यु न होकर अमरता प्राप्त होती है, वैसे ही जार-बुद्धि से भी मुझे भजने से गोपियों को सायुज्य-मुक्ति प्राप्त हुई।' अर्वाचीन पण्डित गोपी-प्रेम के विषय में प्रायः शंका किया करते हैं, इसीलिए ये शब्द लिखे गये हैं। सभी भक्तों ने, विशेषतः ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और निळोबाराय इस भक्तपञ्चक ने श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन किया है और सभी ने कंस-वध तक का ही वर्णन किया है। उसमें गोपियों के श्रीकृष्ण-प्रेम का श्रद्धा-भक्ति से गान किया है। इस पर आलोचक विद्वानों को ध्यान देना चाहिए। उपर्युक्त महात्माओं का नीति पर ध्यान नहीं था, ऐसा कहने का साहस तो शायद कोई नहीं करेगा।

एकनाथजी विविध प्रकार की काव्य-रचना करते थे तथा महाराष्ट्रभर में कीर्तन करते हुए घूमते थे। पैठण (प्रतिष्ठान) में भागवत पर प्रवचन करते थे, जिससे श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार होता था। उनके बाद कृष्ण-भक्ति के प्रचार का कार्य तुकाराम महाराज ने किया। **तुकाराम महाराज** पूना-प्रान्त के अन्तर्गत देहू-गाँव के रहनेवाले सन्त कवि थे। ये तीव्र वैराग्य-सम्पन्न विट्ठल-भक्त महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनकी हृदयभेदी एवं मनोहारिणी वाणी जिसके कर्णगोचर न हुई हो, ऐसा पुरुष महाराष्ट्र में मिलना कठिन है। **'होतासि क्षीरसागरीं। मही दाटली असुरीं। म्हणोनियां घरीं। गौळियांचे अवतार'**—'क्षीर-सागर-निवासी भगवान् श्री विष्णु ने ही ग्वाले के घर कृष्णावतार लिया' और उसे ही भक्तश्रेष्ठ पुण्डलीक ने भक्तिभाव के बल से ईंट पर खड़ा किया है। **'अनंत ब्रह्मांडेंउदरीं। हरि हा बालक नंदाघरीं'** 'जिसके उदर में अनन्त ब्रह्माण्ड हैं वही हरि नन्द के घर में बालकरूप से पधारे' और वही भोली-भाली बालमूर्ति पण्ढरी में विट्ठलरूप से विराजमान है, अन्य सन्तों की भाँति तुकाराम ने भी अनेक बार ऐसा ही कहा है। काला[1] के अभंग, गोपी-सम्बन्धी गीत, वन-भोजन, यमुना की बालुका में खेले जानेवाले कबड्डी आदि खेल का तुकाराम ने बड़ा हो सरस वर्णन किया है। काला की लीला यमुना-तीर पर नित्य होती थी; उसके परमानन्द का तुकाराम महाराज वर्णन करते हैं—

गाई विसरल्या चार। पक्षी श्वापदांचे भार।
झाले यमुना जळ स्थिर। वाहों ठेलें॥

---

१. गोप-बालकों का लाया हुआ भोजन इकट्ठा करके श्रीकृष्ण भगवान् सभी गोप-बालकों को खिलाते, अपनी जूठन उन्हें देते, उनकी स्वयं खाते। इस प्रकार के आनन्दमय वनभोजन को 'काला' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव पाहाती सकळ। मुखें घोटोनिया लाळ।
'धन्य' म्हणती गोपाळ। धिक् झालों आम्ही ॥

'गौ, पशु, पक्षी चरना-चुगना भूल गये। यमुना की गति रुक गयी। आनन्दमय वन-भोजन को देखकर देवताओं की भी लार टपकने लगी। वे मन-ही-मन गोप-बालकों को धन्य-धन्य कहने और अपने को धिक्कारने लगे।' ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम के ग्रन्थों को देखने से पता लगता है कि ज्ञानेश्वर के अवतार एकनाथ थे, और नामदेव के तुकाराम। **'ज्ञानाचा एका व नामाचा तुका'** यह कहावत मराठी में प्रसिद्ध है। तुकाराम अपना देहू-गाँव छोड़कर पण्ढरपुर के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं गये। दूसरे सन्त तो रमते राम थे। लेकिन तुकाराम के अभंग महाराष्ट्र में खूब घूमे हैं। वे अत्यन्त सुलभ और लोकप्रिय हैं।

वामन पण्डित (शाके १५९०) और **मोरोपन्त** (शाके १६५०–१७१६) इन दो महाकवियों ने श्रीकृष्ण की कथाओं को बहुत लोकप्रिय बनाया। वामन पण्डित के श्लोकों और मोरोपन्त की आर्याओं को कीर्तनकारों ने लोकप्रिय बना दिया। वामन पण्डित ने गीता पर सगुण-भक्तिपरक एक सविस्तर टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक और समश्लोकी टीका की है। वामन पण्डित बड़े भारी कवि थे। उनके काव्य तो बहुत हैं, परन्तु उनकी इस लोकमान्यता के कारण हैं उनके भागवती आख्यान। भामा-विलास, दधिमन्थन, ऊखली-बन्धन, वन-सुधा, रासक्रीड़ा, बाललीला, यज्ञपत्न्याख्यान आदि आठ-दस प्रकरण तो इतने सुन्दर हैं कि उनके समान सुन्दर काव्य मिलना कठिन है। वामन के शब्द-चित्र इतनें सुन्दर हैं कि उत्तम चित्रकार को उसे देखकर चित्र बनाने की स्फूर्ति हुए बिना नहीं रहेगी। श्रीकृष्ण के रूप, उनके सखा, उनके खेल और वन-शोभा आदि का वर्णन बिल्कुल यथार्थ हैं। उदाहरणार्थ यशोदा का एक चित्र देखिये—

श्रवणिचे श्रवणीं नग हालती। गळति गुंफिलिया शिरीं मालती।
घुसळितां कुचकुंभहि कांपती। अमृत ज्यांतिल घे कमलापती ॥
फिरविते रविते दधि भीतरीं। मिरविते रवि-तेज नगांवरी।
स्वकरिं ते करि चंचलता मनीं। उपरमे परमेश्वर गायनीं ॥

यह प्रातःलाल के समय का सौभाग्यवती यशोदाजी के दधिमन्थन का वर्णन है। 'दही में मथनी घुमाते समय यशोदाजी के कर्णफूल हिल रहे हैं, केश-कलाप को सुशोभित करनेवाले मालती-पुष्पों में से एक-एक पुष्प गिरता जा रहा है, कुचकुम्भ कम्पित हो रहे हैं, इसी बीच में कमलापति आकर मटकी में से नवनी.त-सुधा लेने लगते हैं। मथनी घुमाने के कारण शरीर हिलता जाता है और अलङ्कारों पर सूर्य की किरणें पड़ने से वे चमक रहे हैं। यशोदा के हाथ मथनी के साथ घूम रहे हैं परन्तु (उसका मन) भगवद्गुणगान के कारण शान्त–उपराम हो रहा है।'

वामन के यमकानुप्रास के शब्द-चमत्कार बड़े ही रसपोषक हैं। उनका भागवत-प्रकरण माधुर्य, प्रसाद, कोमलता आदि गुणों से परिपूर्ण होने के साथ-साथ बालकृष्ण-भक्ति का परिपोषक है। मृत्तिका-भक्षण के कारण जब श्रीकृष्ण पर यशोदाजी क्रोध करती हैं, उस समय का कवि ने कैसा मनोरम चित्रण किया है, जरा देखिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर श्रीकान्ताचा करकरुनि माता धरि करें।
दुजा हस्त क्रोधें हरिवरि उगारूनि निकरें ॥
दटावी-ते वेळीं भयचकित डोळे करि हरी।
करी अंड त्रासें वरि कर दुजा जो भय हरी ॥

'एक हाथ से श्रीकान्त का हाथ जोर से पकड़कर, दूसरे हाथ को उसे पीटने के लिए तानकर क्रोधभरी दृष्टि से माता उसे धमकाने लगी। माता का वह डरावना रूप देखकर श्रीहरि की आँखें भय से चकित हो गयीं। भयहारी ने अपना दूसरा कोमल हाथ आड़े करके दीन-मुख से मौन भाषा में माता से न मारने के लिए प्रार्थना की।'

वामन के काव्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो काव्यकला और चित्रकला दोनों एक होकर वात्सल्यमिश्रित भक्तिरस को सहायता दे रही हैं।

मोरोपन्त राम-भक्त थे। पर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि राम और कृष्ण एक ही रूप हैं, इसलिए श्रीकृष्ण-चरित्र पर भी उन्होंने बहुत सुन्दर काव्य-रचना की है। भीष्म-भक्ति-भाग्य, कलिगौरव, ध्रुव-प्रह्लाद, भृगु, अम्बरीष आदि भक्तों के चरित्र, वामन-चरित्र, सुदामा-चरित्र और पृथुकोपाख्यान आदि पन्द्रह-बीस स्फुट आख्यान उन्होंने लिखे हैं। दशमस्कन्ध पर विविध वृत्तों में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर सम्पूर्ण भागवत पर भी उन्होंने एक अलग सुन्दर काव्य रचा है। इसके अतिरिक्त हरिवंश पर भी एक विस्तृत ग्रन्थ है। भागवत के प्रकरण १६५०, कृष्ण-विजय अथवा बृहद्दशम ३६७०, मन्त्रभागवत ३६००, हरिवंश ५४००—इस प्रकार सब मिलाकर श्रीकृष्ण-विषयक लगभग १५००० कविताएँ मोरोपन्त ने लिखी हैं। उनके ध्रुव, प्रह्लाद, सुदामा आदि भक्तों के चरित्र अत्यन्त मधुर हैं। मन्त्रभागवत तो एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। उसमें बारहों स्कन्धों के कथाभाग में मुख्यतया श्रीकृष्ण-चरित्र ही वर्णित है। मोरोपन्त संक्षेप और विस्तार करने में बड़े ही कुशल हैं। उनका झुकाव वेदान्त की ओर बहुत कम, सगुण भक्ति की ओर विशेष है। कहीं-कहीं उन्होंने मूल भागवत के श्लोकों का अतीव सुन्दर अनुवाद किया है। मन्त्रभागवत में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र को ३३३ बार विविध रीतियों से गूँथा है। नाममन्त्र से पूरित यह ग्रन्थ बड़ा ही सरस है। श्रीकृष्ण-चरित्र-गान से कितना लाभ होता है?

गळतो गर्व हरियशःश्रवणें, अघराशि सर्वही जळतो।
पळतो श्रम, किंबहुना भगवान् येणेंचि सर्वथा वळतो ॥

'हरि-यश-श्रवण से गर्व गलता है, पाप-राशि जल जाती है, श्रम भाग जाता है अथवा यों समझिये कि इसीसे भगवान् प्राप्त हो जाते हैं।'

श्रीकृष्ण ने उद्धव को जो भक्तिसाधन बतलाया, उसका वर्णन पन्तजी यों करते हैं—

वाहत जावीं कर्में मजला, मन चित्त मजसि अर्पावें।
माझ्या यशोमृतानें साधुजना आपणाहि तर्पावें ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोदित चित्त असावें, फार दिसावें प्रसन्न बाहेर।
गंभीरतेसि अभ्यंतर तों केवळ मुलींस माहेर॥
मोह झडे, काळ दडे, निर्मळ मद्भक्तिरूप धर्म घडे।
मग मत्प्रसाद होतां जें परमज्ञान तें गळांचि पडे॥

'समस्त कर्म, मन, चित्त मुझे समर्पण करे, मेरे यश-सुधा का पान साधुजनों के साथ आप भी करे, सदा-सर्वदा अन्तर्बाह्य आनन्दित और प्रसन्न रहे। नैहर में लड़की के समान अन्तःकरण को गम्भीर और खुला रखे। इससे क्या होगा? मोह झड़ जायगा, काल छिप जायगा, निर्मल भक्तिरूप धर्म प्राप्त होगा और फिर मेरी कृपा होते ही परम ज्ञान स्वयं आकर गले लग जायगा।'

श्रीकृष्ण-कथा और कृष्ण-गीतों का गान करनेवालों में **कृष्णदयार्णव, श्रीधर, अमृतराय, शिवकल्याण, रमावल्लभदास और देवनाथ** आदि बड़े-बड़े धुरन्धर कवि हैं। कृष्णदयार्णव का वृद्धावस्था में लिखा हुआ कृष्ण-चरित्रविषयक 'हरिवरदा' नामक ५५ हजार ओवियों का विशाल ग्रन्थ प्रसिद्ध है। कृष्णदयार्णव (शाके १५९६–१६६२) एकनाथजी के पन्थ के थे। पचास साल की उम्र में उनको गलित कुष्ठ हो गया। उस कठिन रोग की अवस्था में एकनाथजी के दर्शन से स्फूर्ति प्राप्त कर इस ग्रन्थ को उन्होंने एकनाथजी की समाधि के पास बैठकर लिखा। ग्रन्थ प्रासादिक और प्रौढ़ है। ओवी का ढंग एकनाथजी के अनुसार ही है। यह 'हरिवरदा' ग्रन्थ भागवत के दशमस्कन्ध की टीका है। भागवत के संस्कृत-प्राकृत अनेक रूपान्तर देखकर उन्होंने उसमें विस्तृत श्रीकृष्ण-चरित्र लिखा है। परन्तु यह ग्रन्थ जितना उत्कृष्ट है, उसके अनुसार लोगों का ध्यान इसकी ओर नहीं गया। यह सौभाग्य तो **श्रीधर** को ही प्राप्त हुआ। श्रीधर का 'हरिविजय' ग्रन्थ शाके १६२४ में लिखा गया। श्रीधरजी का पूरा नाम श्रीधर नाझरेकर था। उनके 'हरिविजय, रामविजय, पाण्डवप्रताप और राम-कृष्ण-चरित्र के ग्रन्थ महाराष्ट्रभर में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। श्रीराम-कृष्ण तथा कौरव-पाण्डवों की कथाओं का आबाल-वृद्ध सभी को ज्ञान कराने का श्रेय श्रीधर की सरस प्रासादिक एवं सुलभ वाणी को ही है। गाँवों में जहाँ भगवान् के नाम-सङ्कीर्तन का भी अभाव होता है वहाँ भी स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध सब श्रीधर के ग्रन्थ पढ़ते हैं। एक दृष्टि से श्रीधर महाराष्ट्र के अत्यन्त प्रिय कवि हैं। संसार-तप्त जीवों को चिर-शान्ति देनेवाला, सङ्कट में पुकारते ही दौड़नेवाला यदि कोई है तो वह दयासागर भगवान् ही है, यह निश्चित विश्वास लोगों में उत्पन्न करके उनके चित्त को शान्त करने का महत्कार्य श्रीधर के ग्रन्थों ने बहुत अच्छे ढंग से किया। मराठी भाषा में महाभारत और रामायण पर अनेक कवियों ने खण्ड-अखण्ड ग्रन्थ लिखे हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन कथाओं को प्रेमपूर्ण वाणी से गा-गाकर करोड़ों लोगों के कानों को तृप्त करने का सौभाग्य श्रीधर को ही है। देहात में कथावाचक कथा बाँच रहे हैं और सैंकड़ों श्रोतागण गद्गद होकर उसे नित्य-नियम से श्रवण कर रहे हैं, यह दृश्य श्रीधर के ग्रन्थों ने ही निर्माण किया है। इनकी विवेचन-शैली सरस, सुगम और सुबोध है। कृष्ण, अर्जुन, उद्धव, पाण्डव, दुर्योधन, भीष्म, विदुर, राम, लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, विभीषण, हरिश्चन्द्र, मारुति, सीता, द्रौपदी आदि के शब्दचित्र और उनके सम्भाषण का वर्णन इन्होंने ऐसी खूबी से किया है कि पढ़ते समय मालूम होता है वे व्यक्ति हमारे सामने खड़े हैं। वामन, मोरोपन्त आदि महाकवि इनसे अधिक विद्वान् हो सकते हैं; एकनाथ, तुकाराम आदि वैष्णवों की गर्जना इनसे बढ़ी-चढ़ी रही होगी, पर देहातों में श्रीधर के समान लोकप्रियता किसीकी नहीं है। इस कवि का शरीर-नाश हो चुका है, परन्तु ग्रन्थरूप से तो यह अजर-अमर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मराठी में कृष्ण, गोपी, गोप, यमुना-विहार, बाल-लीला आदि विषयों पर सैकड़ों कवियों ने हजारों सुन्दर काव्य रचे हैं और वे आबाल-वृद्ध-वनिता सभीके आदर-भाजन हैं। प्रेमाबाई का **'गडे हो कृष्णगडी आपुला। राजा मथुरेचा झाला'**, मध्वमुनीश्वरजी का **'उद्धवा शांतवन कर जा या गोकुळवासि जनांचे'**, कोकिल कवि का **'रुक्मिणिनें एका तुळसिदळानें गिरिधरप्रभु तुळिला। दयाघन भक्तीं आकळिला'**, एकनाथजी का **'मुरलिं नको वाजवूं मनमोहना। जगजीवना'** तथा देवनाथादि कवियों के मुरली के अनेक रम्य-पद और रामदास-शिष्य अनन्तजी का प्यारा 'गोपी-गीत' पद आदि हजारों फुटकर काव्यों का समाज में खूब प्रचार है। उनसे श्रीकृष्ण-भक्ति लोगों के रोम-रोम में भर गयी है। गोपी-गीत में से दो-चार चरण यहाँ उद्धृत किये बिना मन नहीं मानता—

प्रभातकाळीं जननी यशोदा। उठि म्हणे सत्वर बा मुकुंदा।
गोपाळ येती तुजला वहाती। गोविन्द दामोदर माधवेति॥
प्रकाश केला गगनीं रवीनें। गोपी दधी त्या घुसळी रवीनें।
त्या कंकणांचे बहु नाद येती। गोविन्द दामोदर माधवेति॥
करांबुजीं घेउनियां शुकाला। अभ्यास गोपी करिती तयाला।
रागस्वरें सुन्दर बोलवीती। गोविन्द दामोदर माधवेति॥
गोदोहना बैसति गोपदारा। पात्रांतरीं वाजति क्षीरधारा।
तेणें रवें मंजुळ गीत गाती। गोविन्द दामोदर माधवेति॥

'प्रातःकाल के समय यशोदा माता भगवान् को जगाती हैं—'हे मुकुन्द! जल्दी जाग, देख ये गोपाल आये हैं, तुझे गोविन्द, दामोदर, माधव कहकर पुकार रहे हैं; सूर्यदेव की किरणें गगनमण्डल में फैल गयी हैं; गोपियों ने दही मथना शुरू कर दिया है, उनकी चूड़ियों से अनेक प्रकार की ध्वनियों के साथ गोविन्द-दामोदर-माधव शब्द उत्पन्न होते हैं। कुछ गोपियों ने हाथों पर तोते बैठा लिये हैं और उन्हें राग के साथ गोविन्द, दामोदर, माधव का पाठ पढ़ाती हैं; कुछ गो-दोहन कर रही हैं, अपने बरतन में दूध की धार से उठनेवाले मञ्जुल शब्द के साथ हे गोविन्द, दामोदर, माधव आदि गीत गा रही हैं।'

मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह मराठी-वाङ्मय का श्रेष्ठतम वीणा-काव्य है। श्रीकृष्ण के आख्यान-उपाख्यानों पर अनेक कवियों ने अनेक सरस काव्य लिखे हैं। केवल रुक्मिणी-स्वयंवर के प्रसंग पर पचासों कवियों ने अपनी प्रतिभा प्रकट की है। उन सबमें एकनाथजी का 'रुक्मिणी-स्वयंवर' अत्यन्त श्रेष्ठ है। काव्य की दृष्टि से सामराज की रचना भी उत्कृष्ट है। इसी प्रकार भारत के अन्य सभी प्रान्तों की भाँति महाराष्ट्र में भी श्रीकृष्ण-भक्ति बहुत प्राचीनकाल से अब तक निरन्तर चली आ रही है और महाराष्ट्र के सन्त-सज्जन दयाघन के कृपामृत का पान करते रहे हैं।

—श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराष्ट्रीय कृष्ण-भक्ति : परम्परा एवं वैशिष्ट्य

श्री चक्रधर तथा ज्ञानेश्वर महाराज से लेकर तुकाराम-निळोबाराय तक सभी प्रमुख मराठी सन्त कवि श्रीकृष्ण के चरित तथा उनके द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट रहे हैं। इसके अतिरिक्त वामन पण्डित, मोरोपन्त जैसे अनेक पण्डित भी कृष्ण-कथा के प्रेमी रहे हैं। भागवत-पुराण के विविध प्रसंग मराठी सन्तों तथा पण्डितों ने ओवी एवं श्लोक छन्दों में लिखा है। इनमें श्रीकृष्ण, गोपी, राधा आदि के जीवन से सम्बद्ध प्रसंगों के रस-परिप्लुत विवरण प्रस्तुत हुए हैं। इस परम्परा को गोविन्दाग्रज, माडगूळकर, मर्ढेकर, बोरकर प्रभृति कवियों ने समृद्ध किया है।

महाराष्ट्र में प्रथम ज्ञात धर्मपन्थ है—नाथ-सम्प्रदाय। आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि नाथों में से मत्स्येन्द्रनाथ श्री विष्णु के अवतार माने जाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज के दीक्षा-गुरु श्री निवृत्तिनाथ थे। निवृत्तिनाथ ने अपने गुरु गहिनीनाथ से नाथ-पन्थ का जो सन्देश प्राप्त किया, वह था कृष्ण-नाम के बीजमन्त्र का। इसी बीजमन्त्र से प्रेरणाप्राप्त, नाम-संकीर्तन पर आधारित एवं लोक-जीवन से सम्मानित 'वारकरी-पन्थ' 'राम कृष्ण हरी' मन्त्र के द्वारा फला-फूला। इस सम्प्रदाय में कृष्ण, हरि, विट्ठल आदि सभी भजनीय देवता कृष्णमय हैं। महाराष्ट्र के इस महान् भागवतधर्मीय सन्त-साहित्य की कृष्ण-धारा में अवगाहन करने से पहले किंचित् अतीत काल में ज्ञानेश्वरजी के पूर्व शतक में प्रारम्भ एक कृष्ण-प्रेमी पन्थ का निर्देश आवश्यक है।

महानुभाव-पन्थ के संस्थापक श्री चक्रधर स्वामी स्वयं ही श्रीकृष्ण से एकरूप थे—इस बात का साक्षी है—'लीलाचरित्र' ग्रन्थ। एक समय स्वामी एक ब्राह्मण के घर गौएँ चराते थे। गौएँ विपुल और मधुर दूध देने लगीं। ब्राह्मण ने सोचा, आखिर यह गौएँ चराने ले कहाँ जाते हैं। उसने पता किया, देखा :

> **गोसावी आसनीं बैसले असति,**
> **भवंतीया गाई आनन्दु रोवंतितीति बैसलीया असति।**

'गोसाईं आसन पर बैठे हैं—उनके आसपास गौएँ आनन्दमय होकर जुगाली करती हुई बैठी हैं।' उसकी ब्राह्मणी ने कहा—**'सामान्य पुरुष नव्हति। साक्षात् श्रीकृष्णु'**—अर्थात् 'यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है—यह तो साक्षात् श्रीकृष्ण हैं।' एक बार (जन्माष्टमी के दिन) तो श्री चक्रधरजी ने स्वयं पूजा स्वीकार की थी। श्री चक्रधर प्रायः कहते थे कि वह स्वयं द्वापर-युग के श्रीकृष्ण हैं। हरिदेव पण्डित की भी ऐसी प्रतीति थी कि **'प्रतीती बैसली। द्वापरीचे ते हे गोसावी।'** 'यह द्वापर-युग के ही गोस्वामी कृष्ण हैं।' इसी प्रकार एक बार स्वामीजी नदी-किनारे से जा रहे थे कि उनकी छाया नदी के जल पर पड़ी—उसी समय मछलियाँ एकदम पानी की सतह पर उछल आयीं। तब स्वामी उपाध्याय से बोले—"पहले जब श्रीकृष्ण चक्रवर्ती यमुना-तीर पर टहलते थे तो उनकी मूर्ति के दर्शनार्थ जलचर इसी प्रकार जल के ऊपर आ जाते थे।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार की अनेक कथाएँ श्री चक्रधर-चरित्र में कही गयी हैं। उनके ऊपर दोषारोपण करनेवाले काळदास भट ने एक बार इन्द्रभट से कहा—

आमचे गोसावी साक्षात श्रीकृष्ण चक्रवर्ती।
आराधीता मूक्ती का विरोधीलेया मूक्ती।

'हमारे गुसाईंजी तो साक्षात् श्रीकृष्ण चक्रवर्ती हैं—उनकी आराधना करने से मुक्ति मिलती है और विरोध करनेवाला भी मुक्ति ही पाता है।' जब एक बार स्वामी पैठण में थे और विहार करने के लिए बाहर निकले तब उनके संग सारंग पण्डित भी थे—उस समय सभी गौएँ रँभाती हुई आयीं और स्वामीजी की ओर एकटक, अनिमेष देखने लगीं। सारंग पण्डित आश्चर्यचकित हो यह देखते ही रह गये। स्वामीजी ने पूछा—**"पांडया, काय पाहत आहां ?"** (पाण्डेजी, क्या देख रहे हैं ?) सारंग पण्डित बोले—**"जी जी। द्वापरीं श्रीकृष्णचक्रवर्तीचिये श्रीमूर्ति। वेध घनि घेता न पुरेचि। तें आतां घेति असेति।"** (जी, द्वापर-युग में श्रीकृष्णचक्रवर्ति की श्रीमूर्ति को ये गौएँ घनी लगन से देखा करती थीं—परन्तु तृप्त नहीं हुई थीं। अतः वे पुनः उसी घनीभूत प्रेम से पुनः श्रीमूर्ति देख रही हैं।) गोकुलाष्टमी अर्थात् जन्माष्टमी के दिन बोणेबाई कृष्णमूर्ति की पूजा के लिए मिट्टी की प्रतिमाएँ बना रही थीं। यह देखकर श्री चक्रधर स्वामी ने उनसे पूछा—**"बाई, श्रीकृष्ण का तू मातीचां ? देवकी देवी काई मातीयेची ?"** अर्थात् "माई री! श्रीकृष्ण मिट्टी का क्यों है ? देवकी देवी क्या मिट्टी की है ?" तब बोणेबाई ने पूछा कि "मैं क्या करूँ ?" स्वामीजी ने कहा—**"हें श्रीकृष्ण होईल। तुम्ही देवकी होआ"** (अर्थात् "यह (चक्रधर स्वामी) श्रीकृष्ण होगा, तुम देवकी हो जाओ।") स्वयं श्री चक्रधर के श्रीकृष्ण होने के साक्षी-प्रसंग देखकर उनके शिष्यों को उसकी प्रतीति हो चुकी थी। स्वामी श्री चक्रधरजी ने अपने शिष्य-परिवार से अनेक बार श्रीकृष्ण-चरित्र के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का आत्मीय वर्णन किया था। श्रीकृष्ण में अष्टविध ब्रह्मचर्य किस प्रकार था ? राजसूय-यज्ञ के समय उन्हें अग्रपूजा का सम्मान कैसे प्राप्त हुआ ? उन्होंने अर्जुन को कैसे ज्ञानदान किया ? विभूतिनिरूपण किस प्रकार से किया ? श्रीकृष्ण द्वारा निरूपित गीता कैसी है ? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का निराकरण स्वामीजी ने किया है। एक बार उन्होंने सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्र अपने परिवार को सुनाया था। एक बार उन्होंने माहादाइसा से कहा—

बाइ। श्रीकृष्ण अवतारु तो गर्भीचा।
देवकादेवीचां गर्भी वसुदेवाचां ठाइं मथुरेसि॥
श्रीकृष्णचक्रवर्ति गोसावी अवतरले।
गोकुळीं यशवदेचां ठाइं वाढिनले॥

'बाई! श्रीकृष्ण-अवतार गर्भ से प्रकट हुआ। देवकी देवी के गर्भ से, वसुदेव के यहाँ मथुरा में वह प्रकट हुए—श्रीकृष्ण चक्रवर्ति गोस्वामी अवतरित हुए और गोकुल में यशोदा के घर में वृद्धि को प्राप्त हुए—पले और बढ़े।' गोकुल में एक बार श्रीकृष्ण नें जम्हाई ली। उनके जमुहाते ही माँ को **'मुखामाजि विश्व देखिले'** (उनके मुख में विश्व का दर्शन हुआ।) उनके मुख पर हाथ रखकर वह बोलीं—**'लकरूं सामान्य नव्हे'** (अर्थात् बच्चा सामान्य नहीं है।) रुक्मिणी की अवस्था समुद्र में जल-क्रीड़ा, जयद्रथ-वध, कुब्जा-भेंट, उद्धव को प्रेमदान, सान्दीपनि को पुत्रदान, नारद-दर्पहरण आदि कृष्ण-चरित्र के अनेक प्रसंगों को श्री चक्रधरजी ने चित्रित किया है। श्रीकृष्ण के अन्तिम समय का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णचक्रवर्ति प्रभासेसि बीजे केलें,
देउळी अश्वत्थमूळीं पहुडु स्वीकारीला ।
तवं भील तेथें पारधीसि आला ।
तंव चन्द्राचेनि रस्में पदमें श्रीचरणीची झळझळिता देखीलीं ।
हे ससेयाचे कान म्हणौनि सींधीली ।
तंव श्रीमूर्ति वोळखीलो । आणि पोळला । भीयाला ।
श्रीचरणांवरि माथा ठेविला ।

'श्रीकृष्ण चक्रवर्ति प्रभास-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए, देवालय में अश्वत्थवृक्ष के नीचे वे अधलेटे-से बैठे, उसी समय वहाँ एक शिकारी भील आया—चन्द्रप्रकाश में उसने श्रीचरणों की झलकती लाली देखी, उसे लगा—ये खरगोश के कान हैं, खरगोश जानकर उसने बाणों से उसे बींधा, तब पता चला कि श्रीकृष्ण हैं, प्रभु की श्रीमूर्ति उसने पहचान ली। वह तड़प उठा—आत्मदाह से जैसे जल उठा, डरा और उसने श्रीचरणों पर माथा रख दिया।'

इस प्रकार श्री चक्रधरजी का सारा जीवन ही कृष्णमय बन गया। उनके द्वारा प्रवर्तित महानुभाव-पन्थ में भी श्रीकृष्ण और गीता के लिए अत्यन्त आदर व्यक्त किया गया है। इस पन्थ के मतानुसार श्रीकृष्ण पूर्ण परब्रह्म परमेश्वर के अवतार हैं और वह स्वतः प्रमाणपुरुष हैं। इस पन्थ के गद्य एवं पद्य-ग्रन्थ भी श्रीकृष्ण-महिमा का, श्रीकृष्ण-कथा का वर्णन करते हैं। उनके सप्त प्रमाणग्रन्थों में से 'शिशुपाल-वध', 'एकादश स्कन्ध', 'वछाहरण', 'रुक्मिणी-स्वयंवर' आदि में श्रीकृष्ण-जीवन के कथा-प्रसंगों का वर्णन है। नरेन्द्र का 'रुक्मिणी-स्वयंवर' ग्रन्थ तो प्रथम श्रेणी के काव्य-ग्रन्थ के रूप में विख्यात हैं। इसमें श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी का सौन्दर्य-वर्णन विशेष रमणीय है :

श्रीकृष्णांचां गुणीं जीविनला ।
माझा जिऊ श्रीचक्रधरा विनटला ।
तो आंतुल आनंदु वोसंडला ।
कवितेचेनि मिसें ॥

'मेरा शरीर श्रीकृष्ण के गुणों को गाकर जीवित है—वह श्रीकृष्णस्वरूप श्री चक्रधर में प्रेमलीन है और यही अन्तःकरण का आनन्द कविता के व्याज से बाहर फूट पड़ा है।'

इस तरह कवि यह सन्तोष प्रकट करते हैं। भास्करभट बोरीकर द्वारा लिखित 'शिशुपाल-वध' नामक ग्रन्थ में कवि शिशुपाल-वध का प्रसंग तो वर्णित करता ही है, परन्तु यह कहने से नहीं चूकता कि—**हा शिशुपाळ-वधु। आइकतां तुटे भवबंधु। जीवा होए प्रबोधु। परमतत्त्वाचा।।** (यह 'शिशुपाल-वध' ग्रन्थ सुनते ही संसार का बन्धन टूट जाता है और जीव को परमतत्त्व का बोध होता है।) यह वस्तुतः ग्रन्थ की फलश्रुति है। इन्हीं कवि का एक निवृत्तिपरक काव्य-ग्रन्थ 'उद्धवगीता' उपलब्ध है। अघासुर-वध, गोवत्सों का ब्रह्मा द्वारा हरण—इस कथा पर दामोदर पण्डित का 'बछाहरण' नामक खण्ड-काव्य निर्मित हुआ है। श्रीकृष्ण-दर्शन होने पर यमुना नदी की स्थिति कैसी हो गयी ? इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की आलिंगावेया श्रीकृष्णुराजा । तिया बहुति केलिया भुजा ।
तैसे तरंग पढियासले मज । कालींद्रियेचे ॥
मग आनन्दसागरीं मीनलि । तैसी निश्चल जाली ।
किं देहभान विसरली । श्रीकृष्णवेधें ॥
किं जन्मली देवाचां चरणीं । तें उतवलपण असे मनि ।
म्हणोंनि भेटों आली मंदाकिनी । कालिंदी नव्हे ॥

'श्रीकृष्णराज को आलिंगनबद्ध करने के लिए उसने अनेक भुजाएँ फैला दीं—कालिन्दी नदी की तरंगें ही मानो भुजाएँ हैं। ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। फिर वे तरंगें शांत हुईं तो ऐसा लगा जैसे श्रीकृष्ण-मिलन होने पर वह आनन्दसागर में लीन हो गयी है—निश्चल, अचल हो गयी है और श्रीकृष्ण-प्रेम में मानों देहभान ही भूल गयी है। पुनः ऐसा लगता है कि जैसे यह शान्त निश्चल कालिन्दी, अर्थात् यमुना है ही नहीं—यह तो मन्दाकिनी है, क्योंकि प्रभु-चरणों से जन्म पाकर भी अपनी चंचलता में वहाँ से चल पड़ी, प्रवाहित हो गयी। उस अपनी उतावली का परिमार्जन करने के लिए मानों वह पुनः प्रभु-चरणों में स्थिर हो गयी है—विश्राम प्राप्त कर रही है।'

ज्ञानेश्वर महाराज की श्रीकृष्ण-भक्ति

वारकरी-पन्थ को तत्त्वज्ञान का आधार श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने प्रदान किया। उनका मूल पन्थ गोरक्षनाथ का था—अर्थात् नाथ-पन्थ था। शिव-उपासकों को राम-नाम की मधुरता रास आयी। गहिनीनाथजी ने निवृत्तिनाथ को क्या दिया? निवृत्तिनाथ कहते हैं कि आदिनाथ उमामत्स्येन्द्र की परम्परा से गोरक्षनाथजी को प्रेम-मुद्रा प्राप्त हुई और गोरक्षजी ने कृपापूर्वक बीजमन्त्र देकर गहिनीनाथ को सनाथ किया। निवृत्तिनाथ की अनुभूति है कि :

निवृत्ति गयनी कृपा केलि पूर्ण ।
कुळ हें पावन कृष्णनामें ।

'गुरु श्री गहिनीनाथजी ने मुझ निवृत्तिनाथ पर पूर्ण रूप से कृपा की और हमारा कुल कृष्ण-नाम का बीजमन्त्र पाकर पावन हो गया।' इसीलिए ज्ञानेश्वर महाराज का पन्थ कृष्ण-नाम से पावन है। ज्ञानेश्वर के गुरु श्री निवृत्तिनाथ स्पष्ट रूप से कहते हैं—

निवृत्तीचें गूज विठ्ठल सहज ।
गयनीराजें मज सांगितलें ।

'इस निवृत्ति का जो कुछ भी रहस्य है—उसका अन्तस्थ एक विठ्ठल ही है—सहजरूप से गौ-गोणालसहित श्रीकृष्णरूप विठ्ठल है—यह तो मुझे जतन करने के लिए स्वयं मेरे गुरु गहिनीनाथजी ने ही बताया है।' परब्रह्म परमेश्वर वस्तुतः वाणी से परे, सहज समझ में न आनेवाला अनाकलनीय है—परन्तु स्वयं श्री निवृत्तिनाथजी देखते हैं कि—

तें हें कृष्णरूप गौळियांचे तप ।
यशोदेसमीप नंदाघरी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'वही अव्यक्त परमेश्वर गोप-गोपियों के तप के कारण मानो उनका तप ही मूर्त रूप धारण कर यशोदामाता के समीप नन्द-गृह में घुटनों के बल रेंग रहा है। जो अव्यक्त था, निराकार था, वही **'कृष्ण नाम निज । नाम अधोक्षज चतुर्भुज ।'** 'कृष्णनाम, निजस्वरूपी नाम सगुण साकार चतुर्भुज रूप में व्यक्त हो गया है। निवृत्तिनाथजी उसका अनुभव करते हैं।'

निवृत्तिनाथजी का वरदहस्त अपने अनुज और शिष्योत्तम ज्ञाननाथ अथवा ज्ञानेश्वर पर था। श्री ज्ञानेश्वर महाराज के बारे में समकालीन सन्तों का साक्ष्य है :

महाविष्णूचा अवतार । सखा माझा ज्ञानेश्वर ।।

'मेरा सखा ज्ञानेश्वर श्री महाविष्णु का अवतार है।' श्रीकृष्ण एवं श्री ज्ञानेश्वर का जन्म एक ही दिन भाद्रकृष्ण अष्टमी को हुआ था। श्रीकृष्ण की गीता को ज्ञानेश्वर महाराज ने मराठी भाषा में सहज-सुलभ बनाकर आबालवृद्ध के मध्य लोकप्रिय बनाया। श्रीकृष्ण के अनेकानेक विलोभनीय शब्द-चित्र ज्ञानेश्वर महाराज की काव्य-सृष्टि में दृष्टिगोचर होते हैं। श्रीकृष्ण एवं अर्जुन की आत्यन्तिक प्रेमकल्लोलिनी की अनेकानेक लहरें ज्ञानेश्वरी में विचरती दिखाई देती हैं। यह वैकुण्ठ का राजा अर्जुन का अश्ववाहक बना हुआ है, ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

देखा ! नवल तया प्रभूचें । अद्भुत प्रेम भक्ताचे ।
जे सारथ्यपण पार्थाचे । करीत असे ।। (१.१४२)

'देखिये तो सही, उस प्रभु के प्रेम की रम्यता, आश्चर्यमयता तो देखिये—इस भक्त के प्रति अद्भुत प्रेम है—अपना सारा बड़प्पन भूलकर–पार्थ के प्रति आत्यन्तिक प्रेम के कारण वह उसका सारथ्य कर रहा है—उसका स्वामी होते हुए सेवक का काम कर रहा है।' प्रभु श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए अर्जुन कहते हैं—

तूं गुरु बंधु पिता । तूं आमची इष्टदेवता ।
तूंचि सदा रक्षिता । आपदीं आमुतें ।। (२.५९)

'प्रभु, तू ही गुरु है, मेरा बन्धु, मेरा पिता है, तू हमारा इष्टदेवता है—संकटकाल में, आपदाओं में सदा तू ही हमारा रक्षणकर्ता रहा है और रहेगा।' परम मंगलधाम, देवदेवोत्तम, श्रीकृष्ण, श्रीहरि आदि विविध नामों से श्रीकृष्ण को पुकारकर अर्जुन उनसे आत्मीयता जताते हैं। इसीलिए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—**'तरी जाण पा पार्थं उपडें । श्रीकृष्ण सुखाचेंचि रुपडें । वोतलें गा ।'** 'यह जानिये कि पार्थ वस्तुतः श्रीकृष्ण का मूर्तिमन्त स्वरूप ही है—जैसे भक्त के रूप में प्रभु का प्रेम-सुख ही साँचे में ढल गया है।' बछड़े को देखते ही गैया हड़बड़ाते हुए उठ खड़ी होती है और फिर स्तन एवं मुख की भेंट होने पर क्या भला दूध की धारा रुकती है ? वह बह निकलती है—यह स्नेह ही ऐसा अटूट, अकृत्रिम, सहज है। इसी प्रकार प्रभु और भक्त का एक अन्य नाता भी श्री ज्ञानेश्वर महाराज अपनी अनुभूति से साकार करते हैं। वह है—**'श्रीकृष्ण कोकिळ । अर्जुन वसन्त ।'** अर्थात् 'श्रीकृष्ण कोकिला हैं और अर्जुन हैं वसन्त—वसन्तरूपी भक्त जब विद्यमान होगा तभी प्रभुरूपी कोकिल पूरे उत्साह से कूकती है—प्रेमवश वह अपने को रोक नहीं सकते।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री ज्ञानेश्वर महाराज के अभंगों में श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य एवं उनकी लीलाओं के प्रति प्रेम अधिक उत्कटता से प्रकट हुआ है। 'गोकुळीं कमळ विस्तारलें साचें। ध्यान श्रीहरीचें करावया।' 'गोकुल ग्राम में श्री हरि का ध्यान करने के मिस प्रेम का, भक्तों के, गोप-गोपियों के स्नेह का, एक कमल ही फूला हुआ है—उसका विस्तार सारे ग्राम में है।' इस प्रकार की एक अवस्था का वर्णन श्री ज्ञानेश्वर महाराज करते हैं। 'जमुनाजी की रेत में यह साँवली-सलोनी मूर्ति (श्रीकृष्ण) चरवाहे की वेशभूषा में खड़ी है। उसके शिर पर काला कम्बल है, कमर, गर्दन, पैर मोड़कर वह त्रिभंगी मुद्रा में खड़ा है। गहन गम्भीर नीलवर्ण है उसका। वह पीताम्बर पहने हुए है और उस पर रत्नजटित मेखला है। गले में वैजयन्ती माला शोभायमान है। मस्तक पर मयूर-पंख की कलगी सुशोभित है। पेड़ों के नन्हें-नन्हें पत्ते, अंकुर मस्तक पर लगे हुए बहुत शोभा पा रहे हैं। बाँसुरी पर अँगुलियाँ रखकर जब वह मधुर स्वर से उसे बजाता है, तब अँगुलियों के हिलने से उनमें पड़ी रत्नजटित अँगूठियाँ चमचमा उठती हैं।

'कभी यह श्रीकृष्ण मिट्टी में खेलता है। उसका सारा शरीर धूलि-धूसरित हो जाता है। बालों में धूल पड़ जाने के कारण उसके सिर पर बालों की जटाएँ बन जाती हैं। उसके मनोहर रूप के कारण ऐसा लगता है कि नन्द के आँगन में बाल चन्द्र ही उतर आया है। यद्यपि यह साँवला परब्रह्म निर्गुण-निराकार है, परन्तु वह गोपालों के हृदय में गोपवेषधारी कृष्ण के सगुण रूप में ही स्थिर हो जाता है। उसके माथे पर कोटि-कोटि चन्द्रों के प्रकाश-सदृश तेज है। उसके कोमल अंग बाल-सौन्दर्य से मण्डित भरे-पूरे और सौष्ठवपूर्ण हैं—वह अनेकानेक आभूषणों से सजाया गया है। उसके चरण सुन्दर, लुभावने और सुकुमार हैं—ये शिशुचरण शीतल और गौरवर्ण के हैं।' ज्ञानेश्वर महाराज के कृष्ण-प्रेम का एक अवर्णनीय अनुभव एक गोप-बालिका की तुतली बानी में प्रकट हुआ है। अभंग इस प्रकार है—

काय सांगूं तूं ते बाई काय सांगूं तुं तें।
जात होतें यमुने पाणिया वातंत भेतला सांवला।
दोईवर तोपी मयुल पुछाची खांद्यावली कांबला।
तेंने माझी केली तवाली मग मी तेथूनी पलाली।
पलतां पलतां घसलून पलली, दोईची घागल फुतली।
माझे घुलगे फुतले मग मी ललत बथले।
तिकूल्न आले शालंगपानी मला पोताशीं धलिलें।
मला पोताशी धलिलें माझें समाधान केलें।
निवृत्तीचे कृपें सुख हे ज्ञानदेवा नाधलें।

'क्या बताऊँ माई! मैं क्या बताऊँ री। मैं जल भरने यमुना-तट पर जा रही थी कि राह में साँवले से भेंट हुई। उसके सिर पर मयूर-पुच्छ की टोपी थी और कन्धे पर था कम्बल। उसने मुझसे छेड़खानी की तो मैं वहाँ से भाग निकली। भागते-भागते पैर फिसलकर गिर पड़ी—मेरे सिर पर रखी गगरिया टूटकर चकनाचूर हो गयी। मेरे घुटने छिल गये और मैं वहीं बैठकर रोती रही। इतने में उधर से शारंगपाणि आये, उन्होंने मुझे स्नेहपूर्वक उठाया, हृदय से लगा लिया—मेरे सब अपराध क्षमा किये। उन्होंने मुझे प्रेमभरित वक्ष से लगाया और सान्त्वना देकर मेरा मन शान्त किया। मुझे समाधान दिलाया। ज्ञानदेव कहते हैं, यह सुख मुझे निवृत्ति सद्गुरु की कृपा से ही प्राप्त हुआ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामदेव, एकनाथ आदि भक्तों का कृष्ण-प्रेम

ज्ञानदेवजी ने वैष्णवों की जो मण्डली एकत्र की उसमें पण्ढरपुर के नामदेव महाराज अग्रगण्य थे। इस सगुण भक्त ने श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवत के आधार पर अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंग चित्रित किये हैं। आकाशवाणी का प्रसंग, भगवान् की योगमाया, रोहिणी के उदर में सातवें गर्भ की स्थापना, देवकी-गर्भ-स्तुति, गोकुल में भगवान् का आगमन, नन्द के घर पुत्रोत्सव, दानधर्म, जातकर्म-संस्कार, बाल-आभूषण, पूतना-प्राण-शोषण, तृणावर्त-वध, महाबळ ब्राह्मण की दुर्दशा, गोपिकाओं के उलाहने, मृत्तिका-भक्षण, उलूखल-बन्धन, यमलार्जुन-उद्धार, गोप मानता-लीला, नन्द का चम्पाषष्ठी-नेम, यशोदा का संकष्टा चतुर्थी-व्रत, राधा-विलास, वन-विहार, अघासुर-वध, ब्रह्मदेव-गर्व-परिहार, वृन्दावन-क्रीड़ा, गोपी-गर्व, रिठासुर-वध, अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण का मथुरा-गमन, गोकुल की उदास अवस्था आदि अनेक प्रसंगों का वर्णन नामदेव महाराज ने अपनी सहज, सरल और सरस वाणी द्वारा किया है। भक्ति, वात्सल्य, कौतुक, झूठ-मूठ का गुस्सा और निर्मल, अव्याज, मनोहर बाल-लीला आदि के कारण नामदेवकृत कृष्ण-वर्णन अत्यन्त मनोरम बन पड़ा है। श्रीकृष्ण और बलराम की बाललीला का वर्णन करते हुए नामदेव महाराज उसमें ही रम जाते हैं, रँग जाते हैं—

मुतुनिया हातें भूमी सारविती। पोटासी पुसती दोघेजण ॥
घेउनियां काष्ट घासिताती दात। वाकुल्या दावीत नान्दालागीं ॥
जेविता जेविता बाहेर पलती। श्वानासी बाहाती यु यु करूनी ॥
तयापुढें दोघे ठेवुनियां वाटी। घालिताती मिठी गळां त्याच्या ॥
देखोनियां जन खदखदा हांसती। यशोदे सांगती कौतुकाने ॥
भिंती धरूनियां उभे राहताती। आधार जगतीं ज्यांचा असे ॥
उभयतां जाती बिदीं खेळावया। कुरवंडी काया नामयाची ॥

'कृष्ण और बलराम दोनों भाई नन्हें-नन्हें शिशु हैं—वे मूतते हैं और उसीसे हाथ से भूमि लीपने लगते हैं, बीच-बीच में हाथ पेट से पोंछते जाते हैं। प्रातः दोनों बच्चे दातून लेकर दाँत साफ करते हैं। खेल-खेल में नन्दजी को चिढ़ाते हैं। भोजन करते-करते बाहर भागते हैं और कुत्ते को 'तू-तू' कहकर बुलाते हैं—दोनों उसके सामने कटोरी रख देते हैं और उसके गले में हाथ डालकर उसका आलिंगन करत हैं। यह देखकर लोग गद्गद होकर जोर-जोर से हँसते हैं और मैया यशोदा को जाकर सारा कौतुक बताते हैं। जो स्वयं जगत् का आधार है—जिसका सहारा विश्व को है—वे दीवाल पकड़कर खड़े होते हैं। फिर दोनों ही खेलने के लिए बाहर जाते हैं। उनकी इस सुन्दर लीला को देख-देखकर नामदेव मगन हैं। वे अपनी काया उन पर वार देते हैं, न्योछावर कर देते हैं।'

गोपियों के उलाहने का वर्णन मराठी सन्तों का प्रिय विषय रहा है। कोई नवनीत खाने का उलाहना दे रही है, कोई दही-दूध के मटके फोड़ देने की शिकायत कर रही है। कोई कृष्ण द्वारा गोशाला में बँधे बछड़े छोड़ दिये जाने पर लड़ रही है, तो कोई इसीलिए गुस्से में है कि उसने द्वार की रंगोली मिटा दी। नामदेव की गोपिका कहती है—

आम्हीं निजलों समस्त। काजळ मुखासी लावीत।
मेले आणूनियां सर्प। माझ्या पोरा दावी दर्प ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जब हम सब लोग सो रहे थे—इसने हमारे मुख में काजल लगाया और मरा हुआ सर्प लाकर मेरे बच्चे को उसे सुँघाया।' इस प्रकार के उलाहने गोपियाँ देती हैं। यह कृष्ण घुटनुओं से चलकर घर आता है और सबको त्रस्त कर देता है। इस प्रकार एक ओर तो गोपियाँ शिकायतें करती हैं, किन्तु दूसरी ओर नन्द-गृह में बाल-लीला कर दुंद मचाते श्रीकृष्ण को देखकर मोहित हो जाती हैं :

तळवे तळहात टेकत। डाव्या गुडघ्याने रांगत।
रंगणी रंगनाथ। तो म्यां देखिला सये॥

'सखी री ! मैंने तलुए टिकाकर बायें घुटने से चलते हुए उस नन्द-गृह के रंगमय आँगन में चलते हुए रंगनाथ को, श्रीकृष्ण को देखा है।'

नामदेव महाराज की तरह एकनाथ महाराज ने श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण-जीवन के कथा-प्रसंगों को रंगरंजित किया है—रसमय बनाया है। कृष्ण-जन्म, गर्गाचार्य की भविष्यवाणी, नन्द द्वारा विश्वरूप-दर्शन, कृष्ण भगवान् का चौर्यकर्म, बेनी-दाढ़ी का गाँठ देना, कृष्ण-गोपियों की एक-दूसरे के प्रति शिकायतें, यशोदा-राधा-संवाद, राधा-विलास, गोपियों को विरहावस्था, वन-क्रीड़ा, रास-क्रीड़ा, गोपियों के विविध खेल, कृष्ण का मथुरा में आगमन, वसुदेव-देवकी की कारागार से मुक्ति आदि अनेक प्रसंगों के द्वारा एकनाथ महाराज ने कृष्ण-चरित्र साकार किया है। इसके अतिरिक्त 'श्रीकृष्ण-माहात्म्य' नामक इनकी एक और छोटी-सी-काव्य-रचना है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम-भावना का स्वरूप-चित्रण करते हुए एकनाथ महाराज एक अभंग में कहते हैं—

भिंगाचे भिंगुलें खांद्यांवरि आंगुलें। नाचत तान्हुलें यशोदेचें॥
येती गौळणी करती बुझावणी। लागती चरणी कान्होबाच्या॥
गोविन्द बाळिया वाजविती टाळिया। आमुचा कान्होबा देवराव॥
कडदोरा बिंदली वाघनखें साजिरी। नाचत श्रीहरी यशोदेचा॥
पायीं घागरिया वाक्या साजरिया। कानींच्या बाळ्या ढाळ देती॥
एका जनार्दनीं एकत्व शरण। जीवें निंबलोण उतरती॥

'नन्हीं-नन्हीं आरसियों से सजाया हुआ नन्हा-सा आंगुला (झबला) श्रीहरि के कंधों पर अटका हुआ है और यह नयन-मनोहर यशोदा का शिशु नाच रहा है। गोपियाँ आती हैं और नन्हें-से बालकृष्ण को खूब खिलाती हैं, उससे लाड़ लड़ाती हैं और उन्हें परब्रह्म परमात्मा समझती हुई उनके चरण पकड़ती हैं। यह बाल गोविन्द हैं। उसे लेकर वे तालियाँ बजाती हैं, नाचती हैं, कहती हैं—यह कन्हैया, कान्होबा हमारा देवराव है, हमारा इष्टदेवता है। श्री हरि के कमर में कमरबन्द है, कडदोर हैं, गले में बिंदली, हँसुली, वघनखा शोभा पा रहे हैं। यह यशोदा का श्रीहरि मगन होकर नाच रहा है। इसके पैरों के आभूषण घागरी, वाकी आदि लुभावने रूप से सजे हुए हैं। कानों में पहनी हुई बालियाँ चम-चम चमक रही हैं। उनसे किरणें विकीरित हो रही हैं। जनार्दन शिष्य एकनाथ बालप्रभु के चरणों में एकात्मभाव से अनन्यतापूर्वक शरण है। गोपियों की तरह वे भी प्रभु पर से राई-नोन उतारते हैं—अपने-आपको न्योछावर करते हैं—बलिहारी जाते हैं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकनाथ महाराज की तरह तुकाराम महाराज भी अत्यन्त रुचिपूर्वक श्रीकृष्ण-चरित्र का गायन करते हैं। पण्ढरपुर के श्री विट्ठल को मराठी सन्त श्रीकृष्ण का बालरूप तो मानते ही हैं—इन बालकृष्ण की विविध लीलाओं में वे विशेष रूप से रम जाते हैं। गोकुल में श्रीकृष्ण का प्रकट होना, महाबळभट-प्रसंग, पूतना-शोषण, नवनीत की चोरी, यशोदा की श्रीकृष्ण को शिक्षा, गोपियों के उलाहने, राधा-विरह, गोपियों की विदेह-स्थिति, वृन्दावन की क्रीड़ाएँ—आदि विविध प्रसंगों का अतिशय मधुर और रसीला चित्र श्री तुकाराम महाराज प्रस्तुत करते हैं। वारकरी भक्तों का काला (अर्थात् द्वादशी का वन-भोजन—दही-चिउड़े का भोजन)-प्रसंग का कीर्तन श्री तुकाराम महाराज के कृष्ण-चरित्र-गायन से ही रसमय होता है। उनका एक अभंग नीचे दिया जा रहा है—

गोकुळींच्या सुखा। अन्तपार नाहीं लेखा।।
बाळकृष्ण नन्दाघरीं। आनन्दल्या नरनारी।।
गुढिया तोरणें। करिती कथा गाती गाणें।।
तुका म्हणे छन्दें। येणें वेधिलीं गोविंदें।।

'जब से गोकुल ग्राम में बालकृष्ण प्रकटे हैं गोकुल के सुख की कोई सीमा नहीं रही—उसका कोई लेखा-जोखा हो ही नहीं सकता। नन्द-गृह में बालकृष्ण को पाकर नर-नारी परमानन्द में विभोर हैं। उन्होंने अपने-अपने घर में ध्वजा-पताका लगायी हैं और वे प्रभु-कथा में रममाण हैं—उन्हींके गीत गाये जा रहे हैं। तुकाराम महाराज कहते हैं, इस गोविन्द ने अपने छन्द में, अपनी जकड़ में, अपनी लगन में खींचकर सबको सम्मोहित कर लिया है।'

वारकरी-सम्प्रदाय में तुकाराम महाराज के एक श्रेष्ठ अनुयायी सन्त निळोबाराय हैं। उन्होंने भी श्रीकृष्ण-लीला, गोपी-गीत, विरह-गीत, गोप-गोपियों के खेल, वन-भोजन-प्रसंग आदि वर्णन करने के निमित्त से श्रीकृष्ण-प्रसंगों का गायन किया है। श्रीकृष्ण के बचपन के सभी पराक्रम से भरपूर प्रसंगों का निळोबाराय ने उत्स्फूर्त वर्णन किया है। तुकाराम महाराज की परम्परा में आनेवाली कवयित्री बहिणाबाई कृष्ण-भक्ति की तीव्रता, श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट भावना, विरह-व्यथा आदि के लिए प्रख्यात हैं। उन्होंने भी श्रीकृष्ण की बाल-लीला का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के गोकुल के प्रति उनमें कितना अधिक आकर्षण है। वह कहती हैं—

धन्य तें गोकुळ धन्य तो गोपाळ। धन्य लोकपाळ पुण्यशील।।
धन्य तोचि देश धन्य तोचि वंश। जेथ हृषिकेश अवतरले।।
धन्य तीच माता धन्य तोचि पिता। धन्य कृष्ण नाथ ! ज्याचे कुशीं।।
धन्य त्या गोपिका कृष्ण तन्मयता। धन्य ती सरिता कृष्ण पाहे।।
धन्य वृन्दावन, धन्य गोवर्धन। चारी नारायण गायी सदा।।

'धन्य है वह गोकुल, उसमें रहनेवाले वे गोपाल धन्य हैं और उस ग्राम का पालन करनेवाले लोकपाल नन्द धन्य हैं—अत्यन्त पुण्यशील हैं वे, जो उनके घर कृष्ण प्रकटे। सचमुच वह देश, वह वंश अत्यन्त धन्य है—उनके यहाँ भगवान् हृषिकेश ने स्वयं अवतार धारण कर उन्हें कृतार्थ किया। प्रभु की माता धन्य हैं, पिता धन्य हैं, जिनकी गोद में कृष्ण प्रभु पले, बढ़े—उनकी धन्यता क्या वर्णित करें? कृष्ण-ध्यान में सदा तन्मय रहनेवाली वे गोपिकाएँ भी धन्य हैं। यमुना नदी भी धन्य है जिसका दर्शन प्रभु करते हैं। उसमें मज्जन-पान कर, तैरकर आनन्दित होते हैं। वह वृन्दावन धन्य है जहाँ प्रभु ने मनभावनी क्रीड़ाएँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की। वह गोवर्धन पर्वत धन्य है जिसे अँगुली पर धारण कर प्रभु ने भक्तों की रक्षा की और उन गौओं का तो कहना ही क्या? उन्हें तो सदैव प्रभु संग-संग लिये रहते हैं, चराते हैं।' बहिणाबाई ने अभंगों की तरह पदों में भी कृष्ण-रूप, उनके सौन्दर्य, उनकी लीला, उनका भक्ति-माहात्म्य आदि का मनभावन वर्णन किया है। **'यमुनेतटीं मांडियला खेळ** (अर्थात् यमुना-तट पर खेल रचाया) आदि अनेक पद भी उनके द्वारा विरचित हैं।

मराठी सन्तों ने अपनी कृष्ण-भक्ति अभंग-सदृश स्फुट काव्य-छन्द में अभिव्यक्त की। संक्षेप में इसका विवेचन ऊपर किया गया। उन्होंने उनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत पर आधारित बड़ी-बड़ी रचनाएँ और प्रबन्ध-काव्य भी लिखा है। घर-घर में आज भी उसका पारायण होता है। इन प्रबन्ध-काव्यों को देखने से पहले स्फुट काव्य का विवेचन एक अन्य दृष्टिकोण से करना आवश्यक है। अधिकांश मराठी सन्तों ने श्रीकृष्ण-चरित्र के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर उत्कट भाव से काव्य-रचना की है। परन्तु इनका चित्त अधिक रमता है श्रीकृष्ण के यमुना-तीर पर की गयी क्रीड़ाओं में। उनकी बाल-क्रीड़ा मराठी सन्तों के कृष्ण-काव्य का मुख्य विषय है। गोप-बालकों के साथ श्रीकृष्ण गाय-बछड़ों को लेकर यमुना-तीर पर जाते हैं। वहाँ गौएँ शान्तिपूर्वक चरती रहती हैं और श्रीकृष्ण बालकों के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हैं। आट्या पाट्या, हुतूतू (कबड्डी) हमामा, हुंबरी, कुरघोडी आदि खेलों में रम जाते हैं। जिस समत्व का आग्रह वारकरी सन्त करते हैं, उस समत्व की भावना का बीजारोपण इस बाल-क्रीड़ा में है। इन विविध प्रकार की क्रीड़ाओं में न कोई ऊँचा होता है न नीचा, न कोई अमीर होता है न कोई गरीब, न कोई छोटा होता है, न कोई बड़ा। खेल में सब समान होते हैं। कंधे से कंधा लगता है, कोई किसीका पैर खींचता है तो कोई किसी पर चढ़ बैठता है। इस समत्व की कल्पना साकार करनेवाली बाल-क्रीड़ाओं का सारे सन्त मनःपूर्वक वर्णन करते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज से लेकर तुकाराम महाराज, निळोबाराय तक सभी ने बाल-क्रीड़ा का वर्णन रुचि लेकर किया है। जमुनाजी की रेत में श्रीकृष्ण की बाँसुरी के स्वर से गौएँ लुब्ध हो गयीं और चरना तक भूल गयीं, उसका वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज उन्हें 'तल्लीन साचार कृष्ण-मूर्ति' (अर्थात् कृष्ण में तल्लीन उनके स्वर में, रूप में, तल्लीन कृष्ण-मूर्तियाँ ही हैं मानो) कहते हैं। एक अभंग में उनके श्रीकृष्ण कहते हैं—

गायी चालिल्या वनाप्रती। सवें पेंधा चाले सांगाती॥
वळी गोवळिया कान्होबा। यमुने पाण्या नेईं तूं बा॥

'वन में चरने के लिए गौएँ जा रही हैं—साथ में पेंधा नामक लँगड़ा गोप-बालक है। कान्होबा अर्थात् श्रीकृष्ण सभी गौओं को एकत्र कर रहे हैं और पेंधा से कहते हैं कि अब तू इन्हें यमुना-तीर पर पानी पिलाने ले जा।' श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया तो गोपों ने अपनी-अपनी लाठियाँ आधार के लिए टिकायीं। पर्वत के भार से या लाठियाँ पकड़े रहने से किसीकी गर्दन अकड़ गयी तो किसीका हाथ दुखने लगा—परन्तु श्रीकृष्ण के प्रेमवश किसीको उस कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। क्रुद्ध इन्द्र के द्वारा की गयी मूसलाधार वर्षा से श्रीकृष्ण ने समस्त गोकुल का रक्षण किया।

कल्पतरु की सघन छाया के तले परब्रह्मरूपी श्रीकृष्ण का तेज झलकने लगा, वह तेज नीलवर्ण का है तथा उनकी मुरली की ध्वनि से वेदों के अर्थ का बोध होता है। जिस-तिसके कर्मानुसार यह श्रीकृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवरूपी गौओं को हाँकता है। जब इनकी लाठी गौ की पीठ पर पड़ती है तो उसका कर्म समाप्त हो जाता है। श्रीकृष्ण के प्रसाद के लिए स्वर्ग के इन्द्र आदि देवतागण भी उत्सुक बने रहकर उनसे झगड़ते हैं। जो प्रेम ऋषि-मुनि-ब्रह्मादिकों को भी मिलना सम्भव नहीं है, वह इन गोप-बालकों को एकदम सहज रूप से यमुना-तीर पर मिल जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज इसका कौतुक एवं रसपूर्वक वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण का स्मरण करके सारे गोपाल नाचते हैं, खेलते हैं, आनन्द से थरथरा जाते हैं। नामदेवकृत पाळणे (पलना), जाते (चक्की), बागूल, हुंबरी, कुस्ती आदि भारूड (लोक-साहित्य) शैली में लिखी गयी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। एकनाथ महाराज ने दळण (पीसना), जाते (चक्की), कांडण (कूटना), पिंगा, फुगडी, टिपरी, विटीदांडू, चेंडूफळी, लगोरी, भोवरा, लपंडाव, सुरकांडी, एकीबेकी, झोंबी, उमान, हुतूतू (सभी तरह-तरह के खेल) आदि की रचना कर इस परम्परा को समृद्ध एवं समादरणीय बनाया। तुकाराम महाराज ने भी दळण, कांडण, अडसण (दलना, कूटना, फटकना) तथा तरह-तरह के खेलों यथा, फुगडी, लखोटा, हाल, मृदंगपाट्या, हमामा, हुंबरी, हुतूतू, टिपरी, कुरधोड़ी इत्यादि में सरस-सुन्दर बाल-क्रीड़ा का चित्र उपस्थित किया है। यमुना-तीर पर खेलनेवाले इन बच्चों के भाग्य की सराहना करते हुए तुकाराम महाराज कहते हैं—

तुका म्हणे सुख घेतलें गोपाळी। नाचती कांबळी करूनी ध्वजा ॥
करूनियां टिरी आपुल्या मादळ। वाजविती टाळ दगडांचे ॥
दगडांचे टाळ कोण त्यांचा नाद। गीतीं गातां छंद ताल नाहीं ॥
ताल नाहीं गातां नाचतां गोपाळ। घननीळ सांवळा तया मध्यें ॥
मध्यें जया हरि तें सुख आगळें। देहभाव काळे नाहीं तया ॥
तयासी आळगी आपुलियां करीं। जाती भूमीवरी लोंटागणी ॥
निजभाव देखे जयांचिये अंगी। तुका म्हणे संगी क्रीडे तयां ॥

'तुकाराम महाराज कहते हैं कि गोपालों ने सच्चा सुख—ब्रह्मसुख अनुभव किया—वे अपने-अपने कंबल सिर पर उठाकर मानो उनकी ध्वजा बना करके ऊपर उठाकर नाचते हैं। वे अपने पृष्ठभाग को ही जैसे वाद्य बना लेते हैं और बजा-बजाकर नाचते हैं। वे आसपास पड़े पत्थर उठा लेते हैं और उन पत्थरों से ही ताल पकड़ते हैं, टाळ (कर-वाद्य) बनाकर उन्हें खूब बजाते हैं। भला पत्थर ही के तो टाळ हैं, कर-वाद्य हैं—उसका नाद होगा भी क्या ? गोपालों के गीतों में न छन्द होता है, न ताल। गोपाल हुलस-हुलसकर नाचते हैं—परन्तु उसमें ताल नहीं होता—हाँ, उनके बीच में, उनके मध्य घननील साँवला अवश्य होता है। और जहाँ मध्य में ही श्रीहरि हैं वह सुख तो अनोखा ही है—वहाँ न देहभाव है, न कालभय है। उनका सुख उनके अपने हाथ में ही है। सारे लोग प्रभु के सामने भूमि पर लोट-लोट जाते हैं—साष्टांग दण्डवत करते हैं। वस्तुतः प्रभु जीव में निजभाव, देहबुद्धि से विरतभाव, देखते हैं—उन्हींके साथ प्रभु क्रीड़ा करते हैं। इन गोपालों ने इस प्रकार जीवभाव छोड़कर परमात्मभाव धारण कर लिया है—प्रभु-भक्ति में वे लीन हो चुके हैं।'

यमुना-तीर पर खेल इतने में ही समाप्त हो जाता हो ऐसा नहीं है। खेल-खेलकर लड़के थक जाते हैं। उन्हें बड़ी जोर की भूख लग जाती है। भरी दुपहरी में सूरज सिर पर आ जाता है। सारे गोपाल एक बड़े-से वृक्ष की छाया में गोलाकार बनाकर बैठ जाते हैं। बीच में श्रीकृष्ण होते हैं। प्रत्येक की खाने की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पोटली खुलती है और मुख्य बात तो ऐसी है कि ये सारी पुटलियाँ एकत्र कर भोजन की तैयारी होती है। वे सारी सामग्री को मिलाकर—एक करके उनका काला (वन-भोजन), पत्री तैयार करते हैं। श्रीकृष्ण जाति-पाँति किसी का भी विचार न करके सभी के मुख में काला के कलेवे का ग्रास रखते जाते हैं। मराठी सन्तों ने इस सहभोज का अत्यन्त रुचिपूर्वक वर्णन किया है और वारकरी कीर्तनकार अपने रसीले कीर्तनों द्वारा उसे आज भी जीवन्त कर देते हैं। **'काला मांडिला व काला मांडिला वो।'** (अर्थात् प्रभु ने सहभोज (वन-भोजन) का साज सजाया है, जी, साज सजाया है) कह-कहकर सन्त मुक्तकण्ठ से उसका गौरव-गान करते हैं।

नाना परीचें शोभती दही भात।
पंक्ती बैसविल्या पेंधा बोबडा वाढीत ।।

'प्रभु ने भोजन के लिए गोपालों की। पंक्ति तैयार की सभी एक करीने से कतार में बैठ गये। वहाँ तरह-तरह के दही-भात भोजन की रुचिरता और आकर्षण बढ़ा रहे थे, शोभा पा रहे थे। प्रभु का प्यारा गोपाल तोतला पेंधा पंक्तियों में भोजन परोस रहा था।' इन भोजन-पंक्तियों का यह सुख अवर्णनीय है। भोजन आरम्भ करने से पहले सारे गोप-बालक भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करते हैं। एकनाथ महाराज कहते हैं—

बैसविती हरी वस्त्र घडीवरीं। पूजा करती बरी पुष्पपत्रें ।।
धरुनी गळां पाले माळा त्या वाहाती। गज रें गाचती पुढे येरू ।।
टिरिया मांडिया वाजवीती धाय। हरुषें नाचताहे देवराय ।।

'सारे गोपाल प्रभु, श्री हरि को वस्त्र बिछाकर उस पर बैठाते हैं। वन से पत्र-पुष्प लाकर उनकी मनभावनी पूजा करते हैं। उनके गले में प्रेम से आलिंगन कर उन्हें पत्री की, वृक्षों के पत्तों की, फूलों की मालाएँ पहनाते हैं और उनके आगे हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करते हैं। उस आनन्द-महोत्सव में वे अपने पृष्ठभाग, जाँघ आदि को ही वाद्यों की तरह प्रेम-निर्भर होकर बजाते हैं। उनके इस प्रेमोल्लास को देखकर देवराय प्रभु हर्षभरित होकर नाचते हैं। झूम-झूमकर नाचते हैं।' इस प्रीति भोज से गोपाल अत्यधिक आनन्दित होते हैं। **'उच्छिष्ट तें खाये तयाचेनि हातें।'** अर्थात् 'वह प्रभु के हाथ से उनका जूठा प्रेमपूर्वक खाते हैं, माँगकर खाते हैं।' इस प्रकार की एक अतीव सुख की भावना श्री एकनाथ महाराज ने अंकित की है। इस अवर्णनीय आनन्द का चित्रांकन करते हुए तुकाराम महाराज कहते हैं—

बैसवुनी फेरा। गडिया मध्यभागीं हरी।।
अवघियांचे करी। समाधान सारखे ।।
पाहि तो देख समोर। भोगी अवघे प्रकार ।।
हरुषे झेली कर। कवळ मुखीं देती ते ।।
बोले बोलतिया सवें। देतील ते त्यांचे घ्यावें ।।
एक एका ठावें। येर येरा अदृश्य ।।
तुका म्हणे देवा। बहु आवडीचा हेवा ।।
कोणाचिया जीवा। वाटों नेदी विषम ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'श्री हरि सारे सखाओं को गोलाकार बैठाते हैं और स्वयं बीच में बैठते हैं—प्रभु सबके मन का समाधान करते हैं—उनके यहाँ ऊँच-नीच का भेदभाव है ही नहीं। देखो, वे प्रभु सामने ही हैं—सारे भोजनों का भोग कर रहे हैं। वे हर्षनिर्भर सखाओं के हाथों से ग्रास ग्रहण करते हैं। सभी गोपों से वे बोलते हैं—जो उनसे बोलते हैं वे उनसे बोलते हैं और गोप-बालक जो देते हैं वही वे लेते हैं। वह सारा प्रेम और प्रेम-सुख जिसका उसको ही पता पड़ता है—शेष लोगों के लिए वह अदृश्य रहता है—वस्तुतः प्रभु हर गोप-गोपी से अलग-अलग बात करते हैं--उनकी इस व्यापकता का रहस्य सभी समझ नहीं पाते, परन्तु सुखी सभी होते हैं। तुकाराम महाराज कहते हैं, इस प्रभु को भक्त की रुचि का बहुत ही ध्यान है—पागलपन की सीमा तक आसक्ति है। यह प्रभु किसीके भी हृदय में विषमभाव, दुराव तथा दुःख पैदा होने ही नहीं देता है—ऐसी इसकी महिमा है।'

'वरिलें सांवळे परब्रह्म' (साँवले परब्रह्म का वरण किया।)

मराठी सन्तों की कृष्ण-भक्ति की और एक चरमावस्था है। परमेश्वर को अपना सर्वस्व समर्पित करें, तन, मन, धन सब कुछ उस पर वारकर उसे स्वयं को अर्पित कर दें। सारे काम हरि-चिन्तन के माध्यम से ही हों। पीसते हुए, कूटते हुए, काम करते हुए वृत्ति सदैव परमात्ममय हो—यही उन्होंने भक्ति की अन्तिम अवस्था मानी है। इसी देह और इन्हीं नयनों से मुक्ति का महोत्सव साधु-सन्त नित्य ही मनाते हैं—भोगते हैं। इस प्रेम-भोग का आदर्श कौन सा ? नारदजी ने बताया है, 'यथा व्रजगोपिकानाम्' गोकुल ग्राम की गोपिकाओं की तरह सब कुछ भूलकर भगवान् की शरण गहनी चाहिए। इन गोपिकाओं पर, ग्वालिनियों पर मराठी सन्तों ने काफी कुछ लिखा है। ज्ञानेश्वर, नामदेव, सेनान्हावी (सेना नाई), नामदेव पुत्र विठा, चोखामेळा, भानुदास, रामदास आदि अनेक सन्तों द्वारा विरचित गोपी-गीत और विरह-गीतों का स्वतन्त्र महत्त्व है।

जे शृंगारी आसक्त। त्यांसि हाचि रस प्रस्तुत ॥
सेव्य असून त्यांचें चित्त। स्वनिष्ठ करावें ॥

'जो स्त्री-पुरुष शृंगारी मनोवृत्ति के हैं, कामासक्त हैं—उनके लिए यह रस ठीक है—परन्तु यह रस भगवान् में लग जाने से—उनका चित्त सेव्य के प्रति निष्ठावान् हो—स्वनिष्ठ हो, ऐसा ही करें।' यह भी इस प्रकार की काव्य-रचना का एक कारण हो सकता है।

ज्ञानेश्वर महाराज के गोपी-गीत एवं विरह-गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। भगवान् का अपने भक्त पर कितना प्रेम है, यह दर्शाने के लिए ज्ञानेश्वर महाराज कह जाते हैं :

अर्जुना तो भक्तु। तोचि योगी तोचि मुक्तु ॥
तो वल्लभा मी कान्तु। ऐसा पढिये ॥

—ज्ञाने० १२.१५६

'हे अर्जुन ! जो मेरा भक्त है वही योगी भी है, वही मुक्त है—वस्तुतः यह प्रियता इतनी अधिक है कि जैसे वह वल्लभा (पत्नी) है और मैं कान्त (पति) अर्थात् यह पति-पत्नी के सम्बन्ध सदृश है।' भक्त मेरी पत्नी है और मैं उसका पति हूँ, यह ज्ञानेश्वर महाराज कह तो जाते हैं, परन्तु फिर थोड़ा सकपका जाते हैं। पता नहीं, अर्जुन को यह दृष्टान्त पसन्द पड़े न पड़े, इस विचार से वे पुनः कह उठते हैं :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरी पढियंताची काहाणी। हे भुलीची चभारणी ॥
इये तंव न बोलणी। परी बोलवी श्रद्धा ॥
म्हणोनि गा आम्हां। वेगा आली उपमा ॥
येम्हळीं काय प्रेमा। अनुवादु असे ?

—ज्ञाने० १२.१५८,५९

'यह रुचि की, प्रेम की कहानी है—कुछ भी क्यों न कहा जाय—वह कम ही रहता है, भूल-चूक बनी ही रहती है। वस्तुतः यह कहना ही नहीं चाहिए। परन्तु अतीव श्रद्धावश वाणी बिना रुके फूट ही पड़ती है। इसीलिए तो हम हड़बड़ी में, प्रेमोर्मि में यह उपमा दे बैठे—वैसे देखा जाय तो प्रेम क्या अनुवादित हो सकता है ? उसकी क्या उपमा दी जा सकती है ? नहीं, नहीं।'

ज्ञानेश्वर महाराज के अनुभवामृत का प्रथम प्रकरण देव और देवी, शिव और शिवा की रमणीय एकात्मता पर ही रचित एवं आधारित है। ज्ञानेश्वरजी ने अपने अभंगों में श्रीकृष्ण के अनुरागजन्य प्रेम की विविध छटाएँ व्यक्त की हैं। प्रत्यक्ष **'बाप रखुमादेवी वर'** प्रियतम बना देखकर वह सन्तुष्ट हो गये हैं। एक अभंग में वह कहते हैं, 'सयाने के घर मैं दासी बनकर रहूँगी। परन्तु दूसरे के यहाँ नहीं जाऊँगी। वन में गौएँ चरानेवाला भगवान् श्रीकृष्ण ही मुझे स्वामी के रूप में चाहिए। तब तो मैं ऐसे आनन्दित हो जाऊँगी, जैसे सुवर्ण पर्वत मिल गया हो। उसके लिए मैं पाँच दिडकी का मोटा-झोटा वस्त्र पहनूँगी। उस प्रभु की जूठन खाऊँगो। उसकी दासी की दासी हो जाऊँगी। परन्तु उसके घर में प्रवेश पा लूँगी। मैं उसकी दहलीज को सिरहाना बना लूँगी। अपने बालों से मैं उसका आँगन झाड़ूँगी।' **'तुज वीण एकली रे कृष्णा न गमे राती'** (अर्थात् हे कृष्ण ! तुम्हारे बिना रात में अकेली मुझे अच्छा नहीं लगता, मेरा मन नहीं लगता।) इस प्रकार के व्याकुल उद्गार ज्ञानेश्वरजी के कण्ठ से फूट पड़ते हैं। उनके मन की व्याकुलता पराकोटि की हो जाती है। वह कहते हैं : 'यह चन्द्रमा सचमुच बड़ा शीतल है, परन्तु मुझे उससे जलन हो रही है, मुझे चन्दन मत लगाओ, मेरे अंग में दाह होता है, मुझे हवा मत करो। मेरा शरीर विरह में जल रहा है क्योंकि मेरी सेज पर, शय्या पर आज श्रीकृष्ण नहीं हैं। मेरे अंगों का दाह-निवारण करनेवाले उस नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण परमात्मा को लेकर आओ, भला। उसके बिना यह तालाबेली शान्त नहीं होगी।'

उन्हें फिर प्रियतम के आगमन के शुभ शकुन प्रतीत होते हैं। शुभशकुन बतानेवाले कौए से वह कहते हैं, 'मेरा कृष्ण आनेवाला हो तो कागा रे ! तू उड़ जा। मैं तेरे चरण सोने से मढ़ दूँगी, तेरे मुख में दही-भात का ग्रास दूँगी।' इस प्रकार की उत्कट तालाबेली के पश्चात् ज्ञानदेव का चित्त शान्त हो जाता है। **'मन निवाले, समाधान झाले।'** (अर्थात् मन शान्त हुआ, मन का समाधान हुआ।) आदि उद्गार वे व्यक्त करते हैं। सखा साँवले श्रीकृष्ण को देखते ही मन की तालाबेली समाप्त हो जाती है। वह शान्त होकर कृष्णरूप बन जाता है। वासना वहीं की वहीं समाप्त हो जाती है। कानों से सुनना, मुख से बोलना, आँखों से देखना सारे व्यवहार जैसे बन्द हो जाते हैं—साँवले कृष्ण का परब्रह्मरूप ही शरीर में अवतीर्ण हो जाता है। रात-दिन कृष्ण के पास ही रहने से उसका कौतुक कहाँ तक बखान किया जाय ? मैया री ! मैं तो श्रीकृष्ण-स्वरूप में अर्थात् सुख के समुद्र में पूरी तरह डूब गयी। बहुत ही प्रेमपूर्वक मैं उसके घर में गयी तो वह सहजरूप से मेरे हृदय में आ बैठा। उससे ऐक्य हो जाने के कारण मेरा जाति-कुल ही खो गया, समाप्त हो गया। अब मैं उस श्रीकृष्ण के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं जानती। सभ्य स्त्रियों का पर-पुरुष से प्रेम करना उचित नहीं—यह तुम कितनी बार बताओगी ? मैं तो उस कृष्ण परमात्मा के रंग में रँग गयी हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार की आतुरता, व्याकुलता और तृप्ति नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, निळोबाराय सभी ने अपने अभंगों में व्यक्त की है। नामदेव महाराज ने **'मांडियेला खेळ मन्मथाचा'** (अर्थात् मन्मथ का खेल रचाया) कहकर रास-क्रीड़ा का वर्णन किया है। गोपियों के विरह का वर्णन अत्यन्त तीव्रता से किया गया है। इस दृष्टि से उनके 'राधाविलास' का एक गोपी-गीत उल्लेखनीय है :

'जीवाचा जीवनु मज भेटवा हरि। लागलें प्रेम पिसें होऊनि। दासी कामारी' (अर्थात् सखियो ! जीव का जीवन वह श्री हरि, उससे मुझे मिलाओ—मैं उसका दासी-काम, सेवा-टहल करनेवाली हो गयी हूँ—मैं उसके प्रेम में पागल हूँ।) यह कहकर वे व्याकुल हो जाते हैं। एक गोपी का शब्दचित्र खींचते हुए वे कहते हैं :

कृष्णा अनुसंगें रंगली कामिनी। कामधामें गेली गुणा विरोनी।

'यह कामिनी—यह गोपिका श्रीकृष्ण के संग-साथ में ऐसी रँग गयी है—डूब गयी है कि यह काम-धाम की तो रही ही नहीं—इसके त्रिगुण भी समाप्त हो गये अर्थात् इसकी मनोवृत्ति त्रिगुणातीत हो गयी।'

इसी प्रकार की तल्लीनता एकनाथ महाराज के तथा तुकाराम महाराज के अभंगों में पायी जाती है। एक प्रसंग का वर्णन करते हुए नाथ महाराज कहते हैं :

वेधल्या गोपिका सकळ। गोवळ आणि गोपाळ॥
गायी म्हशी सकळ। तयां कृष्णाचें ध्यान॥

'इस प्रभु श्रीकृष्ण के ध्यान में सारी गोपिकाएँ, गोप, गोपाल, गौएँ, जैसे सभी तल्लीन हो गये हैं—सबको एक उन्हींका ध्यान है।'

ऐसी ही एक गोपी कहती है **'येई येई कान्हा देई आलिंगन।'**—कन्हैया ! आ रे आ, मुझे आलिंगन दे।

तुकाराम महाराज व निळोबाराय के गोपी-गीत और विरह-गीत अधिक तीव्र वृत्ति के हैं। **'उदास या सुना गौळियांचा'** (गोपों की ये वधुएँ उदास हैं) कहकर तुकारामजी गोप-वधुओं की श्रीकृष्ण-लगन वर्णित करते हैं—क्योंकि उन सभी के मन हरिरूप हो गये हैं। उनकी निष्ठा **'वरिलें सांवळें परब्रह्म'** (मैंने साँवले परब्रह्म का वरण कर लिया है) यही थी। वे कहती हैं :

वाळो मज जन म्हणोत शिंदळी। परि हा वनमाळी न विसंबे।

(लोग मुझे जातिहीन कर दें, व्यभिचारिणी कहें, परन्तु मैं वनमाली श्रीकृष्ण को एक क्षण भी नहीं छोड़ूँगी।) इसी प्रकार **'आधिल्या भ्रतारें काम नव्हें पुरा। म्हणोनि व्यभिचारा टेकलिये'** (मेरा पूर्व पति था। उससे काम पूर्ण नहीं होता था—संसार में मन नहीं रमता था—इसीलिए मैं व्यभिचार करने के लिए प्रवृत्त हो गयी।) और **'हाचि नेम आतां न फिरे माघारी। बैसलें शेजारी गोविंदाच्या।'** (अब मेरा यही निश्चय है कि मैं पुनः पीछे नहीं लौटूंगी—मैं गोविन्द के निकट जाकर बैठ गयी हूँ।) **'विसरलें कुळ आपुला आचार। पती भावें दीर घर सोय।'** (मैं अपना कुल, आचार सब भूल गयी हूँ—पति, भाई, देवर, घर, सबकी याद भूल गयी हूँ—मुझे कहीं कोई बाँध नहीं सकता।) इतनी तीव्रता व्यक्त करनेवाला धैर्य तुकाराम महाराज को कथाओं मे है।

यही आवेग, यही तालाबेली, यही तड़प, यही मिलन-माधुरी निळोबाराय के अभंगों मे भी पायी जाती है। वे कहते हैं :

देतां आलिंगन नंदाच्या कुमारा। पडेल उतार हे वाचेल सुन्दरा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(नन्दकुमार को आलिंगन देने पर ही यह सुन्दरी बच पायेगी— इसे चैन मिलेगा।) क्योंकि :

करितां तया कामधाम। तमाळ श्याम ध्यानीं मनीं।

(काम-धाम करते हुए इन गोपिकाओं के ध्यान में, मन में सदैव एकमात्र तमाल वृक्ष-सदृश श्याम घनश्याम ही रहता है।) इस प्रकार की भाववृत्ति निळोबा चित्रित करते हैं।

अमृत-मधुर कृष्ण-गीत

साधु-सन्तों के इन स्फुट, परन्तु प्रगाढ़ अनुभवसिद्ध वचनों के पश्चात् श्रीकृष्ण-चरित पर विरचित प्रबन्ध-काव्यों का महत्त्वांकन अपेक्षित है। परन्तु इससे पूर्व एक अन्य दिव्य-विधा का विवेचन आवश्यक है। महाराष्ट्र में घर-घर गाये जानेवाले अनेक अत्यन्त रसीली और भावभक्तिपूर्ण रचनाएँ--श्रीकृष्ण-सम्बन्धी गीत मिलते हैं। इनके रचयिता अज्ञात हैं। भूपाली (प्रात समय गाने के लिए), आरती, पद, धावा (आर्तरचना), भारुड (लोक-साहित्य प्रकार) आदि विविध माध्यमों में यह स्फुट रचना विरचित है। **'उठीं गोपालजी जाय धेनूंकडे'** (उठिये गोपालजी, गैया की ओर जाइये), **'उठीं रे गोपाळा उपाडी स्वरूप लोचना'** (उठिये गोपाल, अपने स्वरूप-लोचन खोलिये), **'उठीं उठीं बा पुरुषोत्तमा'** (हे पुरुषोत्तम! उठिये, उठिये), **'उठोनियां प्रातःकाळीं म्हणे यशोदा मुरारी। गोपाळ वाट पहातां उभे तुझ्या द्वारीं'** (प्रातःकाल उठकर यशोदा कहती हैं—हे मुरारी! द्वार पर ग्वाल तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़े हैं), **'उठि उठि बा कान्हया'** (कन्हैया! उठिये, उठिये), **'उठा उठा हो मुरारी'** (हे मुरारि! उठो, उठो) आदि अनेक भूपालियों से महाराष्ट्र में सुबह आँख खोलती हैं। **'काकड़ा झाला आतां मुख प्रक्षाळा'** (ब्राह्ममुहूर्त की आरती काकडा आरती हुई। अब उठिये, मुख धोइये।) इस पंक्ति से नित्य प्रातः श्री हरि जगाये जाते हैं। नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि के अतिरिक्त विठ्ठल बिडकर, केशवस्वामी, गोसावी नन्दन, उद्धव चिद्घन, मोरोपन्त, अमृतराय, नरहरी, रमावल्लभदास, रामानन्द आदि द्वारा विरचित कृष्ण-सम्बन्धी पद प्रख्यात हैं।

स्तोत्र, अष्टक, पाळणे (पलना), विडे (पान आदि विधाओं से भी गीतकाव्य कृष्णमय बन गया है। **'ये ये कृष्णा त्वरित धांव घे'** (आ, आ कन्हैया, दौड़कर सुध ले), **'धनु वाजे घुणघुणा'** (घन घनघन बजता है), **'कृष्णा थमाल ले'** (कृष्णा सँभाल रे), **'दोनो टिपरी एकाचे नाद'** (टिपरियाँ दो नाद एक) इस प्रकार के असंख्य गीतों से महाराष्ट्र कृष्णमय बन गया। विगत पीढ़ी की प्रेमाबाई का यह पद महिलाओं में अत्यन्त लोकप्रिय है :

गडचानों, कृष्णगडी अपुला। यमुनाडोहीं बुडाला॥
कालिया डसेल कृष्णाला। होईल विषबाधा त्याला॥
हाका मारी अपुल्याला। तुम्हीं का स्वस्थपणे बसला ?
आता कोण काढिल त्याला ? यमुनाडोहीं बुडाला॥
गाई त्याविण हंबरती। वासरें स्तनपान न करिती॥
यापरि गोप सर्व रडती। मुखानें कृष्ण कृष्ण म्हणती॥
आतां काय भेटेल आपुल्याला। यमुनाडोहीं बुडाला॥
यशोदा पुसल जरि हरिला। तरि मग काय सांगू तिजला ?
नन्द मज म्हणेल त्वा नेला। हलधर मारिल रे मजला !
आतां काय जावें गोकुळाला। काळजी प्रेमाबाईला॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हे सखागण ! हमारा सखा श्रीकृष्ण जमुना के दह में डूब गया है। वहाँ का वह कालिया नाग उसे दंश करेगा ना ? उसे विषबाधा होगी। वह हमें पुकार रहा है। तुम सभी शान्त कैसे बैठे हो ? अब उसे जल से भला कौन निकालेगा ? वह यमुना के दह में डूब गया है। उसे न पाकर गौएँ रँभा रही हैं—बछड़े थन में दूध नहीं पी रहे हैं और सारे गोप रो रहे हैं—मुख से 'कृष्ण-कृष्ण' कह रहे हैं। क्या अब वह हमें मिल पायेगा ? वह यमुना के दह में डूब गया है। माँ यशोदा हरि को पूछेगी। तब मैं उसे क्या बताऊँगा ? नन्द मुझसे कहेंगे कि तुम्हीं उसे ले गये थे। उसका भय्या हलधर उसे न पाकर मुझे पीटेगा। अब गोकुल ग्राम में क्या जायँ ? जाने का मन ही नहीं है। यही चिन्ता प्रेमाबाई को सता रही है।'

पण्डित कवियों की कृष्ण-भक्ति

मराठी साधु-सन्तों की स्फुट कविता कृष्ण-प्रेम से, भावभक्ति से रंजित है, परन्तु श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र-वर्णन अथवा उनकी लीलाओं का विस्तृत निरूपण प्रबन्ध रूप में, विशेष रूप से मराठी पण्डित कवियों ने किया है। इस दिशा में सर्वप्रथम ज्ञानेश्वर महाराज की गीता-टीका, भावार्थदीपिका अथवा ज्ञानेश्वरी का नाम आता है। श्री प्रभु की वाङ्मयी मूर्ति गीता को पहले ज्ञानेश्वर महाराज ने, बाद में वामन पण्डित ने मराठी में लाकर नये युग का प्रारम्भ किया। भागवत के दशम और एकादश स्कन्ध पर मराठी पण्डितों ने विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। बहिरा जातवेद द्वारा लिखित दशम स्कन्ध पर टीका लगभग तीस हजार ओवियों की है और वह 'बहिरवी टीका' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हींकी एकादश स्कन्ध पर भी टीका है। यह मत शोधकों द्वारा प्रकट किया गया है।

इसके बाद एकनाथ महाराज का 'भागवत' श्रीकृष्ण-भक्ति के तात्त्विक और आख्यानात्मक वर्णन से युक्त है। श्रीकृष्ण द्वारा प्रवर्तित भक्ति की महिमा, भागवत-धर्म का महत्त्व, गोपियों की मनोवृत्ति, विवेक, वैराग्य, अवधूत-वृत्ति आदि अनेक विषयों का वर्णन एकनाथ महाराज अपनी भागवत-टीका में करते हैं। गोपिकाएँ कृष्णमय किस प्रकार बनीं ? इसका विवेचन करते हुए वे कहते हैं :

एकोनि माझें वेणुगीत। गोपिका सोडूनि समस्त ॥
निज देहातें न सांभाळित। मज गिवसीत पातल्या ॥
सांडूनि पतिपित्यांची चाड। न धरोनि वेदशास्त्राची भीड ॥
माझे ठायीं निजभान दृढ। प्रेम अति गोड गोपिका ॥
पुत्रस्नेह तोडुनि धावें। विधितें रगडूनी पायें ॥
माझे आवडीचेनि लवलाहें। गोपिका मज पाहे पावल्या ॥

(१२.१०८–११०)

'मेरा बाँसुरी-वादन वेणुगीत सुनते ही सारी गोपिकाएँ सब कुछ छोड़कर, अपनी देह को भूलकर उसकी ओर न देखते हुए—मेरी ओर दौड़ पड़ीं और उन्होंने मुझे पाया। उन्होंने अपने पति और पिता की कोई परवाह न की। वेद-शास्त्रों का कोई भय-संकोच नहीं माना—किसीके प्रति कोई रुचिप्रियता न रखते हुए—उन्होंने केवल मेरे प्रति ही अपना ध्यान एकाग्र कर दिया और दृढ़तापूर्वक किया। ये गोपिकाएँ अत्यन्त प्रिय और मधुर प्रेम में रची-बसी हैं। इन गोपिकाओं ने पुत्र-स्नेह को तोड़ दिया और दौड़ पड़ीं, विधि ने जो विधान किया है, उस ब्रह्मा को भी पैरों से कुचल दिया—अपना भाग्य-लेख मिटा दिया और मेरे प्रति इस अनन्य अत्यन्त प्रियता के कारण वे सारी गोपिकाएँ क्षणमात्र में मुझमें लीन हो गयीं और मुझे पाने में सफल हुईं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहिरा जातवेद भी, एकनाथ महाराज की तरह ही कृष्ण-भक्ति में रँगे हुए हैं। 'नित्यानन्द दीपिका' के रचयिता शिवकल्याण ने भागवत के दशम स्कन्ध पर टीका लिखी है। इस टीका के कृष्णजन्म-पंचाध्यायी, रासपंचाध्यायी आदि कुछ भाग उपलब्ध हैं। उनकी स्पष्ट घोषणा है—**'आमुचे परंपरागत श्रीकृष्णचि कुळदैवत'** (परम्परा से श्रीकृष्ण ही हमारे कुलदेवता हैं)। रमावल्लभदासजी ने तो कृष्ण-भक्ति का एक आचारधर्म ही प्रवर्तित किया। एकनाथी भागवत की प्रति देखकर उन्होंने उद्गार प्रकट किये कि **'भाग्य आमुचें परमाद्भुतों श्रीभगवंते कृपा केली'** (हमारा भाग्य सचमुच परम अद्भुत है और श्री भगवन्त ने ही यह कृपा की है।) 'आवडीमल' और 'श्रीकृष्ण जयन्ति व्रतोत्सव भजन' नामक इनकी रचनाएँ अभी भी कर्नाटक में प्रख्यात हैं। प्रातःस्मरण, भूपाळ्या (भूपराग में आवद्ध प्रातःगान की रचनाएँ), काकड़ आरत्या (ब्राह्म मुहूर्त की पूजा की आरतियाँ), गोकुल की महिमा, गोप-गोपियों का भाग्य, कृष्ण-जन्म, अनेक भजन, पद आदि से रमावल्लभजी का काव्य समृद्ध हुआ है। श्रीकृष्ण-विरह की व्यथा व्यक्त करते हुए वे कहते हैं:

सखया, कृष्णा तुजविण कोणी नाहीं रे।
तूं धांव लवलाहो रे, तूं मनीं माझ्या राही रे।
तुजविण मी तव दीन रे, तू जळ मी तव मीन रे।
मी तुजला पाहीन रे। तुजमाजी राहीन रे।

'हे सखा, हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे बिना मेरा कोई है ही नहीं रे! तुम क्षणभर भी न गँवाओ, बस, दौड़कर आओ और मेरे मन में रहो। तुम्हारे बिना मैं दीन-हीन हूँ, अस्तित्वहीन हूँ, प्रभु! तुम जल हो तो मैं तुममें रहनेवाली मछली हूँ। प्रभु! अब मैं तुम्हें सदा-सर्वदा देखा करूँगा, तुममें ही रहा करूँगा, प्रभु!'

वामन पण्डित, विठ्ठल, नागेश, मध्व मुनीश्वर, अमृतराय आदि की कृष्ण-प्रेमविषयक आख्यानात्मक कविता, प्रबन्ध-काव्य, पद आदि मराठी की कृष्ण-भक्तिपरक अमर कृतियाँ हैं। देवनाथ, दयालनाथ, विठ्ठलनाथ आदि की पद-रचना में भी श्रीकृष्ण-भक्ति की प्रेममाधुरी अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी है। **'ब्रह्म गोकुळांत नांदतें। नन्द यशोदांगणीं रांगते'** (ब्रह्म गोकुल में निवास करता है और नन्द-यशोदा के आँगन में घुटनुओं से रेंगता है), **'हरीच्या वियोगें माय। झाली पिशी कसें बोलू तरि काय?'** (हरि के वियोग म माता एकदम पागल जैसी हो गयी हैं—उसके विरह का क्या वर्णन करूँ?), **'कमलनयन हरी दावा गे। सयांनों'** (री सखियो! मुझे कमलनयन श्रीकृष्ण के दर्शन कराओ ना!), **'हरीचा वियोग मला साहेना साहेना बाई।'** (इन श्रीहरि का विरह मुझसे नहीं सहा जाता, नहीं सहा जाता मैया री!) आदि पद-रचनाएँ विठ्ठलकवि की कृष्ण-भक्ति का सूत्र सुदृढ़ करती हैं। गोकुल में होनेवाली शरारतें, दही-दूध की चोरी, मथुरा के बाजार में जानेवाली ग्वालिनें, गोपियों के उलाहने, यशोदा का वात्सल्य, कृष्ण क नाना खेल आदि पर मध्व मुनीश्वर ने अत्यन्त मधुर और रसीले पद लिखे हैं। अमृतरायजी ने भी कृष्ण-लीला, मृत्तिका-भक्षण, वत्सहरण, राधा-वर्णन, चन्द्रावली, रासक्रीड़ा, कृष्ण-माहात्म्य आदि विविध विषयों पर स्फुट पद-रचना की है। गोपियों के उलाहने, मुरली, विरह-भावना आदि विषयक देवनाथ की कविता है। **'सख्यानों, जा जा, गे हरि लवकर आणा'** (सखियो, जाओ, जाओ, जल्दी हरि को लेकर आओ), **'चाल चाल चाल चाल त्वरा करुनि ये नन्दाचे बाळी'** (चल, चल, जल्दी चल, नन्द के बालक को जल्दी चलने के लिए कहेंगे) इस आशय के अनेक भावपूर्ण पद विदर्भ में गुनगुनाये जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीता का यथार्थ अर्थ बतलाने का प्रयत्न करनेवाले वामन पण्डित ने भागवती कथाओं के आधार पर बहुत से स्फुट प्रकरण श्लोकबद्ध किये हैं। नाम-सुधा, कृष्ण-जन्म, बाल-क्रीड़ा, गोरस-हरण, उलूखल-बन्धन, नुक्तक वनसुधा, हरिविलास, वेणुसुधा, रुक्मिणीविलास, मुकुन्दविलास आदि उनके कृष्णपरक काव्य हैं और राधाविलास, राधाभुजंग, भामाविलास, नौकाक्रीडा, जलक्रीडा आदि कृष्णविषयक आख्यान-काव्य हैं। वात्सल्य और वनक्रीडा का सहज सुन्दर चित्रण वामन पण्डित की कविता में प्राप्त होता है।

इनके परवर्ती काल में रस-रंग-पूर्ण कृष्ण-कथा का गायन करनेवाले श्रेष्ठ कवि हैं—श्रीधर नाझरेकर। उनका 'हरिविजय' (काव्यग्रन्थ) अत्यन्त रसमय है। उसका पारायण आज भी किया जाता है। पण्डित-परम्परा में लिखे गये सुबोध शैली के कृष्ण-चरितों में श्रीधर का 'हरिविजय' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। उनके रासक्रीडा, गोपीविलाप, उद्धव-गोपी-प्रसंग आदि काव्य भी विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त 'गोकुळ-लीला', 'राधाचन्द्रोदय', 'राधाविलास', 'मथुरागमन' आदि स्फुट प्रसंगों को भी श्रीधरजी ने काव्यबद्ध किया है। उनके बालकृष्ण-वर्णन का एक चित्र प्रस्तुत है :

नीलवर्ण केश कुरळ। आकर्ण नेत्र विशाल भाळ॥
दिव्य पिंपळपान सुढाळ। झगझगीत सतेज॥
कर्णी कुंडलें तळपती। लघुदंत चौकीचे झळकती॥
सुहास्यवदन श्रीपती। कंठी शोभती वाघनखें॥
पदक एकावळी मुक्ताहार। तेणें शोभला बाळ दिगंबर॥
वाकी बिंदली परिकर। तडित्प्राय झळकती॥
पायीं पैंजण वाळे वाजती। चरणांगुष्ठ धरिला हातीं॥
वदनीं घालूनी रमापती। चोखली प्रीति करूनियां॥

(हरिविजय ४.१७१–७५)

'बालकृष्ण प्रभु के केश नीलवर्ण और घुँघराले हैं। उनके नेत्र कर्णपर्यन्त बड़े और भाल विशाल है। माथे पर सोने का दिव्य पीपलपान जगमगा रहा है—जिसका तेज विकीर्ण हो रहा है। कानों में कुण्डल रह-रहकर चमकते हैं, शोभा पा रहे हैं और सामने के चार दाँत ही जो प्रभु के आये हैं वे छोटे-छोटे दाँत चमचमा, जगमगा रहे हैं। उनका सस्मित मुख है—मुस्करा रहे हैं और उनके गले में बघनखा शोभायमान है। गले में पदक, एकावली, मोतियों का हार है, जिनसे दिगम्बर वालकृष्ण सज्जित हैं—मनमोहक लग रहे हैं। उनके पैरों में वाकी आदि आभूषण हैं, कमर में मेखला है जो बिजली की तरह रह-रहकर चमक उठती है। पैरों में पड़े हुए झुमझुम, पायजेब और वाळे (आभूषण) बज रहे हैं। प्रभु ने अपने चरणों का अँगूठा पकड़ा हुआ है और वह मुख में अँगूठा डाले उसे चूस रहे हैं। इस प्रकार प्यार से मुख में चरणांगुष्ठ लेकर चूसनेवाले रमापति शोभायमान हैं।

श्रीधरजी के बाद पण्डित कवियों में उल्लेखनीय श्रेष्ठ कवि हैं—बारामती के मोरोपन्तजी। उनके पूर्ववर्ती काल के सामराज का 'रुक्मिणी-हरण', कृष्ण-दयार्णव की भागवत पर 'हरिवरदा' टीका, गिरिधरकृत 'कृष्ण-लीलातरंग' एवं 'हरिलीला' आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। 'मुरलीनवरत्नमालिका', 'मुरलीपंचक', 'गोपीप्रेमोद्गार' प्रभृति स्फुट प्रसंगों के साथ ही मोरोपन्त ने आर्यावृत्त में 'कृष्णविजय', 'हरिवंश', 'मन्त्र-भागवत' आदि अनेक बड़े प्रबन्ध-काव्य भी लिखे हैं। यद्यपि पन्तजी ने मराठी में विविध शैलियों में सशक्त कृष्ण-चरित प्रस्तुत किया, परन्तु उनकी संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली के कारण वह प्रायः दुर्बोध ही रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाहिरों और अर्वाचीन कवियों की कृष्ण-भक्ति

पेशवाई के अन्तिम समय में शाहिरों (शायरों) ने श्रीकृष्ण, गोपी, राधा आदि पर अनेक गीत-काव्य लिखे हैं। उनके द्वारा विरचित कृष्ण-राधा की लावणी यद्यपि शृंगारपरक कृतियाँ हैं, फिर भी उनके भीतर से झाँकता हुआ शाहिरों का अध्यात्मप्रवण मन छिपता नहीं। **'या हरिसाठी मी जाहले पहा वेडी'** (रामजोशी) (इस हरि के लिए देखिये तो मैं पागल हो गयी।), **'ऊठ ऊठ झडकरी हरी गोविन्दा मुरारी'** (प्रभाकर) (हे हरि गोविन्दा मुरारि, उठिये, जल्दी उठिये), **'घनश्याम सुन्दरा, श्रीधरा, अरुणोदय झाला'** (होनाजी बाळा) (हे घनश्याम ! ऐ सुन्दर, श्रीधर उठो। अरुणोदय हो चुका है।)

एकदम अर्वाचीन काल के विष्णुदास माहुरकर, माणिक प्रभू, निरंजन रघुनाथ आदि कवि महाराष्ट्र की इस चिरप्रतिष्ठित कृष्ण-भक्तिधारा के छींटे से अभिसिक्त हुए हैं। श्रीकृष्ण-पत्नी और ज्ञानेश्वर-कन्या के रूप में प्रख्यात होनेवाले श्री गुलाबराव महाराज तो अर्वाचीन समय के सर्वश्रेष्ठ कृष्ण-भक्त माने जाते हैं। उनकी काव्य-सम्पदा विपुल एवं महत्त्वपूर्ण है। एक उदाहरण देखिये :

**रडतां रडतां गुंजा झाले डोळे। न दिसे सावळें अजूनियां ॥
काय करू आता शरण कोणा जाऊ ? विश्वास हा ठेवूं कवणावरी ॥
ज्ञानानें कळलें सच्चिदंश दोन्ही। प्रेमावीणा उणी आनन्दांत ॥
म्हणोनियां जीव झुरोनी पाजरा। तारुण्याचे जरा सम वाटे ॥
आळन्दीवल्लभ स्वामी ज्ञानदेव। त्याचे पायीं भाव निर्भय जोडे ॥**

'रोते-रोते मेरी आँखें लाल हो गयी हैं गुंजे जैसी—परन्तु वह साँवला प्रभु मुझे अभी तक दिखाई नहीं दिया। हे भगवान् ! अब किसकी शरण जाऊँ और विश्वास भी किस पर रखूँ ? ज्ञान से भले ही समझ में आ गया है कि सच्चिदंश—सत् और चित् दोनों एक ही हैं। परन्तु बिना प्रेम के आनन्द में कमी है, सच्चिद् आनन्द नहीं हो पा रहा। इसीलिए मेरा जीव सूख-सूखकर काँटा हो गया और मुझे तरुणाई में ही बुढ़ापे जैसा लग रहा है। तारुण्यावस्था ही वृद्धावस्था बन गयी है। वह आळन्दी-वल्लभ, वह ज्ञानदेव मेरे स्वामी हैं—उन्हींके चरणों में मैंने निर्भय होकर अपना भाव रख दिया है। वही मेरे कर्ताधर्ता हैं, वही मेरा उद्धार करेंगे।'

–डॉ० प्रह्लाद नरहरि जोशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराष्ट्र के कृष्ण-भक्त

अनंत फंदी

ये उत्तरकालीन पेशवाओं के समय के भक्त-कवि थे। तमाशा-लावणी आदि शृंगारप्रधान काव्य रचने में इनके समय में इनका कोई सानी नहीं था। इस प्रकार के कवनों (काव्य) के साथ-साथ ये ऐतिहासिक पोवाडे (पँवारे, वीररसात्मक दीर्घ काव्य) उसी तन्मयता और स्फूर्ति से रचकर गाया करते थे। अपने समकालीन पेशवा श्रीमन्त सवाई माधवराव पर रचित इनका पोवाडा, जिसमें प्रख्यात खर्डा-लड़ाई का यथार्थ वर्णन है—अत्यन्त अनमोल रचना है। इनके नीति-उपदेशपरक काव्य भी अद्भुत हुआ करते थे—**'विकटवाट वहिवाट नसावी। धोपट मार्गा सोडूं नको'**—अर्थात् 'आड़ा-तिरछा विकट मार्ग छोड़कर सीधा-सादा राजमार्ग ही अपनाना चाहिए' प्रतीकवाला इनका 'फटका' (काव्य प्रकार) अत्यन्त लोकप्रिय है।

एक बार इनकी भेंट साध्वी अहिल्याबाई होळकर से हुई। महासती राजमाता के इस उपदेश से कि 'आपके काव्य-सृजन-सामर्थ्य का प्रयोग जनता की लौकिक वासना को बढ़ावा देने में न होकर उसके पारमार्थिक कल्याण के लिए होना चाहिए' कवि का मन सर्वथा विरक्त हो गया। इन्हें गहरी उपरति हुई और तभी से कीर्तन-काव्य रचने तथा गाने में प्रवृत्त हुए। इनकी साधुतुल्य वाणी श्रोताओं के मन पर गहरा असर डालती थी। उसमें रम जाने पर इन्होंने लोकाकर्षक शायरी का पेशा त्याग दिया और हरिदास बन गये। इनका देहावसान सन् १८२१ ई० में हुआ।

प्र० न० जो०

वि० पं०

अमृतराय

हिंदी को अखिल भारतीय व्यवहार की भाषा के रूप में विकसित करने का अधिकांश श्रेय मध्यकालीन सन्त एवं भक्त कवियों को है। हिंदी के कबीर, सूर, तुलसी से भी पहले अनेक हिंदीतरभाषी कवियों ने इस देशव्यापी भाषा में रचनाएँ की हैं। वास्तव में ये ही सन्त और भक्त कवि राष्ट्रभाषा के प्रारम्भिक शिल्पी थे। अब तक की शोध के अनुसार हिंदीतर प्रदेशों में गुजरात और महाराष्ट्र इस दृष्टि से अग्रणी रहे हैं। महाराष्ट्र में महानुभाव-पन्थ के प्रवर्तक स्वामी चक्रधर (१२वीं शती ई०) तथा ज्ञानेश्वरयुगीन नामदेव से लेकर १९वीं शती तक सन्त, भक्त और पण्डित कवियों की एक दीर्घ परम्परा रही, जिन्होंने अपनी मातृभाषा मराठी के साथ-साथ तत्कालीन अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार की सम्पर्क भाषा हिंदी में भी रचनाएँ की हैं। १८वीं शती ई० के महाराष्ट्रीय भक्त कवि अमृतराय इसी परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं, जिनके द्वारा खड़ी बोली हिंदी में रचित आख्यान-काव्य 'सुदामा-चरित्र' का भाषा, कथावस्तु और काव्य-तत्त्व की दृष्टि से मराठी कृष्ण-भक्ति-काव्य में विशिष्ट स्थान है।

भक्त कवि अमृतराय का जन्म शक संवत् १६२० (सन् १६९८ ई०) में हुआ था। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनकी माता का नाम उमाबाई और पिता का नाम शंकर था। इनके मूल निवासस्थान के सम्बन्ध में दो मत हैं। वामन दाजी ओक इनके पूर्वजों को बीड (औरंगाबाद) के निकट किसी गाँव का निवासी बताते हैं। ओक के मतानुसार अमृतराय का जन्म औरंगाबाद में ही हुआ था और यहीं उन्होंने नौकरी भी की, किन्तु 'महाराष्ट्र सारस्वतकार' ने इनका मूल निवासस्थान बुलढाना जिले के मेहकर तालुके (तहसील) का 'फत्तेखेरडा' गाँव बताया है। बुलढाना से ३०-३५ मील दूर अब तक इनके घर का 'चौतरा' सुरक्षित बताया जाता है।

मुगल-साम्राज्यान्तर्गत औरंगाबाद के विसामोरो नामक एक धनाढ्य सज्जन के यहाँ अमृतराय कारकुन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क्लर्क) की नौकरी करते थे। ये बड़े मनमौजी थे, अतः मालिक से इनकी न निभी और अन्त में—'विसामोरोला जाऊन सांगा, पुरे तुझी नौकरी।' ऐसा कहकर इन्होंने नौकरी छोड़ी और भिक्षा-वृत्ति अपना ली। इनकी इसी मनमौजी और मसखरी प्रवृत्ति का परिचय इस घटना से भी मिलता है कि एक बार इन्होंने 'मध्वमुनीश्वर' 'नामक एक साधु का मजाक उड़ाया। साधु किंचित् भी क्रोधित न हो, शान्त भाव से बोले—"बाबा, ईश्वर ने तुझे अमृततुल्य वाणी दी है। उसका तू दुरुपयोग न कर। ईश्वर-भजन में मन लगा उसके चरणों की कृपा प्राप्त कर।"

मध्वमुनीश्वर के इन मार्मिक शब्दों ने अमृतराय के जीवन की दिशा ही बदल दी। तब से इन्होंने ईश्वर-भजन में ही अपनी वाणी का सदुपयोग करने का निश्चय किया। इनकी वृत्ति में हुए परिवर्तन को लक्ष्य कर मध्वमुनीश्वर ने इन्हें अपने गुरु अद्वैतानन्द के पास दीक्षा के लिए भेजा। इनकी कविता में जगह-जगह हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इन्हें संसार से वैराग्य की ओर ले जानेवाले कारणों में इनकी पत्नी का दुर्व्यवहार भी एक कारण रहा है।

इनके दो पुत्र रामयोगी और शिवयोगी तथा एक पुत्री कृष्णाबाई थी। दोनों पुत्र आजन्म ब्रह्मचारी रहे। आज भी इनकी समाधि सायखेड़े में है। कृष्णाबाई का वंश पैठण में अभी भी है। अमृतरायजी को पेशवाओं से मिलनेवाला वर्षासन (वार्षिक धन) अभी भी इनके वंशजों को मिलता है।

प्रचलित विश्वास है कि ये मध्वमुनीश्वर के ही शिष्य थे, किन्तु जहाँ कुछ पदों में आपने 'गुरु मध्वनाथ' लिखा है, वहीं अन्यत्र अपने गुरु का नाम 'अम्बिका सरस्वती' भी कहा है। अपने 'अविनाशसन्देहहरण' रचना के अन्त में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है—माधव सरस्वती—विठ्ठल सरस्वती—अम्बिका सरस्वती। इसी प्रकार 'ध्रुव-चरित्र' के अन्त में 'अम्बिका' को अपना गुरु बताते हुए आप लिखते हैं—'अंबाजिता अमृत पावन नाम ज्याला'। इसी प्रकार का उल्लेख 'कविता-संग्रह' पृष्ठ ११८, पद १०, चरण ३ में भी है। ये अम्बिका सरस्वती श्री शंकराचार्य की शिष्य-परम्परा में एक साधु थे। अमृतराय अपनी सभी सुख-सुविधाओं के लिए भगवान् पर निर्भर रहते थे। ये 'वैराग्य' और 'प्रारब्ध' को बड़ा महत्त्व देते थे।

सुप्रसिद्ध मराठी पण्डित कवि मोरोपंत ने अमृतराय का जो परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि ये अच्छे कीर्तनकार थे। शनिवार वाड़ा (पुणे) में नानासाहेब पेशवा इनके कीर्तन से बहुत प्रसन्न हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि है।

साहित्य-परिचय—अमृतराय हिंदी, मराठी, संस्कृत, अरबी, फारसी और उर्दू के अच्छे ज्ञाता थे। ब्रज और अवधी के साथ अपनी कविता में इन्होंने व्यावहारिक खड़ी बोली का भी बड़ी सफलता से प्रयोग किया है। इस दृष्टि से रीतिकालीन सन्दर्भ में यह बात विशेष उल्लेखनीय है जब कि कविता के क्षेत्र में अन्य कवियों द्वारा खड़ी बोली के प्रयोग का नितान्त अभाव पाया जाता था। मराठी एवं हिंदी-साहित्य को 'कटाव' नामक छन्द अमृतराय की ही देन है। यह वर्णिक छन्द है। यह 'कटाव' छन्द कीर्तनकारों के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। परवर्ती मराठी कवियों ने इस छन्द को अपनाकर मराठी-साहित्य को सम्पन्न किया किन्तु अमृतराय जैसी सफलता अन्य किसीको न मिली।

अमृतराय की हिंदी रचनाओं को हम तीन कोटियों में रख सकते हैं—

(१) हिंदुस्तानी कटाव :

राम-जन्म	कविता-संग्रह	पृ० ३८
कृष्ण-वर्णन	,,	पृ० ४२
कृष्ण-लीला	,,	पृ० ४५
द्रौपदी-वस्त्रहरण	,,	पृ० ५०
मृत्तिका-भक्षण	,,	पृ० ५२
वत्स-हरण	,,	पृ० ५३ आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२) आख्यानक :

पूतना-वध	कविता-संग्रह	पृ० ९२–९४
सुदामा-चरित्र	"	पृ० ९४–१११
वाल्मीकि-चरित्र	"	पृ० ११०–१११
भीष्म-प्रतिज्ञा	"	पृ० ११२

(३) मुक्तक रचनाएं :

रास-क्रीड़ा	कविता-संग्रह	पृ० ६६
लंका-वर्णन	"	पृ० ३९
कृष्ण-नृत्य	"	पृ० ६७
महादेव-प्रयाण-वर्णन	"	पृ० ८२
कृष्ण-लीला	"	पृ० ४६-४७

इनके अतिरिक्त कवि ने कुछ 'हिंदुस्तानी पद' (कविता-संग्रह—पृ० १६७) भी लिखे हैं। कहा जाता है, इनकी एक हिंदी रचना 'रुक्मिणी-स्वयंवर' भी है किन्तु वह उपलब्ध नहीं है।

शक संवत् १६७५ (सन् १७५३ ई०) में ५५ वर्ष की अवस्था में अमृतराय समाधिस्थ हुए।

भारतीय साहित्य में सुदामाख्यान की एक दीर्घ परम्परा रही है। ब्रजभाषा के कवि नरोत्तमदास अपनी एक इसी रचना के द्वारा प्रसिद्ध हैं। हिंदी, मराठी, बंगला, मलयालम, गुजराती आदि भारतीय भाषाओं में सुदामा-चरित्र ने अनेक कवियों को आकृष्ट किया है।

अमृतराय का 'सुदामा-चरित्र' प्रकाशित रूप में उपलब्ध है। आचार्य विनयमोहन शर्मा ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिंदी को मराठी सन्तों की देन' में अमृतराय की साहित्य-सेवा का विवरण देते हुए उनकी कुछ वर्णनात्मक रचनाओं का उल्लेखमात्र किया है जिसमें अत्यन्त अस्पष्ट रूप में और कामचलाऊ ढंग से मराठी रचनाओं के साथ-साथ हिंदी की रचना 'सुदामा-चरित्र' का भी नाम गिनाया गया है। जिन सात रचनाओं का नामोल्लेख विनयमोहनजी ने किया है उनमें से पाँच रचनाएँ मराठी में हैं। इसी शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट—क में 'प्रमुख महाराष्ट्र सन्तों का हिंदी-वाणी-संग्रह' शीर्षक के अन्तर्गत भक्त अमृतराय की इस रचना को पता नहीं क्यों अपूर्ण (२७ पद तक ही दिया गया है, जब कि सम्पूर्ण प्रकाशित उपलब्ध रचना ९८ पदों की है) मानकर छोड़ दिया गया है। महाराष्ट्र के कई कवियों ने मराठी में सुदामा-चरित्र लिखे हैं। स्वयं भक्त अमृतराय ने मराठी में भी 'सुदामा-चरित्र' की रचना की है।

अमृतराय कृत (हिंदी में लिखित) इस 'सुदामा-चरित्र' की अपनी एक निराली छटा है। एकाधिक बार इस रचना का नामोल्लेख मात्र अन्यत्र हुआ है। किन्तु हिंदीतर कवि की हिंदी-रचना होने के नाते हिंदी-साहित्य तथा भाषा के इतिहास में इस 'सुदामा-चरित्र' का विशेष महत्त्व है। साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय सुदामा-चरित्रों से इसकी तुलना एवं कवि की मौलिकता पर विचार करना भी आवश्यक है। श्रीमद्भागवत की भक्ति का माहात्म्य बतानेवाली चमत्कारों से पूर्ण कथा को अधिक बुद्धिसम्मत, स्वाभाविक और लोकग्राह्य बनाकर भक्त कवि अमृतराय ने अनेक मौलिक उद्भावनाओं द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

मुख्य कथा के आरम्भ से पूर्व कवि ने सृष्टि के निर्माता, उसकी माया और माया में फँसे 'बंदे' की दशा का वर्णन किया है—

अजब है गुरुजी वोही कारसाज।
खलक बंच म्याने वोही कारसाज ॥ १ ॥

• • •

उसीने बनाया जमीन-आसमान।
पवन आब आतश बनाया मकान ॥
सरग मृत्यु पाताल ये भी तिन्हो।
हरी हर जो ब्रह्मा कह्लावे तिन्हो ॥ २ ॥

• • •

जबरदस्त माया लगाके पिछे।
भँवर जाल कर कर भुलाया उसे ॥ ३ ॥
हमेशा फिकर पेट की है लगी।
जिकिर याद मौला नहीं बंदगी ॥

• • •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंदा अगर उस खुदा की करे बंदगी।
मिले रोज न्यामत कटे गंदगी॥ ५॥

मुख्य कथा का आरम्भ इस प्रकार होता है—

भगत एक आजज सुदामा हता।
सुनो कूल आलम उसीकी कथा॥ ६॥

इसी सुदामा की दरिद्रता को व्यक्त करते हुए कवि कहता है—

तुटे झोपड़ीमो रहे तीन बांस।
उपर ना मिले एक तिनखा जो घास॥

दरिद्र ब्राह्मण—

पवन छाव गर्मी बदन पर सहे।
करे बंदगी वो किसे ना कहे॥ ७॥

वह मस्त था, उसे किसी चीज की चिन्ता न रहती। चिन्ता, फिक्र करती तो उसकी 'कबीला' (पत्नी)। वह हमेशा अपनी पत्नी से 'किसन' की चर्चा करता—

मुरब्बी हमारा किसन है बड़ा।
रहे द्वारका बीच राजी खड़ा॥ ९॥

वह दौलत का धनी, लक्ष्मी से 'परिपूरन' है—

मेहरबानगी है उसीकी कमाल।
करो याद उसकी ज्यों साहेब जमाल॥ १०॥

इस पर 'कबीला' प्रश्न करती है—

……………वो किसन कौन है।
नहीं जाय मिलने सबब कौन है॥
अबस रोज उसकी बड़ाई करो।
किसी काम की भी अमानत धरो॥ १२॥

भागवतकार ने सुदामा की पत्नी को कृष्ण-सुदामा की मैत्री के सम्बन्ध में पहले से ही परिचित बताया है। वह विशुद्ध भक्त की तरह पति से प्रार्थना करती है कि आप कृष्ण से कुछ माँगिये। यदि भक्त उनका ध्यान करे तो वे स्वयं को भी दान कर सकते हैं। वहाँ कृष्ण को ब्रह्मरूप में ही चित्रित किया गया है, जो कि भागवत का अभीष्ट है। सुदामा भी मन में सोचते हैं, यदि कृष्ण से भेंट होने पर और कुछ भी न मिला तो दर्शनलाभ होगा ही। पर अमृतराय के सुदामा पत्नी के आग्रह पर सहज उत्तर देते हैं—

………मैं सिधारू फजर।
…. ….
पड़ा दस्त खाली धरूँ क्या नजर॥

पत्नी पड़ोस से 'चुडवे' (चिड़वा, च्यूड़ा = पोहे) लाती है और पति को देकर प्रार्थना करती है कि

चलो अब सिधारो शिताबी करो।
मिलो उस किसन के कदम ज्या धरो॥
हकीकत कहो कूल दर्मादगी।
करेगा ज्यो तुम पर मेहेरबानगी॥ १४॥

सुदामा की दरिद्रता देखिये—

फटा एक कपड़ा बदन पर हता।
कहू देखने कू भी साबुत न था॥

'किसन' की याद करता वह चल पड़ा। भागवत के सुदामा श्रीकृष्ण की सोलह हजार पत्नियों के घरों में से एक सुन्दर घर में प्रवेश करते हैं, जो रुक्मिणी-कृष्ण का महल है किन्तु अमृतराय ने रचना को अधिक सहज स्वाभाविक बनाने के लिए मार्ग का भी वर्णन किया है। अपने घर से निकलने पर, वन-मार्ग से चलते हुए सुदामा को मंगल शकुन होते हैं—

निकल कर गया बीच जंगल उदास।
मिले आब पूरन घड़े दस्त रास्त॥
कुरंगन मिली ताश दहने गये।
और भी सकुन खूब उसकू भये॥ १६॥

सुदामा की चिन्ता दूर होने लगी। वे द्वारका नगरी में पहुँचे—

ज्याहाँ है परब्रह्म साहेब निका॥ १७॥

द्वारका नगरी के वैभव का वर्णन मुगल किलों व दरबार की छाप लिये है—

जगी जोत कंचन महल हैं खड़े।
जड़े बीच कंकर उजाला पड़े॥ १८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस नगरी में—

नहीं खराब मो एक कुत्ता दुखी।
खुली बादशाई घरोघर चमन।
पढ़े बेद चारो मगन है ब्रह्मन॥ १९॥
शहर देख कर अचंबा हुवा।
फिरे ज्याबजा ज्यों दिवाना हुवा॥

वे उस शहर के 'धनी' (स्वामी) कृष्ण का पता पूछते चले। लोगों ने उन्हें कृष्ण का महल बताया। 'दरबान' ने पुकारा—"तू कौन है?" और सुदामा का उत्तर देखिये—

बिरादर हमारा किसन है जिगर।
सिताबी करो तुम उसी कू खबर॥
इसम है सुदामा कहो जायकर।
वोही जानता है करो मत फिकर॥ २२॥

दरबान आश्चर्यचकित होकर सोचता है—

.... ये कंगाल है।
किसन का बिरादर अजब बात है॥

दरबारी सभ्यता के अनुसार कृष्ण अभी 'तख्त' पर आकर बैठे हैं। दरबान ने जाकर खबर दी--

करूँ अर्ज साहेब कहो मैं खबर।
सुदामा खड़ा है तुम्हारा जिगर॥

सुनते ही कृष्ण जहाँ सुदामा खड़े थे वहाँ जा पहुँचे। कवि उस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखता है—

अगर उस घड़ी की खुशाली कहूँ।
नहीं हो ज्यो कहता ज्यो चुप क्या रहूँ॥
लगाया गले प्रेम आँसू चले।
मिले वो किसन के गले सो गले॥ २६॥

सुदामा का हाथ पकड़ वे महल की ओर चले। और भी संबंधी गले मिले। कृष्ण ने सुदामा को 'तक्त' (तख्त) पर बैठाया। बाजे बजाने की आज्ञा दी। मित्र के आने की खुशी में मिठाई बाँटी गयी। और—

मिले भाट कीये पवाडे शुरू।
उसी वक्त नौबत कियी थी शुरू॥ २८॥

रानी रुक्मिणी ने सहेलियों सहित सुदामा की आरती उतारी। वहाँ उस समय तमाशे का-सा दृश्य उपस्थित हो गया--

तमाशे के खातर ज्यों आलं मिला।
नहीं ठौर जिसका भरा है किला॥ ३०॥
चरण धोवने कू बुलाया ज्यों आब।
खड़े किस्न जी सामने बा अदाब॥
चरन धोयकर ज्यो तीरथ लिया।
निडल बीच केसर तिलक भी किया॥ ३१॥
दियी थी रजा कूल आलम चला।
पलख बीच खाली हुआ था किला॥

और सबके चले जाने पर—

बुलाया जो वस्ता हजामत किई।
अतर सो बदन की ज्यो मर्दन भई॥ ३२॥
गरम आब कर कर न्हलाया उसे।
पिन्हाया पितांबर सुदामा जिसे॥

'माँदगी' (थकावट) चली गयी और सुदामा स्वस्थ हुए। कृष्ण ने सुदामा को—

चिरावो मुकेसी उढाई दुशाल।

(जरी किनारे का दुशाला उढ़ाया।)

फिर भोजन हुआ। इस भोजन-वर्णन पर महाराष्ट्रीय खाद्य पदार्थों, मिष्टान्नों व भोजन-पद्धति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है—

पकाए ज्यो पकवान पोल्या पुरन।
बनाए बड़े भात केसर बरन॥ ३४॥
शकरबीच डाली पकाई ज्यों खीर।
कनक के कटोरे परोसी ज्यो खीर॥
बनाए ज्यो पापड़ बड़ी मुंग की।
दही का ज्यो चक्का कढी छाच की॥ ३५॥
बनाए ज्यो तर्कारियाँ भाँत भाँत।
निमक भी परोसा उसी के ज्यो सात॥

इस भोज में ब्राह्मण, ऋषि-मुनि, संन्यासी, गुणी, पण्डित, शहर के बड़े साहूकार व सम्बन्धी, मित्र सभी बुलाये गये थे। भोजन परोसा स्वयं रुक्मिणी और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसकी सहेलियों ने। सभी ने तृप्त होकर भोजन किया और 'ढेका' (डकार) दे-देकर उठे—

मिलाएँ ज्यों खुषबो पानी पिए।
सभी उफ कर कर ज्यों ढेकर दिए॥ ३९॥

फिर पान आदि से सभी का सत्कार किया गया और सभी ने अपने-अपने भवनों को प्रस्थान किया। वहाँ केवल—

किसन जी सुदामा ये ही दो रहे॥ ४२॥

अब दोनों मित्रों की अन्तरंग बातें आरम्भ होती हैं। कृष्णजी ने सुदामा की 'खुशाली' पूछी। कहा—

बहोत दीन पुछे आज मिलना हुवा।
खुदा के दरगाह में ज्यों माँगी दुवा॥ ४३॥
सुखी है कबीला तुम्हारा पिसर।
कहो कूल अपनी हकीकत जिकर॥

बाल्यकाल की स्मृतियाँ सजग हो उठीं। कृष्ण को गुरु की आज्ञा से जंगल जाने की बात याद आई। स्वयं कृष्ण के द्वारा कवि ने सुदामा को प्रेमिल, वात्सल्यपूर्ण, अत्यन्त अनुरागी के रूप में चित्रित किया है—

गुरू के हुकुम से ज्यों जंगल गए।
बँधी कावडी बीच लकड़ी लिए॥
बरसता ज्यों मेह मुसल के मिसाल।
चमकती ज्यो बिजली अगन के मिसाल॥ ४५॥

• • •

उसी वक्त तुमने ज्यो धोती लियी।
सिरो पर हमारे ज्यो छाया कियी॥ ४६॥

• • •

कियी तुमने सेवा मुजे याद है॥ ४७॥
लगी भूक हमकू ज्यो व्याकुल भए।
हमारी भी कावड तुमने लिए॥
दिखाई नहीं है दुजाई कभू।
वाहाँ से ज्यो मिलना हुवा है अभू॥ ४८॥

किन्तु भोले सुदामा के मन में मानवसुलभ एक प्रश्न बार-बार उठता है। साथ-साथ पढ़े, ज्ञान एक-सा, बुद्धि एक-सी, पर—

बड़ा राज तुमकू काहाँ से मिला।
दलिद्दर हमकू काहाँ से चला॥ ५०॥

इस पर परम्पराबद्ध रूप में ही कृष्ण पूर्वजन्म की गाढ़ी कमाई का उल्लेख कर औदार्य, दान-दक्षिणा, ब्राह्मण-भोज, तीर्थाटन आदि के अभाव को सुदामा की दरिद्रता का कारण बताते हुए कहते हैं—

पढ़े बेद का पुन्न येही हुवा।
उसीसे ज्यो मिलना हमारा हुवा॥

यहाँ अमृतराय का 'प्रारब्ध' में अखण्ड विश्वास और उनके सम्बन्ध में प्रचलित कथन का हमें प्रमाण मिल जाता है। और वे (कृष्ण) सुदामा की पत्नी द्वारा भेजी गयी भेंट को शीघ्र प्रस्तुत करने का आग्रह करते हैं। सुदामा 'शरम के ज्यो मारे' कुछ कह न सके। उन्होंने—

फटा था ज्यों कपड़ा वोही खोलकर।
मुठी तीन चुडवे वोही खोलकर॥

भेंट किये। कृष्ण ने रुक्मिणी को बुला पोहों में शक्कर मिलाई। दो मुट्ठी स्वयं खाकर एक मुट्ठी रुक्मिणी को दी। भागवत के कृष्ण ने मुट्ठीभर पोहों के बदले इहलोक व परलोक का वैभव सुदामा को दिया। किन्तु यहाँ अमृतराय के कृष्ण ने अपने मित्र की दीन दशा व उसकी भावना देख उसी समय अपने इंजीनियर 'विश्वकर्मा' को बुलाया—

कहे किसनजी बिश्वकर्मा काहाँ।
उसी वक्त पर आन ठाडा रहा॥
कहे कानमों तब उसी का जिकर।
सिताबी बनावो सुदामानगर॥ ५६॥

बनावो शहर द्वारका के मिसाल।
महल कंचनों के हमारे मिसाल॥
किसी बात को तुम करो मत कमी।
न खाली रहे एक अंगुल जमी॥ ५७॥

उसी वक्त पर बिश्वकर्मा चला।
पलख मो बनाया सुने का किला॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और फिर विश्वकर्मा ने—

खबर आनकर किसनजी कू दिई ॥ ५८ ॥

इस स्थल पर अमृतराय ने अन्य सुदामा-चरित्रकारों से सर्वथा भिन्न अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। सुदामा की कुटिया का वैभवशाली महल व नगर में परिवर्तन चमत्कार से न होकर सुनियोजित एवं स्वाभाविक रूप से होता है।

यहाँ सुदामाजी घर की चिन्ता करते हुए सोचते हैं—

किसन जी दिलावे सो अपनी खुसी।
वोही है जो तबरुक उसीकी खुसी ॥ ५९ ॥

सुदामा अब प्रस्थान के लिए तैयार हुए तो कृष्णजी कहते हैं—

पिताम्बर चिरा शाल लेवो न सात ॥
रहा बीच काबे बडे चोर है।
मिलेंगे ज्यो तुमकू बडा घोर है ॥ ६१ ॥

इस प्रसङ्ग में कवि ने बड़ी नाटकीयता का प्रयोग किया है। राह के चोरों के भय से कृष्ण ने अपने दिये हुए पीताम्बर और शाल भी सुदामा से ले लिये, जिसके फलस्वरूप सुदामा के मन में निम्नलिखित भाव जागने स्वाभाविक ही थे—

फिकरबंद होके रहा से चला।
दिलो में कहे चोर येही मिला ॥ ६२ ॥

वे मित्र की इस कृपणता पर मन ही मन लज्जित थे। एक सामान्य सांसारिक व्यक्ति की भाँति मित्र के प्रति वे शंकाओं से भर उठते हैं। 'अब पत्नी को क्या उत्तर दूँगा'।

अगर ज्यानता मैं वहाँ हीं से किसन।
तो हरगिज न धरता राह पर कदम ॥ ६४ ॥
अजब किसनजी ये ठगाई सिखा।
लिए छीन कपड़े चलाया रुखा ॥

और सोचते हैं—

मुझे इस किसन का भरोसा बड़ा।
नहीं एक दीया नदी का खड़ा ॥ ६५ ॥

और अत्यन्त सहज था, ऐसे ठग मित्र की बाल्यावस्था के छल-छद्मों का याद आ जाना। उनका हृदय आक्रोश से भर उठता है—

नन्होपन दधी दूध चोरी किई।
वोही खू इसकी अभी ना गई ॥
हमेशा ज्यो गोरू चराया किया।
काहा से बडा ये किसन वो भया ॥ ६६ ॥
हमेशा पर द्वार करता फिरे।
पराये कबीले घरो में घरे ॥

पहले तो बड़ा आदर-सत्कार किया किन्तु चलते समय 'फजीता' किया। इसने हमारी जरा भी 'फिकर' न की। और मन में विचार आते हैं—

चरन कू झुटा बिरद बाँधा फिरे।
कहते हैं भगत की मदत वो करे ॥
जगत कु उधारे येही झूठ है।
भगत की जो बाता चहू खूट है ॥ ६९ ॥

न्हने (नन्हें) से बड़ा होता सुदामा ने इसे देखा है। इसने कब किस पर 'नवाजिश' की थी। पर फिर सहसा कृष्ण को सर्वथा 'झूठा' मानने की इच्छा भी नहीं होती। सुदामा यह भी कहते हैं—

इसी किसन का न मिले अंतपार ॥
रहे आप न्यारा करावे ज्यो ख्याल।
उसीका शुतर है तमाशे मिसाल ॥ ७१ ॥

सहसा उन्हें सामने सोने के कलशोंवाली नगरी दिखाई दी और वे सोचने लगे, कहीं मैं भटककर वापस द्वारका तो नहीं चला आया ? एक ग्वाले से पूछने पर उत्तर मिला—

गुराखी कहे क्या तुम्हारा इसम।
तुम्हारा ज्यो ज्यानो नगर का इसम ॥ ७४ ॥

भोले सुदामा ने समझा—

.... ये मजाका करे।
सिताबी कदमकु ज्यो आगे धरे ॥

और उन्होंने एक अन्य ग्वाले से पूछा—

इसे वो कहे हैं सुदामा नगर।
नया अब सुनेका बसाया फजर ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुदामा यह सब सुनकर आश्चर्य में पड़ गये और सोचने लगे कि 'ये सभी विचित्र बातें करते हैं।' तभी सुदामा के आगमन की खबर महल में (घर पर) मिलती है। नगाड़े बजने लगते हैं, पालकी आयी, सुदामा चले—

छुटा तोपखाना हुवा था गजर।
रुपय्ये आश्रफी की हुई थी नजर॥ ७९॥

दरबारी ठाट-बाट, हाथी-घोड़े, कलावन्तों से घिरी सुदामा की पालकी महल की ओर चली। सजे-सजाये तख्त पर सुदामा आसीन हुए। 'कनक थाल' भर-भर-कर मिठाई बाँटी गयी। सभी दरबारी 'रजा' ले घर गये। यहाँ—

महलमो कबीला बनाया सिंगार।
पुरे बाल मोती नही है सुमार॥ ८७॥

सुने के अलंकार कंकर जड़े।
जगा ज्योत उसका उजाला पड़े॥
सरमजाम वो आरती वो चली।
मिसाले वो बिजली चमकते चली॥ ८८॥

किई आरती वो खड़ी बा अदाब।
उजाला पडावी खुली आफताब॥

सुदामा तो यह सब देखकर सुध-बुध भूल गये—पत्नी बोली—

कहे मैं खड़ी वो तुम्हारी ज्यो दास।
नहीं ज्यानते क्यों हुये वो उदास॥
खड़े हैं ज्यों लड़के तुम्हारे पिसर।
नहीं जानते कैंव गये हो बिसर॥ ९०॥

प्रश्न हुआ—

कहाँ झोपड़ी है हमारा मकान।

उत्तर मिला—

(कबीला कहे) ये तुम्हारा मकान॥
बिरादर तुम्हारा किसन सावला।
बनाया महेल ये सुने का किला॥ ९१॥

और तब सुदामा को कृष्ण की 'लिला' का ज्ञान होता है—

अजब किसनजी ये तुम्हारी लिला।
पलखमो बनाया सुने का किला॥ ९२॥
मुठी तीन चुडवे वो ही खायकर।
किई उस किसन ने हमारी फिकर॥ ९२॥

यह सुनकर सुदामा के मन में पश्चात्ताप होता है, वे सोचते हैं—

किसन जी तुम्हारी बदी मैं किई।
दिलेबीच तुमने कहू ना लिई॥
करो माफ तकसीर साहेब किसन।
हमेशा करो मैं तुम्हारा भजन॥ ९३॥

इन पंक्तियों से सुदामा के सरल हृदय और भोलेपन का परिचय मिलता है। फिर महल में घोषणा हुई—

किसन के चरन सो लगावो लगन।

और वे कृष्ण से क्षमा-याचना करते हैं—

नमस्कार बोले तुम्हें कृष्ण जी।
संदेशेकु रखना नहीं बीच जी॥ ९४॥

सुदामा ने नगर में डौंडी पिटवायी और लोगों को कृष्ण-भक्ति का आदेश दिया—

किसन के भजन बीन ज्यो कोऊ रहे।
सजावर उसीको फुकारे कहे॥ ९५॥

और स्वयं—

सुदामा भजन में हमेशा मगन।
किसन के चरनसो लगाई लगन॥
भजन बीच सारी गई जिंदगी।
मिले रोज न्यामत कटे गंदगी॥ ९६॥

अन्त में कवि सुदामा-चरित्र के पठन का माहात्म्य बताते हुए लिखता है—

चरीतर सुदामा के जो कोउ पढ़े।
चला जाय बैकुंठ उपर चढ़े॥
हमेशा किसन के चरण सो चड़े।
जनम के भरोभर कभू ना पड़े॥ ९७॥

इस काव्य की रचना का श्रेय भी कवि अमृतराय 'कृष्ण की कृपा' को ही देते हैं और कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाया चरीतर किसन का ज्यो नाम।
किसन की कृपा से हुवा ये तमाम॥
उसे किस्न का सिप्तशायां बनाम।
कहे राव अमृत वही का लियो नाम॥ ९८॥

भाषा के अध्ययन की दृष्टि से भी कृष्ण-भक्ति के विकास के साथ ही अमृतराय कृत हिन्दी 'सुदामा-चरित्र' का विशेष महत्त्व है। हिन्दी की विभिन्न प्रादेशिक शैलियों की छटा के साथ-साथ अन्य देशी-विदेशी भाषाओं के व्याकरणिक रूपों का भी इस रचना में समावेश हुआ है। दक्खिनी हिन्दी के क्षेत्र में रचित होने के कारण इसमें तत्कालीन उर्दू और दक्खिनी के रूपों का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। भाषा की दृष्टि से इस रचना की सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ई० १८वीं शती पूर्वार्द्ध की हिन्दीतर प्रदेश की इस रचना में आज की परिनिष्ठित खड़ी बोली के अनेक सुन्दर अंश उपलब्ध हैं। पद्य में होते हुए भी इसके कई वाक्यों को आज की परिनिष्ठित खड़ी बोली की गद्य-रचना के नमूने के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। तत्कालीन खड़ी बोली की ऐसी रचनाओं से यह भी स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि देश-व्यापी राजनीतिक और सामाजिक व्यवहार की गद्य भाषा का स्वरूप क्या रहा होगा।

जा० रावत

आजरेकर बाबासाहेब

ये वारकरी-सम्प्रदाय के वासकर फड़ (कीर्तनकार-समूह) में कीर्तन किया करते थे और स्वतःस्फूर्त पद रचकर भी गाते थे। सन् १८४२ ई० में इन्होंने अपना स्वतन्त्र फड निर्मित किया। इनके फड़ में मुख्य रूप से ज्ञानेश्वर महाराज के अभंग कीर्तन के लिए चुने जाते थे और अभंग-गायन की परम्परागत धुनें जतन की जाती थीं।

बाबासाहेब अन्तरंग भक्त थे। ये प्रख्यात वारकरी हैबतराव के समकालीन थे और कोल्हापुर-संस्थान के अन्तर्गत आजरे ग्राम के ऋग्वेदी ब्राह्मण थे। इन्होंने प्रतिमास पण्ढरपुर की वारी करते हुए आसपास के इलाके में वारकरी-भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। हैबतराव बाबा ने आळंदी से श्री ज्ञानेश्वर महाराज की पालकी पण्ढरपुर लानी प्रारम्भ की, तभी से आजरेकर महाराज की दिंडी (कीर्तन-गायक-मण्डली) पालकी के साथ जाती रही है। इनके शिष्यों में सभी वर्ण एवं जातियों के लोगों का समावेश था। इनकी संगति में निम्न जाति के माने जानेवाले अनेक उत्कट भक्त हुए। अर्वाचीन कृष्ण-भक्तों में इनका उल्लेखनीय स्थान है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

आनन्दतनय

आनन्दतनय कर्नाटक के अरणी नामक गाँव के निवासी थे। शाहजी-कंकोजी के समय में ब्राह्मणों के कुछ परिवार तंजौर के आसपास जाकर बस गये थे। इनका कुल उन्हींमें से एक था। इनके पिता का नाम आनन्दराव था। परम्परा के अनुसार इनके गुरु मुरारपन्त कहे जाते हैं। किन्तु कुछ विद्वान् इन्हें पिता द्वारा ही उपदेशप्राप्त मानते हैं। इनकी प्रतिभा से आकृष्ट होकर शाहजी महाराज ने इन्हें अपना गुरु बनाया था। 'नल-दमयन्ती-स्वयंवर' के कर्ता आनन्द पण्डित इनके समकालीन तथा समधी थे। इससे इनका उपस्थिति-काल १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्थिर किया जा सकता है।

महाभारत, भागवत, रामायण, मार्कण्डेय-पुराण इत्यादि ग्रन्थों के आधार पर इन्होंने अनेक आख्यान-काव्यों की रचना की है। इनमें प्रमुख हैं—शबरी-आख्यान, शिबि-कथा, उमा-रमा-संवाद, सेतुबन्ध, कन्दुकाख्यान, कृष्ण-चरित्र, राधा-विलास, विश्वामित्राभिगमन, ताड़का-वध, विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षण, सीता-स्वयम्वर, कौशल्या-शोक, भरत-शोक, विभीषणोपदेश, पूतना-वध, महाबळ-चरित्र, बाल-चरित्र, गोरस-क्रीड़ा, नवरस-चरित्र, नौका-चरित्र, सुदाम-चरित्र, गणिकोद्धार, शिवरात्रि-पूजा-माहात्म्य, मृगी-चरित्र आदि। 'गर्भगीता' में वेदान्त-विषय आया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट पद भी लिखे हैं। इनका काव्य प्रायः श्लोकबद्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण-चरित्र के प्रमुख प्रसंगों पर लिखे गये इनके कुछ छन्द प्रस्तुत हैं—

जेथें पद्मवनें, अपार तुलसी, जेथें बहू गोधनें।
जेथें वैष्णव वेदघोष करिती, सद्वाक्य संबोधनें ।।
जेथें पुष्पफळीं सुपल्लवदलीं श्रृंगार आला वना।
तेथें क्रीडतसे हरी कविवरी हे वर्णिली भावना ।।

'जिस स्थान पर पद्मों के समुदाय हैं, अपार तुलसी के पौधे हैं, बहुत गोधन हैं, जिस स्थान पर वैष्णव-जन वेद का घोष करते हैं, सद्वाक्यों का उच्चारण जहाँ होता है, जहाँ पुष्प, फल, सुपल्लव-दल आदि ने वन को श्रृंगार प्रदान किया है, वहाँ श्रीहरि आनन्द से क्रीड़ा करता है।'

पूतना यशोदा के घर आयी है। बोलती है, 'यशोदा, मेरा मन बहुत उत्सुक हुआ है। सत्वर मुझे बालकृष्ण देखने को दे। वत्सल-प्रेम से मेरे स्तन से पयधारा निकल रही है।' इस प्रकार का प्रेम दैत्यस्त्री पूतना गोकुल में आकर दिखाती है। श्रीकृष्ण इस समय कहाँ था? क्या कर रहा था? आनन्दतनय कहते हैं,

लखलखित विराजे पाळणा हाटकाचा।
खचित मणिगणानें त्या जगन्नायकाचा ।।
झळकत वरि भारी घोंस मुक्ताफळांचा।
सहज हरि निजेला माजि हंता खळांचा ।।
झडकरि मग आली घ्यावया बाळकृष्णा।
घडिभरि मुख पाहे कृष्णमाता सतृष्णा ।।
उचलुनि निजहातें सोयरा सज्जनांचा।
निजहृदयिं धरी ते साध्य जो साधनांचा ।।

'यशोदा के घर में सुवर्ण का हिंडोला चमक रहा था। उन जगन्नायक का वह पालना रत्नजड़ित मणिगणों से सुशोभित था। उसके ऊपर मुक्ताफलों का हार था। उसमें दुष्टों का हन्ता श्रीकृष्ण सो गया था। पूतना त्वरित बालकृष्ण के पास आयी। कृष्ण-माता पुत्र की ओर देख रही थी। उसने साधनों के साध्य, सज्जनों के रक्षक को अपने हाथों से उठाकर निजहृदय पर रख दिया।'

श्रीकृष्ण की बाल-लीला आनन्दतनय ने उत्कट और प्रत्ययकारी भाव से चित्रित की है। श्रीकृष्ण गोकुल में नाना प्रकार के खेल करता था। माता का आँचल पकड़कर उसके साथ वह नित्य रहता था। बालकृष्ण किस प्रकार माता के पीछे रहता है, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

घरां येतां जातां, दधि घुसळितां, पाक करितां।
विडे घेतां, देतां, सहज दुहितां, दुग्ध भरितां ।।
नदीपाण्या जातां, जन निरखितां ही, परिसता।
फिरे मागेमागें, पदर धरुनी छन्द नसतां ।।

'घर में आते समय, घर से बाहर जाते समय, दधि मथने पर, स्वयंपाक करते समय, बीड़ा लेते और देते समय, गौ को दुहते, दूध भरते तथा नदी किनारे जाते हुए बालकृष्ण माता का आँचल पकड़कर पीछे-पीछे जाता है।'

'राधाविलास' का एक प्रेमाभक्तिव्यंजक श्लोक देखिये—

ते पद्माकर ते सुगन्ध बरवे, ते बोध ते वाहिनी।
ते वल्लीद्रुम, ती प्रफुल्ल कुसुमें, ते बा जगन्मोहिनी ।।
ती गानध्वनि, ती मनोज्ञ मुरली, ते गोप, ती गोधनें।
ते वृन्दावन, तो मुकुन्द नमिला, साष्टांग संबोधनें ।।

'वह पद्म-संवलित जलाशय, मनोरम सुगन्ध और उनसे प्रवाहित वह कृष्णबोध-भक्ति-वाहिनी तरंगें, वे विविध वृक्षों की लताएँ तथा उनके प्रफुल्ल सुवदन कुसुम कितने मनोज्ञ, कितने जगमोहन हैं—वे जगन्मोहिनी राधाजी के मानो प्रतीक हैं। वह गायन-ध्वनि और मनोहर मुरली-नाद, वे गोप, वे गाय-बछड़े आदि गोधन और जिसमें ये समाये हैं उस वृन्दावन, उस मुकुन्द को साष्टांग वन्दन के सम्बोधन के साथ, मैं भक्ति-प्रेमपूर्वक साष्टांग प्रणाम करता हूँ।'

आनन्दतनय ने श्रीकृष्ण का चरित्र-वर्णन करते समय अनेक स्फुट पद भी लिखे हैं—**'हरि, मज तारीं दीना'** (श्रीहरि, मुझ दीन का उद्धार कीजिये), **'गोविन्दा, गोपाळा, कृष्णा, गोपीजननाथा'**, **'नन्द-**

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हृदानन्द चिदानन्द माधवा !', 'जय नन्दकुमारा', 'अजि वनमाळी ! सांभाळी, नमितों तुज निजभाळीं', 'ये दयाळा सदय हरी !', 'गोकुलानन्दा गोपाळा कृष्णा' इत्यादि प्रतीकवाले अनेक पदों में आनन्दतनय ने कृष्ण की प्रार्थना भक्ति-भाव से की है।

एक पद में ये कहते हैं—

जय नन्दकुमारा !

ये गा ! तनुनिर्जित मारा ! ये गा मुनिलक्षमुमारा !
यें गा ! सुखदायक अति सुकुमारा ॥ जय० ॥ १ ॥
यमुनातट पुलिनविहारा ! कमलाकर कौस्तुमहारा !
शरणागतपालन अघपरिहारा ॥ जय० ॥ २ ॥
भववारिधि पार उतारा ! बहुधाकृत धृतअवतारा !
सदया आनन्दतनयदातारा ! ॥ जय० ॥ ३ ॥

प्र० न० जो०
वि० पं०

उद्धव चिद्घन

ये धारूर नगर के निवासी थे और कोकिळ उपनाम से कविता करते थे। इनका समय १७वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। ये मराठी-साहित्य में भक्त-चरित्र-ग्रन्थकर्ता के रूप में प्रख्यात हैं। विस्तृत भक्त-चरित्र लिखे जाने की परम्परा प्रायः इन्हींसे प्रारम्भ होती है। इनके नाम में 'उद्धव' स्वयं कवि का और 'चिद्घन' इनके गुरुदेव का नाम था। ये गुरु-शिष्य दोनों ही प्रसिद्ध पन्थ 'चैतन्य-सम्प्रदाय' से सम्बद्ध हैं जिसमें श्री तुकाराम महाराज भी मन्त्रोपदेश-प्राप्त थे। यह उत्कट प्रेमाभक्ति का पुरस्कर्ता सम्प्रदाय है। इसी परम्परा के माधवदास कवि के 'अलक्षनिधान' नामक ग्रन्थ से विदित होता है कि 'उद्धवचिद्घन' को सन् १६८९ ई० के पश्चात् मन्त्रोपदेश प्राप्त हुआ था।

ये काव्यकार एवं कीर्तनकार दोनों ही थे। इन्होंने पौराणिक, समकालीन तथा प्राचीन भक्तों के चरित्रों का अनेक प्रकार के छन्दों में वर्णन किया है। 'श्रीयाळ-चरित्र', 'ध्रुव-आख्यान' के साथ-साथ 'महातमा नागनाथ' एवं उनके शिष्यों 'हेमराज' तथा 'बहिरापिसा' के वृत्त का सरस गायन इनकी कीर्ति के स्तम्भ हैं। इसी प्रकार इन्होंने 'मृत्युञ्जय' तथा 'गोरा कुंभार' की जीवनकथा का भी मनोहर वर्णन किया है। इनके 'गीतार्थमञ्जरी' और 'शुक-रम्भा-संवाद' तत्त्वचिन्तन-विषयक काव्य हैं। 'अनुभवशतक' में इन्होंने अपनी भक्ति-साधना के अनुभवों का वर्णन किया है। यह विविध वृत्तों में रचित श्लोकबद्ध रचना है। अत्यन्त चर्चित, परन्तु अनुपलब्ध ग्रन्थ 'भक्तकथामृतसार' भी इनके द्वारा रचित कहा जाता है। इनके द्वारा विरचित 'सन्तमाला' नामक सन्त-चरित्रों का संग्रह प्राप्त है—जिसमें साकी वृत्त में लिखित अनेक सन्त-चरित्र उपलब्ध होते हैं।

इनका देहावसान अपनी जन्मभूमि धारूर में ही हुआ। वहाँ इनकी समाधि अब तक विद्यमान है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

एकनाथ

सन्त एकनाथ का जन्म सन् १५३३ ई० में पैठण के अनन्य विट्ठल-भक्त सन्त भानुदास के कुल में हुआ था। ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि महान् सन्तों के परवर्तीयुग के वारकरी-सम्प्रदाय में आविर्भूत भानुदास अत्यन्त श्रेष्ठ सन्त थे। इन्होंने बचपन में सूर्य-उपासना की थी—परन्तु बाद में कुल-परम्परा से प्राप्त विट्ठल-भक्ति के प्रति पूर्णरूपेण सर्मपित हुए। भाव-भक्ति के बल पर ये पण्ढरपुर स्थित विट्ठलमूर्ति विजयनगर के तत्कालीन शासक द्वारा अपनी राजधानी ले जाये जाने पर पुनः पण्ढरपुर वापस लाये थे। इन्हीं भानुदास के पुत्र चक्रपाणि ने सन्त एकनाथ का लालन-पालन उनके पिता सूर्यनारायण के देहान्त के बाद किया। एकनाथ की माता का नाम रुक्मिणीदेवी था। मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण ये अत्यन्त अल्पवय में ही मातृ-पितृ-हीन हो गये। परन्तु दादा-दादी ने बड़े ही प्यार-दुलार से इन्हें पाला और संस्कारशील बनाया। बचपन से ही इनमें अपूर्व सन्त-लक्षण, अलौकिक बुद्धिमत्ता और गहरी भावगम्यता के दर्शन घरवालों को होने लगे। उपनयन से पूर्व ही ये समस्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्याओं में पारंगत हो गये थे। यथासमय इनका उपनयन-संस्कार हुआ और ये वेद-वेदांग अध्ययन हेतु तत्पर हुए।

एकनाथ महाराज बाल्यावस्था से ही परमार्थ के रंग में रँगे हुए थे। प्रपितामह भानुदास की कहानियाँ इनके मानस में गूँज रही थीं और ये उन्हींके समान बनना चाहते थे। ईश्वरनिर्दिष्ट घटना के अनुसार नन्हें-से ब्राह्मण बटु एकनाथ, दादा-दादी को बिना बताये, देवगिरि-निवासी सिद्ध पुरुष श्री जनार्दन स्वामी की शरण में पैदल चलकर पहुँचे और उनसे शरण देने की याचना की। अल्पवय के बालक को देखकर यथोचित पूछताछ करके उन्होंने उसे आश्रय दिया और वेदविद्या तथा परमार्थ-साधना में सिद्धहस्त बनाना प्रारम्भ किया।

जनार्दन स्वामी तत्त्वनिष्ठ एवं दत्त-उपासक, अत्यन्त कर्मठ और जनसेवा में रत रहनेवाले सिद्ध पुरुष थे। उस समय वे सरकारी नौकरी में थे, परन्तु मुस्लिम शासक-वर्ग और सामान्य जनता पर उनका प्रभाव इतना गहरा था कि सद्गुरु-उपासना के लिए उन्होंने गुरुवार की साप्ताहिक छुट्टी की घोषणा करवा दी थी। वस्तुतः जनार्दन स्वामी ने जान-बूझकर विशिष्ट सीमा में स्वेच्छया जन-सेवा को अंगीकार किया था, जो उनके सिद्धत्व के लिए अनोखा पूरक तत्त्व था। ऐसे गुरु के पास एकनाथ महाराज लगातार पूरी किशोरावस्था और पूर्व युवावस्था में रहे। सम्पूर्ण समय में गुरुदास्य से कृश और गुरु-प्रेम से पुष्ट होकर सेवा, अध्ययन में तप-गलकर ये कुन्दन बनकर निखरे। आधी घड़ी भी विश्राम न करते हुए स्वयं को पूर्ण रूप से गुरु-चरणों में समर्पित करके इन्होंने जो लाभ पाया और जीवन जिया, वह अद्वितीय था। इनके गुरु-सान्निध्य-काल की अनेक कहानियाँ विख्यात हैं।

कहा जाता है कि एक दिन एकनाथ को, जो सद्गुरु के हिसाब-किताब की देखभाल भी करते थे, हिसाब में एक पाई की त्रुटि का पता लगाते-लगाते आधी रात बीत गयी। बगल के कमरे में गुरुदेव सुखनिद्रा में लीन थे। सुबह होने ही वाली थी, तभी एकाग्र एकनाथ एकाएक जोर से ताली पीटकर हँस पड़े। एक पाई की गलती पकड़ में आ चुकी थी। गुरु द्वार पर आकर खड़े थे—सारी बात समझ चुके थे। वे दुलार से इनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, "एकनाथ! जब एक पाई के मिल जाने से इतने प्रसन्न हो, तब जीवों के जीवन परमात्मा का अनुसन्धान मिल जाने पर कितना परमानन्द होगा? तुम्हारी एकाग्रता अभिनन्दनीय है, तुम अवश्य परमेश्वर को प्राप्त करोगे।"

इसी प्रकार एक बार जब गुरुदेव प्रभु-आराधना में समाधिमग्न थे, तभी यवनों का आक्रमण उनके किले पर हुआ—एकनाथ महाराज स्वयं वीरवेश में शत्रु के खेमे में कूद पड़े थे और विजयश्री प्राप्त करके ही लौटे थे। गुरु का प्रत्येक कार्य और उनकी हर तरह की सेवा ये अत्यन्त निष्ठा से करते थे।

पूर्णरूपेण सिद्ध होने के बाद ये जन-सेवा की ओर उन्मुख हुए। गुरुदेव से जो दृष्टि प्राप्त हुई थी उसे इन्होंने 'जनीं जनार्दन' (जन में जनार्दन) इस सूत्रवाक्य द्वारा अपने सम्पूर्ण साहित्य में अनुस्यूत कर दिया। सारे लोग जिसकी याचना करते हैं, जिसके पास माँगते हैं—वही जनार्दन है—एकनाथजी ने इसे अपने हर पद में 'छाप' के रूप में रखा और ईश्वर-भक्ति के अनुषंग रूप में गुरु-भक्ति को समाहित कर दिया।

एकनाथ महाराज ने अपने गुरु से उनकी कुल-परम्परा समर्थित विट्ठल-भक्ति प्राप्त की। इसके साथ ही गुरु के इष्टदेव श्री दत्तात्रेय का भी दर्शन इन्हें हुआ करता था और उनकी सेवा में उन्होंने कई पद लिखे थे।

विचक्षण शिष्य की शिक्षा पूरी हुई जानकर जनार्दन स्वामी ने इनको साथ लेकर तीर्थाटन हेतु प्रस्थान किया। यात्रा के क्रम में ही उन्होंने गुरु की देखरेख में 'चतुःश्लोकी भागवत' की रचना प्रारम्भ की। इस लघु ग्रन्थ में भागवत के नवम अध्याय के बत्तीसवें से पैंतीसवें तक के चार श्लोकों पर इन्होंने १०३६ ओवियों में टीका लिखी। इस ग्रन्थ-लेखन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय इन्हें अपूर्व गुरु-कृपा का लाभ हुआ। इन्हें प्रतीत हुआ कि जैसे गुरु-कृपावश 'शब्दों' के आगे ज्ञान और 'ओवी' के पहले अर्थ सहज प्रस्फुटित हो रहा है। इस रचना के बाद गुरु की आज्ञा से ये अकेले तीर्थ-भ्रमण को गये। उसे पूरा करके घर लौटे तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

इनकी सती साध्वी पत्नी गिरिजाबाई समानशीला एवं सहधर्मचारिणी थीं। उनसे उन्हें अकूत सहायता मिली। महाराजजी की अर्धाङ्गिनी उनके लिए कितनी अनुकूल थीं, इसका निदर्शन एक कथा द्वारा सहज ही हो जाता है। एक बार विरोधियों द्वारा उकसाया गया एक ब्राह्मण नाथ महाराज के 'अक्रोध' गुण की परीक्षा लेने आया। इनकी सम्पूर्ण दिनचर्या में तरह-तरह के व्यवधान उपस्थित करके भी जब वह इन्हें तनिक भी क्रोधित या उत्तेजित नहीं कर सका तब उसने एक नयी चाल सोची। भोजन के समय वह नाथ महाराज की बगल में आकर बैठ गया। जब धर्मपत्नी गिरिजाबाई झुककर भोजन परोसने लगीं तब वह धृष्ट उचककर उनकी पीठ पर सवार हो गया। नाथजी ने मुस्कराते हुए पत्नी से पूछा—"कैसा लग रहा है तुम्हें ?" वे बोलीं—"ऐसा लग रहा है जैसे हरि (उनका पुत्र) खेल-खेल में मेरी पीठ पर चढ़ बैठा हो।" इतना सुनते ही वह ब्राह्मण लज्जा से पानी-पानी होकर पति-पत्नी के चरणों में लोट गया। गिरिजाबाई के साहचर्य में ही नाथ महाराज गृही होकर भी परमार्थी का अत्युच्च पद पा सके।

इनके सरल स्वभाव पर प्रभु इतने मुग्ध हुए कि श्री एकनाथ-सदन में माधवजी टहलुए के रूप में स्वयं आकर काम करने लगे। कई महान् सन्तों ने और स्वयं नाथ महाराज ने संकेत दिया है कि 'श्रीखण्डचा' नामक नौकर के रूप में प्रभु स्वयं उनके घर काम किया करते थे। कहा जाता है कि नाथ महाराज की साधुता की सुगन्ध से जो अनेक भ्रमर आकर्षित हुए, उनमें पन्द्रह-सोलह वर्ष का एक किशोर भी था। वह नाथजी के घर आया और सेवा माँगने लगा। नाथजी ने उसका अता-पता पूछकर सेवा में रख लिया। निरन्तर दस-बारह वर्षों तक वह इनके यहाँ चन्दन घिसने, पानी भरने, देव-सेवा आदि के काम करता रहा। एक बार जब उसकी यौवनावस्था देखकर नाथजी ने गिरिजाबाई के सामने उसके विवाह की बात चलायी तो दूसरे दिन वह बिना किसीसे कहे-सुने घर से चला गया और फिर कभी नहीं लौटा। हरि-प्रेम में रँगे हुए नाथजी विचारते रहे कि इस तरह प्रभु ने मेरे यहाँ आकर मेरी ही सेवा की और जब मैंने उनकी सेवा की बात चलायी तो प्रभु मेरी आँखों में ज्ञानाञ्जन डालकर चले गये। 'श्रीखण्डचा' के इस स्पर्श से नाथजी की संसार-यात्रा सफल हो गयी।

एकनाथ महाराज का रचना-संसार अत्यन्त समृद्ध है। 'चतुःश्लोकी भागवत', 'हस्तामलक', 'स्वात्मसुख', 'आनन्दलहरी', 'शुकाष्टक', 'भागवत' (श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध पर टीका), 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'भावार्थ–रामायण' आदि महाकाव्य एवं लघुकाव्यों के अतिरिक्त इनके तीन हजार से अधिक अभंग (पद) उपलब्ध हैं। ये 'पण्ढरी-माहात्म्य', 'विठ्ठल-माहात्म्य', 'नाम-महिमा', 'सद्गुरु-महिमा-उपदेश', 'श्रीकृष्ण-लीला', 'श्रीकृष्ण-बालक्रीड़ा', ध्रुव आदि के पौराणिक चरित्र, सन्त-चरित्र जैसे विषयों पर रचे गये हैं। इनके साथ ही लोक-साहित्य-शैली पर आधारित अनेक भारुड (लोक-साहित्य-प्रकार), लोक-गीत, स्त्री-गीत, आशीर्वादपत्र, अभय-पत्र भी इनके रचे हुए मिलते हैं। अपने ग्रन्थों में गहन आध्यात्मिक विषयों को सहज, सरल और सुबोध भाषा में समझाते हुए इन्होंने सारी ज्ञान-सम्पदा जनसामान्य के लिए सुलभ कर दी है। ग्रन्थों के ही माध्यम से इन्होंने वारकरी भक्ति-सम्प्रदाय को विपरीत सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थितियों में निरन्तर विकसित करने का बहुविध तथा अतुलनीय प्रयास किया है। ज्ञानेश्वर महाराज की समाधि का जीर्णोद्धार और 'ज्ञानेश्वरी' ग्रन्थ का पाठ स्थिर कर उसकी शुद्ध प्रति को प्रचारित करना इनकी धर्मनिष्ठा के महान् कार्य थे। काशीक्षेत्र में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विट्ठल-भक्ति तथा वारकरी-सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार महाराज ने पण्डितों के बीच करके अनुमोदन, समर्थन और यश प्राप्त किया। 'भागवत' के एकादश स्कन्ध पर लिखित इनकी प्रख्यात टीका 'एकनाथी-भागवत' काशी में ही सम्पूर्ण होकर विद्वन्मान्य हुई। एकनाथी भागवत की रचना 'रामचरितमानस' की रचना के एक वर्ष पूर्व पूरी हुई थी।

एकनाथ महाराज के साहित्य की मूलभूत प्रेरणा इनकी अनन्य विट्ठल-भक्ति थी। उसकी हर पंक्ति परमात्म-स्पर्शप्राप्त है। ये किसी भी कथा पर किसी भी काव्य-प्रकार में कुछ भी लिख रहे हों, उस सर्जन में प्रसन्न परमार्थ और भगवान् की सत्-चित्-आनन्द-वृत्ति निरन्तर प्रकाशमान रहती है। अपनी उत्कट अन्तरंग प्रेमाभक्ति और नाम-संकीर्तन से समस्त मानवता को दिव्यभाव में आपूरित करके मोक्षदान करनेवाले एकनाथ महाराज ने सन् १५९९ ई० में स्फूर्तिमय एवं उल्लसित वातावरण में सहज समाधि ग्रहण की।

एकनाथ महाराज वैष्णव-कुलोत्पन्न थे। भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका लिखकर इन्होंने भागवत के तत्त्वज्ञान को लोकग्राह्य बनाया तथा 'भावार्थ-रामायण' की रचना द्वारा राम-कथा-रस से जनमानस को सन्तृप्त किया। विट्ठल भगवान् इनके इष्टदेव थे—विट्ठल अर्थात् बालकृष्ण, गो-गोपाल सहित वनविहार करनेवाले वनमाली। नाथ महाराज ने उन्हीं वनमाली की बाल, किशोर तथा पौगण्ड-लीला का वर्णन करते हुए अनेकानेक अभंग (पद) लिखे हैं। गौळगी अर्थात् गोपियों के पदों में वात्सल्य, मधुर आदि भक्ति-रसों का अन्यतम परिपाक हुआ है। इन रचनाओं में सगुण चरित्र-वर्णन, नाम-संकीर्तन और सर्वत्र अन्तरंगता में रमा हुआ परमार्थ-बोध उसी सुन्दरता और उत्कृष्टता से प्राप्त होता है।

एकनाथ महाराज ने अपने दीर्घ एवं लघु काव्यों में श्रीकृष्ण-भक्ति का गायन किया है। अभंग छन्द में भी उन्होंने श्रीकृष्ण-चरित्र-वर्णन किया है। श्रीकृष्ण-जन्म एवं बालक्रीड़ा, माखन-चोरी, रास-क्रीड़ा, राधाविलास, नन्द को विश्वरूप-दर्शन, गोपी-गीत, विरह-गीत, गोपिकाओं की क्रीड़ा, गोपक्रीड़ा, काला (वनभोज), श्रीकृष्ण-माहात्म्य आदि विषयों पर इन्होंने तीन सौ से अधिक अभंगों की रचना की है।

नाथ महाराज द्वारा वर्णित बालकृष्ण का एक मोहक चित्र देखिये—

भिगाचे भिगुले, खांद्यावर आंगुलें।
नाचत तान्हुलें यशोदेचे॥
येती गौळणी करती बुझावणी।
लागती चरणीं कान्होबाच्या॥
गोविन्द बाळिया वाजविती टाळिया।
आमुचा कान्हया देवराय॥
कडदोरा बिंदली वाघनखें साजरी।
नाचत श्रीहरी यशोदेचा॥
पायी घागरिया वाक्या साजरिया।
कानींच्या बाळ्या ढाळ देती॥

'नन्हें मुन्ने श्रीकृष्ण नाच रहे हैं, ठुमक-ठुमककर नाचते प्रभु के नन्हें से बदन पर झीनी झिंगुलियाँ हैं। उस पर तरह-तरह के आकर्षक अलंकरण हैं, आईने हैं, वह लुभावना दृश्य देखने के लिए झुंड की झुंड गोपियाँ दौड़-दौड़कर आती हैं और नृत्यरत शिशु के चरणों में प्रणाम करती हैं। कन्हैया से मनभावनी बातें करती हैं। नन्हें 'गोविन्द' कह-कहकर ताली बजाती हैं और 'हमारे प्रिय कन्हैया! हे देवता!' कह-कहकर उनकी बलैया लेती हैं। प्रभु के छोटे-से तन पर कटि-सूत्र, बिंदुली, बाघनख आदि शोभायमान हैं। पाँवों में घुँघरू, पैजनियाँ, वांकी आदि अलंकार हैं और कानों में पड़ी बालियाँ अपने तेज से चकाचौंध पैदा कर रही हैं। ऐसा अद्भुत नयनमनोरम वेष धारण कर प्रभु, यशोदा के नन्हें हरि, नाच रहे हैं, ठुमक रहे हैं। नाथ महाराज कहते हैं—ऐसे प्रभु की शरण में गोपियाँ एकत्व को प्राप्त होती हैं, जीव-जीवन सभी उस पर वारती हैं, नींबू-लोन से उसकी नजर उतारती हैं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार श्रीकृष्ण के मोहक रूप, मुरली-वादन तथा अन्य लीलाओं के आकर्षक प्रसंग इनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं।

नाथ महाराज ने अपने 'एकनाथी भागवत' में गोपी-प्रेम का सहज सुन्दर वर्णन किया है। अपनी समस्त प्रेमवृत्ति प्रभु को समर्पित करके उसमें घुल-मिल जाना, तद्रूप, तदाकार हो जाना, यही भागवत-धर्मी भक्ति की परमावस्था है।

गोपिकाओं के इस प्रेम का मधुर आचार ही गोपी-गीतों में मुखरित है। उसमें भक्त की लीला है, विनोद है, नटखटपन है।

'एकनाथी भागवत' में इन्होंने गोपी-प्रेम का उत्कृष्ट चित्रण किया है। इनके गोपी-गीतों में प्रेम की परमावस्था चित्रित है, उसका मधुर आचार मुखरित है। उनके विरह तथा मिलन के मनोरम दृश्य अंकित हैं। इनके विरह-गीत अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। इनमें कृष्ण-दर्शन की छटपटाहट और मिलन की सन्तृप्ति—दोनों स्थितियों के मर्मस्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं—

भिन्न मध्यान्हीं रात्रीं।
विरह करी बैसोनि अंतरीं॥
केधवां भेटेल श्रीहरी।
तों नवल जालें अंतरीं वो॥
अवचित घडला संतसंग।
विरहाचा झाला भंग॥
तुटोनी गेला द्वैतसंग।
फिटला जन्ममरणाचा पांग वो॥

'एक रात, जब मन द्विधा में था, विरह-उद्विग्न था, चित्त भिन्न था—ऐसी आधी रात में विरह से मारी मैं बैठी-बैठी सोच रही थी कि श्रीहरि से भेंट कब होगी, कब मिलना होगा प्रभु से? और आश्चर्य! कैसा अद्‌भुत अनुभव हुआ? अचानक जैसे सतत्संग हुआ, विरह-भंग हुआ, मेरा द्वैतभाव छूट गया और जन्म-मरण की चिन्ता भी चली गयी। युग-युग का विरह जैसे क्षणमात्र में समाप्त हो गया। प्रभु से आलिंगन के लिए मन उतावला हो रहा था। जैसे ही मिलन हुआ, मेरी अहंता नष्ट हो गयी। सारा अहं, सारा आपा प्रभु में विलीन होकर लुप्त हो गया।'

इसी प्रकार मिलन-विरह के गंगा-जमुनी रंग में ढले और उर्स राग में रंजित एकनाथ-कृत 'रास-क्रीड़ा, वनक्रीड़ा, गोपक्रीड़ा, राधा-विलास' आदि प्रसंग प्रेमाभक्ति के अनुपम स्फुलिंग हैं।

एकनाथ महाराज ने 'राधा-विलास' नामक आख्यान में राधा-कृष्ण-लीलाओं के अनेक मनोरम प्रसंगों की उद्भावना की है। इसके अतिरिक्त स्फुट रूप में विरचित अभंगों में भी इन्होंने राधा-कृष्ण-लीला के शब्दचित्र अंकित किये हैं।

एक अभंग में ये कहते हैं कि कंधे पर काली कमरिया और हाथ में लकुटी लेकर साँवला जगजेठी गौएँ चराने चला है और मन में **'राधे-राधे-राधे-राधे मुकुन्द मुरारी। वाजवितो वेणू कान्हा सांवळा श्रीहरि॥'** अर्थात् मुकुन्द मुरारी यह साँवला कन्हैया श्रीहरि—मुरली बजा रहा है—और उस नाद में राधा-राधा-राधा स्वर स्फुटित हो रहे हैं। इस तरह राधा के नामस्मरण में लीन श्रीकृष्ण वेणु-वादन करने लगे। एक-एक गोपी और एक-एक गोप की शृंखला बनती गयी और उनकी रासक्रीड़ा आरम्भ हो गयी। इस रासमण्डल में जिधर देखिये उधर अखण्ड ब्रह्म ही व्याप्त दिखाई देने लगा।

राधा-कृष्ण की गोकुल की गलियों में भेंट का निम्नांकित पंक्तियों का एक मनोज्ञ वर्णन प्रस्तुत किया है—

वारियानें कुंडल हाले।
डोळे मोडित राधा चाले॥
राधा पाहुन भुलले हरि।
बैल दुभे नंदाघरी॥
हरि पाहुनि भुलली चित्रा।
राधा घुसळी डेरा रिता॥
मन मिनलेसे मना।
एका भुलला जनार्दना॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कटाक्षों से देखती हुई श्री राधिका गोकुल की गलियों में चलती हैं—बहती हुई बयार के छूने से उसके कुण्डल हौले-हौले हिलते हैं—उसके चलने में एक तरह की ठुमक है। ऐसी राधा को देखकर श्री हरि अपने-आपको भूल बैठे हैं और नन्द-गृह में बैलों को ही दुहे जा रहे हैं। उधर राधिका भी हरि-मूर्ति देखकर चित्त हार बैठी हैं और रीता घट लेकर उसीमें मथनी डालकर मथ रही हैं। मन मन में पूरी तरह से मिल गया है—समा गया है।'

इस प्रकार यह प्रेमपरवशता दोनों में परिव्याप्त हो गयी है। यह लुभानेवाली मोहिनी एकनाथ-कृत वर्णित रास-क्रीड़ा के सभी अभंगों में जाने-अनजाने प्रकट हुई है।

नाथ महाराज के समस्त साहित्य में राधा-कृष्ण-भक्ति का सुन्दर अभिव्यंजन हुआ है। इन्होंने इस माध्यम से काम-धन्धा करते, सोते-जागते, खेलते-खाते श्रीकृष्ण-चिन्तन में रमने का साधन जनता को दिया। श्रीकृष्ण ने सारे गोकुल का उद्धार किया था। एकनाथ महाराज ने इसी तारनेवाले प्रेममय श्रीकृष्ण की उपासना प्रतिष्ठापित की है।

प्र० न० जो०

वि० पं०

एल्हण

ये महानुभावपन्थीय कवि हैं। इन्होंने कृष्ण-कथा अत्यन्त सरस शैली में कही है। इनके सर्वाङ्गसुन्दर काव्य-ग्रन्थ 'अष्ट-विवाह' में भगवान् के अष्टविवाह एवं षोडश सहस्र विवाह की कथा वर्णित है। इस काव्य के बारह भाग हैं—प्रथम भाग में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी स्वयंवर की कहानी विस्तारपूर्वक कहने के बाद जाम्बवती, सत्यभामा, सुमित्राविन्दा, लक्ष्मणा, भद्रा, कालिन्दी आदि रानियों के परिणय की कथा कहते हुए कवि दश भाग पूर्ण करते हैं। तत्पश्चात् मदन-सरोवर के राजहंस (श्रीकृष्ण) द्वारा सौन्दर्य-तरंगिणी-तट की असंख्य राजहंसियों के गले में मंगल-सूत्र डालने के बाद बारहमासा-वर्णन किया गया है और अन्त में श्रीकृष्ण द्वारा रचित वसन्तोत्सव-क्रीड़ा की सुन्दर कथा अपूर्व तन्मयता और रसमयता से कही गयी है।

कृष्ण-कथा-गायकों में एल्हण का निस्सन्देह विशिष्ट स्थान है। इनका समय अनुमानतः १४७५ ई० के आसपास बताया जाता है।

प्र० न० जो०

वि० पं०

कचेश्वर

प्रसिद्ध भक्त कचेश्वर का जीवनकाल लगभग पूरी सत्रहवीं शताब्दी है। आप दीर्घायु थे और शिवाजी महाराज से लेकर शाहू महाराज तक के चार महाराजाओं के शासन इन्होंने देखे थे।

ये चाकण ग्राम के निवासी थे। उपनाम था ब्रह्मे। पिता का नाम सिद्धेश्वर था। इनके पितामह मेंगनाथ के पास शिवाजी महाराज द्वारा प्रदत्त 'ब्रह्मत्व' का अधिकार था। इनकी समस्त पितृपरम्परा वेदाध्यायी और कर्मठ थी। बचपन में ये अत्यन्त उच्छृङ्खल थे और ब्राह्मण-संस्कारों की अवहेलना करते थे। परन्तु सांसारिक आपदाओं से उत्पन्न विरक्ति, विष-प्रयोग की बाधा आदि अनेक कारणों से धीरे-धीरे कथा, कीर्तन और सत्संग में सम्मिलित होने लगे।

इनका एक सौ ग्यारह ओवियों का एक ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें इन्होंने अपनी उच्छृङ्खलता, तुकाराम महाराज के अभंगों में उत्पन्न रुचि, तुकारामजी का स्वप्नानुग्रह, वाफगाँव के वन में श्रीमहाविष्णु-मूर्ति की उपलब्धि और अन्ततः तुकाराम महाराज में मन को पूर्ण रूप से निमग्न कर देने पर उनके कृपाशीर्वाद से प्राप्त ब्रह्मानन्द की स्थिति का सविस्तार वर्णन किया है। तुकारामजी का शिष्यत्व स्वीकारने से इनके पिता अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इन्हें घर से निकाल दिया। परन्तु प्रभु और गुरु पर अटूट विश्वास रखते हुए ये भक्त-जीवन में स्थिर, सफल और सिद्ध हुए। कहा जाता है कि अपने सत्त्वशील आचार के बल पर इन्होंने अकाल में वृष्टि करायी थी, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें राजपुरुषों द्वारा 'वृत्ति-पत्र' (सन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६९८) प्रदान किया गया था। इस घटना के बाद इनकी सत्कीर्ति इतनी बढ़ी कि स्वयं शाहू महाराज इनके शरणागत हुए और इनका शिष्य-समुदाय उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

इनके द्वारा विरचित 'सुदाम-चरित्र' एवं 'गजेन्द्र-मोक्ष' आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता में सहज, सरल, घरेलू शब्दों की योजना रहती थी और सिद्ध कीर्तनकार होने से वह रस से आपूरित रहती थीं। इनके द्वारा वर्णित श्री तुकाराम महाराज का साक्षात्कार प्रख्यात है। प्र० न० जो०

वि० पं०

कर्ममेळा

ज्ञानेश्वर महाराज के सन्तमण्डल के अन्त्यज जाति के महान् भक्त श्री चोखामेळा के पुत्र कर्ममेळा पिता के समान ही महान् भगवद्भक्त थे। भगवान् के साथ इनकी अत्यधिक निकटता थी—यद्यपि भक्ति के बल पर ये समस्त जाति-वर्णों से श्रेष्ठ थे, तथापि कभी-कभी शूद्र जाति में जन्म देने के लिए ये भगवान् को उपालम्भ दिया करते थे। युवक कर्ममेळा क्रुद्ध होकर प्रभु से पूछते हैं—

आमुची केली हीन याती।
तुज कां न कळे श्रीपती।
जन्म गेला उष्टे खातां।
लाज न ये तुमच्या चित्ता?

'प्रभु! आपने मुझे हीन जाति में जन्म दिया, महार बनाया। हे श्रीपति! आप नहीं जानते कि कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं? अपमान सहने पड़ते हैं? पूरा जन्म ही जूठन खाते बीत जाता है। प्रभु, आपके चित्त में लज्जा-बोध नहीं होता? भक्त को जाति-पाँति में कष्ट पाते देख पीड़ा नहीं होती आपको?'

कर्ममेळा को अपनी भक्ति पर गर्व था। इनकी दीनता तथा तन्मयता प्रभु से साहचर्य बढ़ाने में अत्यन्त सहायक हुई। वारकरी-सम्प्रदाय के सन्तों ने इसीलिए 'जोहार' आदि अभंगों की रचना करके इस दीन-वृत्ति का पोषण किया है और चोखोबा-कर्ममेळा को उच्च स्थान प्रदान किया है। कर्ममेळा की माँ सोयराबाई भी महान् भक्त और कवयित्री थीं। इनके विठ्ठलरूप-वर्णन-विषयक कई सुन्दर अभंग प्राप्त होते हैं।

प्र० न० जो०

वि० पं०

कान्हुपात्रा

कान्हुपात्रा मंगळवेढा की एक गणिका की सुन्दरी पुत्री थीं। इनका समय सन् १४८० ई० के आसपास माना जाता है। इन्होंने बाल्यकाल में ही माँ के पेशे को स्वीकार करने से विरक्ति घोषित कर दी। विवाह भी नहीं किया और वारकरी सन्तों के अभंगों, कीर्तनों से प्रभावित होकर उन्हींमें रँगी हुई स्वयं भी अभंग-रचना करने लगीं। सन्तों के दर्शन से इनके जीवन में परिवर्तन आ गया और पिंगला के समान इन्होंने भी एक क्षण में कुलाचार को त्यागकर स्वयं को प्रभु-चरणों में समर्पित कर दिया। इसके बाद ये पण्ढरपुर में ही रहने लगीं। इनकी अभंग-रचना अत्यन्त करुण और रसपूर्ण है। कामक्रोधादि उपाधियों को दूर कर कृपानिधि लाज रख लें—इसके लिए ये आर्त होकर पुकारती हैं। इनकी भक्ति मधुर-संवलित दास्यभाव की है।

पण्ढरपुर में राजा के आदेशानुसार आततायियों द्वारा जबरदस्ती पकड़कर ले जाते समय इन्होंने युवावस्था में ही श्री विठ्ठल देवालय के महाद्वार पर प्राण त्याग दिये थे। वहीं इनकी समाधि निर्मित है। देह-त्याग के समय इन्होंने प्रभु की पुकार करते हुए कई अभंगों की रचना की। एक में ये कहती हैं:

नको देवराया अंत पाहूं आतां।
प्राण हा सर्वथा फुटों पाहे॥
हरिणीचे पाडस व्याघ्रे धरियेले।
मजलागी जाहले तैसे देवा॥
तुजवीण ठाव न दिसे त्रिभुवनीं।
धांवे वो जननी विठाबाई॥
मोकलोनी आस जाले मी उदास।
घेई कान्हूपात्रेस हृदयाआंत॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हे देवराज ! अब अन्त न देखियेगा—मेरा प्राण सर्वथा प्रयाण करना चाहता है। हिरनी के बच्चे को बाघ पकड़ ले वैसी ही मेरी स्थिति हो गयी है। तुम्हारे बिना त्रिभुवन में कहीं कोई ठौर-ठिकाना नजर नहीं आता। हे माँ, हे जननी विठाबाई, अब तो दौड़कर आ मेरी रक्षा कर। अब सारी आशा छोड़कर मैं उदास-विरल हो चुकी हूँ। हे विट्ठल प्रभु ! अब इस कान्हु-पात्रा को हृदय में ले लो—अपने हृदय में इसे अटल स्थान प्रदान कर दो, मुझे अपना लो प्रभु।'

प्र० न० जो०

वि० पं०

कान्हो पाठक

कान्हो पाठक पुणे के निकट केन्दुर ग्राम के निवासी प्रख्यात सन्तपुरुष नागनाथ' के शिष्य तथा ज्ञानेश्वर महाराज के विशेष कृपापात्र और समकालीन थे। श्री ज्ञानेश्वर महाराज के समाधि-ग्रहण करने पर इन्होंने समस्त धार्मिक कार्य सम्पन्न किये थे। इन्हींके प्रपौत्र नामा पाठक सुविख्यात कवि एवं भक्त हुए।

कान्हो पाठक द्वारा रचित कुछ अभंग मिलते हैं और 'गीतासार' नामक एक स्वतन्त्र कृति भी प्राप्त होती है।

प्र० न० जो०

वि० पं०

कान्होबा

कान्होबा, तुकाराम महाराज के अनुज थे। इनकी रचनाओं में श्रीकृष्ण-लीला, अग्रज तुकोबा के देहावसान के पश्चात् के शोकपरक उद्गार, आत्मचरित्र एवं कलिवर्णन-सम्बन्धी अभंग प्राप्त होते हैं। इनकी वाणी भी बन्धु-वाणी के समान ही प्रेममय और ओजवती है। पूर्ववय में ये तुकाराम महाराज की भगवद्भक्ति, वैराग्य-वृत्ति, प्रपंच के प्रति उदासीनता आदि से दुःखी रहा करते थे, परन्तु जब तुकारामजी की भक्तरूप से सर्वत्र वन्दना हुई और उनके लोकोत्तर गुण प्रकट हुए तब कान्होबा की सत्त्व-वृत्ति जागृत हुई और ये तुकोबा के अनन्य भक्त एवं शिष्य बन गये। तुकाराम महाराज के चौदह प्रमुख शिष्यों में इनकी गणना होती है। ये वारकरी-मण्डल में मूर्धन्य स्थान के अधिकारी माने गये हैं।

इनके द्वारा विरचित अभंगों की संख्या लगभग सवा सौ है। तुकाराम महाराज के वैकुण्ठ-प्रयाण के पश्चात् इन्होंने आन्तरिक शोक में मग्न हो आराध्य से अभूतपूर्व प्रेमपूर्ण उलाहना दिया और हठ किया कि "वे इनके भाई को पुनः लौटा दें।" ये कहते हैं— "प्रभु ! तुमने मेरा हँसता-खेलता परिवार उजाड़ दिया, मेरा ओढ़ना छीन लिया, मुझे दीन कर दिया—तुम्हारी भक्ति-मुक्ति मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस, मेरे भाई को वापस दे दो।" इन अभंगों में इनका भाई के प्रति उत्कट प्रेम और निश्छल भक्त-हृदय प्रकट होता है। अन्त में ये कहते हैं कि—

"मेरे भैया ने हमारे लिए इतना भक्ति-धन, इतना परमार्थ-सुख जोड़ रखा है कि हम जन्म-जन्म बैठकर खायेंगे और स्वानन्द में मौज करेंगे।"

भगवान् कृष्ण की माहात्म्य-ज्ञान समन्वित स्तुति करते हुए ये कहते हैं—

चवदा भुवने लोक तिन्हीं दाढे जो कवळी।
संपुष्ट तो संबळी मध्यें देखा।।
उत्पत्ति संहार करिता जो पाळण।
ते नंदा नंदन म्हणवीतसे।।

'चौदह भुवन और तीनों लोक जिसके मुख में समाहित हैं, वह श्रीहरि छोटी-सी गुदड़ी में समा जाता है। जो सारे जगत् की उत्पत्ति और संहार करनेवाला है, जो जगत् का पालन-पोषणकर्ता है, वह प्रभु गोकुल में नन्दबाबा का नन्हा बेटा बनकर रहता है।'

प्र० न० जो०

वि० पं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदयार्णव

कृष्णा-कोयना नदियों के संगम के निकटस्थ कराड-क्षेत्र के उत्तर में कोपारुढ़ नामक गाँव के शम्भुमणि नामक ब्राह्मण के द्वितीय पुत्र 'नरहरि' ही 'कृष्ण-दयार्णव' नाम से विख्यात हुए। इनका जन्म सन् १६७४ ई० में अक्षय तृतीया के दिन हुआ था। बचपन में ही माता का देहान्त हो गया। पाँचवें वर्ष में उपनयन और आठवें वर्ष में विवाह करवाकर पिता भी इहलोक छोड़ गये। विधर्मियों के आक्रमण से उत्पन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में इन्होंने स्वग्राम छोड़कर 'आंबाजोगाई' नगर में आश्रय ग्रहण किया। वहीं इनकी भेंट गोविन्दस्वामी से हुई। उन्होंने नरहरि को उपदेश-दीक्षा दी। उसके अनन्तर ये नित्य मुख से 'कृष्णदयार्णव' कहते हुए देहरक्षणार्थ भिक्षा माँगा करते और सद्ग्रन्थ-पठन, तपश्चरण, तीर्थयात्रा आदि में कालयापन करते थे। तीर्थयात्रा समाप्त कर जब घर लौटे तो विधर्मियों के आक्रमण के युद्ध-प्रसंग में गृहनगर को पूरी तरह नष्ट हुआ देखकर ये पिंपळनेर में रहने लगे। तभी कुछ वर्षां बाद स्त्री का देहान्त हुआ। पुनः द्वितीय सम्बन्ध किया। फिर महारोग से पीड़ित हुए। अब सन्तसज्जनों और गुरु के कहने पर रोग-शान्ति के लिए इन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर टीका लिखनी प्रारम्भ की। इस समय तक अपने इष्टनाम 'कृष्णदयार्णव' के नाम से ये स्वयं ही विख्यात हो चुके थे और इनकी आयु लगभग ५१ वर्ष के ऊपर हो गयी थी। अपने इस प्रसिद्ध टीका-ग्रन्थ 'हरिवरदा' के पूर्वार्ध के ४९ अध्याय और उत्तरार्ध के ३७ अध्याय पूर्ण करके ८७वें अध्याय के २३ श्लोक तक ही लिख पाये थे कि इनका आयुक्रम समाप्त हो गया। बचे हुए साढ़े तीन अध्याय इनके सत्शिष्य श्री 'उत्तमश्लोक' ने पूरे किये। इस प्रकार स्वामी कृष्णदयार्णव' सन् १७४० ई० में समाधिस्थ हुए। समाधि पेठण मे बनी हुई है।

श्री कृष्णदयार्णव द्वारा उत्तरवय में लिखी गयी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की टीका ओवी छन्द में, अत्यन्त रसमय तथा सुसंगत रूप में रचित है। ग्रन्थकार की विद्वत्ता और बहुश्रुतता इसमें प्रकट है। वर्णनात्मक भाग भी अनेकानेक भक्ति-प्रेम-प्रसंगों से ओतप्रोत हैं। यह 'हरिवरदा' ग्रन्थ बृहद्कलेवर है और इसकी ओवी-संख्या ४२००० है। इसके अतिरिक्त इनके दो अन्य ग्रन्थ भी हैं—'तन्मयानन्द-बोध' एवं 'चिन्मया-नन्द-बोध'। इन्होंने स्फुट रूप में कुछ अभंग और डेढ़ सौ पद रचे हैं। 'कृष्णदयार्णव' स्वामी के सम्पूर्ण ग्रन्थ-सम्भार पर खिन्नता की छाया-सी प्रतीत होती है, क्योंकि इन्होंने अपना पूरा जीवन आपद्ग्रस्त स्थिति में बिताया था। इसके बावजूद इन्होंने कृष्ण-कथा का यह अमृत-रसायन तैयार करके जनजीवन में भक्ति-आनन्द-रस घोल दिया। चित्त की समता रखते हुए—आपत्ति को इष्टापत्ति मानकर विष को अमृत बना लेना—इनके जीवन और सर्जन की महानता है।

श्री कृष्णदयार्णव के 'हरिवरदा' ग्रन्थ की यह विशेषता है कि यह अत्यन्त सहज सरल भाषा में है तथा मनोरंजक एवं लोकप्रिय है। स्वामीजी स्वयं नित्य कीर्तन-प्रवचन किया करते थे। अतः यही सरसता ग्रन्थ में भी उतर आयी है—वर्षा-वर्णन के एक प्रसंग में ये कहते हैं—

जेवि गुणमय ब्रह्म सगुण।
करूनि आणी जीवपण।
प्रावृष्टकाळी सजल घन।
लेवूनि गगन तेंवि नटे॥

'जिस प्रकार गुणमय ब्रह्म सगुण बनकर जीवसृष्टि के रूप में अवतरित होता है वैसा ही यह गगन वर्षाकाल में सजल मेघों के रूप में रूपायित होकर शोभायमान है।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णदास (कवि डिंभमुनि)

कवि डिंभमुनि, कृष्णदास अथवा कृष्णमुनि विराट्देश के सत्रहवें शतक के महानुभावीय भक्त थे। आप उपाध्याय आम्नाय के मयंकराज के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त इनके जीवन-विषयक और कोई सूचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपलब्ध नहीं है। इनकी भगवद्गीता-माहात्म्य, फलटण-माहात्म्य, ऋद्धिपुर-माहात्म्य, कृष्णजन्माष्टमी आदि रचनाएँ ओवीबद्ध रूप में प्राप्त होती हैं। साधनामृत-स्रोत, रण्डिकास्तोत्र, तीर्थमालिका प्रभृति श्लोकबद्ध रचनाएँ भी इन्होंने प्रभूत मात्रा में की हैं। इनका विशेष प्रख्यात ग्रन्थ 'रुक्मिणी-स्वयम्वर' है। यह श्लोकबद्ध और नवखण्डात्मक है। इसका दूसरा नाम 'कल्पद्रुम' भी है। यह ग्रन्थ सन् १६५२ ई० में लिखा गया था। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'लक्ष्मणा-स्वयम्वर' भी मिलता है, जिसमें ३१३० ओवियाँ हैं।

अपने सर्वाङ्गसुन्दर काव्य 'रुक्मिणी-स्वयंवर' में श्रीकृष्ण का वर्णन करते हुए कहते हैं—

चरणयुगुळ सुंदर गोजिरे।
मृदु कुवलयरंगित साजिरे।
जलधिकुमरि वांछित अंतरे।
मुनिजन हृदि चिन्तित आदरे।।

'प्रभु श्रीकृष्ण के चरण-युगल अत्यन्त सुन्दर, मनमोहक हैं। ये मृदु चरण मृदु कुवलय से मानो सुरंजित हो शोभायमान हैं। इनका सहज लाल वर्ण है। जलधि-कुमारी श्री लक्ष्मी अर्थात् रुक्मिणीदेवी उन्हें अपने अन्तर से चाह रही हैं और अपने अन्तर में पाना चाहती हैं। इन चरण-कमलों को मुनिजन अत्यन्त आदरपूर्वक अपने हृदय में रखकर निशिदिन उनका चिन्तन करते हैं।'

कवि के अनुसार श्री रुक्मिणी श्रीकृष्ण को पतिरूप में पाकर अत्यन्त प्रसन्न हैं। रुक्मिणी सुन्दरी निजपति श्रीहरि को नयनों में समोकर निहार रही हैं। मन में अत्यन्त सुखी हैं और उनमें अष्टभाव उमड़ आये हैं। इस जगत् में लोग जिसके लिए जप-तप, तीर्थ-दान आदि करते रहते हैं परन्तु जिन्हें पाते नहीं हैं, उसी परम पुरुष को शय्या पर पाकर देवी, परम भक्तिमती, अत्यन्त गद्गद और कम्पायमान हैं। अब वे नित्य प्रेमसुख-भावसहित श्रीहरि में रमण करती हैं।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णदास (दामा)

कृष्णदास रामदेवराय यादव के समकालीन तथा आश्रित तेरहवीं शताब्दी के कवि हैं। इनकी रचनाओं में रामदेवराय यादव, हेमाडपन्त आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके द्वारा विरचित 'भारत' ग्रन्थ के आदि-पर्व की टीका लगभग ५८ अध्यायों एवं ६७०० ओवियों में प्राप्त होती है। यद्यपि काव्य की भाषा सरल है, तथापि उसमें प्राचीन एवं परकीय शब्द बहुतायत से प्राप्त होते हैं। अपनी आदिपर्व टीका में एक जगह नारायण-स्तुति करते हुए ये कहते हैं—

आधींच रूप सावळें।
वरी तेज पडे पीवळें।।
मग त्या सुढाळें।
सुनील रूप दिसतसे।।
तेथीचें लावण्य।
राया मी काय सांगो तुज लागुन।।
कोटी मयंक येऊन।
कुरवंडी करीती श्रीमुखप्रभेची।।

'प्रभु नारायण का रूप पहले ही साँवला है, उस पर पीताभ तेज प्रसृत हो रहा है और उस सुकान्ति में वह सुनील, मेघवर्ण रूप अत्यन्त ही मनोहारी प्रतीत होता है। हे राजा! मैं वहाँ का रूप-लावण्य तुमसे क्या कहकर वर्णित करूँ? उस श्रीमुख-प्रभा पर कोटि-कोटि चन्द्रमा वार दिये हैं। वे स्वयं आकर उस पर न्योछावर हो जाते हैं।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णदास नामा

कृष्णदास नामा के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। परन्तु उनकी कृष्णभक्ति-परक रचनाएँ लोकप्रिय हैं।

इनकी एक 'भूपाळी' जिसमें जागरण का पद है, अत्यन्त सुन्दर है। माता यशोदा बालकृष्ण को जगा रही हैं। कहती हैं—"हे यादवराय! अब उठो, मुख-प्रक्षालन करो। हे कमलनयन! अपना गोधन सँभालो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखो, प्रातःकाल हो चुका है, दिनकर उदित हुए हैं। नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं।'' माँ जसवन्ती आगे कहती हैं—''बेटा', अरुणोदय हो चुका है। चन्द्रमा अस्त हो चुका है और रात बीत चुकी है। देखो तो पूर्ण कलश लेकर लावण्य की राशि लक्ष्मी सेवा में खड़ी हैं—सारे गोपाल तुम्हारी राह जोह रहे हैं। गंगा, भागीरथी, यमुना, सरस्वती आदि सारी नदियाँ चरण धोने आ पहुँची हैं।'' माता के ये वचन सुनकर प्रभु चक्रपाणि जाग पड़े हैं। ऐसे समय में कृष्णदास नामा प्रभु-चरण गहते हैं—अपना प्रणाम निवेदन करते हैं।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णदास महानुभाव (सन्तोष मुनि)

पन्द्रहवीं शताब्दी के महानुभाव-पन्थी कवियों में 'कृष्णदास' सन्तोषमुनि ग्रन्थकार के रूप में विशेष प्रतिष्ठित हैं। ये पारमाण्डल्य आम्नाय से सम्बद्ध और आम्नाय-प्रवर्तक गोपाल पण्डित की सातवीं पीढ़ी के प्रख्यात पुरुष थे। इनके ग्रन्थ 'रुक्मिणी-स्वयंवर' का पन्थ में बहुत प्रचार था इसकी प्रतियाँ हरिपुर, हजारा, अमृतसर, पेशावर में भी प्राप्त हुई हैं। इस ग्रन्थ का लेखन कुंकुमठाण (कोकमठाण, जिला कोपरगाँव) में प्रारम्भ होकर श्रीनगर में पूर्ण हुआ बताया जाता है।

प्रस्तुत 'रुक्मिणी-स्वयंवर' कुल ३७४० ओवियों का है और भागवत तथा पद्मपुराण का आधार लेकर लिखा गया है। कवि कहते हैं—

हें शब्द ब्रह्ममुद्रिका नवावर्त।
तेयावरी वेदपुराणरत्नें समस्त।
तयामाजी माणिक ते भागवत।
उत्तम कृष्णकथा॥
तेया माणिकामाजि फिल पडखर।
तैसे श्रीभागवती रुक्मिणीसंवर।
उत्तम पवित्र परिकर।
दुर्लभ तिहीं लोकी॥

'यह शब्द ब्रह्म की नव आवर्तवाली मुद्रिका है, जिसमें समस्त वेद-पुराण आदि रत्नरूप में जड़े हैं। उसमें भी जो उत्तम कृष्ण-कथावाला भागवत है वह अत्यन्त मूल्यवान् माणिक्य है। उस माणिक्य की तेज प्रभा के सदृश यह रुक्मिणी-स्वयंवर की कथा है, जिसका परिवेश उत्तम, पवित्र तथा परिकर परिवार उत्तम है, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है।'

और कथा के नायक हैं श्रीकृष्ण—

कां जे ये ग्रंथी अधिपती।
आपण कथानायकु श्रीकृष्ण चक्रवर्ति।
म्हणौनि महापातकें भंगा जाती।
हे आइकतां श्रीकृष्णकथा॥

'इस ग्रन्थ के अधिपति कथानायक श्रीकृष्ण चक्रवर्ती स्वयं हैं। इसीलिए यह श्रीकृष्ण-कथा श्रवण करते ही महापातक भंग हो जाते हैं—मन आनन्दोल्लास से पूर्ण हो जाता है।'

श्री कृष्णदास सन्तोषमुनि के इस ग्रन्थ में कृष्ण-भक्ति से आपूरित अनेक सुन्दर प्रसंग हैं। इसकी भाषा सरल एवं प्रसादगुणयुक्त है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णदास सामा

कृष्णदास सामा गोमान्तकीय कवि हैं। इन्होंने कृष्ण-चरित्र पर 'श्रीकृष्ण-कथा' ग्रन्थ लिखा है, जिसमें १९ अध्याय और लगभग ३२०० ओवियाँ हैं। यह ग्रन्थ सन् १५२६ ई० में गोवा के केळोसी ग्राम में लिखा गया था। कृष्णदास सामा शान्तादुर्गा देवी के भक्त थे और उनके गुरु पण्ढरपुर-निवासी श्री गोविन्द थे। प्रस्तुत काव्य श्रीमद्भागवत के दशम स्कंन्ध के ४५ अध्यायों पर आधारित है। इस ग्रन्थ की रोमन लिपि में लिखी पाण्डुलिपि पुर्तगाल के रखी गयी है।

इनके द्वारा विरचित 'कृष्ण-चरित्र' में रास-क्रीड़ा-वर्णन, बलराम-कृष्ण को देखने की नागरिकों की उत्सुकता आदि प्रसंग विशेष मनोरम हैं। ग्रन्थ को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाप्त करते हुए कवि ने कहा है कि उसने केवल बाल एवं किशोर-चरित्र का वर्णन किया है, क्योंकि इसीमें उनका मन विशेष रमता है। जो भगवद्-भक्ति का रस लेना चाहते हैं, उन्हें यह कृष्ण-चरित्र विशेष प्रिय होगा, ऐसा इनका विश्वास है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णमुनि

कृष्णमुनि महानुभावपन्थीय भक्त तथा कवीश्वर आम्नाय से सम्बद्ध थे। इस आम्नाय में 'ब्रह्माण्डगोलक' नामक ग्रन्थ लिखा गया, जो गीता तथा भागवत पर आधारित है। इसकी रचना होने के बाद अनेक सत्पुरुषों ने इसे बढ़ाया और अन्ततः गोपालदासजी ने इस 'निष्कलंकाध्याय ब्रह्माण्डगोलक' में कृष्णमुनि की ओवियाँ भी समाविष्ट कीं। कृष्णमुनि ने अपना काव्य सन् १५१० ई० के लगभग लिखा। अतः इसीके आसपास इनका उपस्थिति-काल निश्चित किया जा सकता है।

'ब्रह्माण्डगोलक' ग्रन्थ में साधारणतः तत्त्वविवेचना है। 'गीता' में जो प्रश्न पूछने से रह गये थे, उनकी कल्पना करते हुए कवि ने कृष्णार्जुन-संवाद रूप में उन्हें प्रस्तुत किया है। उसमें जीव, ब्रह्म, ब्रह्माण्डस्थिति आदि के बारे में कृष्ण भगवान् से पृच्छा की गयी है और प्रभु इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। कृष्णमुनिजी की यह रचना सम्प्रदाय में बहुमूल्य मानी जाती है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्ण याज्ञवल्की

कृष्ण याज्ञवल्की अपने बृहद् ग्रन्थ 'कथाकल्पतरु' के रचयिता के रूप में प्रख्यात हैं। इस ग्रन्थ की कुल छन्द-संख्या लगभग ३९ हजार है, जिसमें से पूर्वार्द्ध में लगभग २० हजार ओवियाँ कृष्ण याज्ञवल्की द्वारा विरचित हैं। शेष की रचना इनके सहयोगी कवि मधुकर ने की है। यह पौराणिक शैली की श्रीकृष्ण-कथापरक रचना है। इस ग्रन्थ की समाप्ति बागुल प्रदेश अर्थात् अर्वाचीन बागलण में राजपंत राजा बहिरामशाह के आश्रय में सन् १६२३ ई० में हुई। इस राज्य की राजधानी मुल्हेरगड थी, जिसका वर्णन ग्रन्थ में आता है।

कृष्ण याज्ञवल्की के पिता का नाम अंबरीष एवं माता का कमळजा था। इनके गुरु अनन्त इनसे विशेष प्रसन्न रहते थे। कहीं-कहीं इनका उल्लेख 'कृष्णभट' के नाम से भी मिलता है। इनका एक अन्य ग्रन्थ—'देवी-माहात्म्य' है। इनकी कृष्ण-भक्ति अनन्य थी। अपनी कृष्ण-प्रीति के सन्दर्भ में ये कहते हैं—

एका कृष्णाचे करिता स्मरण।
ते मेरुतुल्य कनकदान।
येथे पदप्रसंगी हरि नारायण।
आरुढले ॥
कनककोंदणाचे संगे टांक।
पूजा जैसी पावे लाख।
तैसा येणे मी जाहलो रंक।
श्रीकृष्णचरणीं ॥

'एक कृष्णजी का स्मरणमात्र मेरुतुल्य कनकदान के समान है। और किसी दान-धर्म की आवश्यकता है ही नहीं। अब यहाँ इस ग्रन्थ में पद-पद पर प्रसंग-वश हरिनारायण का स्मरण होगा, प्रभु-पद में प्रीति बढ़ेगी, जैसे सोने से मढ़ा हुआ देव-पूजा का ढला स्वर्णचित्र पूजित होता है तो साथ में उसमें लगी हुई लाख भी सहज ही पूजा पा लेती है। श्रीकृष्ण-चरण में समर्पित हुआ मैं यद्यपि रंक हूँ तथापि पूजनीय बन गया हूँ। वस्तुतः यह कथा प्रभु की है, मैं तो निमित्तमात्र हूँ। श्रोता-वक्ता तो वही है—श्रीकृष्ण-स्मरण ही मेरा सर्वस्व है।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णानन्द निमग्न

कृष्णानन्द निमग्न अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि हैं। इनकी रचनाओं पर महाकवि मोरोपन्त का प्रभाव पाया जाता है। 'राधाविलास' इनका प्रख्यात ग्रन्थ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'राधाविलास' में श्री राधा-कृष्ण-लीला सरस-सुन्दर रीति से वर्णित है। श्रीकृष्ण के बचपन में एक बार श्रीराधा श्री नन्द-सदन गयीं। उस समय बालकृष्ण माँ की गोद में थे। राधा को देखते ही वे मचलकर रोने लगे। उसी समय माँ यशोदा राधा को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—

फार खवळला राधे ! काय करावा उपाय ? राहील।
कैसा ? अःतां वाटे घेता तूं, तुजकडे न पाहील ॥
'ये' राधिका म्हणे, उडी मातेपासूनी नन्दसुत टाकी।
गगनांतुनी हंस जसा उतरे मानस तडाग-सु-तटाकी ॥

'देखो तो राधा, श्रीकृष्ण बहुत चिड़चिड़ा हो गया है, मचल-मचलकर रो रहा है। क्या उपाय करूँ भला कि यह रोना छोड़ दे। यह कैसे हो ? ऐसा लगता है कि तुम इसे अपनी गोद में लेना भी चाहो तो तुम्हारे पास आयेगा नहीं। तुम्हें देखेगा नहीं। परन्तु राधिका ने जैसे ही नन्हें प्रभु से कहा कि 'आओ' तो नन्दसुवन ने एकदम माँ की गोद से राधा की ओर छलाँग लगा दी—ऐसा लगा, जैसे मानसरोवर के तट पर गगन से कोई हंस ही उतर आया हो।'

श्री कृष्णानन्द निमग्न महाराज की सम्पूर्ण रचना इसी प्रकार भक्तिरसपूरित है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

कृष्णा महाराज गारवडेकर

कृष्णा महाराज गारवडेकर प्रसिद्ध वारकरी भक्त, कीर्तनकार, व्युत्पन्न एवं अत्यन्त प्रेमिल स्वभाव के सत्पुरुष थे।

श्रीमद्भागवत पर ये अत्यन्त सरस प्रवचन किया करते थे। इनकी वाणी सीधी-सादी, रसमय, अत्यन्त तलाबेली की एवं हृदयस्पर्शी हुआ करती थी। वारकरी सन्त श्री निळोबाराय के अभंगों पर इनकी विशेष निष्ठा थी। इन्होंने स्वयं पिंपळनेर जाकर निळोबाराय की पालकी पण्ढरपुर ले जाने की प्रेरणा उनके वंशजों को दी थी। पण्ढरपुर में इन्होंने श्री निळोबाराय की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति तथा मठ बनवाकर प्रतिष्ठित किया और उनकी पादुकाओं को पालकी के साथ लाने का क्रम भी चलाया। ये उत्साही कार्यकर्ता तथा उच्चकोटि के भक्त थे। ये सन् १९२० ई० में समाधिस्थ हुए।

इन्होंने कऱ्हाड के समीप स्थित कोळेगाँव के श्री घाडगेबुआ नामक श्रेष्ठ वारकरी भक्त का ओवीबद्ध चरित्र लिखा है। ग्रन्थ के अन्त में स्वचरित्र कथन करते हुए ये कहते हैं कि दुर्गा मेरी माँ हैं। ढुण्डिराज पिता हैं। गोविन्द सद्गुरु हैं और परमगुरु रामकृष्ण हैं। सीताराम मेरे उपास्य देवता हैं। वस्तुतः जो रामचन्द्र हैं वही पण्ढरीनाथ हैं—वही कृष्ण हैं। उन्होंने मेरे अन्तर में बसकर इस कथा की रचना करवायी है। अतः सबके चरणों में माथा धरकर यह कथा समाप्त करता हूँ।

इससे प्रतीत होता है कि वारकरी भक्तों की परम्परानुसार राम, कृष्ण तथा विट्ठल में इनकी समान रूप से आस्था थी।

प्र० न० जो०
वि० पं०

केशवराव महाराज देशमुख

पुणे के केशवराव देशमुख ने अनेक वर्षों तक कीर्तन-प्रवचन की सेवा करके महाराष्ट्र में 'ज्ञानेश्वरी' का प्रसार किया। 'ज्ञानेश्वरी' भगवद्गीता पर मराठी में भाष्य है। ज्ञानेश्वरी-प्रेमी श्री विट्ठल और श्रीकृष्ण के भक्त होते हैं। वैराग्यसम्पन्न केशवराव का जन्म सन् १८७६ ई० में पुणे के प्रसिद्ध ऐतिहासिक देशमुख-कुल में हुआ था। उनके दादा गोपाळ हरि देशमुख गर्भश्रीमन्त थे। उनकी पुराण-कीर्तन-श्रवण में रुचि थी। केशवराव देशमुख का बचपन बड़ोदा नगर में बीता। एम० ए० की कक्षा में अध्ययन करते समय इनके पिताजी का देहान्त हो गया। केशवराव का मन पारमार्थिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में लगा। इनको विदर्भ के प्रसिद्ध अन्ध सत्पुरुष गुलाबरावजी का सत्संग प्राप्त हुआ। उन्हींसे केशवराव को 'नारद-भक्ति-सूत्र' नामक ग्रन्थ मिला। इस ग्रन्थ पर केशवराव ने ओवीबद्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाष्य लिखा। श्री ज्ञानेश्वरी, श्री अमृतानुभव, श्री चांगदेशपासष्टी पर भी इन्होंने सरल मराठी में भाष्य लिखा।

केशवराव देशमुख ने सरकार की नौकरी न कर जीवनभर ज्ञानेश्वर व ज्ञानेश्वरी की सेवा की। इनके नित्य-प्रवचन व साप्ताहिक कीर्तन सुनने के लिए पुणे के लोग उत्कण्ठित रहते थे। केशवरावजी ने ज्ञानेश्वरी की सेवा तीन वर्षों से अधिक समय तक की। ये वेदान्तशास्त्र में पारंगत थे। य नित्य एक हजार गायत्री-जप करते थे। सूर्योपासना, नमस्कार, देवदर्शन इनका नित्य नियम था। आळन्दी की वारी ये पैदल करने लगे। आषाढ़ मास में ज्ञानेश्वरी की पालकी के साथ ये पण्ढरपुर पैदल जाते थे। श्रीक्षेत्र गाणगापुर में भी इनका मन लगा था।

केशवराव देशमुख अपने घर में ही ज्ञानेश्वरी पर प्रवचन करते थे। श्रीमन्त संस्थानिकों के आमन्त्रण इन्हें अच्छे नहीं लगते थे। एक लक्ष रुपयों की सम्पत्ति में भी उन्होंने कुछ नहीं लिया। रोगग्रस्त होने पर डॉक्टर के मना करने पर भी ये ज्ञानेश्वरी पर प्रवचन करते थे। अपने कीर्तन-प्रवचन से ज्ञानेश्वर महाराज की आजीवन सेवा करते हुए इस वैराग्यशील भगवद्-भक्त ने सन् १९४२ ई० में एकादशी के पवित्र दिवस पर वैकुण्ठ-गमन किया।

प्र० न० जो०
वि० पं०

केशवस्वामी नागानगरकर

केशवस्वामी समर्थ-पंचायतन में से एक सन्तपुरुष थे। ये हैदराबाद (दक्षिण) के निकट भागानगर में मुसा नदी के तट पर रहा करते थे। यहीं इनकी समाधि विद्यमान है। ये गृहस्थ थे। अच्छा-खासा परिवार था। इन्होंने काशिराज से उपदेश ग्रहण किया था। यह 'तानाशा' नाम के एक धनी गृहस्थ के यहाँ दीवान के रूप में कार्य करते थे। इनका शिष्य-समुदाय बहुत बड़ा था, जिनमें से कई अच्छे कवि भी हुए। ये 'अंतस्त्यागी एवं बहिःसंगी' थे। संसार में रहते हुए भी बड़े विरक्त, निःस्पृह एवं महान् अर्थनिष्ठ भगवद्भक्त थे। इन्होंने 'एकादशी-चरित्र' नामक एक ओवीबद्ध ग्रन्थ तथा कई सौ अत्यन्त प्रेमिल एवं सरस पदों की रचना की थी। इनका समाधि-काल सन् १६८६ ई० के आसपास का है।

इनके उपास्यदेव भगवान् राम थे। वैराग्य, साधु-लक्षण, स्वानुभवात्मकता, निष्काम-भक्ति, परमार्थ की कृतकृत्यता, आनन्दरूप भगवान् एवं गुरु-भक्ति पर इनके अनेकानेक मनोज्ञ पद हैं। इसीके साथ अनासक्ति, तदनुषंग से लोकस्थिति तथा लोक-संग्रह की भी उन्होंने विशद विवेचना की है। अद्वयानन्दवैभव अर्थात् लोकोत्तर, ज्ञानोत्तर भक्ति के अन्तर्गत इन्होंने उपास्यदेव, भक्त एवं नाम का अखण्ड अपूर्व कीर्तन किया है। इनके लिए राम, कृष्ण नाम एक ही हैं। प्रेम इनकी पूँजी है और भक्ति स्वानन्दरस। कृष्ण-रस में ओतप्रोत स्वामीजी एक पद में भक्ति की विरहावस्था वर्णित करते हैं। पति-वियोग में जो अवस्था सती की होती है, उसी शृंगाररस की प्रतीति उसी प्रकार की शब्द-कल्पना के माध्यम से इन्होंने की। ये कहते हैं— 'अरी सखियो, यह चन्दन मुझे जलाता है, शशि ताप देता है, यह विरहानल अत्यन्त दारुण है। हरि के बिना मेरे लिए दिशाएँ उदास हैं, सूनी हैं। अरी, उस गोपाल से मिला दो कोई, उसकी भेंट करवा दो।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

गुलाबराव महाराज

गुलाबराव विदर्भ के एक तत्त्वज्ञ सन्त थे। अमरावती के पास माधान नामक एक छोटा-सा गाँव है। यहीं सन् १८८१ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम अलोका और पिता का नाम गोंदूजी था। बचपन से ही ये दृष्टिविहीन हो गये। गुलाबराव की पत्नी का नाम मनकर्णिका था। वह भी परम साध्वी व परमार्थप्रवण थीं। बाल्यकाल से ही गुलाबराव की दृष्टि चित्तचक्षु की दृष्टि, प्रज्ञाचक्षु की नजर सूक्ष्म, दूरस्थ व अलौकिक थी। ये शंकराचार्य जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिव्यज्ञानी, सिद्धयोगी तथा निष्ठावन्त भक्त थे। लक्ष्मण-भट जोशी से उन्होंने 'शिवलीलामृत' का अध्ययन किया। व्यंकटेशस्तोत्र का उन्होंने अध्ययन किया। आपने कुरान और पुराणों का अभ्यास किया। शब्दरूपावली, लघु-व्याकरण, समासचक्र कण्ठस्थ करके गुलाबराव ने संस्कृत विद्या का अध्ययन किया। ज्ञानार्जन के लिए उन्होंने अनेक ग्रन्थों का पाठक से सुनते-सुनते मुखाग्र कर लिया था।

गुलाबराव को कुछ अतीन्द्रिय शक्तियाँ प्राप्त हुई थीं। भविष्यकाल की अनेक घटनाएँ आप ठीक प्रकार से बताते थे। योगसाधन में उन्हें दिलचस्पी थी। बचपन में ही उन्हें श्रीकृष्ण का दर्शन होता था। भोजन करते समय वे चुपचाप होकर हाथ फैलाकर बोलते थे। एक बार किसीने पूछा, "गुलाब, क्या देखते हो?" गुलाब कहता था, "बाई! एक सुन्दर बालक सामने है। उसके माथे पर मयूरपंख है, भाल पर केशरीगंध है, कानों में कुण्डल है, गले में सुन्दर पुष्प-माला है।" गुलाबराव ने नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, आळन्दी, जगन्नाथपुरी इत्यादि क्षेत्रों की यात्रा की। अनेक सन्तों से, सज्जनों से उन्होंने चर्चा की, बहस की। अनेक धर्म व धर्म-पन्थों का आपने सूक्ष्म अध्ययन किया। जन्मान्ध गुलाबरावजी के चर्मचक्षु तो नहीं थे, लेकिन उनके चित्तचक्षु सदा के लिए उत्साही थे। उनकी मनोवृत्ति भजन-पूजन में लगी रही। सन् १९१५ ई० में उनका देहावसान हुआ।

गुलाबराव महाराज की कविता सरस, भावना-शील व अनुभूतिजन्य है। ओवी, छन्द, अभंग आदि वृत्तों का सहारा लेकर उन्होंने काव्य-सृष्टि किया। उत्स्फूर्त कविता-सृष्टि का चमत्कार उनके काव्य में दीख पड़ता है। थोड़ी अवधि में गुलाबराव आठ सौ, हजार ओवियाँ रचकर सबको चकित करते थे। राधाविलास, शुकगणिका, उपमन्यु आदि आख्यानक कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। महाराज का वाङ्मय एक प्रकार का ज्ञानकोश ही है।

धर्म, संस्कृति, समाजशास्त्र, इतिहास, द्वैताद्वैत-दर्शन, कर्म, भक्ति, ज्ञान, योग इत्यादि अनेक विषयों पर उन्होंने गद्य व पद्य में लेखन किया है। पत्र-व्यवहार भाग १ व २, व्यवहार धर्मबोध, साधुबोध, प्रेमनिकुंज, अलौकिक व्याख्यानमाला, भगवत्रहस्य, सम्प्रदाय सुरतरु, अभंगगाथा, पदावली इत्यादि अनेक ग्रन्थ आज उपासक व साधकों के लिए उपलब्ध हैं।

गुलाबरावजी की साधना-पद्धति विशिष्ट प्रकार की थी। वे श्री ज्ञानेश्वरजी को पिताजी व श्रीकृष्ण को पति मानते थे। स्त्री का वेष धारण कर वे मंगल-सूत्रादि चिह्न भी धारण करते थे। श्रीकृष्ण पति की आराधना वे माधुर्य भाव से करते थे। कात्यायनी का व्रत उनके सम्प्रदाय में एक महत्त्वपूर्ण व्रत समझा जाता है। आळन्दी के श्री ज्ञानेश्वर के चरणों पर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। ज्ञानेश्वर की सहायता से उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना पति माना था। उनकी भावना के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण जगन्नाथ हैं, ऐश्वर्यशाली परमात्मा हैं, त्रिभुवन में वे सौन्दर्यसम्पन्न हैं और उनकी पत्नी है एक निम्नजातीय अन्धी, अशिक्षित गुलाब-रावजी। उनका साम्प्रदायिक नाम है पंचलतिका। यह भोली-भाली नववधू इस प्रकार के सम्बन्ध से लज्जित होती है, परेशान रहती है। अपने तात तीर्थरूप के सामने कुछ शिकायतें करती है। वे कहते हैं—

डोळे आंधळे साजणी।
कैसे येतील चक्रपाणि॥ १॥
नाहीं अंगीं विद्याबळ।
नाहीं चातुर्य प्रबळ॥ २॥
नाहीं शुद्ध प्रेमभक्ति।
नाहीं पुण्यकर्मशक्ति॥ ३॥
तुम्हां सन्तांच्या संगतीं।
माझी होईल सद्‌गति॥ ४॥
असा मानून विश्वास।
तुमची धरियली कास॥ ५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तकृपें नारायण।
स्वयें देतो आलिंगन॥ ६॥
ज्ञानेश्वरा, मायबापा।
वारा कृष्णविरहतापा॥ ७॥

'ज्ञानेश्वरा, मायबापा! आप, कृष्ण-विरहताप दूर कीजिये। मैं अन्धी हूँ। चक्रपाणि मेरे पास किस प्रकार आते हैं? मुझमें न विद्याबल, न चातुर्य, न शुद्ध प्रेमभक्ति, न पुण्यकर्म-शक्ति, लेकिन आप जैसे सन्तों के सहवास में मुझे सद्गति प्राप्त होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मैंने आपका आँचल पकड़ा है। सन्त-कृपा से नारायण आलिंगन देता है।'

श्री गुलाबराव महाराज श्रीकृष्ण के बिना अत्यन्त दुःखी होते हैं। वे अन्धी ग्वालिन के रूप में एक बार श्रीकृष्ण से कहते हैं—

ठाऊक मी तुम्हां आंधळी गौळिणी।
येतां वृन्दावनीं मज नये॥ १॥
धडशा कामिनी बहु नारायणा।
तुम्हीं वृन्दावना स्वयें नेतां॥ २॥
माझी काय तुम्हांवरी नाहीं सत्ता?
ऐसें नन्दसुता, स्वयें सांगा॥ ३॥
पितयानें माझ्या केलें कन्यादान।
फल त्याचें जाण ऐसें कसें?॥ ४॥
धर्मीं अर्थीं कामीं न सोडीन वाणी।
ब्रीदीं चक्रपाणि, वेद साक्षी॥ ५॥
तिये सांभाळणें तुमचें हें ब्रीद।
साचचि गोविंद लेखितसां॥ ६॥
नावडे मी तुम्हांतरी स्पष्ट सांगा।
परतोनि श्रीरंगा जातें आतां॥ ७॥
आळन्दी जाऊन सुखानें राहीन।
चरण सेवीन श्रीगुरुचे॥ ८॥
गुरुकृपें तुम्हां तेथें ही आणीन।
ज्ञानेश्वर पूर्ण सत्तावंत॥ ९॥

'श्रीकृष्ण, आपको मालूम है कि मैं एक अन्धी ग्वालिन हूँ। मुझे वृन्दावन आते समय बहुत कष्ट होते हैं। नारायण, अनेक सुन्दर कामिनियाँ स्वयं वृन्दावन आती हैं। क्या आप पर मेरा अधिकार कुछ भी नहीं? नन्दसुत! आप स्वयं कह दीजियेगा। मेरे पिताजी ने कन्यादान किया। उसका परिणाम ऐसा ही होना अनिवार्य है? धर्म में, अर्थ में, काम में, मैं उसे न छोड़ूँगा, इस तरह की प्रतिज्ञा आपने की है। वेद साक्षी है। यह प्रतिज्ञा सँभालना आपका कर्तव्य है। मैं यदि आपको पसन्द नहीं तो स्पष्ट रूप से कहिये। मैं फिर श्रीरंगा, वापस चली जाती हूँ। मैं आळन्दी जाकर वहाँ सुख से रहूँगी। श्री गुरु की चरण-सेवा करूँगी। मेरे पिताजी ज्ञानेश्वर पूर्ण सत्तावन्त हैं। उनकी कृपा से मैं आपको प्राप्त कर सकूँगी।'

श्री गुलाबरावजी ने श्रीहरि श्रीकृष्ण के अनेक सुन्दर रूपों का वर्णन किया है—बालकृष्ण का रूप-वर्णन करने के लिए वे कहते हैं—

सुन्दर तें ध्यान माय मांडीवरी।
सांवळी गोजिरी मूर्ति शोभे॥ १॥
कोमळ उमर रसभरी प्रेमा।
उदय उगमा निका केला॥ २॥
करीं वेणुवाद्य गळां वैजयन्ती।
भावती जयन्ती विजयानें॥ ३॥
मुखामध्यें श्वेत नवनीत गोळा।
ज्ञानेश्वरबाळा प्रसादेच्छी॥ ४॥

'श्रीकृष्णजी का सुन्दर रूप माता की गोद में शोभता है। यह मूर्ति श्यामल है, सुन्दर है। रसमय, प्रेममय है, उमर छोटी है। उसके कर में वेणुवाद्य है। गले में वैजयन्ती है। उसके मुख में श्वेत रंग का नवनीत है। मैं ज्ञानेश्वर-कन्या उस प्रसाद की इच्छा करती हूँ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री गुलाबराव महाराज ने श्रीकृष्ण-लीला पर भी अनेक अभंग, पद लिखे हैं। गर्गजातक, नन्दराणी, गोपी व मुरली, गोपीवस्त्रहरण इत्यादि प्रसंगों पर महाराज के पद या अभंग अत्यन्त रसपूर्ण व कोमल भावदर्शक हैं।

प्र० न० जो०

गोरा कुम्हार

गोरा कुम्हार जाति के प्रख्यात वैष्णव-भक्त हुए हैं। ये भी नामदेव महाराज के अत्यन्त प्रिय सखा थे। इनका निवास तेरढोकी नामक ग्राम में था। यह गाँव इन्हें निवास हेतु वृत्तिरूप में प्राप्त हुआ था।

इनका जन्म सन् १२६७ ई० (शक ११८९) में हुआ था। अतएव समस्त सन्तमण्डल में ये आयु में सबसे बड़े थे। वैराग्य भी इनका सर्वश्रेष्ठ था। सन्त ज्ञानेश्वर प्रभृति सभी सन्त वैष्णव इन्हें 'गोरोवा काका' कहा करते थे। अपनी आजीविका के लिए ये मिट्टी के बर्तन तैयार करते थे। मिट्टी का पलीत तैयार करते समय उस पर नाचते, कूदते तथा मुख से पण्ढरीनाथ के भजन गाते हुए आत्मविभोर रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्होंने भगवत्-तन्द्रा में एक बार अपने पुत्र को भी मिट्टी में कुचल डाला था जो खेलते-खेलते वहाँ आ पहुँचा था। इसी तरह जनाबाई के एक अभंग के अनुसार एक बार कामभाववश इनकी दो स्त्रियों ने इनके दोनों हाथ अपने हृदयों पर रखे, परन्तु आश्चर्य कि वे दोनों स्त्रियाँ उनके स्पर्शमात्र से कामभाव से शून्य हो गयीं। इन्होंने भगवत्कार्य में अपनी किसी त्रुटि को देखकर स्वयं ही अपने हाथ काट डाले थे। परन्तु एक बार की सन्त-सभा में इनके हाथ पुनः पूर्ववत् हो गये। गोरोबा काका कहते हैं—

वरती करा कर दोन्ही।
पताकाचे अनुसंधानी ॥ १ ॥
सर्व हस्त करिती वरी।
गोरा लाजला अंतरी ॥ २ ॥
नामा म्हणे गोरोबांसी।
वरती करावें हस्तासी ॥ ३ ॥
गोरा थोट वरती करी।
हस्त फुटले वरचेवरी ॥ ४ ॥

'सारी सन्त-सभा हरिकीर्तन कर रही थी। उसी धुन में यह कहा गया कि पताकाओं की दिशा में ऊपर हाथ उठाये जायँ। सभी भक्तों ने सहर्ष अपने हाथ ऊपर उठा दिये, परन्तु गोरा मन ही मन लज्जित हो उठा। उसके हाथ तो थे नहीं। भगवत्-प्रेम में वह मन ही मन रो उठा। नामदेव ने गोरोबा से कहा—'काका, हाथ ऊपर उठाइये'—यह सुनकर गोरोबा ने अपने डुंडे हाथ ही ऊपर उठा दिये और आश्चर्य, गोरोबा के हाथ कन्धमूल से स्वतः फूट पड़े।' ऐसी भगवद्-कृपा थी गोरोबा पर।

गोरोबा सदा-सर्वदा विठ्ठल-नाम-स्मरण करते रहते थे और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहा करता था। हरि-भक्ति करते हुए ये उत्स्फूर्त अभंग रचा करते थे। नामदेव महाराज पर इनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। इनका कथन है कि अनुभव का खजाना नामदेव महाराज को प्रत्यक्ष प्राप्त हो गया है। ये सदैव नामदेव महाराज के साथ कथा-कीर्तन किया करते थे। गोरोबा काका के बारे में स्वयं नामदेव महाराज के अभंगों में यह बात कही गयी है कि गोरोबा काका ने मुक्ताबाई के कहने पर सभी सन्तों के सिर पर डंडा मारकर उनके कच्चे-पक्के घड़े होने की परीक्षा की थी और नामदेव को गुरुविहीन जानकर कच्चा घड़ा साबित किया था। गोरोबा काका की आध्यात्मिक योग्यता का लोहा निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर आदि सभी सन्त मानते थे।

सन्त गोरा कुम्हार द्वारा विरचित कुल बीस अभंग प्राप्त होते हैं, जिनमें से अधिकांश उच्च आध्यात्मिक अनुभव से परिप्लुत हैं। सगुण-निर्गुण परमात्मा के प्रति अदम्य आकर्षण, उसकी प्राप्ति की लालसा तथा उसे प्राप्त कर लेने पर होनेवाला आत्मसन्तोष इन अभंगों का वर्ण्य-विषय है। एक अभंग में नामा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सक्ति के माध्यम से वह अपनी कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं—

केशवाचे ध्यान धरुनि अंतरी।
मृत्तिके माझारी नाचतसे॥
विठ्ठलाचे नाम स्मरे वेळावेळ।
नेत्रीं वाहे जळ सद्‌गदीत॥
कुलालाचे वंशी जन्मले शरीर।
तो गोरा कुंभार हरिभक्त॥

'केशव का ध्यान मन में धारण करके मैं नित्य-प्रति मिट्टी रौंदते हुए उस पर नाचा करता हूँ। इस ध्यानलीन अवस्था में घड़ी-घड़ी 'विठ्ठल' नाम जपता हूँ, उसीका स्मरण करता हूँ—ऐसे समय मेरे नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बहते रहते हैं। यद्यपि मेरा शरीर कुलाल-वंश में उत्पन्न हुआ है तथापि मैं भगवद्-प्रेम में मस्त रहता हूँ—वही हरि-भक्त मैं गोरा कुम्हार नाम से जगत् में बर्तता हूँ।' प्र० न० जो० वि० पं०

चक्रधर महाराज

श्री चक्रधर महानुभाव-पन्थ के संस्थापक हैं। आपका आविर्भाव सन् ११९४ ई० में हुआ था। इनकी जन्म-कथा चमत्कारिक है। भरवस (भड़ोच) के राजा का प्रधानमन्त्री विशालदेव नाम का था। उसकी पत्नी का नाम माल्हाइसा था। श्री दत्तात्रेय की कृपा से उनको एक पुत्र हुआ। उसका नाम हरिपालदेव था। बाल्यकाल में ही उसने वेद, पुराण, राजकारण, युद्ध-विद्या आदि का अध्ययन किया। यौवन प्राप्त होने पर उसने कामलाइसा नाम की कन्या से विवाह किया। तदनन्तर उसे जुआ खेलने का शौक लगा। एक दिन उसकी तबीयत बिगड़ गयी और उसकी मृत्यु हो गयी। उसका शव श्मशान में आ गया तो उसमें परमेश्वर ने प्रवेश किया। हरिपालदेव जीवित हो उठा। कहते हैं कि चांगदेव राऊळ का यह पुनरावतार हुआ। हरिपालदेव का शरीर वही था, लेकिन उसका जीवात्मा नवीन था। हरिपालदेव का द्यूतकर्म कायम रह गया।

एक दिन हरिपालदेव द्यूतकर्म में पराजित हुआ। उसके पास के सब पैसे गये। वह घर आकर पत्नी से कहने लगा, "मैं द्यूत में हार गया हूँ। मुझे पैसे दो। तेरे अलंकार बेचकर मैं पैसे दूँगा।" उसकी पत्नी ने इन्कार किया। तब हरिपालदेव उदास हो गया। उसका मन वैराग्यपूर्ण बनने लगा। राजविलास में उसको रुचि न रह गयी। सात्त्विक सुख की खोज के लिए प्रयाण किया। उसके पास केवल एक ही वस्त्र था।

हरिपालदेव प्रथम रितपुर (रिद्धपुर) गया। वहाँ श्री गोविन्दप्रभु नाम का एक सिद्ध पुरुष उससे मिला। हरिपाल को देखते ही उसने कहा—"यह मेरा है।" गोविन्दप्रभु ने अपना उच्छिष्ट-प्रसाद हरिपाल को दिया। हरिपाल गोविन्दप्रभु का शिष्य बना। गोविन्द-प्रभु ने हरिपालदेव का नाम चक्रधर रखा। तदनन्तर चक्रधर सालबर्डी नाम के पर्वत पर आये। उन्होंने वहाँ बारह वर्षों तक तपस्या की। इससे उनको सत्य, अहिंसा, समत्व आदि तत्त्वों का बोध हो गया। इन तत्त्वों का प्रसार उन्होंने जातिनिरपेक्ष बुद्धि से किया। भटकते-भटकते श्री चक्रधर नागपुर के पास काटोल नामक ग्राम में आये। वहाँ उधळीनाथ नाम का एक विरागी सिद्ध पुरुष था। उसने श्री चक्रधर को वयस्तम्भिनी तथा चिरयौवन की विद्या प्रदान की। वहाँ से चक्रधर वरंगळ गये। वहाँ का एक व्यापारी चक्रधर से बोला—"महाराज, मेरी सुन्दर कन्या को स्वीकार कीजिये।" चक्रधर का विवाह हो गया। पत्नी का नाम हंसाम्बा था। विवाह होने के बाद श्री चक्रधर की वैराग्य-वृत्ति जाग उठी और उन्होंने पुनः गृहत्याग किया। वे नागपुर के पास भण्डारा गये। वहाँ उनको नीलभट भाण्डारकर नाम का एक शिष्य प्राप्त हुआ।

कुछ दिन वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के बाद ये बोणाबाई नामक एक शिष्या के साथ सिंहस्थ यात्रा के लिए पैठण (प्रतिष्ठानपुर) गये। पैठण में नागुबाई नाम की एक महिला इनकी शरणागत हुई। आगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलकर यह नागाम्बिका, बाइसा नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री चक्रधरजी ने पैठणक्षेत्र में संन्यास ग्रहण कर लिया। फिर महाराष्ट्र में उनका अखण्ड भ्रमण होने लगा। अनेक अनुयायी उनको मिले। क्षुद्र देवताओं के प्रति उनके मन में प्रीति न थी। ऊँच-नीच-भेद उनको मान्य न था। उपवास, व्रताचार, कर्मकाण्ड आदि में उनकी आस्था नहीं थी। सबके प्रति प्रेम, सद्भावना, स्त्रियों का उद्धार, शूद्रों को और अन्त्यजों को ज्ञान-प्रदान, इन तत्त्वों का इन्होंने व्यापक प्रसार किया। लोक-हित के लिए इन्होंने संस्कृत भाषा छोड़कर मराठी भाषा में उपदेश किया। धर्मपण्डितों को उनका यह व्यवहार अच्छा न लगा। उनके समय में महादेव यादव महाराष्ट्र में राजा था। उसके महादाश्रम और ब्रह्मसानू नाम के राजपुरोहित थे। उन्होंने चक्रधर पर विष-प्रयोग किया। परन्तु उसका इन पर कोई असर नहीं हुआ।

रामदेव विद्यापन्त तथा दादोस, नागदेवाचार्य, महदाइसा, म्हाइंभट इत्यादि विद्वान् इनके शिष्य बन गये। म्हाइंभट ने 'लीला-चरित्र' नामक एक गद्य-ग्रन्थ का निर्माण किया। इस ग्रन्थ में श्री चक्रधर के जीवन के जो प्रसंग आये, उनका सविस्तार वर्णन किया गया है। सारंग पण्डित, छर्दोबा, भास्करभट्ट बोरीकर आदि शिष्य इनके सगोत्री थे। श्री चक्रधरजी ने जीव, देवता, प्रपञ्च और परमेश्वर, ये चार पदार्थ नित्य माने हैं। इनका तत्त्वज्ञान इस प्रकार पूर्ण द्वैती है। इनकी ही प्रेरणा से महाराष्ट्र में महानुभाव-पन्थ स्थापित हुआ। इस पन्थ का विस्तार भी हुआ। मराठी में पहला गद्य-ग्रन्थ महानुभाव-सम्प्रदाय का 'लीला-चरित्र' ही है। इस पन्थ के अनेक कवियों ने कृष्ण-चरित्र पर ओवीवृत्त में ग्रन्थ लिखे हैं। 'रुक्मिणी स्वयंवर' (नरेन्द्र), 'शिशुपाल-वध' (भास्करभट्ट बोरीकर), 'उद्धवगीता' (भास्करभट्ट), 'वच्छहरण' (दामोदर पण्डित) आदि ग्रन्थ महानुभाव-परम्परा में प्रसिद्ध हैं। सन् १२७४ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

श्री चक्रधरजी के महानुभाव-पन्थ में पंचकृष्ण विख्यात हैं। इनमें प्रथम हैं—द्वारका के चक्रवर्ती श्रीकृष्ण। श्री चक्रधरजी ने अनेक कथाएँ इस कृष्ण को निवेदित की हैं। दूसरे कृष्ण श्री दत्तात्रेय हैं। श्री दत्तात्रेय इस मार्ग के आदिकारण हैं। तीसरे कृष्ण श्री चक्रपाणि तथा श्री चांगदेव राऊळ हैं। चौथे कृष्ण श्री गोविन्दप्रभु तथा गुंडम् राऊळ हैं और पाँचवें कृष्ण स्वयं श्री चक्रधरजी हैं। चक्रधरजी ने अपने शिष्यों के लिए श्रीकृष्णजी के जीवन की अनेक सुरस कथाएँ प्रकट की हैं। श्रीकृष्ण-अवतार-निरूपण, मुख में विश्वरूप-दर्शन, रुक्मिणी, सत्यभामा के साथ जल-क्रीड़ा, जयद्रथ-वध, उद्धव की भेंट, पूतना-शोषण, कुब्जा की भेट, उद्धव को प्रेमदान, मदन-दर्प-हरण आदि अनेक प्रसंगों की कथाएँ चक्रधरजी ने कही हैं। एक कथा संक्षेप में यहाँ दी जाती है।

'—गावीं एकीं पाणिपत्रासि बीजें केलें : ब्राह्मणा एकाचेया घरासि : तेणें म्हणितलें : कोण्हाचीं गोरुवें राखर कां : सर्वज्ञें म्हणितलें : यासि कन्हजी राखों नेदी : तेणें म्हणितलें : आम्ही देउनि : आमचीं राखा : सर्वज्ञें म्हणितलें : हे राखैल : परि दोहेना : सोडील परि बांधेना : तेणें म्हणितलें : आम्ही बांधौनि : आम्ही दोहौनि : मग गोसावीं मानिलें : उदीयांचि तियें गोसावियासि मोट घालिती : गोसावी गाई सोडीलि : राना चरावया नेति : गोसावी मोटेचें अन्न आरोगण करिती : सुडा धुति : श्रीमुखावरि घालिती : सोळातळावार बैसति : गाई श्रीमूर्ति अवलोकीत बैसलिया असति : आनंदु रोवतीति : वीळीचां गोसावी गाई घेउनि बीजें करीति : तिया गाईंसि बहुत दुध होय : मग : तेणें ब्राह्मणें म्हणितलें : आपुलिए ब्राह्मणीतें : पैं : अजि दुध बहुत जालें : गाई निकेया चारिलिया : यासि न्हावेया लागी घालावें : यांची मोटीं दही घालावें : यापरि निचा-चेयापसि तिच अधिक दुधएए : मग तों ब्राह्मणु राखों गेला : गाईकवणा रानां नेतु असे पां : तव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोसावीयांसि एका सीळातळासि आसन : गाई श्रीमूर्ती आनंदु रोंवितीति देखिलीया : बीळवेऱ्हीं चारु नाहीं : पाणी नाहीं : ऐसें देखोनि थोर विस्मयो जाला : मग : घरी ब्राह्मणीपुढां सांघो लागला : पें : आमचेवा गाई राखतो तो साक्षात् श्रीकृष्णु : मग : तेयींचे वृत्तान्तु सांघितले : तिये दीसा गाई गांवामध्ये घातलिया : मग : बीजें केलें –'

'श्री चक्रधर एक गाँव में भिक्षा के लिए गये। एक ब्राह्मण के घर पहुँचे। ब्राह्मण बोला, "गौएँ क्यों नहीं सँभालते?" उस पर सर्वज्ञ श्री चक्रधरजी ने कहा, "आपकी गौएँ मैं सँभालूँगा, लेकिन छोडूँगा नहीं, बाँधूँगा नहीं, दोहन-क्रिया भी नहीं करूँगा।" ब्राह्मण ने मान लिया। गोसावी चक्रधर के साथ गौएँ रान में गयीं। सर्वज्ञ शिलातल पर बैठ गये। गौएँ उनका श्रीमुख अवलोकन करती हैं। आनन्द में मग्न होती हैं। सायंकाल में उनके साथ गौएँ घर आयीं। ब्राह्मण ने दोहन किया और ब्राह्मणी से बोला, "आज दूध बहुत निकला। उसको दही, नवनीत दीजिएगा।" नित्य अधिकाधिक दूध प्राप्त होने लगा। वह ब्राह्मण एक दिन गौओं के पीछे गया। उसने देखा, गौएँ खाती-पीती नहीं। केवल श्री चक्रधर के मुख की ओर आनन्द से देखती हैं। ब्राह्मण विस्मयचकित हो गया। घर आकर उसने ब्राह्मणी से कहा, "हमारी गौएँ साक्षात् श्रीकृष्ण सँभालते हैं"।'

श्री चक्रधर स्वयं कृष्ण के अवतार थे। वे स्वयं को श्रीकृष्ण मानते थे। खेलकूद में वे जिसकी पीठ पर आरूढ़ होते थे उसको अत्यानन्द होता था। गोसावी ईश्वर हैं, साक्षात् श्रीकृष्ण हैं, इस तरह का अनुभव उनके शिष्यों को अनेक बार हुआ था। एक रात में अन्धकार था। श्री चक्रधर का दर्शन नहीं होता था। दीप प्रज्वलित करने का विचार हुआ। तब सर्वज्ञ श्री चक्रधर बोले, "ईश्वर स्वयंप्रकाश हैं।" एक समय स्वामी चक्रधर हरिदेव पण्डित को गोपाल-मन्त्र के भेद बता रहे थे। वे बोले, **'रुक्मिणीदेवी प्रति श्रीकृष्ण चक्रवर्ती निरूपिला : म्हणौनि रुक्मिणीदेवी जाणे का श्रीकृष्ण चक्रवर्ती जाणति'** - गोपाल-मन्त्र श्रीकृष्णजी ने केवल रुक्मिणीदेवी से कहा था। इसलिए एक श्रीकृष्ण और दूसरी रुक्मिणी वह मन्त्र जानते थे, और कोई नहीं। श्री चक्रधर स्वयं श्रीकृष्ण होने पर जानते थे। मेहेकर गाँव में एक समय श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का दिन आया। बोणेबाई ने मिट्टी का गोकुल निर्माण किया। मिट्टी का श्रीकृष्ण और मिट्टी की देवकी बनायी। यह देखकर स्वामी श्री चक्रधर बोले, "बाई! श्रीकृष्ण क्या मिट्टी का था? देवकी देवी क्या मिट्टी की थी?" उस पर बोणेबाई बोली, "तब मैं क्या करूँ?" स्वामी चक्रधरजी बोले, "मैं श्रीकृष्ण बनूँगा, तुम देवकी बनो।" गोकुलाष्टमी का त्योहार इस प्रकार मनाया गया।

प्र० न० जो०

चक्रपाणि यळम्बकर

चक्रपाणि कवि के जीवन-चरित्र के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त नहीं होती। कवि का जीवनवृत्त अद्भुत किंवदन्तियों से भरा हुआ है, ऐसा महानुभाव महन्त श्रीमान् गोपीराजबाबा ने लिखा है। कवि अपने हिन्दी, 'तिस्सा' काव्यों के बल पर बड़े-बड़े सरदारों और नवाबों को प्रभावित करता था, ऐसा कहा जाता है।

चक्रपाणि का 'यळम्बकर' अथवा 'एलम्बकर' नाम अर्थपूर्ण है। एळम्ब अथवा यलम्ब कवि के गाँव का नाम रहा है। मराठवाडा के बीड़ जिले में केर तहसील के अन्तर्गत यह गाँव है। यहाँ कवि का एक मठ भी विद्यमान है।

सोलहवीं सदी के महानुभावपन्थीय हिन्दी रचनाकारों में चक्रपाणि येळम्बकर को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान देना होगा। चक्र, चकरपान, चक्रपाणि मुनि, यलम्बकर तथा कृष्णसुत कहलानेवाला कवि अपनी रचनाओं से एक सफल हिन्दी कवि सिद्ध हो सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चक्रपाणि का जीवन-वृत्त इतिहास के पृष्ठों में भले ही अस्पष्ट हो गया हो, परन्तु उसकी उपलब्ध हिन्दी तथा मराठी रचनाएँ उसे सदा के लिए जीवित रख सकी हैं। डॉक्टर य० खु० देशपाण्डेजी के अनुसार उसके निम्नलिखित काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—

१. भरवस-मालिका (मराठी), २. प्रसाद-मालिका (मराठी), ३. रुक्मिणी-हरण तिस्सा, ४. सत्यभामा तिस्सा, ५. रासक्रीडा तिस्सा, ६. ग्यान तिस्सा आदि ७. हिन्दी, 'तिस्सा'-काव्य।

इन रचनाओं के अतिरिक्त चक्रपाणि की काफी रचना उपलब्ध हो सकती है। इस उपलब्ध काव्य-भण्डार का सौन्दर्य कुछ ऐसा है कि कवि ने इतनी-सी रचनाओं का निर्माण कर विराम लिया, ऐसा समझना असम्भव हो जाता है।

चक्रपाणि अपनी कुछ रचनाओं में अपने लिए कभी-कभी 'यल्लमसुत' नाम का प्रयोग करता है। इस सम्बोधन का उसके अपने गाँव के साथ सम्बन्ध रहा है। 'यल्लम' शब्द सम्भवतः 'येळम्ब' अथवा 'येलम्ब' शब्द का विकसित रूप है। यलम्बसुत से तात्पर्य है, येळम्बकर घराने का व्यक्ति।

औरंगाबाद जिले की सीमारेखा से सटकर बीड़ जिले के करीब शहागड़ तहसील है। इस शहागड़ गाँव में कवि नित्य आता रहा होगा। शहागड़ में श्रीदत्त आलमा प्रभु नामक सुविख्यात दत्त-स्थान है। इस दत्त-स्थान के प्रति कवि के मन में नितान्त आदर-भाव रहा है। निम्नलिखित पद से इसे स्पष्ट कर सकते हैं—

स्याहागड़ म्याने वो रमता है।
अवधूत लीला से खेलता है···
चक्रपान मनों में खुलता है।
दत्तनाम दिलों में ध्यावता है॥
अत्री का पुत। तेरा रूप तो अद्‌भुत।
चक्रपान यल्लमसुत। किया मगन नज़र से॥

महानुभावपन्थीय होने के कारण उसके मन में महानुभावों के पूज्यदेव श्री दत्तात्रेय के प्रति अतीव श्रद्धा-भावना विद्यमान है। श्रीकृष्ण, श्री दत्तात्रेय, श्री चक्रपाणि (अर्थात् चांगदेव राऊळ), श्री गोविन्दप्रभु (अर्थात् गुंडम् राऊळ) और श्री चक्रधर महात्मा—इन पाँच पुरुषों को महानुभावपन्थीय जन परमेश्वर-स्वरूप मानते हैं। 'पंचकृष्ण' संज्ञा से ये पाँच महापुरुष सुख्यात हैं।

चक्रपाणि येळम्बकर रचित यह 'रुक्मिणी-स्वयंवर' तिस्सा अथवा कथा-काव्य कुछ काल तक समर्थ रामदास स्वामी के शिष्यप्रवर कल्याण के नाम पर समझा गया और वैसा छपकर प्रकाशित भी हुआ था। श्री समर्थ साम्प्रदायिक बाड़ों में अर्थात् हस्त-लिखित संग्रहों में 'हिन्दुस्तानी रुक्मिणी-स्वयंवर' नाम से यह प्राप्त हुआ और काव्य में दो बार 'कल्याण' शब्द आने से गलतफहमी पैदा हुई। धुलिया के महान् अनुसन्धाता श्रीमान् शंकररावजी देव ने गलती से यह कथा-काव्य समर्थ-शिष्य कल्याण का मान लिया और अपनी पुस्तक में इसे कल्याण-रचित काव्य के रूप में स्थान भी दे दिया। इस भ्रान्ति का मूल ये पंक्तियाँ रहीं—

तब कल्यान नाम दास।
मिले कन्हके रसाअल्य का तब।
किष्ण नयन सरस गात।
दिलो रुक्मन दारा ॥ ४॥

यहाँ 'कल्याण' शब्द प्रयुक्त हुआ है और काव्य की अन्तिम पंक्तियों में भी कवि ने रुक्मिणी-कृष्ण के विवाह-वर्णन के सन्दर्भ में कहा है,

जस पढ़ते कल्यान। कते नाम भटा जान।
गुणी गावत है तान। पान फूल बाटते॥ ३२॥

यहाँ प्रयुक्त 'कल्याण' शब्द से अनुसन्धाताओं से बड़ी भारी भूल हुई। उन्होंने कल्याण का तात्पर्य समर्थ रामदास स्वामी के शिष्योत्तम कल्याण ही से ले लिया और काव्य की अन्तिम पंक्तियों में भी शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयुक्त होने से भूल कायम हो गयी। चक्रपाणि का काव्य दूसरे ही का हो गया। सर्वप्रथम यह भूल मराठवाड़ा के विद्वान् अनुसन्धाता श्रीमान् कानोलेजी के ध्यान मे आ गयी। आपने अपनी एक शोध-टिप्पणी में अनेक सन्दर्भ प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि 'रुक्मिणी-स्वयंवर तिस्सा' का रचयिता चक्रपाणि कवि है, कल्याण नहीं। वास्तव में काव्य में प्रयुक्त शब्द कल्याण व्यक्तिवाचक नहीं है। पहला प्रयोग कल्याण नामक चारण जाति के लिए हुआ है और दूसरे में भी स्पष्ट रूप से कल्याण से तात्पर्य भाट या प्रशंसा-गान करनेवाला ही है।

कल्याण प्राचीन काल में एक जाति थी—इस प्रकार का शोधपरक विवेचन हमारे विद्वान् मित्र श्रीमान् रा० चिं० ढेरेजी ने भी किया है। 'कल्याण कीर्तीचे नाम-रहस्य' नामक एक लेख में आपने यह भलीभाँति स्पष्ट किया है कि प्राचीन काव्य में प्रयुक्त कल्याण तथा कल्याण कीर्ति का अर्थ विशिष्ट जाति से सम्बद्ध है जो कीर्ति-गान का कार्य करती थी। प्राचीन हिन्दी-मराठी काव्य के जिज्ञासु अध्येताओं के लिए यह टिप्पणी उचित दिशा-निर्देश करने में सहायक है।

उपर्युक्त प्रति के प्रारम्भ में कवि ने श्रीगणेश, सरस्वती और गुरुदेव को नमन किया है। पाठ काफी शुद्ध है। परन्तु उन्नीसवीं और बीसवीं कड़ी के बीच कुछ प्रक्षिप्त हिस्सा प्राप्त है। इन लगभग दस पंक्तियों में जो कुछ लिखा गया है वह अत्यन्त अस्पष्ट है। सम्भवतः इन पंक्तियों का मूल काव्य से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस प्रति में केवल २५ कड़ियाँ हैं। उन्नीसवीं और चौबीसवीं कड़ी में 'चकरपान मुस्कते (?)' इस प्रकार कवि अपना नामोल्लेख करता है।

चक्रपाणि की यह रचना अपनी संक्षिप्तता में एक सौन्दर्य रखती है। उनके सात तिस्सा-काव्यों में से हमें जो चार उपलब्ध हुए, उनमें यह तिस्सा सर्वोपरि है। तिस्सा से सम्भवतः 'कथा-काव्य' का बोध होता है। प्रस्तुत काव्य में रुक्मिणी और श्रीकृष्ण के प्रेम-विवाह की कथावस्तु दी गयी है। रसिक कवि ने अतीव सुन्दर शब्दों में इस अनुपम विवाह का वर्णन किया है।

कैसी सुन्दर कथा-कथन-पद्धति है। कहानी पुरानी होने पर भी कवि की रसिकता ने उसमें जादू भर दिया है। सामान्य लोगों के आस्वाद के लिए इस काव्य की रचना हुई। उसकी सादगी, सुबोधता प्रशंसनीय है। कवि की कलम में रसाविष्कार की अच्छी शक्ति है। उसने सदैव इस बात का विचार रखा है कि श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की कथा वह कथन कर रहा है। 'देव का विधान' बता रहा है। कहीं भी वह अतिरिक्त शृंगार के अधीन नहीं हुआ। 'कीसनजी' कवि के सखा हैं पर वे भगवान् ही हैं। रुक्मि और शिशुपाल अच्छे योद्धा हैं पर अन्यायी हैं, इसीसे उनकी 'फजियत' करायी है।

जनसामान्य को सम्मुख रखकर सुन्दर शब्दों में सुसंस्कार की दृष्टि से लिखा गया काव्यसूचक शृंगार जोश से भरपूर, वीररस और सख्यभाव से युक्त और भक्तिरस से अनूठा बन गया है।

रुक्मिणी-स्वयंवर से कुछ छंद नीचे दिये जाते हैं—

वैदर्भ मुलुख एक। ताँहा कौंड़नपुर देख।
दरी भीम भूप नेक। सखी जोर ज़बर सारा॥ १॥

दरिम्याने महताब। जीनो सूरज की आब।
हुई पया खुश बाब। इस्मे रुक्मि न प्यारा॥ २॥

एक रोज पदर जात। करे जबरो—सो-बात।
दुल्हन दीदे खुश बात। जिसे जानमान तोटा॥ ३॥

तब कल्याण नाम दास मिले। कह्लर के सात।
किष्ण बयन सरस गात। दिलो रुक्मन दारा॥ ४॥

डाली कीसनजीकु माल। भीमक कुमरी खुशयाल।
मंगल गावते भूपाल। ढालमदल झलकते॥ ३१॥

जस पढ़ते कल्याण। कते नाम भटा जान।
गुणी गावत है तान। पान फूल बाटते॥ ३२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे गुजरे दिन च्यार । कीया कूच हुए स्वार ।
गए सोरट के पार । तुडुम ढोल बज्यावते ।। ३३ ।।
घरे पोहोचे यदुराज । हारी भजन के काज ।
कीसन राजन के राज । चकरपान गावते ।। ३४ ।।

अ० प्र० का०

चांगदेव

मुक्ताई (मुक्ताबाई) के शिष्य श्री चांगदेव का समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। परन्तु इतना निर्विवाद है कि ये ज्ञानेश्वर के समकालीन, परम तपस्वी और योगी थे तथा उनके परिवार के सम्पर्क में आकर विट्ठल-भक्त बन गये थे।

इनका जन्म 'नारायणडोह' नामक स्थान पर 'मुधोपन्त' के घर हुआ था। ये जन्म से अत्यन्त स्वरूप-सुन्दर थे अतः इनका नाम 'चांगा' चंगा (सुन्दर) रखा गया। अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के होने के कारण ये बालवय में ही सर्ववेदशास्त्र-निष्णात हो गये थे। योगाभ्यास हेतु ये कुछ दिनों तक वाराणसी में एक महान् सिद्ध की सेवा में रहे थे। गुरु-कृपा से ये महान् सिद्ध हो गये और प्राणजय-मनोजय के कारण इन्हें अष्टसिद्धियों की प्राप्ति हुई। इसके बाद कुछ समय काशी में रहकर, जनप्रियता पाकर फिर ये खानदेश में तापी-पयोष्णी (पूर्णा) नदियों के संगम पर शिव-मन्दिर में स्थायी रूप से निवास करने लगे। अपनी सिद्धियों के कारण ये अत्यन्त प्रख्यात हुए।

इसी भाँति कालक्षेप करते हुए एक दिन इन्हें एक ब्राह्मण के द्वारा श्री निवृत्ति-ज्ञानेश्वर बन्धुओं के अलौकिक व्यक्तित्व की महिमा ज्ञात हुई। इन बाल-योगियों ने पशु-मुख से वेद कहलवाये हैं ऐसा सुनकर ये जान गये कि ये परम सामर्थ्यवान् साक्षात् ब्रह्ममूर्ति हैं। चांगदेव ने इन्हें पत्र लिखकर कुशल-क्षेम और ज्ञान-भक्ति के बारे में पूछना चाहा परन्तु वस्तुतः कुछ लिख नहीं सके—अनिर्वचनीयता की इस स्थिति में इन्होंने कोरे कागज को मोड़कर एक प्रवासी ब्राह्मण के हाथ में दे दिया। पत्र श्री निवृत्तिनाथ के पास पहुँचा। उन्होंने चांगदेव का हृद्गत भाव जानकर पत्र श्री ज्ञानेश्वर को दिया और कहा कि उसे पढ़कर उत्तर दे दो। श्री ज्ञानेश्वरजी ने पैंसठ ओवियों का एक उत्तर लिखा, जिसमें उन्होंने तरह-तरह के दृष्टान्त देकर यह समझाया था कि 'विश्व' एवं 'विश्वेश्वर', 'जगत्' एवं 'जगदीश' यह शब्द यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि जगत्रूप में आत्मा ही प्रकाशित है—चन्द्र से कलाएँ, गुड़ की भेली या गुड़ के टुकड़े, कर्पूर एवं कर्पूर-चूर्ण तत्त्वतः एक ही हैं—भले ही भिन्न प्रतीत हों। 'चांगदेव पासष्टी' में जीव-शिव के परस्पर सामरस्यात्मक ऐक्यामृत का आस्वाद सुलभ रूप से उपभोग किया जा सके—यह ज्ञानेश्वर महाराज का उद्देश्य था।

पत्रोत्तर से अभिभूत होकर चांगदेव श्री निवृत्ति प्रभृति चारों भाई-बहन से मिलने आळन्दी पहुँचे। वे सिद्धियों का मोह अभी छोड़ नहीं सके थे। अतः बाघ पर सवार होकर नाग को चाबुक के रूप में पकड़े हुए आये। उस समय प्रातःकाल चारों भाई-बहन स्वानन्द-मग्न एक टूटी दीवार पर बैठे भजन कर रहे थे। जैसे ही उन्होंने चांगदेव को आते हुए देखा उन्होंने अपनी दीवार को ही उनकी अगवानी में चलने का आदेश दिया। यह दृश्य देखकर चांगदेव का रहा-सहा मोह समाप्त हो गया। वे इन चारों भाई-बहनों के प्रति श्रद्धा और आदर से विनम्र हो गये, तब श्री मुक्ताई से भक्ति और योग-ज्ञान आदि की दीक्षा प्राप्त करके इन्होंने अपना जीवन सफल बनाया। श्री मुक्ताई को इन्होंने अपनी माँ और गुरु दोनों रूपों में मानते हुए परम सुख का अनुभव किया।

इनके समाधि-ग्रहण का काल श्री ज्ञानेश्वर-समाधि के कुछ ही दिन पश्चात् का माना जाता है।

चांगदेव के ७७ अभंग मिलते हैं। इनमें अधिकतर स्वानुभूति, योगानुभूति, मुक्ताई-चांगदेव-संवाद, ज्ञानोपदेश, अंबुला रूपक एवं रहस्य-पद हैं, जो ज्ञान-मार्गीय अनुभूतियों से संवलित हैं। परन्तु किसी-किसी अभंग में भक्ति के श्रेष्ठत्व, पुरस्कार और अंगीकार का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है। चांगदेव योगी थे, मुक्ताई ने उन्हें भक्ति-रस का पान करवाया—

भक्तिबोधे बोधले साचे।
चांगा म्हणे वटेश्वराचा॥

अर्थात् वटेश्वर (पूर्व गुरु का नाम) का चांगा कहता है कि मुक्ताई ने सत्य ही मुझे भक्तिबोध का निर्देश देकर मेरा जीवन रसमय कर दिया। यही बोध प्रफुल्ल होकर चांगदेव के तन-मन में समा गया—

निरंजन वनीं केशव फुलला।
डोंगर शोभला ब्रह्मगिरी॥
तेथे सुमन झाडोन अनुहाते।
शिष्ट अनुभवुनि बुद्धि तोचि जाला॥
चांगा वटेश्वरीं केशव फुलला।
भ्रमर जाला रस घ्यावया॥

(अभंग ३५)

'निर्गुण प्रभु भक्ति-प्रेम के वश होकर सगुण हुआ। निरंजन-वन में केशवरूप पुष्पराजि फूल उठी और ब्रह्मगिरि पर्वत उससे शोभायमान हो उठा, ब्रह्म भी सुसज्ज हुआ। चांगदेव कहते हैं कि वहाँ मैं सुमन चुनूंगा, अनहद नाद से भी भक्ति सिद्ध करूँगा। शिष्टों के, सन्तों के संग से भक्ति का अनुभव हुआ और उस अनुभव से बुद्धि तद्रूप हो गयी। वटेश्वर का चांगदेव कहता है कि यह केशव सर्वत्र फूला है और उसका रस ग्रहण करने के लिए चांगदेव भ्रमर बन गया है। भक्ति के इस परम आनन्दमय स्वरूप का चांगदेव अनुभव करते हैं।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

चोखामेळा

श्री ज्ञानेश्वर महाराज के प्रभामण्डल में अनेक जातियों के महाभक्त परम वैष्णव हुए हैं। उनमें से मंगलवेढ़ा के शूद्र श्री चोखामेळा का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। ये तेरहवीं शताब्दी में हुए। ये जाति के महार थे। सारा समय अपना काम-धन्धा करते हुए मुख से थे अखण्ड भजन किया करते थे। इनका पूरा परिवार—पत्नी, बहन, बहनोई, पुत्र, सभी महान् भक्त एवं कवि थे। सांसारिक आपदाओं से त्रस्त चोखामेळा पण्ढरपुर में श्री विट्ठल-चरणों में ही विश्रान्ति प्राप्त करते थे। ये ऊर्ध्वस्वर से ज्ञानेश्वर आदि भाई-बहनों का गुण-वर्णन करते थे और अपना जीवन धन्य मानते थे। शूद्र होने के कारण इनका भीतर प्रवेश निषिद्ध था। अतः ये भगवान् के मन्दिर के महाद्वार से उनकी लावण्यमय मूर्ति निहारा करते थे। इन्होंने नामदेव महाराज को अपना गुरु और जीवनाधार माना था। माउली (माता) ज्ञानदेव इनके लिए कृपा के आगार थे। इन्होंने एक जगह कहा है कि जो भगवत्-रुचि का, अखण्ड प्रेम का खजाना नामदेवजी को प्राप्त है, वह हमें भी जन्म-जन्मान्तर के लिए उनकी कृपा से सहज ही मिल गया है। विट्ठल प्रभु से वारकरी भक्त की भेंट चोखोबा के लिए परमानन्द का क्षण होती थी। उन्होंने सभी जाति के, सभी प्रकार के नटखटों, खटनटों (दुष्टों) का आह्वान किया है कि वे आयें और इस भक्ति-सागर में निमग्न होकर परम शुद्ध हो जायें। प्रभु की साक्षी में चोखोबा सहर्ष यह डौंड़ी पीटते हैं।

मन-वाणी-कर्म से विट्ठल-भक्ति में निमग्न इस हरि-भक्त की 'विवेक-दर्पण' नामक रचना प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त अभंग, पद आदि इनकी जितनी भी रचनाएँ हैं वे अत्यन्त मधुर, लालित्यपूर्ण तथा भक्तिप्रेमानन्दमयी हैं। शक १२६० (सन् १३३८ ई०) के वैशाख कृष्णपक्ष की पञ्चमी को मंगलवेढ़ा में इनका देहान्त हुआ। कहा जाता है कि इनकी फूस की झोपड़ी में आग लगी। वही इनके शरीर पर गिर पड़ी। उसी अग्निकाण्ड में इनका प्राणोत्सर्ग हुआ। भक्तों द्वारा इनकी अस्थियाँ पण्ढरपुर में, प्रभु-चरणों में देवालय के सम्मुख रखकर इनका स्मारक बनाया गया है।

सन्तश्रेष्ठ चोखामेळा के लगभग तीन सौ उनचास अभंग 'सकल सन्त-गाथा' में प्राप्त होते हैं। इन अभंगों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में भगवान् विट्ठल का रूप-माधुर्य, उनके प्रति अनन्य प्रेमाभक्ति की अभिव्यक्ति, पण्ढरपुर का माहात्म्य-वर्णन, नाम-महिमा, अद्वैतानुभव-विषयक अत्यन्त उच्चकोटि का स्वानुभव-वर्णन, सगुण-निर्गुण-चर्चा तथा व्यावहारिक, भौतिक और आध्यात्मिक स्वस्थिति का वर्णन है। इसके साथ ही अपनी परमार्थ-साधना में मिलन, विरह, आत्मान्वेषण, आत्मनिवेदन आदि विविध भक्ति-स्थितियों और मनोरथों का भी विवेचन है। लोकसंग्रह की अवस्था में उपदेशामृत संकलित है। लोकसाहित्य-विधा में रूपक-सृजन किया गया है। भगवान् से प्रेम-संवाद के अन्तर्गत प्रेमकलह, भगवान् द्वारा भक्त का लाड़-प्यार-दुलार, ज्ञानेश्वर-नामदेव आदि भक्तों की स्तुति, प्रेमादरभरी शब्दार्चना है। इस प्रकार चोखोबा महाराज के अभंग विविध विषय-स्पर्शी हैं। अनन्य प्रेमाभक्ति इनकी समस्त रचनाओं का मूल है और गहरी माहात्म्यज्ञानभरी सन्त-भक्ति इनकी तलस्पर्शी मार्मिकता का प्राण है। ये जातिहीन जन का उद्धार करनेवाले सन्तों के अनन्यभाव से शरण हैं। ये कहते हैं—

महाविष्णूचा अवतार।
प्राणसखा ज्ञानेश्वर॥
आदिनाथाचा अवतार।
निवृत्ति म्हणती साचार॥
चतुराननाचा अवतार।
तो हा सोपान निर्धार॥
आदिमाया मुक्ताबाई।
चांगा उपदेशिला पाही॥
ऐशा सन्तांच्या चरणीं।
चोखा घालतो लोळणी॥

(अभंग १३५)

'मेरे प्राणसखा ज्ञानेश्वर महाविष्णु के अवतार हैं और निवृत्ति सच्चे तौर पर आदिनाथ शिव के अवतार है। सोपानदेव चतुरानन ब्रह्मा के अवतार हैं और मुक्ताबाई, जिन्होंने चांगदेव को उपदेश दिया, वे तत्त्वतः आदिमाया हैं। ऐसे इन सभी सन्तों के चरणों में चोखा साष्टांग वन्दन करता है।'

चोखामेळा के इष्टदेव भगवान् विट्ठल श्रीकृष्ण हैं। गो-गोपाल सहित वन-विहार करते हुए वे महामुनि पुण्डरीक के प्रेम में बँधकर पण्ढरपुर में ही स्थिर हो गये। महाविष्णुस्वरूप विट्ठल कैसे हैं? चोखोबा कहते हैं—

सुन्दर मुखकमल कस्तुरी मळवटीं।
उभा देखिला तटी भीवरेच्या॥
मकराकार कुंडलें श्रवणी ढाळ देतीं।
गळां वैजयंती मुक्तमाळा॥
शंख चक्र गदा पद्म चहूँ करी।
गरुडवाहन हरी देखियेला॥
चोखा म्हणे सर्व सुखाचें आगर।
निरा भिवरा तिर विठ्ठल उभा॥

(अभंग १०)

'विठोबा का मुखकमल अत्यन्त सुन्दर है। उन्होंने माथे पर कस्तूरी लगायी है। उन्हें इस रूप में चन्द्रभागा नदी के तट पर खड़ा हुआ मैंने देखा। प्रभु के मकराकृति कुण्डल बड़े ही मनोहर हैं, जिनकी रश्मिरेखाएँ श्रवणों पर पड़ रही हैं—बड़े ही सुन्दर दिखाई दे रहे हैं। उनके गले में वैजयन्ती माला विराज रही है। हाथों में शंख, चक्र, गदा, तथा पद्म है। हरि गरुड़ पर बैठे हुए हैं। चोखा कहते हैं, ऐसा यह सर्वसुख का आगार यह प्रभु भीवरा (भीमा) नदी के तट पर खड़ा है।'

भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीड़ाएँ सन्त चोखोबा अनेक प्रकार से वर्णित करते हैं। ये क्रीड़ाएँ भक्त की प्रेम-चर्चा एवं भावसाधना का आधार हैं। गोप-गोपिकाओं के साथ गोकुल में प्रभु कैसी छेड़खानी करते रहते हैं। जहाँ एक ओर तो उनका जूठा दही-भात खाते हैं, वहीं दूसरी ओर घर-घर जाकर उनका मक्खन चुराकर खाते हैं और मना भी करते जाते हैं। गोपिकाएँ जब उनकी माँ के पास आकर उलाहने देती हैं तो उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखकर हँसते हैं। फिर बदला लेने के लिए उन गोपिकाओं के घर जाते हैं और उनके घड़ों-मटकियों को फोड़ देते हैं। गौओं को लेकर यमुना-तट पर जाते हैं और गौओं को ढूँढ़ने उनके पीछे दौड़े जाते हैं। दोपहर में 'काला'—कलेवा करते हैं। चोखोबा कहते हैं कि इस प्रकार अपना कौतुक, लाघव दिखाकर प्रभु अपनी माया उनकी समझ में नहीं आने देते।

भगवान् की लीलाओं का समग्र दृश्य प्रस्तुत करनेवाला एक अन्य मनोवेधक चित्र देखिये—

गोधनें चारी गोपाळासवें।
चोरुनी शिदोऱ्या त्यांच्या खाय ॥

नाहीं म्हणोनी खरी आण वाहे।
खोटें खरें तेथें न पाहे ॥

ऐसा वैकुंठीचा सांवळा हरी।
खेळू खेळे गोकुळा माझारी ॥

बाळपणीं केल्या दैत्या भोंवरी।
पांडवा साहाकारी हरि जाला ॥

इन्द्र कोपतां शिळा धारी।
नखावरी धरियेला गिरी ॥

काळिया कंसासुरा मारी।
तोचि श्रीहरि पंढरीये ॥

चोखा म्हणे भावाचा लंपट।
म्हणोनी नावडे वैकुंठ ॥

येथे आवडलें वाळवंट।
पुंडलिक पेठ आवडी ॥

(अभंग १२०)

'गोपालकृष्ण प्रभु गोकुल में गोप-बालकों के साथ गौओं को चराते हैं, उनकी दोपहर की रोटी चुराकर खाते हैं और यह करने के बाद न खाने की झूठी कसमें भी खाते हैं। प्रभु प्रेम में खरा-खोटा कुछ नहीं देखते। ऐसा यह वैकुण्ठ का साँवला श्रीहरि है और गोकुल में तरह-तरह की क्रीड़ाएँ कर रहा है। बचपन से ही इन्होंने न जाने कितने दैत्यों का संहार किया है और यह श्रीहरि पाण्डवों का सहायक बना है। गोकुल-वासियों पर इन्द्र की कोपदृष्टि होते ही उनके द्वारा की गयी अनवरत वृष्टि से बचाने के लिए ये उँगली पर शिला (गोवर्धन-पर्वत) धारण करते हैं। इन्होंने कालियानाग और कंस जैसे असुरों का मर्दन किया है, उन्हें मार डाला, वही श्रीहरि तो यहाँ पण्ढरपुर में विराज रहे हैं। चोखा कहते हैं, इस श्रीहरि को भक्ति-भाव बड़ा ही प्यारा है। उसके लिए ये लंपट बने घूमते हैं। इतने अधिक कि इन्हें अपने घर वैकुण्ठ में भी इतना अच्छा नहीं लगता। इन्हें तो पण्ढरपुर का यह नदी-तट का बालुका प्रदेश, परम प्रिय भक्त पुण्डलीक और यहाँ भक्तों का मेला ही अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता है। इसे छोड़ वे कहीं जाते ही नहीं।'

भक्तश्रेष्ठ चोखामेळा हरिप्रिया राधा का उल्लेख नहीं करते, परन्तु उनकी भावसाधना राधाभाव के करीब पहुँचती है। इन्हें प्रभु का लीला-वर्णन अत्यन्त प्रिय है। प्र० न० जो०

वि० पं०

जगमित्रनागा

जगमित्रनागा के जीवन के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी का अभाव है। अनुमानतः ये १३वीं शती ई० के अन्त में जन्मे थे। इनके चरित्रकार ने इन्हें प्रतिष्ठानवासी और अत्यन्त वैभवसम्पन्न बताया है। विपरीतकालवश यह धूल में लोटने को विवश हुए और परिणामतः प्रभु-चिन्तन में निमग्न हो गये। इनके कुछ पद ही उपलब्ध हैं, परन्तु उनमें वैष्णव-भक्ति की भावना उच्चतम स्वरूप में प्राप्त होती है। भगवान् की भक्तवत्सलता पर इनकी अनूठी रचनाएँ हैं।

इनका समाधिकाल शक १२५२ (सन् १३३० ई०) कार्तिक शुक्ल एकादशी माना जाता है और इनकी समाधि जोगाई के पास आंबा के निकट परळी ग्राम में है।

इनकी रचनाएँ मधुर भाव से परिप्लुत हैं। अपनी विट्ठल-भक्ति में यह कृष्ण-भक्ति को ही रेखांकित करते हैं। इनका एक अत्यन्त ही सुमधुर पद है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महा प्रसाद ताटीचा।
विडा आपुलें हातींचा ॥ १ ॥
इतुकें झडकरी पाठवावे।
नाहीं तरी बळिया होउनी राहावें ॥ २ ॥
चुवा चंदन केशराचा।
झगा आपुले अंगींचा ॥ ३ ॥
तीर्थ चरणींचे शीतळ।
आणि कंठींची तुळशी माळ ॥ ४ ॥
विनवी जगमित्रनागा।
जाउनी विठोबाला सांगा ॥ ५ ॥

एक प्रसंग में जगमित्रनागा अपने परमप्रिय प्रभु विट्ठल से प्रेम-चिह्नारी के रूप में उनकी नित्य प्रयोग की वस्तुएँ माँग बैठते हैं—

'प्रभुजी, आपकी थाली का महाप्रसाद अर्थात् आपका उच्छिष्ट मुझे चाहिए। प्रभु! अपने हाथ से बीड़ा बनाकर मुझे भेजिये। तुम्हारे हाथ का बीड़ा मुझे चाहिए। देखिये, जल्दी-से-जल्दी यह भेजिये, तभी आप बड़े बनकर रह सकते हैं। तभी आपकी सदाशयता-उदारता प्रकट होगी, वरना कंजूस स्वामी से मिलना ही क्या? और देखिये, आपके कोमल शरीर पर लगे चन्दन केशर का चूरा, कोमल तनु का सुवास और हाँ आपका पहना हुआ वस्त्र, झगा अर्थात् कुर्ता जब आप उतारेंगे तो वह भी मुझे भेजिये। आपका अत्यन्त निकट स्पर्श अनुभव करना चाहता हूँ मैं। आपके चरणों का शीतल जल ही मेरी प्यास बुझा सकता है। मुझे वही चाहिए और कण्ठ में पहनी हुई तुलसी-माला भेजना न भूलियेगा। वही तो मेरा सर्वस्व है। उसे देख-देखकर ही जीता हूँ मैं। जगमित्रनागा अपने अन्तेवासी से विनती करते हैं कि भगवान् विठोबा से कहो कि ये सारी चीजें उन्हें चाहिए। क्योंकि प्रभु के स्मरण, चिन्तन, स्पर्श के बिना जगमित्रनागा जी ही नहीं सकता।' इतना प्रेम, इतना गाढ़ी अन्तरंगता है, इनकी प्रभु के साथ। प्र० न० जो०

वि० पं०

जनाबाई

जनाबाई का आविर्भाव १३वीं शताब्दी में हुआ था। ये अनन्य विट्ठलोपासिका तथा सन्त नामदेव की समकालीन थीं। इन्होंने स्वयं को 'नामयाची जनी' अर्थात् नामदेव की जनी अथवा दासी कहा है। महाभागवत सन्त नामदेव के घर सेवा-टहल करनेवाली भगवान् से यह इतना प्रेम करती है कि उस प्रेम के वशीभूत होकर प्रभु उसके साथ घर का सारा काम करते हैं। जंगल में जाकर ईंधन जमा करते हैं—और तो और, अनाज पीसते हुए जब जनाबाई पसीने से तर हो जाती है तो भगवान् अपने उत्तरीय से, अपने कोमल हाथों से उसके माथे का पसीना पोंछते हैं।

इनकी जन्मकथा के विषय में वार्ताकार महिपति बाबा जो जानकारी देते हैं उससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम दमा और माता का नाम करुण्ड था। वे शूद्र जाति के थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। इससे निरन्तर चिन्तित रहते थे। अभीष्ट-सिद्धि के लिए वे दोनों पण्ढरपुर गये और भगवान् विठोबा से मानता माँगी। उसी रात दमा को दृष्टान्त हुआ। स्वप्न में प्रभु ने कहा, "तुम्हें एक कन्या होगी, जो तुम्हारे कुल का उद्धार करेगी। यह कन्या कृतयुग में पद्मिनी, त्रेतायुग में मन्थरा और द्वापरयुग में कुब्जा थी, वही तुम्हारे पेट से जन्म लेगी। उसका नाम जनाबाई रखना और उसे दामाशेटी के घर भेजना।" समय से भगवदादेश चरितार्थ हुए और दम्पति कन्या-रत्न प्राप्त कर कृतकृत्य हो गये। कुछ बड़ी होने पर माता-पिता ने स्वप्नादेश के अनुसार जनाबाई को नामदेव महाराज के पिता दामाशेटी के घर परिचर्या हेतु भेज दिया। वहाँ वह परिजन के रूप में ही पलने लगी। महान् भक्त नामदेव की सेवा करते हुए वह प्रेमाभक्ति से सराबोर हो गयी। उसको यह विश्वास हो गया कि वह युग-युगों से श्रीकृष्ण की दासी रही है। अतः उसी भाव से विट्ठल की उपासना करने लगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने एक अभंग में ये कहती है, "साधु-सन्तों ने मेरा मन इतना ऊँचा कर दिया है कि अपने स्त्री होने का मुझे खेद नहीं, न दासी होने का ही। मैं तो सन्तों के घर की दासी हूँ और भगवान् की प्रेमप्राप्त भी। मैं विदुर की हो जाति की हूँ, जिससे भगवान् इतना प्रेम करते थे।" ये निरन्तर भगवान् की मानसो पूजा किया करती थीं—जैसे दूल्हा के साथ बरातिओं को भी मिष्टान्न मिल जाते हैं, पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, वैसे इन्हें प्रभु प्राप्त हो गये थे। इन्हें सदैव विट्ठल का ध्यान बना रहता था। ये कहती थीं,

'तुजवांचुनी विठ्ठला।
कोणी नाहीं रे मजला।'

'हे विट्ठल! तुम्हारे बिना मेरा और कोई नहीं है।' जन्म-जन्म प्रभु-दासी ही बनी रहें, यही इनकी एकाग्र पुकार रहती थीं।

अपना सम्पूर्ण जीवन इसी प्रकार की उत्कट प्रेमाभक्ति और सन्तों की सेवा-टहल में बिताकर इन्होंने सन्त नामदेव के परिवार के साथ ही पण्ढरपुर के विट्ठल-मन्दिर के महाद्वार पर समाधि ग्रहण की।

सन्त जनाबाई के अभंग श्रीकृष्ण-भक्ति की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में परिगणित होते हैं। घरेलू वातावरण, भगवान् के प्रति परम आत्मीयता, दास्य से लेकर मधुर तक सभी भक्तिभावों का समावेश, सीधी-सादी शब्द-रचना और अनन्य भोलाभाव इनकी काव्य-सृष्टि की असाधारण विशेषताएँ हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज आदि चारों भाई-बहनों के प्रति इनकी अपार आस्था थी। नामदेव के भक्त-स्वरूप का इन्होंने पारदर्शी चित्र अंकित किया है। समस्त मराठी भक्त-मण्डली में जनाबाई की वाणी में भक्ति-प्रेम विशेष रूप से भरा-पूरा है। इनकी प्रत्येक पंक्ति प्रेम और भक्ति से सराबोर और समस्त रचना निजानुभूतिपरक है, इसीलिए अत्यन्त भावभीनी है। इनके द्वारा वर्णित कृष्ण-कथा के अनेक प्रसंग स्वानुभूति में रँगे हुए हैं। इन कारणों से ये मराठी-साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय भक्त-कवयित्री हैं।

जनाबाई के कुल ३४८ अभंग उपलब्ध हैं। इन अभंगों में— नाम-संकीर्तन-माहात्म्य, भगवान् की करुणा-शीलता, मिलन, भक्तवत्सलता, वन्दना, आत्म-स्वरूप-स्थिति, चक्की पर गानेवाले गीत, उपदेश, कृष्ण-जन्म, कृष्ण की बाल-क्रीड़ा और वन-विहार, सेनानाई-चरित्र, श्री नामदेव-चरित्र, हरिश्चन्द्र-आख्यान, थालीपाक, तीर्थावली, लोरी और भक्ति के विविध भावों को व्यंजना है। इनके अतिरिक्त इन्होंने दशावतार-वर्णन, प्रारब्ध-गति, रहस्य-पद और प्रातः-आरती भी लिखी है।

भक्तिमती जनाबाई सर्वात्मना श्री विट्ठल-भक्ति अर्थात् श्रीकृष्ण-भक्ति में विलीन हो चुकी थीं। इन्होंने जहाँ एक ओर श्रीकृष्ण-कथा-वर्णन तथा उसमें स्वयं की उपस्थिति के स्वानुभूति-परक उद्गार व्यक्त किये हैं, वहीं दूसरी ओर श्री विट्ठल अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रति निजानुभव-मण्डित तथा प्रेमोद्दीप्त काव्य-रचना भी की है। अपनी आर्तता और विरह के क्षणों में ये चिन्ताकातर हो प्रभु को पुकारती हैं—

कां गा उशीर लाविला।
माझा विसर पाडिला॥
तुजवरी संसार।
बोळविलें घरदार॥
तो तूं आपुल्या दासीसी।
जनी म्हणे विसंबसी॥

(अभंग ५४)

'हे प्रभु! तुमने इतनी देर क्यों लगा दी? भला क्या तुम्हें मेरी याद नहीं रही? प्रभु! मैंने तो तुम पर सारा संसार, सारा घर-बार निछावर कर दिया है। ऐसी अपनी इस दासी जनी को तुम कैसे भूल पाते हो? प्रभु! तुम्हारी यह विस्मृति मुझे निराश और चिन्ताकातर कर देती है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दूसरा काव्यांश भी नमूने के लिए प्रस्तुत है—

कोणे एके दिवशीं ।
विठो गेला जनीपाशीं ॥
हळुच मागतो खायासी ।
काय देऊं बा मी तुसी ॥
हातीं धरूनी नेला आत ।
वाढी पंचामृत भात ॥
प्रेमसुखाचा ढेकर दिला ।
जनी म्हणे विठो धाला ॥

'एक दिन भगवान् विठोबा जनी के पास आये और धीरे से कुछ खाने के लिए माँगा। जनाबाई मन ही मन कहती है, अव मैं तुझे क्या खाने के लिए दूँ? फिर हाथ पकड़कर उन्हें भीतर ले जाती हैं और भ त तथा पंचामृत उन्हें जीमने के लिए देती हैं। यह भोजन पाकर प्रभु तृप्त हो जाते हैं और प्रेम-सुखभरी डकार लेते हैं। प्रेम-भक्ति में डूबी जनाबाई प्रभु के इस प्रेम से परम आनन्दित होती हैं।'

निजानुभूतिपरक कृष्ण-सुख के अभंगों में भगवान् का अर्द्धरात्रि के समय उनके घर आना, सुख-दुख बतियाते-बतियाते वहीं सो जाना, माँ की ममता से जनाबाई की चोटी गूँथना, उन्हें अभ्यंग-स्नान करवाना जैसे अनेक प्रसंग हैं, जो पाठकों को बरबस इनकी अद्भुत प्रेमाभक्ति में निमज्जित कर देते हैं। प्रेम की अन्तिम सीढ़ी के रूप में मानों ये स्वयं को वेश्या के रूप में निरूपित करती हैं, जो स्वच्छन्द स्वैराचारिणी, व्यभिचारिणी की भाँति परमपुरुष विट्ठल का प्रेम पाने चली हैं। अब उसे न किसीका डर, भय है, न लोक-लाज! भक्ति की तीव्रतम अवस्था में भला और कौन से शब्दों में वर्णन करतीं? परन्तु दास्यभाव इनसे नहीं छूटता। प्रेम की गौरवपूर्ण मर्यादा तेजवलयांकित रहती है। भक्तों ने आराध्य की लोकलीला की स्थितियों का वर्णन करते हुए उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ा है। जनाबाई स्त्री-भक्त हैं। ये अपनी इस अकृत्रिम प्रेम-भावना, निष्कपट भक्ति और अनोखी कृष्ण-ममता के कारण ही सन्त नामदेव तथा ज्ञानेश्वर जैसे लोकवन्द्य सन्तों की स्नेहभाजन बनी थीं। इनके दो भक्तिपूर्ण अभंग प्रस्तुत हैं—

वैकुण्ठीचा हरि ।
तान्हा यशोदेच्या घरी ॥
रांगतसे हा अंगणीं ।
माथां जावळाची वेणी ॥
पायीं पैंजण आणि वाळे ।
दांती नवनीताचे गोळे ॥
धन्य यशोदा ते माय ।
दासी जनी वंदी पाय ॥

(अभंग २६२)

'अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्ण जो वैकुण्ठ के श्री हरि हैं—वही यशोदा माँ की गोद में नन्हें शिशु बनकर आये हैं। ये आँगन में घुटनुओं से चलते हैं। इनके माथे पर कोमल-कोमल बालों की सुन्दर बेनी बनी हुई है। पैरों में पैजनियाँ और कड़े हैं, हाथों में लिये हुए मक्खन के गोले पर अपने नन्हें-नन्हें दाँत गड़ा रहे हैं। बाललीला के इस लोकोत्तर सुख का अनुभव करनेवाली यशोदामाता धन्य हैं। दासी जनाबाई उनकी बारम्बार चरण-वन्दना करती है।'

भक्तिमती जनाबाई मूलतः दास्यभाव की भक्त हैं। परन्तु मधुरा भक्ति के द्वारा भी वे प्रभु को रिझाती हैं। यद्यपि वे राधा-कृष्ण की संयोग-क्रीड़ा के अनेक प्रसंग वर्णित करती हैं, परन्तु उस स्थिति में भी उनका दासीभाव अडिग रहता है।

आराध्य कृष्ण स्वामी और स्वयं उसकी दासी—यह नाता जनाबाई के मन का स्थायीभाव था। इसी भावभूमि पर ये राधा-कृष्ण की केलि का मार्मिक चित्रांकन करती हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा अणि मुरारी।
क्रीडा कुंजवनी करी ॥
राधा डुल्लत डुल्लत।
आली निजभुवनांत ॥
सुमनाचे शेजेवरी।
राधा आणि तो मुरारी ॥
आवडीनें विडे देत।
दासी जनी उभी तेय ॥

(अभंग १४१)

'राधा और मुरारी कुञ्जवन में क्रीड़ा कर रहे थे। राधा झूमती-झूमती निज भुवन में आयी और स्वामिनी व स्वामी–राधा और मुरारी सुमनशय्या पर विराजे। वे परस्पर अलौकिक प्रेमानन्द में मग्न थे। दासी जनी वहाँ खड़ी हुई दिव्य दम्पति को देख रही थी और अत्यन्त प्रेमादर से, रुचि से उन्हें बीड़े बनाकर दे रही थी।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

जनार्दन स्वामी

एकनाथ महाराज के सद्‌गुरु श्री जनार्दन स्वामी अपने समय के विख्यात महापुरुष थे। इनका मूल घराना चालीसगांव का था, जहाँ के ये वतनदार देशपांडे थे। यहीं उनका जन्म सन् १५०४ ई० में हुआ। ये वेद-वेदान्त के ज्ञाता, परम विद्वान् और सिद्ध योगी थे। परमार्थ-मार्ग में इन्होंने अनेक मुमुक्षुओं का मार्गदर्शन किया था।

इनका कार्यक्षेत्र देवगढ़ था। ये वहाँ के यवन किलेदार के दीवान थे। सरकारी नौकरी करते हुए भी ये ईश्वर-भक्ति में निमग्न रहा करते थे। जनार्दन स्वामी गृहस्थाश्रमी तथा अत्यन्त व्यवहार-कुशल थे। इन्होंने संन्यास को महत्त्व न देकर गृहस्थाश्रम की महत्ता बढ़ायी और अपने शिष्यों को भी ऐसा ही उपदेश दिया। इन्होंने ऐहिकता का सम्मान परमार्थ-साधन के रूप में बढ़ाया। ये दत्तात्रेय-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अपने इष्टदेवता से इनका नित्य-समागम, संवाद हुआ करता था। वे प्रहर-प्रहरभर प्रभु-सान्निध्य में समाधिलीन रहा करते थे। देवगढ़ और सम्पूर्ण देवगिरि परिसर की जनता में ये अत्यन्त लोकप्रिय थे। ये अपने नामगुणानुसार जनता के सच्चे सेवक, शासक एवं परमार्थ-पथ-प्रदर्शक थे। इनके 'जनार्दन' नाम से जनसेवा और जनसेवारूप हरिसेवा की उत्स्फूर्त प्रेरणा एकनाथ महाराज ने ग्रहण की। ये स्वयं भी हरिसेवारूपी जनसेवा के मूर्तिमन्त प्रतीक थे। यही कारण है कि इन्होंने पुस्तक-रचना नहीं के बराबर की। परन्तु शिष्य-रचना में अत्यन्त सफल रहे। इनके शिष्य-समुदाय में एका जनार्दन, जनी जनार्दन, रामा जनार्दन आदि परमविख्यात सन्तपुरुष हुए, जिन्होंने भागवत-धर्म और भगवद्-भक्ति की पताका ऊँची रखी और जन-जन में यथार्थ जीवन प्रतिष्ठित किया। अपने शिष्यों के प्रति ये परम दयालु थे। यहाँ तक कि ये शिष्यों को अपने-अपने इष्टदेवता की भक्ति की अनुमति ही नहीं, तदनुरूप साधना भी प्रदान करते थे। कट्टर साम्प्रदायिकता से कोसों दूर, अतिवाद से सर्वथा रहित, किसी भी प्रकार की जड़ कर्मठता से निःसंग और अहं के सर्वथा अभाव के कारण जनार्दन स्वामी अलौकिक कार्यकर्त्ता और कार्यप्रेरक हुए। भक्ति, ज्ञान एवं कर्म का इनमें आदर्श सन्तुलन था, जो इनके शिष्यों में तद्वत् ही उतर आया था।

इन्होंने शक १४९७ तदनुसार सन् १५७५ ई० की फाल्गुन कृष्ण षष्ठी के दिन समाधि ग्रहण की।

श्री जनार्दन स्वामी के केवल बत्तीस अभंग प्राप्त होते हैं, जिनमें से अधिकतर दत्त-स्तुति से सम्बद्ध हैं। इनके नाम से एक 'जानकी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थ मिलता है, परन्तु उसकी विश्वसनीयता सन्दिग्ध है। जनार्दन स्वामी यद्यपि स्वयं दत्त-भक्त थे, तथापि अपने परमशिष्य एकनाथ को उपदेश देते हुए वे कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

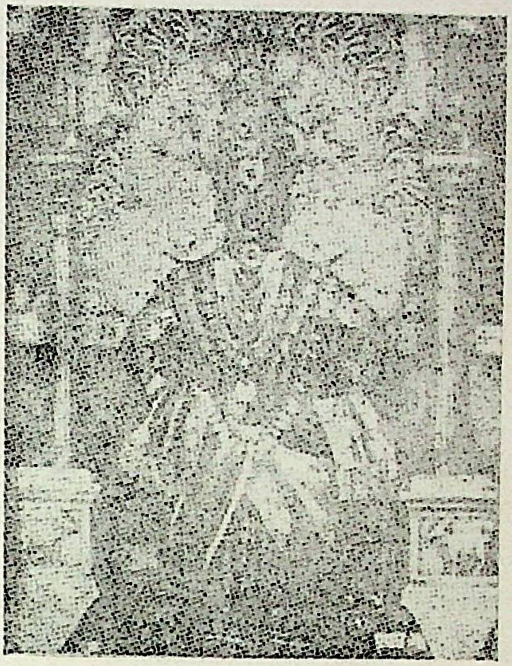

भगवान विट्ठलनाथ : पंढरपुर, पृ० २२९

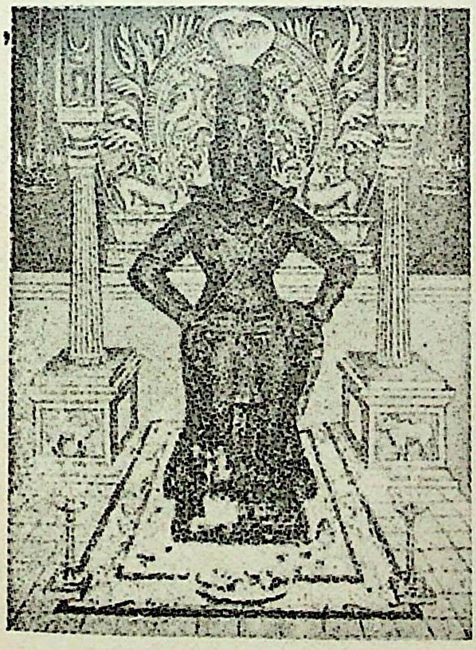

भगवान विठ्ठलनाथ : पंढरपुर, पृ० २२९

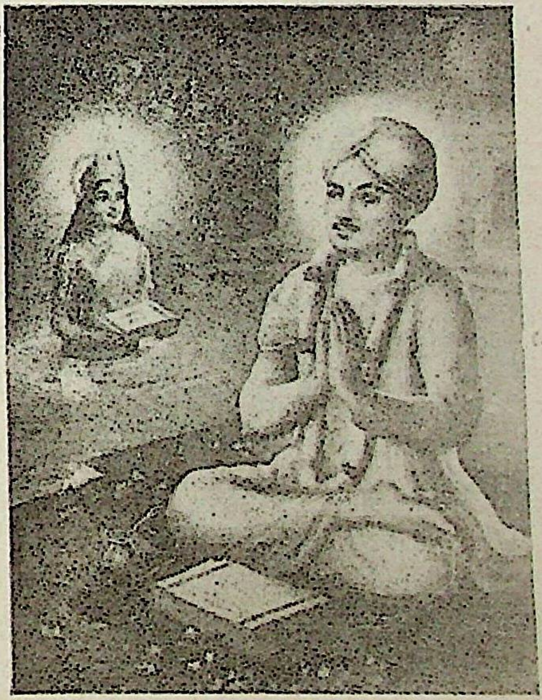

एकनाथ महाराज, पृ० १८१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

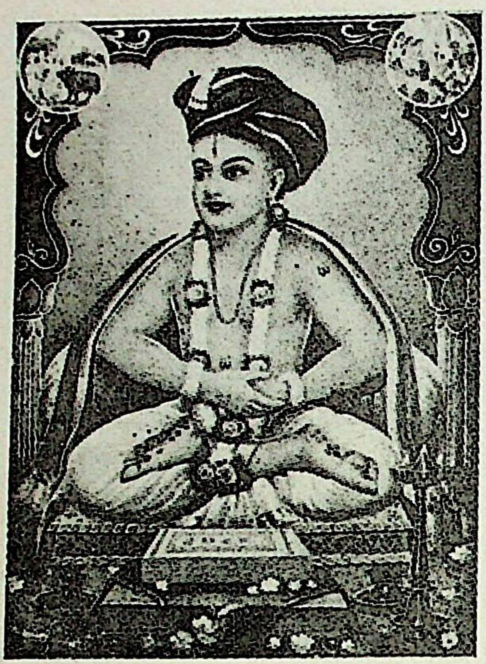

ज्ञानेश्वर महाराज, पृ० २१०

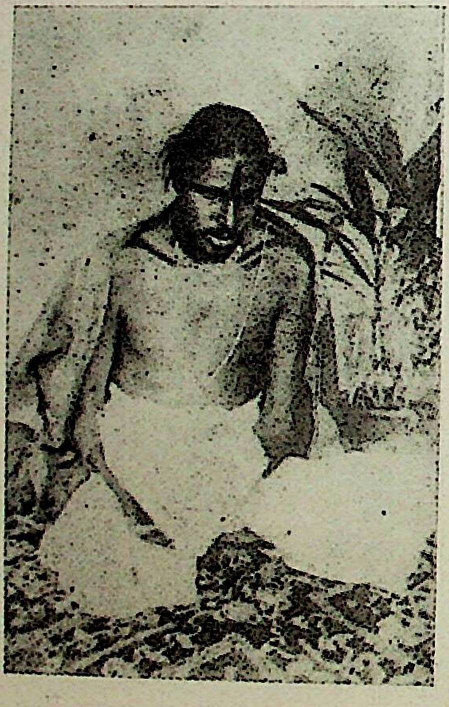

गुलाबराव महाराज, पृ० १९२

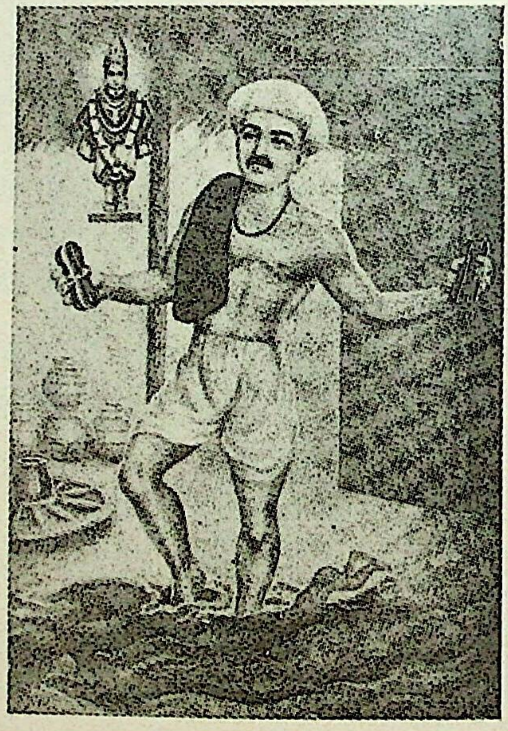

संत गोरा कुम्हार, पृ० १९५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुळशी वृन्दावन विष्णूंचे पूजन ।
भक्तीसी कारण मुख्य हेंचि ॥
सर्वांभूती दया भेद नोहे चित्ता ।
साधी परमार्थ हाचि एक ॥
व्युत्पत्ति विचार न करी निर्धार ।
व्यर्थ वांया भार काय करिसी ॥
म्हणे जनार्दन एकविध भजन ।
सांगितले जाण एकनाथा ॥

(अभंग २४)

'हे एकनाथ ! भक्ति का मुख्य मर्म यही है कि विष्णु भगवान् का पूजन किया जाय, तुलसी-वृन्दावन की सेवा-पूजा की जाय। नवविधाभक्तिमण्डित इस व्यवस्था में फिर सर्वभूतों के प्रति दया समाहित होती है। चित्त में जरा भी भेदभाव नहीं होना चाहिए। यही तो सच्चा परमार्थ है और इसे ही तुम साध्य करो। बहुत से विचार, नाना जंजाल, व्युत्पत्ति-विचार बिलकुल ही छोड़ दो। यह वृथा बोझ किसलिए ? जनार्दन स्वामी कहते हैं—एकनाथ ! यही एकविध और यही यथार्थ भक्ति-मार्ग है, भजन-पद्धति है।'

अपने एक अन्य अभंग (संख्या २३) में ये एकनाथ महाराज से कहते हैं कि 'तुम यह विधि-निषेध का सारा जंजाल परे रख दो, इसे संकुचित करो और बिना विचारे किसी भी अन्य पन्थ की शरण न गहो। यह निश्चित जान लो कि पण्ढरपुर का पन्थ पवित्र प्रेमिल सहज सरल है। उसके बिना और अन्य कौन वन्दनीय है भला ? एकमात्र विठोबा (श्रीकृष्ण) ही वरेण्य हैं। वही सर्वोत्तम तीर्थ हैं। वहाँ का देव पाण्डुरंग ही सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च इष्ट है और उनका नाम ही सर्वथा मोक्षदायी है। हमारे सारे मनोरथ, सारी इच्छाएँ, सारा काम विट्ठल-चरणों में परिपूर्ण होता है। तुम सर्वदा सर्वभाव से पण्ढरपुर की वारी (यात्रा) करो और किसी व्यापार-व्यवहार से प्रयोजन न रखो। जनार्दन स्वामी, शिष्य एकनाथ से कहते हैं कि मनःपूर्वक सन्तों की शरण ग्रहण करो।'

परमभक्त एकनाथ के इष्ट विठोबा (कृष्ण) इस प्रकार उनके सद्गुरु के आदरणीय वरेण्य थे। इन सिद्ध पुरुष के लिए परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण ही सर्वस्व थे।

प्र० न० जो०
वि० पं०

जोग विष्णुबोवा

विष्णुबोवा जोग महाराष्ट्र के अर्वाचीन काल के एक प्रमुख वैष्णव सन्त हैं। इनका जन्म पुणे में सन् १८६४ ई० में हुआ था। पिताजी का नाम नरसिंह और माता का नाम सरस्वती था। इनके बड़े भाई पाण्डोबा मल्ल थे। विष्णुबोवा को भी मल्ल-विद्या में रुचि थी। वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। उन्होंने विद्यालयीय शिक्षा कम ही प्राप्त की। अंग्रेजी शिक्षा पायी नहीं। सन्त-साहित्य के प्रति बचपन से ही उनके मन में रुचि थी। ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, तुकाराम-गाथा इत्यादि ग्रन्थों पर उनका बहुत अधिकार था। नाना महाराज साखरे के पास उन्होंने ज्ञानेश्वरी का अध्ययन किया। केशवानन्द उदासी से उन्होंने 'शारीरभाष्य' पढ़ा।

विष्णुबोवा स्वयं को नरसिंह का अवतार मानते थे। वे क्रोधी स्वभाव के थे। कीर्तन-प्रसंग में श्रोता भजन में साथ न देते तो वे कीर्तन छोड़कर चले जाते थे। विष्णुबोवा निःस्पृह व निर्भीक थे। किसीके पास उन्होंने याचना कभी नहीं की। निफाड गाँव के एक व्यापारी ने उन्हें एक लक्ष रुपये दिये। विष्णुबोवा बोले, "इतने रुपये हमें किस काम के लिए ? वापस ले जाओ।"

वारकरी या भागवत-सम्प्रदाय का कार्य नियमानुसार चलाने के लिए विष्णुबोवा जोग ने सन् १९१७ में आळन्दी में एक वारकरी शिक्षण-संस्था स्थापित की। इसी संस्था से हजारों वारकरी कीर्तनकार, प्रवचनकार तैयार हुए। इसी संस्था के काम के लिए बोवा बम्बई आये थे। उस समय अपना अन्तकाल निकट जानकर ये शीघ्र ही आळन्दी लौट गये और कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समय बाद वहीं सन् १९२० ई० में देहत्याग किया। इनकी समाधि इन्द्रायणी के तट पर है। विष्णुबोवा ने ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, तुकाराम महाराज की सार्थ गाथा, हरिपाठ आदि ग्रन्थों का सम्पादन किया है।

मर्मग्राही दृष्टि, तीक्ष्ण-बुद्धि, धारणा-शक्ति, तपश्चर्या आदि गुणों के कारण विष्णुबोवा जोग ने महाराष्ट्र में आदर का स्थान प्राप्त किया है। सन्तों के साथ रहकर उन्होंने कुछ योग-प्रक्रिया भी आत्मसात् की थी। भव्य शरीर-यष्टि, शरीर का गौरवर्ण, सुमधुर वाणी, स्वानुभव, ब्रह्मचर्य का तेज आदि के कारण विष्णुबोवा को पर्याप्त सम्मान मिला। इनके कीर्तन प्रभावशाली होने लगे। वेदान्तशास्त्र भी इनके मन में दृढ़ था। सन्तों के अभंगों की कारिका ये मार्मिक रीति से करते थे। इनकी वाणी में 'दौलत-औरत पशम बराबर मस्त रहे निर्वाणी, यह सन्तन की वाणी' यह कबीर का वाक्य बार-बार आता था।

विष्णुबोवा जोग पाण्डुरंग के परम भक्त और एकनिष्ठ वारकरी थे। स्वदेश पर इनका प्रेम था। लोकमान्य तिलकजी से इनका प्रगाढ़ स्नेह था। अर्वाचीन काल में एक साधुपुरुष के रूप में जोग महाराज का नाम प्रसिद्ध है। बंकटस्वामी, शं० वा० दाण्डेकर आदि अनेक सत्पुरुष जोग महाराज की परम्परा में हुए।

प्र० न० जो०

ज्ञानेश्वर

ज्ञानेश्वर महाराज भारतवर्ष की अलौकिक विभूतियों में हैं। भक्ति और अध्यात्म की अनेक परम्पराएँ उनसे उद्‌गम पाती हैं तथा अनेक परम्पराएँ उनमें विलीन होकर नूतन तेज प्राप्त करती हैं। नाथ-सम्प्रदाय में अन्तर्निष्ठ एवं पूर्वापर सम्बन्ध से चले आ रहे वारकरी-सम्प्रदाय में प्रवाहित भक्ति-तत्त्व को लोकविश्रुत करके इन्होंने उसे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया। प्राकृत भाषाओं में भक्ति-महत्ता का गायन और भगवद्‌लीला-संकीर्तन का प्रवर्तन करके उन्होंने युग की आवश्यकता पूरी की। सर्वथा अभिनव-पद्धति की अद्वैत-भक्ति दृढ़ करते हुए, उसे सरल-सुबोध भाषा में समझाते हुए, उन्होंने सर्वजन के ऐहिक, पारलौकिक जीवन के सुगम निर्वहन का साधन उपलब्ध कराया। ज्ञानेश्वर महाराज योगी थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, सिद्ध थे। उनकी अध्यात्म-साधना और सिद्धि के कई पहलू हैं। परन्तु जिस भक्ति-परम्परा को उन्होंने परवान चढ़ाया उसके इष्टदेव पण्ढरपुर के विट्ठल भगवान् थे। विट्ठल अर्थात् विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण। ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा संगठित एवं प्रतिष्ठित 'वारकरी-सम्प्रदाय' परम्परागत भागवत-धर्म की एक बलशाली एवं वैभवमयी जीवनधारा है। श्री विष्णु के अवतार राम-कृष्णादि की लीलाएँ एवं भगवान् की सहज प्रेम-प्राप्ति की स्वानुभूति जिसके जीवन-प्राण हैं, हरिहरैक्य जिसका सुदृढ़ आधार है और सर्वभूतहितरतता जिसका सहज-मान्य आचार है।

आपका जन्म सन् १२७५ ई० में परमविरक्त ज्ञानी महात्मा श्री विठ्ठलपन्त के यहाँ हुआ था। श्री विठ्ठलपन्त के पिता श्री गोविन्दपन्त पैठण के निकट आपेगाँव के कुलकर्णी थे। उन्होंने अपनी पत्नी निराई सहित नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धयोगी गहिनीनाथ से दीक्षानुग्रह प्राप्त किया था। प्रसिद्ध है कि श्री विठ्ठलपन्त के पितामह श्री त्र्यम्बकपन्त एवं उनकी पत्नी दोनों ने योगी गोरक्षनाथ से दीक्षा प्राप्त की थी। श्री विठ्ठलपन्त का जीवन जटिल संघर्षों की अटूट लड़ी थी। अल्पवय में ही वेदविद्याविभूषित होकर वे तीर्थाटन की इच्छा से घर से बाहर निकल गये थे। लोकरूढ़ि से पृथक् सच्चे ज्ञान एवं परमेश्वर-प्राप्ति के लिए भटकनेवाले इस तेजस्वी युवक को पुणे के निकटवर्ती आळन्दी के सिद्धोपन्त कुलकर्णी ने अपना दामाद बनाया। उन्हें एवं स्वयं विठ्ठलपन्त को भी एतद्‌विषयक स्वप्न दिखाई पड़े और विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् पुनः कुछ दिनों के लिए उन्होंने पत्नीसहित तीर्थाटन किया। परन्तु फिर से पूर्वजन्म के इस योगभ्रष्ट पुण्य पुरुष के हृदय में संसार-त्याग की भावना उत्पन्न हुई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे में पत्नी से विधिवत् अनुज्ञा लिये बिना काशी में जाकर उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया। इधर साध्वी रुक्मिणीदेवी पति को पाने के लिए एकनिष्ठ रहकर उग्र तप करने लगीं। इसी समय विठ्ठलपन्त के पूर्वाश्रम के सद्गुरु चैतन्याश्रम की, जो आळन्दी से होते हुए रामेश्वरम् जा रहे थे, भेंट रुक्मिणीदेवी से हुई। उसके द्वारा यथार्थ स्थिति जानकर गुरुदेव ने अपने शिष्य को संन्यासाश्रम छोड़कर पुनः गृहस्थाश्रम स्वीकार करने की आज्ञा दी। गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए विठ्ठलपन्त आळन्दी में ही रहकर गृहस्थ-धर्म का निर्वाह करने लगे। गाँव के ब्राह्मणों ने उन्हें इसी बात के लिए जाति-बहिष्कृत कर दिया। यथाकाल इन दम्पति के यहाँ चार दिव्यात्माओं—तीन पुत्र और एक कन्या ने जन्म लिया। विठ्ठल-रुक्मिणी ने तीनों पुत्रों का नाम क्रमशः निवृत्ति, ज्ञानेश्वर और सोपान रखा तथा पुत्री का नाम रखा मुक्ता। सन्तानों का यह नामकरण भी मानो इन अध्यात्म-भक्ति में रँगे हुए पति-पत्नी के भावों का विशिष्ट ध्वन्यार्थसूचक था। घर में माता-पिता से ही बच्चे संस्कारों के साथ-साथ वेदविद्या और अध्यात्म-विद्या ग्रहण करते हुए सर्वगुणसम्पन्न होने लगे। धीरे-धीरे बेटों की आयु उपनयन-संस्कार के योग्य हुई और विठ्ठलपन्त इनके यज्ञोपवीत हेतु ब्राह्मणों से पुनः स्वजाति में ले लेने के लिए प्रार्थना करने लगे। आळन्दी के ब्राह्मणों ने जब उन्हें जाति में लेने से इनकार कर दिया तब वे आपेगाँव और पैठण भी गये, परन्तु लोकरीति एवं वेदनीति के विपरीत आचरण को देखते हुए ब्राह्मणों ने उनकी बात नहीं मानी और उन्हें देहान्त प्रायश्चित्त का दण्ड दिया। हताश होकर और साथ ही बच्चों का भविष्य सोचकर विठ्ठल और रुक्मिणी ने प्रयाग जाकर जल-समाधि ले ली।

अब सबसे बड़े भाई निवृत्तिदेव ही अपने छोटे भाई-बहनों के माता-पिता सब कुछ थे। इस बीच की एक घटना के अनुसार एक बार जब श्री विठ्ठलपन्त सपरिवार त्र्यम्बकेश्वर (नासिक) की यात्रा पर थे तब ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा करने गये। एक बाघ द्वारा अचानक आक्रमण किये जाने से परिवार के सभी सदस्य इतस्ततः भाग निकले। नन्हें-से निवृत्ति गहिनीनाथ की गुफा में औचक ही प्रविष्ट हो गये। गहिनीनाथ ने निवृत्तिदेव को नाथ-सम्प्रदाय की दीक्षा दे दी। माता-पिता के दिवंगत होने के बाद निवृत्ति, ज्ञानेश्वर, सोपान और मुक्ताबाई ये चारों भाई-बहन आपेगाँव और पैठण के ब्राह्मणों से पंक्तिपावन करने का अनुरोध करते रहे। चारों भाई-बहन परम अधिकारी, व्युत्पन्न, वेदान्ती और स्वानुभूतिसम्पन्न थे। जब उन्होंने सर्वभूतों में एक ही परमेश्वर के निवास की बात कही, तब ब्राह्मणों ने मार्ग पर जाते हुए भैंसे को लक्ष्य करके कहा कि यदि आत्मा एक है तो क्या यह भैंसा भी तुम्हारे समान वेद-ऋचा पढ़ सकता है अथवा इसे पीटा जाय तो तुम्हें पीड़ा होगी? परमशक्तिसम्पन्न ज्ञानेश्वर महाराज ने उपस्थित जनसमूह के समक्ष भैंसे के मुख से वेद-वचन कहलवाये और अपनी पीठ से कपड़ा उठाकर दिखाया कि जो मार भैंसे पर पड़ी थी उससे उनकी पीठ लाल हो गयी थी। ब्रह्मवृन्द और जनता इस घटना से आश्चर्यान्वित और आदर-प्रेम से आप्लावित हो उठी। बहुत सोच-विचारकर पैठण के ब्राह्मणों ने निवृत्तिनाथ प्रभृति चारों बालकों के लिए यह अनुशासन स्थिर किया कि वे आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और परमपावन भक्ति-मार्ग को अंगीकृत करते हुए लोकोद्धार का कार्य करेंगे। इसके बाद उनसे शुद्धिपत्र लेकर तथा उपनयन-संस्कार कराकर वे चारों तीर्थाटन हेतु चल पड़े। अपने भाई-बहन को सुयोग्य जानकर श्री निवृत्तिनाथ ने उन्हें नाथ-सम्प्रदाय की विधिवत् दीक्षा दी और कालान्तर में वे सभी योग-मार्ग में परमसिद्ध हो गये।

तीर्थाटन में ही प्रवरा-तीर पर 'नेवासा' नामक स्थान पर म्हाळसादेवी के मन्दिर में श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने सद्गुरु और अग्रज श्री निवृत्तिनाथ की कृपा से मात्र १५ वर्ष की आयु में अपनी जगद्-विख्यात गीता-टीका 'ज्ञानेश्वरी' की रचना की। सन् १२९० ई० में यह अपूर्व ग्रन्थ पूर्ण हुआ। 'ज्ञानेश्वरी'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रचना के पश्चात् स्वसिद्धान्त-प्रतिपादनार्थ श्री गुरु की आज्ञा से इन्होंने 'अमृतानुभव' की रचना की। पण्ढरपुर के वैष्णव-भक्तों के साथ उत्तर भारत की यात्रा करते हुए इन्होंने सम्प्रदाय-संगठन द्वारा लोक-संग्रह का कार्य करते हुए अमृततुल्य 'हरिपाठ' और सहस्राधिक अभंगों (पदों) का सृजन किया। वस्तुतः सारे अभंग इनकी स्वानुभूति के रूप में इनके मुख से सहज स्फुरित हुए।

'ज्ञानेश्वरी' एवं 'अमृतानुभव' की रचना के पश्चात् ज्ञानेश्वर महाराज के योग तथा भक्तिमण्डित अलौकिक व्यक्तित्व की ख्याति चारों ओर फैल गयी। इनके समकालीन एक अत्यन्त सिद्धयोगी चांगदेव ने भी यह कीर्ति सुनी। परीक्षा हेतु उन्होंने एक कोरा कागज पत्ररूप में श्री निवृत्तिनाथ के पास भेजा। निवृत्तिनाथ ने पढ़कर उसे ज्ञानेश्वरजी को दिया और कहा कि इसका उत्तर चांगदेव को दे दो। तब ज्ञानेश्वर महाराज ने पैंसठ ओवियोंवाला एक पत्र चांगदेवजी को लिखा, जिसमें स्वसिद्धान्त-प्रतिपादन के साथ ही अहंकार-त्याग की बात बड़े प्रेम से समझायी गयी थी। उससे चांगदेव अत्यन्त प्रभावित हुए और प्रातःकाल चारों भाई-बहनों से मिलने अपने बाघ पर बैठकर आये। उस समय चारों भाई-बहन एक दीवार पर स्वानन्द में मग्न बैठे थे। अतः योगी की अगवानी के लिए वे उस दीवार को ही चलाकर उनकी सेवा में उपस्थित हुए। उनकी अद्भुत योगशक्ति से अभिभूत होकर चांगदेव गले मिले। उन्होंने नन्हीं मुक्ताई को अपना गुरु बनाया और इनके भक्तमण्डल में सम्मिलित हो गये। ज्ञानेश्वर महाराज की यह पत्ररूप रचना 'चांगदेव पासष्टी' के नाम से विख्यात हुई।

'ज्ञानेश्वरी' की रचना के बाद ज्ञानेश्वर महाराज ने भाई-बहन के साथ पण्ढरपुर जाकर विट्ठल भगवान् की भक्ति में निमग्न वैष्णव-भक्तों, विशेषकर नामदेव महाराज की सहायता से वारकरी-सम्प्रदाय के पुनर्गठन का और तदनुषंग से लोकसंग्रह का अद्वितीय कार्य किया। इन्होंने जो वैष्णव-समूह संगठित किया उसमें हर जाति, हर वर्ण के भक्त, महात्मा तथा सत्त्वशील जन सम्मिलित थे। सबके साथ इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा की और भक्ति-प्रेम का भरपूर प्रचार किया। आयु के पन्द्रहवें वर्ष से लेकर समाधि-ग्रहण अर्थात् बाईस वर्ष की अवस्था तक अर्थात् सात वर्ष की अवधि में ज्ञानेश्वर महाराज का देवदुर्लभ व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्पूर्ण वैष्णव-समुदाय के मानस पर छा गया। इनका नेतृत्व स्वीकार करते हुए सबने इन्हें वारकरी-सम्प्रदाय की 'माउली' अर्थात् माता का पद सहर्ष-सगर्व प्रदान किया। उन्हीं वर्षों में महाराज ने 'हरिपाठ' एवं अभंगों की रचना की, जिससे इनका कृष्ण-प्रेम और कृष्ण-भक्ति सहस्र रंग में रंजित हो लोकव्यापक हो गयी। परमोज्ज्वल रूप से प्रकट ज्ञानेश्वर महाराज के 'गौळणी' (गोपी-गीत), तथा 'विरहिणी' (गोपी-विरह) विषयक अभंग उनकी मधुराभक्ति एवं मराठी-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

केवल बाईस वर्ष की आयु में सन् १२९७ ई० में अपना अवतार-कार्य सम्पन्न करके इन्होंने अपने ननिहाल 'आळन्दी' में सद्गुरु तथा अग्रज श्री निवृत्तिनाथ की अनुमति प्राप्त कर भाई-बहन तथा वैष्णवों की उपस्थिति में जीवित समाधि ग्रहण की।

योग एवं भक्ति का अपूर्व संगम एवं उससे निःसृत अलौकिक प्रेम-भक्ति का दिग्दर्शन श्री ज्ञानेश्वर महाराज के व्यक्तित्व में होता है। नाथ-सम्प्रदाय से ही इनके हृदय में विट्ठल-भक्ति का संचार हुआ। ज्ञानेश्वरी में इनके कृष्ण कहते हैं—

"मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता, भानुबिम्ब में भी दृष्टिगत नहीं होता। मेरे दर्शन के लिए योगियों का मानस तत्पर रहता है। परन्तु वहाँ भी मैं प्राप्त नहीं। हे पाण्डव ! इस प्रकार खोया हुआ मैं अपनी नामधारा में तल्लीन भक्तों के यहाँ सहज रूप से पाया जाता हूँ।"

इन्होंने पण्ढरपुर के भक्ति-पन्थ का प्रवर्तन किया। इस पन्थ में पूर्ण रूप से समरस होकर इन्होंने नवीन भाव भरा, उसे अधिक गहन और व्यापक बनाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री ज्ञानेश्वर महाराज वारकरी-सम्प्रदाय के सर्वप्रथम आचार्य हैं। सम्प्रदाय-संगठन का इनका सर्वांगीण कार्य मुख्यतः चतुर्विध है—दार्शनिक आधार-प्रदायक सूक्ष्म तत्त्व-मीमांसा, आध्यात्मिक अनुभवों का मूल्यमापन, भक्ति की सर्वोत्कृष्टता का प्रतिपादन तथा लोक-जागृति के माध्यम से सम्प्रदाय की संगठना। सामाजिक उद्धार एवं आध्यात्मिक उन्नयन का यह असाधारण कार्य आपने केवल बाईस वर्ष की अवस्था में ही पूर्ण कर लिया। जन्मना ब्राह्मण, परन्तु स्वजाति-बहिष्कृत, वेद-वेदान्त-पारंगत विद्वान् श्री ज्ञानेश्वर में तत्कालीन ज्ञान-भक्ति-वंचित दुःखी जनता के लिए अपार करुणा थी। भगवद्गीता की इनकी मराठी टीका 'ज्ञानेश्वरी' उसी प्रेम के द्वारा प्रदत्त उत्कृष्ट वरदान थी। वेद-प्रतिपादित अध्यात्म-विद्या का मर्म महाराज ने 'ज्ञानेश्वरी' के माध्यम से जनसाधारण को समझाया। धार्मिक-आध्यात्मिक विषमता नष्ट होकर **'याच देहीं याच डोळा'** अर्थात् इसी देह, इन्हीं आँखों से नर से नारायण होने का अधिकार मनुष्यमात्र को है, उन्हें शान्ति और आनन्द प्राप्त हो, समस्त कर्तव्य-कर्म निष्काम ईश्वरार्पण-बुद्धि से हों—यही सच्ची भक्ति और सच्चा ज्ञान है, यह प्रतिपादन ही महाराज की ग्रन्थ-सम्पदा का प्रधान प्रयोजन है।

'ज्ञानेश्वरी' में ज्ञानेश्वर महाराज प्रतिपादन करते हैं कि परमात्मा प्रेमस्वरूप हैं। प्रेम द्वारा प्रेम को जानना स्वसंविति है, उस प्रेम का सामर्थ्य और शक्ति ही परमात्मा का मूलभूत स्वरूप है। चैतन्य के अन्तर्गत रहनेवाली इस सहज प्रीति का नाम ही सहज-भक्ति है, यही बात महाराज विविध प्रकार से कहते हैं। इसका युक्तिवाद 'अमृतानुभव' में है, कथा ज्ञानेश्वरी में है, अकृत्रिम भक्ति की अनुभूति 'हरिपाठ' में है, प्रेम के अन्तरंग स्वानुभव 'अभंगों' में हैं और गोपीभाव विरह-गीतों में है।

ज्ञानेश्वर महाराज अद्वैत-भक्ति के पुरस्कर्ता हैं। यहाँ अद्वैतानुभव से भक्ति का विरोध नहीं है, उलटे वह भक्ति-रस का पोषक है। वस्तुतः अद्वैतानुभव में ही भक्ति सम्भव है। महाराज ने 'अमृतानुभव' में एक दृष्टान्त देते हुए कहा है—

देव देऊळ परिवारू।
कीजे कोरुनि डोंगरू।
तैसा भक्तीचा वेव्हारू।
कां न व्हावा ?

(अमृतानुभव ९.४१)

'पर्वत खोदकर देवता, देवालय और परिवार का शिल्प बनाया जाता है। भक्त और भगवान् दोनों एक ही तत्त्व के बने होते हैं, वैसा ही भक्ति का व्यवहार भला क्यों नहीं हो सकता ?' अतएव अद्वैत-अनुभव के बाद द्वैत का अनुभव अर्थात् स्वयं को अलग करके उस स्वस्वरूप प्रभु का स्मरण और स्मरण की लीला यही ज्ञानोत्तर पंचम पुरुषार्थरूपा भक्ति है। इसका साधन स्मरण है। फल भी स्मरण ही है। बीज और फल दोनों हरि का नाम है। प्रेम-भक्ति इसीका परिपक्व रूप है। स्मरण, लगाव, विरह आदि उसीकी परिपक्व अवस्थाएँ हैं। यह अनुभूति निरन्तर ताजी है, नित्यनूतन, नित्य रंगीन है। न कभी बासी होती है, न फीकी। अनुभूति में विरह और विरह में अनुभूति इस प्रकार भक्त का विहार चलता रहता है। श्री ज्ञानेश्वर महाराज की 'विरहिणी' (गोपीविरह) में यही प्रेम-व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। उस विरह अर्थात् परमात्मा की भेंट से पूर्व की स्थिति में उसके मिलन का पुनः-पुनः अनुभव करना होता है। भक्त प्रेमोन्मत्त हो जाता है, यह स्वानुभूति कितनी हो की जाय, मन नहीं भरता। ये कहते हैं—

"जैसे सागर में ज्वार आ जाय वैसे ही मेरा मन उल्लसित हो उठा है। तेरी राह में कहाँ देखूँ ? तुझे कहाँ पाऊँ ? अपना आपा मुझसे सँभलता नहीं है। वस्तुतः ईंट पर खड़ा साँवला प्रभु ही परमात्म-प्रेम की मूर्ति है, उसीके लिए तो भक्त विरही बना है। इस प्रेमाभक्ति के अनुभव में ही मानव-जीवन की सफलता है। इसके बिना जीवन अधूरा है। 'तत्त्वमसि'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अनुभव अधूरा है, प्रेम-सुख अधूरा है। नाम और प्रेम से ही यह पूर्णता आ पाती है।"

ज्ञानेश्वर महाराज के अनुसार भक्त-हृदय के प्रेम का पोषण भगवान् ही करते हैं। माँ बच्चे का हठ पूरा करती है, प्रभु भक्तों की हर कामना परिपूर्ण करते हैं। वह भक्त की मार्गदर्शक मशाल स्वयं बनते हैं। उनकी भक्त के प्रति इतनी प्रियता है कि उसके लिए वह अपना निर्गुण रूप छोड़कर सगुण बन जाते हैं और वही सगुण रूप ईंट पर खड़ा श्री विठ्ठल-विग्रह है, चिन्मय-चिद्रूप, ज्योतियों की ज्योति है। प्रभु-प्रेम का जो बारंबार आस्वाद लेता है, वही वारकरी है। ज्ञानेश्वर महाराज इस प्रेमानुभूति में पूर्णतया निमज्जित हो जाते हैं। वे अपने मन की बात कहते हैं—

माझिया जीवीची आवडी।
पण्ढरपुरा नेइन गुडी॥
पाण्डुरंगी मन रंगले।
गोविन्दाचे गुणी वेधले॥

'यह मेरे मन की रुचि है। मेरी परमप्रिय अभिलाषा है कि मैं यह प्रेम-पताका पण्ढरपुर ले जाऊँगा। वहाँ मेरे प्रभु हैं, प्रियतम हैं, उनसे मिलूँगा, प्रेमानन्द में नाचूँगा। मेरा मन इस पाण्डुरंग में रँग गया है, गोविन्द के गुण से बिँध गया है।'

वस्तुतः ज्ञान आत्मसात् करके गोविन्दनाम, हरिगुण गाना यही जीवन की सफलता है, परम लक्ष्य है। ये स्वयं श्यामसुन्दर के प्रेम में इतने तन्मय हो गये कि इनकी अपनी कान्ति भी साँवली हो गयी। इनके अनुसार भक्ति-मार्ग सभी जीवों के परम कल्याण का मार्ग है और इसीलिए प्रत्येक जीव को अविलम्ब इसका आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

ज्ञानेश्वर महाराज ने अत्यन्त तन्मयता से, विस्तृत रूप में कृष्ण-लीला एवं कृष्ण-भक्ति का गायन किया है। श्रीकृष्ण का बालरूप, उनकी बाल-लीला, गोपिकाओं का उनके प्रति विशुद्ध प्रेम, यशोदा माँ से की गयी उनकी शिकायतें, गोपी-विरह, तालाबेली, श्रीकृष्ण-दर्शन की उत्कण्ठा, उनके मिलन से होनेवाला अद्वितीय आनन्द आदि सारे प्रसंग एवं उनका माधुर्य महाराज ने अत्यन्त प्रियता, कोमलता एवं भक्ति की उत्कटता के साथ वर्णित किया है। 'सौभाग्यसुन्दर लावण्यसागर' जो 'विठ्ठल' है उसे महाराज ने तरह-तरह से रिझाया है, उसके विरह में ये अत्यन्त व्याकुल हो उठे हैं।

श्रीकृष्ण के स्वरूप-माधुर्य, ध्यान और लीला का इन्होंने अत्यन्त आकर्षक चित्रण किया है। ये कहते हैं—

अनुपम्य मनोहर। कांसे पीतांबर।
चरणीं ब्रिदावा तोडर। देखिला देवो॥

(अभंग ११)

'प्रभु का रूप-माधुर्य अनुपम है, मनोहारी है। वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं। उनके सुकुमार चरणों में पड़ा हुआ तोडर मानों उनके अपने ब्रीदों का ही है, ऐसे प्रभु को मैंने देखा है।' यह मदनमूर्ति सम्पूर्ण विश्व में अलंकृत, शोभायमान हो गयी है। उसका लावण्य तो ऐसा है, प्रिय भी और प्रखर भी कि उस ओर देखा नहीं जाता। फिर—

अधरीचें अमृत। पिकलेसें ब्रह्मरसु।
तेणें जाला सौरसु। गोपीजनां गे माये॥

(अभंग १८)

'उनके अधरों का अमृत वैसा ही है, जैसे ब्रह्मरस ही परिपक्व हो उठा हो। और माई री! यह गोपियों के लिए परम सुरस, परम उत्साह का आनन्दमय प्रसंग बन गया है।' वह साँवली मूर्ति देखकर ज्ञानेश्वर महाराज का मन शान्त हो जाता है। वे कहते हैं—

नवल देखिलें कृष्णरूप बिंब।
सांवळी स्वयंभ मूर्ति हरिची।
मन निवालें समाधान झालें।
कृष्णरूप बोधलें मन माझें॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कृष्णरूप का यह बिम्ब, यह नूतन लावण्य—यह साँवली स्वयम्भू हरि की मूर्ति मैंने देखी। उससे मेरा मन शान्त हो गया, समाधान से, सन्तोष से मेरा मन भर गया। इस कृष्णरूप से मेरे मन को बोधन और आराधन दोनों मिले।' अलंकारों से उनकी शोभा अवश्य बढ़ती है, परन्तु उनके हास्य से तो त्रिभुवन प्रकाशित हो जाता है। उनके अलौकिक अलंकृत रूप को देखकर योगेश्वर भी आत्मविभोर हो जाते हैं'—

कोवळे ठुसीठुसित मोतियांचे घड।
शृंगारिले गूढ जया लेणी॥
बैसोनिया रथीं सुरनर खेळती।
देखोनिया पशुपती वेडावला॥

'प्रभु ने कोमल, सुगठित, भरे-भरे मोतियों के घड़ ही जैसे धारण किये हों—इस परम सुन्दर रहस्यमय गहनों से उनका शृंगार हुआ है। देवता रथ में बैठकर क्रीड़ा-किलोल कर रहे हैं, यह देखकर भगवान् शंकर भी मुग्ध हो गये हैं।'

श्रीकृष्ण को अपना पति तथा प्रेमी मानकर उन्हें संबोधित करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज अपूर्व सुख पाते हैं। इस प्रेमी से बात हो, उसका सहवास प्राप्त हो, उससे अंग-संग हो, उसका आलिंगन-सुख मिले, इसीके लिए भक्त का सारा प्रयत्न है। ये उनकी दासी बनकर रहने में परम हर्षित हैं—

पांचा दमांचा घोंगडा नेसेन।
उरली मोट ते मी जेवीन गे बाईये॥ १॥
कामारी कामारी कामारी होऊन।
या गोपाळाचें घर रिघेन गे बाईये॥ २॥
त्याचा उंबरा उसिसा करीन।
वरी येरझार मी सारीन गे बाईये॥ ३॥
निवृत्ति ज्ञानदेवा पुसतील वर्म।
त्यासी कामीन पुरेन गे बाईये॥ ४॥

(अभंग ८८०)

'बाई री! पाँच दमड़ी भी जिसकी कीमत नहीं है, ऐसा मोटा-झोटा वस्त्र मैं पहनूँगी। श्रीहरि की जो कुछ जूठन बच रहेगी वही खाकर दिन काट लूँगी। श्रीहरि की दासी की भी मैं दासी बनूँगी। उनकी प्राप्ति के लिए उनके घर में आश्रय लूँगी। मैं उनके द्वार की देहरी का सिरहाना बनाकर पड़ी रहा करूँगी, यह करने से मेरा जन्म-मरण का फेरा टूट जायगा। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, यह रहस्य अगर श्री गुरु निवृत्तिनाथ मुझसे पूछेंगे तो मैं भी उनकी कृपा से श्रीकृष्ण की दासी होकर उत्तर देने की इच्छा पूरी करूँगा।'

श्रीकृष्ण-मिलन की आतुरता, तद्हेतु विकलता क्षण-क्षण बढ़ती जाती है। प्रभु के सगुण रूप में इनका मन लुब्ध हो गया है—

तुजवीण वेल्हाळा कै सुखसोहळा।
रखुमादेवीवरा विठ्ठल सेजे नलगे डोळा॥

'हे प्रियतम! सुलक्षण लावण्य-सागर, हे लाड़ले! अब तुम्हारे बिना कैसा सुख? कैसा सुख-महोत्सव? तुम्हारे बिना शय्या पर आँख तनिक भी नहीं लगती, हे रुक्मिणीदेवीवर विठ्ठल!' प्रभु से भेंट के बिना मन बेचैन हो जाता है, शरीर की अग्नि बढ़ने लगती है, चित्त बावला हो जाता है। कृष्ण ही की लगन होने से मन में, ध्यान में, स्वप्न में उसीका रूप दृष्टिगोचर होता है, और कब उससे मिलन होगा, यही एक विचार बच रहता है। इस बलवत्तर इच्छा के कारण देह, मन, वाणी सब कुछ कृष्णरूप में विलीन हो जाते हैं। श्रीकृष्ण-प्राप्ति के लिए सगे-सम्बन्धियों का त्याग किया, परन्तु उससे भेंट नहीं हुई—

भेटवा वो त्यासी चरण झाडीन केशीं।
सगुणरूपासी मी वो भाळलिये॥
क्षेमालागीं जीऊ उतावेळ माझा।
उचलोनी चारी भुजा देईन क्षेम॥

'हे लोगो! कोई उसकी-मेरी मिलन-घड़ी ला दे, उससे भेंट करवा दे तो मैं उसके चरण अपने बालों से झाड़ूँगी, पोंछ दूँगी। उसके सगुण रूप पर मैं अन्तर्मन से रीझ गयी हूँ। उसे आलिंगन देने के लिए मेरा मन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याकुल हो उठा है। उसकी चारों भुजाओं में समाकर मैं उसे क्षेम दूँगी। माई री! यह गोपाल भला क्यों रूठ गया है मुझसे? सुख-दुःख की चार बातें भी वह मुझसे नहीं कर रहा है।'

इसी मनःस्थिति में भक्त की विरहाग्नि बढ़ती ही जाती है। आँखों में नींद नहीं, ओंठों में रात-दिन प्रार्थना-स्वर, यही उसकी जीवन-चर्या बन गयी है। यह असह्य कष्ट वह हर तरह से प्रभु के प्रति निवेदित करती रहती है कि मैं तुमसे दूर इस परदेश में पड़ी हूँ, रात-दिन तेरा ही स्मरण है। यह वियोग बड़ा ही कष्टदायक है। एक अन्य अभंग में ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं—

तुजवीण येकलो रे कृष्णा न गमे राती।
तंव तुवां नवल केलें वेणु घेउनी हातीं ॥ १ ॥
आलिये तेचि सोय तुझी वोळखिली गती ॥ २ ॥
नवल हे वाल भरे कैसें जोडलें जिवा।
दुसरें दुरी ठेलें प्रीति केला रिघावा ॥
पाऊ रे पाऊ रे कान्हा म्हणें करिसी अव्हेरु।
तूं तंव हृदयींचा होसी चैतन्य चोरू ॥
बाप रखुमादेवीवरा विठो करी कां अंगिकारू ॥ ३ ॥

'हे कृष्ण! तुम्हारे सिवा मुझ अकेली को रात में चैन ही नहीं आता। तुमने भी कैसा चमत्कार किया कि हाथ में मुरली लेकर बजाने लगे। ऐसे में जो कोई घर-द्वार, प्रपंच-संसार छोड़कर तुम्हारी ओर दौड़ी चली आयीं, उन्होंने ही तुम्हारी प्रीति का मूल्य सच्चे रूप में आँका। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि घर-बार, बाल-बच्चों को छोड़कर उन्होंने तेरी प्रीति पा ली। अब दूर हो जाओ, परे हो जाओ—ऐसा अपमान हमारा तुम कभी करोगे नहीं, क्योंकि तुम्हीं अन्तःकरण के चैतन्य को चुराकर ले जानेवाले चोर हो। हे रखुमाई (रुक्मिणी) के पति, हे पिता, विट्ठल, तू हमें अंगीकार कर, हमें स्वीकार कर।'

अन्ततः कृष्ण-मिलन होता है। वियोग दूर हो जाता है, दुःख समाप्त हो जाता है। भक्त प्रभु के कृपामृत से नहा उठता है। उसकी सारी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, इच्छाएँ पूरी होती हैं। ऐक्य का साक्षात्कार होने से वह कृष्णरूप ही बन जाती हैं। प्रभु-मिलन का यह वर्णन अनेक प्रकार से ज्ञानेश्वर महाराज करते हैं। एक स्थान पर ये कहते हैं—

बावनाचे संगती द्रुमभावें रातलें।
सेखीं आपुलिया मुकलें जाती कुळा ॥ १ ॥
लोहाचे सायास परिसेंसी फिटले।
तैसें मज केलें गोवळचाने ॥ २ ॥
मेघजळ वोळे मिळे सिंधुचिया जळा।
तैसा नव्हे तो वेगळा एक होउनि ठेला ॥ ३ ॥
बाप रखुमादेवीवरु विठ्ठली नुरेचि कांहीं।
उत्तम मध्यम ठायी व्यापूनि असे ॥ ४ ॥

'सर्वोत्तम के बावन स्वरूप के साथ मैं वृक्षभाव से रममाण हुई, परन्तु परिणाम यह हुआ कि मैं अपने जाति-कुल से छूट गयी और मैं उसके स्वरूप से एकाकार हो गयी। लोहे की हीनता पारस के स्पर्श से दूर हो जाती है वैसे ही इस गोपाल ने मेरा जीवभाव कम करके मुझे स्वस्वरूप में मिला लिया। मेघों से जल-वर्षा होती है और वही जल सागर में जाकर मिल जाता है, उसी प्रकार मेरी और प्रभु की वृत्ति में कोई अन्तर नहीं रहा। हम एकरूप हो गये। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, रखुमाई (रुक्मिणी) के पति विट्ठल के पास किसी प्रकार का कोई भेद नहीं बचता। उत्तम, मध्यम सभी स्थानों में वही व्याप्त है, अतः भेद कहाँ से होगा?'

इन्होंने कई अभंगों में परकीया प्रेम का भी वर्णन किया है। एक गोपी-गीत में ये कहते हैं—

यातिकुळ माझें गेलें हारपोनी।
श्रीरंगावांचुनी आतु नेणें ॥ १ ॥
किती वो शिकवाल मज वेळोवेळां।
मी तंव गोवळा रातलिये ॥ २ ॥
अष्टभोग भोगिता मातें नाहीं चाड।
भक्तिप्रेम गोड लेईलें ते माय ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

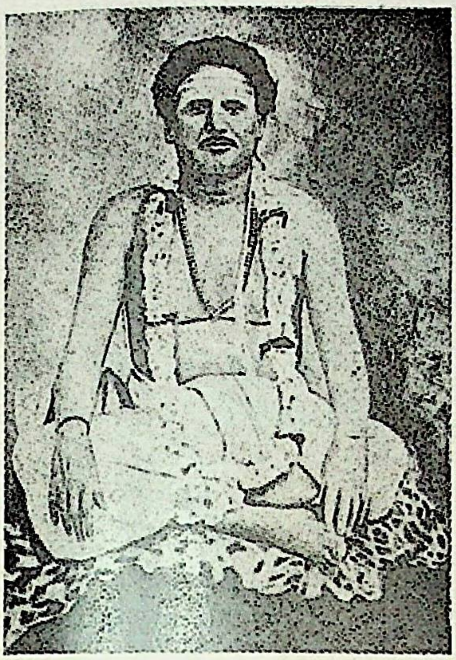

श्री जोगविष्णु बोवा, पृ० २०९

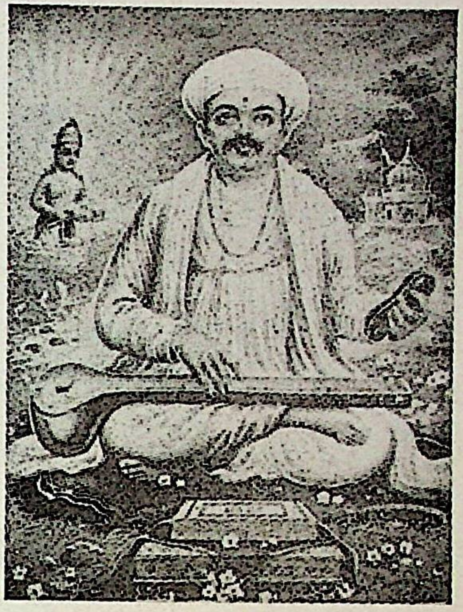

संत तुकाराम, पृ० २१८

संत नामदेव, पृ० २२९

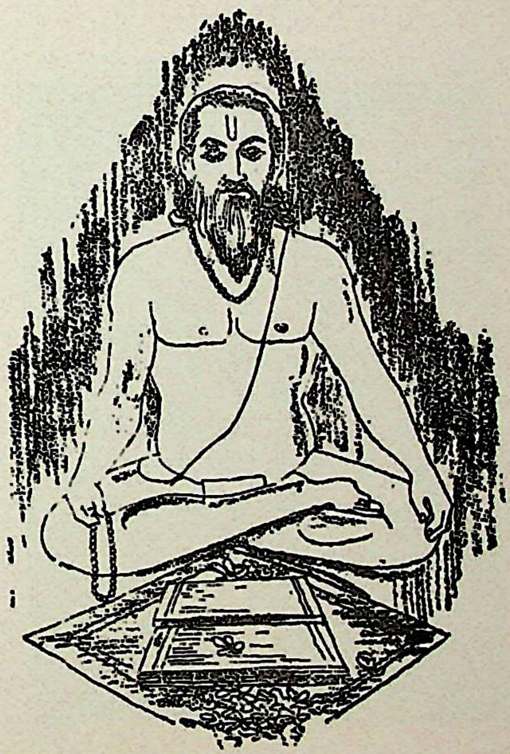

संत नामदेव : घुमान में स्थापित शिलामूर्ति पृ० २३२

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

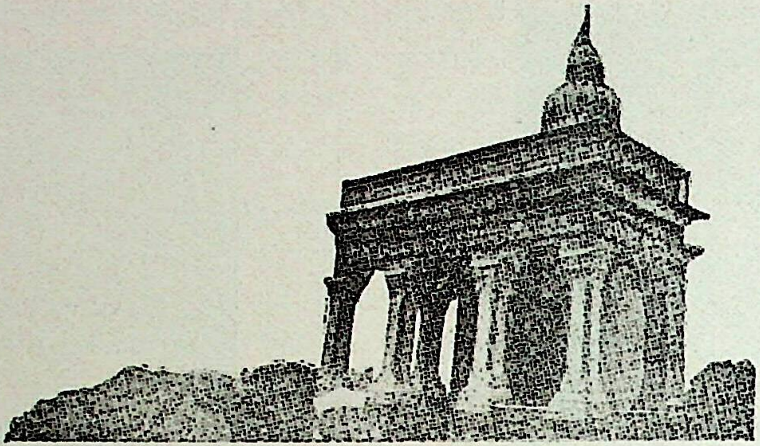

सत नामदेव का मन्दिर : पंढरपुर, पृ० २३२

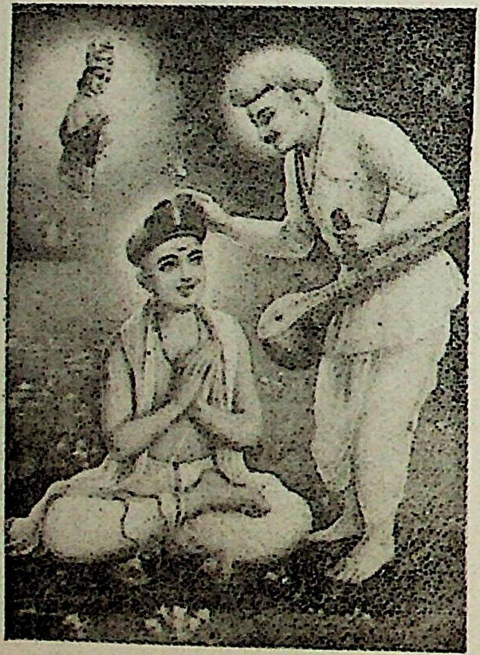

निलोबा महाराज, पृ० २४३

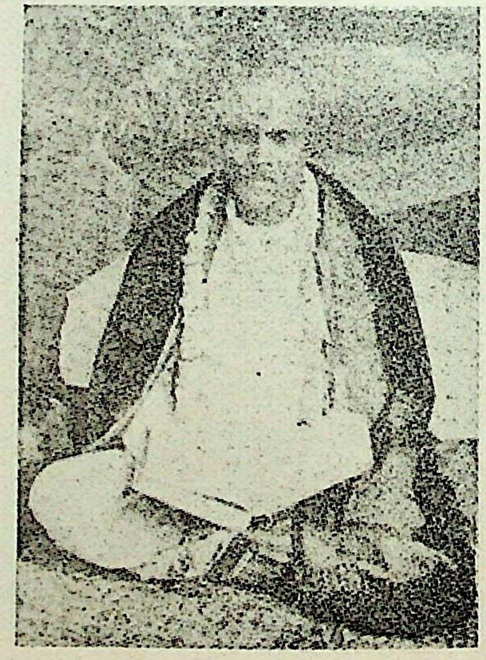

बाबाजी महाराज पंडित, पृ० २५६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

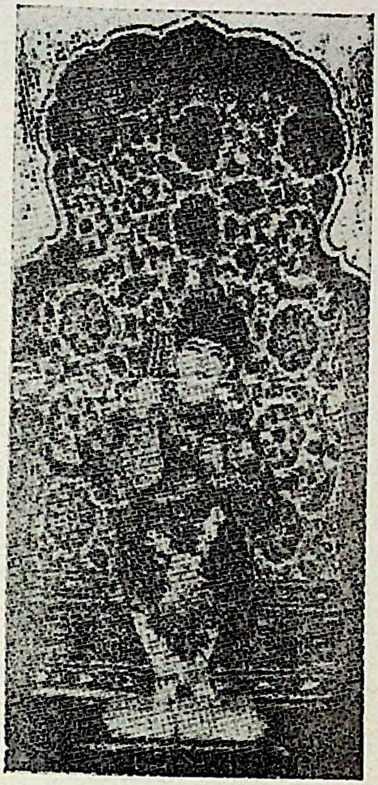

संत नामदेव की मूर्ति : पंढरपुर, पृ० २२३

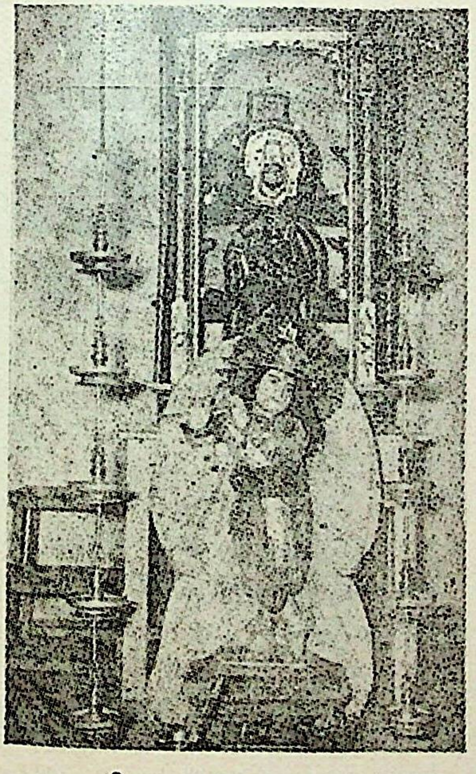

श्री रमावल्लभदास, पृ० २७५

श्री विष्णुदास माहुरकर, पृ० २८३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

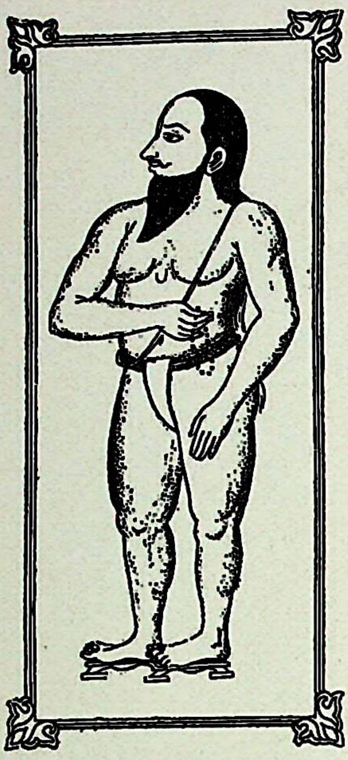

समर्थ रामदास स्वामी, पृ० २८७

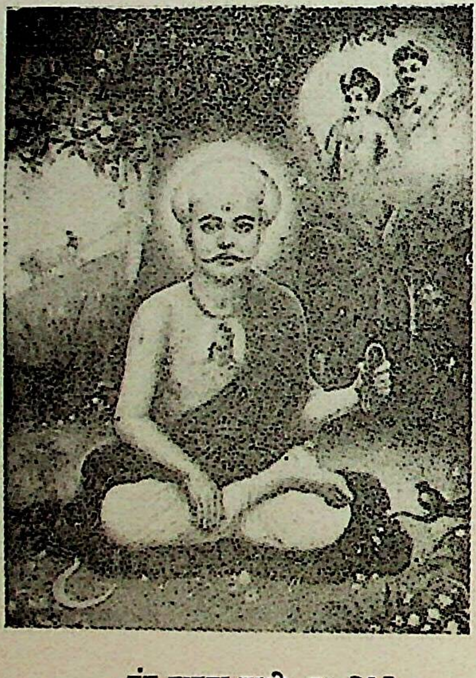

संत सावता माली, पृ० २९२

दादा महाराज सातारकर, पृ० २९३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'श्रीकृष्ण प्रभु से रममाण होने के कारण मेरा जाति-कुल मुझसे छूट गया है। अब श्रीरंग के सिवा दूसरा कुछ भी मैं नहीं जानती। अरी सखियो! मुझे बारंबार कितना सिखाओगी? मैं उस गोपाल पर रीझ गयी हूँ, उसे मैंने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है। अब अष्टभोग भोगने की इच्छा नहीं है मुझमें। मैंने श्रीकृष्ण-प्रीति का सुन्दर गहना पहन लिया है। माई री! अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।'

ज्ञानेश्वर महाराज के अभंगों में शुद्धता, सहजता और आत्मिक तेजस्विता है। ज्ञान और वैराग्य के अत्यन्त उच्च आसन पर विराजमान होने से इनकी मधुरा भक्ति परम अर्थवान्, परम शोभायमान है। ज्ञानेश्वर महाराज सदृश योगी भक्त की रचना में इसीलिए कृष्ण-भक्ति का मानक एवं आदर्श रूप प्राप्त होता है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

ज्योतिपन्त दादा महाभागवत

ज्योतिपन्त सतारा जिले के खटाव गाँव के रहनेवाले थे। ये अथर्ववेदी ब्राह्मण थे। इनका शुभनाम आळवणे था। इनके पूर्वज गंगभट आदिलशाही में बादशाह के मन्त्री थे। खटाव प्रान्त के १०५ गाँवों की देशपाण्डे-वृत्ति उन्हें मिली थी। इसी कुल में गोपाळपन्त को सन् १७१६ ई० में ज्योतिपन्त पुत्ररूप से प्राप्त हुआ। गंगभट का पुत्र गोपाळपन्त विटे नामक गाँव में स्थायिक हुआ। उसकी पाठशाला में अनेक विद्यार्थी पढ़ते थे। बचपन में ज्योति का ध्यान विद्यार्जन में नहीं था। अतः गोपाळपन्त ने उसे घर से बाहर निकाल दिया। तदनन्तर दुःखी होकर ज्योतिपन्त विद्यार्जन करने लगा। पुणे में ज्योतिपन्त के मामा महिपतराव थे। वे पेशवा के दफ्तरदार थे। उनके प्रयास से ज्योतिपन्त सरकार का काम देखने लगे।

एक समय पेशवा के दफ्तर में बहुत भूल हो गयी। तीन दिन की अवधि में ज्योतिपन्त ने रात-दिन प्रयत्न करके सारा कार्य पूर्ण किया। इनका अक्षर सुन्दर था। पेशवा इनके काम पर सन्तुष्ट हुआ। पेशवा की कृपा से ज्योतिपन्त पुरन्दर के फडनवीस हुए। पेशवा की आज्ञा से ये उत्तर भारत में गये। यह समय अब्दाली के प्रभाव का था। वहाँ से ज्योतिपन्त ने पुणे के जनार्दनपन्त एरण्डे को पत्र लिखे। राजकाज में ये निपुण बन गये। सन् १७६० ई० के समय अब्दाली के अन्तर्वेदी पर सत्ता स्थापित करने के बाद ज्योतिपन्त वाराणसी में रहने लगे।

काशी में एक समय ज्योतिपन्तजी ने पुरश्चरण किया। इनकी वृत्ति में स्थित्यन्तर हुआ। इन्होंने कलम और खड्ग का त्याग कर दिया। इनकी दृष्टि अध्यात्म पर लगी। इन्होंने सत्ता-त्याग किया। ये देवधर्म करने लगे। काशी में छः मास पर्यन्त ये गंगा में खड़े होकर इन्होंने गायत्री-पुरश्चरण किया। इसी समय इनको परमात्मा का साक्षात्कार हुआ। प्रत्यक्ष व्यासजी ने इनको द्वादशाक्षरी मन्त्रोपदेश किया। अठारह दिनों में इन्होंने अठारह सहस्र भागवत-संहिता पढ़कर पूर्ण की। काशी-निवासी लोग इन्हें महाभागवत कहने लगे। रामनगर में ज्योतिपन्त ने व्यास, शुक्राचार्य की मूर्तियों की स्थापना की।

तत्पश्चात् ज्योतिपन्त दादा महाराष्ट्र में पण्ढरपुर आये। भजन-कीर्तन में इनकी रुचि बढ़ गयी। एक दिन कीर्तन में विट्ठल के १५०० मन्दिर बनवाने की इन्होंने प्रतिज्ञा की। पूरे महाराष्ट्र में इन्होंने कीर्तन द्वारा विट्ठल-भक्ति का प्रचार किया। निरानरसिंगपुर, फलटण, पुणे, वाई, ससतारा, माहुली, डँब्रज, चरेगाँव, कराड, पाटण, कोल्हापुर, बेळगाँव, सावन्तवाडी, रत्नागिरि, मुम्बई आदि स्थानों का प्रवास उन्होंने किया। लगभग ७५० विठ्ठल-मन्दिर ज्योतिपन्त ने बनवाये। ठाणे, वसई, कल्याण, तळेगाँव, नासिक, त्र्यम्बकेश्वर, येवले, बालापुर, नागपुर आदि नगरों में इन्होंने कीर्तन-सेवा प्रेमभाव से की। नागपुर में एक विट्ठल-मन्दिर साकार किया। अनेक 'भागवत-सप्ताह' किये। उज्जयिनी में इन्होंने एक विट्ठल-मन्दिर का निर्माण किया। हैदराबाद के निजाम ने ज्योतिपन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दादा का सत्कार किया। सन् १७८८ ई० में ज्येष्ठ मास में ज्योतिपन्त ने कोल्हापुर के अम्बाबाई-मन्दिर में श्रीमद्भागवत का पारायण किया। तदनन्तर ये सातारा के पास चिंचणेर आये। इसी गाँव में इनका देहान्त हुआ।

ज्योतिपन्त ने 'प्रवृत्ति-निवृत्ति-रत्नावलि' नाम का एक गद्य-निबन्ध लिखा है। भागवत के एकादश स्कन्ध पर इन्होंने १४६६ अभंग रचे हैं। भागवत पर इनकी ओवीबद्ध टीका भी उपलब्ध है। प्रथम स्कन्ध (५४५४ ओवी-संख्या), द्वितीय स्कन्ध (८१०४ ओवी-संख्या), 'वेदस्तुति' पर टीका (१४७२ ओवी-संख्या) आदि ग्रन्थ इनके नाम पर प्राप्त हुए हैं। सतारा जिले में रहिमतपुर गाँव में ज्योतिपन्त दादा का मठ है। गोमन्तक-सावन्तवाडी क्षेत्र में इनका अधिक प्रभाव था। खण्डोपन्त नाम का एक लेखक ज्योतिपन्त की कविता लिखकर अमर करता था।

प्र० न० जो०

तुकाराम

तुकाराम का आविर्भाव एकनाथ महाराज के समाधिलीन होने के नौ वर्ष पश्चात् सन् १६०८ ई० में हुआ था। वारकरी-सम्प्रदाय के उन्नयन का यह स्वर्ण-युग था। इसी समय सम्प्रदाय का सम्पूर्ण स्वरूप, कार्य, उद्देश्य, उपलब्धियाँ एवं दर्शन पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ। इनकी भक्ति-साधना में वारकरी-सम्प्रदाय की पूर्ण विकसित भक्ति-पद्धति के दर्शन होते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की दार्शनिकता, नामदेव महाराज की भक्ति एवं एकनाथ महाराज का लोकसंग्रह तुकाराम महाराज ने पूर्णरूपेण आत्मसात् कर लिया था। विपुल साहित्य-प्रणयन द्वारा एकनाथ महाराज ने वारकरी भक्ति-सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाकर लोकसंग्रह का जो अपूर्व अभियान आरम्भ किया था, उसकी पूर्णता तुकाराम महाराज ने ही सम्पन्न की। अपनी करुणा, भक्ति, प्रेम और लोकाराधना के बल पर ये सर्वसामान्य जन के अपने बन गये। इनके अभंग (पद) निपट अशिक्षित देहाती के हृदय में प्रवेश कर वहाँ विट्ठल-प्रेम, सदाचार और वारकरी भक्ति का स्थान अटल बनाने लगे। समस्त वारकरी भक्ति-सिद्धान्तों को अपने व्यक्तित्व की कोमलता, तेजस्विता, समर्पण-वृत्ति तथा समाज-सेवा की लगन से इन्होंने नूतन संस्कार तथा तेज देकर जन-सामान्य को अध्यात्म-पथ पर अग्रसर करने का महान् कार्य सम्पन्न किया। इसीलिए ये यथार्थ रूप में वारकरी-सम्प्रदाय के कलश बनकर प्रतिष्ठित हुए एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रख्यात भी।

आपका जन्म सन् १६०८ ई० में पुणे के निकट इन्द्रायणी नदी के तीर पर देहू नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम बोल्होबा एवं माता का नाम कनकाई था। इनका कुल अत्यन्त पवित्र था। इनसे पूर्व की आठवीं पीढ़ी में विश्वम्भरबुआ विट्ठल भगवान् के उपासक थे। उन्होंने देहू में विट्ठल-मूर्ति की प्रतिष्ठापना की थी। उनके घर पण्ढरी की वारी थी और सम्पूर्ण वंश मद्य-मांसनिवृत्त था। यह वंश बहुत सम्पन्न था। ये जाति के कुनबी थे। घर में साहूकारी थी, किराने का व्यवसाय था और देहूग्राम की महाजनी भी इनके पास थी। ऐसे शुचि और श्रीमन्त घराने में तुकाराम महाराज का जन्म हुआ, जो इनके भावी जीवन के महान् कार्यों के लिए एक तरह से आधारशिला-सदृश था। घर की सम्पन्नता के कारण तुकोबा का बचपन सुखमय था। घर में धार्मिक उत्सव, कथा-कीर्तन, कुल-कुलाचार की समृद्ध परम्परा थी। तत्कालीन रीति के अनुसार इनका विवाह तेरह वर्ष की आयु में हुआ, परन्तु प्रथम पत्नी के दमा से पीड़ित होने के कारण इनका दूसरा विवाह करवाया गया। पिता वृद्ध हुए। अग्रज सावजी विरक्त होने के कारण घर छोड़कर चले गये। अतएव दूसरे पुत्र तुकारामजी ने ही घर-प्रपंच, साहूकारी और महाजनी का काम सँभाला। परन्तु नियति का विधान कुछ और था। थोड़े से सुख के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिन बीतने के बाद दैवगति पलट गयी और इन पर दुःखों के पहाड़ टूटने लगे। माता-पिता की मृत्यु, भावज का देहावसान और भयानक अकाल! सन् १६२८-२९ ई० में महाराष्ट्र में भयानक सूखा पड़ा और जन-हानि, वित्त-हानि अभूतपूर्व मात्रा में हुई। असंख्य मनुष्य और पशु अन्न-जल के बिना तड़प-तड़पकर मर गये। इन आपत्तियों से तुकाराम महाराज के सारे सुख-स्वप्न चकनाचूर हो गये। प्रथम पत्नी और पुत्र अन्न-अन्न करते हुए चल बसे। साहूकारी डूब गयी और दीवाला निकल गया। मानव-जीवन की यह परावलम्बिता और क्षणभंगुरता देखकर इनका मन संसार से उठ गया। अप्रत्याशित आपत्तियों से उद्भूत यह वैराग्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। सांसारिक जीवन की ओर से इन्होंने मुख फेर लिया और फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अन्ततोगत्वा सारी लोक-लाज छोड़कर ये सर्वतोभावेन भगवान् की शरण में चले गये। पत्नी-पुत्रों की उपेक्षा की। घर के मन्दिर का जीर्णोद्धार स्वहस्तों से करके उसे विट्ठल-मन्दिर बनाया और उसीमें अपनी साधना प्रारम्भ की। एकादशी का व्रत एवं जागरण करने लगे। इनकी एकान्तवासप्रियता दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगी। निकटस्थ भामनाथ पर्वत पर एकान्त स्थान चुनकर वहीं अध्ययन-मनन में अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। इन्होंने वहाँ ज्ञानेश्वरी, नाथभागवत, नामदेव-गाथा, कबीर-भजनावली आदि का गहन अध्ययन किया। नामदेव महाराज के सहज-सुबोध अभंगों से परमार्थ-साधना की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते ये स्वाध्याय और भक्ति-निष्ठा के बल पर सिद्धि के अत्युच्च शिखर पर पहुँच गये। इन्होंन मूल संस्कृत-ग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया फिर भी आत्मपरीक्षण और भक्ति-साधना को ही ये प्राथमिकता देते रहे। ग्रन्थ-वाचन, मनन, चिन्तन, ध्यान, धारणा और पल-पल प्रभु-स्मरण, भगवद्-आसक्ति में जीना—यही इनका जीवनक्रम बन गया था। एकान्तवास में इनके लिए जन-विजन सब समान हो गये। जब भूख लगी वृक्ष-पत्र खा लिये, वल्कल पहन लिये। देहभान चला गया, मान-सम्मान त्याग दिया। बस, एकमात्र विट्ठलमयता, विट्ठलभाव ही बना रहा। भक्ति-मार्ग के राही बनने के बाद इन्होंने सर्वप्रथम जो बात की वह यही कि साहूकारी के व्यवसाय के अपने हिस्से के ऋण, चिट्ठे और गिरवी-पत्र इन्द्रायणी नदी में डुबो दिये। बचे हुए आधे इन्होंने अपने छोटे भाई को दे दिये। शारीरिक कष्ट सहकर परोपकार करने लगे। अणु-रेणु से भी नन्हें जीवों की अपने द्वारा हिंसा न हो यह ध्यान रखने लगे। इस प्रकार इनका जीवन आमूल बदल गया।

जीवन के उत्तरार्ध में रची गयी कृतियों में इन्होंने सामाजिक दोषों पर, दम्भ पर, ढोंग पर, सात्त्विक सन्तापवश कशाघात किये हैं। भक्तियोग के प्रसार के समान ही समाज-शुद्धि का काम भी इन्होंने महत्त्वपूर्ण माना था, परन्तु सिद्धावस्था में यह कार्य करने से पूर्व साधनावस्था में आत्म-शुद्धि हेतु स्वदोष-निवारणार्थ इन्होंने सतत अत्यन्त कठोर आत्मनिरीक्षण किया। इतना ही नहीं, सन्त के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने के बाद भी इन्होंने अपने ऊपर से यह आत्मारोपित पहरा क्षणमात्र के लिए नहीं हटाया। लोग क्या कहेंगे, यह भय त्यागकर इन्होंने ईमानदारी से और प्रकट रूप से भगवान् के समक्ष अपने दोषों का विवरण दिया है और उनके निराकरण के लिए सहायता की प्रार्थना की है। इनका जीवन अत्यन्त संघर्षमय था। बाह्य जीवन में शूद्र होने के कारण तिरस्कार, सांसारिक आपदाएँ, कुटुम्बियों की ऐहिक लालसा, ग्राम-परिवेश में द्वेषादि-प्रसंग, ब्राह्मणों का विरोध और अन्तर्जीवन में प्रभु-प्राप्ति के लिए अनवरत तड़पन, तालावेली, करुणा और विरह की विषम परिस्थितियों को अत्यधिक भगवद्‌निष्ठा और भगवत्प्रेम के बल पर झेलते हुए ये सिद्ध भक्त बन गये। भक्ति द्वारा आत्मोद्धार के पश्चात् ये लोकसंग्रह के लिए अग्रसर हुए। इन्होंने भगवान् के सन्देशवाहक की भूमिका मे नामस्मरण, कीतन, स संग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सर्वतोपरि भगवत्प्रेम की उत्कण्ठा और प्रियता जन-जन में उत्पन्न करने का अनूठा कार्य किया। धर्मरक्षण के लिए इन्होंने जो अभूतपूर्व आन्दोलन खड़ा किया उसका जनता के ऐहिक, पारमार्थिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अभंगों द्वारा जन-जीवन में इस प्रकार घुल-मिल जानेवाला यह दुर्लभ व्यक्तित्व आयु के ४१वें वर्ष में सन् १६४९ ई० में कीर्तन करते हुए कायासहित लुप्त हो गया। अपने जीवन-काल में ही इन्होंने देहभाव को चिताग्नि देकर मरण-महोत्सव मना लिया था और जीवन्मुक्त हो गये थे।

श्री तुकाराम महाराज का कवित्व परमात्म-स्पर्श-प्राप्त है। 'सार्थ तुकाराम-गाथा' छियालीस सौ सात अभंगों (पदों) की पुनीत भक्ति-गंगा है। इनके अभंग स्वानुभूतिप्रधान होते हुए भी सम्प्रदाय के विचारों का सटीक दिग्दर्शन कराते हैं। पूर्ववर्ती सन्तों की ही बात अपने शब्दों में कहते हुए ये मर्मस्पर्शी प्रतीत हुए, कारण कि इनकी वैखरी स्वानुभूति, प्रेम, विवेक, वैराग्य से सिद्ध पराभक्ति की उद्गार-वाणी है। वारकरी भक्ति का निष्पन्न रूप सन्तानभावापन्न भक्ति अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में इनके शब्दों में प्रकट हुई। 'विठाई' के इस लाड़ले शिशु ने ऐसे प्रेमभक्ति-परक अभंग गाये जो जन-जन के कण्ठहार बन गये। आत्मानुभूति एवं लोकानुभूति दोनों रूपों में श्री तुकाराम महाराज ने अलौकिक अभंग-रचना की है जो मराठी-साहित्य में श्री ज्ञानेश्वर महाराज की काव्य-रचना के समकक्ष मानी जाती है।

इनके काव्य-गुरु थे नामदेव महाराज, जिन्होंने स्वप्न में आकर इन्हें काव्यसृजन का आदेश दिया था। इनके परमार्थ गुरु थे बाबाजी चैतन्य नामक सत्पुरुष, जो नामदेव महाराज की भाँति ही इनके समकालीन नहीं थे। उन्होंने भी इन्हें स्वप्न-साक्षात्कार में ही गुरु-उपदेश दिया था।

तुकाराम महाराज की अभंग-रचना विविध प्रकार की है, जैसे—आत्मचरित्रपरक भगवान् का सगुणरूप, नाम, एकविधता, प्रभु से निकटता, विरह प्रेम-कलह, श्रीकृष्ण-चरित, श्रीकृष्ण-लीला, गोपी-गीत, विरह-गीत, धर्म के नाम पर दम्भाचार करनेवाले संन्यासी, ब्रह्मचारी, महानुभाव, शाक्त आदि वेषधारियों की आलोचना, शिवाजी महाराजजी से भेंट, काव्य की बहियाँ इन्द्रायणी नदी में डुबोने का प्रसंग, सामान्य जनता के जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर हास्य-विनोदमिश्रित व्यंग्यादि।

श्री तुकाराम महाराज के इष्टदेव हैं श्री विट्ठल अर्थात् श्रीकृष्ण। आराध्य के स्वरूप, लीला और अपनी भक्ति-भावना का निरूपण इन्होंने अत्यंत प्रासादिक वाणी द्वारा विविध प्रकार से किया है। भक्ति-साधना के अन्तर्गत सन्तानभावापन्न भक्तिभाव और प्रेम-कलह में इनके कवित्व का सर्वोत्कृष्ट अंश समाहित है। इसके साथ ही इन्होंने लगभग चार सौ अभंगों में श्रीकृष्ण-चरित्र के विविध प्रसंगों का सुन्दर वर्णन किया है। उनमें बाल-क्रीड़ा, गोपी-गीत, काला (वन-विहार), राधा-प्रीति, रास-क्रीड़ा, माखन-चोरी आदि प्रसंगों के मनोरम रंगदृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। कृष्णरूप-वर्णन, गोपी-गीत, राधा-प्रसंग और साँवला ब्रह्म इनके बड़े ही प्रिय विषय हैं।

श्री तुकाराम महाराज द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-लीला आत्मानुभूतिपरक भी है। गोप-गोपिकाओं आदि के रूप में वह स्वयं की कल्पना करके श्रीकृष्ण-भक्ति का रसास्वादन करते हैं। कथासूत्रात्मक वर्णना भी सौ से अधिक अभंगों में पायी जाती है। श्रीकृष्ण-रूप-वर्णन में स्वानुभूति और परानुभूति दोनों का योग है।

श्री तुकाराम महाराज की राधा-कृष्ण-भक्ति अत्यन्त उच्चस्तरीय सिद्ध-भक्ति का उदाहरण है। राधा का चित्रण भक्ति के परमादर्श के रूप में किया गया है। इनके गोप, गोपिका, गोकुल सभी उत्कृष्ट प्रेम-भक्ति के घटक हैं। स्वानुभूति में मधुरा-भक्ति के अन्तर्गत वे स्वयं ही विरहिणी बनकर परकीयाभावापन्न होकर परात्परब्रह्म कृष्ण से वियुक्त होने की असह्य वेदना का अनुभव करते हैं और स्पष्ट रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घोषित करते हैं कि हमने साँवले परब्रह्म का वरण किया है, अब पीछे मुड़कर संसार की ओर देखेंगे भी नहीं। इन लोगों से मैं कहता हूँ किन्तु ये मेरी बात का विश्वास नहीं करते। परन्तु यह सच है कि **'म्हणें जालों तुका हरिरता'**—'मैं हरिरत हो गया हूँ।' और अब **'हांसो, रुसो आतां वाढवूं आवडी। अंतरीची गोडी अवीट ते।'**—'अब प्रभु के साथ हँसेंगे, रूठेंगे, रुचि-वर्णन करेंगे, क्योंकि अन्तर की प्रेमाभक्ति कभी फीकी नहीं पड़ती।'

इनकी भक्ति-भावना के स्वरूपव्यंजक कुछ अभंग नीचे दिये जाते हैं—श्रीकृष्ण-सौन्दर्य का एक गोचर आकर्षक चित्र प्रस्तुत है। इसकी अन्तिम पंक्ति में रचयिता की स्वानुभूति बरबस छलक पड़ी है—

राजस सुकुमार मदनाचा पुतळा।
रविशशिकला लोपाल्या॥
कस्तुरी मळवट चंदनाची उटी।
रुळे माळ कंठीं वैजयंती॥
मुगुट कुण्डले श्रीमुख शोभलें।
सुखाचें ओतलें सकळही॥
कांसे सोनसळा पांघरे पाटोळा।
घननिळ सांवळा बाइयांनो॥
सकळही तुम्ही व्हावें एकीसवा।
तुका म्हणे जीवा धीर नाहीं॥

'प्रभु की मूर्ति कितनी मनोहर है? यह राजस सुकुमार जैसी मदन-मूर्ति है। इसका तेज-प्रभावलय इतना अधिक शोभायमान है जिससे रवि-शशि की किरणों का तेज भी लुप्त हो गया है। माथे पर कस्तूरी लगी है, शरीर में चन्दन लगा है, कण्ठ में वैजयन्ती-माला सुशोभित है। मुकुट-कुण्डल अप्रतिम हैं और उनसे मण्डित श्रीमुख परम मनोहर प्रतीत होता है। जैसे वह साक्षात् सुख ढालकर ही बनाया गया हो। उसने सोनसळा स्वर्ण पीताम्बर परिधान किया है। सुन्दर पाटलवर्णीय उत्तम रेशमी वस्त्र पाटोळा उत्तरीय के रूप में भुजमूलों पर रखा है। सखियो, बाइयो, वह घननील रंग क साँवला मुरारी है। तुकाराम महाराज कहते हैं, सखियो, तुम सभी एक ओर हो जाओ। मुझे उसे देखने तो दो। अब उस रूप-दर्शन के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। मेरे मन में धैर्य का लेश भी नहीं बचा है।'

श्री तुकाराम महाराज के गोपी-गीत विविध भाव-छटाओं से युक्त हैं। जिस गोपी का जैसा भाव है, हरि उसे वैसे ही दिखाई देते हैं। इन गोपिकाओं का स्वरूप वर्णन करते हुए ये कहते हैं—

मनें हरिरूपीं गुंतल्या वासना।
उदास या सुना गौळियांच्या॥

'इन गोपवधुओं के मन हरिरूप में विजड़ित हो गये हैं। इनकी सारी वासनाएँ प्रभु में ही समाकर रह गयी हैं और इसीलिए ये गोपवधुएँ उदास हैं, संसार से उदासीन हो चुकी हैं।'

श्री राधा-कृष्ण परस्पर अनुरक्त हैं। प्रभु से भेंट नहीं हो पाती, इससे राधा बहुत उद्विग्न हैं। वे कहती हैं—

कोठे मी तुझा धरुं गेलें संग।
लावियेलें जग माझ्या पाठी॥
सर सर रे परता अगुणाच्या गोवळा।
नको लावूं चाळा खोटा येथें॥
रूपाच्या लावण्यें नेली चित्तवृत्ति।
न देखें भोंवती मी ते माझी॥
तुकयाचा स्वामी जीवींच बैसला।
बोलोंच अबोला करुनियां॥

(अभंग १४२)

'न जाने कहाँ से मैंने तुम्हारा संग-साथ किया और यह सारी दुनिया ही मेरे पीछे पड़ गयी। अरे, अगुण-गुणहीन गोप तू परे हो, दूर हो—अपना छल-छन्द यहाँ बिल्कुल न लगा। तेरे रूप-लावण्य ने मेरी चित्त-वृत्ति पहले ही हर ली है। अब 'मैं' और 'मेरा' कुछ देख ही नहीं सकती। तुकया का स्वामी मेरे जी में आसन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाकर बैठ गया है।' स्थिति यह है कि मैं अपने लिए ही शून्य हो गयी हूँ। सारी दुनिया से मेरी बोलचाल बन्द हो गयी है। किसीसे बात करने का मन नहीं करता और यह प्रभु है कि मुझसे बात भी नहीं करता।'

प्र० न० जो०

वि० पं०

दयालनाथ

दयालनाथ एक प्रसिद्ध वैदर्भीय भक्त कवि थे तथा मूर्तिजापुर के रहनेवाले थे। इनका नाम हरिया था। इनके पिता ने इन्हें बचपन से ही सुरजी अंजनगाँव के साधु देवनाथ के परिवार में रखा। गुरु देवनाथ व परमगुरु गोविन्दनाथ की उपस्थिति में हरि का मौञ्जीबन्धन हुआ। गुरु ने ही इनका विवाह किया। इन्होंने संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थों का अनुशीलन किया। फिर वेदान्त, फारसी और उर्दू भाषाओं का अध्ययन किया। संगीत में इनकी बड़ी रुचि थी।

दयाशील स्वभाव के कारण गोविन्दनाथ ने इन्हें दयालनाथ नाम से प्रसिद्ध किया। दयालनाथ कीर्तन में बहुत रस लेते थे। ईश्वर-भक्ति, काव्य-रचना, सत्प्रवृत्ति, साधुत्व, दीर्घ तपस्या आदि से इनका माहात्म्य बढ़ गया। गुरु के आदेश से इन्होंने तीर्थयात्रा की। जगह-जगह कीर्तन करके नाम-भक्ति का प्रचार किया। अपने साधुत्व तथा वाक्चातुर्य से इन्होंने सबको मोहित किया। निजाम-राज्य के प्रतिष्ठित लोग दयालनाथ के कीर्तन में रस लेते थे। स्वयं दीवान चन्दूलाल रायराजा तथा निजाम उनके कीर्तन के लोभी थे।

कीर्तन-सेवा द्वारा सर्वत्र धर्म प्रचार करके दयालनाथ ने कृष्ण-भक्ति का पौधा लगाया। नाथपन्थीय सत्पुरुष होने पर भी इनकी कृष्ण-भक्ति अद्वितीय थी। इनके अनेक पद भक्ति-रस से आर्द्र हैं। राधा-कृष्ण की प्रीति का विशेष परमार्थ-लाभ इन्होंने इन शब्दों में बताया है :

आद्यदीप श्रीकृष्ण, तयाची हो राधा ज्योती।
परमपुरुष हा दयाळ श्रीहरि, त्याची ते प्रकृती॥
हा चित्सिन्धू, ते चित्सरिता ऐक्यपणे मिळती।
खचित रवी परिपूर्ण तयाची अबाधिता दीप्ती॥

'श्रीकृष्ण आद्यदीप हैं और श्री राधा उस दीप की ज्योति हैं। परमपुरुष श्रीहरि दयालु हैं, राधा उनकी प्रकृति हैं। वह चिरसिन्धु हैं व राधा उससे मिलनेवाली चित्सरिता हैं। श्रीकृष्ण सूर्य हैं और राधा उसकी दीप्ति हैं।'

दयालनाथजी की कविता अनेक जगह श्रृंगारमय है। वह मराठी की लावणी जैसी प्रतीत होती है। लावणी या श्रृंगार-गीत से ये समाज को भक्ति-मार्ग पर स्थिर रखने का प्रयत्न करते थे। इनके श्रृंगारमय काव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है —

तु दिनपति मी कांति तुझी,
अजि कोप कसा करिशी ?
जळाविण मीन तळमळी तशी॥
साधन तरि कोणतें करूँ
मी तुझिया प्राप्तीशी।
किती म्हणुनिया अंत पाहशी ?
मी सरिता तूं सागर,
मी चातक तूं जलधर।
मी तारा तूं शितकर।
आगळिक नसतांही नजर कां।
मजवरती वाकडी।
सख्या, तूं जिविचा जिवलग गडी॥

'श्रीकृष्ण, तू दिनपति सूर्य है, मैं तेरी कान्ति हूँ। आज मुझ पर कोप क्यों करता है ? मेरी अवस्था जल बिन मछली जैसी हुई है। तेरी प्राप्ति के लिए मैं कौन-सा साधन करूँ ? तू मेरे को क्यों सताता है ? मैं सरिता और तू सागर है, मैं चातक पक्षी और तू जलधर मेघ है। मैं एक तारिका हूँ और तू चन्द्रमा है। मेरा कसूर न होने पर भी तू मुझ पर वक्र दृष्टि क्यों रखता है ? प्रियतम ! तू मेरा अनन्य प्रेमी है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयालनाथजी को पुत्र नहीं था। कन्या का वंश रामटेक-उमरेड में आज भी है। दयालनाथ का का देहान्त हैदराबाद में सन् १८३६ ई० में हुआ। देवनाथ, दयालनाथ के बाद सुरजी अंजनगाँव के मठ में जयकृष्णनाथ, रामकृष्णनाथ, भालचन्द्रनाथ, तथा मारुतिनाथ मठपति हुए।

प्र० न० जो०

दासगणु

दासगणु का पूरा नाम गणेश दत्तात्रेय सहस्रबुद्धे था। इनका जन्म अहमदनगर जिले में अमोळनेर गाँव में हुआ था। श्री वामनराव इस्लामपुरकर इनके गुरु थे। गुरु के उपदेश के बाद गणेश सहस्रबुद्धे दासगणु हो गये। ये साईंनाथ के भी भक्त थे। पाठशास्त्रीय शिक्षा में रुचि न होने के कारण इन्होंने शाला छोड़ दी और गुजरात जाकर बड़ोदा में नौकरी कर ली। सन् १९१३ ई० में इनका विवाह सावित्री नाम की लड़की से हुआ। लेकिन इनका मन प्रपञ्च में न लग पाया। अतः घर छोड़कर पुलिस-विभाग में नौकरी कर ली। ग्यारह वर्षों तक इन्होंने यह नौकरी की। इसी समय ये काव्य-रचना करने लगे। शिरडी के साईंनाथ और पण्ढरपुर के श्री विट्ठल की भक्ति करने में इन्हें सन्तोष मिलता था। इनका स्वर्गवास सन् १९६२ ई० में हुआ।

ये पहले शिव-भक्त थे। सोमवार, प्रदोष, शिवरात्रि आदि व्रतों में इनकी बहुत निष्ठा थी। आगे वामनराव इस्लामपुरकर की प्रेरणा से ये पण्ढरपुर की यात्रा करने लगे। साईंनाथ के कहने से दासगणु ने पुलिस-विभाग की नौकरी छोड़ दी और नांदेड में रहने लगे। अध्यात्म-चिन्तन व पारमार्थिक काव्य-रचना में इन्हें बड़ी रुचि थी। ये कीर्तन भी अच्छी तरह से करने लगे। पौराणिक कथाओं पर इन्होंने मराठी में अनेक श्लोकबद्ध और ओवीबद्ध आख्यानों की रचना की। इनकी काव्य-रचना और भाषा-शैली बड़ी ही सरल, प्रसादपूर्ण तथा हृदयस्पर्शी थी। भक्ति और प्रेम का आविष्कार इनके हरिकीर्तनों में होने लगा। इन्होंने महाराष्ट्र और भारत के अन्य प्रदेशों के सन्तों के जीवन-चरित्र मराठी भाषा में वर्णन किये हैं। परमेश्वर-प्रेम, भक्ति-भावना, आन्तरिक भावना, इन सबका समावेश इनके सन्त-चरित्रों में हुआ है। भक्ति-रसामृत, भक्ति-लीलामृत, सन्त-कथामृत, शंकराचार्य-चरित्र, ज्ञानेश्वर-चरित्र, भावार्थ-मञ्जरी (अमृतानुभव पर मराठी ओवीबद्ध भाष्य), नारदभक्ति-सूत्रबोधिनी, ईशावास्यबोधिनी आदि इनके उत्तम ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त अनेक आख्यान, कथाएँ, स्तोत्र, अष्टक, सुभाषित तथा स्फुट काव्य इनके नाम पर उपलब्ध हैं। इनके सच्छिष्य श्री अनन्त दामोदर आठवले इनका सम्प्रदाय आज बड़ी ही निष्ठा से वर्धित कर रहे हैं।

इनके अनेक कीर्तनोपयोगी आख्यान-काव्य हैं। इनमें प्रमुख हैं—'वामनावतार, परशुरामावतार, श्रीरामजन्माख्यान, श्रीकृष्ण-लीला, वत्सला-हरण, गरुड़-गर्वहरण, गीता-जन्मकथा, सुदाम-चरित्र, मत्स्येन्द्रनाथ-चरित्र, शंकराचार्य-चरित्र (१—३), श्री ज्ञानेश्वर-चरित्र, नामदेव-चरित्र, सांवतामाली-चरित्र, गोरा कुंभार-चरित्र, कबीर-चरित्र, तुलसीदास-चरित्र, श्री एकनाथ-चरित्र, नरसी मेहता-चरित्र, कूर्मदास, मीराबाई, श्री जगन्नाथ पण्डित, बिल्वमंगल, सन्त सखू, चोखा महार, तुकाराम, गजानन महाराज आदि भक्त-चरित्र। इनके अतिरिक्त विठ्ठल-स्तोत्र, व्यंकटेशाष्टक, रेणुकास्तव, मदुरामीनाक्षी-प्रार्थना, गोदा-स्तोत्र, नर्मदापंचक, गोदा-माहात्म्य, उद्धवागमन, विष्णुसहस्रनामबोधिनी' प्रभृति स्फुट स्तोत्रों की भी इन्होंने रचना की है।

श्री दासगणु-रचित 'श्रीकृष्ण-लीला' अति मधुर व भक्ति-रस-सम्पन्न है। पूतना-वर्णन, श्रीकृष्ण को विष-पान, श्रीकृष्ण द्वारा उसका उद्धार, कंस-वध, श्रीकृष्ण व गोपी-गोपिकाओं का प्रेमभाव, कृष्णमय गोप-नारी, यशोदा का विश्वरूप-दर्शन, यमुना-तट पर क्रीड़ा, मुरली-माहात्म्य आदि कृष्ण-लीला-प्रसंगों का भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्होंने सरस चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त 'रुक्मिणी-स्वयंवर' भी इनकी एक मनोज्ञ कृति है।

इनके तीन काव्यांश प्रस्तुत हैं—

(१)

गोकुल छोड़के मैं जाती ॥ ध्रु० ॥
इधर-उधर ये फिरकर आता।
जहाँ चाहिये वहाँ छुपकर रहिता।
नहि धुंडी तो जूति खिलाता।
गनू कहे भगवान्, सुनो क्या कहती ?

और एक गोपी यशोदा मैया से कह रही है—

(२)

मैं छांड़ चली गोकुलकूँ ॥ ध्रु० ॥
मैं सोती थी अपने पलंग पर।
बाँध गया हरि मुझकूँ।
धोति छीनके साडि पिनाई।
इन्ने मेरे खावन्दकूँ ॥

'उद्धवागमन काव्य' इनका एक भक्तिपूर्ण खण्ड-काव्य है। श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोकुल में गोप-गोपिकाओं को सान्त्वना देने के लिए भेजा था। उद्धव ने गोकुल में आकर वहाँ की धूल अपने अंग पर चढ़ायी, गोपों का प्रेमभाव देखकर उद्धव गद्गद हो गये। वे बोले, "गोप, गोप-बालक, मैं श्रीकृष्ण का सन्देशा देने आया हूँ।" इसके बाद नन्द और यशोदा ने उद्धव से श्रीकृष्ण का क्षेम-कुशल पूछा। उनकी कृष्ण-स्मृतियाँ जाग उठीं। गोप-गोपियों का कृष्ण-प्रेम देखकर उद्धव चकित होकर बोले—

(३)

गोपांनो, तुम्हि धन्य या त्रिभुवनीं
कृष्णासवें खेळला।
योग्यांना गवसे असा हरि तुम्ही
भक्तीबळें बांधिला।
पायाची करितात आस प्रभुच्या
योगी, तपी नी मुनी।
तीं पद्में तुमच्या व्रजांत फिरलीं
धेनूसवें काननीं ॥

'गोप, आप त्रिभुवन में धन्य हैं। क्योंकि आप लोगों ने श्रीकृष्ण को साथ लेकर क्रीड़ा की है। योगी लोगों को अप्राप्य श्रीकृष्ण को आपने भक्ति-बल से बाँध लिया है। अनेक योगी, तपी, मुनि जिसके चरणों की इच्छा करते हैं, वे पादपद्म धेनुओं के साथ आपकी व्रजभूमि पर दीख पड़ते हैं।' गोपियों का कृष्ण-प्रेम देखकर उद्धव आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने गोपियों के चरणों पर प्रणिपात किया। हरि-रूप राधिका देखकर उद्धव सन्तुष्ट हो गये। उन्हें ज्ञात हो गया कि श्रीकृष्ण गोप-गोपियों के प्राण हैं। व्रजवधूओं का प्रेम-भाव देखकर उद्धव का शरीर रोमांचित हो गया।

प्र० न० जो०

देवनाथ

नाथ-सम्प्रदाय के देवनाथ नामक इस सत्पुरुष का विदर्भ में अमरावती के पास सुरजी अंजनगाँव में जन्म हुआ था। इनके पिताजी का नाम राजोपन्त था। बचपन से देवनाथ हनुमान् की उपासना करते थे। इनका गृहस्थ-जीवन विशेष उल्लेखनीय नहीं है। बीस वर्ष की उम्र में इन्होंने अंजनगाँव छोड़कर वारी (त० जलगाँव, जिला अकोला) जाकर हनुमान् की दीर्घ उपासना की। इनका पारमार्थिक अधिकार बढ़ा। इनकी कवित्व-स्फूर्ति जाग उठी। ये कीर्तन करने लगे। इतने में इनका परिचय नाथपन्थी साधु गोविन्दनाथ से हुआ। गोविन्दनाथ ने इन पर पूर्ण कृपा की। गुरु की कृपा से देवनाथ ने बड़ोदा, पुणे आदि शहरों में कीर्तन-सेवा की। पेशवा ने इनका सत्कार किया।

देवनाथ के गुरु गोविन्दनाथ गोपाळनाथ के शिष्य थे। उनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है— आदिनाथ, ब्रह्मदेव, अत्रीनाथ, श्रीदत्तात्रेय, जनार्दन स्वामी, श्री एकनाथ, नित्यानन्द तथा गावबा, कृष्णानन्द, विश्वम्भर-नाथ, मुरारनाथ, श्री रंगनाथ, गोपाळनाथ, गोविन्द-नाथ, देवनाथ। देवनाथ के प्रसिद्ध शिष्य दयालनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी उच्चकोटि के सत्पुरुष और कवि थे। देवनाथजी आशुकवि थे। कीर्तन-प्रसंग में उत्स्फूर्त कविता से ये श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। इनकी मराठी और हिन्दी पद-रचना आज उपलब्ध है। कहा जाता है कि कीर्तन-सेवा में मग्न रहनेवाला यह साधुकवि ग्वालियर में कीर्तन के समय मण्डप में आग (अग्नि) लगने से दिवंगत हुआ। इन्होंने पुणे, सातारा, नागपुर, बड़ौदा, काशी, रामेश्वर, द्वारका आदि स्थानों की यात्रा की थी। देवनाथ शस्त्र लेकर निर्भय रूप से भ्रमण करते थे।

तूं धांव धांव श्रीहरी !
विश्वेश्वर ! विश्वंभरणा !!
ओढवलें संकट अति राखीं
ब्रीद जात रमारमणा॥ ध्रुवपद॥

इस पद के अनुसार देवनाथ ने एक मृत बालक को ज़ीवित कर दिया था।

देवनाथजी ने श्रीराम, श्रीदत्त, शिव, श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों पर अनेक प्रकार की रचना की है। इनकी कविता रसमय, प्रासादिक, स्वानुभवद्योतक, निःस्पृहतादर्शक तथा मोक्षमार्गी है। मारुति, गणपति, पण्ढरी के पाण्डुरंग, भक्ति, वेदान्त, गुरु-गौरव आदि इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। सुरजी अंजनगाँव छोड़ते समय इन्होंने एक पद लिखा था :

रमते नाथ फकीर,
कुछ दिन याद करोगे॥ ध्रु०॥
कुछ दिन ओढ़े शाल-दुशाला,
कुछ दिन भगवे चीर॥ १॥
कुछ दिन खावे मेवा-मिठाई,
कुछ दिन पीवे नीर॥ २॥
कुछ दिन हाथी कुछ दिन घोड़ा,
कुछ दिन पाँव जंजीर॥ ३॥
कुछ दिन बस्ती कुछ दिन जंगल,
कुछ दिन भय सुशीर॥ ४॥
कुछ दिन महलों में सोते,
कुछ दिन गंगा-तीर॥ ५॥
तुम अहो खुशाला रहो खुशहाला,
फिर न मिले ये शरीर॥ ६॥
देवनाथ प्रभुनाथ गोविन्दा,
तू है सच्चा पीर॥ ७॥

देवनाथजी ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर एक-कृष्ण-जन्म 'आख्यान' की ८१ श्लोकों में रचना की है। प्रारम्भ में ही इन्होंने लिखा है —

विदर्भाचे वंशीं जगजननि लावण्यभरणीं।
अजन्मा ये जन्मा यदुकुलिंच भूभारहरणीं।
जया गाती वेद श्रुति कविहि व्यासादि सुरसा।
हरीची ते लीला श्रवणिं स्थिर होवोनि परिसा॥

'विदर्भ के वंश में लावण्यमयी जगन्माता ने और इस अजन्मा ने यदुकुल में भूभारहरण के लिए जन्म पाया। वेद-श्रुति, व्यासादिक कवि उनकी स्तुति गाते हैं। इसी हरि की लीला एकाग्र चित्त से सुनिये।' देवनाथजी ने श्रीकृष्ण पर अनेक प्रकार की कविता लिखी है :—

'ये बा, ये दीनबन्धु गोविन्दा गोपीरमणा', 'मनमोहन नन्दकन्हय्या। व्रिजवासी अजब विलासी।', 'माझी तुला काळजी (चिन्ता) सावळचा, येईं तूं गोपाळजी !', 'तें ब्रह्म गोजिरें हो ! खेळे यमुनातीरीं', 'नन्दाच्या नन्दना। नवनीरद ततु कोमलगात्रा दानवकुलकन्दना', 'प्रियकरा, भुवनसुन्दरा, रुक्मिणीवरा, अजि गोपाळा', 'विमलकमलदललोचन कृष्णा, निजजन-सुखकरणा', 'मधुसूदना, कमलनयन सुखसदना', 'ये कंसारी, मी दीन पतित तव द्वारीं', 'गोविन्दा मधुसूदना, कमललोचना, सख्या यदुविरा', 'भक्त-वत्सल भवशमना हरि, तूं गुंतलासि कोठें ?', 'चाल चाल वेगीं, कृष्णा मनमोहना। दीनोद्धारका गरुडवहना', 'भुवनसुन्दरा, सुन्दरा चक्रपाणी। मधुसूदना, मोक्षदानी', 'जागरे ! जाग बापा, विश्वपालका कृष्णा'

आदि अनेक पदों में इन्होंने कृष्णभक्ति साकार की है।

देवनाथजी ने कतिपय उपदेशपरक पद भी लिखे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। इनकी कुछ कविता प्रासंगिक विषयों पर भी मिलती है। लावणी (श्रृंगारिक पद्य) मराठी का एक उत्तम गीत-प्रकार है। देवनाथ के पद लावणी जैसे हैं। एक पद का प्रारम्भ इस प्रकार है :

आषक आम्ही, पिसे झालों ग! तुजवरते।
नको होऊं नयनाच्या परते॥
वर्णिती चारी साहि कसे वाचे?
अतिशय तेज स्वरूपाचें॥
कोटि रवि लज्जित पदनखीं तेज त्याचें।
गणति कोण करि रतिमदनाचे?

'प्रभो, हमारी तुम पर आसक्ति हो गयी है। हम तुम्हारे लिए दीवाने बन गये हैं। तुम मेरी दृष्टि से दूर न हो। तुम्हारा वर्णन चार वेद, छः शास्त्र करते हैं। तुम्हारे स्वरूप का तेज अनन्त है। तुम्हारे पदनख का तेज कोटि रवि को लज्जित करता है। तुम जैसे रतिमदन की सुन्दरता की तुलना कौन करेगा?'

एक पद में इन्होंने लिखा है—**'निबिड सघन हे मध्य शर्वरी हरी वाजवि मुरली। मम मानस वश झालें विशेषें मति त्या रवि मुरली'**—'एक दिन मध्य रात्रि के समय श्री हरि ने मुरली बजायी। मेरा मन उस ध्वनि के वश में हो गया।' देवनाथजी के मुरली के पद अत्यन्त रोचक व रसपूर्ण हैं। **'वाजविलीस त्वां कशी मदनमोहना चक्रपाणी। जळो आग लागो रे! तुझि मुरली हे घरघेणी', 'वृन्दावनीं हरिनें अति मंजुळ वाजविला सये, वेणू', 'मुरली वाजविली कृष्णानें। नन्दाच्या कान्हयानें', 'या गोविन्दें मुरलीनादें मोहियलें मन गडे। हरिरूप अखण्ड नयनापुढें', 'मन्द मन्द वाजवी गोविन्द मुरली'** इत्यादि पदों में मुरली का ध्वनि-सौन्दर्य प्रकट हुआ है। एक पद्य में ये कहते हैं—

अहा रे, मेल्या कृष्णया,
वाजविली कशी मुरली॥ ध्रु०॥
तुझ्या मुरलीची मधुर ध्वनी,
अकल्पित पडली श्रवणीं।
विह्वल झालीं अन्तःकरणीं,
गृहधंदा मी विसरलीं॥ १॥
तुझ्या मुरलीचा सुस्वर तान,
ऐकुनि विसरलीं देहभान॥ २॥
गृह सोडुनियां धरलें रान,
वृन्दावनांत मी शिरलीं॥ ३॥
मुरली ना हे केवळ बाण,
माझा हरियला प्राण।
संसार केला दाणादाण,
हृदयीं येउन संचरली।
दीनानाथा गुरुगोविन्दा,
पतितपावना परमानन्दा।
देवनाथें भजनीं धंदा,
वृत्ती तव रूपीं जडली॥

'अरे कृष्ण, तू कैसी मुरली बजाता है? तेरी मुरली की ध्वनि कान में आते ही मैं विह्वल हो गयी हूँ। मैं गृहकाज भूल गयी। देहभान उड़ गया। मैं गृह छोड़कर रात में, वृन्दावन में आयी। तेरी मुरली बाण जैसी है। उसने मेरा प्राण हरण किया है। संसार (प्रपञ्च) नष्ट किया है। उसका निवास मेरे हृदय में हुआ है। गुरुगोविन्द, पतितपावन! देवनाथ की वृत्ति तुम्हारे रूप में लीन हो गयी है।'

एक हिन्दी पद्य में देवनाथजी कहते हैं :

नन्द-नन्दन कान्हा,
गोरस हूं न देऊँगी॥ ध्रु०॥
जो ठग तुमसों बोलन च्याहे,
तापे मैं प्राण त्यजूँगी॥ १॥
ग्वालनि से गुमराई करति हो,
मोपें सो ना चलेगी॥ २॥
ठाड़े रहो जिन वेग सिधारो,
नन्दपैं जाय कहूँगी॥ ३॥
देवनाथ प्रभु नाथ निरंजन,
जा तोरे पाँव लगेंगी॥ ४॥

प्र० न० जो०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरहरि (सोनार)

नरहरि सोनार तेरहवीं शताब्दी ई० में आविर्भूत हुए। ये सुनार जाति के वैष्णव-रत्न तथा पण्ढरपुर के रहनेवाले थे। इनके पिता दीनानाथ पहले काफी धनवान् थे और पण्ढरपुर से जाकर देवगिरि में सराफे का काम करते थे। परन्तु नरहरि पुनः पण्ढरपुर में आकर सुनार का काम करने लगे। इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये पहले शैव थे। कहा जाता है कि तब ये कभी भी विट्ठल-दर्शन नहीं करते थे। परन्तु पण्ढरपुर में सन्त-संग से इनकी भावना हरि-हर की अभिन्नता में एकनिष्ठ हुई। इन्होंने कहा—

एकचि भावना। उभयां चरणी ॥
हो कां प्राणहानी। पालटेना ॥

'शिव-विष्णु दोनों के चरणों में मेरी एक ही भावना है और अब प्राण ही क्यों न चले जायँ, यह एकनिष्ठा नहीं बदलेगी।' इस भावबिन्दु पर आकर ये अटल हो गये। इनकी यह भावना ज्ञानेश्वर महाराज की संगति में फली-फूली। अतः ज्ञानदेव के चरणों में इनका दृढ़ भाव था। वारकरी-सम्प्रदाय से ये काया-वाचा-मनसा एकरस हो गये थे। भक्त्यानन्द का प्रसाद पाकर ये अपना जीवन धन्य मानने लगे।

इन्होंने अध्यात्म-सिद्धि सम्भवतः योग-मार्ग से प्राप्त की थी। अपने सद्गुरु का नाम इन्होंने गैबीनाथ बताया है। **'गुरु गैबीनाथ। नरहरिदास हा अंकित।'** (अभंग ३) अर्थात् नरहरिदास के गुरु गैबीनाथ हैं और वे स्वयं उनके अंकित दास अथवा शिष्य हैं। सन्त ज्ञानेश्वर आदि की संगति का इन्होंने रसपूर्ण वर्णन किया है।

उत्तर भारत की तीर्थयात्रा में ये सन्त ज्ञानेश्वर-जी एवं उनकी सन्त-मण्डली के साथ सम्मिलित हुए थे। इनके पश्चात् भी इनके परिवार में अनेक भक्त एवं कवि उत्पन्न हुए। इन्होंने शक १२३५ (सन् १३१३ ई०) में माघ कृष्ण प्रतिपदा को समाधि ग्रहण की।

इनके द्वारा लिखित लगभग चौंतीस अभंग उपलब्ध हैं। शिव-स्तुति, विठ्ठल-स्तुति, सन्त-स्तुति, प्रारब्ध-गति, उदासीनता, नाम-स्मरण, सद्गुरु-महिमा आदि इन अभंगों के विषय हैं। विठ्ठल अर्थात् भगवान् कृष्ण की भक्ति इनके सभी अभंगों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है। एक अभंग में ये कहते हैं कि "पण्ढरपुर नगर में श्रीहरि विद्यमान हैं। इन्होंने गोपालपुर में अपनी गौएँ रखीं। गोपालों के निवास से वह ग्राम गोपालपुर हुआ। भगवान् अखण्ड रूप से वहीं रहने लगे। जहाँ इन्होंने सन्ध्या की, वहीं सन्ध्यावली हो गयी और जगह-जगह इनकी प्रतिमाएँ स्थापित हुईं। जहाँ इन्होंने चरण धरे, वहीं पद्मतीर्थ हो गया और वह अक्षय बनकर विराजने लगा। इसके बाद प्रभु मुरली बजाते हुए चन्द्रभागा नदी के तीर पर आये और अखण्ड रूप से वेणुनाथ बनकर पण्ढरपुर में विराजने लगे। पण्ढरपुर स्थल साक्षात् वैकुण्ठ है। यहाँ निर्मल साधु निवास करते हैं। इसकी पंचक्रोशी में सभी देवता रहते हैं और एक करोड़ शिवलिंग यहाँ हैं। यहाँ एकादशी-व्रत नियमपूर्वक किया जाता है और यह सारे पापी-चाण्डालों का उद्धार करता है। वस्तुतः पण्ढरपुर द्वारका निर्मल भूमि है, जहाँ दयालु साधु-सन्त हैं। हवेली में राम-लक्ष्मण-सीता अक्षय रूप से हैं। यहाँ अखण्डित वाणी में नामोच्चार होता रहता है और सन्तों का सेवक नरहरिदास प्रभु-भक्ति में तल्लीन रहा करता है।"

इन्होंने लगभग प्रत्येक अभंग में प्रभु की प्रेमाभक्ति पर बल दिया है। एक सुन्दर पद में ये कहते हैं—

नाम हे नगरी वैकुण्ठ पण्ढरी,
नांदतो श्रीहरि पाण्डुरंग।
नरदेहीं जन्मले पण्ढरीस गेले,
दृष्टिभरि पाहिले पाण्डुरंग।
भीवरेंचे स्नान देवाचें दर्शन,
पाप हे जळोन जाय तेथें।
चरणावरी माथा नरहरी ठेविला,
हृदयीं बिंबला पाण्डुरंग ॥

(अभंग १८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'यह पण्ढरपुर नगरी साक्षात् वैकुण्ठ है। अखण्ड नाम-निवास होने से यह नगर नाम से निनादित है। यहाँ भगवान् श्रीहरि पाण्डुरंग विराजमान हैं। नरदेह धारण करके जो जीव जन्म लेते हैं, पण्ढरपुर जाते हैं, वहाँ नयन भरकर प्रभु पाण्डुरंग को निहारते हैं। पुण्यसलिला भीवरा (चन्द्रभागा) में स्नान करके भगवत्-दर्शन करते हैं। उनके सारे पाप जलकर नष्ट हो जाते हैं। यहीं सन्तानुयायी नरहरिदास भगवान् के चरणों पर माथा धरकर अखण्ड आत्म-सुखी हैं। उनके हृदय में प्रभु पाण्डुरंग हमेशा के लिए प्रतिबिम्बित हो चुके हैं।'

सन्त नरहरि सोनार ने स्वयं को प्रभु का सुनार कहा है और सम्पूर्ण सुवर्णकार के काम के साथ भक्ति-प्रक्रियाओं का रूपक साधकर मनोज्ञ रूप से अपने जातिकर्म में मनसा, वाचा, कर्मणा प्रभु-सर्मपित होने की बात कही है।

प्र० न० जो०
वि० प०

नरेन्द्र कवि

सन्त ज्ञानेश्वर के पूर्व श्री चक्रधर ने महाराष्ट्र में महानुभाव-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था। इस पन्थ में कृष्ण-विषयक वाङ्मय विपुल मात्रा में निर्मित हुआ। इसके संस्थापक श्री चक्रधर स्वयं को श्रीकृष्ण मानते थे। श्रीकृष्ण महानुभावों के एक प्रमुख देवता हैं। इस पन्थ में जो सात ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं उनमें शिशुपाल-वध (भास्कर व्यास), एकादश स्कन्ध (उद्धव-गीता), वच्छहरण (दामोदर पण्डित), रुक्मिणी-स्वयंवर (नरेन्द्र)—ये चार ग्रन्थ श्रीकृष्ण-चरित्र तथा उपदेश-कथन-विषयक हैं। इनमें ऐतिहासिकता और काव्य-गुण की दृष्टि से नरेन्द्र कवि का 'रुक्मिणी-स्वयंवर' ग्रन्थ अग्रणी माना गया है।

नरेन्द्र (१३वीं शती) का उपनाम 'अयाचित' था। शल्यकवि और नरसिंह कवि इनके दो बन्धु थे। ये तीनों भाई कवि, ग्रन्थकार और भक्त थे। शल्यकवि ने 'रामायण' और नरसिंह कवि ने 'नलोपाख्यान' लिखा है। ये दोनों ग्रन्थ अप्राप्य हैं। नरेन्द्र कवि ने सन् १२८८ ई० में 'रुक्मिणी-स्वयंवर' नामक एक महाकाव्य रचा। रामदेव राय यादव उस समय देवगिरि के अधिपति थे। उनकी प्रेरणा से नरेन्द्र ने रुक्मिणी-स्वयंवर महाकाव्य का निर्माण किया। राजसभा में कुछ काव्य-अंश पढ़ा गया, जिसे सुनकर रामदेवराय यादव प्रसन्न हो गये। उन्होंने नरेन्द्र से कहा :

"कविराज, इस ग्रन्थ की समाप्ति-मुद्रा मेरे नाम पर होगी। हम बहुत सुवर्ण-मुद्रा देंगे।"

"नहीं महाराज ! ऐसा करने में हमारे कवि-कुल को कलंक लगेगा।"

अभी तक नरेन्द्र कवि का रुक्मिणी-स्वयंवर ग्रन्थ ८७९ ओवियों तक प्राप्त हुआ था। लेकिन नागपुर के विद्वान् अन्वेषक डॉ० सुरेश डोळके ने यह महाकाव्य सम्पूर्ण, २९३६ ओवी तक सम्पादित करके उसे सन् १९७१ ई० में प्रकाशित कराया है। नरेन्द्र कवि के काव्यगुण, उनकी कल्पना-शक्ति, प्रतिभा, शब्दकला आदि का परिचय इस महाकाव्य से मिलता है। इस काव्य की रचना समाप्त करके नरेन्द्र ने श्री चक्रधर से दीक्षा प्राप्त की। **'श्रीकृष्णाचा गुणीं जीवितला। माझा जीवु श्री चक्रधरा विनटला।'** इस प्रकार की निष्ठा नरेन्द्र ने प्रकट की है।

कृष्ण पर रुक्मिणी की भक्तियुक्त प्रीति थी। किन्नर कहते हैं—**'तें देवाचें सौन्दर्य वानुं कैसे : जें मदन अपत्य लाहिला आपैसें। रूपाचा वेधु नारीसि असे : जैसाचि मुनीश्वरा।'** श्रीकृष्णजी का सौन्दर्य किस प्रकार का था ? नरेन्द्रजी कहते हैं :

ते वेधाची मूर्ति सांघो कैसी :
कामिनी रमतां प्राणेश्वरेंसी।
हृषीकेश न धरी मानसीं :
ऐसी कवणि असे ?

'कवि के अनुसार अन्य कामिनी अपने पति के साथ रममाण होती है, तब उसके सामने हृषीकेश की मूर्ति आती है।' नरेन्द्र कवि ने एक जगह लिखा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैसे आइकतां श्रीकृष्ण-चरित्र :
होय सकळ सुखाचें छेत्र।
वरि जोडे ब्रह्मसुख पवित्र :
ते मऱ्हाटी बोलेन।।

'श्रीकृष्ण का चरित्र सुनते ही सर्व सुख की प्राप्ति होती है और पवित्र ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है।'

प्र० न० जो०

नाना महाराज साखरे

नाना महाराज साखरे पुणे के प्रसिद्ध ज्ञानेश्वरी-उपासक व सिद्ध सन्त थे। इनके मन की शुद्धि अच्युतराव केसकर की सहायता से हुई। नाना महाराज को बचपन से ही सन्त-वाङ्मय के प्रति अभिरुचि थी। इन्होंने श्रीक्षेत्र काशी जाकर संस्कृत तथा वेदान्त का अध्ययन किया। वहाँ इन्होंने श्री शंकराचार्य के तत्त्वज्ञान का भी अभ्यास किया। ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ से इनका परिचय हुआ। आळन्दी जाकर इन्होंने ज्ञानेश्वरी बार-बार पढ़ी। सम्पूर्ण ज्ञानेश्वरी इन्होंने कण्ठस्थ की। इनके ज्ञानेश्वरी-प्रवचन के समय जोग महाराज, लोकमान्य टिळक, न्यायमूर्ति रानाडे आदि बड़े-बड़े लोग आते थे। नाना महाराज ने 'ज्ञानेश्वरी' का साम्प्रदायिक अर्थ निश्चित करके जिज्ञासु लोगों को उसका ज्ञान दिया। नाना महाराज का प्रभुत्व ज्ञानेश्वर के 'अमृतानुभव' ग्रन्थ पर भी था। इनके पास ज्ञानेश्वरी-अमृतानुभव श्रवण करने के लिए नाना जातियों के लोग आते थे। ज्ञानेश्वरी का अर्थ समझाकर उस पर प्रवचन करना इनका नियम बन गया था। 'विचार-सागर' ग्रन्थ पर भी इनका प्रभुत्व था। इनका वाणी पर अधिकार था। सांसारिक होते हुए भी इनका प्रपञ्च परमार्थरूप बना। आज नाना महाराज साखरे की 'सार्थ-ज्ञानेश्वरी' वारकरी लोगों में बहुत प्रिय है। इनका देहावसान सन् १९०३ ई० में हुआ।

प्र० न० जो०

नामदेव

नामदेव का जन्म सन् १२७० ई० में कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन पण्ढरपुर में हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेटी और माता का नाम गोणाई था। जाति के ये दर्जी थे। दामाशेटी के मूल पुरुष कऱ्हाड़ के निकट कृष्णा नदी के तट पर नरसीब्राह्मणी के रहनेवाले थे। उनका नाम यदुशेट और उपनाम रेळेकर था। वे बजाजी का धन्धा करते थे और रात-दिन 'विट्ठल'-नामस्मरण में निमग्न रहा करते थे। यदुशेट के पुत्र हरिशेट भी पण्ढरपुर की वारी नियमित रूप से करने लगे। इनकी सभी पीढ़ियाँ 'विट्ठल' की परम भक्त थीं। इसी भक्त-कुल की सातवीं पीढ़ी में दामाशेटी के घर नामदेव का जन्म हुआ। कहा जाता है कि दामाशेटी स्वयं दो वर्ष की आयु से श्री विट्ठल-नामस्मरण किया करते थे। वे महान् भगवद्भक्त थे और पुत्र-प्राप्ति की कामना से ही पण्ढरपुर में आकर रहने लगे थे। श्री पाण्डुरंग की कृपा से उन्हें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ, जो विख्यात भक्त हुआ।

नामदेव महाराज बचपन से ही विट्ठल-प्रेम में लीन रहा करते थे। मध्याह्न में श्री विट्ठल भगवान् को नैवेद्य दिखाने का व्रत श्री दामाशेटी का था। एक बार जब वे बाहर गये हुए थे, बालभक्त नामा ने प्रभु की अभीष्ट पूजा की और नैवेद्य समर्पण किया। बालक की धारणा थी कि भगवान् स्वयं भोजन ग्रहण करते हैं। विलम्ब देखकर वह प्रभु से संवाद करते और मनाते हुए वहीं बैठे रहे। बालभक्त की अविचल श्रद्धा देखकर प्रभु स्वयं सगुण रूप में विट्ठल-विग्रह से प्रकट हुए और नामा का नैवेद्य ग्रहण किया। नामदेव आनन्दविभोर हो उठे। सहज भक्ति-भाव और अनन्य प्रेम से इन्होंने प्रभु को अपना अंकित बना लिया। प्रभु के साथ बोलना, खेलना, आनन्द करना, उन्हें चिढ़ाना, उनसे रूठना और मनाना, यह सब अब निरन्तर चलने लगा। श्री विट्ठल स्वयं नामदेव के साथ क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। इस तरह आयु के नवें वर्ष से ही नामदेव की गणना सन्तों में होने लगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मचरित्रात्मक अभंगों के अनुसार श्री नामदेव के घर में चौदह प्राणी थे—पिता-पुत्र, सास-बहू, चार लड़के, उनकी पत्नियाँ, बहन एवं कन्या। इनके अतिरिक्त घर में दासी जनाबाई भी थी। नामदेव के नित्य कीर्तन-रंग में रमे रहने के कारण परिवार का पालन-पोषण होना दूभर हो गया। पिता की वृद्धावस्था थी और पुत्र सभी लौकिक पदार्थों को वमन सदृश त्याज्य समझता था। माँ गोणाई इस परिस्थिति से अत्यन्त चिन्तातुर हुई। मन्दिर में जाकर भगवान् विट्ठल से शिकायत की कि "मेरा इकलौता पुत्र तुमने अपने रंग में रँगकर पागल बना दिया है, कुलक्षय हो रहा है, हम बरबाद हो गये।" किसी तरह समझाये जाने पर नामदेव कपड़ा बेचने बाजार गये, परन्तु व्यवहार किया जंगलों के पत्थरों से—भगवान् ने अनुग्रह करके द्रव्य दिलवा दिया। माता-पिता ने हारकर नामदेव से व्यापार कराने की अपनी आज्ञा वापस ले ली। इसी प्रकार इनकी पत्नी 'राजाई' ने भी पति को संसारी बनाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु अन्ततः उसे भी पति के अनन्य भगवत्प्रेम ने जीत लिया। एक समय ऐसा आया कि नामदेव महाराज का पूरा का पूरा परिवार भगवद्-भक्ति में पूर्णरूपेण निमग्न हो गया। इनके परिवार के सभी सदस्यों ने अभंग-रचना की है। कहा जाता है कि उनके परिवार के सभी सदस्यों ने—केवल एक गर्भवती बहू को छोड़कर—एक साथ पण्ढरी के विट्ठल-मन्दिर के महाद्वार के सम्मुख समाधि ग्रहण की।

पण्ढरपुर के वैष्णवों में नामदेव महाराज प्रथम श्रेणी के भक्त के रूप में प्रख्यात हो गये। इसी समय श्री निवृत्ति, ज्ञानेश्वर आदि चारों भाई-बहन 'ज्ञानेश्वरी' रचना के बाद तीर्थाटन करते हुए पण्ढरपुर आये। वहाँ नामदेव महाराज से भेंट करके वारकरी-सम्प्रदाय का पुनः प्रतिष्ठापन करने का उनका विचार था। वे चारों बालक सिद्ध भक्त थे। उनके आने का समाचार मिलते ही नामदेव मिलने के लिए उनके डेरे पर पहुँचे। पण्ढरपुर के प्रभु के मूर्तिमान् प्रेम को देखकर श्री निवृत्ति, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव ने प्रदक्षिणा करके इनकी चरण-वन्दना की। नामदेव ने उन्हें नमस्कार नहीं किया। प्रभु-प्रेम और प्रभु-सहवास से मन में कुछ अहंकार उत्पन्न हो गया था। मुक्ताबाई ने यह बात जान ली। करुणावश होकर उन्होंने इसका उपाय भी सोच लिया। उन्होंने महान् सन्त श्री गोरोबा काका, जो जाति से कुम्हार थे, को बुलवाया और सारे उपस्थित सन्तों की परीक्षा लेने का अनुरोध किया। गोरोबा ने हाथ की लकड़ी के डण्डे से निवृत्ति, ज्ञानेश्वर, सोपान, मुक्ताबाई आदि सबके सिर पर प्रहार किया, परन्तु किसीने 'हूँ' तक नहीं किया। जैसे ही नामदेव के सिर पर डण्डा पड़ा वे एकदम उठ खड़े हुए और रोने लगे। गोरोबा ने घोषित किया कि "यह घड़ा कच्चा है, इसका कोई गुरु नहीं है, अतः भक्ति-तत्त्व में यह कोरा ही है।" इस प्रसंग से उद्विग्न होकर नामदेव दौड़े हुए विट्ठल-मन्दिर में आये और प्रभु से सारी कथा कह सुनायी।

भगवान् ने नामदेव को गुरु बनाने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा—"प्रभु! तुम ही मेरे सब कुछ हो, अब और किसके पास जाऊँ?" प्रभु ने समझाया कि "भगवद्-तत्त्व को यथार्थ रूप में समझने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। तुम विसोबा खेचर के पास जाओ।" प्रभु-आज्ञा के अनुसार ये आवंढा के शिव-मन्दिर में पहुँचे। वहाँ विसोबा खेचर शिव-लिंग पर पाँव धरकर निश्चिन्त सो रहे थे। यह देखकर नामदेव को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। इन्होंने उन वृद्ध को जगाकर पैर हटाने के लिए कहा। खेचर महाशय बोले—"जहाँ शिव-लिंग नहीं है, वहीं मेरे पाँव रख दो। मैं स्वयं उठ-बैठ नहीं सकता।" अब नामदेव जहाँ भी गुरु का पैर रखते थे वहीं शिव-लिंग रहता। अन्ततः जब ये दिग्मूढ़ होकर बैठ गये, तब विसोबा खेचर ने इन्हें समझाया—"नामा! ऐसी एक भी जगह नहीं है जहाँ भगवान् नहीं है। अतः कहीं भी पैर क्यों न रखूँ, वे रहेंगे उसीके अंक पर। फिर तुम कहते हो, मैं बड़ा भक्त हूँ। परन्तु वस्तुतः भगवान् ही जीव की, अपने भक्त की सतत चिन्ता कर रहा है। हम उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिए कुछ भी क्यों न करें, उसके उपकारों का बदला नहीं चुका सकते। जीव भक्ति के नाम पर जो कुछ करता है, वह प्रभु-विषयक कृतज्ञता का प्रतीक है। उसमें गर्व करने लायक कुछ नहीं है।" नामदेव यह सब सुनकर अत्यन्त गद्गद हो गये। फिर इन्हें अपनी स्थिति समझाते हुए 'खेचर' सद्गुरु ने कहा, "भगवान् और जीव का सम्बन्ध 'माँ-बच्चे' जैसा है। यह सम्बन्ध इतना निकट का, इतनी आत्मीयता का है कि जीव सदैव अपनी जगन्माता के अंक में ही विहार करता है। सिर भी माँ की गोद में, पैर भी माँ की गोद में।" इसी प्रेमानुभूति में 'खेचर' आनन्द-निमग्न थे। उन्होंने नामदेव महाराज पर कृपा-दृष्टि की। नामदेव कृतार्थ हो गये। प्रभु की व्यापक अनुभूति लेकर तथा जड़-चेतन में व्याप्त निर्गुण-निराकार प्रभु की सगुणमूर्ति का दर्शन कर ये विट्ठल-विग्रह से समरस हो गये। इनका विट्ठल-प्रेम अधिक प्रगाढ़ तथा सरस बन गया। श्री विट्ठल के सगुण रूप की प्रभा ही विश्व में व्याप्त है, यह अनुभव कर श्री विट्ठल-मूर्ति पर इनका प्रेम शतगुना अधिक बढ़ गया।

सद्गुरु-कृपा का वर्णन करते हुए श्री नामदेव महाराज कहते हैं—

श्रवणीं सांगितली मात।
मस्तकीं ठेविला हात॥
पदपिण्डाविवर्जित केला नामा॥
खेचर विसा, प्रेमाचा पिसा।
तेणें नामा कैसा उपदेशिला॥

(अभंग १३८०)

'सद्गुरु श्री विसोबा खेचर ने नामदेव के श्रवणों में नाममन्त्र बताया, मस्तक पर कृपा-हस्त रखा और नामा को पदपिण्डविवर्जित-देहभावातीत कर दिया। विसोबा खेचर प्रेम-पागल हैं। उन्होंने नामा को कैसा उपदेश देकर धन्य कर दिया।' नामा को भी उन्होंने प्रेम-पागल बना दिया।' **'नामा म्हणे बोल बोलतांहि बोला। खेचरी दाविली प्रेमभक्ति'** 'नामा कहता है कि बातों ही बातों में खेचर ने मुझे प्रेम-भक्ति प्राप्त करा दी।'

प्रेमभक्ति से परिपुष्ट नामदेव महाराज अब निश्शंक हो सन्त-मण्डली में विहार करने लगे। अपनी विशिष्ट शैली के कारण इनका कीर्तन अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। ज्ञानेश्वर महाराज से इनका अद्वितीय स्नेह था। अपने इस अनन्य सखा को साथ लेकर तीर्थयात्रा करने की इच्छा उन्होंने श्री पाण्डुरंग के प्रति निवेदित की। नामदेव महाराज का मन श्री विट्ठल-चरण छोड़कर कहीं जाने का न था, परन्तु श्री ज्ञानेश्वर महाराज के अनुरोध को प्रभु-आज्ञा मानकर ये तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। इन दोनों के साथ श्री निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई भी थे और अपार सन्त-मण्डली भी थी। सभी विट्ठल-प्रेमभक्ति में रँगे हुए थे और प्रेमिल नामदेव के साथ सबने तीर्थयात्रा के व्याज से प्रेम-भक्ति का आनन्द लूटा। अपनी इस उत्तर भारत की यात्रा के दौरान—

पश्चिम प्रभास आदि करोनि द्वारका।
पाहिल्या सकळीका मोक्षपुऱ्या।
पन्थी पावन तीर्थें करुनि सकळिकें।
प्रक्षाळिली पातके वासनेची॥

(अभंग ९२८)

'पश्चिम से लेकर उत्तर और पूर्व तक समस्त मोक्षधाम तीर्थक्षेत्र—प्रभास, द्वारका आदि का दर्शन सन्त-मण्डली ने किया। मार्ग में जितने भी तीर्थ पड़ते थे उन सबको भी इन सन्तों ने अपने पदस्पर्श से पावन कर दिया और वासनाओं का जो पातक वहाँ जमा हो गया था, उसे अपने नाम-संकीर्तन से धो दिया।'

ज्ञानदेव महाराज के साथ उत्तर भारत के तीर्थाटन में कीर्तनरंग द्वारा विट्ठल-भक्ति एवं वारकरी-सम्प्रदाय की पताका नामदेव महाराज ने सारे प्रान्तों में फहरायी। इसके बाद सन् १२९६ ई० में ज्ञानेश्वर महाराज ने आळन्दी में समाधि ग्रहण की।

श्री ज्ञानेश्वर की समाधि के पश्चात् ५४ वर्ष तक नामदेव महाराज वारकरी-सम्प्रदाय के विस्तार का अभूतपूर्व कार्य करते रहे। इसी उद्देश्य से इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुनः उत्तर भारत का पर्यटन किया। इनकी यह यात्रा सम्पूर्ण भारतीय अध्यात्म, भक्ति और संस्कृति की अस्मिता के रक्षणार्थ प्रारम्भ किये गये आन्दोलन का प्रथम चरण थी। ये भारतीय भक्ति-आन्दोलन के जन्मदाताओं एवं उत्तर भारत में उसे फैलानेवाले अग्रदूतों में प्रमुख थे।

भागवत-धर्म के प्रचारार्थ सन् १३२६ ई० के आसपास नामदेव महाराज गुजरात-राजस्थान होते हुए पंजाब पहुँचे। वहाँ गुरुदासपुर जिले में स्थित घुमान ग्राम में इन्होंने कुछ वर्षों तक निवास किया। ईसवी की चौदहवीं शताब्दी में संचार-साधन अत्यन्त दुष्कर थे। मुसलमानों के आक्रमण के कारण परिस्थिति गम्भीर बनी हुई थी। ऐसी विकट प्रतिकूलताओं में भी नामदेव महाराज ने भागवत-धर्म के प्रचार-प्रसार का कार्य निष्ठापूर्वक निभाया। कीर्तन, हरि-कथा आदि के लिए इन्होंने हिन्दी में पद रचना की। हिन्दी-साहित्य में भक्ति-धारा का प्रारम्भ ही एक तरह से नामदेव महाराज के पदों से माना जाता है।

घुमान में रहते हुए नामदेव महाराज ने यह कार्य इतनी कुशलता से किया कि धीरे-धीरे पंजाब में सर्वत्र जन-जागृति की लहर दौड़ गयी। इनकी इस यात्रा के सौ वर्ष पश्चात् सिख-सम्प्रदाय का उदय हुआ। घुमान में इनके कई प्रख्यात शिष्य हुए, जिनमें मुख्य थे—

१. विष्णुस्वामी—ये मथुरा-वृन्दावन के ब्राह्मण थे।
२. बहोरदास—ये पंजाबी दर्जी थे।
३. जाल्लो बढ़ई—ये 'भटिवाल' के रहनेवाले थे।
४. केसो कलाधारी—ये पंजाबी ब्राह्मण थे और गुरुदासपुर जिले के 'तारा' ग्राम के निवासी थे।
५. लध्धा खत्री—ये किराना की दूकान करते थे और 'सखोवाल' ग्राम के निवासी थे।

ये सभी सिद्ध भक्त थे और उन्होंने नामदेव महाराज की पण्ढरपुर-वापसी के बाद इनके कार्य को उसी निष्ठा और तत्परता से आगे बढ़ाया। घुमान ग्राम में नामदेव महाराज का एक मन्दिर भी बनवाया गया है, जहाँ माघ शुक्ल द्वितीया को मेला होता है। पंजाब में अधिकांश दर्जी नामदेव महाराज के अनुयायी हैं। इन्हें 'चिम्बा' कहा जाता है। ये लोग तुलसी-माला धारण करते हैं, एकादशी-व्रत रखते हैं एवं रामनवमी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, नामदेव की जयन्ती आदि पुण्यतिथियों पर महोत्सव करते हैं। पंजाब एवं राजस्थान में इन लोगों द्वारा अनेकानेक मन्दिर बनवाये गये हैं।

हरिद्वार से थोड़ी दूर पर स्थित 'ज्वालापुर' में नामदेव महाराज का मठ है। पंजाब में लाहौर, अमृतसर, गुरुदासपुर, लायलपुर, जालन्धर, लुधियाना, अम्बाला, रोहतक, भिवानी एवं हिसार में और राजस्थान में जयपुर, भरतपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर आदि स्थानों पर सन्त नामदेव महाराज के बड़े और सार्व-जनिक मन्दिर हैं। (सन्दर्भ—पंजाबातील नामदेव—शं० पु० जोशी, पृष्ठ ७०-७१)

अपने पंजाब-प्रवास में नामदेव महाराज ने जो हिन्दी रचनाएँ लिखीं, वे वहाँ के समाज में अत्यन्त लोकप्रिय हुईं। आगे चलकर उनमें से इकसठ पद 'गुरु-ग्रन्थ-साहेब' में समाविष्ट किये गये।

जीवन के अन्तिम दिनों में नामदेव महाराज पण्ढरपुर लौट आये। इनकी सन्नामभावापन्न भक्ति, अद्वितीय कीर्तनरंग तथा ज्ञानदीप-प्रज्वलन द्वारा समाज के सभी वर्णों, विशेषकर कनिष्ठ मानी जानेवाली जातियों में, वारकरी-भक्ति का अभूतपूर्व प्रचार-प्रसार हुआ। उसके फलस्वरूप विविध वर्गों में महान् सन्तों के आविर्भाव के कारण नामदेव महाराज अत्यन्त लोकप्रिय हो गये और वारकरी-सम्प्रदाय के विस्तारक के रूप में अक्षय कीर्ति प्राप्त की। सन् १३५० ई० में आयु के अस्सी वर्ष पूर्ण हो जाने पर इन्होंने भगवान् विट्ठल के मन्दिर के महाद्वार पर सपरिवार समाधि ग्रहण की। इनके पुत्र गोंदा के एक अभंग में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

आवडला नामा देवा विठ्ठलासी।
ठेवी चरणापासी निरन्तर॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामयाची कुडी घातली पायरी।
येता जातां हरी पाय देती॥
आणिकही पाय देती साधुसन्त।
ऐसा पूर्ण भक्त उद्धरिला॥
(गोंदाचे अभंग १५)

'भगवान् विट्ठल को नामदेव बहुत अच्छे लगे, अतः प्रभु ने उन्हें निरन्तर चरणसान्निध्य में रखा। नामदेव की देह उन्होंने मन्दिर के सोपान तले रखी, जिससे प्रभु हरि आते-जाते हुए उस पर चरण रखें तो वह स्पर्शभाव से रोमांचित हों। अन्य साधु-सन्त भी नामदेव-समाधि पर चरण देंगे। इस प्रकार नम्रता की अत्युच्च भूमिका का प्रदर्शन करनेवाले नामदेव का भगवान् ने उद्धार किया।'

सन्त नामदेव महाराज का समाधि-स्थान 'नामदेवाची पायरी' (नामदेव-सीढ़ी) के नाम से प्रख्यात है।

सन्त नामदेव की साहित्य-रचना अभंग (पद) रूप में प्राप्त होती है। अभंगों में स्वानुभूति एवं लोकानुभूतिपरक रचनाएँ समाविष्ट हैं। इनमें कृष्ण-लीला का वर्णनात्मक, अथवा कथात्मक अंश है और सन्त-चरित्रों का रसमय निरूपण भी।

अपनी अभंग-रचना-सम्बन्धी एक प्रसंग का इन्होंने स्वयं वर्णन किया है। एक बार चन्द्रभागा नदी के तट पर पण्ढरपुर में सन्त-सभा एकत्र थी। वहाँ वाल्मीकि रामायण के सन्दर्भ में चर्चा हुई कि मुनि ने शतकोटि ग्रन्थ निर्मित किया। यह सुनकर नामदेव बहुत दुःखी हुए। मन्दिर में आकर प्रभु से कहा, "मेरा जन्म तो वृथा ही हुआ। तुम्हारी कोई सेवा मैंने नहीं की। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारी सेवा में शतकोटि अभंगों की रचना करूँगा। आप मेरा प्रण पूर्ण कीजिये।" प्रभु ने कहा, "नामा, अब कलियुग में आयु थोड़ी होती है। तुम्हारा प्रण पूरा कैसे होगा?" तब नामदेव महाराज ने प्रभु से कहा कि "यदि मेरा प्रण पूरा न हुआ तो अपनी जिह्वा उतार दूँगा।" ऐसी स्थिति देखकर प्रभु द्रवित हो गये—

निश्चय पाहूनि उपजली दया।
स्वामी देवराया पाण्डुरंगा॥
सारजेसी सांगे भीमातीरी हरी।
बैस जिव्हेवरी नामयाच्या॥
लाडकें लडिवाळ नामा माझे तान्हें।
तयाला मजवीण कोण आहे॥
मजवर त्याचे फार असे ऋण।
होईन उत्तीर्ण ऐवढ्याने॥
नामा म्हणे हातीं बांधोनिया वह्या।
बैसे लिहावया पाण्डुरंग॥
(अभंग १४०५)

'नामदेव का ऐसा निश्चय देखकर स्वामी देवराय पाण्डुरंग के मन में दया उत्पन्न हुई। उन्होंने शारदा-देवी से कहा कि तुम नामदेव की जिह्वा पर निवास करो। नामा मेरा लाड़ला दुलारा शिशु है, उसका मेरे सिवा है ही कौन? मुझ पर उसका बड़ा ऋण है, इतना करके मैं उससे उऋण हो सकूँगा। नामदेव महाराज कहते हैं कि इतना कहकर भगवान् पाण्डुरंग ने बहियाँ आदि साहित्य तैयार किया और हाथ बाँधकर लिखने बैठ गये।'

वर्तमान समय में नामदेव महाराज के कुल २३७३ अभंग प्राप्त होते हैं। साधारण तौर पर इन अभंगों के तीन वर्ग हैं—१. श्रीकृष्ण-चरित्र, २. सन्त-चरित्र एवं ३. आत्मानुभूतिपरक अभंग।

श्रीकृष्ण-चरित्र के अन्तर्गत बाल-क्रीड़ा, श्रीकृष्ण-लीला, श्री राम-माहात्म्य, श्री विठ्ठल-माहात्म्य, शिव-रात्र-माहात्म्य, तुलसी-माहात्म्य, गंगा-माहात्म्य आदि उल्लेखनीय हैं। सन्त-चरित्र के अन्तर्गत श्री ज्ञानेश्वर महाराज का आदि (पूर्वज) चरित्र, श्री ज्ञानेश्वर-समाधि-महिमा, श्री ज्ञानदेव-समाधि, श्री सोपानदेव-समाधि, श्री मुक्ताई-समाधि, श्री निवृत्तिनाथ-समाधि, श्री ज्ञानेश्वर महाराज से भेंट हेतु नामदेव का हठ, पौराणिक चरित्र एवं कथाएँ, जिनमें दशावतार-वर्णन, शुकाख्यान, द्रोणपर्व, म्हाळसेन-कथा, हरिश्चन्द्र-चरित्र, श्रीयाळ-चरित्र, प्रह्लाद-चरित्र, ध्रुव-चरित्र, उपमन्यु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरित्र, सुदामा-चरित्र, भीष्म-प्रतिज्ञा, रावण-मन्दोदरी-संवाद, नक्र-उद्धार आदि प्रमुख हैं। समकालीन सन्त-चरित्रों में जनाबाई, सावतामाळी, गोरोबा कुम्हार, राका कुम्हार, नरसी मेहता, चोखामेळा, सोयराबाई आदि के चरित्र नामदेव महाराज ने लिखे हैं। उन्होंने अपना स्वयं का 'नामदेव-चरित्र' भी लिखा है, जो आत्मानुभूतिपरक भी कहा जा सकता है। आत्मानुभूतिपरक अभंगों में नामदेव महाराज द्वारा प्रभु से किया गया संवाद अत्यन्त हृदयग्राही है। आत्मसुख-प्राप्ति के लिए एवं प्राप्ति के पश्चात् के उनके वचन व पद प्रेमा-भक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। भक्त-लीला, ज्ञानोत्तर-भक्ति एवं अद्वैत-भक्ति का अद्वितीय दिग्दर्शन इन अभंगों में होता है।

नामदेव महाराज की भक्ति-भागीरथी ने पण्ढरपुर से पेशावर तक सारा देश सिंचित कर दिया। उनकी प्रेमाभक्ति का स्वरूप उनके आत्मनिवेदनपरक अभंगों में प्रकट हुआ है—

शरीर प्राणांचे देऊन बलिदान।
साधावें निदान प्रेमभक्ति॥
हेंचि नित्य मागे तया श्रीवल्लभा।
याहुनी दुर्लभ आन नाहीं॥

हरिदासांचा संग हरिकथा अनुराग।
हेंचि परमभाग्य पुण्यरूप॥
सर्वभावें करूनी सर्वभूतीं करुणा।
सर्वत्र देखणा विठ्ठलरूप॥

विषयीं विकृती नाना नित्य प्राप्ती।
हृदयीं कृष्णमूर्ती वसे सदा॥
नामा म्हणे तो केशव कृपासिन्धु।
देईल भक्तिबोधु प्रेमसुखें॥

(अभंग १७२४)

'शरीर-प्राणों का बलिदान देकर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण के सब व्यवहार भगवत्सम्मुख करके, अपने प्रेम का सर्वस्व प्रभु को देकर प्रेम-भक्ति साध्य कर लेनी चाहिए। उस श्रीवल्लभ से यही नित्य माँगता हूँ। इससे दुर्लभ कहीं कुछ है ही नहीं। यही एकमात्र पुरुषार्थ है जो जीव का साध्य है और पुण्यरूप परम-भाग्य है। हरिदासों का संग-साथ और हरि-कथा से अनुराग ही जीवन का परम साध्य है। अतः सर्वभूतों के प्रति करुणाभाव रखते हुए सर्वत्र विलोकनीय विठ्ठल-रूप ही देखना चाहिए। नित्य ही नाना विषयों, विकृतियों का प्रवाह हम तक बहा आता है, परन्तु हमें सदा सर्वत्र कृष्णरूप हृदय में धारण कर विचरण करना चाहिए, ताकि हृदय में वही त्रिविक्रम रहें। इस प्रकार की रहनी से, नामदेव महाराज कहते हैं, कृपासिन्धु केशव भक्ति-बोध और प्रेम-सुख प्रदान करते हैं।'

नामदेव महाराज की भक्ति-पद्धति अत्यन्त सरस है। प्रभु से प्रेम-कलह करना, उन पर अपना अधिकार प्रस्थापित करना इन्हें अत्यन्त प्रिय है। श्रीकृष्ण से तादात्म्य प्राप्त है, परन्तु फिर भी भक्त की रुचि का महत्त्व है और नामदेव महाराज जब विठ्ठल प्रभु की आराधना करते हैं, उनसे आत्मनिवेदन करते हैं, तब इनमें आन्तरिक प्रेमाभक्ति का उफान-सा आ जाता है। उनकी दृष्टि में यद्यपि विठ्ठल और कृष्ण एक ही हैं, तथापि इनकी कृष्ण-भक्तिपरक रचना अधिकांशतः बहिर्मुख स्वरूप की है। उसमें कथात्मकता होने के कारण इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मकता अधिक है।

नामदेव महाराज का श्रीकृष्ण-लीला-गायन श्रीमद्भागवत पर आधारित है। भागवत में वर्णित सम्पूर्ण कृष्ण-चरित्र इन्होंने आठ-दस अभंगों की मालिका में संग्रथित किया है। वह श्रीकृष्ण-कथा विधिवत् कह रहे हैं। अतः गणेश, सरस्वती, प्रह्लाद, व्यास, नारद, वासुदेव आदि की वन्दना करने के बाद श्रीकृष्ण की प्रार्थना है और तब कथा प्रारम्भ होती है। फिर प्रसंगानुसार पूतना-वध, वन-विहार, बाल-क्रीड़ा, माखन-चोरी, उलाहने, श्रीकृष्ण की नटखटी आदि का ये अत्यन्त सरसता से वर्णन करते हैं। फिर गोपी-कीड़ा, मुरली-वादन, रास-क्रीड़ा, गोपी-वस्त्र-हरण, श्रीकृष्ण का मथुरा-गमन, गोपी-विलाप आदि पर अनेकानेक सुन्दर अभंग लिखे गये हैं। श्री राधा-वर्णन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी किया गया है और गोपिका-विरह भी वर्णित है। इस प्रकार नामदेव द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-कथा संक्षिप्त होते हुए भी सरस है।

श्रीकृष्ण-लीला में श्रीकृष्ण के विविध रूपों का दर्शन होता है। ब्रह्मदेव को दर्शाया गया शिशु एवं बालकृष्ण-रूप, गोप-वेश, श्यामल कृष्ण आदि कितने ही मनोरम रूपों का अंकन नामदेव महाराज ने किया है।

त्रिभंगी मुद्रा में खड़े श्रीकृष्ण का रूप देखिये :

त्रिभंगी देहुडे उभे वृन्दावनी।
वेणू चक्रपाणी वाजवितो॥
तयावरी गायी टाकिताती माना।
बाळे स्तनपाना विसरती॥

(अभंग १२५)

'श्रीकृष्ण त्रिभंगी मुद्रा में डेढ़ पैर से खड़े होकर मुरली बजा रहे हैं। वह चक्रपाणि—शस्त्र-धारणकर्ता, भक्तमनरंजनार्थ वेणु-वादन में निमग्न है। गौएँ उनके कंधे पर अपनी गर्दन रखकर सुध-बुध भूल गयी हैं और उनके बछड़े दूध पीना भूलकर प्रभु की स्वरलहरी में डूब गये हैं।'

इस रूप और वेणु-वादन का प्रभाव ऐसा है कि चर-अचर सृष्टि स्तब्ध हो गयी है। सबका देहभाव छूट गया है। नामदेव महाराज कहते हैं कि देवांगनाएँ आकाश में खड़ी सुध-बुध भूलकर श्रीकृष्ण का रूप निहार रही हैं।

नन्हें-से प्रभु यशोदा के आँगन में घुटनों से चल रहे हैं—उस शिशुरूप की शोभा का वर्णन सन्त नामदेव को अत्यन्त प्रिय है। ये कहते हैं, "उस मुख का क्या वर्णन करूँ? चन्द्रबिम्ब जैसा कहूँ तो कोटि चन्द्रों की प्रभा इस कृष्ण-मूर्ति में समायी हुई है। जब प्रभु आँगन में घुटनों से चलते हैं तो चाँदनी और भी उजली, और भी प्रभामय हो जाती है। ऐसे प्रभु को निहार रही गोपिकाएँ अत्यन्त सुखी हैं। कितनी धन्य हैं वे?" और

कानींचीं कुण्डलें गुरुशुक्र बिंबले।
शिरीं ते शोभलें पिंपळपान॥
कटीं वाघनखें साजिरी ते सरी।
कडदोरा वरी राजसाळी॥
सुकुमार दोंदिलें किंकिणी कटीं तटीं।
चरणी नाद उठे नेपुरांचा॥

(अभंग २५८)

'प्रभु के कानों में जो कुण्डल हैं उनमें इतना प्रकाश है, मानों गुरु और शुक्र तारे जड़ित हैं और उनके शीश पर पीपल-पत्र शोभायमान है, कटि में बघनखा है, गले में स्वर्ण-शृंखला है और उस राजस मोहक प्रभु की कमर में कटिसूत्र है जो अत्यन्त सुन्दर है। उनका पेट बहुत ही सुकुमार है और कटि में पड़ी हुई किंकिणी तथा चरणों के नूपुरों का मधुर-मधुर रव हो रहा है। यह नाद कितना लुभावना है?'

गोप-वेष में प्रभु की सुन्दरता सहस्रगुना बढ़ जाती है। नामदेव महाराज इस चित्र का अंकन करते हुए कहते हैं—

खांद्यावरी पावा कस्तुरीचा टिळा।
चालत गोपाळ गाईमागें॥
यमुने पाबळीं गोप पाचारीत।
सिदोऱ्या शोभत पाठीवरी॥
अतीं पंक्ति करी त्या गोपाळांच्या।
संगें गोविन्द त्यांच्या अखण्डित॥
नामा म्हणे बोनें विटो देऊं नको।
वैकुण्ठनायका सांभाळावें॥

(अभंग २३१)

'भगवान् गोपालकृष्ण गौओं के पीछे चल रहे हैं, उनके कन्धे पर मुरली है, माथे पर कस्तूरी-तिलक है। यमुना-तीर पर चलते हुए वे गोप-बालकों को हाँक दे-देकर बुला रहे हैं और सबकी पीठ पर तिनके (मध्याह्न-भोज) की गठरियाँ शोभित हैं। प्रभु समस्त गोपों की पंक्तियाँ बनाते हैं। भगवान् गोविन्द सदा-सर्वदा अखण्ड रूप से उन भाग्यशाली गोपजनों के साथ हैं। नामदेव महाराज कहते हैं, हे गोपगण!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपना मन प्रभु से कभी भी विरक्त न होने देना। इन वैकुण्ठनायक को सदैव प्रयत्न करके सँभालना।'

इस साँवले कृष्ण से आत्यन्तिक प्रेम करनेवाली गोपिका स्वयं भी कृष्णवेष धारण करती हैं, उससे मिलने जाने के लिए। रात काली है, गगरी भी काली, माई री! यह जमुन-जल भी काला ही है। घूंघट काला है, हाथ के वलय (बिलवर) कंकन काले हैं, गले में काले मोतियों की एकावली है, वह भी है काली। माई री! मैं काली, मेरी अँगिया काली। जो साड़ी पहनी है वह भी काली, इसीलिए—

एकली पाणिया नच जाय साजणी।
सवें पाठवा मूर्ति सांवळी वो माय॥
विष्णुदास नाम्याची स्वामिनी काळी।
कृष्णमूर्ति बहु काळी वो माय॥

(अभंग २५५)

'हे माई! मैं अकेली पानी भरने नहीं जाऊँगी। सजनी! मेरे संग वह साँवली मूर्ति भेजो। विष्णुदास नामा की स्वामिनी वह कृष्णमूर्ति बहुत साँवली है। माई री! उसीने मेरा तन-मन हर लिया है।'

श्री नामदेव महाराज विरचित श्रीकृष्ण-कथा भागवत-पुराण के अनुसार है, परन्तु उसमें राधा-प्रसंग, श्री राधिका की भक्ति एवं माहात्म्य-ज्ञान प्रमुखता से वर्णित है। राधा-चरित के ऐसे कई प्रसंग वर्णित हैं, जो विभिन्न अवस्थाओं और स्थितियों में घटित हैं।

श्री नामदेव महाराज की राधिका एक बार नन्हें-से शिशु कृष्ण को देखने नन्द-गृह जाती हैं। रोते बच्चे को गोद में लेते ही वह चुप हो जाता है। माँ यशोदा कहती हैं, राधा! इसे तुम अपने घर ले जाकर खिलाओ। राधा कृष्ण को घर ले आती हैं।

मन्दिरा नेवोनि पलगी बैसविला।
म्हणत हरीला तयेवेळी॥
ऐसिया समयीं थोर तू अससी।
तरी हृषिकेशी बरे होते॥

(अभंग ८४)

'राधा प्रभु को अपने मन्दिर में ले जाकर पलंग पर बैठा देती है और श्रीहरि से कहती है कि ऐसे समय में यदि तुम युवा हुए होते तो कितना अच्छा होता।' उनका भाव जानकर प्रभु ने युवक-रूप धारण किया और श्रीराधिका को सुख दिया। परन्तु इतने में ही राधा के पति 'अनया' आ गये, हरि पुनः शिशु हुए। यह प्रसंग पुनः पुनः घटित होने लगा और **'सुखशयनी राधा भोगित अनन्ता। गोकुळांत वार्ता प्रगटली'** 'सुखशय्या पर राधिका अनन्त का सुखोपभोग लेती है, यह वार्ता अन्ततः सारे गोकुल में प्रकट हो गयी' और राधा-कृष्ण का मिलन इस बाधा के कारण खण्डित हो गया। राधा मन ही मन बड़ी दुःखी हुई। प्रभु भी भक्तिमती राधा के वियोग में खो-से गये। अब प्रातः-काल राधा नन्द-सदन से होते हुए पानी भरने जाया करती है तो कृष्ण को गो-दोहन करते देख वहीं रुककर प्रभु को निहारने लग जाती है। और प्रभु—

विसरे गोदोहन वृषभाखाली बैसत।
कृष्णाजीचे चित्त वेधियेले॥

(अभंग ८६)

'गोदोहन भूल जाते हैं और दूध दुहने के लिए बैल के नीचे ही बैठते हैं, ऐसा कृष्णजी का चित्र हृदय में बिंध गया है।'

माँ यशोदा सब कुछ देखती हैं और राधा को फटकारती हैं। इधर कृष्ण भी साथियों को इकट्ठा कर राधा के घर के सामने ही खेलते रहते हैं। राधा—

विसरोनी मन्थन रित्या डेरियांत।
रवी फिरवित गरगरां॥

(अभंग ८७)

'मन्थन करना भूलकर खाली मटके में ही मथनी डालकर गरगर घुमाने लगती है।' राधा की सास यह देखकर संतप्त हो जाती है, कृष्ण को डाँटती है, राधा को फटकारती है। यह सब असह्य होकर दोपहर में एकान्त में राधा यमुना-तट पर जाकर रोती-कलपती है। प्रभु जान जाते हैं। सोती हुई यशोदा की गोद से छूटकर उसके पास पहुँचते हैं। श्रीपति राधिका को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझाने लगते हैं। इतने में माँ हरि को न पाकर उन्हें खोजती हुई यमुना-तीर पर आ जाती हैं। अब प्रभु रेत में लोट लगाकर रोते-चिल्लाते हैं। वे माँ से कहते हैं, "राधा ने मेरी गेंद चुरा ली है।" राधिका कुछ समझ नहीं पाती, परन्तु उसके वस्त्र से गेंद निकल आती है।

चेंडु देखोनिया यशोदा कोपली।
म्हणे तये वेळी राधिकेस ॥
महा नष्ट तुम्हीं अवघिया गवळणी।
माझा चक्रपाणी ब्रह्मचारी ॥
इतुके ऐकोनि राधा ते चालिली।
स्वगृहासी गेली आपुलिया ॥
राधेचिया मनीं समजलें पूर्ण।
ब्रह्म सनातन श्रीकृष्ण हा ॥

(अभंग ८९)

'वह कन्दुक देखकर यशोदा क्रोधित हो गयी और राधा से बोली, तुम सारी गोकुल की गोपियाँ महा नष्ट हो, बड़ी खराब हो। तुम्हीं मेरे बालकृष्ण को छेड़ती रहती हो। मेरा चक्रपाणि तो ब्रह्मचारी है, निर्दोष है। यह सुनकर राधा माहात्म्य-ज्ञान से अभिभूत हो गयी। उनके मन में यह सत्य पूरी तरह से उजागर हो गया कि श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म, सनातन परमात्मा है।'

इस तरह श्री राधिका ज्ञानोत्तर भक्ति के परमानन्द को प्राप्त हुई।

वृन्दावन में वेणुनाद होते ही सारी गोपिकाएँ जिस स्थिति में हैं, वैसी ही दौड़ी हुई श्रीकृष्ण के सम्मुख पहुँच जाती हैं। गोपियों की इस व्याकुलता का वर्णन नामदेव महाराज ने भागवत-पुराण के अनुसार ही किया है। इसके बाद रास-क्रीड़ा आरम्भ होती है :

कामाग्नीने कृष्ण धरिती सकळ।
मांडियेला खेळ मन्मथाचा ॥
एक एक नारी एक एक कृष्ण।
करावया पूर्ण इच्छा त्यांची ॥
प्रकृतीस ऐसा भुलला गोविन्द।
करिती आनन्द नामा म्हणे ॥

(अभंग १५०)

'सारी गोपियाँ कामवश होकर कृष्ण की ओर आकर्षित होती हैं और उनकी प्राप्ति की कामना करती हैं। इसीलिए प्रभु मन्मथ का खेल रचते हैं। रास में एक-एक गोपी के साथ एक-एक कृष्ण अवतरित होकर सबकी इच्छा पूर्ण करते हैं। अपनी प्रकृति, अपनी भक्ति के प्रति प्रभु गोविन्द ऐसे रीझ गये, गोपियों की इच्छा के प्रति ऐसे समर्पित हो गये कि उन्होंने अपने भक्तों को, अपनी सृष्टि को, अपनी प्रकृति, को परमानन्द से भर दिया। नामा कहता है, इस प्रकार वे सब आनन्द से सराबोर हो गये।'

रास-क्रीड़ा में नामदेव गोपियों के गर्व, श्रीकृष्ण के साथ एक गोपी के होने, गोपियों के मत्सर, ईर्ष्या आदि का मनोहर वर्णन करते हैं। रास-क्रीड़ा के मध्य में ही इस तरह कृष्ण द्वारा छोड़ दिये जाने के कारण गोपियाँ परम दुःखी होकर विलाप करने लगती हैं। वे कृष्ण को अपने प्राण-हरण के लिए जिम्मेदार ठहराती हुई कहती हैं—

वाजवोनी वेणू पसरिलें जाळें।
आम्हांसी न कळे कपटिया तूं ॥

'तुमने मुरली बजाकर जाल बिछाया। हमें क्या पता था कि तुम ऐसे कपटी हो?' हरि, अगर अब आकर नहीं मिलोगे तो हम प्राण ही तज देंगी और तुम हत्या के अपराधी होगे। इस तरह गोपियों का गर्व-परिहार कर, उनमें भक्ति के लिए वांछित दैन्य उत्पन्न कर प्रभु प्रकट होते हैं। उनका काम शान्त करके उन्हें ब्रह्मस्वरूप बना देते हैं।

अपने अत्यन्त रसीले गोपी-गीतों 'गौळणी' में नामदेव महाराज ने गोपियों के प्रभु के प्रति वात्सल्य, प्रेम, मिलन, विरह, सभी का हार्दिकता एवं आन्तरिक आवेग के साथ वर्णन किया है। घुटनों से चलनेवाले कृष्ण को गोपियाँ गोद में उठाकर उसका चुम्बन लेती हैं और कहती हैं—

येतो परिमळु।
नवनीताचा गे सये ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सखी री ! इसके मुख से माखन का सुवास आता है।' वे नन्हें-से कृष्ण को प्राणपण से प्यार करती हैं। उससे छेड़छाड़ करती हैं। उसे तंग करती हैं। श्रीकृष्ण को शिकायतें यशोदा माँ से करने में उन्हें बहुत आनन्द आता है। कई बार माँ कृष्ण को डाँटती हैं, कई बार गोपियों से हरि का पक्ष लेकर उलझती हैं। वस्तुतः भक्त के वियोग से दुःखी भगवान् ही भक्तों को प्रेम-सुख देने और उनसे स्वयं लेने के लिए गोकुल में गोप-वेश में अवतरित हुआ है। इसीलिए गोकुल की गोपियों में कृष्ण ऐसे समाहित हो गये थे कि दही-दूध के घड़े सिर पर लेकर बेचने के लिए जाने पर वे मथुरा के बाजार में पुकारकर कहती हैं कि **'गोविन्द घ्या, गोविन्द घ्या'** 'गोविन्द लो, गोविन्द लो।' क्योंकि—

दहीं म्हणावेसे ठेलें।
वाचे गोविन्द पैं आलें॥
चित्त चैतन्य रंगलें।
कान्हु चरणीं बाई वो॥

(अभंग २८०)

'दही' शब्द उच्चारित करना था, किन्तु वाणी से 'गोविन्द' शब्द ही प्रकट हुआ। इस कन्हैया के चरणों में बाई री ! मैं ऐसी रँग गयी, मेरा चित्त-चैतन्य उसमें ऐसा रँग गया कि उसके नाम के सिवा किसी दूसरी वस्तु का ध्यान ही न रहा।'

नामदेव महाराज की 'गौळणी' अर्थात् गोपी-गीतों में जो भावाद्रता, भाषा की सहजता और प्रसादगुण है उससे इस साहित्य का रस नित्य टटका ही है, उसकी मधुरता अभंग है। इनकी रचनाओं में यद्यपि गोपी-विरह के प्रसंग थोड़े ही हैं, परन्तु उनमें से झाँक रही कृष्ण-मिलनेच्छा की तीव्रता अद्वितीय है। इस विरह में इनकी गोपी सर्वत्र कृष्ण का ही दर्शन करती है—

कृष्ण अनुसंगे रंगली कामिनी।
कामधामें गेलीं गुणा विरोनी॥
होती बहुत जन्में वियोगें शिणली।
आप नाठवे परसुखें मिनली॥

मनें करूनिया विषयांचे संकल्प।
तंव वे अवघें होय कृष्णरूप॥
दृष्टि देखणें जे जें आवडे।
वेणू बाहे तेथें उभें देहुडें॥

सुखशयनीं स्वप्नीं देखे सांवळा।
कण्ठी कौस्तुभ रुळे वरी वनमाळा॥
जीवें धांवूनि आलिंगी प्रीति।
तंव ते आर्ती होय कृष्णमूर्ति॥

देह परतोनी मागुते संभाळी।
तंव स्वयें सिद्ध आपण वनमाळी॥
नामया स्वामी जीविंचा जिवलगु।
कृष्णसुखाचा सुखबाध अन्तरंगु॥

(अभंग २८४)

'एक कामिनी, एक गोपी कृष्ण के ध्यान में रँग गयी, अपना सारा कामधाम, गुण-गौरव भूल गयी। वह प्रभु के वियोग में कई जन्मों से कष्ट पा रही थी, शिथिल हो गयी थी, अतः प्रभु को देखते ही वह अपना आपा मिटाकर, जीव का अहंकार भूलकर, परमसुख में परमेश्वर के ध्यान में डूब गयी। अब जब-जब भी वह किसी विषय या विषय-सुख का संकल्प करती तो वह सारा का सारा कृष्णरूप ही हो जाता है। दृष्टि को जो-जो जहाँ-जहाँ देखना अच्छा लगता, वहीं-वहीं वेणुधारी त्रिभंगी मुद्रा में खड़ा प्रभु ही नजर आता। सुखनिद्रा में, स्वप्न में भी वह साँवला श्याम दिखाई पड़ता है जिसके गले में कौस्तुभ है, ऊपर वनमाला शोभित है। अगर आतुरतापूर्वक दौड़कर जीव किसीको प्रीतिपूर्वक आलिंगन देता है तो वह कृष्ण-मूर्ति ही हो जाता है। वह होश सँभालकर पुनः देह सँभालती है, आत्मभाव में आती है तो देखती है कि वह स्वयं वनमाली है। वस्तुतः वह गोपी, नामया के स्वामी श्रीकृष्ण-सुख के अबाध सुख में डूब गयी है और उसे कोई बाधा सहन नहीं होती। नामदेव के स्वामी जीव के अभिन्न मित्र हैं, सखा हैं। वे अन्तरंग में सदैव अधिष्ठित हैं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपी-विरह-प्रसंग में भगवान् का मथुरा-गमन और उस समय गोपिकाओं की अवस्था का चित्रण भी इन्होंने बड़ी मार्मिकता से किया है। गोपियों के शोक की सीमा नहीं थी। जड़ जीव भी सूखने लगे और श्रीकृष्ण के वियोग-दुःख से पाषाण भी पिघल गये। यह सारा शोक भगवान् भी अनुभव करते हैं— **'पाहूनियां प्रेमा भुलला गोविन्द। रडतसे मन्द मन्द तेव्हां।'** 'यह भक्ति-प्रेम देखकर गोविन्द भी उसमें सराबोर हो गये और वे मन्द-मन्द, अन्दर ही अन्दर रुदन कर रहे थे।' बाद में जब भगवान् के भेजे उद्धव गोकुल-ग्राम आये तो गोपियों ने व्यंग्योक्तियों से उनकी और उनके सखा की अच्छी खबर ली, कुब्जा पर ताने कसे और शोक, विरह, मत्सर-विगलित अनेक उद्‌गार प्रकट किये। एक बार आहतभाव से वे कह उठीं—

मेल्या गोपिका त्यांची राख झाली।
वाजवी मुरली तया जागां॥

'वे गोपिकाएँ मर गयीं, राख हो गयीं, प्रियतम की विरहाग्नि में जलकर वे खाक बन गयीं। श्री कृष्ण से जाकर कहो कि अब आकर उसी जगह पर खड़े होकर मुरली बजायें।' इस उद्‌बोधक भाषण में हृदय की आर्तता उँडेलकर गोपियाँ जताना चाहती हैं कि अब जीवन केवल भार है। तुम इस बहाने ही सही, आओ, तभी हमारे जी को शान्ति मिलेगी। परन्तु उसके बाद—

नामा म्हणे त्यांसी सांगे ब्रह्मज्ञान।
श्रीकृष्णकृपेनें स्थिरावल्या॥

(अभंग २०६)

'नामा कहते हैं कि उद्धव ने उन्हें ब्रह्मज्ञान बताया और श्रीकृष्ण की कृपा से वे स्थिर हो गयीं।'

श्री नामदेव महाराज की कृष्ण-भक्ति का यह स्वरूप उन्हें उत्कृष्ट कोटि का भक्त कवि सिद्ध करता है। वे सगुण भक्ति के आदर्श रेखांकित करते हैं, अनुभूति और अभिव्यक्ति में उसे यथातथ्य प्रकट करते हैं। अतएव मराठी-साहित्य में श्री नामदेव महाराज के अभंगों में मधुरता, शाश्वतता और अपूर्वता सहज दृष्टिगोचर होती है। भक्त के रूप में भी नामदेव महाराज **'न भूतो न भविष्यति'** कोटि के हैं। प्रभु को जबर्दस्ती दूध पिलानेवाला और हँसानेवाला, ऐसा भक्त निश्चय ही दुर्लभ है—

दूध पियो गोविन्द लाला॥
काला बछरा कपिला गाई,
दूध दुवाहत नामा जाई॥
सोने का गडवा दूध ने भरिया,
पिवो नारायण आगे धरिया॥
परभुवन की मूरत दूध न,
पिबत सीर पछार नामा रोवत॥
ऐसा भगत मैं कबु न पाया,
नामदेव ने देव हँसाया॥

(अभंग हिन्दी पद, २१४६)

प्र० न० जो०

वि० पं०

निरंजन माधव

निरंजन माधव एक श्रेष्ठ मराठी भक्त कवि हैं। इनका जन्म दक्षिण भारत के कांची क्षेत्र में हुआ था। माधवनन्दन, कवि निरंजन, निरंजन योगी आदि नामों से भी ये पहचाने जाते हैं। इनके पिता का नाम माधव और माता का नाम भागीरथी था। बाजीराव पेशवा (प्रथम) के समय निरंजन माधव सातारा आये। लक्ष्मीधर बर्वे शास्त्री के पास इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। लक्ष्मीधर ने इनको महामन्त्र की दीक्षा देकर दत्त-सम्प्रदाय का उपदेश किया। तदनन्तर बाजीराव ने इनकी नियुक्ति तंजाऊर के वकील-पद पर की। परन्तु इनका मनःपिण्ड अध्यात्मवादी था। अतः तंजाऊर में इनका मन नहीं लगा। राजकारण से सन्धि प्राप्त होते ही ये अध्यात्म एवं परमार्थ में लीन हो गये। ध्यान-धारणा व जप-साधना से इन्होंने साक्षात्कार प्राप्त किया। राजाओं के मण्डल में इनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान-सम्मान बढ़ गया। कन्नड़, हिन्दी, गुजराती भाषाएँ इनको अवगत थीं।

सन् १७२७ ई० में निरंजन माधव पुणे आये। इसी समय गुरुदेव लक्ष्मीधरजी का देहान्त हो जाने के कारण ये उदास हो गये। स्वप्न में इनको गुरु ने उपदेश दिया। इनको बापजी पण्डित से योग-विद्या प्राप्त हुई। तब इनको निरंजन नाम दिया गया। निरंजन माधव बाजीराव की आज्ञा से पुर्तगालियों के वकील हुए। इसके बाद इन्होंने तीर्थयात्रा की। बेलूर गाँव में इन्हें दैवी चमत्कार से सुन्दर कृष्ण की मूर्ति का लाभ हुआ। इस मूर्ति से इनकी घनिष्ठ प्रीति हो गयी।

इनका 'चिद्बोध-रामायण' नामक ग्रन्थ सप्तकाण्डात्मक है। इन्होंने 'ज्ञानेश्वर-विजय' नामक एक ग्रन्थ ज्ञानेश्वर महाराज के चरित्र पर लिखा है। इनका 'सुभद्राचम्पू' मराठी का एकमेव चम्पू-काव्य है। सुभद्रार्जुन-विवाह, वृत्त-मुक्तावलि, वृत्तवनमाला, वृत्तावतंस आदि ग्रन्थ इन्होंने वृत्तविषयक लिखे हैं। 'सम्प्रदायपरिमल' में इन्होंने आत्मवृत्त लिखा है। निरंजन की पत्नी प्रश्न पूछती है और निरंजन माधव उत्तर देते हैं। 'सम्प्रदायपरिमल' की यही शैली है। इनकी भाषा संस्कृत-प्रचुर एवं लालित्यपूर्ण है। स्थल, प्रसंग, ऋतु आदि के वर्णन ये उत्कृष्ट रीति से करते हैं। मंत्ररामचरित, श्रीनारायणाष्टक, साम्बशिवाष्टक, भवान्यष्टक, श्रीगोदावरी-मानसपूजा, श्रीभागीरथी-स्तोत्र, श्रीरामकर्णामृत, श्रीतुलसी-स्तोत्र, श्रीवनशंकरी-स्तोत्र, श्रीमहालक्ष्मी-स्तोत्र, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'-स्तोत्र, श्रीविट्ठल-स्तोत्र, श्रीज्ञानेश्वराष्टक आदि स्तोत्र-काव्य इन्होंने लिखे हैं। इनके कुछ स्फुट पद उपलब्ध हैं। एक भावपूर्ण तथा कर्णमधुर स्तोत्र इस प्रकार है :

श्रीसुन्दरं देवकीनन्दनं भजे ॥ ध्रु० ॥
कालीयशासनं । कालमृत्युनाशनम् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यनायकं । भक्तिमुक्तिदायकम् ॥ २ ॥
गोपवृन्दपोषणं । पापकन्दशोषणम् ॥ ३ ॥
रासकेलिकौतुकं । वासुदेवनामकम् ॥ ४ ॥
नन्दगोपबालकं । माधवेयपालकम् ॥ ५ ॥

'व्यंकटेश-स्तोत्र' नामक एक स्तोत्र-काव्य इन्होंने शिखरिणी वृत्त में लिखा है। उसमें इन्होंने यादवपति कृष्ण का कौतुकपूर्ण वर्णन किया है। ये लिखते हैं :

तुझी बाळक्रीडा त्रिभुवनजना मोहित करी ।
बसोनी नंदाच्या सदनिं करिसी जे हितकरी ॥
यशोदा आनन्दाम्बुधि तुज निरीक्षोनि सतता ।
निमग्ना ते झाली चरितरसकल्लोलवितता ॥८१॥

प्रभू तूं गोपाळांसह विचरतां गोधनगणीं ।
तदा केला दैत्यक्षय अमित, त्या कोण विगणी ?
महेन्द्राच्या दर्पा हरुनि धरिला पर्वत करीं,
व्रजाचा कैवारी म्हणविसि महोत्पातनिकरीं ॥८२॥

'श्रीकृष्ण, तेरी बालक्रीड़ा त्रिभुवनजन को मोहित करती है। नन्द-गृह में रहकर तू हितकर प्रयत्न करता है। यशोदा माता तुझे देखकर आनन्द-समुद्र में लीन होती है। वह सतत तेरे चरित-रस में निमग्न रहती है। प्रभो, तू गोपालों तथा गोधन के साथ वन में क्रीड़ा करता है। तूने अमित दैत्यों का क्षय किया है। इस कार्य की गणना नहीं हो सकती। तूने महेन्द्र का दर्प-हरण किया, गोवर्धन पर्वत करों पर धारण किया। तू व्रजवासियों का रक्षणकर्ता है। उनके महान् उत्पात तूने दूर किये हैं।'

श्री विट्ठल (बालकृष्ण का ही एक रूप) महाराष्ट्र में प्रसिद्ध हैं। उनसे सम्बद्ध एक उत्कृष्ट स्तोत्र में निरंजन माधव कहते हैं :

लोण्याची नित्य चोरी करिसि म्हणुनि तूं
सांगती गोपदारा ।
मोठ्या रागें यशोदा धरुनि करतळीं
तूजला जं, उदारा ॥
काठी घेवोनि हातीं, करिन म्हणतसे
ताडणा, त्याच काळीं ।
भीतीनें वक्त्रपद्मा निराविसि तिचिया
साश्रुनेत्रीं विशाळीं ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नंदाच्या गेहपंकीं रमसी, नव जशी
विप्रयागीं त्रिशुद्धा।
गायींच्या हुंबरातें प्रतिरव करिसी,
बाहसी मौन वेदां॥
गोपाच्या पुंश्चलींचा सकळहि करिसी
आवडी गेहधंदा।
आलें मातें कळों हें, वश धडसि खरें
भाविकांतें मुकुन्दा॥ २६॥

गोपांचीं काय उष्टीं प्रिय बहु तुजला
लागती, गोपनाथा।
अन्नाचा आजि मोठा दुकळचि पडला
वाटतो साच आतां॥
कोण्या प्रेमें तुला ते वश करिति ? मला
सांग मी त्या प्रकारीं।
भक्तीनें पादपद्में भजुनि, करिन, जी,
दास्यभावें, मुरारी॥ २७॥

'श्री हरि नित्य नवनीत चुराता है। गोपियों की यह शिकायत नित्य की है। यशोदामाता कुपित होकर उसे डाँटती हैं। उसके हाथ में लकड़ी है। उसी समय वह तेरा मुखकमल भीति से देखकर साश्रु होती हैं। विशुद्ध विप्रयाग में श्रीकृष्ण तू कभी नहीं रमता, लेकिन नन्द-गृह के कीचड़ में तू खेलता है। श्रीकृष्ण! तू गाय की ध्वनि के बराबर प्रतिध्वनि करता है। तू मौन वेद को बुलाता है। तू गोप-स्त्रियों के घर में बड़े प्रेम से खेलता है। मैं यह सब जानता हूँ। मुकुन्दा! तू भक्तों के वश में रहता है। गोपनाथ! गोपों के जूठे पदार्थों का सेवन करता है। यह देखकर दुनिया में अकाल पड़ा है, ऐसा लगता है। वे गोप कौन से प्रेम से तुझे वश में करते हैं? तू मुझे यह बता। मैं उस प्रेम से तेरी भक्ति करूँगा। मैं तेरा दास भक्तिभाव से बनूँगा।'

निरंजन माधव ने 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' नामक स्तोत्र में भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य-वर्णन किया है। भगवान् श्रीकृष्ण ॐकारमय है, उसने विश्वरूपी सृष्टि की है। वह सूत्रात्मा कुसुमों में जैसे सुगन्ध रहती है, वैसे ही जड़-जंगम पदार्थों में स्थिर रूप से रहता है। कृष्ण नन्द के साथ खेलता है। गोपियाँ उसे आलिंगन देती हैं। यशोदा उसे स्तनपान कराती हैं। श्रीकृष्ण ने बड़े-बड़े दैत्यों का विनाश किया है। वह भक्तों के विघ्न दूर करता है। गन्धर्वादिक सब उसके गुणगान करते हैं। नारदजी ने भी उसकी प्रार्थना की है। जिसने भारी गोवर्धन पर्वत धारण किया, उसे बालक कैसे कह सकते हैं? उसने समग्र अग्नि भक्षण किया था। अक्रूर का आगमन, व्रज-वधुओं का शोक, चाणूरमल्ल, कंस आदि का वध, पाण्डवों की सहायता, पार्थ और उद्धव को उपदेश इत्यादि का निर्देश निरंजन माधव ने इस स्तोत्र में किया है:

श्रीकृष्ण का माहात्म्य-वर्णन करते हुए ये कहते हैं:

वाणी ही स्तवितां शिणे, निगम तो
त्यालागिं नेणें म्हणे।
तो देवेश विलोकिता व्रजकुळीं
दृष्टी घडो पारणें॥
देवि भूवरुते अपूर्व हरिच्या
पादाम्बुजाचे ठसे।
लोळे त्यांवरि भक्तिनम्र पुरता
सुप्रेम ज्या उल्लसे॥ ८॥

'श्रीकृष्ण का स्तवन करते समय वाणी स्तब्ध हो जाती है। वेद उसका वर्णन करते हुए 'नेति नेति' कहते हैं। ऐसा देवेश व्रजकुल में बालरूप धारण कर खेलता है। यह देखकर दृष्टि सन्तुष्ट होती है। इस भूमि पर श्रीकृष्ण के चरणाम्बुज की छाप देखकर उन पर भक्ति-नम्र लोग बड़े प्रेम से लोटते हैं।'

प्र० न० जो०

निर्मळाबाई

सन्त निर्मळाबाई महाभक्त चोखोबा की छोटी बहन थीं। इनका उपस्थिति-काल १३वीं शती है। इनके पति बंका परमभक्त तथा भाभी सोयराबाई परमभक्तिमती थीं। इस प्रकार भक्त-परिवार में जन्मी और पली निर्मळाबाई स्वयं भी अनन्य निष्ठावान् भक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और उच्चकोटि की कवयित्री बनीं। इन्होंने अपने पति के साथ मिलकर अपने अग्रज चोखोबा को सद्गुरु बनाया था।

एक बार चोखोबा की पत्नी सोयराबाई के पाँव भारी थे और नौ महीने पूरे हो चुके थे। घर में इतनी सामग्री नहीं थी कि घर में बच्चे का जन्म होने पर उसकी साज-सँभाल हो पाती। ऐसी स्थिति में चोखोबा अपनी बहन के घर चले आये कि प्रभु स्वयं सब सँभाल लेंगे। तब भक्तवत्सल भगवान् ने निर्मळा का रूप धारण करके सोयराबाई का जापा (प्रसव) करवाया। निर्मळाबाई के भक्तिप्रेम का वर्णन इनके पति, भाई, भाभी आदि सबने किया है।

इनके द्वारा विरचित चौबीस अभंग प्राप्त होते हैं। इनके अभंगों में करुणा की अन्तर्धारा सतत प्रवहमान है—उनमें प्रभु का रूप-वर्णन तो है, परन्तु लीला-वर्णन अथवा अन्य प्रसंग प्राप्त नहीं होते।

करुणासंवलित इनका एक अभंग देखिये :

चहूंकडे देवा दाटला वणवा।
कां न ये कनवा तुजलागीं॥
सांपडले संधी संसाराचें अंगीं।
सोडवी लगबगीं मायबापा॥
बहु मज उबग आला असे देवा।
धांवे तूं केशवा लवलाही॥
तुजवीण मज कोण गणगोत।
तूंचि माझा हितकर्ता देवा॥
निर्मळा म्हणोनी पायी घाली मिठी।
परतें न लोटीं मायबापा॥

(अभंग १)

'हे भगवान्! चारों ओर सांसारिक आपदाओं का दावानल सुलग रहा है। उसमें फँसे हम लोगों पर तुम्हें दया क्यों नहीं आती? प्रभु, मैं इस संसार की संधि में बहुत बुरी तरह से चपेट में आ गयी हूँ। मेरे माँ-बाप, तू ही मुझे छुड़ा। प्रभु! मुझे इस संसार में कोई रुचि नहीं है। इससे पूरी तरह से ऊब गयी हूँ। तुम दौड़कर आओ और मुझे इस संकट से छुड़ाओ। तुम्हारे बिना मेरा कोई सगा-संबंधी नहीं है और न तो कोई मेरा हितकर्ता ही है। यह कहकर निर्मळा प्रभु-चरणों को आलिंगन करती है, लोट लगाती है और प्रभु से प्रार्थना करती है कि मुझे निराश न करें। अपने चरणों में अवश्य स्थान दें।'

प्रभु के रूप-वर्णन की एक मनोज्ञ झलक निम्नांकित अभंग में देखिये :

आनन्दे वोविया तुम्हांसी गाईन।
जीवें भावें वोवाळीन पायांवरी॥
सुकुमार साजिरी पाउलें गोजिरी।
ते हें मिरवली विटेवरी॥

कटावरी कर धरोनी श्रीहरी।
उभा भीमातीरी पंढरीये॥
महाद्वारीं चोखा तयाची बहीण।
घाली लोटांगण उभयतां॥

निर्मळाबाई कहती हैं—'प्रभु, मैं आनन्दपूर्वक तुम्हारी स्तुति की ओवी (गीत) गाऊँगी। जीवन-भाव सब कुछ तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर दूँगी। तुम्हारी छवि कितनी मधुर है? और ईंट पर परम शोभायमान चरणों का तो कहना ही क्या? वे चरण-कमल अत्यन्त सुकुमार—सज्जित तथा मन को प्रिय लगनेवाले हैं।

श्रीहरि कटि पर हाथ धरकर पण्ढरपुर में भीमा नदी के तट पर खड़े हैं। मन्दिर के महाद्वार में चोखा और उनकी बहन निर्मळा प्रेमपूर्वक प्रभु को निहार रहे हैं और दोनों ही प्रभु-चरणों में लोट रहे हैं।'

एक अन्य अभंग में निर्मळाबाई कहती हैं—"हे प्रभु! तुम अनाथों के नाथ बड़े ही कृपावन्त हो। मुझसे अहोरात्र तुम्हारी सेवा हो। प्रभु, तुम तो भक्तकाज-हेतु, भक्त-परवश होकर अट्ठाईस युगों से यहीं खड़े हो। तुम्हारे वामभाग में देवी रुक्मिणी शोभा पा रही हैं। तुम्हारी विरुदावली के डंके चारों ओर बज रहे हैं। तुम बड़े ही पतितपावन भक्तवत्सल हो। प्रभु, मेरी एकमेव कामना यही है कि तुम मेरी भक्ति-प्रेम की याचना, मेरा प्यार-दुलार पूरा करो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरी लाज रख लो। प्रभु! मैं चोखोबा की बहन कहती हूँ कि भगवान्! ईंट पर चरण धरकर इस मुद्रा में खड़े हुए तुम कितने आशादायी, परममंगल, भक्त-इच्छा पूर्ण करनेवाले हो। अपनी भक्ति, अपना प्रेम मुझे दो।"

प्र० न० जो०

वि० पं०

निळोबा पिंपळनेरकर

पिंपळनेर के प्रसिद्ध सन्त निळोबाराय का जन्म शिरुर में १७वीं-१८वीं शताब्दी में हुआ था। इनका उपनाम मकासरे था। इनके पिता का नाम मुकुन्द और पत्नी का मैनाबाई था। एक समय निळोबा यात्रियों के साथ पण्ढरपुर गये। उस समय इनका शुद्ध और सात्त्विक चित्त विट्ठलभाव की ओर उन्मुख हुआ। रांजणगाव सांडस नामक स्थान के सन्ताजी पवार से इन्हें भक्ति-मार्ग की प्रेरणा मिली। ये सांसारिक आसक्ति से मुक्त हो गये।

इन्होंने देहू गाँव के तुकाराम महाराज की कीर्ति सुनी थी। उनके अभंगों का भाव-सौन्दर्य भी इन्होंने आस्वादित किया था। तुकोबा के दर्शन की लालसा इनके मन में जाग उठी। लेकिन इस समय तुकाराम महाराज वैकुण्ठवासी हो चुके थे। फिर भी निळोबा ने तुकाराम महाराज की भेंट का संकल्प लिया। इन्होंने तुकोबा के सुपुत्र नारायण बोवा से भेंट की। तुकोबा की अभंग वाणी का संग्रह किया। तत्पश्चात् उनके दर्शन के लिए इन्होंने इन्द्रायणी नदी के तट पर अनुष्ठान आरम्भ किया। निळोबा को तुकाराम महाराज का स्वप्न-साक्षात्कार हुआ। इनकी भक्ति कृतार्थ हो गयी। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है :

येऊनियां कृपावंतें।
तुकयास्वामी सद्‌गुरुनाथें॥
हात ठेविला मस्तकीं।
देऊनि प्रसाद केलें सुखी॥
माझी वाढविली मती।
गुण वर्णावया स्फूर्ती॥
निळा म्हणे मी बोलतां।
दिसे परी हे त्याची सत्ता॥

'तुकया स्वामी सद्‌गुरुनाथ आकर मुझ पर कृपावन्त हुए। उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर मुझे प्रसाद देकर सुखरूप किया। उन्होंने मेरी मति वर्धित की। परमेश्वर का गुण-वर्णन करने के लिए प्रेरणा दी। निळोबा कहते हैं कि मैं बोल रहा हूँ, लेकिन यह सर्वसत्ता तुकोबा की ही है।'

इस प्रकार परमार्थ पर मन लगते ही निळोबाराय शिरुर छोड़कर पिंपळनेर चले आये। मुळोजी गाजरे पाटिल नामक भक्त ने इनका स्वागत किया। उन्होंने ही निळोबा को पिंपळनेर में आवास दिया। यहाँ निळोबा ने भजन-कीर्तन करके लोगों को सन्मार्ग दिखाया। सन् १७५३ ई० के आसपास निळोबा ने पिंपळनेर में समाधि ले ली। पिंपळनेर में आज भी वह विठ्ठल-मन्दिर है, उसके निकट प्रवरा नदी बहती है। इसी नदी के तीर पर निळोबा तथा उनके पुत्र भिवबा की समाधि है। इनके काशीनाथ और चन्द्रभागा नामक दो पुत्र और थे।

निळोबाराय की सम्पूर्ण कविता स्फुट अभंगात्मक है। स्त्री-गीत के समान उन्होंने ७६० अभंगों में चांगदेव-चरित्र गाया है। ३३३ श्लोकों में निळोबा ने तुकाराम की स्तुति की है। पण्ढरी, विट्ठल, सद्‌गुरु, सन्त इत्यादि विषयों पर भी इनकी विपुल रचना उपलब्ध है। भक्ति एवं ज्ञान-वैराग्य के संगम का प्रत्यय निळोबा की अभंग-वाणी में मिलता है। निळोबा ने श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ा का वर्णन १४१ अभंगों में किया है। 'गौळण' मराठी सन्तों का एक विशिष्ट अभंग-प्रकार है। ग्वालिन मराठी में गौळण बनी। इस ग्वालिन की कृष्ण के बारे में जो शिकायतें होती हैं, उस अभंग-प्रकार का मराठी में 'गौळण' नाम पड़ा है। निळोबा ने इस प्रकार के 'गौळण' अभंग विपुल मात्रा में लिखे हैं। 'विरहिणी' भी मराठी अभंगों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक प्रकार है। उसमें परमात्मा का विरह-वर्णन किया जाता है। निळोबा ने विरह-गीत ही अधिक लिखे हैं। श्रीकृष्ण-लीला, गोपियों की क्रीड़ा, गोपों की क्रीड़ा, काला इत्यादि प्रसंगों पर श्रीकृष्ण-चरित पर रचित इनके अभंग मराठी काव्य के भूषण माने गये हैं। पुण्डलीक-भक्ति-सामर्थ्य, पण्ढरी-माहात्म्य, श्री-विठ्ठल-माहात्म्य, नाम-महिमा, कीर्तन-महिमा, सन्त-महिमा, देवभक्तों का संवाद, देवभक्तों की एकरूपता, प्रेम-कलह, उपदेश आदि विविध विषयों पर निळोबा महाराज की रचनाएँ उपलब्ध हैं।

श्रीमद्भागवत के आधार पर निळोबा ने श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ा विस्तृत रीति से वर्णन की है। कृष्ण-जन्म, गोकुल में उनका आगमन, यशोदा द्वारा उनका लालन-पालन, पूतना-वध, मामळभट-प्रसंग, वत्सासुर-वध, गोपालन, धेनुकासुर-वध, बकासुर-वध, केसासुर-कथा, गोपियों का प्रेम, कालिय-पराभव, गोवर्धन-धारण, कंस-वध आदि विविध कथा-प्रसंगों का निर्देश निळोबा ने बाल-क्रीड़ा वर्णन करते समय किया है।

निळोबा के 'गौळणी'-गीत अत्यन्त भावपूर्ण हैं। इनके विरह-गीत अत्यन्त मार्मिक हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

कृष्णरूपा वेधिल्या नारी।
देखती अंतरीं तेंचि रूप ॥ १ ॥

गमनीं शयनीं आसनीं भोजनीं।
देखती जनीं-वनीं दृष्टीपुढें ॥ २ ॥

एकान्तीं लोकान्तीं घरीं दारीं बाहेरी।
त्याविण निजाचारीं नेणती दुजें ॥ ३ ॥

निळ म्हणे सर्वहि त्याचा परिवार।
होवोनी सारंगधर ठेवा घरीं ॥ ४ ॥

'गोकुल में सब नारियाँ कृष्णरूप हो गयी थीं। अपने मन में वे श्रीकृष्ण का रूप ही देखती थीं। चलते समय, शयन पर, आसन पर, भोजन में, जनों में, वनों में वे श्रीकृष्ण का ही रूप देखती थीं। एकान्त में, लोक-समुदाय में, घर में, बाहर, सब जगह वे श्रीकृष्ण का रूप ही सामने रखती थीं। निळोबा कहते हैं, उनका सब परिवार कृष्णरूप हो गया था।'

मृदु मधुर वाजवीत वेणु।
सांवळा नन्दनु नन्दाचा ॥ १ ॥

तेणें गोपिका वेधल्या।
पात्र झाल्या ब्रह्मसुखा ॥ २ ॥

रंजविल्या विनोदवचनीं।
हास्य करूनि हासवीतु ॥ ३ ॥

निळा म्हणे त्यांचिया गळां।
घाली वेळोवेळां करपल्लव ॥ ४ ॥

'श्रीकृष्ण ने अति मृदु और मधुर बाँसुरी बजायी। यह कृष्ण साँवला है, नन्द का पुत्र है। उसने गोपियों से स्नेह किया और वे ब्रह्मसुख को प्राप्त हुईं। विनोद-वचन बोलकर कृष्ण ने उनका मनोरंजन किया। विनोद के द्वारा उनको आनन्दित किया। निळोबा कहते हैं, श्रीकृष्ण उनके कण्ठ में बार-बार करपल्लव डालता है।'

प्र० न० जो०

निवृत्तिनाथ

वारकरी भक्तों के आद्य पुरस्कर्ता हैं ज्ञानेश्वर महाराज और उनके प्रेरणास्रोत हैं उनके अग्रज एवं सद्गुरु श्री निवृत्तिनाथ। निवृत्तिनाथ ही वह बिन्दु हैं जहाँ से नाथ-सम्प्रदाय का योगमार्ग प्रत्यक्ष रूप से भक्ति-मार्ग में परिवर्तित होता दृष्टिगोचर होता है। ये संक्रमण-काल के अग्रिम दौर के प्रतिनिधि हैं। ये नाथ-सम्प्रदाय के अनुयायी और श्री गहिनीनाथ के प्रिय शिष्य थे। इनकी गुरु-परम्परा आदिनाथ—शक्ति—मत्स्येन्द्रनाथ—गोरखनाथ—गहिनीनाथ—निवृत्तिनाथ इस प्रकार से चली आयी है। साधारण तौर पर यह समझ लिया जाता है कि नाथ-सम्प्रदाय केवल योगमार्ग का पुरस्कर्ता था और उसमें भक्ति के लिए कोई स्थान नहीं था, परन्तु निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर आदि का साहित्य इस बात का साक्षी है कि उनके यहाँ योग के समान ही भक्ति को भी महत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया गया है और नाथ-सम्प्रदाय में भी यह 'प्रेममुद्रा' पूर्व से ही चली आ रही थी। श्री निवृत्तिनाथ ने अपने एक अभंग की अन्तिम पंक्ति में कहा है :

'निवृत्ति गयनी कृपा केली पूर्ण।
कुळ हे पावन कृष्णनामें।'

'सद्गुरु गहिनीनाथ ने निवृत्ति पर पूर्ण कृपा की और कृष्ण-नाम से उनका कुल पावन कर दिया।' श्रीकृष्ण-नाम से प्रेम-भक्ति का लाभ हुआ और योग-समाधि में जहाँ व्युत्थान होता, वहाँ प्रेम-समाधि, समस्त व्यवहार और जागृति आदि सर्व अवस्थाओं में अखण्ड होने के कारण अत्यन्त सरलता से प्राप्त हो जाती। प्रेम-समाधि में कथा-कीर्तन निरन्तर चलता रहता है। नाथ-सम्प्रदाय के इस भक्ति-निर्झर के प्रवाह ने निवृत्तिनाथ को विट्ठल-प्रेम से सराबोर कर दिया। नाम-प्रेम से प्रकट होनेवाले प्रेम का प्रतीक ही ईंट पर खड़े विट्ठल के विग्रह में रूपायित हुआ और यह संकेत भी निवृत्तिनाथ तथा गहिनीनाथ से प्राप्त हुआ। अतः निवृत्तिनाथ को यह नाथ-सम्प्रदाय की भक्ति-प्रेमसमन्वित परम्परा अपने कुल में, अपने मूल में ही प्राप्त हुई और यह विट्ठलरूप प्रेमचिन्हारी उन्होंने अपने परमप्रिय शिष्य एवं अनुज ज्ञानेश्वर को दी, जिसमें वे तन्मय हो गये और कृष्ण-भक्ति की महान् शाखा 'वारकरी-सम्प्रदाय' के अध्वर्यु बने।

श्री निवृत्तिनाथ का जन्म सन् १२७३ ई० में 'श्री विट्ठलपन्त-रुक्मिणीदेवी' नामक दम्पति के यहाँ हुआ। अपने माता-पिता की ये प्रथम सन्तान थे। इनका नाम ही 'निवृत्ति' रखा गया। निवृत्ति अपने नामगुणानुसार वैराग्य के मूर्तिमन्त स्वरूप थे। इनके पितामह गोविन्दपन्त एवं पितामही निराई श्री निवृत्तिनाथ के सद्गुरु गहिनीनाथ से ही नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षा-प्राप्त थे। श्री गहिनीनाथ ने ही इन्हें विट्ठल अथवा कृष्ण नाम का उपदेश किया था। उन्होंने अपने पुत्र का नाम श्री विट्ठल ही रखा था। इस प्रकार श्री निवृत्तिनाथ के परिवार में नाथ-सम्प्रदाय और विट्ठल-उपासना परस्पर सम्बद्ध रूप में विद्यमान थी। पिता विट्ठलपन्त अलौकिक तेजस्वी, विद्याविभूषित और परम विरक्त थे। वह पण्ढरपुर की यात्रा में भी जाते थे। पत्नी की प्रत्यक्ष अनुज्ञा के बिना संन्यास ग्रहण करके वे काशी में वास कर रहे थे। सारी स्थिति का ज्ञान होने पर उनके गुरुदेव ने उन्हें पुनः गृहस्थाश्रम ग्रहण करने पर बाध्य किया। तत्पश्चात् उनके चार सन्तानें हुईं, जो क्रमशः निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपानदेव तथा मुक्ताबाई के नाम से जगद्विख्यात हुईं। पुत्रों के उपनयन-संस्कार हेतु इस जातिबाह्य ब्राह्मण (श्री विट्ठलपन्त) ने आळन्दी के ब्राह्मणों से प्रार्थना की तो उन्होंने इस बात के लिए इनकार करते हुए इन्हें अपनी स्त्री-सहित देहान्त प्रायश्चित्त का उपाय बताया। तदनुसार श्री विट्ठलपन्त एवं रुक्मिणीदेवी ने अपने अबोध बच्चों को अनाथ छोड़कर प्रयाग जाकर देह त्याग दिया। अतः श्री निवृत्तिनाथ ने ही अपने छोटे भाई-बहन का पालन-पोषण किया, संस्कार दिये और अन्ततः नाथ-सम्प्रदाय एवं भक्ति की दीक्षा दी। चारों बालक अलौकिक विभूति थे। उनमें श्री निवृत्तिनाथ वैराग्यनिधि, ब्रह्मवेत्ता, सहज समाधि में लीन रहनेवाले परमज्ञानी थे। इन्हें श्री ज्ञानेश्वर महाराज साक्षात् ब्रह्म मानते थे।

अपनी आयु के सातवें वर्ष में इन्हें गुरु-कृपा का लाभ हुआ। एक बार जब पिता एवं माता के साथ ये चारों भाई-बहन त्र्यम्बकेश्वर (नासिक) में ब्रह्मगिरि की प्रदक्षिणा कर रहे थे, एक भयानक बाघ ने इन लोगों पर आक्रमण कर दिया। सारा परिवार भय के मारे इधर-उधर छिटक गया। नन्हें-से निवृत्तिनाथ भौचक हो सुरक्षार्थ समीप की गुफा में घुस गये। उस गुफा में नाथ-सम्प्रदाय के योगी गहिनीनाथ तपस्या में लीन थे। उन्होंने बच्चे को प्यार-दुलार दिया और अधिकारी आत्मा पाकर दीक्षा-मन्त्र का उपदेश कर दिया। योग-मार्ग के साथ-साथ भक्ति, प्रेम एवं नाम की मुद्रा गहिनीनाथजी ने निवृत्तिनाथ को दी। यह विट्ठल-भक्ति एवं कृष्ण-सुख श्री निवृत्तिनाथ का जीवनाधार बना। ये कहते हैं :

निवृत्तिचा सखा विठ्ठलरूप देखा।
निरालम्ब शिखा गगनोदरी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'श्री विट्ठल भगवान् निवृत्ति के सखा हैं। ये निर्गुण-सगुण-स्वरूप प्रभु हैं, यही निरालम्ब शिखा जैसे गगनपर्यन्त फैले हैं। इनमें सारा जगत्, चौदह भुवन व्याप्त हैं।'

इस प्रकार इन्होंने अनेक पंक्तियों में अनेक प्रकार से नाम-प्रेम एवं कृष्ण-भक्ति का गौरव-गान किया है। एक स्थान पर ये कहते हैं :

निवृत्ति गुरु गयनी सांगितले हरी।
नाम चराचरी विस्तारलें ॥

'सद्गुरु श्री गहिनीनाथ ने निवृत्ति को 'हरि' का पता दिया और यह स्वानुभव प्राप्त करा दिया कि नाम सचराचर में सर्वत्र व्याप्त है, अग-जग में सर्वत्र उसीका विस्तार है।' एक अन्य पंक्ति है :

निवृत्ति सुन्दर कृष्णरूप सेवी।
गयनीगोसावी उपदेशिलें ॥
(अभंग ८)

'गहिनी गोस्वामी ने निवृत्ति को यह उपदेश दिया है कि वह सुन्दर कृष्णरूप का सेवन करे। श्री निवृत्तिनाथ अपने गुरु को पूर्ण ब्रह्म मानते हैं और कहते हैं कि उन्होंने सुगम कृष्ण-नाम का उपदेश दिया है।'

श्री निवृत्तिनाथ ने अपने शिष्यों—भाई-बहनों को इसी नाम-भक्ति एवं योग के सम्मिलित मार्ग का उपदेश देकर उन्हें सर्वाधिकारी तथा समर्थ बनाया। इनके प्रिय अनुज एवं शिष्य ज्ञानेश्वर महाराज ने यही ज्ञानप्रेमामृत 'ज्ञानेश्वरी' के माध्यम से जन-जन को पान कराया।

श्री निवृत्तिनाथ के इष्ट श्रीकृष्ण ही हैं। इनके श्रीकृष्ण ही गो-गोपाल सहित बालवेषधारी विट्ठल हैं। गुरु के द्वारा ही इनके हृदय में कृष्ण-भक्ति का संचार हुआ। ये योग-मार्ग में भी परम निष्णात थे, परन्तु इनका सर्वस्व कृष्ण-नाम में तल्लीन हो कृष्णार्पित हो गया। ये कहते हैं :

पूर्वज परम्परा तें धन अपारा।
दीनांचा सोयरा केशीराज ॥
निवृत्तिचे गीत कृष्ण लाभे तृप्त।
आनन्दाचे चित्त कृष्णनामे ॥

'हमारी पूर्वज परम्परा से ही यह अपार धन, यह प्रभु, यह दीनों का सगा केशीराज (केशवराज) हमारा अपना है। यह हमारी पैतृक सम्पत्ति है। निवृत्ति का गीत कृष्ण का लाभ हो जाने से तृप्त हो गया है और कृष्ण-नाम-जप से चित्त आनन्द से भर उठा है, परिपूर्ण हो गया है।' इनकी कृष्ण-भक्ति मुख्यतः तत्त्वनिष्ठरूप में उभरी है। प्रभु का सगुण-निर्गुण स्वरूप-वर्णन, क्वचित् कृष्णलीला-वर्णन एवं बहुधा स्वानन्द-प्रेम में निमग्न नामसुख-स्मरण की प्रेम-समाधि का स्वानुभव-कथन, यही उनकी कृष्ण-भक्ति-वर्णना का स्वरूप है।'

वैभव विलास नेणोनि सायास।
कल्पनेचो आस नाहीं जेथे ॥ १ ॥
ते रूप दुर्लभ कृष्णमूर्ति ठसा।
वोतल्या दसदिशा नन्दाघरी ॥ २ ॥
योगियांचे ध्यान मनाचें उन्मन।
भक्तांचे जीवन गाई चारी ॥ ३ ॥
निवृत्ति साकार ब्रह्मीचा प्रकार।
ॐ तत्सदाकार कृष्णलीला ॥ ४ ॥
(अभंग २)

'श्रीकृष्णरूप मुद्रा—वह रूप परम दुर्लभ है, वहाँ न सायास आया हुआ सांसारिक वैभव-विलास है, न कल्पना की आशा है। वह रूप ऐसा महान् तेजोमय है कि जहाँ वह अवतरित हुआ है उस नन्द-गृह में जैसे दस दिशा से तेज ढुला आ रहा है। यह कृष्णरूप योगियों का ध्येय है, मन की उन्मनी अवस्था यह एक झलक मात्र से बना देता है। भक्तों का तो यह जीवन ही है। उनका वन में गौएँ चराना वस्तुतः भक्तों के भक्त्यानन्द के लिए लीलाएँ करना है। निवृत्तिनाथ कहते हैं, यह साकार परब्रह्म है और इनकी कृष्ण-लीला साक्षात् परब्रह्मस्वरूपिणी है। 'ॐ तत्सद्' उसीका स्वरूप, उसीका आकार है। भक्तों का तो वह सर्वस्व ही है।'

अन्यत्र ये उनकी महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रासुनि भान मान दृश्य द्रष्टा भिन्न ।
आपण चिद्घन वैकुण्ठ रया ॥
ते रूप सखोल कृष्णरूपें खेळे ।
नन्दयशोदेमेळें गोपीसंगे ॥

(अभंग ५)

'जिस परब्रह्म शक्ति ने अहंकार मानापमानादि वृत्तियाँ आत्मसात् कर ली हैं तथा दृश्य-द्रष्टा का भिन्नत्व भी ग्रास कर लिया है। स्वयं ही चिद्घन-चिन्मय स्वरूप साक्षात् वैकुण्ठ है। वह सखोल, गहरा रूप ही कृष्णरूप होकर खेल रहा है। यह प्रभु नन्द, यशोदा, गोपियों के संग कृष्ण का मनोहर रूप होकर सगुण लीला रच रहा है।' क्योंकि

त्रिपुर उदार सर्वज्ञता सूत्र।
नाम रूप पात्र भक्तिलागीं ॥

(अभंग १२)

'जो त्रिपुर में उदार, सर्वज्ञ और सारी सर्वज्ञता का सूत्र है वही परब्रह्म परमेश्वर भक्ति के लिए अपना निर्गुण स्वरूप नामरूप के लिए पात्र बन जाता है, नामरूप धारण कर लेता है।' और

ते रूप खेळत गौळियांच्या संगे ।
पुंडलिकामागें भीमातीरीं ॥

(अभंग ६)

'वही रूप जो गोप-गोपियों के संग खेलता है, वही परमप्रिय भक्त पुण्डलीक मुनि के पीछे भीमा-तट पर पण्ढरपुर में आकर खड़ा हो गया है।'

श्रीकृष्ण-नाम का जप निवृत्तिनाथ के लिए नाम-मन्त्र-यज्ञ है। यह सुगम है—

निवृत्ति म्हणे गुरु माझा पूर्ण ब्रह्म ।
उपदेश सुगम कृष्णनाम ॥

(अभंग ३)

'निवृत्ति कहते हैं, मेरे गुरु पूर्णब्रह्म हैं और उन्होंने सुगम कृष्णनाम का उपदेश दिया है।' इसीलिए—

निवृत्ति सर्वज्ञ नाममन्त्रयज्ञ ।
सर्व हाचि कृष्ण आत्माराम ॥

(अभंग ११)

'निवृत्ति इस नाममन्त्र-यज्ञ के कारण सर्वज्ञ हो गये हैं। यह कृष्णस्वरूप आत्माराम ही सर्वत्र व्याप्त है। सब कुछ यही है।'

'स्वानन्द-तीर्थ' में नाम-उद्घोष का इन्होंने बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है—

तारक प्रसिद्ध तीर्थ पै स्वानन्द ।
नामाचा उद्घोष नन्दाघरी ॥
प्रकाश पूर्णता आदि मध्य सत्ता ।
नातळे तो द्वैता अद्वैतपणें ॥
निवृत्ति स्वानन्द कृष्णरूप खूण ।
विश्वी विश्वपूर्ण हरि माझा ॥

(अभंग १५)

'स्वानन्दनामक प्रख्यात तीर्थ है, जो सर्वथा तारनेवाला है। यह स्वानन्द का स्वरूप ही कृष्णरूप है। वही इसकी पहचान है। कृष्ण-नाम का उद्घोष नन्द-गृह में हो रहा है। यह आदि-मध्यरूप जो अखण्ड सत्ता है वह प्रकाशपूर्ण है, वहाँ तम का नाम भी नहीं और फिर वह द्वैत-अद्वैत इस तरह नहीं पाया जाता है। वहाँ तो द्वैत भी है और अद्वैत भी और इन दोनों को निगल जानेवाली पुरुषोत्तमस्वरूपता भी। निवृत्तिनाथ कहते हैं, वही मेरा स्वानन्द मेरे मन में बसा कृष्णरूप है, वही मेरा हरि सचराचर में व्याप्त है। विश्व में, विश्वरूप में पूरी तरह भरा हुआ है।'

श्री निवृत्तिनाथ की श्रीकृष्ण के प्रति तदीय भावना है अर्थात् 'श्रीकृष्ण मेरे हैं' यह भाव है और उनका यही श्रीकृष्ण नन्द, यशोदा, देवकी, वसुदेव, गोप-गोपियों का भी है। वहाँ वह लीलामग्न है, आनन्द-दायी चिद्रूप में विराजमान है और श्रीकृष्ण के उस गोकुल-वृन्दावन में रमे हुए रूप को देखकर श्री निवृत्तिनाथ के गुरुदेव सप्रेम सद्गृहीत हैं—

निवृत्तिचें धन गोकुळी श्रीकृष्ण ।
गयनी सहिष्णु प्रेमें डोले ॥

(अभंग ३४)

'निवृत्ति का धन श्रीकृष्ण गोकुल में हैं और उनके गुरुदेव महान् तपस्वी एवं सहिष्णु गहिनीनाथ प्रेमपूर्वक झूम रहे हैं।' तद्भाव-तल्लीन उस रूप में डूबे हुए हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोकुल के श्रीकृष्ण-रूप का वर्णन करते हुए निवृत्ति-नाथ कहते हैं—

ते रूप सुन्दर शंखचक्रांकित।
शोभतो अनन्त यमुनातटीं॥

(अभंग १७)

'वह रूप परमसुन्दर है, शंख-चक्र आदि से अंकित है। ऐसा अनन्त यमुना-तीर पर शोभायमान है।' गोप-गोपियों को वह अत्यन्त प्रिय है—

निवृत्ति साधन वसुदेव खूण।
गोपिकांचे धन कृष्ण माझा॥

(अभंग १९)

'यह श्रीकृष्ण वसुदेव का चिह्न है। यादव-कुल का वंशज है और यह यादव राजा निवृत्ति की भक्ति का साध्य-साधन है। गोपियों का सर्वस्व धन कृष्ण निवृत्तिनाथ का है।' वह रूप भी कितना प्यारा है—

ते रूप गोजिरें नन्दाघरी असे।
जनी वनीं दिसे गोपिकांसी॥

(अभंग २३)

'यह रूप कितना प्यारा लाड़ला है। है तो नन्दजी के घर में, परन्तु गोपिकाएँ उसके ध्यान में ऐसी तल्लीन रहती हैं—यह प्रेम इतना गहरा है कि उन्हें जन में, वन में सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं।' वे उन्हींका नाम जपती रहती हैं—

ते रूप समर्थ रामकृष्णनाम।
गोपिका कृतार्थ नाम घेता॥

(अभंग ४१)

'वह श्रीकृष्ण का रूप परम सुन्दर एवं परम सामर्थ्यवान् है। उनका नाम भी ऐसा है जो संसार-दुःख से तत्क्षण छुटकारा दिला देता है। इसीलिए गोपिकाएँ उनका नाम जप-जपकर कृतार्थ हो गयी हैं, धन्य हो गयी हैं। भगवान् के संग से ये गोप-गोपियाँ भी ब्रह्मस्वरूप हो गयी हैं।' निवृत्तिनाथजी कहते हैं—

हा पुरुष कीं नारी नव्हे तो रूपस।
शेखी जगदीश जगद्रूपें॥
ते हें कृष्णरूप यशोदे कडीये।
नन्दाघरी होये बाळरूप॥
ज्यातें नेणें वेद नेणती त्या श्रुती।
त्या गोपिका भोगिती कामरूपें॥
निवृत्तिचें ब्रह्म कृष्णनामें खेळे।
असंख्य गोवळे ब्रह्मरूपी॥

(अभंग ६९)

'यह रूपवान् पुरुष नहीं है, न नारी ही है। यह तो जगत् का ईश जगदीश जगत्रूप सम्पूर्ण जग में समाया हुआ है। परन्तु भक्ति में भक्त के वश होकर वह कृष्णरूप धारण करके यशोदा माँ की गोद में आ गया है। यह भक्ति-परवश होकर नन्द के घर में बालरूप होकर शोभा पा रहा है। जिसे न वेद जानते हैं, न श्रुतियाँ। इस प्रभु को गोपियाँ मन में कामवृत्ति धारण करके भोगती हैं। परन्तु वह काम फिर काम नहीं रह जाता। प्रभु के स्पर्श से वे स्वयं भी ब्रह्म-स्वरूपिणी हो गयी हैं। निवृत्तिनाथ का ब्रह्म कृष्णनाम धारण कर क्रीड़ा कर रहा है। उनके स्पर्श, दर्शन, चिन्तन तथा मनन से भक्तों की अवस्था समूल बदल जाती है। वह भक्ति परमभाव में मात्र उन्मनी अवस्था में होती है। इसीलिए तो गोकुल-वृन्दावन के असंख्य गोप ब्रह्मस्वरूप ही हो गये हैं।'

गोपियों की भक्ति ने प्रभु को ऐसा परवश बना दिया है कि—

न पडे आगमा नाहीं त्यासि सीमा।
तो गौळियांच्या कामां धांवे कृष्ण॥

(अभंग ६९)

'जो आगम अर्थात् भक्ति-शास्त्रों के पल्ले नहीं पड़ता, जिसकी कोई सीमा नहीं, ऐसा असीम वह ब्रह्म उन गँवार गोप-गोपिकाओं के काम के लिए उनके पीछे दौड़ता है। वह दौड़-दौड़कर उनकी इच्छाएँ पूर्ण करता है।' इतना ही नहीं—

ते मेघःश्याममूर्ति स्वरूप गोजिरी।
गोकुळीची चोरी करी कृष्ण॥

(अभंग ८०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मेघश्याम रंग की स्वरूपसुन्दर सजीली मूर्ति वह प्रभु कृष्ण गोकुल में घर-घर माखन-चोरी करता फिरता है। इसीलिए कि उनके प्रिय भक्तजन सुखी, सन्तुष्ट और प्रेम-परिपुष्ट हों।'

गोपिकाओं का इस प्रकार का परमभावसम्पन्न प्रेम-वर्णन करके निवृत्तिनाथजी कहते हैं कि यह भक्ति अलौकिक है—

विलास भक्तीचा उन्मेश नामाचा।
लेशु त्या पापाचा नाहीं तेथे॥

(अभंग २९)

'जहाँ भक्ति का विलास होता है, नाम का सहज उन्मेष होता है, वहाँ किसी प्रकार की कामना, इच्छा, स्वार्थ, ऐहिकता और तदनुसार पाप बचा ही नहीं रह सकता—सब कुछ भगवदर्पित होकर पावन बन जाता है।'

निवृत्तिनाथ ऐसे परम ज्ञानी और सिद्ध योगी ने अपना सर्वस्व कृष्ण के प्रेमरस में डुबो दिया था। सुन्दर, सुशील, राजस गोपाल के ऊपर उन्होंने स्वयं को न्योछावर कर दिया था। एकमात्र नाम-स्मरण से ही यह प्रभु भक्तों के प्रति परम दयावान् हो जाता है, इसीलिए अपना मन गुरु एवं प्रभु के चरणों में न्योछावर कर निवृत्तिनाथ प्रभु के ध्यान में तल्लीन हैं। उस तल्लीनता में अपूर्व अखण्डता है। वे कहते हैं—

निवृत्ति निवाला प्रेमरसें धाला।
सर्व सुख झेला हरिकृष्ण॥

(अभंग २४)

'प्रभु के नामस्मरण-दर्शन-स्पर्श से निवृत्तिनाथ अन्तर्बाह्य शीतल, तृप्त, शान्त, प्रसन्न हो गया। उसे अद्भुत समाधान मिला। वह प्रेमरस से आकण्ठ तृप्त हुआ, अघा गया और सारे सुख उसने 'हरिकृष्ण' नामजप में पा लिये।' सारे आनन्द, वैभव, ऐश्वर्य, विलास परमानन्दमय प्रभु में समा गये और निवृत्तिनाथ स्वानन्दसुख में सदा के लिए रमकर प्रभु के हो गये।

श्री निवृत्तिनाथ की अभंग-रचना योग एवं भक्ति का परम सुन्दर सम्मिलन है। इनके साहित्य में भक्ति-रस के उन्मेष के ऐतिहासिक क्षणों का मनोज्ञ अंकन है। विट्ठल-भक्त श्री निवृत्तिनाथ सन् १२९७ ई० में अपनी आयु के छब्बीसवें वर्ष में दोनों भाइयों तथा बहन के लोकान्तरण के पश्चात् गुरुस्थान 'त्र्यम्बकेश्वर' (नासिक) में समाधिस्थ हुए।

इनके दो भक्तिभावव्यंजक पद नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

जयामाजी दीक्षा हारपोनि जाये।
द्वैत हें ही ठाये दुजेपण॥
ते रूप रोकडे दिसे चहूंकडे।
गोपाळ संवगडे खेळताती॥

(अभंग ३८)

जिस स्वरूप में नाम-रूपधारी परब्रह्म परमेश्वर में सारी दीक्षा और परमार्थ-प्रपञ्च तिरोहित हो जाता है, द्वैत भी दूसरा हो जाता है, स्व तथा परभाव सर्वथा विलीन होकर आनन्दमय कृष्णरूप ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगता है, ऐसे प्रभु से गोपाल और उनके सारे संगी-साथी क्रीड़ा कर रहे हैं।'

(२)

ब्रह्माण्ड उतरडी ज्याचे इच्छे घडी।
तो उच्छिष्टें काढी धर्मा घरी॥
देखिला वो माये चतुर्भुज स्वभावी।
वारु तो वागवी अर्जुनाचे॥
याज्ञिक अर्पिती मन्त्राचग्रा आहुति।
तो द्रौपदिये प्रति भाजी मागे॥
निवृत्ति दैवत पूर्ण मनोरथ।
पाण्डव कृतार्थ कृष्णनामे॥

(अभंग ११०)

'जिसकी इच्छामात्र से ब्रह्माण्ड बनता और बिगड़ता है, निर्मित होता है और लय होता है, वह भक्ति प्रेम के अधीन होकर धर्मराज युधिष्ठिर के घर जूठे पत्तल उठा रहा है। जिसे स्वभावतः ही योगी सिद्ध पुरुष परमसामर्थ्यवान् विश्वप्रतिपालक चतुर्भुज स्वरूप में देखते हैं, वह अर्जुन के घोड़े हाँक रहा है। जिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महान् यज्ञों के याज्ञिक मन्त्राहुति देते हैं, मूल्यवान् पदार्थ अर्पित करते हैं, वह स्वयं जाकर द्रौपदी से भाजी का पत्ता माँगकर खाता है। निवृत्तिनाथ कहते हैं, यह देवता भक्तों के समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इसीका 'कृष्णनाम' जप-जपकर पाण्डव कृतार्थ हो गये हैं।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

परिसा भागवत

परिसा भागवत तेरहवीं शताब्दी के परम वैष्णव-भक्त तथा ज्ञानेश्वर महाराज के समकालीन सन्त-मण्डली के सदस्य थे। कहा जाता है कि ये सन्त नामदेव महाराज के प्रिय सखा एवं अनुयायी थे। अन्य अनेक प्राचीन भक्तों की तरह इनकी जीवनी भी अज्ञात ही है। वैसे इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये पण्ढरपुर के निवासी थे। पण्ढरपुर का भगवत्-ऐश्वर्य, सन्तों का अलौकिक प्रेम एवं तेज, उनकी ज्ञान-भक्ति, वैराग्य-भावना और हरिदासों की निर्भय गर्जना का इन्होंने सजीव वर्णन किया है। निवृत्तनाथ, सोपानदेव, ज्ञानेश्वर, चांगदेव, मुक्ताबाई—सभी का इन्होंने घनिष्ठ सम्पर्क एवं साक्षात्कार प्राप्त किया था। अपने साथ नामदेव और उनके चरणों में स्वयं के रहने का मनोज्ञ उल्लेख इन्होंने किया है। महाराष्ट्रीय सन्तों की उत्तर भारत-यात्रा में ये भी सम्मिलित हुए थे।

ऐसा कहा जाता है कि ये भागवत-कथा सुनाया करते थे और 'परिसा-भागवत' अर्थात् 'सुनिये भागवत' कहकर कथा में रस उत्पन्न किया करते थे। अतएव सभी भक्तगण इन्हें 'परिसा-भागवत' ही कहने लगे।

इनके द्वारा लिखित अठारह अभंग प्राप्त होते हैं। छः अभंगों में परिसा भागवत और नामदेव का संवाद वर्णित है, जिसमें नामदेव द्वारा परिसा का गर्व-परिहार होता है। अपने अभंगों में ये कहते हैं कि मैं पण्ढरपुर में रहता था और माँ रुक्मिणी आदिमाया की उपासना करता था। वेद-शास्त्र इन्हें कण्ठस्थ थे और भागवत-प्रवचन इनका अध्यवसाय था। माँ रुक्मिणी ने उन्हें एक पारस दिया था, जिससे ये अपनी जीविका चलाया करते थे। अपनी जाति और योग्यता के अभिमानवश इन्होंने नामदेव महाराज को हीन-जाति कहकर अपमानित किया था। परन्तु पतिव्रता पत्नी के उपदेश और स्वानुभव से इन्हें सन्त नामदेव की यथार्थ महिमा का पता चला और ये उनके शिष्य बन गये। ज्ञान होने पर इन्होंने कहा—

नामा आणि केशव एकची जाणावे।
परिसा भागवत बोलिला स्वभावे॥

'परिसा भागवत सहज स्वभाव से बोलता है कि नामदेव और केशव एक ही हैं।'

इन्होंने श्रीकृष्ण-भक्ति विट्ठल-भक्ति के रूप में ही की है। यद्यपि श्रीकृष्ण-भक्ति के पद इनकी रचनाओं में उपलब्ध नहीं होते। केवल एक पंक्ति में उन्होंने कहा है—

भूवैकुण्ठ जागा क्षेत्र हे पण्ढरी।
नांदे तेथें हरि द्वारकेचा॥

'यह पण्ढरपुर तीर्थक्षेत्र 'भूवैकुण्ठ' है और यहाँ द्वारका के श्रीहरि विराजमान हैं।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

प्रेमाबाई

प्रेमाबाई महाराष्ट्र की एक प्रसिद्ध सन्त कवियित्री थीं। ये गोदावरी नदी के तट पर रहती थीं। नित्य गंगास्नान, पुराण-श्रवण, हरिकीर्तन-श्रवण, सन्त-सहवास आदि धार्मिक व पारमार्थिक वातावरण में इनकी कृष्ण-भक्ति परिपक्व हुई। श्रीकृष्ण का आख्यान सुनकर इनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते थे। इनकी प्रेम-वृत्ति देखकर लोग इन्हें प्रेमाबाई कहने लगे।

इनसे सम्बद्ध एक आख्यायिका उल्लेखनीय है। एक दिन प्रेमाबाई कृष्ण-कथा सुन रही थीं। नटखट बालकृष्ण को यशोदा माता ने ऊखल से बाँध लिया। श्रीकृष्ण रोने लगा। यह करुणजन्य प्रसंग देखकर प्रेमाबाई का हृदय भर आया। नेत्रों से अश्रुधारा बहने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगी। ये अपने पुत्र से कहने लगीं, "पुत्र! इस संसार को अब तू सँभाल। मैं शीघ्र गोकुल जाकर बालकृष्ण को मुक्त करती हूँ।" इस तरह बोलते ही प्रेमाबाई के प्राणपखेरू उड़ गये। इनके शव पर परिमल द्रव्य व तुलसी-दलों की वृष्टि हुई।

प्रेमाबाई की कविता अल्प मात्रा में उपलब्ध है। इनके दो या तीन पद महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं।

कालियदमन-लीला-सम्बन्धी एक अभंग में ये कहती हैं—

(१)

गडे हो! कृष्ण गडी अपुला।
यमुनाडोहीं बुडाला ॥ ध्रु० ॥
कालिया डसेल कृष्णाला।
होइल विषबाधा हरिला।
हाका मारिल अपुल्याला।
तुम्हो तरी स्वस्थपणे बसला।
अतां कोण सोडविल रे त्याला।
यमुना० ॥ १ ॥
गाई त्याविण हंबरती।
वासरे स्तनपान न करिती।
यापरि गोप सर्व रडती।
मुखाने कृष्ण कृष्ण म्हणती।
अतां काय भेटेल अपुल्याला।
यमुना० ॥ २ ॥
यशोदा पुसेल जरि हरिला।
सांगों काय तरी तिजला?
नन्द म्हणेल त्वां नेला।
हलधर मारिल तो मजला।
अतां काय जावे गोकुळाला।
यमुना० ॥ ३ ॥
दहि दुध लोणी म्यां हरिलें।
हरीला ताक बळें दिधलें।
येइना म्हणोनि करिं धरिलें।
वृक्षा बळकट बांधीलें।
म्हणोनि तो मजवर रुसला।
यमुना० ॥ ४ ॥
पेंदा धांवुनिया आला।
बलकट कृष्णाला डसला।
त्याचे पाठीवरि बसला।
ओझें झालें बहु त्याला।
म्हणुनि तो पळत पळत आला।
भेटला प्रेमाबाईला।
गडे हो! कृष्ण गडी अपुला।
यमुना० ॥ ५ ॥

'मित्रो, अपना मित्र श्रीकृष्ण आज यमुना के दह में डूब गया। वह कालिया नाग उसे दंश करेगा। श्रीहरि को विष-बाधा हो जायगी। वह हमें बुलायेगा। आप लोग स्वस्थ कैसे बैठे हुए हैं? अब उसे कौन मुक्त करेगा? उसके बिना गौएँ रँभाती हैं। बछड़े स्तनपान नहीं करते हैं। सब गोप शोक कर रहे हैं। मुख से कृष्ण-कृष्ण जपते हैं। अब श्रीकृष्ण से भेंट कैसे होगी? यशोदा माता श्रीहरि के बारे में पूछेगी तो उसे क्या बताना पड़ेगा? नन्दजी से क्या कहूँगा? हलधर बलराम तो हमें मार देगा। अब गोकुल कैसे जाऊँ? मैंने दूध, दही, नवनीत तक श्रीहरि को दिया, आग्रह करके दिया। वह मेरे साथ आनेवाला नहीं था। मैंने हठपूर्वक उसे पकड़ लिया और उसे ठीक प्रकार से वृक्ष से बाँध दिया। इसीलिए वह मुझ पर रूठा हुआ है। इतने में पेंधा दौड़कर आया और श्रीकृष्ण को मिल गया। वह उसकी पीठ पर चढ़ गया। श्रीकृष्ण को उसका बहुत बोझ हुआ। इसीलिए वह दौड़कर आया और प्रेमाबाई से मिल गया।'

(२)

गडभांनो, अपुल्या कृष्णाला।
अक्रूर नेतो मथुरेला ॥ ध्रु० ॥
दोघे रथावरी बसती।
यशोदा नन्द गोप रडती।
अक्रूरासी सर्व नमिती।
त्याच्या दया न ये चित्तीं।
म्हणवूनि तारुं मारुं त्याला।
अक्रूर नेतो मथुरेला ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपी फारचि तळमळती।
कराने वक्ष भाळ पिटिती।
हरिला जाऊं नको म्हणती।
अश्रूंनीं सर्वांगें भिजती।
पुढें तो गेला यमुनेला।
अक्रूर नेतो मथुरेला॥ २॥
ऐकूनि सर्व गोप भ्याले।
धावुनि हरीजवळि आले।
मूर्च्छित रथाजवळि पडिले।
हरिनें हृदयीं कवळीले।
देव मग फारचि गहिवरला।
अक्रूर नेतो मथुरेला॥ ३॥
तुजविण आम्हां नाहि कोणी।
म्हणुनी सर्व जाऊं मरुनी।
परि ये चिन्ता एक मनीं।
कंस तुज नेइल बा धरुनी।
तेथें कुणि नाहीं बा तुजला।
अक्रूर नेतो मथुरेला॥ ४॥

'मित्रो, अक्रूर मथुरा से आया है। वह अपने कृष्ण को मथुरा ले जा रहा है। दोनों रथ पर चढ़े हैं और यशोदा, नन्द, गोप रोते हैं। अक्रूर से सब विनती करते हैं। लेकिन उसके चित्त में दया नहीं आती है। हम सब जाकर उसे मारेंगे। (क्योंकि वह श्रीकृष्ण को मथुरा ले जा रहा है।) गोपियाँ हृदय से व्याकुल हो गयी हैं, अपने करों से वे वक्षःस्थल व भाल को पीटती हैं। वे श्रीहरि को न जाने के लिए कहती हैं। उनके सर्वांग अश्रुओं से गीले हो गये हैं। अक्रूर यमुना पार होकर मथुरा जानेवाला था। यह देख-सुनकर सभी गोप भीतिग्रस्त हो गये। वे श्रीहरि के पास आये। मूर्च्छित होकर वे रथ के पास पड़े रहे। श्रीहरि ने उन सबको हृदय से लगाया। श्रीकृष्ण गद्गद हो गये। उनको श्रीकृष्ण ने पास बुलाया। गोप श्रीकृष्ण से बोले, "देव', तेरे सिवा हमारा कोई भी नहीं है, आप चले जायेंगे तो हम सब मर जायेंगे। परन्तु एक चिन्ता हमारे मन में है, कंस तुम्हें पकड़कर ले जायगा, उस समय तेरे पास कौन रहेगा?" '

प्रेमाबाई का एक और पद नीचे दिया जाता है। इसमें कृष्णकी ऐश्वर्य-लीला का वर्णन है—

(३)

गडे हो! कृष्ण गडी अपुला।
राजा मथुरेचा झाला॥ ध्रु०॥
टाकुनि काळा कांबळा।
कांसे पीतांबर कसला।
टाकुन मयूर-पिच्छाला।
जडित मुगुट घातला।
अतां काय ओळखिल अपुल्याला।
गडे हो०॥ १॥
काढिली गुंजाची दाटी।
घातला कौस्तुभ श्रीकण्ठीं।
टाकुनि मुरली वेताटी।
हातिं आयुधें गोमटी।
अतां काय बागुलभय त्याला।
गडे हो०॥ २॥
गोधनें चारुं विसरला।
आतां तो नृपामधें शिरला।
नारिनें उरीं धरुनि चुरला।
अतां तो कुब्जेनें वरिला।
देतसे निजपद प्रेमेला।
गडे हो०॥ ३॥

'मित्रो, अपना श्रीकृष्ण आज मथुरा का राजा बन गया है। उसने कम्बल फेंककर पीताम्बर धारण किया है। उसने मयूर-पंख फेंककर रत्नजटित मुकुट धारण किया है। क्या वह अपने को अब पहचान सकेगा? उसने गले से गुञ्ज-पुष्पों की माला निकालकर श्रीकण्ठ में कौस्तुभ की माला रख ली है। उसने मुरली और लकुटी फेंककर हाथों में सुन्दर आयुध धारण किये हैं। अब उसे भय किसका है? वह गोधन चराना भूल गया है। अब वह राजाओं के मण्डल में बैठ गया है। मथुरा की नारियों ने उसे अपने हृदय में धारण किया है। उसे दासी कुब्जा ने वरण किया है। फिर भी वही श्रीकृष्ण प्रेमाबाई को प्रेम देता है।'

प्र० न० जो०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंकटस्वामी महाराज

महाराष्ट्र में वारकरी या भागवत-सम्प्रदाय के एक प्रमुख प्रचारक बंकटस्वामी महाराज थे। इनका जन्म बीड जिले के निनगुर गाँव में सन् १८७७ ई० में हुआ था। इनका राजपूत-कुल मूलतः बुन्देलखण्ड का था। व्यापार के लिए इनके पूर्वज महाराष्ट्र में आकर बीड में बस गये थे। स्वामीजी के पिता का नाम न्यहालासिंग व माता का नाम रत्नादेवी था। व्यंकटेश इनके कुल-देवता थे। अतः ये स्वामी व्यंकटेश या बंकट नाम से प्रसिद्ध हुए। स्वामी जन्म से ही पंगु थे। कालान्तर में थोड़े उपचार से चलने लगे। लेकिन पाठशाला में जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। ये उत्तम रीति से वीणा और पखावज बजाते थे।

पन्द्रह वर्ष की आयु होते ही बंकट ने निनगूर छोड़कर नासिक जिले में इगतपुरी के पास घाटी नामक गाँव को प्रयाण किया। थोड़े दिन इन्होंने वहाँ व्यापार किया। इगतपुरी आने के बाद इनका पारमार्थिक जीवन आरम्भ हुआ। विष्णुबोवा जोग से इन्हें पारमार्थिक दीक्षा प्राप्त हुई। गुरु की आज्ञा से बंकट ने भण्डारा पहाड़ पर तीन वर्ष अनुष्ठान किया। इन्होंने गाँव में मधुकरी माँगकर गीता, ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। भण्डारा पहाड़ के पास ही भामचन्द्र नामक एक पहाड़ है। उस पर जाकर इन्होंने एक और अनुष्ठान किया। तदनन्तर ये पुणे आये। जोग महाराज के पास इनका पारमार्थिक अध्ययन आरम्भ हुआ। विविध ग्रन्थों के अर्थ इन्होंने निश्चित किये। जोग महाराज की प्रेरणा से ये कीर्तन भी करने लगे। जोग महाराज की ही आज्ञा से इन्होंने आळन्दी में अजान वृक्ष के नीचे रहकर ज्ञानेश्वरी के शंभर (सौ) पाठ किये। आठ दिनों में एक पारायण ज्ञानेश्वरी का किया। भागवत-धर्म का अध्ययन पूर्ण करने के लिए इन्होंने 'वृत्ति-प्रभाकर' नामक ग्रन्थ का विशेष अभ्यास किया। इसके अनन्तर देहरादून जाकर बंकटस्वामी ने वहाँ हरिप्रसाद स्वामी से 'वृत्ति-प्रभाकर' का अध्ययन किया।

इसके बाद ये प्रतिवर्ष पण्ढरपुर की यात्रा (वारी) करने लगे। महाराष्ट्र के अनेक तीर्थस्थान भी इन्होंने देखे। कुछ समय ये अज्ञातवास में रहे। कीर्तन, भजन, नाम-स्मरण करके इन्होंने हजारों लोगों को पण्ढरी का शिष्य बनाया। इनके हरिकीर्तन अत्यन्त रसपूर्ण तथा बोधप्रद होने लगे। इन्होंने अनेक अधिकमास-महोत्सव भी किये। विष्णुबोवा जोग के निधन के बाद इन्होंने आळन्दी में वारकरी शिक्षण-संस्था की स्थापना की। सन् १९२४ ई० में बंकटस्वामी ने पण्ढरपुर में इक्कीस दिनों का एक अनुष्ठान किया। इन्होंने जोग द्वारा सम्पादित 'सार्थ-ज्ञानेश्वरी' प्रकाशित की और पण्ढरपुर में एक मठ बनवाया। सन् १९४४ ई० में बंकटस्वामी का देहान्त निनगूर गाँव में हुआ। यहीं इनका समाधि-स्थल है। ज्ञानेश्वरी का अभ्यास, गुरु-सेवा, अखण्ड नामस्मरण, शुद्ध व तेजस्वी बुद्धि, मृदु अन्तःकरण तथा मधुर वाणी के कारण बंकट-स्वामीजी का नाम महाराष्ट्र के वारकरी-सम्प्रदाय में अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

प्र० न० जो०

बंका

बंका महार निर्मळा के पति और चोखामेळा के बहनोई थे। इनका आविर्भाव १३वीं शती में हुआ था। इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का वर्णन करते हुए कहा है कि सकल सिद्धों के गुरु आदिनाथ, उनके शिष्य मत्स्येन्द्र, फिर उसी परम्परा में गोरखनाथ, गहिनीनाथ, निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर, खेचर, नामदेव और चोखामेळा हुए तथा चोखा के शिष्य ये स्वयं हैं। ये सभी विट्ठल भगवान् के डिंगर अर्थात् लाड़ले भक्त हैं, विट्ठल माता की सन्तान हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की शिक्षा-दीक्षा ने इस नवीन भक्ति-पद्धति का अमृत-वर्षण किया और सभी आनन्दमग्न होकर एक-दूसरे से गले मिलने लगे। इस प्रगाढ़ प्रेमालिंगन में सारे भेदभाव समूल नष्ट हो गये। भक्तप्रवर बंका ने अपनी पत्नी निर्मळा और उसकी भाभी सोयराबाई की कथाएँ अत्यन्त भक्तिभाव से वर्णित की हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंका महार द्वारा विरचित ३९ अभंग प्राप्त होते हैं। इनके अभंगों में विट्ठल-स्तुति, पण्ढरपुर-महिमा, चोखा-चरित्र, भक्तवार्ता, करुणापरक अभंग, भक्ति-मनोरथ, श्रीकृष्ण-चरित्र, नाम-महिमा और सन्त-स्तुति प्रमुख रूप से वर्णित है। अन्य सन्तों की भाँति बंकाजी भी विट्ठल-प्रेम में अभंग गाते हैं। इन्हीं अभंगों में ये श्रीहरि, श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन करते हैं। एक लुभावना अभंग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

प्रेमाचा पुतळा विठोबा सावळा।
उभा तो देखिला भीमातटीं॥
कर कटावरी पाउलें साजिरीं।
शंख चक्र करीं मिरवतसे॥
योगियांचा राणा गोपीमोहन कान्हा।
भक्तीचा आंदणा घरोघरी॥
बंका म्हणे ऐसा कृपेचा कोवळा।
पाळी भक्तलळा प्रेमासाठीं॥
(अभंग २)

'घननील वर्ण का साँवला विट्ठल साक्षात् प्रेम का पुतला है। मैंने उसे भीमा नदी के तट पर खड़ा हुआ देखा। वह कमर पर हाथ धरे हुए है। उसके चरण-कमल अत्यन्त सुकुमार एवं सुन्दर हैं। हाथ में उसके शंख-चक्र शोभायमान हैं। यह कन्हैया योगियों का राणा, गोपीमोहन, गोपिकाओं का लाड़ला तथा भक्ति की लूट ही बन गया है। बंका कहते हैं, यह प्रभु कृपालु और कोमल है और भक्तों का प्रेमहठ पूरा करता है। प्रभु यह सब कुछ एकमात्र प्रेमवश होकर ही करते हैं। वे केवल भक्ति का नाता ही मानते हैं।'

एक अन्य अभंग में बंका कहते हैं, 'यह साँवला सगुण प्रभु कटि पर कर धरकर खड़ा है। उसकी नयन-मनोहर सुन्दर बालरूप मूर्ति कितनी सुहावनी है। उसके हाथों में शंख-चक्र हैं और हाथ कटि पर है। यह चतुर्भुज प्रभु पीताम्बरधारी हैं। श्रीमुख तो जैसे सौन्दर्य का आगार, लावण्यगर्भ है। हृदय पर श्रीवत्सलांछन शोभा दे रहा है। बंका कहते हैं, यह पाण्डुरंग देवों का भी देव है और वैकुण्ठ का राणा श्री हरि पण्ढरपुर आकर यहीं बस गया है।'

बंकाजी ने भगवान् विट्ठल के चरणों में अपने-आपको समर्पित कर दिया था।

प्र० न० जो०
वि० पं०

बहिणाबाई

बहिणाबाई मराठी की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। वेरुळ के पास देवगांव नामक एक स्थान है। यहीं १७वीं सदी में बहिणा का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम आऊजी और माता का नाम जानकी था। तीन-चार वर्षों की बहुत छोटी आयु में ही इनका विवाह रत्नाकर पाठक के साथ हो गया। रत्नाकर पास ही शिऊर गाँव के रहनेवाले थे। दोनों की आयु में बहुत अन्तर था। विवाह के बाद बहिणा के पिता कर्जदार हो गये तथा उनके जेल जाने की स्थिति आ गयी, तब जामाता रत्नाकर ने सहायता देकर आऊजी को ऋण-मुक्त किया। देवगांव छोड़कर यह कुटुम्ब महाराष्ट्र में भ्रमण करने लगा। इसी क्रम में इन लोगों ने रहिमतपुर व कोल्हापुर की यात्रा की।

कोल्हापुर में ये लोग हिरंभट नामक ब्राह्मण के घर में रहते थे। यहाँ बहिणा ने प्रसिद्ध सत्पुरुष जयराम स्वामी वडगावकर के कीर्तन सुने। हिरंभट को एक गाय दान में मिली थी। स्वप्न में प्रेरणा होने के कारण हिरंभट ने वह गाय बहिणा को दे दी। बहिणा ने इस गाय की सेवा मन से की। गाय को एक बछड़ा हुआ। जब बहिणा नाम-संकीर्तन सुनने के लिए जाती थी, तब सवत्स गाय भी उसके साथ जाने लगी। सब लोग बहिणा का माहात्म्य गाने लगे। इससे रत्नाकर पाठक रुष्ट हो गये। उन्होंने बहिणा को त्रास दिया। उसे मारा-पीटा। यह देखकर गाय का बछड़ा बहुत दुःखी हुआ। उस दिन से बछड़े ने चारा-पानी छोड़ दिया। वह थोड़े ही दिनों में मर गया। इस घटना से बहिणा अति दुःखी हुई। वह तीन दिन मूर्च्छित रही। चौथे दिन प्रसिद्ध सन्त तुकाराम ने उसे स्वप्न में दर्शन तथा मन्त्रोपदेश दिया। बहिणा के मन में तुकाराम के प्रति भक्ति उत्पन्न हुई। रत्नाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठक भी बदल गये। थोड़े दिनों बाद बहिणा और रत्नाकर पाठक तुकाराम के दर्शन के लिए देहू आये। बहिणा मन्दिर में रहने लगी। तुकाराम महाराज के कीर्तनों से उसका मन सन्तुष्ट एवं तृप्त हुआ। तुकाराम के आशीर्वाद से बहिणा भक्तिमार्गी बनी तथा कविता करने लगी। परमार्थ, श्रीविट्ठल, सन्त, आचार-धर्म, नाम-माहात्म्य, अद्वैत-वेदान्त, भक्ति, सद्गुरु, अनुताप, बोध आदि विषयों पर बहिणाबाई की विपुल कविता उपलब्ध है। इन्होंने तुलसी-माहात्म्य, निर्गुण-माहात्म्य, ब्रह्मकर्म-माहात्म्य, पण्ढरी-माहात्म्य, पतिव्रता-धर्म, श्रीकृष्ण-माहात्म्य आदि विषयों पर भी काव्य-रचना की है। सात सौ अभंगों की गाथा (संग्रह) आज बहिणाबाई के नाम पर उपलब्ध है। ये मराठी की पहली कवयित्री हैं जिन्होंने अभंग वृत्त में आत्मकथा लिखी है। अन्तकाल आने पर बहिणा ने अपने पुत्र को पिछले तेरह जन्मों का वृत्तान्त सुनाया था। तुकाराम महाराज के निर्वाण के बाद बहिणा शिऊर गाँव में रहने लगीं थीं। इन्होंने अपने अभंगों में तुकाराम का यशगान किया है।

बहिणाबाई का अधिकांश समय आध्यात्मिक व पारमार्थिक कार्यों में व्यतीत होता था। 'तुकोबाचा छन्द लागला मनासीं। ऐकतां पदांसीं कथेमध्यें'— 'हरि-कथा में तुकाराम महाराज के अभंग सुनकर बहिणाबाई को काव्य-रचना की प्रेरणा मिली।' कृष्ण-भक्ति की अनन्यता, विरह की व्यथा, मिलन की उत्कण्ठा, श्रीकृष्ण का प्रेम, उनकी दया, उनका दर्शन आदि अनेक भाव बहिणा के अभंगों में मिलते हैं। श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करते हुए इन्होंने लिखा है :

धन्य तें गोकुळ धन्य ते गोपाळ।
धन्य लोकपाल पुण्यशील॥
धन्य तोचि देश धन्य तोचि वंश।
जेथ हृषिकेश अवतरले॥
धन्य तोची माता धन्य तोचि पिता।
जन्म कृष्णनाथा ज्याचे कुशीं॥
धन्य त्या गोपिका कृष्णतन्मयता।
धन्य ती सरिता कृष्ण पोहे॥
धन्य वृन्दावन, धन्य गोवर्धन।
चारी नारायण गायी सदा॥

'जहाँ श्रीकृष्ण का जन्म हुआ, वह गोकुल धन्य है गोपाल धन्य हैं, लोकपाल धन्य व पुण्यशील हैं। जिस देश में कृष्ण-जन्म हुआ, वह देश, वह वंश धन्य है। उस श्रीकृष्ण की माता धन्य हैं, पिता धन्य हैं। कृष्ण में तन्मय होनेवाली गोपियाँ धन्य हैं। जिस नदी में कृष्ण तैरता है, वह नदी धन्य है। जहाँ श्रीकृष्ण गौएँ चराता है वह वृन्दावन और गोवर्धन पर्वत धन्य हैं।'

बहिणाबाई ने व्रजभाषा में भी रचना की है। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(१)

जमना के तट धेनु चरावत,
गावत है गोवालरी।
गीत प्रबन्ध हास्य विनोद,
नाचत है श्री हरी॥ १॥
मैं येरी देखत मय नँदलाल,
कांसे पीत वसन है झलाल।
कानों में कुण्डल देती ढाल।
सिर पर मोरपिसा चंदलाल॥ २॥
अबीर गुलाल सबके माथा,
हार सुवास पिनाये।
जाई जुई चम्पन कोमल,
चन्दन चम्पक लाये॥ ३॥
छन्द धीमर धीमा सुनखत है,
हरि बँध गयो मेरे प्रान।
बहिनी कहे सब भूल गये,
मेरा हरी से लगा है मन॥ ४॥

(२)

कण्टक को मल्लमर्द।
दैतन को सिर छेद।
सुत तेरा नन्द कृष्ण।
तोही मानी है॥ १॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपिन को प्राणनाथ।
भक्तनकू करे सनाथ।
शास्तर की ऐसी बात।
सन्त जानी है॥ २॥

धरम का रक्षन आया।
पापकू सब डार दिया।
वोही कृष्ण सुत भया।
बात सत्य मानो है॥ ३॥

सुत मत कहो नन्द।
ब्रह्मसो येही गोविन्द।
बहिनो का भाट प्रबन्ध।
सत्य सुनाईये॥ ४॥

प्र० न० जो०

बाबाजी महाराज पण्डित

वेदान्त-केसरी बाबाजी महाराज पण्डित श्री गुलाबराव महाराज के एकनिष्ठ शिष्य थे। ज्ञानेश्वरी, हरिपाठ, अमृतानुभव–यह है ज्ञानेश्वरजी की प्रस्थान-त्रयी। इस पर भाष्य लिखकर पण्डितजी ने उसका गूढ़ार्थ प्रकट किया है। बाबाजी महाराज के गुरु श्री गुलाबराव महाराज श्रीकृष्ण को पति व आळन्दी के ज्ञानेश्वर को पिता मानते थे। पण्डितजी की उपासना श्रीकृष्ण एवं ज्ञानेश्वर से सम्बद्ध थी। बाबाजी का जन्म विदर्भ के चन्द्रपुर नगर में सन् १८८६ ई० में एक भगवद्भक्त-परिवार में हुआ था। बचपन से ही धर्मश्रद्धा तथा ईश्वर-भक्ति के कारण ये प्रारम्भ से ही श्री गुलाबराव महाराज की सेवा में तत्पर रहे। निद्राक्षुधादि देह-धर्म की उपेक्षा कर जीवन का प्रत्येक क्षण इन्होंने श्री गुरु-सेवा में लगाया। गुरुदेव ने प्रसन्न होकर इन पर अनुग्रह किया और इन्हें स्वपद पर स्थापित कर दिया।

बाबाजी महाराज पण्डित भगवद्-भक्त और उच्च कोटि के विद्वान् थे। ये श्री गुलाबराव महाराज के श्री ज्ञानेश्वर मन्दिर में आजीवन रहे। वहाँ इन्होंने नित्य प्रवचन, कीर्तन, भजनादि कार्यक्रम किये। लोक-संग्रह बढ़ाकर इन्होंने सम्प्रदाय का कार्य बढ़ाया। बाबाजी अन्नदान, विद्यादान तथा ज्ञानदान अमरावती में नित्य करते थे। इन्होंने भारत की तीर्थयात्राएँ भी कीं। इनमें 'अनामत्वादिलक्षण' और 'अभयादि' गुण मूर्तिमन्त थे। श्री सद्गुरु गुलाबराव महाराज के पश्चात् पण्डितजी ने अपने गुरु का सम्पूर्ण वाङ्मय प्रचारित करने का प्रयत्न किया। सौ-सवा सौ लोगों के साथ पण्डितजी ने प्रयाग का गंगा-जल काँवर में भरकर पैदल यात्रा करके आळन्दी में लाकर श्री ज्ञानेश्वर माऊली को स्नान कराया। तीन दिनों तक महाभिषेक होता रहा। समस्त गाँववालों को मिष्टान्न तथा भोजन मिला।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज के ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, हरिपाठ, इन तीन ग्रन्थों पर श्री बाबाजी महाराज पण्डित ने भाष्य लिखा। इनके 'हरिपाठ-रहस्य', 'श्री ज्ञानेश्वरी - गूढ़ार्थ - दीपिका', 'अमृतानुभव - कौमुदी' आदि ग्रन्थ श्री गुलाबराव महाराज के तत्त्वज्ञान पर आधारित हैं। अनेक गूढ़ तथा जटिल प्रश्नों की चर्चा पण्डितजी ने सप्रमाण व सांगोपांग की है। पाठक-वाचक को ग्रन्थ पढ़ते समय अगाध ज्ञान, श्रुति-स्मृति-पुराण, समस्त सन्त-वाङ्मय का प्रत्यय होता है। श्री ज्ञानेश्वर माऊली का स्वानुभव इन ग्रन्थों में प्रकट हुआ है।

बाबाजी महाराज को अपना अन्तकाल ज्ञात हो गया था। सन् १९६४ ई० में अमरावती के श्रीज्ञानेश्वर मन्दिर में बाबाजी ने गंगाजल से स्नान किया। सन्ध्यावन्दन, मन्त्रजप, हरिपाठ, ज्ञानेश्वरी आदि ग्रन्थों का पाठ किया। श्रीकृष्ण-मूर्ति, ज्ञानदेव की प्रासादिक खड़ाऊँ इत्यादि की इन्होंने मनोभाव से पूजा की, उपास्य शिवलिंग का बाबाजी ने गंगोदक से अभिषेक किया और 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न चित्त से ज्ञानेश्वर का स्मरण करते-करते देह का विसर्जन किया। यह घटना १९६४ ई० में घटी।

प्र० न० जो०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाऊसाहेब काटकर महाराज

पण्ढरपुर के विट्ठल श्रीकृष्ण के ही बालरूप माने जाते हैं। विट्ठल-भक्ति की परम्परा श्री ज्ञानेश्वर के समय से विकसित हुई है। अर्वाचीन काल में सबसे प्रथम नाम आता है—श्री भाऊसाहेब काटकर महाराज का। ये वारकरी-पन्थ के विश्लेषण-पद्धति के प्रवर्तक थे। इनके पिता श्री रामचन्द्र पन्त तुलजापुर तालुका के कांटी गाँव के निवासी थे। भाऊसाहेब का जन्म सन् १८१३ ई० में हुआ था। सन्त दासगणु महाराज ने अपने 'भक्ति-सारामृत' ग्रन्थ में लिखा है,

हल्लीं वारकऱ्यांचे फडांत।
जी कीर्तनाची आहे पद्धत।।
तीं सखारामाची नक्कल सत्य।
ती भाऊ काटकरें आणिली।।
हा भाऊ काटकर वारकरी।
गेला प्रसिद्ध होळनि भूवरी।
यांनीं वारकऱ्या माजारीं।
पद्धत फैलावली।।

इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि भाऊ काटकर ने वारकरी-पन्थ में भजन-कीर्तन की एक विशिष्ट पद्धति निश्चित की और उसका ही प्रचार किया। काटकर का कुटुम्ब कांटी गाँव छोड़कर सोलपुर में बस गया। बचपन में भाऊ की रुचि अध्ययन में नहीं थी। लेकिन इनकी वाणी मधुर थी। इनको भाऊसाहेब धाराशिवकर नामक एक विद्वान् वारकरी की संगति प्राप्त हुई। धाराशिवकरजी ने आळन्दी में अजान वृक्ष के नीचे ज्ञानेश्वरी का १०८ बार पाठ किया था। इन्होंने भाऊ काटकर को प्रोत्साहित किया। आळन्दी में काटकर भी ज्ञानेश्वरी का पठन-चिन्तन करने लगे। बार्शी के पास वैराग में रहनेवाले सन्त प्रह्लाद महाराज ने काटकर को कीर्तन-सेवा की प्रेरणा दी। पण्ढरपुर में वासकरके फड (समुदाय) में काटकर के कीर्तन-प्रवचन होने लगे। इनसे नाना महाराज साखरे का स्नेह-सम्बन्ध बना। इन्होंने ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ पर प्रवचन प्रारम्भ किया। ये अखेरी की ओवी से भी ज्ञानेश्वरी कण्ठस्थ करने में सफल हुए। कुछ समय बाद काटकर संकेश्वर गये। वहाँ श्री शंकराचार्य के साथ इन्होंने अपना जीवन बिताया। जीवन के अन्तिम क्षणों तक ये ज्ञानेश्वरी पर व्याख्यान देते रहे। सन् १८७८ ई० में इनका वैकुण्ठवास हो गया।

प्र० न० जो०

भानुदास

ये सन्त एकनाथ महाराज के प्रपितामह तथा उच्चकोटि के भक्त थे। इनका जन्म श्री नामदेव महाराज की समाधि-ग्रहण के लगभग सौ वर्ष बाद पैठण में आश्वलायनसूत्री देशस्थ ऋग्वेदी ब्राह्मण घराने में सन् १४४८ ई० में हुआ था। इनका आविर्भाव विषम परिस्थितियों में वारकरी-सम्प्रदाय की रक्षा के लिए ही हुआ था। बिखरती आस्था, टूटती निष्ठा, गहराता राजनीतिक संकट, विस्खलित समाज-व्यवस्था—इन सारी विपरीत परिस्थितियों में इन्होंने वारकरी-सम्प्रदाय को पुनर्जीवित किया। इनके पिता का नाम भास्करपन्त था और माँ का सावित्रीबाई। दोनों ही परम भगवद्भक्त थे। इनके कुल में परम्परा से विट्ठल-उपासना प्रचलित थी। भानुदास महाराज ने बचपन में सूर्योपासना की थी, परन्तु आगे चलकर वह पाण्डुरंग-भक्ति में विलीन हो गयी और ये अनन्य विट्ठल-भक्त बन गये।

इनके जीवन में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना घटी थी और वह थी इनके द्वारा विट्ठल-मूर्ति का पुनः पण्ढरपुर लाया जाना। यह न केवल इनकी व्यक्तिगत विजय थी, अपितु इससे वारकरी भक्ति, निष्ठा एवं अनन्यता का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ और महाराष्ट्र में भक्ति-आन्दोलन की जड़ें बहुत गहरी उतर गयीं, जिसे इनके वंशज एकनाथ महाराज ने भलीभाँति सिंचित किया। कहा जाता है कि एक बार वारी के लिए जब भानुदासजी सदैव की भाँति पण्ढरपुर पहुँचे तो देखा कि वहाँ पर विट्ठल-विग्रह विद्यमान नहीं है। बिना देवता के मन्दिर सूना था। बिना भगवान् के भक्त छूँछा, भावहीन और किंकर्तव्यविमूढ़! हजारों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हजार वारकरियों की टोलियाँ आतीं और प्रभु को न पा पछाड़ खाकर गिर पड़तीं, रोने-पीटने लगतीं। भानुदासजी से भक्तों की यह विरहाकुलता देखी न गयी। वस्तुतः हुआ यह था कि तत्कालीन समृद्ध विजयनगर का राज्याधीश श्रीकृष्णदेव राय पण्ढरपुर आया था। उसने श्री प्रभु-मूर्ति पर निछावर होकर उसे पूजा था। ऐसा भगवान् तो उसकी राजधानी में होना चाहिए, यह सोचकर अथवा निरन्तर बढ़ते मुस्लिम-आक्रमणों की आशंका से वह मूर्ति उठवाकर विजयनगर ले गया। भगवान् के तुल्यबल अत्यन्त वैभवशाली मन्दिर बनवाया, राजसी वैभव के अनुसार वहाँ प्रभुमूर्ति की प्रतिष्ठा करायी और सेवा-पूजा की व्यवस्था की।

इधर विट्ठल के बिना सूनी पण्ढरपुरी में भानुदास और उनके सखा वारकरी अत्यन्त विरहाकुल, शोकग्रस्त थे। आराध्य के वियोग से व्याकुल भानुदास विजयनगर के लिए चल पड़े। ये अत्यन्त निष्ठावान् वारकरी थे और विट्ठल-दर्शन-स्पर्शन ही इनके जीवन का एकमात्र ध्येय था।

जब ये विजयनगर पहुँचे तो रात हो चुकी थी। इनके मन में अखण्ड प्रभु-स्मरण था, नेत्रों में प्रभु-दर्शन की लालसा थी, एक ही लगन—एक ही ध्यान। अपनी धुन में चलते हुए मन्दिर के महाद्वार तक जा पहुँचे। आश्चर्य कि आठ तालों के भीतर भगवान् और महाद्वार पर भक्त। सहसा एक-एक करके द्वारों की अर्गलाएँ टूटती गयीं और लाड़ला भक्त भगवान् तक पहुँच गया। पहले इन्होंने आराध्य को भरपेट निहारा, निहोरा किया, उलाहना दिया, फिर चरण पकड़कर बैठ गये कि पण्ढरपुर चलिये। आपको लिये बिना नहीं जाऊँगा। यहीं श्रीचरणों पर सिर धरकर प्राण तज दूँगा। भगवान् का प्रेम पिघलकर भानुदास को रससिंचित करने लगा। भगवान् ने अपना नौलखा हार इनके गले में डालकर कहा—"जाओ, विश्राम करो। कल हम लोग यहाँ से पण्ढरपुर के लिए प्रस्थान करेंगे।" भानुदास उसी तरह आठ दरवाजे पार करते बाहर आ पहुँचे और उनके पीछे द्वार उसी क्रम से बन्द होते गये, जैसे आगमन के समय खुले थे। ये नदी-तीर पर प्रेममगन हो कीर्तन में रम गये—न खाने की सुध, न पीने की। गले में नौलखा हार—भगवान् की दी हुई प्रेम-प्रसादी।

सुबह हुई, पुजारी मन्दिर पहुँचे। पूजा-अर्चना के दौरान पता चला कि हार नहीं है। किवाड़े तो सारे बन्द थे। तत्काल राजा को खबर हुई। चारों तरफ दूत दौड़ाये गये। दूतों ने नदी के किनारे पहुँचकर भानुदास को देखा और राजा से निवेदन किया कि एक पागल-सा आदमी नदी-तट पर बालू में भजन कर रहा है। उसीके गले में नौलखा हार है। राजा ने पागल को देह-दण्ड की सजा दी और स्वयं ही चल पड़ा उसे सूली पर चढ़ाने। यह समाचार सारे नगर में बिजली की तरह फैल गया। भीड़ टूट पड़ी। भानुदास को मारते-पीटते सूली के पास लाया गया, पर जैसे ही उनका स्पर्श सूली को हुआ, वह हरा-भरा वृक्ष हो गयी। राजा स्तम्भित हो गया। अपनी चूक उसकी समझ में आ गयी। दौड़कर परमभक्त के चरणों पर लोट गया।

भानुदास ने केवल इतना ही कहा कि राजन्! हम अपने भगवान् को अपने यहाँ वापस ले जाने के लिए आये हैं, यह हार उन्होंने हमें दिया है और हम उन्हें लेकर पण्ढरपुर जा रहे हैं। राजा ने अनुमति दे दी। सन्त भानुदास नाचते-गाते, कीर्तन करते विट्ठल-विग्रह को पण्ढरपुर लाये। भगवान् पुनः मन्दिर में विराजे। भक्तों के आनन्द का पारावार न रहा। वस्तुतः अपनी अतुल निष्ठा के बल पर ही इतनी बड़ी राजसत्ता को झकझोरते हुए भानुदास श्री विट्ठल-मूर्ति की पुनः पण्ढरपुरी में पुनर्स्थापना कर सके थे।

इस घटना से आनन्दविभोर हो नाचते भक्त-मण्डल ने एक नवीन युग, एक नवीन आन्दोलन का सूत्रपात किया, जो पूरे महाराष्ट्र में द्रुत गति से फैल गया। सन्त एकनाथ अपने प्रपितामह के इस कर्तृत्व से अत्यन्त अभिभूत थे और उन्हें अपना आदर्श माना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते थे। उनके जन्म के कुछ वर्ष पूर्व ही सन्त भानुदास ने सन् १५१३ ई० में सहज समाधि ग्रहण की।

सन्त भानुदास महान् भगवद्भक्त तो थे ही, सुकवि भी थे। श्री विट्ठल-चरणों में इनका अपार प्रेम रचनाओं में साकार हो उठा है। इनके द्वारा रचित कुल ९४ अभंग प्राप्त होते हैं, जिनके विषय हैं—अद्वैत, श्री विट्ठल-माहात्म्य, पण्ढरी-माहात्म्य, नाम-महिमा, राम-नाम-महिमा, मुमुक्षुओं को उपदेश, श्रीकृष्ण-चरित्र आदि। भगवान् श्रीकृष्ण की लीला के अन्तर्गत इन्होंने बाल-क्रीड़ा, गोपी-गीत, वन-विहार आदि पर अभंग गाये हैं। 'मामळभट' नामक प्रसंग में विनोद-शैली में भगवान् का अशुभ भविष्य बताने आये कंसप्रेषित मामळभट की विडम्बना का वर्णन है। एक दीर्घ अभंगात्मक प्रसंग में इन्होंने पण्ढरीनाथ और भक्त कूर्मदास की भेंट का वृत्तान्त वर्णन किया है। सन्त भानुदास की कविता सहज-सुन्दर तथा प्रेम-भक्ति से परिपूर्ण है। उसका आदि, अन्त और मध्य विट्ठल-प्रेम से आप्लावित है। वारकरी-सम्प्रदाय के भक्ति-सिद्धान्त यहाँ सरल रूप से प्रतिपादित और स्वानुभूति में निमज्जित हैं।

भगवान् विठोबा अर्थात् श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर भानुदासजी ने अनेक अभंग लिखे हैं। एक दृश्य द्रष्टव्य है—

गोड साजिरें रूपस।
उभा आहे हृषिकेश।
योगी ध्यानी जयास।
तो हा सर्वेश साजिरा ॥ १ ॥
रूप मण्डित सगुण।
शंखचक्र पद्म जाण।
गळां वैजयन्ती भूषण।
पीताम्बर मेखळा ॥ २ ॥
कस्तुरी चन्दनाचा टिळा।
मस्तकीं मुकुट रेखिला।
घवघवीत घन सांवळा।
नन्दरायाचा नन्दनु ॥ ३ ॥
हरुषें भानुदास नाचे।
नाम गातसे सदा वाचे।
प्रेम विठोबाचें।
अंगी वसे सर्वदा ॥ ४ ॥

(अभंग १७)

'भगवान् हृषीकेश भक्तोद्धार-हेतु तत्पर खड़े हैं। उनका रूप अत्यन्त मधुर, सजीला, सुन्दर है। ये सर्वेश कितने शोभायमान हैं? ये वही हैं जिनका योगी ध्यान करते हैं। यह रूप सगुण है, सुन्दर है, शंख, चक्र, पद्म आदि से संयुक्त परम मोहक है। इनके गले में अलंकृत वैजयन्तीमाला है, कटि में पीताम्बर और मेखला है। इन्होंने कस्तूरी चन्दन का तिलक लगाया है और इनके मस्तक पर मुकुट शोभायमान है। इस नन्द-नन्दन लाला का रंग सुरंग मेघश्याम घननील साँवला है। यह रूप देखकर भानुदास हर्ष से नाच रहा है। वह प्रभु का नाम सदा गाता है और उसके अंग-प्रत्यंग में विठोबा का प्रेम आपूरित है। सदा-सर्वदा जिह्वा पर प्रभु-नाम ही है।'

बालक्रीड़ा तथा गोचारण-प्रसंग से सम्बद्ध इनके दो काव्यांश और प्रस्तुत हैं:

(१)

उठो तात! मात भये प्रात
रजनी सो तीमीर गई।
मीलत बाल सकल
ग्वाल सुन्दर कान्हाई ॥ १ ॥
जागो गोपाल लाल जागो
गोविन्द लाल जननी बलि जाई।
संगीत सब फिरत बयन
तुम बीन नहीं छूटन दयन।
त्यजो शयन कमलनयन
सुन्दर मुख माई ॥ २ ॥
मुखती पट दुर कीजो
जननी कु हर्ष दीजो।
दधी खीर माँग लीजो
खीर खाँड मीठाई ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जमतं जमत शाम-राम
सुन्दर मुख सदा राम।
थार्थी की घुट कछू
भानुदास पायी ॥ ४ ॥

एक अन्य ब्रजभाषा-पद में भानुदासजी श्रीकृष्ण की गोचारण-लीला का चित्र रेखांकित करते हैं :

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत।
राखत है गइया ॥ १ ॥
मोहन मेरा साईंयां ॥ ध्रु० ॥
मोरपत्र शिरीं छत्र सुहावे।
गोपी धरत बहियां ॥ २ ॥
भानुदास प्रभु भगतन को बच्छल।
करत छत्र छाइयां ॥ ३ ॥

इनके काव्य में राधा अवश्य ही अनुल्लखित हैं—परन्तु राधाभाव भरा-पूरा है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

मध्वमुनीश्वर

मध्वमुनीश्वर मराठी के एक श्रेष्ठ सन्त कवि थे। ये नासिक के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम नारायण और माता का द्वारावती था। यह घराना मूलतः त्र्यम्बकेश्वर का है। ये देशस्थ माध्व-सम्प्रदायी ब्राह्मण थे। माता-पिता ने त्र्यम्बकेश्वर में अनुष्ठान करके शिव की कृपा से पुत्र प्राप्त किया था। इसलिए उसका नाम त्र्यम्बक रखा। प्रौढ़ होते ही त्र्यम्बक ने ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सप्तश्रृंगी देवी के सामने तपश्चर्या शुरू की। देवी प्रसन्न हुईं। उनके अनुग्रह से त्र्यम्बक को व्याघ्ररूप में शुकाचार्य ने दर्शन दिया। त्र्यम्बक ने तत्क्षण उनको साष्टांग प्रणाम किया। इन्होंने शुकाचार्य से ही गुरु मन्त्र ले लिया।

मध्वमुनीश्वर विवाहित थे। लेकिन गुरु-मन्त्र के अनन्तर इनका मन संसार में नहीं लगा। ये स्वच्छन्द और उन्मुक्त जीवन-यापन करने लगे। वैष्णवों ने इनके विरुद्ध मध्वाचार्य के सामने एक शिकायत की। प्रत्यक्ष भेंट होने पर मध्वाचार्य को भी त्र्यम्बक की महत्ता का परिचय मिला। उन्होंने ही त्र्यम्बक को मध्वमुनि नाम दिया। इसके अनन्तर इन्होंने तीर्थयात्रा की। अनेक जगह देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित कीं। इन्होंने अपना अधिकांश जीवन भगवच्चिन्तन और काव्य-रचना में व्यतीत किया। ये कीर्तनकार भी थे। कीर्तन के लिए इन्होंने अत्यन्त भावपूर्ण और मधुर कविता की रचना की। इन्होंने लगभग सात सौ पद मराठी में लिखे हैं। एक-दो उदाहरण देखिये :

उद्धवा, शान्तवन करजा,
त्या गोकुलवासि जनांचें ॥ध्रु०॥
बा, नन्द-यशोदा माता,
मजसाठी त्यजतिल प्राण ॥
त्यागुनी प्रपंचा फिरती,
मनिं उदास रानोरान ॥
अन्नपाणी त्यजिलें रडती,
अति दुःखित झाले दीन ॥
जन्मलों तैंहुनि झटले।
मललागीं तिळ तिल तुटले।
कटि खांदे वाहतां घटले।
आले रक्त देहाचें,
उद्धवा, शान्तवन कर जा ॥ १ ॥
आइ बाप त्यजुनी बाळें,
मजसंगें खेळत होतीं ॥
गोडशा शिदोऱ्या आणुनी,
आवडिनें मजला देती ॥
रात्रं दिस फिरले मागें,
दधि गोरस चोरूं येती ॥
मी तोडुनी आलों तटका।
तो जिवाला लागला चटका।
मजविण त्या युगसम घटका।
आठवतें प्रेम जयांचें,
उद्धवा, शान्तवन कर जा ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पति सुतादि गृह धन त्यजिलें,
मजवरती धरुनि ममता ॥
मानिलें तुच्छ अपवर्गा,
मजसंगें निश्चल रमतां ॥
मद्वृत्त चित्त त्या गोपी,
नेत्रान्तरिं लेवुनि समता ॥

तिळतुल्य नाहिं मनिं उगल्या।
दृढ निश्चय धरुनी तगल्या।
बहुधा त्या नसतिल जगल्या।
भंगले मनोरथ ज्यांचे,
उद्धवा, शान्तवन कर जा ॥ ३ ॥

हरि आहे सुखरूप म्हणुनी,
भेटतांच सांगावें ॥
सांग कीं समस्तां पुशिलें,
प्रत्युत्तर त्यां मागावें ॥
करुनिया ज्ञान तयांतें,
सांग की शोक त्यजावे ॥

हें कार्य नव्हे तुज जोगें।
मजसाठी जावें वेगें।
हें मध्वमुनीश्वर सांगे।
त्या न पवे ज्ञान जयाचें,
उद्धवा, शान्तवन कर जा ॥ ४ ॥

मध्वमुनीश्वर का यह पद महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय हुआ। इस पद को गाने का जो ढंग है, उसीसे 'उद्धव' नामक एक मराठी वृत्त प्रचलित हुआ है।

उपर्युक्त पद का भावार्थ इस प्रकार है—'उद्धव ! तू गोकुल जाकर वहाँ के निवासियों का मन शान्त कर। उद्धव ! मेरी माता यशोदा, पिताजी नन्द तथा अन्य सब लोग मेरे प्रेम में विरह-व्याकुल हैं। गृहस्थी त्याग करके वे उदास होकर वन में घूम रहे हैं। उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया है। वे अति दुःखित और दीन हो गये हैं। मेरे जन्म के समय से ही वे मेरे लिए दुःखी रहते हैं। वे मेरे लिए अति कोमल हृदय के बने हैं। उनके शरीर का रक्त सूख गया होगा। गोकुळ के बच्चे अपने माँ-बाप को छोड़कर मेरे साथ खेलते थे। वे मधुर-मधुर कलेवा लाकर मुझे प्रेम से देते थे। वे रात-दिन मेरे ही साथ रहते थे, दधि-गोरस की चोरी करते थे। उन्हें छोड़कर मैं आया हूँ। मेरे प्राण बेचैन हैं। एक-एक घड़ी मुझे युग समान हो गयी है। मुझे उनके प्रेम का स्मरण बार-बार होता है। गोकुल की गोपियों ने अपना पति, सुतादि, गृह छोड़कर मुझ पर ममता की। उन्होंने स्वर्ग को भी तुच्छ मान लिया। वे मेरे साथ दत्तचित्त होकर क्रीड़ा करती थीं। वे गोपियाँ मुझ से बहुत प्रेम करती थीं। उनके मन में भय नहीं था। उनका निश्चय दृढ़ था। मनोरथ भंग होने के कारण वे कदाचित् जीवित नहीं होंगी। उद्धव, तू जाकर उनसे कह कि 'श्रीहरि सुखी हैं। मैंने सबका क्षेम-कुशल पूछा है। तू प्रत्युत्तर लेकर आ। उनको तू ज्ञान का उपदेश कर। शोक त्यागने के लिए कह। मध्वमुनीश्वर कहते हैं, उद्धव, तू यह कार्य कर।'

इसी प्रकार के अनेक पद मध्वमुनि ने लिखे हैं। **'जाणों हरिचे पाय। आम्हीं जाणों हरिचे पाय'** (हम हरि के पाँव जानते हैं), **'जिवलग मायबाप विठोबा'** (माय-बाप विठोबा मेरा प्राण है), **'जीवन पण्ढरिराय। माझें ॥'** (मेरा जीवन ही पण्ढरीराय है), **'चिन्ता सर्वांची हरीला'** (सब लोगों की चिन्ता श्री हरि करता है), **'हरिची मला लागली गोडी'** (मुझे हरि की मधुरता ज्ञात है), **'लोभ हरीचा लटका। गे बाई !'** (बाई ! हरि का प्रेम सच्चा नहीं है। **'मन-मोहन वाजवी वेणू रे'** (यह मनमोहन वेणु बजाता है), **'याचे हातींचा वेणु कुणीं घ्या गे'** (श्री हरि के हाथ से कोई वेणु छीन लेता तो अच्छा होता), **'मनमोहन यदवराया रे'**, **'जिवलग प्राण तू प्राण। सख्या हरि'**—आदि अनेक पद मध्वमुनीश्वर लिखित मराठी में प्रसिद्ध हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महदम्बा (महदायिसा)

महदम्बा अथवा महदायिसा मराठी भाषा की आद्य कवयित्री थीं। इनका मूल नाम रूपाई था। इनके पिता का नाम वायेनायक तथा माता का नाम कामाइसा था।

रूपाई बुद्धिमान् तथा वेदाभ्यास-सम्पन्न थीं। ये शास्त्रज्ञ पण्डितों से वाद-विवाद भी करती थीं। इनकी बुद्धि-सम्पदा देखकर महानुभाव-पन्थ के श्री चक्रधरजी ने इनको महदाइसा नाम दिया। यह नाम रूपाई की परदीदी का था। बाद में केसोबास इन्हें महदम्बा कहने लगे। महदम्बा के पिता वायेनायक रावस गाँव में रहते थे। ये बाल-विधवा थीं। महानुभाव-पन्थ के आद्य आचार्य नागदेव इनके चचेरे भाई थे। महदम्बा और नागदेव को श्री चक्रधर का प्रथम दर्शन पाटवध गाँव में हुआ था। श्री चक्रधर के प्रभाव से महदम्बा और नागदेव, दोनों ने महानुभाव-पन्थ में दीक्षा ले ली।

महदम्बा को चक्रधर का सत्संग निरन्तर मिला। ये श्री चक्रधर से अनेक प्रश्न पूछती थीं। ब्रह्मानुभूति, आत्मज्ञान, कुल-धर्म इत्यादि विषयों पर वे चर्चा करते थे। 'म्हातारी जीज्ञासक, म्हातारी चर्चक : म्हातारी एथ काही पूसतचि असे' जैसे विशेषणों के द्वारा चक्रधर ने महदम्बा की प्रशंसा की है। महदम्बा के कारण ही श्री चक्रधर के मुख से अज्ञात चरित्र भाग प्रकट हुआ है। श्री चक्रधर के निर्वाण-काल तक महदम्बा ने उनकी सेवा की। चक्रधर के बदरिकाश्रम की ओर चले जाने पर महदम्बा ऋद्धिपुर में उनके गुरु गोविन्दप्रभु के साथ रहने लगी थीं।

श्री चक्रधर के वियोग से नागदेव पागल-से हो गये और भानखेड़ा गाँव के पास निश्चेष्ट बनकर पड़ गये। उस समय महदम्बा उन्हें अपनी पीठ पर बैठाकर गाँव में लायीं। दूध पिलाकर महदम्बा ने उनका पोषण किया। सन् १२८६ ई० में गोविन्दप्रभु समाधिस्थ हो गये। तदनन्तर महदम्बा नागदेव के पास रहने लगीं। इन्होंने 'धवळे', 'मातृकी', 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'गर्भकाण्ड' आदि प्रकरण-ग्रन्थ लिखे हैं। 'धवळे' पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में विभाजित है। यह एक प्रकार का विवाह-गीत है। उसका कथानक इस प्रकार है—'एक गाँव में विवाह-समारोह बड़े उत्साह के साथ हो रहा था। यह देखकर गोविन्दप्रभु के मन में आया कि अपना भी विवाह करना होगा। प्रभु की इच्छा देखकर परमेश्वर नायक ने उन्हें अपनी कन्या दी। विवाह के बाद गोविन्दप्रभु ने महदम्बा से विवाह-गीत गाने का आग्रह किया। महदम्बा को काव्य-रचना की विधा ज्ञात नहीं थी। **'चक्रधरचे शिरीं धरुनियां चरण'** (श्री चक्रधर के चरण शिर पर धारण करके) कहने पर उसे काव्य-स्फूर्ति हुई। रुक्मिणी-स्वयंवर पर एक गीत साकार हुआ। काव्य-रचना इस प्रकार थी :

भीमकाकुळीं रुक्मिणी
केला अवतारु।
रूपें लावण्यें [illegible]यां
जितला संवसारु।
तव रावो चिन्ता करी कवणा,
दयावी सलक्षणिक कुमरी ?
या त्रिभुवन माझारीं रूपें
सुन्दरु वाखाणे मुरारी ॥

'भीमक के कुल में रुक्मिणी का जन्म हुआ। रूप और लावण्य में वह अद्वितीय थी। उसके पिता को चिन्ता हुई कि इस सुलक्षणा कुमारी का विवाह किससे किया जाय ? इस त्रिभुवन में मुरारी कृष्ण ही सुन्दर है।'

रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को एक पत्र लिखा। उसे लेकर सुदेव ब्राह्मण द्वारका गया। इस प्रसंग का वर्णन महदम्बा ने इन शब्दों में किया है :

नग्रीं प्रवेसु जाला राउळाभीतरीं।
ब्राह्मणां आठकाठी नाहीं तीये द्वारीं।
सप्तही दारवठे देखे तथा
भीतरीं कृष्ण मन्दिरें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नखचिते रम्ये सरि न
पवती मेरुसीखरें।
विप्रें देखियला कृष्ण
यादवांचा राणा।
योगिय-मुनिजन सन्नेधी-चरण ।।

'सुदेव ब्राह्मण का प्रवेश द्वारका में हुआ। राउल में उसने प्रवेश किया, उसे किसीने रोका नहीं। सप्त द्वार पार कर वह कृष्ण-मन्दिर में आया। वह मन्दिर रत्नखचित था। उसकी तुलना मेरुपर्वत के शिखरों से नहीं हो सकती। सुदेव विप्र ने द्वारका का राणा देखा। उसके चरणों पर योगी, मुनिजन थे।'

'धवळे' का पूर्वार्ध ८३ पदों का है। उत्तरार्ध की रचना म्हाइंभट और लक्ष्मीन्द्र भट ने की है। 'रुक्मिणी-स्वयंवर' भी अत्यन्त सरस व सुन्दर है। उसमें श्रीकृष्ण का वर्णन देखिये :

कासें पीताम्बरु। कण्ठीं कुन्दमाळा :
कान्तु शोभे सांवळा। रुक्मिणीचा :
खांदावरी कावडी। पडिभरें चालतु :
तोखेळे वनांतु। दत्तु सए :
गावो द्वारावती। गोमतीए प्रांतीं :
गोदरीयें क्रीडती। चक्रपाणी :
धावो येउनि अविद्यें। घाली निजपदीं :
खेळे कृपानिधि। रिधपुरीं :

'श्रीकृष्ण या गोविन्दप्रभु का रूप कैसा था? उसने पीताम्बर धारण किया था। गले में कुन्दमाला थी। कान्ति श्यामल थी। वह वन में क्रीड़ा कर रहा था। गोमती प्रान्त में द्वारावती नगर में चक्रपाणि क्रीड़ा करता था। उसके चरणों पर अविद्या समर्पित करके कृतार्थ होकर कृपानिधि रिधपुर में क्रीड़ा कर रहा है।'

महदम्बा महानुभाव-पन्थ की श्रेष्ठ कवयित्री थीं। 'यह वृद्धा धर्मरक्षक होगी'—यह नागदेवाचार्य की भविष्यवाणी थी। महदम्बा का देहान्त नवगाँव में हुआ।

प्र० न० जो०

महादजी शिंदे

महाराष्ट्र के इतिहास में रणवीर महादजी शिंदे (सिंधिया) का स्थान अनन्यसाधारण रहा है। मन्त्री नाना फडणवीस और कुशल सेनानी महादजी शिंदे ये पेशवा-काल के दो ऐसे नाम हैं कि जिनके अभाव में महाराष्ट्र का इतिहास ही कुछ दूसरा हो जाता।

महादजी एक अतीव निष्ठावान् स्वभाव के व्यक्ति थे। पेशवा सरदारों में उनके जैसा स्वामिभक्त आचरण शायद ही और किसीका रहा हो। एक रणनीतिचतुर सेनानी होते हुए भी उनका व्यवहार विनम्र और सेवापरायण रहता था। पूना-दरबार के अन्य सरदार, पेशवाओं की सेना और साधारण हिंदू-मुसलमान प्रजा में भी महादजी के प्रति अत्यन्त सम्मान की भावना थी। सबकी दृष्टि में प्रिय होने जैसा ही महादजी का स्नेहशील व्यक्तित्व था।

एक सामान्य सिपाही से उन्नति करते हुए महादजी महान् सरदार बन गये। इतिहासकारों की यह एकमुखी मान्यता रही है कि महादजी जैसा महान् कर्तृत्वशाली पुरुष शिवाजी के बाद दूसरा नहीं हुआ। महादजी का विलक्षण व्यक्तित्व, पराक्रम और सौजन्य का साक्षात् नमूना है। उनकी स्वामिनिष्ठा और मराठी-राज्य के प्रति अभिमान की भावना अतुलनीय थी। पेशवा-दरबार के अन्य सरदार, सेना और सामान्य प्रजाजनों के हृदय में भी आदरणीय स्थान प्राप्त कर उन्होंने मराठों के इतिहास पर अपना प्रभाव अमिट कर दिया है। महादजी के त्यागी, निःस्वार्थी, स्नेहशील एवं स्वामिभक्त जीवन चरित्र का रहस्य क्या है?

राजनीति-परायण, रणनीति-कुशल योद्धा एवं मराठा-साम्राज्य के एक प्रमुख निर्माता महादजी शिंदे अपने वैयक्तिक जीवन में अनुकरणीय आचरण रखते थे। ये स्वभाव से ही भक्तिनिष्ठ थे। ईश्वर के प्रति इनमें विराट् श्रद्धा-भावना थी। भक्तहृदय महादजी का मन ईश्वरीय अनुभूति से विमल हो गया था। नित्य हरिकथा-श्रवण और सत्संग के कारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका स्वभाव निःस्वार्थी, व्यवहार स्नेहशील और प्रवृत्ति त्यागमय तथा सात्त्विक बन गयी थी।

हिन्दी प्रदेश में अनेक वर्ष निवास करने के कारण इनको हिन्दी भाषा पर अच्छा-खासा अधिकार प्राप्त हुआ था। इन्होंने मराठी और हिन्दी में भक्ति-भाव से पूर्ण रचनाएँ की हैं। इन मधुर पदों में इनके सरल, सुबोध कवित्व और भक्ति-रस से सिक्त भावों को व्यक्त करने की क्षमता है।

महादजी की कविताओं का रसास्वादन करने के पूर्व उनके जीवन-चरित्र का अवलोकन करना समीचीन होगा।

सतारा जिले में एक गाँव है कण्हेरखेड। महादजी के पितामह जनकोजी शिंदे इसी गाँव के रहनेवाले थे। उन्होंने प्रथम पेशवा बाळाजी विश्वनाथ की फौज में बड़ी बहादुरी दिखाई। दूसरे पेशवा बाजीरावसाहब के साथ अतुल पराक्रम दिखानेवाले राणोजी शिंदे महादजी के पूज्य पिता थे। कण्हेरखेड में राणोजी शिंदे के घर सन् १७२७ ई० में महादजी का जन्म हुआ। सारा घर ही सूरमाओं का था। महादजी शूरता के संस्कारों में ही बड़े हुए और एक दिन मराठी फौज में भर्ती हो गये। माधवराव पेशवा के समय इनको सरदार का पद प्राप्त हो गया।

मराठा सेना को लेकर महादजी उत्तरी भारत में पहुँचे। मुगल एवं राजपूत सेना के साथ यशस्वी संघर्ष कर इन्होंने मराठा राज्य की सीमाओं को विस्तारित किया। कुछ ही वर्षों में उत्तरी भारत का मानचित्र ही परिवर्तित हो गया। उत्तर के अनेक राज्य पेशवाओं के दरबार से सम्बद्ध हो गये। मुगल शासकों ने भी महादजी की योग्यता को मान्यता देते हुए उनसे स्नेह-सम्बन्ध प्रस्थापित किये।

उदयपुर रियासत की ओर से नौ लाख रुपयों की हरसाल प्राप्ति निचिश्त कर महादजी ने बड़ा कार्य किया। सन् १७७० ई० के करीब महादजी शिंदे उत्तरी भारत में मराठों के एक श्रेष्ठ सेनाधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। ग्वालियर रियासत को इन्होंने बड़ी लगन और योजकता के साथ सँभाला। उत्तर की मराठा रियासतों में इन्होंने ग्वालियर को विशेष वैभवशाली बनाया।

महादजी के मन में साधु-सज्जनों के प्रति श्रद्धा की भावना थी। ये नित्य हरि-कथा का श्रवण करते थे। इनका रहन-सहन भी किसी सामान्य भक्त-हृदय व्यक्ति जैसा सादगी से पूर्ण था। ये नित्य तिलक लगाते थे। इनके हाथों में जपमाला (स्मरणी) रहती थी। श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति इनके मन में अतीव भक्ति थी। पाटीलबावा (इसी नाम से वे विशेष प्रसिद्ध थे।) श्रीकृष्ण का नित्य स्मरण करते रहते थे।

सन्त-सत्पुरुषों के दर्शन करने के लिए महादजी सदैव प्रयत्नशील रहते थे। उनका समुचित आदर कर उन्हें राजदरबार से सहायता प्रदान करने में इन्हें बहुत सन्तोष प्राप्त होता था। साधु-सन्तों की प्रसादपूर्ण वाणी का श्रवण करने के लिए महादजी यथासम्भव समय निकालते थे।

मल्लाप्पा वासकर, सोहिरोबा आंबिये, रामदासी लक्ष्मण महाराज शिरगांवकर, पैठण के नाथ महाराज इत्यादि साधु-महात्माओं के नित्य दर्शन करने में महादजी गौरव अनुभव करते। अपने राजकाज और लड़ाइयों से व्यस्त जीवनक्रम के बावजूद महादजी सन्त-समागम के हेतु समय निकाल ही लेते।

सन्तकवि दत्तनाथबुआ और महादजी की मित्रता के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। दत्तनाथबुआ दक्षिण के राक्षसभुवन के रहनेवाले थे। नाथपन्थीय साधु अनन्तनाथ से दीक्षा ग्रहण कर दत्तनाथ संवत् १८२४ में काशीयात्रा के लिए निकल पड़े। अपने मार्ग में वे उज्जैन में ठहरे थे। यहाँ उनके कीर्तनों का श्रवण करने के लिए महादजी आया करते थे। महादजी दत्तनाथ से इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने उनसे सदैव अपने साथ रहने के लिए आग्रह किया। दत्तनाथ पुनः आने का आश्वासन देकर काशी गये। युद्ध-कार्य के हेतु महादजी जब मथुरा गये तो दत्तनाथ से पुनः भेंट हुई। इस समय महादजी का आग्रह उन्होंने स्वीकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया और दत्तनाथ महादजी के साथ बराबर रहने लगे। रणभूमि में भी दत्तनाथ महादजी के साथ रहते थे।

दत्तनाथ के साहचर्य में महादजी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति विकसित हुई। उन्हें ज्योतिष शास्त्र का गहरा ज्ञान था। महादजी सदैव उनसे सलाह लिया करते थे। अपने काव्य को उन्हींसे इन्होंने परिष्कृत भी करा लिया। दत्तनाथ के मठ-मन्दिर में आज उज्जैन में जो ढोल और वाद्य सुरक्षित हैं उनका महादजी की पत्थरगढ़ की लड़ाई से सम्बन्ध है। महादजी की कविता इसी मठ में प्राप्त हुई।

महादजी दत्तनाथ के सत्संग में कीर्तन-कला भी सीख गये। संस्कृत, फ़ारसी, मराठी, और हिन्दी भाषा पर इनको अच्छा अधिकार प्राप्त था। इनके ऐतिहासिक पत्रों से भी यह बात स्पष्ट होती है। इनके कीर्तन-गायन के अनेक वर्णन चरित्र-कथाओं में प्राप्त होते हैं।

शुकदेव वैद्य, बालमुकुन्द मिश्र, सविता, सूरति मिश्र आदि कवि-मित्रों के साथ महादजी के भजन, गायन करने के ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

महादजी ने हिन्दू मन्दिरों को अनेक प्रकार के दान किये हैं। प्रतिष्ठान अथवा पैठण में विष्णुयाग के लिए इन्होंने सहायता की। मथुरा, वृन्दावन, पुष्कर आदि तीर्थस्थलों में इनके द्वारा किये हुए धर्मकार्य आज भी बताये जाते हैं। ग्वालियर में भी इस प्रकार के अनेक धार्मिक स्थान हैं जिनको उदार-हृदय, धर्म-निष्ठ महादजी ने आर्थिक सहायता प्रदान की थी।

मंसूरशाह बिडकर नामक एक सूफी औलिया के साथ भी महादजी के विशेष सम्बन्ध थे। इस औलिया फकीर की साधना-शक्ति से प्रभावित होकर उन्हें इन्होंने अपना गुरु बना लिया था। बीड में मन्सूर-शाह को महादजी द्वारा जागीर प्रदान की गयी थी।

महादजी के खानगी दरबार का एक प्रामाणिक चित्र उपलब्ध हुआ है। इस ऐतिहासिक चित्र का अवलोकन करने पर भी महादजी की श्रद्धाशील वृत्ति

का परिचय मिलता है! चित्र में महादजी के हरि-कथा-श्रवण करने का दृश्य अंकित है।

ग्वालियर के राजपुस्तकालय में एक हस्तलिखित ग्रंथ भालेरावजी को प्राप्त हुआ है। इससे पूर्व ग्वालियर और उज्जैन के मठ-मन्दिरों में भी उन्हें महादजी की कविता प्राप्त हुई थी। मूल ऐतिहासिक बाड (हस्त-लिखित काव्यसंग्रह) की समाप्ति-मुद्रा इस प्रकार है—

> "इति श्रीमन्महाराज राजमौलि मुकुटमणि मरीचि मञ्जरी पिञ्जरीकृत पादपीठानां श्रीमन्महाराजाधिराज मादवेश सार्वभौमानां गीति प्रबन्ध कृतौ यदुकुल कुमुद विकास प्रकाशित पराक्रमस्य भगवतो नन्दानन्दकन्दस्य श्रीमन्माधवस्य कृष्णचन्द्रस्य जन्मक्रीडादि वर्णनं सम्पूर्णम्"

काव्यविषय एवं काव्यकर्ता के सम्बन्ध में सुस्पष्ट निवेदन करनेवाली इन पंक्तियों के अनन्तर लिपिक ने लेखनकाल भी दिया है, जो इस प्रकार है—

"श्रीमद्विक्रम भूभुजो गत शरत्संघेष्ट वेदाष्ट भू।
१८४८ संख्ये माधव कृष्ण पंचमी तिथौ,
वारे रवेः सूनुजे ॥
श्रीमत्पुष्कर तीर्थराज निकटे श्रीमाधवस्याज्ञया।
नाम्ना बालमुकुन्द मिश्र इति येना लेखयदः पुस्तकम् ॥

इस हस्तलिखित ग्रंथ के लेखक बालमुकुन्द मिश्र महादजी के अन्तरंग मित्रों में से थे। बालमुकुन्द मिश्र स्वयं एक प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उन्होंने महादजी के काव्य कौशल के सम्बन्ध में अपने एक संस्कृत श्लोक में अत्यन्त मार्मिकतापूर्ण गौरवोल्लेख किया है—

"श्रीमन्माधव यादवेन्द्र परमप्रीति प्रदेयं सदा।
श्रीमन्माधव जन्मकर्मजनित व्यवहार सन्दर्भिता ॥
श्रीमन्माधव सार्वभौम कवन प्राग रुभ्य सद्गुंफिता।
श्रीमन्माधव सार्वभोमकृतिरित्येषा चिरं राजताम् ॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादजी का कविनाम माधव रहा है। इसलिए उनके हस्तलिखित काव्यसंग्रह को (बाड) लेखक ने अत्यन्त सरस एवं सुयोग्य नाम प्रदान किया है—'माधवविलास'!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'माधवविलास' के अनुसन्धान के पश्चात् श्रीमान् भालेरावजी ने उसे अत्यन्त परिश्रमपूर्वक सम्पादित कर ग्वालियर रियासत की मदद से प्रकाशित किया था। यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया है। इसका मूल मराठी नाम है 'राजकवि महादजी शिंदे उर्फ पाटीलबावा आलीजाह बहादुर कृत कविता'। इस संकलन में महादजीकृत भगवद्गीता-टीका के अलावा उनकी समग्र कविता का अन्तर्भाव हुआ है। गीता-टीका बहुत खोजबीन करने के पश्चात् भी अब तक अनुपलब्ध रही है।

'माधवविलास' मे विभागशः पदरचना संकलित है। गुरु-प्रशंसा पर पद, अध्यात्म-विवरण पर पद, श्रीकृष्ण-जन्मवर्णन पर पद, ये उसके स्थूल भाग हैं। इनके अतिरिक्त स्फुट पदों के स्वतन्त्र विभाग में हिन्दी तथा मराठी पद संकलित हैं।

मराठी अभंग, पद इत्यादि कुल संख्या में २६५ तक प्राप्त हुए हैं। हिन्दी पदों की संख्या १४० तक है। अभंग, ओवी, लळित, लावनी (लावणी), श्लोक एवं पद—इस प्रकार विविध काव्य-पद्धतियाँ अपनाकर महादजी ने अपना 'माधवविलास' अलंकृत किया है।

इस सारे काव्य का मूल विषय श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन रहा है। कवि गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखता है। अनेक पद गुरु-महिमा-वर्णन के हैं। कुछ पदों में आध्यात्मिक आनन्द का निरालापन अभिव्यक्त हुआ है। कवि की हिंदी भाषा भी संस्कृत तथा मराठी के प्रभाव से पूर्ण है। इनकी हिन्दी भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा है। परन्तु फारसी-अरबी का इस भाषा पर जबरदस्त प्रभाव है। अनेक हिन्दी तथा मराठी पदों में भावसाम्य भी मिलता है, जो अत्यन्त स्वाभाविक माना जायगा। यहाँ एक उल्लेख अप्रासंगिक न होगा। मराठी का ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य सुसमृद्ध है। महादजी के जीवन पर भी ऐसी एक समर्थ कृति मराठी में प्रकाशित हुई है। प्रतिभाशाली लेखक ने इस उपन्यास में महादजी की हिन्दी तथा मराठी कविता का अत्यन्त कौशल के साथ उपयोग किया है।

महादजी की समग्र कविता पर सन्तश्रेष्ठ तुकाराम का प्रभाव पाया जाता है। इनके सन्तमित्र श्रीमान् सोहिरोबा आंबिये ने इन्हें स्पष्टता से अपना यह अभिप्राय बताया था। तुकाराम महाराज के मराठी अभंगों का अनुकरण करना वास्तव में सहज सुलभ नहीं। तुकाराम के हिन्दी पदों की शैली भी निराली है। महादजी ने निश्चय ही तुकाराम जैसे श्रेष्ठ सन्त का काव्य पढ़कर उस पर विचार किया होगा। तुकाराम की कविता की सामर्थ्य ही ऐसी जबरदस्त है कि आज भी मराठी कवि अनायास उनका अनुगमन कर लेते हैं। महादजी की हिन्दी-मराठी कविता पर तुकाराम का प्रभाव कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक समीचीन होगा कि महादजी तुकाराम से भी प्रभावित हुए थे।

महादजी की हिन्दी रचनाएँ मराठी की तुलना में संख्या में कम होने पर भी अत्यन्त सरस बन पड़ी हैं। हिन्दी जैसी कोमल भाषा और तिस पर श्रीकृष्ण भगवान् की रसिक क्रीड़ाओं के रसपूर्ण वर्णन का विषय! कवि है अत्यन्त सश्रद्ध और उसने अपनायी है सूर-मीरा की बोली ब्रज भाषा!

पेशवा-काल के अहिन्दीभाषी हिन्दी कवियों में महादजी को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। उनकी समग्र हिन्दी पदावली को सुसम्पादित रूप में हम हिन्दी-जगत् के सम्मुख रखने का प्रयत्न कर रहे हैं।

महादजी का अधिकतर जीवन महाराष्ट्र के बाहर हिन्दी-भाषी प्रदेश में ही व्यतीत हुआ। फलतः हिन्दी भाषा और साहित्य से केवल इनका अच्छा परिचय ही नहीं हुआ, वरन् वह इनकी दूसरी मातृभाषा ही बन गयी। इसीसे इनकी हिन्दी रचनाओं में भाषा कीं शुद्धता है। एक सुगठित पद्य देखिये—

> माई बरजो नहीं कोऊ,
> यह मोहन है अतिही हठीलो ॥ ध्रु० ॥
> लटपट नटखट लटपट मो अंग,
> छुटत जुटत माधो छैल छबीलो ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झटपट नटखट लटलपटी अंग,
मोहन हठि गहि गैल ।।
कोऊ जाको बरजत नाहीं,
यह माधौ ब्रज छैल ।।

इससे पूर्व हमने विस्तार से निवेदन किया है कि महादजी अत्यन्त सन्त-प्रेमी व्यक्ति थे। सत्पुरुषों के प्रति इनके मन में अपार आदर था। अनेक महात्माओं से सत्संग कर इन्होंने ज्ञान ग्रहण किया था। एक ही गुरु को मानने का सम्भवतः इनका स्वभाव भी नहीं था। इनके जैसे रणनीति-निपुण सेनानी की विनम्रता सचमुच हमें आश्चर्य-विमुग्ध कर देती है।

गुरु की महती-कृपा का वर्णन करनेवाले लगभग साठ पद इन्होंने रचे हैं। इन पदों में अभिव्यक्त श्रद्धा तथा विनय अनन्यसाधारण है।

गुरु-चरण ही सब कुछ है। आराम हो या ज्ञान-ध्यान हो, सम्मान हो या मनमान हो,....ये सारी बातें सच्चे साधक को अपने पूज्य गुरु के चरणों में दिखायी देती हैं। गुरु-चरणों में सदैव विनम्र होना ही उसका जीवनानन्द है। माधवकवि का यह गुरुचरणरत विनम्र जीवनसुख देखिये—

लाग गुरुचरण, अनुराग गुरुचरण।
जाग गुरुचरण, निज भाग गुरुचरण।
ज्ञान गुरुचरण, अरु ध्यान गुरुचरण।
सन्मान गुरुचरण, मनमान गुरुचरण।
राम गुरुचरण, आराम गुरुचरण।
सर्व काम गुरुचरण, सुखधाम गुरुचरण।
नेम गुरुचरण, अरु खेम गुरुचरण।
निधि हेम गुरुचरण, 'माधव' प्रेम गुरुचरण।

गुरु के चरणों में अपने सारे कृत्य, कर्तव्य, सुख, समाधान, इच्छा, आकांक्षाएँ न्योछावर करनेवाला यह साधक कवि बड़ा ही सरल-हृदय भक्तराज है। उसकी यह गुरुनिष्ठा अद्भुत है।

गुरु परम शक्तिशाली है। जन्म के फेर में अटके हुए मानव को वह सहज ही बन्धनमुक्त करने की शक्ति रखता है। सकल वेदशास्त्र-पुराणों पर पूर्ण अधिकार होने से वह साधक को सहज ही में इससे परिचित कराता है। ऐसे ही गुरुदेव के चरणों में विनीत होकर 'माधव' अगम पन्थ की सुगम राह पर चल रहा है।

ये सुमिरिन किन करिये ।। ध्रु० ।।
सहजे फेरे फेर जनम के,
जिन चरणन चित धरिये ।।
सकल वेद वेदान्तसार सो,
दृष्टि अगोचर करिये ।।
जिनकी सहज कृपा ते 'माधव',
अगम पन्थ पग धरिये ।।

सूरमा महादजी के नम्र साधक-स्वभाव का यह परिचय नितान्त दुर्लभ है। श्रद्धाशील पाठक को महादजी की यही सादगी, गुरु-भक्ति, निष्ठा, तथा भावना प्रभावित करनेवाली है।

महादजी के हृदय में गुरु और गोविन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनका मन पग-पग पर पथदर्शी गुरु और पिण्ड-ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा के प्रति निरन्तर नम्र होता था। कवि की दृष्टि में सफल जीवन का यह मनोरम चित्र देखिये—

गुरु हरि के गुन गाव रे मन ।। ध्रु० ।।
अचार विचार किये कहा होई,
तीरथ-तीरथ न्हाव रे मन ।।
पढ़ि-पढ़ि शास्त्र सो बाद मचावत
आपुन को नहिं ठावरे मन !

कवि ने वास्तविक जीवन का रहस्य अच्छी तरह पहचाना है। शास्त्र-पुराण की शुष्क चर्चा में उसे रस नहीं मिलता। आचार-आडम्बर से वह अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता है। व्यर्थ की बहस-चर्चा उसे पसन्द नहीं। यह तो ठीक मृगवाली मूर्खता हुई—

माया मृगजल ज्यों मृग भूल्यो,
तैसो है जहँ चाव रे मन !
और इसीलिए
इन्द्रिय चालक जो जगपालक,
पुरुष अलख तू ध्याव रे मन !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आतम को आतम में देख तू,
भलो बनो यह दाव रे मन !

भला बनने की यह चाह निराली है। वीरवर महादजी का मन एक साधक की स्नेहभरी विमल विचारधारा से परिपूर्ण था। जीवन की सादगी, भक्तिभाव, तथा ईश-चिन्तन के प्रति इनका स्वाभाविक झुकाव था। परन्तु परिस्थितिवशात् इस भक्त-हृदय राजपुरुष ने तलवार हाथ में ली थी। भक्ति पर कर्म और कर्तव्य सम्भवतः हावी हो गया ! महादजी का सच्चा रूप इन सुन्दर पंक्तियों में प्रकट हुआ है—

बाती ही सो बाती लाय ले,
स्नेह तें हिय पर चाव रे मन !
श्री गुरु माधव सों हित चित धर,
दृढतर कर यह भाव रे मन !!

महादजी की हिन्दी कविता रसमधुर है। राधा और कृष्ण के अलौकिक प्रेम का सहज-सुन्दर चित्रण करनेवाले इनके कुछ पद बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं। अलंकारादि का विशेष आश्रय न लेते हुए सरल शब्दों में भावाभिव्यक्ति करने का मनोरम ढंग देखिये—

अरी बाँसुरिया बाँस की, छलि तप कीन्यौ कौन।
उन अधरन लागी रहैं, हम चाहति हैं जौन ।।
मोहन माधव जगत के, ते तुहि लीने मोहि।
हमें अधर धरि साँवरे, राख्यौ अधरनि तोहि ।।
कानन-कानन ढूँढ़िकै, बनसी करी सुढार।
काननि सुनि कानन रहै, कुल की सखि निरधार ।।

माधव व्रजनिवासिनी नारियों के मनोमन्दिर में छिपा बैठा है। उसकी वह 'बाँसुरी नागिन-सी डसी री !' कहकर गोपिका रुआँसी हो जाती है, तो दूसरी उसकी सहेली 'सोवत-सोवत चौंकि परी' और किसी विरहिणी की तो ऐसी भी विचित्र दशा हो गयी···· 'जागत-जागत नींद गयी री'···· फिर मीठी-मीठी शिकायतों का वर्णन करते हुए महादजी भक्तिरस में सराबोर हो गये। आर्त स्वरों में राधिका की 'मन चाही' व्यक्त करते हुए कहा उन्होंने,

दरसन देहों कान्हाजी, निपट निदान कानूडा ।।ध्रु०।।
अरि-अरि कठिन अहीर के, नेक परी पहिचान।
तो मुख दरसन कारनै, छाँड़ि दई कुल कान ।।
माता-पिता भर्तार तजि, तो ही सों हित माँडि।
माधौ दीजे दरस को, अब तू मोहि न छाँडि ।।

यहाँ 'कानूडा' शब्द कितना भावव्यंजक है ! सारा पद गोपिका की भाववृत्ति को सजीव करनेवाला है।

किसी पद में श्रीकृष्ण गोपाल की सुन्दर साज-सज्जा का अनूठा चित्र उपस्थित कर कवि उसके प्रेम में सराबोर राधिका के शब्दों में कह उठता है—

मेरो छोनो है गोपाल लला कहुँ देख्यो री ?
काँधे कामरि सोहे स्याम।
मुरली लकुट मुकुट सुखधाम ।।
सुन्दर तिलक अलक अभिराम।

कवि ने कृष्ण के मोहक रूप का और 'लटक मटक चटकीली चाल' का वर्णन करते हुए कहा है—

टूटे बन-उपवन चहुँ ओर।
घर-आँगन व्रजवीथन पौर।
सिगरी टूटत है व्रजबाल ।।

सारा वातावरण कृष्णमय हो गया। जमुना-पुलिन सुख-रस में रम गया। राधा-माधव-विलास देखकर जसुमती भी प्रसन्न हुई।

'जसुमति देखे लाडिलो लाल !'

महादजी के प्राप्त हिन्दी पदों में से अधिकतर पद कृष्ण-क्रीड़ा-वर्णन के ही हैं। इन पदों का रचना-कौशल प्रशंसनीय है। संगीतात्मक और सरस लीलावर्णनके ये पद हिंदी साहित्य के इतिहास में निश्चय ही सम्मानित होंगे। कहीं-कहीं इन पदों में तथाकथित 'अश्लीलता' भी झलक पड़ती है। कृष्ण-गोपी-प्रेम का प्रसंग ही कुछ ऐसा है कि कवि झूमकर गा उठा।

अरी गिरिधर सों कौन लरी।
औचक आय माय मुँह चूम्यो।
गुलचा दै झगरी ।। ध्रु० ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुनु मेरी मैया तोहीं बताऊँ।
जो मोसों झगरी॥
गोरे अंग लीलांबर वोढे।
हौं सब तें अगरी॥ १॥

तेरो री गिरिधर बन-बन डोले।
हाथ लिये लकरी॥
हौं दधि बेचन जाति ब्रिंदाबन।
औचक भुज पकरी॥ २॥

तुंतरु निगेरो गिरिधर बालक।
क्यों करि भुज पकरी॥
जसुमति माधौ तुमही साँचे,
हम झूठी सगरी॥ ३॥

अ० प्र० का०

माणिक प्रभु

कर्नाटक राज्य में कल्याणी के पास लाडवन्ती नाम का एक गाँव है। इसी गाँव में श्री माणिक प्रभु का जन्म सन् १८१७ ई० में हुआ था। हरकूड़ गाँव के मनोहर नायक और उनकी पत्नी बयाम्मा के ये द्वितीय पुत्र थे। ये दोनों परमार्थप्रवण और सत्त्वसम्पन्न थे। श्री माणिक प्रभु श्रीदत्तात्रेयजी के चतुर्थ अवतार माने जाते हैं। इन्होंने कन्नड़, फारसी, संस्कृत, उर्दू, मराठी इत्यादि भाषाओं में अत्यन्त सरस काव्य-रचना की है। इन्होंने पूरे भारत का पर्यटन करके लोकस्थिति का निरीक्षण किया था। इसके बाद इन्होंने हुमणाबाद के एक गहन वन में बेल के पेड़ के नीचे निवास किया। कुछ दिनों के बाद उसके निकट ही माणिक नगर नाम का एक कस्बा बस गया। भारतीय संस्कृति, अध्यात्म, वैदिक परम्परा आदि का परामर्श प्रभु ने किया। उदार मतवादी मुसलमान श्री प्रभु को 'मेहबूब' समझते थे। श्री प्रभु के भक्तों में श्री व्यंकम्मा, बन्धु श्री मनोहर महाराज, श्री खण्डेराव महाराज, श्री मार्तण्ड माणिक प्रभु, श्री शंकर माणिक प्रभु आदि सत्पुरुष हुए। प्राप्त तथ्यों के अनुसार श्री माणिक प्रभु का समाधि-ग्रहण-काल सन् १८६५ ई० है। इस समय श्री सिद्धराज माणिक प्रभु संस्थान की देखभाल कर रहे हैं।

श्री माणिक प्रभु ने आत्मरूप-प्रतीति, मल्हारी-माहात्म्य, हनुमन्त-जन्म, संगमेश्वर-माहात्म्य आदि ओवीबद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी कुल-परम्परा में श्री मनोहर माणिक प्रभु, श्री मार्तण्ड माणिक प्रभु आदि ने विपुल पद्य-रचना की है। श्री मार्तण्ड प्रभु का 'ज्ञानमार्तण्ड' नामक एक ग्रन्थ तत्त्वज्ञानप्रधान है। इसी परम्परा में 'गुरुगीता' पर 'ज्ञानशिखा' नाम की एक ओवीबद्ध टीका है। श्री माणिक प्रभु संगीत-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। स्फुट गीतों की 'पद्यसखा' राग और तालबद्ध हो गयी है। माणिकनगर के पन्थ का नाम 'सकलमत सम्प्रदाय' होने के कारण सब देव और देवताओं की प्रार्थना इस सम्प्रदाय के भक्तकवियों ने की है। श्री दत्तात्रेय, श्रीराम, श्री हनुमान्, श्री अवधूत (दत्तात्रेय), श्रीकृष्ण आदि पर इनकी कविता उपलब्ध है। श्री माणिक प्रभु ने हिन्दी भाषा में भी काव्य-रचना की है। उनके कुछ पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

राग—झिंझूटी, ताल—दादरा

नन्दकुँवर साँवरे कान्हा बाँसरी बजाई॥ ध्रु०॥
शुक सनक व्यासमुनि ध्रुव पेहेलाद नारदमुनि।
बह गये सब प्रेमभाव देह-सुध बिसराई॥ १॥
चकित भये सबहि देव ब्रह्म विष्णुमहादेव।
त्रिभुवन मों नाद भरे सुनत शेषशायी॥ २॥
बह रहे थिर जमुना नीर डुल रहे बिमानि सूर।
माणिकदास मगन भये हरि के गुन गायी॥ ३॥

(२)

अब कहाँ गयो घनश्याम बिहारी॥ ध्रु०॥
खंब फोड़ नरसिंग उघारी,
हिरण्यकशयपु उर फारे॥ १॥
द्रुपदसुता की लज्जा राखी,
खेंचत चीर दुःशासन हारे॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माणिक के प्रभु नाथ कृष्णजी,
चरनकमल बलिहारी ॥ ३ ॥

(३)

आज बन्सी बजाई घनश्याम ने ॥ ध्रु० ॥
जमुना-तीर गये बिहारी,
बन्सी की नाद सुनाई हो ॥ १ ॥
वृन्दावनमों कुंजगलिनमों,
व्रजको लाज गमाई हो ॥ २ ॥
माणिक कहे त्रिभुवन-पालक,
चरनन ध्यान लगाई हो ॥ ३ ॥

श्री माणिक प्रभु ने मराठी में श्रीकृष्ण पर लगभग सौ पद रचे हैं। उनमें रूपवर्णन, बालक्रीड़ा, श्रीकृष्ण-माहात्म्य, मुरली, विरह, मिलन, प्रेमकलह आदि अनेक विषय प्रकट हुए हैं। एक पद में आप कहते हैं—'सगुण रूप नयनीं आधी दावा। मग तुम्ही वेदान्त गावा' 'आप प्रथम सगुण रूप मेरे नेत्रों के सामने रखिये। बाद में वेदान्त-निरूपण कीजियेगा।' आपने आगे कहा है कि 'जिस कृष्ण ने माखन की चोरी की है, ग्वाल-बालिकाओं को फँसाया है, जिसे माता यशोदा ने डोरी से बाँधा है, वही दामोदर मुझे अच्छा लगता है। यमुना के तीर जाकर वह हरि वेणु-वादन करता है, उनके साथ अनेक गाये हैं, उनके चरणों की वन्दना ब्रह्मादि भी करते हैं। उन श्रीकृष्ण को रास-क्रीड़ा का सुख अच्छा लगता है। उनका रूप सुन्दर और सुकुमार है। उनकी मूर्ति लावण्यमय व रतिस्वर जैसी है। माणिक प्रभु कहते हैं, उसी श्रीकृष्ण को मेरे नयनों में लाना।'

इन्होंने एक पद में श्रीकृष्ण का जीवन-चरित चित्रित किया है :

नन्द मुकुन्द मुरारि सांवळा,
गोकुळांत हरी आला हो ॥ध्रु०॥
कारागृहीं अवतार घेतला,
देवकिच्या उदरीं आला हो।
कंस दुष्ट पापिष्ट जिवाला।
कष्टी मनामध्यों झाला हो ॥ १ ॥
घेउनि कडे वसुदेव निघाला।
मध्यरात्री समयाला हो।
यमुनाजल कल्लोळ हरीच्या।
स्पर्श करी चरणातुर हो ॥ २ ॥
घनःश्याम श्रीकृष्ण छबेला।
रंगेला अलबेला हो।
अलाबला किती घेती नाचती।
करिती घरोघरीं काळा हो ॥ ३ ॥
वासुदेव गिरिधारी कन्हय्या।
मोहन मुरलीवाला हो।
माणिक म्हणे प्रभु शरण तया जा।
ध्याती मुनिजन ज्याला हो ॥ ४ ॥

'नन्द-सुत श्रीहरि मुकुन्द गोकुल में आया। इसने कारागृह में अवतार धारण किया है। इसकी माता देवकी है। दुष्ट कंस का पापाचार देखकर वह मन में दुःखी हो गया। उसको लेकर वसुदेव मध्यरात्रि के समय यमुना पार करने लगे। यमुना-जल ने उसके चरणों को स्पर्श किया। यह श्रीकृष्ण घनश्याम है, रंगीला-छबीला है। यह वासुदेव गिरिधारी, कन्हैया, मोहन, मुरलीवाला है, जिसको मुनिजन प्रणाम करते हैं, माणिक प्रभु उसकी शरण जाता है।'

एक अन्य पद में श्री माणिक प्रभु ने लिखा है, "श्री हरि को और कोई लगता नहीं। वह केवल प्रेम से छाछ पीता है, मुट्ठीभर के चिड़वे (पोहा) का प्यासा-भूखा है। वह ग्वाल-बालों के उच्छिष्ट के लिए आँचल फैलाता है। वह सुयोधन से रुष्ट होता है और विदुर के घर में साग खाता है। लज्जा न मानकर वह अर्जुन के घोड़ों को धोता है। यह भक्त सखा नारायण माणिक प्रभु का जीवन है।" कई दिन हो गये श्रीकृष्ण का दर्शन न होने से माणिक प्रभु बेचैन हैं। उन्होंने कहा है, "दयावन्त, नारायण, माधव, पुरुषोत्तम, उत्तमोत्तम, आप मुझे दर्शन दीजिये। गोपाल, तुम सत्वर आओ। मैं एक दीन हूँ। मुझसे मिलो। सब कल्पनाएँ छोड़कर तुम ऐक्यभाव से मुझे मिलो। एक-एक दिन व्यर्थ मालूम हो रहा है। क्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नर-देह पुनः-पुनः प्राप्त होता है? प्रभो! तू इतना कठोर मेरे लिए क्यों हुआ? नक्र ने गज को प्राचीन काल में पकड़ा था। तूने ही उसे मुक्ति प्रदान की थी। पिता हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को सन्त्रस्त कर रहा था। तूने ही स्तम्भ से प्रकट होकर उसकी रक्षा की। हिरण्यकशिपु का वध तूने ही किया था। माणिक प्रभु हीन-दीन भाव से तेरी प्रार्थना करता है। रमापति, उसकी रक्षा कीजिये।" एक बार हरि बिना मन्दिर शून्य देखकर माणिकप्रभु कहते हैं—

मोहुनी गेलें हिरोनी मन।। ध्रु०।।
रात्रंदिन मसी चैन पडेना।
त्याविण मन्दिर दिसतसे भणभण।। १।।
काय करूं सखे, कांहीं सुचेना।
कामज्वर तनु होतसें फणफण।। २।।
माणिक प्रभु विण कांहीं सुचेना।
होऊनी भ्रान्त मी फिरतसे वणवण।। ३।।

'श्री हरि, मेरा मन मोहग्रस्त हुआ है। रात और दिन में वह चैन नहीं पाता। हरि बिना मेरा मन्दिर सूना लगता है! सखे! मैं क्या करूँ? मुझे सुख नहीं मिलता। काम-ज्वर से शरीर फणफण करने लगता है। माणिकप्रभु कहते हैं, मैं भ्रान्त होकर इधर-उधर भटकता हूँ।'

प्र० न० जो०

मुक्ताबाई

श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर तथा सोपानदेव की सबसे छोटी और एकमात्र बहन मुक्ताबाई अपने तीनों अग्रजों की लाड़ली थी। इनका 'मुक्ताई' नाम अधिक प्रचलित है। ये अपने तीनों बड़े भाइयों के समान ही भक्तिमती, तेजस्वी योगिनी और सिद्ध सन्त थीं।

इनका जन्म सन् १२७९ ई० में श्री विट्ठलपन्त-रुक्मिणीदेवी की चौथी सन्तान के रूप में हुआ था। माता-पिता द्वारा देहान्त प्रायश्चित लेने के उपरान्त इनका पालन-पोषण अग्रज श्री निवृत्तिनाथ ने ही किया। भक्ति एवं योग की दीक्षा भी इन्होंने श्री निवृत्तिनाथ से ही पायी। बचपन से ही ये अपने तीनों बड़े भाइयों की भाँति तीर्थयात्रा सत्संग, आत्म-चर्या, अध्यात्म-विवेचन एवं भक्ति-साधना में निमग्न रहती थीं। नामदेव महाराज के अभंगों के अनुसार श्री मुक्ताई के अभंग श्री ज्ञानेश्वर महाराज अपने हाथों से लिखते और अत्यन्त स्नेहपूर्वक इनकी सार-सँभाल करते थे।

कहा जाता है कि एक बार बाल्यावस्था में संघर्ष के दिनों में जब ये चारों भाई-बहन पंक्तिपावन किये जाने हेतु ब्राह्मणों से अनुरोध करते घूम रहे थे तब किसीने ताना मारा। उसके मर्मभेदी कटु वचन को सुनकर ज्ञानेश्वर महाराज अत्यन्त खिन्न हो कुटिया में बैठ गये और भीतर से उसका द्वार बन्द कर लिया। उससे तीनों भाई-बहन बहुत दुःखी हुए। इस स्थिति में कुटिया का द्वार खुलवाने के लिए मुक्ताई अपने भैया को मनाने लगी। इस समय उन्होंने जो ग्यारह अभंग कहे वे 'ताटी के अभंग' के नाम से विख्यात हैं—उनमें परम ज्ञानी, योगी एवं सिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर महाराज से अपना क्रोध शान्त करने के लिए इन्होंने सन्त-लक्षणों की चर्चा की है। दो पंक्तियाँ हैं:

योगी पावन मनाचा।
साहे अपराध जनाचा।।
विश्वें जाळियाँ वन्ही।
सन्ते सुखें व्हावे पाणी।।

'योगी का मन स्वभावतः पावन होता है। वह जगत् के अपराध सहन करने की क्षमता रखता है। जब यह विश्व आग बनकर जलने लगता है, तब सन्त सुखपूर्वक पानी बन जाता है, जगत् की जलन बुझा देता है। वह जगत् के विकारों को बुझाकर उसकी दुःखाग्नि शान्त कर देता है।'

ब्रह्मवेत्ता ज्ञानेश्वर महाराज को इन मृदु शब्दों में सम्बोधित करनेवाली उनकी इस लाड़ली बहन की योग्यता निस्संदेह अतुलनीय है। इन्होंने नामदेव महाराज का गर्व परिहार किया और चौदह सौ वर्ष के तपी योगी चांगदेव वटेश्वर को भक्तिबोध का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीक्षादान देकर सम्पन्न बना दिया। अपने अग्रज ज्ञानदेव एवं सोपानदेव के समाधिस्थ होने के बाद सबसे बड़े भाई निवृत्तिनाथ के साथ तीर्थ यात्रा करती हुई जब ये एदलाबाद के नजदीक माणगाँव पहुँचीं, तब कहा जाता है कि प्रचण्ड विद्युल्लता प्रकाशित हुई और मुक्ताई उसीमें लुप्त हो गयी। वहीं इनका समाधि-स्थल बनाया गया है।

भक्तिमती मुक्ताबाई द्वारा रचित ५३ अभंग प्राप्त होते हैं जिनमें ११ 'ताटी के अभंग' भी सम्मिलित हैं। 'हरिपाठ' के अभंग १२ हैं। अन्य अभंगों में सद्गुरु के कृपाप्रसाद से प्राप्त स्थिति का वर्णन, अद्वैत एवं एक-दो 'कूट' (रहस्य) विषयों के अभंग हैं। स्त्री-स्वभाव की कोमलता और प्रभावात्मकता इनकी वाणी में सर्वत्र विद्यमान है। अपने शिष्य चांगदेव को दिये गये उपदेशों में इनका वात्सल्य उमड़ पड़ा है। अग्रज निवृत्तिनाथ के प्रति इनके हृदय में अपार श्रद्धा और प्रेम है। ये उन्हें ही अपनी मुक्ति का श्रेय देती हैं :

मुक्ताई सावध करी निवृत्तिराज।
हरिप्रेमें उपज एकतत्त्वें॥

(अभंग ३)

'हरिप्रेम एवं हरिनाम का उपदेश देकर, सूझ-बूझ तथा एकतत्त्व से समरसता का बोध देकर श्री निवृत्तिराज मुक्ताई को सावधान कर रहे हैं।'

इनकी भक्ति नामप्रेम से ओतप्रोत है। योग-साधना में पारंगत होने के कारण इनकी आनन्दानुभूति जीवन्मुक्तता के तेज से आलोकित एवं समन्वित है।

यहाँ इनकी भक्ति-रचना के दो अंश नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं—

(१)

नाम मंत्रें हरि निजदासा पावे।
ऐकोनियां धांये लवकरी॥
सुदर्शन पावे येउनी झडकरी।
पाण्डवां साहाकारी श्रीकृष्ण रया॥
निजानन्दे दावी उघड वैकुंठ।
नामेंचि प्रकट आह्मां लागी॥
मुक्ताई जीवन्मुक्त हा संसार।
हरिपाठें पारावार केला आह्मीं॥

(अभंग १२)

'जब प्रभु का दास नाममन्त्र का उच्चारण करता है, तब वह श्रीहरि को अवश्य पा लेता है। उसकी हाँक सुनकर प्रभु तत्काल दौड़े चले आते हैं और सुदर्शन चक्र से भक्तों की रक्षा करते हैं। ऐसे ये पाण्डवों के सहायक भगवान् श्रीकृष्ण हैं। ये प्रभु निजानन्द का वैकुण्ठ मुक्तद्वार करके दिखाते हैं। ये नाम लेते ही हमारे लिए प्रकट हो जाते हैं। मुक्ताई कहती हैं, हम जीवन्मुक्त हैं। यह संसार हमारे लिए समाप्त हो गया है। हरिनाम का पाठ करके हमने यह भवसागर पार कर लिया है। हमारी मुक्तता का कोई पारावार अब नहीं है।''

मानसपूजा के एक अभंग में वे कहती हैं, 'पूज्य एवं पूजक दोनों चित्त में विद्यमान हैं और भावशील पूज्य को दण्डवत कर रहा है। वह चम्पक पुष्प से पूजा करता है, मन का ही धूप-दीप अर्पण करता है।

(२)

भावातीत भावो बोगरी अरावो।
पाहुणा पंढरीरावो हरि माझा॥
मुक्ताई सम्पन्न विस्तारूनि अन्न।
सेवो नारायण हरि माझा॥

'भावातीत भाव जो भक्ति-प्रेम का महाभाव है वही नैवेद्य के रूप में प्रभु के सम्मुख रखा है और मेरा हरि पाहुन पंढरीराव वह भोजन ग्रहण करते हैं। मुक्ताई मुक्तिधन से, भक्तिधन से परम सम्पन्न है और उसका अन्न परम सुस्वादु है जिसे मुक्ताई का हरि नारायण सेवन करता है।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोरोपन्त बारामतीकर

मोरोपन्त मराठी के एक प्रख्यात भक्त कवि थे। शास्त्रज्ञ पण्डित होते हुए भी ये हृदय से परम भक्त थे। इनका पूरा नाम मयूरेश्वर रामाजीपन्त पराडकर था। रामाजीपन्त के तीन पुत्र व तीन कन्या थी। सोलापुर जिले के सोनारी नामक गाँव के भैरव-देव उनके कुलस्वामी थे। इनके पिता कोंकण के सौंदल गाँव के रहनेवाले थे। सन् १७१३ ई० में केशव पाध्ये व गणेश पाध्ये के साथ रामाजीपन्त कोल्हापुर के पास पन्हाळगड में रहने लगे। गुरु-गृह में मोरोपन्त का अध्ययन आरम्भ हुआ। इनके जीवन के पहले २४ वर्ष पन्हाळगड में ही बीते। तदनन्तर रामाजीपन्त अपनी सन्तान के साथ निवास के लिए बारामती आये।

इन्होंने केशव पाध्ये व गणेश पाध्ये नामक दो पण्डितों के पास संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। यहीं इन्होंने संस्कृत नाटकों का परिशीलन तथा रामायण, महाभारत और भागवत का विशेष अध्ययन किया। इस बीच इन्होंने प्राकृत काव्य और सन्त-साहित्य का भी अनुशीलन किया। इसके बाद ये बारामती-निवासी बाबूजी नाईक के राजप्रासाद में पुराण-वाचन करने लगे।

इनकी पत्नी का नाम रमाबाई था। उससे इन्हें तीन पुत्र व तीन कन्याएँ थीं। मोरोपन्त का गृहस्थ-जीवन सुखपूर्ण और आनन्दमय था। दाशरथी राम इनके आराध्य थे, फिर भी इन्होंने श्रीकृष्ण पर कविता लिखी है। ये पण्ढरपुर अनेक बार गये थे तथा काशी, प्रयाग, गया आदि की तीर्थयात्रा भी की थी।

मोरोपन्त ने आजीवन विद्या-व्यासंग, काव्य-रचना, राम-सेवा की। विनय, सदाचार, प्रेम इत्यादि गुणों के कारण ये आदरणीय बन गये। इन्होंने मराठी में आर्या नामक वृत्त सुविख्यात किया। प्रसिद्धि है कि इन्होंने ७५ हजार कविताओं में आर्यावृत्त का प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में प्रमुख हैं—महाभारत, मन्त्र रामायण, हरिवंश, कृष्ण-विजय अथवा बृहद्दशम, मन्त्र-भागवत, ब्रह्मोत्तर-खण्ड, अनेक स्फुट प्रकरण-ग्रन्थ, अष्टोत्तरशत-रामायण आदि। स्तोत्र-काव्य भी इनके नाम पर है। 'केकावलि' नाम का एक प्रसिद्ध स्तोत्र पृथ्वी वृत्त में है। मोरोपन्त के प्रयास से आर्यावृत्त 'आर्या—मयूरपन्तांची'—आर्या मयूरपन्त की ही, नाम से मराठी में बहुत प्रचलित हुआ।

'श्रीकृष्ण-विजय या बृहद्दशम' इनका एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है। उसमें ९० अध्याय तथा साढ़े तीन हजार पद हैं। इसका कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह का प्रसंग अत्यन्त सरस व भावपूर्ण है। 'सुभद्राहरणाख्यान' मनोरंजक है। कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह की जानकारी स्वयं रुक्मिणी यादव-कौरव स्त्रियों को देती है। रुक्मिणी अपने विवाह की चर्चा इस प्रकार करती है :

प्रथम म्हणे वैदर्भी—बाई,
होते लहान मी कन्या।
धन्या कृष्ण-कथा मज तेव्हांचि रुचे,
न आवडे अन्या॥
हरिगुणगायक सज्जन ते
धनलोभी नव्हेत परि हार।
मुद्रा, कंकण द्यावे,
न करिति मातापिताहि परिहार॥
ज्या दिवशीं हरिचरितश्रवण नसे
त्यांत मग दहा दुखणी।
दुखणी काय नवखणी माडी
नलगे, धरा नखेन्दु खणी॥

'वैदर्भी रुक्मिणी ने कहा, मैं छोटी कन्या थी। उस समय से मुझे कृष्ण-कथा प्रिय लगती थी। अन्य कथाओं में मेरा मन नहीं लगता था। हरि-गुण-गायक मुझे सज्जन लगे। वे धनलोभी नहीं थे। मैं उन्हें हार, मुद्रा, कंकण देने लगी। मेरे माता-पिता विरोध नहीं करते थे। जिस दिन मैं हरि-चरित्र का श्रवण न करती उस दिन मुझे अनेक प्रकार की बीमारी आती थी। बड़ा राजप्रासाद भी मुझे सुखदायक न लगता था।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोरोपन्त ने 'श्रीकृष्ण-विजय' में मुकुन्द का यश गाया है। यह मुकुन्द दयामृतवन है, हृत्ताप-नाश करनेवाला है। इसी भाव से मोरोपन्त कहते हैं, **'दयामृतघन श्रीमान् कृष्ण लक्ष्मीपती हरी। करी भक्त मयूरातें सुखी हृत्ताप संहारी।'** इसमें श्रीकृष्ण ने गोपियों को पातिव्रत-धर्म सिखाया है। इसी ग्रन्थ में कवि ने शृंगार, वीर, वत्सल-रसप्रधान प्रद्युम्न-विवाह की कथा गायी है। श्रीकृष्णजी के गृहस्थाश्रम का वैभव नारद मुनि ने गाया है। नारद द्वारका आये, उनका सत्कार करके श्रीकृष्ण ने कहा :

प्रेमें पूजुनि हस्त जोडुनि म्हणे
आम्हांस हीं पावलें।
दावाया अजि विश्वतारक ! तुम्हां
स्वामी बरें फावलें ॥
झाला धन्य कृतार्थ वंश यदुचा !
केली दया वासरा।
जोडा नाहिंच, भेटली बहु दिसां
हे गाय या वासरा ॥

'प्रेम से पूजन करके हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण बोले, विश्वतारक नारद, आज आपके चरण-दर्शन का सुअवसर मिला। आज मेरा यदुवंश धन्य व कृतार्थ हो गया। बहुत दिनों से गाय इस वत्स को प्राप्त हुई।' नारद व कृष्ण का संवाद बहुत महत्त्वपूर्ण व रुचिकर है। इसी प्रकार रुक्मिणी-विवाह-कथा भी सरस व सुन्दर है। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को पत्र किस प्रकार से लिखा ? इसका एक उदाहरण देखिये :

स्वकरें वसन्ततिलकावृत्तें
पत्रांत सात मोजूनी।
लिहिलीं होतीं तींहि
लिहितां लिहितां क्षणांत योजूनी ॥

'रुक्मिणी ने वसन्ततिलकावृत्त में एक क्षण में सात श्लोक लिखकर श्रीकृष्ण को पत्र भेजा था। श्रीकृष्ण के न आने के कारण वह चिन्ताज्वर से व्याकुल हो उठी। वह श्रीकृष्ण का ही ध्यान करने लगी। श्रीकृष्ण को आते हुए देखकर रुक्मिणी आनन्द-मग्न हो गयी।' सुभद्रा-विवाह-कथा भी मोरोपन्त ने निवेदित की है। इस विनोदप्रचुर कथा में श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा, अर्जुन इन सबका चित्रण अत्यन्त मनोहर हुआ है।

'रुक्मिणी-गीत' की कथा अत्यन्त मधुर है। इसकी रचना के बाद मोरोपन्त ने 'श्रीकृष्ण-विजय' लिखा है। यह कथा ओवी नामक वृत्त में है। श्रीकृष्ण-स्वभाव का वर्णन करते हुए रुक्मिणी कहती है, **'स्वामींची दुर्जनीं। उग्रता बाहेर। मानस माहेर। करुणेचें'** (श्रीकृष्ण की उग्रता जो बाहर दीख पड़ती है वह दुर्जनों के लिए है। लेकिन उनका मन करुणा से भरा है।)

'मन्त्र-भागवत' नाम का एक ग्रन्थ मोरोपन्त ने ३६०० आर्याओं में लिखा है। ३३३ नाम-मन्त्रों में है। **'नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्र से यह भागवत-रचना हुई है। पन्तजी ने श्रीकृष्ण की बाललीला का सरस वर्णन किया है। रास-क्रीड़ा का वर्णन भी उत्कृष्ट व भावपूर्ण है। श्रीकृष्ण ने इसमें गोपियों को पतिव्रता-धर्म बताया है। कृष्ण-भक्त अक्रूर का आगमन, गोपी-प्रेम की प्रशंसा, रुक्मिणी-विवाह, रुक्मिणी-विनोद, सुदामा-चरित्र, सुभद्रा-विवाह इत्यादि कथा इन्होंने आर्यावृत्त में गायी है। श्रीकृष्ण उद्धव से भक्ति-मार्ग का सन्देश भेजते हैं :

भक्तिसुखार्थ मन मला अर्पावें,
सर्व काम सोडावे।
जे मद्भजनविरोधी सुखभोग
तयांसि हात जोडावे ॥
वाहत जावीं कर्में मजला
मन चित्त मजचि अर्पावें।
माझ्या यशोमृतानें साधुजना
आपणांहि तर्पावें ॥
मोदित चित्त असावे,
फार दिसावे प्रसन्न बाहेर।
गम्भीरतेसि अभ्यन्तर
तों केवळ मुलीस माहेर ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मोह झडे, काळ दडे,
निर्मळ मद्भक्तिरूप धर्म घडे।
मग मत्प्रसाद होतां
जें परमज्ञान तें गळांचि पडे ॥

'भक्ति-सुखार्थं अपना मन व चित्त सांसारिक सुखों व कर्मों से हटाकर परमेश्वर को अर्पित करें। सब कर्म ईश्वर को समर्पित होने चाहिए। ईश्वर की यशोगाथा प्रेम से ध्यान में रखकर साधुजनों की सेवा करनी चाहिए। सदैव प्रसन्न तथा अन्तर से गम्भीर रहना चाहिए। इसीसे मोह-माया समाप्त होगी और परमज्ञान प्राप्त हो जायगा।'

भागवत के आधार पर मोरोपन्त ने ध्रुव-चरित्र, वामन-चरित, सुदामा-चरित, गोपीप्रेमोद्गार, नवदान-केली, गोपीपाडवा, मुरली-पंचक, मुरली-नवरत्न-मालिका इत्यादि प्रसंगों का वर्णन किया है। इन्होंने हरिवंश की भी रचना की है। इनका समय १८ वीं शताब्दी माना जाता है।

प्र० न० जो०

रमावल्लभदास

रमावल्लभदास एक प्रख्यात कृष्ण-भक्त थे। इनके पिता अम्बाजीपन्त (यमाजीपन्त) देवगिरि के अम्बरखान के प्रमुख राज-कर्मचारी थे। उनका उपनाम राळेरासकर था। अम्बाजीपन्त को बहुत काल के अनन्तर अम्बाजी की कृपा से सं० १६०९ में एक पुत्र हुआ। वही आगे चलकर रमावल्लभ नाम से प्रसिद्ध हुआ। आरम्भ में पुत्र का नाम तुकोपन्त था। इनका विवाह एक सुन्दर और धनवान् कन्या से हुआ। ये अपने पिता का कार्य देखने लगे।

इसी समय देवगिरि के राज्य पर शत्रु-सेना का आक्रमण हुआ। राजा के प्रधानमन्त्री (अम्बरखान) ने अपने सैनिकों से कहा —

ज्यांसि संसाराची आशा असे।
तेणें परतावें गृहास ॥
स्वामी कार्या लागून।
जया असेल जीव अर्पण।
संसार ममता सांडोन।
यावें तणें युद्धासी ॥

'जिसके मन में संसार-प्रपंच की आशा है वह घर वापस जाने का निर्णय करे। जो स्वामी के कार्य के लिए तत्पर है, वह संसार की ममता त्यागकर युद्ध के लिए तैयार होने का निश्चय करे।' शत्रु-सेना पर हमला हुआ। इस युद्ध में तुकोपन्त भी थे। शत्रु-सेना पराजित हुई। शत्रु के हाथी, घोड़े, अस्त्र, रत्न इत्यादि सामग्री प्राप्त हुई। सुवर्ण के अलंकार प्राप्त हुए। तुकोपन्त को क्या मिला ?

एकादश स्कंध एकतीस अध्याय।
एका जनार्दनीं टीका अन्वयें।
जें मुमुक्षूंचें मोक्षधन।
सांपडलें पाहे भागवत ॥

तुकोपन्त को पैठण के एकनाथजी के भागवत के एकादश स्कन्ध पर मराठी-भाष्य प्राप्त हुआ। इनका अन्तःकरण भगवद्कृपा के प्रसाद से भर गया। मुख तेजोद्दीप्त हो उठा। घर आकर इन्होंने भागवत की पोथी देवगृह में रखी और उसको साष्टांग प्रणाम किया। समर-भूमि पर पुत्र को भागवत-ग्रन्थ प्राप्त हुआ, यह देखकर पिताजी को सन्तोष नहीं मिला। भागवत-रत्न की कीमत किसीने भी नहीं आँकी। तुकोपन्त उस भागवत का पाठ नित्य करने लगे। प्रपंच से इनका मन विरक्त होने लगा। इन्होंने वैराग्य-वृत्ति धारण की और भागवत-ग्रन्थ से तद्रूप हो गये। भोजन-व्यवस्था से सम्बद्ध सरकारी कार्य करने का इन्हें स्मरण भी नहीं रहा। शनैः शनैः तुकोपन्त की वैराग्याग्नि प्रज्वलित हुई। ये उदासीन बनकर सद्गुरु की खोज के लिए घर के बाहर निकल पड़े। तीर्थ-यात्रा करते हुए ये पण्ढरपुर आये।

गोदावरी-तट पर एक परम वीतराग महात्मा लक्ष्मीधरदास नाम के थे। तुकोपन्त को अधिकारी जानकर उन्होंने इन पर अनुग्रह किया। इसके बाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये श्री रमावल्लभ नाम से प्रसिद्ध हुए। इस नाम का अर्थ क्या है? तुकोपन्त ही कहते हैं :

'श्री' नामें शोभा येत।
'रमा' नामें भुक्ति देत।।
'वल्लभ' नामें मुक्ति घेत।
'दास' नामें प्रेम लेत।।
'श्री रमावल्लभदास'
घ्या घ्या या नामें अर्थास।।

'श्री, रमा, वल्लभ, दास इन शब्दों के अर्थ शोभा, भुक्ति, मुक्ति और प्रेम हुए।' उनको गोपाल-विद्या का मन्त्र प्राप्त हुआ। **'आपण सर्व जाहला। श्री गुरुपदा शरण आला।'**—गुरुपद की शरण आने पर वे स्वयं लोकप्रिय बन गये। गोपाल गोसखी नाम के एक सत्पुरुष इनके मित्र बने। इसके बाद इन्होंने म्लेच्छ की सेवा छोड़ दी तथा हरि-भक्त होकर गोदावरी-तट पर निवास करने लगे। यहाँ इन्होंने भागवत के दशम और एकादश स्कन्धों का अध्ययन किया। भक्ति में विभोर इनका शरीर सस्वेद और रोमांचित हुआ। अर्धोन्मीलित नेत्र अश्रुपूरित हो गये। शरीर कम्पित हो गया। कृष्ण गोसावी दक्षिण की ओर चले गये। कोंकण में हरिहरेश्वर का दर्शन करके ये दालभ्यपुर आये। वहाँ इन्होंने रमावल्लभदास के पदों से लोगों को कृष्ण-प्रेम की शिक्षा दी।

रमावल्लभदास की कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। अनेक भक्त इनके दर्शनार्थ आने लगे। कृष्ण-भक्ति पर कविता तथा भजन-कीर्तन के द्वारा इन्होंने दक्षिण में भी अपना प्रभाव दिखाया। सन्त एकनाथ के भागवत-ग्रन्थ का इनके मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। श्रीकृष्णोपासना का अखण्ड व्रत चलाने के लिए स्वयं एकनाथ ही मानो श्री रमावल्लभदास के रूप में अवतीर्ण हो गये। उन्होंने एक नया सम्प्रदाय चलाया। सद्गुरु-कृपा व भगवत्साक्षात्कार के अनन्तर रमावल्लभजी ने 'वाक्यवृत्ति-टीका', 'दर्शक-निर्धार', भगवद्गीता पर 'चमत्कारी' नाम की टीका, 'गुरुवदी' इत्यादि ग्रन्थ लिखे। 'दर्शक-निर्धार' में कृष्ण-जन्माख्यान है। कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी उनके कई पद उपलब्ध हैं।

इसके अनन्तर ये कृष्णाजी गोसावी, गोपाळ गोसावी, राघवदास, गंगाधरदास, नरहरि गोसावी प्रभृति मित्रों के साथ कर्नाटक के दक्षिण भाग में गये। पुराण-प्रसिद्ध गोकर्ण महाबळेश्वर-क्षेत्र में एक चमत्कार हुआ। शिवरात्रि के पर्व पर वहाँ समुद्र-स्नान के लिए हजारों लोग आये थे। उन्हींमें से एक लक्ष्मीबाई नाम की सारस्वत जाति की स्त्री स्नान कर रही थी। उसका कर्णफूल समुद्र के जल में गिर गया। लक्ष्मीबाई चिन्ताग्रस्त हुई। इतने में रमावल्लभदास वहाँ आये और बोले :

'समुद्र की प्रार्थना कर, वह तेरा अलंकार वापस देगा।'

श्रेष्ठ सत्पुरुष की आज्ञा से लक्ष्मीबाई ने समुद्र की प्रार्थना की। समुद्र ने अपनी लहरों पर उसका कर्णफूल दिखाया। वह आनन्द से चकित हो गयी। लक्ष्मी ने उनके चरणों पर साश्रु नयनों से मस्तक रखा। उसने इनसे अपने गाँव, मल्लापुर आने के लिए प्रार्थना की। लक्ष्मीबाई की परमार्थ में अखण्ड लगन देखकर रमावल्लभ ने उसका नाम आवडी रखा। इनकी इच्छानुसार उसने श्रीकृष्ण की उपासना स्वीकार कर ली। एक दिन कृष्ण-जयन्ती के दिन रमावल्लभदास आवडी के घर आये। उन्होंने उसे कालियामर्दक श्रीकृष्ण की मूर्ति भेंट दी। घर में उत्सव कर आवडी आनन्द-विभोर हो गयी। अवभृथ स्नान, गोपालकाला, भजन-पूजन, नामस्मरण इत्यादि द्वारा कृष्ण-जन्मोत्सव धूम-धाम से मनाया गया।

लक्ष्मीबाई के पति नारायण आप्पा मैसूर-राज्य में नगर-संस्थान के दीवान थे। लक्ष्मी-नारायण का यह दाम्पत्य कारवार जिले के मल्लापुर गाँव में गुरूपदिष्ट मार्ग में स्थिर हो गया। यह घराना आगे उभयकर नाम से प्रतिष्ठित हुआ। मल्लापुर में आवडी का मठ कृष्ण-भक्ति के लिए विख्यात हुआ। इस मठ में आज भी कृष्ण-जयन्ती का उत्सव उत्कृष्ट रूप से मनाया जाता है। इस प्रान्त में 'आवडाबाई का कर्णफूल' एक वाक्सम्प्रदाय बन गया। कृष्ण-भक्ति को लोकव्यापी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाने के लिए आवडी और रमावल्लभ के शिष्य राघवदास ने अथक प्रयत्न किया। 'रमावल्लभदास-विरुदावलि' नाम का एक ग्रन्थ लिखकर राघवदास ने इस सम्प्रदाय की जानकारी दी है। राघवदास की श्री दत्तात्रेय-स्तुति, रमावल्लभदास-महिमा आदि कविताएँ उपलब्ध हैं। मराठी, कन्नड़, हिन्दी आदि भाषाओं में उनकी रचनाएँ पायी जाती हैं। राघवदासजी ने शिराली (चित्रापुर) में अपना मठ स्थापित किया। यह राघव गोसावी या हरिदास मठ नाम से प्रसिद्ध हुआ। रमावल्लभ के शिष्यों में कृष्णदास नाम के महात्मा कृष्ण गोसावी नाम से विख्यात हुए। उनकी 'जोगवाणी' नाम की एक शिष्या थी।

श्री रमावल्लभजी के सम्प्रदाय में 'श्रीकृष्णजयन्ति-व्रतोत्सव-भजन' नाम का एक ग्रन्थ अत्यन्त विख्यात है। 'श्री रमावल्लभांची गाथा' नामक पुस्तक में इनकी स्फुट रचनाएँ संकलित हैं। उसमें वेदान्त-प्रकरण, बृहद्वाक्यटीका, प्रबोधचन्द्रिका आदि ग्रन्थ समाविष्ट हैं। गाथा में श्रीकृष्ण के नाम, रूप, भक्ति, करुणा, वैराग्य, ज्ञान, उपदेश, स्वानुभव-स्थिति, देव-महिमा, सगुण-लीला, सन्त-सद्गुरु-महिमा, क्षेत्र-माहात्म्य, श्रीकृष्ण-बाललीला, श्रीकृष्ण-जन्म, गोपी-गीता, आरती इत्यादि अनेक विषयों पर स्फुट पद उपलब्ध हैं। इन्होंने श्रीकृष्ण-जन्म नामक आख्यान में श्रीकृष्ण के बालरूप का मनोरम वर्णन किया है। एक पद देखिये :

कैसें आश्चर्याचें लोंकरुं थोर।
हा दक्षिणावर्त भोवर।
वक्षस्थळीं त्या सुन्दर।
रोमावळीचा पहा पां॥
दक्षिणांगीं द्विजपद्म असे।
लांछन श्री विष्णु ऐसें।
आणिक नवल तें कैसें।
दिसताहे या बाळा॥
कण्ठीं कौस्तुभ शोभत।
कटीं पीताम्बर प्रभे देत।
वरी मेखळा मिरवीत।
क्षुद्र घण्टासंयुक्त॥
महावैडूर्य खचित मुकुट।
मकरकुण्डलें तेज उत्कृष्ट।
त्या दीप्तीनें कुन्तल प्रगट।
निढळीं चांचर शोभती॥

'यह बालक अद्भुत है। इसकी नाभि के पास दक्षिणावर्त रोमावली है। वक्षःस्थल पर भी सुन्दर रोमावली है। दक्षिणांग पर द्विजपद्म का लांछन है। इस बालक का और एक नवल है। इसके कण्ठ में कौस्तुभ मणि शोभित है। कमर पर पीताम्बर है। इसको क्षुद्रघण्टिकायुक्त मेखला है। इसका मुकुट वैडूर्य-खचित है। मकरकुण्डलों का तेज उत्कृष्ट है। इसी दीप्ति से निढल पर कुन्तल की शोभा प्रकाशित हो रही है।'

'गोपी-गीता' में रमावल्लभजी ने लिखा है :

पडत सांज गा येसि जेधवां।
कुन्तलीं दडे वदन तेधवां॥
कमळ मुख रजें मलिन जाहलें।
चित्त पाहुनी आमुचें चळे॥
ललित रूप तें स्मरुनि अन्तरीं।
चलित होतसे मदन वरिवरि॥
डोळसा हरी करणि हे बरी।
संग नेदितां छळसि यापरी॥

'श्रीकृष्ण! सायंकाल के समय जब तू आता है, तब तेरा वदन कुन्तलों से भरा हुआ रहता है। तेरा कमलमुख धूल से मलिन होता है। यह देखकर हमारा चित्त व्यथित होता है। तेरा ललित-सुन्दर रूप देखकर प्रत्यक्ष मदन चकित होता है। श्री हरि! तेरा यह कृत्य क्या ठीक है? संग न देकर तू क्यों त्रस्त करता है?

श्री रमावल्लभदास-विरचित 'श्रीकृष्णजयन्ति-व्रतोत्सव-भजन' नामक पुस्तक में भी सगुण-निर्गुण-उपासना, श्रीकृष्णजयन्ति-व्रताचरण-विधि, सन्तपूजा, नित्यनियम, वारनियम, गुरुयात्रा, ध्यानोपासना, पूजनोपचार, दोलोत्सव, रासक्रीड़ा-महोत्सव आदि विषयों पर भावपूर्ण कविता पायी जाती है। सुब्राव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपाळ उभयकरजी ने यह पुस्तक सम्पादित की है। 'श्रीकृष्ण-जयन्ति-व्रतविधि' का सविस्तर परिचय इस ग्रन्थ में है। उत्सवांग आद्यकर्तव्य, कंकणबन्धन, घटस्थापना, दिनचर्या-कार्यक्रम, जन्मोत्सव-अवभृथ-स्नानविधि आदि के रूप में यह पद्धति आज भी मल्लापुर में आवडाबाई के मठ में प्रचलित है।

रमावल्लभजी के सम्प्रदाय में प्रातःकाल की अर्चना श्रीकृष्ण की प्रार्थना से होती है। इन्होंने सम्पूर्ण कृष्ण-चरित्र अनेक पदों में गाया है। प्रातःकाल के समय माता बालक कृष्ण को जगाती है :

देवकी रोहिणी येऊनियां।
कृष्णा कृष्णा बाहुनियां।
उठीं बा आळस त्यजुनियां।
मुखकमळ दाखवीं ॥

देखिल्याविणें श्री मुखकमळ।
नेत्र न होती सफळ।
कार्य चालेल सकळ।
तूं सध झालिया ॥

नको अंगिकारूं निद्रा।
सावध होईं यादवेन्द्रा।
सकल योगियां योगेन्द्रा।
भक्तजनवत्सला ॥

शिवादिक सनकादिक।
मुद्रा लावुनी सकळिक।
उभे राहिले वरटिक।
लोकपाळ सकळ ॥

नारद भक्तिरस गात।
सगुण निर्गुण तुझी मात।
श्रवणें मीतूंपण हें ज्ञात।
दरुशन दे बा सांवळिया ॥

शान्ति तूर्या वेधी जणी।
तैशा देवकी रोहिणी।
त्यांच्या वचनीं तत्क्षणीं।
उघडी ज्ञान-लोचन ॥

देखोनि आनन्द न समावे।
माया इडापिडा घेउनि जावे।
उपरि उद्धव जवळीं राहे।
निजपादुका घेउनियां ॥

उठला भक्त वेळाइत।
अन्तरंगीं बोलावित।
रमावल्लभदास विनवित।
मुख प्रक्षाळीं सुन्दरा ॥

'देवकी और रोहिणी प्रातःसमय कृष्ण-कृष्ण कहकर परमेश्वर को जगाती हैं। वे कहती हैं, 'आलस्य छोड़कर तू उठ, सबको मुखकमल का दर्शन दे, वह मुखकमल देखे बिना नेत्र सफल नहीं होते हैं। तू सावधान होकर जगत् का कार्य कर। निद्रा को छोड़कर यादवेन्द्र! तू सावधान हो। तू सकल योगियों का योगेन्द्र है। तू भक्तजनवत्सल है। शिव-सनकादिक मुद्रा धारण करके खड़े हुए हैं। नारद भक्तिरस गाते हैं, सगुण-निर्गुण की चर्चा हो रही है। मैं और तू एक हैं, यह ज्ञान हुआ। कृष्ण, तू सबको दर्शन दे। देवकी-रोहिणी माताएँ शान्ति व तूर्या जैसी हैं। इनके बोल सुनकर कृष्ण, तू अपने ज्ञान-लोचन खोल दे। तुझे देखकर बहुत आनन्द हुआ। सब दुष्ट कामनाएँ नष्ट हुईं। पादुका हाथ में लेकर उद्धवजी सामने खड़े हैं। भक्तवत्सल श्रीकृष्ण, जाग, उठ। उन्होंने अन्तरंग से याद दिलायी। रमावल्लभदास विनती करता है कि श्रीकृष्ण, अपना मुख प्रक्षालन कर।'

श्री रमावल्लभदास के सम्प्रदाय में कीर्तन-भजन रसपूर्ण व सात्त्विक दृष्टि से सम्पन्न होता है। अन्यत्र राधा-कृष्ण का गुणगान करते हुए वे लिखते हैं :

राधाकृष्ण जय कुंजविहारी।
मुरलीधर गोवर्धनधारी ॥
शंख-चक्र-पीताम्बरधारी।
करुणासागर कृष्ण मुरारी ॥
राधाकृष्ण जय कुंजविलासा।
गोपी मानस-राजहंसा ॥
राधाकृष्ण जय मुरलीवाला।
चला, गडयांनो पाहूं त्याला ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक पद में इन्होंने अपनी कृष्ण-भक्ति का सार इन शब्दों में प्रस्तुत किया है :

काय करिसि व्रत तप।
कृष्ण कृष्ण इतुकें जप।।
तेणें सार्थक देहाचें।
जन्म-मरण खण्डे साचें।।
काय करिसी तुझि व्युत्पत्ति।
सन्तचरणीं धरीं प्रीती।।
काय करिसी तुझि जाणीव।
जतन करीं हा सद्भाव।।
एक कृष्ण जीवीं धरीं।
नाना दैवतें न धरीं।।
रमावल्लभदास म्हणे।
सत्य मान हे बोलणें।।

'व्रत और तप क्यों करते हो ? कृष्ण-नाम का जप करो। इससे मानव-जन्म व शरीर सार्थक होगा। जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जायगा। तेरे व्युत्पत्ति-ज्ञान से क्या लाभ होगा ? तुम सन्त-चरणों पर प्रीति धारण करो। तेरे ज्ञान का उपयोग क्या है ? श्रीकृष्ण की भक्ति का भाव धारण कर। अन्य देव-देवियों की उपासना न कर। केवल एक कृष्ण का नाम हृदय में धारण कर। रमावल्लभदास कहते हैं, यही एक सत्य वाणी है।'

रमावल्लभदासजी की पुस्तक में श्रीकृष्णदास, सुभाव, गोपाळ उभयकर, आवडीबाई, राघवदास आदि की कविताएँ भी संकलित हैं। कृष्ण-भक्ति का एक-एक धागा प्रत्येक पद तथा गीत में परिपुष्ट हुआ है। आवडी माता की आरती, विश्वात्मक कृष्ण की आरती आदि गीत भक्तिभाव व श्रद्धा से भरे हुए हैं। राघवदास गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं :

रमावल्लभदास समर्थ।
त्याचा न कळे परमार्थ जी।।
जेथ परतल्या वेदश्रुति।
तेथ काय वानुं मी स्थिती जी।।
ऐसा अनुभव जाणती सन्त।
जाण नेणपणा विरहित जी।।
चिदम्बरीं रहिवास केला।
अखण्ड सावकाश जी।।
सहजीं सहज स्थिति त्याची।
अनिवाच्यपणें साची जी।।
रमावल्लभस्वामी भेटी।
ऐसी राघवीं पडली मिठी जी।।

'श्रीरमावल्लभदास समर्थ हैं। उनका परमार्थ अनाकलनीय है। जिस स्थान से वेद-श्रुति वापस लौट आयीं वहाँ मैं वर्णन किसका करूँ ? सब सन्तों का यह अनुभव है कि उसकी अनुभूति बुद्धि तथा वर्णन से परे है। रमावल्लभजी का निवास चिदम्बर में था। उनकी स्थिति सहज-सरल थी। रमावल्लभजी मुझसे मिलते ही राधावल्लभ के हृदय में बैठ गये।

इनका परलोकवास सन् १६६८ ई० में हुआ।

प्र० न० जो०

राजाराम प्रासादी

राजाराम प्रासादी रामदासी सम्प्रदाय के एक श्रेष्ठ कवि थे। ये सिद्धेश्वर महाराज के शिष्य थे। इनकी समाधि जांब के पास गुंज गाँव में एक नदी के किनारे है। इन्होंने 'भक्तमंजरी-माला' नामक एक ग्रन्थ रचा है। उसमें १०९ अध्याय हैं। १०८ अध्याय भक्तरूप तुलसीमाला और अन्तिम अध्याय मेरुमणि के समान माना जाता है। इस ग्रन्थ में रामदासादिक् प्रमुख महाराष्ट्रीय सन्तों के चरित्र ओवी नामक वृत्त में दिये गये हैं। महीपति नामक एक चरित्रकार महाराष्ट्र में हुए। इन्होंने जिन सन्तों के चरित्र लिखे हैं, उनको छोड़कर अन्य श्रेष्ठ भक्तों के चरित्र राजाराम प्रासादी ने गाये हैं। इन्होंने अनेक सन्तों की परम्पराएँ, समकालीन सन्तों के नाम, जन्म, मृत्यु-संवत् आदि का निर्देश किया है।

राजाराम प्रासादी के अनेक स्फुट पद उपलब्ध हैं। सर्वजनसुलभ भाषा में इन्होंने श्रीकृष्ण का माहात्म्य वर्णन किया है। 'अनेक-कविकृत-पदसंग्रह'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में इनकी कविता प्राप्त होती है। पण्ढरी के पाण्डुरंग पर भी उन्होंने कुछ पद लिखे हैं—'**नन्द यशोदेनगरिं सखे ग बाई। हा कोण रथवाला ?**' (नन्द-यशोदा के घर में सखे, आज यह रथवाला कौन है?), '**लागला मज छन्द हरिचा। न सुचे कीं व्यवसाय घरींचा**' (मुझे श्रीहरि से प्रीति लगी है। मुझे घर-काज की याद नहीं रहती), '**सहज मी आल्यें, रे यदुवीरा! सहज मी आल्यें**' (यदुवीरा, मैं आपके लिए यहाँ सहज आयी हूँ), '**अहा हरि! काय धरिसि कर गौळणी बहुजणि असतां रे?**' (श्रीहरि, अनेक गोपियों के यहाँ रहकर भी आप मेरा कर कैसे पकड़ते हैं?), '**उद्धवा, सुखि आहे कीं। तो मनमोहन हरि माझा?**' (उद्धवजी, वह श्रीहरि, मनमोहन सुखपूर्ण है न?), '**नको पदरा धरूं अम्हि ब्रजवासी नारी**' (श्रीकृष्ण, हम व्रजवासी नारी हैं, हमारा अंचल छोड़ दो), '**यदुवीरा, आतां नताला तारीं श्रमलों भारी**' (यदुवीरा, मैं नतमस्तक हूँ, मुझे बहुत श्रम हुए हैं, तू मेरा रक्षण कर), '**बाई, यशोदे, आज निरुपाय झाला। कृष्ण घडोघडीं छळितो आम्हांला**' (यशोदा, आज कोई उपाय नहीं चलता, कृष्ण हमें बार-बार सताता है) आदि पदों में राजाराम प्रासादी का कृष्ण-प्रेम प्रकट हुआ है।

इनके तीन उल्लेखनीय पद नीचे दिये जाते हैं:

(१)

यदुराया, ही लाज तुम्हांला ॥ ध्रु० ॥

कोठें गुंतलासि द्वारकावासी।
आला समय हा हृषिकेशी।
तुजविण मी हें सांगु कोणासि।
देवा, धांव आतां गहजब झाला ॥ १ ॥

दीनवत्सल हि ब्रिद्रावली गाजे।
अनाथाचा नाथ नाम तुज साजे।
बोल परिसा हे दयाघना, माझे।
सर्व परि आम्हां तुमचा दुमाला ॥ २ ॥

भ्रमरासि जैसा असे मकरन्द।
तेंवि तुम्हांविणें आम्हां सुखकन्द।
राजारामीं लीन प्रासादिकां।
पुरवाया हरि धांवुनि आला ॥ ३ ॥

'यदुराया, मेरी सब लाज तुम्हारे हाथ में है। द्वारकावासी, तू कहाँ फँस गया है? हृषीकेश! मेरे उद्धार का समय आ गया है। यह सब मैं तुम्हारे बिना किससे कहूँ? देवा, तू तेज चलकर आ जा। यहाँ बड़ा अनर्थ हो गया है। आपकी 'दीनवत्सल' विरुदावलि प्रसिद्ध है। 'अनाथों का नाथ' यह नाम आपको शोभा देता है। दयाघन! मेरे ये बोल आप कृपा करके सुनिये। आप ही हम सबके आधार हैं। भ्रमर को जैसे मकरन्द प्रिय है, उसी प्रकार हे सुखकन्द! आपके बिना अच्छा नहीं लगता। राजाराम कवि आपके चरणों में पर लीन हुआ है। श्रीहरि! आप दौड़कर आइये और मेरी इच्छा पूरी करिये।'

(२)

कां रे, हरि मसि जाउं न देशी।
जारे घरिं हरि, कां हट घेसी?
थारे नाहित काय तुम्हांसि।
बा रे पतिभय फार आम्हांसी ॥ १ ॥

जहिं समजविती कृष्णाला।
आम्हीं वाट धरावी कशाला?
तो हि गोकुळीं पाळनवाला।
साही त्रिभुवन पालनवासी ॥ २ ॥

हाय हाय सोडीं पदर जातों धामीं।
खाय खाय नवनीत घरिं घरिं नामीं।
काय काय म्हणुनि वदुं राजारामीं।
जाय जाय सदनीं प्रासादिक येसी ॥ ३ ॥

'श्रीहरि! तू मुझे क्यों नहीं जाने देता? हरि! तू घर जा, क्यों हठ करता है? क्या तेरे लिए कोई ठिकाना नहीं है? श्रीहरि! हमारे लिए पतिव्रत बहुत महत्त्व का होता है।' इस तरह गोपियाँ कृष्ण को समझाती हैं। वे कहती हैं, 'तू घर जा। हमारी राह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़ दे। वही गोकुल का पालन करनेवाला है। वही त्रिभुवनपाल है।' गोपियाँ कहती हैं, 'हाय, हाय! श्रीहरि! हमारा अंचल छोड़ दो। हम अपने घर जाती हैं। तू घर-घर में जाकर मधुर नवनीत खा।' राजाराम प्रासादी कहता है, 'श्रीहरि! तू अपने घर जा।'

राजाराम प्रासादी का एक अन्य पद इस प्रकार है:

(३)

देवा कोण आतां तारी।
धुंदी झाली दरबारीं॥
पाण्डव तुज म्हणती खासा।
दवडिसी त्यांतें वनवासा॥
छळि निशि येऊनि दुर्वासा।
परि तो पावे सुग्रासा॥
गोपी अनुसरल्या रासा।
विरहें देसि तयां त्रासा॥
आवडे तुज कुब्जा नारी।
धुंदी झाली दरबारीं॥

'हे देव! अब मेरी रक्षा कौन करेगा? तेरे दरबार में तो नशा चढ़ा है। पाण्डव तुझे प्रिय हैं। लेकिन तूने उनको वनवास दिया। दुर्वासा ऋषि रात में आकर सताते हैं, लेकिन उन्हें सुग्रास पक्वान्न मिलता है। गोपियाँ रासक्रीड़ा में रत हुईं, लेकिन तू उन्हें विरह से त्रास देता है। तुझे कुब्जा दासी बहुत प्यारी लगती है। तेरे दरबार में तो नशा चढ़ा है।'

प्र० न० जो०

वामनपण्डित

वामनपण्डित का आविर्भाव १७वीं शताब्दी में हुआ था। इन्होंने भगवद्गीता पर एक ओवीबद्ध भाष्य 'यथार्थ-दीपिका' नाम से लिखा है। तेरहवीं शताब्दी में श्री ज्ञानेश्वरजी का गीताभाष्य 'भावार्थदीपिका' या 'ज्ञानेश्वरी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ज्ञानेश्वरजी का भाष्य भावार्थ होने के कारण वामनपण्डित ने यथार्थ कहने के लिए 'यथार्थदीपिका' लिखी। यह भाष्य विद्वत्ताप्रचुर एवं प्रौढ़ है। भगवद्गीता में जो तत्त्वज्ञान है उसका मथितार्थ यथार्थ रूप से वामनपण्डित ने कहा है। वामनपण्डित के नाम पर 'अपरोक्षानुभूति', 'तत्त्वमाला', 'अनुभूतिलेश', 'सिद्धान्त-विजय', 'निगमसार' इत्यादि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ब्रह्म-साक्षात्कार और अध्यात्मशास्त्र का निरूपण इन्होंने शुद्ध शास्त्रीय रीति से किया है।

इनका जीवन-चरित्र अज्ञात है। वामनजी ने कुछ भागवती कथाएँ श्लोकबद्ध की हैं। उनमें गजेन्द्रमोक्ष, वामनचरित्र, भरतभाव, द्वारका-विजय, अहल्योद्धार, लोपामुद्रा-संवाद, राधाविलास, राधाभुजंग, हरि-विलास, रासक्रीड़ा, रुक्मिणी-विलास, शुक-रम्भा-संवाद, कात्यायनी-व्रत, बालक्रीड़ा, कृष्ण-जन्म, मृत्तिका-भक्षण आदि अनेक प्रसंगों का वर्णन है। तत्त्वदर्शक, 'यथार्थ-दीपिका'कार वामनपण्डित सरल, भावमधुर कृष्ण-कथा के गायक हैं। यह देखकर 'यथार्थदीपिका'कार वामन-पण्डित तथा भागवती कृष्ण-कथा-गायक वामनपण्डित को कुछ विद्वानों ने पृथक् व्यक्ति होने का अनुमान व्यक्त किया है। राधाविलास, राधाभुजंग आदि काव्यों में उत्तान श्रृंगार प्रकट हुआ है।

ओवी श्री ज्ञानेश्वरजी की, अभंगवृत्त तुकारामजी था और श्लोकबद्ध रचना वामनजी की श्रेष्ठ मानी जाती है। रसवत्ता, नादमाधुर्य, भावप्रवणता आदि गुणों का दर्शन वामनपण्डित की आख्यान-कविता में होता है। श्रीकृष्ण ने स्वर्ग से पारिजात वृक्ष लाकर सत्यभामा को न देकर रुक्मिणी को दिया, यह देखकर वह क्रुद्ध हो गयी। इस घटना का चित्रण करते हुए वामन लिखते हैं—

गडबडा धरणीवर लोळते।
वदवती न कवीसही लोळते॥
रडत मूर्च्छित होय घडी घडी।
पवन निश्चल नेम न ऊघडी॥
अलकहार गळचांतिल तोडि ते।
कुरळ केश मुखावरि सोडिते॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करयुगे उर मस्तक ताडिते।
वसन आणिक कंचुकि फाडिते ।।
(भामाविलास ८.९)

'सत्यभामा क्रोध से धरणी पर लोटती है। उसके क्रोध-व्यवहार का वर्णन कवि भी नहीं कर सकता। वह रोती है और बार-बार मूर्च्छित होती है। वह अपने घुंघराले बाल मुख पर बिखेर देती है। गले में जो हार है उसे वह तोड़ती है। कर से उर और मस्तक पीटती है। वसन और कंचुकी फाड़ देती है।'

एक प्रसंग है जिसमें श्रीकृष्ण सहित गोप-बालक कुंजवन में क्रीडा करते चित्रित हुए हैं। इसका रुचिकर और यथातथ्य वर्णन वामनपण्डितजी करते हैं। वे लिखते हैं :

वनीं खेळती बाळ ते बल्लवांचे।
तुरे खोविती मस्तकीं पल्लवांचे ।।
फुलांचे गळां घालिती दिव्य हार।
स्वनाथासवें ते करीती विहार ।।

स्वकौशल्य ज्या गुंजमाळांत नाना।
गळां घालिती ते करीती तनाना ।।
शिरीं बांधिती मोरपत्रें विचित्रें।
शरीरावरी रेखिती दिव्य चित्रें ।।
(वनसुधा १.१६-१७)

'कुंज-वन में गोपजनों के बाल खेलते हैं। पल्लवों के तुर्रे मस्तकों पर रखकर गले में फूलों के दिव्य हार पहनते हैं। वे बालक स्वनाथसहित वन में विहार करते हैं। स्वकौशल से गुंजमालाएँ बनाकर वे गले में डालते हैं। शिर पर विचित्र मयूर-पत्र बाँधकर शरीर पर भी दिव्य चित्र रेखते हैं। श्रीकृष्ण की मुरली का रव तो उन्हें सुधारस जैसा लगता है।' अपने एक अन्य ग्रन्थ 'वेणुसुधा' में श्रीकृष्ण के वंशी-वादन के चराचर मोहक प्रभाव का वर्णन करते हुए ये लिखते हैं :

मधुर वेणुरवें मन मोहरी।
मधुवनीं मधुशत्रु नमो हरी ।।
करुनि वन्दन तत्पदसारसा।
कथिन वेणुसुधारस सारसा ।।
वनीं वाजवी वेणु जेव्हां मुरारी।
व्रजीं चित्त कामें स्त्रियांचें थरारी ।।
तया वर्णिती प्राण ठेवूनि कण्ठीं।
वधूवृन्द तो संकटे दीस कण्ठी ।।

अंग वक्र अधरीं धरि पांवा।
गोपवेष हरि तोचि जपावा ।।
वाम बाहुवरि गालहि डावा।
तो ठसा स्वहृदयांत पडावा ।।
अधरिं वेणु धरी जहं तो हरी।
विरहिणी जन चित्तहि मोहरी ।।
व्रजवधूंसि खुणा व्रजराज तो।
मुरलिमाजि वदोनि विराजतो ।।

मोहती व्रजपशू मृगगाई।
आमुचें नवल काय अगाई ?
स्तब्ध होति लिखितें जशि चित्रें।
वेणुच्या ध्वनिरसेंचि विचित्रें ।।
मातृस्तनींचा रस आननांत।
तों होय वेणुध्वनि काननांत ।।
गळे गिळेना पय वासुरांतें।
आश्चर्य वाटे गगनीं सुरांतें ।।

'मधुर वेणुरव सबका मन मोहित करता है। गोकुल के मधुवन में श्रीकृष्ण को नमन है। उनके चरणकमलों का वन्दन करके मैं यह सरस वेणु-सुधारस कथन करता हूँ। जिस समय मुरारी व्रज में वेणु-वादन करता है, तब स्त्रियों का चित्त काम से व्यथित हो जाता है। प्राण कण्ठ में धारण करके वे उन्हींका वर्णन करती हैं। वेणु-नाद सुनकर वधूवृन्द वह दिन संकट से काटती हैं। वेणु-वादन के समय श्रीहरि के नेत्र वक्र हुए हैं, उनके अधर पर मुरली है, श्री हरि गोपवेश में हैं। उन्होंने वाम बाहु पर वाम कपोल रख दिया है। उनका यह ध्यान हृदय पर स्थिर हो जाता है। जब श्रीहरि वेणु अधर पर रखते हैं तब वे विरहिणी का चित्त मोहित कर देते हैं। मुरली से वे श्रीहरि, व्रजराज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्रजवधुओं को संकेत कर रहे हैं। उनके वेणु-वादन से व्रज के पशु, मृग और गौएँ मोहमुग्ध हो जाते हैं, फिर हम चकित हो जाते हैं तो उसमें आश्चर्य क्या है? उनका वेणु-नाद सुनकर पशु-पक्षी चित्र जैसे स्तब्ध हो जाते हैं। जब वेणु-नाद उनके कानों में आता है तब मातृस्तन का रस (दूध) उनके मुँह में ही रह जाता है। वे बछड़े दूध पी नहीं सकते। यह देखकर गगन-विहारी देवगण भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।'

प्र० न० जो०

विनायकबुवा साखरे दादा महाराज

विनायकबुवा नाना महाराज साखरेजी के सुपुत्र थे। इनका जन्म सन् १८६६ ई० में हुआ था। इनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। वैराग्य-सम्पन्न माता-पिता के साथ इनका मनोविकास हुआ। वयप्राप्त होने पर विवाह हुआ, लेकिन मन संसार में नहीं लगा। पिताजी के साथ इन्होंने ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, विचार-सागर, उपनिषद्, न्यायशास्त्र आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। आत्मानुभवी सन्त स्वप्रकाशानन्द, दक्षिणामूर्ति, लक्ष्मणशास्त्री द्रविड़ आदि सत्पुरुषों की संगति से ये ज्ञान-सम्पन्न हुए। इन्होंने आळन्दी में 'साधकाश्रम' नामक एक संस्था का निर्माण करके वहाँ सन्त-साहित्य के अध्ययन का केन्द्र स्थापित किया। अनेक विद्यार्थी अध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों में वह कीर्तन-प्रवचन का एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक केन्द्र बन गया।

ये पण्ढरी की यात्रा नित्य नियम से करते थे। 'ज्ञानेश्वरी' का अर्थनिर्णय ये विद्वत्तापूर्वक करते थे। इन्होंने सार्थ 'ज्ञानेश्वरी', 'अमृतानुभव', 'अद्वैत-मकरन्द, ज्ञानदेव की सार्थ-अभंगाथा', तुकोबा की 'बाल-क्रीड़ा', निळोबा की सार्थ 'गौळणी', 'वृत्तिप्रभाकर', 'विचार-सागर रहस्य इत्यादि ग्रन्थों का सम्पादन किया है। तीन वर्षों से अधिक काल तक दादा ने 'ज्ञानेश्वरी', 'अमृतानुभव आदि ग्रन्थों का प्रचार किया। सैकड़ों-हजारों घरों में इन्होने सन्त-कृपा का ज्ञान-दीप जलाया। तीव्र वैराग्य, प्रखर निष्ठा, दीनों पर दया, अनुपम तपस्या आदि गुणों से दादा पूरे महाराष्ट्र में प्रसिद्ध होगए। इन्होंने सन् १९४० ई० आळन्दी में देहत्याग किया।

प्र० न० जो०

विष्णुदास माहुरकर

विष्णुदास साक्षात्कारी भक्त थे। इनका जन्म सातारा में सन् १८४४ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम रावजी तथा माता का नाम गंगाबाई था। इनका उपनाम धांदरफळे था। ये बचपन से ही दत्तात्रेय और रेणुका के भक्त थे। साधु, सन्त, सत्पुरुष, योगी, गुसाई की संगति इन्हें अच्छी लगती थी। ये ध्यानयोग का अभ्यास तथा 'श्रीगुरुचरित्र' नामक ग्रन्थ का पाठ करते थे। बारह वर्ष के होने पर इनका विवाह हुआ। पत्नी का नाम राधाबाई था। वे रहिमतपुर के सातपुते की सुन्दर कन्या थीं। विष्णुदास गृहस्थाश्रमी बने, लेकिन इनके मन की दत्त-दर्शन की लालसा कम नहीं हुई। एक रात्रि में अपना घर छोड़कर ये तीर्थयात्रा को निकल पड़े। पण्ढरपुर, तुळजापुर, अक्कलकोट, हंपी तथा श्रीशैल की यात्रा करते हुए ये गोदावरी-तट पर बासर-क्षेत्र में आये। वहाँ सरस्वती का एक जागृत स्थान है। उस देवी की कृपा से विष्णुदास का कवित्व प्रकट हुआ। वहाँ से ये श्रीक्षेत्र, मातापुर या माहुर गये। वहाँ के श्रीदत्त, रेणुका, देवदेवेश्वर इनके दैवत बने। हठयोग की साधना करते समय इनको श्री रेणुका का साक्षात् दर्शन होने लगा। श्री रेणुकामाता की कृपा से इनकी कविता अत्यन्त भावपूर्ण, सरस एवं वात्सल्यमय हो गयी। प्रस्तुत लेखक के तीर्थरूप नरहर शास्त्री जोशी खरशीकर श्री विष्णुदासजी के भानजे और सच्छिष्य थे। खरशीकरजी ने विष्णुदास की कविताओं के तीन खण्ड प्रकाशित किये हैं। इनका चरित्र भी उन्होंने विस्तृत रूप से लिखा है। इनका स्वर्गवास सन् १९१७ ई० में हुआ।

देवी-भक्त विष्णुदास ने श्री नरहरि, श्री मारुति, अनुसूया, श्री दत्तात्रेय, श्री शंकर, श्री राम, परशुराम, श्री लक्ष्मीनारायण तथा श्री कालभैरव पर अनेक कविताएँ लिखी हैं। नाटक और लावणी (मराठी की एक शृङ्गार गीत बिधा) भी इन्होंने लिखी है। इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त श्रीकृष्ण पर भी आपने विपुल काव्य-रचना की है। **'करि करुणा केशवा। लवकर ये माधवा'** (केशव, मुझ पर करुणा कर, माधव, तू शीघ्र आ।), **'बोले रागानें माय यशोदा। कां रे बैलासि दोहसी मुकुन्दा ?'** (माता यशोदा क्रुद्ध होकर बोलती है, मुकुन्दा! तू बैल का दोहन वृथा क्यों करता है?), **'वृन्दावनिं युवती, वनिं युवती। हरिविण बहु तळमळती'** (वृन्दावन में हरि बिना युवतियाँ व्याकुल हो जाती हैं), **'हरि रे! तूं संकट माझें हरी। संसार-कंसारी'** (संसारकंसारि हरि! तू मेरा संकट दूर कर) इत्यादि पदों में श्रीकृष्ण-जीवन की माधुरी प्रकट हुई है। श्रीकृष्ण-लीला व रासक्रीड़ा पर भी विष्णुदासजी के पद प्राप्त होते हैं। उदाहरणस्वरूप एक पद प्रस्तुत है—

शेवट करशिल गोड। कसा रे हरी॥ ध्रु०।
व्यर्थ प्रपंचीं निशिदिनिं लागलो।
हव्यास ओढाओढ॥ १॥
विषय-विषाची धुंद निशा मज।
लागली न सुटे खोड॥ २॥
स्मरण तुझें क्षण घडुं नये म्हणुनी।
दैवानें पाडिली होड॥ ३॥
विष्णुदास म्हणे काढी अशामधें।
कांहीं तरि तडजोड॥ ४॥

'श्रीहरि, तू मेरे जीवन का अन्तिम क्षण मधुर कर देगा। इस प्रपंच में मुझे व्यर्थ ही लोभ हुआ है। विषय-विष का नशा मुझे बेहोश करता है। वह तेरा स्मरण नहीं करने देता। विष्णुदास कहते हैं कि श्री हरि, कोई उपाय करें।'

प्र० न० जो०

शिवकल्याण

शिवकल्याण मराठी के एक प्रसिद्ध सन्त कवि हैं। मराठवाडा में आंबेजोगाई नामक एक स्थान है। इसी गाँव में इनका निवास था। इनके पिता का नाम त्रिमल था। वे ही इनके गुरु भी थे। ज्ञानेश्वरजी की नाथ-परम्परा मुक्ताबाई ने चलायी। शिवकल्याण इसी शाखा के चौदहवें पुरुष हैं। ये वेदान्त के ज्ञाता, योगी, पण्डित और कृष्ण-भक्त थे। इन्होंने भागवत के दशमस्कन्ध पर एक विस्तृत भाष्य लिखा है। उसमें से श्रीकृष्ण-जन्म-पंचाध्यायी, रासपंचाध्यायी, ब्रह्म-स्तुति, वेदस्तुति आदि विभाग ही उपलब्ध हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ की ओवी-संख्या ४४१५३ है। इन्होंने कृष्ण-लीला और रासपंचाध्यायी में आध्यात्मिक तत्त्व स्पष्ट किये हैं। श्रृंगाररस को इन्होंने शान्तरस का रूप दिया है। दैत्यों के विनाश के लिए श्रीकृष्ण ने अवतार धारण किया था। परन्तु दैत्य कौन थे, यह शिवकल्याणजी 'रामपंचाध्यायी' में बताते हैं :

दरिद्रें पिडिले।
अधर्मि प्रवर्तले।
आणि विषयासक्ति माजले।
तेचि दैत्य॥
एवं आत्मसुखासि चुकले।
विषयीं आसक्त जाले।
दैत्यशब्दीं बोलिले।
तेचि येथें॥

'जो लोग दारिद्रय से पीड़ित हैं, अधर्म में रस लेते हैं, जो विषयासक्त हैं, वे ही दैत्य हैं। जो आत्म-सुख नहीं जानते, विषयसुख में आनन्द मानते हैं, वे ही यहाँ दैत्य हैं।'

श्री ज्ञानेश्वर महाराज के 'अनुभवामृत' नामक ग्रन्थ पर शिवकल्याण ने 'नित्यानन्दैक्यदीपिका' नामक एक भाष्य ओवी-वृत्त में लिखा है। अब तक संस्कृत-ग्रन्थ पर टीका-भाष्य होता था। शिवकल्याणजी ने प्राकृत ग्रन्थ पर उत्कृष्ट भाष्य मराठी के ओवी-वृत्त में लिखा है। अनुभवामृत पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं। उनमें शिवकल्याणजी की 'नित्यानन्दैक्यदीपिका' सर्वोत्तम मानी जाती है। इस अनुभवामृत-टीका में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है— आदिनाथ शंकर > मत्स्येन्द्रनाथ > गोरक्षनाथ > मुक्ताबाई > वटेश्वर चांगा > चक्रपाणि > विमला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नन्द > केशवदास चांगा > जनकराज नृसिंह > हृदयानन्द > विश्वेश्वर > केशवराज > हरिदास स्वामी > परमानन्द > नित्यानन्द > शिवकल्याण। **'तो हा ज्ञानेश्वर पूर्ण। आमुचे कुळीं मण्डणा'** कहकर शिवकल्याणजी ने ज्ञानेश्वर का गौरव-गान किया है। इनके गुरु नित्यानन्द 'योगीजनविश्राम स्थान' (अनेक योगी व भक्तों के विश्राम-स्थल) थे। ज्ञानेश्वरी व अनुभवामृत के प्रति शिवकल्याण के मन में अगाध प्रेम था।

देवगिरि तथा दौलताबाद के नजदीक धारागिरि नामक एक पर्वत है। इस पर्वत पर कृष्ण याज्ञवल्की के पुत्र गोपाळ याज्ञवल्क्य रहते थे। शिवकल्याणजी ने उनकी प्रेरणा से, विनती से 'अनुभवामृत-टीका' लिखी। ग्रन्थ का लेखन देवगिरि में आरम्भ हुआ और समाप्ति पण्ढरपुर में हुई। इनके उपास्यदेव श्रीकृष्ण विट्ठल थे। वेदस्तुति के प्रारम्भ में श्री विट्ठल को इन्होंने नमन करके लिखा है :

जोडूनि समपदें साजिरीं।
दाविली तत्त्वपदैक्य-उजरी।
मध्यदेश करद्गवें करी।
या हेतू धरिला॥ ८॥

जे सच्चिदत्वें कर द्वंद्व।
मध्य तो मुख्य आनन्द।
एवं करीं धरूनि त्रैपद।
येकत्र केलें॥ ९॥

'श्री विट्ठल के पदों से 'तत्' (ब्रह्म) और 'त्वम्' (जीव) एकत्व का बोध होता है। दोनों तटों पर जो दो कर हैं उनसे सत्, चित् का और मध्य प्रदेश से आनन्द का अनुभव आता है।'

शिवकल्याणजी ने भागवत के दशमस्कन्ध पर भी एक भाष्य लिखा है। उसमें इन्होंने कृष्ण-चरित्र का अध्यात्मपरक सार निवेदन किया है। नन्द सद्भाव व यशोदा भक्ति के हाथों में श्रीकृष्णानन्द प्रकट हुआ। नन्दजी ने सब धर्म-विधि प्रेम से की। शिवकल्याणजी की रासपंचाध्यायी-टीका भी बहुत प्रसिद्ध है। इनकी चार हजार ओवियाँ अमृत-मधुर भक्ति-रस से परिपूर्ण हैं। भाषा शृंगारिक, लेकिन भावार्थ दिव्य भक्ति-रस का है। श्रीकृष्ण ने रास-क्रीड़ा क्यों की? शिवकल्याणजी कहते हैं :

जे शृंगाररसीं आसक्त।
त्यांसि हाचि रस प्रस्तुत।
सेव्य असोनि त्यांचें चित्त।
स्वनिष्ठ करावें॥ ९३॥

'जिन लोगों की दृष्टि शृंगार में आसक्त है, उनके लिए शिवकल्याण ने भाषा शृंगारमय रखी है। 'ब्रह्मस्तुति'-नामक दो हजार ओवियों के एक काव्य ग्रन्थ में दशमस्कन्ध के चौदहवें अध्याय पर विस्तृत भाष्य है। शिवकल्याणजी ने श्रीधरकृत टीका का आश्रय लेकर 'वेदस्तुति' नामक एक उत्कृष्ट काव्य लिखा है। इनकी भाषा सुलभ तथा प्रसादपूर्ण है। एक सम्प्रदाय, एक विचार, एक अनुभूति का अनुभव उनके ग्रन्थ देते हैं। इनके टीका-ग्रन्थ विशदीकरण, स्पष्टीकरण तथा रहस्य-प्रकाशन के उद्देश्य से लिखे गये हैं। इन्होंने श्री ज्ञानेश्वर महाराज का हृद्गत यथार्थ रूप अपनी 'नित्यानन्दैक्यदीपिका' में प्रकट किया है। **'म्हणोनि मतान्तर सांडून। करावें हें अमृतपान'**— मतान्तर छोड़कर इस अमृत का पान करने के लिए वे कहते हैं। शिवकल्याणजी स्वानुभवनिष्ठ, वेदान्ती योगी थे। इनकी असामान्य प्रज्ञा की अनुभूति 'नित्यानन्दैक्य-दीपिका' से होती है।

प्र० न० जो०

श्रीधर नाझरेकर

श्रीधर का जन्म पण्ढरपुर के पास सांगोता तालुका में माण नदी के किनारे नाझरे नामक गाँव में सन् १६५८ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम ब्रह्मानन्द तथा माता का सावित्री था। इनकी कुलगत उपाधि देशपाण्डे थी। कोल्हापुर की महालक्ष्मी इनकी कुलदेवी और मल्लारि मार्तण्ड कुलदेवता थे। इनके पिता सदाचारी, विद्वान् तथा धार्मिक वृत्ति के थे। इनका विद्यारम्भ नाझरे गाँव में ही हुआ। सन् १६७८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ई० में इनका कुटुम्ब पण्ढरपुर में स्थापित हुआ। इन्होंने न्याय, व्याकरण, वेदान्त, योग आदि विषयों का अध्ययन किया। उनके साथ ही वेदान्तशास्त्र, काव्य, पुराण, मराठी सन्तों के काव्य आदि का भी परिशीलन इन्होंने अत्यन्त रुचि से किया। इनके पिता ही इनके विद्यागुरु एवं मोक्षगुरु थे।

पण्ढरपुर आकर इनके पिता संन्यास लेकर समाधिस्थ हो गये। इसके बाद इनका विवाह हुआ। इनकी पत्नी का नाम पार्वती था। उससे इन्हें दत्तात्रेय, मनोहर तथा रंगनाथ नाम के तीन पुत्ररत्न प्राप्त हुए। उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् एवं भक्त मध्वमुनि, मानपुरी इत्यादि इनके मित्र थे। इनके शिष्य भी बहुत थे। इनका घर मन्दिर के समान सदैव साधु-सन्तों से भरा रहता था। सन् १७२९ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। ये उत्तम पौराणिक तथा कीर्तनकार थे। मानपुरी ने इनका माहात्म्य मुक्तकण्ठ से गाया है। वे कहते हैं, 'कीर्तन की तेरी ढाल लगी है, श्रवण करत हम रीझे।'

श्रीधर का काव्य आख्यानपरक एवं रसपूर्ण है। इन्होंने कुल साठ हजार ओवियाँ लिखी हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'हरिविजय', 'रामविजय', 'वेदान्तसूर्य', 'पाण्डव-प्रताप', 'शिवलीलामृत', 'पाण्डुरंग-माहात्म्य', 'व्यंकटेश-माहात्म्य', 'मल्लारि-माहात्म्य', 'ज्ञानेश्वर-चरित्र', तथा 'अम्बिका-उदय'। उन्होंने कुछ पद भी लिखे हैं। 'हरिविजय' में उन्होंने भागवत दशमस्कन्ध, हरिवंश, पद्मपुराण आदि ग्रन्थों पर आधृत कृष्ण-कथा मराठी में ओवीबद्ध की है। श्रीकृष्ण ने दैत्यों पर विजय प्राप्त कर भूभार उतारा है। इसलिए ग्रन्थ का नाम 'हरिविजय', रखा गया है। इस ग्रन्थ में ३६ अध्याय हैं, ओवी-संख्या ८१३९ है। इसके अन्तर्गत कृष्णजन्म, बालक्रीड़ा, कालिय-मर्दन, कंस-वध, जरासन्ध-वध, रुक्मिणी-स्वयंवर, सुभद्रा-हरण, राजसूय-यज्ञ, शिशुपाल-वध, ऊखल-बन्धन, यमलार्जुनोद्धार, वनक्रीड़ा, वत्स-हरण, कंसदूत-मर्दन, अघासुर-मर्दन, रासक्रीड़ा, कालयवन-नाश आदि कथाएँ आयी हैं। इनमें वात्सल्य, शान्त, अद्भुत, करुण, वीर आदि रसों का परिपोषण उत्तम रीति से हुआ है। शकटासुर के वध के अनन्तर कीचड़ में रेंगते हुए श्रीकृष्ण बलराम के साथ घर आते हैं। इस प्रसंग का वात्सल्यरसपूर्ण वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में देखिये :

धुळीनें भरलें अंगवदन।
हांसती येकाकडे येक पाहोन।
झळकती लघु लघु दशन।
आकर्ण नयन दोघांचे।।

मातेचे जानुयुगळ।
तेथें मिठी घालूनि घननीळ।
वरी करुनि मुखकमळ।
गदागदा हासतसे।।

धुळीनें भरलें निजांग।
मातेनें उचलिला सवेग।
पूर्ण ब्रह्मानन्द श्रीरंग।
हृदयीं दृढ धरियेला।।

पदरें पुसिली अंगींची धुळी।
मातेचें वदन विलोकी वनमाळी।
धन्य ते यशोदा वेल्हाळी।
चुम्बन देत हरीतें।।

'श्री हरि का शरीर धूल से मैला हो गया है। श्रीकृष्ण और बलराम एक-दूसरे की ओर देखकर हँसते हैं। उनके दाँत चमकते हैं, उनके विशाल नेत्र विलोकनीय हैं। वे दोनों माता के जानुयुगल को पकड़े हुए हैं। घननील कृष्ण मुखकमल ऊपर करके हँसते हैं। जिसका अंग धूल से मैला हुआ है, उसको माता ने आवेग से पकड़ लिया। पूर्ण ब्रह्मानन्द श्रीरंग को उसने हृदय से लगा लिया। माता ने अपने आँचल से पुत्र के अंग की धूल पोंछी। घनमाली माता के मुख की ओर देख रहे हैं। यशोदा माता धन्य है। उसने श्रीहरि को चुम्बन दिया है।'

श्रीधर की कविता मधुर, प्रसादपूर्ण और सरल है। संसारतप्त पाठकों को सुख और शान्ति प्रदान करनेवाली है। आज भी गाँव के मन्दिर में श्रीधर के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'पाण्डवप्रताप' तथा 'रामविजय' का पाठ होता है। भावुक श्रोतृवर्ग उसे श्रवण करता है। आबालवृद्ध के लिए श्रीधर के ग्रन्थ परमप्रिय हैं। श्रीधर ने उद्धव से गोपियों की भेंट का अत्यन्त सरस वर्णन किया है—

जय जय सच्चिदानन्द सगुण।
अतसी कुसुम भास तूं पूर्ण।
वाटे त्याच रंगें करून।
नीलोत्पलें रोविलीं॥
नभासि चढला तोचि रंग।
त्याचे प्रेमें रंगले मेघ।
इंद्रनीळ हरिरंग।
त्याच प्रकाशें जाहले॥
तेथींचें सौन्दर्य अद्भुत।
गरुड पाचू सतेज चळत।
मर्गतासि बिक दिसत।
तनु सांवळी देखोनियां॥
लावण्यामृत सागराद्भुत।
कीं कोटिमकरध्वजाचा तात।
तो पुष्पधन्वा उदरीं जन्मत।
अंकीं खेळत जयाच्या॥
श्यामलांगी अति निर्मळ।
वरी डोले वैजयन्ती माळ।
पुष्करी शक्रचाप सुढाळ।
सुरंग जैसें मिरवें॥

(हरिविजय ७.१.५)

यह सच्चिदानन्द सगुण कृष्ण अतसीकुसुम जैसे कोमल व पूर्ण हैं। इसका रंग लेकर ही नीलोत्पल प्रफुल्लित होते हैं। नभ पर भी वही रंग चढ़ा है। इस हरि-रंग से ही इन्द्रनील प्रकाशित हो रहा है। श्रीकृष्ण के तेज से ही पाचू प्रकाश देता है। मर्गजा रत्न की शोभा श्रीकृष्ण का नीलतन देखकर बढ़ती है। यह लावण्यामृत श्रीकृष्ण कोटि मकरध्वजों का पिता है। पुष्पधन्वा मदन उसीकी गोद में खेलता है। उसका श्याम अंग अति निर्मल है, उस पर वैजयन्ती माला शोभती है।'

समर्थ रामदास स्वामी

श्री शिवाजी महाराज के गुरुदेव समर्थ श्री रामदास-स्वामी मराठी प्रदेश के एक अद्भुत प्रतिभा के सन्त पुरुष हैं। इनकी अनुभव से युक्त और चातुर्य से पूर्ण वाणी, अगाध प्रतिभा, अनुपम देश-निष्ठा, बेजोड़ राजनीति और सुस्पष्ट विचारधारा सचमुच इनके महान् जीवन की साक्षी है। इस युगद्रष्टा साधु पुरुष ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी अपनाया था। इनके समर्थ-सम्प्रदाय ने सारे समाज को अभिभूत किया था। इनका 'दासबोध' हजारों का पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुआ है।

समर्थ रामदास स्वामी युगनिर्माता राजा शिवाजी के राजनीतिक गुरु रहे हैं। उन्हींके प्रेरक सन्देश से शिवाजी महाराज ने अपने विराट् कर्तृत्व के लिए प्रेरणा प्राप्तकी। शिवाजी का महाराष्ट्र वस्तुतः स्वाधीन देश है। एक समर्थ, स्वाभिमानी और सम्पन्न देश ही शिवाजी की आँखों के सामने था। समर्थ कर्मयोगी गुरुदेव थे। इन्होंने महाराष्ट्र की चप्पा-चप्पा भूमि को देखा-परखा था। उसकी सह्यगिरि की गुफाओं में इन्होंने उग्र-गम्भीर तपस्या की थी। उसके दुर्गम पहाड़ों को लाँघकर जन-जीवन का समग्र स्वरूप देखा था। उनकी भाव-भावनाएँ, उनकी आशा-आकाक्षाएँ, उनके स्वभाव, उनके अभाव आदि सब कुछ इनका जाना-पहचाना था। राजा शिवाजी की शक्ति-युक्ति और समर्थ रामदास स्वामी के पुरुषार्थ से युक्त कृतित्व का सन्देश एकत्र आहु और महाराष्ट्र एक महान् संकल्प के लिए कटिबद्ध हो गया। शिवाजी और उनके सूरमाओं की बाहुओं में अपार शक्ति का संचार हुआ। उनके प्रयत्नों में आत्म-विश्वास; एक पावन आत्मसम्मान जागा और वे सफल-मनोरथ हुए। उनको विजयश्री प्राप्त हुई। आक्रामकों की ताकत को ठुकराया गया। शैतानी मनोवृत्ति को कुचला गया। जय न्याय की हुई, सत्य विजयी हुआ। इस गौरवमय इतिहास का अवलोकन करना भी कितना प्रेरणादायी है!

सत्रहवीं शती के महाराष्ट्र का इतिहास महाराजा शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास के अतुलनीय देश-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेम का इतिहास है। अपने ग्रन्थ 'दासबोध' में समर्थ रामदास स्वामी का एक वचन है—

> **मुख्य तें हरिकथा निरूपण।**
> **दुसरें तें राजकारण॥**
> **तिसरें तें सावधानपण।**
> **सर्व विषयीं॥**

'हरि की कथा का स्पष्टीकरण, परम तत्त्व का विचार तो पहला निश्चित उद्देश्य होगा। दूसरा क्रम राजनीति का रहेगा। तीसरी महत्त्व की बात होगी; सचेत रहना। सभी बातों को लेकर अखण्ड सावधानी बरतना एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होगी।'''''समर्थ कवि की यही धारणा रही। परमपद-प्राप्ति, राजनीति और सावधानी। कैसा विचारपूर्ण व्यवहार है! कितना सजग सन्देश है। फिर उस महान् योगी का विश्वास भी देखिये—

> **केल्यानें होत आहे रे।**
> **आधीं केलेचि पाहिजे॥**
> **यत्न तो देव जाणावा।**
> **अन्तरीं धरितां बरें॥**

'कर्म, कृतिशक्ति ही सबसे बड़ी बात है। प्रत्यक्ष यत्न करने से ही व्यक्ति इच्छित कार्य में यश प्राप्त करता है। पहले कोशिश करनी होगी। प्रयत्न करना होगा। प्रयत्न ही को हम ईश्वर समझें। प्रयत्न ही परमेश्वर है। इस बात को भलीभाँति मन में रखना चाहिए। इसीसे हमारे मनोरथ पूर्ण होते हैं।' समर्थ की दार्शनिक विचारधारा अद्भुत सामर्थ्य से परिपूर्ण है।

समर्थ रामदास स्वामी का वास्तविक नाम नारायण, उपनाम ठोसर था। शक संवत् १५३४ में जांब नामक गाँव में स्वामीजी ने जन्म ग्रहण किया था। कहते हैं, उन्होंने ठीक रामनवमी (प्रभु राम-जन्म) की दुपहरी को ही जन्म लिया था।

समर्थ के पिता का नाम था सूर्याजीपन्त और माता राणूबाई कहलाती थीं। इनके दो पुत्र थे। नारायण के बड़े भाई थे गंगाधर। इन्हींको आगे 'रामीरामदास' के नाम से कीर्ति प्राप्त हुई।

सूर्याजीपन्त परमार्थ-साधना करनेवाले थे। बड़े पुत्र की आयु योग्य होने पर उन्होंने उसे मन्त्र-दीक्षा देने की सोची। इस समय छोटे रामदास अथवा नारायण ने भी मन्त्रोपदेश का आग्रह किया। पर पिताजी ने उसकी जिद नहीं मानी। इससे नारायण रुष्ट होकर घर छोड़ने पर उतारू हो गया।

दूसरी भी एक कथा बतायी जाती है और सभी पारम्परिक चरित्रकारों ने इस कथा को विवरण के साथ लिखा भी है। वह कथा इस प्रकार है—

नारायण का यथासमय विवाह निश्चित किया गया। वह विवाह बन्धन नहीं चाहता था। जब विवाह-विधि हो रही थी तब बड़ा अनमन था।''''यथामुहूर्त ब्राह्मण पुरोहित ने दूल्हा और दुलहन के बीच अन्तःपाट (विवाह-वस्त्र) पकड़ा और वे ऊँचे स्वरों में विवाह-अष्टक पढ़ने लगे। मंगल कामनाओं की बौछार होने लगी। सुरीली तानों में विवाहाष्टक वातावरण में गूँजने लगे और फिर घोषणा हुई''''"विवाह-विधि अब पूर्ण होने जा रही है।" ये शब्द सुनते ही नारायण चौंक उठा और वहाँ से गायब हुआ।

नारायण नासिक के करीब पंचवटी-क्षेत्र में पहुँचा। यह पुण्यभूमि भगवान् रामचन्द्र प्रभु के पावन निवास से अतीव पावन हुई थी। नारायण यहाँ आकर कृतकृत्य हुआ। श्रीराम के मन्दिर में उसने बसेरा किया।

गोदावरी का शीतल जलप्रवाह अबाधित गति से प्रवहमान था। पंचवटी की भूमि वृक्ष-लताओं की सौन्दर्य-राशि से आनन्दमय थी। प्रभु राम की साँवली मूरत नारायण के मनश्चक्षुओं के सामने सदा-सर्वकाल विद्यमान थी। सारा वातावरण उसके लिए राममय था।

गोदामाई के किनारे नासिक के करीब ही टाकळी गाँव है। यहीं समर्थ बारह वर्ष तक उग्र तपस्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते रहे। फिर इन्हें प्रभु के दर्शन हुए और कृतार्थ होकर नारायण 'रामदास' हुआ। तपस्या से उसने सामर्थ्य प्राप्त की थी। इसलिए वह समर्थ हुआ। ऐसे समर्थ रामदास अब साधना में सफलता प्राप्त करने के अनन्तर भारत-दर्शन के लिए निकले, तीर्थस्थान देखने के हेतु चल पड़े (सन् १६३१)।

समर्थ रामदास स्वामी ने भारतवर्ष का भ्रमण किया था। स्वामीजी हिन्दी प्रदेश में कई वर्ष तक रहे। इसीसे उनके मन में हिन्दी के प्रति स्वाभाविक लगाव पैदा हुआ।

रामदासस्वामी कृत 'तीर्थावळी' नामक छोटा-सा प्रकरण-ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार समर्थ ने समूचे भारत में तीर्थस्थलों की यात्रा की थी। नासिक पंचवटी से समर्थ वाराणसी गये। यहाँ श्री विश्वेश्वर के दर्शन और क्षेत्र-कृत्यों को पूर्ण कर इन्होंने 'त्रिस्थळी' यात्रा (प्रयाग, गया, काशी) पूरी की। गंगा मैया के हनुमंत घाट पर, कहा जाता है कि, इन्होंने श्री हनुमान् की संस्थापना की। काशी के बाद ये श्रीराम के निवास से पुनीत अयोध्यानगरी में आये और इसके अनन्तर गोकुल, वृन्दावन की भूमि में भ्रमण कर मथुरा पहुँचे। यहाँ से प्रभासपट्टण होकर द्वारका गये। काशी, द्वारका, मथुरा आदि सुदूर के स्थानों में स्वामीजी ने अपने शिष्यों का परिवार बढ़ाया, मठ-स्थापना की। इन सभी स्थानों में महन्त रखे गये। उनके नाम समर्थ के चरित्रकारों ने दिये हैं।

उत्तर भारत की यात्रा पूर्ण कर स्वामीजी दक्षिण में जगन्नाथपुरी को आये। यहाँ अपने प्रिय शिष्य पद्मनाभ को अनुगृहीत कर इन्होंने अपना मठ स्थापित किया और दक्षिण सागर की तरफ चले। श्री रामेश्वर के दर्शन कर ये शेषाचल, श्री वेंकटेश, शैल-मल्लिकार्जुन होते हुए महाबलेश्वर (गोकर्ण) में आये। फिर परशुरामतीर्थ देखकर सह्याद्रि के शिखर पर बसे हुए महाबलेश्वर के निकट कृष्णा माता के पावन अंचल में आये। यहीं से लगभग बारह वर्ष पूर्व ये निकले थे।

समर्थ रामदास स्वामी की बारह वर्षों की यह भारत-यात्रा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः इसी प्रवास-काल में इन्होंने हिन्दी में रचनाएँ की हों। तीर्थाटन के दरमियान हिन्दी भाषा का प्रयोग करना पड़ा होगा। पर उनकी कुछ स्फुट पदरचना के सिवा हमारे पास कुछ नहीं बचा है। धुलिया के समर्थ वाग्देवता मन्दिर की पोथीशालाओं में अगणित हस्त-लिखित ग्रन्थ हैं। उनकी परख करने के बाद भी सिर्फ सौ के करीब पद ही प्राप्त हुए हैं। हो सकता है कि इनकी तीर्थयात्राओं के स्थानों में ऐसी कुछ रचनाएँ और प्राप्त हों।

तीर्थाटन कर समर्थ रामदास स्वामी अपने गाँव जांब में आ गये (शक संवत् १५६६) और अपने मठ-मन्दिर की स्थापना कर उन्होंने 'समर्थ-सम्प्रदाय' का श्रीगणेश किया। स्वामीजी सदैव भारत-यात्रा करते रहे। अपनी आयु में इन्होंने कुल अठारह सौ मठ-स्थापन किये। इन मठ-मन्दिरों में मुमुक्षु साधकों को विद्या और साधना सिखाई जाती थी। भिक्षा-वृत्ति से लेकर राजनीति तक सभी तरह की विद्याएँ समर्थ-मन्दिरों में पढ़ायी जाने लगीं।

इन मठों का आदिपीठ था चाफळ। यहाँ प्रधान मठ आज भी विद्यमान है। देश के विभिन्न भागों में स्वामीजी के केन्द्र स्थापित थे। एक तरह से ये सारे समर्थ-जीवन-कला के विद्यापीठ ही थे। स्वामीजी के प्रमुख शिष्य कल्याणस्वामी का मठ सीना नदी के किनारे डोमगाँव में था। दूसरे प्रख्यात शिष्य उद्धव का मठ टाकळी और इंदूर (हैदराबाद) में था। देवदास का मठ अहमदनगर के करीब दादेगाँव में था। इसी प्रकार कारंजे (विदर्भ), भालगाँव (औरंगाबाद तहसील), वाराणसी, रामेश्वर, गोमंतक, सावंतवाडी (कोंकण) ऐसे विभिन्न स्थलों में स्वामीजी के प्रधान शिष्य थे। इन्होंने निकटवर्ती प्रदेशों में समर्थ-सम्प्रदाय का बहुत बड़ा प्रचार किया। सूरत, द्वारका, बद्री-केदार और तंजावर में भी समर्थ के शिष्य विद्यमान थे। नारायणबुआ, चक्रपाणि, सदाशिव, शंकर गोसावी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिवराम आदि शिष्यप्रवर देशभर में भ्रमण कर समर्थ-सम्प्रदाय के केन्द्रस्थानों का व्यवस्थापन किया करते थे। स्त्रियों को भी दीक्षा दी जाती थी।

समर्थ-सम्प्रदाय के अगणित सदाचारी पुरुषों और स्त्रियों ने महाराष्ट्र का चित्र ही बदल दिया। उनके विमल चरित्र-चारित्र्य ने समाज को चेतना प्रदान किया, शिवाजी महाराज के स्वातन्त्र्य-यज्ञ को बल दिया। असल में शिवाजी राजा और स्वामी समर्थ रामदास का कार्य एक-दूसरे के लिए पूरक सिद्ध हुआ है।

श्री शिवाजी महाराज की मृत्यु शक संवत् १६०२ में हुई। इससे समर्थ अत्यन्त दुःखी हुए। परन्तु उनके प्रियतम शिष्य ने स्वराज्य-प्राप्ति का महान् स्वप्न साकार किया था। महाराष्ट्र की भूमि परतन्त्रता की शृंखलाएँ तोड़कर आनन्दमय हो गयी थी। शिवाजी राजा ने विराट् यशःश्री सम्पादन की थी। उनकी असमय मृत्यु से जैसे समर्थ का सपना टूट गया। पर ऐसा भी कैसे कहा जा सकता है? समर्थ की स्वराज्य-स्थापना की इच्छा पूर्ण हो गयी थी। जीवन पूर्णकाम हुआ था। एक वर्ष गुजर गया। शिवाजी द्वारा संस्थापित स्वराज्य की स्थिति बिगड़ने लगी। स्वामीजी अनमन हो गये। इनके निवासस्थान सज्जनगढ़ से अब चैतन्य उड़ा जा रहा था। श्रीराम के मन्दिर की स्थापना हुई। सुन्दर मूर्तियाँ अपनी आँखों से देखकर स्वामीजी कृतकृत्य हो गये। शक संवत् १६०३ की माघ कृष्ण पंचमी को ये स्वर्गलोक सिधारे। इनकी अन्तिम उक्ति बतायी जाती है—

'माझी काया आणि वाणी।
गेली म्हणाल अन्तःकरणी।
परि मी आहें जग जीवनीं।
निरन्तर॥

'कोई कह सकता है कि मेरी काया और वाणी नष्ट हुई। मेरे प्राण-पखेरू उड़ गये…शरीर थक गया… बोलना बंद हो गया। पर यह भी कैसे सच हो सकता है? सच तो यह है कि मैं अपनी कृति से रहूँगा। जग-जीवन में सदैव रहूँगा। मेरी वाणी गूँजती रहेगी। मेरा कहना सुनाई देगा। मेरे सिद्धान्त स्वीकृत होंगे।…निरन्तर मेरा अस्तित्व रहेगा।' कैसा अद्भुत आत्मविश्वास है। महान् व्यक्तित्व ही ऐसा आत्मविश्वास रख सकता है।

स्वामीजी की उपलब्ध हिन्दी कविता अधिकतर प्राचीन मराठी हस्तलेखों में मिली हैं। ऐसे कई हस्तलिखित ग्रन्थ (मराठी शब्द–पोथी) महाराष्ट्र के शोध-मन्दिरों में सुरक्षित हैं। धूलिया में श्री समर्थ वाग्देवता मन्दिर नामक स्वतन्त्र संस्था ही है। इसी महान् संस्था ने समर्थ स्वामी रामदास के कृतित्व को प्रकाश दिया और अनुसन्धाताओं की एक श्रेष्ठ परम्परा निर्माण की। इस सन्दर्भ में आदरणीय श्री शंकरराव देव महोदय का नाम सर्वोपरि है। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन रामदास-साहित्य के प्रकाशन-प्रसारण में लगा दिया।

समर्थ का मराठी काव्य-भण्डार विशाल है। 'दासबोध' उनका प्रमुख ग्रन्थ है। यही श्री समर्थ-सम्प्रदाय का 'ग्रन्थ-साहब' है। शक संवत् १५८१ में इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाएँ 'मनाचे-श्लोक' और रामायण के 'सुन्दरकाण्ड' और 'युद्धकाण्ड' उपलब्ध हैं। 'मनाचे श्लोक' अतीव लोकप्रिय रचना है। इस छोटे-से ग्रन्थ में सन्त कवि ने सदाचार के नियम अत्यन्त सुबोध और प्रभावकारी भाषा में दिये हैं। महाराष्ट्र में बालक और कुमार इन श्लोकों का पाठ करते हैं।

सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड को मराठी में लिखकर कवि ने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। इन दो ही काण्डों में कवि श्री रामप्रभु के चरित्र का सार देखता है।

अजिंक्य रजनीचर माजले।
देव कारागृहीं घातले।
म्हणोनि वैकुण्ठीहून पातले।
देव सोडवावया॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिहिं त्रैलोक्य जिंकलें।
त्यांस मर्कटा हातीं मारविलें।
भुवनत्रय आनन्दविलें।
दाशरथीनें ॥

'पापियों की संख्या बढ़ी। वे उन्मत्त हुए। उन्होंने ईश्वर को ही कारागृह दिखाया। इसीलिए वैकुण्ठ-लोक से प्रभु आ गये—अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए आये।...और फिर जिसने त्रिलोक को जीता था, बहुत पराक्रम किया था, उसे मर्कट के हाथों से मरवा डाला।' सारा संसार—त्रिभुवन आनन्दित हुआ। दशरथ-पुत्र राम के अवतार की महत्ता इतनी बड़ी है।'

इसके अतिरिक्त सौ ओवी-छन्द के चौदह शतक, पंचीकरण, करुणाष्टक, स्फुट ओवियाँ, स्फुट श्लोक, अनेक आरतियाँ (प्रार्थनाएँ) इन्होंने लिखी हैं। 'दासगीता' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ की भी रचना की है।

समर्थ की यह सारी मराठी और संस्कृत ग्रन्थ-सम्पदा मुद्रित हो चुकी है। महाराष्ट्र में समर्थ के साहित्य का व्यापक प्रसार और प्रभाव रहा है।

श्रीमद्दासबोध ग्रन्थ स्वामीजी का सर्वप्रमुख ग्रन्थ है। साम्प्रदायिक इसको वेद, स्मृति से भी बढ़कर मानते हैं। शक संवत् १५८१ में इस ग्रन्थराज की रचना पूर्ण हुई।

'दासबोध' समर्थ-जीवन का उत्कृष्ट दर्शन-ग्रन्थ है। स्वामीजी ने जीवनानुभव बहुत बारीकी से ग्रहण किया था। देश के सारे समाज से और तत्कालीन स्थिति से इन्होंने प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त किया था। ग्रन्थ में जगह-जगह पर इस बात का अनुभव हो जाता है।

वास्तव में दासबोध चातुर्यपूर्ण व्यवहार का ज्ञान-कोश है। इसमें समाज-व्यवस्था का कोई नया तत्त्व अथवा मनोविज्ञान के सिद्धान्त नहीं मिलेंगे। यहाँ एक समर्थ जीवन-दर्शन है। प्रत्यक्ष कर्म करने में अदम्य विश्वास है। परिवार और परमार्थ-साधना का अनुपम मेल है। राजनीति का सुलभ स्पष्टीकरण है। सच पूछा जाय तो यह ग्रन्थ सामर्थ्यसम्पन्न और आत्मनिर्भर समाज का आदर्श दर्शन-ग्रन्थ है।

समर्थ रामदास स्वामी राष्ट्रभाषा हिन्दी से भली-भाँति परिचित थे। इनके प्राप्त पद, संख्या में सौ के करीब ही हैं, परन्तु उनका महत्त्व बहुत बड़ा है। कारण, इस मराठीभाषी समर्थ कवि-सन्त की हिन्दी भाषा सुस्पष्ट, सुबोध और सरस है। उसमें दखिनी का पुट है। मराठी का स्पष्ट और उचित प्रयोग है। विषय की गम्भीरता ने उसे निराला सौन्दर्य दिया है।

समर्थ रामदास स्वामी की उपलब्ध हिन्दी रचनाएँ वैसे संख्या की दृष्टि से थोड़ी ही हैं। इनका विशाल मराठी काव्य-भण्डार देखते हुए लगता है कि कवि की हिन्दी रचनाएँ संख्या में इतनी कम नहीं होंगी। अभी इस दिशा में अनुसन्धान की आवश्यकता है। और अधिक मात्रा में उनके हिन्दी पद निश्चय ही प्राप्त हो सकते हैं।

'श्री समर्थ-गाथा' में हिन्दी भाषा में लिखित ७८ पद संकलित हैं। धूलिया के समर्थ वाग्देवता मन्दिर में अधिक खोजबीन करने से हमें कुछ और पद प्राप्त हो सके हैं। इन समस्त पदों में विविध विषय मिलते हैं। स्थूल रूप से विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

१. श्रीराम प्रभु के पद
२. श्रीकृष्ण भगवान् के पद
३. मुरली-क्रीड़ा के पद
४. गवळण (गोपी-कृष्ण-प्रेम के) पद
५. सन्त-समागम के पद
६. विनय के पद
७. भक्तिभाव तथा परतत्त्व-वर्णन के पद
८. उपदेशपरक पद

अपने आराध्य प्रभु राम के साथ-साथ स्वामीजी भगवान् श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य और लीलाओं का भी श्रद्धाभाव से वर्णन करते हैं। सारंग के संगीत की रिझावन से वे अभिभूत हैं। रसिक स्वरों में ये कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसा है सारंग रे भाई ।। ध्रु० ।।
संगीत गावे बजावे ।
गावि सबकु रिझावे ।।
तनमन की सुधि गयो है ।
बिकल भए हैवान रे ।।

जब मनमोहन कृष्ण गौरी राग में गाते हुए आते हैं तो सारा गोकुल-वृन्दावन स्तिमित हो जाता है। गोपाल और गोपियाँ उन्हींकी ओर निर्निमेष देखती हैं। उन्हें इतनी खुशी होती है कि वे मानो 'आकाश' में उड़ने लगती हैं उन्हें स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है। उस स्वर्गीय सुख का यह चित्र देखिये—

आवे मदनमोहन कान ।
अजब गौरि को तान ।।
गोपी गुबाल गुवालिनी ।
निरखित, चलत हैं आसान ।।

इसी प्रकार जब वंशीधर कृष्ण आते हैं; तब सारा वातावरण पुलकित हो उठता है। सुरवर 'थकित', मुनिवर 'चकित' हो जाते हैं। यहाँ शब्दों पर मराठी बोलचाल की भाषा का गहरा प्रभाव स्पष्ट है। कवि कन्हैया के संगीत-रंग में रँग गया है। एक पद में कवि कृष्ण-गीत का मनोरम चित्र उपस्थित करता हुआ कहता है—

सारंगी में सारंग ।। ध्रु० ।।
जंत्र गुनीजन ढोलक बाजे ।
चलत संगीत रंग रे ।।
तानमान में ध्यान लगावे ।
गावतु है श्रीरंग रे ।।
रसिक मोहन बन्सी बजा के ।
भंग बिना हरि दंग रे ।।

अन्तिम पंक्ति का रसीलापन अद्भुत है !

मुरली के पदों में कवि की अभिव्यक्ति वड़ी सरस रही है। एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

लाल छबीले आवे ।
आवे मुरली बजावे ।।
झमकत मोहन मूरत ऐसी ।
समजन के जन भावे ।।
जान सुजान पछानत सब ही ।
रसिक कहे समजावे ।।
रसिरु रैना रसिक बैना ।
लाल गुलाल चलावे ।।

अ० प्र० का०

सावता माळी

श्री ज्ञानेश्वर महाराज के साथ तीर्थयात्रा में जानेवाले सन्तों में अरणभेंडी के सावता माळी भी थे। इनके जीवन-वृत्त के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। अनुमानतः ये १३वीं शती में विद्यमान थे। अरणभेंडी नामक ग्राम में इनका बगीचा और कुआँ अभी तक विद्यमान बताया जाता है। भगवान् विट्ठल के प्रति अनन्य भक्ति और एकनिष्ठ प्रेम के कारण ये आठों याम उसीमें रमे रहते थे। इन्होंने कहा है—मेरे लिए मेरा बगीचा ही विट्ठल है—मेरी लौकी, मूली, भाजी, लहसुन, मिरची, धनियाँ सब कुछ हरि ही हैं :

आमुची माळियाची जात ।
शेत लावूं बागाईत ।।
आम्हा हातीं मोट नाडा ।
पाणी जातें फूल झाडा ।।
शान्ति शेवन्ती फूलली ।
प्रेम जाई जुई व्याली ।।
सावताने केला मळा ।
विठ्ठल देखियेला डोळा ।।

(अभंग ४)

'हम जाति से माली हैं। बाग-बगीचे, खेती करना हमारा काम है। हमारे हाथ में रहँट और नाड़ा है, जिससे फूल-पत्तों में, झाड़ियों में जल पहुँचता है। वस्तुतः यह वाटिका हमारे लिए विट्ठल ही है। यहाँ शान्तिरूपिणी शेवन्ती फूली है और जूही-चमेली ने मानो प्रेम को ही जन्म दिया है। इस प्रकार यह काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही प्रेम-भक्ति से आपूरित है। अंग-अंग ही जैसे विट्ठलमय हो चुका है।'

अपूर्व प्रेम और अद्भुत मधुरता से अपनी कविता सींचकर ये भक्त और प्रेमी जनों के हृदय प्रेममय कर देते हैं। इन्हें न ज्ञान चाहिए, न मान। इनका मन कुछ दूसरा ही है। इन्हें भुक्ति नहीं चाहिए, मुक्ति की भी इच्छा नहीं। इनका लक्ष्य कुछ दूसरा ही है। वस्तुतः ये चाहते यह हैं कि भगवान् विट्ठल के चरणों में माथा रखकर सदैव आत्मानन्द का भोग करते रहें।

इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि इन्हें योग-मार्ग में भी पूरी सिद्धि प्राप्त थी। अपनी समाधि के सम्बन्ध में ये कहते हैं—प्रातःकाल उठकर स्नान किया और यथाविधि आसन लगाकर बैठ गया। उस समय देह नवज्वर से सन्तप्त हो रही थी, परन्तु मन में विठोबा के प्रति अत्यन्त आर्तभाव बन रहा था। फिर प्राणायाम करके कुम्भक साध्य किया और मूल तत्त्वों में वायु का निरोध किया। वह शक शालिवाहन का बारह सौ सत्रहवाँ वर्ष था। मन्मथ नामक संवत्सर था। ग्रीष्म ऋतु, आषाढ़ की कृष्ण चतुर्दशी, उसी दिन उधर सहस्रकर सूर्य उदित और हुए इधर सावता श्री पाण्डुरंग-चरणों में विलीन हो गये। देह जिसकी थी उसे ही इन्होंने समर्पित कर दी। इस प्रकार सन्त सावता माळी ने सन् १२९५ में समाधि ग्रहण की।

भक्तप्रवर सावता माळी के बारह अभंग 'सकल सन्त-गाथा' में संकलित हैं। यह सारे के सारे अभंग विट्ठल-भक्तिमय हैं। इनमें सन्त ज्ञानेश्वर और नामदेव महाराज के प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा व्यक्त की गयी है। विट्ठल अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य-निष्ठा व्यंजक एक अभंग देखें—

पैल पहा हो परब्रह्म भुललें।
जगदीश कांहो परतन्त्र झाले॥
काय सुख केले येणें नेणिजे।
कोण भाग्य गोळीयांचे वर्णिजे॥
आदि अन्तू नाहीं जया व्यापका।
माया उखळी बांधिला देखा॥
सर्व सुखाचें सुख निर्मळ।
कैसे दिसताहे श्रीमुख कमळ॥

योगियां हृत्कमळींचे हे निधान।
दृष्टि लागे झणी उतरा निंबलोण॥
सावत्या स्वामी परब्रह्म पुतळा।
तनुमनाची कुरवण्डी ओंवाळा॥

(अभंग ६)

'सावता माळी मुग्ध हैं। कहते हैं कि देखिये तो सही यह परमेश्वर, यह परब्रह्म, यह जगदीश, जगदाधार प्रेम में कैसा भूल गया है? भक्तों के प्रेम में रँगकर इसने अवतार लिया और अपने भक्तों को अमित सुख दिया। यह सुख कैसा है? उन गोप-गोपिकाओं के भाग्य का भला क्या वर्णन करूँ? जिनके वश में होकर प्रभु रहते हैं, जिसका आदि-अन्त नहीं है, जो सर्वव्यापक है, उसे ही देखिये, जो माता पकड़कर ऊखल से बाँध देती है। सारे सुखों का, निर्मल सुखों का जो समुच्चय है, वही मानो श्रीहरि का मुखकमल है। कैसा सुन्दर शोभायमान है यह? योगियों के हृदय-कमल में रहनेवाला यह मुख सौन्दर्य का निधान है। उनकी सीमा है। प्रभु के इस प्यारे-प्यारे मुख को कहीं किसीकी नजर न लग जाय? झट से नींबू-लोन उतार दीजिये। नजर उतारिये इनकी। सावता माळी कहते हैं, मेरा स्वामी परब्रह्म का पुतला है। इस पर मैंने अपना तन-मन न्योछावर कर दिया है। सावता माळी का प्रभु परब्रह्म श्रीकृष्ण गोपियों का सर्वस्व और भक्तों की आनन्दनिधि है।'

प्र० न० जो०
वि० पं०

सातारकर, दादा महाराज

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में दादा महाराज सातार-कर नामक एक श्रेष्ठ व अनुभवसम्पन्न भगवद्भक्त और सत्पुरुष हुए। इनका जन्म सातारा शहर में सन् १८७५ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहिरामजी गोरे और माता का कृष्णाबाई था। पास में ही जरंडेश्वर नामक एक हनुमान्-स्थान पहाड़ के ऊपर था। इस जरंडेश्वर की कृपा से दादा महाराज का जन्म हुआ था। नाई जाति के होने के कारण इनकी लौकिक शिक्षा कम हुई। एक बार दादा सातारा से पण्ढरी को पैदल वारी के साथ गये। वारी (यात्रा) में भजन-कीर्तन में इनका मन रम गया। ज्ञानेश्वर महाराज के भक्तों की संगति के प्रभाव के कारण इनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। पण्ढरपुर में चन्द्रभागा में स्नान करके पाण्डुरंग का दर्शन कर इनका मन तृप्त हुआ। तदनन्तर वासकर के परिवार में एकनाथ दादा से इन्हें दीक्षा मिल गयी। गले में तुलसी काष्ठ की माला पहनकर ये पण्ढरी के एकनिष्ठ वारकरी बने।

बचपन से ही दादा को नाम-जप से प्रेम था। घर के पास ही सातारा में एक मारुति मन्दिर जीर्णावस्था में था। दादा ने उसका जीर्णोद्धार किया। वहाँ ये दिनभर नाम-स्मरण करने लगे। भजन में इनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। ये अकेले ही प्रभु श्रीकृष्ण और पण्ढरीनाथ की प्रार्थना करते थे। इन्होंने सन्तों के ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। ज्ञानेश्वरी और तुकाराम महाराज की अभंग-गाथा पर इनका अटूट प्रेम हो गया। भक्तिभाव तथा आन्तरिक लगन से ये ज्ञानेश्वरी का पारायण करने लगे। ज्ञानेश्वरी के अमृत-मधुर शब्दों से ये मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। उन ओवियों का अर्थ स्वाभाविक रीति से इनके मन में प्रकट होने लगा। इनसे ज्ञानेश्वरी-निरूपण सुनकर श्रोता भी भक्ति-रसामृत में डूबने लगे। श्रीकृष्ण महाराज गारवडेकर की प्रेरणा से दादा महाराज कीर्तन करने लगे। वाई-क्षेत्र, काशी-क्षेत्र में इनका गौरव हुआ। एक हरिजन (अस्पृश्य) ज्ञानेश्वरी की ओवियाँ पढ़ता था और प्रेममूर्ति दादा महाराज अर्थ करते थे। सैकड़ों श्रोताजन दादा महाराज के प्रवचन-कीर्तन सुनकर तृप्त हुए। सुशिक्षित लोगों में ज्ञानेश्वरी व दादा महाराज का प्रेम बढ़ गया। सावन्तवाडी, शिरोडा, मालवण, फलटणी पिंपळनेर, भण्डारा, सिकन्दराबाद आदि स्थानों में महाराज के नाम-सप्ताह हुए। दादा महाराज के प्रतिपादन में 'ज्ञानेश्वरी' के काव्य-सौन्दर्य, तत्त्वज्ञान, उपदेश और प्रभु-प्रेम का साक्षात्कार सबको होने लगा। आयुष्य के उत्तरार्ध में दादा महाराज मुम्बई में रहने लगे। इनका शिष्य-परिवार बढ़ने लगा। राजे-महाराजे, संस्थानिक, धनिक इनके शिष्य बने। दादाजी ने तीर्थयात्रा भी अनेक बार की थी। निर्गुण, निराकार पर दृष्टि रखकर भी ये सगुण भक्ति में सदा निमग्न रहते थे। दादा महाराज का देहान्त सन् १९४६ ई० में हुआ। इनका समाधि-स्थान आळन्दी में इन्द्रायणी के तट पर है। आजकल इनके पौत्र हरि-भक्तिपरायण बाबा महाराज पारमार्थिक सूत्र परिपुष्ट कर रहे हैं।

प्र० न० जो०

सेना न्हावी

ज्ञानेश्वरकालीन (१३वीं शती) वैष्णव-भक्तों में सेनान्हावी (सेना नाई) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये नाई जाति के थे और पण्ढरीनाथ के परम भक्त थे। विट्ठल-प्रेम इनकी रचनाओं का मूलमन्त्र है। भक्तिसुख के लिए इन्होंने पुनः गर्भवास की इच्छा व्यक्त की है, जिससे पण्ढरपुर की वारी के अलभ्य लाभ रूप से पंचम मुक्ति पाकर उसका उपभोग कर सकें। अपनी रचनाओं में इन्होंने कहीं-कहीं अपने वंश, धर्म, आजीविका, समाधि आदि के संकेत दिये हैं, परन्तु इनके वास्तविक जीवन-काल तथा समाधि-ग्रहण आदि की तिथियों के बारे में निश्चयात्मक जानकारी का अभाव है।

अपने वंश और धर्म के बारे में ये कहते हैं कि हृषीकेश ने मुझे नाई-जाति में जन्म दिया। मुझे अपने धर्म का प्रतिपालन करना चाहिए। व्यवहार की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हमारा स्वधर्म-विचार सुनिये। पुराणों में बताया गया है, उसी प्रकार सुबह के दो प्रहर नाई का धन्धा करना चाहिए। फिर दोपहर में स्नान करके मुख से नारायण नाम का जप करना चाहिए। उसके बाद अवश्य ही नाई की धोकटी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(पेटी) को छूना भी नहीं चाहिए। ऐसा जो नहीं मानते वे नरकगामी होते हैं और अपने पूर्वजों का पुण्य डुबो देते हैं, इस प्रकार की शास्त्र-सम्मति है। सेना कहते हैं कि यह आज्ञा आप शिरसावन्द्य मानकर विठोबा की शरण में जाइये। ऐसा करने पर वह हृषीकेश स्वयं भक्त की साज-सँभाल करता है।

एक अन्य प्रसंग में ये श्रीहरि द्वारा अपनी सहायता और उद्धार करने की बात कहते हैं। एक बार इष्ट की पूजा करने के बाद सेना अधोक्षज का स्मरण करते हुए ध्यानस्थ बैठे थे। तभी राजा के दूत आये और कहने लगे कि सेना कहाँ है, शीघ्र बताओ। उसको हमारे साथ चलना है। इस व्यवधान से मेरे भक्त की समाधि भंग हो जायगी, यह सोचकर श्रीहरि स्वयं कन्धे पर नाई की पेटी लेकर चल पड़े। वह जल्दी ही राजदरबार में पहुँच गये। उन्हें देखते ही राजा का क्रोध शान्त हो गया। श्रीहरि ने राजा के सम्मुख बैठकर उनके हाथ में दर्पण दिया। जब राजा उसमें झाँककर देखने लगे तो श्रीहरि की चतुर्भुज मूर्ति दिखाई देने लगी। श्रीहरि ने राजा के मस्तक पर हाथ रखा ही था कि उनका देहभान समाप्त हो गया। सर्वत्र उन्हें श्रीहरि ही दृष्टिगत होने लगे। राजा ने उनसे रात-दिन साथ रहने का अनुरोध किया। परन्तु श्रीहरि ने कहा कि मैं शब्दों में, शपथ में उलझकर नहीं रहता। इधर सेना नाई यह सोचकर पश्चात्ताप-दग्ध हो रहे थे कि मैंने भगवान् को संकट डाल दिया है। ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वयं को भगवान् के चरणों में डाल दिया और उसी क्षण देह का त्याग कर दिया।

अपनी समाधि-ग्रहण के बारे में उनका एक अभंग है :

करितों विनवणी।
हात जोडोनियां दोन्ही॥
हेंचि द्यावे मज दान।
करा हरिचें चिन्तन॥
जातों सांगुनियां मात।
पाण्डुरंग बोलावित॥
सोडा द्वादशी पारणें।
सुखें करावे कीर्तन॥
दिवस मध्यान्हीं आला।
सेना वैकुण्ठासी गेला॥

(अभंग ४२)

'सेना कहते हैं, मैं दोनों हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करता हूँ। मुझे यही दान दीजिये कि मैं आपका चिन्तन करूँ। मैं अब स्वधाम-गमन करता हूँ, क्योंकि भगवान् पाण्डुरंग मुझे बुला रहे हैं। आज द्वादशी के दिन आप एकादशी-व्रत का उद्यापन कीजिये। खा-पीकर सुख से कीर्तन कीजियेगा।'

इस प्रकार कहते हुए मध्याह्न हुआ और सेना वैकुण्ठवासी हो गये। उस दिन श्रावणमास की द्वादशी थी।

सेना नाई के कुल १४३ अभंग प्राप्त होते हैं जिनमें श्री विट्ठलरूप-वर्णन, नाम-माहात्म्य, देहभाव-भर्त्सना, भक्तिप्रेम, सत्संग, सन्त-स्तुति, नवधा-भक्ति-वर्णन, त्र्यम्बक-माहात्म्य, आळन्दी-माहात्म्य, सासवड-माहात्म्य, वासुदेव नामक लोक-साहित्य-विधा-प्रकार, गौळणी (गोपी-गीत) आदि विषयों पर इनका आत्मानुभव प्रतिबिम्बित है।

ये भगवान् श्री पाण्डुरंग के अनन्य भक्त थे। भगवान् पाण्डुरंग अथवा श्रीकृष्ण की भक्तिज्ञानमयी प्रेमाभक्ति इन्होंने श्री ज्ञानेश्वर महाराज से प्राप्त की थी। भगवान् के नाम का निरन्तर स्मरण करने का ये अनुरोध करते हैं, **'रामकृष्ण हरी गोविन्द गोपाळ स्मरा वेळोवेळां सेना म्हणे।'** अर्थात् 'सेना कहते हैं कि राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, गोपाळ यह नाम घड़ी-घड़ी जपते रहिये।'

भगवान् विट्ठल का ईंट पर खड़ा रूप इन्हें अत्यन्त प्रिय था। 'भगवान् कटि पर हाथ रखकर भक्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं। माथे पर रत्नजड़ित श्रीमुकुट है और रत्नों की शोभा अत्यन्त लुभावनी है। कुण्डलों की आभा मन मोह लेती है और मुकुट में मोतियों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झूमर अत्यन्त सुशोभित है। कण्ठ में एकावली है और पैरों में तोडर। इनकी विरुदावली सारे भूमण्डल में गूंज रही है। ये सारे भक्तजनों की माता हैं। इन्होंने सुनहरा पीताम्बर धारण कर रखा है। ये मनोहर किरीट भी धारण करते हैं। सेना निरन्तर इनका वन्दना करता है।'

श्रीकृष्ण-रूप का अत्यन्त मनोरम वर्णन एक अन्य अभंग में करते हुए ये कहते हैं—

देहूडे ठाण सकुमार गोजिरे।
कल्पद्रुमातळी उभा देखिला रे॥
मनीं वेध लागला त्या गोपाळाचा।
जो जिवलग गोपगोपिकेचा॥
जी सावळी सगुण घनानन्द मूर्ति।
पाहतां वेधली माझी चित्तवृत्ति॥
जो उभाचि राहिला व्यापुनि सकळ।
भेटिलागी सेना न्हावी उतावीळ॥

(अभंग ११)

'त्रिभंगी मुद्रा में खड़े सुकुमार मनमोहक प्रभु का स्वरूप मैंने देखा, जो कल्पवृक्ष के तले खड़ा है। मेरे मन को उसी गोपाल की लगन लग गयी, जो गोप-गोपिकाओं का परमप्रिय जीवश्च कण्ठश्च आत्मीय है। वह साँवली सगुण घनानन्द-मूर्ति है। उसे देखते ही मेरी चित्तवृत्ति उसीमें लुब्ध हो गयी, उसीके ध्यान में लीन हो गयी। जो सर्वत्र व्याप्त होकर भी शेष रह जाता है, जो सर्वव्यापक है, उसकी भेंट के लिए सेना न्हावी परम आतुर है।'

इनके द्वारा विरचित कुछ अभंग गोपी-गीत के रूप में भी मिलते हैं। इनमें श्रीकृष्ण-प्रिया राधिका का उल्लेख है। कुछ अभंगों में गोप-क्रीड़ा का वर्णन है। इनमें राधा-यशोदा-संवाद तथा गोपी-विरह का निरूपण है। श्रीकृष्ण के वन-विहार की एक झाँकी देखिये :

सोडिल्या शिदोरी।
काला करीं दही भात॥
घ्यारे अवघे समस्त।
हरी गोपाळांसि देत॥
कांहीं न ठेवा उरी।
आजी देतों पोटभरी॥
सेना बैसला द्वारीं।
प्रसाद वाटतो श्रीहरि॥

(अभंग १४२)

'मध्याह्न समय में श्रीहरि ने सबकी तिनके की पुटलियाँ खोलीं और दही-भात का कलेवा तैयार किया। श्रीहरि यह भोजन सबको देते हुए सारे गोपालों से कहने लगे कि सभी इसे ग्रहण करो। सभी वस्तुएँ सारे साथियों को बाँटते हुए वे कहते हैं कि तुम कोई किन्तु-परन्तु मन में मत रखो। सभी को वह भरपेट दे रहे हैं। आज श्रीहरि प्रसाद बाँट रहे हैं। यह देखकर कुछ अवश्य ही मिलेगा, इस आशा से सेना द्वार पर बैठा है।'

'एक बार सारी गोपिकाएँ मिलकर जमुना-जल भरने जा रही थीं कि सामने से साँवले श्रीहरि को आते हुए देखा। राधा ने कहा, 'तुम बहुत ही चंचल हो कन्हैया! हम पर झूठा लांछन क्यों लगाते हो?' यशोदा से भी वे कहती हैं कि 'यह तुम्हारा हृषीकेश झूठा है, धूर्त है।' इस पर यशोदा कहती हैं कि 'अरी कपटियो! तुम स्वयं उसे बुलाकर उससे छेड़खानी करती हो और स्वयं ही आकर मुझसे उसके उलाहने देती हो। मेरा चक्रपाणि तो गुणातीत है।' राधा फिर उनसे कहती हैं कि 'यशोदा सुन्दरी! तुम्हारा मुरारी तो चोर, व्यभिचारी है। हम अन्तरमन से जानती हैं कि यह न करने योग्य बातें भी करता रहता है। तुम्हें भला बताऊँ तो क्या बताऊँ? यह ब्रह्माण्ड-नायक है। इसने तीनों लोकों को मोहित कर रखा है।' सेना कहते हैं कि यदुनाथ कर्मातीत और परिपूर्ण हैं।'

इसी प्रकार राधा-प्रसंग में श्री हरि के विरह में राधा का हृदय कामभाव से परिव्याप्त हो जाता है। 'उससे न वस्त्र सँभलते हैं, न सुमन-सेज ही अच्छी लगती है। किसी काम-धन्धे में मन नहीं लगता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकमात्र श्रीहरि-स्मरण ही उसके तन-मन में गूँजता रहता है।'

इस प्रकार सेना न्हावी के अभंगों में श्रीकृष्ण-भक्ति के सभी भावों तथा प्रेम-दशाओं का अन्तर्भाव है।

प्र० न० जो०
वि० पं०

सोपानदेव

श्री ज्ञानेश्वरादि चार भाई-बहनों में सोपानदेव तीसरे थे। ये मुक्ताई के अग्रज एवं ज्ञानेश्वर महाराज के अनुज थे। इन्होंने भी अपने भाई एवं बहन की भाँति अपने प्रथम अग्रज श्री निवृत्तिनाथ से योग एवं भक्ति की कुल-परम्परागत दीक्षा ग्रहण की एवं परम सिद्ध हुए।

इनका जन्म सन् १२७७ ई० में श्री विट्ठल और रुक्मिणी की तीसरी सन्तान के रूप में हुआ। अन्य भाइयों तथा बहन के समान इन्होंने भी पिता से प्रारम्भिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक संस्कार प्राप्त किये थे। माता-पिता द्वारा देहान्त-प्रायश्चित्त ग्रहण करने के पश्चात् ये श्री निवृत्तिनाथ की छत्र-छात्रा में बड़े हुए। इनका जीवन श्री निवृत्ति और ज्ञानेश्वर के जीवन से नितान्त घुल-मिल गया था। उन्हींसे इन्होंने 'नाम-बीज' भक्ति एवं प्रेम-मुद्रा प्राप्त की, योग के परम अधिकारी बने एवं वारकरी-सम्प्रदाय के संगठन तथा उद्बोधन में अपना सर्वस्व समर्पित करके सेवा करते हुए जीवनानन्द लाभ लिया। यह सिद्ध कृष्ण-भक्त हुए एवं वारकरी-मण्डल के प्रिय पात्र भी। वहाँ इन्हें 'सोपानकाका' का प्रेमादरपूर्ण सम्बोधन मिला।

श्री ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा समाधि-ग्रहण करने के एक मास बाद श्री निवृत्तिनाथ तथा मुक्ताई के साथ तीर्थाटन करते हुए इन्होंने सन् १२९६ ई० में मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी के दिन सासवड नामक स्थान पर समाधि ग्रहण की। उस समय उनकी आयु केवल उन्नीस वर्ष की थी।

इनके द्वारा रचित ५२ अभंग (पद) प्राप्त होते हैं। अभंगों में 'हरिपाठ', 'नमन' आदि रचनाएँ प्रख्यात हैं। मनःशुद्धि, सगुण-निर्गुण-विचार, श्रीकृष्ण-भक्ति, श्रीकृष्ण-लीला, सत्संग तथा पण्ढरी-माहात्म्य पर भी इन अभंगों में प्रभूत चर्चा है।

सोपानदेव की रचनाओं में श्रीकृष्ण के नाम-जप तथा भाव-भक्ति का गहन निरूपण प्राप्त होता है। 'हरिपाठ' में ये भक्त और भगवान् की तात्त्विक एकता का वर्णन करते हुए कहते हैं :

सागरीचें तोय जगा निववीत।
मागुतें भरत पूर्णपणें ॥
तैसे आम्ही दास तुजमाजी उदास।
तूं आमुचा निवास सर्व देवा ॥
तुजमाजी विरु सुखदुःख विसरु।
तुझ्या नामें तरु येचिं जन्मी ॥
सोपान ऐसा बोलोनि सरळ।
तुष्टला गोपाळ अभय देत ॥

(अभंग ४)

'समुद्र का जल जग को शान्त करता है, तृप्त करता है और फिर स्वयं में ही परिपूर्ण रूप से भर जाता है। समुद्र-जल मेघ बनकर जगत् पर बरसता है, फिर नदीरूप में पुनः समुद्र में समा जाता है। हे प्रभु! हम तुम्हारे दास ऐसे ही हैं, हम संसार से उदासीन हैं, उसे (जगत् को) सुख देते हैं, परन्तु आश्रय तो हमारा तू ही है। तू हमारा सर्व प्रकार से निवास है। हमें तुझमें ही विश्राम प्राप्त होता है। हम तुझीमें गल जाते हैं, एकरूप हो जाते हैं। सारा सुख-दुःख तुझमें भुला देते हैं, डुबो देते हैं और इसी जन्म में हम तेरा नाम लेकर तर जायेंगे, यह हमारा प्रखर-अखण्ड-आत्मविश्वास है। सोपान ऐसा सीधा-सरल निवेदन प्रभु से करते हैं। उनके ऐसे वचन सुनकर प्रभु गोपाल सन्तुष्ट हो गये।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हरिपाठ' हरि का पाठ अर्थात् प्रभु के नाम-स्मरण, उनके गुण-चिन्तन का क्रम है। इस 'हरिनाम' का उपदेश इन्हें अपने सद्गुरु श्री निवृत्तिनाथ से प्राप्त हुआ था। इसका महत्त्व वर्णन करते हुए ये थकते नहीं :

ऐसे अगाध नाम बीज।
उच्चारी तो होय चतुर्भुज।
सोपान म्हणे हे गुज।
उमाशंकर देवाचे॥
कळिकाळासी दाटुगे नाम।
रुद्रे धरिले महाप्रेम।
त्रिभुवनीं विस्तारले सप्रेम॥

'यह 'नाम-बीज' अगाध है। जो भी इसका उच्चारण करता है वह स्वयं भगवद्स्वरूप चतुर्भुज रूप प्राप्त कर सारूप्य-मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सोपानदेव कहते हैं, यह रहस्य उमा-शंकर द्वारा बताया गया है। आदिनाथ ने आदिशक्ति के कर्णकुहर में कहा है। यह नाम कलिकाल में महासामर्थ्यवान् है—महारुद्र शंकर ने इसे प्रेमपूर्वक धारण कर रखा है और बड़े प्रेम से त्रिभुवन में उसका विस्तार किया है।'

इन्होंने कुल-परम्परा से अपने को श्री रुक्मिणीवर पाण्डुरंग का उपासक बताया है—

तुझा तूंचि थोर तुज नाहीं पार।
आमुचा आचार विठ्ठलदेव॥
आपी सधर सर्व हा श्रीधर।
सर्व कुळाचार पाण्डुरंग॥
न दिसे दुसरें निर्धारितां खरें।
श्रीगुरुविचार कळलें आम्हां॥
सोपान म्हणे रखुमादेविवर।
तूंचि आमुचें पर कुळवटीं॥

(अभंग ८)

'प्रभु, तुम तुम-जैसे ही महान् हो, कोई पार नहीं है तुम्हारा। अपरम्पार प्रभु विट्ठलदेव ही हमारे आधार हैं। सब कुछ धारण करनेवाला यह श्रीधर, यह पाण्डुरंग ही हमारे सारे कुलाचार का देवता है। श्री गुरु ने हमारे विचारों का जो मार्गदर्शन किया है, तदनुसार वस्तुतः दूसरा कुछ है ही नहीं। सोपानदेव कहते हैं, हे रखुमाई (रुक्मिणी) के पति, तू ही कुल-परम्परा से प्राप्त हमारा सब कुछ है। हमारा कुलाचार तू ही है।'

इन्होंने अपने अग्रजों की विचारधारा का ही प्रतिपादन अपने अभंगों में किया है। इनमें अद्वैत-भक्ति का वैसा ही उल्लास प्रतिबिम्बित होता है और सर्वत्र प्रभुदर्शन से कृतार्थता उसी प्रकार प्रकट की गयी है। श्रीकृष्ण-लीला का बोध भी इन्हीं बिन्दुओं में से उभरता है।

सोपानदेव की भक्ति में प्रभु के नाम के प्रति तल्लीनता का भाव विशेष रूप से दिखायी देता है। अद्वैत-भक्ति का उल्लास और प्रभु-दर्शन के प्रति कृतार्थता का भाव इनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। ऐसे ही प्रसंगों और वर्णनों में श्रीकृष्ण-लीला की प्रतीति होती है।

नमूने के लिए इनकी रचनाओं से दो अंश प्रस्तुत हैं :

हरि नांदे देही ऐसा भावो आहे।
परनोनि पाहे आहे जना॥
परतलिया दृष्टि चैतन्याची सृष्टि।
नामेंच वैकुण्ठी पावे जना॥
हा बोधु श्रीरंगी अर्जुना उपदेश।
सर्व हृषीकेशु सर्वारूपी॥
सोपानधारण हरि नांदे सर्वत्र।
त्यांचेचि चरित्र क्षरलेसे॥

(अभंग २२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोपानदेव महाराज कहते हैं, 'अरे जन! तनिक स्थिर होकर देख तो, देह में ही हरि का निवास है। यह भाव नित्य है। यदि तुम्हारी दृष्टि अन्तर्मुख हो जायगी तो तत्काल सारी सृष्टि प्रभुमय, चैतन्यमय दिखाई देगी। अरे जन! प्रभु-नाम से ही वैकुण्ठ पाया जाता है। यह बोध स्वयं श्रीरंग ने अर्जुन को गीता के उपदेश द्वारा दिया है कि सर्व भूतों में हृषीकेश ही विराज रहे हैं। वे ही अणु-अणु में विद्यमान हैं। सोपानदेव कहते हैं कि मेरी यह निश्चित धारणा है कि सर्वत्र हरि का निवास है और सारी सृष्टि उन्हींकी चरित्र-लीला का विकास है। इन्हींसे कण-कण क्षरित होकर यह लीला नित्य नूतन रास कर रही है।'

रूप सांवळे भोगिताती डोळि।
उद्धवा सोहळे अक्रूरासी॥
पदरज वन्दी ध्यान ते गोविन्दी।
उद्धव मुकुन्दी तल्लीनता॥
विदुर सुखाचा नाम जपे वाचा।
श्रीकृष्ण तयाचा अंगीकारी॥
निवृत्तिचे ध्यान ज्ञानदेव खूण।
सोपान आपण नामपाठ॥

'भक्तजन प्रभु के नाम-स्मरण, दर्शन, स्पर्श में मग्न रहते हैं। उनके नयन प्रभु के साँवले रूप का दर्शन-सुख भोगते रहते हैं। यह नयन-महोत्सव उद्धव-अक्रूर नित्य मनाते हैं। वे प्रभु की पदरज माथे से लगाकर वन्दन करते हैं। गोविन्द में उनका ध्यान बना ही रहता है। उद्धव तो मुकुन्द के चिन्तन में ऐसे तल्लीन रहते हैं कि उन्हें अन्य किसीका ध्यान ही नहीं रहता। और सुखकन्द हो गये हैं विदुर, जो प्रभु का नाम जपते रहते हैं। श्रीकृष्ण ने अपने ऐसे सारे भक्तों को सहर्ष अंगीकार कर लिया है। यही ध्यान श्री निवृत्तिनाथ का है। ज्ञानेश्वर महाराज की भक्ति की यही चिन्हारी है और सोपानदेव स्वयं यही नामपाठ करते रहते हैं।'

सोयराबाई

विट्ठल-भक्त चोखोवा की पत्नी सोयराबाई अपने पति के समान ही सिद्ध भक्त थीं। इनका आविर्भाव १३वीं शती में हुआ था। आवश्यक कर्तव्य-कर्म करते हुए संसार से अलिप्त रहकर ये दृढ़ विश्वासपूर्वक हरि-भक्ति में लीन रहती थीं तथा आसपास के स्त्री-समुदाय को भी यही उपदेश दिया करती थीं। भगवान् के सगुण-निर्गुण स्वरूप, पंचम पुरुषार्थ-भक्ति, उच्च आध्यात्मिक माहात्म्य-ज्ञान आदि के सम्बन्ध में इन्होंने सशक्त अभंग-रचना की है। सामाजिक सन्दर्भ में भी वर्गभेदवादी तथा भगवद्भक्ति के सन्दर्भ में आस्था-हीन लोगों की प्रवृत्ति पर इन्होंने कठोर प्रहार किये हैं। परब्रह्म परमेश्वर में इनका निष्ठा-प्रेम अनूठा है। अपने अभंगों में इन्होंने उसे सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। भगवान् विठोबा (श्रीकृष्ण) से इनकी गहरी आत्मीयता है।

भक्तिमती सोयराबाई का जापा स्वयं भगवान् विट्ठल ने करवाया था, इनकी ननद निर्मळाबाई का रूप धरकर। इस सम्बन्ध में इन्होंने एक अत्यन्त मनोवेधक अभंग लिखा है :

दोघी बसल्या सुखासनी।
सोयरा न्याहाळीतसे नयनीं॥
कृपाळुबा माझा बाप।
विठ्ठल निर्मळ एक रूप॥
अवघ्या सांगतां वृत्तान्ता।
रडे चोखियाची कान्ता॥
विठ्ठल रूपाचिये थोरी।
म्हणे चोख्याची महारी॥

(अभंग १३)

भगवान् द्वारा निर्मला का रूप धरकर सोयराबाई का जापा करवाने के बाद वे दोनों मिलती हैं। सोयराबाई कहती हैं—'दोनों जनी सुखपूर्वक बैठकर सुख-दुःख बतियाने लगीं और सोयराबाई मगनमन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्मळा को निहारने लगीं। उन्हें भगवान् विट्ठल और निर्मळा एकरूप ही दिखाई दे रही थीं। तब सारा वृत्तान्त सुनाते हुए चोखोबा की कान्ता रो पड़ीं। उन्हें विट्ठल की रूप-महिमा देख-देखकर बड़ा अद्भुत लग रहा था। धन्यता का तो पार नहीं था। चोख्या की महारी कहती हैं कि इस प्रभु का सब कुछ अनूठा ही है।'

सोयराबाई ने बड़ी ही सुमधुर अभंग-रचना की है। इनके कुल बासठ अभंग प्राप्त हैं। इनका प्रतिपाद्य विषय चोखा-निर्मळा-चरित्र, भगवान् विठोबा की स्तुति, भक्ति की अर्चना, करुणा, नाम-महिमा और विट्ठल का माहात्म्य-वर्णन है। अपने पुत्र कर्ममेळा के उत्पन्न होते ही विट्ठल-नाम उच्चारण किये जाने का उल्लेख ये करती हैं।

श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन यद्यपि ये विस्तारपूर्वक नहीं करतीं, राधा का उल्लेख भी नहीं करतीं, परन्तु उसका संक्षिप्त वर्णन ये अत्यन्त सुन्दर शैली में करती हैं। एक अभंग द्रष्टव्य है :

येई येई गरुडध्वजा।
विटेसहित करीन पूजा॥

धूप दीप पुष्पमाळा।
तुज समर्पू गोपाळा॥

पुढें ठेवोनियां पान।
वाढी कुटुम्बीं ते अन्न॥

तुम्हा योग्य नव्हें देवा।
गोड करुनियां जेवा॥

विदुराघरच्या पातळ कण्या।
खासी मायबाप धन्या॥

द्रौपदीच्या भाजी पाना।
तृप्ति झाली नारायणा॥

तैसी झाली येथें परी।
म्हणे चोख्याची महारी॥

(अभंग १)

सोयराबाई कहती हैं, 'हे प्रभु गरुड़ध्वज! आओ! आओ! मैं ईंट पर खड़े तुम्हारी ईंट सहित पूजा करूँगी। तुम्हें तनिक भी कष्ट न दूँगी। प्रभु! मैं धूप, पुष्पमाला तुम्हें समर्पित करूँगी। तुम्हारे सम्मुख घर में बनाया भोजन परोसूँगी। प्रभु! यद्यपि यह अन्न तुम्हारे योग्य तो नहीं है, परन्तु इसे ही मधुर मानकर ग्रहण कीजिये। पहले भी आपने ऐसा किया है। विदुर के घर की पतली दलिया तुमने खायी है और द्रौपदी के शाक के एक पत्ते से ही तुम तृप्त हो गये। चोखया की महारी कहती है, यहाँ भी वैसी ही दशा है। प्रभु! जैसा जो कुछ भी हमारा है, उसे आप अत्यन्त कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये।'

कहा जाता है कि एक बार भगवान् विट्ठल चोखोबा के घर अत्यन्त दीन-हीन ब्राह्मण का रूप धरकर आये और सोयराबाई से खाने के लिए कुछ माँगने लगे। सोयराबाई ने बार-बार कहा कि हम महार (अन्त्यज) जाति के हैं और आपको खिलाने के कारण हमें मार पड़ेगी, परन्तु ब्राह्मण ने एक न सुनी। अन्ततः सोयराबाई को उन्हें दही-भात खिलाना पड़ा। यह प्रसंग इनके मन में घर कर गया। उपर्युक्त अभंग शायद उसी प्रसंग पर लिखा गया है।

प्र० न० जो०

वि० पं०

सोहिरोबा आंबिये

गोमन्तक में एक सारस्वत ब्राह्मण कुटुम्ब था। उद्योग के लिए यह कुटुम्ब सावन्तवाडी के निकट बस गया था। वहीं बांदे गाँव में सोहिरोबा का जन्म सन् १७१४ ई० में हुआ। आरम्भ में सोहिरोबा सरकारी नौकर थे। सावन्तवाडी के संस्थानिक खेम सामन्त इनको बहुत मानते थे। ये वैराग्य-सम्पन्न और भगवद्-भक्त थे। एक बार एक वन में इनको नाथपन्थी सन्त गैबीनाथ ने उपदेश दिया। सोहिरोबा की वृत्ति पलट गयी। गैबीनाथ ने स्वप्न में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सोहिरोबा पर अनुग्रह किया। **'नव्हे नर नारी, गैबी सूत्रधारी'**—'नर-नारी नहीं, गैबीनाथ सूत्रधारी हैं', —इस प्रकार का वचन सोहिरोबा का है।

सोहिरोबा नाम-संकीर्तन करते-करते एक समय ग्वालियर आये। वहाँ प्रसिद्ध इतिहास-पुरुष महादजी शिंदे रहते थे। उनके जिवबा दादा बक्षी नामक महाप्रतापी सेनापति थे। जिववा दादा भी सारस्वत ब्राह्मण थे। ग्वाल्हेर (ग्वालियर) में सोहिरोबा की कीर्ति बढ़ गयी। साधु कवि सोहिरोबा सर्वत्र प्रसिद्ध हो गये। ये अच्छी कविता करते थे। शिंदे सरकार ने इनका सत्कार किया। महादजी शिंदे को भी कविता करने की प्रेरणा मिली। लेकिन सोहिरोबा ने महादजी से स्पष्ट कहा :

दौलत देख दिवाना मेरी।
अपना मौज न करना फेरी॥ ध्रु०॥
कोई दिन बनिया के दुकान।
कोई दिन पर्वत के ठिकान॥ १॥
तन के करत कार भार।
हमारे छत्तिस खिजमतगार॥ २॥
मन पवन की पागा।
सोहं पिलखाने की जागा॥ ३॥
करम कारखाना।
हमारा नशीब जामदारखाना॥ ४॥
जब सोहिरा तख्त पर बैठे।
तब दुनिया……पर बैठे॥ ५॥

अवधूत बनकर सोहिरोबा उज्जैन आये। वहाँ उन्होंने मठ बनवाकर दस वर्षों तक निवास किया। सोहिरोबा की कविता गोमंतक में आज भी बहुत प्रसिद्ध है। इन्होंने 'अक्षयबोध', 'महदनुभवेश्वरी', 'पूर्णाक्षरी', 'अद्वयानन्द', 'सिद्धान्तसंहिता' आदि ग्रन्थों की रचना की है। इनकी रचना सुबोध, सरल व भावपूर्ण है। इन्होंने अभंग, पद, श्लोक, आरती इत्यादि स्फुट रचनाएँ भी की हैं। **'हरिभजनावीण काळ घालवू नको रे'** (हरि-भजन विना व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिए।) यह पद अत्यन्त प्रसिद्ध है। सोहिरोबा की एक परमार्थ-मार्ग की कापडी नामक बहन थी। ये सन् १७९२ ई० में समाधिस्थ हुए। इनकी कविता भगवन्तराव पै ने प्रकाशित की है। इस संग्रह में श्रीकृष्ण पर प्रचुर प्रमाण में पद मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने नाम, करुणा, उपदेश, वेदान्त, देवी, शंकर, विट्ठल, राम, सन्त, सद्गुरु आदि विषयों पर भी कविता लिखी है। इनकी हिन्दी कविता भी उपलब्ध है। सोहिरोबा के कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :

(१)

मुकुन्दा आनन्दकन्दा॥ ध्रु०॥
तुजलागीं ध्यातां।
हृदयीं दिससी सर्वदा॥ १॥
निज स्वरूप देखतां भवबन्ध तुटतां।
न लगे जनां हे आपदा॥ २॥
सनकसनन्दना योगिया दुर्लभा।
तें सुख निजपदा॥ ३॥

'मुकुन्द, तू आनन्द का कन्द है। ध्यान करते-करते तू सर्वदा हृदय में प्रकट होता है। निज स्वरूप देखते ही भवबन्ध छूट जाते हैं। लोगों की विपत्ति दूर होती है! कृष्ण, तू सनक, सनन्दन आदि योगियों को भी दुर्लभ है। लेकिन तू मुझे सुखरूप हुआ है।'

(२)

येईं बा! हरि सांवळिया॥ ध्रु०॥
अहर्निशीं गोधन चारिसी
न दिससी गोवळिया।
सहस्र गोपींत तूं खेळसी
आनन्दें घालिसी गोंधळिया॥ १॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कदम्बाचे तळीं मुरली वाजतां
ऐकुनि येती मज कळवळिया।
सर्व रूपीं तूंचि एक देखोनि
सोहिरा म्हणे गातों लळिया ।। २ ।।

'श्री हरि, श्यामला ! तू शीघ्र आ जा। तू रात-दिन गोधन चराता है, लेकिन गोप-बालकों को नहीं दीख पड़ता। तू सहस्र गोपियों में क्रीड़ा करता है, आनन्द से गोंदली नृत्य करता है। तू कदम्ब-वृक्ष के नीचे मुरली बजाता है। तब मेरा हृदय करुणा से भर जाता है। तू सर्वरूपों में देख पड़ता है, इसलिए सोहिरोबा तेरा गुणगान करता है।'

सोहिरोबा का एक हिन्दी पद देखिये :

(३)

घर आये जो जान
नन्द - नन्दन बन्धन की ।। ध्रु० ।।
याहीं गुन समझकर
सो प्रान पुराना,
और सब नरकूं भ्रम भूलो
कर कर काल ले जावे ।। १ ।।
सूरत सुभावा देख बिन तन से,
बैस समझ समझावे ।। २ ।।
प्रेम प्रीत का देखनवाला,
श्रीगुरु का प्रसाद 'सोहिरा'
सहज अन्तर गावे ।। ३ ।।

प्र० न० जो०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

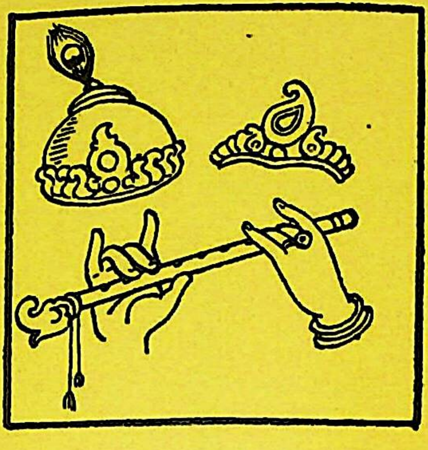

मलयालम का कृष्णभक्ति काव्य

—डा० एन० रामन नायर

मलयालम के कृष्णभक्त

—डा० एन० रामन नायर
—डा० एस० तंकमणि अम्मा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

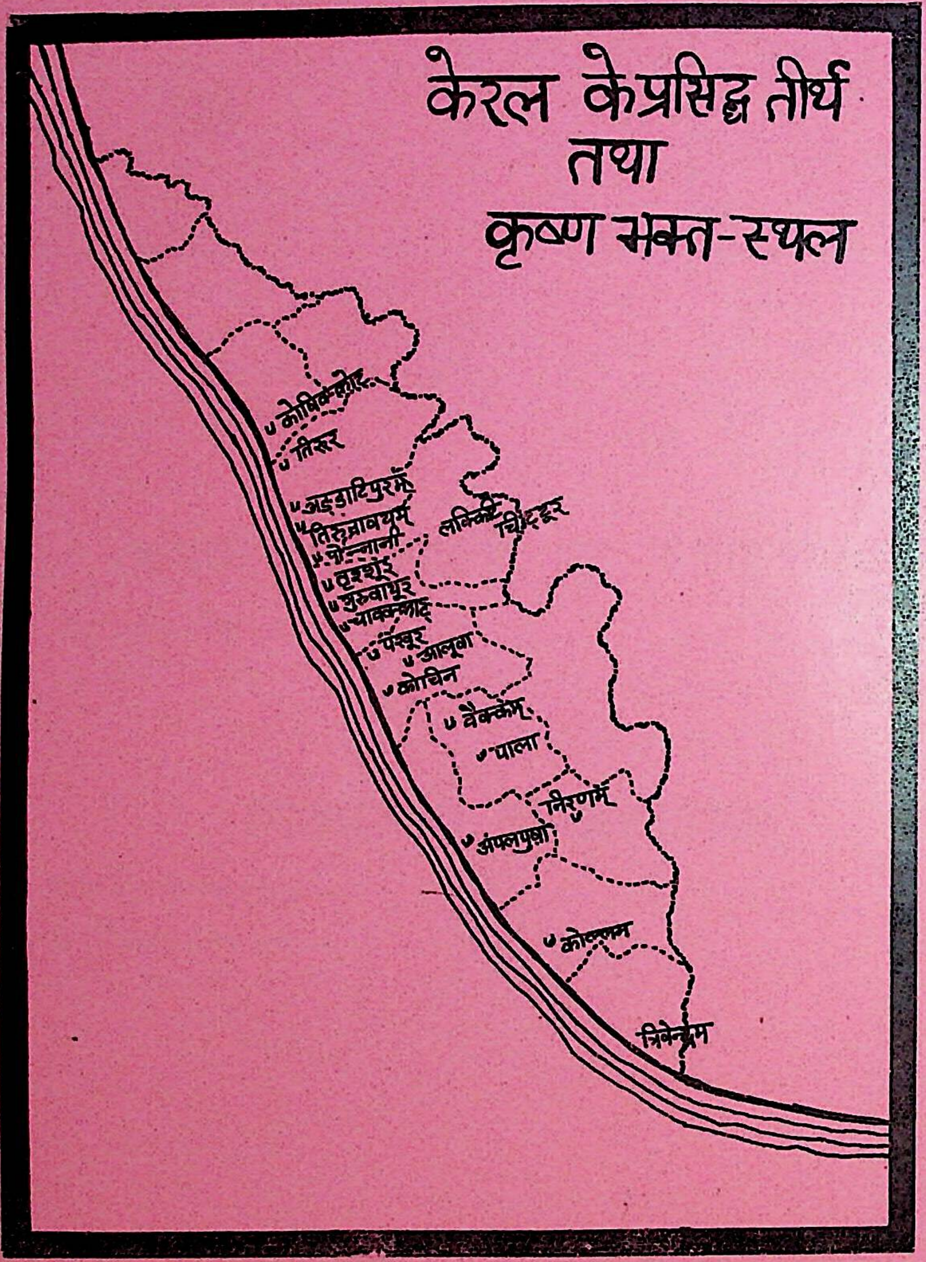

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलयालम का कृष्ण-भक्ति-काव्य

मलयालम-साहित्य में कृष्ण-भक्ति-काव्य आरम्भ-काल से लेकर अब तक प्रचुर मात्रा में प्राप्त है। इस संदर्भ में यह कहना नितान्त आवश्यक है कि श्रीकृष्ण तथा कृष्ण-भक्ति पर जितने काव्य मलयालम में प्राप्त हैं उतने विष्णु के अन्य अवतारों पर नहीं हैं। यद्यपि केरल मूलतः देवी-पीठ है, शैवागम की क्रीडा-स्थली है तो भी कृष्ण की लीलाओं की अपेक्षा शिवशक्ति-उपासना तथा देवी-भक्ति के काव्य कम ही लिखे गये। कृष्ण का व्यक्तित्व एक मानव, अतिमानव तथा ईश्वर के रूप में यहाँ स्वीकार्य हुआ है और वह कवियों का उपजीव्य बना है।

मलयालम-साहित्य में भक्ति के दो स्रोत हैं— (१) संस्कृत वैदिक-परम्परा तथा (२) तमिल आगम-परम्परा। वैदिक परम्परा में अनुरागमूलक भक्ति का प्रयोग कम है। पुराण-काल में आकर ही उसका विकास होता है। वैदिक विष्णु, पुराण-काल में आकर नारायण में परिणत हो गये। उपर्युक्त वैदिक-परम्परा तथा तमिल आगम-परम्परा में कौन प्राचीन है, यह कहना कठिन है। दोनों में प्राचीन रचनाएँ प्राप्त हैं। पाँच हजार वर्ष की पुरातनता की दोनों क्षेत्रों के विद्वान् हामी भरते हैं।

ईसवी शताब्दी के प्रारम्भ-काल में जैन-बौद्ध-धर्मों से मुक्त करके हिन्दू जनता की रक्षा करने के उद्देश्य से एक धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था जिसका प्रभाव दशम शताब्दी तक या महाभागवत के रचनाकाल तक रहा। शैव, शाक्त तथा वैष्णव आचार्य इस कार्य में एक-मत तथा एक-पंथी थे, यद्यपि उनके बीच में स्पर्धा और विरोध की लहरें उद्दाम थीं। दक्षिण के इस आन्दोलन ने अनुरागमूलक भक्ति की प्रतिष्ठा करायी तथा बौद्ध एवं जैनों की जड़ उखाड़ दी। इस भक्ति की अजस्र धारा बहाने के लिए अनेक विद्वान् कटिबद्ध हुए तथा उत्तर भारत की ओर भी उसको ले गये। शैवों में नायनार तथा वैष्णवों में आलवार भक्तों ने सातवीं-आठवीं शताब्दी तक भक्ति-सिद्धान्त को रूपायित करने योग्य उर्वर-क्षेत्र तैयार किया और भक्ति-मार्ग को प्रशस्त किया। भक्ति-मार्ग के आचार्य भी अधिकतर दक्षिण के रहे हैं। इसलिए महाभागवत में इसका उल्लेख प्राप्त होता है।[२] इसी प्रकार एक उक्ति प्रसिद्ध है कि—

भक्ती द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सात दीप नौ खण्ड ॥

इन बातों से स्पष्ट विदित होता है कि प्रेमभक्ति-परम्परा का आविर्भाव द्राविड़ अर्थात् इस समय के केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र तथा कन्नड़ देशों में हुआ था। बाद में आन्दोलन का रूप धारण कर वह समस्त

१. (अ) महाभारत, शक्ति पर्व, अध्याय ३४८, २ श्लोक ८२-८३।
(आ) महाभारत, शक्ति पर्व अध्याय ३४७, श्लोक ३४।

२. उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता। क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता ॥
तत्र घोरकलेर्योगात् पाखण्डैः खण्डिताङ्गका। दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी। जाताहं युवती सम्यक् प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥
—श्रीमद्भागवत-माहात्म्य, अध्याय १ श्लोक ४८–५०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतवर्ष में फैली। इस भक्ति-आन्दोलन ने केवल कृष्ण एवं राम-भक्ति को ही नहीं, अपितु शिव, शक्ति, गणपति, षण्मुख आदि की भक्ति को भी आगे बढ़ाया। भारतवर्ष में स्थित सभी वैदिक तथा अवैदिक सम्प्रदायों को इस रागमूलक भक्ति को प्रश्रय देना पड़ा। भक्ति की जड़ सर्वत्र जम गयी। साधारण जन भी उसकी ओर आकृष्ट हुए। एक कारण यह था कि उपासना, साधना आदि से यह मार्ग सरल था, दूसरा यह कि निम्न जाति के लोग वैदिक उपासना के अधिकारी नहीं थे। इसलिए देव-पूजा का क्रम जो दक्षिण में प्रचलित था वह भक्ति का अवलम्ब बना और समस्त भारतीय धार्मिक परम्पराओं में व्याप्त होकर समन्वयात्मक नींव डालने लगा।

केरल की श्रीकृष्ण-भक्ति एवं उससे सम्बद्ध काव्य-परम्परा के विकास में दो तत्त्वों का विशेष योगदान रहा है—(१) आलवार सन्त और दक्षिण के कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय, (२) संस्कृत एवं पौराणिक परम्परा। प्रथम और प्रधान तो द्राविड़-परम्परा है जिसका समय ईसवी पाँचवीं शती से सातवीं शती तक है। द्राविड़-देश के आलवारों ने ही कृष्ण-भक्ति का प्रथमतः प्रचार किया। उन्होंने विष्णु के अवतार-रूप में राम और कृष्ण को स्वीकार किया, अधिक विस्तार कृष्ण-भक्ति को दिया। द्राविड़-क्षेत्र चार मुख्य प्रदेशों में विभक्त था—(१) पल्लवनाडु (नाडु अर्थात् देश), (२) चोलनाडु, (३) चेरनाडु, (४) पाड्यनाडु। बारह आलवार प्रसिद्ध हैं, उनमें एक कुलशेखर आलवार का जन्म केरल के कोल्लम नामक स्थान में हुआ था। सभी आलवार वैष्णव-भक्त थे और मुख्यतया किसी मन्दिर से सम्बद्ध थे। उनकी रचनाएँ भक्तिपूर्ण स्तोत्र और पद थे। उनके पदों का संग्रह सन्त नाथमुनि ने 'नालायिर प्रबन्ध अर्थात् चतुर्थ सहस्री प्रबन्ध' शीर्षक से तैयार किया था, जो तमिल वैष्णव-वेद के रूप में प्रसिद्ध है। कुलशेखर आलवार केरल के पेरुमाल या शासक थे। उनके भक्तिपरक पद द्वितीय सहस्री में संगृहीत हैं, जिनकी संख्या १०५ है।

कुलशेखर आलवार केरल के महान् वैष्णव-भक्त थे। वे द्रविड़ प्रदेशों के प्रसिद्ध वैष्णव-तीर्थ जैसे—श्रीरंगम, कांजीवरम, तिरुपति आदि स्थानों में बराबर तीर्थाटन करते रहे। उनके समय में केरल में तमिल भाषा ही चल रही थी। उनका समय आठवीं शताब्दी माना जाता है। उस समय की तमिल आधुनिक तमिल से भिन्न है। कालान्तर में अन्य भाषाओं के सम्पर्क से वही मलयालम में रूपायित हुई थी। मलयालम-साहित्य के आरम्भ-काल में तमिल-प्रधान 'पाट्टु' तथा संस्कृत-प्रधान 'मणिप्रवालं' दो पद्य-शाखाएँ कई सदियों तक प्रचलित थीं, जो बाद में समन्वित हो गईं।

मलयालम में जो काव्य-ग्रन्थ प्रथमतः रचा गया है उसका नाम 'रामचरितम्' है। यह राम-कथा के युद्ध-काण्ड पर आधारित चीरामन नामक कवि द्वारा विरचित है। लेकिन इस काल के पूर्व भी लोकगीतों के रूप में कृष्ण, राम, शिव, पार्वती, देवी, गणपति आदि देवताओं के सम्बन्ध में स्तुतिपरक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। कण्णन अर्थात् कन्हैया लोक-कवियों का नायक रहा है। केरल के प्रसिद्ध मन्दिरों में कृष्ण-मन्दिरों की संख्या भी कम नहीं है। उनमें गुरुवायूर मंदिर की प्रसिद्धि तिरुपति के वेंकटेश्वर मन्दिर के समान है। तिरुवनन्तपुरम् का अनन्तशयनं विष्णु का मन्दिर है। अंपलप्पुषा का कृष्ण-मन्दिर भी प्राचीन एवं प्रसिद्ध है। इन मंदिरों से अनेक कवि सम्बद्ध थे जिन्होंने कृष्णभक्ति-काव्यों से मलयालम-भाषा को सम्पन्न बनाया है।

सन् १३५० से १४५० के बीच तीन प्रसिद्ध कवि मध्य केरल के निरणं नामक स्थान में पैदा हुए थे। वे परम भागवत तथा पहुँचे हुए विद्वान् थे। उन तीनों की रचनाएँ भक्ति-प्रधान थीं। वे निरणं कवियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये तीन कवि थे—माधव पणिक्कर, राम पणिक्कर तथा शंकर पणिक्कर। इन्होंने मलयालम 'पाट्टु' शैली में अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनमें तमिल-मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। तीनों में माधव पणिक्कर बड़े थे। उन्होंने भगवद्गीता का मलयालम में अनुवाद किया। उनके छोटे भाई शंकर पणिक्कर ने 'भारतमाला' नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें भागवत के दशम स्कन्ध और महाभारत का संक्षेप में वर्णन प्राप्त होता है। इन दोनों कवियों से अधिक श्रेष्ठ उनके भागिनेय राम पणिक्कर थे। उन्होंने रामायण और भागवत की रचना की जो 'कण्णश्श-रामायणम्' और 'कण्णश्श-भागवतम्' के नाम से सुविख्यात है।

श्री राम पणिक्कर का श्रीमद्भागवत महत्त्वपूर्ण रचना है। उसमें भक्तिरसपूर्ण कृष्णाख्यान है। ये कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में सिद्धहस्त दिखाई देते हैं। कई नई उद्भावनाओं से पूर्ण यह कृति कृष्ण-भक्ति-काव्य की अमूल्य निधि है। महाभागवत की कथाओं का अनुसरण करते हुए भी कई नयी कल्पनाओं के सहारे नवीनता एवं मौलिकता लाने का प्रयत्न कवि ने किया है। उनका श्रीमद्भागवत भी 'पाट्टु' शैली में है जो तमिल-मिश्रित रूप है। एक उदाहरण देखिए—एक दिन यशोदा पुत्रानुराग से दीप्त होकर अपने पुत्र को दूध पिलाने के लिए बुला रही है। उसके दोनों पीन पयोधर दुग्धभार से त्रस्त थे। दूध पिलाने के पूर्व वह पुत्र को पुचकारती है। तब कृष्ण जम्हाकर अपना मुँह खोलता है। दूध पिलाने के प्रयत्न में लीन यशोदा यह देखकर स्तम्भित हो जाती है। बालगोपाल के मुँह में ग्रह, नक्षत्र, आठों दिशायें, सप्तद्वीप, नदियाँ, अण्डज, सर्प, सरीसृप, पशु, मृग, मनुष्य आदि देखकर वह चकित तथा भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर लेती है।[1]

कण्णश्श कवियों के पूर्व तथा उनके समय में अनेक गीत और लोकगीत मलयालम में प्रचलित थे जिनके रचयिता अब नामशेष रह गये हैं। उनका कालनिर्णय भी कठिन है। फिर भी उनमें प्रयुक्त भाषा-शैली प्राचीनता की द्योतक है। उन गीतों में अनेक भक्ति-रस प्रधान हैं जिनमें कृष्ण-चरित पर आधारित बहुत से गीत हैं। पालने के गीतों के साथ बालकृष्ण सदैव जुड़े रहे हैं। अब तक केरल की मातायें बालकृष्ण जैसे एक पुत्र की अभिलाषा रखती हैं। अपने पुत्र में बालकृष्ण की छवि, स्वभाव तथा व्यवहार देखने और स्वयं यशोदा होकर पुत्र की नटखटी पर आनन्दविभोर होने की आकांक्षा करती हैं। एक पालना-गीत उदाहरणार्थ देखिये—

---

१. जननियोरुनाळ, मकनेयेडत्तु निरञ्ञनुरागवशेन मुखत्तिने
मनुकुलतिलको नोक्किप्रस्तुतमाकिय मुत्तवं नल्किच्चेम्मे।
कनिवोडु ताट्टोलिच्चिरुन्नीडिनकालं मरि निवर्न्नु पिळर्न्नान्
इनिय महावक्त्रं पुनरप्पाळेत्रयुमाश्चर्यत्तोडु काण्णय॥
कण्डितु नक्षत्रङ्ङिकळ् दिक्कुकळु, कण्डितु सप्तद्वीपुकळुं नदियुं
अण्डज-सर्प-सरीसृक्कुकेळ पशुमृगमय नरनादिकळ् तम्मयुमविडे।
कण्डितु शिशुविनुडेयव्वोयिन् कयल्मिषियावतु नेरं चेम्मे
कण्डु भ्रमिच्चाश्चर्यत्तोडे कण्णुमडच्चाळ् मनुकुलतिलका॥

—कण्णश्श भागवतम्, अध्याय ६, पाट्टु १९, २०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरिरारारारो उरङ्ङुरङ्ङारिरारारारो ।
एन्मकनुरङ्ङुरङ्ङु उरङ्ङुरङ्ङारिरारारारो ।।
एन्मकनुण्णिक्कण्ण, नोयुरङ्ङुरङ्ङुरङ्ङुं । (आरिरारारारो.......
कण्णा कडलवर्णा, पोन्मकनेयुरङ्ङु । (आरिरारारारो ......

'सोहलो, सोहलो, सोहलो, सोहलो, सोहलो, सोहलो ।
मेरा बेटा सोहलो, सोहलो, सोहलो, सोहलो, सोहलो ।
मेरा बेटा कन्हैया, तुम सोहलो, सोहलो, सोहलो—(सोहलो सोहलो.......
कृष्ण, सागर वर्ण, लाडले सुनहले सोहलो—(सोहलो सोहलो....... '

प्रत्येक विवाहिता के मन में कृष्णरूपी पुत्र का संकल्प रहता है और पुत्र-प्राप्ति पर पुत्र से कृष्ण जैसा व्यवहार करने की अभिलाषा रहती है। उनके पालने-गीतों के कृष्ण ही नायक हैं।

कृष्ण-सम्बन्धी स्तुति-गान भी अनेक हैं, उनमें वात्सल्य, दाम्पत्य या सखा-भाव मुख्य है। इन अज्ञातनामा कवियों की रचना-शैली प्रशंसार्ह है। एक गीत देखिये :

इच्छयोडेडुत्तम्म मडियिल् वच्चच्युता, उण्णि । येन्नु विळिक्कुंपोळ्
अंचितमायि ओमल मुखं नोक्कि पुंचिरिच्चिडुं पैतले कूप्पुन्नेन् ।
उण्णी ! कण्णा ! वन्नोन्नु पुणर्नालुं, वेण्ण ञान् तरन्नुडेन्नु चोळ्ळुंमोळ्
मण्डिच्चेन्नुडन मंकमणिकळे पूण्डु पुलकुन्न बालने कूप्पुन्नेन् ।

'सानुराग माता पुत्र को गोदी में लेकर 'अच्युत, बेटा !' कहकर बुलाती है।' अद्‌भुत भाव से माता का मुँह देखकर मुस्करानेवाले बालक, तेरी वन्दना करती हूँ।

बेटा कन्हैया ! आकर गले लग, 'मैं मक्खन दूँगी' इस प्रकार कहते सुनकर दौड़ते हुए सुन्दरियों के अंकों को आलिंगन करनेवाला बालक ! तेरी वन्दना करती हूँ।'[१]

इन गीतों के समान इतर लोकगीत भी प्रभूत मात्रा में प्राप्त हैं जिनमें कृष्णपरक गीत भी हैं। एक लोकगीत की चार-पाँच पंक्तियाँ नीचे उदाहरणार्थ दी जा रही हैं :

अंतियायेन पैतलेंतप्यो वाराञ्ञतेंतवन चेयुवतेन तोषिमारे ?
वेंतुरुकीडुन्नु चित्तषेन पैतले संततं काणाञ्ञु कृष्ण नमो ।

× × ×

आरोडु ञान चेन्नु चोदिप्पु पैतले, चारुं परञ्ञिल्लयुञ्ञवण्णं ।
कारोळिवर्णन पुलर्काले पोयवन् वाराञ्ञतेंतय्यो-कृष्ण नमो ।।

'हाय, संध्या होने पर भी मेरा बेटा नहीं आया, उसने क्या किया ? बोलो सखियो ! मेरा मन पुत्र को सदैव न देखने से दह रहा है। हे कृष्ण ! नमो ..... '

---

१. कृष्णस्तुति—हस्तलिखित ग्रंथमाला—१३८ अ०, मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, त्रिवेन्द्रम ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'किससे जाकर पूछूँ ? अपने पुत्र को कहाँ ढूँढ़ूँ ? कोई ठीक-ठीक बता भी नहीं रहा है। मेघश्यामल कलेवर, प्रातः का गया हुआ है। हाय, क्यों नहीं लौट आया ? हे कृष्ण नमो।'[1]

कुछ प्राचीन कृष्णपरक स्तोत्र भी मिलते हैं। उनमें कई मन्दिरों के इष्ट-देव कृष्ण या उनके अवतारों की स्तुतियाँ वर्णित हैं। इनमें से कुछ श्लोकों में हैं तो कुछ गेय पदों में। उनके रचयिता अवश्य भक्तपुंगव रहे होंगे। उनका समय भी निर्णीत नहीं है। अधिकतर श्लोक संस्कृत के हैं। उनके अनेक उदाहरण भक्तों और कवियों के विवरण में दिये गये हैं।

मलयालम पाट्टु-शैली की सबसे महान् कृति 'कृष्णगाथा' है। वह कृष्णचरित का महाकाव्य ही है। उसके रचयिता थे चेरुश्शेरी नंपूतिरि। उनके नाम तथा जन्मकाल के सम्बन्ध में कुछ प्रमाण प्राप्त नहीं हैं। अन्तर्साक्ष्यों तथा बहिर्साक्ष्यों के आधार पर कुछ विचार इस सम्बन्ध में विद्वानों ने व्यक्त किए हैं। महाकवि उल्लूर ने अपने साहित्य के इतिहास-ग्रन्थ में उनका समय सन् १४४६–१४७६ ई० के बीच माना है।[2] कुछ विद्वान् इसको आगे-पीछे ले जाने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु यह कहना समीचीन होगा कि कृष्णगाथाकार पन्द्रहवीं शताब्दी में जीवित थे।

उनका जन्मस्थान उत्तर केरल में वडकरा नामक ग्राम था। ये वहाँ के चेरुश्शेरी नामक नंपूतिरि-कुटुम्ब के माने जाते हैं। जाति में नंपूतिरी ब्राह्मण थे। नंपूतिरी लोग केरल के आद्य ब्राह्मण थे। नंपूतिरी आर्य-वर्ग के माने जाते हैं। वे सहृदय, संस्कृत-ज्ञानी, शिक्षित एवं साहित्य-कुशल थे।

चेरुश्शेरी की तीन रचनाएँ मुख्य हैं—'कृष्णगाथा' 'चेरुश्शेरी-भारतं' और 'भारत-कथा'। उनमें सर्वश्रेष्ठ रचना है 'कृष्णगाथा'। उसको 'कृष्णप्पट्टु' भी कहते हैं। प्राकृत-भाषा काव्यों को गाथा कहते हैं। इसीलिए वह कृष्णगाथा नाम से अभिहित होता है। इस काव्यकृति का छन्द मलयालम की अपनी छन्द मंजरी है जो गाथा छन्द नाम से प्रख्यात हो गया है। लगता है कि यह द्राविड़-छन्दों का परिणाम है और मलयालम के केका, काकली, पाना जैसे अनेक अन्य छन्दों के समान इसको भी हम पाट्टु वृत्तों से परिणत मान सकते हैं। गाथा एक द्विपदी है, पहली पंक्ति में पाँच मात्राओं के तीन अक्षरों के चार गण और दूसरी में पाँच मात्राओं के तीन गण तथा एक गुरु का क्रम है।

मलयालम-साहित्य के उपजीव्य ग्रन्थों में जैसा ऊँचा स्थान रामायण और भारत का है, वैसा स्थान भागवत पुराण का भी है। महाभागवत पर आधारित मलयालम कृतियों की संख्या असीम है। 'कृष्णगाथा' का आधार भी श्रीमहाभागवत है। कृष्णोत्पत्ति से लेकर कृष्ण के स्वर्गारोहण तक की कथा उसमें वर्णित है। उसके पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण की बाललोला का वर्णन है। कृष्णगाथा में एक ऐसे कवि हमारे सामने आते हैं जो आद्यन्त सरस्वती-प्रसाद से अनुगृहीत हैं। प्रकृति-वर्णन में, लोकस्वभाव के वर्णन में, श्रृंगार तथा हास्य-रसों के वर्णन में, अर्थालंकार विशेषतया उत्प्रेक्षा के वर्णन में और मौलिक भावों के निगूहन में कवि की उदात्तता काव्य की प्रत्येक पंक्ति प्रत्यक्ष करती है। सूर और चेरुश्शेरी तुलना के योग्य हैं क्योंकि दोनों मूल कथा को विस्तार या संक्षेपण या नवीन कल्पनाओं से अत्यन्त मार्मिक बनाने में समर्थ हुए हैं। सर्वत्र मूल

---

१. केरल भाषा साहित्य चरित्रं, पृ० ३२७-२८।

२. केरल साहित्य चरित्रम्, भाग २, पृ० २२७, महाकवि उल्लूर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथा एक पुनः सृजन का क्षण पाकर मौलिक मालूम पड़ती है। समसामयिक जीवन के चित्रों को उभारने में भी चेरुश्शेरी ध्यान-निरत रहे हैं। भक्ति इस कृति का मुख्य भाव है। इसमें भक्ति के विविध रूप जैसे गोपिकाओं ने कृष्ण का कामुक रूप में, कंस ने भयानक रूप में, शिशुपालादि ने शत्रुभाव में, यादवों ने बन्धुभाव में, पाण्डवों ने मित्रभाव में तथा नन्द-यशोदादि ने पुत्ररूप में कृष्ण का दर्शन एवं भजन किया है। अनेक स्तुतियों का समाकलन भी इसमें हुआ है जैसे कृष्ण के स्वर्गारोहण के समय ब्रह्मा की स्तुति। प्रत्येक लौकिक व्यक्ति को मुक्ति का प्रशस्त मार्ग दिखाना ही इस कृति का लक्ष्य है। सूर की भाँति चेरुश्शेरी ने भी जनभाषा में ही इसकी रचना की। एक अन्तर यह है कि चेरुश्शेरी तुलसी के समान संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे, किन्तु साधारण लोगों के काम आने के लिए जनभाषा में काव्य रचने का उन दोनों ने प्रयत्न किया है। सूर ने अपने पदों के निर्माण से जैसे गीत-पद्धति का समुत्कर्ष किया इसी प्रकार चेरुश्शेरी ने मलयालम में गाथा-परम्परा की सृष्टि की। दोनों शृंगार तथा वात्सल्य के अनन्य कवि सिद्ध हुए हैं। वे कृष्ण के बालभावों के चित्रण में अद्वितीय हैं। एक उदाहरण देखिए—

अच्छनेप्पोलेयुडुक्कुन्नेनेन्निट्टु नलच्चेल कोण्डड्डुक्कुं नन्नाय,
मानिच्चुनिन्नचछन कुंपिडुं नेरत्त ङ्ङान कलिक्कुं मुतुकिलेरी,
तेवारिक्केणळिन्नच्छायेनिक्कुनल पूवेल्लां कोण्डत्तायेन्नु चोल्लुं
अच्छनुं तानुमायिच्छयिलङ्ङ्ने निचचलुं निन्नु पटकलिक्कुं,
एन कणि काणणं निङ्ङलिन्नेल्लारुं एन्नङ्ङु चोल्लीट्टु वीडु तोरुं
कोषिकल कूवुंपोल कोषुकल कूडाते गोविंदन पाडिक्कोंडङ्डु चेल्लुं।

'मैं भी पिताजी के समान धोती पहनना चाहता हूँ, यह कहते हुए (बालकृष्ण) धोती लेकर अच्छी तरह बाँध लेता है। नन्द पुत्र की इच्छा स्वीकार कर जब झुककर खड़े होते हैं तो वह पिता की पीठ पर बैठ जाता है और हाथी खेलता है। (कभी कहता है) अब पिताजी, मैं पूजा करना चाहूँगा। जल्दी मुझे अच्छे फूल ला देना। नित्य पिता और पुत्र दो ओर खड़े होकर युद्ध का खेल खेलते हैं। कृष्ण नित्य प्रातः सभी के घरों में जाकर कहता है—तुम सब सबेरे मेरा मुँह देखकर उठो।'

अत्यन्त सरल सार्थक मलयालम शब्दों को चुन-चुनकर काव्य-रचना करने में तथा उनके सहारे उदात्त भावों तथा रसों को उन्मीलित करने में चेरुश्शेरी समर्थ थे। मधुर शब्दावली का प्रयोग करके भावगुंफन करनेवाले उस कवि की पक्तियाँ पण्डित-पामर दोनों के कण्ठों में सदैव जीवित रहेंगी। इस एकमात्र कृति से कालिदास जैसे सार्वभौम कवियों की पंक्ति में खड़े होने की योग्यता चेरुश्शेरी ने प्राप्त की है।

चेरुश्शेरी की द्वितीय कृति है 'भारत-गाथा' या 'चेरुश्शेरी भारतं'। इसके कर्तृत्व के सम्बन्ध में मतभेद है क्योंकि चेरुश्शेरी की शैली का अविकल अनुसरण ही इसमें है। काव्य-सौन्दर्य, रचना-पटुता तथा भाव-सौकुमार्य में यह कृति कृष्णगाथा के निकट रहने योग्य नहीं है। उसमें महाभारत-कथा का ही वर्णन है। भक्ति का सामान्य परिपाक ही इसमें हुआ है।

मलयालम-साहित्य में चंपू-काव्यों की प्रशस्त परंपरा रही है। पुनं नंपूतिरि इम चंपूकारों में अग्रगण्य हैं। कुछ विद्वान् पुनं और चेरुश्शेरी को एक मानते हैं। पुनं नंपूतिरि के दो चंपू-काव्य हैं—'भारतं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चंपू' तथा 'रामायणं-चंपू'। भारतं चंपू-पांचाली-स्वयंवर,खा ण्डवदाह, किरात-कीचकवध, गोग्रहण, उद्योग, दूतवाक्य, जयद्रथ-वध, भारत-युद्ध और अश्वमेध—इन दस भागों में विभक्त विशाल ग्रन्थ है। भारतं चंपू में श्रीकृष्ण की भक्ति के द्योतक अनेक श्लोक और गद्यांश हैं। श्रीकृष्ण के विश्वरूप-दर्शन के समय महर्षियों की स्तुति जो गद्य में है, उल्लेखनीय है—

'जयदेव सदैव दयापर, विश्वप्रसूमरसंचित प्राभव, लक्ष्मीवल्लभ, दुर्जनदुर्लभ, निंतिरुवटि तन तिरुमेय पार्तालं (आपकी काया देखने पर) मुषुमति तन चन्द्रिक पोले (पूर्णेन्दु की चन्द्रिका जैसी) पूविल परिमल विभवं पोले (फूल में परिमल के विभव जैसे) तेळ्तिन धारयिल मधुरिम पोले (शुद्ध मधु में मधुरिमा जैसे) पालिल कलरुं वेण्ण वणक्के (दूध में स्थित नवनीत जैसे) काणायो पतिनालुलंकिकलु मोन्नय् नीलेयिरिप्पोन्नत्रे (चौदहों भुवन एक साथ एक जगह एकत्रित हैं ऐसा दीखता है।'

इस तरह रुक्मिणी-स्वयंवरं चंपू जैसे कृष्णचरित से सम्बद्ध अन्य कुछ चंपू-ग्रन्थ भी प्राप्त हैं जिनके रचयिताओं के बारे में कुछ मालूम नहीं है। सभी चंपू-ग्रन्थों में भक्ति के लिये उचित स्थान दिया गया है।

चंपू-काव्यों के बाद पन्द्रहवीं शताब्दी में मणिप्रवाल-काल आरम्भ होता है। इनमें रत्न तथा प्रवाल जैसे संस्कृत और मलयालम के शब्दों को पिरोने की शैली अपनाई गई है। कहीं-कहीं संस्कृत व्याकरण का ज्यों का त्यों प्रयोग भी मिलता है। कई स्तोत्र-ग्रंथ मणिप्रवालं में विरचित हैं जिनमें शिव, गणपति, देवी, विष्णु आदि की स्तुति की गई है। केवल एक कृष्ण-स्तुति-सम्बन्धी उदाहरण उन स्तोत्रों में से नीचे दे रहा हूँ—

क्षीरसागर कुमारिका हृदयवारिजन्मकलहंसये।
वारुलाविन नवांबुदोदरनिरं कलर्न्न रुचिराकृते।
नारदादिमुनिवृन्दवन्द्य! नळिनायतेक्षण! नमोस्तु ते।
पारिलेडडुमुर पोर्डडिनोरु तिरुवार्पमर्न करुणानिधे।

'क्षीरसागर की कुमारिका लक्ष्मी देवी के हृदय के जलजों में केलि करनेवाले कलहंस! छवि-पूर्ण नवमेघ के रंग से आपूरित सुन्दर शरीरवाले! समस्त संसार में प्रशस्त तिरुवार्पुनामक देश के करुणा-निधि, नारदादि मुनिगणों से वन्दित वारिजेक्षण कृष्ण, तुम्हारा हम नमन करते हैं।'

पन्द्रहवीं शताब्दी में मलयालम में भागवत का गद्यानुवाद हुआ था। प्रथम, पंचम, दशम एवं एकादश स्कन्धों का अनुवाद बहुत सुन्दर है। अज्ञात लेखक द्वारा विरचित इस कृति की शैली हृदयाकर्षक है। तमिल-मिश्रित भाषा-शैली समकालीन गद्य की परिचायक है। इसी तरह एक गद्य-रचना 'भागवत-संग्रह' भी प्राप्त है।

मलयालम मणिप्रवाल चंपूकारों में 'मषमंगलम्' का नाम उल्लेखयोग्य है। उनके चंपू-काव्यों में रासक्रीड़ा, विषण्डमायाचरितं, बाण-युद्ध आदि कृष्ण-चरित-सम्बन्धी हैं और भक्ति-रसपूर्ण हैं। उनकी विष्णु-स्तुति देखिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पालांभोराशिमध्ये शराधर धवले रोषभोगे शयानं
मेलं कोलु कळायद्युतियोडु पटतल्लुन्न कांति प्रवाहं।
नाबोन्नेरित्तुळुपुं निरुपमकरुणाभारतिम्यल कटाक्ष
नाळीकत्तारिल मातिन कुळुरमुलयुगळी भागधेयं भजेथाः ।।

'क्षीरसागर के मध्य में चन्द्रिका-चर्चित शेष शय्या पर शयन करनेवाले अत्यन्त सुन्दर श्यामद्युति-पूर्ण शरीरवाले, दिन-ब-दिन करुणा पारम्य रखनेवाले कटाक्ष से युक्त लक्ष्मीदेवी के शीतल स्तन-युगल के भागधेय का मैं भजन करता हूँ।'

'मषमंगलं' के समान नीलकंठन नंपूरी भी अच्छे चंपूकार, भक्त एवं कृष्णोपासक थे। कृष्णचरित-सम्बन्धी उनके चंपू-काव्यों मे कंस-वध बहुत चमत्कारपूर्ण है। पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्मित गजेन्द्र-मोक्षं, कृष्णावतारं, पूतनामोक्षं, सभा-प्रवेशं, कुचेलवृत्तं (सुदामावृत्तं) आदि चंपू भी उल्लेखनीय कृष्ण-काव्य हैं।

यहाँ केरल के दो प्रसिद्ध भक्तोत्तुंग कवियों का परिचय देना नितान्त आवश्यक है। एक हैं—संस्कृत के प्रकाण्ड कवि नारायणीयंकार मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि, दूसरे हैं भाषा-कवि पूंतानं नंपूतिरि। मलयालम-साहित्य को भक्तिरसपूर्ण काव्यों से सिक्त करनेवाले कवि पूंतानं श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त एवं गुरुवायूर के श्रीकृष्ण-मंदिर के नित्य सेवक थे। उनका जन्म दक्षिण मलाबार के वल्लुवनाडु में हुआ था। सोलहवीं शताब्दी का प्रथम पाद उनका काव्यकाल माना जा सकता है। पुरुष सन्तान के अभाव से वे दुःखी थे। इसलिए उनका काव्य 'सन्तान-गोपालं' अत्यन्त हृदयावर्जक और सहज है। पूंतानं कुटुंब का नाम था। चेरुश्शेरी के समान उनका भी यथार्थ नाम अज्ञात है। उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ हैं—'ज्ञानप्पाना' 'श्रीकृष्ण-कर्णामृतं' और 'सन्तान-गोपालं'। उनके कुछ कीर्तन और स्तोत्र भी प्राप्त हैं।

'ज्ञानप्पाना' विषय-गहनता से युक्त रचना है। निगमागमों के तत्त्वरत्नों को ललित एवं सरल भाषा में गूँथने का कवि ने प्रयत्न किया है। इस अनुपम कृति में भक्ति की गंगा बहती है। एक दार्शनिक एवं भक्त के रूप में अपने अनुभवों का सार ही इसमें प्रतिपादित है। यह साधारण-से-साधारण भक्तों को दार्शनिक तत्त्व समझाने में समर्थ है। 'पाना' मलयालम का एक छन्द तथा विशिष्ट काव्य-प्रस्थान है। भक्तिप्रधान उपदेशों के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त छन्द और प्रस्थान माना जाता है।

'सन्तान-गोपालं' भी पाना छन्द में रचित है। चार पादों में रचित इस कृति में सन्तान-हीनता से दुःखी ब्राह्मण और पत्नी की कथा है। अर्जुन की रक्षा में पहुँचनेवाले भगवान् का भक्तवत्सल भाव इसके काव्य-गुण को बढ़ाता है। इसमें चतुर्थ पाद में जो वैकुण्ठ-वर्णन है, वह अतीव सुन्दर है। कवि के संकल्प और स्वप्नदर्शन के फलस्वरूप ही यह सहज वर्णन सम्भव हुआ है।

'श्रीकृष्ण-कर्णामृतं' में भागवत के आधार पर बालकृष्ण की लीलाओं का श्लोकों तथा पदों में वर्णन है। इन स्तोत्रों को भक्तजन आज भी कंठस्थ करते हैं और नित्य प्रातः तथा सन्ध्या को गाते हैं। केरल के भक्तों में सर्वश्रेष्ठ स्थान पूंतानं को ही प्राप्त है। सूरदास और पूंतानं के बाललीला-वर्णन में सहजता और समानता है। 'भाषा-कर्णामृतं' की रचना का उद्देश्य उनके शब्दों में सुनिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूषा वर्णादियालिन्भुवनमखिलवुं हन्त मोहिच्चु राग-
द्वेषापूर्णं विघूर्णं शिवशिव परयावल्ल मायाविलासं।
भाषा कर्णामृतं ने सुकृतमितु सदा नावुकोंटास्वदिच्चाल,
नूषा कर्म्मावली वल्लिकलिलुटनवन पिन्ने मुन्नेतुपोले ।।

'वेष-भूषा, वर्ण आदि के कारण अखिल भुवनों पर मोहित होकर क्षय, राग-द्वेषपूर्ण विघूर्ण माया-विलास के बारे में क्या कहा जाय ?—माया में लीन व्यक्ति अगर सुकृत देनेवाले भाषाकर्णामृत का जीभ से आस्वादन करें तो कर्मावली की वल्लियों में उसे पहले की तरह ज्यादा रेंगने की आवश्यकता नहीं होगी।'

कृष्ण और नारायण का नाम जपना ही उन्होंने अपना परमकर्तव्य समझा था। वे अपनी जीभ को उपदेश देते हैं—

नावे, निनक्क वलियोरुपदेशमुण्टे-नावालुरप्पतिनु जान तुनियुन्नु केळ नी;
नारायणन्टे तिरुनाममुरक्केयांपोल नाणिच्चुपोकुरतते तव वेंटतुळ्ळु।

'हे जीभ ! तेरे लिए एक अच्छा उपदेश देता हूँ। यह उपदेश मैं अपनी जीभ से कहने का प्रयत्न करता हूँ। सुन ! नारायण का नाम-जप जब ऊँचा हो जाता है तब तुझे लज्जित नहीं होना चाहिए। यही तुझे करना है।'

उनका 'पार्थ-सारथीस्तव' एक अमूल्य स्तोत्र-माला है जिसमें कुसुममंजरी छन्द के ग्यारह रत्न पिरोये हुए हैं। अनेक स्तोत्र जैसे—

माधव माधव मदन मनोहर वामपुरेश्वर शौरे।
नारायण जय नारायण जय नारायण जय नारायण जय।
कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम
कृष्ण राम कृष्ण राम पाहि मां।

की पल्लवी के साथ चलते हैं। उनका उद्देश्य भगवान् के नाम-जप की महिमा जताना ही है।

अब तुंचत्तेषुत्तच्छन के व्यक्तित्व और कृतित्वर पर विचार किया जाएगा। वे परम भागवत, मलयालम भाषा को आधुनिक रूप तथा लिपि देनेवाले, आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रधानता देते हुए मलयालम छन्दों में रामायण, भागवत तथा भारत की रचना करनेवाले महान् सारस्वत-पुत्र एवं मलयालम के सर्वश्रेष्ठ कवियों में रहे हैं। उनको सम्पूर्ण केरल-निवासी अपने आचार्य के रूप में मानते हैं और वन्दना करते हैं—

सानन्दरूपं सकलप्रबोधं आनन्द दानामृत पारिजातं
मनुष्य पद्मेषु रविस्वरूपं प्रणौमि तुंचत्तेषुमार्यपादं ।।

मलयालम के तुलसीदास हैं—तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन, जो तुंचत्तेषुत्तच्छन तुंचन, जातिनामक एषुत्तच्छन, रामानुजन आदि नामों से जाने जाते हैं। प्रसिद्ध इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया है[1] कि वे

---

१. (अ) पी० गोविन्द पिल्लै—मलयालम भाषा चरित्रं, पृ० १७४-१७५।
(आ) डॉ० अच्युत मेनन—Ezhuthachan and his age, पृ० ५५-५८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जीवित थे। उनका जन्मस्थान मलाबार के निरुर रेलवे स्टेशन के निकट वेट्टत्तु पुतियङ्ङाडि के त्रिक्कंडियूर शिवमन्दिर के पास तुंचन-परंपु है। तुंचन-परंपु उस खेत का नाम है जहाँ उनका घर था। एषुत्तच्छन उन आचार्यों को कहते हैं जो बालकों को अक्षर-ज्ञान आरम्भ कराते हैं। 'एषुंत्तु' का अर्थ है—लेखन, 'अच्छन' है पिता या गुरु। उनका नाम रामानुजन सिद्ध करने का प्रयत्न हुआ है। जनश्रुति भी उसके अनुकूल है। उनकी जाति नायर का एक उपविभाग है। अब एषुत्तच्छन शब्द भी जातिवाचक हो गया है।

एषुत्तच्छन की रचनाओं में मुख्य 'अध्यात्म-रामायणं' है जो भक्ति और आध्यात्मिक तत्त्वों का अनुपम ग्रन्थ है। तुलसी की तरह रघुवंश, भोज चंपू आदि अनेक ग्रन्थों से सहायता लेकर उन्होंने उसकी रचना की थी जो केरल के घर-घर में पारायण का ग्रन्थ हो गया है। यह उनकी प्रथम कृति थी। महाभारत उनकी कवित्व-शक्ति का उच्च स्तर उद्घोषित करनेवाली कृति है। यह आद्यन्त स्तुतियों तथा भारतीय वेदान्त-तत्त्वों से पूर्ण है। शब्दार्थ-सहित गुणों से युक्त इस सम्पूर्ण काव्यकृति में भक्ति तथा आध्यात्मिक तत्त्वों का उपदेश है, स्तोत्रों का आकलन है। अनन्त आनन्द-दान की सामग्री उसमें सर्वत्र उपलब्ध है। अवसर और अनवसर पर कृष्ण की स्तुति प्रस्तुत कर कवि नास्तिकों को भी रोमांचकंचुकित कर देते हैं। जैसे कृष्णगाथा की रचना में चेरुश्शेरी कवि कूटस्थों में स्थान पाने योग्य हो गये हैं, वैसे ही इस कृति से एषुत्तच्छन भी वही स्थान प्राप्त करते हैं। एक लम्बी कृष्ण-स्तुति का आरम्भ देखिये—

इन्दुशेखरवंद्यमिंदुबिंबास्यांबुजमिंद्रादिवृन्दारकवृन्दवंदितमपाप
इन्दिरावर नन्दनन्दनं नारायणम् चंद्रिका मंदस्मितसुन्दरम् दामोदरम् ॥

'इन्दुशेखर शिव द्वारा वन्दनीय, चन्द्रबिम्ब सदृश मुखकमल (शोभित), इन्द्र आदि देवताओं द्वारा वन्दित, निष्पाप, इन्दिरा (राधा) के पति, नन्दनन्दन, नारायण, चन्द्रिका के समान मंद मुसकान से सुन्दर दामोदर को (मैं एषुत्तच्छन प्रणाम करता हूँ)।'

एषुत्तच्छन ने किलिप्पाट्टु-शैली पर ही तीनों रचनायें प्रस्तुत की हैं। उसमें प्रश्नोत्तर-शैली है। शुक से प्रश्न किया जाता है। वे मुनियों से उत्तररूप में कथा कहते हैं। यह केका, काकली, श्लथ-काकली आदि मलयालम छन्दों में रची गई हैं। एषुत्तच्छन को ही मलयालम के सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है।

उनका 'देवी-भागवत' शक्ति-उपासना तथा देवी-भक्ति का निर्देशक है। 'हरिनाम-कीर्तन' नामक कीर्तन-ग्रन्थ की रचना करके उन्होंने मलयालम भाषा में भगवान् के संकीर्तनों को पुष्टि प्रदान की। अत्यन्त कठिन आध्यात्मिक तत्त्वों को भी सरल रूप में अभिव्यक्त करके उन्होंने सामान्य जनता को उन्हें समझने का अवसर दिया है। प्रतिदिन धर्मपरायण व्यक्ति इसका उषा-वेला में संकीर्तन करते हैं। उनकी एक और आध्यात्मिक कृति मिलती है—'चितारत्नं'। यह एक शिष्य को दिए हुए अद्वैत ज्ञानोपदेश के रूप में रचा गया है।

एषुत्तच्छन की शिष्य-परम्परा बहुत समय तक रही। उनमें सूर्य नारायण-एषुत्तच्छन, करुणाकरन एषुत्तच्छन देवएषुत्तच्छन और गोपाल-एषुत्तच्छन प्रख्यात हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

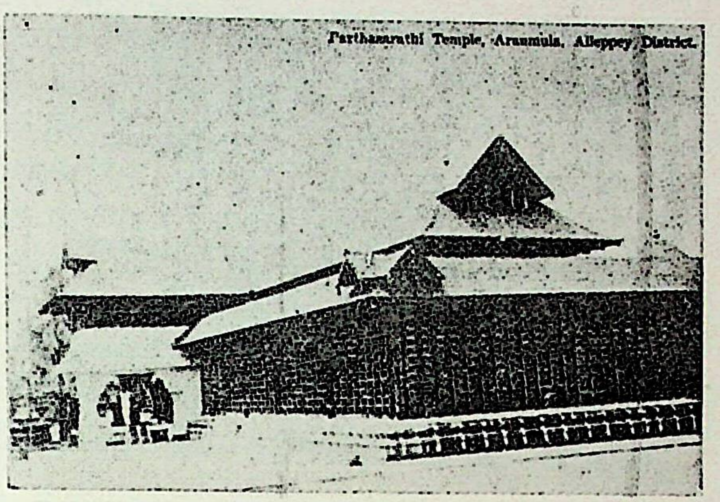

पार्थसारथी-मन्दिर : आरन्मुला (केरल), पृ० ३५२

कथकली में श्रीकृष्ण, पृ० ३१५

भागवतधर्म के पुनरुद्धारक श्री आदि शंकराचार्य (केरल), पृ० ३२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

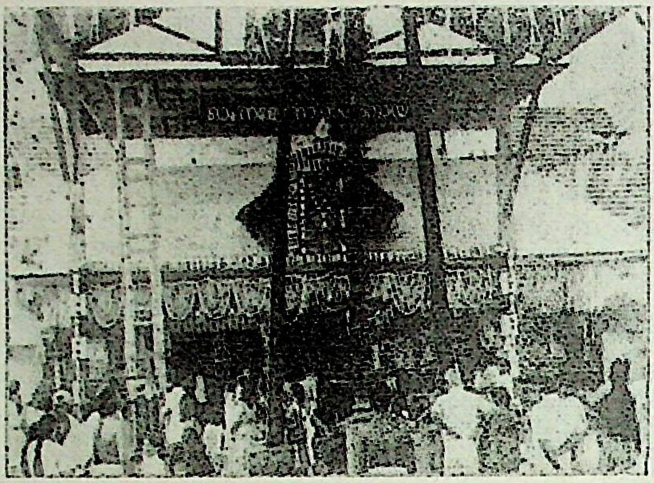

श्रीकृष्ण मन्दिर : गुरुवायूर (केरल), पृ० ३२३

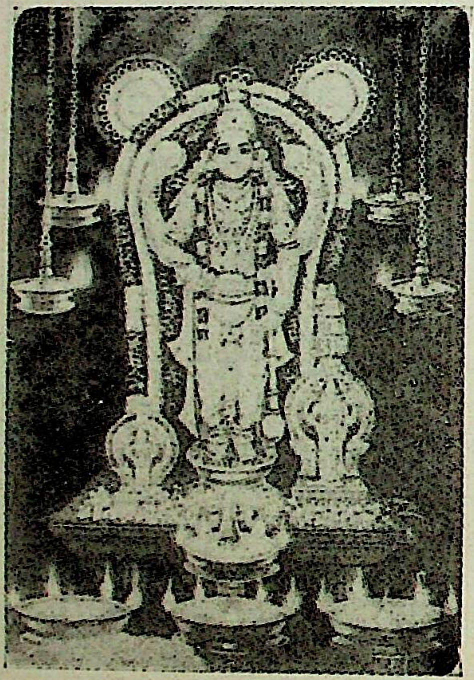

भगवान श्रीकृष्ण : गुरुवायूर मन्दिर (केरल), पृ० ३२३

भगवान पार्थसारथी : आरन्मुला (केरल), पृ० ३५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणाकरन की एक सरस कृति है—'शिवरात्रि-माहात्म्यं'। इसके अतिरिक्त उनके कई स्तुतिपरक श्लोक श्रीकृष्ण-सम्बन्धी हैं। सूर्यनारायणन का 'स्कन्दपुराणं' भक्ति तथा आध्यात्मिक तत्त्वों से सम्पन्न है। देवन एषुत्तच्छन के 'विज्ञानरत्न' और 'वेदान्तसार' भक्ति को प्रश्रय देनेवाली रचनाएँ हैं। गोपालन एषुत्तच्छन भी बड़े भक्त थे। वे गोपालस्वामी के नाम से अभिहित किये जाते थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एषुत्तच्छन और उनकी शिष्य-परम्परा भक्तों का कुल रहा है। सभी ने भक्तिरस-प्रधान रचनाओं से मलयालम-साहित्य को समृद्ध किया है।

इस शताब्दी में लिखे गये कृष्णस्तुतिपरक प्रचुर गान तथा स्तोत्र मिलते हैं। उनके रचयिता अज्ञात हैं। केरल के ग्राम-ग्राम में अनेक प्रसिद्ध मन्दिर हैं। उनमें प्रतिष्ठित देवों की स्तुतियाँ भी प्रचलित हैं। कई भक्त उन मन्दिरों में रहा करते थे। उनका विवरण अप्राप्य है।

पन्द्रहवीं शताब्दी में मलयालम गद्य का प्रारम्भ होता है। राम और कृष्ण की कथाओं को गद्य में आख्यायित करने की प्रवृत्ति के साथ ही गद्य-साहित्य का श्रीगणेश होता है। सोलहवीं शताब्दी में ईसाइयों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण किया और मलयालम गद्य की पुष्टि की।

पाट्टु, किलिप्पाट्टु, मणिप्रवालं जैसे काव्य-प्रस्थानों के समान मलयालम की एक काव्यविधा है—कथकळि या आट्टकथा। यह दृश्य-काव्य कलारूप अब संसारभर में प्रसिद्ध हो गया है। कथकली में वाचिकाभिनय नहीं है। इसलिए वह नृत्य-कोटि में आता है। वह ताण्डव-प्रधान है। यद्यपि कथकली के अभिनय में वाचिकांश नहीं है तो भी यह कहा नहीं जा सकता कि उसमें नृत्यत्व नहीं है। शान्त को छोड़ सभी रसों का इसमें अभिनय होता है। हस्तमुद्रायें इसकी विशेषता है। वे वैदिक, तांत्रिक और लौकिक तीन प्रकार की हैं। इस विधा का प्रारम्भ कोट्टारक्करा तंपुरान ने पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में किया था। कुछ लोग उनका समय सत्रहवीं शताब्दी मानते हैं। कोट्टारक्करा तंपुरान ने सम्पूर्ण रामायण-कथा को (१) पुत्रकामेष्टि, (२) सीतास्वयंवरं, (३) विच्छिन्नाभिषेकं, (४) खरवध, (५) बालीवध, (६) तोरण-युद्ध, (७) सेतुबन्धन, (८) युद्ध—इन आठ कथकली-कथाओं में निबद्ध कर दिया। गीतगोविन्द का अभिनय केरल में जब होने लगा तो उसका अष्टपदि आट्टं का नाम पड़ गया। वह आट्टक्कथा या कथकलि के प्रणयन में सहायक सिद्ध हुआ। आट्टं का अर्थ है—नृत्य। इसी अष्टपदी से कृष्णनाट्टं शुरू हुआ था। उन्हीं पर आधारित रामनाट्टं तंपुरान ने प्रारम्भ किया। कृष्णनाट्टं में भागवत दशम स्कन्ध की कथा के विविध सन्दर्भ स्वीकृत थे। कथकली-साहित्य मात्र नृत्य-नाट्यप्रधान नहीं है, संगीत और साहित्य में भी सम्पन्न है। इस विधा ने केरल में नाटक को पनपने नहीं दिया। आट्टकथा के पहले यहाँ कूटियाट्टं नामक एक नाट्य-सम्प्रदाय प्रचलित था। उससे तथा तमिलनाडु में प्रचलित यक्षगान और अन्य भारतीय नाट्यविधाओं से आहार्य तथा मुद्रायें स्वीकार कर इस नाट्यस्वरूप का प्रारम्भ एवं विकास होने लगा। आट्टकथा-साहित्य में भक्ति-रस-सिक्त श्लोकों तथा दण्डकों की संख्या अनल्प है। पुराणों की कथा पर आधारित होने से इसमें पुराणप्रसिद्ध नायक-नायिका ही आते हैं।

कोट्टयत्त तंपुरान ने सत्रहवीं शताब्दी में महाभारत को आधार बनाकर बकवध, कल्याण सोगांधक, किम्मीरवध तथा कालकेयवध नामक चार कथकलि-ग्रन्थों की रचना की। तंपुरान ने कथकलि के श्लोकों को संस्कृत में रचने की प्रथा चलाई। कथकली-साहित्य में संस्कृत-शब्दावली की अधिकता है। कोट्टयत्तु तंपुरान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अच्छे भक्त और वेदान्ती थे। इस सन्दर्भ में उनकी रचना 'मोक्षदायक-प्रकरण' उल्लेखनीय है। उनके भक्तिमुक्तक भी प्रसिद्ध हैं। उनकी कविता का स्वरूप दिखाने के लिए विष्णुमाया-स्तुति से एक श्लोक देखिये—

स्वर्ण सन्निभ शरीरवुं तरल नूपुरङ्ङल वलयङ्ङलुं
गण्डसंचलितकुंडलङ्ङळुमुळञ्ञु ताण मणिकांचियुं
कुत्तषिञ्ञुकिषियुन्न पूंतुकिलुमोट्टषिञ्ञ कचभारवुं
मुत्तुपोल चिल खर्मबिंदुकल मुखांबुजत्तिलुळवायतुं
पंतिडञ्ञ कुळुरकोंक रण्डुमिर्डतिडि किंचन कुलुंडियुं
पंतडिच्चु गिरिशन्नु नेरेयोरु मन्दमां गतिविलासवुं
चन्तमानोरु ललाटवुं भुवनमोहनं चिल कटाक्षवुं
चिंतचेय्वतिनु मे वरं तरिक शंभुमोहिनी दिवानिशं।

'सोने के समान शरीर, तरल नूपुर तथा चूड़ियों का जाल, गण्डों में लटकनेवाले कुण्डल, झुकी हुई मणिकांचि, नीवी-बन्ध से छूटा वस्त्र, बन्धन से श्लथित कचभार, मुख में मोती समान स्वेद-बिन्दु, गेंदों के समान वक्षों में गेंद खेलने से हिलते हुए निबिड स्तन-युगल, मन्द-मन्द गति का सौन्दर्य, सुन्दर ललाट, भुवन को मोहनेवाला कटाक्ष आदि के बारे में दिन-रात सोचने का वर हे शम्भुमोहिनी, दे दें।'

अठारहवीं शताब्दी के कोट्टयत्तु केरलवर्मा तंपुरान भी अच्छे भक्त और कवि थे। उनके द्वारा विरचित—बाण-युद्ध, मोक्षदायक प्रकरण, वैराग्य चन्द्रोदय, मोक्षसिद्धि प्रकरण आदि ग्रन्थ अध्यात्म, ज्ञान और भक्ति के कोष हैं। 'पद्मनाभ-कीर्तन' नामक उनका संस्कृत स्तोत्र-संग्रह भी प्रसिद्ध है।

कोचीन राज्य के इरिंजालकुडा नामक स्थान में स्थित कूटलमाणिक्यं मन्दिर वैष्णव-मन्दिरों में प्रसिद्ध है। वहीं उण्णायिवार्यर का जन्म सं० १५७५ के आसपास हुआ था। उनकी रचनाओं में 'रामपंचशती' 'गिरिजा-कल्याणं', 'नलचरितं' तथा कथकली प्रसिद्ध हैं। वे राम के परमभक्त थे। उनका 'नलचरितं' कथकली-ग्रन्थों मे सर्वश्रेष्ठ है। उन्हींके शिष्य थे रामपुरत्तु वार्यर। मीनञ्चल तालुका के रामपुरं ग्राम में वे १६०३ ई० को पैदा हुए थे। वे बहुत गरीब थे। उनकी एकमात्र रचना 'कुचेलवृत्तं' (सुदामा-चरित) अत्यन्त मार्मिक और सहज है—कवि ने उस समय के तिरुवितांकूर के राजा मार्तण्डवर्मा को श्रीकृष्ण और अपने को सुदामा सिद्ध करते हुए इसकी रचना की है। यह कृति वंचिप्पाट्टु (नाव-गीत) छन्द में रचित है। बाद में इसी विधा के अनेक काव्य लिखे गये। भक्त-शिरोमणि रामपुरत्तु वार्यर की भक्ति का सुन्दर स्वरूप काव्य में दिखाई देता है। इसमें एक स्थान पर कवि कहते हैं—

दीन दीन नाककोंटुं हीननाककोंटुमेट्टं ज्ञानमिल्लाषिककोंटुमेनिक्कीश्वरन
ताने कूटे तुणक्ककोंटीवण्णं गानं चेय्युन्नु ञानल्लाते मतियाकयिल्लेन्नु नूनं।

'दीनों में दीन होने से, हीनों में हीन होने से तथा ज्ञान-शून्य होने से भगवान् के अनुग्रह के कारण मैं यह गीत गाता हूँ। भगवान् चाहते हैं कि मैं ही इसकी रचना करूँ।'

यहाँ अचंचल चित्त रचनाकार का भगवत्प्रीति से साक्षात्कार होता है। मलयालम भाषा में ही काव्य-रचना करने से अपने को वे ज्ञान-शून्य भी कहते हैं। उन्होंने 'गीतगोविन्द' का मलयालम में काव्यानुवाद किया है। वह भी सुन्दर है। देखिये—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यमुना तीर निकुंजकुटीरे मरुवीडुन्नु मुकुंदन
अमुना निन्टे विशेषमशेषं श्रुतमाय मम वाचा
हे सखि राधे श्रृणु मे वाचं हा सहिया तव सादं
हरि विरहोदित वेदन वेंटा परिहरिच्चीडुवन खेदं ॥

कथकली की परम्परा में तिरुवितांकूर के राजा अश्वति तिरुनाल (१६५६–१६९४) प्रसिद्ध हैं। उनके रुक्मिणी-स्वयंवर, पूतना-मोक्षं, अम्बरीष-चरितं, पौंड्रक-वधं आदि कथकली-ग्रन्थ भक्ति-रसपर्ण हैं। उनका प्रबन्ध 'सन्तान-गोपालं' तथा 'रुक्मिणी-परिणय' नाटक भी भक्ति-भावना से सिक्त है। 'श्रीपद्मनाथ-कीर्तन' स्तोत्र-ग्रन्थ है।

कथकली के समान मलयालम का प्रसिद्ध काव्य-प्रस्थान है—ओट्टनतुल्लल। उसके प्रणेता कुंचन नंप्यार हैं। कुंचन कृष्ण का पर्याय है, कृष्ण शब्द से बना है। नंप्यार एक जाति है जो मन्दिरों की सेवा में लगी है। कुंचन नंप्यार तिरुवितांकूर राजाओं के दरबारी कवि थे। इसलिए तिरुवनन्तपुरम् अथवा अंपलपुषा में रहते थे जहाँ किल्लिकुरिशि मंगलं नामक घर ही उनका वासस्थान था। उनका जन्म सन् १७०५ ई० में हुआ था। नंप्यार का तुल्लल गीतालाप सहित भाषाविष्करण है। पुराणों की कथा उसमें भी ली गई है। उनकी कविताओं में सामयिक, सामाजिक विसंगतियों पर उपालम्भ है। उनकी कविता हास्य-रसप्रधान है। हास्यपूर्ण शैली द्वारा भक्ति-भाव का प्रचार उनका मन्तव्य था। उनका काव्य 'श्रीकृष्णचरितं' मणिप्रवालं विधा का सुन्दर महाकाव्य है। पूतना-वध का वर्णन कितना सुन्दर है—

पारप्पुरं पोले विशालमय्या, मारत्तु गोपालक बालनप्पोळ।
कारोत्तवर्णन करवुं कुडञ्ञङ्ङेरे तेळिञ्ञाशु कलिच्चु मेवी।
गोपी जनं देवी यशोद तानुं, तापेन मोदेन च विस्मयेन।
गोपालने चेन्नु करे धरिच्चापादचूडं तरसा पुणन्नीर।

'पहाड़ के तल के समान विशाल पूतना की छाती पर बालगोपाल घनश्याम हाथ-पैर हिलाकर बड़े आनन्द के साथ खेलता रहा। ताप, मोद और विस्मय के साथ गोपियों और यशोदा ने जाकर गोपाल को हाथों में ले लिया और नख-शिख को चूम लिया।'

नंप्यार का तुल्लल-प्रस्थान अब तक चल रहा है। उन्नीसवीं शती में भी कुछ कवि भक्ति-रसप्रधान रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। प्रसिद्ध कथकलीकार इरयिम्मन तंपी (१७८३–१८६३) और अन्य अनेक छोटे कवियों ने भक्ति-मुक्तकों तथा काव्यों की रचना की है। विस्तार-भय से यहाँ उन सबका परिचय देना सम्भव नहीं है।

हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की भाँति विलक्षण, श्रृंगारप्रधान-युग अठारहवीं शती के मध्यपाद से उन्नीसवीं शती (१७३५–१८५० ई०) तक मलयालम में भी विद्यमान था। इस प्रस्थान को 'वेण्मणि प्रस्थानं' और उन कवियों को वेण्मणि कवि कहते हैं। उनमें मुख्य हैं—पूंतोट्टनु अच्छन नंपूतिरी, कोट्टप्पडिक्कल गोदवर्मन निरुमुलपाड्, पूंतीट्टम महन नंपूरी, वेण्मणी अच्छन नंपूनिरिप्पाड और वेण्मणी महन नंपूनिरिपाड। उनकी रचनाओं में मुख्य रस श्रृंगार है जो अश्लीलता की ओर बढ़ता है। फिर भी कुछ श्लोक भक्ति-रसप्रधान हैं। वेण्मणी महन नंपूतिरिपाड (१७४४–१७९३) का एक श्लोक देखिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पयोप्पेकुट्टि तन्नेप्परिचिनोडु पिडिच्चुंनिनीक्कीट तल्ल-
प्पय्यिन कालकूटणञ्जिट्टकिडविडविडेन्नान पतुक्केत्तलोडि
तय्यारास कुट्टुकुत्तिदनु मुखमुर्नत्तिच्चुरत्तुं नंरूपा-
लय्या ! मुट्टिक्कुडिक्कुं पशुपशिशुपदं केवलं मेऽवलंबं ।

'धीरे-धीरे बछड़े को धक्का देकर, गाय को हाथों से थपथपाकर, सावधानी से उसके पैरों के बीच प्रवेश कर, मुँह ऊँचा करके थन से आनेवाले नवदुग्ध को बछड़े की तरह पीनेवाले पशुपशिशु के पद ही मेरे एकमात्र अवलम्ब हैं।'

बीसवीं शताब्दी में भक्ति की सरिता नई रीति से बहती है। वह स्वतन्त्रता-प्रेम से परिपुष्ट है। पुराणाख्यान इसी नयी गति को प्राप्त करता है। वल्लत्तोल, उल्लूर और कुमारन आशान ये कवित्रय इस शताब्दी के प्रथम पाद में अपनी श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में कृष्ण और कृष्ण-कथाएँ आधुनिक जीवन के अनुकूल नये साँचे में ढाली गई हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नूतन पुराणाख्यान नवीनता के द्योतक हैं। ये तीनों कवि अपनी छोटी-छोटी कविताओं तथा खण्डकाव्यों की रचना करके आधुनिक युग का सूत्रपात करते हैं। उसी मार्ग पर स्वच्छन्दतावादी कवि—चंडंपुषा, नालप्पाट्टु बालामणियम्मा आदि की कवितायें प्रवाहित होती हैं। वेलोपिल्ली, सुगतकुमारी प्रभृति वर्तमान कवियों ने भक्ति-रस को प्रधानता दी है। एक आधुनिक भक्त कवि हैं—पी० कुंजिरामन नायर, जिनकी कविताओं में भक्ति-रस की धारा प्रवाहित मिलती है। ओटूर उण्णिनंपूरी जैसे केवल कृष्ण-भक्ति-रसप्रधान कवितायें लिखनेवाले कवियों की आज भी कमी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मलयालम-साहित्य में प्राचीनकाल में भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई थी वह कई मार्गों से होकर विविधता और मौलिकता को प्रस्तुत करते हुए अब तक अजस्र रूप में बह रही है। इस वैज्ञानिक युग में भी उसके प्रवाह में गतिशीलता है और वह नवीन अचुम्बित भावों की लहरियों से पूर्ण है।

—डॉ० एन० रामन नायर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलयालम के कृष्ण-भक्त

आम्पाडी कुंजुकृष्ण पुतुवाल

आम्पाडी कुंजुकृष्ण पुतुवाल सन् १५१२ से १५७३ ई० के बीच उपस्थित बताये जाते हैं। सहृदय कवि और भक्त के रूप में इनकी प्रसिद्धि है। इनका जन्म तृश्शूर के पास हुआ था। इनके परिवार के लोग देव-मंदिरों के कार्यकर्ता थे तथा पूर्वजों में अनेक संस्कृत के विद्वान् थे। बचपन से ही कविता के प्रति इनकी रुचि थी और कृष्ण के एकान्त भक्त थे। 'कृष्णावतार', 'कालिमर्दनय', 'केशीवध', 'हंसवध' आदि उनकी प्रमुख संस्कृत-रचनायें हैं। मलयालम में भी इनकी कृष्ण-चरित-विषयक कुछ कृतियाँ मिलती हैं, जो भक्तिरस से ओतप्रोत हैं।

एन० रा० ना०

कटत्तनाट्टु वासुनम्पी

कटत्तनाट्टु वासुनम्पी का उपस्थिति-काल सन् १८०५ से १८६५ ई० के बीच माना जाता है। ये मलाबार के रहनेवाले थे। बचपन से ही कवि और भक्त थे। इनका देहावसान ६० वर्ष की आयु में १८६५ ई० में हुआ।

ये गुरुवायूर कृष्ण के उपासक थे। अतः उनकी स्तुति में इनके कई श्लोक प्राप्त हैं। उनमें से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

अंगं ते सुकुमारमं बुधि सुतानेत्रान्तलेह्यम् वपुः,
नेत्रं नैकरसायनं सुमधुरं किंचेन्दु-कांतम् मुखम्।
इत्थम् वात पुरेश ! भेषजमयं त्वां सेवमानस्यमे
व्याधिर्नाधिकरः प्रशाम्यति,
रमा जाने ! न जाने कुतः ?

'आपके अंग सुकुमार हैं। लक्ष्मी के कटाक्ष द्वारा बारम्बार नेत्रोत्सव योग्य (दर्शनीय) शरीर है। आँखें रसराशिरम्य हैं। मुँह माधुर्यसिन्धु, अधिक क्या कहें, चन्द्र के समान सुन्दर है। इस प्रकार आप विष्णु हैं। ओषधिरूप आपकी सेवा में रत रहनेवाले मेरे रोग बढ़ते नहीं हैं वरन् शान्त हो जाते हैं। फिर भी अग्निबीजरूप आपको मैं भलीभाँति क्यों नहीं जान पाता हूँ ?

एन० रा० ना०

काक्कशेरी भट्टतिरि

काक्कशेरी भट्टतिरि १५वीं शताब्दी में वर्तमान माने जाते हैं। इनका असली नाम दामोदर था। ये उद्दण्डशास्त्री के प्रतिद्वन्द्वी थे। इन्होंने उत्तर मालाबार के पोन्नानी तालुका में काकशेरी नामक क्षेत्र में जन्म लिया था। आगे चलकर ये मानविक्रम राजा की सभा के प्रतिष्ठित कवि बन गये थे। इनकी दो रचनायें मिलती हैं—'वसुमतीमानविक्रमम् नाटक' तथा 'इंदुमतीराघवम् नाटक'। इनकी प्रतिभा तथा भक्तिव्यंजक एक छन्द उद्धृत किया जाता है—

हृदाकाशेचिदादित्यस्सदा भाति निरन्तरं
उदयास्तमयौ न स्तः कथं सन्ध्यामुपास्महे ?

'हृदय के आकाश में चित् (ज्ञान) का सूर्य निरन्तर आभासमान है। उदय और अस्त दोनों होते ही नहीं। सन्ध्योपासना सन्ध्या के अभाव में कैसे करें ?'

एन० रा० ना०

कुंचन नंपियार

कुंचन नंपियार मलयालम के लोकप्रिय महाकवि हैं। प्राचीन मलयालम की कवित्रयी में इनकी गणना की जाती है। वे कवित्रय हैं—तुचत्तु एषुत्तच्छन, चेरुश्शेरी नंपूतिरि तथा कुंचन नंपियार।

कुंचन नंपियार के जीवन-चरित-सम्बन्धी जानकारी अभी अपूर्ण है। प्राप्त तथ्यों के अनुसार आपका जन्म पालक्काट् जिले के किल्लिक्कुरिशिमंगलम् नामक गाँव के कलक्कत् नंपियार घराने में सन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पयोप्पेकुट्टि तन्नेप्परिचिनोड्डु पिडिच्चुंनिनीक्कीट तल्ल-
प्प्यियिन कालकूटणञ्ञिटट्टकिडविडविडेञान पतुक्केत्तलोडि
तय्याराम कुट्टुकुत्तिवनु मुखमुर्मत्तिच्चुरत्तुं नंरूपा-
लय्या ! मुट्टिक्कुडिक्कुं पशुपशिशुपदं केवलं मेऽवलंबं ।

'धीरे-धीरे बछड़े को धक्का देकर, गाय को हाथों से थपथपाकर, सावधानी से उसके पैरों के बीच प्रवेश कर, मुँह ऊँचा करके थन से आनेवाले नवदुग्ध को बछड़े की तरह पीनेवाले पशुपशिशु के पद ही मेरे एकमात्र अवलम्ब हैं।'

बीसवीं शताब्दी में भक्ति की सरिता नई रीति से बहती है। वह स्वतन्त्रता-प्रेम से परिपुष्ट है। पुराणाख्यान इसी नयी गति को प्राप्त करता है। वल्लत्तोल, उल्लूर और कुमारन आशान ये कवित्रय इस शताब्दी के प्रथम पाद में अपनी श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाओं में कृष्ण और कृष्ण-कथाएँ आधुनिक जीवन के अनुकूल नये साँचे में ढाली गई हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नूतन पुराणाख्यान नवीनता के द्योतक हैं। ये तीनों कवि अपनी छोटी-छोटी कविताओं तथा खण्डकाव्यों की रचना करके आधुनिक युग का सूत्रपात करते हैं। उसी मार्ग पर स्वच्छन्दतावादी कवि—चंडंपुषा, नालप्पाट्टु बालामणियम्मा आदि की कवितायें प्रवाहित होती हैं। वेलोपिल्ली, सुगतकुमारी प्रभृति वर्तमान कवियों ने भक्ति-रस को प्रधानता दी है। एक आधुनिक भक्त कवि हैं—पी० कुंजिरामन नायर, जिनकी कविताओं में भक्ति-रस की धारा प्रवाहित मिलती है। ओटूर उण्णिनंपूरी जैसे केवल कृष्ण-भक्ति-रसप्रधान कवितायें लिखनेवाले कवियों की आज भी कमी नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मलयालम-साहित्य में प्राचीनकाल में भक्ति की जो धारा प्रवाहित हुई थी वह कई मार्गों से होकर विविधता और मौलिकता को प्रस्तुत करते हुए अब तक अजस्र रूप में बह रही है। इस वैज्ञानिक युग में भी उसके प्रवाह में गतिशीलता है और वह नवीन अचुम्बित भावों की लहरियों से पूर्ण है।

—डॉ० एन० रामन नायर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मलयालम के कृष्ण-भक्त

आम्पाडी कुंजुकृष्ण पुतुवाल

आम्पाडी कुंजुकृष्ण पुतुवाल सन् १५१२ से १५७३ ई० के बीच उपस्थित बताये जाते हैं। सहृदय कवि और भक्त के रूप में इनकी प्रसिद्धि है। इनका जन्म तृश्शूर के पास हुआ था। इनके परिवार के लोग देव-मंदिरों के कार्यकर्ता थे तथा पूर्वजों में अनेक संस्कृत के विद्वान् थे। बचपन से ही कविता के प्रति इनकी रुचि थी और कृष्ण के एकान्त भक्त थे। 'कृष्णावतार', 'कालिमर्दनय', 'केशीवध', 'हंसवध' आदि उनकी प्रमुख संस्कृत-रचनायें हैं। मलयालम में भी इनकी कृष्ण-चरित-विषयक कुछ कृतियाँ मिलती हैं, जो भक्तिरस से ओतप्रोत हैं।

एन० रा० ना०

कटत्तनाट्टु वासुनम्पी

कटत्तनाट्टु वासुनम्पी का उपस्थिति-काल सन् १८०५ से १८६५ ई० के बीच माना जाता है। ये मलाबार के रहनेवाले थे। बचपन से ही कवि और भक्त थे। इनका देहावसान ६० वर्ष की आयु में १८६५ ई० में हुआ।

ये गुरुवायूर कृष्ण के उपासक थे। अतः उनकी स्तुति में इनके कई श्लोक प्राप्त हैं। उनमें से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है—

अंगं ते सुकुमारमं बुधि सुतानेत्रान्तलेह्यम् वपुः,
नेत्रं नैकरसायनं सुमधुरं किंचेन्दु-कांतम् मुखम्।
इत्थम् वात पुरेश ! भेषजमयं त्वां सेवमानस्यमे
व्याधिर्नाधिकरः प्रशाम्यति,
रमा जाने ! न जाने कुतः ?

'आपके अंग सुकुमार हैं। लक्ष्मी के कटाक्ष द्वारा बारम्बार नेत्रोत्सव योग्य (दर्शनीय) शरीर है। आँखें रसराशिरम्य हैं। मुँह माधुर्यसिन्धु, अधिक क्या कहें, चन्द्र के समान सुन्दर है। इस प्रकार आप विष्णु हैं। ओषधिरूप आपकी सेवा में रत रहनेवाले मेरे रोग बढ़ते नहीं हैं वरन् शान्त हो जाते हैं। फिर भी अग्निबीजरूप आपको मैं भलीभाँति क्यों नहीं जान पाता हूँ ?

एन० रा० ना०

काक्कशेरी भट्टतिरि

काक्कशेरी भट्टतिरि १५वीं शताब्दी में वर्तमान माने जाते हैं। इनका असली नाम दामोदर था। ये उद्दण्डशास्त्री के प्रतिद्वन्द्वी थे। इन्होंने उत्तर मालाबार के पोन्नानी तालुका में काकशेरी नामक क्षेत्र में जन्म लिया था। आगे चलकर ये मानविक्रम राजा की सभा के प्रतिष्ठित कवि बन गये थे। इनकी दो रचनायें मिलती हैं—'वसुमतीमानविक्रमम् नाटक' तथा 'इंदुमतीराघवम् नाटक'। इनकी प्रतिभा तथा भक्तिव्यंजक एक छन्द उद्धृत किया जाता है—

हृदाकाशेचिदादित्यस्सदा भाति निरन्तरं
उदयास्तमयौ न स्तः कथं सन्ध्यामुपास्महे ?

'हृदय के आकाश में चित् (ज्ञान) का सूर्य निरन्तर आभासमान है। उदय और अस्त दोनों होते ही नहीं। सन्ध्योपासना सन्ध्या के अभाव में कैसे करें ?'

एन० रा० ना०

कुंचन नंपियार

कुंचन नंपियार मलयालम के लोकप्रिय महाकवि हैं। प्राचीन मलयालम की कवित्रयी में इनकी गणना की जाती है। वे कवित्रय हैं—तुचत्तु एषुत्तच्छन, चेरुश्शेरी नंपूतिरि तथा कुंचन नंपियार।

कुंचन नंपियार के जीवन-चरित-सम्बन्धी जानकारी अभी अपूर्ण है। प्राप्त तथ्यों के अनुसार आपका जन्म पालक्काट् जिले के किल्लिक्कुरिशिमंगलम् नामक गाँव के कलक्कत् नंपियार घराने में सन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१७०५ ई० में हुआ था। (नंपियार केरल की एक जाति-विशेष का सूचक है।) इनके जन्म के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है। देशाटन के लिए निकले एक वृद्ध ब्राह्मण का बटुआ कहीं खो गया। संयोगवश वह बटुआ एक नंपियार-स्त्री को प्राप्त हुआ। उसने उसे उस ब्राह्मण के हाथों में सौंप दिया। वृद्ध ब्राह्मण ने सन्तुष्ट होकर उसे सत्पुत्रोपलब्धि का आशीर्वाद दिया। कालान्तर में उस स्त्री ने एक बच्चे को जन्म दिया जो आगे चलकर कुंचन नंपियार नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इनके वास्तविक नाम, माता-पिता, शिक्षा आदि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान् किटङ्ङूर तहसील के किसी ब्राह्मण को नंपियार का पिता तथा अन्य किल्लिक्कुरिशिमंगलम् के किसी नंपियार को इनका पिता मानते हैं। कुंचन नंपियार के वास्तविक नाम के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं। कोई इनका नाम रामन् (राम) मानते हैं तो कोई कृष्णन् (कृष्ण)। बहुत समय तक विद्वानों का एक वर्ग कुंचन नंपियार तथा रामपाणिवादर नामक प्रसिद्ध कवि को एक ही व्यक्ति मानता था। किन्तु नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि दोनों अलग-अलग व्यक्ति हैं। इनके कुंचन नाम के बारे में यही माना जाता है कि जब वे बच्चे थे तो लोग इन्हें 'कुञ्जन्' (नन्हा या बच्चू) पुकारते थे और वही कुञ्जन् आगे चलकर कुंचन बन गया।

कुंचन नंपियार ने अपने गाँव में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। किशोरावस्था में आप 'अंपलपुषा' नामक स्थान में पहुँच गये और वहाँ के सहृदय राजा देवनारायण के आश्रित बने। यहाँ कुंचन नंपियार को अपनी योग्यता, विद्वत्ता एवं कवि-हृदय को प्रकट करने का अपूर्व अवसर मिला। यहीं पर रहकर आपने 'श्रीकृष्णविजयंमणिप्रवालं' नामक महाकाव्य की रचना की, जो कुंचन नंपियार के भक्तहृदय की परिचायक कृति है।

नंपियार मात्र कवि नहीं थे। ये नृत्य और अभिनय-कला में भी निपुण थे। अपनी इस निपुणता का सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इन्होंने केरलीय जनता के सम्मुख एक नितान्त नूतन नृत्य-रूप पेश किया जो 'तुल्लल्' नाम से अभिहित हुआ। तुल्लल् नामक कलारूप के द्वारा नंपियार की प्रसिद्धि केरलभर में फैल गयी। ये जनता के लिये रचना करनेवाले जनकवि कहलाये। इस नृत्यरूप में नट विशेष वेषभूषा धारण कर रंगमंच पर उपस्थित होकर किसी पौराणिक या वीररसात्मक कथा का काव्यरूप में प्रस्तुतीकरण कर विविध हाव-भाव के साथ नृत्य और अभिनय करता है। अत्यन्त सरस और सरल शैली में होने के कारण प्रेक्षक इस कला का खूब मजा लेते हैं। केरल के मन्दिरों में अब भी इस कलारूप का प्रचलन है।

अंपलपुषा राज में रहते हुए नंपियार ने अनेक तुल्लल् काव्यों की रचना की। इन सबमें आपने पौराणिक कथा के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक कुरीतियों को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। ऐसा करने में इनका उद्देश्य वस्तुतः समाज-सुधार और सदाचार का प्रसार था। स्वयं कवि का कथन है—

चुरुक्कत्तिलोरू भागं उरय्क्कुन्नुण्टितु नेरं
अरय्क्का नाषिक नेरं स्मरिक्कां कृष्णने येन्नाल्
तरिक्कां अणवं पोले परक्कुं दुष्कृतमेल्लां
गतिक्कुं नल्लतु लोक स्थितिक्कुं नल्लतु नन्म
भविक्कुं शुद्धियुण्टाक्कुं रतिक्कु पात्रमायीटुं।

'मैं अब संक्षेप में कुछ बता रहा हूँ। यदि हम थोड़ी देर भगवान् श्रीकृष्ण के नाम का स्मरण करें तो दुष्कृतरूपी सागर को हम अनायास पार कर सकेंगे। इससे हमारी तथा संसार की दशा सुधर जायगी, मति शुद्ध हो जायगी और हम उनके प्रेमपात्र भी बन जायेंगे।'

ये कई वर्षों तक अंपलपुषा में रहे। फिर तिरुवितांकूर राज्य के राजा मार्तण्डवर्मा ने जब अंपलपुषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया, तब नंपियार उनके आश्रित बनकर राजधानी तिरुवनन्त-पुरम् आये। राजधानी में आपकी प्रतिभा और चमक उठी। राजा ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया और आजीवन वृत्ति-प्राप्ति की व्यवस्था कर दी। वृद्धावस्था आने पर राजा की अनुज्ञा माँगकर ये अंपलपुषा लौट आये और वहाँ के कृष्ण-मन्दिर के एक निकटस्थ मकान में रहने लगे। अंपलपुषा के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण-मन्दिर के पास अब भी 'नंपियार-मठ' नाम से वह मकान स्थित है। सन् १७७० ई० में एक पागल कुत्ते के काटने के कारण इनकी मृत्यु हो गई।

कुंचन नंपियार एक आस्तिक कवि थे। आपकी सभी रचनाएँ भक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही विरचित हुई हैं। आपकी कृतियों में एक सगुणोपासक भक्त-कवि का भक्तिरसपूर्ण स्वर गूँजता है। इनकी सर्व-श्रेष्ठ कृति 'श्रीकृष्णचरितंमणिप्रवालं' है। इसमें कृष्ण-कथा सरल-सरस शैली में वर्णित है। अपनी इस रचना के लक्ष्य के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

इक्काव्यं कृष्णलीलामृत
कथनमहापावनं भावनीयं
तत्वकारुण्यं लभिप्पानोरु
पेरुवषियेन्नोर्त्तु मर्त्यन् ग्रहिच्चाल्
उल्क्कांपिल् बोधमुण्टामखिल
दुरितवुँ नष्टमामिष्टमाक्कु
सत्कीर्त्ति स्फूर्तियुण्टामवन-
विकलमां मोक्षवुंसंभविक्कुं।

'श्रीकृष्णलीलामृतकथन से युक्त इस पुनीत कृति को मानव यदि भगवान् की कृपालब्धि का मार्ग मान लेंगे तो उनके अन्तर्मन में बोध का उदय हो जायगा, उनके सारे दुःख भी दूर हो जायेंगे। उन्हें सत्कीर्ति और स्फूर्ति का लाभ हो जायगा तथा उन्हें निश्चय ही मुक्ति भी मिल जायगी।'

प्रस्तुत कृति में कुंचन नंपियार अवतार के समय के कृष्ण की छवि का वर्णन करते हुए कहते हैं—

मिन्नुं पोन्निन् किरीटं तखिलकटकं
काँचिपूंचेल माला
धन्यश्रीवत्स सल् कौस्तुभमिटकलरं,
चारुदोरन्तरालं
शंखं चक्रं गदा पंकजमिति विलसुं
नालुतृक्कैकलोटे
संकीर्णंश्यामवर्णं हरिवपुरमलं
पूरयेन्मंगलं वः।

'जन्म के समय भगवान् कृष्ण के सिर पर जग-मगाता हुआ स्वर्ण-किरीट था, हाथ में सोने के कंकण थे, सुमनोहर एवं पुष्प समान मृदुल वस्त्र वे पहने हुए थे। छाती पर श्रीवत्स और कौस्तुभ रत्न शोभित था। शंख, चक्र, गदा और पद्म चारों हाथों में शोभायमान थे। विविध रत्नों की प्रभा से उनका साँवला शरीर छविमान था। (अन्त में कवि कहते हैं कि) इस प्रकार के पुनीत रूपवाले हरि सबों को मंगल प्रदान करें।'

'भगवद्दूत', 'भागवतं इरुपत्तिनालुवृत्तं', 'रुक्मिणी-स्वयंवर', 'सभा-प्रवेशं', 'स्यमंतकं', 'कालियमर्दनम्' आदि भी नंपियार के कृष्णविषयक काव्य हैं।

अपने सभी काव्यों में यत्र-तत्र कवि ने विविध कथापात्रों के मुँह से श्रीकृष्ण का स्तुतिगान कराया है। अतः इनकी कृतियों में कृष्णभक्ति-सम्बन्धी अनेक स्तव, संकीर्तन आदि उपलब्ध हैं। नीचे इनके दो भक्तिपरक पद्य उद्धृत हैं :

वेगमीश्वरनोटु चेर्न्नु वसिप्पनिनु मनुष्यरे
यागवुं पल योगवुं पल मंत्रवुं चिल तंत्रवुं
आगमङ्ङलुपासनङ्ङ लुमासनङ्ङलुमोन्नुमे
राग सागर वासिकल्क्कु फलिक्कयिल्ल धरिक्कणं।

× × ×

अप्रमेयननन्त नव्ययनेक नाय्वरुमीश्वरन!

'हे मनुष्य! राग-सागर निवासी हमारे लिए, ईश्वर-प्राप्ति के लिए याग, योग, विविध मन्त्र, तन्त्र, आगम, उपासना, आसन-अभ्यास आदि कुछ भी किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काम नहीं आयेंगे। हमारे लिए एकमात्र शरण उन अनन्त, अप्रमेय भगवान् कृष्ण के चरण ही हैं। इसलिए उनकी पूजा ही हमारे लिए करणीय है।'

शरणागत शरणानत करुणामय हरणा,
तरुणारुण किरणौध वदरुणामल चरणा,
धरणीभर हरणा बहु रमणी मणि रमणा,
करुणां कुरु मरणे मम यदुनायक शरणं।

'हे शरणागत-वत्सल, करुणाकर, समस्त दुःखों के हरणकर्ता, तरुणारुण किरणों जैसे प्रभापूर्ण, अरुण एवं पुनीत चरण, पृथ्वी के भार को दूर करनेवाले, बहुरमणीमणिरमण, हे यदुकुलनायक कृष्ण ! आप ही मेरे लिए शरण्य हैं। मेरी मृत्यु के समय आप मुझ पर कृपा करें।'

एस० तं० अ०

कुटल्लूर नारायणन

कुटल्लूर नारायणन १५वीं शताब्दी ई० में वर्तमान माने जाते हैं। इनकी गणना मानवेद राजा के साढ़े अठारह दरबारी कवियों में होती है। इनकी एकमात्र कृति 'सुभद्राहरण' काव्यग्रन्थ है। उससे इनके भक्त-हृदय होने का परिचय मिलता है।

एन० रा० ना०

कुरूरम्मा

कुरूरम्मा केरल की प्रसिद्ध कृष्णोपासिका थीं। ये एक ऐसी साध्वी नारी थीं जो भगवान् श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व समझकर उनकी पूजा-उपासना करती थीं।

इनके जीवनवृत्त-सम्बन्धी प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। इतना माना जाता है कि ये तृश्शूर जिले के 'अटाट्' गाँव के 'कुरूर' नामक घराने की बहू थीं। 'कुरूर' घराने की बहू होने के कारण ही ये कुरूरम्मा कहलायीं। इनका जीवनकाल सन् १५७० से १६४० ई० तक माना जाता है।

बचपन से ही कुरूरम्मा कृष्ण की अनन्य उपासिका थीं। ये नित्य ही गुरुवायूर के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण मन्दिर के दर्शनार्थ जाती थीं और घण्टों तक भगवान् की आराधना किया करती थीं। कहा जाता है कि एक बार स्वयं भगवान् कृष्ण इस परमसाध्वी के सम्मुख प्रकट हुए थे। अब भी गुरुवायूर के मन्दिर से सम्बद्ध कुरूरम्मा का पुनीत चरित गाया जाता है।

माना जाता है कि इनके पतिदेव का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था। तदन्तर कुरूरम्मा कृष्ण की परम-भक्तिन बन गयीं और दिन-रात कृष्ण की उपासना में जीवन बिताने लगीं।

कुरूरम्मा की किसी कृति का पता तो नहीं चलता किन्तु अनेक भक्तिपरक श्लोक एवं स्तुतियाँ इनके नाम पर प्रचलित हैं। श्रीकृष्ण की दर्शन-प्राप्ति-विषयक इनका निम्नांकित श्लोक सर्वविदित है—

कोमलं कूजयन वेण्टुं
श्यामलोऽयं कुमारकः
वेदवेद्यं परं ब्रह्म
भासतां पुरतो ममः।

एस० तं० अ०

कृष्णन नम्पूरी (नम्पूतिरी)

कृष्णन नम्पूरी केरल के अत्यन्त प्राचीन कृष्ण-भक्त कवि हैं। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार ये ७वीं शती में विद्यमान थे। इनका जन्म भारतप्पुषा नदी के दक्षिण किनारे पर स्थित पन्नियूर नामक गाँव में हुआ था। इनकी दो कृतियों का पता चलता है— 'श्रीकृष्णपुराणम्' तथा 'यदुनाथचरितम्'। प्रथम महाभारत पर आधारित है और द्वितीय भागवत पर। इसे भागवत-संग्रह भी कहते हैं।

एन० रा० ना०

के० सी० केशवपिल्लै

'केशवीयम' नामक कृष्णकाव्य की रचना करके के० सी० केशवपिल्लै मलयालम काव्य-क्षेत्र में अमर बन गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

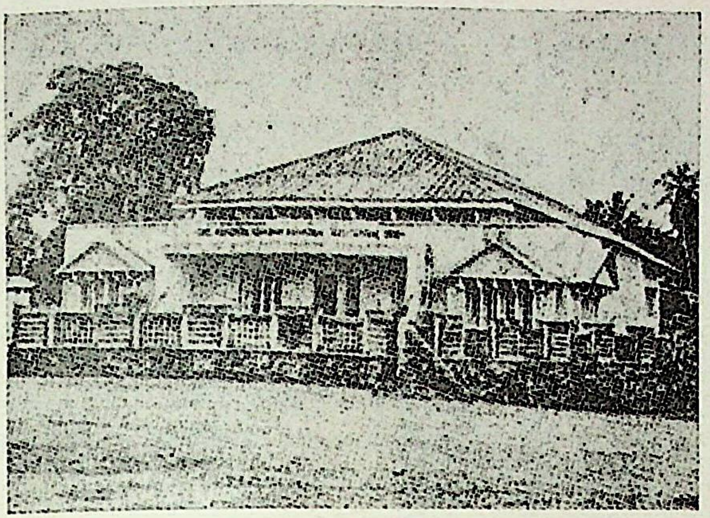

श्री कुंचन नंपियार मण्डप : अंपलप्पुपा (केरल)
पृ० ३१६-३१९

श्रीकृष्ण नाट्टम्, पृ० ३१३

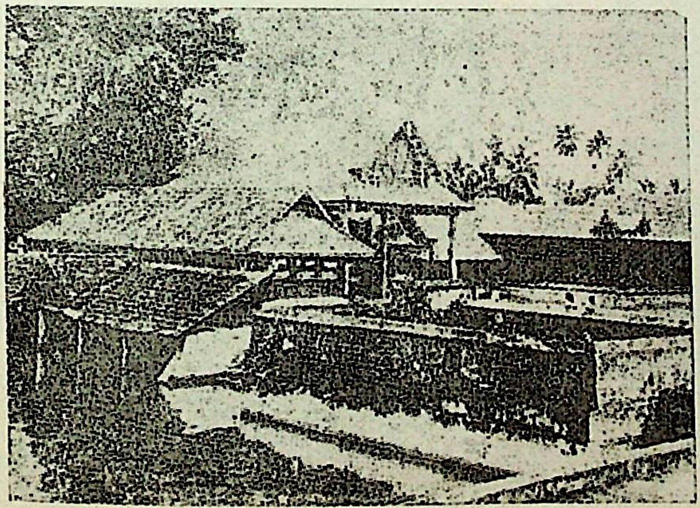

श्रीकृष्ण मन्दिर : अंपलप्पुषा (केरल)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेंबै वैद्यनाथ भागवतार, पृ० ३२३

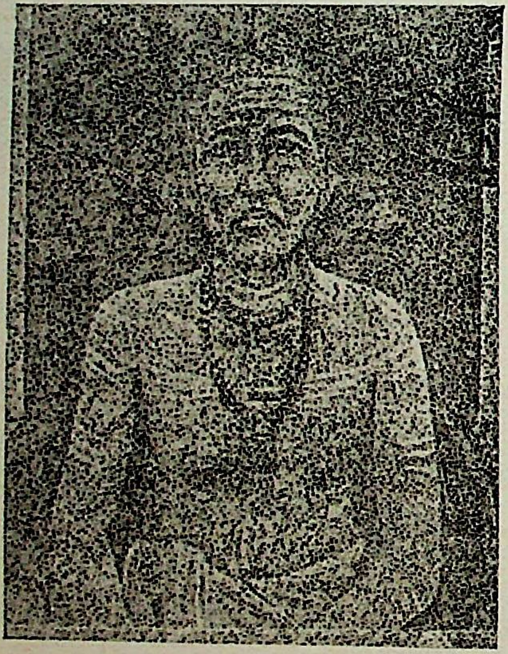

तुंचन्त् एपुतच्छन्, पृ० ३२९

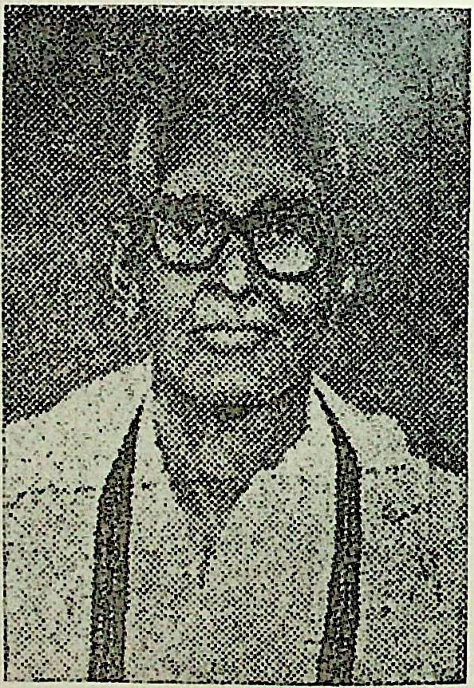

वी० के० गोविन्दननायर, पृ० ३५५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका जन्म केरल के कोल्लम जिले के परवूर नामक तहसील के एक पुराने एवं प्रसिद्ध परिवार में ३ फरवरी सन् १८६८ ई० को हुआ था। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति बचपन से ही इनकी रुचि थी, अतः आपने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया। उसके साथ ही अंग्रेजी साहित्य का भी आपने गम्भीर अनुशीलन किया। पढ़ाई के बाद कई विद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया। इसके बाद जो समय बचता था उसमें साहित्य-सृजन ही इनका मुख्य कर्म था। ६५ वर्ष की आयु में सन् १९३३ ई० को आप स्वर्ग सिधारे।

'केशवीय' के० सी० केशवपिल्लै का श्रीकृष्ण-विषयक काव्य है। 'श्रीमद्भागवत' की स्यमन्तक मणि की कथा ही प्रस्तुत काव्य का आधार है। इसमें यत्र-तत्र कवि ने श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया है।

एक स्त्री-पात्र द्वारा की गई स्तुति की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

अषल्पूण्टषकिन् कातलवल् निन् कषल्-भक्तियिल्
मुषुकित्तोषुतोतुन्न मोषिकेट्टरुलेणमे।
नन्दनन्दन! वन्दार, वृन्दमन्दार! सुन्दरा!
मन्दयां मम निनपाद द्वन्दमाणिङ्ङोराश्रयम्॥

'हे भगवान् कृष्ण! तुम्हारे पुनीत चरणों की भक्ति में निमग्न होकर मैं विनम्रतापूर्वक, दुःख के साथ एवं अंजलिबद्ध होकर जो कुछ कहती हूँ, उसे सुन लेने की कृपा करें। हे नन्दनन्दन! आप देवों के लिए भी अभीष्ट प्रदान करनेवाले कल्पतरु हैं। मेरे लिए आपके चरणद्वय ही एकमात्र आश्रय हैं।'

एस० तं० अ०

कोच्चुगोविन्द वारियर

कोच्चुगोविन्द वारियर का उपस्थिति-काल सन् १५११ से १५५७ ई० तक बताया जाता है। अपने समय के ये संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। 'भीष्मविजयम्' नामक कथकली इनकी प्रसिद्ध कृति है। मलयालम में भी 'श्रीकृष्णलीलामृतम्' नाम से इनकी एक रचना का उल्लेख मिलता है, जो गीत-साहित्य के लिए एक अमूल्य निधि है।

एन० रा० ना०

कोड्डुङ्ल्लूर विद्वान् इलयतंपुरान

कोड्डुङ्ल्लूर का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुआ था। ये स्वाति तिरुनाल के समकालीन थे। कवि के साथ-साथ ये वैयाकरण, तार्किक, ज्योतिषी, संगीतज्ञ, वैद्यविशारद, शिल्प-शास्त्रकार, अभिनेता आदि कई रूपों में प्रख्यात थे। मलयालम-साहित्य में 'वेण्मणी-प्रस्थानं' के ये प्रख्यात प्रयोक्ता थे। संस्कृत में इनका अपार पाण्डित्य था। इनकी भक्ति-रस-प्रधान कई रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत में श्रीरामचरितम् 'महाकाव्य' और 'रससदन-भाणं' प्रसिद्ध हैं। अन्य रचनाओं में 'त्रिपुरदहनं' दशावतार-'दशकम्' 'देवदेवेश्वराष्टकम्', 'मुरारिपुस्तोत्रम्', 'श्रीपादसप्तकम्', 'सदाशिवी', 'सुधानन्द लहरी' आदि प्रमुख हैं। मलयालम में भी 'अहल्यामोक्षम्', 'इन्दुमती स्वयंवरं' तथा 'नळचरितम्' और 'कैकोट्टिकळिप्पाट्टु' (स्त्रियों के लिए ताली बजाते एवं नाचते हुए गाने योग्य गीतविशेष) की रचना की है। 'मुरारिपुस्तोत्रम्' इनकी कृष्णभक्तिपरक कृति है।

एन० रा० ना०

कोषिक्कोट्टु मानवेदराजा

कोषिक्कोट्टु मानवेदराजा १७वीं शताब्दी में वर्तमान थे। कृष्णनाट्टम् की रचना के कारण ये कृष्ण-नाट्टम् सामूतिरीप्पाडु नाम से भी जाने जाते हैं। गुरु-वायूर कृष्णभगवान् के ये अनन्य भक्त थे। इनके गुरु श्री कृष्णप्पिषारडी थे।

'कृष्णगीति' या 'कण्णगीति' आठ कथाओं में विभक्त है जो इस प्रकार हैं—(१) अवतार, (२) कालिय-मर्दन, (३) रासक्रीड़ा, (४) कंसवध, (५) स्वयंवर, (६) बाणयुद्ध, (७) विविदवधम, (८) स्वर्गा-रोहण। इस तरह आठ कथाओं में विभक्त होने के कारण प्रस्तुत कृति 'कृष्णाष्टकम्' नाम से भी जानी जाती है। इसके अतिरिक्त इनकी एक अन्य रचना 'पूर्वभारत-चम्पू' भी बताई जाती है जो महाभारत पर आधारित है।

एन० रा० ना०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोविन्दनाथन

गोविन्दनाथन का समय १७वीं शताब्दी माना जाता है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। इनकी चार रचनाएँ मिलती हैं— गौरी 'कल्याणं यमक काव्य', 'शंकराचार्य चरितं', 'श्री स्वयंवरं' तथा 'गोपिकोन्मादं' (रासक्रीड़ा-सम्बन्धी)। इनकी कृतियों में प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति व्यक्त हुई है। इसके प्रमाण में दो उद्धरण पर्याप्त होंगे—

(१)

वृन्दारण्ये विलसति शरच्चन्द्रिकायां निशायां
गोपस्त्रीभिः कलमुरलिकानादसम्मोहिताभिः
रासक्रीडामधिक मधुरामादधानं युवानं
वन्दे मूर्द्ध्ना वलभिदुपलश्यामलांगं मुकुन्दं।

'सुन्दरवंशी की मधुर ध्वनियों से सम्मोहित गोपबालाओं के साथ शरत्पूर्णिमा की चाँदनी रात में वृन्दावन में रासरासेश्वर विलास कर रहे हैं।

रासलीला को (अपेक्षाकृत) अत्यन्त माधुर्य प्रदान करनेवाले, युवा, इन्द्र के वज्र के समान श्याम सलोने मुकुन्द कृष्ण को मैं नतशिर होकर प्रणाम कर रहा हूँ।'

अंबलप्पुषा के श्रीकृष्ण की स्तुति—

(२)

नालं वालमृगीदृशां कुचतटाद्व्यावर्तितं कुत्रचि-
न्नालं का सरसेषु काव्य सरसा लापेष्वनालोचितुं
लोलं मे हृदयं तथापि गगन स्रोतस्विनीसंगिनं
लोलंबद्युति लोभनीयवपुषं बालं बतालंबते।

'मेरा मन बड़ा चंचल है। यह किशोरियों के उभरते कुचों को देखने से बाज नहीं आता। सरस काव्यकला के रसास्वाद में कुछ कहे बिना सन्तुष्ट नहीं होता।

इतना लोल यह मेरा चंचलतम हृदय है, फिर भी आकाशगंगा के समान शोभायमान, भ्रमरश्यामल, ललचाई आँखों में भरकर देखने योग्य अनिन्द्य सौंदर्य-समृद्ध शरीरवाले बालकृष्ण पर निश्चय ही टिक जाता है।'

एन० रा० ना०

चन्द्रशेखर वारियर

चन्द्रशेखर वारियर का जन्म केरल में पेरियार नदी के उत्तर किनारे पर परमेश्वर मंगलम् नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने तत्कालीन कोचीन के राजा राजराज की आज्ञानुसार 'श्रीकृष्णचरितम्' काव्य की रचना की थी। इसका प्रतिपाद्य भागवत दशमस्कन्ध की कथा है। यह कुमारकाण्ड, विवाहकाण्ड और विचित्रकाण्ड नामक तीन काण्डों में विभाजित है। इसमें कुल १२ सर्ग हैं।

एन० रा० ना०

चीरकुषि भवदासन नम्पूतिरि

चीरकुषि भवदासन का जन्म दक्षिण मलाबार के कोट्टक्कल से बारह मील दूर तकरपुरम् में सन् १७८५ ई० में हुआ था। ये कृष्ण के भक्त थे। राजा सोमतिरि के घराने की किसी रानी की आज्ञा से इन्होंने भागवत के एकादश स्कन्ध की टीका लिखी थी। अपने जीवन में ये कृष्ण की इष्टदेवरूप में आराधना करते रहे। इनकी परधाम-यात्रा सन् १८५५ ई० में हुई।

इनकी भक्तिभावना के व्यंजक दो श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कृष्णं मरकतश्यामं भक्तानामथ कर्षिणं
सदानन्द चिदात्मानं परंगुरुमुपास्महे।

'भक्तों को शाश्वत आकृष्ट करनेवाले मरकतवर्ण श्यामसुन्दर सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, परमगुरु हैं। हम उनकी उपासना करते हैं।'

एक विष्णु-शिवस्तोत्र देखिये—

नित्यं यस्योत्तमांगे घनकुसुमरुचा
भाति दिव्यः कलापो,
वामांगे चापि गौरी त्रिभुवनरमणी
यस्य कान्ते नितान्तं।
यो वा कंसं जघानाखिलभयजनकं
योजितः कामदाता,
देवो मे देहसौख्यं वितरतु कृपया
केशवो वा शिवो वा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जिसके शिर पर कुसुमकान्त मोरपंख सुशोभित हैं, जिसके वामांग में त्रिभुवनसुन्दरी राधिका विराजमान है, जिसने कंस का वध किया, जो भक्तों के वशीभूत है, जो इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है, ऐसा भगवान् कृष्ण मुझे सुखी बनावे। जिसके शिर पर दिव्य चन्द्र का आभूषण है, जिसके बायें भाग में त्रिभुवनसुन्दरी पार्वती विराजमान रहती है, संसार को भय प्रदान करनेवाले त्रिपुर को जिसने मार डाला, जिसके द्वारा कामदेव दग्ध हो गया ऐसा भगवान् शंकर मेरा कल्याण करे।'

एन० रा० ना०

चेंबै वैद्यनाथ भागवतर

चेंबै वैद्यनाथ भागवतर आधुनिक युगीन केरल के प्रसिद्ध कृष्णभक्तों में हैं। पालक्काट् जिले के चेंबै नामक गाँव में सन् १८९६ ई० में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता अनन्त भागवतर थे, जो स्वयं एक बड़े संगीतज्ञ थे। वैद्यनाथ ने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताजी से ही प्राप्त की। संगीत-कला से इनके परिवार का अटूट सम्बन्ध पहले से ही था। आपने अनेक प्रसिद्ध गुरुजनों से संगीत-कला में अथाह ज्ञान अर्जित किया। आपकी स्वरमाधुरी अपूर्व एवं विलक्षण थी। संगीत-ज्ञान के साथ सोने में सुगन्धि की भाँति स्वर-माधुरी भी समा गयी तो संगीत-प्रेमियों ने चेंबै के संगीत का मुक्तमन से स्वागत किया। इनकी संगीत-सभाओं में संगीत-प्रेमियों की भारी भीड़ लग जाती थी। ये अपनी कला से श्रोताओं को आनन्दसागर में निमग्न कर देते थे।

ये श्रीकृष्ण के बड़े भक्त थे। अपने इष्टदेव की मूर्ति के सम्मुख वैद्यनाथजी घण्टों स्वर-साधना करते थे। जीवन की एक घटना ने उन्हें श्रीकृष्ण का परम-भक्त एवं चिरऋणी बना दिया। एक बार जब एक बड़ी संगीत-सभा में वैद्यनाथजी गानालाप में मग्न थे, तब अचानक उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। स्वरप्रवाह एकदम रुक गया। कण्ठ से स्वर निकलता तक नहीं था। वैद्यनाथजी अतीव दुःखी हुए। अपने इष्टदेव के चरणों के सिवा इनके लिए अन्य कोई शरणस्थल नहीं था। इन्होंने गुरुवायूर के श्रीकृष्ण मन्दिर में जाकर अपनी इष्टमूर्ति कृपानिधि कृष्ण से स्वर-माधुरी लौटा देने की विनम्र प्रार्थना की। कई दिनों तक उस मन्दिर में श्रीकृष्ण-भजन में लगे रहे। आपने यह प्रतिज्ञा की कि स्वर-माधुरी की पुनः प्राप्ति के बाद ही घर जायेंगे। परम आश्चर्य की यह बात हुई कि इन्हें अपनी विनष्ट नाद-माधुरी पुनः प्राप्त हो गई। इसके बाद उन्होंने भावविभोर होकर अपनी उपासना-मूर्ति के सामने साष्टांग प्रणाम किया और इरयिम्मन-तम्पी के प्रसिद्ध कृष्ण-संकीर्तन का आलाप किया—

करुणा चेय्वानेन्तु तामसं कृष्णा!
कष्लिण कै वणङ्डिट्टुन्नेन्॥

'हे कृष्ण, हे कृपामूर्ते! कृपा करने में इतनी देर क्यों? मैं आपके चरण-युगल की वन्दना कर रहा हूँ।'

इस घटना के बाद ये पहले की भाँति पुनः संगीत-सभाओं में सम्मिलित होने लगे। गुरुवायूर के मन्दिर में लगातार इनकी संगीत-सभायें चलती थीं। जब उनके मधुर कण्ठ से भक्तिरसपूर्ण गान-धारा निःसृत होती थी, तब श्रोतागण पुलकित होकर उन्हें साधुवाद देते थे। भगवान् का संगीतार्चन करके ये स्वयं अपार आत्मतृप्ति का अनुभव करते थे। अक्तूबर १६ सन् १९७४ ई० को इस कृष्ण-भक्त कर्णाटक संगीत-सम्राट् का देहान्त हो गया। इनकी पुण्यस्मृति में आज भी प्रतिवर्ष गुरुवायूर के कृष्ण-मन्दिर में संगीत-सभा चलती है। इनका गाँव चेंबै इनके जन्म लेने के कारण ही प्रसिद्ध हो गया है। वहाँ भी प्रतिवर्ष 'चेंबै-स्मारक संगीत महोत्सव' मनाया जाता है।

एस० तं० अ०

चेन्नास नारायणन नंपूतिरिपाट

चेन्नास नारायणन का जन्म सन् १४२८ ई० में हुआ था। पिता का नाम नारायण था। ये सकुटुम्ब पोन्नानी में रहते थे। वहाँ के राजा मानविक्रम की आज्ञा से इन्होंने मंदिरों की पूजाविधि के रूप में 'तंत्रसमुच्चय' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देव-मंदिरों के निर्माण, पूजाविधि आदि का सविस्तार निरूपण किया गया है। 'तंत्रसमुच्चय' में जिन देवताओं की पूजाविधि दी गई है, उनमें भगवान् कृष्ण की भी स्तुति है :

> ब्रह्मार्क वैश्रवणकृष्ण सरस्वती श्री
> गौर्यग्रजा ददतु काल्यपि मातरो मे।
> क्षेत्राधिपो गुरुरुजिदगिरिशादिरूपा
> इन्द्रादयोपि नमतेऽभिमतं प्रसन्नाः।

'ब्रह्मा, सूर्य, कुबेर, कृष्ण, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरीगुरु, महाकाली, अन्य मातृवर्ग, क्षेत्रपाल, बृहस्पति और शंकर इत्यादि सभी देववृन्द प्रसन्नतापूर्वक उनकी वन्दना करते हैं।'

एन० रा० ना०

चेरुश्शेरी नंपूतिरि

मलयालम के कृष्णभक्त कवियों में चेरुश्शेरी नंपूतिरि का स्थान अन्यतम है। बड़े ही खेद की बात है कि अन्य प्राचीन कवियों की भाँति इस प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवि का जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, माँ-बाप, यहाँ तक कि इनके असली नाम तक का भी ठीक पता नहीं चलता। यह माना जाता है कि चेरुश्शेरी कवि के घराने का नाम है तथा नंपूतिरि शब्द केरल के ब्राह्मण जातिविशेष को सूचित करता है। पहले से हा घराने के नाम के साथ जातिविशेष जोड़कर नाम चलने की प्रथा केरल में प्रचलित थी। यही कारण है कि ये कवि भी चेरुश्शेरी नंपूतिरि नाम से अभिहित किये जाते इन्होंनेहैं। मलयालम में 'कृष्णगाथा' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है।

'कृष्णगाथा' नामक काव्यकृति के प्रारम्भिक एवं अन्तिम अंशों से यह सूचना प्राप्त होती है कि आप कोलत्तुनाट्टु के राजा की आज्ञा के अनुसार 'कृष्णगाथा' का गायन कर रहे हैं। 'कृष्णगाथा' के प्रारम्भ में कहा गया है—

> पालाषि मातुतानं पालिच्चु पोरुन्न
> कोलाधिनाथ नुदयवर्म्मन्
> आज्ञये चेय्कयालज्ञनायुल्ल ज्ञान्
> प्राज्ञनेन्निङ्ङने भाविच्चिप्पोल्।

'कोलत्तुनाट्टु के नरेश उदयवर्मन की आज्ञा पर पामर होते हुए भी मैं पण्डित के बहाने यह रच रहा हूँ।'

'कृष्णगाथा' के अन्त में भी इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

> आज्ञया कोलभूपस्य
> प्राज्ञस्योदयवर्मणः
> कृतायां कृष्णगाथायां।

स्पष्ट है कि कवि ने कोलदेश के राजा उदयवर्मन की आज्ञा पर 'कृष्णगाथा' की रचना की है। इससे यह भी विदित होता है कि ये कवि कोलनरेश के समकालीन हैं। इस आधार पर विद्वानों ने इनको कोलत्तुनाट्टु नामक राज्य के प्रसिद्ध पंडित राजा उदयवर्मन के दरबार का सदस्य माना है। केरल प्रदेश के इतिहास से यह प्रकट होता है कि राजा उदयवर्मन का शासनकाल सन् १४४६ और १४६५ ई० के बीच का रहा है, अतः 'कृष्णगाथा' का रचना-काल भी इसके आसपास माना जा सकता है। यों इनका जीवन-काल सन् १४०० और १४७५ ई० के बीच माना गया है। इनके जीवन-वृत्त-सम्बन्धी अन्य बातें अभी अज्ञात हैं।

'कृष्णगाथा' और 'भारतगाथा' नामक दो कृतियाँ चेरुश्शेरी कृत समझी जाती हैं। कतिपय विद्वान् 'भारतगाथा' को किसी दूसरे कवि द्वारा विरचित मानते हैं। जो भी हो, मात्र 'कृष्णगाथा' ही इनके यश को अक्षुण्ण रखने में सर्वथा सक्षम है। कुछ विद्वानों ने 'कृष्णगाथा' के इनके द्वारा विरचित होने पर प्रश्न-चिह्न लगाया है। किन्तु केरल में 'कृष्णगाथा' के साथ चेरुश्शेरी का नाम इस भाँति जुड़ा हुआ है कि उससे इनका नाम अलग नहीं किया जा सकता।

'कृष्णगाथा' के प्रणयन की प्रेरणा-विषयक एक मनोरंजक कहानी केरल में प्रचलित है। उन दिनों राजा लोगों का मुख्य विनोद शतरंज का खेल होता था। एक दिन राजा उदयवर्मन अपने दरबारी कवि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेरुश्शेरी नंपूतिरि के साथ शतरंज खेल रहे थे, दूसरे कमरे में रानी अपने नन्हे बच्चे को पालने में लिटाकर सुमधुर स्वर में लोरी गा-गाकर सुला रही थी। रानी भी शतरंज के खेल से पूर्णतया अभिज्ञ थी और पालने को झुलाते हुए भी वह अत्यंत ध्यान से खेल देख रही थी। जब रानी ने देख लिया कि उसके पति के हारने की स्थिति आ गई है तो उसने मधुर स्वर में निम्नांकित पंक्तियाँ गाकर राजा को यह सुझाव दिया कि वे प्यादे को आगे बढ़ा दें।

उन्तुन्तु न्तुन्तुन्तु न्तुन्तुन्तु।
उन्तुन्तु न्तुन्तुन्तु न्तुन्तुन्तु॥

पत्नी की सुरीली तान राजा के कानों तक पहुँच गई। वे पत्नी का संकेत समझ गये और प्यादे को आगे बढ़ाकर खेल में बाजी मार ली। रानी के गाने का मधुर स्वर अभी राजा के कानों में गूँज रहा था। रसिक राजा ने अपने दरबारी कवि चेरुश्शेरी से अनुरोध किया कि वे रानी के गान के राग-तान के अनुकूल कृष्णकथा का गायन करें। आश्रयदाता के इसी अनुरोध पर कवि ने 'कृष्णगाथा' का प्रणयन किया।

'कृष्णगाथा' मलयालम भाषा के भक्ति-साहित्य की सुकोमल, सुन्दर एवं अनूठी रचना मानी जाती है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर विरचित होते हुए भी यह रचना कवि की रंग-बिरंगी कल्पनाओं, स्वभावकथनों, मौलिक उद्‌भावनाओं एवं सर्वोपरि कोमलकांत पदावली के कारण नितान्त मौलिक एवं हृदयहारी बन पड़ी है।

मलयालम-साहित्य में 'कृष्णगाथा' के लिए 'कृष्णप्पाट्टु' चेरुश्शेरीपाट्टु नाम भी प्रचलित है। 'कृष्णगाथा' में प्रयुक्त 'गाथा' शब्द का अर्थ कथा नहीं बल्कि द्रविड़ भाषागान (पाट्टु) है। अतः 'कृष्णगाथा' और 'कृष्णप्पाट्टु' दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

इसके रचयिता कवि और उनकी कृति पर भागवत दशमस्कन्ध का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है। ग्रन्थ में आद्यन्त कवि की भक्ति प्रकट है। 'कृष्णगाथा' में मंजरी (गाथा) छन्द का प्रयोग होने से उसमें कवि को संस्कृत-पदों के अधिक प्रयोग के लिए अवसर नहीं मिला है। अर्थालंकारों के प्रयोग में मलयालम-साहित्य में इनका स्थान अद्वितीय है—इस सम्बन्ध में एक उक्ति प्रचलित है—'उत्प्रेक्षा कृष्णगाथायाम्'। प्रकृति-वर्णन हो या स्वभाव-निरूपण, सभी के प्रतिपादन में ये अत्यधिक निपुण हैं। इनकी रचना का एक वैशिष्ट्य यह है कि उसमें भक्ति और हास्य-रस का अपूर्व समन्वय है, तो भी रौद्र, भयानक आदि अन्य रसों का भी वर्णन इसमें उपलब्ध है। इनकी रचना में ध्वनि का भी महत्त्व है। समस्त 'कृष्णगाथा' को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में कृष्णोत्पत्ति से लेकर अक्रूरागमन तक की कथा है। दूसरे भाग में कंस-सद्‌गति से लेकर कृष्ण के स्वर्गारोहण तक का वृत्त वर्णित है। इसमें कुल ४७ कथाएँ हैं। इनमें कंस के वध तक का भाग अपेक्षाकृत सुन्दर है। बाद के रुक्मिणी-स्वयंवर, सौभद्री कथा आदि कई अंश भी आस्वाद्यपूर्ण हैं। भागवतकार के समान चेरुश्शेरी को भी अपनी रचना के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं के वर्णन में विशेष रुचि लक्षित होती है।

कृष्णगाथाकार की चित्रात्मक वर्णन-कुशलता द्रष्टव्य है। जिन्होंने एक बार प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्ययन किया है, उनके हृदय में इसके चित्र सदैव अंकित रहेंगे। कृष्ण की बाललीला का एक चित्र नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

मानिच्चुनिन्नच्छन कुम्पिडुं नेरत्त-
ङानकलिक्कुं मुतुक्किलेरि;

× × ×

'जब कृष्ण के पिता नन्द बड़े भक्तिभाव से भगवान् को साष्टांग प्रणाम कर रहे थे तो बालकृष्ण उनकी पीठ पर चढ़कर हाथी का खेल खेला करते थे।'

कृष्ण अपने साथी बालकों के साथ जो शरारतें करते थे उनका वर्णन पढ़ते ही बनता है—

उण्णिक्किडाङ्ङलुरङ्ङुन्न नेरत्तु
नुल्लियुणर्त्तिवशंकेडुक्कुम।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'छोटे-छोटे बालक जब सोते थे तब कृष्ण उन्हें नोंचकर जगाते थे। यही नहीं, जब वे भोजन करते थे तब उनको बहुत हँसाते थे जिससे उनको बहुत कष्ट होता था।'

भगवान् के वेणुगान का माधुर्य कवि के मुख से ही सुनिये—

षळ्प्पदंमालकळत्भुतमायारु
पुष्परसत्ते वेडिञ्ञुडने
गानमाय् मेविन तेनेक्कुडिप्पाना-
याननम् तन्निले चेन्नुपुक्कु।

× × ×

वेगत्तिल पोकुन्न कालिन्दी तानङ्ङु
रागत्तेक्केट्टोरु नेरत्तप्पोल्
एरिन वीचिकजाळमकन्नुड-
नेतुमनङ्ङाते निन्नुपोयी।

× × ×

मुल्लतुडङिङन वल्लिकलोरोन्ने
वल्लवीवल्लभन पाडुन्नेरम्
मेल्लेन्निरङिङ मरङ्ङलिल निन्नङ्ङु
पल्लवमाण्डु तन्मुन्निल्च्चेन्नु।

'श्रीकृष्ण का मुरलीगान सुनकर भ्रमरगण मधुर पुष्परस को भी छोड़कर वेणुनादरूपी मधु पीने के लिए कृष्ण के मुख पर जा बैठे।

बहुत तेज बहनेवाली कालिन्दी नदी भी कृष्ण का वेणु-नाद सुनकर निश्चल हो गयी और उसमें उठनेवाली तरंगें बिलकुल शान्त हो गईं। बेले की लताएँ पेड़ से नीचे उतरकर नव पल्लवों से युक्त होकर श्रीकृष्ण के सामने गयीं।'

'कृष्णगाथा' के कृष्ण केरलीय वातावरण में जीनेवाले केरल के बालक हैं। उनका स्वभाव, रीति-नीति, आचार-विचार सब बिल्कुल केरल का है। यह इस कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

लोक मानस में अवतार-पुरुषों में अग्रगण्य श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति को तीव्र बनाना प्रस्तुत रचना के पीछे कवि का महान् उद्देश्य है। ललितकोमलकान्त पदावली में रचित यह कृति सभी स्तर के लोगों के लिए आस्वाद्य है।

कृष्णभक्ति में सराबोर होकर कवि ने जिस अनूठे काव्य का सृजन किया है वह आज भी केरल के आबालवृद्ध लोगों का कंठहार बना हुआ है।

कविवर चेरुश्शेरी ने ऐसे माखनचोर कान्ह का चित्र खींचा है जो एक हाथ में मक्खन रखकर माता से कहता है कि हे माता! एक हाथ में मक्खन रखने से दूसरा हाथ ललचकर रो उठता है।

कृष्ण के मुरली-वादन के अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि वंशी-ध्वनि सुनकर वृन्दावन का हर एक प्राणी मन्त्रमुग्ध हो जाता है। वृक्ष मन्त्राभिभूत हो पुष्पवर्षा करते हुए शाखाओं को झुकाकर श्रद्धावनत हो जाते हैं, कालिन्दी निःस्तब्ध हो जाती है। साक्षात् ब्रह्मा को यह नाद सामगान-सा प्रतीत होता है, जीवन्मुक्तों को यह परमतत्त्व का आस्वादन कराता है और भक्तों के लिए सायुज्यभक्ति का द्वार उन्मुक्त करता है।

'कृष्णगाथा' वस्तुतः एक भक्तकवि के भक्तिरस-सिक्त हृदय से निःसृत काव्यधारा है। कृष्णभक्ति को ललित एवं सुकोमल पदावली में प्रस्तुत करके कवि ने जनता के लिए भी सुगम बनाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। ग्रन्थ के अन्त में कवि का यह कथन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कवि की अटल निष्ठा का द्योतक है। ग्रन्थ को समाप्त करते हुए महाकवि चेरुश्शेरी आशा करते हैं कि इहलोकवास के अन्त में जब वे गोलोक के लिए प्रयाण करेंगे तो 'कृष्णगाथा' के रचयिता के रूप में उनका बड़ा आदर-सम्मान होगा तथा वे भगवान् कृष्ण के सम्मुख उपस्थित किये जायेंगे। वहाँ वे भगवान् के चरणारविन्दों को अपने हाथों से सहलाकर छाती से लगायेंगे तथा उन्हें अपने अश्रुजल से सींचते-सींचते आत्मनिर्वृत्ति पायेंगे। इस अवसर पर वे यह भी परखकर देखेंगे कि उन्होंने भगवान् के पादपद्मों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रेखाओं का जैसा वर्णन अपनी कृति में किया है वह ठीक है कि नहीं ? कवि की भगवद्भक्ति का कैसा उदात्त रूप इन पंक्तियों में उपलब्ध होता है ? सम्बद्ध छन्द इस प्रकार हैं—

(१)

पातकं वेरट्ट पाणियेक्कोंटवन्
पादङ्ङल्... मेल्लेन्नेटुत्तु पिन्ने
नोटु निन्नीटुमेन्मारत्त चेत्तुनि-
न्नेटं तेलिञ्ञु पुणर्न्नु मेन्मेल

अपने पापविमुक्त हाथों से मैं उन (भगवान्) के श्रीचरणों को धीरे से उठा लूँगा और फिर अपनी छाती से लगाकर मैं मुक्तमन से बार-बार उनका आश्लेषण करूँगा।

(२)

गाथयिल् चोन्नुल्ल रेखकलोरेन्ने
बाधयेक्कैविट्टु नोक्कि नोक्कि
मेल्लेमेल्लेन्नु तलोटि निन्ननेरं
पल्लवं वेल्लुव प्पादङ्ङले
पाणिकलक्कोटुन्नोरानंदं पूरिच्चु
वाणीडन्नेणमे दैवमे ञान।

भगवान् के श्रीचरणों को सहला-सहलाकर मैं कृष्णगाथा में वर्णित रेखाओं का निर्बाध निरीक्षण करूँगा। यों धीरे-धीरे उनके कोपलों से भी कोमल चरणों को सहला-सहलाकर मेरे कर अनुपम आनन्द प्राप्त करेंगे। हे भगवान ! उस परम आनन्द का पान करके आपके ही पास रहने का सौभाग्य मुझे मिल जाय।

चेरुश्शेरी का एक अन्य भक्तिपरक पद इस प्रकार है—

(३)

पेरुताचुल्लोरु दुरितवारिधि
तरणमेङ्ङलाक्कु वरमेक
यतिनुनिन्नुटे चरणसेवया
मरियोरु तोणि यरुलेटणं
अटिमयायपुवकोरिवरे ञानेन्नु
वेटियुन्निल्लन्न निनवाले
अषल् तीर्त्तोटुं निनकषलिल चेर्पोरु
कनिवुंटाकेणमिनियय्यो !

दुःख-दुविधाओं के अथाह सागर को पार करने के लिए हे भगवान ! मुझे वर दे दें।

उसके लिए अपनी चरण सेवा रूपी नौका प्रदान करें।

इस चरणदास को अपना ही सेवक समझकर, दुःख निवारणमूलक अपने चरणों में ही बसने देने की कृपा करें।

इस अपार भवसार को पार करने के लिए आप हमें अपनी चरण-सेवारूपी नौका दे दें। आपसे हम सेवकों की यही विनम्र प्रार्थना है कि अपने चरण-कमलों में हमें शरण दे दें।

'कृष्णगाथा' के अतिरिक्त 'भारतगाथा' में भी कृष्णविषयक सामग्री उपलब्ध है। 'भारतगाथा' के लिए 'भारतम्-पाट्टु' और 'चेरुश्शेरीभारतम्' नाम भी प्रचलित है। यह रचना कृष्णगाथा के समान एक उत्कृष्ट ग्रन्थ नहीं है। यत्र-तत्र विषयवस्तु में साम्य है तथापि वर्णनशैली में बहुत अधिक अन्तर है।

काव्यशास्त्रीय लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो 'कृष्णगाथा' का विषय प्रख्यात अर्थात् पुराणादि से सम्बद्ध है। कवि ने कृष्ण को एक आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित किया है। कृष्ण के विविध रूप 'कृष्णगाथा' में द्रष्टव्य हैं। पहले उनको वसुदेव-देवकी और यशोदा-नन्दगोप के पुत्र के रूप में, उसके बाद गोपिकाओं के प्रेमी एवं सज्जनविद्रोही कंस के विनाशक के रूप में तथा अन्त में सज्जनों के उद्धार करनेवाले भक्तवत्सल के रूप में चित्रित किया गया है।

कृष्ण के वात्सल्य-वर्णन में कवि के भावसम्पन्न हृदय की प्रभावक्षमता देखी जा सकती है। बाललीला-वर्णन के सन्दर्भ में कृष्ण के दाँत निकलने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पल्लवं पूण्डोरु मुल्लयां वल्लिमेल्
उल्लासमोट्टुकळेन्नपोले ।

'कोंपलों से युक्त जूही की लता पर सुन्दर कलिकाओं के सदृश कृष्ण के मुंह में दूध के दाँत निकल आये।'

'कृष्णगाथा' का प्रमुख गुण पाठकों में काव्य रसास्वादन की क्षमता पैदा करना है। यहाँ 'रस' से तात्पर्य नवरस से नहीं, अपितु वर्ण्यवस्तु से पाठकों के हृदय में उत्पन्न होनेवाले भावों एवं विकारों से है। इसका कारण भावनाशक्ति एवं अर्थालंकारों का प्रयोग है।

भागवत का मुख्य उद्देश्य भक्तिरस का प्रतिपादन है, वही 'कृष्णगाथा' का भी है। सरलतम सुन्दर शैली में साधारण लोगों के हृदय में भक्ति-भावना जगाना ही कृष्णगाथाकार का लक्ष्य है। इस दृष्टि से इसके अन्त में भगवान् की स्तुति के रूप में दिये गये पद्य विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन स्तुतियों में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य एवं गुणों का वर्णन है। १५वीं-१६वीं शताब्दी में केरलीय कवियों की एक सामान्य प्रवृत्ति यह भी थी कि वे कथा का वर्णन करते समय बीच-बीच में भक्तिरसपूर्ण कीर्तन लिखते थे और अवतारों का वर्णन करते समय भी भक्तिभाव की त्रिवेणी बहाने का प्रयत्न करते थे। उदाहरणार्थ एक स्तुति-गीत दिया जा रहा है :

मदकरिनाशकनायवने ! हरो
ममता वेडिञ्ञवर नाशकने ! हरी
मंलिपुकष्बाणने वेन्नवने ! हरी
मनसिजवैरियोडेट्टवने ! हरी
मकरमुखायितकुण्डलने ! हरी
मुकुरमनोहरगण्डकने ! हरी
महितमहामुनिवन्दितने ! हरी
मणिगणमण्डित सुन्दरने ! हरी
मणमेषु मालकळ् पूण्डवने ! हरी
मंजुलशिंजितनूपुरने ! हरी

'हे हरि ! तुम भक्तों के दोषों के मत्त गजराजों को नष्ट करनेवाले सिंह हो, सांसारिक ममता के बन्धनों को दूर करनेवाले भगवान् हो, कामदेव को जीतनेवाले कामारि हो। काम भक्ति का शत्रु है, तुम उससे युद्ध कर भक्त की रक्षा करते हो। तुम मकर-कुण्डल धारण करते हो। तुम्हारी कपोल-पाली दर्पण के समान मसृण और चिकनी है। तुम पूज्य हो, महान् हो और मुनिजनवन्दित हो। तुम मणियों के आभूषणों से शोभित हो। हे परम सुन्दर ! तुम मणियों की माला और वनमाला धारण करते हो। बड़ी अच्छी तरह बजनेवाले नूपुर तुम्हारे चरणों में सुशोभित हैं।'

भागवत से हटकर 'कृष्णगाथा' में कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी परिलक्षित होती हैं। यही इस कृति की लोकप्रियता एवं महत्ता का रहस्य है। 'कृष्णगाथा' का कृष्ण एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति है; भागवत एवं सूरसागर के कृष्ण के समान अवतारी प्रभु नहीं है। चेरुश्शेरी ने कृष्ण की जीवन-पद्धति एवं संस्कारों को केरलीय वातावरण में चित्रित किया है। केरल की सामाजिक पृष्ठभूमि को एक मिथक के माध्यम से प्रस्तुत करनेवाला यह कवि सच्चे अर्थ में युगप्रवर्तक है। केरल की सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों और आचार-विचारों को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करनेवाले परवर्ती कुञ्चन नंप्यार आदि साहित्यकारों के लिए ये प्रेरणास्रोत हैं। भाषा-कामिनी को संस्कृत के बन्धनों से मुक्त करके केरल की प्रकृत भाषा के परिधान से वेष्टित कर इन्होंने काव्य को जनसाधारण के लिए आकर्षक तथा आस्वाद्य बनाया।

एन० रा० ना०
एस० तं० अ०

तरक्कल वारियर

तरक्कल वारियर का आविर्भाव-काल १५वीं शताब्दी माना जाता है। इनकी एकमात्र कृति 'पारिजातहरणचम्पू' है। इसका प्रतिपाद्य नरकासुर-वध और पारिजातहरण की कथा है। इसमें ९६ छन्द संस्कृत में तथा मलयालम भाषा में एक-एक गद्यभाग और एक दण्डक है।

एन० रा० ना०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताषमण परमेश्वर भट्टतिरि

ताषमण परमेश्वर भट्टतिरि के समय तथा जीवन-सम्बन्धी तथ्य अंधकाराच्छन्न हैं। ये तिरुवितांकूर के देवस्थानों में प्रसिद्ध चेंगन्नूर के श्रीपरमेश्वर मंदिर के देवता के परमभक्त थे। इन्होंने एक हजार श्लोकों में उनका स्तोत्र रचा था। 'नारायणीयम्' के समान ही इसकी भी प्रसिद्धि है। इसके दो भावपूर्ण छंद यहाँ प्रस्तुत हैं—

(१)

रविशशिगगनानिलानलांभः
क्षितिपुरुषाष्टकमित्यसि त्वमेकः
जगति विमृशतां न विद्यतेऽन्यत्
किमपि विभो! परमात्मने नमस्ते।

'सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और पुरुष इन आठों का एक अष्टक है। इन रूपों में भी तुम एक ही हो। संसार में इसके अतिरिक्त कोई अन्य विमर्श नहीं है। हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आपको प्रणाम।'

(२)

शोणाचलेश! पदपंकजयुग्मकं ते
जंघे च जानुयुगले च तपोरुयुग्मं
नाभिं तपोदरमुरोवदनं किरीट-
कोटी-लसच्छशिकलामवलोकयेहम्।

यहाँ सूर्योदय काल की चमत्कारी कल्पना का भावपूर्ण चित्रण नख-शिख-पद्धति से किया गयाहै। 'शोणाचल अर्थात् उदय पर्वत के हे प्रभु! आप ही स्वामी हैं। सर्वप्रथम उषःकालीन अरुणोदय में तुम्हारे युगल चरणकमल मैं देखता हूँ। उसके बाद पिंडलियाँ, घुटने, जाँघें, उरुप्रदेश, फिर नाभि, तप की तरह सूक्ष्म उदर, वक्षःस्थल और हे नाथ! किरीट के अग्रभाग से मानों चारु चन्द्रकला से उल्लसित सुन्दर तुम्हारा वदन मैं देखता हूँ!'

एन० रा० ना०

तुंचत्तु एषुत्तच्छन

मलयालम के भक्त कवियों में तुंचत्तु एषुत्तच्छन का स्थान सर्वोपरि है। ये एक परम सात्त्विक भक्त एवं ज्ञानी महात्मा थे। परमादर के साथ केरलवासी इन्हें तुंचत्तु आचार्य पुकारते हैं।

सानन्दरूपं सकलप्रबोधं
आनन्ददानामृत पारिजातं
मनुष्यपद्मेषु रविस्वरूपं
प्रणौमि तुंचत्तेषुमार्यपादम्।

ये पंक्तियाँ इस महान् भक्त कवि के प्रति केरलीय जनता के असीम आदरभाव को रेखांकित करती हैं।

'तुम समस्त रूपों में आनन्दसहित (उल्लसित) हो, समस्त ज्ञानरूप हो, आनन्द देनेवाले अमृतमय कल्पवृक्ष हो, मनुष्यरूप कमलों को विकसित करनेवाले सूर्य हो। हे तुंचत्तुएषु! आर्यश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ।'

एषुत्तच्छन के जीवनवृत्त-सम्बन्धी अधिकांश बातें अज्ञात हैं। इतना निश्चित है कि 'तुंचन्परंप्' में आपका जन्म हुआ था। मलाबार जिले के दक्षिणी भाग के पोन्नानी तालुके में तृक्कंटियूर नामक एक गाँव है। यह तिरूर रेलवे स्टेशन से एक मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ एक प्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। उस मन्दिर के पश्चिम ओर 'तुंचन्परंप्' नामक स्थान है। वहीं के एक पुराने घराने में एषुत्तच्छन् ने जन्म लिया था। तृक्कंटियूर शिवमन्दिर के पास 'तुंचन्परंप्' नाम का यह स्थान अब तक विद्यमान है। इनकी स्मृति में प्रशंसकों ने सरकार की सहायता से आजकल यहाँ एक स्मारक मन्दिर बना दिया है। अब भी केरल के लोग इस महात्मा के जन्म-स्थान के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं और उस स्थान को परमपुनीत समझते हैं। नवरात्र-पूजा के अवसर पर विजयादशमी के दिन केरलवासी अपने बच्चों को 'तुंचन्परंप्' में ले जाकर वहाँ की पुण्यभूमि में बैठाकर विद्या का श्रीगणेश करवाते हैं और इसे सर्वमंगलकारी समझते हैं। कोई-कोई 'तुंचन्परंप्' से रेत ले जाते हैं और उसी पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बच्चों को अक्षराभ्यास प्रारम्भ कराते हैं। 'तुंचनूपरंप्' में कुचले का एक बड़ा-सा पुराना पेड़ खड़ा है। लोगों का विश्वास है कि इसीके नीचे बैठकर आचार्यवर ने अपनी कृतियों का प्रणयन किया था। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि उस पेड़ के पत्ते अपना सहज कड़ुवापन लिये हुए नहीं हैं।

एषुत्तच्छन के वास्तविक नाम के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। कोई इनका नाम राम बताता है तो कोई रामानुजन् तथा अन्य रामानन्दन् उद्घोषित करते हैं। जो भी हो, केरलवासी इन्हें तुंचत्तु एषुत्तच्छन नाम से ही पुकारते हैं।

ऐसा माना जाता है कि एषुत्तच्छन अब्राह्मण थे। इनके माता-पिता के बारे में कोई निश्चित पता नहीं चलता। विद्वानों की धारणा है कि शिक्षा-प्राप्ति के क्रम में ये बहुत समय तक पर्यटनशील साधुओं की संगति में रहे। शिक्षा की समाप्ति पर इन्होंने कुछ समय तक अध्यापकीय वृत्ति से कालयापन किया। इसी समय ये गृहस्थ बने और इनके एक पुत्री भी पैदा हुई। फिर गृहस्थाश्रम छोड़कर ये देश-देशान्तर में घूमते-फिरते रहे। उस समय के कई आचार्यों से इनका मिलन हुआ तथा तमिष्, तेलुगु जैसी भाषाओं से भी ये अवगत हुए। कहा जाता है कि 'अध्यात्म-रामायणं' का अनुवाद आपने तेलुगु लिपि में लिखित रामायण से ही किया था।

अपनी कृतियों में एषुत्तच्छन ने रामाचार्य, नीलकंठ प्रभृति अनेक गुरुजनों की वन्दना की है। इससे प्रकट होता है कि इनके कई गुरु थे और उन सबमें इनकी अपार निष्ठा थी।

अन्तिम दिनों में आप घूमते-फिरते चिट्टूर नामक स्थान पर आये और उसकी प्राकृतिक सुषमा पर मुग्ध होकर वहीं रहने लगे। उसके समीप बहनेवाली पुण्यतोया शोक नाशिनी नदी के तटवर्ती जंगली प्रदेश को साफ-सुथरा करके आपने वहाँ एक श्रीराम-मन्दिर तथा एक शिव-मन्दिर की स्थापना की। वहाँ बारह मकान बनवाकर आपने बारह परदेशी ब्राह्मण-परिवारों को ठहरा दिया। स्वयं एक मठ बनवाकर उसी में रहने लगे। आपका बनवाया वह मठ 'रामानन्दाश्रम' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वहाँ वर्षों तक आपकी शिष्य-परम्परा चलती रही। अन्ततः उसी मठ में इनकी समाधि भी बनी। वहाँ अब भी प्रतिवर्ष एषुत्तच्छन की समाधि-तिथि मनायी जाती है।

एषुत्तच्छन के जीवनकाल के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कोई इन्हें सोलहवीं तो कोई सत्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न मानता है। किन्तु अधिकांश विद्वानों की राय है कि सोलहवीं शती ही इनका जीवनकाल रहा है। यह तो असंदिग्ध रूप से माना जाता है कि एषुत्तच्छन और मेल्पुत्तूर नारायण भट्टतिरि (केरल के प्रसिद्ध संस्कृत पण्डित तथा 'नारायणीयं' के रचयिता कवि) दोनों समकालीन थे। इन दोनों के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। वातरोग से पीड़ित होकर गुरुवायूर के श्रीकृष्ण-मन्दिर में रोग-मुक्ति के लिए श्रीकृष्ण का भजन करते समय मेल्पुत्तूर ने भगवान् का एक चरित 'नारायणीयं' नाम से लिखने का संकल्प लिया। काव्य की रचना के पूर्व उन्होंने एषुत्तच्छन से कुछ उपदेश देने का अनुरोध किया तो एषुत्तच्छन ने उस संस्कृतज्ञ ब्राह्मण से ठेठ मलयालम में 'मीन तोट्टु कूट्टणं' कहा। (प्रस्तुत कथन के मलयालम में दो अर्थ निकलते हैं—एक अर्थ जो जल्दी समझ में आता है—'मत्स्य चख लो' है तथा दूसरा अर्थ है—'मत्स्य से शुरू करो।') एषुत्तच्छन का उत्तर सुनकर पहले तो महापंडित ब्राह्मण आगबबूले हुए, किन्तु दूसरे ही क्षण वे भाँप गये कि एषुत्तच्छन का मन्तव्य मत्स्यावतार-वर्णन से काव्य आरम्भ करने से है।

एषुत्तच्छन केरल के ऐसे भक्त कवि हैं जो अपनी भक्तिप्रधान कविता के बल पर केरलीय जनता के हृदय के सार्वभौम सम्राट् बने। केरल का और कोई भी भक्तकवि ऐसा नहीं है जिसने केरलीय जनता पर इतना जबरदस्त प्रभाव डाला हो। मलयालम-साहित्य में एषुत्तच्छन का वही स्थान है जो हिन्दी में तुलसीदास तथा तमिष् में कंबर को प्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अध्यात्मरामायणम्', 'महाभारतम्', 'भागवतम्', 'किलिप्पाट्टु' आदि एषुत्तच्छन की कृतियाँ हैं। 'हरि-नाम-कीर्तनम्', 'चितासंतानम्' आदि भी आपकी रचनायें मानी जाती हैं। एषुत्तच्छन मूलतः भक्त-कवि थे। राम और कृष्ण दोनों इनके लिए एक समान थे। ये अपने को दोनों ही के दास कहते थे। 'महाभारतम्', 'भागवतम्' जैसी कृतियाँ एषुत्तच्छन की कृष्ण-भक्ति की अनुपम निदर्शन हैं। 'महाभारतम्', 'किलिप्पाट्टु' (शुकगीत) शैली में विरचित मलयालम-साहित्य का अनमोल ग्रन्थ है। श्रीकृष्ण के लोकोत्तर रूप की झाँकी 'महाभारतम्' में अंकित हुई है। भक्ति-रस में सर्वांग डूबकर कविता करते-करते कवि कभी-कभी अपने को भी भूल जाते हैं। 'भागवतम्' के 'कालियमर्दन' प्रसंग में भगवान् कृष्ण को कालिय नाग द्वारा डँसते देखकर इन से रहा नहीं ज़ाता है तो ये अनजान ही पुकार उठते हैं—"अरे, नन्द के प्यारे निरीह बेटे को कौन इस प्रकार सताता है? कोई पापी ही इस प्रकार का कार्य कर सकता है। हे भगवान्! आप मेरे हृदय-कमल में आकर विराजें और कहीं न जाएँ।"

अपनी कृतियों में कृष्ण का स्तुतिगान करते एषुत्तच्छन कभी अघाते नहीं। शुकबालिका से कृष्ण-कथा के गायन का अनुरोध करनेवाले कवि के उत्कट भक्तिभाव की एक झाँकी देखें—

शुकतरुणि जनमणियुमणिमकुटबालिके
चोल्लेटो चोल्लेटो कृष्णलीलामृतं
सुख विभवमतिलधिकमिह नहि नमुक्कहो
दुःखङङ्ङलुल्कांपिलोक्के नीङिङ तुलों।

'हे श्रेष्ठ शुकबालिके! शीघ्रातिशीघ्र कृष्णलीलामृत का गान करो, गान करो। उससे अधिक सुख-वैभव हमारे लिए और कुछ नहीं है, हमारे मन का दुःख भी दूर होता है।'

मलयालम के कृष्णभक्ति-काव्यों में एषुत्तच्छन के 'महाभारतम्' और 'भागवतम्' का सर्वाधिक महत्त्व है। यही कारण है कि केरल के लोग सन्ध्या समय इन ग्रन्थों का पारायण करते हैं और विश्वास करते हैं कि इनका पठन और श्रवण उनके सारे पापों को हरने में सक्षम है।

एषुत्तच्छन के दो भक्तिपरक छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

विश्वमायतुं नीये विश्वकारणं नीये,
विश्वकार्यवुं नीये विश्वपालनुं नीये,
विश्वतातनुं नीये विश्वमातावुं नीये,
विश्वरूपनुं नीये विश्वनायका पोट्टीं।

निष्कलनाकुन्नतुं सकलनाकुन्नतुं,
निर्गुणनाकुन्नतुं सगुणनाकुन्नततुं,
पुरुषनाकुन्नतुं प्रकृतियाकुन्नतुं,
पुरुषोत्तम! पोट्टी! निन्तिरुवटियल्लो।
पालय कृपालय! शरणं नारायण!

'हे कृष्ण! समस्त विश्व तू ही है। विश्व के लिए कारणभूत तू ही है, कार्य भी तू ही है। विश्वपालक भी तू ही है, विश्व का पिता भी तू है, माता भी तू ही है। हे विश्वनायक! स्वामी! तू ही साक्षात् विश्वरूप भी है। तू सदोष भी है, निर्दोष भी है। तू सगुण भी है, निर्गुण भी है। हे पुरुषोत्तम! स्वामी! तू पुरुष भी है, प्रकृति भी तू ही है। हे कृष्ण! कृपानिधे! तू ही हमारे लिए शरण्य है।'

पार्थसारथी श्रीकृष्ण की रूपछवि का वर्णन साक्षात्कारी कवि के शब्दों में देखें-सुनें—

(२)

निरन्न पीलिकल् निरक्कवे कुत्ति
नेरुकयिल् कूट्टि तिरमोटु केट्टि
करिमुकिलोत्त चिकुरभारवुं
मणिकल् मिन्निटुं मणिकिरीटवुं
कुनुकुनेचिचन्नुं कुरुनिरतम्मेल्
ननुननपोटिञ्ञोरु पोटि पट्टि
तिलकवमोट्टु वियर्धिनाल् नन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्नुलकुसृष्टित्तु भरिच्चु संहरि-
च्चिलकुन्न चिल्लीयुगल भंगियुं
अटियारेकुरिच्चोरु करुणयुं
कठिनदुष्टरोटेषुन्न कोपवुं
मट्टुमोषिमारिल् वलन्नं रागवुं

× × ×

पलवुमिङङ्ने नवनवरस-
मिटयिटेक्कूटिकलर्न्नं नेत्रवुं

× × ×

पदसरोरुहयुगवुमेन्तुटे
हृदयं तन्निलङिङ रिक्कुं पोलेय-
म्मणिरथं तन्निलकं कुलुक्कंवे
मणिवर्णन् तन्ने तेलिज्जु कण्टू जान्।

'श्रीकृष्ण के सिर पर बाल अत्यन्त सुन्दरता से बाँधे गये हैं और उस पर मोरपंख श्रेणी में रखे गये हैं। काले बादलों के सदृश साँवले रंग के घुंघराले बाल, मणियों से चमकता मुकुट, धूलि-धूसरित अलक, पल में समस्त प्रपंच की सृष्टि, स्थिति और संहार करने की क्षमता रखनेवाली भौंहें, भक्तों की ओर का कृपा-कटाक्ष, क्रूर शत्रुओं के प्रति क्रोध, मधुर-भाषिणी नारियों के प्रति प्रेम का भाव, लड़ाई-झगड़े को देखकर उत्पन्न अद्भुत भाव, चपलों की चपल वृत्ति देखकर हास्यरस, सामना करनेवालों के लिए अतीव भयंकर, क्षण-क्षण में बदलते हुए नवरसों की झलक अंकित करनेवाली आँखें, मकराकृति के कुण्डल, कुण्डल की छाया की छवि से शोभित कपोल, कमल-मुख, पसीने से तर नाक, मीठी मुस्कराहट, अधर की शोभा, तुलसी और कमल दोनों की माला, मोती का हार, कौस्तुभमणि से चुम्बित ग्रीवा, चाबुकयुक्त हस्त, कुंकुम लगी हुई छाती, पीतवसन और मंजुल पादपद्मों को मैंने अपने नेत्र और हृदयभर देख लिया। जैसे वे मेरे हृदय में आसीन हैं वैसे ही वे रथ में विराज रहे हैं।'

एस० तं० अ०

देवनारायणन

देवनारायणन नारायण भट्टतिरि के समकालीन, पहुँचे हुए भक्त और भक्तों तथा कवियों के आश्रय-दाता राजा थे। भट्टतिरि अधिक समय तक इन्हींके यहाँ रहे। इनकी कोई रचना प्राप्त नहीं होती। इनके द्वारा लिखी गई 'वेदान्तरत्नमाला' नामक कृति की चर्चा मिलती है, किन्तु वह अप्राप्य है।

एन० रा० ना०

नारायण नंपूतिरि

नारायण नंपूतिरि के सम्बन्ध में केवल इतना पता चलता है कि ये १६वीं शताब्दी में विद्यमान थे। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार इन्होंने कृष्णभक्तिपरक अनेक रचनाएँ की थीं। उदाहरण के लिए एक श्लोक प्रस्तुत है—

शंसाकल्पं मरकतमणि या शतमख=
इन्द्रकामणि श्यामलं कोमलांगं
तालीपत्रश्रवणयुगलं तत्र गोपी कदंबं
दृष्ट्वा दृष्ट्योस्सुखमनुभवन् मास्म भूरुत्सुकस्त्वं
कस्याशास्यं न भवति नवं यौवनं कामिनीनां।

'अत्यन्त प्रशंसा के योग्य, शतशत मरकत मणियों की छटा के समान श्यामल, स्वाभाविक सौकुमार्य-सम्पन्न अंगोंवाले तथा दोनों कानों में तालीपत्र के कर्णफूल लगाये हुए गोप-किशोरियों का समूह वहाँ (अत्यन्त आकर्षक) है।

एक सखा कृष्ण से व्यंग्योक्ति करते हुए कह रहा है कि हे कृष्ण! उन सुन्दरियों को, गोपवधूटियों को देखकर दृष्टि-सुख का, नेत्रोत्सव का, अनुभव करते हुए तुम उत्सुक (कामवशीभूत) मत हो जाना! क्योंकि कामिनियों के नवयौवन को निहारकर कौन मुग्ध नहीं होता?'

एन० रा० ना०

निरणं अथवा कण्णश कवि

मलयालम में भक्ति-साहित्य का श्रीगणेश करने-वाले रचनाकारों में निरणं कवियों का विशेष महत्त्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। ये कण्णश कवि भी कहे जाते हैं। ये तीन हैं—(१) माधव पणिक्कर, (२) शंकर पणिक्कर और (३) राम पणिक्कर। तीनों कवियों ने प्राचीन मलयालम-साहित्य में भक्ति की अमृतधारा बहाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनके द्वारा प्रवाहित भक्ति-स्रोतस्विनी की लहरें शताब्दियों तक केरल के जनमानस को तरंगायित करती रहीं।

मलयालम के अन्यान्य प्राचीन कवियों की भाँति इन कवियों का भी जीवनवृत्त विवादों से पूर्ण है। बहुत समय तक विद्वानों का यही मत था कि माधव पणिक्कर तथा शंकर पणिक्कर दोनों सगे भाई तथा राम पणिक्कर उनके भानजे थे। किन्तु नवीनतम शोधों ने इस मत को निर्मूल सिद्ध कर दिया है और एक ही काव्य-प्रवृत्ति के पोषक होने के कारण इन्हें निरणं कवि की संज्ञा दी गई है।

एस० तं० अ०

पट्टत्तुकुंजुण्णी नम्पियार

पट्टत्तुकुंजुण्णी नम्पियार का जन्म सन् १८०५ ई० में कोचीन राज्य के इरिंजलकुडा नामक गाँव के प्रसिद्ध कूटलमाणिक्यम् मंदिर के एक समीपवर्ती गाँव में हुआ था। उक्त मंदिर के सेवा-कार्यों में भी इनके परिवार का अधिकार था। इनकी चार रचनायें प्रसिद्ध हैं—भाण-रसरत्नाकरम्, ओट्टनतुळ्ळल भगवतदूत, पंचसंता-केकोट्टिकलीप्पाट्टु-अष्टपति। ये आजीवन कृष्ण के इष्टदास रहे थे। जयदेवरचित 'अष्टपति' का इन्होंने पाठ के रूप में अनुवाद किया है। इनका गोलोकवास सन् १८७५ ई० में हुआ।

इनकी भक्तिभावना तथा काव्यशैली-निदर्शनार्थं प्रस्तुत है 'अष्टपति' के अनुवाद का एक उदाहरण—

चोरुमधरसुधारसमाधुर्य
चेरुन्नोरोटकुषलुम
इलकुंकटाक्षम् कोण्टिुलकुम्
तिरुमुडी ललितकपोलेविलंगुम।
कण्ण लंकारवुं रासरतिंषिकल
वर्णनायमां कलियुम्,
इन्नु मनकाम्पिलिङ्ङ्नेयोक्केयुम
तोन्नुन्नु सुन्दरीकष्टम्।।

एन० रा० ना०

पन्नियूर कृष्णन नंपूतिरि

पन्नियूर कृष्णन नंपूतिरि के विषय में केवल इतना पता चलता है कि इनका जन्म भारतप्पुषा के दक्षिणी छोर पर स्थित पन्नियूर ग्राम में १५वीं शताब्दी में हुआ था। ये अच्छे विद्वान् तथा श्रेष्ठ कवि थे। इन्होंने कृष्ण की भक्ति से ओतप्रोत होकर 'उदयवर्मा-चरित' तथा 'श्रीकृष्णपुराण' नामक ग्रंथ संस्कृत में रचा था। उससे तीन उद्धरण नीचे दिये जाते हैं :

आत्मभक्तस्य कृष्णस्य ज्ञात्वा व्यासो मनीषितं।
तस्मै विज्ञानबहुलां प्रददौ विपुलां मतीं।।
लब्धप्रसादः कृष्णोथ पुराणमकरोन्मुदा।
देवदेवप्रसादाच्च शासनाच्च द्विजन्मनां।।
कृष्णप्रसादात् कृष्णेन कृष्णभक्तेन धीमता।
कृतं कृष्णपुराणं तद्विख्यातमभवद् भुवि।।

'भगवान् व्यास ने कृष्ण को अपना भक्त जानकर और उसका अभिलषित अनुमान कर उसे ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण विशिष्ट मति (बुद्धि) ज्ञान-दृष्टि प्रदान की।

गुरु का अनुग्रह प्राप्त कर कृष्ण ने देवों के देव परमेश्वर की कृपा से और द्विजन्मा ब्राह्मणों के आशीर्वाद से प्रसन्नतापूर्वक पुराण की रचना की।

भगवान् कृष्ण की कृपा से बुद्धिमान् और कृष्ण-भक्त कृष्ण (कवि) ने कृष्णपुराण की रचना की। यह पुराण विश्व में अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।'

एन० रा० ना०

परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (प्रथम)

परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (प्रथम) का आविर्भाव १५वीं शती ई० में हुआ था। ये शंकराचार्य की शिष्य-परम्परा में महान् पंडित, ऋषि-तुल्य तत्त्वज्ञ तथा कवि थे। इनके कुछ व्याख्या-ग्रन्थ मिलते हैं। इनकी मेघसन्देश की व्याख्या 'सुमनोरमणी द्वार चरित काव्य' प्रसिद्ध है। इससे तीन छन्द नीचे दिये जाते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुदिनमभिनवरूपा सुमनो-
रमणीव जगति जयतितरां।
सुमनोरमणी हरिचरितकाव्य
सहभूर्व्याख्यासौ मेघदूतस्य। १।
मंत्रब्राह्मणसूत्रवित् कृतमति
शास्त्रे च कौमारिले।
कर्ता न्याय समुच्चयस्य कणिका-
व्याख्या प्रणेता कविः।
उत्पत्तिस्त्वघमर्षण प्रवरजाद्
गौर्या मृषेराप्तवान्।
कर्त्तास्या परमेश्वरो नतशिराः
पूज्ये गुरौ शंकरे। २।
लब्ध भवदासभावो भगवति
भक्त्या च भवदासः।
वादी वेदान्तरतो यस्य
पितृ व्यस्स एव कर्त्तास्याः। ३।

'नित्य नये-नये अर्थों से नवलरूपवाली, अप्सरा-सी मोहक मेघदूत की व्याख्यारूप यह सुमनोरमणी-हरिचरित काव्य साहित्य-जगत् में जयशील हो।

मन्त्र और ब्राह्मण वेदभाग तथा सूत्र-साहित्य के वेत्ता, मीमांसा-दर्शन के कौमारिल मत (भाट्ट मत) में पारङ्गत, न्यायसमुच्चय के रचयिता, कणिका-व्याख्याकार, कवि, अघमर्षण पिता और गौरी माता से उत्पन्न परमेश्वर नामक यह (विनीत) लेखक पूज्य गुरुदेव और भगवान् के चरणों में शिर रखकर प्रणाम करता है।

भगवद्भक्ति के माध्यम से शंकर की दास-भावना को प्राप्त करनेवाला शिवस्वरूप विश्व का सेवक यह विनम्र लेखक है। शास्त्रार्थ-महारथी और वेदान्त-दर्शन में सदा निरत लेखक का पितृव्य है। यही इस ग्रन्थ का कर्त्ता है।'

एन० रा० ना०

परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (द्वितीय)

परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (द्वितीय) परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (प्रथम) के समसामयिक भक्त एवं विद्वान् थे। ये गोपालिकानन्दन नाम से प्रसिद्ध थे। इन्हें भी ऋषि की ही संज्ञा से सम्बोधित किया जाता था। इनके द्वारा निर्मित 'स्फोट-सिद्धि' की व्याख्या तथा कुछ स्फुट रचनाएँ प्राप्त हैं। विश्रुत विद्वान् उद्दण्ड शास्त्री ने इनकी बड़ी प्रशंसा की है। इनका एक छन्द नीचे दिया जाता है—

नन्दगोपसुता देवी वेदारण्यनिवासिनी।
माता गोपालिकानाम्ना सेवितास्मदपेक्षया॥
तत्प्रसादादियं व्याख्या मया विरचितं किल।
इति गोपालिका संज्ञामस्या व्याचक्षते बुधाः॥

'नन्द गोप की पुत्री और वेदारण्य में निवास करनेवाली माता का नाम गोपालिका है। मैंने अपेक्षाकृत उसकी अधिक सेवा की।

उसीकी कृपा से मैंने इस व्याख्या की रचना की। इसीलिये सुबुद्ध लोग इस व्याख्या का नाम गोपालिका कहते हैं।'

एन० रा० ना०

परमेश्वर मंगलत्तु चन्द्रशेखरवार्यर

परमेश्वर मंगलत्तु चन्द्रशेखरवार्यर का आविर्भाव केरल के आलवा क्षेत्र में निला नदी के किनारे किसी गाँव में १७वीं शताब्दी में हुआ था। इनकी एकमात्र काव्य-रचना 'श्रीकृष्णचरिताख्यानं' बताई जाती है। कहा जाता है कि ये अपने समय में कृष्ण के अनन्य भक्त के रूप में ख्यात थे।

एन० रा० ना०

पांडवचरितकार

पांडवचरितकार का नाम अज्ञात है। ये १६वीं शती में विद्यमान माने जाते हैं। इनका 'पांडवचरित' सोलह सर्गों में रचित ललित काव्य है। भीमस्तुति के दो अनुष्टुप् नीचे उद्धृत हैं :

हे कृष्ण भगवन्नाथ तावत्तिष्ठ ममाग्रतः।
तव रूपामृतं पश्यन् यावत्यक्ष्याम्यहं तनुम्॥ १॥
तथा मां प्रति गोविंद प्रसीद करुणानिधे।
यथा त्वं मामके चित्ते निश्चलो हि निवत्स्यसि॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हे आदिदेव भगवान् कृष्ण ! मेरी आँखों के सामने तब तक स्थिरभाव से अवस्थित रहो, जब तक तुम्हारे रूपामृत का पान करते हुए अपने नश्वर शरीर का परित्याग न कर दूँ।

हे करुणावरुणालय गोविन्द ! मेरे ऊपर इतना प्रसन्न हो जाइये कि मेरे चित्त में निश्चल होकर निवास कर सकें।'

एन० रा० ना०

पून्तानम् नम्पूतिरि

मलयालम में कृष्ण-भक्ति की अजस्र धारा बहानेवाले भक्त कवियों में पून्तानम् नम्पूतिरि का विशिष्ट स्थान है। ये सुप्रसिद्ध संस्कृत पंडित मेल्युत्तूर नारायण भट्टतिरि के समकालीन थे। हिन्दी के भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदास यदि सारे जग को 'सियाराममय' मानते थे तो मलयालम के भक्तकवि पून्तानम् सारे जग को 'कृष्णमय' देखकर उसकी उपासना करते थे। पून्तानम् मलयालम के ऐसे भक्तकवि हैं जो भक्ति को अपना जीवन-सर्वस्व समझते थे और जीवन-मुक्ति का एकमात्र साधन भी ये कृष्ण-भक्ति को ही मानते थे।

इनके जीवन-चरित सम्बन्धी अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। माना जाता है कि मलाबार के वल्लुवनाटु तहसील के नेन्मेनी नामक गाँव में सन् १५४७ ई० में इनका जन्म हुआ था। 'पून्तानम्' इनके घराने का नाम था और ये नम्पूतिरि ब्राह्मण थे। घराने के नाम के साथ 'नम्पूतिरि' शब्द जोड़कर ये पून्तानम् नम्पूतिरि कहे जाने लगे। इनके वास्तविक नाम, माता-पिता, शिक्षा आदि के विषय में कोई प्रामाणिक सूचना उपलब्ध नहीं है। इनके गुरु श्री नीलकंठ थे। अपनी सभी कृतियों में इन्होंने अपने इस गुरुवर की स्तुति की है। 'भाषाकर्णामृतं' में आप लिखते हैं—

श्रीनीलकंठ पदपांसुलव प्रसादात्
श्रीकृष्ण लीलकलिवण्ण मोरोन्नु चोन्नेन।

'श्रीनीलकंठ गुरुवर के पदरज की कृपा से मैं श्रीकृष्ण की लीलाओं के गायन में सक्षम हुआ हूँ।'

पून्तानम् संस्कृत भाषा से अभिज्ञ तो थे, किन्तु प्रकांड पण्डित नहीं थे। भगवान् का संकीर्तन ये ठेठ मलयालम की संतुलित पदावली में करते थे। पहले ये गृहस्थ भक्त थे। सन्तानहीनता के दुःख ने इन्हें भगवान् के प्रति और अधिक अनुरक्त कर दिया। कालान्तर में विरागी बनकर गुरुवायूर के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण-मन्दिर में कीर्तन-सेवा करते हुए इन्होंने जीवन का शेष भाग व्यतीत किया।

भाषाकर्णामृतम् की निम्नलिखित पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे नब्बे वर्ष से अधिक काल तक जीवित रहे—

त्वन्नाम संकीर्तन मेण्णियेण्णि
तोण्णूरटुत्तु परिवत्सरं मे।

'भगवान् श्रीकृष्ण के संकीर्तनों को गिन-गिनकर मैं नब्बे वर्ष के लगभग का हो गया हूँ।'

श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति के द्वारा इन्होंने अन्तिम दिनों में जीवन्मुक्ति की स्थिति प्राप्त कर ली थी।

माना जाता है कि ये सन् १६४० ई० में परलोकवासी हुए।

पून्तानम् की कृष्णलीला-सम्बन्धी रचनाएँ हैं—भाषाकर्णामृतम् और कुछ संस्कृतस्तोत्र जैसे पार्थसारथीस्तव, गोविन्दकीर्तन, श्रीकृष्णकीर्तन, गोपालकृष्णकीर्तन, जयकृष्णकीर्तन, मुकुन्दकीर्तन आदि। इनकी कुल २२ रचनाएँ हैं। लेकिन पून्तानत्तिन्टे कृतिकल नाम के संग्रह में इनकी ५ कृतियाँ ही संगृहीत की गयी हैं। वे हैं—श्रीकृष्णकर्णामृतम्, सन्तानगोपालम् पाना, ज्ञानप्पाना, नूट्टेट्टु हरी और घनसंघम।

बिल्वमंगल के संस्कृत 'कर्णामृत' से अलग करने के लिए इन्होंने अपनी रचना को 'भाषाकर्णामृतम्' नाम दिया। यह कवि की प्रौढ़ावस्था की रचना है। शूलपाणिवारियर नामक एक मित्र की आज्ञा को मानकर इन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की थी। पाठकों में कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव को तीव्र करना इस रचना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का मुख्य उद्देश्य है। पून्तानम् का दृढ़ विश्वास था कि नाम-जप ही कलियुग में मुक्ति का एकमात्र उपाय है। 'कर्णामृतम्' भागवत के दशमस्कन्ध की कथा का सारांश है। 'भागवत', बिल्वमंगलकृत 'श्रीकृष्णकर्णामृतम्' और मेल्पत्तूरकृत 'नारायणीयम्' इन तीनों रचनाओं से कवि ने प्रेरणा प्राप्त की है। 'कर्णामृतम्' में कुल १५० पद्य हैं जिनमें पहले ८७ पद्यों में कंस-वध तक की कथा है, उसके बाद के ३९ पद्यों में कंस-वध के बाद की भागवत-कथा है और शेष भाग में अध्यात्म-तत्त्व का निरूपण है। वामपुरवासी गुरुवायूर भगवान् का सम्बोधन करके ये 'कर्णामृतम्' का शुभारम्भ करते हैं—

कर्णामृतमवामपुराधिवासिन् ।
निन्नाल मतं किंचन भाषयाय ञान्।
एन्नाल वरं वण्णामुदारकीते।
चोन्नालतुं प्रीणनमायवरेणम ।

'हे वामपुरवासी भगवान्! आपकी कृपा से मैं यथाशक्ति 'भाषाकर्णामृत' की रचना करता हूँ। यह आपके लिए रुचिकर हो यही चाहता हूँ।'

पून्तानम् का संस्कृतस्तोत्र 'पार्थसारथीस्तवम्' कुसुममंजरीछन्द में विरचित है। इसमें ११ पद्य हैं। प्रायः सब संस्कृतस्तोत्र अकारादिक्रम में रचे गये हैं। उदाहरण के लिए देखिये—

अमलकमलदललोचन जय जय
आनन्दरूप मनोहर जय जय
इन्दिरारमण मुकुन्द जय जय
ईश्वर मुरहर शाश्वत जय जय।

बिल्वमंगल के समान पून्तानम् भी श्रीकृष्ण की आराधना सखी के रूप में करते थे। ये नित्य श्रीमद्-भागवत का पाठ इतनी तन्मयता से करते थे कि भक्ति की-सुरसरिता ही प्रवाहित हो जाती थी।

'सन्तानगोपालम्' चार पादोंवाला एक छोटा काव्य है। श्रीमद्भागवत की सन्तानगोपालम्-कथा से प्रभावित होकर पून्तानम् ने प्रस्तुत काव्य की रचना की थी। ये स्वयं लिखते हैं—

मतिचेर्न्नो कुमारहरणमाम्
कथतन्निल मुघुंकिच्चमकयाल्
अतुकोण्डिता वाष्त्तिस्तुतिक्कुन्नेन्

'भागवत के कुमारहरणम्-कथा (सन्तानगोपालम्-कथा) में माया से अप्रत्यक्ष हुए ब्राह्मण के दस पुत्रों को श्रीकृष्ण वापस लाते हैं, इसलिए इस कथा का नाम कुमारहरणम् है) में अत्यधिक लीन होने के कारण उसी कथा से मैं आपकी स्तुति करता हूँ।'

इस रचना के प्रथम पाद में सन्तानों के विनाश से अत्यधिक दुःखी ब्राह्मण द्वारा द्वारकापुरी जाकर श्रीकृष्ण से अपना दुःख प्रकट करने एवं भगवान् द्वारा उस ब्राह्मण को सान्त्वना देने की कथा है। द्वितीय पाद में ब्राह्मण की पत्नी दसवीं बार गर्भवती होती है और बच्चे को जन्म देने से पहले ही अर्जुन द्वारा यम से बच्चे की रक्षा के लिए किए जानेवाले उपायों का वर्णन है। लेकिन उस बार भी बालक की हानि हो गई। तृतीय पाद में अर्जुन विनष्ट ब्राह्मण कुमार को यमलोक, अष्टदिक्पालों के भवन, पाताल और अन्य जगहों में ढूँढ़ते हैं और निराश होकर लौट आते हैं। प्रतिज्ञा का पालन न करने के कारण वे अग्निकुण्ड में कूदकर आत्माहुति देने जा रहे थे कि उसी क्षण भक्तवत्सल भगवान् प्रत्यक्ष होते हैं और अर्जुन को साथ लेकर वैकुण्ठ चले जाते हैं। चतुर्थ पाद में उनकी वैकुण्ठ-यात्रा का वर्णन, वैकुण्ठ का वर्णन, कृष्ण और अर्जुन का भगवान् विष्णु से मिलना और उनके बीच का संवाद, ब्राह्मण के दस पुत्रों को लौटा देने आदि का अतीव सुन्दर वर्णन है।

पून्तानम् के 'ज्ञानप्पाना' नामक कृति में नाम-जप की महिमा का वर्णन है। कवि के मतानुसार ज्ञानार्जन के लिए केवल नाम-जप पर्याप्त है। इस कृति में भागवत के अजामिलोपाख्यान, निमिनवयोगी-सम्वाद, श्रीकृष्ण-उद्धव-सम्वाद आदि प्रकरणों में वर्णित तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में वर्णित श्रीकृष्ण की अवतार-कथाओं को पून्तानम् के 'नूट्टंट्टु हरी'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१०८ हरिनामकीर्तन) नामक कृति में संगृहीत किया गया है। एषुत्तच्छन का 'हरिनामकीर्तन' सर्ववेदान्त-सारसंग्रह है तो पून्तानम् का 'नूट्टेट्ट्ढहरी' सामान्य लोगों में भी भक्तिभाव जाग्रत करनेवाला है। इस कृति का प्रारम्भिक छन्द प्रस्तुत किया जा रहा है—

भूमितन् भारंकलवतिनायिट्टु
भूमियिल वन्नुपिरन्न कृष्णा ! हरी
श्रीमथुरेंकल वसुदेवपुत्रनाय्
देवकी तन्निल पिरन्न कृष्णा ! हरी

'धरती के पापरूपी भार के विनाश के लिए मथुरापुरी में वसुदेव और देवकी के पुत्र के रूप में अवतरित हुए, हे कृष्ण !'

अपने आराध्य के दर्शनार्थ ये नित्य गुरुवायूर-मन्दिर में दर्शन के लिए जाया करते थे। वयोवृद्ध होने के कारण जीवन के अन्त में ये गुरुवायूर तक नहीं जा सकते थे। इस सम्बन्ध में भगवान् से उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की तो स्वप्न में इन्हें देववाणी सुनायी पड़ी कि भगवान् इनके घर के समीप होंगे। उसके अनुसार पून्तानम् ने अपने घर के पास एक मन्दिर बनाया, उसमें अपने इष्टदेव की प्रतिष्ठा की और नित्य उनकी आराधना करने लगे। 'वामपुरम्' के नाम से प्रसिद्ध वह स्थान और मन्दिर आज भी है।

पून्तानम् की प्रायः सभी रचनाओं का प्रतिपाद्य भागवत का दशमस्कन्ध-प्रसंग है। भगवान् के नाम-जप पर ये बहुत जोर देते हैं। इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता है जिसके कारण साधारण-से-साधारण अनपढ़ व्यक्ति भी उसका भाव हृदयंगम कर सकता है। इतने मुक्त हृदय से कथा-प्रसंगों के माध्यम से भक्ति-तत्त्व का निरूपण करने-वाला कवि मलयालम-साहित्य में कदाचित् ही कोई दूसरा मिले। सूरदास की भाँति पून्तानम् भी जब भागवत का पाठ करते थे तब बालमुरलीधर उनके सामने विराजमान रहते थे। सम्पूर्ण जीवन उन्होंने भगवद्भजन में लगा दिया। उनके कण्ठ से जो भी शब्द निकलते थे, वे भक्तिरससिक्त होते थे। पून्तानम् की रचनाओं का अध्ययन करनेवाले लोग आज भी भक्तिरस की सुरसरिता में आप्लावित हो जाते हैं।

भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति से ओतप्रोत होकर कवि ने इन कृतियों की रचना की है। भक्ति के क्षेत्र में ये हिन्दी के कृष्णभक्त कवि सूरदास के समकक्ष हैं। 'ज्ञानप्पाना' आपकी मुख्य कृति है जिसमें नाम के अनुकूल ज्ञान-तत्त्व का निरूपण हुआ है। कविवर बहुत समय तक निःसन्तान रहे। यह बात इनके हृदय को दुखाती रहती थी। भगवान् की कृपा से इनको एक पुत्र पैदा हो गया। किन्तु अन्नप्राशन के दिन ही अचानक वह चल बसा। पिता के हृदय को मर्मान्तिक पीड़ा पहुँची। इनके भावुक तथा शोकातुर हृदय की 'घनीभूत-पीड़ा आँसू बनकर' बह निकली। सन्तान-वियोग से क्षत-विक्षत कवि-हृदय से भक्ति-रसयुक्त ज्ञान-धारा प्रवाहित हुई जो 'ज्ञानप्पाना' नाम से प्रसिद्ध हुई। दुःख-सागर में डुबकियाँ लगाने-वाला कवि अन्ततः यह देखकर आश्वस्त हो गया कि उसके मन में भगवान् कृष्ण का बालरूप सदा के लिए रूपायित हो गया—

उण्णिकृष्णन मनसिल कलिक्कुंपोल्।
उण्णिकल मट्टु वेणमो मक्कलाय।

'बालगोपाल जब मन में खेलता रहता है तब बेटे के रूप में अन्य बालकों की क्या आवश्यकता है ?'

'सन्तानगोपालं-पाना' एक अत्यन्त सरस कृति है जो केरल की स्त्रियों के बीच विशेष रूप से प्रचलित है और जिसका पारायण संतानप्रद समझा जाता है। 'भाषाकर्णामृतं' में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का अत्यन्त मनोरम वर्णन मिलता है। 'घन-संघ-स्तोत्रं' तथा 'पार्थसारथी स्तवम्' भी आपकी कृष्ण-सम्बन्धी लघुकृतियाँ हैं। 'आनन्दनृत्तं' इनकी ऐसी कृति है जिसकी पंक्ति-पंक्ति से भक्ति-सुधा-रस टपकता है। किंवदन्ती है कि भक्तशिरोमणि पून्तानम् को श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन मिला था और उसके आधार पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही आपने 'आनन्दनृत्तं' की रचना की थी। प्रस्तुत कृति में बालकृष्ण का आँखोंदेखा वर्णन मिलता है। कन्हैया की रूप-माधुरी पर मुग्ध कवि गा उठता है—

आंपाटि तन्निलोरुण्णि युण्टङ्ङने
उण्णिक्को रुण्णिक्कुषलुमुण्टङ्ङने
उण्णिक्कु पेरुण्णिक्कृष्णनेन्नङ्ङने
उण्णिवयट्टत्तु चेरुमुण्टङ्ङने
उण्णिक्कै रण्टिलुं वेण्णयुंटङ्ङने
उण्णिक्काल कोंटोरु नृत्तमुण्टङ्ङने

'आंबाड़ी (गोकुल) में एक नादान शिशु है और उसका नाम कन्हैया है। उसकी नन्हीं-नन्हीं-सी हथेली में एक बाँसुरी है। उसके नन्हें-से हाथों में मक्खन शोभा पा रहा है और उसके दोनों सुन्दर पाँव नृत्यनिरत हैं।'

चरितात्मक कृतियों के अतिरिक्त पून्तानम् ने अनेक संकीर्तनों की भी रचना की है। केरल के हिन्दू परिवारों में अब भी प्रातःकाल और सन्ध्या को इन संकीर्तनों का भक्तिपूर्वक आलाप चलता है। कविवर पून्तानम् के बारे में मलयालम के आधुनिक कवि वल्लत्तोल नारायण मेनन ने गाया है—

पून्तेना पल काव्यं कण्णनु निवेदिच्च
पून्तानं, ज्ञानप्पान पाटिय पुंस्कोकिलं।

'मधुर मधुरूपी अनगिनत अनमोल काव्यों की भेंट कृष्ण के सम्मुख चढ़ानेवाले कवि हैं पून्तानम्-'ज्ञानप्पाना' का अमर गान करनेवाले कोकिल हैं कविवर पून्तानम्।'

पून्तानन् नंपूतिरि के दो भक्तिपरक छन्द यहाँ उद्धृत हैं—

अञ्जन श्रीधरा चारुमूर्ते कृष्णा,
अञ्जलि कूप्पि वणङ्डिटुन्नेन,
आनन्दलंकार वासुदेवा कृष्णा।
आतंकमेल्ला मकट्टीटेणं।
इन्दिराकान्ता जगन्निवासा कृष्णा
इन्नेन्टे मुन्पिल् विलङ्ङिटेणं।

'हे अंजन (काजल) की श्री धरनेवाले चारुमूर्ति कृष्ण! हम हाथ जोड़कर तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे आनन्दमूर्ति वसुदेवसुत कृष्ण! हमारे सारे दुःखों को तू दूर कर दे। हे इन्दिराकान्त, जगन्नाथ कृष्ण! तू आज मेरे सामने ही विराजमान रहे।'

पच्चक्कलोत्त पूमै निखुमणिकषल
प्पलवं मेल्ले मेल्ले
वेच्चीटुंपोल् वितच्चीटिन मधुरिमयुं
पिच्चयुं विश्वमूर्ति
मच्चित्ते वन्नुदिच्चीटेणमतिनु
विशेषिच्चु विक्षापयेहम
सच्चिल्ल कलोलमे नी कृप तरिक सदा
कृष्णा कारुण्य सन्धो!

'मरकत रत्न के समान सुन्दर शरीर, किसलय-सदृश कोमलकान्त चरण, धीरे-धीरे चलते समय डगमगाते पग, इन सबका सुमनोहर एवं मधुर दृश्य मेरे उर में उदित हो जाय। हे भगवान् कृष्ण! कृपासिन्धु! आप इसके लिए मुझ पर विशेष कृपा करें।'

पून्तानम् की श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति-भावना को व्यक्त करनेवाले अनेक ऐतिह्य लोक-विश्रुत हैं—

एक बार ये गुरुवायूर मंदिर में भगवान् का दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में एक डाकू उन पर आक्रमण करने लगा तो नम्पूतिरि ने भयविह्वल होकर भगवान् से प्रार्थना की। तब मङ्ङाट्टच्चन अश्वारूढ़ होकर वहाँ पहुँच गये और डाकू से उनकी रक्षा की। पून्तानम् ने उनके प्रति अत्यधिक कृतज्ञ होकर अपनी अँगूठी उन्हें समर्पित की। दूसरे दिन पून्तानम् गुरुवायूर मंदिर में दर्शन कर रहे थे तो पुजारी ने वह अँगूठी पून्तानम् को दे दी और कहा—"यह अँगूठी भगवान् के कर-कमलों में शोभित थी। इसे आपको देने के लिए मुझे स्वप्न में भगवान् ने आज्ञा दी है।" उस समय पून्तानम् समझ गये कि पिछले दिन मङ्ङाट्टच्चन के वेश में आकर स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् ने ही उनकी रक्षा की थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक बार पून्तानम् को चेचक-रोग हो गया। उसको दूर करना असम्भव समझकर कुछ लोगों के परामर्शानुसार इन्होंने तिरुमान्धां कुन्निल (तिरुमंधाता पहाड़ की देवी) को भक्तिपूर्वक ध्यान करके 'घनसंघ' नामक सुप्रसिद्ध स्तोत्र की रचना की। इससे ये शीघ्र ही रोगमुक्त हो गये। आज भी उस मन्दिर में एक विशेष वर्ग के लोग उस स्तोत्र का पाठ करते हैं।

गुरुवायूर के कृष्ण-मन्दिर में पून्तानम् नम्पूतिरि जब भगवद्भजन में लीन रहते थे, तब एक बार वातरोग से पीड़ित मेल्युत्तूर भट्टतिरि रोग-शांति के लिए श्रीकृष्ण का भजन करने के लिए वहाँ आये। मेल्युत्तूर उस समय के केरल के सबसे प्रतिष्ठित संस्कृत-पण्डित थे और अपने पाण्डित्य पर उन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन पून्तानम् मलयालम भाषा में विरचित 'सन्तानगोपालम्' नामक अपनी कृति को लेकर मेल्युत्तूर के पास गये और उनसे उसको पढ़कर भूलें सुधार देने की विनम्र प्रार्थना की। पाण्डित्य के गर्व में चूर भट्टतिरि ने किसी भाषाकृति को पढ़ना अपने लिए अपमानजनक समझा और पून्तानम् से कहा कि उनमें 'विभक्ति' नहीं जमी है। इसके साथ यह भी इनसे अनुरोध किया कि ये किसी और के पास जाकर अपनी कृति का संशोधन करा लें। उस महापण्डित की बातों ने पून्तानम् की आशाओं पर पानी फेर दिया। ये अत्यधिक दुःखी हुए। उसी रात भट्टतिरि को कठिन रोगपीड़ा हुई और वे कृष्ण का नाम लेकर कराह उठे। उनके कानों में कृष्ण के ये शब्द गूँज उठे—"तुम्हारी विभक्ति की अपेक्षा मुझे पून्तानम् की भक्ति अधिक प्रिय है। अतः पून्तानम् की भाषाकृति का संशोधन कर उनके दुःख को दूर करो।" दूसरे ही दिन मेल्युत्तूर पून्तानम् के पास आये और उनकी कृति को पढ़कर उसकी बड़ी प्रशंसा की। पून्तानम् अत्यधिक प्रसन्न हुए। तब से दोनों घनिष्ठ मित्र बन गये।

पून्तानम् के जीवन से सम्बद्ध ऐसी कथायें भी बहुत हैं जब कृष्ण ने स्वयं प्रकट होकर अपने भक्त की रक्षा की। एक कथा इस प्रकार है—

गुरुवायूर के कृष्ण-मन्दिर में नित्य ही श्रीमद्भागवत का पारायण चलता था, (अब भी है)। एक पण्डित उसकी व्याख्या भी करते थे। उसे सुनने के लिए बहुत से भक्त इकट्ठे हो जाते थे। पण्डितों के मुँह से नित्य भागवत की व्याख्या सुन-सुनकर पून्तानम् भी भागवत से पूर्णतया अभिज्ञ बन गये। अतः कभी-कभी ये भी भागवत की व्याख्या करने बैठते थे। भक्त-प्रवर पून्तानम् जब कवित्व एवं कल्पनापूर्ण व्याख्याएँ सुनाने लगे तो उसे सुनने के लिए भक्तों की भारी भीड़ जमा होने लगी। इस पर दूसरे पण्डित इनसे जलने लगे। मौका निकालकर वे पून्तानम् की हँसी उड़ाने की ताक में रहते थे। एक दिन एक पण्डित भागवत पढ़ने लगे और पून्तानम् उसकी व्याख्या सुनाने लगे। भक्तों की बड़ी भीड़ जमी थी। रुक्मिणी-स्वयंवर का प्रसंग था। रुक्मिणी द्वारा कृष्ण के पास ब्राह्मण भेजने का प्रसंग आया। पून्तानम् ने प्रसंगानुकूल यह व्याख्या सुनायी कि रुक्मिणी ने ब्राह्मण के हाथ में एक चिट्ठी देकर उसे कृष्ण के पास भेज दिया। यह सुनते हुए ही वहाँ उपस्थित किसी विद्वान् ने पून्तानम् को रोककर पूछा कि किस श्लोक में ऐसा बताया गया है कि रुक्मिणी ने ब्राह्मण के हाथ में चिट्ठी दी। यह प्रश्न सुनते ही दूसरे विद्वान् भी ठहाका मारकर हँसने लगे। पून्तानम् लज्जित हुए। तुरन्त मन्दिर के अन्दर से आवाज सुनाई पड़ी—'किस श्लोक में ऐसा संकेत है कि ब्राह्मण के हाथ में चिट्ठी नहीं दी। जब ब्राह्मण मेरे पास आये तब उनके हाथ में चिट्ठी थी।' यह सुनकर सब आश्चर्यचकित हो गये।

एन० रा० ना०

एस० तं० अ०

पूर्ण सरस्वती

पूर्ण सरस्वती सन् ११७५ और १२५० ई० के बीच विद्यमान माने जाते हैं। इनका जन्म काट्टुमाडत्तुमना नम्पूतिरि-कुटुम्ब में हुआ था। ये उत्कृष्ट कोटि के कवि होने के साथ ही अच्छे विद्वान्, प्रवचनकर्ता तथा भक्त भी थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'मेघ-सन्देश', 'विष्णुपादादीकेशस्तव', 'मालतीमाधव' आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की व्याख्या 'चर्मण्वतीचरितं', 'ऋजुलघ्वी', और 'हंससन्देश'।

इनके असाधारण पांडित्य एवं भक्ति की व्यंजना अपने गुरु पूर्णज्योतिस् तथा कृष्ण की वन्दना में लिखे गये निम्नांकित छन्दों में देखिये—

(१)

यद्गीतार्थश्रवण रसतो ध्वस्तमोहांधकारः।
कृष्णानन्दी त्रिजगति नरो जिष्णुभूयं जिहीते॥
स्वस्मिन्नेव प्रकटित महा विश्वरूपं तदेकं।
पूर्णज्योतिः स्फुरतु हृदि मे पुण्डरीकायताक्षः॥

'श्रीमद्भगवद्गीता के अर्थ-श्रवण से उत्पन्न आनन्द से जिसका मोहान्धकार ध्वस्त हो गया है, ऐसा कृष्ण के आनन्द में निमग्न भक्त तीनों लोकों में विजयी होकर विचरण करता है। अपने में विराट् विश्वरूप प्रकट करनेवाले वही पूर्ण ज्योतिष्मान् कमल-नेत्र कृष्ण मेरे हृदय में स्फुरित हों। अथवा कमलनयन पूर्णज्योति मेरे गुरुदेव स्फुरित हों।'

केरल के कृष्ण-मन्दिरों का चित्रण कितना मनोहर है—

(२)

तेषां भूषामणिमनुपमं सेवितं योगिमुख्यैः
प्राप्यानंतं पुरमहिशयं ज्योतिरानम्यभक्त्या।
अन्विष्येष्टं जनममरुणं मन्मनश्चोरमाराद्-
देशे तस्मिन् स खलु रमते देवकी पुण्यराशिः॥

'केरल के मणिजटित मन्दिर बड़े सुन्दर हैं। लगता है, इन्हें मणियों के गहने पिन्हाये गये हैं। वे मणि कौस्तुभ के समान महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि योगियों में श्रेष्ठ भी उनकी उपासना करते हैं। उनसे ज्योति का आलोक फूट पड़ता है। शेषशय्या पर विष्णु के विराजमान रहने पर कौस्तुभ प्रकाश के समान ज्योति का अनुभव भक्तगण भक्ति के द्वारा यहाँ प्राप्त करते हैं। मेरा आलोकलोलुप मन भी अपने इष्ट का अन्वेषण कर उसी स्थान में रमण करता है जिस स्थान पर देवकी की पुण्यराशि (कृष्ण) रमण करते हैं।'

(३)

तत्रत्यानां तरुणवयसां सुंदरीणां विलासै-
र्मा भूल क्षोभस्तव मतिमतो बंधुकार्योद्यतस्यः।
केशैस्सान्द्रै रसित कुटिलैः केकिपिच्छोपमेयैः
केषां न स्युर्धुति विहृतये केरलीनां मुखानि ?

'केरल की पूर्णतारुण्यवरेण्य तरुणियों के लीला-विलासों से बन्धुकार्यों में लगे आपके मन में कहीं क्षोभ न उत्पन्न हो! वहाँ की सुन्दरियों के मुखकमलों की द्युति के समक्ष किसकी चमक फीकी नहीं पड़ती? उनकी केशराशि बड़ी घनी और मोर की पाँखों के समान चमकीली होती है। इससे उनके मुख की शोभा शतगुणित हो जाती है।'

एन० रा० ना०

भ्रमरसन्देशकार (अज्ञातनाम)

१६वीं शती में विद्यमान इस भक्तकवि का नाम अज्ञात है। इनकी एकमात्र रचना 'भ्रमरसन्देश' मिलती है जिससे ये उत्कृष्ट कृष्णभक्त सिद्ध होते हैं। यह सरस काव्य उद्धव-गोपी-संवाद प्रसंग पर लिखा गया है और १७७ श्लोकों में निबद्ध है। इसका एक श्लोक प्रस्तुत है—

गुरुवायूर मन्दिर में प्रतिष्ठित कृष्ण की स्तुति करते हुए ये लिखते हैं—

वक्त्रेणेन्दोरधरमहसा कौस्तुभस्यामृतस्य
स्निग्धैर्हासैरपि च विभवं मुष्णतीमंबुराशेः
दृष्ट्वा कन्यां किल निजकुलद्वेषिणीं चौर्यशीलां
तुभ्यं कंसांतक, दधिपयश्चोर, दत्वा कृतार्थः।

'मुख से चन्द्रमा की, अधरों से कौस्तुभ और अमृत की, स्निग्ध हास्य से तरंगित समुद्र की सुषमा को चुरानेवाली, अपने कुल से द्वेष करनेवाली (क्योंकि चन्द्रमा, कौस्तुभ, अमृत सभी तो समुद्र से ही उत्पन्न हैं) ऐसी चौर्य में प्रवीण अपनी कन्या (लक्ष्मी) को दूध-दही के चोर हे कृष्ण, तुझे अर्पित करते हुए मैं कृतार्थ हो रहा हूँ। (समुद्र की उक्ति है)'

एन० रा० ना०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मष्मंगलत्तु नारायणन नम्पूतिरि

मष्मंगलत्तु नारायणन नम्पूतिरि के जीवन-सम्बन्धी कोई तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार केवल इतना पता चलता है कि ये १६वीं शताब्दी में विद्यमान थे और पर्याप्त महिमाप्राप्त विद्वान्, कवि तथा अनन्य कृष्णभक्त थे। इनके द्वारा विरचित निम्नांकित ग्रन्थ मिलते हैं—रासक्रीड़ाकाव्य, उत्तर रामायणंचंपू, महिषमंगल भाण तथा कई मलयालम चंपू-काव्य और स्तुतियाँ। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१)

प्रालेयशंख कुसुम स्फटिकावदातां
बालेंदु मण्डित मनोज्ञकिरीटभारां।
आलोकयामि मनसा वचसां सवित्रीं
नालीकयोनिवदनांबुज केलि-हंसीं॥

'हिम, शंख, श्वेतकुसुम और स्फटिक के समान अत्यन्त उज्ज्वल, द्वितीया की चन्द्रकला से शोभित किरीटवाली, ब्रह्मा के मुखकमल पर केलि करनेवाली हंसीरूप सरस्वती का मैं मन से दर्शन कर रहा हूँ।'

(२)

यशोदयामण्डितात्मा यथेष्ट दुग्धगोधनः।
जयत्यमेय महिमा कृष्णः कृष्ण इवापरः॥

राम के पक्ष में—

'श्यामवर्ण भगवान् अप्रमेय महिमाशाली हैं। उनकी जय हो। वे यश और दया से परिपूर्ण और सुशोभित हैं। यथेष्ट दूध देनेवाली गायों का धन इनके पास है। ये दूसरे कृष्ण के समान हैं।'

कृष्ण के पक्ष में—

'यशोदा माता से सुशोभित आत्मावाले हैं। गोपाल हैं। अप्रमेय महिमाशाली हैं। ऐसे कृष्ण के समान ही राम हैं।'

(३)

श्रुतिर्या श्रुत संपन्नमाश्रित्याश्रित-वत्सलं।
रमयत्यमलैरंगैरतिरम्य-पदक्रमा ॥

'श्रुति (वेद) श्रुत (वेदशास्त्र के ज्ञान) से सम्पन्न, आश्रितवत्सल (शरणागतवत्सल) राम का आश्रय लेकर उनके कोमल अंगों में रमण करती है। विशेष-श्रुति के पाठ के चार प्रकार हैं—पद, क्रम, घन और जटा। यहाँ पद और क्रम का वर्णन है। राम अति-रम्य पदक्रम से चलते हैं। श्रुति उनका आश्रय लेती है। अतः वह भी अतिरम्य पदक्रमा बन जाती है।' (श्लेषानुप्राणित अर्थ)

(४)

तत्कृपा-वारि-संपर्क-रोहत्सारस्वतांकुरः।
चरितं रामचन्द्रस्य रचयाम्यहमुत्तरं॥

'भगवत्कृपारूप जल के सिंचन से मुझमें सारस्वत अंकुर उग आया है। अर्थात् मेरी कविता-कला भगवत्कृपा पर निर्भर है। ऐसा मैं रामचन्द्र के उत्तर-चरित की रचना कर रहा हूँ।'

(५)

दूतवाक्य चंपू से—श्रीकृष्ण का क्रोध

तावद्देवस्य देहाज्झटिति पटुतटीत्कोटिवत्ताडिताक्षः
संहारोन्निद्रुरुद्र स्फुटनिटिलशिखिज्वालजालप्रकाशः।
कल्पान्त क्रूरसूरोत्करकिरणसमाहारघोरस्समन्ता-
दारुन्धानस्सभां तां निरपतदतुलः कोपि तेजस्समूहः॥

'तभी तक देवदेव श्रीकृष्ण के देह से चमकते पीताम्बर के समान बिजली की कौंधवाला, संहार में संलग्न रुद्र के ललाट से ज्वालामय, प्रज्वलित और कल्पान्त के समय बारहों आदित्यों से बरसती भीषण आग के समान घोर अतुलनीय जाज्वल्यमान तेज का समूह उस सभा में चारों ओर चढ़ता-बढ़ता-सा आ पड़ा।'

(६)

प्रोक्षिप्तबालधिरवाङ्मुखघोरघोणः
तूर्णंप्रदीर्णजलदः परिपूर्णदक्षः।
स्तोभ्यन् मुनीन् शिशिरयन्नवतेरिथत्वं
.... ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'पूँछ को उठाये, नीचे मुँह किये, घोर थूथनवाले वाराह भगवान् शीघ्र बादलों के आवरण को तोड़कर निकल पड़े। मुनिवृन्द अत्यन्त स्तम्भित-सा हो गया। चारों ओर स्तब्धता और जड़ता-सी छा गयी।'

गुरुवायुपुरेशस्तोत्र से—

(७)

भक्तौघेषु धृतादरां धृतदरामेकम हस्तांबुजे
पद्माधारण पद्मधारण-लसद्वक्षस्थलांभोरुहां।
आत्तोदग्रसुदर्शनामपरतः दुर्दर्शनामद्भुत-
च्छायांकामपि वायुमंदिरगतां ध्यायामि मायामयीं॥

'भक्तों के समूह में आदरणीय तथा एक हाथ में शंख धारण करनेवाली, विष्णु-पद्म धारण करने के कारण सुशोभमान वक्ष-कमलवाली, सुदर्शन के कारण कर्कशदर्शना, मायामयी वायुमन्दिर में व्यक्त अपूर्व शक्ति का मैं ध्यान करता हूँ।'

(८)

नष्टं गप्रसराः पदक्रमकथाहीना निलीनाः क्वचि-
द्वेदारोगदशां गता इव पुरा मीनात्मकेन त्वया।
दैत्यच्छेदचिकित्सयैव नितरामुल्लाघतां प्रापिताः
पूर्णांगाः प्रसरन्ति हन्त भुवने वातालयाधीवरः॥

'साङ्ग वेदों का प्रसार नष्ट हो चुका था। पद और क्रम (पाठों) कथा भी शेष नहीं थी। कहीं-कहीं एकदम वे नष्ट ही थे। तुमने मत्स्यावतार में दैत्यों का विनाश किया। सम्भवतः यही वेदों के उद्धार की चिकित्सा थी। अब वेद विकसित हैं। वेद-विद्या का उल्लास है। अब भूमण्डल में पूर्ण सारस्वत-प्रसार परिलक्षित है।'

एन० रा० ना०

मातृदत्त

मातृदत्त का समय १६वीं शती माना जाता है। 'कामसन्देश', तथा 'सुन्दर सन्देश' इनके प्रमुख काव्य हैं। कवि तीर्थाटन तथा मन्दिरों में रहकर पूजा में लीन प्रतीत होते हैं। इनका श्रीरंगस्तुति-सम्बन्धी एक छन्द नीचे दिया जा रहा है—

श्रीरंगाख्यव्रजशिशयिषुः स्वैरमागत्य सिंधो-
श्शेते यस्मिन् हरिरसहनस्तोयपातान् सुशीतान्
विश्वव्यापि शिशिरपवनैः क्लेशितस्सोऽपिभूपः
को वा वैधीं त्यजति सुतरां कल्पनां पौरुषेण ?

'श्रीरंग नामक श्री विष्णु व्रज में शयन की इच्छा से यहाँ आकर शयन करते हैं। शेषशय्या पर तरङ्गों के उत्थान-पतन से जो बाधा होती थी—वह उन्हें असह्य है।

विश्वव्यापी अत्यन्त शीतल ठण्डी हवाओं से वह भूप भी क्लेश का अनुभव करता है। यह सत्य है कि कोई व्यक्ति विधिविहित कल्पना का पौरुष से परित्याग नहीं करता।'

एन० रा० ना०

माधव पणिक्कर

निरणं कवियों में माधव पणिक्कर का सर्वोच्च स्थान है। इनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में सुनिश्चित ढंग से कुछ बताना कठिन है। पहले यही माना गया था कि ये कण्णश कवि नाम से प्रख्यात राम पणिक्कर के मामा थे तथा निरणं प्रदेश के निवासी थे। किन्तु आधुनिक शोधों के द्वारा इनकी जीवनी पर और अधिक प्रकाश पड़ा है। उसके आधार पर विद्वानों का यही मत है कि ये निरणं प्रदेशवासी न होकर केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम् के निकट के मलयिनकीष् नामक स्थान के निवासी थे। इन्होंने 'भगवद्गीता' नामक अपनी कृति में एतत्सम्बन्धी सूचना दी है।

उरचेन्नमरावती सममायेयुट्टन चेल्वमेषुं-
मलयिनकीष्
तिरुमातिन वल्लवनरुलाले तेतिवोटु-
माधवनहमिटर कलवान्
परमादरवोटु चोल्लिय जानपनुवल्-
मुकुन्दपदाम्बुजमम्पोटु
मरनाषिक मरवातुर चेय्तवरद्भुत-
मुक्तिपदं प्रापिक्कुम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अमरावती सदृश शोभायुक्त मलयिनकीष् में विराजमान श्रीकृष्ण का परमभक्त मैं—माधव—अपने दोषों को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण के चरित-सम्बन्धी इस कृति का वर्णन करता हूँ। जो कोई भी भक्तिसमेत इसका पारायण करेगा वह मोक्षपद प्राप्त करेगा।'

इससे स्पष्ट है कि ये मलयिनकीष् के निवासी और अनन्य कृष्णभक्त रहे हैं। इनके जीवनकाल के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। किन्तु यह निःसन्देह माना जा सकता है कि इनका उपस्थिति-काल सन् १४००–१५०० ई० के बीच रहा है। इनकी रचनाओं से पता चलता है कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य का इन्हें अथाह ज्ञान प्राप्त था।

स्वयं श्रीकृष्ण के परमभक्त होने से ये तत्कालीन जनता को भी भक्ति के सागर में डुबोना चाहते थे। यही कारण है कि विलास-शृंगारपूर्ण कविताओं से हटकर इन्होंने अपने काव्य के विषय के रूप में भक्ति को चुना। ऐसा करके आपने तत्कालीन केरलीय जनता को क्षणभंगुर हास-विलास से विलग कर शाश्वत भक्ति की ओर उन्मुख करने का स्तुत्य प्रयास किया।

भगवद्गीता का स्वच्छन्द अनुवाद माधव पणिक्कर की मुख्य कृति है। उसके सात सौ श्लोकों का सार आपने ३२८ पदों में अपने 'भगवद्गीता-संग्रह' में दिया है। गीता के गूढ़ तत्त्वों की गरिमा को आपने अपने अनुवाद में रंचमात्र भी घटने नहीं दिया है। यह उल्लेखनीय है कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं में मलयालम में ही भगवद्गीता का सर्वप्रथम अनुवाद निकला है। इसका श्रेय माधव पणिक्कर को ही प्राप्त है।

मलयालम भाषा में गीता का अनुवाद करने के अपने प्रयत्न की उपमा इन्होंने क्षीरसागर को सोखने का प्रयास करनेवाली चींटी से दी है। इस सम्बन्ध में इनका विनम्र कथन है—

विलयरिवानरुताकिय रत्नं वेरोरु-
पोन्निन चेप्पिलतल्ला
ललवलयाकिय तुकलिल् पोतिकिलुमतिनुटे
महिमविरोधं वरुमो ?

'किसी अनमोल रत्न को सुवर्ण-डिबिया से निकालकर किसी कोमल चर्म में बाँध रखने पर क्या उसकी महिमा घट जायगी ?'

इनके 'भगवद्गीता-संग्रह' ने कवि के उपर्युक्त कथन को सर्वथा सार्थक सिद्ध कर दिया है।

कविवर की अटल कृष्णभक्ति का यह सशक्त प्रमाण है कि 'भगवद्गीता' के अन्त में कवि यह घोषणा कर देते हैं कि जो कोई भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरित से सम्बद्ध यह कृति पढ़ लेगा, मुक्ति पा लेगा।

इनके दो भक्तिपूर्ण छंद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

अत्भुतमाय् अमृतायमरनालिनु मरिवाय-
जगलपूर्णव्माय
उत्भवमरणादिकल करणादिकलो निणन्नोटुम
कूटानोलिवाय
पुष्पमणंपोल स्थावर चरमोटु पणराते
पुणरुम पोरुलाय
निन्नेप्पोषुतुम सच्चिलसुखमाय् निन्नीटिन
परमात्मानम् तोषुतेन् ।

'मैं उस परमात्मा को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ जो चमत्कारमय है, जो वेदों से ही जाना जा सकता है, परिपूर्ण है, जन्म-मरणादि से परे है, पुष्प की सुगन्धि के समान चर और अचर से निस्संग है और सदा सच्चिदानन्दमय है।'

आरालुम चिन्तिच्चालरिवा-
नरुताकिय करुणाकर जय जय
नलिनदलायत लोचनने जय
ताराररमकल मणवाला जय जय
धरणीवल्लभ सकलेशा जय ॥

'हे भगवान्, तेरी जय हो। निरन्तर चिन्तन से भी अगम्य हे करुणामूर्ति ! तेरी जय हो। हे नलिन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दलायतलोचन, तेरी जय हो। हे लक्ष्मीपति भगवान्! तेरी जय हो। हे पृथ्वीवल्लभ, सकलेश, तेरी जय हो।'

एस० तं० अ०

मानविक्रम महाराजा

इनका समय १५वीं शताब्दी है। ये कालिकट के राजा थे, स्वयं कवि थे और कवियों का आदर करते थे। इनके दरबार में साढ़े अठारह कवि रहते थे। १८ संस्कृत भाषा के कवि थे और एक मलयालम भाषा का। संस्कृत के कवियों को पूरा और मलयालम के कवि को आधा स्थान प्राप्त था। इनके दरबार के कवि-सदस्यों में पय्यूर पट्टेरी वंश के नौ, तिरुप्पर नंपूतिरि वंश के पाँच, शेष चार में मुल्लप्पिलली भट्टतिरि, चेन्नास नंपूतिरि, उद्दण्डशास्त्रश्री, काकरोरी भट्टतिरि तथा मलयालम कवि पुनं नंपूतिरि जिन्हें आधे कवि का स्थान प्राप्त था। इन कवियों के कारण इनकी सभा विजयनगर के महाराज कृष्णदेवराय की कवि-सभा की तरह प्रसिद्ध थी।

इनकी एकमात्र कृति 'विक्रमीयं' नामक 'अनर्घ राघव' नाटक की व्याख्या है। उससे विदित होता है कि राम और कृष्ण दोनों में इनकी समान आस्था थी। एक स्तुति देखिये—

(१)

किशोरं जलदश्यामं यशोदास्तनपायिनं।
दंतशून्यमुखांभोजं चिन्तये सर्वसंपदे॥

'किशोर, घनश्याम, यशोदा के स्तन पीनेवाले, दाँतों से रहित मुखकमलवाले बालकृष्ण का सब प्रकार की सम्पत्ति के लिए चिन्तन करता हूँ।'

(२)

करुणाकरसंज्ञांस्तान् पंकजाक्षान् प्रभान्वितान्।
रामाभिधांश्च वन्देऽहं पुनरेतान् महामतीन्॥

'करुणाकरसंज्ञक, कमलनेत्र, आकर्षक आभामय, व्यक्तित्वसम्पन्न 'राम' नाम से युक्त, परम बुद्धिमान् की मैं पुनः-पुनः वन्दना करता हूँ।'

एन० रा० ना०

मानवेद राजा

उत्तर केरल के कोषिक्कोट् (कालिकट) रियासत के 'सामूतिरि' राजवंश के शासक अपनी अद्वितीय विद्वत्ता एवं कवि-हृदय के लिए अत्यन्त विख्यात थे। उसी राजवंश में सन् १५९५ ई० में मानवेद का जन्म हुआ था। राजसी वातावरण में जन्मे-पले उन्होंने विख्यात गुरुवरों से संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। माना जाता है कि बिल्वमंगल स्वामियार भी उनके गुरुवर थे। राजा मानवेद के जीवनवृत्त-सम्बन्धी अधिक बातें ज्ञात नहीं हैं। माना जाता है कि आपने जीवन का अधिकांश समय गुरुवायूर के श्रीकृष्ण-मन्दिर में बिताया और सन् १६५८ ई० में गुरुवायूर में ही इनका देहान्त भी हुआ। इनके भौतिक शरीर का संस्कार गुरुवायूर के मन्दिर के निकट ही किया गया।

राजा मानवेद भगवान् श्रीकृष्ण के समर्पित भक्त थे और गुरुवायूर के श्रीकृष्ण-मन्दिर से उनका अटूट सम्बन्ध था। 'कृष्णगीति' नामक प्रसिद्ध कृति इनकी प्रगाढ़ कृष्णभक्ति का अनुपम निदर्शन है।

राजा मानवेद ने 'कृष्णनाट्टं' (कृष्ण-नृत्य) नामक एक दृश्यकला रूप को जन्म दिया था। 'कृष्णनाट्टं' वस्तुतः केरल के कृष्ण-भक्ति-आन्दोलन की महती देन है। ऐसी मान्यता है कि 'कृष्णनाट्टं' से 'रामनाट्टं' नामक नृत्यक का रूप बना है तथा वही आगे चलकर 'कथकली' के रूप को प्राप्त कर गया है। वस्तुतः कृष्णनाट्टं, रामनाट्टं तथा कथकली—ये तीनों केरल की अस्मिता के परिचायक नृत्यरूप हैं। 'कृष्णनाट्टं' एक नृत्तनाट्य है जिसके प्रस्तुतीकरण के लिए राजा मानवेद ने 'कृष्णगीति' की रचना की थी। कोमलकांत पदावली में विनिर्मित जयदेव का 'गीतगोविन्द' तथा मेल्पुत्तूर नारायण भट्टतिरि के 'नारायणीयं' का स्पष्ट प्रभाव 'कृष्णगीति' में परिलक्षित होता है। 'गीतगोविन्द' के समान 'कृष्णगीति' भी एक गेयकृति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुरुवायूर के कृष्ण-मन्दिर में 'कृष्णनाट्टं' खेला जाता था। भगवान् की प्रीति के लिए अब भी गुरुवायूर के कृष्ण-मन्दिर में 'कृष्णनाट्टं' प्रस्तुत किया जाता है।

'कृष्णनाट्टं' का खेल लगातार आठ रातों में प्रस्तुत किया जाता है। 'कृष्णगीति' के अवतार, कालियमर्दन, रासक्रीड़ा, कंसवध, स्वयंवर, बाणयुद्ध, विविदवध, स्वर्गारोहण जैसे आठ भाग ही हर रात के खेल की विषय-वस्तुएँ हैं। भक्तों की राय में स्वर्गारोहण तक भगवान् की कथा को समाप्त करना अशुभकर है। अतः स्वर्गारोहण के पश्चात् पुनः अवतार का अभिनय करके ही 'कृष्णनाट्टं' समाप्त किया जाता है।

जनश्रुति है कि स्वयं भगवान् कृष्ण ने सपने में मानवेद को दर्शन दिये थे और उसी रूप को हृदय में रखकर मानवेद ने 'कृष्णनाट्टं' के पात्रों की परिकल्पना की थी। शायद यही कारण है कि 'कृष्णनाट्टं' के श्रीकृष्ण का रूप विशेष सुन्दर और अलौकिक आभा से अभिमण्डित है। यह भी माना जाता है कि राजा मानवेद को दर्शन देकर जब भगवान् कृष्ण अप्रत्यक्ष हुए तब उनके मुकुट से एक मोरपंख नीचे गिरा था। भक्तजनों का विश्वास है कि 'कृष्णनाट्टं' के श्रीकृष्ण के मुकुट में अब भी वह मोरपंख विराजमान है।

'कृष्णगीति' के अलावा 'पूर्वभारतं-चंपू' नामक एक कृति भी मानवेद द्वारा विरचित मानी गयी है। मानवेद राजा का भक्तिपरक एक पद इस प्रकार है—

जगति सुकृति लोकेश्नन्दिताऽनन्दिताशा-
कळविरणित वंशीभासमानाऽसमाना
पशुपयुवति भोग्या देवता देवता सा
सजल जलदपालीमेचका मे चकास्तु !

'जगत् में सुकृतियों द्वारा संपूजित, अभिलाषाओं को मुदित करनेवाले, मधुर मोहक मुरली से शोभित, अनुपम, गोप-नारियों के लिए भोग्य तथा जलपूरित श्याममेघसम छविवाले देवों के देव हे श्रीकृष्ण! आप मेरे सम्मुख प्रकट हो जायँ।'

एस० तं० अ०

मेल्पुत्तूर नारायण भट्टतिरि

मेल्पुत्तूर नारायण भट्टतिरि केरल प्रदेश के, अपने समय के सबसे प्रतिष्ठित संस्कृत-पण्डित एवं प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि थे। 'तिरुनावाय्' नामक पुण्यस्थान में जो प्रसिद्ध विष्णु-मन्दिर है, उसके उत्तर ओर चन्दनक्काव् देवी-मन्दिर स्थित है। इनका जन्म सन् १५५९ ई० में उस देवी-मन्दिर के निकट के 'मेल्पुत्तूर' नामक पुराने घराने में हुआ था। इनके पिता का नाम मातृदत्त भट्टतिरि था। वे स्वयं संस्कृत के पण्डित थे। अतः इन्होंने अपने पिता से ही संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। 'मीमांसा' का गहन अध्ययन भी आपने उन्हींसे किया। उनके अतिरिक्त माधव चाक्यार, दामोदर पिषारटी आदि विद्वान् भी इनके गुरु थे। उन गुरुवरों से नारायण भट्टतिरि ने वेद, तर्क, व्याकरण आदि का अनुशीलन किया। इससे कालान्तर में ये संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित बन गये। इन्हें अपने इस पाण्डित्य का बड़ा गर्व था। किंवदन्ती है कि एक बार कृष्ण ने स्वयं प्रकट होकर उनके इस गर्व को चूर-चूर कर दिया।

दुर्भाग्यवश युवावस्था में ये वातरोग से पीड़ित हो गए। चिकित्सा से कोई लाभ नहीं हुआ। इससे ये बहुत चिन्तित हुए। अन्ततः आपने भगवान् के चरणों की शरण लेने का दृढ़ संकल्प किया। इसके लिए सन् १५८६ ई० में ये गुरुवायूर के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण-मन्दिर का दर्शन करने आये और वहाँ रहकर भगवद्-भजन में दिन बिताने लगे। यहाँ भक्तप्रवर कवि एषुत्तच्छन तथा अनन्य कृष्णभक्त पून्तानम् नंपूतिरि से आपकी भेंट हुई।

यहाँ रहते हुए ये भगवान् श्रीकृष्ण के स्तुतिगीतों के गायन में निरन्तर मग्न रहते थे। कथा है कि इन्होंने एषुत्तच्छन से अपनी रोग-शान्ति के उपाय-सम्बन्धी उपदेश माँगा। इसके उत्तर में एषुत्तच्छन ने उन्हें 'मीन तोट्टु कूट्टणं' (मत्स्य से आरम्भ करो) का उपदेश दिया था। एषुत्तच्छन के इसी अनुरोध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर भट्टतिरि ने मत्स्यावतार से अपने काव्य 'नारायणीयं' का श्रीगणेश सन् १५८७ ई० में किया था।

संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने से भट्टतिरि ने उसी भाषा में भगवान् का यह स्तुति-गीत गाया है। भगवान् श्री नारायण के सम्बन्ध में नारायण द्वारा विरचित रचना होने के कारण काव्य का नाम 'नारायणीयं' बना है। श्रीमद्भागवत का सार-संक्षेप ही आपने अपनी कृति के १०३६ श्लोकों में प्रस्तुत किया है। भक्ति का सांगोपांग एवं रोमांचकारी वर्णन प्रस्तुत काव्यकृति में उपलब्ध होता है। वस्तुतः 'नारायणीयं' एक प्रौढ़ एवं गम्भीर रचना है जिसने केरल के विद्वज्जनों के सम्मुख भक्ति का एक नितान्त नूतन एवं प्रभावशाली रूप प्रस्तुत किया। ग्रन्थ के अन्त में कवि का कथन है—

अज्ञात्वा ते महत्त्वं यदिह निगदितं
विश्वनाथ ! क्षमेथ
स्तोत्रं चैतत् सहस्रोत्तरमधिकं
त्वत्प्रसादाय भूयात्
द्वेधा नारायणीयं
श्रुतिषु जनुषास्तुत्यता वर्णनेन
स्फीतं लीलावतारैरिदमिह
कुरुतां आयुरारोग्यसौख्यं।

'हे विश्वनाथ ! आपके माहात्म्य से अनभिज्ञ मैंने इसमें जो कुछ कहा है, आप क्षमा करें। सहस्राधिक श्लोकों से युक्त यह कृति आपके परम प्रसाद का पात्र बन जाय। मुझसे विरचित होने के कारण तथा वेदविधि के अनुसार नारायणरूप आपकी स्तुति में अर्पित होने के कारण, दोनों प्रकारों से यह काव्य 'नारायणीयं' की अभिधा के लिए सर्वथा योग्य है। आपकी लीलाओं व अवतारों से पूर्ण यह कृति आयुरारोग्य एवं सौख्य प्रदान करे।'

जनश्रुति के अनुसार 'नारायणीयं' की रचना पूरी होते ही भट्टतिरि रोगविमुक्त हो गए। इस प्रकार 'नारायणीयं' की प्रसिद्धि बढ़ गयी तथा 'नारायणीयं' के साथ-साथ भट्टतिरि और गुरुवायूर के आराध्यदेव कृष्ण भी विख्यात हो गये।

इनकी निम्नांकित कृतियाँ उपलब्ध हैं—

१. **स्तोत्र**—नारायणीयं, श्रीपादसप्तति, गुरुवायूपुरेश-स्तोत्र।
२. **प्रशस्तिकाव्य**—गोश्रीनगरवर्णन, माडमहीशप्रशस्ति, शैलाब्धीशप्रशस्ति।
३. **चंपू और अन्य काव्य**—सूक्ति, श्लोक।
४. **मुक्तक**।
५. **शास्त्र**—आश्वलायनक्रियाक्रम, प्रक्रियासर्वस्वम्, धातुकाव्यम्, अपाणनीयप्रामाण्यसाधनम्, मानपरिच्छेदम्।

चंपूकाव्य – राजसूयं, दूतवाक्यम्, पांचाली स्वयंवरम्, नालामनी चरितम्, सुंदोपसुंदोपाख्यानम्, सुभद्राहरणम्, कौन्तेयाष्टकं, किरातम्, कैलासवर्णनम् आदि महाभारत-कथा पर आधारित।

मत्स्यावतारम् तथा नृगमोक्षम् भागवत पर आश्रित।

निरनुनासिकम्, अहल्यामोक्षम् तथा बालकाण्ड रामायण पर आधारित।

दक्षयज्ञ एवं त्रिपुरदहन शिव-कथाओं पर आधारित।

प्रसिद्धि है कि गुरुवायूर के बालगोपाल को उन्होंने आमने-सामने देखा था। ऐसे भक्त विरले ही मिलते हैं। जैसे सूर ने बालगोपाल का दर्शन किया था वैसे भट्टतिरि ने भी किया था। यह नारायणीयं के सौवें दशक के श्लोक—'अग्रे पश्यामि तेजे निबिड तरकलायावली लोभनीयं' से स्पष्ट होता है। ये कोषिकोड, कोचीन, वडक्कूर, अंबलप्पुषा आदि राज्यों के शासकों के यहाँ रहे थे। किन्तु इनका अधिक समय अंबलप्पुषा में ही बीता। वहाँ के राजा परम श्रीकृष्णभक्त और कवियों के आश्रयदाता थे। भट्टतिरि बड़े सहृदय और निसर्गजात कवि थे। इनका व्याकरणशास्त्र पर बड़ा अधिकार था। इनके व्याकरणग्रन्थ—प्रक्रियासर्वस्व को पढ़कर तथा चमत्कृत होकर काशी के भट्टोजी दीक्षितर इनके साक्षात्कार के लिए केरल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आये थे। परन्तु इसके पूर्व ही सन् १७२० ई० में इनकी मृत्यु हो गई थी। इनके कृष्णभक्तिव्यंजक पाँच श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

(१)

अग्रे पश्यामि तेजो निबिडतरकलापावली लोभनीयं
पीयूषाप्लावितोहं तदनुतदुदरे दिव्यकैशोर वेषं।
तारुण्यारंभरम्यं परमसुखरसास्वादरोमांचितांगै-
रावीतं नारदाद्यैर्विलसदुपनिषद् सुन्दरीमण्डलैश्च॥

'मैं अपने आगे ही किशोर अवस्था के बाद उभरती जवानी के सौन्दर्य से विभूषित, अत्यन्त तेजोमय मोरपंख से आकर्षक गोपाललाल का साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ। नारद आदि मुनीश्वर उन्हें घेरे हुए हैं। भगवान् के सान्निध्य के आनन्द से रोमांचित, सुन्दरी गोपियों से आवृत उपनिषद्-पुरुष का दर्शन कर मैं अमृतरस में निमग्न हो उठा। पश्चात् मुझे यह अनुभव हुआ कि मैं उनके ही विराट् उदर में स्थित होकर उस दिव्य कैशोर-रूप का दर्शन कर रहा हूँ।'

(२)

योगीन्द्राणां त्वदंगेष्वधिकसुमधुरं-
मुक्तिभाजां निवासो
भक्तानां कामवर्षं सुरतरुकिसलयं-
नाथ ते पादमूलं।
नित्यं चित्तस्थितं मे पवनपुरपते-
कृष्ण! कारुण्यसिन्धो!
हृत्वा-निःशेषतापान् प्रतिशतुपरमा
नन्दसन्दोहलक्ष्मीं॥

'हे नाथ! तुम्हारे अंगों में ही मुक्ति के अधिकारी योगीन्द्रों का मधुमय निवास है। तुम्हारे चरणतल भक्तों के लिए साक्षात् कल्पवृक्ष हैं। तुम्हारे सुकुमार तलवे के सामने सूरतरु के किसलय भी फीके हैं।

हे करुणा के आगार, करुणावरुणालय भगवान् कृष्ण! संसार के सभी तापों का निवारण कर आनन्द की राशि-राशि वितरित करो। मेरा चित्त तुम्हींमें लीन है। तुम्हारी दृष्टि ही आनन्दलक्ष्मी का उल्लास कर सकती है।'

(३)

जिष्णोस्त्वं कृष्ण सूतः खलुस मरमुखे
बंधुघाते दयालुं
खिन्नं तं वीक्ष्य वीरं
किमिदमपि सखे नित्य एकोयमात्मा।
को वध्य? कोत्र हत्या? तदिह वधभयं
प्रोज्झ्य मय्यर्पितात्मा
धर्म्यं युद्धं चरेति प्रकृतमनुयथा
दर्शयन् विश्वरूपम्!

'हे कृष्ण! तुम विजयाभिलाषी अर्जुन के सारथी हो। युद्ध में दया का प्रदर्शन करनेवाले पार्थ को तुमने आत्मा का उपदेश दिया। तुमने यह समझाया कि कौन वध्य है, कौन नहीं है। हत्या क्या है? हे पार्थ! तुम सारे भय छोड़कर मेरी शरण में आओ और धर्म-युद्ध करो! इसके साथ ही तुमने उसे अपना विराट् रूप भी दिखलाया।'

(४)

रासक्रीड़ा-वर्णन

केशपाशधृतपिच्छकवितति संचलन्मकरकुण्डलं
हारजालवनमालिका ललितमंगराग धन सौरभं
पीतचेलधृत कांचिकोचितमुदश्चवंशु मणिनूपुरं
रासकेलीपरिभूषितं तवहि रूपमीश कलयामहे।

'रासक्रीड़ा के समय गोपबालाओं के केशपाश मयूर-पंखों से और भी सुन्दर लग रहे थे! कानों के मकर-कुण्डल चलायमान हो रहे थे। वक्ष के हार और वनमालिकायें विचित्र शोभा धारण कर रही थीं। अंग-अंग से अंगराग की सुगन्धि बिखर रही थी। चीनांशुक निर्मित पीताम्बर की छटा की कमनीयता, मणिमय नूपुरों की झंकार और कुल मिलाकर उससे उत्पन्न आमोद और उल्लास! हे कृष्ण! रासलीला के लिए लिप्त रहते तुम्हारे अनिन्द्य सौन्दर्य का आकलन मैं कर रहा हूँ।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५)

कालिय-नृत्य

अधिरुह्य ततः फणिराजफणान्
ननृते भवता मृदुपादरुचा।
कल शिंजित-नूपुरमंजुकलं
करकंकण-संकुल-संरणितम् ॥

'शेष कर्कश कालिय नाग के फणों पर चढ़कर अपने सुकुमार चरणों से आपने जो नर्त्तन किया! तथा कल शिंजन करनेवाली मधुर-मधुर ध्वनि से झंकार करनेवाले नूपुरों से जो नाद उत्पन्न किया उसमें आपके कोमल हाथों में शोभित कंकणों का भी संगीत समाया हुआ था।'

एन० रा० ना०

मेल्पत्तूर मातृदत्त भट्टतिरि

ये नारायण भट्टतिरि के छोटे भाई थे और १६वीं शती में विद्यमान थे। अपने अग्रज के समान ही ये बड़े भक्त थे। इनकी एकमात्र रचना 'भक्ति-संवर्द्धन-शतक' मिलती है जो १०० श्लोकों में निबद्ध है। इसके कुछ छन्द प्रस्तुत हैं—

(१)

वामां वामां कुटिलहृदयां काममात्मन्यकामां,
मा गृह्णानः प्रणयचपलः कामतप्तांतरात्मा।
तत्तादृग्भिः कपटचरितैर्वंच्यमानस्तथाहं,
योषित्क्रीडा कपिरिति विभो! मा प्रहस्येय सद्भिः॥

'अपनी ओर आसक्ति से रहित किसी नायिका के साथ चंचल व्यवहार उचित नहीं। काम से पीड़ित रहने पर भी प्रणय की चपलता व्यक्ति को काम के हाथों का खिलवाड़ बना देती है। व्यक्ति काम-कपीश्वर हो जाता है।

हे सर्वसमर्थ कृष्ण! मुझे सज्जन पुरुषों के द्वारा कभी ऐसी संज्ञा न मिले। मैं उनकी हँसी का पात्र न बन सकूँ—यही कृपा करना!'

(२)

भूतात्मानं भुवनविततं भूतिसर्वस्वभाजं,
भुक्तेर्मुक्तेरपि च विषयं भूतिकारुण्यपूर्णं।
भूतग्राम प्रभव वि-वं भूर्भुवस्वर्न्निदानं
भूयो भूयो मनसि भगवन् भावयेहं भवन्तं॥

'आप सभी प्राणियों के आत्मा हैं, सर्वव्यापक हैं, समस्त ऐश्वर्यों के उत्स हैं, भुक्ति और मुक्ति दोनों के हे करुणानिधि! आप ही आश्रय हैं। सृष्टि का यह सारा विभव आपसे उद्भूत है। आप भूः, भुवः और स्वः के आदिकारण हैं। ऐसी विशेषताओं से विशिष्ट हे भगवन्! आपका मैं अपने हृदय में सर्वदा भावन करता हूँ!'

एन० रा० ना०

यदुनाथचरितकार

'यदुनाथ-चरित' नामक ग्रन्थ के रचयिता का नाम अज्ञात है। परंपरया ये १५वीं शताब्दी ई० में वर्तमान माने जाते हैं। 'यदुनाथ-चरित' से इनके अच्छे कवि तथा भक्त होने का संधान मिलता है। इनके तीन भक्तिपूर्ण श्लोक नीचे दिये जा रहे हैं—

(१)

वन्दारुजनसंदोह चिंता संतानपादपं।
सन्तानमिन्दुचूडस्य वन्दे दन्तावलाननं॥

'वन्दना में संलग्न भक्तों के समूह की चिन्ता को, उनके अभिलाष को पूर्ण करने के लिये आप साक्षात् कल्पवृक्ष हैं। हे चन्द्रचूड भगवान् शंकर के योग्य सन्तान! हे गजवदन गणेश! आपको वारंवार प्रणाम करता हूँ।'

(२)

वाणी गुण तृणीभूत वीणामेणांकरोचिषं।
वाणीमाराधये पीन श्रोणीमेणीविलोचनां॥

'शरद्-शर्वरीश की सुषमा से समन्वित, चन्द्रमुखी और मृगी के समान आँखोंवाली, पीनजघना सरस्वती की मैं आराधना करता हूँ। उसकी अमृतमयी वाक्-शक्ति का चमत्कार उसकी वीणा में ही चरितार्थ है। कहाँ वाक्-अमृत और वीणा!'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३)

वंशीसंशीलनपरं धेनुवृन्दावने रतं।
वृन्दावनचरं गोपी कामरूपमुपास्महे ॥

'वंशीवादन में लगे, गाय चराते हुए, वृन्दावन में विचरण करनेवाले और गोपियों के साक्षात् अभिलाष ! हम आपकी उपासना करते हैं।'

एन० रा० ना०

रविवर्मन तंपी

ये सन् १४८५ से १५५८ ई० के बीच विद्यमान थे। इनका जन्म तिरुवनन्तपुरम् में हुआ था और तिरुवितांकूर के राजवंश के साथ इनका अच्छा सम्बन्ध था। ये अपने समय के एक अच्छे विद्वान् तथा साहित्यिक थे। इन्होंने महाभारत पर आधारित अनेक कथकली के ग्रंथों की रचना की थी। ये संगीत में भी बहुत निपुण थे। इसलिए इनके पद जनता में प्रसिद्ध हो गये। बालगोपाल के सम्बन्ध में इनका एक संस्कृत श्लोक देखिये—

पटुः क्षोणीभारव्यसनहरणे, गोपवनिता-
विटः, श्रोणीदेशाकलितविलसत्किंकिणिगणः।
वटश्रेणीवासो, वलरिपुशिला श्लेष दितिभू-
भटश्रेणीहन्ता, भवतु भवमोक्षाय भवताम् ॥

'पृथ्वी के भार-हरण में शाश्वत कुशल, गोपियों के विट (जार या उपपति), नायिकाओं के श्रोणी-प्रदेश में रुनझुन बजनेवाली किंकिणी की मधुर ध्वनि के आकलन में आनन्द लेनेवाले, वटपत्र-विलसित, इन्द्र के वज्र को छिन्न-भिन्न कर देने में समर्थ, राक्षसी सेना के विनाशक, भगवान् कृष्ण आपके मोक्ष के कारण बनें।'

एन० रा० ना०

राम पणिक्कर

केरल के तिरुवल्ला तालुके में स्थित निरणं नामक प्रदेश में तृक्कपालीश्वरम् नामक एक प्रसिद्ध शिव-मन्दिर है। उस मन्दिर के उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित एक स्थान है 'कण्णशन् परंपु'। आज भी यह इसी नाम से जाना जाता है। यहीं पर राम पणिक्कर का जन्म हुआ था। इनके जीवन के सम्बन्ध में कोई अन्य वृत्तान्त प्राप्त नहीं होता। कतिपय सूचनायें उन्हींके द्वारा रचित रामायण—जो केरल में 'कण्णश-रामायणं' नाम से प्रख्यात है—के अन्तिम भाग में मिलती हैं—

वानुलकिनु सममाकिय निरणमहादेशे
वन्नुलनायान ऊनमिल्लात......

उपर्युक्त पंक्तियों से ये बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि स्वर्ग-सदृश निरणं नामक प्रदेश में एक महात्मा ने जन्म लिया। उनके दो बेटे और तीन बेटियाँ थीं। बेटे उन्हींके समान समर्थ निकले। उनकी सबसे छोटी बेटी का पुत्र राम भगवान् की अनुज्ञा पर पापमोचन के लिए राम-कथा का आख्यान करता है। 'कण्णश-रामायणं' के एक अन्य प्रसंग में कवि ने सूचित किया है कि अपने दादा के दोनों बेटों के भानजे के रूप में राम नामक बालक पैदा हुआ।

कवि राम की इन्हीं उक्तियों के आधार पर पण्डितों ने यह निश्चित कर लिया कि राम, रामायण के रचयिता राम पणिक्कर हैं तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट दो मामा हैं माधव पणिक्कर तथा शंकर पणिक्कर। किन्तु आगे चलकर शोधों ने यह प्रमाणित किया कि इन तीनों कवियों में पारिवारिक सम्बन्ध की अपेक्षा काव्य-शैली की एकरूपता को अधिक महत्त्व देना चाहिए। राम पणिक्कर ने अपने दादा का नाम करुणेशन् बताया है। करुणेशन् ही आगे चलकर कण्णशन् बना है। अपने दादा के नाम के आधार पर दौहित्र राम भी कण्णशन् माने जाने लगे—ऐसा पण्डितों का मत है।

राम पणिक्कर के जीवनकाल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। किन्तु प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह निःसंदेह माना जा सकता है कि पन्द्रहवीं शती का उत्तरार्ध और सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध ही इनका जीवनकाल है। इनके जीवनवृत्त-सम्बन्धी अन्य बातें अज्ञात हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनकी कृतियों के अनुशीलन से यह स्पष्ट विदित होता है कि ये सुपठित, साहित्य-कला-निपुण, संस्कृत भाषा के पण्डित, भक्त एवं ज्ञानी महापुरुष थे।

'कण्णश-रामायणं' ही राम पणिक्कर की सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति है। 'कण्णश-भागवतं', 'कण्णश-भारतं', 'शिवरात्रि-माहात्म्यम्' आदि भी इन्हींके द्वारा प्रणीत माने जाते हैं। वाल्मीकि रामायण के आधार पर विरचित 'रामायणं' में कवि ने जिस प्रकार श्रीराम की भक्ति प्रकट की है उसी प्रकार 'भागवतं' और 'भारतं' में आपने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अटल निष्ठा की सफल अभिव्यक्ति की है।

'कण्णश-भागवतं' और 'कण्णश-भारतं' में भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है। इनकी काव्य-कृतियों के वर्णनात्मक प्रसंगों के बीच उपलब्ध भावपूर्ण उक्तियों से यह पता चलता है कि इन कृतियों की रचना का लक्ष्य मात्र कथा-वर्णन न होकर भगवान् कृष्ण का शब्दार्चन रहा है। इन दोनों ही कृतियों में स्थान-स्थान पर उपलब्ध स्तुतियाँ इसकी साक्षी हैं—

विश्वेश्वरनाकिय श्रीकृष्णा।
नीये कारियकारणनायतु
नीये सर्वात्मावाय् निन्नतु
नीये बुद्धीन्द्रियादियुमेल्लां
नीये इन्द्रियङ्ङल्क्करिवायतु
नीये अद्वितीयनाय् निन्नतु
नीये कालादिकलायिनिन्नतु
नीये भगवान् विष्णुवं नीये।

'हे विश्वेश्वर श्रीकृष्ण! तू ही कार्य-कारणों का मूल है, तू ही सर्वात्मा है, बुद्धि आदि सभी इन्द्रियाँ भी तू ही है। सभी इन्द्रियों का ज्ञेय भी तू ही है। तू अद्वितीय है। काल भी तू ही है, तू ही भगवान् विष्णु भी है।'

राम पणिक्कर के दो भक्तिपरक पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

भूभारत्तेयरुप्पान् देवकि
पुत्रनताकि जनिच्चवने जय!
शोभादिकलोटु नन्दगेहे पोय्
सुखमोटु पुक्कु वसिच्चवने जय

अवनियिलुं मट्टेल्लादिक्किलु-
मन्वेषिच्चु महादुष्टरे वध
शिवकरमाये चेय्तीटिन्टोरु
श्रीपुरुषोत्तमने, जयशरणं।

'भूमि के भार को हरने के हेतु देवकी के पुत्र के रूप में अवतार लेनेवाले हे श्रीकृष्ण! तेरी जय हो। सभी ऐश्वर्यों के साथ नन्दगृह में जाकर सुखपूर्ण जीवन बितानेवाले कृष्ण! तेरी जय हो। पृथ्वी में सर्वत्र घूम-फिरकर दुष्टों को खोज-खोजकर उन सबका वध करके लोककल्याण करनेवाले हे कृष्ण! तेरी जय हो। हे कल्याणकारी पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण! तू ही हमारे लिए शरण्य है।'

(२)

अरिवियलुं मुनिमारकतारिलो-
रनुपम निर्म्मल चिन्मयनाये
तिरमोटु सृष्टिस्थितिनाशादिकल्
चेय्वानजहरिशंकरनायुं
निरमयिलिन्ट महाभूतादिकल्
निखिलवुमाकियोरु-तनुमोन्टा
यरि वरुतायोलिवाय परमात्मावां
श्रीकृष्णनने वन्दिक्किन्टेन्!

'मैं उस परमात्मा श्रीकृष्ण की वन्दना करता हूँ जो महाज्ञानी मुनिजनों के पुनीत हृदयों में अनुपम-निर्मल-चिन्मय रूप में विराजमान है, जो इस विश्व-प्रपंच के समस्त चराचरों की सृष्टि, स्थिति और संहार-कर्ता हैं और जो निखिल धरा के कर्ता-धर्ता और प्रकाशपुंज हैं।'

एस० तं० अ०

रामपुरत्तु वारियर

रामपुरत्तु वारियर के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध होती है। इनका जन्म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन् १७०३ ई० में मीनच्चील तहसील के रामपुरम् नामक गाँव के प्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर के पास वारियर घराने में हुआ था। रामपुरम् में जन्म लेनेवाले और 'वारियर' जाति (केरल की एक जाति जो मन्दिरों में भगवान् की माला गूँथकर जीविका चलाती थी) के होने के कारण ये रामपुरत्तु वारियर कहलाये। इनके असली नाम का पता नहीं चलता।

ये एक गरीब परिवार में पैदा हुए थे। किसी न किसी प्रकार ये संस्कृत पढ़ सके और पण्डित बन गये। गरीबी से तंग आकर ये वैक्कम नामक स्थान के प्रसिद्ध मन्दिर में भजनार्थ जाया करते थे। वहीं एक बार संयोग से तिरुवितांकूर के महाराजा मार्तंडवर्मा से इनकी भेंट हो गई। आश्रित-वत्सल, कृपालु एवं महादानी महाराज मार्तंडवर्मा को साक्षात् श्रीकृष्ण तथा स्वयं को दीन-हीन सुदामा मानकर आपने एक श्लोक लिखा और उसे उन्हें उपहार-रूप में अर्पित किया। श्लोक पढ़कर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए। वैक्कम से अपनी राजधानी तिरुवनन्तपुरम लौटते समय महाराजा ने वारियर को भी नाव पर चढ़ने की आज्ञा दी। नाव चलने लगी तो महाराजा ने कवि से नौका-गीत-शैली में सुदामा-चरित रचने का अनुरोध किया। कहा जाता है कि राजा के उसी अनुरोध पर वारियर ने नौका-गीत-शैली में 'कुचेलवृत्तं' (सुदामा-चरित) की रचना की। इस घटना की ओर संकेत करते हुए ये काव्य के प्रथम छन्द में लिखते हैं—

वंचनमनुजनायिट्टव तरिच्चिचरिक्कुन्न
वंचिवल वैरियुटे कृपय्क्किरिप्पान्
वंचिकयाय् वन्नावू ञानेन्निच्छिच्चु-वाषुंकालं-
वंचिप्पाट्टुण्टाक्केणमेन्नरुलिच्चेयतु

'जिस महाराजा ने श्रीकृष्ण का अवतार लिया है, उनके कृपा-कटाक्ष का पात्र बनने की आशा से मैं नाव में बैठा और मुझे 'वंचिप्पाट्टु' अथवा नौका-गीत रचने की आज्ञा मिली।'

राजधानी पहुँचने पर महाराजा ने कवि को कई दिनों तक अपने साथ रखा। इसके पश्चात् जब ये अपने घर लौटने लगे तो राजा ने प्रकट रूप से इन्हें कुछ भी नहीं दिया। राजा से कुछ भी प्राप्त न होने पर खाली हाथ और व्यथित-हृदय लौटनेवाले वारियर अपने गाँव में पहुँचकर आश्चर्यचकित हो गये। आपने देखा कि उनकी टूटी-फूटी कुटिया के स्थान पर एक पक्का मकान बना है और वह समस्त वैभवों से मण्डित है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि कई साल आप महाराजा मार्तंडवर्मा के आश्रित और दरबारी कवि रहे और राजा की आज्ञा पर आपने जयदेव की सुप्रसिद्ध काव्यकृति 'गीतगोविन्द' का 'भाषाष्टपदी' नाम से मलयालम में सुन्दर काव्यानुवाद प्रस्तुत किया। सन् १७६३ ई० में ये दिव्यधाम के लिए प्रस्थान कर गये।

रामपुरत्तु वारियर की सुप्रसिद्ध कृति है 'कुचेल-वृत्तं-वंचिप्पाट्टु' (सुदामा-चरित-नौका-गीत)। नौका-गीत-शैली में विरचित यह पहली प्रबन्ध-कृति है। केरल—जो अनेक नदियों तथा झीलों से युक्त सुरम्य प्रदेश है—में प्राचीनकाल से ही नौका-विहार जनता का लोकप्रिय मनोरंजन रहा है। नौका-विहार के समय खेनेवालों में जोश भरने के लिए विशेष ताल और लय में विविध नौका-गीत विरचित हुए हैं। इन गीतों ने आम जनता को इतना मुग्ध कर लिया है कि वे उनके जिह्वाग्र पर निरन्तर नर्तन करते रहते हैं। इसी नौका-गीत-शैली में वारियर ने 'कुचेलवृत्तं' की रचना की। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में वर्णित कृष्ण-सुदामा का मिलन-प्रसंग ही काव्य का आधार है। स्वयं वारियर भी अपने जीवन-यापन में सुदामा जैसे ही रहे। आपकी जिन्दगी ने गरीबी का स्वाद खूब चखा था। यही कारण है जिससे सुदामा की दीन दशा के चित्रण में ये आशातीत रूप से सफल हुए। कवि के व्यक्तिगत तिक्त अनुभवों ने काव्य को भावोज्ज्वल एवं हृदयहारी बना दिया है। 'कुचेलवृत्तं' हिन्दी में नरोत्तमदास कृत 'सुदामा-चरित' के समकक्ष रखने योग्य उत्कृष्ट मलयालम-कृति है।

वारियर कृष्ण के परम भक्त थे। उनकी कृति में ऐसे कई प्रसंग हैं जहाँ कवि के भक्तिनिर्भर हृदय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की पूरी छाप अंकित है। भक्ति की पराकाष्ठा में कभी-कभी कवि अपना अस्तित्व भी भूल जाते हैं। भक्ति की महिमा-सूचक भगवान् कृष्ण की एक उक्ति देखिये—

कैक्कलर्थ मोन्नुमिल्लाज्जेन्टे
भक्तन्मार-पिच्चाल्
कय्क्कुं काञ्जिरक्कुरुवुमेनिक्कमृतं

'वह भक्त जिसके हाथ में कुछ भी नहीं है, यदि भक्तिपूर्वक कडुए कुचले का दाना ही मुझे भेंट करे, तो वह मेरे लिए अमृत समान है।'

इसी भाव को अन्यत्र कवि इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

दुग्धमाकिलुं कय्क्कुं दुष्टर नल्कियालेटो
भक्तन्मार तरिकिलं भुक्तिक्कु रसमुल्लु

'दुष्ट ज़न द्वारा अर्पित दूध भी कडुआ लगता है। भक्त के द्वारा दिये जाने पर ही भुक्ति रसयुक्त बनती है।'

इस प्रकार ललित-कोमल शैली में भक्ति की अजस्र धारा बहाकर ये केरल के अमर जनप्रिय कवि बन गये। इनके 'कुचेलवृत्तं-वंचिप्पाट्टु' (सुदामा-चरित-नौका-गीत) का आलाप अब भी आलप्पुषा जिले के आरन्मुला में स्थित प्रसिद्ध श्रीकृष्ण-मन्दिर—जो 'पार्थसारथी मन्दिर' नाम से जाना जाता है—में चलता है। केरल की प्रसिद्ध पुण्यनदी 'पंपा' के तट पर यह मन्दिर विद्यमान है। 'ओणम'—जो केरलियों का देशीय त्योहार है—के अवसर पर 'आरन्मुला-नौका-विहार' चलता है। भगवान् श्रीकृष्ण के लिए यह भक्तजनों की मनौती है। इस त्योहार के सिलसिले में इस मन्दिर के चारों ओर के निवासी भक्तजन अन-गिनत नौकाओं में भगवान् के लिए विशिष्ट भेंट लेकर विशेष राग-ताल में 'सुदामा-चरित' का भक्तिपूर्वक गान करते हुए मन्दिर पहुँच जाते हैं। माना जाता है कि पार्थसारथी के लिए भक्त लोगों की यह भेंट विशेष प्रिय है।

इनके दो भक्तिपरक पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

भुक्तिमुक्तिदातावे, भुवननाथ! भगवाने!
भक्तिकोंटु भक्तन्मारुं निम्नालद्भुतं
शक्तिकोंटु शक्तन्मारुं जयिक्कप्पेट्टुन्नतिनाल्
युक्तं रण्टजिताख्यायक्कुमन्तरं वेण्टा।

'हे भुक्तिमुक्तिदाता भुवननाथ भगवान्! भक्तों के प्रति आपका वात्सल्य भक्ति को भी जीतनेवाला है तथा शक्ति से आप सशक्तों को भी जीत लेते हैं। इस प्रकार आपका अजित नाम दोनों प्रकार से सार्थक सिद्ध होता है।'

(२)

कामक्रोधलोभमोहमहंकारमदं डंभं
तामिस्रमत्सरं पैशून्यत्तिलज्ञरां
साधुक्कले परिपालिच्चाधिकलञ्ञखिलर्क्कु-
माधारभूतानां कृष्णनेन्नरिञ्ञालुं
बोधरूपात्मकन तन्टे पादभक्तिकोंटु दुःख-
वारिधियेक्कटक्कुन्नु समचित्तन्मार्
वामदेवविरिंचादिवानवर योगिवृन्दङ्ङल्
कामदश्रीकृष्णपादं भजिच्चिरिप्पू।

'काम, क्रोध, मद, लोभ, मोहादि से रहित सज्जनों की समस्त भवबाधाओं को दूर कर उनका परिपालन करनेवाले अखिल लोकनाथ हैं साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण। उस ज्ञानस्वरूप की पाद-भक्ति से समचित्त जन दुःख-सागर को अनायास पार कर जाते हैं। ब्रह्मादि समस्त देवता तथा योगीगण सभी श्रीकृष्ण के चरणों के भजन में सदा रत हैं।'

एस॰ तं॰ अ॰

वट्टपल्ली भास्करन मूसत्

वट्टपल्ली भास्करन केरल के एक मध्यकालीन भक्तकवि थे। इनके जीवनवृत्त-विषयक कोई सूत्र उपलब्ध नहीं हैं। इनकी एकमात्र कृति 'श्रीकृष्णोदन्तम्' कृष्णभक्तिप्रधान काव्य है। इसमें सम्पूर्ण कृष्ण-चरित वर्णित है। इससे एक श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है—

माधवं प्रणिपत्याहं माया क्रीडाकृतक्षणम्।
श्रीकृष्णोदन्तमाख्यास्ये वेदव्यासप्रकीर्तितम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'माया की लीला में नित्य उत्सव की रचना करने-वाले माधव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को प्रणाम कर भगवान् वेदव्यास द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-चरित की रचना मैं कर रहा हूँ।'

एन० रा० ना०

वासुदेव यमक कवि

भक्तकवि वासुदेव परमेश्वरन (द्वितीय) के भाई तथा समकालीन थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—कौमारिलयुक्तिमाला, चकोर-सन्देश, देवीचरितं, सत्य तपः कथा, शिवोदय, अच्युतलीला तथा वाक्यावली। इनमें 'अच्युतलीला' कृष्णभक्ति-काव्य है। इसमें कृष्ण की बाललीला का सुन्दर चित्रण किया गया है। यमक अलंकार के प्रयोग में असाधारण दक्षता के कारण ये यमक-कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा अच्युतलीला एवं देवीचरित से एक-एक छन्द यहाँ प्रस्तुत है—

अच्युतलीला से—

भवो हि याज्यस्सुतनो भवायन्पि
स्वयं भवत्येति मुनीन्द्रभाषितं
क्षणादृतं कर्तुमिवात्मना हरि-
स्सुखेन चासूयत भोजकन्यया।

'शंकर और पार्वती ये दोनों परमाराध्य हैं। इनकी कृपा से ऋषियों की वाणी सत्य होती है। भगवान् स्वयं ऋषियों के कथन को सत्य करने के लिये देवकी की कुक्षि से अनायास ही अवतरित हुए।'

देवीचरित से—

जयति श्रुति कांतारक्षितो
गुणोल्लसि वेदुरतिकान्तारं
देवी नानापर्णाश्रित
वृषमुनिमज्जगत पुनानापर्णा
यासभुवि विधात्राद्या-
त्रिदशान्नत्वाच्युतस्यविविधात्राद्या
लीला संद्यमकेन ग्रन्थेन
मयोच्यते लसद्यमकेन।

'भगवती श्रुति द्वारा शक्तिरूपा पार्वती नित्य प्रतिपादित हैं। पापों के जंगल को नष्ट करती हैं। पत्तों पर आश्रित वृष तथा मुनिजनों और तपस्वियों को परम पवित्र करने के लिये अपर्णा देवी पार्वती जन्म लेती हैं। मैं ब्रह्मा आदि देवों को नमस्कार कर लीला-ललित यमक-काव्य द्वारा उसका वर्णन कर रहा हूँ।'

एन० रा० ना०

वासुदेवस्तवकार (अज्ञातनाम भक्तकवि)

'श्रीमद्भागवत' को उपजीव्य बनाकर विरचित 'श्रीवासुदेवस्तवं' नामक एक काव्यकृति किसी पुराने ग्रन्थालय से उपलब्ध हुई है। विद्वानों की राय में यह १४वीं शती पूर्वार्द्ध की रचना है। शैशव से लेकर कंस-वध तक की कृष्ण-कथा का क्रमिक वर्णन प्रस्तुत काव्यकृति में हुआ है। इसमें कुल ९८ पद हैं। हर पद 'एन्मनसि वाष्कसन्ततं' (सदा मेरे हृदय में वास करें) की प्रार्थना के साथ समाप्त होता है।

काव्य की समाप्ति पर श्रीकृष्ण के परमभक्त कवि का कथन है—

भक्तिकोण्टु मुरवैरियेप्पुक-
ण्णित्थमय्पोंटु मया विनिर्मितं
पद्यमातमितु नित्यमोतुवोर
मुक्तियोटणवर् मुक्तसंशयम्

'श्रीकृष्ण की अनन्य भक्ति में विभोर होकर मैंने यह कृष्ण-काव्य रचा है। जो कोई भी इसका नित्य पारायण करेगा, वह निःसन्देह अमरगति को प्राप्त करेगा।'

इस ग्रन्थ के दो पद प्रस्तुत हैं—

(१)

केवलं परमधाममद्भुतं
देवकिक्कु वसुदेवमन्दिरे
भूमिभारहृतये पिरन्नवन्
देवनेन्मनसि वाष्‌क सन्ततं।

'भूमि के भार को हरने के लिए वसुदेव के घर में देवकी के सुतरूप में अवतरित परम अद्भुत रूप एवं अनलपतेजोरूप श्रीकृष्ण सदैव मेरे हृदय में वास करें।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२)

गीतमुं महित वेणुनापुण-
तादरिच्चुं निशि चन्द्रिकोदयं
भासुरं परिचिल् निन्टवानुलाल्
कातलेनमनसि वाष् कसन्ततं।

'बाँसुरी से गीत का आलाप करके, धवल चाँदनी के उदय की आकांक्षा में रात के समय अत्यन्त भास्वर रूप में विराजमान हे श्यामसुन्दर! तू मेरे मन में सदा वास करे।'

एस० तं० अ०

विद्वान् किलिमानूर राजराजवर्मा कोयितंपुरान

विद्वान् किलिमानूर राजराजवर्मा का समय सन् १५१२ से १६५७ ई० के बीच माना जाता है। ये तिरुवितांकूर के राजदरबार से सम्बद्ध थे। इनकी काव्य-मर्मज्ञता और दानशीलता प्रसिद्ध है। समस्या-पूर्ति में ये अत्यन्त पटु थे। कथकली के प्रति इनकी बड़ी रुचि थी। इनकी ख्याति का मुख्य कारण श्रीमद्भागवत की कथा को व्याख्यान के रूप में प्रस्तुत करना है। श्लेषकल्पना में समर्थ होने से इनकी कृतियों में द्व्यार्थ गुण परिलक्षित होता है। इनके कई स्तोत्र और कीर्तन प्रसिद्ध हैं।

अगाध विद्वत्ता के साथ प्रगाढ़ कृष्णभक्ति इनकी विशेषता है। नीचे इनका एक स्तुतिपरक श्लोक दिया जाता है—

यं शंसन्ति सदागतिप्रणयिनं
सर्वे जना सन्ततम्
स्वस्थाना दरिनागतं हि पुरतो
येनैव भोगीशितुः
सोयं पुष्यरथो बिभर्ति तुलनां
श्रीवंचिभूमीभृता
कृष्णेनापि च जिष्णुना बकजिता
चित्रांगदामाश्रितः

'सभी लोग जिसे प्राण-प्रिय मानते हैं, जो शेषनाग के अपने स्थान (शय्या) से कभी अलग नहीं होता (अर्थात् वहाँ रहते हुए भी सर्वव्यापक है), उसकी तुलना श्री वंचिराज से की जा सकती है। श्रीकृष्ण ने बकासुर का वध किया था और चित्रांगदा से विवाह किया था। श्री वंचिराज में भी ये गुण विद्यमान हैं।'

एन० रा० ना०

विल्वमंगलं स्वामियार

विल्वमंगलं स्वामियार नाम से दो-तीन प्रसिद्ध सन्त केरल में विभिन्न कालों (चौदहवीं शती से सोलहवीं शती के बीच) में हुए हैं। उनमें सोलहवीं शती में विराजमान विल्वमंगलं स्वामियार ही सबसे अधिक प्रसिद्ध कृष्णभक्त एवं कवि थे।

इनके जीवनवृत्त-सम्बन्धी अधिकांश बातें अभी अज्ञात हैं। माना जाता है कि उत्तरी परवूर तहसील के 'पुत्तनचिश' नामक गाँव के विल्वमंगलं नामक घराने में सन् १५७५ ई० में आपका जन्म हुआ था। सन् १६६० ई० तक का समय इनका जीवनकाल माना जाता है।

ये संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और विष्णु के परमभक्त थे। जनश्रुति है कि आपने भारतभर में भ्रमण किया था और अनेक स्थानों पर विष्णु-मन्दिरों की स्थापना की थी। उन स्थानों पर अपने शिष्यों के साथ आपने कुछ समय तक निवास भी किया था। यही कारण है कि इनकी ख्याति भारतभर में है। केरल के अनेक विष्णु-मन्दिरों के ये स्थापक माने गये हैं। यह भी जनश्रुति है कि अपनी अटल एवं अकलंक भक्ति के बल पर आपने कई बार श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था। सोमगिरि नामक सन्त आपके गुरु माने जाते हैं।

इन्होंने संस्कृत में 'श्रीकृष्णकर्णामृतं' नामक काव्य की रचना की है। इस रचना तथा विल्वमंगलं के कृष्णभक्त बनने के सम्बन्ध में केरल प्रदेश में एक कथा प्रचलित है जो हिन्दी के प्रख्यात रामभक्त कवि गोस्वामी तुलसीदास की कथा से काफी मेल खानेवाली है। कथा इस प्रकार है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युवावस्था में विल्वमंगलं स्वामियार चिंतामणि नामक एक तरुणी पर आसक्त थे। एक नदी के दोनों छोरों पर दोनों का निवास था। किन्तु नित्य ही स्वामियार चिन्तामणि के घर जाते थे और वहीं सोते थे। एक दिन किसी कार्यवश स्वामियार को कहीं दूर जाना पड़ा। रात को लौटे तो भीषण वर्षा हो रही थी। किन्तु स्वामियार से रहा नहीं गया। मिलन की तीव्र लालसा लिये आप उस काली अन्धेरी रात में मूसलधार वर्षा की परवाह किये बिना, किसी न किसी प्रकार नदी पार कर चिन्तामणि के पास पहुँच गये। चिन्तामणि स्वयं एक विदुषी और कृष्णभक्त थी। विल्वमंगलं की ऐसी करनी पर उसे अत्यधिक लज्जा का अनुभव हुआ। उसने अपने कमरे की दीवार पर टँगे श्रीकृष्ण के चित्र की ओर संकेत करते हुए विल्वमंगलं को चेताया, 'आपका ऐसा प्रेम यदि श्रीकृष्ण पर होता तो कितना अच्छा होता?' विदुषी चिंतामणि की बातों का विल्वमंगलं पर बहुत प्रभाव पड़ा। इनके मन में पहले से ही अन्तर्लीन कृष्णभक्ति अब एकदम जाग्रत हो उठी। आप वहीं बैठकर उस चित्र के श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि गड़ाकर एकाग्र भाव से उनकी स्तुति करने लगे। इनके भक्तिरसपूर्ण हृदय से काव्य की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। ये गाते जाते थे और चिंतामणि उन स्तुतियों को लिखती जाती थी। जनश्रुति के अनुसार चिंतामणि के द्वारा लिखे गये श्लोकों के श्रवणमात्र से चित्रांकित कृष्ण ने हर्षपुलक की मुद्रा में सिर हिलाया था। यही काव्य 'श्रीकृष्णकर्णामृतं' बना, जो श्रोताओं के लिए अमृतोपम सिद्ध हुआ।

कहा जाता है कि मोहनिद्रा से प्रबुद्ध करनेवाली चिंतामणि को तब से ये माता और गुरु मानने लगे।

यही इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति है। इसमें इनके भक्ति-रसपूर्ण हृदय का सच्चा प्रतिबिम्ब मिलता है। तीन आश्वासों (सर्गों) तथा ३०३ श्लोकों में निबद्ध इस कृति में श्रीकृष्ण के रूप एवं उनकी विविध लीलाओं का रसपूर्ण चित्र खींचा गया है। अब भी भक्तिरस-पान के इच्छुक भक्तजन 'श्रीकृष्णकर्णामृतं' का श्रद्धापूर्ण पारायण करते हैं।

इनके दो भक्तिपरक श्लोक प्रस्तुत हैं—

(१)

कमनीय किशोरमुग्धमूर्तेः
कलवेणुक्वणितादृतननेन्दोः
मम वाचि विजृंभतां मुरारे-
र्मधुरिम्णः कणिकापिकापि ।

'कृष्ण कमनीय किशोरावस्था के कारण अनुपम रूप-लावण्य से ललित लगते हैं। सुन्दर बाँसुरी-वादन से मुखचन्द्र की शोभा निखर गई है। ऐसे मधुरिमा-मय मधुरमूर्ति भगवान् की रूप-माधुरी की कोई एक कणिका भी यदि काव्यधारा में आ जाय तो वह धन्य हो उठे।'

मारमा रम मदीयमानसे
माधवैकनिलये यदृच्छया
हे रमारमण ! वार्यतामसौ
कस्सहेत निजवेश्मलंघनं ?

'हे रमापति! मेरे मानस के एकमात्र तुम्हारे योग्य मन्दिर में तुम स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करो। हे रमा, तू इसमें न रम। हे नारायण, अपने घर में दूसरे का अधिकार कौन सह सकता है? इसलिये मात्र तुम ही यहाँ रहो।'

एस० तं० अ०

वी० के० गोविन्दन नायर

समसामयिक वातावरण में साँस लेते हुए भी कृष्णभक्तिपरक अनुपम काव्य-कृतियों के सर्जक मलयालम के आधुनिक कृष्ण-भक्त कवि हैं—वी० के० गोविन्दन नायर।

ओट्टपालम तहसील के तृक्कटीरि नामक गाँव में सन् १९०३ ई० में वी० के० गोविन्दन नायर का जन्म हुआ। तृश्शूर और तृश्शिनाप्पल्ली के स्कूल और कॉलेजों से आपने बी० ए० तक की शिक्षा प्राप्त की। फिर सन् १९५८ ई० तक आपने सरकार की सेवा की। बचपन से ही कविता करने की इनकी बड़ी रुचि थी। सरकारी सेवा में रहते हुए भी आपने कई कविताएँ लिखीं। सेवा-मुक्ति के बाद ये दिन-रात सरस्वती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की उपासना और खेती के कार्यों में लगे रहे। सन् १९७७ ई० में आपका देहान्त हो गया।

'अविल्-प्पोति' (तंदुल की पोटली), 'भद्रदीपं', 'मुक्तक-संग्रह' आदि आपकी काव्यकृतियाँ हैं।

वी० के० गोविन्दन नायर एकनिष्ठ कृष्णभक्त कवि थे। आपकी अनन्य कृष्णभक्ति आपकी कविताओं में खिल-खुलकर खेलती है। इन्होंने विविध रूपों में अपने उपास्य देवता की आराधना की है। कभी ये दास की भूमिका में खड़े होकर श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं तो कभी शिष्य की भूमिका में, कभी पत्नी की तथा तो कभी प्रेमिका की भूमिका में। ये कभी-कभी मित्र की भूमिका में भी अपने को कृष्ण के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। ये स्वयं कहते हैं—

ध्यानिच्चु पोरुन्नितानंद रूपने
नानाविधत्तिलाय् भक्तलोकं
• • •
ञानेतुमट्टिलप्रतिष्ठ कषिक्केण्टू
मानसक्कोविलिल् तुंपुराने।

'आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण का ध्यान भक्त लोग विविध रूपों में करते आये हैं। कोई वटपत्रशायी के रूप में, कोई मुरलीवादक के रूप में, कोई राधा के प्रिय के रूप में, कोई गीतोपदेशक पार्थसारथी के रूप में, तो कोई मुक्तिदाता के रूप में उनका ध्यान करते हैं। हे भगवान्! मैं अपने मानस-मन्दिर में किस रूप में आपकी प्रतिष्ठा करूँ?'

इनकी 'अविल्-प्पोति' नामक काव्य-संग्रह में कई कृष्णभक्तिपरक कवितायें संगृहीत हैं। आँखें मूंदकर पंकजविलोचन का चित्र खींचने में सदा रत कविमानस का यथार्थ रूप इन कविताओं में प्रतिच्छायित है। इनकी स्मृति से करुणामूर्ति का चित्र मिटाये मिटता नहीं। ये कहते हैं—

मरक्का ञान् मषक्कारिन्
निरक्कूट्टुल्ल कण्णने;
मरक्का तल् विमुक्तिक्कु
तुरक्कुं वातिलेन् पुरान्।

'नील नीरदों की छविवाले कृष्ण को मैं भुलाये भूल नहीं सकता। मुक्ति-हेतु द्वार खोलनेवाले उस परमपूज्य को मैं कैसे भूल पाता?'

राधाकृष्ण की अनन्य भक्ति में लीन होकर काव्य-रचना करनेवाले आधुनिक मलयालम के ये सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण-भक्त कवि हैं। श्रीकृष्ण के जैसे भव्य एवं दिव्य चित्र गोविन्दन नायर ने खींचे हैं, वैसे चित्र समसामयिक युग में विरले ही कवियों की कृतियों में मिल सकते हैं। इनके दो भक्तिपरक पद निम्न-लिखित हैं—

(१)

अप्पीलिक्कण्णु चूटुं तिरुमुटि,
वलजिद्रन्तसंकाशभालं,
मुप्पारेल्लां मयक्कुं पुरिकलत,
दयाल:लमां नीलनेत्रं
नल्पीतोद्यद्दुकूलं, मुरलियुटे
मुखत्तुम्म वेयूक्कुन्न वक्त्रं
चिल्पारम्य प्रभारञ्जितमृदुहसितं
कण्ण, ञान् काण्मतेन्नो!

'वे काले बादलों के सदृश केश जिनमें मोरपंख लगे हुए हैं, सुकोमल भाल, तीनों भुवनों को विमोहित करनेवाली टेढ़ी भौंहें रूपी लतायें, दयानिधान नीली आँखें, सुमनोहर पीताम्बर, मुरली को चुम्बन करने-वाला मुँह, उज्ज्वल प्रभापूरित मीठी मुस्कान – ये सब हे कान्ह! मैं कब देख सकूँगा?'

(२)

कारुण्यं किनियुन्न तामरक्कण्णुं नव्य-
तारुण्यं पोटिक्कुन्नोरा नीलमलरमेययुं
तूमणं तुलुंपुन्न तुलसिप्पूमालक्-
लोमनिचचीटुं मारुं मणियुं श्रीवत्सवुं
तूमिन्नल्क्कोटि प्रभतोट्टोटुं तुकिलिनाल्
कोमलिमावेन्तुन्न कृशमामरक्केट्टुं
उत्तमसंगीतत्तिन्नुरवां मुरलियु-
मुल्क्कलर्त्तिकलेन्नुं ध्यानिप्पोर
ध्यानिक्कट्टे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'करुणामृत-धारा बहानेवाले वे पंकजनेत्र, नितान्त नूतन तारुण्य बरसानेवाला वह नीले रंग का पुष्पोपम मृदुल गात्र, सुगन्धित तुलसीमालाओं से सुशोपराजित वह वक्षःस्थल, रत्न, श्रीवत्स, विद्युत्प्रभा को भी मात करनेवाला शोभा से युक्त वह पीताम्बर, वह कोमलकांत एवं कृश कटिप्रदेश, मधुरमोहक संगीत के आगार-रूप वह मुरली—इनका मन ही मन ध्यान भक्तजन सदा-सर्वदा करें।'

एस० तं० अ०

वेट्टत्तुनाट्ड रविवर्मत्तंपुरान

वेट्टत्तुनाट्ड रविवर्मत्तंपुरान का समय १६वीं शताब्दी माना जाता है। ये पण्डितों और कवियों के प्रशंसक होने के साथ ही स्वयं भी उच्चकोटि के विद्वान्, भक्त एवं कवि थे। इनकी निम्नांकित रचनाएँ मिलती हैं—

'भागवत-टीका-समुच्चय', 'संक्षेप भारत', 'गोविन्द-चरितं', 'कल्याण नैषध, संक्षेप रामायणं', 'श्वेतारण्य-स्तुति', 'सुभग-सन्देशं' तथा 'कुशाभ्युदयं काव्यं'।

इनके दो अनुष्टुप् प्रस्तुत हैं—

वासुदेव पदांभोजमकरन्दमधुव तः,
रविवर्मानुजस्तस्य राजराजस्य राजते।
कुंदसूनमनोहारी मन्दहासविराजितं,
नन्दगोपकुलोत्तंसमिंदिरारमणं भजे।।

'भगवान् वासुदेव के चरणारविन्द के मकरन्द का रसपान करनेवाला मैं भ्रमर हूँ। राजराज रविवर्मा का मैं अनुज हूँ।

कुन्द के फूल-सी सुन्दर मधुर मुसकान बिखेरनेवाले नन्दनन्दन इन्दिरा (लक्ष्मी) के स्वामी कृष्ण की सेवा में मेरा जीवन अर्पित है।'

एन० रा० ना०

वेण्मणि अच्छन् नंपूतिरिप्पाट्

मलयालम-साहित्य में श्रृंगार एवं हास्य में परिवेष्टित भक्तिभाव को प्रस्तुत करनेवाले कवि थे, वेण्मणि अच्छन् नंपूतिरिप्पाट्। मैथिल-कोकिल विद्यापति की भाँति वेण्मणि अच्छन् ने भी राधाकृष्ण के चरित के श्रृंगार-पक्ष को ही अपनी कविता में अधिक प्रश्रय दिया। आपने राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का सजीव, सुन्दर एवं रूमानी वर्णन किया है।

वेण्मणि अच्छन् का पूरा नाम परमेश्वरन् नंपूतिरिप्पाट् था। आलुवाय् के वेण्मणि नामक परिवार में सन् १८१६ ई० में आपका जन्म हुआ। आपके पुत्र भी पिता से अधिक श्रेष्ठ कवि बने। यही कारण है कि ये दोनों कवि वेण्मणि अच्छन् (वेण्मणि पिता कवि) और वेण्मणि महन् (वेण्मणि पुत्र कवि) कहलाये। मलयालम के एक अन्य प्रसिद्ध एवं पण्डित कवि कोटुङ्ङल्लूर कुञ्ञिक्कुट्टन तंपुरान भी वेण्मणि अच्छन् के पुत्र थे। मधुर श्रृंगार की कविताओं का प्रणयन ही इन्हें इष्ट था। ये ७४ वर्ष की आयु में सन् १८९० ई० में दिवंगत हुए।

श्रृंगारपरक कविताओं के अतिरिक्त आपने श्रीकृष्ण के कई संकीर्तन भी लिखे हैं। इनकी भक्तिपरक कविताओं में दास्य के अतिरिक्त सख्य तथा माधुर्यभाव भी मिलते हैं। कवि मधुरभाव से प्रणय-निवेदन करते हैं, तो कभी सख्यभाव से उसका उपहास भी करते हैं। कभी दास बनकर ऋण के रूप में मुक्ति माँगने में भी ये नहीं हिचकते। कभी आराध्य की बाललीला वर्णन करते हुए वात्सल्य-रस में मग्न हो जाते हैं। एक उदाहरण लें—

कोटक्कारवर्णनोटक्कुषलोटु
कलिविट्टोटि वन्नम्मतन्टे-
माटोक्कुं पोरमुलप्पालमितरुचि
भुजिच्चा स्वदिक्कुं दशाये

'काले बादलों की छवि से युक्त बालक कृष्ण बाँसुरी को छोड़कर उछल-कूदकर माता के पास दौड़ आया और उनके पीन-पयोधरों से अत्यधिक रुचि के साथ दूध पी-पीकर उसके माधुर्य का आस्वादन करने लगा।'

इनकी भक्तिभावना के स्वरूपव्यंजक कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं—

गोपीजनङ्ङलुटे कोमलचेलकट्ट
गोपालकन भवमहीरुह चारबीजन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'संसार-वृक्ष के सुन्दर बीजस्वरूप गोपालकृष्ण गोपीजनों के कोमल वस्त्रों का हरण करनेवाले हैं।'

'गजेन्द्रमोक्षं' नामक काव्य में कवि ने भगवान् कृष्ण से शरणागति की याचना की है—

कालिमेच्चु कुषूलूति काट्टुतोरुं नटक्कुन्न
बालगोपालकनेन्ने पालनं चेय्तरुलेणं ।।

'गायों को चराकर और बाँसुरी बजाकर वन-वन में घूमते-फिरते चलनेवाले बालगोपाल मेरा पालन करें।'

कृष्ण-कीर्तन में भी इन्होंने कई छन्द लिखे हैं—

कृष्णा, हरे जय कृष्णा हरे, जय।
वृष्णिकुलोत्तम विश्वंभर जय ।।
सच्चिदानन्दमय निष्कल निर्मल जय।
नारायणानन्द ! नालीकलोचन जय ।।

एस तं अ०

वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाट्

वेण्मणि अच्छन् अथवा परमेश्वरन नंपूतिरिप्पाट् तथा श्रीदेवी अंतर्जनम् के पुत्र के रूप में सन् १८४४ ई० में वेण्मणि महन् का जन्म हुआ। आपका असली नाम वेण्मणि कदम्बन् नंपूतिरिप्पाट् था। पिता की ही भाँति आपने भी श्रृंगारपरक रचनायें ही अधिक की हैं।

'पूरप्रबन्धं' (उत्सव-प्रबन्ध), 'पांचाली-स्वयंवरं', 'कुचेल-गोपालं' आदि इनकी कृष्ण-विषयक काव्य-कृतियाँ हैं। आपने असंख्य मुक्तकों की रचना भी की है। श्रृंगारमिश्रित भक्ति के वर्णन में ये अपना सानी नहीं रखते। कुछ उदाहरण देखें—

कोटिच्चुं कोरवाणीमणि कळोट्टियिल्-
वक्कयिल नै पालिनेल्लं
मेटिच्चुं कट्टशिच्युं प्रणतरिललिविन्
नीर तलिच्युं तुणच्युं
कूटिच्युं पाण्डवक्कुंन्नति, कुरु-
निरयेत्तक्कमोर्त्तङङ्ङु कुण्डिल्
चाटिच्चुं वाण गोपीजन
सुकृतसुखक्कातले कैतोषुन्नेन् ।

'गोपीजनों के साथ बहुविध क्रीड़ाओं में रत होकर, उनके हाथों से घी, दूध, दही इत्यादि की चोरी करके शरणागतों को शरण प्रदान कर, पाण्डवों की उन्नति कर तथा अवसर पाकर कौरवों को गड्ढे में गिराकर विराजमान, गोपनारियों के सकल सुख-सुकृतों के कारणभूत प्रेममूर्ति हे कृष्ण ! आपकी मैं वन्दना कर रहा हूँ।'

कण्ण, चाटिक्कलिच्चोलोरुतवि नरुनै तन्निटां
पाटि वर्णं वर्णिच्चालुण्टुरिप्पालोरु कुरियोरु
कोच्चुम्मयम्मक्कु तन्नाल् उण्णिक्काकंठमेकां
पुतुमधुपोलियल्लेन्नु मातावुरच्चाल्
तिण्णं चाटान्तुटङङ्ङुं कोतियुटे निधि
साप्पाट्टु रामन सहायं ।

'हे कान्ह ! उछल-कूदकर तू खेलेगा तो मैं घी दूँगी, यदि नृत्य करेगा तो मैं दूध दूँगी, यदि तू मेरे गालों में एक चुम्बन दे देगा तो मैं तुम्हें भरपूर नवमधु दे दूँगी—शपथ खाकर माता यशोदा के ऐसा कहने पर कि मैंने जो कुछ कहा वह झूठ नहीं है, लोलुपवीर कान्ह तुरन्त नाचने लगा। ऐसा लोलुपप्रवर एवं पेटूराम कृष्ण ! तू ही मेरा शरण्य है।'

एम० तं० अ०

शंकर कवि

शंकर कवि छठी शताब्दी ई० में विद्यमान बताये जाते हैं। इनका जन्म कालिकट के पास हुआ था। इनके गुरु श्री राघव वारियर थे। इनके जन्मस्थान के समीप ही देवी का एक मन्दिर था। ये उसकी सेवावृत्ति में लगे थे। देवी के भक्त होने के साथ ही कृष्ण में भी इनकी असामान्य आस्था थी। 'कोकिल-सन्देश' में उद्दण्डशास्त्री ने इनकी प्रशंसा इन शब्दों में की है—

कोलनेलावन सुरभिलानयाहि, यत्रपिथन्ते।
वेलातीत प्रथित यशसश्शंकराद्याः कवीन्द्राः ।।

'कृष्णविजय' नामक इनकी एक रचना संस्कृत में मिलती है। इससे कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१)

कालियमर्दन

पीतांबरांचितकटीरतटीमनोज्ञ
स्निष्ठन भुजंगपतिमूर्द्धनि पंकजाक्षः
संप्राप नीलगिरितुंगं शिलानिषण्ण-
बालातपच्छुरितबाल तमाल लीलां

'पीताम्बर और किरीटधारी कृष्ण काले नाग के सिर पर नृत्य करते हुए उसी तरह शोभित हो रहे थे, जैसे नीलगिरि पर अरुणोदय के समय कोई तमाल की श्याम पौध हो !'

(२)

रास-क्रीड़ा

नीलं निसर्ग तरलं नितरां विशालं
स्वच्छान्तरं सुकृतिभिस्सुलभावलोकं
पर्याकुलं पय इवाशु कलिन्दजायाः
कालुष्यमाप नयनं कमलेक्षणानां ।

'कमलनयनी गोपिकाओं के नेत्र उसी प्रकार अश्रु-पूरित हो गये, जैसे स्वाभाविक रूप से तरल नील यमुना का जल था । ऊपर नील किन्तु भीतर से स्वच्छ और पुण्यात्मा मुनिजनों द्वारा सेवित यमुना-जल जितना पवित्र है, गोपिकाओं की विगलित करुणा भी उतनी ही रास-रस-सरस है ।'

(३)

विस्रंसमानचिकुरा विगलद्दुकूला
वलगद्धनस्तनभरा वलेमानपार्श्वाः
प्रापुस्सरोजनयनाः प्रणय प्रणुन्नाः
पुण्यातिरेक सुभगं पुरुषं पुराणं ।

'रास के अमल आनन्द से विभोर गोप-बालाओं को अपने बालों के बिखर जाने का ध्यान ही नहीं है । उनके उत्तरीय उड़ गये हैं । उनके पीन और घने स्तन नृत्य में रत रहने के कारण उछलते और कम्पित हो रहे हैं । उनके पार्श्वभाग बल खा रहे हैं । ऐसी गोपियों के मुखकमल खिले हुए हैं । प्रणय-रस में वे ओतप्रोत हैं । उन्होंने सौभाग्यसुन्दर श्यामसुन्दर को जो स्वयं पुराणपुरुष हैं – अनायास ही पा लिया ।'

(४)

तान-प्रदानलयताल विभिन्न-मञ्जु-
गान प्रयोग तरलीकृत विश्वलोकाः
पीनस्तनद्वयनता न नृतुम्मृंगाक्ष्यो
मीन ध्वज प्रहरण क्षणभिन्न धैर्याः

'रास-नृत्य में स्वर-माधुरी लय और ताल तथा विभिन्न मंजुल संगीतसरणी के प्रयोग से सारा भूमण्डल मानो द्रवित हो उठा । पीन स्तनों के भार से नत-सी हरिणविलोचना नायिकायें क्षणभर के लिये कामदेव के पुष्पबाणों से मोहित-सी, अधीर-सी लग रही थीं !'

एन० रा० ना०

शंकरनाथ ज्योत्स्य

शंकरनाथ ज्योत्स्य का जन्म १८वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध में उत्तर केरल में पय्यन्नूर के पास हुआ था । माँ-बाप विद्वान् थे । किन्तु ये बचपन में अत्यन्त मन्दबुद्धि के थे । एक दिन माता ने पुत्र की हँसी उड़ाई, "बेटा ! घोड़े के रक्त से तू पैदा हुआ, फिर गधा कैसे हो गया ?" यह बात इन्हें तीर-सी लगी । उसी दिन घर छोड़कर काशी आदि पुण्यक्षेत्रों में यात्रा करने चले गये । पहले कांचीपुरम् जाकर कामाक्षी देवी की कई वर्षों तक पूजा की । देवी के प्रसाद से इनको काव्य-शक्ति प्राप्त हो गयी । इन्होंने देवी का माहात्म्य मलयालम में 'देवी-भागवतम्' के नाम से किळिपाट्टु छन्द में अनुवाद करके प्रस्तुत किया । वहाँ से काशी गये । ज्योतिष के पाण्डित्य के कारण जो धन प्राप्त हुआ उससे इन्होंने काशी के मणिकर्णिका घाट पर एक शाला बनाई । यह जोशीघाट के नाम से आज भी प्रसिद्ध है । इनकी सिद्धियों तथा प्रसिद्धि से आकृष्ट होकर महाराजा रणजीतसिंह ने अपनी राजधानी लाहौर में इन्हें बुलाकर अध्यात्म-गुरु के रूप में सादर प्रतिष्ठित किया । कुछ समय बाद ये स्वातितिरुनाळ महाराजा के दरबार में निमंत्रित हुए । वहीं अन्त तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे। केरल में कई स्थानों में इन्होंने धर्मशालाएँ स्थापित कीं। इनकी अनूदित रचनाओं में 'ज्ञानवासिष्ठ', 'देवीभाष्य', 'नामभाष्य', 'काशिखण्ड', 'गौरीतंत्र' आदि के अनुवाद हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मौलिक स्तोत्रों की भी इन्होंने रचना की है।

एन० रा० ना०

शंकर पणिक्कर

मलयालम के प्राचीन कृष्णभक्त कवियों में शंकर पणिक्कर का विशेष महत्त्व है। निरणं कवित्रयी में ये द्वितीय आते हैं। इनका जीवनवृत्त भी अन्य प्राचीन कवियों की भाँति विवादों से ग्रस्त है। कुछ विद्वान् इन्हें निरणं माधव पणिक्कर का भाई मानते हैं तो कुछ निरणं नामक स्थान से इनका कोई सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में नहीं हैं। 'भारतमाला' नामक आपकी एक कृति उपलब्ध हुई है। इसकी पुष्पिका की निम्नांकित शब्दावली—'महाभारत कथ शंकरनन्पोट्टु चोन्नतु'—से स्पष्ट होता है कि शंकर नामक कोई कवि ही प्रस्तुत कृति का प्रणेता है। किन्तु 'भारतमाला' की पुरानी पाण्डुलिपि के अन्त में 'इति वेल्लाङ्ङ्लूर शंकर विरचिताया' लिखा है। इसके आधार पर आप वेल्लाङ्ङ्लूर के निवासी सिद्ध होते हैं। पंडितों में इस बात पर मतभेद है कि वेल्लाङ्ङ्लूरवाला यह कवि निरणं कवि कैसे हो सकता है? वेल्लाङ्ङ्लूर से निरणं का सम्बन्ध जोड़ने का विफल प्रयास भी शोधकर्ताओं द्वारा हुआ। किन्तु अब तक कोई प्रामाणिक निष्कर्ष प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसी हालत में यही समीचीन लगता है कि ये वेल्लाङ्ङ्लूर शंकर समझे जायँ।

इस भक्तकवि की जन्मतिथि, जीवनचर्या आदि का ठीक पता नहीं चलता। पन्द्रहवीं शती का मध्यभाग इनका रचनाकाल माना जाता है। इनकी कृतियों के अध्येता पंडितों का यह अनुमान है कि कवि शंकर अत्यन्त कल्पनाशील एवं मेधावी रहे होंगे और संस्कृत में उनका अपार पांडित्य रहा होगा।

'भारतमाला' नामक कृति में एक उच्चकोटि के कृष्णभक्त का सच्चा चित्र प्राप्त होता है। मूलभारत का यह संक्षिप्त रूप मलयालम भाषा में महाभारत का स्वच्छन्द अनुवाद है। अपनी कृति के बीच-बीच में कवि ने यह बार-बार स्मरण दिलाया है कि भगवान् की भक्ति को प्रकट करने के लिए ही उसने इस काव्य की रचना की है। अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण के भव्य एवं दिव्य रूप का मनोहारी वर्णन 'भारतमाला' में आद्योपान्त विद्यमान है। महाभारत-युद्ध के प्रसंग में पार्थसारथी कृष्ण का ऐसा विमोहक चित्र कवि ने खींचा है कि जैसे उसके सामने काले-काले घुँघराले बालोंवाले मणिमुकुटधारी, सरोजदल-लोचन, श्रीवत्सांकित वक्षःस्थल से युक्त पीतवसनधारी भगवान् साक्षात् उपस्थित हों और वह उनका निर्निमेष नेत्रों से दर्शन कर रहा हो। इसकी पुष्टि इनकी इन पंक्तियों से स्वतः हो जाती है—

उरुवे कण्टेनत्तेरमेले—

न्नुल्लिलिरुन्नरुलुंपोले

'रथ के भीतर श्रीकृष्ण के ऐसे रूप का दर्शन मैंने पा लिया है जैसे वे मेरे हृदय में विराजमान हैं।'

एम० तं० अ०

शंकरशिष्य (नाम अज्ञात)

शंकरशिष्य छठी शताब्दी में उपस्थित थे और शंकर कवि के शिष्य थे। इससे अधिक इनके विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। इनकी एकमात्र कृति 'कृष्णाभ्युदय' है। इसकी रचना-शैली सौकुमार्ययुक्त तथा रस-परिप्लुत है। नीचे के उदाहरणों से यह स्पष्ट है :

(१)

कलिंदजाकूल चराय
गोपीकदंबवक्षोरुहपुण्यभूम्ने।
वृंदावनांगीकृत गोपधेनु-
वृन्दावनायास्तु नमोमहिम्ने॥

'यमुना-किनारे विचरण-विहार करनेवाले, गोपियों के स्तनों के पुण्य आनन्द ऐश्वर्यवाले, वृन्दावन में गोपबालों के साथ गाय चरानेवाले महिमामय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण गोप-परिवार और गायों की रक्षा करें। उन्हें वारम्वार प्रणाम।'

(२)

अशेषमज्ञानतमः कदंबप्रसुः
कृपालोकमयूखजालैः
मनोमयं मे विदधातु फुल्लं
कुशेशयं देशिकवासरेन्द्रः ॥

'जीवन के समस्त अज्ञानरूपी अन्धकार के समूह को अपनी कृपा-दृष्टि की किरणों से नष्ट कर देनेवाले देशिक सूर्य मेरे हृदयरूपी कमल को नित्य विकसित करें।'

(३)

मदीयवाणी चपलाविमुक्त
प्रसादलेशानि रसोज्झितापि
दामोदरोदारकथामधूलो-
रसावृता गृह्यत एव सद्भिः ॥

'यद्यपि मेरी सरस्वती की प्रतीक मेरी वाणी अत्यन्त चंचल है, प्रसादगुण से रहित है, रसाभास-युक्त है, फिर भी दामोदर के उदार कथारस से सिक्त होने के कारण सज्जनों द्वारा आदर की दृष्टि से देखी जाती है।'

एन० रा० ना०

श्रीकण्ठवारियर

श्रीकण्ठवारियर का समय छठी शताब्दी ई० माना जाता है। इनका जन्म कालिकट के पास हुआ था। इन्होंने भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर संस्कृत में एक यमक-काव्य लिखा है, वह अप्राप्य है। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के चरणों में इनकी परमासक्ति थी।

एन० रा० ना०

श्रीकुमारन नंपूरि

श्रीकुमारन नंपूरि राजा देवनारायणन के आश्रित कवि और भक्त थे। इनका उपस्थिति-काल १७वीं शताब्दी माना जाता है। 'शिल्परत्न' नामक इनकी एक कृति मिलती है, जो वास्तुकला-विषयक है। इसके निम्नांकित छन्द से इनकी कृष्णभक्ति व्यंजित होती है—

अनंतकोटिब्रह्माण्डेष्वखिलेष्वाततः क्रमात्।
निश्शेषविश्वकर्ता यस्स जीयान्मधुसूदनः ॥

'अनन्तकोटि अखिल ब्रह्माण्ड में हे मधुसूदन श्रीकृष्ण! तुम व्याप्त हो। तुम्हीं जगत् के निर्माता हो! तुम्हारी सदा जय हो!'

एन० रा० ना०

स्वाति तिरुनाळ रामवर्मा (राजा)

स्वाति तिरुनाळ रामवर्मा (राजा) सन् १८०५ से १८४७ ई० के बीच विद्यमान बताये जाते हैं। इन्होंने मलयालम-साहित्य तथा कलाओं की सर्वांगीण उन्नति के लिए अथक प्रयत्न किया था। संगीत तथा चित्रकला के प्रति इनकी विशेष रुचि थी। जन्म से ही ये राजा के पद के लिए अधिकारी थे। बचपन से इन्होंने अपनी असीम बुद्धि, मेधाशक्ति एवं कार्य ग्रहण-पाटव दिखाया था। ये अंग्रेजी तथा हिन्दी भी जानते थे। इन्हें केरल के प्रथम हिन्दी कवि होने का गौरव प्राप्त है। तमिल, कन्नड़, तेलुगु, पारसी, मराठी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में इन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इनका जीवन सरल और ललित था। अपने कुलदेव श्री पद्मनाभ के प्रति इनकी अचंचल भक्ति थी। प्रजा की भलाई को ही ये अपनी भलाई समझते थे। इन्होंने ही अपने यहाँ अंग्रेजी के प्रचार के लिए स्कूल खुलवाये थे। इसके अतिरिक्त अपने शासनकाल में इन्होंने कई जनकल्याणकारी कार्य भी किये थे। ये विद्वानों को प्रोत्साहन देते थे। इनका दरबार विद्वानों, कलाकारों, संगीतज्ञों तथा शास्त्रज्ञों से भरा था। तंजाउर के शरंभोजी राजा की मृत्यु के बाद वहाँ के सभी विद्वान् इनकी शरण में चले आये थे। प्रसिद्ध संगीतज्ञ मुत्तुस्वामि दीक्षितर के कई शिष्य स्वाति तिरुनाळ के दरबारी थे। ऐसे अनेक प्रसिद्ध गायक-वादक इनके यहाँ थे। हरिकथाकालक्षेपं (हरिकथा सुनाना) नामक गान-साहित्य-विद्या का प्रवर्त्तन करने का श्रेय इन्हींको है। हिन्दुस्तानी संगीत की ओर भी इनका ध्यान गया। हैदराबादी खानसा, हिन्दुस्तानी नाट्यकार अयोध्या, हिन्दुस्तानी संगीतकार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुकदेव पंजाबी रामार्जुन, बंगाली हरिदास, काशी के गोविन्ददास तथा गौडवासुदेव शास्त्री आदि अनेक देशी विद्वान् इनके आश्रय में रहकर सम्मानित हुए थे। विदेशी विद्वानों का भी ये आदर करते थे।

इनकी रचनाओं में मुख्य 'भक्ति-मंजरी' है। उसमें महाविष्णु के प्रति प्रगाढ़ भक्ति प्रतिपादित है। यह एक सौ एक श्लोकवाले दस शतकों में रचित है। अन्त में दो श्लोक और हैं जिनमें भगवान् के प्रसाद की प्रार्थना की गई है। आरंभ में तथा अन्त में तरल हृदय से ये प्रार्थना करते हैं कि मुझे अचंचल विष्णु-भक्ति प्राप्त हो। इस पर 'नारायणीयं' का पर्याप्त प्रभाव है। इस रचना में भक्त राजा यही सिद्ध करते हैं कि पुरुषार्थ-साधन की प्राप्ति का उत्तम उपाय भक्ति ही है। ये प्रमाणों, उपाख्यानों तथा युक्ति से यही स्थापित करते हैं।

इनकी दूसरी रचना 'स्यानंदूर-पुरवर्णन-प्रबन्ध' है। यह इनके महाकवित्व का निदर्शक है। इसकी रचना दस स्तबकों में हुई है। पहले पाँच स्तबकों में अनन्त-शयन मन्दिर की बिंबप्रतिष्ठा- सम्बन्धी कथा है। चौथे तथा पाँचवें में श्री पद्मनाभ-मन्दिर का वर्णन है। छः से नौ तक के स्तबकों में उस मन्दिर के उत्सवों का तथा दस में वहाँ के लक्षदीप-महोत्सव का विस्तार से वर्णन है।

इनकी तीसरी रचना है 'श्री पद्मनाभशतकं'। यह स्तोत्र-ग्रन्थ है। यह दस दशकों में रचित है। प्रत्येक में दस श्लोक हैं। प्रत्येक दशक में छन्द-परिवर्तन है। उसमें कवि की उत्कट भक्ति अभिव्यक्त है।

'हरिकथा' कहनेवालों के लिए इन्होंने दो रचनाएँ की हैं—अजामिलोपाख्यान तथा कुलोपाख्यान। इनमें श्लोक और पदों का संकररूप है। इसकी रचना-शैली में मराठी के हरिकथा-संगीत का अनुसरण किया गया है। इन दोनों रचनाओं में भक्ति, कवित्व-शक्ति, संगीत तथा आख्यान का सुन्दर समावेश है।

'अन्यापदेश-शतक' का सम्पादन करके इन्होंने प्रत्येक श्लोक की भूमिका तथा व्याख्या तैयार की है। श्री पद्मनाभ स्वामी का विशालकाय मन्दिर जो तिरुवनन्तपुरम में है वही तिरुवितांकूर राजाओं का इष्टदेव-स्थान है। सभी राजा पद्मनाभ के दास के रूप में शासन करते आये हैं। इनकी एक रचना 'उत्सव-वर्णन-प्रबन्ध' में इस देवस्थान में होनेवाले दस दिन के लम्बे उत्सव का विस्तृत वर्णन है। इस कृति को हरिकथाकारों ने कथा कहने के लिए भी स्वीकार किया है। इसमें अधिकतर पद गाने योग्य हैं।

इनकी काव्यप्रतिभा तथा भक्तिभावना के व्यंजक कुछ छन्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

भक्तिमंजरी से उदाहरण—

(१)

इत्थमच्युत भवत्कृपाबलात्
पूर्तिमद्य गमिता कथंचन
प्रीतिमावहतु पद्मनाभ ! मे
त्वत्पदांबुरुह भक्तिमंजरी।

'हे अच्युत ! आपकी कृपा से आपके चरणकमल से सम्बद्ध भक्तिमंजरी आज पूरी हुई। हे पद्मनाभ ! यह भक्तिमंजरी प्रीति का विस्तार करे।'

(२)

पुष्पसंगमवशाद्धि सूत्रम्
गृह्यते शिरसि मान वैर्यथा
वर्ण्यवैभववशात् सतां मुदे
स्यात् तथेयमपि भक्तिमंजरी।

'मनुष्यों के द्वारा फूलों के साथ ही धागा भी ग्रहण किया जाता है। उसी प्रकार तुम्हारी भक्ति-रसायन से भरपूर यह भक्तिमंजरी वर्ण्यवस्तु की महत्ता के आधार पर सज्जनों की प्रसन्नता का कारण बने।'

भागवतकार के समान ये भी कहते हैं—

(३)

श्रुतिवरद ! कीर्तनं स्मरणमंध्रिसेवनं,
रमावर ! तथार्चनं स्वपि च वन्दनं दासता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वय्यैव सह सख्यमच्युत ! निवेदने, चात्मनः
त्वयीति नवधा स्मृता भवति भक्तिरत्युत्तमा

'हे वेदवन्द्य ! तुम्हारा गुणश्रवण, कीर्त्तन, चरण-सेवन, हे रमापति ! तुम्हारा दर्शन और अर्चन, तुम्हारा वन्दन, तुम्हारी दासता, तुम्हारे साथ सख्य और आत्मनिवेदन यह नवधाभक्ति ऋषियों द्वारा भी वर्णित है।'

(४)

आरूढे दिननायके सति तम-
स्तिष्ठन्नु पूर्वांचले ?
मेघे वर्षति निर्भरं न विरमेत्
किं चातकानां तृषा ?
रोगाः किं प्रशमं न यांति सहसा
लब्धे हि दिव्यौषधे ?
प्राप्ते त्वत्करुणारसे किमुलयं
नो यांति सर्वापदः ?

'सूर्य जिस समय पूर्वांचल में उदयाचल पर उदित हो जाते हैं, तो क्या घना अन्धकार ठहर पाता है ? क्या स्वातीमेघ की वर्षा से चातकों की प्यास नहीं बुझती ? क्या दिव्य ओषधियों के मिल जाने पर रोगों का शमन नहीं होता ? इसी प्रकार इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आपकी कृपा के प्राप्त होने पर संसार की सभी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।'

उसमें आयी पद्मनाभ-स्तुति देखिये—

(५)

नित्यं दृश्यमिदं मतस्समभाव-
घस्मिन् य एतद् पुन-
भीसा यस्य विराजतेथ सकलं
येनेह वा निर्मितं
यो वाचां मनसोप्यगोचर पदे
मायागतो भासते
तस्मै देव ! नमोस्तु विश्वगुरवे !
श्रीपद्मनाभाय ते !

'यह संसार जिससे, जिसमें, जिस तरह दृश्य रूप से उत्पन्न है, उसीमें निरन्तर उल्लसित है। जिसके द्वारा यह निर्मित है उसीके भय से सूर्य-चन्द्र-तारक, अग-जग सभी भीत और गतिशील हैं। वाणी और मन के द्वारा भी जो अगोचर है, माया की अपनी शक्ति से जो शाश्वत रूप से भासित है ! ऐसे विश्व-गुरु हे पद्मनाभ भगवान् ! हे दिव्यदेव ! आपको भक्तिपूर्ण प्रणाम।'

उत्सव-वर्णन प्रबन्ध से मलयालम में रचित एक उदाहरण लें—

श्रीमाधवन्टे चरितंडल कथिप्पतिन्नु
कामं समर्थनहमेन्नितुरप्पतल्ला,
सीमाविहीन दुरितक्षतये तदीय-
नामानु कीर्तनमृते परमेंतुपामृयं

'श्री माधव के चरितों की कथा कहने की इच्छा रहते हुए भी मैं उसके लिए समर्थ नहीं हूँ। सीमारहित दुःखों को दूर करने के लिए आपके नामानु-कीर्तन को छोड़कर दूसरा क्या उपाय है ?'

इनकी कई रचनाएँ संगीत-सम्बन्धी हैं, जिनमें लगभग ५०० गीत हैं। उनमें ३१३ ही प्राप्त हुए हैं। सभी गीतों में 'पद्मनाभ' की छाप है। १९७ गीत संस्कृत के, ६३ मलयालम के, ३७ हिन्दी (व्रज-भाषा) के, ८ तेलगु के तथा एक कन्नड़ का है। कर्णाटक-संगीत में इनकी पहुँच अद्भुत थी। पूर्व कामोदरी, शुद्ध भैरवी, दिजावंती, ललित पंचकै, मालवी गोपिका वसंतं आदि राग-रागिनियाँ इन्हें अधिक पसन्द थीं। हिन्दुस्तानी से ध्रुपद, ख्याल, धूम्री, गजल, टप्पा, खट, तिल्लान आदि तथा मराठी से साकी, दिण्डी, ओवी, पंचचामर, केकावली आदि चुन-चुनकर इन्होंने अपने पदों में प्रयुक्त किया है। इनके संगीत-वाङ्मय को कीर्त्तन, पद, वर्ण, तिल्लाना, प्रबन्ध इन पाँच वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। इनके १९६ कीर्तन प्राप्त हैं—१५८ संस्कृत में हैं और ३७ हिन्दुस्तानी तथा एक कन्नड़ में। इनमें गणपति, नरसिंह, श्रीकृष्ण, श्रीराम,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिव, स्थाणुमूर्ति, भगवती, सुब्रह्मण्य, हनुमन्त आदि देवताओं की स्तुतियाँ हैं। मुख्य स्थान पद्मनाभ-स्तुति का है। इनके पदों में शृंगार की भावना अधिक है। किन्तु कीर्तनों में दास्यभाव है। गोपी-कृष्ण-लीलाओं के आधारभूत गीत शृंगारपरक हैं।

ऐसा सर्वकलावल्लभ राजा तिरुवितांकूर में इनके पहले या बाद में भी कोई नहीं हुआ। इन्हें वाणी का वरदान तथा भगवान् पद्मनाभ की असीम कृपा प्राप्त थी।

यह एक उल्लेखनीय बात है कि स्वाति तिरुनाळ केरल के प्रथम हिन्दी कवि थे जिन्होंने व्याकरणात्मक हिन्दी में भक्ति के उद्‌गार व्यक्त किये। इनके पदों की सूर जैसी सुकुमारता सभी को आकृष्ट करेगी। विषय भी सूर जैसा है। इन्होंने हिन्दी में पद सीमित संख्या में ही लिखे। कई पदों में इन्होंने पद्मनाभ की प्रेयसी के रूप में अपनी विरह-वेदना की सीमातीत स्थिति अभिव्यक्त की है। इनका उद्धव-सम्बन्धी एक पद भी प्राप्त है।

राग—झिंझोटी ताल—आदि

कान्हा ने बजायी बाँसुरी,
मन मोहे जिनसे री ।। टेक ।।
जब जब श्याम बजायी बाँसुरिया,
ले गई मेरे मन की करार री ।।
कान्हा ने बजायी बाँसुरी ।।

राग—भैरवी ताल—आदि

बंशीवाले ने मन मोहा ।। टेक ।।
बोली बोले मीठी लागे,
दर-दर उमंग करावे । (बंशी०)
वेणु बजाके तान गावे,
निस-दिन गोपियाँ रिझावे । (बंशी०)
साँवरो रंग मोहनी अंग,
सुमरन तन को भुलावे ।। (बंशी०)
कालिंदी के तीर ठाढे,
मोहन बाँसुरी बजावे । (बंशी०)
पद्मनाभ प्रभु दीन-बंधु,
सुर-नर चरण मनावे ।। (बंशी०)

एन० रा० ना०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

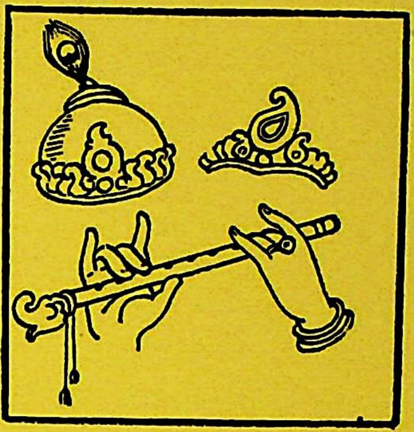

मैथिली कृष्णभक्तिकाव्य की परम्परा

—डा० राधाकृष्ण चौधरी

मिथिला के कृष्णभक्त

—डा० राधाकृष्ण चौधरी

—डा० मोहनानंद मिश्र

—डा० प्रेमशंकर सिंह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैथिली कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा

अनादिकाल से मिथिला ब्रह्मविद्या का प्रधान केन्द्र रहा है। न्याय के अध्ययन के लिए समस्त भारत से जिज्ञासु यहाँ आया करते थे। यहाँ के लोग सामान्यतः पंचदेवोपासक कहे जाते हैं, फिर भी सभी धर्मों के प्रति उनकी सहिष्णुता विश्व-विख्यात है। मिथिला की कला एवं साहित्य इस बात का प्रमाण है कि यहाँ के कर्मकाण्डी किंवा शैव-शाक्त भी कृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते रहे हैं। विष्णु, हरि और कृष्ण मिथिला में उतने ही जन-प्रिय हैं जितना कि और कोई देवी-देवता। श्रीकृष्णाष्टमी आज भी वहाँ का एक महान् पर्व है। वृद्ध-वाचस्पति से लेकर अद्यतन मिथिला के कवि-मनीषियों और लेखकों ने अन्य देवी-देवताओं के साथ कृष्ण को भी आराध्य माना है और उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। हरिवंश, ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा श्रीमद्भागवत का यहाँ व्यापक प्रभाव रहा है। अन्य प्रदेशों की भाँति मिथिला में भी कृष्ण-भक्ति की धारा सदा से प्रवाहित होती आ रही है और यहाँ के भक्त जब लौकिक जीवन से विरक्त होकर भक्ति-पथ के पथिक बनते हैं तो पदों, भजनों और श्लोकों के द्वारा ही अपनी अन्तर्व्यथा प्रकट करते हैं।

मैथिली साहित्य की एक प्रशस्त परम्परा है। उसके विकास के साथ ही कृष्ण-भक्तिपरक रचनाओं का श्रीगणेश हुआ। कृष्ण-सम्बन्धी भाषा-साहित्य के सर्वप्रथम कवि एवं भक्त होने का गौरव मैथिल-कोकिल विद्यापति को ही प्राप्त है जिन्होंने कृष्ण-भक्ति के प्रचार-प्रसार में पश्चिम में व्रज-क्षेत्र और पूर्व में असम और बंगाल को प्रभावित किया। विद्यापति स्वयं जब निराश होकर पुरादित्य के दरबार में शरणार्थी थे, तब वहाँ उन्होंने अपना समय श्रीमद्भागवत की हस्तलिपि तैयार करने में लगाया था। इससे यह स्पष्ट है कि उनकी अभिरुचि क्या थी? मैथिल-परम्परा में समन्वित भक्ति-साधना की व्यवस्था रही है—कदाचित् यह उस समय युग-धर्म ही रहा हो। विद्यापति एवं विष्णुपुरी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन महाकवियों की काव्य-रचनाओं में कृष्ण के जन्म एवं माधुर्य-लीला के साथ ही शिव-लीला का भी सन्निवेश है। समन्वय की यह भावना चैतन्य महाप्रभु में भी परिलक्षित होती है। उन्होंने समस्त शैव, शाक्त और वैष्णव-तीर्थों की यात्रा की थी। रघुपति नामक चैतन्य के समसामयिक भक्त की भक्तिमूलक कविताओं का संकलन रूप गोस्वामी द्वारा हुआ था। मिथिला में भक्ति के क्षेत्र में साम्प्रदायिक संकीर्णता का सर्वथा अभाव था। यहाँ के वैष्णव-भक्तों ने शिव-शक्ति से भी सम्बद्ध पदों की रचना की है। शैवभावापन्न मिथिला वैष्णवभावापन्न भी रहा है। हरि एवं शिव की उपासना यहाँ एक साथ ही प्रचलित रही है। मैथिली साहित्य की यह समन्वयात्मक प्रवृत्ति मध्ययुगीन शंकरदत्त, उमापति, विद्यापति, लोचन, रामदास, चन्द्रकला, हरिदास, यदुसिंह, यशोधर, भव प्रीतानन्द, धरणीधर, मधुसूदन, मनबोध, नन्दीपति आदि की कृतियों में स्पष्टतः परि-लक्षित होती है।

मैथिल कृष्ण-भक्तों को समझने के लिये इस पृष्ठभूमि से अवगत होना आवश्यक है। इस प्रदेश के दार्शनिक और निबंधकार भी अपनी रचनाओं में कृष्ण को स्मरण करना नहीं भूले हैं। इससे मैथिल-संस्कृति के उदार तथा सहिष्णु रूप का परिचय मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैथिली साहित्य में कृष्णलीला-वर्णन-सम्बन्धी दो प्रमुख प्रवृत्तियों का पता चलता है—संस्कृत नाट्य-रचना (जिसमें गीत मैथिली में हैं) तथा वैष्णव-पदावली। नाटकों का कथानक प्रायः श्रीमद्भागवत एवं हरिवंश पुराण से लिया गया है। इनमें अधिकांश कृष्णलीला से सम्बद्ध हैं। सबसे प्राचीन चौदहवीं शताब्दी का उमापति विरचित 'पारिजातहरण' नाटक है जिससे असम के शंकरदेव अत्यधिक प्रभावित हुए थे। मैथिली साहित्य में इस प्रकार के लीला-नाटकों की प्रधानता देखी जाती है। लीला-नाटकों का प्रदर्शन अवतारी महापुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति-प्रदर्शन लिये होता था। रासलीला तो काफी प्राचीन है। रस के समूह को ही 'रास' कहा गया है (रसानां समूहो रासः)। लीला वस्तुतः एक क्रिया है और उसीके माध्यम से प्रेमस्वरूप भगवान् की भक्ति अभिव्यक्त होती है। वल्लभाचार्य ने भी इसका विश्लेषण किया है। भक्तजन कृष्ण की आनन्दलीला का अभिनय कर अपने भाव को दृढ़ करते हैं। उनका लीला-पुरुषोत्तम रूप ही भक्ति-साधना का मुख्य संबल रहा है।

मध्यकाल में पूर्वी भारत में कृष्णोपासना की जो धारा प्रवाहित हुई, मिथिला के साहित्यकार और जनसामान्य उससे पूर्णरूपेण रस-सिक्त हुए। इस क्षेत्र में पंचदेवोपासना की परंपरा रहते हुए भी विष्णु-पूजा की प्राचीन परंपरा का निर्वाह बड़ी तत्परता से किया जाता था। कर्णाट-वंश के एक मंत्री श्रीधरदास ने विष्णु मंदिर की स्थापना की थी। नृसिंह ठाकुर ने वंशीवट पर शयन करनेवाले ऐसे कृष्ण का वर्णन किया है जिनके हाथ में मुरली है। चण्डेश्वर ठाकुर ने 'पूजारत्नाकर' में विष्णु-पूजा का विधान दिया है और कृत्यरत्नाकर में विष्णु से सम्बद्ध पर्वों का उल्लेख किया है। गोविन्ददत्त ने 'गोविन्द-मानसोल्लास' में अपने को 'हरिकिंकर' के रूप में प्रस्तुत किया है और कई अन्य लेखकों ने भी वैष्णव-सम्प्रदाय की मान्यताओं का निरूपण किया है। वास्तव में वासुदेव कृष्ण तथा विष्णु का एकीकरण पौराणिक काल में हुआ था। विष्णु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, स्कन्द, वामन, हरिवंश आदि पुराणों में कृष्ण की कथा वर्णित है। 'भागवत-महापुराण' में कृष्णलीला की जिस परम्परा को अभिव्यक्ति हुई है उससे भिन्न एक और परम्परा थी जिसका प्रकाश हम गीतगोविन्द में देखते हैं। भागवत-परम्परा की रासलीला का सम्बन्ध शरद् पूर्णिमा से है और गीतगोविन्द-परम्परा की रासलीला का वसन्त से। कृष्ण और गोपी के बीच उदात्त शृंगार-कल्पना को भक्ति के आवरण में स्वीकार किया गया। लीला-नाटकों के कथानक मूलतः राधाकृष्ण की प्रेमलीला से सम्बद्ध हैं।

जयदेव और विद्यापति के प्रभाव से समस्त मिथिला में भागवत का महत्त्व बढ़ा। भागवत में वर्णित कथावस्तु के आधार पर विद्यापति, विष्णुपुरी, रघुपति उपाध्याय आदि ने स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की। विष्णुपुरी अद्वैत वेदान्तानुयायी संत थे और वे अपने को वैष्णवेतर मुक्त परमहंस कहते थे। उन्होंने ही बंगीय समाज में भागवत को लोकप्रिय बनाया और बंगाल में मध्व-सम्प्रदाय के विकास के लिये मार्ग प्रशस्त किया। मिथिला के वैष्णव-मत में राधाकृष्ण ही आराध्यदेव हैं। विष्णुपुरी-विद्यापति की परम्परा को बाद में मिथिला में साहेब रामदास, लक्ष्मीनाथ, रघुवर, रोहिणीदत्त, कमलादत्त आदि भक्तों ने अक्षुण्ण रखा।

मिथिला में उपलब्ध नाटकों में शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। इन नाटकों का उद्देश्य ही था—कृष्ण-चरित का वर्णन करना। ऐसे नाटककारों में गोविन्द (नलचरित-नाटक), रामदास (आनन्द-विजय नाटक), देवानन्द (उषाहरण-नाटक), नन्दीपति (कृष्ण-केलि-माला), श्रीकान्तगणक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(श्रीकृष्ण-जन्म-रहस्य) आदि उल्लेखनीय हैं। उमापति के 'पारिजातहरण' नाटक में जो कथानक है वह श्रीमद्भागवत और हरिवंश पुराण में उपलब्ध है। कृष्ण पारिजात पुष्प के माहात्म्य के प्रसंग में जिज्ञासा करते हैं और उसे प्राप्त करके रुक्मिणी को देते हैं। सत्यभामा ईर्ष्या-रोष से कृष्ण से मान करती हैं। कृष्ण उन्हें मनाते हैं और पारिजात लाने का वचन देते हैं। इसी आधार पर बाद में शिवनाथ ने भी 'पारिजात-हरण' नाटक की रचना की थी। 'कृष्णकेलि-माला' में कृष्ण-जन्म की कथा है। कृष्ण की बालक्रीड़ा, पूतना-वध, बकासुर-वध, गोवर्द्धन-पूजा, कालिय-दमन आदि लीलाओं का भी इसमें उल्लेख है। इसमें राधाकृष्ण का प्रेमाभिनय है। इस पर उमापति, विद्यापति और रमापति का प्रभाव स्पष्ट है। यह मैथिली नाटकों की विकसित शृङ्खला की एक कड़ी है। रमापति के 'रुक्मिणी-परिणय' का कथानक भागवत के दशमस्कन्ध तथा हरिवंश पर आधारित है। हर्षनाथ का 'माधवानल' श्रीमद्भागवत पर आधारित है तथा इसमें कृष्ण एवं गोपी के क्रीड़ा-कौतुक का विवरण है। रमापति की मान्यता—'हरिपद प्रणत रमापति भान', 'मुरारिभगत सुमति रमापति भान' यह सिद्ध करती है कि उनकी समस्त रचना एक भक्त का निश्छल भावोद्गार है। मैथिली नाटकों में अधिकांश नाटक वैष्णव-मत से प्रभावित हैं और उनमें वात्सल्य अथवा दास्यभावपूर्ण लीला का वर्णन है। लीला-नाटक मैथिली नाट्य-साहित्य की अपूर्व उपलब्धि है।

मैथिली साहित्य में चौदहवीं शताब्दी से जो मुक्तक काव्यधारा प्रवाहित हुई वह १९वीं शताब्दी तक भक्ति-रस से सराबोर रही। इस अवधि में मैथिली में कृष्ण-काव्य की ही प्रधानता रही। विद्यापति मैथिली मुक्तक काव्य के जन्मदाता एवं प्रवर्तक थे। उन्होंने गीत-मुक्तक की रचना की। पंडित-समाज के कोप से बचने के लिए और साथ ही जन-समुदाय को अनुरंजित करने की दृष्टि से उन्होंने तत्कालीन प्रचलित लोकगीतों की मर्मस्पर्शी परम्परायों एवं सूत्रों को पकड़कर तथा उनको संस्कृत की साहित्यिक रीति से परिष्कृत कर पदावली की रचना की। संगीत के लिये ललित मधुर एवं सरस शब्द-रचना को प्रयोजनीय मानकर और अपने पोषक से प्रेरणा पाकर उन्होंने लोकरंजनार्थ शब्द-साधना आरम्भ की। उनका मुक्तक सुनियोजित तथा शब्दशिल्प, अभिव्यक्ति, रीति एवं भाव-सौष्ठव साहित्यिक और उनकी संवेदनशील स्वाभाविकता लोकगीत-परम्परा का परिचायक है। जनसामान्य की मूलभूत मनोवृत्ति—शृंगार एवं भक्ति—को उन्होंने अपने मुक्तक का विषय बनाया। राधाकृष्ण शृंगार-लीला का वर्णन प्रतीकरूप में गृहीत हुआ है। उनके मुक्तक में सर्वत्र भाव का विन्यास है। वे जितने ही शृंगारिक थे, उतने ही भक्तिभावापन्न भी। भाव-तन्मयता के दृष्टिकोण से उनके भक्तिपरक पद शृंगार से कहीं अधिक गौरवमय हैं। विभिन्न प्रकार की भक्ति-भावना को उन्होंने जिस तन्मय अन्तरंगता के साथ अभिव्यक्त किया है, वह युग-युग से जनमानस के भक्तिविह्वल मानस को परितृप्त करता आ रहा है। विद्यापति के अतिरिक्त रामदास, रमापति, लालकवि, नन्दीपति, रत्नपाणि आदि कवियों ने भी सरस मुक्तकों की रचना की है। रामदास ने राधाकृष्ण की प्रणय-लीला के विविध रूपों को अपने मुक्तक का विषय बनाया है। नन्दीपति की ख्याति का मेरुदण्ड है श्रीकृष्ण की बाल-लीला।

विद्यापति वैष्णव कवि के रूप में बंगाल में प्रख्यात हुए और उनकी भाषा भी वैष्णव-धर्म की साम्प्रदायिक भाषा के रूप में गृहीत हुई। असम के शंकरदेव और उत्कल के रामानन्द राय भी उनसे प्रभावित थे। चैतन्य महाप्रभु के वैष्णव-सम्प्रदाय में विद्यापति की राधाकृष्ण-लीला को 'वैष्णव-भजन' कहा गया है। मधुर रस के ऐसे भजनों में शृंगार आवरण मात्र रहता है। ये कवि भक्तिविषयक रचनाओं में कृष्ण-तत्त्व के अलौकिक रूप का आभास देते हुए अपना भाव व्यक्त करते हैं। गोविन्ददास के पदों में यह विशेषता सर्वत्र परिलक्षित होती है। वे अपने को भगवत्-लीला का साक्षी और द्रष्टा मानते हैं। उनके पदों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को कृष्णलीला का निरूपक कहा गया है। वे वैष्णव-सम्प्रदाय के उपयोगार्थ भजन की रचना करते थे। संगीतात्मक तत्त्व की दृष्टि से भी वे विलक्षण हैं। लालित्य और काव्य-माधुर्य इनके काव्य का मुख्य गुण है। इनकी रचना में मधुररस प्रधान है तथा इन पर भागवत, रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामी का प्रभाव स्पष्ट है।

ग्रियर्सन ने अपने वैष्णव-गीत-संकलन में चक्रपाणि के गीतों का संग्रह किया है। उन्होंने मनबोध के 'कृष्णजन्म' को 'हरिवंश' के नाम से ही सम्बोधित किया है। इस रचना में मनबोध को कृष्णावतार की लीला का वर्णन अभिप्रेत है। दैत्यों के उत्पात से व्याकुल एवं पीड़ित मानव को देखकर विष्णु ने कृष्ण का अवतार ग्रहण किया था। इसमें कृष्ण की अलौकिक लीला और उनका अवतारी रूप अभिव्यक्त हुआ है। इसके अन्तर्गत वात्सल्य रस का जो वर्णन किया गया है वह वैष्णव-सम्प्रदाय में अनेकविध स्वीकृत तथा समाहृत है। चौपाई में रचा हुआ मनबोध का यह ग्रंथ प्रबन्ध-काव्य है। साहब रामदास भी भक्तिमार्गी थे। उनकी रचनाओं में अधिकांशतः मधुर रस के पद हैं साथ ही शान्त, दास्य और वात्सल्य के भी। वे पहले भक्त थे, तब कवि। साहेबराम और लक्ष्मीनाथ भक्त-परम्परा के पथ पर चले। इन पर सूर और तुलसी का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। साहेब रामदास के विरह-वर्णन में भावात्मक रहस्यवादिता है। लक्ष्मीनाथ के विष्णुपद अत्यन्त आकर्षक हैं। उनमें संत-भावना मुखर हो उठी है। ये लोग विष्णु के उपासक थे। साहेब रामदास ने मिथिला की सुदीर्घ स्वतंत्र संगीत-प्रणाली को जीवित रखा। इनकी रचनाओं में भक्ति के विविध रूपों का दर्शन होता है। इनकी भाषा-शैली भक्ति-रस से ओतप्रोत है। इनके भक्तिपरक गीतों में निर्वेदजन्य वैराग्य की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। उत्कट वैराग्य-भावना के कारण यह पद-साहित्य अनुभवगम्य है। विष्णुपदों में राधाकृष्ण के देवत्व की व्यंजना है।

यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि विद्यापति की रचना में श्रृंगार और अध्यात्म की जो पीयूष-धारा समन्वित हुई है उसके कारण ही राधाकृष्ण के प्रेमाख्यान पर आधृत उत्तर-पूर्वी भारत में रास-परंपरा का प्रचलन हुआ। कृष्णलीला के कीर्तन एवं अभिनय से जनसाधारण के बीच वैष्णव-धर्म का स्वरूप साकार हुआ तथा भागवत और हरिवंश की लोकप्रियता बढ़ी। बाद के मैथिली कवि और नाटककारों ने इसे और व्यापक बनाया। विद्यापति की तरह गोविन्ददास की रचनाओं में भी राधाकृष्ण की एकान्त लीला का चित्रांकन है और साथ ही उसका क्रमानुसार वर्णन भी। वे अपने को अलौकिक प्रणयलीला का साक्षी मानकर लीलादर्शी भक्त-हृदय का परिचय देते हैं। उन्होंने कृष्णलीला के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का वर्णन नहीं किया है। उनके गीतों में माधुर्य का समावेश तो है ही, साथ ही गेयधर्मिता की प्रधानता भी है। इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने एक नवीन भावधारा प्रवाहित की। मिथिला में विद्यापति के समय से जो कृष्ण-काव्य की परम्परा प्रवर्तित हुई, वह १६वीं शताब्दी तक अबाध गति से प्रवहमान रही और किसी न किसी रूप में अब भी गतिशील है।

डॉ० राधाकृष्ण चौधरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथिला के कृष्ण-भक्त

उमानन्द ओझा

पं० उमानन्द ओझा का जन्म वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग के उपासक सरदार पण्डा के कुल में हुआ था। ये तंत्र-मार्त्तण्ड प्रकाशानन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। वंश-परम्परा और परिवेश से ही इन्हें साहित्यिक प्रतिभा मिली थी।

इनका उद्भव बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुआ था। सुसंस्कृत कुल में उत्पन्न होने के कारण इनका लालन-पालन भी उसी ढंग से हुआ। किन्तु गरीबी की सुरसा इन्हें सर्वदा निगलने की चेष्टा में रहती थी। अभाव और संघर्ष ही इनके जीवन की कथा है।

वैद्यनाथधाम में उन दिनों बंगला भाषा और क्षेत्रीय मैथिली का व्यापक प्रचलन था। इन्होंने उन्हीं भाषाओं में लोकसंगीत की रचना की।

स्वभाव से निष्ठावान् तथा शैक्षणिक योग्यता के अभाव के कारण ये अपने मित्रों से बराबर सहायता प्राप्त करते थे। इनके मित्र शिरोमणि ठाकुर कुशल झूमर-गायक थे। इन दोनों में आपस में प्रगाढ़ स्नेह था। पं० उमानन्द विशुद्ध कवि थे। इनके हृदय में किसी प्रकार का प्रपंच नहीं था। शिरोमणि ठाकुर ने उनके सभी गीतों को संगृहीत किया और 'झूमर-शिरोमणि' नाम से उनका संग्रह प्रकाशित किया। किन्तु 'झूमर-शिरोमणि' के कुछ ही गीतों में उमानन्द का नाम है, बहुसंख्यक गीतों में शिरोमणि की छाप मिलती है। लगता है, संग्रहकार ने उमानन्द के नाम को हटाकर अपना नाम दे दिया। क्योंकि समाज में उमानन्द ही झूमर के रचनाकार रूप में प्रसिद्ध हैं और शिरोमणि केवल झूमर के गायक। इस प्रकार एक मित्र के साथ प्रवंचना का नाटक रचा गया।

कवि के रूप में उमानन्द ने अनेक विधाओं पर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। एक ही साथ शिव, विष्णु, गणेश, दुर्गा और कृष्ण की भक्ति-सम्बन्धी रचना इनकी विशेषता रही है। इनके गीत अभी भी संथाल परगना, बर्दवान तथा बिहार-उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र में भाव के साथ गाये जाते हैं।

इनकी मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में ठीक जानकारी नहीं है। अनुमान के आधार पर आज से ३० वर्ष पूर्व ही इनका देहावसान हो गया था। कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी इनके दो पद यहाँ उद्धृत हैं :

(१)

एक दिने वृन्दावने श्रीमती हरिरशने,
प्रेमरंगे किला कुतुहले।
कूटीला संवाद पेमे, द्रुत पदे घरे गिये,
व्यंग करि आमानेरे वले॥

चल देखाईव दादा, तोमारि साधेरि राधा,
मागि तव अक्षय जौवन।
वृन्दावने भक्ति भरे, मदनेर पूजा करे,
पुरोहित नन्देरि नन्दन॥

हामरे दहे अन्तर, बुद्धि हिन मधुकर,
माठे माठे उड़िया वेड़ाय।
गोपने कमल वने, बसि हरशित मने,
मक्षिका पद्मेर मधु खाय॥

कूटीला मतई वले, गोपसुत क्रोध ज्वले,
वन पथे धाय आसिकरे।
आयाने आसिते देखि, सशंकिता विधूमुखी,
माधव कहेन सकातरे॥

'एक दिन वृन्दावन में राधा कृष्ण के पास प्रेम-रंग में विभोर थी। कुटीला को जब इस बात की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जानकारी हुई तो जल्दी में घर जाकर राधा के पति आयान से व्यंग्य करके कहती है—"चलो बड़े भाई! तुम्हें तुम्हारी साध की राधा से परिचित कराती हूँ। तुम्हारी पत्नी तो अक्षय यौवना है। वृन्दावन में भक्ति के साथ कामदेव की पूजा करती है। इसमें पुरोहित का काम नन्द का पुत्र करता है। मेरा अन्तर तो जल रहा है। भौंरा ही बुद्धिहीन है। जहाँ-तहाँ मैदान (जंगल) में भटकता है। मधुमक्षिका छिपकर कमल के वन में रहती है। वहाँ आनन्दित होकर रहती है। भ्रमर निश्चिन्त होकर मधु का पान करता है।" कुटीला जितना ही अधिक बोलती है, आयान उतना ही अधिक क्रोध में आविष्ट होता है। हाथ में तलवार लेकर वह वन-प्रान्तर की ओर चल देता है। आयान को आता हुआ देखकर चन्द्रमुखी राधा भय से सशंकित हो जाती है तथा कातर होकर कृष्ण से कहती है—

(२)

ए देख श्याम! असि करे,
आयान आसे क्रोध भरे गो।
बूझि एवार जीवन बांचनो॥

यदि वा ना वधे प्राण, ततोधिक अपमान,
सहिते हवे गुरु गन्जना।
एकि विडम्बना॥

हरि हृदे यार स्थान हिने हरे तार मान गो,
ए दुःखे मे मलेउ जावेना।
शिरे शिरे यार वास, तार भाग्ये राहु ग्रास,
ईहार अधिक कोन यातना॥

ए विपदे तव तरि नारी रुपे धरे हरि गो,
कर गोपतनये कलना।
आमि पद पूजाफले, वासिव चरण तले,
घूमिवे उमानन्देर भावना॥

'हे कृष्ण! वह देखो, आयान हाथ में तलवार लेकर आ रहा है। आयान क्रोध में आगबबूला हो रहा है। लगता है, इस बार जीवन को बचाना अत्यन्त ही कठिन है। यदि यह नहीं मारेगा तो यह भयंकर अपमान की बात होगी। यह भयंकर गन्जन का समय उपस्थित हो गया है। यह विधाता की कैसी विडम्बना है? भगवान् हरि के हृदय में जिसका स्थान है उसका मान-अपमान तो हरि ही ढोते हैं। इस दुःख की समाप्ति मरने के बाद भी नहीं होगी। कष्ट सहकर ही जिसको जीना है, उसका जीवन तो राहुग्रास के समान है। इससे बढ़कर यातना क्या हो सकती है? इस विपद् में राधा की नैया को पार करने के लिए कृष्ण नारी का रूप धारण करते हैं। गोपपुत्र आयान विस्मय में पड़ जाता है। राधा पद की पूजा के लिए कृष्ण के चरण-कमल के समीप बैठ जाती है। इस प्रकार उमानन्द कवि कहते हैं कि आयान की दुष्ट कल्पना समाप्त हो जाती है।'

मो० मि०

उमापति उपाध्याय

उमापति नाम के कई कवि और नाटककार मैथिली साहित्य में हुए हैं। उनमें 'पारिजातहरण-नाटक' के रचयिता उमापति उपाध्याय सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन और डॉ० उमेश मिश्र का मत है कि ये कर्णाट-वंश के शासक राजा हरिसिंहदेव के समकालीन थे। अतः इनका समय चौदहवीं शताब्दी माना जाता है।

इनका जन्म मधुबनी जिले के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनका 'पारिजातहरण नाटक' हरिवंश (अध्याय १२४ से १३५ तक) तथा विष्णु-पुराण के पाँचवें अध्याय पर आधारित है। इस नाटक में हरिवंश की कथा से भिन्न मात्र एक घटना है और वह है—प्रद्युम्न के बदले कृष्ण का अर्जुन को लेकर इन्द्र से लड़ने के लिए जाना। नाटक संस्कृत में है और गीत मैथिली में। भक्तिपदों में कल्पना की प्रौढ़ता, अलंकार-विन्यास, वर्णन-चातुरी आदि अनेक काव्यगत वैशिष्ट्य देखने को मिलते हैं। इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा विरचित 'विष्णु-पद' के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१)

बेरि बेरि बिरचथि बिधि बिधु मंगल,
हरि मुख सरि नहि होए।
परम सुदिन मोर आजे।
यशुमति कोर देखिअ यदुराजे॥
कि करब माधव तनिक विशेषे।

(२)

हरिसों प्रेमआस हम लाओल
पाओल परिभव ठामे।
जलधर छाहरि तर हम
सुतलहुँ आतप भेल परिनामे॥

सखि हे मन जनु करिअ मलाने।
अपन करमफल हम उपभोगब
तोहें किअ तेजह पराने॥

पुरूब पिरित रीति हुनि जोय बिसरब
तइयो न हुनकर दोसे
कतेक जतनधरि जें परिपालिअ
साँप न मानय पोसे॥

कबहुँ नेह पुनिथहि परगासब
केवल फल अपमाने।
बेरि सहस्र दस अमिअ भिजबिअ
कोमल न हो पखाने॥

भन गुरु उमापति हरि होएव
परसन मान होएत अवसाने
सकल नृपतिपति हिन्दूपति
जिउ महारानि विरमाने॥

रा० चौ०

कंसनारायण

मैथिल कृष्ण-भक्तों की परम्परा में कंस नारायण को आदर की दृष्टि से देखा जाता है। 'भावगीत-संग्रह' और 'रागतरंगिणी' के द्वारा इनकी कृष्ण-भक्ति के स्वरूप का बोध होता है।

कंसनारायण ओइनवार-वंश के अन्तिम राजा थे। इनका समय सन् १४६४ ई० से १५३० ई० तक माना जाता है। ये रूपनारायण राजा रामभद्र के पुत्र थे। इनका नाम लक्ष्मीनाथ था। कंसनारायण इनकी उपाधि थी। इनके संरक्षण में मैथिली के साथ-साथ संस्कृत के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य हुआ। इनके समय में हरपति द्वारा 'मन्त्रप्रदीप' की रचना हुई। गोविन्द कवि इनके मन्त्री थे। गोविन्द कवि के गीतों में 'सोरम-रमण कंसनारायण' और 'लखिमिनाथ नरेश सोरम देवि नायक' का उल्लेख मिलता है। मैथिली भाषा के विद्वान् श्री सुरेन्द्रनाथ झा 'सुमन' और रामदेव झा इन्हें कंसनारायण तो मानते हैं, किन्तु लखिमिनाथ नहीं मानते। इस भेद को कृष्ण नारायण से सुलझाया गया है। यह निश्चित है कि रामभद्र कंसनारायण के पिता थे।

कंसनारायण का वासुदेव से सम्बन्ध था। इसकी चर्चा गोविन्द ने की है। कंसनारायण राजा होने से पूर्व लक्ष्मीनाथ के नाम से जाने जाते थे। ये अच्छे कवि थे। इनके आश्रय में गोविन्द, रामनाथ, काशीनाथ और श्रीधर नामक कवि रहते थे। इन कवियों में से अधिकांश के गीत 'भाषा-गीत-संग्रह' में संकलित हैं। रामनाथ ने भी अपने गीतों में कंसनारायण को महत्त्व दिया है।

इनकी मृत्यु-तिथि के सम्वन्ध में सही जानकारी नहीं मिलती। अनुमानतः सन् १५३० ई० के आसपास इनका देहावसान हुआ होगा।

इनके पदों में कृष्ण-भक्ति की मधुरता सहज ही दिखलाई पड़ती है। नमूने के रूप में नीचे दो छन्द दिये जाते हैं—

(१)

बाट भुअङ्गम निसि अति घोर।
साहस कएल विफल भेल मोर॥

दूती कालि बड़ दुख भेल अभिसार।
तोहि पतिअएलाहुं भेलाहुं गमारि॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जे न करिअ से बोलिअ काँ लागि।
सून संकेत खेपली निसि जागि॥
कंसनरायन भूपति भान।
सिव सिव सबे दिन न रह समान॥

(२)

तुअ कर धरइतें मति मुघली।
कनकलता हे कमलें फुलली॥
मनाएक मानिनि न कर नकार।
जानिअ जत एकर शृंगार॥
तुअ मुख धरइतें भेल अनन्द।
हाथें हाथें जनि थएल मोर चन्द॥
अधर मधुर रस जानत कोए।
वसुधा अमिअ ऐसन नहि होए॥
पुनु पुनु परसि पयोधर हेरु।
थोर अमर पद थोर सुमेरु॥
लखिमिनाथ कह रस नहि अन्त।
नागरि नारि कलामय कन्त॥

मैथिल कृष्ण-भक्तों की परम्परा में कंसनारायण की महत्ता सभी स्वीकार करते हैं।

मो० मि०

गुणवन्त लालदास

गुणवन्त लालदास बीअर-वंशीय मैथिलकरण कायस्थ थे। ये खरौआ (जिला मधुबनी) के निवासी थे। मैथिली में इनकी लगभग २५ रचनायें मिलती हैं। कुछ प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ हैं—१. रामेश्वर-चरित्र मिथिला रामायण (शाक्त दृष्टिकोण), २. सावित्री-सत्यवान नाटक, ३ जानकी रामायण।

शाक्त होते हुए भी ये वैष्णव-भक्त थे। इन्होंने विष्णु के दशावतार का वर्णन तथा गीतगोविन्द का मैथिली में अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने सुदामा की कथा पर भी एक काव्य लिखा है। ये दोनों रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं। इनके द्वारा अपने दरवाजे पर हरि-मंदिर बनवाये जाने का भी उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि इन्होंने गीता का भी मैथिली में अनुवाद किया था। इनकी प्रकाशित पुस्तक 'जानकी रामायण' में एक राधाकाव्य भी है। यह भागवत के दशमस्कन्ध पर आधारित है। इनकी रचना-शैली के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(१)

तखन कृष्ण प्रभास में पुनि यज्ञ कयल विधान।
सकल सुरगण अंश पाओल नृपति अति सुखमान॥
वयल द्विजकाँ तुष्टकय दै द्रव्य धन सनमान।
गेल याचक भवन करयित कृष्ण गुणगण गान॥

(२)

गोपीजनैक भक्ति मति देखि।
उद्धव लज्जित भेला विशेषि॥
तखन कहल राधा सौं जाय।
हे श्रीमति करु एक उपाय॥
अहंका आछि अति कृष्ण क प्रेम।
प्राणोपरि तन्हिक व्रत नेम॥
छत्रहुँ जखन सीता क शरीर।
कृष्ण रहैथ राम रघुवीर॥

(३)

आठम गर्भ कृष्ण साक्षात।
अवतरबा नाश क उतपात॥
माय-बापकों दर्शन देल।
महाप्रकाश ततय भय गेल॥
तेज नहिं सहि सकला बसुदेव।
शिशु बनला पुनु देवक देव॥

इनके भ्राता सुन्दरलालदास भी राधाकृष्ण के परम भक्त थे। इनके दूसरे भ्राता ननूलालदास श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध की सम्पूर्ण लीला-कथा पर गीत-काव्य लिख गये हैं, जो अप्रकाशित है। इनके परिवार में एक कहावत है कि वृद्धावस्था में ननुलाल-दासजी नेत्र-विहीन हो गये थे। उन्हें स्वप्न में राधा का दर्शन हुआ और भागवत के दशमस्कन्ध की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीला-कथा को गीति-काव्य के रूप में लिखने का निर्देश प्राप्त हुआ। जनश्रुति है कि उक्त काव्य को आरम्भ करते ही उन्हें नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गई थी।

रा० चौ०

गोविन्ददास (प्रथम)

गोविन्ददास नाम के कई कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं। उनमें तीन प्रमुख हैं—कृष्णलीला के रचयिता गोविन्ददास, गोविन्ददास कायस्थ और गोविन्ददास ठाकुर। द्वितीय तथा तृतीय गोविन्ददास के फुटकर पद मिलते हैं। अतः यह निर्धारण करना कठिन है कि कौन गोविन्ददास लोकप्रिय गोविन्ददास के पर्यायवाची हैं। गोविन्ददास छापयुक्त सभी गीत कृष्ण-भक्तिपरक हैं। अतः जब कृष्ण-भक्तिविषयक गीतों की बात करने लगते हैं तो गोविन्ददास की छाप से प्राप्त सभी रचनाओं पर हमारा ध्यान स्वयमेव चला जाता है। गोविन्ददास नामक उपर्युक्त तीनों कवि विद्यापति के प्रायः उत्तरकालीन थे।

गोविन्ददास (प्रथम) महाराज सुन्दर ठाकुर के समय (१७वीं शताब्दी) में विद्यमान थे। विद्यापति के बाद ये कृष्ण-काव्य के सर्वश्रेष्ठ रचयिता माने जाते हैं। इनकी कृतियों में 'कृष्णलीला' और 'नलचरित' (दोनों संस्कृत में) का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि ये कृष्ण-भक्त थे। 'कृष्णलीला' की प्रति अब उपलब्ध नहीं है। किन्तु इसका जो परिचय परवर्ती साहित्य में मिलता है उससे पता चलता है कि इनमें वर्णन की अद्भुत शक्ति है। गोपीविरह और कृष्ण की प्रेमक्रीड़ा का इसमें अपूर्व चित्रण मिलता है। गोविन्ददास का काव्य इनकी भक्ति-साधना का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है। इनके भक्तिपद बंगाल से ब्रजमण्डल तक छाये हुए थे। चैतन्य के भक्तों द्वारा इनके पदों को सुदूर प्रदेशों तक पहुँचाया गया था। एक पदांश से इनके कृष्ण-भक्त होने का प्रमाण मिलता है। 'कृष्ण कृपा कर कलिकलुषांकुश, कह कवि गोविन्ददास।' इनके पदों में राधा के प्रेमभाव एवं मिलन का सुन्दर चित्रण मिलता है। राधा की यह लालसा कि सतत श्रीकृष्ण से सम्मिलन होता रहे, कवि के कृष्ण-भक्त होने का परिचायक है। यद्यपि मिथिला में गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का कभी प्रचार नहीं हुआ, फिर भी इनकी कविता में चैतन्य की वन्दना पाई जाती है। यह तथ्य मिथिला में कृष्ण-भक्ति के विकास-सूत्रों के अनुसंधायकों को उलझन में डाल देता है।

इनकी रचना में राधाकृष्ण-लीला की प्रधानता है। ये अपने भक्तिविषयक मनोभाव को कृष्ण के अलौकिक लीलांकन के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इनके पदों में यह विशेषता परिलक्षित होती है कि ये अपने को भगवत्-लीला के साक्षी और द्रष्टा मानते हैं। ये वैष्णव-सम्प्रदाय के लिये भजन की रचना करते थे। अतः इनका वैष्णव-भक्त होना स्वतःसिद्ध है। अपने भजनों के माध्यम से ये माधुर्य-रस की धारा प्रवाहित करते थे। इन्होंने अपने पदों में स्थान-स्थान पर 'गोविन्ददास हृदय मणि मंदिर, अविचल मूरत त्रिभंग' आदि का उल्लेख कर अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है। इनके पदों में गौड़ीय सम्प्रदाय के रूपगोस्वामी, जीवस्वामी, चैतन्य भागवत आदि का प्रभाव स्पष्ट है। इनमें कहीं-कहीं तो उनकी उक्तियों का अविकल अनुवाद मिलता है। इससे स्पष्ट है कि गोविन्ददास चैतन्य सम्प्रदाय से पूर्णतया प्रभावित थे। मध्ययुगीन वैष्णव-सुलभ आलंकारिकता एवं भावप्रवणता के साथ गोविन्ददास की कविता में जो चमत्कार है, वह अन्यत्र दुर्लभ है—

रति रस सरम श्यामहित सुतलि,
शरद इन्दुमुखी बाला।
मरकत मदन कोई जनु पूजल,
दए नव काँचन माला॥

कृष्ण के हृदय पर सोई हुई राधा को 'मरकत मदन पर अर्पित काँचनमाला' कहकर गोविन्ददास ने अद्भुत दृष्टि-नैपुण्य, विलक्षण सहृदयता एवं अपूर्व काव्यशक्ति का परिचय दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनके निम्नलिखित पद पर तो अनायास ही कोई कृष्णमय हो सकता है—

हे सखि रसमय अन्तर हार।
श्याम सु नागर गुणगण आगर
के घनि विछुरए पार ॥

भक्तिभावना-व्यंजक इनके दो और पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कृष्ण का रासलीला-नृत्य

नीरद नील नयन निरनिन्दित,
वंक नेहारनि छन्द।
निरखैत निआ नितम्बनीनिश्चल,
निकसल नीबीबन्ध ॥
नाचत नन्दनन्दन नटराज ॥
नागरि नारि नगरनव नागरि,
निरुपम निहिन समाज ॥
नागरिनाह नन्दिनि नदी निकटे,
नीप निकुंज निवासी ॥
नितनव यौवन निधुवनालंकृत,
निभृत निनाद नेवासी ॥
नामहि नारि निकेत नहि रह,
नूतन नेह विलास ॥
निन्दहि निज जन नाहन हेरए,
निरमिन गोविन्ददास ॥

(२)

पदमिनि पुन परबोधओ तोय ॥
पीताम्बर पद-पंकज परिहरि,
पामरि पाँवरि रोय ॥
पूछइत पहिने पानि पलटायसि,
परिजन परकरिमान।
प्रिय परिवार परसि परिहायसि,
पुर पाहुन पँचबान ॥
पिरित क पाँति पढ़ि परिहाससि
पहुपरिणत नहि मान ॥
पाहन पुतलि परखि पए पेखल,
पर पीड़न नहि जान ॥
पुरुषोतम क प्रेम परिरंभन,
पुनवति पाँवए कोए।
प्राण पिआरि पदविपरिपालिह
गोविन्ददास कह तोय ॥

रा० चौ०

गोविन्ददास (द्वितीय)

गोविन्ददास (द्वितीय) का जन्म करण कायस्थ-परिवार में हुआ था। ये पन्द्रहवीं शताब्दी में 'ओइनवार' वंश के राजा के दरबार में रहते थे। इनका समय इनके अपने पदों से स्पष्ट है—

कमलाललित चरण कमल मधु पावए सोइ सुजान।
राजानरसिंह रूपनारायण गोविन्ददास सुजान ॥

• • •

गोविन्ददास हृदय अवधारल हरिनारायण देवा।

• • •

दास गोविन्द मन कंसनारायण।

ओइनवार-वंश का समय सन् १३५०–१५२७ ई० के बीच का है। अतः ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये १४वीं–१५वीं शताब्दी के मध्य में हुए होंगे।

गोविन्ददास कृष्ण-भक्त थे। कृष्णलीला पर इन्होंने प्रचुर मात्रा में गीतों की रचना की थी। प्राप्त साक्ष्यों से विदित होता है कि ये विद्यापति के समकालीन कवि थे। इनके वंश में परम्परा से पठन-पाठन की प्रणाली चली आ रही थी। इनके पूर्वज और वंशज सभी वैष्णव-भक्त थे। कहते हैं कि विद्यापति और गोविन्ददास में गुरु-शिष्य सम्बन्ध था। राधामोहन ठाकुर ने अपने 'पदामृत—समुद्र' में लिखा है—'विद्यापति ठक्कुरस्य गीत गोविन्ददास कविराजेन पूर्णकृतामिति गम्यते'। गोविन्ददास राधाकृष्ण के प्रति समर्पित थे। इनकी रचनाओं में राधा-भाव-पूर्ण वाणी में प्रेमाभक्ति-प्राप्ति की अभिलाषा व्यक्त हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका एक भक्तिपरक पद प्रस्तुत है—

सुनइत कान्ह मुरलिख माधुरि,
श्रवण निबारल तोर।
हरइत रूप नयन युग झाँपल,
तब मोहि रोकल मोर॥

सखि हम तहिखन,
कहलह तोय।
भरम ताहि संग बढ़विल,
जनम गमावल रोय॥

बिन गुण परखि परक रूप लालसे
काहे सौंपल निज देहा।
दिन दिन रहल खोय रूप लावणि,
जिवइत मेख संदेहा॥

जातहुँ हृदय प्रेमतरू रोपल,
श्याम जलद रस आसे।
से अब नयन नोर घन सींचह
कहइत गोविन्द दासे॥

रा० चौ०

गोविन्ददास ठाकुर

गोविन्ददास ठाकुर के समय के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। परन्तु मिथिला के कृष्ण-भक्तों में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनके कुछ मैथिली पद मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि ये निष्ठावान् कृष्ण-भक्त थे।

इनके भक्तिभावनाव्यंजक दो पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

सुरपति धनु कि शिखल चूड़े।
मालति झरय बलाकिनो इड़े॥
भाल कि झाँपल विधु अधखण्ड।
करिवरकर किय ओ भुजदण्ड॥
ओ कि श्याम नटराज।
जलद कपल तरूर मणि समाज॥
कर किसलय किय अरुण विकास।
मुरलि खुरलि किय चातक भाष॥
हास कि करय अमिय मकरन्द।
हार कि तारक ज्योतिक छन्द॥
पदतल थल कि कमल धनराग।
तट कल हेश कि नुपूर जाग॥
गोविन्ददास कहय मतिमंत।
भूलल जहाँ द्विजराज बसंत॥

(२)

धनि धनि राधा आवय रे॥
बनि व्रज रंगिणि गण मुकुटमणो,
अधर सुरंगिणि रसिक तरगिनि,
रमणि मुकुटमणि वरू तरुणी॥

फुलधनु सारिणि पिनकुच भारिणि।
काँवलि पर निलमणि हारिणी॥

कनक सुदोपमणि बरण बिजुरी।
जनि रसना किंकिणमणि मधुर धुनो॥

अतिशय मांझ छिनि गुरु नितम्बिनि
विलुलित बरबेणी छबि लावनी॥

मराल गमनि धनि वृषभानु नृप तनी।
गोविन्ददास पहु मन मोहिनी॥

रा० चौ०

चतुर चतुर्भुज

चतुर चतुर्भुज पाटन के राजा सिद्धिनरसिंह मल्ल के राजकवि के रूप में ख्यात हैं। सिद्धिनरसिंह मल्ल का शासन सन् १६२० ई० से १६६१ ई० तक था। साहित्य और कला में इनकी प्रगाढ़ रुचि तथा अपूर्व गति थी। मैथिली साहित्य के प्रति इनके मन में अद्भुत आकर्षण था। यही कारण है कि इनके आश्रय में चतुर्भुज नाम के मैथिल कवि को साहित्य की सेवा करने का अवसर मिला। इन्होंने 'भाषा-गीत-संग्रह' और 'कृष्ण-चरित-नाटक' की रचना की थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'भाषा-गीत-संग्रह' में इनके बारह गीत मिलते हैं। ग्रियर्सन ने 'ट्वेन्टी वन वैष्णव हिम्स' और 'रागतरंगिणी' में इसका संकेत किया है। चतुर्भुज के सम्बन्ध में इस जानकारी से ऐसा अनुमान होता है कि नेपाल-स्रोतों में उनका विशाल परिचय छिपा पड़ा है। हर-गौरी-विवाह में भी उनके गीत हैं। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में इनके अनेक गीतों के होने का अनुमान है।

चतुर चतुर्भुज के परिचय के सम्बन्ध में जानकारी अभी भी अधूरी है। डॉ० जयकान्त मिश्र ने 'मैथिली साहित्य के इतिहास (प्रथम भाग)' में और डॉ० शैलेन्द्र-मोहन झा ने 'गीतसप्तदशी' में इनको 'हरिचरितकार' से भिन्न कवि के रूप में देखने का प्रयास किया है। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है, किन्तु जयकान्त मिश्र ने इन्हें १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का कवि स्वीकार किया है।

चतुर्भुज के पिता ने मैदिनीगढ़ में शास्त्रार्थ में सभी पण्डितों को पराजित कर सम्राट् अकबर से 'पण्डितराज' की उपाधि प्राप्त की थी। सिद्धि-नरसिंह मल्ल को जहाँगीर से सिंहदलन की उपाधि मिली थी। म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री ने 'गीत-गोपाल' के आधार पर अनूपराय और वीरनारायण को चतुर्भुज के पूर्वज के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु मुरारि मिश्र के 'शुभकर्म-निर्णय' में मोरंग-राजवंश की वंशावली में तीसरे राजा वीरनारायण की चर्चा है। वर्णित वंशावली के अनुसार ये लक्ष्मी-नारायण के पौत्र, रूपनारायण के पुत्र, नरनारायण के पिता और ख्यातिलब्ध कवि थे।

यदि वीरनारायण को सिंहदलन की उपाधि दी गई होती तो 'सिंहदलन' नामकरण सही लगता है। कृष्णचरित्र नाटक में आये एक गीत से इस सन्दर्भ की पुष्टि होती है। गीत इस प्रकार है :

पार करथु हरि निरवधि भवतरि
चतुर चतुरभुज गाउ।
अनिरम (१) नृप सिंहदलन महि
जुगे जुगे होभु चिराउ ॥

उपर्युक्त आश्रयदाता के नामोल्लेख से यह नहीं मानना चाहिये कि ये उन्हींके आश्रय में थे। इन्होंने अनेक आश्रयदाताओं की चर्चा की है। 'राग-भजन-संग्रह' के दो गीतों में जगज्ज्योतिर्मल्ल का नाम दिया गया है—

नृप जगजोति वंशमणि गाब।
चतुर चतुरभुज जुगुति बुझाव ॥

स्पष्ट है कि संस्कृत काव्य 'गीतगोपाल' के रचनाकार चतुर्भुज मैथिली गीतकार हैं। इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है।

इस तथ्य को आलोच्य परिवेश में देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पिता ने शास्त्रार्थ में एक वरेण्य पण्डित को पराजित किया था और अकबर से पण्डितराज अथवा पण्डितराय की उपाधि प्राप्त की थी। महेश ठाकुर के प्रसिद्ध शिष्य राम-रघुनन्दन की भी पण्डितराय उपाधि थी। सम्राट अकबर से उन्होंने भी पण्डितराय या पण्डितराज की उपाधि प्राप्त की थी। मिथिला के इतिहास की यह महत्त्वपूर्ण घटना है। मैथिली ब्राह्मणों की पंजी-व्यवस्था से भी रघुनन्दन के पुत्र चतुर्भुज के नाम की पुष्टि होती है। म० म० परमेश्वर झा ने 'मिथिला-तत्त्व-विमर्श' में एक उद्धरण प्रस्तुत किया है—

'बलियास सं पण्डितराम पदांकत महामहो रघुनन्दन सुतो राम चतुर्भुज राम शुभंकरौ बलार्यानि पाली सं० छीतूदौ।'

उपर्युक्त वाक्य में चतुर्भुज को रघुनन्दन का पुत्र कहा गया है। रमानाथ झा ने इनके लिए माकमानी-पातिसाह का उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि माकमानी के राजा लोग इनको राजा के समान सम्मान देते थे। इतिहास की अनेक चर्चाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से लगता है कि चतुर चतुर्भुज जीवन के प्रारम्भिक काल में मोरंग के राजा वीरनारायण के राज्याश्रय में थे। जब वीरनारायण को सिंहदलन की उपाधि मिली तो चतुर चतुर्भुज ने 'गीत-गोपाल' नामक संस्कृत काव्य की रचना की। इस समय से ही इन्होंने अनेक मैथिली गीतों की रचना की। मैथिली के साथ ही संस्कृत में लिखे इनके निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं :

(क) विद्याकर सहस्रकम्।

(ख) वाचस्पति कृत शुद्धिनिर्णयसन्दर्भ में दो श्लोक।

(ग) रसकल्पद्रुम।

(घ) महाभारत की टीका।

(ङ) काव्यप्रकाश की टीका (साहित्य-विलास)।

(च) अमरुशतक की टीका।

उपर्युक्त ग्रन्थों में विद्याकर सहस्रकम् को अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा मिली। इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं चतुर्भुज राय का भी उल्लेख है। शुद्धिनिर्णय के हस्तलेख में लिखा है :

'ल० स० ५११ आश्विन शुक्ल चतुर्दश्यां चन्द्रे घुरउर ग्रामे श्री चतुर्भुजेन स्वार्थं लिखितमिति।' मैथिली तथा संस्कृत दोनों भाषाओं पर इनका समानाधिकार है। उपर्युक्त संस्कृत वाक्य का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार है: "ल० सं० ५११ आश्विन शुक्ल चतुर्दशी सोमवार घुरउर गाँव में श्री चतुर्भुज ने अपने लिए इसे लिखा।"

इन्होंने हरगौरी-विवाह की शैली पर 'कृष्ण-चरित नाटक' लिखा। विद्यापति के बाद सर्वाधिक गीत चतुर्भुज के ही प्राप्त होते हैं। 'भाषागीत-संग्रह' में इनके अधिकांश गीत संकलित हैं। ये अपने को कृष्ण-चरण-परायण कहते थे। इनके एक छंद से इसकी पुष्टि होती है :

चतुर चतुरभुजे गाओल रस बुझ नागर रे।
कृष्ण चरण गुनसागर त्रिभुवन आगर रे॥

चतुर्भुज ने एक साथ मैथिली, संस्कृत और बंगला तीनों में कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी गीतों की रचना की है। इनके कुछ पद नेपाली में भी हैं। इनके तिरोधान की तिथि के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी नहीं है।

निश्चय ही मैथिली के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में चतुर्भुज की देन विद्यापति के बाद सर्वाधिक है। इनके कृष्ण-लीला-सम्बन्धी पद विविध भावों और अनुभावों को व्यक्त करते हैं। इनमें राधा और कृष्ण की प्रणय-लीला को लोक-जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयास किया गया है। इन्होंने वैष्णव-भक्ति को लोक-प्रवृत्ति से जोड़ने का प्रयास किया है। मिथिला के मध्ययुगीन वैष्णव-साहित्य के इतिहास में चतुर्भुज को सर्वदा स्मरण किया जायगा।

इनके कुछ भक्तिपरक पद प्रस्तुत हैं :

(१)

जनमहुं न होइत दरसन नाथे।
सुपहु सिनेह कएल एं साथे॥

न बुझल मन्द करम परिनामें।
अचिरहिं होएत एविधि विधि बामें॥

कि कहब अगे सखि निअ अगेआने।
बड़ कए परबस कएल पराने॥

परबस सओ परबस जन नेहे।
जनमहु जनु होअ मागब एहे॥

निमिषओ सुपहु समागम तूले।
न थिक कतहु किछु जगत अमूले॥

ई गुनि अगे धनि करह गेआने।
रसमय चतुर चतुरभुज भाने॥

(२)

नव तनु नव अनुराग। माधव०
नव परिचय रस जाग॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुहु मन वसु एक काज । माधव०
आंतर भए रहु लाज ॥
दिन-दिन तनु छीन । माधव०
एकओने अपनं अधीन ॥
विनय न एको भाख । माधव०
निअ निअ गौरव राख ॥
हृदय धरिअ जत गोए । माधव०
नमन बेकत तत होए ॥
चतुर चतुर्भुज भान । माधव०
प्रेम न होए पुरान ॥

'माधव का शरीर नवीन लग रहा है। उनका प्रेम भी नवीन है। नये परिचय से आनन्द की सृष्टि होती है। राधा और माधव के मन में एक ही भाव है। उनके अन्तर में लज्जा की भावना उत्पन्न हो रही है। दिन-दिन उनका शरीर दुर्बल होता जा रहा है। दोनों में से एक भी अपने अधीन नहीं है। दोनों में एक भी झुकना नहीं चाहता है। अपने-अपने स्वाभिमान की रक्षा में दोनों ही व्यस्त हैं। वे अपने-अपने हृदय में रहस्य को छिपाये हुए हैं। आँखें उतनी ही अधिक व्याकुल हो रही हैं। चतुर्भुज को इसका ज्ञान है। उनका कहना है कि प्रेम कभी पुराना नहीं होता है।'

(३)

जऔं हरि न जाएव तोंहे तसु गेहा ।
आज कओनहु परि न धरति देहा ॥
बिरहानल तापित तनु कांती ।
धरए तपित हाटक के भांती ॥
तसु उपचार सकल पर आसे ।
आनन पुलक निरुपए सांसे ॥
आओत आहे धनि हरि तुअ पासे ।
जीव कें कुण्डल देअ विसवासे ॥
भनइ चतुरभुज भज जे जाही ।
बड़ नहि परिहर लघु दोसे ताही ॥

'यदि भगवान् कृष्ण उसके घर नहीं जायेंगे तो वह किसी भी स्थिति में देह नहीं रखेगी। विरह की ज्वाला से तपाये गये उसके शरीर की कान्ति तप्त सुवर्ण जैसी हो गई है। केश को पृथ्वी पर यूँ ही रखती है। इसका उपचार अन्य (प्रिय) की आशा पर निर्भर है। मुँह प्रफुल्लित हो गया है। साँस की गति से इसका आभास मिलता है। राधा कृष्ण के पास आना चाहती है जैसे जीवात्मा परमात्मा से मिलता है। चतुर्भुज राधा-माधव की प्रशंसा करते हैं। बड़े लोग छोटे दोष पर आश्रित का त्याग नहीं करते।'

मो० मि०

चन्द्रकला

मैथिल कृष्ण-भक्तों की परम्परा में कुछ उल्लेखनीय महिलाओं की चर्चा उपलब्ध है। कृष्ण की उपासिका के रूप में माधवी का उल्लेख मिलता है। मिथिला सीता, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, लखिमा, धीरमती, विश्वासदेवी और चन्द्रकला जैसी विदुषी नारियाँ उत्पन्न करने की उद्भव-स्थली रही है। इनमें चन्द्रकला और लखिमा ठकुराइन को नारी कवि के रूप में प्रसिद्धि मिली है। विद्यापति ने जिस प्रेम और भक्ति की स्रोतस्विनी को प्रवाहित किया था, उस परम्परा के सौम्यावगाहन में चन्द्रकला दक्ष थीं।

ये विद्यापति की समकालीन थीं। इनके जन्म के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती है। लोचन की 'रागतरंगिणी' से यह पता चलता है कि ये विद्यापति की पुत्रवधू थीं। डॉ० जयकान्त मिश्र ने चन्द्रकला का विद्यापति के ज्येष्ठ पुत्र हरपति की पत्नी के रूप में उल्लेख किया है। लोचन ने अपनी 'रागतरंगिणी' में चन्द्रकला की एक कविता उद्धृत की है।

काञ्चीनाथ झा ने चन्द्रकला के अस्तित्व को ही चुनौती दी है और उनके नाम से प्रचलित पदों को विद्यापति के अज्ञात छन्दों के रूप में स्वीकार किया है। वेदनाथ झा भी ऐसा ही मानते हैं। किन्तु अब चन्द्रकला के सम्बन्ध में यह गुत्थी हरपति की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'रागतंरगिणी' से किसी सीमा तक सुलझ गई है। विशेषतः उस वर्णन से जिसमें गर्जसिंह के नाम से तीन छन्द उपलब्ध हैं। वहाँ गर्जसिंह की पत्नी हासिनीदेवी की चर्चा है। किन्तु चन्द्रकला को हासिनीदेवी कहना ठीक नहीं है। इस संदर्भ में निश्चित रूप से 'इति विद्यापति पुत्रवध्वा' को ही प्रमाण मानना होगा।

चन्द्रकला के देहावसान के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती है। महाकवि विद्यापति का समय १३६० ई० से १४४७ ई० तक माना जाता है। वे लगभग अस्सी वर्षों तक जीवित थे। निश्चय ही चन्द्रकला इस काल के मध्य ही उनकी विद्या और उपासना से प्रभावित हो गई होंगी। इनके लिखे किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता है।

नीचे कृष्ण-भक्ति-विषयक इनके दो पद प्रस्तुत हैं:-

(१)

स्निग्ध किंचित कोमलं
कुचगण्डमण्डित कुन्तलम्।
अधर बिम्बसमान सुन्दरि
सरद चन्द्रनिभाननम्॥
जय कम्बु कण्ठ विशाल लोचन
सरद्युति फल सौरभम्।
बाहु युग्म मृणाल पंकज
हार शोभयते शुभम्॥
शोभय सुन्दरि तव वदनं
गदगद हास वदति विपुलम्।
उरपीन कठिन विशाल कोमल
जात युग्म निरन्तरम्॥
श्रीफला कमला विचित्र
विधातु निर्म्मित कुचवरम्।
श्यामातिरेखा त्रिवलित
रेखा जघनवार विलम्बिते॥
अतिरूपयौवन प्रथम-संभव
किं वृथा कथयाप्रिये।
तेजह रूप विमोह परिहर
शोक चिन्तित चिन्तये॥
उपयातमदनव्याधिदुस्सह
दहय पावक सेवनम्।
पवन दिसें दिसें दहए पावक
युग्मदारजम्बरम्॥
श्यामासवन्दिते अति
सम्भयगीत सुशोभिते।
आत्मदान समान सुन्दरि
धार वर्षति सिंचये॥
सिंचह सुन्दरि मम हृदयम्
अधर सुधामधुपानमियम्।
चन्द्रकवि जयदेवमुद्रित
मान तेज तोहें राधिके॥
वचन मम धर कृष्ण अनुसर
किन्तु कामकला शुभे।
चन्द्रकला हे वचन करसी
मानिनि माधव अनुसरसी॥

इसमें राधा के सौन्दर्य की अपूर्वता का वर्णन है। 'राधा की केशराशि उसके गालों को पार कर स्तनों को ढँके हुए है। केशराशि कुछ-कुछ स्निग्ध और कोमल है। उसके अधर चन्द्रमा के बिम्ब के समान आकर्षक हैं। उसके कण्ठ की शोभा भी अतुलनीय है। उसकी आँखें विशाल शरद्कालीन चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रकाश की शोभा को प्रसारित कर रही हैं। दोनों बाँहें कमल की पतली नाल के समान हैं। शोभा के आकर्षण से युक्त राधा-सी सुन्दरी का मुख प्रसन्नता का विशाल भण्डार है। उसके वक्षःस्थल उभरे, अत्यन्त ही कठोर और विशाल हैं। उनमें कोमलता भी कम नहीं है। नारियल के फल के समान अद्भुत विशेष धातु के सदृश हैं। इन स्तन-युगलों का ऐसे ही निर्माण हुआ है। उसकी त्रिवली-रेखा और उसकी श्यामता उसकी जंघा तक फैली हुई है। इस प्रकार वह अत्यन्त ही रूप-यौवन से सम्पन्न है। उसकी विशेष प्रशंसा क्या की जाय? चन्द्रकला राधा से रूप के विमोह के त्याग की कथा कह रही है। साथ ही अनेक चिन्ताओं को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छोड़ने की सलाह देती है कि कामज्वर के समाधान का मार्ग ढूँढ़ो। साथ ही उस आधार को नष्ट कर दो जिससे कामज्वर की अग्नि प्रज्वलित होती है। यहाँ तक कि वायु भी इस अग्नि के ताप का अनुभव कर रही है। राधा को इस समय यही अच्छा लग रहा है। राधा स्वयं भी माधव को आत्मदान कर चुकी है। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही है। हे राधिके ! अपने अश्रु-जल से मेरे हृदय को भी सिंचित कर दो। राधा के अधरों में अमृत का वास है। चन्द्रकला राधा को मना रही है। कृष्ण के अनुसरण का आग्रह कर रही है। मान का त्याग कर माधव की शरण ही राधा का आश्रय है।'

(२)

विसरल, ओरे, तैसन सिनेहा पिअ मोरे।
की परदेश भम रहल पिआ परबस॥

उनि गए, ओरे, अनुभवि भल कए जानल।
की निरदए पुरुष जाति के हिरदए॥

पिअ सखि, ओरे, भलि कए विनति बुझाउति।
की हम, ओरे, जीव लइए पिआ मोर जीवओ॥

गुणमय, ओरे, धीर कुमर सिरि गर्जसिह।
की रस जाने गुनमय कवि गर्जसिह भाने॥

'मेरे प्रियतम स्नेह को भूल गये। वे परदेशवासी बन गये हैं। परदेशवासी होकर वे पराधीन हो गये हैं। इस विषय को अनुभव के धनी लोग ही समझते हैं। पुरुष-जाति का हृदय अत्यन्त ही निर्दय होता है। हे सखि ! प्रियतम को अच्छी तरह से समझाने के लिए आग्रह करती हूँ। मैं अपना जीवन लेकर क्या करूँगी ? वह प्राणप्यारे को ही सब कुछ समर्पित कर देना चाहती हूँ। धीर कुमार गर्जसिंह गुणवान् हैं। इस रस का ज्ञान कवि गर्जसिंह को ही है।'

(चन्द्रकला के नाम पर प्रचलित यह गीत विवादास्पद है।)

मो० मि०

देवानन्द

देवानन्द के जागतिक जीवन-विषयक कोई सूत्र उपलब्ध नहीं हैं। यत्र-तत्र इनके 'उषाहरण' नामक नाटक की चर्चा मिलती है, जिससे इन्हें कृष्ण-भक्तों की श्रेणी में परिगणित किया गया है।

रा० चौ०

नन्दीपति

नन्दीपति का जन्म परम्परया अवाम नाम के गाँव के एक मैथिली ब्राह्मण-कुल में माना जाता है। परन्तु इनके जीवन के अपेक्षित तथ्य अप्राप्य हैं। श्यामनारायण सिंह द्वारा रचित 'हिस्ट्री आव तिरहुत' में इनके विषय में 'सम्मानितस्य मिथिलाधिप विष्णुसिंह' जैसा उल्लेख मिलता है। इनका एक नाम 'वादरि' भी था। यों ये अपने को द्वादश नामान्वित कहते हैं। किन्तु मैथिली ब्राह्मणों की पंजी में इन्हें केवल 'वादरि' ही कहा गया है।

इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है 'कृष्णकेलिमाला-नाटिका' जो प्रयाग से प्रकाशित है। यह मैथिली का एक अत्यन्त आकर्षक नाटक है जिसमें भगवान् कृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन मिलता है। इसमें कृष्ण के बाल्यकाल से लेकर राधा के विवाह तक का विवरण है। प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन बड़ा ही मनमोहक है और गोपियों के साथ की गई लीला भी आकर्षक है। इसमें पदों की प्रचुरता है।

कृष्णलीला का वर्णन ही इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। इसमें रागात्मक पक्ष कहीं भी गौण नहीं हुआ है। सघन भावात्मकता इसमें आद्योपांत झलकती है। इसके अन्तर्गत कृष्ण की अलौकिक लीलाओं के प्रति असीम श्रद्धा की अभिव्यक्ति मिलती है। कृष्ण का गुणगान सबके लिये कल्याणकर तथा अभीष्टप्रद है, ऐसा नन्दीपति का विश्वास है। ग्रियर्सन के अनुसार ये सच्चे वैष्णव-भक्त थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में 'कदम्ब-केलिमाला' का भी उल्लेख मिलता है। कृष्ण के लिये व्याकुल यशोदा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोदशा का निम्नलिखित पद में कितना स्वाभाविक तथा प्रभावपूर्ण चित्रण हुआ है—

(१)

किछु दिन कुटओ पिसओ वर आन ।
मानस करओ घरओ धन आन ॥

किकरु परिजन परिपुत लागि ।
जैं किछु होएत हमहि दुखभागि ॥

नन्दीपति हम तेजब ने पास ।
जें भक्ति दिनेक हिनक नहि आस ॥

एक अन्य पद में इन्होंने आराध्य की वन्दना तन्मयता-पूर्वक की है—

(२)

जयति जय जगपति दीनदयाल ।
जन राखल मोर कामिनि बाल ॥

समित कएल जनि ई उत्पात ।
जुग-जुग रहओ तनिक पक्षपात ॥

जाहि सुमर सुरनर सब काल ।
से तुअ सतत करथु रक्षपाल ॥

बालक पालक पर-उपकारि ।
अशरन शरन उचित असुरारि ॥

रा० चौ०

परमानन्ददास

परमानन्ददास ने 'हरिवंश-पुराण' का मैथिली में अनुवाद किया था। इनके भ्राता भी कृष्ण-भक्त थे। इनके द्वारा 'कृष्णचरित' नामक एक ग्रन्थ की रचना का उल्लेख मिलता है।

रा० चौ०

प्रतापसिंह

महाराज प्रतापसिंह का आविर्भाव मिथिला के खंडवला-वंश में हुआ था। ये राधा-कृष्ण-भक्त थे और 'मोदनारायण' के नाम से रचना करते थे। इन्होंने अपने एक ग्रन्थ 'राधागोविन्द-संगीतसार' में राधा-कृष्ण की प्रणयलीला का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ की रचना सन् १७७५ ई० में हुई थी।

रा० चौ०

भवप्रीतानन्द ओझा (अभिनव विद्यापति)

कृष्ण-भक्ति की जो स्रोतस्विनी विद्यापति के 'देसिल वयना' में प्रवाहित हुई थी वही कालान्तर में सदुपाध्याय भवप्रीतानन्द ओझा की मधुर पदावली में प्रकट हुई। इसलिए इन्हें 'अभिनव विद्यापति' के नाम से जाना जाता है।

इनका जन्म आश्विन कृष्ण नवमी संवत् १९४३ तदनुसार सन् १८८६ ई० में वैद्यनाथ मंदिर के सरदार पण्डा के परिवार में देवघर से तीन मील दूर अवस्थित कुण्डा ग्राम में हुआ था। ये भारद्वाज गोत्र के वेलओचव गढ़ मूल ग्राम के मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम त्रिपुरानन्द ओझा तथा पितामह का नाम शैलजानन्द ओझा था। इनके पितामह उस समय वैद्यनाथ मन्दिर के सरदार पण्डा थे। ये तंत्रशास्त्र के मर्मज्ञ पण्डित थे। कहा जाता है कि उन्होंने बालक के जन्म के समय वाणी बीज मंत्र लिख दिया था जिससे इन्हें अत्यंत प्रतिभाशाली होने का गौरव प्राप्त हुआ। इनकी पढ़ाई की समुचित व्यवस्था की गयी थी। किन्तु पिता की असामयिक मृत्यु के कारण इन्हें शिक्षा से वंचित होना पड़ा। कुछ दिनों तक ये देवघर छोड़कर कुण्डा ग्राम और जसीडीह में रहे। 'यस्यामनुगृह्णामि हरिष्ये तद्-धनं शनैः' की उक्ति इनके जीवन में सार्थक होती है। कुछ समय बाद ही प्रभु-भक्ति की धारा इनके अन्तःकरण में प्रवाहित होने लगी। कृष्ण-भक्ति की साधना ही इनके जीवन का ध्येय बन गया। पितामही सुमित्रादेवी का आशीर्वाद इन्हें प्राप्त था। वे स्वभाव से धर्मपरायण महिला थीं। कृष्ण-भक्ति की प्रेरणा-सम्बन्धी एक लोक-कथा है। कहते हैं कि अर्थाभाव के कारण इन्होंने अपने एकमात्र आवासगृह को बेच दिया और सपत्नीक देवघर से उत्तर-पूर्व दो मील पर स्थित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामपुर ग्राम में एक कुटी बनाकर रहने लगे। रामपुर के एकान्तवास में कृष्णकाव्य की अन्तर्धारा स्वतः स्फुरित होने लगी। जीवन की विषमता से रचना की प्रेरणा मिली। मकान बेचने से दो हजार रुपये मिले थे। उसमें से इनके पास बीस रुपये ही शेष बच गये थे। इससे इन्हें चिन्ता होने लगी। कवि ने स्वप्न देखा कि कृष्णजी राधाजी से कह रहे हैं, "आप इस बालक को अपना पुत्र मान लें" और राधा इस कथन को स्वीकार कर लेती हैं।

इसी समय से इनकी कृष्ण-भक्ति काव्य-सरिता बहने लगी। कृष्ण की विभिन्न मुद्राओं एवं रूपों का वर्णन इन्होंने किया है। स्तुति-वन्दना के साथ ही हास्यात्मक और व्यंग्यात्मक रचनाएँ इनकी विशिष्ट देन हैं। ये एक साथ ही शैव, शाक्त और वैष्णव-पदावली की रचना करते रहे। देवघर की लोकभाषा मिश्रित मैथिली है। इन्होंने वैष्णव-पदावली का निर्माण इसी भाषा में किया। इससे इनकी लोकप्रियता बढ़ गई। यत्र-तत्र-सर्वत्र कवि की कीर्तिपताका फहरने लगी। मेलों में, रास में और झूलनोत्सव में इनके कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी गीत गाये जाने लगे। इससे प्रभावित होकर लक्ष्मीपुर राज्य के काटवाल ठाकुर प्रतापनारायण देव ने इन्हें भागलपुर जिलान्तर्गत नौसी के निकट फागा ग्राम में लखराज सत्त्व की सैंतीस बीघा जमीन दी। पंचकोट के महाराज इनके शिष्य थे। बिहार सरकार ने इन्हें १९६४ ई० में लोकगीतकार के रूप में सम्मानित और पुरस्कृत किया था।

इनकी अनेक रचनाएँ मिलती हैं। उनमें अधिकांश कृष्ण-भक्ति-साहित्य से सम्बद्ध हैं। उनकी नामावली इस प्रकार है—

(१) झूमर रस-मंजरी, (२) झूमर रस-तरंगिनी, (३) झूमर-पारिजात, (४) बृहत् झूमर रस-मंजरी, (५) वैद्यनाथ क्षेत्र सर्वस्व, (६) भवप्रीतानन्द पदावली, (७) घैरा संगीत।

राधाकृष्ण की भावलीला को आलम्बन बनाकर बंगाल के कवि चण्डीदास और मिथिला के लोककवि विद्यापति के समान इन्होंने भी कृष्ण-लीला की माधुरी को अपनी काव्यकला का आधार बनाया है। कृष्ण के अनेक रूपों का वर्णन कर इन्होंने वैष्णव-भावना का भावविह्वल रूप प्रस्तुत किया है। सन् १९७१ ई० में इनका परलोकवास हो गया। इनके कृष्ण-भक्ति-काव्य के महत्त्वपूर्ण पदों का स्वरूप इस प्रकार है :

(१)

बाल-लीला

अंगना में नन्दरैया, देखि देखि नितरैया-
दैया नाचत कन्हैया।
ताली देथी जशोदा मैया,
झमकी ठमकी तातक थैया,
रे दैया नाचत कन्हैया॥

(२)

किशोर-लीला

सखि रे! बड़ो हठी कालिया किशोर,
बड़ो हठी कालिया किशोर,
सखि रे! बड़ो हठी कालिया किशोर।
बुझालें ने बुझे बात, दिये चाहे देहे हाथ,
शिर के गगरी फोड़े मोर,
सखि! शिर के गगरी फोड़े मोर॥
हेरी किशोरी किशोर, भवप्रीता प्रेमेभोर!
चन्दा हेरी जैसन चकोर।
सखि, चन्दा हेरी जैसन चकोर॥

(३)

विरह

कलपी कलपी फाटे हिया,
तेजी गेला माधव पिया,
कलपी कलपी फाटे हिया,
तेजिगेला माधव पिया।
कही गेल दश दिन, वितल वरष दिन॥

'हृदय में असीम वेदना का ज्वार उठा है। रो-रोकर राधा विलाप कर रही है। माधव मुझे छोड़-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर चले गये हैं। यह वेदना मेरे हृदय को साल रही है कि माधव मेरे प्रियतम हैं और फिर भी नहीं लौटे हैं। कहकर गये थे कि दस दिन के बाद आयेंगे, किन्तु वर्ष बीत गये। अभी तक उनका आना नहीं हुआ है।'

(४)

मिलन

श्याम शबद सुनि चमकी उठली धनी,
मिलली आगु लागिया।
प्रेमे छलकल चारि अंखिया,
अंग परश सुखें, मुरछित पति बुकें,
मुखे सें नें फूटे बतिया ॥

'श्याम शब्द सुनते ही राधा चौंककर उठ जाती है। आगे बढ़कर मिलती है। प्रेम में एक-दूसरे की आँखें चार होती हैं। परस्पर एक-दूसरे के अंग-स्पर्श से ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है। कृष्ण के हृदय पर राधा अपने मस्तक को रखती है। उसके मुख से कोई भी बात नहीं निकलती है।'

सदुपाध्याय भवप्रीतानन्द ओझा ने विद्यापति के बाद कृष्णचरित का सर्वाधिक सरस वर्णन अपने लोक-गीतों में किया है। मैथिली भाषा में इन्होंने पाँच हजार से भी अधिक गीतों की रचना की है। इनमें कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध सहस्राधिक पद्य हैं। बंगाल के लोग इन्हें बंगला-भाषा के कवि के रूप में जानते हैं। इनके गीत बंगाल, असम और बिहार की छोटा-नागपुर पहाड़ी तथा संथाल परगना के आदिवासी कलकण्ठों में आज भी सुनाई पड़ते हैं। पूर्वी भारत में लोककवि के रूप में इनकी अपनी अलग पहचान है।

मो० मि०

मनबोध

मनबोध का जन्म अठारहवीं शताब्दी में मिथिला के भराम ग्राम में एक मैथिल ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। एक परंपरा के अनुसार ये मंगरौनी के रहने-वाले थे और दूसरी परंपरा के अनुसार ये जमसम के निवासी थे तथा भोलन कवि के नाम से जाने जाते थे। भोलन कवि का ही उपनाम मनबोध था। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इन्होंने 'कृष्ण-जन्म' नामक एक प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। कृष्ण पर भक्तिमय प्रबन्ध-काव्य की रचना सर्वप्रथम मैथिली में इन्होंने ही की। कृष्णाष्टमी के अवसर पर मिथिला में इसका पारायण होता है—

दुइ गोपी क बीच एक मुरारि।
दुई कृष्ण क बीच एक एक नारि ॥
एहि परि रासक मंडल भेल।
केओ कह निसि जुग बीतिगेल ॥

इस भक्तिमूलक रचना में घोर शृङ्गारी चित्रण से बचने का प्रयास किया गया है। यह ग्रंथ हरिवंश-पुराण पर आधारित है। पृथ्वी पर दैत्यों के अत्याचार को समाप्त करने के लिये ईश्वर ने वसुदेव के पुत्र के रूप में जन्म लिया था। यह ग्रन्थ सर्गों में नहीं, अध्यायों में विभाजित है। यद्यपि इसमें समग्र कृष्ण-लीला का उल्लेख है, फिर भी वर्णनात्मक चमत्कार नहीं है। इस ग्रन्थ को मिथिला में 'हरिचरित' भी कहा जाता है। इसमें कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। कृष्ण की अलौकिक लीला के वर्णन के कारण इसमें यदि किसी एक रस का प्राधान्य है तो वह है—अद्भुत रस। मैथिली भाषा का इसे एक सफल प्रबन्ध-काव्य माना जाता है। इसके कई संस्करण हो चुके हैं। उनके सम्पादक क्रमशः ग्रियर्सन, उमेश मिश्र और रमानाथ झा हैं। इसका चौथा संस्करण १९४८ ई० में रमानाथ झा के सम्पादकत्व में निकला था। इसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण-भक्ति के प्रबल आवेग में कवि ने कृष्ण-जन्म की रचना की है, जिसमें विष्णु वसुदेव के पुत्र के रूप में अवतरित होते हैं। इस ग्रंथ से कुछ भक्तिमूलक पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं—

कतो एक दिवस विति गेल।
हरि पुन हयगर गोरगर भेल ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से कोन ठाम जतए नहि जाथि।
कयवर अंगनहुँ सें बहराथि।।

द्वार उपर सँधरि धरि आनी।
हरखथि हँसथि यशोदा रानी।।

कए बेर आरी हाथ से छीनु।
कए बेर पकलाह तकलट बीनु।।

रा० चौ०

रतिपति भगत

रतिपति का जन्म मैथिल करण कायस्थ-परिवार में सत्रहवीं शताब्दी में हुआ था। मैथिल करण कायस्थ पंजी में बीअर मूलग्राम में बीजीपुरुष की चौदहवीं पीढ़ी में हरिभक्त-परायण बन्धु का उल्लेख है। इनके तीन पुत्र थे– वृन्दावनदास, रतिपति और परमानन्द। रतिपति के पुत्र का नाम सहजराम था। इनके संबंध में और कोई जानकारी नहीं मिलती है। कुछ दिनों तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने के बाद ये भगवद्-भजन में लग गये। इनकी 'भगत' उपाधि इस बात की द्योतक है कि ये संसार को त्यागकर साधन-भजन में लग गये थे। इन्होंने कृष्ण-भक्त के रूप में अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

श्रीजयदेव वचन अभिरामे।
हरिभकत जन पुरओ तब कामे।।

रुक्मिनि देइ पति रसिक सुजाने।
कृष्णचरण गति रतिपति भाने।।

कृष्णभक्त रतिपति लोचन के समसामयिक थे। अतः इन्हें निर्विवाद रूप से सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के बीच रखा जा सकता है। इन्होंने जयदेव-रचित 'गीतगोविन्द' का भाषानुवाद किया है। प्राप्त भाषानुवाद की पाण्डुलिपि की तिथि फसली ११३० (१७२३ ई०) है। लिखित रूप में इनका यह सर्वप्रथम कथा-काव्य है, जो बिहार रिसर्च सोसायटी की पत्रिका में प्रकाशित है। रतिपति ने अपने इस अनुवाद में कई स्थानों पर संशोधन किया है। बारह सर्गों में विस्तृत गीतगोविन्द के इस अनुवाद को उन्होंने महाकाव्य की संज्ञा दी है।

'इति श्री गीतगोविन्दे महाकाव्ये सुप्रीत पीताम्बरो कृष्ण वैकुण्ठेनाम द्वादशः'

इनकी बहुत सारी रचनायें अब भी अप्राप्य हैं। मिथिला के अन्य भक्तों और संन्यासियों की तरह इनके सम्बन्ध में भी जानकारी बहुत कम है। यहाँ इनका एक भक्तिमूलक पद दिया जाता है—

हरख अनेकन हृदय समाए।
बाढ़िक पानि थावि नहि जाए।।

उनमद नन्दन वदन परगास।
दुओदिस बाढ़ल रतिरस आस।।

सामर सुन्दर उरमहि हार।
फेन सहित जमुना जलधार।।

पीयर सन सामर तनु गात।
स्याम कमल जनि पीत पराग।।

चंचल लोचन चंचलदान।
अंजन रंजन खंजन मान।।

बदन कमल जनि कुण्डल सोभे।
विहुसत अधर विम्बरति लोभे।।

रसिक रतिपति श्याम जनिवेस।
ताराधरण कुसुम जनि केस।।

रा० चौ०

रत्नपाणि झा

रत्नपाणि झा के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। 'मैथिल-भक्ति-प्रकाश' नामक ग्रंथ में रत्नपाणि झा की एक रचना 'उषाहरण' (नाटक) का उल्लेख मिलता है।

रा० चौ०

रमापति उपाध्याय

(इनका कुछ विस्तार से परिचय इसी खंड में संस्कृत कृष्ण-भक्तों के प्रसंग में आगे दिया गया है। सं०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रमापति उपाध्याय मिथिला के निवासी और दरभंगा-नरेश नरेन्द्रसिंह (१७४३–१७६० ई०) के आश्रित कवि थे। इनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'रुक्मिणी-परिणय' नामक नाटक उपलब्ध हुआ है। इसमें संस्कृत के साथ मैथिली भाषा का प्रयोग हुआ है। इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं जो राधा-कृष्ण की लीला से सम्बद्ध हैं। उनसे इनकी कृष्ण-भक्ति का संधान मिलता है। नमूने के लिए कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

हरिपद प्रणत रमापति भान।

• • •

मुरारि भगति सुमति रमापति भान।

• • •

शिखिर लीन मलीन निसाकर अलय नखत नहिं भासे।
मुदित कमलवनि नहिं तुअ सम धनि नयन सरोज
बिकासे॥
ओगे मानिनि !

• • •

माधव ! सुनिअ निवेदन बानी।
सुमुखि मिलत तोहें गुनमय जानी॥
तें परिप्रेम करब सखि ठामे।
दिने दिने होय अधिक अभिरामे॥

रा० चौ०

राधाकान्त झा 'अनूप'

राधाकान्त झा नाहर भगवतीपुर (जिला मधुबनी) के रहनेवाले मैथिल ब्राह्मण थे। आपका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था और मृत्यु १९३४ ई० में हुई। ये निष्ठा सम्पन्न कृष्ण-भक्त थे। 'श्याम प्रीति में दास अनूप' इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। भागवत पर आधारित कृष्ण का चरित्र रसिकराज के रूप में चित्रित करने का प्रयास इन्होंने अपने गीतों में किया है। इनके संगीत-राग-निबद्ध दो पद प्रस्तुत हैं—

(१)

ये देखिअ सुरंग॥
राधा नागरि श्याम नागर,
रासकुंजन मिलि परस्पर,
चकित सुरनर नाग मुनिवर,
निरखत रूप त्रिभंग॥

मुरलि, वीण, मजीर, ढोलक,
तबला, झाँझ, सितार धुनकर,
चलित नूपुर शब्द मधुरस,
बाजत ताल मृदंग॥
होए आनन्द सुनि-सुनि धुनि,
राग-रागिणी रूप धरि-धरि,
रहत उठत ताल मिलि मिलि,
गावत राग सारंग॥

मोहन मूरति देखि मोहनि,
आवति साजति मुदित सब मन,
'अनूप' देखथि ध्यान धरि धरि,
उमगए भक्ति तरंग॥

(२)

ऊधो ! कतेक सहत तन पीर।
गोकुल तेजि गेला हरि जब सें
झरए नयन मझक नीर।
आवए मन सोआति के बोली,
लागय मरमह तीर।
ब्रजगति जाइ कहिअ तुअ ऊधो,
आव न बचन शरीर।
कहथि 'अनूप' जीवति कोना अबला,
श्वासहि गहि समीर॥

रा० चौ०

रामदास झा

रामदास झा महाकवि गोविन्ददास (प्रथम) के भाई थे। ये मैथिली में लिखे गये अपने 'आनन्द-विजय नाटक' के लिए प्रसिद्ध हैं। इस नाटक में राधामाधव की प्रेम-कथा वर्णित है। यह चार अंकों में विभाजित है। गीत-रचना में इन्होंने विद्यापति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का अनुसरण किया है। इनके दो गीत नीचे उद्धृत हैं—

(१)

आज मधुपुर जाइते पथ भेटल राधा।
मानस मीन तरङ्गिनि बिहरु अगाधा॥
कुन्तल शैवल लोचन अति मधुमद भोरा।
आनन कमल अधर दल कुच चकेवा जोरा॥
बाहुमृनाल नाभि हृद सुजधन अवतारे।
किङ्किनि कलख कैतवे जलचर परचारे॥
शोभय चारु उर छलें करिकर अभिरामे।
मिलत मुरारि पयोनिधि मन रसमय रामे॥

(२)

माधव विरहें वियोगिनी भेस।
देल वृषभान दुलहि परवेस॥
मानस आकुल विकल शरीर।
मुखरुचि मलिन नयन ढरनीर॥
थीर चेत नहि दीघ निसास।
अधिअधीनि ग्वालिजन पास॥
बिनु पुछलहुं देअ उतर सयानि।
पुछलहुं न कहए समुचित बानि॥
भनए 'राम' रस बूझ अनुरूप।
कमलापति पति सुन्दर भूप॥

रा० चौ०

रामनाथ

मैथिल कृष्ण-भक्तों की परम्परा में रामनाथ को ओइनवार-वंश के राजा कंसनारायण का आश्रित माना जाता है। 'भाषागीत-संग्रह' के दो गीतों से इनकी वैष्णवी प्रतिभा का पता चलता है। कवि-शेखर बदरीनाथ झा ने 'मैथिली-गीतरत्नावली' में इनके गीतों को स्थान दिया है। इनके प्रथम गीत में 'सोरम रमण सकल रस विन्दक' का उल्लेख मिलता है। सोरमदेवी कंसनारायण की पत्नी थीं। इसकी पुष्टि 'सोरमदेइ पति कंसनारायण' से भी होती है।

इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं मिलती है, किन्तु 'काव्यप्रदीपकार' गोविन्द ठाकुर के तृतीय पुत्र रामनाथ का अस्तित्व इतिहास से प्रमाणित है। मिथिला पंजी के अनुसार बलियासे सिमरी मूल में रघु के पुत्र रामनाथ की चर्चा है, साथ ही चन्द्रनाथ का भी उल्लेख है। स्पष्ट है कि रामनाथ और चन्द्रनाथ भाई थे। इसमें भी रामनाथ को कवि और चन्द्रनाथ को कविशेखर कहा गया है। जिस गीत के आधार पर इस तथ्य को प्रतिष्ठित किया गया है उसके रचयिता के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है।

इनका समय सन् १४८० ई० से १५३० ई० के मध्य माना जाता है। गोविन्द, काशीनाथ और श्रीधर इनके समकालीन थे। ये सोलहवीं शताब्दी के द्विती-यार्द्ध में वर्तमान थे। प्रो० राधाकृष्ण चौधरी ने भी इसको स्वीकार किया है। इनके दिवंगत होने का समय ज्ञात नहीं है। इनके केवल दो गीत प्राप्त हैं। वे यहाँ प्रस्तुत है—

(१)

गुरु लगे हम हेरि निअ सिर छाहरि,
लहु लहु मझु पय लाइ रे।
दसने षंडित षढ़ देखि दुर गेल अढ़,
हृदय न हरष समाइ रे॥
सखि आज तें परि पिआए पर बोधलाहुं,
जाब जीव गेल मान रे।
कान कमल धुरि नयन गेल पुरि
मोञ रोइलिहुँ एँ छलें रे॥
पंकज लए हरि मोर मुख हेरि हेरि,
करें पोछल कत बेरि रे।
दुहू सुचेतन दुहु मन मिलि रहु,
भूलल रहथि समाना रे॥
सोरम रमन सकल रसविन्दक,
रामनाथ कवि भाना रे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२)

हास कुमुद कए तोहें सादर भए नयने नओतल मोहि।
दए विसवास आस जं खण्डह के पतिआएत तोहि ॥

तिल तहं लहु भए हृदय बदलिकए परभासे बड़ पाप।
अछैत लाथ कर तकर हृदय जर घन गेलें परिताप ॥

पर उपकार परमपद सुन्दरि रामनाथ कह सार।
सोरम देइ पति कंसनारायण मंगन न कर नकार ॥

'खिले हुए कुमुदपुष्प के समान अपनी आँखों की कोर में मुझे बैठा लो। विश्वास देकर यदि उसे समाप्त करोगे तो, लोग तुम पर विश्वास नहीं करेंगे। क्षणमात्र भी तुम्हारी अवस्थिति यदि हृदय में हो जाय तो उसको प्रकट करना पाप है। हृदय में मूलभाव से तुम्हारी विरह-ज्वाला ठहर गई है, किन्तु तुम्हारा प्रेम चिरन्तन है। रामनाथ सारतत्त्व निवेदन करते हैं कि हे राधा! दूसरे का उपकार परमपद की प्राप्ति के समान है। सोरम देई के पति कंसनारायण मंगन को कभी निराश नहीं करते।'

रामनाथ ने बहुत अधिक नहीं लिखा है, किन्तु जो कुछ भी लिखा है उसे कृष्ण-भक्ति-साहित्य की परम्परा में विशेष स्थान दिया जा सकता है।

मो० मि०

लक्ष्मीपति गोसाइँ

लक्ष्मीपति गोसाइँ का जन्म सहरसा जिलान्तर्गत परसरमा ग्राम के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम बच्चा झा था। बचपन में कुछ दिनों तक ये घर पर ही गो-सेवा करते रहे। पंडित रते झा के अभिभावकत्व में इन्होंने ज्योतिष और तंत्रशास्त्र का अध्ययन किया। बचपन से ही इन्हें योगाभ्यास की प्रबल इच्छा थी। योगिराज लम्बानाथ से भेंट होने के बाद इनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। संन्यास ग्रहण कर इन्होंने शिखा-सूत्र को तिलांजलि दे दी और सहरसा जिले में ही बनगाँव नामक स्थान में अपना आश्रम बनाया। तीर्थाटन के क्रम में इन्होंने नेपाल और जगन्नाथ की यात्रा की। अन्य कई स्थानों में भी इनकी कुटिया स्थापित हुई। ये एक सिद्ध पुरुष थे। एक अंग्रेज पादरी भी इनका शिष्य बना जिसका नाम जान साहब था। लक्ष्मीपति गोसाइँ बाल्यकाल से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे और सांसारिक मायामोह से निवृत्त होकर धर्मस्थानों में निरंतर भ्रमण किया करते थे। इसी क्रम में जब इनकी लम्बानाथ स्वामी से भेंट हुई, तब ये उनके शिष्य हो गये। इनके प्रसिद्ध शिष्य हुए रघुवर गोसाइँ और पादरी जान साहब। ये संत-परम्परा के मार्ग पर चले।

आप एक विशिष्ट विद्वान् थे। लम्बानाथ स्वामी से दीक्षा लेने के बाद ये नेपाल की तराई के जंगलों में नौ वर्षों तक तपस्यारत रहे। उसके बाद ही ईश्वर-भक्ति के प्रचारार्थ संसार में उतरे। ये धार्मिक उदारता के आदर्श थे और काव्य-रचना की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कवि थे। इनकी भनिता थी 'लक्ष्मीपति'। सिद्धभक्त के दृष्टिकोण से ये पर्याप्त ख्यातिप्राप्त थे किन्तु संत-परम्परा में साहेब रामदास का स्थान इनसे ऊँचा था। इनकी भाषा लोकभाषा के अधिक निकट है। ये हिन्दी, ब्रजी और मैथिली में रचना करते थे। इनकी सभी रचनायें अभी उपलब्ध हो नहीं पायी हैं। मैथिली में 'श्रीकृष्ण-गीतावली' में कृष्ण-चरित-सम्बन्धी भजनों का संग्रह है। इनकी भाषा मिश्रित है।

इनके दो भक्तिमूलक पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कुंज कुटोरे बह तट धीरे विहरत मदन मुरारी।
संग सचूटी, गोप बधूटी हरि भुजतल त्रिपुरारी ॥

गोरि समीपे विकसित नीपे नृत्यत् नटवर मानं।
पीत वसन तन श्याम पटल घन गोप सखा कृत गानं ॥

सरसिज फूले यमुना कूले कुंजित मधुरिपु जालं।
वंशी हेरत हँसिमुख फेरत विशद विमल उरमालं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शीत समीरे बहति गंभीरे सुमन मोद विस्तारे ।
कुण्डल लोलं मुकुट अमोलं चंचल दृग रतनारे ॥
राजित विपिने दशदिशि दिपने गोद्विज देव हुलासं ।
युवती संगे रसिक त्रिभंगे वृन्दावन कृत वासं ॥
श्रीपति चरणे अशरण शरणे तरणि सकल श्रुत सारं ।
लक्ष्मीपति जन परम विकल मन कुरु भव सागर पारं ॥

(२)

आजु रे ललना गति कहलो न जाई ।
भरिदिन अैल छथि निकहि खेलाई ॥
साँझ पड़ेत देलक नीन लगाई ।
लय सुतलो यशोदा माय गोद लगाई ॥
चिहुँकि उठति चौंक डराई ।
कहिऔन्ह गै नन्द महर कों बुझाई ॥
कतहुँ सें लावथि तेल पेड़ाई ।
से सुनि प्रभुजी हँसि मुसकाई ।
हम लेब चान खेलौना ए माई ॥
से सुनि हर्षित भेल यशोदा माई ।
लए दर्पण देल चान दिखाई ॥
लक्ष्मीपति चरणन बलजाई ।
भक्ति हेतु तोहें सहस्र रूप देखाई ॥

रा० चौ०

लखिमारानी

लखिमारानी के पद्यों को लोकजीवन में सर्वप्रथम जॉर्ज ग्रियर्सन ने प्रकाशित किया था। ये मिथिला की प्रसिद्ध कवयित्री थीं। इनके सम्बन्ध में अनेक बातें प्रचलित हैं। कहते हैं कि इन्होंने अपने दामाद को भी काव्य-रचनाकी कसौटी पर कसा था। बहुविवाह के उस युग में लखिमा ने अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा। शिवसिंह की ओर से ये अनेक प्रकार के कार्यों का सम्पादन करती थीं। कहते हैं कि शिवसिंह के पलायन के बाद इन्होंने राज्य का विस्तार किया था।

विद्यापति के गीतों में मुख्य रूप से शिवसिंह और लखिमा का वर्णन है। ये कृष्ण-भक्त थीं। इनके द्वारा रचित पद्य अधिक संस्कृतनिष्ठ हैं। संस्कृत और मैथिली पर इनका समान अधिकार था। लखिमारानी के जीवन के अन्य पक्षों का पता नहीं चलता है। कविवर विद्यापति इनके अनन्य भक्त थे। उन्होंने अन्त तक इनका साथ दिया था।

बीम्स के अनुसार शिवसिंह के पश्चात् रानी पद्मावती तिरहुत के सिंहासन पर बैठी थीं। वि० वि० मजूमदार मानते हैं कि लखिमारानी ने पति के वियोग से पीड़ित और दुखित होकर विद्यापति के साथ अपने पति के कतिपय विश्वसनीय सभासदों के सहित गिरिनारायण उपनामधारी राजा पुरादित्य के राजभवन में, जो त्रिविनिली में था, जाकर शरण ली थी।

लोचन ने लखिमा के सम्बन्ध में लिखा है :

भमर चकोर दुअओ अलसाएल,
पीवि अमिअ मकरन्दा ।
भनइ अमियकर सुनु मधुरापति,
राधा चरित अपारे ।
राजा शिवसिंह रूपनारायण,
लखिमा देई कण्ठहारे ॥

'भ्रमर (कृष्ण) और चकोर (राधा) दोनों ही अमृत सदृश मकरन्द का पान कर आलस्य का अनुभव कर रहे हैं। अमियकर कहते हैं, हे मथुरा के राजा! राधा के अपार चरित्र की गाथा सुनो। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमादेवी के गले के हार हैं।' इस पद्य में अमियकर का नाम है। अतः बहुत लोग इसे अमियकर की रचना मानते हैं किन्तु राजा शिवसिंह रूपनारायण से अमियकर का कोई सम्बन्ध था ऐसा ऐतिहासिक दृष्टि से पुष्ट नहीं होता।

बंगाल के वैष्णव-गीतों में विद्यापति का व्यापक सन्दर्भ है। इन गीतों में लखिमादेवी की चर्चा है :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भनइ विद्यापति न बोल सन्देहा।
सुपुरुष वचन पखानक रेहा॥
नृप सिंहदेव एहु रस जाने।
सौभागे आगरि लखिमा देइ रमाने॥

'विद्यापति कहते हैं, यह कहने में सन्देह नहीं है कि सुपुरुष का वचन पत्थर की रेखा है। सौभाग्य की खान लखिमादेवी के पति राजा शिवसिंह देव इस रस को जानते हैं।'

श्री विमानविहारी मजूमदार लखिमारानी सम्बन्धी निम्नांकित पद को श्रीखण्ड-निवासी कविरंजन विरचित मानते हैं। किन्तु नगेन्द्रनाथ इस विचार से सहमत नहीं हैं—

पूछत चण्डीदास कविरंजने,
सुनताहें रूपनरान।
कह विद्यापति इह रस कारण,
लखिमा पद करि ध्यान॥

'चण्डीदास कविरंजन से पूछते हैं, हे रूपनारायण! इसे सुनो। विद्यापति इस रस के कारण की व्याख्या करते हैं। इस रहस्य को लखिमा के चरण-कमलों का ध्यान कर कहा जाता है।'

बंगाल की वैष्णव-पदावली में भी लखिमारानी की कला-मर्मज्ञता का उल्लेख प्राप्त होता है—

सिरि शिवसिंह जानए तन्त।
रमन सन लखिमा कन्त॥
सब कला रसें जे गुनमन्त॥

'श्री शिवसिंह इसके सभी भेद जानते हैं। लखिमा के समान उनकी कान्ता थी जो सभी गुणों से युक्त थी।'

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने लखिमा ठकुराइन के पदों का संकलन किया था। उनमें से एक यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

सत्यं ब्रुवामि मकरध्वज बाणमुग्ध,
नाहं त्वदर्थं मनसा परिचिन्तयामि।
दासोऽथ मे विघटितस्तव तुल्यरूपः,
स त्वं भवेन्नहि भवेदिति मे वितर्कः॥

'सत्य कहती हूँ ओ मकरध्वज बाण से आकर्षित! मैं तुम्हारे लिए नहीं सोचती हूँ। मैं अपना दास नहीं पा रही हूँ। तुम उसके समान लगते हो। वह तुम हो या नहीं हो, यही वितर्क मेरे मस्तिष्क में है।'

मो० मि०

विद्यापति

विद्यापति का जन्म मिथिला के बिसपी नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता गणपति ठाकुर राजा गणेश्वर के सभासद थे। ऐसा माना जाता है कि विद्यापति अपने पिता के साथ बाल्यावस्था में राजा गणेश्वर के दरबार में कई बार गए थे। इनकी कृति 'कीर्तिलता' से ज्ञात होता है कि राजा गणेश्वर लक्ष्मण-संवत् २५२ में असलान द्वारा मारे गए थे। इस आधार पर चाहें तो कह सकते हैं कि विद्यापति उस समय १०-१२ साल के थे। ऐसी स्थिति में इनका जन्म लक्ष्मण संवत् २४२ के आस-पास हुआ होगा।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध मिथिला के लिए घोर संकट का काल था। मिथिलानरेश गणेश्वर की असलान नामक सुलतान ने २५२ लक्ष्मणाब्द में छलपूर्वक हत्या कर दी थी। राजा की मृत्यु के बाद देश में भयंकर अराजकता छा गई। विजेता के अत्याचार से पीड़ित जनता न केवल दारिद्रय का शिकार हुई बल्कि सांस्कृतिक पतन का भी। विद्यापति ने बड़े शोकभरे शब्दों में लिखा है कि 'मिथिला में कोई गुण अवशिष्ट न रहा, कवि लोग भिखारी बनकर मारे-मारे फिरते रहे।' अपनी कृति 'कीर्तिलता' में इन्होंने तत्कालीन मिथिला की अवस्था का इतना कारुणिक चित्र उपस्थित किया है कि वह न केवल हृदय-द्रावक बल्कि भयोत्पादक भी है। इस परिस्थिति को देखते हुए यह अनुमान करना निराधार न होगा कि कवि की किशोरावस्था दुःखपूर्ण परिस्थतियों की छाया में बीती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजा गणेश्वर की मृत्यु के बाद विद्यापति बहुत दिनों तक निराश्रित घूमते रहे। राजकुमार कीर्तिसिंह, जो वय में विद्यापति के बराबर ही थे, अपने खोए हुए राज्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु वे इस स्थिति में नहीं थे कि इनको आश्रय दे पाते। विद्यापति इन्हीं दिनों इधर-उधर घूमते हुए नसरतशाह और आजमशाह जैसे राजपुरुषों के सम्पर्क में आए। इन्होंने अपने कई पदों में कवि-भणिता के साथ इन लोगों के नाम लिए हैं। उदाहरण के लिए—

कविशेखर मन अपरुब रूप देखि।
राय नसरत शाह भजलि कमलमुखि॥

अथवा

भनइ असोधर नव कवि शेखर
पुहुवी तेसर कहाँ।
साह हुसेन भृंग सम नागर
मालति सैनिक जहाँ॥

ईस्वी सन् १४०२-३ में जौनपुर के शासक इब्राहीम शाह की सहायता से तिरहुत का उद्धार हुआ। कीर्तिसिंह ने जौनपुर जाकर सुलतान से सहायता माँगी। 'कीर्तिलता' में कवि ने जौनपुर का अत्यंत विशद् वर्णन प्रस्तुत किया है। वहाँ के बाजारों, सड़कों, अट्टालिकाओं तथा टेढ़े-मेढ़े रास्तों का इतना सूक्ष्म वर्णन चाक्षुष प्रत्यक्ष के बिना सम्भव नहीं। इससे अनुमान होता है कि कवि कीर्तिसिंह और उनके भाई वीरसिंह के साथ जौनपुर गए थे।

ईस्वी सन् १४१० से १४१४ के बीच के चार वर्षों का समय विद्यापति के जीवन का सर्वाधिक उल्लासपूर्ण काल था। वर्षों की अशान्ति के बाद एक बार फिर मिथिला में शान्ति और समृद्धि की स्थापना हुई थी। शिवसिंह राजा थे और लखिमा देवी रानी। शिवसिंह के ये सखा-कवि थे। कहा जाता है कि अन्तःपुर में विद्यापति के गीतों का राजारानी के समक्ष सस्वर पाठ होता था। विद्यापति ने समवयस्क राजा और रानी को जो गीत समर्पित किए वे प्रायः राधाकृष्ण के प्रेम, रूपासक्ति, मान और कामकला के विविध पक्षों को स्पष्ट करने वाले हैं।

पर समय सदा एक-सा नहीं रहता। विद्यापति के आनन्द की अतिशयता पर नियति की भृकुटी खिंच चुकी थी। राजा ने दिल्ली को कर देना बन्द कर दिया था। इसके दण्डस्वरूप शाही फौज ने मिथिला को बरबाद कर दिया और शिवसिंह कैद करके दिल्ली ले जाए गए। सम्भवतः वहीं उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद विद्यापति का जीवन घोर मनस्ताप तथा निर्धनता में बीतने लगा।

विद्यापति की मृत्यु के विषय में कहा जाता है कि इन्होंने शिवसिंह के तिरोधान के बत्तीसवें बरस में एक स्वप्न देखा और इन्हें अपनी मृत्यु नजदीक मालूम होने लगी—

सपन देखल हम शिवसिंह भूप।
बत्तीस बरस पर सामर रूप॥
बहुत देखल गुरुजन प्राचीन।
अब भेलहुं हम आयु विहीन॥

राजा शिवसिंह का देहावसान १४१५ ई० के आसपास हुआ। उसके बत्तीस वर्ष बाद १४४७ ई० के लगभग किसी समय मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य के इस महान् प्रेरणा-स्रोत का तिरोधान हो गया।

लगभग पाँच शताब्दियों से विद्यापति की रचनाएँ वैष्णव वर्ग में भगवद्भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित करती आ रही हैं। 'माधव, कत कर तोर बड़ाई' अथवा 'माधव, बहुत मिनति करि तोय' जैसे पदों से इनकी प्रगाढ़ कृष्ण भक्ति की अभिव्यक्ति होती है। बंगाल और पूर्वी भारत के वैष्णवों के बीच विद्यापति के कृष्णभक्तिपरक गीत, जयदेव के 'गीतगोविन्द' की तरह समादृत हैं। इनकी कविता चैतन्य को भाव-प्रवणता के आवेश से मूर्च्छित कर देती थी। 'हरिकचरण करु सेवा', 'हरि भजु हृदय हुलासिया' आदि पदों में इनकी अटूट कृष्णभक्ति झलकती है। इनका विश्वास था कि कपट छोड़कर कृष्ण का भजन किया जाय तो अन्त में भगवत्-चरणों में परम विश्राम की प्राप्ति अवश्यम्भावी है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भनहि विद्यापति सुनह सुचेतनि,
हरि सओ कइसन मान ऐ।
कपटि तेजिकइ भजह हे हरि,
सञ अन्तकाल होए ठामहे॥

इनके कृष्णभक्तिपरक असंख्य पद हैं। वे प्रायः तालपत्र पर लिखित हैं। विद्वानों ने इन्हें समर्पित भक्त कवियों की श्रेणी में रखा है। वैष्णव-सम्प्रदाय के लोगों ने इन्हें महाजन कहा है और कृष्णभक्तों का अग्रज माना है।

ये कृष्ण-भक्त थे यह तथ्य इससे भी सिद्ध होता है कि इन्होंने अपने जीवन की सान्ध्य-वेला की वेदनाभरी विनय में कृष्ण को ही सम्बोधित किया है तथा तुलसी और तिल लेकर उन्हींके चरणों पर अपने को अर्पित किया है। गीतों के आन्तरिक भावों से विद्यापति के कृष्ण-भक्त होने में रंचमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता है—

माधव, बहुत मिनति करि तोय।
दय तुलसी तिल देह सोंपल,
दया जनि छाड़ब मोय॥

ए हरि वन्दौं तुअ पद नाय।
तुअ पद परिहरि पापपयोनिधि,
पारक कोन उपाय॥

विद्यापति के पदों में निर्वेदजन्य वैराग्य बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। इनके कुछ कृष्णभक्तिपरक पदों से मधुरभाव की भक्ति व्यंजित होती है। भावसौन्दर्यप्रधान कवि तो वे हैं ही।

इनकी भक्ति-भावना के व्यंजक दो पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

तातल सैकत वारिबिन्दुसम,
सुत मित रमणि समाजे।
तोहे बिसरिमन ताहि समरपल,
अब मझुहब कोन काजे॥

माधव हम परिणाम निराशा।
तुहु जगतारण दीन दयामय,
अतय तोहर विसुआसा॥

आध जनम हम निन्द गमाओल,
जरा शिशु कत दिन गेला।
निधुबने रमणी रसरंगे मातल,
तोहे भजब कोन बेला॥

कत चतुरानन मरि मरि जायत,
न तुअ आदि अवसाना।
तोहे जनम पुनि तोहे समायत,
सागर लहरि समाना॥

भनइ विद्यापति शेष समन भय,
तुअ बिन गति नहिं आरा।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि,
अब तारण-भार तोहारा॥

(२)

अनुखन स्व माधव-माधव सुमरइत,
सुन्दरि भेल मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल,
आपन गुण लुबधाई॥

माधव अपरुप तोहर सिनेह।
अपन बिरहे अपन तनु जर जर,
जिबइते भेल सन्देह॥

भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि,
छल छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा कहितहि,
आधा आधा बानि॥

राधा सञो जब पुनितहि माधव,
माधव सञो जब राधा।
दारुन प्रेम तबहु नहि टूटत,
बाढ़त विरहक बाधा॥

दुहु दिसि दारु दहन जैसे दगधइ,
आकुल कीट परान।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसन वल्लभ हेरि सुधामुखि,
कवि विद्यापति भान ।।

रा० चौ०

विश्वासदेवी

विश्वासदेवी मिथिला की कृष्ण-भक्ति-परम्परा की एक अनूठी देन हैं। मध्यकालीन मिथिला की कला और संस्कृति के विकास के युग में साहित्य की मधुर स्वरलहरी छेड़नेवाली ये एक अप्रतिम महिला थीं।

ये राजा शिवसिंह के छोटे भाई पद्मसिंह की पत्नी थीं। शैव-सर्वस्व-सार से इसकी पुष्टि होती है कि पद्मसिंह शिवसिंह के अनुज थे। लखिमादेवी के स्वर्गवास के बाद शिवसिंह के अनुज शासन के उत्तराधिकारी बने थे। उनका राजत्व-काल १४२९-३० ई० तक माना जाता है। उनकी राजधानी पहले गजरथपुर में थी किंतु बाद में पदुमा में आ गयी थी। उनका देहावसान १४३०-३१ ई० के मध्य हुआ।

पद्मसिंह सन्तानहीन थे। अतः उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी रानी विश्वासदेवी मिथिला के सिंहासन पर बैठीं। इनके गद्दी पर बैठने के विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है। ये ओइनवार-कुल की दूसरी रानी थीं। इन्होंने तिरहुत पर कुशलतापूर्वक शासन किया। लखिमारानी के समान इन्होंने भी १२ वर्षों तक शासन किया। इसकी पुष्टि नरसिंहदेव के १४५३ ई० के लेख से होती है। उसमें नरसिंहदेव विश्वासदेवी के उत्तराधिकारी हरिसिंहदेव के पश्चात् विश्वास राज्यभार ग्रहण करने का उल्लेख है।

कहा जाता है कि विसौली नगर विश्वासदेवी द्वारा ही स्थापित किया गया था। विद्यापति ने 'शैव-सर्वस्व-सार' में विश्वासदेवी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये विद्याप्रेमी तथा विद्वानों को आश्रय देने-वाली शासिका थीं। ये पद्मसिंहदेव की प्रियतमा रानी थीं। इनके आश्रय में रहकर ही कवि-कोकिल विद्यापति ने 'शैव-सर्वस्व-सार' का लेखन समाप्त किया तथा 'पुराण-संग्रह' एवं 'गंगा न्यायवाक्यावली' नामक ग्रन्थों की रचना की। इन पुस्तकों में अनेक स्थलों पर विश्वासदेवी की चर्चा है। ये लखिमारानी के समान विदुषी नहीं थीं, किन्तु साहित्य और कला के प्रति इनका लगाव अतुलनीय था।

विश्वासदेवी के कोई सन्तान नहीं थी। अतः इनके बाद राजा भवसिंह के कनिष्ठ पुत्र शिवसिंह तथा पद्मसिंह के पितृव्य हरसिंहदेव मिथिला के राजा बने।

विश्वासदेवी ने अपनी निजी उपलब्धियों के द्वारा सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इन्होंने मीमांसा शास्त्र के प्रभाकर पथ को प्रोत्साहित किया था।

विश्वासदेवी के रचित पद्य नहीं मिलते हैं किन्तु विद्यापति के गीतों में उनकी चर्चा आई है। उनके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये मिथिला की परंपरानुसार पंचदेवों की उपासिका होने के साथ ही कृष्णावतार में इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी।

'शैव-सर्वस्व-सार' के मंगलाचरण में विश्वास-देवी की आध्यात्मिक रुचि तथा गुणग्राहकता की प्रशंसा करते हुए कविवर विद्यापति लिखते हैं—

श्रीमद् विश्वासदेवी विरचयति शिवं
शैवसर्वस्वसारम् ।

'श्रीमती विश्वासदेवी ने शैव-सर्वस्व-सार को विरचित कराया।'

इसी प्रकार मैथिल-कोकिल द्वारा 'गंगावाक्यावली' के निम्नांकित आशीर्वादात्मक श्लोक में भी इनका गुणगान किया गया है—

यावत् गंगा विभाति त्रिपुर हर जटा
मण्डल मण्डली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मल्ली मोला सुमेरोः शिरसि सितमहा-
वैजयन्ती जयन्ती
यावत् पातालमूलं स्फुरदमरुचिः
शेष निर्मोकवल्ली
तावद् विश्वासदेव्या जगति विजयतां
गंगावाक्यावलीम्

'जब तक गंगा महादेव की जटा में शोभित होगी, यह सुमेरु पर्वत की शिरोभूषण माला के समान सुन्दर दिखेगी और यावत् कालपर्यन्त पाताल के निचले स्तर में शेषनाग की केंचुली के समान गंगा रहेगी तब तक श्री विश्वासदेवी की यह गंगावाक्यावली ग्रन्थ में विजय करती रहेगी।'

मो० मि०

विष्णुपुरी (परमहंस)

परमहंस विष्णुपुरी का जन्म मिथिला (उत्तर बिहार) के मधुबनी जिलान्तर्गत तरौनी ग्राम में सन् १४२५ ई० में हुआ था। ये वत्सगोत्रीय कर्महे तरौणी मूल के मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रतिधर, माता का नाम मौरा और पितामह का नाम श्रीधर था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व विष्णुपुरी रमापति के नाम से जाने जाते थे। प्रो० रमानाथ झा ने पंजीग्रन्थ के आधार पर इनके समय, पूर्वजों के नाम तथा जन्म-स्थान आदि का सटीक प्रमाण ढूँढ़ निकाला है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' में कृष्ण को ब्रह्म माना गया है तथा बलराम को विष्णु का अवतार बताया गया है। किन्तु विद्यापति के सदृश ही विष्णुपुरी ने कृष्ण को अवतारी पुरुष माना है। मध्यकालीन भक्ति-गीतों में विष्णुपुरी का महत्त्व किसीसे कम नहीं है। राधाकृष्ण की प्रेमलीला ही इनके काव्य का विषय है। इनके भक्तिगीतों में विद्वत्ता का भी परिदर्शन होता है। इनके गीतों का अनुवाद बंगला भाषा में भी हुआ है और बंगाल के लोग एक लम्बी अवधि तक इन्हें स्वप्रांतीय कवि ही मानते रहे। इनके गीतों को 'भणिका' नाम से जाना जाता था। नेपाल के हस्तलिखित ग्रन्थों में इनके गीत संकलित हैं, उनमें से एक इस प्रकार है :

हे सखि ! हे सखि ! कहियो न जाहे।
नन्दक अंगना कइसन उछाहे॥

नन्दक नन्दन त्रिभुवन सारे।
यशोदे पाओल तनय कुमारे॥

मन भेल हरखित देखि तन रूपे।
जनि भेल उदित दीप अंधकूपे॥

आसलता पल्लवजनि देला।
मेदिनि सुरतरु आंकुर भेला॥

विष्णुपुरी कह सुनह गोआरी।
परमजोति अवतरल मुरारी॥

नन्द के घर में नवजात शिशु के रूप में श्रीकृष्ण का आगमन हो चुका है। एक ग्वालिन अपनी सहेली से आनन्द और विस्मय के स्वर में कहती है, 'हे सखि ! कहा नहीं जाता है कि नन्द के घर में कैसा उत्सव हो रहा है ? उनके घर में तो तीनों लोकों की सम्पदा आ जुटी है। यशोदा के पुत्ररूप में स्वयं श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए हैं। उनके शरीर की छटा देखकर मन प्रफुल्लित हो गया है। ऐसा लगता है जैसे अन्धकूप में दीपक का प्रकाश फैल गया हो। आशारूपी लता आज फली-फूली प्रतीत होती है। स्वयं देववृक्ष आज पृथ्वी पर अंकुरित हुआ है। विष्णुपुरी कहते हैं, हे ग्वालिन, यशोमति का भाव स्पष्ट है, यह शिशु तो स्वयं परब्रह्म (परमज्योति) हैं जो मुरारी के रूप में प्रकट हुए हैं।' इस पद्य में विद्यापति के समान ही विष्णुपुरी ने कृष्ण को अवतारी पुरुष माना है।

उपर्युक्त पद में कृष्ण के अवतार का वर्णन है जो निश्चय ही श्रीमद्भागवत से प्रभावित है। राधाकृष्ण की प्रेमोपासना की जो दिव्यानुभूति पूर्व भारत में हुई उसे माधवेन्द्रपुरी, ईश्वरपुरी और विष्णुपुरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभृति कवियों से अपूर्व स्फूर्ति एवं प्रोत्साहन मिला। चैतन्यदेव ने तो अपने अलौकिक व्यक्तित्व और दिव्य उपदेश से प्रेम-भक्ति की एक नई धारा ही बहा दी जिसमें अवगाहन कर आज भी कृष्ण-भक्ति के अनुयायीगण अलौकिक आनन्द का आस्वादन कर रहे हैं। एक अन्य पद इस प्रकार है :

प्रथम वयस जत उपजल नेह।
एक परान एक जनि देह॥

तइसन पेम जदि विसरह मोर।
काठहु चाहि कठिन हिअ तोर॥

ए प्रभु ठाकुर ने तेजह नारि।
तोह बिनु लागब कओन ओहारि॥

सुपुरुस चिन्हिअ एहे परिनाम।
जैसन प्रथम तैसन अवसान॥

टुटल प्रेम नहि लाग एक ठाम।
विष्णुपुरी कह बुझसि विराम॥

राधाकृष्ण को प्रेमोपालम्भ देती हुई कहती हैं—

'किशोरावस्था में हम दोनों के हृदय में जो प्रेम उत्पन्न हुआ उससे दो पृथक् शरीर धारण करते हुए भी हम एक प्राण हो गये थे। हमारे उस प्रगाढ़ प्रेम की भी याद तुम भूल गये तो निश्चय ही तुम्हारा हृदय काष्ठ से भी अधिक कठोर है। अत्यन्त निष्ठुर है, यह मेरा विचार है। हे मेरे सर्वस्व ! प्राणाधार ! इस अबला का इस प्रकार त्याग न करो। तुम्हारे अभाव में मैं किसका आश्रम ग्रहण करूँगी ? सत्पुरुषों के प्रेम की यह विशेषता होती है कि वह आदि से अन्त तक एक समान बना रहता है। इससे भिन्न लम्पट का प्रेम कालपरक होता है। अन्त में कवि विष्णुपुरी चेतावनी देता है कि प्रेम टूटने पर पुनः जोड़ा नहीं जा सकता है। इसका अन्त ही समझना चाहिये।'

'गौर-गणोद्देश-दीपिका' के आधार पर बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् पुराविद् डॉ॰ दिनेशचन्द्र सेन तथा मिथिला के विद्वान् डॉ॰ रामदेव झा जयधर्म को विष्णुपुरी के गुरु मानते हैं। जयधर्म ने ही इन्हें अद्वैत वेदान्तानुयायी वैष्णवधर्म और संन्यास की दीक्षा दी थी। गौरांग प्रभु की भाँति रमापति भी छोटी उम्र में ही सभी शास्त्रों का अध्ययन कर चुके थे और उसके पश्चात् ही लोक-कल्याण की दृष्टि से गृहस्थाश्रम में न रहकर संन्यासी बनकर घर से निकल पड़े थे। संन्यासी रमापति विष्णुपुरी के नाम से विख्यात हुए। विष्णुपुरी नाम इनके गुरु का दिया हुआ है। मध्व-सम्प्रदाय में तत्कालीन संन्यासियों के समान इन्हें भी पुरी-अभिधान से सम्बोधित किया गया है। महाप्रभु चैतन्य के समकालिक होने के कारण ऐसा कहा जाता है कि एक समय दोनों की भेंट और बातचीत हुई थी और दोनों एक-दूसरे के दार्शनिक सिद्धान्त तथा धार्मिक निष्ठा से प्रभावित हुए थे। जहाँ ईश्वरपुरी चैतन्य के दीक्षा-गुरु थे, विष्णुपुरी उनके प्रशंसक एवं प्रेरणादायक कहे जाते हैं। एक बार गौरांग जगन्नाथपुरी में निवास कर रहे थे। उन्हें विष्णुपुरी द्वारा विरचित 'भक्ति-रत्नावली' नामक ग्रन्थ पढ़ने की उत्कण्ठा जगी। उस समय विष्णुपुरीजी काशीवास कर रहे थे। गौरांग ने अपने एक भक्त को काशी भेजा। गौरांग के याचना-पत्र को पाकर परमहंस विष्णुपुरी गद्गद हो उठे और उक्त भक्त के हाथ 'भक्ति-रत्नावली' की प्रति भेज दी। यह विवरण भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास के साक्ष्य के आधार पर प्रमाणित है।

मध्व-सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर भी परमहंस विष्णुपुरी श्रीमद्भागवत के महान् प्रचारक एवं प्रशंसक थे और संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने जनसाधारण के बीच भागवत के प्रवचन को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। 'भक्ति-रत्नाकर' के साक्ष्य के आधार पर डॉ॰ दिनेशचन्द्र सेन की मान्यता है कि विष्णुपुरी ने ही बंगाल में भागवत को लोकप्रिय बनाया। बंगीय सांस्कृतिक इतिहास में इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कार्यों के लिए उनका नाम सदा निष्ठा के साथ लिया जाता रहेगा। ऐसा भी माना जाता है कि विष्णुपुरी के चलते ही बंगाल में मध्व-सम्प्रदाय लोकप्रिय हो सका और गौरांग महाप्रभु तक इसमें दीक्षित हुए। कहते हैं कि गौरांग के शिष्यों के प्रयास से मीरा भी इसी सम्प्रदाय में दीक्षित हुई थीं। किंतु यह मत विवादास्पद है।

विष्णुपुरी संस्कृत के निष्णात विद्वान् और सफल कवि थे। संस्कृत-रचनाओं के साथ-साथ इन्होंने अपनी मातृभाषा मैथिली में भी कृष्ण-भक्ति-विषयक गेयपदों की रचना की थी, जो विद्यापति के पदों से न्यून नहीं कहे जा सकते हैं। डॉ० रामदेव झा ने अपने एक निबन्ध में विष्णुपुरी को शिवभक्ति के गेय पदों के निर्माता के रूप में चित्रित किया है। इनकी उपलब्ध प्रमुख रचना के रूप में केवल 'भक्ति-रत्नावली' ही प्राप्त है। नेपाल के हस्तलिखित ग्रन्थों में भी इनके कुछ फुटकर पद मिलते हैं। प्रो० राधाकृष्ण चौधरी ने गोविन्ददत्त के 'मानसोल्लास' तथा विष्णुपुरी की 'भक्ति-रत्नावली' को वैष्णव-पद-परम्परा का प्रेरणा-स्रोत उत्पादक माना है।

रा० चौ०

शंकरदत्त

शंकरदत्त सीसव-वंशीय मैथिल करण कायस्थ थे और १४वीं शताब्दी के आसपास विद्यमान थे। अपने समय के ये अद्वितीय विद्वान् और भक्त माने जाते थे। मिथिला के महाराज हरिसिंहदेव ने आपको करण कायस्थ की पंजी निर्माण करने का भार दिया था—

"तस्मात् कर्णबीजकलितं सद्विश्वचक्रे पुरा कायस्थ-मतिप्रदस्थ गुणिनः श्रीशंकरदत्तवान्।"

कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनका मात्र एक पद उपलब्ध है। वह नीचे दिया जाता है—

माधव ! माधव ! कहि मोहि गेल।
माधव बितल माधव मोर भेल॥

माधव तुल माधव नहिं ठाम।
माधव विसरल माधव नाम॥

माधव सुधि माधव नहिं लेल।
तें माधव जय परवश भेल॥

माधव बिनु जीवन नहिं थीर।
कह शंकर माधव हरु पीर॥

रा० चौ०

शंकरदेव

कृष्ण-भक्ति की दो प्रमुख धाराएँ वैधी और रागात्मिका रही हैं। कृष्ण के प्रति शास्त्रोक्त भाव को वैधी कहा जाता है तथा कृष्ण के प्रति प्रीति की रीति को रागात्मिका के नाम से जाना जाता है। मिथिला के शंकरदेव ने इन दोनों प्रकार के भक्ति-मार्गों की व्याख्या की है।

इन्हें पण्डितराज नन्दन शंकर के नाम से भी जाना जाता है। किन्तु इनकी उपाधि के सम्बन्ध में सन्देह है। पण्डितराज की उपाधि तो केवल रघुनन्दन को ही प्राप्त थी, किन्तु वे कवि नहीं थे। एक दूसरे शंकर भी हैं, जिन्हें सुधाकर के पुत्र के रूप में जाना जाता है। सुधाकर के श्लोक में 'पण्डितराज' उपाधि की चर्चा है।

शंकरदेव श्रीकृष्ण को ही ब्रह्म मानते थे। इनका मत था कि प्राणिमात्र के वे ही एकमात्र शरण्य हैं। भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण ही इनका आदर्श था। इन्होंने भक्ति के प्रकृत मार्ग का समर्थन किया है—

(१)

रोम विवरमहः कोटि-कोटि
अण्ड जैसन अन्ड परमानि।

नन्द नन्दन कतिः नाम धरत
सोहिः तुहिलीला कोइ जानि॥

राम नाम महः निखिल पुण्यरहः
उहि निगम तत्त्व बानी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलिको परमाः धरम हरिनामाः
पढ़ि पुनु परम तत्त्व न जानि ॥

सब अपराधकः बाधक साधकः
सिद्धं करन हरिनाम ॥

—रामविजयनाट

'रोम-छिद्रों में कोटि-कोटि अण्ड हैं जैसे अणु में परमाणु अवस्थित रहता है। नन्दनन्दन आदि अनेक नाम उसके ही हैं। तेरी लीला कौन जानता है? राम-नाम में निखिल पुण्य है। यह निगम के तत्त्व की वाणी है।

कलि में हरि-नाम ही परम तत्त्व है। हरि-नाम ही धर्म है। बार-बार पढ़कर भी मर्म नहीं जानते हैं।

सभी प्रकार के दोषों को दूर करने की क्षमता हरि-नाम में है। निश्चय ही हरि-नाम सभी बाधाओं को दूर करनेवाला है।'

(२)

कलिकाले नाम रुपे कृष्ण अवतार।
नाम हैते हय सर्व जगत निस्तार।
दार्ढ्य लागि हरे नाम उक्ति तीनवार।
जड़लोक बुझाइते पुनरेव कार ॥

'कलियुग में नाम-रूप में कृष्ण का अवतार हुआ है। नाम से ही सभी जीवों को छुटकारा मिल सकता है। धैर्यपूर्वक हरि-नाम तीन बार कहने से ही कल्याण हो सकता है। मूढ़मन इसे पुनः-पुनः समझाने पर भी नहीं समझता है।'

इस प्रकार शंकरदेव ने पुराण और उपनिषद् में प्रतिपादित ईश्वर-तत्त्व का समर्थन किया है। जीव और ब्रह्म के प्रतिपादन को इन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। लगता है, आदि शंकर के आदर्श को अपने जीवन में ढालने की इनकी प्रवृत्ति थी।

शंकरदेव का अंकीयानाटक मैथिली में प्रसिद्ध है। इससे लगता है कि ये विद्यापति के परवर्ती थे।

मो० मि०

शंकर मिश्र

डॉ० राधाकृष्ण चौधरी ने शंकर मिश्र नाम के एक भक्त-कवि की चर्चा की है जिन्होंने गीत के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्तों का निर्माण किया है। लगता है, ये मिथिलावासी उदयनाचार्य के समकालीन थे। इन्होंने 'वादविनोद' की रचना की है जिसको डॉ० गंगानाथ झा ने प्रकाशित किया था। मिथिला के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्रोतों से इनके सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती है।

इनकी भक्तिपरक कुछ फुटकर रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत से सम्बद्ध इनके पद्य प्रसिद्ध नहीं हैं।

मो० मि०

श्यामलाल चौधरी

श्यामलाल चौधरी बीअर-वंशीय मैथिल करण कायस्थ थे। इनका जन्म दरभंगा जिले में वाग्मती नदी के तट पर अवस्थित रामपदी ग्राम में हुआ था। अपने समय के ये अद्भुत विद्वान् और भक्त थे। इन्होंने जगन्नाथपुरी की पैदल यात्रा की थी और अन्य धार्मिक स्थानों के अतिरिक्त कामरूप भी गये थे। इनकी कई हस्तलिखित पोथियाँ बताई जाती हैं जो अब लुप्तप्राय हो गयी हैं। इनका 'गीत-रत्नाकर' नामक भक्ति गीतों का संग्रह भी सन् १९७३-१९७४ में जलकर भस्मसात् हो गया। कृष्ण-भक्तिमूलक बहुत से पदों का संकलन तो इन्होंने किया ही, स्वयं भी कृष्ण से सम्बद्ध पदों की रचना की थी। ये सच्चे और समर्पित कृष्ण-भक्त थे तथा 'श्याम' उपनाम से रचना करते थे। इनके स्फुट पदों के संकलन का प्रयास हो रहा है।

रा० चौ०

श्यामसुन्दर दास

ये भी मैथिल करण कायस्थ थे और कृष्ण-भक्त थे। इनके बारे में और कोई सूचना उपलब्ध नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इनका एक पद प्राप्त हुआ है जो नीचे दिया जाता है—

मोहन आज गये मथुरा,
वृन्दावन लागु मेसान महाँ।
वासर रैन समान भये,
ब्रजनारि सभै विलखानि जहाँ॥

गोप गोआर गोविन्द पुकारत,
तेज दियो तृण अन्न तहाँ।
श्याम बिना कवि श्याम सोचथ,
द्रम बोलु कवि गोविन्द कहाँ॥

रा० चौ०

श्रीकान्त गणक

श्रीकान्त गणक के संबंध में केवल इतनी सूचना मिलती है कि ये १९वीं शताब्दी में विद्यमान थे और नाटक-रचयिता थे। इनका 'श्रीकृष्ण-जन्म-रहस्य' नामक नाटक मिला है, जो भविष्यपुराण के विष्णु-जन्म-रहस्य पर आधारित है। इसमें कृष्ण-जन्म की घटना का चित्रण है। उसका एक पद प्रस्तुत है—

कि हमे कएल तोहर जम
समतों हे मोर कंस आह्वाने।
सन्ततिहरण सहते के,
कर वरू हमर अवस अनुमाने॥

हमहि सताहि कोन फल
पओवह न लए देह बरदाने।
हित भए अरि सरिकाज करह करि
पिसुन बचन अनुमाने॥
जातक शोक जे हेन जननी काँ
ताहि कहब अनुमाने।
अपने जें उनमाद भरल छह
पूछि देखह बरु आने॥

माया मोह तोह सब तेजलहि
ठामहि रहत गुमाने।
निरदय हृदय ते हओदया नहि
सुकवि गणक इह भाने॥

रा० चौ०

सदानन्द

सदानन्द कृष्ण-भक्ति-काव्य के ऐसे रचनाकार हैं जिनका ऐतिहासिक विवरण अभी भी धुँधला है। प्राप्त साक्ष्यों से यह विदित होता है कि ये अपने समय के निश्चय ही लोकप्रिय कवि थे, क्योंकि इनके पाँच गीत 'रागतरंगिणी', 'भाषा-गीत-संग्रह', 'रागभजन-संग्रह' और 'हरगौरी-विवाह-नाटक' में उपलब्ध हैं। इन्होंने अपने नाम के आगे 'सुकवि' विशेषण का प्रयोग किया है। इनके गीतों से इनके राज्याश्रयी होने का प्रमाण नहीं मिलता है। 'हरगौरी-विवाह' के अनुसार इनका समय १६२९ ई० के बाद ठहरता है। इनके पिता का नाम गोविन्द ठक्कुर था। मिथिला की कायस्थ पंजी में महोपाध्याय सदानन्द के रूप में इनकी चर्चा है। ये स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन करते थे। करण कायस्थ के 'सीसव मूल' में भी एक सदानन्द का नाम श्री नारायण था। इन्हें पंजी में देवी-चरण-परायण कहा गया है—

'श्री नारायणमल्लिक प्रथमा वसन्तपुर मूलसं सुरपतिदत्तसुता अनुमतिदेयी ए सुतः सदानन्दः देवी-चरणपरायणंच महाभक्तः प्रकीर्तितः।'

इससे स्पष्ट है कि सदानन्द महाभक्त थे। इनका समय १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १६वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध रहा होगा।

इनके जन्म या मृत्यु के सम्बन्ध में सही जानकारी नहीं है। उसके साथ ही इनके मूल ग्राम या निवास का भी पता नहीं है।

कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनके कुछ पद इस प्रकार हैं :

(१)

कि हेला रे कहित नुहइ भारती रे।
कालि या दुररु सखि कलना
कलामो आखि कला इन्दीवर आरती रे।
केलि कदम्बलतार कोले कि श्यामल तार,
तेज से रवि सुतार तोरे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम्पि मोर कलेवर, होइ गला आर पार
माहाकु डरइ तार तीरे ॥ १ ॥

(२)

जाइतें जमुना पार गे सखि,
भेटल नन्द कुमार।
पलटिओ न भेल निहारि गे सखि,
भेलाहुँ सहजे गमारि ॥
बैरिनि भेलि मोरि लाज गे सखि,
हठे हरु हरिक समाज।
तहि बने सओ हिअ साल गे सखि,
पड़लिहुँ अनुसय जाल ॥
सुकवि सदानन्द गाव गे सखि।
समय भेलें पछताव ॥

'यमुना पार जाते समय नन्द के पुत्र से भेंट हो गई। उन्होंने पलटकर भी नहीं देखा। स्वयं ही देहातीपन का अनुमान कर रही थी। लज्जा मेरी शत्रु बन गई। कृष्ण के साथ उनका समाज भी था। तभी से हृदय में पीड़ा हो रहा है। सुकवि सदानन्द कहते हैं समय बीतने के बाद सभी लोग पछताते हैं।'

मो० भि०

साहेब रामदास

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में मैथिली गीत-काव्य-धारा में अकस्मात् परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसी स्वर्णिम समय में मैथिली काव्य-धारा अपने परम्परागत शृङ्गारिक और व्यावहारिक स्वरूप का परित्याग कर धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा की ओर अधिक उन्मुख हुई थी। इसका प्रभाव सर्वव्यापी था, जिससे अधिकांश कवियों ने भक्ति और दर्शन को माध्यम बनाया। जिन कवियों का भक्ति-रस से सम्पर्क नहीं था वे भी इस नवीन विचारधारा से अपने को पृथक् नहीं रख सके। इन कवियों में उल्लेखनीय हैं—रत्नपाणि, गोपीश्वर, शंकर, रमानाथ, आदिनाथ, रघुनन्दन आदि। उपर्युक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में भक्ति-रस को प्रधानता दी। इसी बेला में, मैथिली में 'विष्णुपद' और 'रास' लिखने की परम्परा चली। वस्तुतः इस परम्परा की पृष्ठभूमि हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल के आधार-स्तम्भ सूर और तुलसी की रचनाएँ हैं; जिनका प्रचार-प्रसार मिथिला में व्यापक रूप से हो गया था।

इस तरह मैथिली साहित्य में भक्ति-काव्य का जो विकास हुआ, उसका सारा श्रेय सूर और तुलसी-साहित्य को दिया जायगा जिसके आलोक में मैथिली में संत कवियों को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला और वे लोग इस दिशा में अग्रसर हुए। यह निर्विवाद सत्य है कि हिन्दी-संत-साहित्य से ही प्रभावित होकर मैथिली के भक्त-कवियों ने जन-साधारण में वैष्णव-भावना का प्रचार-प्रसार किया। इसी परम्परा के फलस्वरूप मैथिली साहित्य में अनेक भक्त-कवियों का उल्लेख मिलता है, जिसमें अग्रगण्य हैं संत-शिरोमणि साहेब रामदास। साहेबराम की रचनाओं का संग्रह आधुनिक मैथिली साहित्य के जनक कवीश्वर चन्दा झा ने 'साहेबराम-पदावली' नाम से किया। इसकी भूमिका में कवीश्वर ने साहेबराम के परिचय और समय के प्रसंग में उनके एक पद की दो पंक्तियों का उल्लेख किया है—

शिव लोचन मुख शिव सिंह जखन।
साहेब राम दास तिथि तखन ॥
प्रबल नरेन्द्र सिंह मिथिलेश।
शासित छल मिथिला देश ॥

उपर्युक्त पंक्तियों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि जब साहेबराम वर्तमान थे उस समय खण्डवला-कुल के महाराज नरेन्द्रसिंह मिथिला पर शासन कर रहे थे। महाराज नरेन्द्रसिंह का समय है ११५३ साल अर्थात् १७४६ ई० के आस-पास हैं। इस तरह साहेबराम के समय के प्रसंग में इतिहासकारों ने १६५० ई० से १७५० ई० का उल्लेख किया है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महाराज नरेन्द्रसिंह के पिता महाराज राघवसिंह के समय में भी साहेब-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राम वर्तमान थे; क्योंकि उनका राजत्व-काल ११११ साल से ११४७ साल तक था। उपर्युक्त पृष्ठभूमि में इनकी पदावली का रचना-काल १७४६ ई० माना गया है।

'साहेबराम-पदावली' की भूमिका में कवीश्वर ने इनका और परिचय भी दिया है। ये कुसुमौल गाँव के मैथिल ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि अपने प्राण-प्रिय पुत्र प्रीतमदास की मृत्यूपरांत ये अत्यधिक दुःखी हो गये और संन्यासी बनकर विभिन्न तीर्थों का पर्यटन किया। साहेबराम अपने विरक्त जीवन के भ्रमण के क्रम में जब जगन्नाथपुरी से वापस हुए तब बलरामदास के शरणागत हो गए और उन्हींसे योग-शिक्षा ग्रहण कर योगी बन गये। गुरु के रूप में साहेबराम ने बलरामदास को अपने एक गीत में स्मरण किया है। इस गीत की विलक्षणता इस विषय को लेकर है कि इसमें योग-क्रिया की उपलब्धि का वर्णन विलक्षण ढंग से किया गया है। यह उपलब्धि निश्चित रूप से बलरामदास की कृपा के फलस्वरूप प्राप्त हुई होगी। गीत निम्नांकित है—

रामभजन सुमिरन को दिलमो,
आठ पहर झड़ि लागो है।
काम क्रोध मद मोह लोभऔ,
तृष्णा दुर्म्मति भागी है॥

काया पुर हरि नाम नगारा,
बाजत आनन्द बधाई है।
अष्ट कमल के कुंज गली मौं,
मुरली श्याम सुनाई है॥

मन को ममिता सुनि-सुनि निकली,
सुरति चरण लपटाया है।
राज करत राजा घर बैठे,
निश्चल राज बसाया है॥

पाँचो परचा निसदिन ठाढ़े,
कर जोरि शीस नवाया है।
गुरु बलिराम चरन धरि माथे,
साहेब हरि अपनाया है॥

अब तो जरा मरन छुटि जैहै,
संसे सकल सेराया है॥

उपर्युक्त पद के परिप्रेक्ष्य में इसे स्वीकार करने में तनिक भी हिचक नहीं होती है कि ये बलरामदास के शिष्य थे। महाराज नरेन्द्रसिंह की पत्नी महारानी पद्मावती अत्यधिक धर्मपरायण थीं जिसके फलस्वरूप उन्होंने पचाढ़ी मौजे को इन्हें दानस्वरूप दिया था। यहीं ये कुटी बनाकर रहते थे। साहेबराम द्वारा निर्मित यह कुटी अभी भी वर्तमान है जो मिथिलावासियों के लिये तीर्थ बन गया है।

मैथिली साहित्य के इतिहासों में तथा मिथिला में इनकी सिद्धि के सम्बन्ध में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि बिहार सूबे के नवाब अलीवर्दी खाँ ने इन्हें गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर दिया था। किन्तु ये अपने योग-बल पर प्रतिदिन गंगा-स्नान के लिए जेल से बाहर जाया करते थे। इससे अधिकारियों में खलबली मच गयी और वे लोग इन्हें पीड़ित करने लगे। किन्तु इस सबका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। अन्ततः नवाब ने इन्हें मुक्त कर दिया। यह भी कहा जाता है कि ये दीवल हाँकते थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इनके प्रति मिथिला में अभी भी अत्यधिक श्रद्धा है।

'साहेबराम-पदावली' के अध्ययन-अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये एक उच्च कोटि के वैष्णव-भक्त तथा कवि थे। कविता करना तो इनका साधन था, साध्य था विष्णु का भजन-कीर्तन। भक्ति मार्ग का अनुसरण कर इन्होंने भजन-कीर्तन के लिये रचना की। भक्ति-साहित्य में दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर को भी रस के रूप में स्वीकार किया गया है जिससे रसों की संख्या तेरह हो जाती है। इन रसों में से वैष्णव-साहित्य में मधुर-रस को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। अतएव वैष्णव-भावना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्रभावित होकर इन्होंने शान्त, दास्य और वात्सल्य-रस की भी रचनाएँ की हैं, किन्तु मधुर-रस की रचनाओं में इनकी व्यक्तिगत मनोभावना का परिचय मिलता है।

निर्गुन सगुन पुरुष भगवान।
बुझि कहु साहेब करइछ ध्यान॥
धैरज धरिअ मिलव तोर कन्त।
साहेब ओ प्रभु पुरुष अनन्त॥

हिन्दी-साहित्य के सन्त कवियों में किसी की रचना में मात्र निर्गुण ब्रह्म का चित्रण मिलता है तो किसी की रचना में मात्र सगुण, किन्तु ये सगुण और निर्गुण दोनों ब्रह्म की उपासना समान भावना से करते थे।

'साहेबराम-पदावली' में मैथिली साहित्याकाश के चिरपरिचित विषय कृष्ण-काव्य की परम्परा दोहरायी गयी है। वैसे तो यत्र-तत्र रूप से इन्होंने राम का भी चित्रण अपने पदों में किया है जो मैथिली साहित्य के लिए प्रायः अछूता ही था। अतएव हम कह सकते हैं कि पदावली में राम और कृष्ण-काव्य की परम्परा की स्थापना के पीछे इनका मूल उद्देश्य हिन्दी-साहित्य की परम्परा को दुहराना था। किन्तु इतना तथ्य है कि इनके गीति-काव्य का मुख्य विषय कृष्ण की वृन्दावन-लीला से सम्बद्ध विषयों से है। इनके द्वारा रचित 'विष्णुपद' और 'रास' विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रत्येक पद में इन्होंने ईश्वर के समीप पहुँचने का अथक प्रयास किया है। कुछ ऐसे भी पद उपलब्ध होते हैं जिनमें भगवान् राम के रूप को चित्रांकित किया गया है। सम्पूर्ण कृष्ण-चरित से सम्बद्ध रहने के कारण यह नहीं स्वीकार किया जा सकता है कि इन्होंने उनके जीवन के मात्र शृंगारिक पक्ष का विवेचन किया है। साहेबराम ने कृष्ण के जन्म से सम्बद्ध अनेक पदों की रचना की है। इनकी गीतावली उसी कोटि की है जिस कोटि की मैथिली के मनबोध, मझनीराम, लालकवि, नन्दीपति एवं श्रीकान्त गणक आदि कवियों की रचनाएँ हैं। साहेबराम वैरागी थे अतएव इनके कृष्ण-जन्म में कृष्ण का ईश्वरत्व अधिक मुखर हो उठा है। ये इस बात को कभी नहीं भूलते हैं कि वे मनुष्य नहीं, भगवान् हैं, जो पृथ्वी के भार को उतारने तथा दुष्टों के दलन के लिए दुःखमोचन रूप में अवतीर्ण हुए हैं—

कृष्ण जन्म सुनि ढरइछ नोर।
कहलगि कहओं हरष नहि थोर॥
अब नहि रहन अवनि केर भार।
जत अरिजन तत होयत संहार॥
कंश वंश आब होयत निदान।
ई नहि मानुस थिक भगवान॥
पुरल मनोरथ अभिमत काम।
गोकुल आयल पुरुष अभिराम॥
होयब अमर इन्हि मानहु परमान।
शिव सनकादि धरे जसु ध्यान॥

अठारहवीं शताब्दी में इस विषय को मैथिली काव्य में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त थी। कृष्ण-जन्म के कीर्तन-माहात्म्य पर भक्त-कवियों और जन-साधारण की असीम आस्था थी। वस्तुतः जन्म का वर्णन सामान्य बात नहीं थी। उसे प्रारम्भ कर समाप्त कर लेना एक विशेष बात मानी जाती थी। साहेबराम ने कृष्ण-जन्म की महिमा को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कृष्ण जन्म गुण अगम अथाह।
साहेब शेस पावे नहि थाह॥

साहेबराम ने कृष्ण-जन्म-वर्णन के क्रम में उसके सभी पक्षों पर दृष्टिपात नहीं किया है। साधारणतः कृष्ण-जन्म वर्णन के तीन खण्ड रहते हैं-पहला वसुदेव-देवकी की मनोव्यथा, विवशता आदि, दूसरा भादों की जन्माष्टमी का अन्धकार, प्रसव-पीड़ा, जन्म, कारा-मुक्ति, गोकुल-गमन आदि। तीसरे खण्ड में गोकुल का पुत्रोत्सव, कंस द्वारा कृष्ण-वध-प्रयास और कृष्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की बाल-लीला कृष्ण-जन्म से सम्बद्ध मानी जाती है। अतएव इसे चतुर्थ खण्ड भी कह सकते हैं।

'साहेबराम-पदावली' में प्रथम और द्वितीय खण्ड का सर्वथा अभाव है। कुछ गीतों में वसुदेव द्वारा कृष्ण को गोकुल लाने का संकेत मिलता है-

आनन्द बधाइ ब्रज बाजै अनूप।
देषि मनोहर सुन्दर रूप ॥

वसुदेव गोकुल लाएल गोपाल।
घरे-घरे हरषित गोपी-ग्वाल ॥

अथवा

जखने कृष्ण गेल गोकुल नगरी।
सभ केर नयन जुड़ाई ॥

अथवा

जखने कृष्ण आयल मधुवन सौं घरे-घरे बाजए बधाइ।

कृष्ण के गोकुल-गमन पर कंस की मानसिक दशा का विश्लेषण साहेबराम ने विलक्षण ढंग से किया है-

कंस सुनल हरि गोकुल गेल।
अब की करब बड़ अजगुत भेल ॥

जागल पहरु रहल निन्द सोय।
तैओ नरहरि उठलन रोय ॥

जानि न पड़ कैसे छुटल केवार।
भरलि यमुना कैसे उतरल पार ॥

इनकी वर्णन-चातुरी गोकुल के पुत्रजन्मोत्सव-वर्णन में अधिक लक्षित होती है। लगता है, इसी तन्मयता के कारण ये वसुदेव-देवकी, भादों-अष्टमी की महाकाल-रात्रि, कारागार एवं यमुना-संतरण आदि प्रसंगों को भूल गये हैं। कृष्णावतरण को सुनकर गोकुलवासियों के हर्ष और उल्लास में कवि स्वयं सम्मिलित होकर नाचने लगते हैं—

साहेब दास सोहर हरि गाउ।
राजकुमार होथु पुर नाउ ॥

कृष्णावतरण का समाचार सम्पूर्ण नगर में व्याप्त हो गया है। आशीर्वचन देने के लिए, आरती उतारने के लिए विप्र, गोप-गोपिका सभी चन्दन, दूर्वा, धान आदि सामग्रियों के साथ उपस्थित होते हैं—

जनमल कृष्ण नगर भेल जान।
यशोमति गोद चढ़ल भगवान ॥

काहु हाथ चानन काहु दुबि-धान।
देहि आशीस जन विप्र सेयान ॥

आरति उतारहि गोपी-ग्वाल।
करहि हरषि हेरि नैन नेहाल ॥

जो भी वहाँ उपस्थित हैं वे जाने का नाम नहीं लेते हैं—

जे आबै से फिरि नहि जाय।
सभक नैन हरि रहल लोभाय ॥

ऐसे पुनीत अवसर पर अहीरों ने बाँसुरी बजाई, यमुना-तीर में बधाई बजने लगी। सम्पूर्ण नगर में मंगलोत्सव मनाया जाने लगा—

आनन्द बधाई बाजै यमुना तीर।
बसुरी बजवैत फिरै अहीर ॥

सगर नगर भरि मंगलचार।
जखने कृष्ण हरि लेल अवतार ॥

नवजात शिशु कृष्ण के प्रति गोपियों के वात्सल्य और आकर्षण का साहेबराम ने अद्भुत वर्णन किया है। इस मंगलमय अवसर पर प्रत्येक महिला उन्हें एक-एक बार अवश्य गोद में लेती है—

एक-एक बेरि हरि सभ लए कोर।
लुबुधलि नारि देखि नन्दकिशोर ॥

सबने बारम्बार हृदय से लगाकर उन्हें चूमा, तथापि किसीको तृप्ति नहीं मिली। यही कारण है कि वे लोग घर वापस नहीं जाते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चुम्मा लेल हरि हृदय लगाय।
पलटि नारि केओ भवन न जाय ।।

महाराज नन्द की प्रसन्नता का चित्रण साहेबराम ने विलक्षण ढंग से किया है। नन्द के लिए विधाता ने कृष्ण को मणि के रूप में भेजा है—

नन्द हृदय बड़ आनन्द भेल।
जखन परस मणि विहि आनि देल ।।

ऐसी स्थिति में लोग धन-धान्य लुटाते हैं, किन्तु नन्द को हर्ष के अनुपात में अपना कोश अल्प मालूम पड़ता है। अतएव वे विवशता का अनुभव करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण उन लोगों को उसी रूप में उपलब्ध हुए हैं जैसे चकोर को चन्द्रमा मिल जाया करता है—

जेहन हरख, नहि तेहन भंडार।
की विलहौं चित परल नचार ।।
जनमे-जनमे तप एहन न मोर।
तैओ कलानिधि मिलल चकोर ।।

साहेबराम ने जिस तत्परता और मनोयोग से कृष्ण-जन्म का वर्णन अपनी पदावली में किया है उतनी तन्मयता मैथिली के अन्य कवियों की रचनाओं में नहीं मिलती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में स्वीकार किया है—

(१)

देखहि वृन्दावन पुरुष भगवान।
बुद्धि कह साहेब धरइछ ध्यान ।।

(२)

निरगुन ब्रह्म धरय तन सतोगुन।
लीला करत गोपाल ।।

वस्तुतः कृष्ण की अनुपस्थिति में ये परकीया नायिका के समान विरहाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला में दग्ध होने लगते थे—

भाई हे हैब जोगिन केर भेस।
अंग विभूति ओढ़ब मृगछाला,
करब हम हरिक उदेस ।।

काहि कहब सखि केओ ने बसावे,
गेल हरि कओने प्रदेश।
कोन विधि मन्द अभेल,
नन्दनन्दन तेजि रहल परदेश ।।

'साहेब' सीर धुनत धुरती मँह
सखि अब धूनव केस ।।

रास-सम्बन्धी पदों में इनकी भावना अत्यधिक ऊँची है। रास-रचना में ये आत्मविभोर होकर नाचने लगते हैं। इस प्रसंग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

वंशी वजावथि एहि ठाम,
श्याम जहाँ रास रच्यो ।।

मधुर मृदंग 'घुम-घुम किर',
बाजय वंशी करय अनोर।
नाचथि सखिगण करथि कुतूहल,
चहुदिशि कुहुकय मोर ।।

केंव सखि पुष्पमाल पहिरावथि,
चानन करथि बनाय।
केंव सखि आगोंमें चओर डोलाबथि,
नयनहुँ लेथि जुड़ाय ।।

जगमगाथि कति दामिनी,
यामिनी सखी कण्ठक हार।
साओन घटा श्याम तन सुन्दर,
कुंज में होय बिहार ।।

इन्द्र सहित इंद्रासन डोलल,
पातालहु नहि चएन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिव सनकादि ध्यान छूटि गेल,
पलको ने आवय नएन ॥
'साहेबराम दास' वृन्दावन,
तोंहें छाड़ि भजव ने आन।
जहाँ बसथि त्रिभुवन पति ठाकुर
तहँ लगए हमरो ध्यान ॥

प्रस्तुत प्रसंग से मिलते-जुलते अनेक पदों में इन्होंने इस भावना का चित्रण किया है। ऐसे पदों में कृष्ण के मनोहारी रूप का चित्रण हुआ है। एक स्थान पर ये लिखते हैं--

मुख मुरली सोभे चानन ललाट ॥
माथ मुकुट विहि रचल बनाय।
तापर मोर पंख फहराय ॥

झीन वसन तन सोभा अनूपमे।
थकल कवि गुन वरनिसे रूप ॥

सुन्दर बदन हरि कुण्डल कान।
कोरि कलानिधि जोति समान ॥

जलद घटा सम सोभए देह।
तेहि विच दमकथ दामिनी रेह ॥

उर भृगु चरण सोभए बनमाल।
निरखइत जोगी मुनि कएल नेहाल ॥

ओहि वृन्दावन धरए नर भेस।
शिव सनकादि कर इंद्र के उदेश ॥

पतित 'साहेब' जन तारहु मुरारि ॥

साहेबराम के हृदय में कृष्ण के समान ही विष्णु-अवतार राम के प्रति भी वैसा ही आकर्षण था, जिसकी सही जानकारी इनके पदों को देखने से होती है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में भक्ति-भावना के विविध स्वरूपों का दर्शन होता है। इस प्रसंग में प्रह्लाद, अजामिल, गणिका, कुब्जा, आदि भक्तों की कथाओं का उल्लेख इन्होंने किया है।

प्रे० शं० सिं०

सिद्धिनरसिंहमल्ल

सिद्धिनरसिंहमल्ल नेपाल की शासकीय परम्परा की एक अनुपम देन थे। प्राचीन इतिहास के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि लिच्छवि गणतंत्र के समय नेपाल और मिथिला का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ था। मिथिला के कर्णाटवंशी राजागण नेपाल गये थे। हरिसिंहदेव स्वयं भी सिमरावगढ़ से देवपट्टन ७ जनवरी, १६२६ ई० को आये थे। उनके साथ कुछ विद्वान् भी गये थे। नेपाल के इतिहास के अनुसार मल्ल लोग गण्डकी-उपत्यका से नेपाल गये थे। जब नेपाल में कर्णाट और ठक्कुरी-वंश का अन्त हो गया उस समय से ही मल्ल-शासकों की प्रबलता बढ़ गई। मल्ल-शासक अपने को सूर्यवंशी मानते थे। मिथिला और नेपाल की सांस्कृतिक स्थिति का उत्कर्ष उनकी भाषा की लोकप्रियता के कारण सम्भव हुआ है। मल्ल राजाओं में सिद्धिनरसिंहमल्ल, प्रतापमल्ल, जगज्ज्योतिर्मल्ल, जगत्प्रकाशमल्ल, सुमतिजितामित्र-मल्ल, भूपतीन्द्रमल्ल तथा रणजीतमल्ल के नाम मैथिली साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में अग्रगण्य हैं।

सिद्धिनरसिंहमल्ल ने मैथिली में विद्यापति के समान ही कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी गीतों की रचना की है। इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रणय को ही अपने काव्य का विषय बनाया है। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये मल्ल राजाओं की ललितपुर-शाखा से सम्बद्ध थे। कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी इनका एक गीत अत्यन्त ही लोकप्रिय है। उसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सजल नलिन दल सेजे।
देह दइ हुतवह तेजे ॥
तरब क आन परकारे।
विरहपयोनिधि पारे ॥
सौध सहस सखि पासे।
जनि सुनवन भेल वासे ॥

सिद्धिनरसिंहमल्ल के गीतों में कृष्ण और राधा की प्रणय-लीला का मनोमुग्धकारी चित्रण मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनकी कृष्ण-भक्ति का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा था कि इनके पुत्र श्री निवासमल्ल भी इस पुनीत धारा में प्रवाहित हो गये। इनके आश्रय में अनेक मैथिल कवि और विद्वान् रहते थे। ललितपुर-शाखा का राजवंश इतना गुणग्राहक था कि सभी लोग मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशस्ति करते हैं और इसकी गरिमा को सभी स्वीकारते हैं। विष्णुमल्ल इस वंश का ख्याति-लब्ध राजा हुआ।

सिद्धिनरसिंहमल्ल के शासन-काल के निश्चित समय का ज्ञान नहीं है। 'कृष्णचरित-नाटक' में इनके गीत मिलते हैं, जिससे स्पष्ट है कि सिद्धिनरसिंह-मल्ल कृष्ण के अनन्य उपासक थे। सन् १६६१ ई० के आसपास इनका देहान्त हुआ था।

मल्ल-राजवंश की तीन शाखाएँ—भातगाँव, काठमांडू और ललितपुर या पाटन में थीं। 'भाषा-गीत-संग्रह' से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि ये ललितपुर के शासक थे। कृष्णचरित एक नाटक है और यह अज्ञात व्यक्ति द्वारा लिखित है। इसमें नरसिंह के गीतों का संग्रह है। साथ ही 'भाषा-गीत-संग्रह' के आधार पर भी सिद्धिनरसिंह मल्ल के सात गीतों का पता चलता है। 'भाषा-गीत-संग्रह' के २६वें गीत में ग्रन्थकार की टिप्पणी है—'श्री सिद्धिनरसिंहमल्ल देवानाम्।' मिथिला में जीवित व्यक्ति के नाम में 'श्री' लगाने की परिपाटी है। अतः सिद्धिनरसिंहमल्ल देव के समय में इस गीत की रचना हुई होगी। इनका समय १६३० ई० से १६६१ ई० तक माना जाता है। चतुर्भुज इनके राज्याश्रयी कवि थे। उनके द्वारा कृष्ण-भक्तिपरिप्लुत गीतों की रचना की चर्चा पीछे हो चुकी है। नीचे सिद्धिनरसिंह के दो गीत उद्धृत किये जाते हैं। ये उनकी प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं—

(१)

मुख शशि चारु अमिय बिनु पिबि।
को फल जामों चख चकोरा जिबि॥

पेमसि तेज हठ अध अनुराग।
विहँसि न हेर मोहि कवन अभाग॥

केशपाश कुंचित अलक विशाल।
उरज उपर गज मोतिम हार॥

जनि मदे कुपित विधुन्तुद हेरी।
नखत तरासे कएल गिरि सेरी॥

न उगए अरुण न उग निशि नाहे।
कवन विधि होएत जगत निरवाहे॥

सिद्धिनरसिंह भन गुणक निधान।
कृष्णचरण बिनु दोसर न आन॥

'मुख की शोभा चन्द्रमा के समान है जिसका अमृत के अभाव में भी पान किया जा सकता है। उसके आस्वादन का सुख वैसा ही है जैसा कि चकोर के लिए चन्द्रमा के सौन्दर्य-पान का है। प्रेयसी की ललक की चमक को उसके अभिमान में देखा जा सकता है। इसके बाद भी कृष्ण उसे हँसकर नहीं देखते हैं। उसकी केशराशि सुन्दर सजी है। उसके वक्षःस्थल पर उसे मोती की माला के रूप में देखा जा सकता है। चन्द्रमा को देखकर उसके मन में अभिमान का स्वांग उत्पन्न हो जाता है। नक्षत्रों के निर्माण में विधि ने अपनी कुशलता का परिचय दिया है। वहाँ न अरुणोदय होता है और न रात होती है। ऐसी स्थिति संसार का निर्वाह कैसे होगा? सिद्धिनरसिंह कहते हैं कि गुण के आगार श्री कृष्ण के चरणों को छोड़कर उनके लिए दूसरा मार्ग नहीं है।'

(२)

निए हिए ई छल भाने। तोह बिनु सुपहु न आने॥
तोहरा भीति न राजे। निरदय भय कर काजे॥
तोहे व्रजसेखर हारे। हठ परिहरि देह चारे॥
सरवस सकल उपेखी। सुदिन होयब लेखी॥
नृप सिद्धिनरसिंह भाने। अचिर चिरकर दाने॥

'अपने हृदय में यह छल लगता था कि तुम्हें छोड़कर स्वप्न में किसीको भी नहीं चाहा। तुम्हारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भय नहीं लगता था, किन्तु तुम निष्ठुर होकर कार्य करते थे। तुम तो व्रज के चन्द्रमा के समान हो। तुम मेरा हाथ पकड़कर सहारा दो। जीवन में सर्वत्र मुझे उपेक्षा मिली। अच्छे दिनों का आगमन बड़े भाग्य से होता है। राजा सिद्धिनरसिंहमल्ल कहते हैं कि ऐसे में कृष्ण की कृपा का तुरन्त दान मिलना अनिवार्य है।'

मो० मि०

हर्षनाथ

हर्षनाथ के जीवन-वृत्त के विषय में कुछ पता नहीं चलता। कृष्ण-भक्ति-संबंधी इनके तीन नाटक मिलते हैं—'उषा-हरण नाटक' (हरिवंश पुराण पर आधारित), 'माधवानन्द नाटिका' तथा 'राधाकृष्ण मिलन-लीला'। इनमें प्रौढ़ एवं सूक्ष्म कल्पना के साथ उत्कृष्ट भावाभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

इनका एक पद नीचे दिया जा रहा है—

सुरगण सहित पुरन्दर करि शुभ डंबर रे।
देखन यदुकुल सुन्दर आएल अम्बर रे॥

बरिस सुरगण कुसुम परसन मुदित पुलकित अंगवो।
देव दुन्दुभि बाजु अम्बर होए मंगल रंगओ॥

रा० चौ०

•

परिशिष्ट

मिथिला की अल्पख्यात कवयित्रियाँ

मिथिला का कण-कण वृन्दावन के समान राधामाधव से ओतप्रोत है। विद्यापति के पूर्व भी कृष्ण-भक्ति का यहाँ व्यापक प्रचार था। राम-भक्ति की तो यह प्रेरणा-भूमि थी ही। श्री वाचस्पति मिश्र की सर्वस्व समर्पिता भार्या भामती इसी धरती की अनमोल रत्न थीं। इस प्रकार मिथिला में अनेक नारियाँ हुईं जिन्होंने ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में अपूर्व योगदान दिया। इसी परंपरा में मध्यकाल में विदेह-भूमि में अनेक विदुषी तथा भक्ति-भावापन्न नारियों का प्रादुर्भाव हुआ। खेद है कि विद्वानों की उदासीनता, अपेक्षित सूत्रों के अभाव तथा कृतियों के लुप्त हो जाने से वे प्रकाश में न आ सकीं। मिथिला की इन राधा-कृष्णोपासिकाओं के सम्बन्ध में साहित्य और इतिहास मौन है। अतः इनका यथोपलब्ध परिचय नीचे दिया जाता है।

रूपमती—राजमती

नेपाल के प्राचीन राजवश की काठमाण्डू-शाखा के राजा प्रतापमल्लदेव का विवाह मिथिला में हुआ था। उनकी दो पत्नियाँ थीं जिनका नाम रूपमती और राजमती था। ये दोनों कृष्ण-भक्त थीं।

लखिमा ठकुराइन

लखिमा ठकुराइन मिथिला के सुप्रसिद्ध विद्वान् चण्डेश्वर ठाकुर की पत्नी थीं। जनश्रुति के अनुसार इन्होंने प्रायश्चित्त लिखकर पं० हरिनाथ उपाध्याय की पत्नी का उद्धार किया था। इन्होंने संस्कृत और मैथिली में अनेक पद्यों की रचना की थी, किन्तु वे कालकवलित हो गयीं।

लालमती

लालमती की चर्चा कीर्तिनारायण की पुत्री के रूप में मिलती है। कहा जाता है कि इन्होंने राजा सिंहनारायण को कवित्व-शक्ति प्रदान की थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवतीपुर में इनकी राजधानी थी। ये १६१० ई० में वर्तमान थीं। इनकी रचनाओं के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है। किन्तु लोक-परम्परानुसार ये कृष्ण की अनन्य आराधिका थीं। इनके जीवन-सम्बन्धी सूत्र पुरातत्त्व की गुहा में छिपे हैं।

सोरमदेवी

सोरमदेवी कंसनारायण की पत्नी थीं, भगीरथपुर-लेख से इसकी पुष्टि होती है। कंसनारायण का दूसरा नाम लक्ष्मीनाथ था। 'सोरमपति अतिगुनक निधान' का व्यवहार इनके महत्त्व को रेखांकित करता है। ये कृष्ण-भक्ति में लीन रहती थीं किन्तु इनकी रचनाओं की जानकारी नहीं है। इनका समय १४९४ ई० से १५३४ ई० तक माना जाता है। गोविन्द ने भी अपने एक गीत में इनकी चर्चा की है।

हासिनीदेवी

हासिनीदेवी का विद्यापति ने अपने गीतों में देवसिंह की पत्नी के रूप में उल्लेख किया है, किन्तु कहीं-कहीं ये गजसिंह की पत्नी के रूप में निर्दिष्ट मिलती हैं। विद्यापति का इनसे सम्बद्ध पद इस प्रकार है :

विद्यापति कवि गाओल बूझय रसमन्ता।
देवसिंह वरनागर हासिनी देवी कन्ता॥

यह भी कृष्ण-प्रेम की साधिका थीं।

कुछ पदों में गरुडनारायण की पत्नी के रूप में इनका उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे :

विद्यापति गावर झुमरि रसवन्ता।
गरुडनारायण रमनि हासिनी देवी कंता॥

कुलपरम्परानुसार ये भी कृष्ण-भक्त थीं।

मिथिला में इन कृष्णोपासिकाओं की एक ऐतिहासिक विरासत है। लिखित साहित्य के अभाव में इनके कृतित्व का मूल्यांकन नहीं किया जा सका और ये विस्मृति के अन्धकार में विलीन रहीं।

इनके अतिरिक्त मेनकादेवी, प्रभावती, कमलावती, पद्मादेवी, इन्द्रदेवी, महादेवी, माहेश्वरी, यशोधरा, शकुन्तला, महादेवी, जगन्माता, लक्ष्मीवती, सुखमादेवी, मधुमती, असहमती देवी और देवजना देवी की भी कृष्ण-भक्ति की स्मृति लोक-गीतों के माध्यम से जनमानस में अब तक सुरक्षित है।

डॉ० मोहनानन्द मि.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

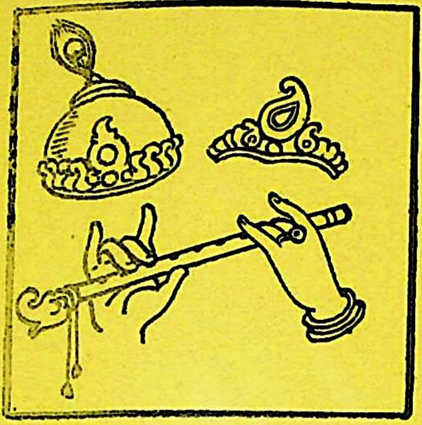

संस्कृत वाङ्मय में श्रीकृष्णभक्ति का विकास

—डा० अमरनाथ पांडेय

संस्कृत के कृष्णभक्त

—डा० अमरनाथ पांडेय
—आचार्य ललिताचरण गोस्वामी
—डा० श्याम शर्मा वाशिष्ट
—डा० प्रेमनारायण श्रीवास्तव
—डा० नरेशचन्द्र बंसल
— डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल
—डा० तपेश्वर नाथ
—श्री श्याम बिहारी खंडेलवाल
—डा० रामप्रकाश कुलश्रेष्ठ
—डा० रामकृष्ण शर्मा
—डा त्रिभुवननाथ शुक्ल
—डा० ब्रह्मानन्द
—श्री विजयकुमार जालान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत-वाङ्मय में श्रीकृष्ण-भक्ति का विकास

श्रीराधा और श्रीकृष्ण भारतीयों के हृदय में अनादिकाल से विराजमान हैं। संस्कृत-साहित्य इनकी कथाओं से समृद्ध हुआ है। इनकी लीलाओं के विविध पक्षों को लेकर अनेक विधाओं में रचनाएँ हुई हैं। इस आकर्षण का मुख्य कारण है—इस माध्यम से जनमानस का भक्ति की धारा में स्नान कर अपूर्व आह्लाद प्राप्त करना। उसी का फल है कि श्रीराधा और श्रीकृष्ण के भक्तों की परम्परा अनवरुद्ध गति से चली आ रही है। शङ्कराचार्य का ब्रह्म निर्गुण है, अतः उसके विषय में लीला की योजना नहीं की जा सकती थी। जन-सामान्य उसके सगुण साकार रूप की लीलाओं के दर्शन तथा गान से आनन्दित होता है, अतः श्रीकृष्ण उसके लिए परमतत्त्व के पर्याय हो गये। लीलाओं के सम्बन्ध में जितनी उद्भावनाएँ हो सकती थीं, उन्हें भक्तों ने प्रस्तुत किया और रसपेशल साहित्य की सर्जना करके लोक-हृदय को आप्यायित किया।

श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा के स्वरूप के विकास की एक अखंड परम्परा है। यद्यपि ऋग्वेद में कृष्ण का उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु उसे महाकाव्यों तथा पुराणों का कृष्ण नहीं माना जा सकता। ऋग्वेद का कृष्ण एक असुर था, जो अंशुमती के तट पर निवास करता था। उसके साथ दस सहस्र असुर थे। अंशुमती नदी कुरुदेश में थी। ऋग्वेद के अधोलिखित मन्त्र में कृष्ण का उल्लेख है—

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त॥

—ऋग्वेद, ८।९६।१३

विद्वानों ने वासुदेव के स्वरूप के विकास की समीक्षा की है। यहाँ उसका संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है। पाणिनि को नारायण शब्द का ज्ञान था। पाणिनि के 'नडादिभ्यः फक्' (४.१.९९) सूत्र से नारायण शब्द व्युत्पन्न होता है। नडादिगण में नर शब्द का परिगणन हुआ है। नारायण श्वेतद्वीप में निवास करते थे। हरिवंश में उल्लेख है कि मोक्ष की इच्छा करनेवाले योगी श्वेतद्वीप में पहुँचकर आनन्दित होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यह श्वेतद्वीप स्वर्ग ही है, जहाँ हरि निवास करते हैं। नारायण के इस श्वेतद्वीप में नारद गये थे और वासुदेवधर्म की शिक्षा प्राप्त की थी।

वासुदेव की पूजा महाकाव्य-काल में प्रारम्भ हुई। उसके पहले नारायण परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। महाकाव्य-काल में नारायण और वासुदेव का तादात्म्य हुआ। विष्णु वैदिक देवता हैं। महाकाव्य-काल तक वे परमात्मा के रूप में स्वीकृत हो चुके थे और विष्णु तथा वासुदेव का तादात्म्य हो चुका था। महाभारत-काल में श्रीकृष्ण और वासुदेव का एकीकरण हुआ। इस प्रकार श्रीकृष्ण नारायण और वासुदेव के रूप में आराध्य हो गये।

महाभारत, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, अग्निपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण, देवीभागवतपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण और भविष्यपुराण में कृष्ण को कथा प्राप्त होती है। ब्रह्मपुराण में कृष्ण का चरित अनेक अध्यायों में निबद्ध किया गया है। विष्णुपुराण के पञ्चम अंश में कृष्ण के चरित का सविस्तर विवेचन किया गया है। भागवतपुराण तो कृष्ण की लीलाओं तथा चरित के लिए आकरग्रन्थ है। इसमें कृष्ण के चरित का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्यन्त मनोरम तथा रहस्यमय वर्णन उपलब्ध होता है। कहा गया है कि भागवत भक्ति का वर्णन करता है, श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करता है तथा कालरूपी सर्प के मुख में पड़ने के भय का विनाश करता है—

भक्त्योघवर्णनं यच्च कृष्णसन्तोषहेतुकम्।
कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे ॥

—भागवतमाहात्म्य, १।१०-११

ब्रह्मवैवर्तपुराण में उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण रत्नसिंहासन पर विराजमान थे। उनके मन में रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया—दक्षिणाङ्ग श्रीकृष्ण हुआ और वामाङ्ग श्रीराधा—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले।
शतशृङ्गैकदेशे च मालतीमल्लिकावने ॥
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः।
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः ॥
रमणं कर्तुमिच्छा च तद् बभूव सुरेश्वरी।
इच्छया च भवेत्सर्वं तस्य स्वेच्छामयस्य च ॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणाङ्गं च श्रीकृष्णो वामार्धाङ्गं च राधिका ॥

—ब्रह्मवैवर्त, ४८।२६-२९

ब्रह्मवैवर्त में राधा के लोकोत्तर स्वरूप का निरूपण मिलता है। पार्वती ने रहस्य का उन्मीलन करते हुए राधा के विषय में कहा है कि आप श्रीकृष्ण की प्राणस्वरूपा हैं, श्रीकृष्ण आपके प्राण हैं, देवियाँ आपकी कला से उत्पन्न हुई हैं। साठ हजार वर्षों तक तपस्या करने के बाद भी ब्रह्मा आपका दर्शन नहीं कर सके एवं श्रीकृष्ण की आज्ञा से ही आप भूतल पर आयी हैं—

श्रीकृष्णार्धाङ्गसम्भूता कृष्णतुल्या च तेजसा।
तवांशकलया देव्यः कथं त्वं मानुषी सति ॥
भवती च हरेः प्राणाः भवत्याश्च हरिः स्वयम्।
वेदे नास्ति द्वयोर्भेदः कथं त्वं मानुषी सति ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि ब्रह्म तप्त्वा तपः पुरा।
न ते ददर्श पादाब्जं कथं त्व मानुषी सति ॥
कृष्णाज्ञया च त्वं देवि गोपीरूपं विधाय च।
आगतासि महीं शान्ते कथं त्वं मानुषी सति ॥

—ब्रह्मवैवर्त, ४८।१९६-९९

श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं और श्रीराधा शक्ति। जिस प्रकार दूध और उसकी धवलता में भेद नहीं है तथा अग्नि और उसकी दाहकता में भेद नहीं है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और श्रीराधा में भेद नहीं है। राधा के अभाव में श्रीकृष्ण सृष्टि करने में समर्थ नहीं हैं—

धावल्यं दुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना।
त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम्॥

ब्रह्मवैवर्त, कृष्णजन्म, ६।२१५-१६

राधा ही सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूपा हैं। वही विद्या और अविद्या हैं। वही श्रुति हैं। वही शक्ति-रूपा, मायारूपा और चिन्मयी हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की उत्पत्ति का कारण हैं। चराचर जगत् उनकी माया से परिरम्भित है—

सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या विद्याविद्या त्रयी परा।
स्वरूपा शक्तिरूपा च मायारूपा च चिन्मयी॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां देहकारणकारणम्।
चराचरं जगत् सर्वं यन्मायापरिरम्भितम्॥

—ब्रह्मवैवर्त, पातालखण्ड, ७७।१५-१६

ब्रह्मवैवर्त में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि राधा से रहित होने पर कृष्ण अभिधान होता है और राधा से युक्त होने पर श्रीकृष्ण—

कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा।
श्रीकृष्णं च तदा तेऽपि त्वयैव सहितं परम्॥

—वही, ६।६२

देवीभागवत में राधा को पञ्चमी प्रकृति कहा गया है। वे रासक्रीड़ा की अधिदेवता हैं—

'रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः।' —९।१।४७

स्कन्दपुराण में प्रतिपादित किया गया है कि कृष्ण की नायिकायें राधा के अंश का विस्तार है। कृष्ण और राधा का संयोग नित्य है—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत्॥
तस्या एवांशविस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्णनायिकाः।
नित्यसम्भोग एवास्ति तस्याः साम्मुख्योगतः॥

—स्कन्दपुराण, २।११।१३

नारदपाञ्चरात्र में 'ज्ञानामृतसार' नामक संहिता है। उसमें बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। ऐसे अनेक मन्त्र दिये गये हैं, जिनके जप से मनुष्य गोलोक की प्राप्ति करता है। गोलोक अर्थात् परमधाम में श्रीकृष्ण और उनके भक्त निवास करते हैं। इस संहिता में राधा की महिमा का भी वर्णन किया गया है। इसमें राधाकृष्ण की पूजा की विधि बतायी गयी है। नारदपाञ्चरात्र की मान्यता है कि राधिका का आख्यान मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जैसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण प्रकृति से परे हैं, उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूपा श्रीराधा निर्लिप्त तथा प्रकृति से परे हैं—

अपूर्वं राधिकाख्यानं गोपनीयं सुदुर्लभम्।
सद्यो मुक्तिप्रदं शुद्धं वेदसारं सुपुण्यदम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥

—नारदपाञ्चरात्र, ३।५०-५१

बाणभट्ट के हर्षचरित में बौद्ध दिवाकरमित्र का उल्लेख मिलता है। दिवाकरमित्र ब्राह्मण था, किन्तु बौद्ध हो गया था। उसके आश्रम में अनेक सम्प्रदाय के लोग रहते थे। उनमें भागवत और पाञ्चरात्र मतों के अनुयायी भी थे—"श्वेतपटैः पाण्डुरभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभिः केशलुञ्चनैः कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकैः काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकैः कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभिः पौराणिकैः साप्ततन्तवैः शैवैः शाब्दैः पाञ्चरात्रिकैरन्यैश्च·······।"—हर्षचरित, अष्टम उच्छ्वास, पृ० ७३ (काणे-संस्करण)।

शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्रभाष्य (२।२।४२) में भागवत (पाञ्चरात्र) मत का उल्लेख किया है—"तत्र भागवता मन्यन्ते–भगवानेवैको वासुदेवो निरञ्जनज्ञानस्वरूपः परमार्थतत्त्वं स चतुर्धात्मानं प्रविभज्य प्रतिष्ठितः—वासुदेवव्यूहरूपेण, सङ्कर्षणव्यूहरूपेण, प्रद्युम्नव्यूहरूपेणानिरुद्धव्यूहरूपेण च। वासुदेवो नाम परमात्मोच्यते। सङ्कर्षणो नाम जीवः। प्रद्युम्नो नाम मनः, अनिरुद्धो नामाहङ्कारः। तेषां वासुदेवः परा प्रकृतिरितरे कार्यम्। तमित्थंभूतं परमेश्वरं भगवन्तमभिगमनोपादानेज्यास्वाध्याययोगैर्वर्षशतमिष्ट्वा क्षीणक्लेशो भगवन्तमेव प्रतिपद्यते इति।" यहाँ वासुदेव को परा प्रकृति कहा गया है और सङ्कर्षण आदि को कार्य। वासुदेव को प्राप्त करने के साधन बताये गये हैं—अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग। वाणी, काय और चित्त से अवधानपूर्वक मन्दिर में जाना अभिगमन है। पूजायोग्य द्रव्यों का सङ्ग्रह उपादान है। इज्या का अर्थ पूजा है। अष्टाक्षर मन्त्र आदि का जप स्वाध्याय है। योग का अर्थ ध्यान है। जो अभिगमन आदि के द्वारा सौ वर्षों तक भगवान् वासुदेव की पूजा करता है, वह क्लेशरहित होकर भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

कालान्तर में राधा तथा कृष्ण का महत्त्व इतना अधिक बढ़ा कि उनके विषय में उपनिषदों की रचना हुई। 'श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषद्' तथा 'राधोपनिषद्'—ये दो उपनिषदें मिलती हैं। राधोपनिषद् में कहा गया है कि माथुरमण्डल में वृन्दावन के बीच सहस्रदलपद्म में श्याम तथा पीत वस्त्र धारण करनेवाले गोविन्द विराजमान हैं। उनके पार्श्व में राधिका विराजमान हैं—

"गोकुलाख्ये माथुरमण्डले वृन्दावनमध्ये सहस्रदलपद्मे षोडशदलमध्ये अष्टदलकेसरे गोविन्दोऽपि श्यामपीताम्बरो द्विभुजो मयूरपिञ्छशिराः वेणुवेत्रहस्तो निर्गुणः सगुणो निराकारः साकारो निरीहः स चेष्टते विराजत इति। पार्श्वे राधिका चेति।"

इसी उपनिषद् के द्वितीय प्रपाठक में बताया गया है कि राधा और कृष्ण का एक आसन है, एक बुद्धि है, एक मन है, एक ज्ञान है, एक आत्मा है—"राधाकृष्णयोरेकमासनम्। एका बुद्धिः। एकं मनः। एकं ज्ञानम्। एक आत्मा।" तृतीय प्रपाठक में निरूपित किया गया है कि चौबीस वन हैं, जो श्रीकृष्ण के नित्यस्थल हैं, जिनमें वे लीला करते रहते हैं—"चतुर्विंशतिवनानि नित्यस्थलानि नानालीलयाधिष्ठाय कृष्णः क्रीडति।" पूर्णानन्दमय कृष्ण का रूप इस प्रकार वर्णित है—"पूर्णानन्दमयः श्रीकैशोरकृष्णः शिखण्डिलम्बितत्रियुतगुञ्जावतंसमणिमयकिरीटशिराः गोरोचनातिलकः कर्णयोर्मकरकुण्डलो वन्यस्रग्वो मालतीदामभूषितशरीरः करे कङ्कणं बाहौ केयूरं पादयोः किङ्किणीं कट्यां पीताम्बरं च धारयन् गम्भीरनाभिकमलः सुवृत्तनासायुगलो ध्वजवज्रादिचिह्नितपादपद्मो महाविष्णुरास्ते।" उन कृष्ण की आद्या प्रकृति नित्य निर्गुण, सभी अलङ्कारों से शोभित, प्रसन्न,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समस्त लावण्य से युक्त राधिका हैं—"तस्याद्या प्रकृती राधिका नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कारशोभिता प्रसन्नाशेष-लावण्यसुन्दरी।"

'श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषद्' में पूर्णानन्द मायारहित पुरुषोत्तम का निर्वचन किया गया है। उन पुरुषोत्तम से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं नारायण, परमात्मा और पुरुषोत्तम हैं— "श्रीकृष्णभगवान् नारायणः परमात्मा पुरुषोत्तमः त्रिगुणरहितः स्वयम्।"

भारतीय दर्शनों में वैष्णव आचार्यों ने कृष्ण को परमतत्त्व माना है और कृष्ण की भक्ति को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। इनमें निम्बार्क-सम्प्रदाय में सबसे पहले कृष्ण और राधा के स्वरूप का निरूपण किया गया है। निम्बार्क ने अपने स्तोत्र 'वेदान्तकामधेनु' में श्रीकृष्ण के वामभाग में विराजमान राधा का स्मरण किया है—

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा।
विराजमानामनुरूपसौभागाम् ॥
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

निम्बार्क-सम्प्रदाय में कृष्ण और राधा की उपासना प्रचलित है। निम्बार्काचार्य ने कहा है कि राधा-कृष्ण की उपासना का रहस्य श्रीसनत्कुमार ने नारद को बताया था। राधा-कृष्ण की जोड़ी वृन्दावन में नित्य विहार करती है। एक ही तत्त्व राधा और कृष्ण के रूप में विद्यमान है। जैसे दो लहरें प्रवाहित होती हुई अलग-अलग दिखायी पड़ती हैं, किन्तु मिलकर एकरूप हो जाती हैं, उसी प्रकार दो रूपों में दिखायी पड़नेवाले कृष्ण और राधा वस्तुतः एक ही हैं—

कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ
राधामुकुन्दौ समभावभावितौ।
यद्वत्सुसम्पृक्तनिजाकृतिध्रुवा-
वाराधयामो व्रजवासिनौ सदा ॥

कृष्ण के साथ राधा की प्रतिमा बनानी चाहिये और दोनों का एक साथ पूजन करना चाहिये। दोनों के पूजन में किसीको न्यून अथवा अधिक नहीं समझना चाहिये। श्रीराधाकृष्णयुगलविग्रह की पूजा-उपासना से मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रतिष्ठित विग्रहों को अर्चावतार कहा गया है। अर्चावतार से उपासक आकृष्ट हो जाता है और उसका चित्त निर्मल हो जाता है, परम भक्ति का उदय होता है, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है और अन्त में भगवद्दर्शन होता है।

मध्वाचार्य के अनुसार भक्ति के अनेक प्रकार हैं। भिन्न-भिन्न भक्तियों के फलों में भेद है। सर्वप्रथम हृदय में श्रद्धा का उदय होता है। यही भक्ति का प्रथम सोपान है। श्रद्धायुक्त होकर मनुष्य शास्त्र आदि का श्रवण करता है, जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है। इससे द्वितीय भक्ति का उदय होता है, जिसे साधन-भक्ति कहा जाता है। इस भक्ति के उत्कर्ष से भगवद्विषयक अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है। अब तृतीय भक्ति का उदय होता है, जिसे परमा-भक्ति कहते हैं। इससे मुक्तिलाभ होता है अर्थात् भगवच्चरणों की प्राप्ति होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्ति के बाद चतुर्थ भक्ति का उदय होता है, जिसे स्वरूप-भक्ति कहते हैं। यह भक्ति साध्य है और परमानन्द-स्वरूपा है।

माध्व-मत के अनुसार मुक्ति की अवस्था में भी जीवों में साम्य नहीं रहता। इनकी आनन्दानुभूति में अन्तर रहता है। जीव अणुचैतन्य-स्वरूप हैं। बद्ध जीव तीन प्रकार के हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। जिस प्रकार बद्ध जीवों में विलक्षणता है, उसी प्रकार मुक्तजीवों में भी है। ब्रह्म आदि देवता, ऋषि, पितृगण तथा गन्धर्व आदि सात्त्विक जीव हैं। श्रेष्ठ मनुष्य भी सात्त्विक जीव हैं। निकृष्ट प्रकृतिवाले मनुष्य राजस जीव हैं। राक्षस, दानवगण आदि तामस जीव हैं। सात्त्विक जीव मुक्ति के योग्य हैं, राजस संसारी हैं और तामस नरक आदि में पड़ते हैं। सभी जीव भगवान् के उदर में विद्यमान हैं। सात्त्विक जीव ज्ञानानन्दमय हैं, राजस जीव में ज्ञान और अज्ञान मिश्रित रूप में विद्यमान हैं और तामस तो अज्ञान में ही निमग्न रहते हैं।

मध्वाचार्य कहते हैं कि जीव को चाहिए कि वह भक्तिपूर्वक परमेश्वर कृष्ण की उपासना करे और उनसे प्रार्थना करे, जिससे संसार के दुःखों से उसकी रक्षा हो सके। जीव को नरक के क्लेशों की भावना करनी चाहिए और पापों से दूर रहना चाहिए। हरि के नाम का सङ्कीर्तन करना चाहिए, निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए और उस कर्म को भगवान् को अर्पित कर देना चाहिए।

श्री विष्णुस्वामी और उनके अनुवर्ती वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत-मत में भगवदनुग्रह से भक्ति की प्राप्ति होती है। यह भक्ति दो प्रकार की होती है। भगवान् के सामान्य अनुग्रह से जो भक्ति मिलती है, वह मर्यादा-भक्ति है। इसका दूसरा नाम वैधी भक्ति है। विशेष अनुग्रह से जिस भक्ति की प्राप्ति होती है, वह है पुष्टि-भक्ति। वल्लभ-दर्शन में पुष्टि-भक्ति का विशेष विवेचन हुआ है। पुष्टि का अर्थ है—भगवान् का विशेष अनुग्रह। भगवान् के विशेष अनुग्रह से सभी प्रकार के फल मिलते हैं और भगवान् का सान्निध्य प्राप्त होता है। पुष्टि-भक्ति की प्राप्ति होने पर भगवान् की नित्यलीला में प्रवेश होता है। नित्यलीला में प्रविष्ट होकर भक्त भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं और आनन्द का अनुभव करते हैं। नित्यलीला में जिन भक्तों का प्रवेश होता है, उनमें तारतम्य रहता है। कोई भक्त के रूप में रहता है, कोई गो के रूप में, कोई पक्षी आदि के रूप में लीला में प्रविष्ट रहता है। पुष्टि-भक्त सायुज्य नहीं चाहते, क्योंकि इस स्थिति में भिन्न रूप न होने के कारण भक्ति का आनन्द नहीं मिल पाता।

श्रीकृष्ण की शरण में जाने से अविद्या की निवृत्ति हो जाती है। अविद्या-रहित जीव अक्षर-ब्रह्म में लीन हो जाता है। इस स्थिति में जीव निराकार रहता है। यही भगवान् का परम धाम है, जिसको प्राप्त कर जीव फिर संसार के बन्धन में नहीं पड़ता। अक्षर-ब्रह्मरूपी धाम के अधिष्ठाता भगवान् पुरुषोत्तम हैं। परम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तो क्षर और अक्षर दोनों से परे हैं। जब तक भगवान् द्वारा जीव का उद्धार नहीं किया जाता, तब तक जीव ब्रह्म में अभिन्न रूप से स्थित रहता है। जब भगवान् जीव का ब्रह्मानन्द से उद्धार करते हैं, तब जीव विरह से अत्यधिक सन्तप्त होता है। इस स्थिति में भगवान् अपनी लीला का अनुभव कराकर विरह का सन्ताप दूर करते हैं। भक्त ज्ञानी की ही भाँति ब्रह्म में लीन होते हैं, किन्तु भक्त की ब्रह्म में जो स्थिति रहती है, वह बहुत समय तक नहीं रहती। भगवान् अपने विशेष अनुग्रह से भक्त को पृथक् करते हैं और तब उसे अपनी लीला का अनुभव कराते हैं। भगवान् ज्ञानी का उद्धार नहीं करते। वह तो ब्रह्म में ऐक्यभाव से अधिष्ठित रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवाहमार्ग, मर्यादामार्ग और पुष्टिमार्ग—ये तीन मार्ग हैं। जो जीव प्रवाहमार्गीय हैं, वे आसुरिक जीव हैं। इन जीवों की देह भजन के अनुकूल नहीं, अपितु प्रतिकूल है। इस जाति की देह में भगवान् का ज्ञान नहीं होता। मर्यादामार्ग पर जो जीव चलते हैं, वे प्रवाहमार्ग के जीवों से भिन्न हैं। मर्यादामार्ग के अनुसार चलने पर ज्ञान की उत्पत्ति होती है। मर्यादामार्गीय और पुष्टिमार्गीय—दोनों प्रकार के जीव दैव हैं; किन्तु इन दोनों में भी भेद है। मर्यादामार्गीय जीव विधि-निषेध के अधीन हैं, किन्तु पुष्टिमार्गीय जीव भगवदनुग्रह से युक्त होते हैं। मर्यादामार्गीय जीवों को अक्षरब्रह्म की प्राप्ति होती है, जब कि पुष्टिमार्गीय जीवों को पुरुषोत्तम की। पुष्टिमार्गीय जीवों की देह भगवत्सेवा के अनुकूल होती है।

प्रवाहमार्गीय जीव भगवान् के मन से, मर्यादामार्गी जीव उनके वाक्य से तथा पुष्टिमार्गीय जीव उनकी देह से उत्पन्न हुए हैं। इससे प्रकट होता है कि प्रवाहसृष्टि का मूल मन है, मर्यादासृष्टि का मूल वाक्य अर्थात् देववाणी है और पुष्टिसृष्टि का मूल भगवान् की देह ही हैं। प्रवाहमार्ग के जीव संसार में बार-बार आते हैं। मर्यादामार्ग दो प्रकार का है—कर्म और ज्ञान। ज्ञानमार्ग का फल अक्षरप्राप्ति है और सकाम कर्म का फल स्वर्ग-प्राप्ति। निष्कामकर्म का फल है—आत्मसुख-प्राप्ति।

चैतन्य-सम्प्रदाय में भी राधा-कृष्ण की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर अवतारणा की गयी है। गौडीय आचार्यों में प्रमुख रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी, गोपालभट्ट आदि ने दर्शन और साहित्य—दोनों क्षेत्रों में जो गवेषणा प्रस्तुत की है, वह संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है। कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु राधा के अवतार थे। चैतन्य ने भक्ति के सम्बन्ध में राय रामानन्द से अनेक प्रश्न किये थे। राय रामानन्द ने प्रेमभक्ति के रहस्य का प्रकाशन किया। उनके अनुसार प्रेमभक्ति पाँच प्रकार की होती है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। इनमें माधुर्य सर्वोत्कृष्ट है। इस स्थिति में भक्त ईश्वर को प्रेमी मानकर प्रेम करता है। गोपियों का कृष्ण के प्रति जो प्रेम है, वह इसी प्रकार का है। राधा का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम सर्वोत्कृष्ट प्रेम का प्रतीक है। भक्त को अपनी सभी कामनाओं का परित्याग कर देना चाहिए। वह ईश्वर से कुछ नहीं चाहता। उसकी भक्ति ही उसके लिए सर्वस्व है। भक्त कृष्ण को अपना एकमात्र आश्रय माने। श्रीकृष्ण की उपासना के अतिरिक्त उसका अन्य कोई कार्य नहीं होना चाहिए। चैतन्य-मत में भक्ति स्वयं मुक्ति है। भक्ति का अर्थ ही है—भगवान् के साथ निवास करना।

गौडीय मत के अनुसार निर्विशेष निर्गुण, ब्रह्म कहा जाता है और सविशेष सगुण, भगवान्। ब्रह्म को अंश माना गया है और भगवान् को अंशी। श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं और वे ब्रह्म से उत्कृष्ट हैं तथा परमतत्त्व हैं। भगवान् में ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन षड्गुणों का निवास है। भगवान् में शक्ति का पूर्ण विकास है, जब कि ब्रह्म में नहीं।

श्रीकृष्ण की लीला के दो प्रकार हैं—अप्रकट और प्रकट। अप्रकट लीला में भी श्रीकृष्ण अपने परिकर-वृन्द के साथ वृन्दावन में नित्यनिवास करते हैं। श्रीकृष्ण दोनों लीलाओं में गोपियों के साथ नित्यविहार करते हैं—चाहे अप्रकट लीला हो अथवा प्रकट। श्रीकृष्ण का राधा तथा गोपियों के साथ नित्यसंयोग है। यदि प्रकट लीला में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण दृष्टिगत नहीं होते, तो वे अप्रकट लीला में उनके साथ विराजमान रहते हैं।

चैतन्य-मत में प्रेम महाभाव माना गया है। प्रेम के पूर्व के ये सोपान हैं—स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव। महाभाव के कई स्तर हैं, जिनमें दो मुख्य हैं—(१) ममैव त्वम्—हे कृष्ण, आप मेरे ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं; (२) तवैवाहम्—हे कृष्ण, मैं आपका ही हूँ। ये दोनों परम मनोरम भाव हैं। गौडीय मत में रति के तीन भेद हैं—साधारणी, समञ्जसा और समर्था। साधारणी रति स्वार्थयुक्त है। कुब्जा की रति इसी कोटि की है। यह मणितुल्य मानी गयी है। समञ्जसा रति में भगवान् में भक्त की आसक्ति कर्त्तव्य-भावना से होती है। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि इस कोटि में आती हैं। यह चिन्तामणितुल्य मानी गयी है। समर्था रति में भक्त का भगवान् में पूर्णतः समर्पण हो जाता है। इस कोटि में व्रजगोपियाँ आती हैं। यह कौस्तुभमणितुल्य है। यह रति गोपीभाव के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। इस स्थिति में भक्त की सभी क्रियाएँ भगवदर्पित हो जाती हैं तथा भगवान् के विरह में व्याकुलता होती है। श्रीकृष्णविषयक रति महाभावरूपा होती है, जब कि सांसारिक रति भावरूपा। चैतन्य-मत में राधा परकीया मानी गयी हैं।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा के विषय में बड़ा सूक्ष्म विवेचन मिलता है। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य हितहरिवंशजी हैं, जो श्रीकृष्ण की मुरली के अवतार माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय में प्रेम ही परमतत्त्व के रूप में मान्य है। प्रेम ही परमात्मा है। यह चार रूपों में विद्यमान है—कृष्ण, राधा, वृन्दावन और सखियाँ। जो कुछ भी दिखायी पड़ रहा है, वह प्रेम का ही चित्र है। कहा जाता है कि हितहरिवंश की दीक्षागुरु श्रीराधा ही थीं। राधा ने हितहरिवंश को स्वप्न में दीक्षा दी थी। 'राधा-सुधानिधि' की 'रसकुल्याटीका' के कर्ता हरिलाल व्यासजी ने लिखा है कि राधा ही सम्प्रदाय का प्रवर्तन करने-वाली हैं और सद्गुरु हैं—"राधैवेष्टं सम्प्रदायैककर्त्ताऽचार्यो राधा मन्त्रदः सद्गुरुश्च।" हितहरिवंशजी ने विट्ठलदास को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने बताया है कि इस सम्प्रदाय की गुरु राधा ही हैं—"जो शास्त्र-मर्यादा सत्य है और गुरु-महिमा ऐसी ही सत्य है तो व्रज नव तरुणि कदम्ब चूड़ामणि श्रीराधे तिहारे स्थापे गुरुमार्ग विषै अज्ञानी को होत है। ताते यह मर्यादा राखनी" (राधावल्लभ-सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य-डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० १०१)। सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यता है कि विशुद्ध प्रेम ही हित है और हित ही ब्रह्म है। प्रेम ही सर्वत्र व्याप्त है। वही प्रियतम है, प्रिया है, सखी है, वृन्दावन है और सबसे परे भी है। चूँकि राधा ही इस सम्प्रदाय की गुरुस्थानीया हैं, अतः राधा का सर्वाधिक महत्त्व है। आचार्य ने लिखा है—

कालिन्दीतटकुञ्जे पुञ्जीभूतं रसामृतं किमपि।
अद्भुतकेलिनिधानं निरवधि राधाभिधानमुल्लसति॥

—राधासुधानिधि, श्लोक १४८

'कालिन्दी-तट के कुञ्ज में राधा नामक एक अनिर्वचनीय रसामृत पुञ्जीभूत हो जाता है, जो अद्भुत केलि का निधान है।'

राधा मधुर तथा उज्ज्वल प्रेम का हृदय हैं, श्रृङ्गारलीला की विचित्रता की परम अवधि हैं। वे भगवान् की पूज्या हैं और स्वामिनी हैं। वे ईशानी और इन्द्राणी हैं, महासुख की मूर्त्ति हैं, परा तथा स्वतन्त्र शक्ति हैं और श्री वृन्दावननाथ की पटरानी हैं। वे मेरी सेव्य हैं—

प्रेम्णः सन्मधुरोज्ज्वलस्य हृदयं श्रृङ्गारलीला कला।
वैचित्री परमावधिर्भगवतः पूज्यैव कापीशता॥
ईशानी च शची महासुखतनुः शक्तिः स्वतन्त्रा परा।
श्रीवृन्दावननाथपट्टमहिषी राधैव सेव्या मम॥

—राधासुधानिधि, श्लोक ७८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधावल्लभ-सम्प्रदाय में प्रेम के सम्बन्ध में नवीन उद्भावनाएँ मिलती हैं। न तो नित्यसंयोग में परम आनन्द है और न नित्यवियोग में ही। प्रेम का सर्वस्व तो तब माना जायगा, जब नित्यसंयोग में भी विरह की उत्कण्ठा हो और नित्यविप्रयोग में भी नित्यसंयोग का आनन्द हो। आचार्य हितहरिवंश की दृष्टि में स्वकीया और परकीया—ये दोनों भाव अपूर्ण हैं। स्वकीया में विप्रयोग नहीं है और परकीया में संयोग नहीं। यहाँ सारस और चकई के प्रेम का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है।

चक्रवाकी चक्रवाक से वियुक्त होने पर भी जीवित रहती है, अतः सारस की दृष्टि में यह प्रेम अपूर्ण है। सारस कहता है कि हे चकई, तुम रात्रि में अपने प्रियतम से अलग रहती हो, कालरात्रि का अन्धकार छाया रहता है, मेघ का गर्जन होता रहता है, बिजली चमकती रहती है, किन्तु तुम पुनः मिलन को आशा लिये प्राण नहीं छोड़ती हो। इस स्थिति में तुम्हें प्राण का परित्याग कर देना चाहिए। मेरी दृष्टि में तुम्हारा प्रेम अपूर्ण है।

सारसी अपने प्रियतम के विरह में अपना शरीर छोड़ देती है। वह अपने प्रियतम के वियोग में एक क्षण भी रहना नहीं चाहती। जो विरह की ज्वाला को नहीं सह सकता, वह प्रेम की तीव्रता को जानता नहीं। ऐसी स्थिति में सारस-सारसी का प्रेम अपूर्ण है, एकाङ्गी है। हितहरिवंश 'प्रेमविरह' की कल्पना करते हैं। इसमें संयोग में भी विरह की भावना विद्यमान रहती है। रूपगोस्वामी ने इसे प्रेमवैचित्र्य की संज्ञा से विभूषित किया है। प्रिय के समीप रहने पर भी विश्लेष के विचार से जो पीड़ा होती है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहा जाता है—

प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षः स्वभावतः।
या विश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेमवैचित्र्यमुच्यते॥

इस भाव को व्यक्त करने के लिए रूपगोस्वामी ने एक मनोहर पद्य दिया है—

आभीरेन्द्रसुते स्फुरत्यपि पुरस्तीव्रानुरागोत्थया।
विश्लेषज्वरसम्पदा विवशधीरत्यन्तमुद्घूर्णिता॥
कान्तं मे सखि दर्शयेति दशनैरुद्गूर्णशस्याङ्कुरा।
राधा हन्त तथा व्यचेष्टत यतः कृष्णोऽप्यभूद् विस्मितः॥

'श्रीकृष्ण राधा के सामने हैं, किन्तु तीव्र अनुराग के कारण राधा विश्लेषज्वर से पीड़ित होती हैं और उनकी बुद्धि भ्रम में पड़ जाती है। वे सखी से कहती हैं—हे सखि, प्रिय को दिखाओ। उनकी ऐसी स्थिति को देखकर कृष्ण भी विस्मित हो जाते हैं।'

राधा और कृष्ण को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। जैसे जल से तरंग को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार 'साँवरे' से 'गोरी' को अलग नहीं किया जा सकता। जो कृष्ण को अच्छा लगता है, वही राधा करती हैं और जो राधा को अच्छा लगता है, वही कृष्ण करते हैं। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में निकुञ्जलीला का प्राधान्य है। कृष्ण तथा राधा की दो लीलाएँ प्रधान हैं—कुञ्जलीला तथा निकुञ्ज-लीला। ये दोनों ही व्रजलीलाएँ हैं। प्रथम लीला बहिरङ्ग है और द्वितीय अन्तरङ्ग। गोपीभाव के अभाव में लीला में प्रवेश नहीं हो सकता। गोपीभाव के लिए आवश्यक है—विषयासक्ति का परित्याग। साधक का स्वरूप इस प्रकार है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) श्रीराधाजी की अनुचरियों में अपने को तुच्छ अनुचरी मानना, (२) श्रीराधाजी की सेविकाओं की सेवा में अपना परम कल्याण समझना, (३) निरन्तर भावना करना कि भगवान् की प्रियतमा श्रीराधा की दासियों की दासी बना रहूँ और राधा-कृष्ण के मिलन के लिए प्रयत्न करता रहूँ। (भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-पं० बलदेव उपाध्याय, पृ० १०३-१०४)

व्रजलीला में आठ सखियाँ प्रधान मानी गयी हैं। ये सखियाँ राधाजी की सेवा करती रहती हैं। इन सखियों के भी यूथ हैं, जिसके कारण इन्हें यूथेश्वरी कहा जाता है। सखियों की दासियाँ मञ्जरी नाम से अभिहित होती हैं। आठ सखियों की सेविका के रूप में आठ मञ्जरियाँ होती हैं—(१) रूपमञ्जरी, (२) जीवमञ्जरी, (३) अनङ्गमञ्जरी, (४) रसमञ्जरी, (५) विलासमञ्जरी, (६) प्रेममञ्जरी, (७) रागमञ्जरी तथा (८) कस्तूरीमञ्जरी। मञ्जरी का अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उसका लक्ष्य होता है राधा-कृष्ण-मिलन। उसीके लिए वह प्रयत्न करती रहती है।

निकुञ्जलीला की अधिकारिणी श्रीराधाजी ही हैं। स्वयं श्रीकृष्ण उक्त लीला में श्रीराधाजी की आराधना करते हैं। भक्त श्रीराधाजी की सेवा में ही अपने जीवन की चरितार्थता समझता है। श्री हितहरिवंश अपने को सखी के रूप में प्रस्तुत करते हुए कामना करते हैं—'मैं कब मध्वरि श्रीकृष्ण के प्रवृद्ध अमृतरस से विचित्र चरित्रों का मधुर-मधुर रीति से गान करके उनके कमनीय केलिभवन का मार्जन करती हुई और चन्दन रस से सेचन करती हुई रससागर में डूब जाऊँगी—

कदा गायं गायं मधुरमधुरीत्या मधुभिद-
श्चरित्राणि स्फारामृतरसविचित्राणि बहुशः।
मृजन्ती तत्केलीभवनमभिरामं मलयज-
च्छटाभिः सिञ्चन्ती रसह्रदनिमग्नास्मि भविता ॥

—राधासुधानिधि, श्लोक २०१

सहज-मत में भी राधा-कृष्ण को आश्रय मानकर दर्शन की अवतारणा की गयी है। रूपगोस्वामी के शिष्य रघुनाथदास गोस्वामी थे। रघुनाथ के शिष्य कृष्णदास कविराज थे, जो मुकुन्ददेव के गुरु थे। महा-महोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज की मान्यता है कि सिद्धमुकुन्ददेव को ही सहज-सम्प्रदाय का प्रवर्तक कहा जा सकता है। सिद्धमुकुन्ददेव के चार शिष्य थे—नृसिंहानन्द, राधारमण, गोकुल बाउल और मथुरानाथ। मुकुन्ददेव राजकुमार थे। कृष्णदास कविराज ने इन्हीं मुकुन्ददेव के द्वारा अपना चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ लिखवाया था। मुकुन्ददेव के शिष्य मुकुन्दरामदास थे, जिन्होंने भृङ्गरत्नावली, आद्यसरस्वतीकारिका आदि ग्रन्थों की रचना की। मुकुन्ददेव के अन्य शिष्य सुन्दरानन्द थे।

सहज-मत में परमतत्त्व सहज मनुष्य है। इसे स्वतःसिद्ध मनुष्य अथवा नित्य मनुष्य भी कहते हैं। यह सहज मनुष्य अप्राकृत नराकार है। यह अद्वैत-तत्त्व नित्ययुगलरूप है अर्थात् कृष्ण-राधा-युगलभाव का आश्रय लेकर अवस्थित है। बाह्य रूप से देखने से प्रतीत होता है कि कृष्ण पुरुष हैं और राधा प्रकृति, किन्तु वस्तुतः ये दोनों मिले हुए हैं और एक ही आत्मा के रूप हैं अर्थात् एक आत्मा और दो रूप हैं। कृष्ण और राधा नित्य-किशोर और नित्यकिशोरी के रूप में नित्यधाम में विराजमान हैं। यह धाम नित्यवृन्दावन, गुप्तचन्द्रपुर, सहजपुर, सदानन्दग्राम आदि नामों से प्रसिद्ध है। नित्यवृन्दावन विरजा नदी के पार स्थित है। विरजा यमुना का ही दूसरा नाम है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहजिया लोग रागानुग मार्ग का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार रागमयी भक्ति के अभाव में राधा-कृष्ण-युगलभाव की उपलब्धि नहीं होती। परम वस्तु देवता नहीं है, ईश्वर नहीं है। वह तो मनुष्य है। मनुष्य-तत्त्व को समझना अत्यधिक कठिन है। मनुष्य की तीन श्रेणियों की बात कही गयी है–योनिसम्भव, अयोनिसम्भव और स्वतःसिद्ध। स्वतःसिद्ध नित्यवृन्दावन में रहते हैं, अयोनिसम्भव गोलोक में निवास करते हैं और योनिसम्भव सर्वत्र रहते हैं। योनिसम्भव ही वर्तमान मनुष्य अथवा 'सहज मनुष्य' है।

सहजिया लोगों के अनुसार मनुष्य की प्रधान वस्तु उसका शरीर है। देह-तत्त्व को न समझ पाने के कारण कुछ भी नहीं किया जा सकता। सहज-मत के अनुसार देह में चार सरोवर हैं—कामसरोवर, मानससरोवर, प्रेमसरोवर और अक्षयसरोवर। प्रथम दो सरोवर मनुष्य के प्रकृतिभाग-वामभाग में हैं और अन्य दो सरोवर पुरुषभाग—दक्षिणभाग में हैं। अक्षयसरोवर का नाम सहस्रदल है। नित्यमनुष्य अथवा परमात्मा अक्षयसरोवर में वास करते हैं। यहाँ न जरा है, न मृत्यु है और न काल ही है।

ब्रह्म भगवान् की अङ्गकान्ति है। वह ज्योतिर्मय है। वही निरञ्जन है। उन्हींमें योगियों का चित्त लगा रहता है, किन्तु इस ब्रह्म को पूर्णब्रह्म नहीं कहा जा सकता। पूर्णब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं। वे नित्य-वृन्दावन में नित्यलीला करते रहते हैं। वे सदा किशोर हैं। ज्योतिर्ब्रह्म से चराचर की सृष्टि होती है, श्रीकृष्ण से नहीं।

सहजिया लोग दो प्रकार की वैष्णव-साधना मानते हैं। एक वैदिक साधना है और दूसरी तान्त्रिक साधना। तान्त्रिक साधना रसतत्त्व की साधना है। यही सहज साधना है। यह अत्यन्त गुह्य विषय है। यह तब तक सिद्ध नहीं हो सकती, जब तक इन्द्रिय-विजय नहीं हो जाती।

प्रकृति की सहायता से ही इस साधना में प्रवेश हो सकता है। नायिका रति तीन प्रकार की मानी जाती है—समर्था, समञ्जसा और साधारणी। कुब्जा आदि की रति साधारणी है, जिसमें श्रीकृष्णदर्शनजन्य अपना सुखप्रधान है। रुक्मिणी आदि की रति समञ्जसा है, जिसमें धर्म की प्रधानता है, फिर भी अपना सुख वर्तमान है। राधा आदि की रति समर्था है, जिसमें श्रीकृष्ण का सुख प्रधान है, अपना नहीं। समर्था रति के कारण ही नित्यवृन्दावन में वास होता है। रससाधना के लिए यही अनुकूल है। जब तक ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठा नहीं होती, तब तक इस भावराज्य में प्रवेश नहीं हो सकता।

रसिकत्व की स्थिति जीवभाव तथा ईश्वरभाव—इन दोनों से परे है। बिन्दु में स्पन्दन रहे अथवा रति स्थिर न हो, तो जीवभाव कहा जाता है। जब बिन्दु का स्पन्दन नहीं होता और रति स्थिर हो जाती है, तब ईश्वरभाव होता है। शुकदेव, सनकादि आजीवन प्रकृति सङ्ग से विमुख रहे हैं और अटलभाव की साधना की है। रसिकत्व की स्थिति इससे परे है।

बिन्दु की सिद्धि के बाद साधकदेह सिद्धदेह हो जाती है। इस सिद्धदेह में रस की अभिव्यक्ति होती है और तब रसिकत्व की स्थिति का उदय होता है। रसिकत्व की अवस्था में प्रकृति के साथ रहने पर भी बिन्दु अटल रहता है। रसिक ही रस का आस्वादन कर सकता है। प्रत्येक जीव रूप का आस्वादन करना चाहता है, किन्तु बिन्दु की सिद्धि न होने के कारण वह आस्वादन नहीं कर पाता तथा उसका यौवन समाप्त हो जाता है। सिद्ध का आश्रय प्रेम और रस है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्यशास्त्र में चार प्रकार की नायिकाओं का उल्लेख मिलता है—पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी तथा हस्तिनी। इनमें रससाधना के लिए पद्मिनी नायिका श्रेष्ठ है। पद्मिनी का दृष्टान्त श्रीराधा हैं, चित्रिणी का रुक्मिणी, शङ्खिनी का चन्द्रावली आदि तथा हस्तिनी का कुब्जा हैं। नायक और नायिका में समान गुण होना चाहिए। गुणों की विभिन्नता होने पर व्यभिचार होता है और दुःख की प्राप्ति होती है। समर्था रति से ही सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि हो जाने पर तो समर्था, साधारणी तथा समञ्जसा में कोई भेद नहीं रह जाता।

साधक की अवस्था में प्रकृतिभाव की अभिव्यक्ति होती है। इसीसे प्रेम की प्राप्ति होती है। इस स्थिति में साधक अपने को प्रकृति समझता है। जब देहान्तर होता है, तब प्रकृति ही पुरुष हो जाती है। प्रकृतिभाव में साधना की जाती है और बाद में पुरुषभाव की अभिव्यक्ति होती है। 'अमृतरत्नावली' में लिखा है—

साधि तत्त्व देहे हइ साधक प्रकृति।
स्वभाव प्रकृति हले तबे रागरति॥
प्रकृति पुरुष हय देहान्तर हले।
रसाश्रय प्रेमाश्रय साधन करिले॥

—श्रीकृष्णप्रसङ्ग, पं० गोपीनाथ कविराज, पृ० २७९–२८२

पुराण आदि तथा तान्त्रिक ग्रन्थों में कृष्ण, राधा, वृन्दावन आदि के सम्बन्ध में जो दार्शनिक मीमांसा प्रस्तुत की गयी है, उसका यहाँ संक्षेप में उपस्थापन उपयोगी होगा। राधा और कृष्ण की लीला के प्रसङ्ग में कहा गया है कि वृन्दावन में एक महापीठ है, जो राधागोविन्द की लीलाभूमि है। इस पीठ के मध्य में माणिक्यमय मण्डप है, जिसके केन्द्र में अष्टकोण योगपीठ है। इसके ऊपर माणिक्यमय सिंहासन पर अष्टदल कमल है, जिसकी कर्णिका तथा केशर-राजि पर श्रीराधागोविन्द की युगलमूर्ति विराजमान है। कमल के अष्टदलों पर ललिता आदि सखियाँ हैं—पूर्व में विशाखा, पश्चिम में ललिता, उत्तर में श्रीमती, दक्षिण में पद्मा, अग्निकोण में शैव्या, नैर्ऋत्य में भद्रा, वायुकोण में श्यामला एवं ईशानकोण में हरिप्रिया। इन आठ शक्तियों के पार्श्वभागों में आठ शक्तियाँ विराजमान हैं—चन्द्रावली, वृन्दा, वदनसुन्दरी, श्रीप्रिया, मधुमती, शशिलेखा, कुञ्जरी एवं सुमुखी। इस योगपीठ की विभिन्न संज्ञायें प्रचलित हैं—आनन्दमण्डप, साम्राज्यमण्डप, सौभाग्यमण्डप, शृङ्गारमण्डप, सुरतमण्डप, श्रीलमण्डप, महामाधुर्यमण्डप और राधासौभाग्यमण्डप। इस मण्डप में राधा और गोविन्द की दिव्यलीला चलती रहती है। जब लीला का पर्यवसान होता है, तब राधा और गोविन्द का पृथक्-पृथक् भान नहीं होता। वे दोनों अखण्ड सत्ता के रूप में स्थिर रहते हैं। श्रीराधा की पाँच प्रकार की सखियाँ हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी तथा परमप्रेष्ठसखी। परमप्रेष्ठसखी प्रियतमा है। ये श्रीराधा की अन्तरङ्ग हैं और संख्या में आठ हैं—ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा, रङ्गदेवी तथा सुदेवी। सभी सखियों का प्रेम राधा और कृष्ण के प्रति समान है।

भगवान् के महापीठ को परिवेष्टित करते हुए अनन्तकोटि गोपियाँ विराजमान हैं। महावृन्दावन में अनेक प्रकार के कुञ्ज हैं। भक्तों को आनन्दित करने के लिए भगवान् की लीला सभी कुञ्जों में चलती रहती है। सभी कुञ्ज स्वतःसिद्ध हैं।

श्रीवृन्दावन में श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड की स्थिति है। यद्यपि दोनों कुण्ड अलग-अलग हैं, किन्तु दोनों का संयोग भी है। पूर्व में श्यामकुण्ड है और पश्चिम में राधाकुण्ड। दोनों कुण्डों का योग करानेवाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक सेतु है, जिससे एक का जल दूसरे में जाता है। कुण्डों के जल में विभिन्न प्रकार के कमल खिले हुए हैं और अनेक प्रकार के पक्षी क्रीड़ा कर रहे हैं। कुण्डों के चारों ओर वन हैं, जो वृक्षों, लताओं और पुष्पों से शोभित हो रहे हैं। राधाकुण्ड की आठ दिशाओं में आठ कुञ्ज हैं—पूर्व में कदम्बकुण्ड, पश्चिम में आम्रकुञ्ज, दक्षिण में चम्पककुञ्ज और उत्तर में गोकुलकुञ्ज है। आग्नेय आदि कोणों में भी चार माधवीकुञ्ज हैं।

राधाकुण्ड की भाँति श्यामकुण्ड में भी आठ नर्मसखियों के कुञ्ज हैं। श्यामकुण्ड के वायुकोण में मानस पावनघाट है, जिसमें राधा स्नान करती हैं। उत्तर दिशा के घाट का नाम मधुरघाट है, जिसमें ललिता स्नान करती हैं। ईशानकोण में उज्ज्वलघाट है, जिसमें विशाखा स्नान करती हैं।

गोवर्धन पर्वत अप्राकृत लीला का क्षेत्र है। यहाँ से मानसगङ्गा निकलती हैं। वृन्दावन में प्रवाहित होनेवाली यमुना का विशेष महत्त्व है। जब तक यमुनाभेद नहीं हो जाता, तब तक यमुना में प्रवेश नहीं होता।

राधा और कृष्ण एक ही हैं। राधा कृष्ण के अभाव में अपूर्ण हैं और कृष्ण राधा के अभाव में अपूर्ण रहते हैं। श्रीकृष्ण राधाविरहित होने पर अपूर्ण हैं, अतः कामजय में असमर्थ हैं। जब वे राधा के साथ रहते हैं, तब मदनमोहन (काम को मोहित करनेवाले) कहे जाते हैं और राधा के साथ न रहने पर विश्व को मोहित करते रहने पर भी वे मदनमोहित (काम से मोहित) रहते हैं, अतः कामजय करने में समर्थ नहीं होते। कामजय के लिए आवश्यक है कि शक्ति का साहचर्य हो। कृष्ण अप्राकृत काम हैं और राधा अप्राकृत रति।

राधा और कृष्ण का विग्रहभेद योगमाया के प्रभाव से होता है। वे लीला के निमित्त ही दो रूपों में विराजमान रहते हैं। जिसे अद्वैत रसतत्त्व कहा जाता है, वह राधा और कृष्ण की सुषुप्ति है। इस महा-सुषुप्ति में कोई विश्लेष नहीं रह जाता। जब सुषुप्ति का भङ्ग होता है, तब राधा का कृष्ण के अङ्ग से विश्लेष हो जाता है और जाग उठती हैं। उसी समय कृष्ण भी जाग उठते हैं। अब अनन्तलीलामय व्रजधाम भी स्फुटित हो जाता है। गोकुल, वृन्दावन और गोलोकधाम—सभी राधा के विलास से सम्भूत होते हैं। व्रजभूमि श्रीराधा का परिणाम है।

राधा-कृष्ण की लीला अनादिकाल से चली आ रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी। श्रीकृष्ण से राधा का स्फुरण होता है। श्रीकृष्ण रसराज हैं। कृष्ण बिन्दु हैं और राधा विसर्ग। बिन्दु गतिहीन है। विसर्ग का स्थितिभाव बिन्दु है और बिन्दु का गतिभाव विसर्ग। राधाकृष्ण का युगलस्वरूप ही अहंभाव है। अ शुद्धचित्स्वरूप है और ह शुद्धचित्कलास्वरूप। अ कृष्ण हैं और ह राधा। ह अ का आश्रय लेकर विराजमान है। शृङ्गारलीला में लीला का परम उत्कर्ष है, जिसका पूर्णविकास रासलीला में होता है। राधातन्त्र के अनुसार षोडश गोपियाँ षोडश स्वरों की मूर्तियाँ हैं। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि जब तक त्रिपुरसुन्दरी का रहस्य नहीं प्राप्त होता, तब तक राधाकृष्ण-तत्त्व में प्रवेश नहीं हो सकता।

प्रसिद्धि है कि श्रीकृष्ण ने उपमन्यु से पाशुपतयोग की शिक्षा प्राप्त की थी। यह भी उल्लेख मिलता है कि श्रीकृष्ण ने त्रिपुरसुन्दरी की आराधना की थी और उनको प्रसन्न किया था। भगवती ने उन्हें आदेश दिया था कि शक्ति के साथ ही साधना करने से ब्रह्म-ज्ञान हो सकता है। भगवती के आदेश से कृष्ण ने राधा का वरण किया था। उल्लेख मिलता है कि कृष्ण ने कुलाचार की साधना से पूर्णत्व की प्राप्ति की थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्मपुराण में कथा आई है कि गायत्री ने स्वयं गोपीभाव प्राप्त करके कृष्ण का भजन किया था। अनेक मुनिजन भी गोपीभाव को प्राप्त हुए थे। ऐसी अनेक गोपियाँ पति आदि की इच्छा से घर में रहने के कारण रास में योग नहीं दे पाती थीं और देह का परित्याग कर देती थीं। तब वे अप्राकृत देह से महारास में योग देती थीं।

कृष्णावतार के सम्बन्ध में एक रहस्य है। कृष्णावतार किसी-न-किसी ब्रह्माण्ड में होता रहता है। कोई ऐसा समय नहीं है, जब कृष्ण का अवतार न हो। जिस ब्रह्माण्ड में कृष्ण की लीला प्रकट रहती है, उस ब्रह्माण्ड में भक्तजन गोपकन्या के रूप में जन्म लेते हैं और लीला का आनन्द लेते हैं। गोपियों की दो श्रेणियाँ हैं--यौथिकी (यूथबद्ध) और अयौथिकी (जो यूथबद्ध नहीं हैं)। यौथिकी की दो श्रेणियाँ हैं—मुनि और उपनिषद्। अयौथिकी के भी दो भेद हैं—प्राचीन और नवीन। ये सभी साधिका हैं, सिद्धा नहीं। द्वारका में कृष्ण की जो सोलह हजार रानियाँ बतायी जाती हैं, उनमें १०८ श्रेष्ठ हैं। इनमें प्रत्येक की सहस्र-सहस्र सखियाँ और दासियाँ हैं। इनमें जिनके रूप, गुण आदि महिषी के समान हैं, वे सखीपदवाच्य होती हैं और जिनमें रूप आदि की दृष्टि से कुछ न्यूनता है, वे दासीपदवाच्य होती हैं। महिषीवर्ग में सत्यभामा, जाम्बवती, अर्कनन्दिनी, शैव्या, रुक्मिणी, भद्रा, कौशल्या तथा माद्री—ये आठ प्रधान हैं। इनमें भी रुक्मिणी और सत्यभामा प्रधान हैं। ऐश्वर्यांश में रुक्मिणी और सौभाग्यांश में सत्यभामा उत्कृष्ट हैं। जो गोकुल-कन्याएँ श्रीकृष्ण को पतिरूप में मानकर उनकी उपासना करती थीं, वे स्वकीया कही जाती हैं। उनका गन्धर्वरीति से श्रीकृष्ण के साथ विवाह हुआ था। जो अपने तीव्र अनुराग के कारण श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं, वे परकीया कही जाती हैं। वे न तो इहलोक की अपेक्षा करती हैं और न परलोक की ही।

गोकुल की विवाहित स्त्रियों ने कभी भी अपने पतियों का सङ्गम नहीं प्राप्त किया। उनके पतियों को भी इस अभाव की अनुभूति नहीं हुई। कुछ आचार्यों का मत है कि यद्यपि गोपियों के पति शरीरधारी थे, किन्तु उनमें कामविकार नहीं होता था। किसी भी गोपी को पुष्पोद्गम नहीं होता था। यह योगमाया का प्रभाव था।

पुराणों में राधा-कृष्ण की लीलाएं चित्रित हुईं, जिनसे भारतीय वाङ्मय का सांस्कृतिक और दार्शनिक धरातल तैयार हुआ। यमुना, गोवर्धन, वृन्दावन, मथुरा आदि के वैशिष्ट्य से राधाकृष्ण की लीलाएँ विशेषतः समुन्मीलित हुई। यमुना के कुञ्जों में समुल्लसित केलियों का वर्णन कवियों ने किया। अनेक स्थल उद्दीपन के रूप में चित्रित हुए और साहित्य के लिए सामग्री पुञ्जीभूत हो गयी। इस सारी सामग्री को दार्शनिक धरातल प्रदान किया गया। वृन्दावनधाम इस भूतल पर विद्यमान न होकर एक अलौकिक धाम हो उठा, जहाँ नित्यलीला होती रहती है और परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने नित्यरूप में विद्यमान रहते हैं।

भक्तों ने श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा की अनेक क्रीड़ाओं का उल्लेख किया है। उनकी क्रीड़ा और विशेष रूप से रास का अत्यधिक महत्त्व रहा है। मथुरा और वृन्दावन की भूमि कृष्ण-भक्तों के लिए कितनी पावन है इसका अनुमान भावसिद्ध प्राचीन भक्तों की रचनाओं, उनके अलौकिक चरितों तथा उन पुण्यस्थलों पर जाकर भक्तों की अनुरक्ति को देखकर लगाया जा सकता है। व्रज की गलियों में विचरण करनेवाले भक्तों के मुख से राधे-राधे की जो मधुर ध्वनि सुनायी पड़ती रहती है, वह किसे अपनी ओर बरबस आकृष्ट नहीं करती कितने भक्त ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हें लोकव्यवहार का भान नहीं रहता। यमुना, लताकुञ्ज,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोवर्धन आदि की महिमा में जिस साहित्य की सर्जना हुई है, वह रसपेशल और हृदयावर्जक है। संस्कृत के कवियों के लिए ये सभी प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

राधा-कृष्ण के भक्तों ने अपने आराध्य की लीलाओं का वर्णन महाकाव्य, नाटक, चम्पू और स्तोत्रों में किया है। वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, सूरदास प्रभृति भक्तों ने राधा-कृष्ण की मधुरिमा का छककर पान किया था, फलतः उनकी रचनाओं में इनकी लीलाएँ अवतीर्ण हुईं और सहृदयों को आनन्द देने लगीं।

जिस प्रकार राधा-कृष्ण की लीलाएँ मधुर थीं, उसी प्रकार उनके भक्तों का चित्त भो मधुर हो उठा। भक्तों ने इसके लिए मधुर शैली और भाषा की योजना की और मधुर कल्पनाओं से मधुर कथाओं और क्रीड़ाओं का संसार बना लिया। नदी, पर्वत, वनस्थली, निकुञ्ज और ग्वालबालसहित सारा परिवार मधुरिमा में डूब गया और परिणति अनिर्वचनीय मधुर रास में हुई। गोविन्द, माधव, हरि, गोपाल, कृष्ण, राधा, रास, अमृत, प्रेम, सिन्धु, सागर, सौन्दर्य, मञ्जरी, लता, लीला, केलि, विलास, वल्लरी, कुञ्ज आदि सभी अमर हो गये। वैष्णव आचार्यों तथा उनके अनुयायियों ने राधा-कृष्ण-तत्त्व का ऐसा उन्मीलन किया कि दार्शनिक, कवि, भक्त—सभी इनकी लीलाओं का पान करने में जुट गये, फलतः दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व चिन्तन-मनन हुआ। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग की दुन्दुभि बजी और भक्तों पर भगवदनुग्रह की वर्षा होने लगी। रूपगोस्वामी ने उज्ज्वलनीलमणि की रचना करके भक्तिरस की प्रतिष्ठा की। इसके आधार पर साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ तथा राधाकृष्ण की लीलाएँ ही साहित्य के सौन्दर्यों के लिए उपमान बन गयीं। इतना ही नहीं, जीवगोस्वामी ने हरिनामामृतव्याकरण की रचना की, जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण-सम्बन्धी शब्दों की सिद्धि की। वल्लभाचार्य ने पुरुषोत्तमसहस्रनाम की रचना की, जिसमें कृष्ण के एक हजार नाम दिये गये हैं। वल्लभ आदि को श्रीकृष्णनाम सर्वाधिक प्रिय है, अतः उन्होंने श्रीकृष्णनाम का प्रयोग सबसे पहले किया है—"श्रीकृष्णः सच्चिदानन्दो नित्यलीलाविनोदकृत्"—पुरुषोत्तमसहस्रनाम, श्लोक ९।

राधा-कृष्ण की लीलाएँ मोहक रही हैं, इसीलिए समाज इनसे अत्यधिक प्रभावित हुआ। इसका परिणाम हुआ कि रासलीला का सर्वत्र प्रभाव पड़ा। कृष्ण दार्शनिक तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हुए और उनको आधार बनाकर दर्शनों का उद्भव हुआ। पुष्टि-सम्प्रदाय के आचार्यों ने कृष्णविषयक अनेक स्तोत्रों की रचना की, जिनका पृथक् अध्ययन अपेक्षित है। उन स्तोत्रों के अध्ययन से कृष्ण की महिमा के अनेक पक्षों का उन्मीलन हो सकेगा। यह भी ज्ञात हो सकेगा कि कृष्ण की लीला के कौन-कौन से पक्ष मानव-मन को अधिक प्रिय लगते हैं और उनसे मनुष्य का अधिक कल्याण हो सकता है। चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण की लीलाओं का गान किया और कीर्तन की परम्परा चलायी। इस परम्परा ने भारतीय मानस को आन्दोलित कर दिया। इससे सामान्य मानव भी दार्शनिक ऊँचाई तक पहुँचने में समर्थ हुआ। यहाँ ज्ञान का महत्त्व नहीं रहा, यहाँ तो प्रेम और अनुराग की महिमा प्रतिष्ठित हुई और जो इस मार्ग पर चला, वह कृष्णमय हो गया। इस धारा में अवगाहन करके भारतीय जनता कृतार्थ हुई।

राधा-कृष्ण के भक्तों ने राधा-कृष्णविषयक साहित्य की रचना की और असंख्य भक्त ऐसे भी हुए, जो आराध्य युगल की महिमा और लीला का गुणगान करते रहे। उन्होंने न तो किसी ग्रन्थ की रचना की और न तो अपने यश के लिए कोई काम किया, अतः हम उनके विषय में कुछ भी नहीं जानते। एक बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निश्चित है कि ऐसे भक्तों का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है, क्योंकि हमारा समाज परम्परा से अत्यधिक प्रभावित होता है। साहित्य की अपेक्षा परम्परा में प्रचलित धारणाओं का व्यापक प्रभाव होता है, राधा-कृष्ण की लीलाओं को चित्रित करनेवाले स्थलों का भी निर्माण हुआ। इनके माध्यम से भी राधा-कृष्ण के चरित का प्रचार-प्रसार हुआ।

न केवल वल्लभ, निम्बार्क, मध्व आदि के अनुयायियों ने ही श्रीकृष्ण-राधा की महिमा गायी है, अन्य सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भी इस मधुर युगल का स्मरण किया है और अपने अभीष्ट के लिए प्रार्थना की है। विश्वनाथ न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ कारिकावली में श्रीकृष्ण की स्तुति की है—

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय॥

'नये मेघ की कान्तिवाले, गोपवधुओं के दुकूलों को चुरानेवाले, संसारवृक्ष के बीज उन श्रीकृष्ण को नमस्कार है।'

रामचन्द्र जैन थे। उनका समय १२वीं शताब्दी है। वे प्रबन्धशतकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। वे आत्मश्लाघी थे और अन्य कवियों की निन्दा करते थे। उनकी ४७ रचनाओं के नाम मिलते हैं। उन्होंने शास्त्र, काव्य और रूपकों की रचना की है। 'नाट्यदर्पण', 'कुमारविहारशतक', 'द्रव्यालङ्कार', 'सत्यहरिश्चन्द्र', 'नलविलास', 'निर्भयभीमकायोग', 'कौमुदीमित्रानन्द', 'रघुविलास', 'मल्लिकामकरन्द' आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। रामचन्द्र ने यादवाभ्युदय नामक नाटक की रचना की। यह नाटक नहीं मिलता, किन्तु इसके उद्धरण नाट्यदर्पण में मिलते हैं। यादवाभ्युदय में कृष्ण द्वारा कंस, जरासन्ध आदि के वध की कथा वर्णित है। अन्त में श्रीकृष्ण का अभिषेक दिखाया गया है। भरत वाक्य इस प्रकार है—

कल्याणं भूर्भुवः स्वः प्रसरतु विपदः प्रक्षयं यान्तु सर्गः
सन्तः श्लाघां भजन्तामपचयमयतां दुर्मतिर्दुर्जनानाम्।
धर्मः पुष्णातु वृद्धि सकलयदुमनः कौरवो रामचन्द्रः
प्राप्य स्वातन्त्र्यलक्ष्मीं मुदमथ वहतां शाश्वतीं यादवेन्द्रः॥

यद्यपि हम यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि रामचन्द्र कृष्ण के भक्त थे, किन्तु इतना तो कह सकते हैं कि कृष्ण की कथा में उनकी अनुरक्ति थी, जिसके कारण उन्होंने यादवाभ्युदय की रचना की।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में श्रीकृष्णविषयक श्लोक मिलते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण की लीलाएँ काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के प्रकाशन के लिए उपयोगी थीं। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन और लोचनकार अभिनवगुप्त की विलक्षण प्रतिभा से साहित्य-जगत् प्रकाशित हो रहा है। उन्होंने श्रीकृष्णविषयक श्लोकों को उद्धृत कर श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का परिचय दिया है।

आनन्दवर्धन शैव-आचार्य हैं। उन्होंने स्वयं कृष्ण के विषय में श्लोक की रचना की है:

श्लाघ्याशेषतनुं सुदर्शनकरः सर्वाङ्गलीलाजित-
त्रैलोक्यां चरणारविन्दललितेनाक्रान्तलोको हरिः।
बिभ्राणां मुखमिन्दुरूपमखिलं चन्द्रात्मचक्षुर्दधत्
स्थाने य स्वतनोरपश्यदधिकां सा रुक्मिणी वोऽवतात्॥

—ध्वन्यालोक २।२१ के अन्तर्गत श्लोक।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जिनका हाथ ही सुन्दर है (अथवा हाथ में सुदर्शन चक्र है), जिन्होंने अपने चरणारविन्द की क्रीड़ा से तीनों लोकों को आक्रान्त कर लिया है, जो चन्द्ररूप नेत्र को धारण करते हैं, वे भगवान् विष्णु प्रशंसनीय सकल शरीरवाली, सकल अङ्गों की लीला से तीनों लोकों को जीतनेवाली जिसको अपने शरीर से उत्कृष्ट समझा, वे रुक्मिणी आप लोगों की रक्षा करें।'

यहाँ व्यतिरेक की छाया का अनुग्राहक श्लेष है, जो वाच्यरूप में प्रतीत हो रहा है—"अत्र च वाच्यतयैव व्यतिरेकच्छायानुग्राही श्लेषः प्रतीयते।"

आनन्दवर्धन ने स्वरचित श्लोक के अतिरिक्त अन्य श्लोक भी उद्धृत किये हैं—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेमं भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्नस्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः॥

'हे मित्र, गोपियों के विलास-सुहृद् तथा राधा की केलियों के साक्षी, कालिन्दी के तट के उन लतागृहों का कुशल है न ! अब तो कामशय्या के निर्माणहेतु कोमल पल्लवों का उपयोग न होने के कारण वे (पल्लव) श्यामल कान्ति से रहित होकर सूख जाते होंगे।'

यहाँ द्वारका में निवास करनेवाले कृष्ण ने उद्धव से पूछा है। गोप (उद्धव)-दर्शन से कृष्ण का संस्कार प्रबुद्ध हो उठता है तथा उनका रतिभाव, जो उनके औत्सुक्य से युक्त है, आलम्बन और उद्दीपन के स्मरण से प्रबुद्ध हो जाता है—

"एवं तं दृष्ट्वा गोपदर्शनप्रबुद्धसंस्कार आलम्बनोद्दीपनविभावस्मरणात् प्रबुद्धरतिभावमात्मगतमौत्सुक्यगर्भमाह द्वारकागतो भगवान् कृष्णः।" (ध्वन्या० २।५ पर लोचन।) उक्त श्लोक में अचेतन पदार्थ का प्राधान्य है, किन्तु चेतन पदार्थ की योजना है ही।

आनन्दवर्धन द्वारा उद्धृत अधोलिखित श्लोक में श्लेष के माध्यम से माधव और शिव की स्तुति को गयी है—

येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्कायः पुरा स्त्रीकृतो
यश्चोद्वृत्तभुजङ्गहारवलयो गङ्गां च योऽधारयत्।
यस्याहुः शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्यं च नामामराः
पायात् स स्वयमन्धकक्षयकरस्त्वां सर्वदो माधवः॥

—ध्वन्या० २।२१ के अन्तर्गत श्लोक

'जिस अजन्मा माधव ने शकट का नाश किया, जो दानवों को जीतनेवाले हैं, जिन्होंने पुराकाल में अपने शरीर का स्त्रीरूप बनाया, जिन्होंने मदयुक्त कालिय को मारा, जिसका शब्द (अकाररूप) में लय हो जाता है, जिन्होंने पर्वत (गोवर्धन) और पृथ्वी को धारण किया, चन्द्रमा का मथन करनेवाले राहु के शिर को काटनेवाले जिनका देवता लोग स्मरण किया करते हैं, जो सब कुछ देनेवाले हैं, जिन्होंने अन्धकजनों को द्वारका में बसाया, वे (कृष्ण) तुम्हारी रक्षा करें।'

इसका दूसरा अर्थ शिवपरक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ध्वन्यालोक' २।२१ की वृत्ति में आया हुआ यह श्लोक कितना मनोरम है—

दृष्ट्या केशव गोपरागहृतया किञ्चिन्न दृष्टं मया
तेनैव स्खलितास्मि नाथ पतितां किं नाम नालम्बसे।
एकस्त्वं विषमेषु खिन्नमनसां सर्वाबलानां गति-
र्गोप्यैवं गदितः सलेशमवताद् गोष्ठे हरिर्वश्चिरम्॥

'हे कृष्ण, गायों से उत्थित धूलि से दृष्टि के अवरुद्ध होने के कारण (केशव के प्रति अनुराग के कारण आकृष्ट हुई दृष्टि के कारण) मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ा और मैं गिर पड़ी (मेरा चरित्र खण्डित हो गया), अतः हे नाथ, गिरी हुई मुझे क्यों सहारा नहीं दे रहे हैं (मेरे प्रति पति-जैसा व्यवहार क्यों नहीं कर रहे हैं), क्योंकि विषम स्थलों में खिन्न चित्तवाली सभी अबलाओं (विषम बाणोंवाले काम के द्वारा खिन्न चित्तवाली अबलाओं) के एकमात्र गति आप ही हैं। इस प्रकार गोपी के द्वारा गोशाला में श्लिष्ट वचनों से सम्बोधित हरि (कृष्ण) आप लोगों की दीर्घकाल तक रक्षा करें।'

आनन्दवर्धन ने प्रतिपादित किया है कि यदि गुणीभूतव्यङ्ग्य का पर्यालोचन रसादि की दृष्टि से किया जाय, तो वह ध्वनिरूप हो जाता है—

प्रकारोऽयं गुणीभूतव्यङ्ग्योऽपि ध्वनिरूपताम्।
धत्ते रसादितात्पर्यपर्यालोचनया पुनः॥

—ध्वन्या० ३।४०

इस कारिका की वृत्ति में आनन्दवर्धन ने कृष्णविषयक श्लोक उद्धृत किया है—

दुराराधा राधा सुभग यदनेनापि मृजत-
स्तवैतत् प्राणेशाजघनवसनेनाश्रु पतितम्।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरमहे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुनयेष्वेव मुदितः॥

'हे सुभग! यद्यपि आप अपनी प्राणेश्वरी के जघनवस्त्र से गिरे हुए आँसू पोंछ रहे हैं, फिर भी राधा को प्रसन्न करना कठिन है। स्त्री का चित्त कठोर होता है। उपचार व्यर्थ हैं, बन्द कीजिए। अनुनय के प्रसङ्ग में इस प्रकार सम्बोधित कृष्ण आप लोगों का कल्याण करें।'

'काव्यप्रकाश' में भी श्रीकृष्णविषयक श्लोक मिलते हैं। अधोलिखित श्लोक गुणीभूतव्यङ्ग्य के प्रसङ्ग में उद्धृत है—

गच्छाम्यच्युतदर्शनेन भवतः किं तृप्तिरुत्पद्यते
किं त्वेवं विजनस्थयोर्हतजनः सम्भावयत्यन्यथा।
इत्यामन्त्रणभङ्गिसूचितवृथावस्थानखेदालसाम्
आश्लिष्यन् पुलकोत्कराञ्चिततनुर्गोपीं हरिः पातु वः॥

—काव्यप्रकाश, उदाहरण १२७

'हे अच्युत (कृष्ण), मैं जा रही हूँ। आपके दर्शन से क्या तृप्ति हो रही है? प्रत्युत हम लोगों के एकान्त में रहने से दुर्जन अन्यथा सम्भावना करेंगे। इस प्रकार सम्बोधन की भङ्गिमा से सूचित किये गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यर्थ अवस्थान की खिन्नता से अलसाई हुई गोपी का रोमाञ्च से युक्त शरीरवाले आलिङ्गन करते हुए कृष्ण आप लोगों की रक्षा करें।'

कृष्णविषयक अन्य श्लोक इस प्रकार है—

स पीतवासाः प्रगृहीतशार्ङ्गो मनोज्ञभीमं वपुराप कृष्णः।
शतह्रदेन्द्रायुधवान्निशायां संसृज्यमानः शशिनेव मेघः॥

—काव्यप्रकाश, उदाहरण ५८९

'पीतवस्त्र तथा शार्ङ्गधनुष धारण करने के कारण मनोरम तथा भयानक शरीरवाले कृष्ण रात्रि में चन्द्रमा से संसृष्ट उस मेघ की भाँति लग रहे हैं, जो विद्युत् तथा इन्द्रधनुष से युक्त है।'

'साहित्यदर्पण' में भी कृष्णविषयक श्लोक प्राप्त होते हैं। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने स्वरचित श्लोक भी उद्धृत किया है, जिससे प्रकट होता है कि वे कृष्ण के भक्त थे। उनके द्वारा विरचित यह श्लोक कितना सुन्दर है—

स्वामी मुग्धतरो वनं घनमिदं बालाहमेकाकिनी
क्षोणीमावृणुते तमालमलिनच्छाया तमःसन्ततिः।
तन्मे सुन्दर मुञ्च कृष्ण सहसा वर्त्मेति गोप्या गिरः
श्रुत्वा तां परिरभ्य मन्मथकलासक्तो हरिः पातु वः॥

—साहित्यदर्पण ३।२६६ के अन्तर्गत श्लोक

गोपी कह रही है, 'मेरा रास्ता छोड़ दीजिए। मेरे स्वामी भोले-भाले हैं, यह वन घना है, मैं बाला अकेली हूँ, तमाल की भाँति काला अन्धकार पृथ्वी को ढँकता जा रहा है। कृष्ण यह सब सुन लेते हैं और गोपी को अपने आलिङ्गनपाश में बाँध लेते हैं। ऐसे कामकलाव्यसनी कृष्ण आप सबकी रक्षा करें।'

उल्लेख अलङ्कार के उदाहरण में अधोलिखित श्लोक उद्धृत किया गया है—

प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरिति वृद्धैरधीश इति देवैः।
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहि योगिभिर्देवः॥

—साहित्यदर्पण १०।३७ के अन्तर्गत

'भगवान् कृष्ण को गोपियों ने प्रियतम समझा, नन्द आदि वृद्धों ने शिशु समझा, देवताओं ने ईश्वर समझा, भक्तों ने नारायण समझा तथा योगियों ने ब्रह्म समझा।'

कृष्ण-विषयक एक अन्य उदाहरण भी सुन्दर है—

देवः पायादपायान्नः स्मेरेन्दीवरलोचनः।
संसारध्वान्तविध्वंसहंसः कंसनिषूदनः॥

—साहित्यदर्पण १०।९८ के अन्तर्गत

'विकसित नीलकमलसदृश नेत्रोंवाले और संसाररूपी अन्धकार के विध्वंस के लिए सूर्य वे कंसारि भगवान् कृष्ण सभी संकटों से हमारी रक्षा करें।'

'साहित्यदर्पण'कार ने कृष्णविषयक माघकृत श्लोक भी उद्धृत किये हैं।

अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी श्रीकृष्ण-राधा-विषयक श्लोक मिलते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुभाषितसङ्ग्रहों में भी श्रीकृष्णराधा-विषयक श्लोक उपलब्ध होते हैं। श्रीधरदास-कृत 'सदुक्ति-कर्णामृत' (१२वीं शताब्दी) में उद्धृत पद्य में गोपीसन्देश की झलक मिलती है—

पान्थ द्वारवतीं प्रयासि यदि हे तद् देवकीनन्दनो
वक्तव्यः स्मरमोहमन्त्रविवशा गोप्योऽपि नामोज्झिताः।
एताः केतकगर्भधूलिपटलैरालोक्य शून्या दिशः
कालिन्दीतटभूमयोऽपि तरवो नायान्ति चिन्तास्पदम्॥

गोपियाँ कहती हैं, 'हे कृष्ण ! यदि द्वारका जा रहे हैं, तो देवकीनन्दन से कहना कि काम के मोहन-मन्त्र से विवश हुई गोपियों को तो आपने छोड़ ही दिया, किन्तु केतकी की गर्भधूलि से सूनी दिशाओं को देखकर क्या आपको यमुना-तट की भूमि और वृक्षों की याद नहीं आती ?'

सदुक्तिकर्णामृत का एक अन्य मनोरम श्लोक उद्धृत है—

मथुरापथिक मुरारेरुद्गेयं द्वारि वल्लवीवचनम्।
पुनरपि यमुनासलिले कालियगरलानलो जयति॥

'हे मथुरा के पथिक ! कृष्ण के द्वार पर जाकर गोपियों का यह वचन कह देना कि कालिय के विष की आग यमुना के जल में फिर जलने लगी है।'

'सदुक्तिकर्णामृत' में लक्ष्मणसेन, केशवसेन, उमापतिधर, शरण और गोपक के श्लोक मिलते हैं। इनमें कृष्ण का वर्णन प्राप्त होता है।

सायण-कृत 'सुभाषितसुधानिधि' में भी कृष्ण-विषयक अनेक श्लोक मिलते हैं। अधोलिखित श्लोक में उनकी बाललीला का वर्णन है—

कालिन्दीपुलिनोदरेषु मुसली यावद्गतः क्रीडितुं
तावत्कर्बुरितं पयः पिब हरे वर्धिष्यते ते शिखा।
इत्थं बालतया प्रतारणवशः श्रुत्वा यशोदागिरः
पायाद्वः स शिखां करेण विमृशन् क्षीरेऽर्धपीते हरिः॥

—सुभाषितसुधानिधि, पृ० १७

'बलराम यमुना-तट पर खेलने चले गये। तब माता यशोदा ने कृष्ण से कहा कि हे कृष्ण ! दूध पी लो, जिससे तुम्हारी चोटी बढ़ जाय। यशोदा का यह वचन सुनकर दूध आधा पीकर कृष्ण अपनी चोटी का स्पर्श करने लगे। ऐसे कृष्ण आप लोगों की रक्षा करें।'

कृष्ण अपने हाथ से अपना चरण अपने मुख में कर लेते हैं। उसका सुन्दर वर्णन इस श्लोक में मिलता है—

आताम्रपादमवलम्ब्य करेण कृष्णः
संयोजयन्निजमुखे ददतात् सुखं वः।
त्रैविक्रमाङ्घ्रिजितबाह्यसमस्तलोकः
कुक्षिप्रविष्टभुवनान्यपि मातुकामः॥

—सुभाषितसुधानिधि पृ० १५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सुभाषितसुधानिधि' में उद्धृत कृष्णविषयक अन्य श्लोक ये हैं—

आकल्पं श्रियमातनोतु भवतामम्भोधरश्यामलं
वन्द्यं तज्जगतामनादिनिधनं श्रीवल्लभाख्यं महः।
स्वैरं यस्य मुखाम्बुजे परिलसच्छृङ्गारलीलारस-
स्रोतस्युन्मदमीनविभ्रमजुषः खेलन्ति गोपीदृशः॥

—सुभाषितसुधानिधि पृ० १३

पाणौ पायसभक्तमाहितरसं बिभ्रन्मुदा दक्षिणे
सव्ये शारदचन्द्रमण्डलनिभं हय्यङ्गवीनं दधत्।
कण्ठे कल्पितपुण्डरीकनखमप्युद्दामदीप्ति वहन्
देवो दिव्यदिगम्बरो दिशतु वः सौख्यं यशोदाशिशुः॥

—सुभाषितसुधानिधि पृ० १३

को वा घोषितमातनोति कलशे मातर्वदेतीरिते
भूतं मा स्पृश मा स्पृशेति कथितो मात्रा हठात् पाणिना।
तस्यान्तर्नवनीतमण्डममलं प्रोद्धृत्य भूतेन मे
दत्तं दत्तमिति प्रमोदभरितो नृत्यन् हरिः पातु वः॥

—सुभाषितसुधानिधि पृ० १४

इस प्रसङ्ग में रूपगोस्वामी द्वारा विरचित 'पद्यावली' की चर्चा अत्यन्त अपेक्षित है। पद्यावली में राधा-कृष्ण के भक्तों की स्तुतियाँ सङ्गृहीत हैं। भक्तों की इन स्तुतियों का सङ्ग्रह कर रूपगोस्वामी ने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। भक्तों की ये स्तुतियाँ उनकी अनुरक्ति का प्रकाशन करती हैं और आराध्य के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करते हुए भक्तिविषयक उदात्त भावों का भी उन्मीलन करती हैं। इन स्तुतियों में कृष्ण और राधा की महिमा, नाम का महत्त्व, कृष्ण-राधा की विभिन्न लीलाओं की महिमा, राधा की विभिन्न स्थितियों का निरूपण, गोपियों का प्रेम, वासकसज्जा, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा आदि नायिकाओं का चित्रण, वृन्दावन, मथुरा आदि की महिमा, भक्त, प्रेम, भजन आदि का वैशिष्ट्य—इन विषयों का निबन्धन हुआ है। यहाँ राधा-कृष्ण से सम्बद्ध कमनीय प्रसङ्गों की अवतारणा की गयी है। सरस भावों से समृद्ध स्तुतियों में कृष्ण-राधा की जो झाँकी तथा भक्तों का जो प्रेमोल्लास प्रकाशित होता है, वह भक्ति-साहित्य में महनीय योगदान है। एक विशिष्ट परम्परा के भक्तों की राधा-कृष्ण की लीलाओं में विशेष अनुरक्ति रही है, भक्तों ने उन लीलाओं को अपनी परम्परा की दृष्टि से देखा है तथा दैन्य प्रकाशित किया है। भगवान् के पास पहुँचने की भक्त की उत्सुकता है, उसकी अपनी यात्रा है और उस यात्रा में उसके अपने अनुभव हैं। ये सभी उसे प्रेरित करते रहे हैं, जिससे स्तुतियाँ भाव और भाषा की दृष्टि से नितान्त समृद्ध हो गयी हैं। इस रहस्य को इस रूप से भी प्रस्तुत कर सकते हैं कि गौडीय वैष्णवों की साधना का जो परिपाक है तथा प्रेम की जो पराकाष्ठा है, उसका दर्शन यहाँ मिलता है। इस प्रकार इन स्तुतियों में भक्तों की भक्ति अपने परम सौन्दर्य के साथ प्रस्फुटित हुई है। न केवल दर्शन और साधना की दृष्टि से ही इन स्तुतियों की रमणीयता की प्रशंसा होनी चाहिए, अपितु साहित्यक सौन्दर्य की दृष्टि से भी इनके महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ संक्षेप में कृष्ण-राधाविषयक मान्यताओं की उपस्थापना की गयी है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी लीलाओं का प्रभाव है। दर्शन, साहित्य, कला आदि के व्यापक क्षेत्र को कृष्ण के स्वरूप ने समृद्ध किया है। भक्तों के अद्‌भुत चरित्रों की कथाएँ मिलती हैं। इन कथाओं में जो मोहकता है, उसका दर्शन और परीक्षण हमारी संस्कृति की समृद्धि के लिए आवश्यक है। चरितों में दर्शन, आचारशास्त्र आदि का सन्निवेश है, किन्तु समीचीन व्याख्या के द्वारा ही इनका रहस्य प्रकाशित हो सकता है। भक्तों का चरित कृष्ण-तत्त्व की व्याख्या है। इन चरितों के साक्षात्कार से श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का आस्वादन किया जा सकता है। राष्ट्रीय संस्कृति की जागरूक परम्परा में उसकी सुदीर्घकालीन साधना प्रतिबिम्बित है। उसके लिए जिज्ञासा और श्रद्धा की आवश्यकता है। जिनमें इनका निवास है, वे वन, पर्वत, सरिता आदि से तत्त्व की बात पूछ लेते हैं और इतिहास की कड़ियों का संयोजन कर लेते हैं। इतना ही नहीं, साधना के उत्कर्ष में वे परमात्मा का दर्शन कर लेते हैं। योगेश्वर कृष्ण की लीलाओं तथा आदेशों से इस पुण्यभूमि का कण-कण अनुप्राणित है, अतः इसके एक-एक कण की महिमा है।

डॉ० अमरनाथ पांडेय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत के कृष्ण-भक्त

अगस्त्य

अगस्त्य वारंगल के राजा प्रतापरुद्रदेव (१२९४-१३२५ ई०) की सभा में विद्यमान थे। इससे अधिक इनके जीवन के सम्बन्ध में और कुछ ज्ञात नहीं है।

इन्होंने कृष्ण-चरित की रचना की है। कृष्ण-चरित में कृष्ण का चरित भागवत के आधार पर निबद्ध हुआ है। अगस्त्य के गद्य की प्रशंसा की गयी है।

अ० पां०

अनन्तदेव

अनन्तदेव का समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनके गुरु रामतीर्थ थे, जो मधुसूदन सरस्वती के समकालिक थे। अनन्तदेव पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा के विद्वान् थे। इनका समय शास्त्रों के परिशीलन और छात्रों के अध्यापन में बीतता था—

यः पूर्वोत्तरमीमांसापरिशीलनशीलवान्।
तदीयाध्यापनेनैव समयं खलु नीतवान्॥

इन्होंने 'हरिभक्ति' और 'हरिभक्तिचन्द्रिका' नामक नाटकों की रचना की है। इनमें से 'हरिभक्ति' अथवा 'मनोनुरञ्जन' का प्रकाशन हो चुका है। यह नाटक पाँच अङ्कों का है। इसकी कथा इस प्रकार है :

'इन्द्र ने एक देवदूत नन्द के पास भेजा। देवदूत ने नन्द से कहा कि इन्द्र की पूजा करो। उसके अनुसार नन्द ने इन्द्र की पूजा के लिए व्यवस्था कर ली। वे ब्राह्मणों और गोपालों को लेकर गोवर्धन पर पहुँचे। उन्होंने कृष्ण से कहा कि इन्द्र के निमित्त यज्ञ करना है। उस समय विवाद होने लगा कि नन्द इन्द्र की पूजा क्यों करें, क्योंकि वृन्दावन नन्दन से सुन्दर है, हमारा गोष्ठ स्वर्ग से श्रेष्ठ है—

वृन्दावनं नन्दनतोऽपि रम्यं
गोष्ठं च नः स्वर्गपदाद्वरिष्ठम्।
किं देवराजाय च नन्दराज
त्वयाल्पता स्वात्मनि कल्पितासौ॥

—मनोनुरञ्जन १।७२

एक वृद्ध ने कहा कि इन्द्र हमारे गोष्ठ का विनाश कर डालेंगे। इस पर कृष्ण ने कहा कि 'इन्द्र की पूजा की कोई आवश्यकता नहीं है। जो यज्ञ-सामग्री एकत्र की गयी है, उससे ब्राह्मण, गो और गोवर्धन की पूजा हो, क्योंकि इन्हींसे हमारा पोषण होता है।' पहले ब्राह्मणों का पूजन हुआ। फिर कृष्ण ने मुरली बजायी और गायें उपस्थित हो गयीं—

ककुदग्रीवाः स्तब्धकर्णाः शुक्लवर्णाः समुत्सुकाः।
उद्बाष्पा उल्लसत्पुच्छा गावो धावन्ति माधवम्॥

—मनोनुरञ्जन १।९५

इसके बाद गोवर्धन की पूजा की गयी।

जब इन्द्र को अपने अपमान की सूचना मिली, तब उन्होंने मेघों को भेजा और कहा कि वर्षा करके गोकुल को बहा दो। मेघों ने अत्यधिक वर्षा से गोकुल को व्याकुल कर दिया। कृष्ण ने कनिष्ठिका अँगुली से गोवर्धन को धारण कर लिया, जिससे गोकुलवासियों की रक्षा हो गयी। अब इन्द्र डरकर कृष्ण की शरण में आ गये। उन्होंने क्षमा-याचना करते हुए कृष्ण से कहा कि यह आपकी दया है कि मुझ-जैसे अपराधियों को भी आप कल्याणमयी दृष्टि से आनन्दित करते हैं—

इयं तव कृपालुता यदपराधिनां मादृशा-
महो शुभदृशा मुहुः सुखमतीव संतन्यते॥

—मनोनुरञ्जन ४।५५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामधेनु ने कृष्ण से कहा कि मेरी इच्छा है कि मैं आपका अभिषेक देखूँ। उस समय नारद और तुम्बुरु आ गये। उन्होंने कृष्ण की स्तुति की। गङ्गादि नदियों ने अभिषेक कराया। लक्ष्मी ने गोपीवेश में आकर उन्हें सजाया और कामधेनु ने दूध पिलाया। उस अवसर पर सरस्वती ने कृष्ण की स्तुति की। ब्रह्मा और शिव भी आये।

गोपियाँ स्नान तथा गौरी-पूजन करने के लिए यमुना-तट पर पहुँचीं। कृष्ण भी श्रीदामा के साथ वहाँ पहुँच गये और तट पर रखे हुए गोपियों के वस्त्रों को लेकर श्रीदामा के साथ वृक्ष पर चढ़ गये। जब गोपियों की जलक्रीड़ा समाप्त हुई, तब उन्होंने देखा कि वस्त्र तट पर नहीं हैं। वे आपस में कहने लगीं कि चोर को यह मालूम नहीं है कि हम लोगों के रक्षक कृष्ण हैं। वे चोर को दण्डित करेंगे और हमारे वस्त्र दिलायेंगे। कृष्ण ने वृक्ष पर से कहा कि मैं आ गया हूँ। बताओ, चोर कहाँ है ?

कृष्ण ने श्रीदामा को चोर का पता लगाने के लिए भेज दिया। इधर उन्होंने गोपियों से कहा कि तुम लोगों ने नग्न होकर स्नान किया, इसलिए दुःख भोगना पड़ा। कृष्ण ने कहा कि तुम लोग हाथ जोड़कर मेरे पैरों पर पड़ो, तब तुम लोगों के वस्त्र मिलेंगे। गोपियों को वैसा ही करना पड़ा। श्रीदामा के आने पर कृष्ण ने गोकुल चलने की तैयारी की, तब गोपियों ने कृष्ण का वस्त्र पकड़ लिया और कहा कि चोर को ले आओ। फिर कृष्ण ने रासलीला की योजना की। जब चन्द्रिका छिटक गयी, तब उन्होंने मुरली बजायी। गोपियाँ दौड़ी हुई वहाँ आ गयीं। सुनन्द की दृष्टि में गोपियों का समूह पद्मिनी-वन की भाँति शोभित हो रहा था। सुनन्द ने कृष्ण और गोपियों के बीच रहना उचित नहीं समझा, अतः वहाँ से चले गये। वंशी की ध्वनि सुनकर नारद और तुम्बुरु भी वहाँ आ गये। गोपियों के पीछे राधा आ रही थीं। राधा ने देखा कि कृष्ण गोपियों से घिरे हुए हैं, अतः उन्हें ईर्ष्या हुई। कृष्ण को योग से राधा के मन की बातें मालूम हो गयीं। वे राधा के समीप पहुँच गये। राधा ने मान किया, तब कृष्ण ने उन्हें समझाया कि जिस प्रकार चन्द्रमा को सभी तारों में रोहिणी सबसे अधिक प्रिय है, उसी प्रकार सभी गोपियों में तुम मुझे सबसे अधिक प्रिय हो—

> बह्वीषु गोपकन्यासु वल्लभासि त्वमेव मे।
> सर्वास्वपि च तारासु शशाङ्कस्येव रोहिणी॥
>
> —मनोनुरञ्जन ५।६२

इसके अनन्तर रास-लीला का प्रारम्भ हुआ। कृष्ण गाते थे, तो गोपियाँ गाती थीं, कृष्ण हँसते थे, तो गोपियाँ हँसती थीं, कृष्ण नाचते थे, तो गोपियाँ नाचती थीं। इस प्रकार कृष्ण और गोपियों का तादात्म्य हो गया था—

> गायन्ति गायति तथा हसिते हसन्ति
> नृत्यन्ति नृत्यति हरौ सरसीरुहाक्षाः।
> जानाम्यनेन सरसीरुहलोचनेन
> तादात्म्यमेव गमिता दयिताः स्वकीयम्॥
>
> —मनोनुरञ्जन ५।७३

रात बीत गयी। गोपियाँ अपने घर चली गयीं। कृष्ण के पास देवाङ्गनाएँ, नारद और तुम्बुरु रह गये।'

अनन्तदेव प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उन्होंने स्थल-स्थल पर मधुर श्लोकों के द्वारा नाटक में काव्यमय वातावरण की सृष्टि की है। अनेक नाटककारों के विषय में कहा जाता है कि वे क्लिष्ट श्लोकों की रचना करके प्रसङ्ग को दुरूह बना देते हैं, किन्तु अनन्तदेव के सम्बन्ध में यह बात सत्य नहीं है। अनन्तदेव की रचना में प्रसादगुण सर्वत्र विद्यमान है। मधुर कल्पनाओं और पदावलियों से समृद्ध यह नाटक भक्तों को आनन्दित करता है। इसका 'मनोनुरञ्जन' नाम बड़ा सार्थक है। इसमें उदात्त पात्रों की भूमिका विद्यमान है। कवि श्रीकृष्ण की महिमा को उन्मीलित करता है और भक्ति के उद्रेक के लिए अनुकूल प्रसङ्गों की योजना करता है। 'श्रीकृष्ण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तिचन्द्रिका' में कहा गया है कि श्रीकृष्ण-भक्ति अत्यधिक प्रवृद्ध होती हुई परिस्फुरित हो रही है—

श्रीकृष्णभक्तिरिह भूरि विवर्धमाना
स्पष्टं परिस्फुरति चन्द्रिकया समाना ।

—रामजी उपाध्याय, आधुनिक संस्कृत नाटक,
भाग १, पृ० ७९ पर उद्धृत ।

इसके कुछ भक्तिभावपूर्ण प्रसंग प्रस्तुत हैं—

(१)

वेदों ने कृष्ण के महत्त्व के विषय में कहा —

अटन्तु तीर्थानि पठन्तु चास्मान्
कुर्वन्तु यागान् कलयन्तु योगान् ।
तमालनीले त्वयि वा सलीले
रतिं विना नैव गतिं प्रतीमः ॥

—मनोनुरञ्जन ४।११७

'तीर्थाटन करें, हमारा अध्ययन करें, यज्ञ करें या योगसाधना करें, किन्तु तमाल की भाँति नील, लीलाओं से युक्त आपकी भक्ति के बिना हमें कोई गति नहीं दिखायी पड़ रही है।'

(२)

शतमप्यपराधानां सहस्रमपि वा कृतम् ।
शरणागतलोकस्य नालोचयति केशवः ॥

—मनोनुरञ्जन ४।५६

'कृष्ण भक्तों का उद्धार करते हैं। वे शरणागत लोगों के अपराधों को क्षमा कर देते हैं।'

(३)

पुत्रो भूत्वा रिपून् हत्वा रक्षित्वा गोधनानि च ।
गोवर्धनगिरिर्भूत्वा नन्दमानन्दयत्यसौ ॥

—मनोनुरञ्जन १।११७

'कृष्ण पुत्ररूप में पैदा होकर, शत्रुओं को मारकर, गोधनों की रक्षा कर, गोवर्धन पर्वत होकर नन्द को आनन्दित करते हैं।'

अनन्तदेव की मान्यता है कि सभी लक्षणों से युक्त, किन्तु यदुपति श्रीकृष्ण के वर्णन से रहित कविता शोभित नहीं होती—

कविता लक्षणसहिता यदुपतिरहिता न शोभते वाणी ।

—मनोनुरञ्जन १।२०

हिन्दी के महाकवि तुलसीदास भी सभी गुणों से रहित, किन्तु राम-नाम से अङ्कित कविता को महनीय मानते हैं—

सब गुन रहित कुकबि कृत बानी ।
राम नाम जस अंकित जानी ॥

सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही ।
मधुकर सरिस संत गुनग्राही ॥

—रामचरितमानस बाल० १०।३

(४)

नारद और तुम्बुरु कृष्ण के विषय में कहते हैं—

श्रिया सेवितं सर्वदा गोपराजं,
तनौ कोटिकन्दर्पलावण्यभाजम् ।
कृपासागरं चारुपङ्केरुहाक्षं,
मनोवाञ्छितार्थप्रदं कल्पवृक्षम् ॥

जगद्बीजभूतस्फुरद्भ्रूविलासं,
चिदानन्दसन्दोहशुद्धावभासम् ।
घनश्यामलं कोमलाङ्गं भजामः,
श्रुतिन्यायतः संसृतिं सन्त्यजामः ॥

—मनोनुरञ्जन ४।१२१, १२२

'लक्ष्मी से सर्वदा सेवित, गोपों के स्वामी, शरीर में करोड़ों कन्दर्पों के सौन्दर्य को धारण करनेवाले, कृपा के सागर, सुन्दर कमल की भाँति नेत्रोंवाले, मनोऽभिलषित अर्थ को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्ष-रूप, जगद्बीज-रूप, स्फुरित होते हुए भ्रूविलासोंवाले, चिदानन्दसन्दोह और शुद्ध प्रकाशवाले, घन की भाँति श्याम तथा कोमल अङ्गोंवाले आपको भजते हैं और वेद की मान्यता के अनुसार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसार का परित्याग कर देते हैं। वेद की घोषणा है कि भगवान् के भजन से संसार का बन्धन नष्ट हो जाता है।'

अनन्तदेव कहते हैं कि कृष्ण की चरित्र-चन्द्रिका साधुचित्तरूपी कुमुद को आनन्दित करनेवाली है, दोषराशि के निमित्त का विनाश करनेवाली है और संसाररूपी अन्धकार को दूर करनेवाली है—

साधुचित्तकुमुदैकरञ्जिका,
दोषचक्रपरिभोगभञ्जिका।
सर्वसंसृतितमोऽतिर्वातिका,
भाति माधवचरित्रचन्द्रिका॥

अ० पां०

अनन्तभट्ट

अनन्तभट्ट श्री हितहरिवंश के द्वितीय पुत्र श्रीकृष्णचन्द्र गोस्वामी के शिष्य थे और गुजरात के रहनेवाले थे। ये श्रीमद्भागवत के मर्मज्ञ थे तथा हितधर्म (गुरुमार्ग) पालन में अगाध निष्ठा रखते थे। संस्कृत के विद्वान् होने के कारण इन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों का प्रणयन किया है। अपने गुरु द्वारा रचित 'श्रीराधानुनय विनोद' काव्य पर आपने विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है। इसके अनेक श्लोकों में श्रीहर्ष के नैषधचरित जैसी आकर्षक एवं गम्भीर शब्द-योजना दृष्टिगत होती है, यथा—

(१)

मृगदृशां सुरतश्रमजन्मना,
परिसरस्तनयो कलितोम्बुना।
कुसुमसन्ततितसन्तसंगिना,
न मरुतामरुतामगमन्नसः॥

—सर्ग ४.६

'सुरत-क्रीड़ा में होनेवाले श्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों ने नायिका के दोनों स्तनों के अन्तराल में अपना स्थान बना लिया है। कुसुमों की राशि में रमण करनेवाले मारुत (वायु) के द्वारा भी श्रम-बिन्दु सुखाया न जा सका, यह बात नहीं।'

(२)

हृदयमस्फुटदंगनिघर्षणा-
न्मधुलिहामधि केतकि केतकी।
यदवलोकनतोपि तु रागिणां,
तदमिता दमिता रसपद्धतिः॥

—सर्ग ४.८

'केतकी के कुसुमों में मकरन्द-माधुरी का आनन्द लेने के लिए भौंरे व्याकुल हैं। कुसुमों पर पड़े पत्तों के आवरण अभी पूरी तरह हटे नहीं हैं। पराग पाण्डुरता की झलक मिल रही है। इसी प्रकार उरोजों की झलक के लिये रसिकजनों के नयन भी लालायित रहते हैं। उस मधुमय दृश्य को देखकर रागासक्त पुरुषों के द्वारा रस की पद्धतिका का अतिक्रमण हो ही जाता है।'

काव्य में कुल पाँच सर्ग हैं, जिनमें वृन्दावन, राधा-मान, मान-मोचन, अनुनय-विनय एवं श्रीकृष्ण के रूप का सुन्दर वर्णन हुआ है।

इनके सम्बन्ध में चाचा वृन्दावनदासजी ने लिखा है—

श्री भागौत सुतत्व बोध में निपट सयानौं।
गुरु मारग अति सूरौ पूरौ सब विधि जानौ॥
श्री कृष्णदास पद परसि सरस अति हियो सिरायौ।
राधा अनुनय ग्रन्थ तासु कौ तिलक बनायौ॥

श्री व्यास सुवन के पद कमल,
उर धारे मंगल करन।
भट्ट अनन्त गुर्जर धरनि,
भयौ भक्ति सुख विस्तरन॥

—र० अ० परचावली, छं० १४९

ल० च० गो०

अनादिमिश्र

अनादिमिश्र का समय १८वीं शताब्दी है। ये उत्कल-निवासी भारद्वाज-गोत्रीय ब्राह्मण थे। शतञ्जीव उनके पिता थे और मुकुन्द पितामह। शतञ्जीव ने मुदितमाधव नामक गीतकाव्य की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचना की थी। अनादि मिश्र उत्कल के राजा नारायण मंगराज से सम्मानित थे तथा उनकी प्रेरणा से मणिमाला नामक नाटिका की रचना की थी—'श्रीमदुत्कलेश्वरपादपङ्कजोपजीविविराजसमाजमौलिमाल्येन श्री नारायणमंगराजेन प्रयुज्यमानेन मया मणिमाला नाम नाटिका कृता॥' इनके शिष्य सदाशिव ने मणिमाला की प्रतिलिपि १७७६ ई० में की थी। अनादिमिश्र ने राससङ्गोष्ठी और केलिकल्लोलिनी की भी रचना की थी। केलिकल्लोलिनी में राधा और कृष्ण के प्रणय का अंकन हुआ है।

राससङ्गोष्ठी की कथा इस प्रकार है—

कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनायी पड़ती है और राधा ललिता को साथ में लेकर वृन्दावन की ओर चल पड़ती हैं। यमुना-तट के समीप कुञ्ज में कृष्ण सुबल के साथ दिखाई पड़ते हैं। दोनों सखियाँ उनकी बातें सुनने लगती हैं। कृष्ण कहते हैं कि यमुना में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा राधा के मुख के समान प्रतीत हो रहा है। वे कहते हैं कि राधा कामपीड़ित होंगी। इस बात से राधा को अत्यधिक आह्लाद होता है—

मदयति हृदयं मदीयमेतत् प्रियतमसूनृतमादृतप्रसादम्

कृष्ण ने सुबल से कहा कि मैं राधा के वियोग में अत्यधिक सन्तप्त हूँ। उसी समय राधा और ललिता उनके पास आ जाती हैं। सुबल चले जाते हैं। कृष्ण गोपियों के साथ रासक्रीड़ा करते हैं।

कृष्ण राधा के प्रेम में डूबे हुए हैं। अपने प्रति कृष्ण के प्रगाढ़ प्रेम की बातें सुनकर वे कहती हैं—

गुणप्रवीणा दयितस्य वाणी,
सा काचिदेषाद्भुतशक्तिभूतिः।
समुत्खनन्तो खलु धैर्यशैलं,
निर्माति मे चित्तभुवं सरन्ध्रम्॥

'प्रिय की गुणमयी वाणी अद्भुत शक्ति की महिमा से युक्त है। वह मेरे धैर्यरूपी पर्वत को

उखाड़ दे रही है और मेरे काम को रन्ध्रयुक्त कर दे रही है।'

गोपियाँ कृष्ण के साथ क्रीड़ा करना चाहती हैं। कृष्ण उनकी परीक्षा लेते हैं और कहते हैं कि आप लोगों के पति ही देवता हैं, अतः उन्हींकी परिचर्या करो। इस पर गोपियाँ कहती हैं—

पयोऽन्तरेण क्व पयोरुहं भवेत्,
क्व वा सरो वारिजबान्धवादृते।
गृहस्थधर्माः क्व मनोभव. क्व वा,
क्व वा वियोगात्तव जीवनं च नः॥

'जल के बिना कमल कहाँ और कमल के बिना सरोवर कहाँ? कहाँ गृहस्थधर्म और कहाँ काम? आपके वियोग में हमारा जीवन कहाँ?'

अ० पां०

अमोलकराम शास्त्री

श्री अमोलकराम शास्त्री का जन्म कुरुक्षेत्र के समीप हरियाणा प्रदेश में वि० सं० १९२९ में हुआ था। आपके पिताश्री का नाम पं० शालिग्राम उपाध्याय गौड़ एवं माता का नाम श्री हरिप्यारी देवी था। आपने भारत के काशी, नवद्वीप आदि विद्या-केन्द्रों में अध्ययन किया था। तदुपरान्त सपरिवार वृन्दावन आ गये और यहीं निवास करने लगे। तार्किक महाविद्वान् होते हुए भी आपको वृन्दावन के विरक्त, सिद्ध, भगवद्भक्ति-लीन भावुक सन्तों के सत्संग में अत्यन्त रुचि थी।

श्री अमोलकराम शास्त्री के वैष्णवी दीक्षक एवं विरक्त वेष-प्रदाता श्री निम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी महात्मा श्री स्वामिनीशरणदेवजी थे। यहाँ रहकर आपने व्रज के साम्प्रदायिक साहित्य का गहन अध्ययन किया। आपकी विद्वत्ता को देखकर श्री रंगनाथ मन्दिर के अधिकारियों ने आपको श्री रंगनाथ संस्कृत विद्यालय का प्रधानाध्यापक नियुक्त कर दिया। इन्हीं दिनों आपको काशी विद्वत्सम्मेलन के कई महत्त्वपूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवसरों पर काशी जाना पड़ा, जहाँ आपने द्वैताद्वैत-सिद्धान्त की प्रमुखता का प्रतिपादन करते हुए प्रभावशाली वक्तव्य दिये।

आपने निम्बार्क-सम्प्रदाय के 'परिपक्ष', 'गिरिवज्र', 'वेदान्तरत्नमंजूषा', 'वेदान्तरत्नमाला', 'आत्मपरमात्मतत्त्वादर्श', 'दश उपनिषद्', 'कौस्तुभप्रभा' आदि जटिल ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखीं एवं उनका मुद्रण करवाया। इन्होंने उपनिषदों की टीकाओं का संकलन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य भी सम्पन्न किये। बीसवीं शताब्दी के निम्बार्कीय विद्वानों में आपकी कीर्ति चिरस्थायी रहेगी। आपकी विद्वत्ता, तपश्चर्या एवं त्याग प्राचीन ऋषि-महर्षियों के सदृश थे। आपकी मेधा-स्मृति इतनी तीव्र थी कि नव्य-न्याय के गद्य ग्रन्थ भी आपको पूर्ण रूप से कठस्थ थे।

इस अपरिग्रही विद्वान् और आदर्श तपस्वी ने वि० सं० २००२ को श्री नित्यनिकुञ्ज-धाम में प्रवेश किया।

प्रे० ना० श्री०

ईश्वरपुरी

श्री ईश्वरपुरी का जन्म बंगाल के कुमारहट्ट नामक गाँव के एक राढ़ीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता श्यामसुन्दर आचार्य थे। ये माधवेन्द्रपुरी के शिष्य और महाप्रभु कृष्णचैतन्य के दीक्षा-गुरु थे। ये सर्वशास्त्रों के पण्डित, वेद-वेदान्त आदि के चूड़ान्त विद्वान् एवं विद्यारस-विचार में मग्न रहते थे। आपके विषय में 'प्रेमविलास' में लिखा है—

राढ़ीय ब्राह्मण श्यामसुन्दर आचार्य।
कुमारहट्टवासी विप्र सर्वगुणे वर्य॥

तार पुत्र ईश्वरपुरी बुद्धये बृहस्पति।
वेद-वेदान्तादि शास्त्रे ताँर मति गति॥

परमपण्डित ईश्वर छाड़ि गृहवास।
माधवेन्द्रशिष्य ईक्षा करिला संन्यास॥

ईश्वरपुरी नामहेल संन्यास आश्रमे।
माधवेरकरे सदा चरन सेवने॥

माधवेन्द्रपुरी का समस्त प्रेमतत्त्व इन्हें प्राप्त हुआ था। वृन्दावनदास ने 'चैतन्य-भागवत' (आदिखण्ड) में लिखा है—

जत प्रेम माधवेन्द्र पुरीर शरीरे।
सन्तोषे दिलेन सब ईश्वरपुरीरे॥

ये बड़े एकान्तप्रिय, भ्रमणशील तथा कृष्ण-रस में परम विह्वल रहनेवाले भक्त थे।

तीर्थ-भ्रमण के समय श्री नित्यानन्द प्रभु का जब पश्चिमी भारत में माधवेन्द्रपुरी से मिलन हुआ था, उस समय श्रीपाद ईश्वरपुरी भी वहाँ विद्यमान थे। परस्पर मिलन में नित्यानन्द एवं माधवेन्द्रपुरी के प्रेमावेश को लक्षित कर अतिशय प्रेमाविष्ट हो इन्होंने आर्त्तरोदन किया था। माधवेन्द्रपुरी के परमधाम-गमन के समय इन्होंने बड़े भावुक मन से निष्ठापूर्वक गुरु-सेवा की थी—अपने हाथ से गुरु के मल-मूत्र तक का मार्जन किया था और उन्हें कृष्णनाम, कृष्णलीला, कृष्णश्लोक श्रवण कराया था। इससे पुरीपाद ने अत्यन्त परितुष्ट होकर इन्हें प्रेमालिंगनपूर्वक वर दिया था—'कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन'। तब से ही ईश्वरपुरी प्रेम के विलक्षण-गहन-तरंगित सागर हो गये।

एक बार ये नवद्वीप जाकर अद्वैताचार्य के घर ठहरे थे और वहाँ मुकुन्द के मुख से कृष्णचरित-गान सुनकर प्रेमावेश में धरती पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे। अलक्षित भाव से कुछ समय नवद्वीप में भी रहे। कुछ समय ये गोपीनाथ आचार्य के घर पर भी निवास था।

इनके अश्रुपातादि प्रेम-विकारों को देखकर अद्वैताचार्य, मुकुन्दादि भक्त आनन्दित हो उठे थे। एक दिन मार्ग में चैतन्यदेव से आपका मिलन हो गया। ये उनके घर भी पधारे थे। प्रभु ने इनको निमन्त्रित करके अपने घर लाकर भिक्षा कराई एवं भिक्षा के पश्चात् कृष्ण-कथा-प्रसंग में इष्टगोष्ठी की। कृष्ण-कथा कहते-कहते ये विह्वल हो जाते थे। इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्रों से प्रेमाश्रु निकलते रहते थे। चैतन्यदेव इनसे नित्यप्रति वहाँ मिलने जाते थे। गदाधर पण्डित पर आपकी बड़ी प्रीति थी। उन्हें ये स्वरचित 'श्रीकृष्ण-लीलामृत' पढ़ाया करते थे। चैतन्यदेव के साथ भी उक्त ग्रन्थ के अंशों पर इनका विचार विमर्श हुआ था। ईश्वरपुरी भक्ति-रस से चंचल रहते थे। आतः आपकी एक स्थान पर स्थिति नहीं रहती थी। ये प्रेम-प्रसाद का वितरण करने के लिए तीर्थ-भ्रमण करते थे। गयाधाम में चैतन्यदेव ने इनसे दीक्षा प्राप्त की थी।

ईश्वरपुरी महाशय का सं० १५६२ के लगभग व्रज में आगमन बताया जाता है। उस समय इन्होंने यमुना-स्नान कर गोवर्द्धन में गिरिराज की परिक्रमा की थी और अपने गुरुदेव के उपास्य श्री गोपालजी के भी दर्शन प्राप्त किये थे। कहा जाता है कि तत्कालीन परिस्थितियों को प्रतिकूलता के कारण ये वहाँ अधिक समय तक नहीं रहे और देशाटन को चले गये।

कृष्णदास कविराज ने ईश्वरपुरी को भक्ति-कल्पतरु का पुष्ट अंकुर कहा है। कवि कर्णपूर ने बताया है कि यति ईश्वरपुरी माधवेन्द्रपुरी के सुयोग्य शिष्य थे। उन्होंनें मधुरामलिको फलस्वरूप मानकर श्रृंगार-रस का विस्तार किया है—

तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मोऽयं प्रवर्त्तितः।
कल्पवृक्षस्यावतारो व्रजधामनि तिष्ठतः॥
प्रीतप्रेयोवत्सलतोज्ज्वलाख्यफलधारिणः॥
तस्य शिष्यो भवच्छ्रीमानीश्वराख्यपुरी यतिः।
कलयामास श्रृङ्गार यः श्रृङ्गारफलात्मकः॥

देवकीनन्दन दास कृत 'वैष्णव-वन्दना' के प्राचीन पद्यानुवाद में वृन्दावनदास ने ईश्वरपुरी के लिए निम्नलिखित शब्दों में वन्दना निवेदित की है—

पुरीजुईश्वर वरनि हौं प्रेमरीति भरि प्रीति।
लीनी दिख्या गौरवर सिख्या लोक प्रतीति॥

ईश्वरपुरी गयाधाम के विख्यात संन्यासी थे। महाप्रभु चैतन्य ने इन्हें अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक स्वीकार किया था। उस समय उनकी आयु मात्र २२ वर्ष थी। अपनी गया-यात्रा में उनके भीतर ईश्वरपुरी ने इतनी तीव्र धार्मिक भावना पैदा की कि उनका पूर्णतया रूपान्तर हो गया। कहा जाता है कि ईश्वरपुरी ने उन्हें दशाक्षर कृष्णमन्त्र दिया था। महाप्रभु चैतन्य के आध्यात्मिक पुनर्जन्म के ईश्वरपुरी ही सशक्त हेतु थे।

रूपगोस्वामी ने 'पद्यावली' में ईश्वरपुरी-कृत ३ श्लोकों को उद्धृत किया है। 'उज्ज्वलनीलमणि' में भी उन्होंने ईश्वरपुरी-कृत 'रुक्मिणी-स्वयंवर' से २ श्लोक दिये हैं। श्रीराधा-दामोदर मन्दिर के प्रसिद्ध ग्रन्थागार से वि० सं० १६५४ ई० को जीवगोस्वामी के स्वहस्तलेख में वृन्दावन-शोध-संस्थान, वृन्दावन की जो सूची प्राप्त हुई थी उसमें जीवगोस्वामी ने अपने निजी संग्रह की एक कोथली में ईश्वरपुरीपाद-कृत ग्रन्थ-संख्या ३० पर 'रुक्मिणीयपत्रिका' का उल्लेख किया है। कदाचित् 'कृष्णपत्री' नाम इसी रचना के लिए आया हो। यह भी हो सकता है कि उनके 'कृष्णलीलामृत' के अंश ही रूपगोस्वामीपाद ने अपनी 'पद्यावली' में उद्धृत किये हों। इनकी समग्र रचनाएँ अभी तक अनुपलब्ध हैं। उद्धृत श्लोकों को भाषा अत्यन्त समर्थ और प्रांजल है। उनमें जो भावनायें इनके द्वारा गुम्फित हैं, उनसे इनकी भक्ति-भावना के स्रोत उपलब्ध होते हैं। पुरीपाद कहते हैं कि—

योग-श्रुत्युपपत्ति-निर्जनवन-ध्यानाध्य-सम्भावित-
स्वाराज्यं प्रतिपद्य निर्भयममी मुक्ता भवन्तु द्विजाः।
अस्माकं तु कदम्बकुञ्जकुहर-प्रोन्मीलदिन्दीवर-
श्रेणी-श्यामलधाम-नाम जुषतां जन्मास्तु लक्षावधि॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यप्रभृति द्विजातिगण, अष्टांग-योग, वेदानुशीलन, निर्जन वन में वासपूर्वक एवं तीर्थाटन द्वारा सम्भावित निर्भयरूप स्वरूपानुभव प्राप्त करके, अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार करके यदि मुक्त हो जाते हैं तो हो जायँ, उनसे हमारा कुछ कहना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है। किन्तु कदम्ब की कुंजरूपी गुफा से उदय होनेवाले एवं नालकमल श्रेणीतुल्य श्यामसुन्दर के नामामृत का सेवन करनेवाले नामनिष्ठ हम भक्तों के तो लाखों जन्म भी यदि नाम-कीर्तन करते हुए व्यतीत हो जायँ, तो भी हमारी कुछ हानि नहीं है।'

पुरीपादकृत दो अन्य श्लोक प्रस्तुत हैं—

(१)

नृत्यन् वायुविघूर्णितैः स्वविटपैर्गायन्नलीनां रुतै-
र्मुञ्चन्नश्रु मरन्दबिन्दुभिरलं रोमाञ्चवानङ्कुरैः।
पाकन्दोऽपि मुकुन्द ! मूर्च्छति तव स्मृत्या नु वृन्दावने
ब्रूहि प्राणसमान ! चेतसि कथं नामापि नायाति ते॥

'मुकुन्द ! वृन्दावन का वानस्पतिक उल्लास-विलास तो तुम पर आश्रित है। देखो न, इस अमराई की दशा, वायु से कम्पित विटपों के द्वारा वहाँ नृत्य की प्रक्रिया पूरी हो रही है। गुंजायमान मिलिन्दों के द्वारा गायन सम्पन्न हो रहा है। तुम्हारे विरह में उसे रोना आता है। मरन्द-बिन्दुओं के व्याज से उसका अश्रुपात परिलक्षित होता है। अंकुरों के द्वारा उसके रोमांच का आभास होता है। तुम्हारा स्मरण कर आम मूर्च्छित-से हो जाते हैं। और भला, चेतन होकर भी मेरा चित्त तुम्हारा नाममात्र भी चिन्तन क्यों नहीं कर पाता ! मुझसे तो ये उद्भिज ही अच्छे !'

(२)

धन्यानां हृदि भासतां गिरिवरप्रत्यग्रकुञ्जौकसां
सत्यानन्द-रसं विकार-विभव-व्यावृत्तमन्तर्महः।
अस्माकं किल वल्लवी-रतिरसो वृन्दाटवी-लालसो
गोपः कोऽपि महेन्द्रनीलरुचिरश्चित्ते मुहुः क्रीडतु॥

'भले ही गोवर्धन अथवा अन्य पर्वत-कुंजों में ध्यानमग्न महात्माओं के हृदय में निर्विकार अनन्त सत्य-आनन्द की ज्योति जगमगाये, मेरे लिये तो यही पर्याप्त है कि महेन्द्र नील के समान कान्तिवाले श्याम-सुन्दर मेरे चित्त में वारम्वार गोपियों के साथ वृन्दावनवाली रासलीला रचायें।'

श्री माधवेन्द्रपुरी और चैतन्य महाप्रभु के मध्य की ईश्वरपुरीपाद एक अटूट प्रेम-कड़ी है। जिस भावुक भक्ति का चैतन्य महाप्रभु में अजस्र स्रोत उमड़ा ईश्वरपुरीपाद उसके प्रखर उद्वेलक हैं। ईश्वरपुरीपाद चैतन्य-सम्प्रदाय में आद्याचार्यों में से हैं। इनका नाम माधवेन्द्रपुरीपाद के बाद बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

न० च० वं०

उमापति उपाध्याय

उमापति उपाध्याय का समय चतुर्दश शताब्दी का पूर्वार्ध है। इनका जन्म मिथिला में मधुबनी जिले के कोइलख नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता रत्न-पति उपाध्याय नैयायिक थे, जिन्होंने 'पदार्थदिव्यचक्षु' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उमापति 'महोपाध्याय' तथा 'कविपण्डितमुख्य' उपाधियों से विभूषित थे। इनके आश्रयदाता हरिहरदेव (हरिसिंह) थे। इन्होंने 'पारिजातहरण' नाटक की रचना की थी। उसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

रैवतक पर्वत पर रुक्मिणी और कृष्ण वसन्तोत्सव मना रहे हैं। उनके साथ सखियाँ भी हैं। नारद आकाश से आते हैं और कृष्ण की दूसरी पत्नी सत्यभामा की सखी सुमुखी से मिलते हैं। उसके बाद वे कृष्ण के पास पहुँचते हैं और बताते हैं कि इन्द्र ने आपके लिए पारिजात पुष्प दिया है, जिसे मैं ले आया हूँ। इससे मैं आपकी पूजा करूँगा। कृष्ण नारद से पुष्प पाकर विस्मित होते हैं। उसी समय कुछ दूरी पर सत्यभामा अपनी सखी सुमुखी के साथ आ जाती है। वह कृष्ण, रुक्मिणी और नारद का संवाद सुन रही है। नारद ने पारिजात के विषय में बताया कि यह सभी मनोवाञ्छित पदार्थों को देनेवाला है। कृष्ण ने पारिजात पुष्प रुक्मिणी को दिया। पारिजात पाकर रुक्मिणी गाने लगती है :

आज जनम फल भेला सभपति,
तेजि हरि मोहि फुल देला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुजल पुरुब हम गोरी,
आसा तनि परिपूरलि मोरी ॥

उपर रहल मोर माथे,
सोलह सहस वर नारिक साथे ।
सुमति उमापति भाने,
महेसरि देइ गति हिन्दूपति जाने ॥

इसी समय सत्यभामा कृष्ण के पास आ जाती है। प्रणाम करने पर नारद उसे आशीर्वाद देते हैं। शिर की पीड़ा का बहाना करके वह चली जाती है।

सत्यभामा के विषय में कृष्ण कहते हैं—

मालिन्येन मलीमसीकृतमुरः कम्पेन चोत्कम्पितं
मौनेन द्रवितं विलोचनजलैः श्वासैः पुनः शोषितम्
निःक्षिप्तं च सगद्गदेन वचसा कारुण्यवारांनिधौ
विश्लेषेण पुनर्मदीयहृदयं न्यस्तं हताशे तथा ॥

वियोगजन्य व्यथा का संचारी भावों के माध्यम से सुन्दर चित्रण इस पद्य में किया गया है।

'प्रिय वियोग से उदासीनता स्वाभाविक है। हृदय उसी मालिन्य से मलिन हो रहा है। कम्पन का उद्वेग बढ़ गया है। कुछ बोला नहीं जाता। आँखें सावन बनी हुई हैं। गरम साँसों से अश्रुजल सूखते चले जा रहे हैं। गला भर आया है। वाणी हकलाहट-भरी निकल रही है। करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा है। मानो उसी समुद्र में ऊभचूभ होने के लिये वियोगी फेंक दिया गया है। अधिक क्या कहें—विप्रयोग ने मेरे हृदय को हताशा के पङ्क में ही फेंक दिया है।'

कृष्ण सत्यभामा से मिलने के लिए उनके भवन में पहुँचे। सुमुखी ने सत्यभामा की दशा की चर्चा की। कृष्ण ने मूर्च्छित सत्यभामा के चरणतल का स्पर्श किया। स्पर्श से सत्यभामा की मूर्च्छा दूर हो गयी। फिर कृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा —

अरुन पुरुब दिसि बहलि सगरि निसि
गगन मगन भेल चन्दा
सुनि गेलि कुमुदिनि तइओ तोहर धनि
मूनल मुख अरविन्दा ॥

बहुत प्रार्थना करने पर सत्यभामा ने कृष्ण से कहा—यदि आप पारिजात लाकर मुझे नहीं देंगे, तो मैं प्राणत्याग कर दूँगी। कृष्ण ने नारद से इन्द्र के पास सन्देश भेजा कि आप परिजात वृक्ष दे दें। नारद के जाने पर कृष्ण ने अर्जुन के साथ इन्द्रपुरी पर आक्रमण करने की योजना बनायी। इन्द्र से मिलकर नारद लौटे और उन्होंने इन्द्र का उत्तर सुनाया कि बिना युद्ध के पारिजात नहीं मिलेगा। कृष्ण अर्जुन को लेकर युद्ध के लिए गये। युद्ध में इन्द्र की पराजय हुई। कृष्ण पारिजात लेकर आ गये। इस पर सत्यभामा ने अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

जय जय पारिजात तरुराज।
पाओल पुरुब पुन दरसन आज ॥

नारद ने सत्यभामा से कहा कि पारिजात के वृक्ष के नीचे जो कुछ दान में दे दिया जाता है, उसका क्षय नहीं होता। इसे सुनकर सत्यभामा ने कृष्ण को और सुभद्रा ने अर्जुन को दानरूप में नारद को दे दिया। तब नारद ने कहा कि कृष्ण हल ले लें और अर्जुन कुदाल। दोनों के कन्धे पर चढ़कर सुखपूर्वक भ्रमण करूँगा—

हलं बिभर्तु श्रीकृष्णः कुद्दालं च धनञ्जयः।
द्वयोर्वा स्कन्धमारुह्य भ्रमिष्यामि यथासुखम् ॥

नारद ने पुनः कहा कि कृष्ण विश्वम्भर हैं और अर्जुन वृकोदर भीम का भाई। इन दोनों का भरण करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, अतः इन्हें बेच दूँ। कृष्ण और अर्जुन को बेचकर नारद ने गायें ले लीं।

पारिजात-हरण में अनेक सुन्दर गीतों की योजना है। विशेषता यह है कि गीत मैथिली में लिखे गये हैं। इस प्रकार इस रचना में संस्कृत और मैथिली—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। पारिजात-हरण पर जयदेव के गीतगोविन्द का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

कृष्ण के विषय में अधोलिखित श्लोक अत्यधिक भक्तिपरक है –

न शम्भुना वा न विरञ्चिना वा,
न योगिभिर्यन्मनसापि दृष्टम्।
तदद्य गोविन्दपदारविन्दं,
विलोकयिष्यामि दृशा कृतार्थः॥

'जिसका साक्षात्कार शिव ने, ब्रह्मा ने और योगियों ने मन से भी नहीं किया, आज कृतार्थ होकर गोविन्द के उस चरणारविन्द को नेत्रों से देखूंगा।'

अ० पां०

उमापतिधर

उमापतिधर बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (१२वीं शताब्दी) के समय में विद्यमान थे। श्रीधरदास के 'सदुक्तिकर्णामृत' में उमापतिधर के कृष्णविषयक श्लोक मिलते हैं। इन श्लोकों में श्रीकृष्ण की वृन्दावन-लीला का वर्णन किया गया है। यहाँ एक मनोरम पद्य उद्धृत है—

व्यालाः सन्ति तमालवल्लिषु वृतं वृन्दावनं वानरैः
सन्नक्रं यमुनाम्बु घोरवदनव्याघ्रा गिरेः सन्धयः।
इत्थं गोपकुमारकेषु वदतः कृष्णस्य तृष्णोत्तर-
स्मेराबीरवधूनिषेधि नयनस्याकुञ्चनं पातु वः॥

श्रीकृष्ण अपने मित्रों के साथ खेल रहे हैं। वे एकान्त में राधा से मिलना चाहते हैं, अतः अपने साथियों को किसी व्याज से हटाना चाहते हैं। वे कहते हैं—'तमाललताओं में साँप हैं, वृन्दावन वानरों से व्याप्त है, यमुना के जल में मकर हैं, पर्वत की सन्धियों में भयानक मुखवाले व्याघ्र बैठे हुए हैं। इस प्रकार गोपकुमारों से कहनेवाले श्रीकृष्ण की सतृष्ण मुस्कराहट, तथा राधा की मना करनेवाली नेत्रभङ्गिमा आप लोगों की रक्षा करे।'

उमापतिधर के एक दूसरे श्लोक में राधा के प्रति कृष्ण के विशिष्ट अनुराग का प्रकाशन हुआ है। यद्यपि श्रीकृष्ण द्वारका के वैभव से घिरे हैं तथा रुक्मिणी के सरोमाञ्च-आलिङ्गन से संवलित हो रहे हैं, फिर भी वे यमुना-तट के वेतसकुञ्जों में घटित राधा की निभृत लीलाओं का ध्यान करके मूर्च्छित हो जाते हैं—

रत्नच्छायाच्छुरितजलधौ मन्दिरे द्वारिकाया,
रुक्मिण्यापि प्रततपुलकोद्भेदमालिङ्गितस्य।
विश्वं पायान् मसृणयमुनातीरवानीरकुञ्जे-
ष्वाभीरस्त्रीनिभृतचरितध्यानमूर्च्छा मुरारेः॥

अ० पां०

कर्णपूर

संस्कृत-साहित्य में कविकर्णपूर के नाम से अनेक कवियों और विद्वानों की प्रसिद्धि है। उनकी उपलब्ध कृतियों के अवलोकन और प्राप्त उल्लेखों तथा प्रमाणों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चैतन्य महाप्रभु और भगवान् कृष्ण के अनन्य भक्त, 'आनन्दवृन्दावनचम्पू', 'पारिजातहरण' महा-काव्यादि ग्रन्थों के रचयिता कविकर्णपूर अन्य कवि-कर्णपूर नामधारी व्यक्तियों से भिन्न हैं।

कविकर्णपूर ने प्रायः अपनी समस्त रचनाओं में श्री शिवानन्द सेन का सादर उल्लेख अपने पिता के रूप में किया है। प्राप्त होनेवाले तत्कालिक गौड़ीय वैष्णव-साहित्य में भी कविकर्णपूर के पिता का नाम शिवानन्द सेन ही बताया गया है। अतः निर्विवाद रूप से कविकर्णपूर श्री शिवानन्द सेन के आत्मज थे। शिवानन्द सेन अम्बष्ठ-वंश के विख्यात व्यक्ति थे। चैतन्य देव के प्रिय और प्रमुख पार्षदों में उनका विशिष्ट स्थान था। चैतन्य-सम्प्रदाय में शिवानन्द सेन का परिचय एक विनम्र भक्त के रूप में प्राप्त होता है। ये उच्चकोटि के चिन्तक और प्रतिभासम्पन्न कवि थे। कविकर्णपूर ने चैतन्य-दर्शन के सूक्ष्म सिद्धान्तों के निरूपण में अपने पिता से सहायता ली थी। अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थलों पर इन्होंने उनके मत का निर्देश भी किया है। कविकर्णपूर, शिवानन्द सेन के तीन पुत्रों में सबसे छोटे थे।

श्री शिवानन्द सेन का निवासस्थान काञ्चनपल्ली नामक ग्राम था। यहीं कविकर्णपूर का जन्म हुआ था। प्राचीनकाल में 'काञ्चनपल्ली' बंग प्रदेश के सुप्रसिद्ध ग्राम 'कुमारहट्ट' के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण नगरी थी। यह बंगाल के २४ परगना जिले के 'हालिसहर' नामक परगना के अधीन थी। सम्प्रति काञ्चनपल्ली में शिवानन्द सेन की ठाकुरबाड़ी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में विद्यमान है। काञ्चनपल्ली-निवासी रायवंशीय वैद्य वहाँ के विख्यात कविराज चण्डीचरण राय को कविकर्णपूर का पौत्र और स्वयं को उनका वंशज बताकर गौरव का अनुभव करते हैं।

कविकर्णपूर का वास्तविक (पितृप्रदत्त) नाम परमानन्ददास सेन था। परमानन्ददास सेन, शिवानन्द सेन के तृतीय और सबसे छोटे पुत्र थे। इस तथ्य का उल्लेख स्वयं कविकर्णपूर ने ही किया है। परमानन्ददास सेन का एक अन्य नाम 'पुरीदास' भी था। परमानन्ददास सेन के ये दोनों नाम—पुरीदास और कविकर्णपूर—महाप्रभु चैतन्य-प्रदत्त हैं। चैतन्य-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में एतद्विषयक जो उल्लेख मिलते हैं, उनमें सर्वाधिक प्रामाणिक उल्लेख कृष्णदास कविराज का है। एक बार महाप्रभु चैतन्य ने शिवानन्द सेन से कहा था कि इस बार पुत्र होने पर उसका नाम पुरीदास रखना। जन्म के कुछ वर्षों के बाद शिवानन्द सेन पुत्र को चैतन्य महाप्रभु के चरणों में समर्पित करने ले गये। वहाँ महाप्रभु ने उन्हें 'पुरीदास' ही कहकर सम्बोधित किया। चैतन्य महाप्रभु के बार-बार कहने पर भी बालक पुरीदास ने 'श्रीकृष्ण' शब्द का उच्चारण नहीं किया। इससे महाप्रभु कुछ खिन्न हुए। दूसरे दिन महाप्रभु ने उनसे कहा—"पुरीदास, श्लोक पढ़ो।" तत्काल ही बालक ने यह श्लोक सुनाया—

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥

'कर्णकमल, नेत्राञ्जन, वक्षःस्थली की महेन्द्र-मणिमाला और वृन्दावन की रमणियों के निखिल शृंगार श्रीहरि विजयी हों।'

सप्तवर्षीय बालक के मुख से श्लोक सुनकर उपस्थित भक्त-समुदाय चमत्कृत हो गया और सबने इसे महाप्रभु की कृपा का फल माना। चैतन्य महाप्रभु ने प्रसन्न होकर पुरीदास (परमानन्ददास सेन) को 'कविकर्णपूर' की उपाधि से अलङ्कृत किया।

कविकर्णपूर के प्रथम गुरु चैतन्य महाप्रभु हो थे, जिन्होंने श्रीकृष्ण नाम की मन्त्र-दीक्षा तथा चरणामृत प्रदान कर उनमें अपनी शक्ति का सञ्चार किया। वस्तुतः कविकर्णपूर के लौकिक शिक्षा-गुरु श्रीनाथाचार्य थे, जो 'कुमारहट्ट' ग्राम के निवासी और प्रकाण्ड पण्डित थे। ये विश्रुत विद्वान्, उनके पिता श्री शिवानन्द सेन के भी गुरु थे।

स्वरचित ग्रन्थों और चैतन्य-सम्प्रदाय की कृतियों में कविकर्णपूर के प्रारम्भिक वृत्तान्तों के अतिरिक्त इनके जीवन के शेष समय का वृत्तान्त अनुपलब्ध है। चैतन्य-सम्प्रदाय में दीक्षित होने तथा भक्ति एवं साहित्याराधन के प्रति इनके लगाव को देखकर यह सम्भावना होती है कि इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग विरक्त भक्त के रूप में श्रीकृष्णार्पित किया होगा। इनके जीवन की अन्तिम लीला के स्थान और समय के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। गोविन्दकुण्ड (वृन्दावन) के चैतन्य-सम्प्रदाय के भक्तों के अनुसार कविकर्णपूर ५८ वर्ष की अवस्था में गोलोकवासी हुए थे।

कविकर्णपूर का उपस्थिति-काल विवादास्पद नहीं है क्योंकि इन्हें चैतन्य महाप्रभु का समकालिक होने का सौभाग्य प्राप्त था। इनके ग्रन्थों के अन्तरंग प्रमाणों और अन्य बाह्य साक्ष्यों से भी इनका स्थितिकाल निर्धारित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'चैतन्यचरितामृत' (२०१४६) में कविकर्णपूर ने स्वयं ही उसका रचनाकाल शक सं० १४६२ (अर्थात् १५४२ ई०) दिया है। इसी ग्रन्थ में ये अपने को 'शिशु' भी कहते हैं—'तत्तद्विलोक्य विलिलेख शिशुः स एषः' (२०१४२)।

ढाका विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय में संगृहीत 'चैतन्यचरितामृत' की हस्तलिपि (सं० २३८९) में लिपिकार विष्णुदास के उल्लेख—'चैतन्यचन्द्रचरितामृतम् अद्भुताभैर्द्वंचष्टाब्दिकैर्विरचितं कर्णपूरैः'—के अनुसार इस ग्रंथ की रचना के समय कविकर्णपूर की आयु १६ वर्ष की थी। अतः उनका जन्मकाल (१५४२–१६ =) १५२६ ई० निर्भ्रान्तिरूपेण स्वीकार किया जा सकता है।

कृष्णदास-विरचित 'चैतन्यचरितामृत' के अनुसार कविकर्णपूर ७ वर्ष की अवस्था में प्रथम बार चैतन्य महाप्रभु के चरणों में अपने पिता के साथ उपथित हुए थे। इनके द्वारा रचित 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' के टीकाकार वृन्दावन चक्रवर्ती के अनुसार उस समय इनकी अवस्था ५ वर्ष थी। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार चैतन्य महाप्रभु का निर्वाण १५३३ ई० में हुआ था। कृष्णदास कविराज के अनुसार, कविकर्णपूर से मिलने की उक्त घटना के दो वर्ष बाद महाप्रभु ने अपनी लौकिक लीला का संवरण किया था। इस प्रकार कृष्णदास कविराज के उल्लेख के आधार पर कविकर्णपूर का जन्मकाल १५२४ ई० और वृन्दावन चक्रवर्ती के अनुसार १५२६ ई० सिद्ध होता है। किन्तु उक्त दोनों महानुभाव कविकर्णपूर के पर्याप्त समय पश्चात् हुए हैं, अतः अतीत की घटनाओं के संकेत में उनके द्वारा प्रदर्शित दो-एक वर्ष का अन्तर कोई बहुत महत्त्व नहीं रखता। इससे कविकर्णपूर का जन्मकाल १५२४-१५२६ ई० के आसपास मानना चाहिये।

कविकर्णपूर के व्यक्तित्व में कवि, भक्त, दार्शनिक, आलोचक और समाज-सुधारक के गुणों का अपूर्व समन्वय प्राप्त होता है। कवि के रूप में इनकी प्रतिभा असन्दिग्ध है। ये सौम्य, सरल, गम्भीर, उदार एवं मितभाषी भक्त के रूप में स्पृहणीय गुणों से मण्डित थे। इनकी अधिकांश साहित्यिक रचनायें भगवान् कृष्ण और महाप्रभु चैतन्य तथा उनके भक्तों के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति से आप्लावित हैं। चैतन्य-भक्त कुटुम्ब में उत्पन्न होकर इन्होंने अपना अधिकांश जीवन महाप्रभु के पार्षदों—नित्यानन्द, अद्वैत, रूपगोस्वामी, श्रीवास और मुरारिगुप्त के सान्निध्य में व्यतीत किया था। माता-पिता के संस्कारों के प्रभाव से इनका अपना जीवन सुसंस्कृत था। भक्ति तथा काव्य-प्रतिभा इन्हें अपने पिता से उत्तराधिकार के रूप में अनायास ही प्राप्त हो गई थी। इनकी समस्त कृतियों में उच्चकोटि की दार्शनिकता प्राप्त होती है। आलोचक के रूप में ये अत्यन्त निर्भीक एवं निष्पक्ष थे। अलंकारकौस्तुभ में काव्यतत्त्व के प्रसंग में इन्होंने आचार्य मम्मट और विश्वनाथ कविराज की निर्भीकतापूर्वक आलोचना की है। इसी प्रकार, काव्य-दोषों के प्रदर्शन में अपने गुरु श्रीनाथाचार्य और स्वरचित ग्रन्थों के उद्धरण दिये हैं। इन्होंने अपनी कृतियों (चैतन्यचन्द्रोदय आदि) में, तामसी प्रवृत्तियों, जातिपाँति के भेदभाव, अस्पृश्यता आदि के विरोध में सुस्पष्ट मत व्यक्त किया है।

कविकर्णपूर की कृतियाँ अधोलिखित हैं—

१ महाकाव्य—चैतन्यचरितामृत, पारिजातहरण।

२. खण्डकाव्य—आर्याशतक, कृष्णाह्निककौमुदी, स्तवावली, श्रीकृष्णचैतन्यसहस्रनामस्तोत्र।

३. नाटक—चैतन्यचन्द्रोदय।

४. चम्पू—आनन्दवृन्दावनचम्पू।

५. लक्षणग्रन्थ—अलंकारकौस्तुभ।

६. साम्प्रदायिक ग्रन्थ—गौरगणोद्देशदीपिका, बृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिका, श्रीमद्भागवतटीका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपर्युक्त बारह ग्रन्थों के अतिरिक्त, 'चमत्कार-चन्द्रिका' और 'कृष्णकौतुक' नामक दो और ग्रन्थ भी इनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

'चैतन्यचरितामृत' महाकवि कर्णपूर की किशोरा-वस्था की कृति है। इसके २० सर्गों में कुल १९११ श्लोक हैं। इसमें कवि ने चैतन्यमहाप्रभु के ४७ वर्षों के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को छन्दोबद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

'पारिजातहरण' महाकाव्य १८ सर्गों में विभक्त है। इसमें कृष्ण द्वारा स्वर्ग से पारिजातवृक्ष के हरण की पौराणिक कथा को सरस और रोचक रूप में निबद्ध किया गया है। काव्यसौष्ठव एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक परिपक्व रचना है।

'आर्याशतक' कविकर्णपूर की काव्य-प्रतिभा का प्रथम फल है। सम्प्रति यह रचना अप्राप्य है। कहा जाता है कि कवि ने सौ आर्या छन्दों में महाप्रभु की स्तुति की थी।

'कृष्णाह्निककौमुदी' ६ प्रकाशों में विभक्त है। इसमें वृन्दावनस्थित राधाकृष्ण की अष्टकालिक नित्य-लीलाओं का ललित वर्णन है। यह गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय की प्रतिनिधि रचना है, जो राधाकृष्ण की रसमयी क्रीडाओं से भक्तों के हृदय को प्रफुल्लित करती है। कोमलकान्त पदावली, रमणीय संगीतमय छन्द तथा अलंकारों का चारु विन्यास इसके वैशिष्ट्य हैं।

'स्तवावली' अप्राप्य है। 'श्रीकृष्णचैतन्यसहस्र-नामस्तोत्र' के मुद्रित संस्करण में ११३ श्लोक प्राप्त होते हैं।

'चैतन्यचन्द्रोदय' संस्कृत-साहित्य के प्रतीकात्मक नाटकों की परम्परा में उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें महा-प्रभु के जीवन की कुछ घटनायें निरूपित हैं। यह नाटक १० अंकों में विभक्त है। इसमें गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। यत्रतत्र लम्बे दार्शनिक संवादों की योजना भी की गई है।

'आनन्दवृन्दावनचम्पू' चम्पू-काव्यों की परम्परा में विशिष्ट स्थान रखता है। यह २२ स्तबकों में विभक्त है। इसमें श्रीकृष्ण की वृन्दावनस्थ लीलाओं का वर्णन है। कथा का मूलस्रोत श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण-लीला है, जिसे कविकर्णपूर ने अपने गुरु श्रीनाथाचार्य से सुना था। साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से यह चम्पू-काव्य उत्कृष्ट कोटि का है।

'अलंकारकौस्तुभ' कविकर्णपूर द्वारा काव्यप्रकाश की शैली पर निर्मित अलंकारशास्त्रविषयक ग्रन्थ है। समग्र ग्रन्थ १० किरणों में विभक्त है। इसमें कवि-कर्णपूर ने भरतमुनि से लेकर भोजराज तक की साहित्यशास्त्र की उपलब्धियों का मन्थन करने से प्राप्त नवनीतरूप सिद्धान्तों का निरूपण किया है।

'गौरगणोद्देशदीपिका' चैतन्य-सम्प्रदाय की प्रति-निधि रचना है। इसमें महाप्रभु और उनके पार्षदों का दार्शनिक तत्त्व-विवेचन सरल भाषा में किया गया है।

कविकर्णपूर की काव्य-प्रतिभा के उदाहरण-स्वरूप यहाँ उनके कुछ रसपेशल छंद उदाहृत किये जाते हैं—

श्यामलोऽसि सततं मधुमत्तः,
पद्मिनीषु निरतश्चपलोऽसि।
चंचरीकसदृशोऽसि ततस्त्वं,
कस्यचिन्ननु समस्तगुणेन॥
संविमर्दनसहासहतां नो,
वेत्सि मुग्धतमरागपरोऽसि।
इत्थमात्तकुतुकं कृतरोषा,
कापि कृष्णमपदिश्य जगाद॥

—चैतन्यचरितामृत ९।३८-३९

वृन्दावन के लताकुंजों में श्रीकृष्ण किसी गोप-बाला के साथ विहार कर रहे हैं। सहसा एक भौंरा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खिले हुए फूल को छोड़कर अर्द्धविकसित कली का रसपान करने लगता है। नायिका, मधुप के इस चंचल व्यवहार की सम्भावना कृष्ण में करके मान कर बैठती है और उपालम्भ देने लगती है—'हे मुग्धतम ! तुम श्यामल (कृष्ण वर्ण के) हो, मधुमत्त अर्थात् उचितानुचित के विवेक से रहित हो, कमलिनियों (के सदृश कामिनियों) में सदैव अनुरक्त रहते हो तथा चंचल स्वभाव के हो। अतः निश्चय ही इन सब गुणों के कारण भ्रमर के समान हो। हम स्त्रियाँ ही पीड़ा सहन करने में समर्थ हैं किन्तु इस तथ्य को तुम रागवश नहीं जानते।

इसी प्रकार कोई गोपी कौतुकवश तनिक (झूठा) क्रोध प्रकट करती हुई कृष्ण को लक्ष्य कर कहने लगी।

> प्रेयोऽपमानमथनकोपपरीतचित्ता,
> निःश्वासशोषितवराधरपल्लवश्रीः।
> व्यावर्त्य तद्वदनतो नयनारविन्दं,
> नम्राननना सततमेव भुवं लिलेख ॥
>
> —पारिजातहरण ४।३०

'प्रियतम से प्राप्त (अवहेलनारूप) अपमान के कारण उत्पन्न अधिक क्रोध से भरे हुए चित्तवाली, (उष्ण) निःश्वास से सुखाये गये सुन्दर अधर-पल्लव की शोभा से युक्त सत्यभामा श्रीकृष्ण के मुख से अपने नेत्रकमल को फेरकर अधोमुखी होकर भूमि पर कुछ लिखने लगी।'

अ० पां०

कर्णपूर कविराज

श्री कर्णपूर कविराज श्रीनिवासाचार्य प्रभु के बड़े प्रिय शिष्य थे। इनका श्रीपाट बहादुरपुर में है। यह बड़े भजनानन्दी थे। श्रीकृष्ण की मानसी सेवा में यह सदा मग्न रहते और ध्यान में नित्य नई लीला का अनुभव कर नूतन पद बनाकर आचार्यजी को सुनाते। आचार्य इनके पदों को सुनकर बड़े प्रसन्न होते और इनके पदों का भक्तों के सामने कीर्तन कराते। इनके अपूर्व भाव तथा लीलावर्णन को सुनकर भक्त लोग बड़ी प्रशंसा करते। श्रीनिवासाचार्य के विषय में इन्होंने बहुत से पद बनाये हैं। खेतुरी-महोत्सव में ये प्रधान गायक थे। इनके पदों का जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन्होंने 'गुणलेशसूचक' अथवा 'श्रीनिवास गुणलेशसूचक' नामक ग्रंथ लिखा है। यह काव्य संस्कृत भाषा में है और इसमें श्रीनिवासाचार्य प्रभु के चरित्र का वर्णन है। उदाहरण के लिए दो श्लोक यहाँ पर दिए जाते हैं। यथा—

> आविर्भूय कुले द्विजेन्द्रभवने राढ़ीय घण्टेश्वरी।
> नाना शास्त्र सुविज्ञ निर्मलधिया बाल्ये विजेता दिशाम्
> नालाद्रौ प्रकटं शचीसुतपदं श्रुत्वा जनात् सर्वकं।
> सोऽयं मे करुणानिधिर्विजयते श्री श्रीनिवासः प्रभुः ॥
>
> गच्छन् श्री पुरुषोत्तमं पथि श्रुतश्चैतन्यसंगोपनम्।
> मूर्च्छीभूय कचान् लुनन् स्वशिरसो घातं दधद्दिक्कृतं
> तत्पादं हृदि सन्निधाय गतवान्नीलाचलं यः स्वयं।
> सोऽयं मे करुणानिधिर्विजयते श्री श्रीनिवासः प्रभुः ॥

'राढ़ीय घंटेश्वरी कुल में ब्राह्मण के घर जन्म लेकर बाल्यकाल में ही प्रभु ने नाना शास्त्र पढ़कर अपनी निर्मल बुद्धि द्वारा दिग्विजय की है। नीलाचल में महाप्रभु श्री शचीनन्दन प्रकट होकर सबको दर्शन दे रहे हैं, ऐसा लोगों के मुख से सुनकर महाप्रभु के दर्शनार्थ चले। ऐसे करुणा के निधान श्री श्रीनिवास प्रभु की जय हो।'

श्री पुरुषोत्तम धाम की ओर जाते समय मार्ग में श्री चैतन्य के प्रकट होने का समाचार सुनकर प्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़े। प्रभु हाथों से अपना मस्तक पीटने तथा बाल नोचने लगे और अपने भाग्य को धिक्कारने लगे। पुनः धीरज धर श्री गौरपाद पद्म का हृदय में ध्यान कर वे श्री नीलाचल को चले। ऐसे मेरे करुणा के निधान श्री श्रीनिवास प्रभु की जय हो।'

इन्होंने 'शाखा वर्णन-स्तोत्र' भी लिखा है। यह संस्कृत भाषा में बाईस अनुष्टुप् श्लोकों में है। इसमें श्रीनिवास प्रभु की शाखा तथा महिमा का वर्णन है।

न० च० बं०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कविडिण्डिम जीवदेवाचार्य

कविडिण्डिम जीवदेवाचार्य उड़ीसा के निवासी थे। ये उड़ीसा के प्रसिद्ध भक्त तथा साहित्य-प्रेमी राजा गजपति प्रतापरुद्रदेव के मन्त्री थे। प्रतापरुद्रदेव का समय १४९७ ई०–१५३८ ई० है। कविडिण्डिम के पूर्वज उड़ीसा के राजाओं के आध्यात्मिक गुरु थे। जीवदेव के पूर्वज विद्वान्, कवि तथा तन्त्रागम के ज्ञाता थे। उड़ीसा के राजा पुरुषोतमदेव के बाद उनके पुत्र प्रतापरुद्र गद्दी पर बैठे। उनकी अवस्था १७ वर्ष थी। सिंहासनारूढ़ होने के बाद उन्होंने शक्ति गौडराज को पराजित किया। यद्यपि प्रतापरुद्रदेव अद्वैतवेदान्त में निष्णात थे, किन्तु उन्होंने द्वैत-सिद्धान्त का प्रचार किया। वे कृष्ण के भक्त थे। उनके आध्यात्मिक गुरु कविडिण्डिम जीवदेवाचार्य थे। जब राजा प्रतापरुद्रदेव कर्णाट की विजय कर रहे थे, तभी कविडिण्डिम ने भक्ति-भागवत महाकाव्य की रचना की। इसकी रचना १५१० ई० में हुई। उस समय कविडिण्डिम गोदावरी के तट पर निवास कर रहे थे। जीवदेव केवल एक प्रहर में एक काव्य का निर्माण कर सकते थे तथा षड्दर्शनों के विषय में किसी भी तर्क का निराकरण कर सकते थे। जिस समय जीवदेव ने 'भक्ति-भागवत' की रचना की, उस समय प्रतापरुद्रदेव की अवस्था ३५ वर्ष की थी।

प्रतापरुद्रदेव ने जीवदेव को कविडिण्डिम की उपाधि से विभूषित किया था और इन्हें आठ सुवर्ण-जटित चामर, एक सुवर्णजटित छत्र और डिण्डिम (एक प्रकार का वाद्य) दिया था। श्री जीवदेव षड्-दर्शनों के पण्डित थे—

अष्टौ हाटकचामराणि कनकच्छत्रं डमड्डिण्डिमं,
योऽलब्धप्रथितप्रतापविभवश्रीरुद्रदेवेश्वरात् ।
श्रीजीवः कविडिण्डिमो नृपगुरुः षड्दर्शनीपण्डितो,
भक्तिप्रस्थितदेशिकोऽखिलकलालङ्कारदीक्षागुरुः ॥
—भक्तिवैभवनाटक

कविडिण्डिम ने 'भक्तिभागवतमहाकाव्य', 'भक्ति-वैभवनाटक' और 'उत्साहवती' (नाटक) की रचना की। 'भक्तिभागवत' में भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर कथा निबद्ध हुई है। इसकी भाषा प्रवाह-युक्त और मधुर है। यह ग्रन्थ ३२ सर्गों का है। कवि ने 'भक्तिवैभवनाटक' की रचना की, जिसमें ९ अंक हैं। यह कृष्णमिश्र-कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक की भाँति प्रतीकात्मक है। इसमें पहले शिव की स्तुति की गयी है और उसके बाद जगन्नाथ की। इसका अभिनय दोलायात्रा-महोत्सव के अवसर पर जगन्नाथ के प्रांगण में हुआ था।

'भक्तिभागवतमहाकाव्य' के अन्तिम श्लोक में कवि ने अपनी प्रतिभा के विषय में लिखा है—

एकः परं रचयितुं प्रहरात् प्रबन्धं
एकः परं सदपि खण्डयितुं मतानि ।
शक्तो मुकुन्दपदपङ्कजचिन्तनेन
श्रीजीवदेवकविडिण्डिमपण्डितेन्द्रः ॥

'मुकुन्द के चरणकमल के चिन्तन के प्रभाव से श्री जीवदेव एक प्रहर में ही प्रबन्ध की रचना करने में समर्थ हैं और दूसरे के मतों का खण्डन कर सकते हैं।'

'भक्तिभागवतमहाकाव्य' की रचना करने के अवसर पर कविडिण्डिम व्यवहर्तृ महामात्र थे। इसके बाद इन्हें वाहिनोपति का उत्कृष्ट पद प्रदान किया गया।

'उत्साहवती' का अभिनय वसन्तोत्सव के समय जगन्नाथमन्दिर के पार्श्ववर्ती मणिमण्डप में हुआ था—

अस्मिन् वसन्तसमये पुरुषोत्तमस्य,
प्रासादपार्श्वमणिमण्डपमण्डलीषु ।
एते हरन्ति हृदयानि महाजनानां,
नानाविधैरभिनयैर्रसिका नरेन्द्राः ॥

'महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध के घोड़े की रक्षा के लिए अर्जुन नियुक्त थे। उत्साहवती ने घोड़े को रोक लिया, जिससे अर्जुन के साथ युद्ध प्रारम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गया, किन्तु भगवान् और नारद की मध्यस्थता से समझौता हो गया तथा अर्जुन और उत्साहवती का विवाह सम्पन्न हुआ।'

वैदुष्य के कारण कविडिण्डिम को महोपाध्याय की उपाधि प्राप्त हुई थी और कृष्ण-भक्ति के प्रचार के कारण इन्हें श्रीमद्भागवतपरमाचार्य की उपाधि मिली थी। ये वाहिनीपति थे, क्योंकि ५००० सैनिकों की सेना के सेनापति थे।

कविडिण्डिम के समकालिक माधव पटनायक कवि ने लिखा है कि राजमहेन्द्री के शासक के पद से रायरामानन्द के सेवानिवृत्त होने पर सम्भवतः १५१२ ई० में गजपति प्रतापरुद्रदेव ने उस पद पर जीवदेव को नियुक्त किया। उसी समय प्रतापरुद्रदेव और विजयनगर के राजा कृष्णदेवराय में युद्ध छिड़ गया। जीवदेव के अधीन १०,००० सैनिक कर दिये गये और इन्हें कोन्दाविडु किले की रक्षा का भार सौंपा गया। दुर्भाग्य से कृष्णदेवराय के सैनिकों ने कोन्दाविडु किले को घेर लिया। महीनों तक किले में घिर जाने के कारण उड़ीसा के अधिकांश सैनिक किले में ही मर गये और अन्त में कृष्णदेवराय ने किले पर अधिकार कर लिया तथा जीवदेवाचार्य की हत्या कर दी गयी।

अ० पां०

कुमारताताचार्य

कुमारताताचार्य के पितामह श्रीनिवासगुरु और पिता वेङ्कटगुरु थे। इनका जन्म उत्तर अर्काटमण्डल के बन्दवाशी जनपद में हुआ था। तंजौर के राजा अच्युत नायक (१५७२-१६१४ ई०) ताताचार्य के शिष्य थे। अच्युत ताताचार्य को तंजौर में रखना चाहते थे, किन्तु ताताचार्य ने स्वीकार नहीं किया। अतः अच्युत ने कावेरी के तट पर नीलमेघ के मन्दिर के समीप भवन बनवाया, जिसमें ताताचार्य कुछ समय तक रहे। इन्होंने अनेक यज्ञों का सम्पादन किया।

इनकी प्रशंसा में इनके किसी भक्त का कथन है—

कुमारततयाचार्यं सदाचारपरं सदा।
वेदान्ताचार्यसिद्धान्तविजयध्वजमाश्रये॥

वेदान्तद्वयसिद्धान्तविमलीकृतमानसम्।
तारकं भवभीतानां ताताचार्यमहं भजे॥

इससे प्रकट होता है कि ताताचार्य महान् ज्ञानी व्यक्ति थे। ये भक्तों के भवबन्धन को नष्ट करनेवाले थे। इन्होंने कुम्भकोण-क्षेत्र में अपना शरीर छोड़ा। वहीं पर इनकी शिलाधातु की मूर्ति है।

ताताचार्य ने 'पारिजात' नाटक की रचना की है। इस नाटक की प्रस्तावना से ताताचार्य के पाण्डित्य का परिचय मिलता है—

सूनुस्तस्य कुमारतातयगुरुः सूरीन्द्रचूडामणिः,
प्रत्युद्यत्प्रतिवादिकुञ्जरघटापञ्चाननप्रक्रमः।
व्याख्याता फणिराट्कणादकपिलश्रीभाष्यकारादिम-
ग्रन्थानां पुनरीदृशां च करणे ख्यातः कृतीनामसौ॥

—पारिजातहरण १।१२

पारिजातहरण की कथावस्तु इस प्रकार है 'कृष्ण रुक्मिणी से द्यूत-क्रीड़ा में हार गये थे। उसी समय नारद आये और कृष्ण को पारिजात का एक पुष्प दिया। कृष्ण पारिजात का पुष्प रुक्मिणी को देकर वादे से मुक्त हो गये। नारद ने सत्यभामा से कह दिया कि कृष्ण ने रुक्मिणी को पारिजात का पुष्प दिया है। इस पर सत्यभामा ने मान किया। कृष्ण ने सत्यभामा को पुष्प देने का वचन दिया। उसी समय तपस्वी आये और कृष्ण से प्रार्थना की कि नरकासुर के अत्याचार से तीनों लोक त्रस्त हैं, अतः आप रक्षा करें। दूत ने कृष्ण को नरकासुर द्वारा बन्दी बनायी गयी सोलह हजार कुमारियों का प्रेमपत्र और चित्र दिया। कृष्ण प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचे, नरकासुर को मारा तथा कुमारियों को बलदेव के साथ द्वारका भेज दिया। इसके बाद कृष्ण ने इन्द्र पर आक्रमण किया और उसे पराजित कर पारिजात सत्यभामा को दिया। कृष्ण सत्यभामा के साथ द्वारका लौट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आये और नरकासुर से मुक्त हुई कुमारियों के साथ विवाह किया।

नाटक में सुन्दर भावों की योजना के साथ ही प्रकृति की मधुर छटा चित्रित की गयी है।

कृष्ण सत्यभामा के क्रोध को शान्त करने के लिए कहते हैं कि सोलह हजार स्त्रियाँ तुम्हारी दासी हैं, इन्द्र-प्रभृति सभी देवता तुम्हारे कटाक्ष की प्रतीक्षा करते रहते हैं, पार्वती आदि देववनिताएँ तुम्हारी प्रेयसी हैं और सभी लोकों का स्वामी यह (कृष्ण) तुम्हारी कृपा की याचना कर रहा है—

त्वत्कैंकर्ये त्वरितहृदयं षोडशस्त्रीसहस्रं,
देवाः सर्वे शतमुखमुखास्त्वत्कटाक्षप्रतीक्षाः।
त्वत्प्रेयस्यस्त्रिदशवनिताः पर्वतापत्यमुख्या,
नाथः सोऽयं सकलजगतां नाथति त्वत्प्रसादम्॥

—पारिजातहरण २।१६

नारद कृष्ण की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं—

आम्नायाः परमामनन्ति पुरुषं यं श्रीश्च यं सेवते,
धत्ते यच्चरणोदकं निजजटाजूटे सदा धूर्जटिः।
यन्नाभेरभवन्मुनिस्त्रिजगतो निर्माणकर्मान्तिको,
भिक्षोः क्षालयति स्वयं स भगवान् पादौ स्पृशन् पाणिना

—पारिजातहरण १।२८

'वेद जिस परम पुरुष का वर्णन करते हैं, शिव जिनके चरणोदक को अपने जटाजूट में सदा धारण करते हैं, तीनों लोकों का निर्माण करनेवाले ब्रह्मा जिनकी नाभि से उत्पन्न हुए हैं, वे भगवान् स्वयं हाथ से भिक्षु के चरणों का स्पर्श करते हुए धो रहे हैं।'

अ० पां०

कुलशेखर आलवार

महाराज दृढ़व्रत नाम के एक क्षत्रिय राजा चेरमण्डलान्तर्गत कुक्कट क्रोड नामक राजधानी में राज्य करते थे। वे पूर्ण वैभव और एकच्छत्र साम्राज्य के अधिपति होने पर भी निस्संतान थे। महाराज दृढव्रत को इसी बात का महान् दुःख था। महात्माओं के उपदेश से वे भगवान् नारायण की परम शान्तिदायिनी भक्ति में प्रवृत्त हुए। भगवदाराधन के पुण्य प्रभाव से उन्हें अपनी पट्टमहिषी से तिरुवञ्जिकलं के दिव्य क्षेत्र में माघी पूर्णिमा को एक पुत्र-रत्न का आविर्भाव हुआ। जन्म से ही अत्यन्त तेजस्वी और कुल में एकमात्र शिखरतुल्य होने के कारण उस बालक का नाम कुलशेखर रखा गया। बालक कुलशेखर शैशव से ही होनहार, दिव्य-लक्षणसम्पन्न, संपूर्ण राजकुल को आनन्द देनेवाले भगवद्भक्तिसम्पन्न थे।

शनैः-शनैः बड़े होने पर उनका उपनयनादि संस्कार किया गया और वेद-वेदांगों की शिक्षा के साथ-साथ वे युद्धविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, पशु-विज्ञान आदि में निष्णात हो गए। थोड़े ही समय में पिता ने इन्हें युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दिया।

युवराज-पद की प्राप्ति के थोड़े ही दिन बाद श्री कुलशेखर ने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और चोल, चेर, पाण्ड्य आदि राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। इधर महाराज दृढ़व्रत वृद्ध हो गये थे। अतः वे राज्य से निवृत्त होना चाहते थे। यशस्वी पुत्र की कमनीय कीर्ति को कानों से सुनकर उन्हें अत्यंत संतोष हुआ। अतः वे योग्य पुत्र को समस्त राज्य-भार देकर तपोवन को चले गए।

महाराज कुलशेखर धर्म और नीतिपूर्वक समस्त प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए स्वयं भी गार्हस्थ्य-धर्म में प्रविष्ट हुए। समय पर इन्हें दो संतानें हुईं। पुत्र का नाम कुल परम्परा के अनुसार दृढ़व्रत रखा गया और पुत्री का नाम इला। यह सब कुछ होते हुए भी महाराज कुलशेखर प्रवृत्ति एवं प्रकृति से पूर्ण आध्यात्मिक पुरुष थे। अपने सम्पूर्ण वैभव में सूर्य-समान देदीप्यमान होकर और प्रजा में पूर्ण शान्ति स्थापित करके वे अपना अधिक समय सत्संग, स्वाध्याय और भगवच्चिन्तन में ही व्यतीत करते थे। पौराणिकों द्वारा भगवद्गुण-श्रवण, लीला-कथा का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुचिन्तन और भगवद्-भक्तों का सत्कार तथा भक्तों में भगवद्-बुद्धि रखना इनका स्वभाव बन गया था। सांसारिक कार्यों से धीरे-धीरे उपरति होती जा रही थी। वैराग्य और भगवद्-भक्ति की अनुदिन वृद्धि हो रही थी। परमतत्त्व भगवान् नारायण की भक्ति ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है, परलोक-साधना ही परम पुरुषार्थ है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। मनोवृत्ति स्थिर और दृढ़ संकल्पयुक्त बनी रहे, एतदर्थ इन्होंने राजमहल में ही पुराण-श्रवण की व्यवस्था कर ली थी। ये इतिहास, पुराण, रामायण श्रुति-स्मृति का नियमित श्रवण करते रहते थे। विभवावतारों में भगवान् राम के ये अनन्य भक्त थे। अर्चावतारों में श्री रंगनाथजी पर इनकी अपार आस्था थी।

महाराज कुलशेखर के मुख्य रूप से चार ही व्यसन थे—१. रामायण श्रवण-पठन, २. वैष्णव-परिचर्या, ३. अतिथि-सेवा एवं ४. राज-प्रासाद में प्रतिष्ठित श्री रामचन्द्रजी एवं भगवान् गोपालजी के दिव्य श्रीविग्रह का ऐश्वर्यपूर्ण शृंगार एवं उनकी सेवा-पूजा। वार्षिक उत्सवों पर तो बड़ा ही समारोह एवं उत्साह-आनन्द रहता था।

महाराज कुलशेखर पराकोटि के विद्या-व्यसनी थे। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणों का अनुशीलन एवं शास्त्राभ्यास में इनकी दृढ़निष्ठा थी। सबसे ऊपर ये भगवच्चरित का श्रवण जीवन के परम लक्ष्य के रूप में मानते थे। इनका विश्वास था कि भगवल्लीला-श्रवण से अधिक मन को निरोध करने का कोई अन्य उपाय नहीं है। अतः राज-प्रासाद में रामायण-कथा का अबाध प्रबन्ध था। यद्यपि महाराज स्वयं व्युत्पन्न थे और रामायण के अनुशीलन एवं स्वाध्याय द्वारा उसके रस-ग्रहण में पूर्ण सक्षम थे, फिर भी प्रवचन-परायण महात्माओं और पौराणिकों के मुख से ही श्रवण करने में इन्हें सविशेष आनन्द आता था। रामायण-कथा-श्रवण की ही एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जाता है। कथा-श्रवण में उनकी तल्लीनता अद्वितीय थी। रसानुभूति की समाधि-कल्प स्थिति में देश-काल की परिधियों को पार कर अपने भावलोक में ये प्रसंग-चर्चित लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करते थे। अतः अरण्यकाण्ड के प्रसंग में जब इन्होंने यह श्लोक सुना—

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम्।
एकश्च रामो धर्मात्मा कथं युद्धं भविष्यति॥

'चौदह सहस्र भयंकर राक्षसों से अकेले धर्मात्मा भगवान् रामचन्द्र कैसे युद्ध करेंगे?' तो ये एकदम उच्च स्वर से चिल्ला उठे—"भगवान् पर आपत्ति आयी है तब क्या मैं अपनी चतुरंग सेना-सहित चुप बैठा रहूँगा?" और सेना को तैयार रहने के लिए आज्ञा देकर स्वयं भी चलने को उद्यत हो गए। प्रवचन-कर्त्ता पौराणिक ने जब महाराज का इस प्रकार का सात्त्विक आवेश देखा तो वे इनकी मनोदशा को भलीभाँति समझ गए और इनके रौद्रभाव को शांत करने के लिए झटपट आगे के प्रसंग पर आ गए और उच्च स्वर से रामायण से पाठ करते हुए बोले—

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे॥

'शत्रु का नाश करनेवाले, महर्षियों को सुख देनेवाले भगवान् राम को देखकर वैदेही अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने भगवान् को हृदय से लगा लिया।'

इस श्लोक को सुनकर महाराज कुलशेखर का भावावेश शान्त हुआ और ये प्रकृतिस्थ हुए। परन्तु तब से कथा-वाचक पौराणिक महोदय सावधान हो गए। वे भविष्य में ऐसे उद्वेग अथवा क्लेशकारक प्रसंगों के विस्तार-कथन से कतराने लगे। साथ ही भगवान् राम के विजय-वृत्तान्तों को पूरा-पूरा महत्त्व देने लगे।

एक दिन राजप्रासाद में पौराणिकजी को संयोगवश किसी कार्यवश अन्यत्र जाना पड़ा। वे अपनी अनु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पस्थिति में कथा एवं सत्संग-वार्ता के लिये अपने पुत्र को महाराज के पास जाने का आदेश दे गए। यह विद्वान् युवक महाराज की भावुक प्रकृति से पूर्णतः अपरिचित होने के कारण उस दिन के सीता-हरण-प्रसंग को विस्तार से कह गया। बस, फिर क्या था, जगदम्बा महारानी सीता के हरण की घटना को सुनते ही महाराज कुलशेखर पुनः आवेश में आ गए और तत्क्षण समुद्रोल्लंघन करके ससैन्य रावण पर चढ़ाई करके महारानी सीता को लाने के लिये उद्यत हो गये। यहाँ तक कि पैदल चलकर ये समुद्र में छलाँग मारने को तैयार हो गए। अपने अनन्य भक्त को इस प्रकार भावावेश की स्थिति में विपत्ति में फँसते देख भगवान् कोसलेन्द्र सीतासहित इनके सामने प्रकट हुए और इन्हें आश्वासन दिया कि वे सकुल रावण का विनाश करके उनकी जगदम्बा को ले आये हैं। इतना कहकर भगवान् राघवेन्द्र अन्तर्धान हो गए। तब कहीं जाकर महाराज कुलशेखर का भावावेश शान्त हुआ और इनका उद्वेग दूर हुआ। भगवत्कथा में इस प्रकार की तल्लीनता और अभिनिवेशमय स्थिति इनकी भक्ति-भावना की प्रगाढ़ता का परिचय देती है।

श्रीरंग के दर्शन की इनकी बलवती इच्छा का परिचय इस बातसे और भी मिल जाता है कि ये एकान्त में आवेशमय होकर कभी-कभी इस प्रकार उच्च स्वर से उद्घोष करने लगते थे—

कदाऽऽहं कावेरी-तट-परिसरे रंगनगरे,
शयानं भोगीन्द्रे शतमख-मणि श्यामल रुचिम्।
उपासीनः क्रोशन् मधुमथन नारायण हरे,
मुरारे गोविन्देत्यनिशमपनेष्यामि दिवसान्॥

'कब मैं कावेरी के पवित्र तट पर स्थित श्रीरंगम् नगर में भगवान् शेषनाग पर शयन करनेवाले, इन्द्रनीलमणि जैसी श्यामल कान्तिवाले श्री रंगनाथ भगवान् की उपासना करता हुआ—हे मधुमथन! हे नारायण!! हे हरे!!! हे मुरारे! हे गोविन्द!! आदि नामों का उद्घोष करता हुआ अपने जीवन के शेष दिवसों को बिताऊँगा।'

इस प्रकार कहते-कहते इनकी इच्छा राजधानी को छोड़कर श्रीरंगम् जाने के लिये बलवती हो उठती थी और ये सकुटुम्ब जाने की तैयारी करने लगते थे। इस पर मन्त्रिमण्डल को चिन्ता हुई और वे इनको रोकने के लिये अनेक उपाय सोचने लगे। अन्त में एक उपाय सूझा—महाराज कुलशेखर बड़े ही वैष्णव-भक्त थे। जब भी वे किसी भागवतोत्तम वैष्णव को अतिथि-रूप में पा जाते थे तो तन-मन-धन से उसकी सेवा में जुट जाते थे। अतः जब भी वे श्रीरंगम् के लिये प्रस्थान की तैयारी करते थे, मंत्रिगण किसी न किसी वैष्णव को अतिथि-रूप में उपस्थित कर देते और महाराज कुलशेखर उसकी परिचर्या के लिये अपनी यात्रा स्थगित कर देते थे क्योंकि इनका विश्वास था कि—

षष्टिवर्षसहस्रान्तं विष्णोराराधनात् फलम्।
सकृद्वैष्णवपूजायाः फलेन न समं भवेत्॥

'साठ हजार वर्ष तक भगवान् विष्णु के आराधन का फल उतना नहीं होता जितना कि एक बार किसी वैष्णव की पूजा (सत्कार) का होता है।'

सिद्धान्ततः मन में यही बात समा जाने के कारण महाराज कुलशेखर का वैष्णव-सेवा में अभिनिवेश बढ़ने लग जाता और श्रीरंगम् की यात्रा का आग्रह मिट जाता था। यहाँ तक कि जब भी ये श्रीरंगम् को यात्रा की तैयारी करते तभी इनके मंत्रिगण वैष्णवों को उपस्थित कर इनकी श्रीरंगम् की यात्रा को स्थगित करवा देते थे। इनकी श्रीरंगम्-यात्रा एक घोषणामात्र बनकर रह जाती। इस कारण इनकी वन्दना में यह स्तुतिपरक श्लोक आज भी प्रचलित है—

घुष्यते यस्य नगरे रंगयात्रा दिने दिने।
तमहं शिरसा वन्दे राजानं कुलशेखरम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'जिन (कुलशेखर महाराज) के नगर में प्रतिदिन श्री रंगयात्रा की घोषणा होती रहती है उन महाराज कुलशेखर को मैं शिरसा प्रणाम करता हूँ।'

भागवतोत्तम श्रीवैष्णवों की नित्य उपासना में महाराज की अनुदिन रुचि बढ़ते देख वैष्णव-समुदाय निर्बाध रूप से प्रतिदिन राजप्रासाद में एकत्र होने लगा और एक प्रकार से व्यवहार-दृष्टि से राज-मर्यादा क्षीण होकर मन्त्रिमण्डल का प्रभाव समाप्त-सा होने लगा। वैष्णव-सत्कार का यह परिणाम सत्ताधारी ऐश्वर्योन्मत्त मंत्रियों को असह्य हो गया, अतः उन्होंने वैष्णवों को तिरस्कृत करने की एक योजना बनाई। वे चाहते थे कि महाराज कुलशेखर के मन में वैष्णवों के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाए और उनके लिये उदासीनता का भाव भर जाए जिससे कि वैष्णवों की उस अनियन्त्रित भीड़-भाड़ से राजमर्यादा, राजप्रासाद और महाराज मुक्त हो जाएँ। अतः एक बार रामनवमी के महोत्सव पर बड़ा विशाल वार्षिकोत्सव का आयोजन हुआ।

राजप्रासाद-स्थित भगवान् राघवेन्द्र की दिव्य प्रतिमा के लिये अनेक दिव्याभरणों, वस्त्रों, आभूषणों की तैयारी हुई। बहुत से कीमती रत्नहार, मणि, भूषणादि मँगवाए गए। मंत्रियों ने अपनी दुर्वासना को चरितार्थ करने का यही उपयुक्त अवसर समझा। उन्होंने उन बहुमूल्य रत्नहारों में से एक कीमती रत्नहार चुरा लिया। जब भगवान् के श्रृंगार करने का समय आया और वह दिव्याभरण भगवद्-सेवा करनेवाले पुजारियों को नहीं मिला तो वे भय और विषाद से भर गए। उन्होंने महाराज के सामने उपस्थित होकर इस दुर्घटना की सूचना दी। इस पर महाराज कुलशेखर को बड़ा ही क्षोभ हुआ। उन्होंने मन्त्रियों को बुलाकर आभूषण के चोर को ढूँढ़ने के लिए आदेश दिया। मन्त्रियों ने अपनी पूर्व दुरभिसन्धि के अनुसार यही सूचित किया कि "महाराजाधिराज ! ये जो श्रीवैष्णव लोग आपके राजप्रासाद की सीमा में स्वच्छन्द विचर रहे हैं, वे सभी वास्तव में मिथ्या भक्त और चोर हैं। उन्हींमें से किसीने भगवान् का आभूषण चुरा लिया है। अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसी धृष्टता करने का साहस नहीं कर सकता। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ये लोग ही आभूषण ले गये हैं। आभूषण कहीं जा नहीं सकता। यदि इनको ताड़ना दी जाय तो वह शीघ्र ही मिल जायगा।"

मन्त्रियों की यह साजिश केवल इसीलिये थी कि महाराज के मन में श्रीवैष्णवों के प्रति वैमनस्य-बुद्धि भर जाय। वस्तुतः आभूषण के वास्तविक चोर मन्त्रिगण स्वयं ही थे। भगवद्-भक्त वैष्णव-समुदाय पर इस प्रकार का मिथ्यारोप सुनकर महाराज को अत्यन्त मानसिक वेदना हुई। उन्होंने वैष्णव निन्दा-श्रवण के पातक से बचने के लिए अपने दोनों कानों को बन्द कर लिया। वे वैष्णवों की ओर से नितान्त संदेह-मुक्त थे। अतः भगवदीय, हरिभक्त तथा भागवत वैष्णवों के शीलादि गुणों से परिचित महाराज को मिथ्याभाषी मन्त्रियों पर बड़ा ही क्रोध आया। इन्होंने उन्हें डपटते हुए कहा—"भगवद्-प्रेमी वैष्णव ऐसा पातक कभी नहीं कर सकते। मेरा यह विश्वास नितान्त सत्य है। अपनी सात्त्विक निष्पाप धारणा की पुष्टि में मैं अत्यन्त अद्भुत प्रमाण भी दे सकता हूँ—आप सब लोग देखें।"

इतना कहकर भरे दरबार में बहुत दिनों के क्षुधित काले सर्पवाले बन्द घड़े को मँगवाकर वैष्णवों की सत्यता की पुष्टि के हेतु सबके सामने यह कहते हुए कि "मन-वचन-कर्म से यदि वैष्णव-गण शुद्ध हैं और उन्होंने भगवान् के आभूषणों की चोरी नहीं की है तो यह काला सर्प मेरे हाथ को नहीं काटेगा।" निर्भीकता के साथ महाराज कुलशेखर ने अपना हाथ उस घट में डाल दिया। सत्य-प्रतिज्ञ महाराज के वचनों की रक्षा हुई। भला वह सर्प महाराज को कैसे हानि पहुँचा सकता था ? भगवदीय वैष्णवों के प्रति अगाध प्रेम और सत्यवादिता का यह परीक्षा-काल था। मन्त्रियों के सिर झुक गये और उन्हें अपने कृत्य पर लज्जा तथा पश्चात्ताप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ, भयभीत होकर वे सभी महाराज के चरणों में गिर पड़े। अत्यन्त नम्रता के साथ उन्होंने अपने दुष्कृत्य के लिए क्षमा माँगी। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। महाराज ने उन्हें सान्त्वना देते हुए आदेश दिया कि भविष्य में कभी भी वे वैष्णव-द्रोह न करें और मन-वचन-कर्म से सर्वदा वैष्णव-समाज की परिचर्या, सेवा-साधना करते रहें।

पश्चात्ताप के परिणामस्वरूप उन्होंने वैष्णवों का चरणामृत मन्त्रियों को वितरित किया जिससे वे निष्पाप हो गये और इस प्रकार महाराज ने सबको क्षमा-दान दिया।

जीवन के उत्तरकाल में महाराज को राज्य-शासन से पूर्ण विरक्ति हो गई थी। अतः अपने पुत्र दृढ़व्रत का राज्याभिषेक कर उसको सम्पूर्ण भार सौंप दिया। स्वयं श्रीरंगनाथ भगवान् की सेवा में चले गये। साथ में उनकी पुत्री इला भी थी। उसकी इच्छा भगवान् रंगनाथ से ही विवाह करने की थी। अतः रंगनाथ भगवान् के साथ अपनी पुत्री का विवाह करके वे बहुत वर्षों तक वहीं रहे। उसके उपरान्त ये धार्मिक यात्रा के लिये चल पड़े। तिरुपति में भगवान् व्यंकटेश्वर के दर्शन कर श्री अयोध्यादि धार्मिक स्थानों पर घूमते-घामते ये पुनः अपने स्थान पर आ गए। बाद में संसार-सागर में डूबे हुए जीवों के कल्याण के लिये 'पेरुमाल तिरुमोली' नामक 'दिव्य प्रबंध' की रचना की, जिसको आज द्राविड़ वेद की उपाधि प्राप्त है। अन्त में ६७ वर्ष की आयु में ये भगवान् की नित्यलीला में लीन हो गये।

अपने 'दिव्य प्रबन्धम्' में भगवान् वेंकटाचलनाथ के प्रति प्रार्थना करते हुए एक दशक में इन्होंने निवेदन किया है कि "हे प्रभो ! आपके दिव्य मन्दिर में मेरी स्थिति एक सोपान (सीढ़ी) के रूप में हो जिससे कि मैं अनवरत रूप से आपके दर्शन करता रहूँ।" आज भी दक्षिण में बड़े-बड़े मन्दिरों में वैष्णव-गण मुख्य मण्डप के बड़े सोपान को 'कुलशेखर-सोपान' के नाम से पुकारते हैं।

श्री कुलशेखर का समय ७वीं शती का उत्तरार्द्ध और ८वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है। डॉ० कृष्णस्वामी अय्यंगार ने इन्हें सातवीं शती में वर्तमान माना है। उनके अनुसार अंतिम आलवार तिरुमंगै का समय ८वीं शती का उत्तरार्द्ध ठहरता है तब कुलशेखर को आलवार गुरु-परम्परानुसार छठी शती में विद्यमान होना चाहिए। परन्तु एक पल्लव-वंशी राजा की मृत्यु कुलशेखर के हाथों एक युद्ध में ८२५ ई० में हुई थी। इस कारण स्थूल अनुमान के अनुसार इन्हें सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में उपस्थित मानने में कोई बाधा नहीं दिखाई देती।

महाराज कुलशेखर के उपर्युक्त चरित्र का वैष्णवों में बड़ा आदर है। इस चरित्र का वे धार्मिक कृत्य के रूप में मनन करते रहते हैं। वस्तुतः कुलशेखर वैष्णव-नरेशों में शिरोमणि हैं। परम भागवत महाराज अम्बरीष से इनकी तुलना बड़ी सरलता से की जा सकती है। श्रीमद्भागवत पुराण का महाराज अम्बरीष-विषयक यह श्लोक उन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है।

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत् स्मृतम् ॥

—श्रीमद्भागवत ९।४।१७

'भगवान् श्रीकृष्ण में और उनके प्यारे भक्त वैष्णवों में परम भाव (प्रगाढ़ प्रेम) हो जाने पर सारा जगत् और इसकी सारी सम्पत्तियाँ उन्हें मिट्टी के ढेले के तुल्य जान पड़ती थीं।'

सर्वात्मभाव से परिपूर्ण महाराज कुलशेखर महाराज अम्बरीष की तुल्यता में इतने निकट हैं कि लगता है—भागवतकार के समक्ष महाराज कुलशेखर का चरित्र विद्यमान था। पाठकों के लिये श्रीमद्-भागवत के अम्बरीष-प्रसंग के चार श्लोक अनुशील-नार्थ प्रस्तुत हैं:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
वंचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदस्नुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥

—श्रीमद्भागवत ९।४।१८-२१

कुलशेखरालवार ने अष्टाक्षर मंत्र (ॐ नमो नारायणाय) की व्यवस्थित चर्चा की है। नारायण-मंत्र की चर्चा मुकुन्दमाला में लगभग नौ श्लोकों में मिलती है। बाद में श्री वैष्णव-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्यों का यह दीक्षा-मंत्र बन गया था। अतः लगता है कि विशिष्टाद्वैत-संप्रदाय की नाथमुनि से पूर्व भी बड़ी परम्परा रही होगी जिसमें ये आलवार दीक्षित होते होंगे। इन आलवार-भक्तों को भी भक्ति-दीक्षा देने का पूरा अधिकार रहा होगा। स्वयं कुलशेखर महाराज ने 'ऊर्ध्वबाहु' होकर घोषणा करने की एक से अधिक बार चर्चा की है और एक श्लोक में तो 'उपदिशामि' कहकर अपने मंत्रोपदेश-अधिकार की बात ही स्पष्ट कर दी है। इससे सिद्ध होता है कि कुलशेखर अष्टाक्षर नारायण-मंत्र की दीक्षा (उपदेश) देते थे और 'भव्य यति' लोग उनसे यह उपदेश ग्रहण करते थे।

'मुकुन्दमाला' में कुलशेखर दास्यभाव को ही पोषण देते हुए प्रतीत होते हैं। एक श्लोक में उनका दास्यभाव चरम दैन्य को पहुँच गया है। दासानुदासों की सप्त सोपानवती सरणि में अपने को उन्होंने अन्तिम सोपान (नीचे की पहली सीढ़ी) मानकर भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप मुझे इसी रूप में याद कर लीजिए। मानसकार तुलसी ने जिस भाँति भरत से कहलवाया है—

निजदास ज्यों रघुबंश भूषण,
कबहुँ मम सुमरिन कर्‌यौ ।

उसी प्रकार भक्तप्रवर कुलशेखर भगवान् से प्रार्थना करते हैं—

त्वत् भृत्य भृत्य परिचारक भृत्य भृत्य
भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ ।

वस्तुतः भक्ति-क्षेत्र में महाराज कुलशेखर का चरित मानसकार के भरत-चरित से तुलना करने योग्य है।

महाराज कुलशेखर श्रीवैष्णव थे। साम्प्रदायिक दीक्षा उन्हें किससे और किस प्रकार मिली इसका पता नहीं चलता। हाँ; 'ॐ नारायणाय नमः' यह अष्टाक्षर मंत्र उनका जप्य रहा होगा। इसका पता मुकुन्दमाला के श्लोकों से चल जाता है। श्लोक-संख्या ५० में तो दूसरे भव-ताप-तप्त जनों को दीक्षा देने की भी बात कही गई है और दावे के साथ भक्ति का उपदेश देना स्वीकार किया गया है।

मुकुन्दमाला श्री कुलशेखर के चरम दैन्य, आर्जव और भावावेश के क्षणों की कृति है। कवि ने इसमें दास्य-भावापन्न होकर देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण, दार, आगार, पुत्र-वित्तादि का विनियोग भगवच्चरणारविन्द में करते हुए उनसे अपने को अपना लेने की प्रार्थना की है। उनकी यह प्रपत्ति परवर्ती शास्त्रीय पारिभाषिकता में 'तेन्कलै' कहलायेगी, जिसमें भगवदनुग्रह ही प्रधान है। यही पुष्टि-सिद्धान्त में भी स्वीकार्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें भक्तकृत प्रयत्न को प्रधानता नहीं दी जाती। कुलशेखर की आनन्द-सान्द्र-भक्ति में पूर्णसमर्पण और दास्यभाव के साथ-साथ आत्मबोधशून्यता चरम सीमा पर पहुँच गई है।

अतः मुकुन्दमाला के श्लोकों को यदि वर्गीकृत किया जाय तो उन्हें चतुर्धा विभक्त किया जा सकता है—

१. उपदेशात्मक
२. स्तुतिपरक अथवा नमस्कारात्मक
३. आत्मगर्हणापरक
४. पश्चात्ताप अथवा दैन्यपरक

उपदेशात्मक श्लोकों में कवि की दृष्टि प्रपंचग्रस्त गुण-प्रवाह में पड़े सांसारिक जीवों पर है। उन पर कभी वह दया दिखाता है, कभी मानसिक क्षोभ और प्रेम प्रकट करता है, तो कभी भगवन्नाम की अमोघ शक्ति से आवेशमय होकर 'ऊर्ध्वबाहु' वाली दृढ़ता से भगवन्नाम की तारिणी शक्ति का उद्घोष करता है।

स्तुति अथवा नमस्कारपरक श्लोकों में उनका दैन्य एवं उनकी आत्मबोधशून्यता देखने योग्य है। ऐसे श्लोकों की शब्दावली संगीतात्मक होकर भावानुकूल हो गयी है।

आत्मगर्हणापरक श्लोकों में उसे मानवों की प्रपञ्चग्रस्तता के प्रति क्षोभ है और भगवत्कृपा पर अविचल विश्वास है। भगवन्नाम लेते हुए वे कंठावरोध तक की स्थिति की चर्चा बड़े समारोह से कर जाते हैं।

पश्चात्ताप एवं दैन्यपरक श्लोकों में कुलशेखर को जीवन की नश्वरता के बोध के साथ-साथ भगवदनुकंपा का स्मरण बार-बार हो आता है।

इस प्रकार कवि ने भगवन्नाम में अटूट विश्वास प्रकट करते हुए मानव-शरीर और उसके प्रत्येक अवयव की सार्थकता इसीमें व्यक्त की है कि मानव-देहधारी भगवान् की भक्ति करे और अपना सर्वस्व यहाँ तक कि शरीर के प्रत्येक अवयव को मुकुन्द के चरणों में समर्पित कर दे।

'मुकुन्दमाला' के कतिपय भक्तिभावपरिप्लुत श्लोक प्रस्तुत हैं—

(१)

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षम्,
कुन्देन्दुशंखदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठम्,
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥

'कमल-पत्र के समान (सुन्दर) नेत्रवाले भगवान् मुकुन्द की मैं वन्दना करता हूँ; जिन भगवान् की दन्त-पंक्ति कुन्द पुष्प-चन्द्रमा तथा शंख के समान उज्ज्वल है, जो गोप-बालक का वेष धारण किये हुए हैं और जिनके चरणों में इन्द्रादि देवता नमन करते हैं। वृन्दावन में निवास करनेवाले उन वसुदेव के पुत्र को मैं प्रणाम करता हूँ।'

(२)

माद्राक्षं क्षीणपुण्यान् क्षणमपि भवतो
भक्तिहीनान्पदाब्जे,
माश्रौषंश्राव्य बन्धं तव चरितमपा-
स्यान्यदाख्यानजातम्।
मास्मार्षं माधव! त्वामपि भुवनपते!
चेतसाऽपह्नुवानान्,
माभूवं त्वत्सपर्या व्यतिकररहितो
जन्मजन्मान्तरेऽपि॥

'हे माधव! हे भुवनपते!! मैं एक क्षण भी आपके चरण-कमलों की भक्ति से विरहित पुण्यहीन (भगवद्विमुख) व्यक्तियों को नेत्रों से न देखूँ; आपके चरित को छोड़कर अन्य कथा-समूहों अथवा श्रवणीय काव्यों को न सुनूँ। हे भगवान्! चित्त से छल करने-वालों का (कपटयुक्त मनवालों का) मैं स्मरण भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न करूँ और आपकी सेवा-सपर्या से रहित मैं जन्म-जन्मान्तर में भी न होऊँ।'

(३)

शत्रुच्छेदैकमंत्रं सकलमुपनिषद्
वाक्य संपूज्य मन्त्रम्,
संसारोत्तारमंत्रं समुपचिततम-
स्संघनिर्याणमन्त्रम्।
सर्वैश्वर्यैकमंत्रं व्यसन भुजग
संदष्ट संत्राणमंत्रम्,
जिह्वे! श्रीकृष्णमंत्रं जप जप सततं
जन्मसाफल्यमंत्रम्॥

'शत्रुओं को नाश करनेवाला एकमात्र मंत्र, समस्त उपनिषद्-वाक्यों में पूजनीय मंत्र, संसार (सागर) से तारनेवाले मंत्र, (अज्ञानरूपी) अंधकार के नरक-समूह को दूर करनेवाले मंत्र, संपूर्ण ऐश्वर्यों को देनेवाले मन्त्र, व्यसन (कष्ट अथवा चरम संसारासक्ति) रूपी सर्प के डस लेने पर बचानेवाले एकमात्र श्रीकृष्ण-मन्त्र को अरी मेरी जिह्वे! जपती रह। यही जीवन को सफल बनानेवाला एकमात्र मन्त्र है।'

महाराज कुलशेखर कट्टर सगुण साकारवादी हैं। राम-कृष्ण की लीलाओं के अनुकथन और भगवच्चिन्तन को ही वे परम पुरुषार्थ मानते हैं।

गो० ना० शु०

कृष्णदत्त

कृष्णदत्त वाग्जड जनपद के त्रामठीय ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम सदाराम था और माता का नाम आनन्ददेवी—

यस्यास्ते वाग्जडेति प्रथितजनपदे त्रामठीयाख्यखेटो
यं मातानन्ददेवी तनयमजनयच्छ्रीसदारामभर्तुः।
साहस्रौदीच्यजातिर्य इह सुविदितो डालवाणीय जोशी-
त्याविख्यातावटंको जयति कृतिरियं कृष्णदत्तस्य तस्य॥

इनका उपस्थिति-काल १८वीं शताब्दी है। इन्होंने 'सान्द्रकुतूहल' प्रहसन और 'राधारहस्य' काव्य की रचना की। 'राधारहस्य' काव्य में कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन हुआ है। 'सान्द्रकुतूहल' के अधोलिखित श्लोक में रासक्रीड़ा का वर्णन है—

व्रजाङ्गने व्रजाङ्गने तदन्तरे व्रजाधिपो
व्रजाधिपस्तदन्तरे व्रजाङ्गने व्रजाधिपः।
इति व्रजाधिपाष्टकं व्रजाङ्गनाद्विरष्टकं
प्रकल्प्य रासमण्डलं ननर्त नन्दनन्दनः॥

अ० पां०

कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य

कृष्णनाथ दुर्गादास चक्रवर्ती के पुत्र थे। इनके आश्रयदाता सामन्त चिन्तामणि थे। कृष्णनाथ के दूसरे आश्रयदाता रामजीवन थे। रामजीवन के पुत्र रघुनाथराय (१७१५-१७२८ ई०) थे। रघुनाथ-राय का आश्रय भी इनको प्राप्त हुआ था। रामजीवन की राजधानी नाटौर थी। कृष्णनाथ श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इन्होंने 'पदाङ्कदूत' और 'आनन्दलतिका' की रचना की है। 'पदाङ्कदूत' में गोपियों ने कृष्ण के पद-चिह्नों को दूत बनाकर वृन्दावन भेजा है। इसकी रचना मेघदूत की अनुकृति पर हुई है।

आनन्दलतिका में पाँच कुसुम हैं। यह काव्य और संवाद का सुन्दर समन्वय है। नारद कृष्ण के पास आये। कृष्ण उन्हें कालिन्दी के घर ले गये। नारद ने कृष्ण को बताया कि राजा दमन की कन्या रेवा अत्यधिक सुन्दरी और गुणवती है। तुम्हारा पुत्र साम्ब अपने अनुरूप कन्या के अन्वेषण में मेरे द्वारा प्रदत्त विद्या से अदृश्य होकर दमन की नगरी में पहुँच गया। वह राजा के अन्तःपुर में रेवा से मिला। दोनों एक-दूसरे में अनुरक्त हो गये। रेवा के स्वयंवर की योजना हुई। राजकुमारी ने स्वयंवर में पूर्ति के लिए एक समस्या रखी, जिसकी पूर्ति साम्ब ने कर दी। इस पर रेवा ने साम्ब के गले में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयमाला डाल दी। दोनों का विवाह हुआ। रेवा के प्रस्थान के समय राजा दमन विलाप करने लगे—

रेवा यास्यति हन्त नाथनिलयं
बालानभिज्ञा कथं
शुश्रूषां प्रविधास्यति श्वशुरयोः
पत्युर्मनोरक्षणम्।
क्षुद्दहृत्तापविपोडिता च कुलजा
कस्मै किलाख्यास्यते
शून्यान्येव दिशां मुखानि किमहो
पश्यामि तां चिन्तयन्॥

'रेवा अपने स्वामी के घर जा रही है। वह अनभिज्ञ है, अतः अपने सास-श्वशुर की सेवा कैसे करेगी! पति के मन के अनुकूल आचरण कैसे करेगी! भूख और सन्ताप से पीड़ित होने पर वह कुलजा किससे कहेगी! उसके विषय में सोचते हुए मुझे दिशाएँ सूनी लग रही हैं।'

अ० पां०

कृष्णलाल द्विज

कृष्णलाल द्विज ने 'प्रपन्नगीतम्' और 'श्रीकृष्णः शरणं मम' की रचना की है। इसके अतिरिक्त इनका शेष जीवन-वृत्त अन्धकाराच्छन्न है।

अ० पां०

कृष्णलाल शास्त्री 'कान्हजी'

'कान्हजी' के नाम से प्रसिद्ध श्री कृष्णलालजी शास्त्री 'प्रश्नोरा' गुजराती ब्राह्मण थे। आप जयपुर (राजस्थान) के कृष्ण-भक्त समुदाय में अग्रगण्य माने जाते थे और सनातनधर्मी वैष्णव विद्वान् के रूप में धर्म की ध्वजा को ऊँचा रखने के लिए सदैव कटिबद्ध रहते थे।

आपका गौरवर्ण, भव्य आकृति, सजलनयन, गुरु-गम्भीर-वाणी से समन्वित व्यक्तित्व समग्र रूप में बहुत ही प्रभावशाली था। गोविन्ददेवजी महाराज का दर्शन तथा समाराधन इनकी दिनचर्या का अभिन्न अंग था। इस दृढ़ निष्ठा के कारण ये कट्टर भक्त माने जाते थे।

प्रसिद्ध है कि एक बार आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्दजी सरस्वती जयपुर पधारे। प्रसंगवश श्री कान्हजी से उनकी भेंट हो गयी। दयानन्द सरस्वतीजी ने इनकी भक्ति की गम्भीरता को जाँचने के लिए पूछा—'कस्त्वम्?' कान्हजी का उत्तर था—'कृष्णोऽहम्।' कान्हजी के गौरवर्ण होने के कारण श्री दयानन्दजी ने व्यंग्य किया—'कृष्णत्वं तु न कुतोऽपि दृश्यते।' तब कान्हजी का उत्तर था—

न दयास्ति न चानन्दो न च त्वयि सरस्वती।
भूयोऽपि वद कस्मात्त्वं दयानन्दसरस्वती॥

इस तरह आपका बहुत निर्भय, परम् नैष्ठिक भक्त के रूप में बहुत आदर किया जाता था।

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ अपनी उत्कट कृष्ण-भक्ति के कारण ये कान्हजी नाम से ही विख्यात थे। आपने संस्कृत में अनेक रचनाएँ कीं, किन्तु 'गीत-गोविन्द' के परम अनुरागी एवं गोविन्द जी महाराज के अनन्य भक्त होने से उस शैली में इन्होंने जो रचनाएँ की हैं, वे अत्यन्त मधुर एवं लोकप्रिय हैं। उनमें इनकी भक्ति-भावना की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत है लावनी शैली (राग) में एक अभिव्यक्ति—

विलम्बनमनुचितमभिसरणे,
निकुंजे कृतकेशवशरणे।
त्वमसि सखि यद्यपि बहुनिपुणा।
सुखं तव न विना मधुरिपुणा।
भविष्यति केलिकलागुरुणा।
अलं लपितेन मया पुरुणा॥

मानं हित्वा मानसं मानिनि हरिपदि देहि।
हृदयंगममिति वचनं कुरु मम चल सखि
हरि सविधे हि॥
धेहि सखि तव हृदि हरिचरणे॥ विलम्बन०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुसुमशरशरचयबहुमग्नम् ।
निरन्तरमानजलधिमग्नम् ।
मनः कुरु केशवसंलग्नम् ।
उदितमपि पश्य मकरलग्नम् ।
मम वचनानि हितानि ना
यासां मनसि वसन्ति ।
अलम् विषय-भय लज्जावंचित-
मात्मानं प्रहसन्ति ।
सन्ति किं ता हरिपरिचरणे ॥
विलम्बनमनुचितमभिसरणे,
निकुंजे कृतकेशवशरणे ॥

श्या० श० वा०

केशव काश्मीरि भट्टाचार्य

केशव काश्मीरि भट्टाचार्य श्री निम्बार्काचार्य की परम्परा में ३३वीं पीढ़ी में श्री निम्बार्कपीठ (सलेमाबाद) पर विराजित थे। आपका जन्म तैलङ्ग देश के वैदूर्यपत्तन (मुंगीपट्टन) में श्री निम्बार्काचार्य की वंश-परम्परा में ही हुआ माना जाता है। काश्मीर में अधिक निवास करने के कारण आपको 'काश्मीरि भट्टाचार्य' के नाम से जाना जाता है। आपका तिरोधान-काल १३वीं शताब्दी माना जाता है।

आपने वृन्दावन में ही निम्बार्क-सम्प्रदायाचार्य श्री गांगल भट्टाचार्य से वैष्णवी दीक्षा ली थी। आपकी संस्कृत-रचनायें प्रचुर मात्रा में हैं, जिनमें से बहुत-सी लुप्त हो गयीं। जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, वे हैं—

१. तत्त्व-प्रकाशिका।
२. वेदान्त कौस्तुभ प्रभा।
३. प्रकाशिका : दशोपनिषद् भाष्य।
४. श्रीमद्भागवत-टीका।
५. क्रमदीपिका।
६. यमुनास्तोत्र।

श्री केशव काश्मीरि भट्टाचार्य-विरचित 'वेदान्त कौस्तुभ प्रभा' में गहन दार्शनिक चिन्तन का रूप दिखाई देता है। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सभी मतों की आलोचनाएँ बड़ी ही तर्कपूर्ण शैली में की गई हैं। द्वैताद्वैत-मत के प्रतिपादन में केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ने शास्त्रसम्मत उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

श्रीरङ्गवेंकटाचल, तोताद्रि, काञ्ची, रामाश्रम होते हुए आपने हेमगोपाल के दर्शन किये। कन्या-कुमारी से हिमालय तक जहाँ-जहाँ आप गये, वहाँ के सभी निवासियों ने आपका बड़ा सम्मान किया। फिर उज्जैन में कुछ दिन स्थायी निवास कर भागवत पर 'तत्त्व-प्रकाशिका' टीका लिखी। तत्पश्चात् आप रैवत पर्वत, कर्दमाश्रम, द्वारका होते हुए पुष्कर आये। वहाँ पर आपने पाखण्डियों का दमन कर वैदिक-धर्म की ध्वजा फहरायी। तदुपरान्त अपने चौदह हजार शिष्योंसहित स्यमन्तक पंचक, वायु-हृद् और ब्रह्मसरोवर आदि तीर्थों का भ्रमण करते हुए पुनः काश्मीर आये। उस समय वहाँ पर मांसा-हारी म्लेच्छों का आतंक छाया हुआ था। उनका यूथपति अत्यन्त दम्भी, पापी और अनित्य वस्तुओं में ही नित्यबुद्धि रखनेवाला बड़ा बलवान् एक यवन था।

चौदह हजार शिष्योंसहित ज्यों ही श्री केशव काश्मीरि भट्टाचार्यजी ने उस क्षेत्र में प्रवेश किया, त्यों ही उन तान्त्रिक यवनों का झुण्ड का झुण्ड अपनी आसुरी मायासहित आ उपस्थित हुआ। उस माया से बहुत से सन्त घबरा गये, किन्तु आचार्यश्री के सम्मुख आते ही उनके तेज के समक्ष वे सभी यवन निस्तेज हो भागने लगे। यूथपति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरकर मुख से रुधिर-वमन करने लगा।

यह वृत्तान्त विदित होते ही यूथपति का छोटा भाई जो बड़ा मायावी एवं वहाँ का शासक था, घटना-स्थल पर पहुँचा। उसने अपने तंत्रबल से चारों ओर अंधकार फैला दिया। उधर श्री आचार्यप्रवर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने सूर्य का आह्वान कर समस्त अंधकार को समाप्त कर दिया। इतना ही नहीं, उस प्रचण्ड तेज के समक्ष समस्त यवन-समूह जलने लगा। बचाव का कोई भी रास्ता न देख सारे यवन त्राहि-त्राहि करते हुए आचार्य के चरणों में गिर गये और समस्त जनसमूह गद्‌गद कण्ठ से आचार्य की स्तुति करने लगा।

(१)

यो वै जघान यवनं मुचुकुन्ददृष्ट्या
श्री केशवो व्रजपति श्रवणीयलीलः।
भूयः स एव मुनिरूपधरश्च भट्टो
भक्तावितानमनिशं शरणं व्रजामः॥

'जिस कृष्ण ने दृष्टि के तेज से उत्पन्न मुचुकुन्द के देहज अग्नि से जरासन्ध के पक्षधर यवन को भस्मसात् करा दिया था (भाग० १०।५१।१२) उस श्रवणीय चरित्र केशव ने ही व्रजपति का रूप धारण किया था। आज वही मुनीश्वर भट्टाचार्य के रूप में अवतरित हैं। भक्तों के रक्षक उस श्रीकृष्ण के शरण में ही हमारी गति है।'

(२)

निमज्जतः संसृतितोयचक्रे
तापादि जालैर्मृतकप्रतीकान्।
व्यभारयत्स्वस्य वचः सुधाभि-
स्तत्पादमूलं शरणं व्रजामः॥

'संसृति के समुद्र में डूबनेवाले, भौतिक आदि त्रितापों से दग्ध, मृतप्राय भक्तों को जिस प्रभु ने अपनी अमृतमयी वाणी से आश्वस्त किया और भरण-पोषण भी किया, उसके चरण ही हमारे लिए शरण्य हैं। उसीके चरण-शरण में हम गतिशील हैं।'

इस प्रकार यवनों के आतंक को दूर कर काश्मीरियों को उनसे मुक्ति दिलाई एवं यवनों को क्षणभङ्गुर शरीर के मोह को छोड़कर प्रभु का ध्यान करने का उपदेश दिया। यहीं (काश्मीर में) आपने 'वेदान्त कौस्तुभ प्रभा' का सृजन किया। तदुपरान्त आप हिमालय की तरफ भ्रमण के लिए निकले। वहाँ आपने नारद आदि की प्रतिमाओं की स्थापना की एवं ११० वर्ष की समाधि लगाई—

दशोत्तरशतं वर्षं गिरिदर्य्यां महामनाः।
ध्यानयोगरतोवासीत् यत्र सन्निहितो हरिः॥

—आचार्य-चरित्र, नवम विश्राम ४६

यहाँ पर स्वप्न में भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर आप पुनः काश्मीर आये एवं भक्तों को योग का उपदेश देकर हरिद्वार तथा वहाँ से नरनारायणाश्रम पहुँचे। जनक-आश्रम से अयोध्या, नैमिषारण्य, फिर काशीपुरी पहुँचे। यहाँ पर कुछ सांख्यवाद के पक्षपाती, कुछ कणाद गौतम के वैशेषिक न्याय में निरत, कुछ अद्वैत, शैव, बौद्धादिक मतों के तर्क-वितर्कों में ही अपनी बुद्धि को भ्रमित कर रहे थे। इन सभी धर्म पथ से भ्रमित धर्मावलम्बियों को सच्चे धर्म का पथ दिखा, भगवद्भक्ति का उपदेश दिया।

ये वै कापिलसांख्यवादनिरताः काणादिनैयायिकाः
येऽन्ये द्वैतमतान्धकारपतिताः शैवाश्च बौद्धादयः।
नानातर्कवितर्ककर्कशधियः सच्छास्त्रविप्लावका
स्तान्निर्जित्य पदाम्बुजे भगवतो भक्तिं परां प्रादिशत्॥

'श्री केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ने कपिल के सांख्यशास्त्र के अभ्यास करनेवाले अध्येताओं, कणाद और गौतम के प्रणीत ग्रन्थों के अनुशीलन कर्त्ताओं, अन्य द्वैतमतवादी, शैव, बौद्ध आदि, अनेक तर्क-वितर्क से प्रभावित कर्कश बुद्धिवाले ऐसे लोगों—जो सत् शास्त्रों के विरोधी हैं—परास्त कर भगवान् के चरणारविन्द में शरण देकर पराभक्ति का उपदेश दिया।'

काशी से गङ्गासागर, फिर बङ्गाल की यात्रा की। उस समय बङ्गाली मत्स्य-मांस-मदिरा में लिप्त होकर कौलमत के अनुयायी बन गये थे। उन्हें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्रीय प्रमाणों से पराजित कर भगवद्-भक्ति का उपदेश दे गङ्गासागर, कपिलाश्रम, नीलाचल, जगन्नाथपुरी होते हुए प्रयाग आये। नैमिषारण्य पहुँचने पर आपको ज्ञात हुआ कि मथुरा में यवनों ने आतंक फैला रखा है। इन्होंने तन्त्र-विद्या द्वारा निर्मित एक यंत्र मथुरा के विश्रामघाट के मुख्य मार्ग के दरवाजे पर लगा दिया था, जिसके नीचे से निकलते ही हिन्दू, मुसलमान में परिणत हो जाता था। हिन्दू-धर्म-रक्षा-हेतु आचार्य अपने चौदह हजार शिष्योंसहित मथुरा के विश्रामघाट पर जा पहुँचे। इन्हें देखते ही सभी यवन ऐसे पलायन कर गये जैसे सिंह के आगमन से वन्य पशु। तदुपरान्त आपने यमुना-स्नान कर एक यन्त्र का निर्माण किया, उसके देखने मात्र से ही यवन मूर्च्छित होने लगे तथा उनके शरीर में पुरुषप्रधान चिह्नों का लोप एवं स्त्री-प्रधान चिह्नों का प्रकट होना शुरू हो गया। परिणाम-स्वरूप वे सभी अपने मुखियासहित आकर आचार्य के चरणों में गिरे एवं आर्त्त स्वर में क्षमा-याचना करने लगे। तब आचार्यश्री ने उन्हें यमुनोदक दे, शुद्ध कर क्रूरता छोड़ भक्त-परायण बनने का सदुपदेश दिया। भक्त-मालकार ने आपके सम्बन्ध में लिखा है—

काश्मीरि की छाप पाप तापनि जगमंडन।
दृढ़ हरिभक्ति कुठार आन धर्म विटपविहंडन ॥

मथुरा मध्य म्लेच्छ वाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै भयभीते ॥

विदित बात संसार सब सन्तन सों नाहिन दुरी।
श्रीकेशौभट नरमुकुटमनि जिनकी प्रभुताविस्तरो ॥

—श्री नाभास्वामीकृत भक्तमाल

अपने पूर्वाचार्यों की भाँति आपने भी वृन्दावन को ही अपना प्रधान केन्द्र बनाया। आपके यमुना-स्तोत्र के कुछ श्लोकों से यह आशय अभिव्यक्त होता है—

(१)

त्वत्तीरस्थकदम्बकाननलता छायाकुटीवासिभिः,
सद्भिः सार्धमहर्निशं हरिकथाः शृण्वन् ब्रुवन्वै मुदा।
कांक्षेऽहं तव तीरसेवनपरस्त्वन्नीरपाने रतिम्,
त्वद्वीचीक्षणसूत्सवं त्वयि मनः स्यान्मे शरीरक्षयः ॥

'हे माता यमुने ! तुम्हारे तीर पर स्थित कदम्ब-कानन में लताओं की छाया में कुटी बनाकर रहने-वाले सत्पुरुषों के साथ रात-दिन रहते हुए, उनसे बातें करते हुए, प्रसन्नतापूर्वक समय-यापन करते हुए, तुम्हारे तटाश्रय में रहकर मैं यही चाहता हूँ कि तुझमें सदा श्रद्धा बनी रहे, तुम्हारा अमृतोदक पीने को मिलता रहे। तुम्हारी लोल लहरिकाओं में उत्सव मनाता रहूँ और अन्त में तुम्हारे जल में ही मेरा शरीर लय हो जाय।'

(२)

त्वत्तीरे कमलापतिं तव पतिं सूर्यात्मजे माधवि !
श्रीराधासहितं तिरस्कृतरविं मेघाभमानन्ददम् ॥
वृन्दारण्यकदम्बकाननकलत्केकीक्वणानन्दकम्।
गोवत्सादि-समस्तबालकयुतं गोपीसुखैकास्पदम् ॥

'हे माधवप्रिये ! हे सूर्यपुत्रि ! तुम्हारे किनारे मैं लक्ष्मीपति, राधासहित श्रीकृष्ण को कब देखूँगा ? यही लालसा है। वे रति को तिरस्कृत करनेवाले, नीलनीरदश्यामल श्याम हैं। वृन्दावन कदम्ब-कानन में विचरण करनेवाले मयूर-मूर्च्छना में आनन्द भर देनेवाले, गायों, गोवत्सों, गोप-बालकों और गोपियों को चरम परम सुख प्रदान करनेवाले हैं।'

(३)

कञ्जाक्षं करकंकणं स्मितमुखं वंशीकरं बालकम्।
गोपानां वनिताशतैः परिवृतं रासोत्सवोल्लासितम् ॥
लीलानर्तनकौतुकं हरिहरब्रह्मादिदेवार्चितम्।
श्रीमन्मन्मथमन्मथं बत कदा द्रक्ष्याम्यहं चक्षुषा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कमलनेत्र, कंकणरमणीयकर, मोहक मुस्कान से मनोज्ञ मुखारविन्द, बालक वंशीधर श्रीकृष्ण का मैं प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। वे रास में शत-शत गोपबालाओं से घिर जाते हैं। वे रासोत्सव से विश्व को उल्लसित करते हैं। कौतुक में लीला से ललितललाम श्रीकृष्ण नाच उठते हैं। हरि, हर और ब्रह्मा से पूजित हैं। मन्मथ (कामदेव) को भी मथनेवाले हैं। ऐसे प्रिय आराध्य का साक्षात्कार कर मैं अपना जीवन धन्य बनाना चाहता हूँ।'

द्वैताद्वैतदर्शन की पताका फहराने के लिए आपने तीन बार देशव्यापी यात्राएँ कीं। इन यात्राओं में आपने प्रकाण्ड पण्डितों एवं अनेक विरोधी मतावलम्बियों से शास्त्रार्थ कर दिग्विजय प्राप्त की। इसलिए इन्हें 'दिग्विजयी' कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र, गीता तथा श्रीमद्भागवत पर विस्तृत टीकाएँ करने पर आप 'प्रस्थानत्रयीभाष्यकार' के नाम से भी विख्यात हुए।

प्रे० ना० श्री०

केशवसेन

केशवसेन बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (१२वीं शताब्दी) के पुत्र थे। राजा लक्ष्मणसेन के समय में श्रीधरदास ने 'सदुक्तिकर्णामृत' की रचना की। 'सदुक्तिकर्णामृत' में केशवसेन का एक श्लोक उद्धृत किया गया है, जो कृष्णविषयक है। यह श्लोक जयदेव के श्लोक से मिलता है—

आहूताद्य मयोत्सवे निशि गृहं शून्यं विमुच्यागता
क्षीबः प्रैष्यजनः कथं कुलवधूरेकाकिनी यास्यति।
वत्स त्वं तदिदं नयालयमिति श्रुत्वा यशोदागिरो
राधामाधवयोर्जयन्ति मधुरस्मेरालसा दृष्टयः॥

'यशोदा कह रही हैं कि मैंने आज रात को उत्सव में राधा को बुलाया है। वह घर को अकेला छोड़कर आयी है। उसके भृत्य मत्त हैं। वह कुलवधू अकेली कैसे जायगी? हे वत्स, तुम उसे उसके घर ले जाओ। यशोदा की इन बातों को सुनकर राधा-माधव की मधुर मुस्कराहट से भरी और अलसाई दृष्टियों की जय हो।'

अ० पा०

गिरिधर गोस्वामी

गिरिधरजी का जन्म १८३० ई० में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गोपाललाल, माता का नाम श्रीमती कृष्णावती और गुरु का नाम गोस्वामी द्वारिकानाथ शर्मा था। गिरिधरजी ने अपने पूर्वपुरुषों का उल्लेख विद्वन्मण्डन की व्याख्या 'हरितोषिणी' में किया है—

(१)

नानामतेषु प्रविवेककारि।
श्रीपुष्टिमार्गप्रवहप्रदर्शि॥

श्रीवल्लभाचार्यपदारविन्दं,।
सषट्पदीभूतमना नतोऽस्मि॥

(२)

श्रीमद्विट्ठलनाथपादयुगलं सर्वार्थसंसाधकम्।
नत्वा श्रीयदुनाथपादकमलद्वन्द्वं मनोहारि यत्॥
तद्वच्छ्रीमधुसूदनस्य चरणौ तापत्रयोन्मूलने।
दक्षौ सर्वगुणाश्रयावतितरौ नौमि प्रभूतार्थदौ॥

(३)

श्रीमत्प्रद्युम्नचरणौ विट्ठलेशोऽङ्घ्रियुग्मकम्।
नौमि प्रद्युम्नपादाब्जं सर्वैश्वर्यसुखप्रदम्॥

(४)

श्रीमद्विट्ठलनाथस्य नमामि चरणद्वयम्।
सकलार्थप्रदं नृणां पुष्टिमार्गप्रसाधकम्॥

(५)

श्रीमद्गोस्वामिगोपालपितुश्चरणपङ्कजम्।
श्रीमन्मातुः पादयुगं कृष्णावत्या नतोऽस्म्यहम्॥

(६)

गुरोर्गोस्वामिनः श्रीमद्द्वारिकानाथशर्मणः।
पादारविन्दयुगलं प्रणमामि पुनः पुनः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उक्त श्लोकों के अनुसार इनके पूर्वपुरुष ये हैं— श्रीमद्वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, यदुनाथ, मधुसूदन, प्रद्युम्न, विट्ठलेश, प्रद्युम्न, विट्ठलनाथ, गोपाललाल।

गिरिधरजी का यज्ञोपवीत-संस्कार काशी में हुआ। उसके बाद इन्होंने वेदों तथा वेदाङ्गों का अध्ययन किया और वैदुष्य प्राप्त किया।

गिरिधरजी संवत् १८८० में श्रीनाथद्वारा गये थे। उस समय शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय के विद्वान् श्रीगोपेश्वर विद्यमान थे। गोपेश्वरजी ने गिरिधर को विशेष अध्ययन करने के लिए उपदेश दिया और शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए प्रेरित किया। उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके गिरिधरजी ने विशिष्ट अध्ययन किया और सम्प्रदाय का अद्भुत प्रचार किया।

गिरिधरजी में विद्वत्ता और कवित्वशक्ति-दोनों का सुन्दर समन्वय था। ये वैदिक-कर्मकाण्ड और उपासना-कर्मकाण्ड दोनों के ज्ञाता थे। उन्होंने गोपालोपासना की साधना से साम्प्रदायिक निधियों की प्राप्ति की। इन्हें वल्लभाचार्य के सेव्य भगवान् श्री मुकुन्दराय तथा अनन्तशेषजी के स्वरूपों की प्राप्ति श्रीनाथद्वारा से हुई। गिरिधर श्री गोवर्धननाथ में अत्यधिक आसक्त रहते थे, अतः बार-बार श्रीनाथद्वारा जाते थे और सेवा का आनन्द प्राप्त करते थे। सन् १९५७ ई० के संघर्षकाल में भी ये अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए श्रीनाथद्वारा पहुँचे थे।

गिरिधरजी की भगवत्सेवा-प्रवृत्ति से प्रभावित होकर जबलपुर के राजा गोकुलदास तथा हैदराबाद, आजमगढ़, गाजीपुर, गोरखपुर आदि के अनेक वैष्णव-जन उनके सेवक बन गये।

गिरिधर गोस्वामी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है—'शुद्धाद्वैतमार्तण्ड', 'भाष्यविवरण', 'विद्वन्मण्डन की हरितोषिणी टीका', 'बालप्रबोधिनी', 'श्रुतिरहस्य' आदि। गिरिधरकृत 'शुद्धाद्वैतमार्तण्ड' अत्यधिक लोकप्रिय है। इसमें ९६ श्लोक हैं, जिनमें शुद्धाद्वैत का स्पष्ट विवेचन किया गया है। गिरिधरजी लिखते हैं— ब्रह्म साकार है, सर्वशक्तिसम्पन्न है, एक है, सर्वज्ञ है, सर्वकर्त्ता है और सच्चिदानन्दरूप है। उसी ब्रह्म से इस जगत् की उत्पत्ति हुई है—

साकारं सर्वशक्त्येकं सर्वज्ञं सर्वकर्तृ च।
सच्चिदानन्दरूपं हि ब्रह्म तस्मादिदं जगत्॥
—शुद्धाद्वैतमार्तण्ड

गिरिधरजी ने शुद्धाद्वैतमार्तण्ड में शाङ्करमत, शैव, माध्वमत, रामानुजमत, निम्बार्कमत, भास्कराचार्य-मत आदि का खण्डन किया है—

अत्रापि शाङ्कराः शैवा माध्वा रामानुजादयः।
निम्बार्का भास्करा भिक्षुर्येऽन्ये ते दोषसंश्रिताः॥

शुद्धाद्वैतमार्तण्ड का अन्तिम श्लोक ग्रन्थ की महत्ता का प्रकाशन कर रहा है—

सूर्योदये शीतमपैति सर्वं
मार्गावलोको जलजप्रकाशः।
तमोनिवृत्तिर्द्विजकर्मवृत्ति-
स्तथैव मार्तण्डनिबन्धबोधे॥

'जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर शीत की निवृत्ति होती है, मार्ग दिखायी पड़ने लगता है, कमल विकसित होता है, अन्धकार दूर हो जाता है और द्विजों की कर्मों में प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार शुद्धाद्वैतमार्तण्ड का ज्ञान हो जाने पर सिद्धान्तविषयक जड़ता दूर हो जाती है, आचार्य द्वारा प्रकटित मार्ग का ज्ञान हो जाता है, भक्त का हृदयकमल खिल उठता है, अज्ञान नष्ट हो जाता है और भक्त की भगवत्सेवा में प्रवृत्ति हो जाती है।'

अ० पा०

गिरिराज

गिरिराज का जन्म व्रज-मण्डलान्तर्गत गिड़ोय नामक ग्राम के आदि गौड़ ब्राह्मण-कुल में हुआ था। आपके पिता श्री मदनमोहनजी काशी से 'पंडित' की उपाधिप्राप्त विद्वान् व्यक्ति थे। श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गिरिराजजी निम्बार्क-संप्रदाय के विद्वान् श्री हरिप्रियाशरणदेवजी के शिष्य थे। शिक्षा-गुरु भी वही थे। आप अपने पिता के ही समान विद्वान् एवं सरल स्वभाववाले व्यक्ति थे। आप श्रीमद्भागवत एवं अन्य पुराणों की कथा बड़ी सुन्दर रीति से करते थे। आप गृहस्थ-भक्त थे। वृन्दावन में ही रहकर सेठ जयलाल हरगूलाल की कोठी में स्थित श्री राधाकृष्ण मंदिर की सेवा-पूजा ये बड़ी निष्ठापूर्वक करते थे। आपने फुटकर काव्य-रचना की है। इनके द्वारा रचित एक श्लोक यहाँ उद्धृत है :

> का चिन्ता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते।
> नोचेदर्भकजीवनाय जननी स्तन्यं कथं निस्तरेत् ?
> इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलम्।
> तत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते ।।

'विश्वम्भर के गान से प्राप्त शक्ति के कारण मेरे जीवन में चिन्ता के लिये कोई स्थान नहीं है। उन्हीं की दया से माँ के स्तनों में दूध उतर आता है। यही सोचकर मेरे द्वारा भगवत्-चिन्तन करते हुए समय-यापन किया जाता है।'

प्रे० ना० श्री०

गोकुलनाथ गोस्वामी

गोकुलनाथ जी (१५५४ ई०-१६४३ ई०) का जन्म प्रयाग के अरैल नामक स्थान में हुआ था। इनसे जहाँगीर अत्यधिक प्रभावित था। ये संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्, विख्यात भाष्यकार और व्रजभाषा में रचना करनेवाले वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य थे। इनकी रचनाएँ हैं—'वचनामृत', 'अणुभाष्यविवृति', प्रपञ्चसारभेद, सर्वात्मभावविवरण, 'सिद्धान्तमुक्तावली-टीका', 'विरोधलक्षण-टीका', 'मधुराष्टक-टीका', 'सर्वोत्तमस्तोत्र टीका', 'वल्लभाष्टक टीका' आदि।

अ० पा०

गोपक

गोपक का वृत्त अज्ञात है। श्रीधरदास (१२वीं शताब्दी) के सदुक्तिकर्णामृत में इनका एक श्लोक उद्धृत है—

> सङ्केतीकृतकोकिलादिनिनदं कंसद्विषः कुर्वतो
> द्वारोन्मोचनलोलशङ्खवलयश्रेणिस्वनं शृण्वतः।
> केयं केयमिति प्रगल्भजरतीनादेन दूनात्मनो
> राधाप्राङ्गणकोणकेलिविटपक्रोडे गता शर्वरी ।।

'रात्रि में कृष्ण ने कोयल आदि की बोली बोलकर राधा को संकेत से बुलाया। राधा दरवाजा खोलकर बाहर आ गयीं। दरवाजा खोलने से राधा की चूड़ियों तथा करधनी का शब्द होने लगा, जिसे कृष्ण ने सुन लिया, किन्तु कोई वृद्धा आहट पाकर चिल्लाने लगी—यह कौन है ? यह कौन है ? इस बाधा से कृष्ण का हृदय व्यथित हो उठा और उनकी वह रात राधा के आँगन के कोने में स्थित केलिवृक्ष के नीचे बीती।' इससे कृष्णलीला में इनकी आसक्ति व्यंजित होती है।

अ० पा०

गोपालभट्ट

गोपालभट्ट श्रीवेंकटभट्ट के पुत्र थे। ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। जब चैतन्यदेव दक्षिण की यात्रा कर रहे थे, तब वेंकटभट्ट के घर पर चातुर्मास्य किया था। गोपालभट्ट अपने पिता वेंकटभट्ट की भाँति उत्कृष्ट विद्वान् थे। इन्होंने वैष्णव-शास्त्रों का गम्भीर अध्ययन किया था। चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें आसन और डोरी दी थी। चैतन्य के इन प्रसादों को लेकर ही ये भजन किया करते थे। भक्तमाल में कथा मिलती है कि गोपालभट्ट शालग्राम की जिस मूर्ति की पूजा करते थे, कालांतर में उनकी भक्ति के अद्भुत प्रभाव से वह कृष्णरूप में परिणत हो गयी थी।

गोपालभट्ट ६२ वर्षों तक वृन्दावन में रहे। श्रीनिवासाचार्य इनके प्रिय शिष्य थे। इनकी मृत्यु संवत् १६४२ में हुई। इनकी समाधि श्री राधारमणजी के घेरे में विद्यमान है।

गोपालभट्ट ने सनातन गोस्वामी के 'हरिभक्तिविलास' का परिवर्धन किया था। कहते हैं कि उन्होंने व्रजभाषा में भी पदों की रचना की थी।

अ० पा०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीनाथ गोस्वामी

गोस्वामी गोपीनाथ वल्लभाचार्यजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म प्रयाग के पास अरैल ग्राम में संवत् १५६८ में हुआ था। वल्लभाचार्यजी के बाद ये सम्प्रदाय के आचार्य हुए। ये विद्वान् और गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। इनका एक ग्रन्थ 'सिद्धान्तदीपक' उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त उनके तीन अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है—'सेवाविधि', 'नामनिरूपण-संज्ञा' और 'वल्लभाष्टक'। गोपीनाथजी की मृत्यु ३१ वर्ष की अल्पायु में संवत् १५९९ में हुई। तब इनके पुत्र पुरुषोत्तम की आयु बहुत कम था। इनका भी अल्पायु में देहावसान हो गया। अतएव वे आचार्य नहीं हो सके। फलतः गोपीनाथ के बाद उनके भाई विट्ठलनाथ को आचार्य बनाया गया। गोपीनाथजी की पत्नी उनके ग्रन्थों को लेकर पीहर चली गयीं। वहाँ उनकी रक्षा न हो सकी। इसलिए अब उनकी मात्र स्मृति शेष रह गई है।

अ० पा०

गोपेश्वर योगी

श्रीगोपेश्वर योगी (१७७९ ई०–१८४० ई०) उद्भट विद्वान् और भक्त थे। ये नाथद्वारा में रहकर श्रीनाथजी की प्रत्यक्ष सेवा करते थे। इन्होंने 'भाष्य-प्रकाशरश्मि' और 'भक्तिमार्तण्ड' की रचना की। भक्तिमार्तण्ड में चार प्रकरण हैं—प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल। इसमें पुष्टिमार्गीय भक्ति का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

अ० पा०

गोवर्धन शर्मा

गोवर्धन शर्मा का जन्म जूनागढ़ नगर में हुआ था। ये अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। इन्होंने वेद, पुराण, न्यायवैशेषिक, मीमांसा, तन्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था। चालीस वर्ष की अवस्था तक इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना कर ली थी। ये 'भारतमार्तण्ड' की उपाधि से विभूषित किये गये थे। सम्प्रदाय के प्रसार में इनका प्रशंसनीय योगदान रहा है। इनके ग्रन्थ अधोलिखित हैं-(१) सत्सिद्धान्त मार्तण्ड, (२) 'सत्स्नेहभाजन', (३) 'वेदान्तचिन्ता-मणि', (४) 'शुद्धाद्वैतचन्द्रोदय', (५) 'श्रीमद्भग-वद्गीता-टीका', (६) 'अणुभाष्यटिप्पण', (७) 'निबन्धप्रकाशावरणभङ्गटीका', (८) 'उत्सवनिर्णय-टिप्पणी', (९) 'मारुतशक्ति' आदि।

'सत्सिद्धान्तमार्तण्ड' महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की रचना के विषय में प्रसिद्धि है कि लक्ष्मणगिरि ने वैष्णव-धर्म के विरुद्ध आठ प्रश्न प्रस्तुत किये थे और उनका समाधान माँगा था। प्रस्तुत ग्रन्थ में उन प्रश्नों का प्रमाणपुरस्सर उत्तर प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्ष कारिकाओं में दिया गया है। यह एक विशद और शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें विरोधी सिद्धान्तों का खण्डन और स्वपक्ष का युक्तिपूर्वक मण्डन किया गया है।

अ० पा०

गोविन्द सामन्तराय

गोविन्द सामन्तराय अठारहवीं शताब्दी में हुए थे। ये उड़ीसा के बांकी राज्य में रहते थे। इनके पिता का नाम रामचन्द्र था और पितामह का विश्वनाथ।

गोविन्दराय ने समृद्धमाधव की रचना की। इसमें सात अङ्कों में कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन है।

अ० पा०

चतुर्भुज

चतुर्भुज ब्राह्मण थे। ये बङ्गाल के एक गाँव रामकेलि के निवासी थे। यहाँ वैष्णवों का बाहुल्य था। कहा जाता है कि जब चतुर्भुज पैदा हुए, तब इनके पिता ने सोने की लेखनी को मधु में डुबोकर इनकी जिह्वा पर एक श्लोक लिखा, जिससे वे कवि बने-"As soon as he was born, his father wrote some verse on his tongue with a golden pen tipped in honey and he

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

became a poet."—कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री ऑफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर (१९७४), पृ० २२८। चतुर्भुज श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित थे। इनका मन श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अनुरक्त था। इन्होंने संसार-सागर को पार करने के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है।

चतुर्भुज ने दो ग्रन्थों—'गीतिगोपाल' तथा 'हरिचरित' की रचना की है। इनमें 'हरिचरित' की रचना १४९३ ई० में हुई थी। इसमें १३ सर्ग हैं। इसकी तुलना 'नैषधीयचरित' से की जा सकती है। इसमें श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन हुआ है।

इनके पुत्र कमलाकर ने लोलिम्बराज-कृत हरिविलासकाव्य' तथा 'घटकर्पर' की टीका लिखी है।

अ० पा०

चिन्तामणि

चिन्तामणि शेषनृसिंह के पुत्र थे। शेषनृसिंह सोलहवीं शताब्दी में गोदावरी-प्रदेश से आकर काशी में बस गये थे। इनका समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन्होंने 'रुक्मिणीहरण' नामक नाटक की रचना की है। इनकी दूसरी कृति 'रसमञ्जरी-परिमल' है। इनके भाई शेषकृष्ण भी कृष्ण-भक्त थे जिन्होंने 'कंसवध' की रचना की है।

अ० पा०

जनार्दन प्रसाद चौधरी (भोलाबाबू)

जनार्दन प्रसाद चौधरी (भोलाबाबू) का जन्म भागलपुर जिले के जगदीशपुर हीरा भंड़ोखर तालुके के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। जमींदार होने के कारण वैभव की कोई कमी न थी। आपका व्यक्तित्व बड़ा भव्य था। आडम्बरहीन कंचन-काया, प्रशस्त ललाट, आँखों में दीप्ति, सादा वेश, मुस्कराता हुआ आकर्षक और ममतामय मुखमण्डल तथा स्नेहपूर्ण व्यवहार मिलनेवालों को मंत्रमुग्ध कर देता था। विधिवत् ऊँची शिक्षा प्राप्त न करने पर भी प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्य का आपने गहरा अध्ययन किया था। अतः सभा-गोष्ठी में अपने मत के पोषणार्थ शास्त्र-प्रमाणों की झड़ी लगा देते थे। आप राधावल्लभ-सम्प्रदाय के पटना-गद्दी के महात्मा गोस्वामी गोवर्धनलालजी महाराज के शिष्य थे। भ्रमण एवं तीर्थाटन के प्रति आपमें अदम्य निष्ठा थी। पूरे समाज के साथ सबका व्यय-भार वहन करते हुए भ्रमण तथा तीर्थाटन में ये अपार आत्मतोष का अनुभव करते थे। पर्यटन का यह सिलसिला जीवन पर्यन्त चलता रहा। जीर्ण होने पर भी सन् १९७७ के कुम्भ-मेले में प्रयाग जाने से आप नहीं रुके।

इनमें अद्भुत ज्ञान-पिपासा थी। यह जीवन-पर्यन्त बनी रही। आपके कारण भंड़ोखर स्टेट सांस्कृतिक उन्नयन का केन्द्र बन गया था। साधु-सन्तों, विद्वानों, कलाकारों, नेताओं, देश-सेवकों का वहाँ जमघट लगा रहता था। ये सबका यथोचित सत्कार करते थे। ज्ञानार्जन हेतु ये सद्ग्रंथों का सहारा तो लेते ही थे, घूम-घूमकर सत्संग-सुधा का पान भी किया करते थे।

विधाता ने आपकी रचना लोक-हित के लिए ही की थी। पीड़ित और आर्तजनों के तो आप प्राणाधार ही थे। दीन-दुःखियों के प्रति आपका करुणाशील हृदय सदैव द्रवित रहा करता था। इसीसे इनमें अतुलित दानशीलता आयी थी। व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ये तन-मन-धन से सदा न्योछावर रहा करते थे। प्रयः भावुकतावश ये दान देने में सीमा का अतिक्रमण भी कर जाते थे। इससे इन्हें कभी-कभी आर्थिक कष्ट भी हो जाता था। पर ये उसकी परवाह नहीं करते थे। ये धन को आत्मतोष से ऊपर नहीं मानते थे। जहाँ ये दलितों के त्राता थे, वहीं आततायियों के लिए व्रजवत-कठोर भी। ये सच्चे अर्थों में वैष्णव थे।

'कृष्णार्चा' इनका संस्कृत में प्रकाशित लीला-काव्य है। पुराणों का मन्थन कर जिस हृदयग्राही ग्रंथ का इन्होंने प्रणयन किया उसमें सम्पूर्ण वृन्दावन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने अशेष माधुर्य के साथ प्रत्यक्ष हो उठा है। केवल इसी एक ग्रंथ के आधार पर ये भगवद्भक्तों के बीच समादृत रहेंगे। छोटे-छोटे चरणों में निबद्ध इनकी पदावली में माधुर्य व प्रसादगुण की अद्भुत छटा देववाणी को लोकवाणी की सहजता प्रदान करती है। भोलाबाबू विद्या-प्रेमी व्यक्ति थे। भंड़ोखर में इनके प्रयास से एक विद्यालय का श्रीगणेश हुआ था। किन्तु कुछ असहयोगी तत्त्वों के कारण वह चल नहीं सका। इससे इन्हें गहरा आघात लगा था।

इनकी रचना 'कृष्णाचार्य' से श्रीकृष्ण-वन्दना-विषयक दो श्लोक प्रस्तुत हैं—

(१)

वन्देऽहं कमलाकान्तं नीलेन्दीवरलोचनम्।
पद्मनाभं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥
नीलनीरदसंकाशं देवेशं पुरुषोत्तमम्।
सुखदं जानकी जानिं वन्देऽहं रघुनायकम्॥

(२)

लक्ष्मीशं केशवं विष्णुं पीताम्बरधरं हरिम्।
शंखचक्रगदापाणिं वन्देऽहं जगदीश्वरम्॥
जनार्दनं जनानन्दं राधावल्लभमच्युतम्।
वन्देऽहं कामदं देवं भक्त-त्राण-परायणम्॥

त० ना०

जयदेव (गीतगोविन्दकार)

संस्कृत-साहित्य में जयदेव नामक कई कवि उपलब्ध होते हैं। 'गीतगोविन्द', 'प्रसन्नराघव' और 'चन्द्रालोक'—इन तीनों ग्रन्थों के निर्माता का नाम जयदेव ही है। गीतगोविन्द महाकाव्य है, प्रसन्नराघव नाटक है और चन्द्रालोक अलंकार-शास्त्र का ग्रन्थ है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इन तीनों ग्रन्थों के कर्ता जयदेव भिन्न-भिन्न हैं और कुछ विद्वानों का मत है कि जयदेव नामक एक ही कवि ने उक्त तीनों ग्रन्थों की रचना की है। चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव ने अपने माता-पिता का जो परिचय दिया है, उसके अनुसार इन दोनों ग्रन्थों के कर्ता जयदेव एक ही हैं। 'चन्द्रालोक' के प्रत्येक मयूख के अन्त में—

महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुरः।
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणहितमतिर्यस्य पितरौ॥

लिखकर इन्होंने अपने पिता का नाम महादेव और माता का नाम सुमित्रा बताया है। इसी प्रकार 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में भी जयदेव ने अपने माता-पिता का यही नाम दिया है—

कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः॥

—१।१४

लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद् भृंगायते मनः॥

—१।१५

अतः चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव एक ही व्यक्ति हैं।

गीतगोविन्दकार जयदेव ने अपने पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी या राधादेवी बताया है—

श्रीभोजदेव प्रभवस्य रामा (धा)
देवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे
श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु॥

इस प्रकार गीतगोविन्दकार जयदेव को अधिकांश विद्वान् चन्द्रालोक और प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव से भिन्न मानते हैं। अन्य उल्लेखों के आधार पर कुछ विद्वान् मिथिला के प्रसिद्ध तार्किक पक्षधर मिश्र का दूसरा नाम जयदेव (मिश्र) भी स्वीकार करते हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी वह गीतगोविन्दकार जयदेव नहीं हो सकते।

गीतगोविन्दकार जयदेव का जन्म 'किन्दुबिल्व' नामक ग्राम में हुआ था। गीतगोविन्द में इसका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठभेद 'तिन्दुबिल्व' भी पाया जाता है। श्री चन्द्रदत्त-विरचित 'भक्तमाल' के अनुसार इस ग्राम का नाम 'बिन्दुबिल्व' था। ब्राह्मणबहुल इस ग्राम में जयदेव का जन्म भी ब्राह्मण-कुल में हुआ था। गीतगोविन्द के कुछ टीकाकार 'किन्दुबिल्व' को जयदेव का गोत्र भी मानते हैं। किन्दुबिल्व (या तिन्दुबिल्व या बिन्दु-बिल्व) ग्राम कहाँ था, यह अभी तक निर्णीत नहीं हो सका है। 'भक्तमाल' के अनुसार वह उत्कलप्रदेश में था, किन्तु अनेक विद्वान् वर्तमान समय में इस ग्राम की पहचान 'केन्दुली' नामक ग्राम के रूप में करते हैं, जो पश्चिम बंगाल प्रदेश के बीरभूम जिले में अजयनदी के तट पर अवस्थित है। 'केन्दुली' में आज भी जयदेव की स्मृति में वहाँ के निवासी प्रतिवर्ष पौष शुक्ला सप्तमी को उत्सव मनाते हैं।

महाकवि जयदेव के पिता का नाम श्री भोजदेव और माता का नाम रामादेवी या राधादेवी था। कहीं-कहीं वामादेवी नाम भी प्राप्त होता है। इनकी पत्नी का नाम पद्मावती था। वे भी संगीत-विद्या में प्रवीण थीं और जयदेव के गान पर नृत्य करती थीं। इस विवरण के अतिरिक्त महाकवि जयदेव के परिवार के विषय में अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती।

प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि महाकवि जयदेव बंगप्रदेश के सेनवंश के अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि थे। राजा लक्ष्मण-सेन के सभाभवन के द्वार पर उनके सभारत्नों के नाम शिलापट्ट पर इस प्रकार अंकित थे—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु ॥

महाकवि जयदेव ने गीतगोविन्द (१.४) में गोवर्धनाचार्य, शरण, उमापति और कविराज धोयी—इन सभी का उल्लेख करके उन्हें अपना समकालिक स्वीकार किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उपर्युक्त कवियों के साथ ही जयदेव राजा लक्ष्मणसेन की सभा में विद्यमान थे। अतः जयदेव के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विवाद नहीं है। राजा लक्ष्मणसेन का राज्यकाल ११८५-१२०५ ई० था। इस प्रकार महा-कवि जयदेव का स्थितिकाल बारहवीं शताब्दी निश्चित है।

महाकवि जयदेव का अमर गीतिकाव्य 'गीत-गोविन्द' कृष्णभक्तिपरक ललितसंगीतमय काव्यों की परम्परा में अग्रणी है। स्वयं महाकवि जयदेव के अनुसार यह एक प्रबन्ध-काव्य है। इसमें १२ सर्ग हैं। इन सर्गों में श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रासक्रीड़ा, राधा का विषाद, कृष्ण के लिये उनकी व्यग्रता, उपालम्भ-वचन, राधा के लिये कृष्ण की उत्कण्ठा, सखी द्वारा राधा के विरह-सन्ताप का वर्णन, कृष्ण का आगमन, राधा का क्रोध-प्रकटन, कृष्ण का संगीता-नुष्ठान और अन्त में उनसे राधा का मिलन वर्णित है।

गीतगोविन्द के रूप में महाकवि जयदेव ने भक्ति-संगीतमय अपूर्व काव्य की सृष्टि की है। इस काव्य के प्रारम्भ में ही कवि दृढ़ आत्मविश्वास के साथ कहता है कि यदि भगवत्कीर्तन में मन लगता है, यदि उनकी लीलाओं के प्रति कुतूहल है, तो मधुर-कोमलकान्तपदावली से युक्त जयदेव की सरस भारती का श्रवण कीजिए—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकथासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥

—गीतगोविन्द १.३

वस्तुतः जयदेव ही एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने संस्कृत-साहित्य में काव्य और संगीत का समन्वय करके एक नवीन विधा की सृष्टि की है। कवि की भाषा में अपूर्व आकर्षण है। दीर्घ समासों से युक्त होने पर भी गीतगोविन्द की सरस पदावली क्लिष्ट नहीं है। पदलालित्य और स्वरमाधुरी के संगम में अवगाहन करके रसिक भक्त कृतकृत्य हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसमें नृत्य-गीति-संगीत, विष्णुभक्ति और श्रृंगार-रस का पूर्ण समावेश है—

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वमपि यत्काव्येषु लीलायितम् ।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥

—गीतगोविन्द १२।१८

जयदेव के गीतगोविन्द में भगवान् श्रीकृष्ण की सरस लीलाओं का वर्णन हुआ है। आलोचक इसको दो प्रकार से परखते हैं—भक्तिकाव्य अथवा शृङ्गारिक गीति-काव्य की दृष्टि से। श्रीकृष्ण की मधुरा-भक्ति के उपासक इसे आध्यात्मिक दृष्टि से ही देखते हैं। वे श्रीकृष्ण को ब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा मानते हुए, कृष्ण और राधा के मिलन को ब्रह्म और जीव का मिलन बताते हैं। जीवात्मा की प्रतीकरूप गोपियाँ ब्रह्म के प्रतीकरूप श्रीकृष्ण से मिलने के लिए व्याकुल रहती हैं। विभिन्न परिस्थितियों में इसी व्याकुलता की अभिव्यक्ति कराते हुए कवि अन्ततः उन दोनों का मिलन कराकर अखण्ड आनन्द की सृष्टि करता है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर गीत-गोविन्द शृङ्गार-रसप्रधान गीति-काव्य है और जयदेव मूलतः एक शृङ्गारी कवि हैं। इसमें श्री-कृष्ण और राधा की भक्ति का आलम्बन लेकर कवि ने उत्कृष्ट श्रृंगारमय काव्य की सृष्टि की है। बंगाल में प्राचीनकाल से ही मन्दिरों, देवयात्राओं और उत्सवों के अवसर पर कृष्ण-लीला से सम्बद्ध गीत गाने की परम्परा प्रचलित थी। इसको ध्यान में रखकर जयदेव ने ऐसे सरस गेय पद बनाए, जो मन्दिर आदि में गाये जायँ। इन पदों के साथ संगीत और नृत्य की योजना करके जयदेव ने उन्हें अत्यन्त लोकप्रिय बना दिया। राधा-कृष्ण से सम्बद्ध होने के कारण कृष्ण-भक्तों का यह परमप्रिय काव्य हो गया। कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु के आग्रह से उनके समकालिक उत्कल प्रदेश के राजा ने पुरी के जगन्नाथ-मन्दिर में गीतगोविन्द के नियमित गायन की व्यवस्था करवा दी थी।

महाकवि जयदेव के ही शब्दों में, उनकी कविता के समक्ष माध्वीक (विशेष प्रकार की मदिरा), शर्करा, अंगूर, अमृत, दुग्ध, आम्र और कान्ता का अधरसुधारस, सभी फीके हैं—

साध्वी माध्वीक चिन्ता न भवति भवतः
शर्करे कर्कशाऽसि
द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि
क्षीर नीरं रसस्ते ।
माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर धरणितलं
गच्छ यच्छन्ति यावद्-
भावं शृङ्गारसारस्वतमिह जयदेवस्य
विष्वग्वचांसि ॥

—गीतगोविन्द २०।२१

गीतगोविन्द में शब्दसौष्ठव, पदमाधुर्य, भावसौकु-मार्य, काव्यसौन्दर्य, प्रेमभाव की मार्मिक व्यंजना, संगीतात्मकता और कला की कमनीयता का कमनीय संयोग हुआ है।

गीतगोविन्द के गेय, सरस, सुललित, मनोहारी पद्य आस्वाद्य हैं—

ललितलवङ्गलतापरिशीलन-
कोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिल-
कूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि,
विरहिजनस्य दुरन्ते ॥

—गीतगोविन्द १।३

'हे सखि, विरहियों के लिए अत्यन्त विषम इस सरस वसन्त ऋतु में श्रीकृष्ण (गोपियों के साथ) विहार कर रहे हैं। वे युवतियों के साथ नृत्य कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे हैं। इस समय सुन्दर लवंगलता का स्पर्श करता हुआ सुखद मलय पवन बह रहा है तथा लताकुंजों के कुटीर भ्रमर-समूह से व्याप्त हैं और कोयलों की कूक से मुखरित हैं।'

चन्दनचर्चितनीलकलेवर-
पीतवसनवनमाली।
केलिचलन्मणिकुण्डलमण्डित-
गण्डयुगस्मितशाली॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि
कामपि रमयति रामाम्।
पश्यति सस्मितचारुतरामपरा-
मनुगच्छति वामाम्॥

—गीतगोविन्द १।४

'चन्दन का लेप किये हुए, श्याम शरीरवाले, पीत-वस्त्र धारण किये हुए, वनमाला धारण करनेवाले, क्रीड़ा में दोलायमान मणिकुण्डलों से सुशोभित कपोलों-वाले, मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण किसी युवती का आलिंगन करते हैं, किसीका चुम्बन करते हैं, किसीके साथ रमण करते हैं, मुस्कराती हुई किसी सुन्दरी को देखते हैं और किसी अन्य (रूठी हुई) युवती के पीछे-पीछे (उसे मनाने के लिए) जाते हैं।'

अ० पा०

जीवगोस्वामी

चैतन्य-मत के पोषक वैष्णव-कवियों एवं दार्शनिकों में जीवगोस्वामी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये भरद्वाजगोत्रीय यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज सर्वज्ञ कर्णाटकप्रदेश के राजा थे। सर्वज्ञ के पुत्र अनिरुद्ध थे। अनिरुद्ध के दो पुत्र हुए—रूपेश्वर और हरिहर। हरिहर ने अपने बड़े भाई रूपेश्वर से राज्य छीन लिया। राज्य से च्युत होने पर रूपेश्वर कर्णाटक छोड़कर गौड़ देश चले गये। रूपेश्वर के पौत्र मुकुन्द थे और मुकुन्द के पुत्र कुमारदेव। कुमारदेव के तीन पुत्र हुए—सनातन, रूप तथा वल्लभ। वल्लभ का दूसरा नाम अनुपम था, जो उन्हें चैतन्य महाप्रभु के प्रसाद से प्राप्त हुआ था। सनातन तथा रूप को चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों में अपूर्व ख्याति मिली। अनन्य रामभक्त अनुपम का अल्पायु में ही साकेतवास हो गया। जीवगोस्वामी उन्हींके सुयोग्य पुत्र थे।

जीवगोस्वामी का जन्म वि० सं० १५८० में पौष शुक्ला तृतीया को हुआ था। २० वर्ष की अवस्था में ये बंगप्रदेश से वृन्दावन चले गये। इनकी मृत्यु सं० १६६५ में पौष शुक्ला तृतीया को हुई। एक अन्य मत के अनुसार इनका आविर्भाव तथा तिरोभाव-काल क्रमशः वि० सं० १५६८ और १६५३ है।

इनका जीवन-वृत्त 'भक्तिरत्नाकर' नामक ग्रन्थ में वर्णित है, परन्तु यह ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। श्री कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य-चरितामृतम्' में इनके विषय में उल्लेख किया है। बाल्यावस्था में ही इनके मन में कृष्ण-भक्ति का संचार हो गया था। इनकी माँ इन्हें चैतन्य महाप्रभु के अद्‌भुत चरित सुनाया करती थीं और चैतन्य-मत से प्रभावित होकर संन्यास ग्रहण कर लेनेवाले इनके पितृव्यद्वय—सनातन तथा रूप की प्रशंसा करती थीं। जीवगोस्वामी पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। ये कृष्ण-बलराम की मूर्तियाँ बनाकर अन्य बालकों के साथ उनकी पूजा करते थे। प्रबल भक्ति-भावना के कारण स्वप्न में इन्हें प्रायः कृष्ण-बलराम तथा चैतन्य-नित्यानन्द का दर्शन प्राप्त होता था।

२० वर्ष की अवस्था में जीवगोस्वामी मुण्डन कराकर तथा काषाय वस्त्र धारण कर संन्यासी बन गये और अध्ययन के लिए नवद्वीप चले गये। नित्यानन्द के साथ वहाँ कुछ दिन रहकर उनके आदेश से ये वृन्दावन चले गये, जहाँ इनके पितृव्य पहले से ही प्रतिष्ठित हो चुके थे। वृन्दावन जाते समय बीच में काशी में कुछ दिन रुककर इन्होंने मधुसूदन वाचस्पति से न्याय, वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। वृन्दावन पहुँचकर जीवगोस्वामी ने अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पितृव्यों से श्रीमद्भागवत प्रभृति भक्ति-शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन किया। इन्होंने रूपगोस्वामी से गोपाल-मंत्र की दीक्षा ग्रहण करके अपना जीवन भागवत-धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। इन्होंने श्रीनिवासाचार्य ठाकुर, नरोत्तमदास ठाकुर तथा श्यामानन्द प्रभु को भक्ति-सिद्धान्त की शिक्षा देकर उन्हें समस्त गोस्वामि-ग्रन्थोंसहित गौड़ देश तथा श्री जगन्नाथ-क्षेत्र में भक्ति-प्रचारार्थ भेजा था। मार्ग में पश्चिम बंग में बाँकुड़ा जिलान्तर्गत वनविष्णुपुर के राजा वीर हाम्वीर ने सभी ग्रन्थों की चोरी करवा दी। बाद में श्रीनिवासाचार्य के मुख से श्रीमद्भागवत की अपूर्व व्याख्या सुनकर वह बहुत प्रभावित हुआ और समस्त ग्रन्थ लौटाकर उनका शिष्य बन गया।

जीवगोस्वामी के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख नित्यानन्ददास ने 'प्रेमविलास' में किया है। एक बार रूपनारायण सरस्वती नामक एक विद्वान् दक्षिण भारत में अपने पाण्डित्य की धाक जमाने के बाद वृन्दावन पहुँचा। उस समय तक रूप और सनातन के पाण्डित्य की ख्याति उत्तर भारत में फैल चुकी थी। रूपनारायण ने उन्हें किसी भी विषय पर शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी। विद्याभिमान से शून्य उन दोनों ने इस चुनौती को स्वीकार नहीं किया और रूपनारायण के संतोष के लिए अपनी पराजय भी स्वीकार कर ली। रूपनारायण ने अपनी विजय के प्रमाण के रूप में उनसे 'जय-पत्र' भी लिखवा लिया। फिर वह जीवगोस्वामी के पास पहुँचा। रूपनारायण के विद्याभिमान और अपने पितृव्यों के प्रति असद्व्यवहार से जीवगोस्वामी को बहुत क्षोभ हुआ। दोनों में कई दिनों तक शास्त्रार्थ हुआ और अन्त में रूपनारायण को पराजित होना पड़ा। यह बात जब रूपगोस्वामी को ज्ञात हुई, तब उन्होंने जीवगोस्वामी को बुलाकर डाँटा और संन्यासोचित विनय तथा सहिष्णुता से रहित होने के कारण अपने मठ से निकल जाने को कहा। पितृव्य को प्रणाम करके जीवगोस्वामी वहाँ से निकल गये और कुछ दूरी पर कुटिया बनाकर रहने लगे। एक वर्ष तक मौन-व्रत का पालन करने के पश्चात् पुनः पितृव्य से क्षमा-दान पाने पर उनके पास लौटे। इनके क्षमा-दान पाने का प्रसंग भी रोचक है। जीवगोस्वामी के दूसरे पितृव्य सनातन गोस्वामी ने रूपगोस्वामी से पूछा—"वैष्णव-मत के प्रमुख सिद्धान्त कौन हैं ?" रूपगोस्वामी ने अन्य सिद्धान्तों के साथ 'जीवदया' का भी उल्लेख किया। इस पर सनातन ने कहा—"तब 'जीव' पर दया क्यों नहीं करते ?" उनका अभिप्राय समझकर रूपगोस्वामी ने जीवगोस्वामी को बुलवाकर उन्हें क्षमा कर दिया।

जीवगोस्वामी को असाधारण प्रतिभा प्राप्त थी। भक्ति-साहित्य की विलक्षण व्याख्या तथा चैतन्य-मत को सुदृढ़ दार्शनिक आधार प्रदान करने के कारण ये सदैव भक्तों और दार्शनिकों के श्रद्धास्पद रहेंगे। इनके द्वारा विरचित साहित्य विपुल है। इनकी प्रमुख कृतियाँ अधोलिखित हैं—

१. हरिनामामृत व्याकरण—इसमें व्याकरण के माध्यम से कृष्णसम्बन्धी शब्द सिद्ध किये गये हैं। यह ग्रन्थ सात प्रकरणों—संज्ञा-सन्धि, विष्णुपद, आख्यात, कारक, कृदन्त, समास तथा तद्धित में विभक्त है। इसमें ३१९२ सूत्र हैं।

२. भक्तिरसामृतशेष—यह ग्रन्थ सात प्रकरणों में विभक्त है। इसमें काव्यस्वरूप, रस, अलंकार, दोष, गुण, ध्वनि आदि का विशद निरूपण है। यह ग्रन्थ रूपगोस्वामिविरचित 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' का पूरक है।

३. गोपालविरुदावली—इसकी रचना रूपगोस्वामि-विरचित 'सामान्यविरुदावलीलक्षण' तथा 'गोविन्दविरुदावली' के आधार पर की गयी है। इसमें श्रीकृष्ण की स्तुतियाँ निबद्ध हैं।

४. माधव-महोत्सव—यह एक महाकाव्य है। पद्म-पुराणस्थ कार्तिक-माहात्म्य के आधार पर राधा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चरित्र का आख्यान इसका विषय है। यह महाकाव्य उत्सुकराधिक, उन्मन्युराधिक, उत्फुल्लराधिक, उद्योतराधिक, उदितराधिक, उन्नतराधिक, उत्सिक्तराधिक, उज्ज्वलराधिक तथा उन्मद-राधिक नामक नौ उल्लासों में विभक्त है। इसमें ११७२ पद्य हैं।

५. संकल्पकल्पद्रुम—इस पद्यकाव्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसमें चार प्रकरण हैं—जन्मादिलीला, नित्यलीला, सर्वर्तुलीला तथा फलनिष्पत्ति।

६. युगलाष्टक—इसमें ८ पद्यों में राधा-कृष्ण के युगल रूप का वर्णन है।

७. षट्सन्दर्भ—यह चैतन्य-सम्प्रदाय का श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रन्थ है। इसे 'भागवत-सन्दर्भ' भी कहते हैं। यह ६ सन्दर्भों में विभक्त है—तत्त्वसन्दर्भ, भगवत्-सन्दर्भ, परमात्मसन्दर्भ, कृष्णसन्दर्भ, भक्तिसन्दर्भ तथा प्रीतिसन्दर्भ।

८. सर्वसंवादिनी—यह षट्सन्दर्भ की टीका है।

९. क्रमसन्दर्भ—यह श्रीमद्भागवत की टीका है।

१०. बृहत्क्रमसन्दर्भ—यह श्रीमद्भागवत के दशम-स्कन्ध की टीका है।

११. वैष्णवतोषिणी—यह भी दशमस्कन्ध की टीका है।

१२. राधाकृष्णार्चनदीपिका—इसमें कृष्ण के राधा-समन्वित रूप के ही अर्चन का औचित्य प्रति-पादित है। इसकी रचना षट्सन्दर्भ तथा वैष्णव-तोषिणी के बाद हुई थी।

१३. दुर्गमसंगमनी—यह 'भक्तिरसामृतसिन्धु' की टीका है।

१४. लोचनरोचनी—यह रूपगोस्वामिप्रणीत 'उज्ज्वल-नीलमणि' की टीका है।

१५. गोपालचम्पू—गद्यपद्यमय यह काव्य पूर्वचम्पू तथा उत्तरचम्पू नामक दो भागों में विभक्त है। पूर्व-चम्पू में ३३ तथा उत्तरचम्पू में ३७ पूरण हैं। पूर्वचम्पू गोलोकविलास, बाल्यविलास एवं कैशोरविलास नामक तीन विलासों में विभक्त है। उत्तरचम्पू में भी तीन विलास हैं—प्रथम विलास, द्वितीय विलास तथा तृतीय विलास। गोपालचम्पू जीवगोस्वामी की असाधारण प्रतिभा तथा शास्त्रवैदुष्य का परिचायक है जिसमें राधा-कृष्ण के प्रति इनकी अनन्य भक्ति का सरस उन्मेष पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। इस विशाल-काय काव्य में तीन हजार से भी अधिक पद्य हैं।

उपरिनिर्दिष्ट ग्रन्थों के अतिरिक्त 'सूत्रमालिका', 'धातुसंग्रह', 'गोपालतापनीटीका', 'अग्निपुराणस्थ-गायत्री भाष्य' आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन करके जीवगोस्वामी ने संस्कृत-वाङ्मय को समृद्ध किया है।

पूर्वचम्पू के अधोलिखित पद्य में गोस्वामी की काव्य-प्रतिभा की झलक मिलती है—

मानं कुर्विति वक्ति सा सखी
मानं न वेद्मि स्फुटं
कौटिल्येन यदि प्रसिध्यति स तत्
कौटिल्यमेवात्र किम्।

हा तस्य स्मितकञ्जचारुनयनं
श्यामस्य मन्मानसं
द्रष्टुं वाञ्छति हन्त कष्टमपरां
स्फूर्ति कथं गच्छतु॥

'वह प्रियसखी तो यह कहती है कि 'तू मान कर।' मैं स्पष्टतः मान करना जानती नहीं। यदि कहो कि वह मान तो कुटिलता से ही सिद्ध होता है तो वह कुटिलता भी यहाँ कैसे (आ सकती है)? हाय! मेरा मन उन श्याम के मन्दहास से युक्त कमलवत् सुन्दर नेत्र को देखना चाहता है। हाय! कष्ट है, वह (मेरा मन) दूसरी स्फूर्ति को कैसे प्राप्त हो सकता है?'

श्री 'गोपालविरुदावली' का अधोलिखित श्लोक मनोहर है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोवर्धनवृन्दावनयमुनापुलिनानि रम्याणि ।
सुखरूपस्य च भवतः सुखदान्यस्मान् विमोहयन्ति ॥

'गोवर्धन, वृन्दावन और यमुना के तट सुन्दर हैं। सुखरूप आपको भी सुख देनेवाले (ये) हमें मोहित कर रहे हैं।'

अ० पा०

जीवनजी

जीवनजी श्रीगोकुलोत्सव के पुत्र थे। ये पुष्टिमार्ग के आचार्य थे। इन्होंने 'बालकृष्णाष्टक', 'बालकृष्ण-शरणाष्टक', 'गङ्गाद्विपदी', और 'यमुनाचतुष्पदी' की रचना की है।

जीवनजी-विरचित दो श्लोक यहाँ दिये जा रहे हैं—

यत्कृपादृष्टिसद्वृष्टिसिक्ता भक्ता निरन्तरम् ।
भवन्ति सुखिनः स्निग्धास्तं श्रीबालहरिं भजे ॥

—बालकृष्णाष्टक

'जिनकी कृपादृष्टि की सद्वृष्टि से सिक्त होकर भक्त निरन्तर सुखी और स्निग्ध रहते हैं, उन श्री बालकृष्ण को भजता हूँ।'

हस्तेन नेत्रादपसारितेन
स्निग्धाञ्जनेनाक्तकपोलदेशे ।
व्रजाङ्गनास्नेहसुधासुपात्रे
श्रीबालकृष्णे रतिरस्तु नित्यम् ॥

—बालकृष्णशरणाष्टक

'हाथ से स्नेहपूर्वक हटाये गये स्निग्धाञ्जन से लिप्त कपोल प्रान्तवाले, व्रजाङ्गनाओं की स्नेहसुधा के सुपात्र श्री बालकृष्ण में मेरी प्रीति हो।'

अ० पा०

जीवराम याज्ञिक

जीवराम याज्ञिक गुजराती ब्राह्मण थे। इनके जीवन-वृत्त सम्बन्धी तथ्य अज्ञात हैं। इन्होंने १४८५ ई० में 'मुरारिविजय' नाटक की रचना की। इसमें पाँच अङ्क हैं। इसकी रचना श्रीमद्भागवत के दशम-स्कन्ध में उपलब्ध कृष्ण और गोपियों की लीलाओं के आधार पर हुई है।

अ० पा०

त्रिविक्रमभट्ट

त्रिविक्रमभट्ट शाण्डिल्यगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नेमादित्य (देवादित्य) था और पितामह का नाम श्रीधर। ये राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज तृतीय के सभापण्डित थे। इन्द्रराज तृतीय ने कन्नौज के राजा को पराजित किया था। इन्होंने 'नलचम्पू' में बाण का उल्लेख किया है, इससे स्पष्ट है कि ये बाण के परवर्ती हैं। सन् ९१५ ई० का एक शिलालेख बरार के नवसारी ग्राम से मिला है। इससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज तृतीय के राज्याभिषेक के समय सुवर्ण-तुलादान में कई ग्राम ब्राह्मणों को दिये गये थे। इस शिलालेख के रचयिता त्रिविक्रमभट्ट हैं। यही त्रिविक्रमभट्ट 'नलचम्पू' के भी कर्ता हैं। इसके आधार पर त्रिविक्रम भट्ट का समय दशम शताब्दी ठहरता है। इन्द्रराज तृतीय के पौत्र कृष्णराज तृतीय थे। कृष्णराज के समय में 'यशस्तिलकचम्पू' के रचयिता सोमदेवसूरि तथा 'कविरहस्य' के रचयिता हलायुध थे। इन्हींके समय में जैनकवि पुष्पदन्त भी थे। त्रिविक्रम की सातवीं पीढ़ी में प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य उत्पन्न हुए थे।

त्रिविक्रमभट्ट के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती प्रचलित है। इनके पिता नेमादित्य किसी राजा के सभापण्डित थे। कहा जाता है कि त्रिविक्रम मूर्ख थे। एक बार नेमादित्य बाहर गये हुए थे, उसी समय कोई विद्वान् सभा में आया। उसने राजा से कहा कि मैं आपकी सभा के पण्डितों से शास्त्रार्थ करना चाहता हूँ। राजा ने त्रिविक्रम के पिता को बुलाया, किन्तु वे घर पर नहीं थे। त्रिविक्रम को बहुत कष्ट हुआ। इन्होंने सरस्वती से प्रार्थना की कि मुझे ऐसी शक्ति दीजिए, जिससे मैं विरोधी पण्डित को पराजित कर सकूँ। सरस्वती ने त्रिविक्रम को उस समय तक के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिए पाण्डित्य प्रदान किया, जब तक उनके पिता बाहर से लौटकर न आ जाएँ। त्रिविक्रम ने सभा में विरोधी पण्डित को पराजित किया। इन्होंने विचार किया कि जब तक पिता नहीं आते, तब तक मैं किसी महत्त्वपूर्ण कृति की रचना कर लूँ। अतः 'नल-चम्पू' की रचना तत्काल प्रारम्भ कर दी। पिता के आने तक सातवें उच्छ्वास तक रचना हो चुकी थी। इस प्रकार 'नलचम्पू' की रचना पूरी न हो सकी, कारण कुछ भी रहा हो।

'नलचम्पू' में नल और दमयन्ती की कथा निबद्ध हुई है। कवि की दूसरी रचना 'मदालसाचम्पू' है।

त्रिविक्रमभट्ट श्लेष के प्रयोग में अत्यन्त निपुण थे। इन्होंने श्लेष की प्रशंसा की है-

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः।
भवन्ति कस्यचित् पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः॥

—नलचम्पू १.४

'ऐसा व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है, जिसके मुख में प्रसादगुणोपेत, कान्तिगुण के कारण मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों को प्रकट करनेवाली वाणी रहती है और घर में प्रसन्न, सौन्दर्य से मनोहर तथा विविध आलिङ्गन-विधियों में प्रवीण स्त्रियाँ रहती हैं।'

इन्होंने एक स्थान पर अपनी कल्पना से आकाश में गङ्गा और यमुना के सङ्गम की सृष्टि की थी। इससे प्रसन्न होकर पुराने कवियों ने त्रिविक्रम को 'यामुन-त्रिविक्रम' की उपाधि से विभूषित किया है। नलचम्पू का उक्त श्लोक इस प्रकार है-

उदयगिरिगतायां प्राक् प्रभापाण्डुताया-
मनुसरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य।
जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योममध्ये
सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च॥

—६।१

'सबेरा होनेवाला है। उदयगिरि की चोटी पर प्रातःकाल की प्रभा फैल रही है। अस्ताचल के शिखर पर रात्रि का अन्धकार उतर रहा है। आकाश के एक ओर अन्धकार और दूसरी ओर प्रकाश है। अन्धकार और प्रकाश के मिश्रण को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे यमुना और गङ्गा का जल मिल रहा हो।'

यहाँ नलचम्पू के दो उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१)

जयत्यमरसारथिर्मदनतप्तलक्ष्मीलसत्-
पयोधरयुगस्थलीसरसचन्दनस्थासकः।
अचिन्त्यगुणविस्तरः सकलकेशिकसाङ्गना-
कपोलफलकोल्लसत्तिलकभङ्गहारीहरिः॥

—६।९

देवों के अग्रणी, कामसन्तप्त लक्ष्मी के स्तनयुगल पर सरस चन्दन के स्थासक, अचिन्त्य गुणोंवाले, केशी और कंस की स्त्रियों के कपोलस्थल पर शोभित होने-वाली तिलक-रचना को भंग करनेवाले भगवान् (श्रीकृष्ण) सर्वोत्कृष्ट हैं।

(२)

जयत्यमलभावनावनतोकल्पद्रुमः
पुरन्दरपुरस्सरत्रिदशवृन्दचूडामणिः।
अरातिकुलकन्दलीवनविनाशदावानलः
समस्तमुनिमानसप्रवरराजहंसो हरिः॥

—६।११

'निर्मल भावना से नत जनों के लिए कल्पद्रुम, इन्द्र आदि देवों में शिरोमणि, शत्रुवर्गरूपी वन के लिए दावाग्नि और समस्त मुनियों के मानस के श्रेष्ठ राज-हंस हरि विजयी हों।'

अ० पा०

देवकीनन्दन

पुष्टि-मार्ग के आचार्य देवकीनन्दन के लौकिक जीवन-विषयक तथ्य अन्धकाराच्छन्न हैं। इनकी तीन रचनाएँ मिलती हैं—'अष्टपदी', 'वल्लभाष्टक' और 'यमुनाष्टक'।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ देवकीनन्दन-कृत दो श्लोक दिये जा रहे हैं—

या राधिकाधरपयोधरकामुकाय
तस्मै निकुञ्जनिलयं स्वकरैश्चकार ।
स्वच्छोचितातिमृदुवालुकभूवितानं
सा मन्मनोरथशतं यमुना विधत्ताम् ॥

—यमुनाष्टक

'जिसने राधिका के अधर और पयोधर के अभिलाषुक उन (श्रीकृष्ण) के लिए अपने करों से कुञ्जगृह का निर्माण किया और स्वच्छ, अनुकूल तथा अतिकोमल वालुका से युक्त भूप्रदेश की रचना की, वह यमुना मेरे मनोरथों की पूर्ति करे ।'

वितरति कृष्णकथामृतधनमविनाश्यं सुदुर्लभं बहुलम् ।
अर्थिषु तदुदितकीर्तिर्जगति श्रीवल्लभो जयति ॥

——वल्लभाष्टक

'जो याचकों को अविनश्वर, दुर्लभ तथा कृष्ण-कथामृतरूपी अत्यधिक धन प्रदान करते हैं, वे फैली हुई कीर्तिवाले श्रीवल्लभ संसार में विजयी हों ।'

अ० पा०

देवीदत्त

श्रीदेवीदत्त का समय १८वीं शताब्दी है। ये भड्डु के निवासी गौड़ ब्राह्मण थे। इनका सम्बन्ध जम्मू और भड्डु के राजाओं से था। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ये जम्मू के राजा रञ्जीतदेव के आश्रित थे। इतना तो निश्चित है कि राजा रञ्जीतदेव और उनके पुत्र व्रजराजदेव से दत्त का बहुत अच्छा सम्बन्ध था। महाराज रञ्जीतदेव का राज्य-काल १७२५–१७८१ ई० है। कहा जाता है कि दत्त ८८ वर्ष तक जीवित रहे। अब इनके वंशज भल्लड़ ग्राम में रहते हैं, जो जसरोटे के पास है।

कवि दत्त श्रीयन्त्र का पूजन करते थे। इनके गुरु सूर्यनारायण मिथिला अथवा दक्षिण देश के निवासी थे। सूर्यनारायण भड्डु और सुकराला में २५ वर्ष तक रहे। वे १७५४ ई० में सुकराला आये। देवीमल्लजी की कथा (लेखक-प्रकाशक जम्मू-नगर-निवासी पं० नीलकण्ठ) में अधोलिखित उल्लेख है—

"फिर संवत् १८११ बीच मंत्रशास्त्रीवर पंडित श्री सूर्यनारायण नाम कर्के आये । उनोंने दिन इकताली यंत्र मंत्र तंत्र कर पुरश्चरण किया तब सुक्राल गांम बीच श्री देवी मल्ल नाम कर्के प्रसिद्ध भई ।"

श्री सूर्यनारायण ने सुकराला में महाकाली का यन्त्र स्थापित किया और घग्वाल में नरसिंहजी का यन्त्र। उन्होंने दत्त की जिह्वा पर बीजमन्त्र लिखा, जिससे दत्त की बुद्धि तीव्र हो गयी और ग्रन्थ की रचना करने लगे ।

जनश्रुति है कि श्री देवी दत्त और अर्जुन भड्डु के निवासी थे। दोनों सूर्यनारायण के शिष्य थे। अर्जुन तीव्र बुद्धि के थे और दत्त मन्द बुद्धि के। अर्जुन अल्प-काल में ही शास्त्र-पारंगत हो गये, किन्तु दत्त विद्यार्जन में सफल नहीं हुए। एक बार अर्जुन ने गुरु की अवज्ञा की, जिसके कारण गुरु ने उनकी विद्या को निष्फल होने का शाप दिया। जब सूर्यनारायण अपने देश को लौटने लगे, तो दत्त उनके साथ चल पड़े। दत्त की भक्ति से प्रसन्न होकर गुरु ने उनकी जिह्वा पर बीज-मन्त्र लिख दिया, जिससे उनकी प्रवृत्ति काव्य-रचना में हो गयी।

दत्त की वंशावली इस प्रकार है—

कवि देवीदत्त, शिवसेवक, विद्यानिधि, रामधन, वामदेव, मतिराम, कलाधर, गदाधर ।

यह वंशावली 'दत्तग्रन्थावलि' (पृ० ४३) में दी गयी है। 'दत्तग्रन्थावलि' के पृ० ३७ पर श्री गौरी-शंकरजी ने एक पत्र उद्धृत किया है, जिसके लेखक पंडित गदाधर बताये गये हैं। उस पत्र में उल्लिखित है—

"दत्तुजी की जाति गौड़ पुरोहित, गोत्र बृहस्पति, माध्यन्दिनी सूत्र, कात्यायनी प्रवर है। श्री दत्तुजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराज रणजीतदेव के आश्रित रहे। जम्मू में २८ वर्ष कथा करते रहे। श्री दत्तुजी के वंश में अब तक कविता करते हैं।"

दत्त ने जम्मू के राजा रणजीतदेव और उनके आत्मज ब्रजराजदेव की प्रशंसा की है—

चिरंजीत रणजीत नृप जम्मू नगर नरेश।
जिन गोपाल प्रसाद से जीति लियो सब देश॥

ज्यों शिव को गणराज, ताको सुत ब्रजराज दे।
सूर बड़ो युवराज चिर जीवो गुनगन भर्‌यो॥
राजन को राजा, महाराज रनजीत देव।
देवदत्त जाको जस गावत जहान है॥

कवि दत्त के उल्लेख के अनुसार पता चलता है कि इनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी—

आधो शरीर दियो हरि को हर,
आधो दियो गिरिराज को जाई।
ज्यौं विधि शम्भु अभाव भयो लखि,
देवनदी उदधी उठि धाई॥

चन्द्रकला गई अम्बर मांहि,
पताल गयो पुनि पन्नग राई।
ज्ञान प्रभूत गयो नृपहून को,
भीख रही कवि दत्त के आई॥

कवि दत्त ने अधोलिखित ग्रन्थों की रचना की—'वीरविलास', 'ब्रजराजपंचासिका', 'बारामाह', 'दत्त-संग्रह', 'भूपवियोग', 'अमृतवियोग', 'रघुचन्द्रिका', 'कृष्णमहिम्नस्तोत्र', 'कृष्णाष्टक', 'सायंपंचक', 'ज्योतिषप्रकाश', 'कमलनेत्रस्तोत्र।'

'वीरविलास' काव्य का प्रारम्भ चैत्र १८१८ वि० (१७६१ ई०) में हुआ था और समाप्ति ज्येष्ठ १८२३ वि० (१७६६ ई०) में। यह महाभारत के द्रोणपर्व का संक्षिप्त पद्य-रूपान्तर है।

काँगड़ा के कटोच राजा घमंडचन्द ने चम्बा राज्य का पठियार दुर्ग छीन लिया। तब ब्रजराजदेव ने घमंडचन्द को दण्ड देने के लिए अभियान किया। इसी अभियान का वर्णन ब्रजराजपंचासिका में है। चम्बा के राजा की मृत्यु पर उसका लड़का राजसिंह, जो नौ वर्ष का था, शासक बना। राजसिंह की माता जम्मू के राजा की बहन थी। कवि दत्त ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है—

एक दिवस चंब्याल को दूत पुकार्‌यो जाइ।
वाको दुर्ग पठ्यार को लियो कटोच छिनाइ॥

यों सुनि उठ्यो रिसाइ, साइँ जम्बू नगर को।
ता छिन लियो बुलाइ, लाइक सुत ब्रजराज दे॥

कह्यो वचन समुझाइ, महाराज ब्रजराज सों।
दूर करो तुम जाइ, बाढ्यो गर्व कटोच को॥

'कृष्णमहिम्नस्तोत्र' कवि की भक्तिपरक रचना है। यह रचना स्तोत्रपरम्परा के अन्तर्गत आती है। इसकी भाषा सरल है और भाव बड़े मधुर। इसकी रचना संवत् १८२८ के भाद्रपद की कृष्णजन्माष्टमी के दिन समाप्त हुई—

नागदृग्गजभूसंज्ञे वर्षे विक्रमभूपतौ।
स्तवोऽयं कृष्णजन्माहे दत्तेनानायि पूर्णताम्॥
—कृष्णमहिम्नस्तोत्र ३६

कृष्णमहिम्नस्तोत्र में ३६ श्लोक हैं। यह जम्मू विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। इसके साथ प्रातःकृत्य और सायंपंचक भी प्रकाशित हुए हैं।

यहाँ कृष्णमहिम्नस्तोत्र के दो श्लोक दिये जा रहे हैं—

(१)

अनित्यानन्दाप्त्यै पशुवधमखैर्देवतगणान्
यजन्तः क्लिश्यन्तेऽध्रुवविषयकामाकुलधियः।
स्मरन्ति त्वत्पादं भवजलधिपोतं न हृदये
विमूढास्ते शोच्याः परमसुखधामंस्तनुभृतः॥
—श्लोक १७

'हे परमसुख के धाम! अनित्य विषयों की कामना से व्याकुलमतिवाले जो प्राणी क्षणभंगुर सुखों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करने के लिए पशुबलिवाले यज्ञों द्वारा देवों के पूजन का क्लेश उठाते हैं और संसार-सागर के पोत आपके चरण का स्मरण नहीं करते, वे मूढ़ लोग शोचनीय हैं।'

(२)

भजन्त्येके दुर्गामभिलषितलाभाय सुधियः
परे शम्भुं केचिद् गणपतिमथोऽन्ये दिनकृतम् ।
मम त्वद्धा चेतस्तरणितनयातीरनटनो-
त्सुके वंशीनादप्रणयिनि मुकुन्दे हि रमते ॥

—श्लोक १८

'कुछ सुधी अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए दुर्गा की आराधना करते हैं, दूसरे शंकर को भजते हैं, कुछ गणपति और कुछ सूर्य की आराधना करते हैं, किन्तु मेरा चित्त तो सूर्य-तनया यमुना के तट पर नृत्य में लीन वंशी-ध्वनि के प्रेमी मुकुन्द में रम रहा है।'

अ० पा०

द्वारकानाथ

द्वारकानाथ का समय १८वीं शताब्दी है। इन्होंने 'गोविन्दवल्लभ' नाटक की रचना की है। यह नाटक कृष्ण के चरित से शोभित, मनुष्यों के हृदय को आकृष्ट करनेवाला तथा सहृदयों के हृदय-सागर को परिपूरित करनेवाले जल की भाँति है—

हरिचरितविचित्रं चित्तचौरं नाराणां,
सहृदयहृदयाब्धेः पूरणाम्बुस्वरूपम् ।
अभिनवकृतिमुद्यद्गीतपद्यालिहृद्यं,
प्रकटय नटवर्य त्वं प्रबन्धं नु कञ्चित् ॥

'प्रातःकाल यशोदा के गीत से कृष्ण जागते हैं। व्यायाम करने के पश्चात् गायें दुहते हैं और बालकों को दूध पिलाकर स्वयं पीते हैं। दास कृष्ण को फल देते हैं। कृष्ण फल खाकर तृप्त होते हैं और पूछने पर मालूम होता है कि फल वृन्दावन के हैं। कृष्ण गायें लेकर गोप-बालकों के साथ वृन्दावन जाना चाहते हैं। यशोदा विरोध करती हैं, किन्तु बलदेव के समर्थन करने पर जाने की अनुमति दे देती हैं। अब नन्द की अनुमति की बात आती है। नन्द ने ज्योतिषी से कृष्ण के गोचारण के मुहूर्त के विषय में पूछा। ज्योतिषी ने अनुमोदन किया। उसने कृष्ण के कान में कहा—अद्य तावद् यात्रायां स्त्रीरत्नलाभो भविता।' अर्थात् आज यात्रा में स्त्रीरत्न की प्राप्ति होनेवाली है।

यशोदा ने कृष्ण से कहा कि हे गोविन्द, आज गोपालन के लिए वन जा रहे हो, अतः मैं तुम्हें अपने हाथ से अलंकृत करती हूँ—

गोविन्द गोकुलसुधाकर वत्स तात
हे नीलरत्नवर वंशधर स्विदद्य ।
नूनं प्रयास्यसि वनं पशुपालनाय
तत्त्वामहं स्वकरतो बत भूषयामि ॥

कृष्ण गायें चराने के लिए चल पड़ते हैं। श्रीदामा ने कृष्ण से कहा कि मेरी माता ने आपको निमन्त्रित किया है। कृष्ण और बलराम वृषभानुपुरी में जाते हैं। वृषभानुराज की महिषी कीर्तिदा ने कृष्ण के स्वागत की तैयारी की थी। राधा ने भी कृष्ण के गुणों की चर्चा सुनी थी। सखियों के साथ राधा ने कृष्ण का दर्शन किया और कहा—

एष विलासी शोभाराशिः
निर्मलगोकुलचन्द्रो हरति मनः ।

कृष्ण और राधा एक-दूसरे की ओर आकृष्ट हो गये।

कृष्ण और बलराम गोपों के साथ वन में जाते हैं। कृष्ण और श्रीदामा का मल्लयुद्ध होता है। कृष्ण पराजित होते हैं। कृष्ण आदि यमुना में जलक्रीडा करते हैं। फिर भोजन करते हैं। इसके बाद अभिनय करते हैं, जिसमें कृष्ण राजा बनते हैं, बलराम मन्त्री और श्रीदामा आदि पार्षद। सभी कृष्ण का यश गाते हैं। विदूषक को हरिण पर चढ़ाकर उसका परिहास करते हैं। कृष्ण वंशी बजाकर हरिण को बुलाते हैं और डरे हुए विदूषक को उतारते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा कृष्ण से मिलने के लिए वृन्दावन में जाती हैं। कृष्ण राधा से प्रेम की बातें करते हैं और उसे रोकते हैं। वे राधा से कहते हैं कि मैं राजा हूँ। राधा कहती हैं कि राजा हो, तो ठीक ही है, किन्तु हम कुलबालाओं को क्यों रोक रहे हो—

तव तु भवतु राज्यं राज्यभाजः प्रजाः का
वयमुत कुलबाला नः कथं त्वं रुणत्सि।

इस प्रकार राधा और कृष्ण का प्रेम एक-दूसरे के प्रति बढ़ता है। कृष्ण अपने मित्र सुबल से कहते हैं कि राधा को किसी प्रकार मिलाओ। सुबल ने राधा से कहा कि यमुना के उस पार कृष्ण विद्यमान हैं, आप भी चलें। राधा कृष्ण के पास जाती हैं। कृष्ण राधा की प्रार्थना पर सभी गोपियों को नाव पर बैठाते हैं। कृष्ण सोने के बहाने राधा की गोद में हाथ रख देते हैं। राधा कृष्ण को जगाती हैं। यमुना पार करके कृष्ण और राधा केलि करते हैं और दोनों का गान्धर्व विवाह होता है। राधा अपने घर चली जाती हैं और कृष्ण अपने मित्रों के बीच।

बलराम मदिरा-पान किये हुए प्रस्तुत होते हैं। गोप भी अवशिष्ट मदिरा का पान करते हैं। मदिरा पीकर सभी सोने लगते हैं। कृष्ण बलदेव को जगाते हैं। बलदेव यमुना के जल में ग्वालों की छाया देखकर उन्हें दण्ड देने के लिए यमुना में कूद पड़ते हैं। जब वे किसी प्रकार नहीं निकलते, तब गोप उन्हें यमुना से बाहर निकालते हैं। कृष्ण ने बलराम से कहा कि आप मत्त होकर हम लोगों को मारना चाहते थे। इस पर बलराम लज्जित होते हैं। उन्होंने कहा कि मेरे पीने की चर्चा घर पर कोई न करे। मधुमंगल पर सन्देह होने पर बलराम उसे पेड़ में बाँध देते हैं। मधुमंगल के प्रतिज्ञा करने पर बलराम उसे छोड़ते हैं।

कृष्ण सायंकाल गायों को एकत्र करने के लिए वंशी बजाते हैं। सायंकाल तक घर न लौटने पर नन्द-यशोदा कृष्ण को बुलाते हैं। उसी समय कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनाई पड़ती है। दूत आकर सूचना देते हैं कि कृष्ण आ रहे हैं। कृष्ण गोप-बालों के साथ आते हैं। यशोदा कृष्ण-बलराम की आरती उतारती हैं।

कथानक की योजना अत्यन्त मनोरम है। नितान्त कोमल और प्रिय प्रसङ्गों को प्रस्तुत कर कवि ने नाटक को हृदयाकर्षक बना दिया है। कृष्ण की बाल-लीलाओं का मधुर सन्निवेश भक्तों को आनन्दित करता है। कहीं-कहीं हास्य-रस की अभिव्यक्ति से कथा रोचक हो गयी है। गीतों की योजना अनुकूल है।

श्लोक के पादों को संवाद-रूप में प्रस्तुत किया गया है—

नन्दः —

वत्स त्वं किमुतातिघोरविपिने शक्तो गवां चारणे

कृष्णः —

शक्तोऽहं जनकाग्रजेन बलिना चेत् सीरिणा सम्भृतः।

नन्दः —

स्वित् त्वं नाम्रवयाः

कृष्णः —

कथं मम समा दामादयस्तद्वने
तन्मात्रादिभिरीरिता विभविनो बाला गवां चारणे॥
—२।६६

यहाँ एक ही श्लोक में नन्द और कृष्ण का संवाद आया है।

कृष्ण वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। वहाँ गोपों की कलध्वनि के साथ मनोहर गान हो रहा है—

प्रविशति गोकुलचन्द्रो वृन्दाकाननम्।
गोपकदम्बकलध्वनिसहकृतविश्वमनोहरगानम्॥

अपने उत्तम फलों और पुष्पों से सेवा करने के लिए ऋतुएँ कृष्ण के सामने उपस्थित होती हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ बलेन हरिं परिसेवितुं
निजभवोत्तमपुष्पफलादिना ।
ऋतुगणः परमादरतः समं
नयनगोचरतां व्रजति स्फुटम् ॥

यहाँ अलौकिक तत्त्व का सन्निवेश किया गया है। कृष्ण के गोदोहन, गोपालन, जलक्रीड़ा आदि से भक्तों के लिए आह्लादक सामग्री प्रस्तुत की गयी है। रसमय वर्णनों और कथानकों के कारण नाटक मनोहर है।

अ० पा०

नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी

नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी का जन्म वि० सं० १८७२ की मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को श्रीधाम वृन्दावन में हुआ था। ये रामराय प्रभु की ग्यारहवीं पीढ़ी में थे। बाल्यकाल में ये बड़े खिलाड़ी थे। पढ़ने-लिखने में इनका मन न लगता था। किन्तु भक्ति के प्रबल संस्कार इनमें विद्यमान थे। इनके चाचा गोस्वामी तुलसीरामजी को शुकदेवजी के स्वप्नादेश से श्री यमुनाजी में उनकी श्रीमूर्ति प्राप्त हुई थी। ये बाल्यावस्था में ही उसकी बड़े प्रेम से सेवा करनेलगे। शुकदेवजी के ही आशीर्वाद से इन्हें अल्पावस्था में ही श्रीमद्भागवत का रसपूर्ण ज्ञान हो गया और ये उसके अद्वितीय वक्ता हो गए। तत्कालीन श्री राधा-रमणजी के गोस्वामी सखालाल, श्री गोपीलाल आदि विद्वानों का कहना था कि श्री नन्दकिशोरजी से पूर्व कथा कहने की क्या शैली थी? कोई नहीं कह सकता था। श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने 'नव-भक्तमाल' में एक छप्पय में इनका परिचय इस प्रकार दिया है—

श्री कलीयदह-निकट व्याससुत दर्शन दीयौ।
भाव अर्थ गम्भीर हृदय परिपूरण कीयौ ॥
करि प्रबन्ध कल्पना कथा की प्रथा चलाई।
वशीकरण सम किये चित्त श्रोता समुदाई ॥
भयौ न कोई होयगो वक्ता त्रिभुवन रन्ध्रमा।
'श्री नन्दकिशोर' पूरण कला-भये भागवत-चन्द्रमा ॥

इसी प्रकार इनके वंशोद्भूत गोस्वामी यमुना-वल्लभजी ने 'श्रीरसिकभक्तमाल' में इनके सम्बन्ध में एक छप्पय में इस प्रकार लिखा है—

सात वर्ष की वयस भागवत टीका सानी।
ग्रन्थ अनन्त बनाय पाय रस मंजुल बानी ॥
वन विहार की भूमि बगीचा निजु बनिवायो।
तहाँ रसिक जन जोर कृष्णचरितामृत पायो ॥
गोस्वामी श्रीभागवत शशि छटा और नाहिन सुनी।
श्री नन्दकिशोर प्रभु को दियो दर्श व्यास सुत शुकमुनी ॥

आप बड़े स्वाभिमानी विद्वान् थे। काली-हृद के ऊपर आपकी कथा को सुनकर दतिया-नरेश श्री विजयबहादुर सिंह ने अपने महल में कथा करायी। कहते हैं कि राजा साहब ने सवा लाख रुपया इन्हें भेंट किया और कहा—"कहिये महाराज, मेरे जैसा श्रोता आपको कहीं मिला?" आपको उनके इस कथन में दम्भ नजर आया। इन्होंने अपने कुल-पुरोहित को सम्पूर्ण धन का संकल्प कर दिया तथा राजा को उत्तर दिया—'हमारे जैसा वक्ता भी देखा है?'

नन्दकिशोरचन्द्र को संसार से वैराग्य तो तभी हो गया था जब इन्हें शुकदेवजी की कृपा प्राप्त हुई थी। इस बात की पुष्टि उस घटना से होती है जिसमें इन्हें संसार को तृणवत् त्यागने में पलभर की भी देर न लगी। इनके छोटे पुत्र सोहनलाल की घुड़-चढ़ी होने की थी और ये अपने हाथ से उसकी पाग बाँध रहे थे। उसी समय कुछ संतों ने आकर इन्हें प्रणाम किया। आपने कहा, 'उल्टी गंगा कैसे?' महात्मा बोले, 'आपकी कथा से ही हमें यह वैराग्य मिला है।' इनके चित्त में तत्काल अत्यधिक ग्लानि हुई। उसीके परिणामस्वरूप ये अक्षयतृतीया के दिन पूर्ण रूप से घर का परित्याग कर रमणरेती में स्थित श्री राधामाधव-वाटिका में चले गये। बन्धु-बान्धवों ने समझाया, किन्तु उनके सारे प्रयास निष्फल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे। अपने दृढ़ वैराग्य के विषय में इन्होंने यह गीत गाया—

अब हम लागा हरि सों डोर।
कच्चौ रंग छाड़ दुनियां को रंग रँग्यो सरबोर॥
खिन्न भये कहा होय लाल जू जब जागे तब भोर।
श्री शुकदेव राधिकामाधव विनती कर कर जोर॥
श्री जयदेव कृपा सों पाई यह गति नन्दकिशोर॥

इनके जीवन के अन्तिम तीन वर्ष तीव्रतम वैराग्य में व्यतीत हुए। वि० सं० १९१२ की भाद्र कृष्ण दसवीं को इन्होंने अपना शरीर छोड़ा। जीवन के अल्पकाल में न केवल संस्कृत-ग्रन्थों का इन्होंने प्रणयन किया, अपितु हिन्दी भाषा में भी स्फुट पद एवं बारहखड़ी आदि की रचना की। इनके ज्ञात ग्रंथ हैं—(१) शुकदूत महाकाव्य, (२) गौरप्रेमोल्लास, (३) श्रीगोविन्दगुणार्णव नाटक, (४) राधाविहार चम्पू, (५) श्रीमद्भागवत-दर्पण, (६) रासपंचाध्यायी, (७) यमुनाष्टक, (८) श्रीराधारमणाष्टक, (९) श्रीगोविन्दाष्टक, (१०) संस्कृत में द्वादश मास प्रबन्ध, (११) भागवत पर ब्रजभाषा में बालगोविन्द-टीका, (१२) बारहखड़ी-महिमा और (१३) स्फुट पद-रचना।

'शुकदूत' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह रचना संस्कृत के दूत-काव्यों की परम्परा में आती है। 'गौरप्रेमोल्लास' में लगभग एक शतक श्लोक हैं जिनमें 'श्रीगौरांगमहाप्रभु' की महिमा का चमत्कारपूर्ण वर्णन है। 'श्री गोविन्दगुणार्णव नाटक' में इन्द्र के मान-भंग की कथा है। 'राधाविहार-चम्पू' में राधाजी के साथ भगवान् कृष्ण के नित्य-विहार का वर्णन है। 'श्रीमद्-भागवत-दर्पण' में आपने भागवत के दुरूह एवं कठिन प्रसंगों की श्लोकों में व्याख्या की है। 'रासपंचाध्यायी' के ललित प्रसंगों को लेकर शिखरिणी छन्द में निवद्ध यह रचना सरस एवं विलक्षण है।

आपने श्रीमद्भागवत की ब्रजभाषा में अद्भुत टीका की जिसके अनेक स्थल अभी तक 'वत वनई' के नाम से प्रख्यात हैं। इनकी रचना के दो उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

विद्युन्मूर्तिः किमियमथवा काञ्चनी वल्लरी किं,
किं गाङ्गेयप्रतिकृतिरहो किन्तु सौन्दर्यदेवी।
किं चाम्पेयस्रगियममला वा शिखा दीपकस्य
चान्द्रीरेखा किमु मधुरिपुर्वीक्ष्यतां भ्रान्तिमाप॥

'क्या यह विद्युत् की मूर्ति है? अथवा क्या यह सुवर्णमयी वल्लरी है? क्या सुवर्ण की प्रतिमा है? क्या सौन्दर्य की देवी है? अथवा क्या यह विमल चम्पक की माला है? किंवा दीपक की शिखा है? किंवा चन्द्र की रेखा है? इस प्रकार श्री मुरारी उन श्रीराधिका को देखकर विविध प्रकार भ्रमित होने लगे।'

जीमूतो वार्षिकः किं मदकलकलभः किं किमेषस्तमालः
कालिन्द्या किं प्रवाहः करपदकमलो यष्टिका चन्द्रनीलो
किंवायं कृष्णसारो व्रजहरिणदृशां किं कटाक्षोर्मिमूर्ति-
र्दृष्ट्वाविद्युत्प्रकाशे भ्रममगमदिय स्वप्रियं सापि दूरे॥

'वह राधा भी प्रिय को दूर से अवलोकन कर विद्युत् के प्रकाश होने पर भी नाना प्रकार भ्रमित होने लगी—"क्या यह वर्षाकालीन मेघ है? अथवा यह मदमत्त हस्तिशावक है, जिसमें हस्त-पदरूप कमल-समूह वर्तमान है। किंवा यह चन्द्रसम्बन्धी नीली यष्टि है? किंवा यह कृष्णसार है? अथवा क्या यह व्रज-रमणियों की कटाक्ष-मूर्ति है?'

न० च० बं०

नन्दीपति

नन्दीपति का जन्म १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मिथिला में हुआ था। इन्होंने कृष्णकेलिमाला, कदम्बकेलिमाला और रुक्मिणी-स्वयंवर की रचना की है। कृष्णकेलिमाला में कृष्ण के जन्म और बाललीलाओं का वर्णन है।

अ० पा०

नारायणभट्ट

नारायणभट्ट केरल के निवासी थे। इनका समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १७वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इनके पिता का नाम मातृदत्त था। नारायणभट्ट ने अच्युत पिषारोटि से व्याकरण पढ़ा था। इनकी रचनाएँ हैं-नारायणीय, धातुकाव्य, प्रक्रिया-सर्वस्व, पाञ्चाली-स्वयंवर, सुभद्रा-हरण, राजसूय-प्रबन्ध, अष्टमीचम्पूकाव्य, कैलासशैलवर्णना, कौन्तेयाष्टक, रामकथा, पुष्पोद्भेद (अमरुकशतक की व्याख्या), मानमेयोदय (मानभाग), दूतवाक्यप्रबन्ध, स्वाहासुधाकर, अहल्याशापमोक्ष, नृगमोक्षप्रबन्ध, मत्स्यावतार, शूर्पणखा-प्रलाप आदि। नारायणीय और धातुकाव्य में कृष्ण का चरित वर्णित है। नारायण भट्ट ने वासुदेव-कृत वासुदेवविजय काव्य की पूर्ति के लिए धातुकाव्य की रचना की—

उदाहृतं पाणिनिसूत्रमण्डलं
प्राग्वासुदेवेन तदूर्ध्वतोऽपरः।
उदाहरत्यद्य वृकोदरोदितान्
धातून् क्रमेणैव हि माधवाश्रयात् ॥

—धातुकाव्य १।१

धातुकाव्य शास्त्रकाव्य है। इसकी कृष्णार्पण नामक व्याख्या नारायणभट्ट के शिष्यों द्वारा विरचित है। व्याख्या के प्रारम्भ में कृष्ण-विषयक श्लोक है—

स्मरत हरेर्मधुरतरं मुरली-
निनदामृतं हि शब्दमयम्।
पदयुगलं च तदस्या
महिषारेर्मुक्तिनिलयवासिन्याः ॥

गुरुवायूर के मन्दिर में बालकृष्ण की प्रतिमा है। यहीं रहकर नारायण भट्ट ने वातरोग की निवृत्ति के लिए कृष्ण की स्तुति की, जो नारायणीय काव्य के रूप में विद्यमान है। नारायणीय काव्य की रचना से इनकी कीर्ति केरल में चारों ओर फैल गयी। नारायणीय का आधार श्रीमद्भागवत की कथा है। इसमें एक सहस्र से अधिक श्लोक हैं। भागवत के दशम स्कन्ध की कथा में नारायणभट्ट की अत्यधिक अनुरक्ति थी, अतः नारायणीय का आधा भाग दशम स्कन्ध के कथानक के आधार पर विन्यस्त है। कृष्णपरक काव्यों में यह अत्यधिक प्रशस्त तथा सरस है। इसकी कल्पनाएँ अत्यंत मनोरम हैं। रास में सम्मिलित होने की इच्छा होने पर भी जो गोपियाँ किसी कारण से न जा सकीं, उन्हें भी भगवान् का चिन्तन करने के कारण मुक्ति प्राप्त हुई—

काश्चिद् गृहात् किल निरेतुमपारयन्त्य-
स्त्वामेव देव हृदये सुदृढं विभाव्य।
देहं विधूय परचित्सुखरूपमेकं
त्वामाविशन् परमिमा खलु धन्यधन्याः ॥

—नारायणीय, दशक ६५, श्लोक ७।

अम्बलप्पुल के राजा देवनारायण ने नारायणभट्ट को अपना सभापण्डित बनाया। देवनारायण की प्रेरणा से नारायण ने 'प्रक्रियासर्वस्व' नामक व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की।

अधोलिखित श्लोक में एक गोपी की स्थिति का वर्णन है—

लग्नं हृदन्ते ह्लगये कथं वा
रागं कथं नु ह्लगयामि तापम्।
असग्यमास्रं स्थगये कथं वा
कगामि किं वा हरयेऽकिताय ॥

—धातुकाव्य २।८

'मैं हृदय में विद्यमान अनुराग को कैसे छिपाऊँ? सन्ताप को कैसे छिपाऊँ? न छिपाने योग्य अश्रुजल को कैसे छिपाऊँ? बहाना बनाकर चल पड़े कृष्ण को प्राप्त करने के लिए क्या करूँ?'

कृष्ण की महिमा को व्यक्त करनेवाला अन्य श्लोक है—

ईड्योऽयमीशः समुपास्तिशीलै-
राशासितः पीतपटीं वसानः।
स्वीयैश्चकंसे कशनीयकासी
रमोष्ठनिंसी नतचित्तनिञ्जी ॥

—धातुकाव्य २।४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'स्तुत्य, समीचीन ध्यान का अभ्यास करनेवाले योगियों द्वारा अभिलषित, दण्ड्यों को दण्ड देनेवाले, रमा के ओष्ठ का चुम्बन करनेवाले, प्रणतों के चित्त को शुद्ध करनेवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् ने अपने जनों के साथ विचरण किया।'

अ० पा०

निम्बार्क

तैलङ्ग प्रदेश के वैदूर्यपत्तन ग्राम के अरुणाश्रम में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को श्री निम्बार्क का जन्म हुआ था। भण्डारकर के अनुसार निम्बार्क तैलङ्ग ब्राह्मण थे और निम्ब नामक ग्राम में निवास करते थे। उनके पिता का नाम जगन्नाथ था और माता का सरस्वती। इनका जन्म ११६२ ई० में हुआ था। (भण्डारकर : वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत—हिन्दी-अनुवाद)। सम्प्रदाय के अनुयायियों के अनुसार निम्बार्क के पिता अरुण ऋषि थे और माता जयन्ती-देवी। अरुण ऋषि ने कठोर तपस्या की, जिससे भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हुए और सुदर्शन चक्र से कहा कि तुम अरुण ऋषि के पुत्र के रूप में अवतार लो तथा अज्ञान-तिमिर में निमग्न मनुष्यों को विष्णु का मार्ग दिखलाओ—

सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

—भविष्यपुराण

इसके अनुसार निम्बार्क विष्णु-चक्र के अवतार माने जाते हैं। निम्बार्क का बाल्यावस्था का नाम नियमानन्द था। कहा जाता है कि नियमानन्द के उपनयन-संस्कार के अवसर पर नारद स्वयं उपस्थित हुए थे और गोपाल-मन्त्र की दीक्षा दी थी तथा कृष्णोपासना का उपदेश दिया था। उपनयन के बाद नियमानन्द के माता-पिता इन्हें लेकर व्रजधाम चले गये और गोवर्धन गिरि की उपत्यका में रहने लगे। नियमानन्द का शास्त्राध्ययन चलने लगा। इन्होंने स्वल्पकाल में ही वेद, वेदाङ्ग आदि का गम्भीर अनुशीलन कर लिया।

इनके माता-पिता तपश्चर्या में लगे रहते थे, अतः अतिथियों की सपर्या का भार नियमानन्द पर ही था। एक समय दिवसावसान के कुछ पहले एक संन्यासी आश्रम में आये। नियमानन्द आध्यात्मिक चर्चा में लीन हो गये। सूर्यास्त हो गया, किन्तु इसका इन्हें पता नहीं चला। जब संन्यासी से भोजन करने के लिए प्रार्थना करने लगे, तब संन्यासी ने कहा कि मैं इस समय भोजन नहीं करूँगा, क्योंकि सूर्य अस्त हो गया है। उस समय एक अनोखी घटना घटी। सूर्य आश्रम के नीम के वृक्ष के ऊपर चमकता हुआ दिखायी पड़ा। सूर्य-बिम्ब को देखकर नियमानन्द अत्यधिक आह्लादित हुए और संन्यासी को भोजन दिया। संन्यासी के भोजन कर लेने पर सूर्य अस्त हो गया। इस घटना के कारण नियमानन्द का नाम निम्बार्क पड़ा।

निम्बार्क नाम की कथा अन्य रूप में भी प्राप्त होती है। अरुण ऋषि के आश्रम में एक संन्यासी आया। उस समय ऋषि ध्यानावस्थित थे, अतः नियमानन्द स्वागत के लिए उद्यत हुए। संन्यासी ने भोजन माँगा, किन्तु उस समय आश्रम में भोजन की कोई सामग्री नहीं थी। नियमानन्द ने अपने योगबल से भोजन की सामग्री प्रस्तुत कर दी और संन्यासी से भोजन करने के लिए प्रार्थना की। संन्यासी ने कहा कि अब तो सूर्य अस्त हो रहा है, अतः मैं भोजन नहीं कर सकता। इस पर नियमानन्द ने कहा कि सूर्यास्त होने में अभी कुछ समय लगेगा, अतः आप भोजन कर लें। इस प्रकार निवेदन करके नियमानन्द नीम के वृक्ष के ऊपर चढ़ गये और सुदर्शन चक्र का आह्वान किया। सुदर्शन चक्र के आ जाने पर उसे वृक्ष के ऊपर आकाश में स्थापित कर दिया। संन्यासी ने सुदर्शन चक्र को सूर्य समझा और बड़ी प्रसन्नता से भोजन किया। संन्यासी के भोजन कर लेने पर नियमानन्द ने सुदर्शन चक्र को हटा दिया और रात्रि हो गयी। इससे संन्यासी को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। इस घटना के कारण नियमानन्द का नाम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निम्बार्क पड़ गया। निम्बार्क का अर्थ है—नीम के वृक्ष के ऊपर सूर्य। निम्बार्क के आधार पर ये निम्बादित्य भी कहे जाते थे।

भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

निम्बादित्य नाम जाते भयो अभिराम कथा,
आयो एक दण्डी ग्राम, न्योतो करि आए हैं।
पाक को अबार भई सन्ध्या मानि लई जति,
रती हूँ न पाऊँ, वेद बचन सुनाए हैं।
आँगन में नींब, तापे आदित दिखायो वाहि,
भोजन करायो, पाछे निशिचिह्न पाए हैं।
प्रगट प्रभाव देखि, जान्यो भक्तिभाव जग,
दाँव पाय, नाँव पर्‌यो, हर्‌यो मन गाए हैं॥

निम्बार्क के चार शिष्यों का उल्लेख मिलता है—

१. श्रीनिवासाचार्य—इनका निवास-स्थान मथुरा था। इन्होंने वेदान्तकौस्तुभ, लघुस्तवराज-भाष्य, ख्यातिनिर्णय, पारिजातकौस्तुभभाष्य और रहस्यप्रबन्ध नामक ग्रन्थों की रचना की।

२. औदुम्बराचार्य—ये कुरुक्षेत्र के समीप रहते थे। उनकी रचनाएँ हैं—श्री निम्बार्कविक्रान्ति तथा औदुम्बरसंहिता।

३. लक्ष्मणभट्ट—इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर स्वतन्त्र वृत्ति की रचना की है।

४. गौरमुखाचार्य—इन्होने निम्बार्कसहस्रनाम की रचना की है।

निम्बार्क ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, ये हैं—

१. वेदान्तपारिजातसौरभ—यह ब्रह्मसूत्र की वृत्ति है।

२. दशश्लोकी—निम्बार्क ने दश श्लोकों में अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस पर हरिव्यासदेव की व्याख्या उपलब्ध होती है।

३. श्रीकृष्णस्तवराज—२५ श्लोकों में निम्बार्क-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। श्रुत्यन्त-सुरद्रुम, श्रुतिसिद्धान्तमञ्जरी और श्रुत्यन्तकल्प-वल्ली इसकी व्याख्याएँ हैं।

४. मन्त्ररहस्यषोडशी—इसमें अष्टादशाक्षर गोपाल-मन्त्र की व्याख्या की गयी है। सुन्दरभट्टाचार्य ने इस पर मन्त्रार्थरहस्य नामक टीका लिखी है।

५. प्रपन्नकल्पवल्ली—इसमें मुकुन्दशरणमन्त्र के मर्म का उन्मीलन किया गया है। सुन्दरभट्टाचार्य ने इस पर प्रपन्नसुरतरूमञ्जरी नामक व्याख्या लिखी है।

उल्लेखों से ज्ञात होता है कि निम्बार्क ने प्रपत्तिचिन्तामणि, सदाचारप्रकाश और गीतावाक्यार्थ की भी रचना की थी। ये रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।

निम्बार्क ने द्वैताद्वैत-मत का प्रवर्तन किया। इनका सम्प्रदाय-हंस-सम्प्रदाय, सनक-सम्प्रदाय निम्बार्क-सम्प्रदाय आदि कई नामों से प्रसिद्ध है। निम्बार्क-सम्प्रदाय में कृष्ण और राधा की प्रधानता है। निम्बार्क-मत का प्रचार उत्तर भारत और बंगाल में हुआ। वृन्दावन इसका मुख्य केन्द्र है।

निम्बार्कमत में परमात्मा, जीवात्मा और जगत् परस्पर भिन्न-भिन्न हैं, अतः भेद है। जीव और जगत् की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, परमात्मा उनमें ओतप्रोत है, अतः अभेद भी है। इस प्रकार निम्बार्क का सिद्धान्त भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत-मत कहा जाता है।

परमात्मा सर्वज्ञ, अचिन्त्य, अनन्तशक्तिसम्पन्न, क्षर-अक्षर से उत्कृष्ट, वेदप्रमाणवेद्य, ब्रह्मा आदि का नियन्ता, सत्कर्मों का फल देनेवाला है तथा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश—इन पाँच दोषों से मुक्त है। उसमें स्वाभाविक आनन्द, ज्ञान, बल और क्रिया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध उसके अङ्ग हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमात्मा से जगत् की उत्पत्ति होती है। जगत् का निमित्त और उपादान कारण परमात्मा ही है।

जीव ज्ञानस्वरूप, ज्ञाता और अणु है। जीव असंख्य हैं तथा परस्पर भिन्न-भिन्न हैं। वे हरि के अधीन हैं—

ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं,
शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं,
ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः ॥

—दशश्लोकी

माया अनादि है। उसके संसर्ग के कारण जीव विकृत हो जाता है। जीव दो प्रकार के हैं—मुक्त और बद्ध। बद्ध जीव अपने कर्म के भोग के लिए जन्म ग्रहण करते हैं। मुक्त जीव दो प्रकार के हैं—(१) नित्य मुक्त-गरुड़, विष्वक्सेन, भगवान् के आभूषण आदि। (२) मुक्त जीव-पूर्वजन्म के कर्मों का भोग करके बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और इस संसार में फिर नहीं आते। मुक्त जीव भी भोग भोगते हैं-कभी भगवान् के द्वारा निर्मित शरीर से और कभी अपने संकल्प से ही शरीर का निर्माण करके।

निम्बार्क-मत में शरीर की सृष्टि त्रिवृत्करणप्रक्रिया के अनुसार मानी जाती है। पृथ्वी से विष्ठा, मांस और मन, जल से मूत्र, शोणित और प्राण तथा तेजस् से हड्डी, मज्जा और वाक् की उत्पत्ति होती है।

अचेतन पदार्थ तीन प्रकार के हैं—(१) अप्राकृत—प्रकाशस्वरूप है। भगवान् का शरीर, उनके आभूषण आदि इसीसे बने हैं, (२) प्राकृत, (३) काल—यह नित्य और विभु है।

भगवदनुग्रह से ही मुक्ति होती है। प्रपत्ति से भगवदनुग्रह की प्राप्ति होती है। जिसमें दैन्य आदि गुण हैं, उस पर भगवान् की अनुकम्पा होती है और अनुकम्पा से भक्ति का उदय होता है। भगवान् के भक्तों को पाँच वस्तुओं का ज्ञान होना चाहिए—(१) सत्ता का स्वरूप, (२) उपासक का स्वरूप, (३) ईश्वर की अनुकम्पा का फल, (४) भक्ति से प्राप्त आनन्दानुभूति, (५) ईश्वर-प्राप्ति में प्रत्यवाय। भक्तों के लिए भगवान् का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है—गोपियों तथा राधा के साथ विराजमान श्रीकृष्ण। भक्ति के पाँच भाव हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। निम्बार्क-सम्प्रदाय में माधुर्यभाव सर्वोत्कृष्ट माना गया है।

राधा और कृष्ण एक-दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। राधा भगवान् की आह्लादिनी शक्ति हैं। जिस प्रकार शक्ति और शक्तिमान् में अभेद होता है, उसी प्रकार राधा और कृष्ण में अभेद है। निम्बार्क-मत में राधा का स्वकीयात्व स्वीकृत है, परकीयात्व नहीं।

निम्बार्क-कृत दशश्लोकी से दो श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं। निम्बार्क अधोलिखित श्लोक में अपनी परमाराध्या राधा का स्मरण कर रहे हैं—

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥

'(श्रीकृष्ण के) वामपार्श्व में प्रसन्नता से विराजमान, (श्रीकृष्ण के) अनुरूप सौभाग्यवाली, सहस्रों सखियों से सेवित, सभी इष्ट कामनाओं को प्रदान करनेवाली वृषभानुसुता राधादेवी का मैं ध्यान करता हूँ।'

आचार्य निम्बार्क श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के महत्त्व का उन्मीलन करते हुए कह रहे हैं—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात् ।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'कृष्ण के चरणारविन्द के अतिरिक्त कोई गति नहीं है। उसकी वन्दना ब्रह्मा, शिव आदि करते हैं। भक्त की इच्छा पर (भगवान्) (ध्यान-) सुलभ शरीर धारण करते हैं। उनकी शक्ति और आशय अचिन्त्य हैं।'

अ० पा०

नीलकण्ठदीक्षित

नीलकण्ठदीक्षित १७वीं शताब्दी के समादृत कवि हैं। ये भरद्वाज गोत्र में उत्पन्न दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान् अप्पय्यदीक्षित के सहोदर अच्चादीक्षित नीलकण्ठ के पितामह थे। इनके पिता का नाम नारायणदीक्षित और माता का नाम भूमिदेवी था। नीलकण्ठ 'अय्या' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके विद्यागुरु का नाम वेंकटेश्वर-मखी था। अपने पिता से भी इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। कवि नीलकण्ठ के चार पुत्र थे, जिनमें तृतीय गीर्वाणेन्द्रदीक्षित ने शृङ्गारकोशभाण की रचना की। नीलकण्ठ के भ्राता अतिरात्रयज्वा ने 'कुशकुमुद्वतीय' नाटक की रचना की है।

नीलकण्ठदीक्षित मदुरै के राजा तिरुमलैनायक के अमात्य थे। राजकीय कार्यों के साथ संस्कृत-भारती की उपासना में इनका जीवन लगा हुआ था। जीवन के अन्तिम भाग में ये संन्यस्त होकर ताम्रपर्णी के किनारे पालामड़ई नामक गाँव में रहते थे। ये वहीं दिवंगत हुए। उस गाँव के मन्दिर में इनकी समाधि आज भी विद्यमान है। अपने समय के दाक्षिणात्य कवियों और दार्शनिकों में इनका स्थान सर्वोपरि था। वे श्रीकण्ठ-मत के मर्मज्ञ और शैव-सिद्धान्त के आचार्य तथा वैदुष्य-परम्परा के आप्त-पुरुष थे।

नीलकण्ठदीक्षित की संस्कृत में लिखित कृतियाँ विपुल मात्रा में हैं। उनके नाम हैं–शिवलीलार्णव महाकाव्य, गङ्गावतरण, मुकुन्दविलास (अपूर्ण), नीलकण्ठविजयचम्पू, नलचरित्रनाटक, कलिविडम्बन, सभारञ्जनशतक, वैराग्यशतक, अन्यापदेशशतक, आनन्दसागरस्तव, शान्तिविलास, शिवोत्कर्षमञ्जरी, चण्डीरहस्य, त्यागराजस्तव, रामायणसारसङ्ग्रह (रघुवीरस्तव), गुरुतत्त्वमालिका, शिवतत्त्वरहस्य, कैयटव्याख्यान और चित्रमीमांसादोषधिक्कार।

'मुकुन्दविलास' नीलकण्ठदीक्षित का अपूर्ण महाकाव्य है। उसके चतुर्थ सर्ग के पन्द्रहवें श्लोक तक का अंश उपलब्ध होता है। हो सकता है कि यह कवि की अन्तिम कृति हो और इसे पूर्ण करने के पूर्व ही इनका देहावसान हो गया हो। इस महाकाव्य के उपलब्ध अंश में देवकी के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण को वसुदेव के द्वारा नन्द के घर पहुँचाये जाने पर नन्द-परिवार एवं वृन्दावन के समुल्लास की कथावस्तु है।

प्रथम सर्ग के अनुसार सुमेरु पर्वत पर देवों की सभा में ब्रह्मा प्रकट हुए। गो का रूप धारण करके पृथ्वी ने उनसे अपनी व्यथा-कथा कही। वे सब विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने अवतार ग्रहण कर दैत्यों का नाश करने का वचन दिया। द्वितीय सर्ग में न्यायप्रिय उग्रसेन को बन्दी बनाकर दुष्ट कंस का राजा बनना, वसुदेव के साथ देवकी का विवाह, आकाशवाणी, कंस के द्वारा वसुदेव और देवकी को कारागार में रखना तथा देवकी के सप्तम गर्भ तक की कथा है। तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण का अद्भुत जन्म और चतुर्थ सर्ग में वृन्दावन का उल्लासमय वर्णन है। कथानक के अपूर्ण रह जाने से इस महाकाव्य की पूरी परिकल्पना स्पष्ट नहीं हो पाती। समझा जाता है कि कवि ने जैसे 'शिवलीलार्णव' में शिव की सम्पूर्ण लीलाओं का चित्रण किया है, उसी प्रकार 'मुकुन्द-विलास' में श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का चित्रण करना चाहा होगा। इतना स्पष्ट है कि पौराणिक कथावस्तु को यथावत् रखते हुए कवि अपनी प्रतिभा से उसे अधिक अलंकृत करना चाहता है। वस्तुवर्णन की कला अत्यन्त हृद्य है।

नीचे मधुर कल्पनाओं की आलङ्कारिक योजना का एक उदाहरण प्रस्तुत है। देवकी की गर्भावस्था के वर्णन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि कहता है कि क्षीरसागर में भी अतृप्त रहने से विष्णु ने धरा पर आना स्वीकार किया। परन्तु यहाँ स्तन्यक्षीर से उन्हें कहाँ तक तृप्ति मिलेगी, यह सोचकर देवकी के स्तनकलश के मुखमण्डल मलिन हो गये--

अपि दुग्धनिधावतृप्यतः कियती स्तन्यसुधा शिशोरियम्।
इति चिन्तयतोरिवाभवन्मलिनं तत्कुचकुम्भयोर्मुखम् ॥
—मुकुन्दविलास ३।११

श्रीकृष्ण के जन्म के समय का वर्णन है--

नाकिरन्कुसुमवृष्टिभिर्भुवं नापि दिव्यपटहानवादयन्।
कंसतस्तु चकिता गृहे गृहे गूढमुत्सवमवर्तयन् सुराः ॥
—मुकुन्दविलास ४।३

'कंस से डरकर देवताओं ने पृथ्वी पर पुष्पों की वर्षा नहीं की, दिव्य नगाड़े नहीं बजाये, किन्तु छिपकर घर-घर उत्सव मनाया।'

अ० पा०

पण्डितराज जगन्नाथ

पंडितराज जगन्नाथ तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरुभट्ट था और माता का नाम लक्ष्मी। इनके पिता पेरुभट्ट उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् थे। उन्होंने ज्ञानेन्द्रभिक्षु से वेदान्तशास्त्र, महेन्द्र से वैशेषिक तथा न्याय, खण्डदेव से मीमांसा और शेषवीरेश्वर से महाभाष्य पढ़ा था—

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षोरधिगतसकलब्रह्मविद्याप्रपञ्चः,
काणादीराक्षपादीरपि गहनगिरो यो महेन्द्रादवेदीत्।
देवादेवाध्यगीष्ट स्मरहरनगरे शासनं जैमिनीयं
शेषाङ्कप्राप्तशेषामलभणितिरभूत् सर्वविद्याधरो यः ॥
—रसगङ्गाधर १।२

श्री जगन्नाथ अत्यन्त भाग्यशाली थे। दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ (१६२८ ई०–१६५८ ई०) ने अपने पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाने के लिए जगन्नाथ को दिल्ली बुलाया। शाहजहाँ ने जगन्नाथ को पण्डितराज की उपाधि से विभूषित किया। पण्डितराज जगन्नाथ की युवावस्था दिल्ली में बीती—

दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः।

पण्डितराज जगन्नाथ के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि दिल्ली में दरबार की किसी यवन-कन्या में ये आसक्त हो गये। इन्होंने बादशाह से कहा कि मैं न तो हाथी चाहता हूँ, न घोड़ा और न धन ही, मुझे सुन्दर स्तनोंवाली, हरिणाक्षी लवङ्गी चाहिए—

न याचे गजालिं न वा वाजिराजं,
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तहस्ता,
लवङ्गी कुरङ्गी दृगङ्गीकरोतु ॥

बादशाह का आदेश मिल जाने पर पण्डितराज ने यवन-कन्या के साथ विवाह किया। वृद्ध होने पर यवनी के साथ काशी चले आये। काशी में अप्पयदीक्षित आदि ने इन्हें जातिच्युत कर दिया। कहते हैं कि काशी में गङ्गा के तट पर बैठकर पण्डितराज तत्काल रचित पद्यों से गङ्गा की स्तुति करने लगे। गङ्गाजी प्रसन्न होकर पण्डितराज द्वारा उच्चारित एक-एक श्लोक पर एक-एक सीढ़ी बढ़ने लगीं और बावनवें श्लोक का पाठ करने पर गङ्गा इनके निकट आ गयीं और ये यवनी के साथ गङ्गा में विलीन हो गये।

एक अन्य किंवदन्ती इस प्रकार है। पण्डितराज वृद्धावस्था में काशी में गङ्गा के तट पर यवनी के साथ सो रहे थे। उनका मुख वस्त्र से ढँका हुआ था, किन्तु सफेद शिखा बाहर दिखाई पड़ रही थी। संयोगवश अप्पयदीक्षित उसी घाट पर स्नान करने के लिए आये। एक वृद्ध के इस आचरण को देखकर उन्होंने कहा कि मृत्यु शिर पर लटक रही है, फिर भी निःशङ्क होकर क्यों सो रहे हो?—

"किं निःशङ्कं शेषे शेषे वयसि त्वमागते मृत्यौ ॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोकांश को सुनकर पण्डितराज ने मुख निकालकर देखा। तब अप्पयदीक्षित ने उन्हें पहचानकर कहा कि आप सुखपूर्वक सोयें, क्योंकि आपके समीप गङ्गा विद्यमान हैं–

"अथवा सुखं शयीथा निकटे जागर्ति जाह्नवी भवतः।"

यवन-कन्या के सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती भी है। पण्डितराज सुन्दर यवन-कन्या में आसक्त हो गये। कुछ ही समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी, जिससे पण्डितराज को बहुत दुःख हुआ। ये दिल्ली छोड़कर काशी चले आये। काशी के पण्डित इन्हें अपमानित करने लगे। अन्त में ये ऊबकर 'गङ्गालहरी' का पाठ करते हुए गङ्गा में कूद पड़े।

एक किंवदन्ती के अनुसार मुल्ला लोग जयपुर के अधिपति मिर्जा राजा जयसिंह से कहते थे कि आप लोग वास्तविक क्षत्रिय नहीं हैं, क्योंकि परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय कर दिया, तब क्षत्रिय कहाँ बचे? दूसरी बात यह है कि अरबी भाषा संस्कृत से प्राचीन है। जयपुर के राजा जयसिंह को इन आक्षेपों का कोई उत्तर नहीं मिल पा रहा था। वे ऐसे विद्वान् को चाहते थे, जो इनका उत्तर दे सके। जयसिंह ने पण्डितराज से यह बात कही। पण्डितराज ने आक्षेपों का उत्तर देने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद पण्डितराज जयपुर गये। पण्डितराज ने राजा से कहा कि मैं प्रथम आक्षेप का उत्तर तो अभी दे सकता हूँ, किन्तु द्वितीय आक्षेप का उत्तर देने के लिए मुझे अरबी का अध्ययन करना पड़ेगा। जयपुर-नरेश ने पण्डितराज को आगरा में रखकर अरबी का अध्ययन करने का अवसर दिया। इसके बाद जयपुर-नरेश पण्डितराज को दिल्ली के दरबार में ले गये। पण्डितराज ने प्रथम आक्षेप का उत्तर इस प्रकार दिया— "परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया" –इससे प्रकट होता है कि प्रत्येक बार कुछ-न-कुछ क्षत्रिय बचे, जिससे दूसरी बार क्षत्रिय-विनाश का प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। उसी प्रकार परशुराम द्वारा इक्कीसवीं बार विनाश करने के बाद भी कुछ क्षत्रिय अवश्य बचे होंगे, जिनके वंशज इस समय के क्षत्रिय हैं।

दूसरे आक्षेप के सम्बन्ध में पण्डितराज ने बताया कि मुसलमानों की 'हदीस' नामक पुस्तक में लिखा हुआ है कि मुसलमानों को हिन्दुओं के विपरीत आचरण करना चाहिए। यही उनका धर्म है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पहले हिन्दुओं का धर्म था। धर्म भाषा के बिना नहीं रह सकता, अतः हिन्दुओं की कोई भाषा थी। वह भाषा संस्कृत के अतिरिक्त दूसरी नहीं हो सकती। अतः यह सिद्ध हुआ कि संस्कृत अरबी से प्राचीन है।

यह सुनकर बादशाह शाहजहाँ अत्यधिक प्रसन्न हुआ और पण्डितराज को अपने दरबार में रख लिया।

शाहजहाँ के दरबार में तीन प्रमुख सङ्गीतज्ञ थे, जिनमें पण्डितराज जगन्नाथ अन्यतम थे। पण्डितराज चाँदी से तौले गये थे।

पण्डितराज जगन्नाथ विविध शास्त्रों के ज्ञाता तथा कवि थे। इन्होंने उच्चकोटि की रचनाओं से संस्कृत-साहित्य का भण्डार भरा है। इनकी रचनाएँ ये हैं—

१. रसगङ्गाधर, २. चित्रमीमांसाखण्डन, ३. मनोरमाकुचमर्दन, ४. करुणालहरी, ५. अमृतलहरी, ६. गङ्गालहरी, ७ लक्ष्मीलहरी, ८. सुधालहरी, ९. आसफविलास, १०. जगदाभरण, ११. प्राणाभरण और १२. भामिनीविलास। इन्होंने 'यमुनावर्णन' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी किन्तु यह अनुपलब्ध है। इसके उद्धरण रसगङ्गाधर में मिलते हैं।

रसगङ्गाधर साहित्यशास्त्र का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह अपूर्ण रूप में प्राप्त होता है। साहित्यशास्त्र के सिद्धान्तों के उन्मीलन में पण्डितराज की प्रतिभा अद्वितीय है। रसगङ्गाधर में इनकी तर्कक्षमता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा काव्यप्रतिभा दोनों के दर्शन होते हैं। इन्होंने अनेक आचार्यों के मतों का खण्डन किया है। रसगङ्गाधर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पण्डितराज ने उदाहरण के रूप में भी किसीके श्लोक नहीं लिये हैं। इन्होंने लिखा है कि रसगङ्गाधर में उदाहरणों के अनुरूप काव्य बनाकर प्रस्तुत किया गया है, दूसरे का कुछ भी नहीं लिया गया है। कस्तूरी को उत्पन्न करने की शक्तिवाला मृग क्या मन से भी पुष्पगन्ध की इच्छा करता है—

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं,
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः,
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण॥

—रसगङ्गाधर १।६

'चित्रमीमांसाखण्डन' में अप्पयदीक्षित-कृत 'चित्र-मीमांसा' का खण्डन किया गया है। पण्डितराज ने 'मनोरमाकुचमर्दन' में भट्टोजिदीक्षित-कृत 'प्रौढमनोरमा' का खण्डन किया है। पण्डितराज के गुरु शेष वीरेश्वर थे। वीरेश्वर के पिता शेषकृष्ण थे, जो भट्टोजिदीक्षित के गुरु थे। शेषकृष्ण ने 'प्रक्रियाकौमुदी' को 'प्रक्रिया-प्रकाश' नामक व्याख्या लिखी। भट्टोजिदीक्षित ने 'प्रक्रियाप्रकाश' का खण्डन किया है। शेषकृष्ण पण्डितराज के गुरु शेष वीरेश्वर के पिता थे, अतः पण्डितराज ने भट्टोजिदीक्षित को 'प्रौढमनोरमा' के खण्डन के लिए 'मनोरमाकुचमर्दन' की रचना की। एक श्लोक प्राप्त होता है, जिसका अर्थ है कि गर्वीले द्राविड अप्पयदीक्षित के दुर्ग्रहरूप ग्रहावेश से गुरुद्रोही भट्टोजिदीक्षित ने बिना सोचे-समझे सभा में पण्डितराज को म्लेच्छ कह दिया था, जिसको धैर्यनिधि पण्डितराज ने भट्टोजिदीक्षित की मनोरमा के कुच का मर्दन करके (मनोरमा ग्रन्थ का खण्डन करके) सत्य कर दिया और अप्पयदीक्षित आदि देखते ही रह गये—

दृप्यद्द्राविडदुर्ग्रहग्रहवशान्म्लिष्टं गुरुद्रोहिणा,
यन्म्लेच्छेति वचोऽविचिन्त्य सदसि प्रौढेऽपि भट्टोजिना।
तत्सत्यापितमेव धैर्यनिधिना यत्स व्यमृन्दात् कुचं,
निर्बन्ध्यास्य मनोरमामवशयन्नप्यप्ययाद्यान् स्थितान्॥

'करुणालहरी' में भगवान् की प्राप्ति के लिए कवि का उत्कट अभिलाष प्रकट हुआ है। 'अमृतलहरी' में यमुना की और 'गङ्गालहरी' में गङ्गा की स्तुति की गयी है। 'लक्ष्मीलहरी' में लक्ष्मी की और 'सुधा-लहरी' में सूर्य की स्तुति है। 'आसफविलास' में नवाब आसफ खाँ का, 'जगदाभरण' में दाराशिकोह का और 'प्राणाभरण' में कामरूप के राजा प्राणनारायण का वर्णन है। 'भामिनीविलास' सुन्दर पद्यों का संग्रह है।

पण्डितराज व्याकरण के उद्भट विद्वान् थे, किन्तु कवि की सहृदयता भी इनमें भरी हुई थी। इनमें खण्डन की अद्‌भुत शक्ति थी, इसलिए अप्पयदीक्षित, भट्टोजिदीक्षित आदि आचार्यों का इन्होंने जमकर खण्डन किया है। इनमें अत्यधिक ऋजुता भी है। इनमें गुरु-भक्ति प्रगाढ़ रूप में विद्यमान थी। इनके भक्तिपरक श्लोकों में निरुपम सौन्दर्य है। अपने दैन्य को प्रकट करते हुए पण्डितराज बहुत ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं। जब ये विपक्षी का खण्डन करते हैं, अथवा अपने पाण्डित्य के विषय में कहते हैं, अथवा देवता के प्रति प्रणति का निवेदन करते हैं, तब अपने हृदय के भाव को पूर्णतः स्पष्ट कर देते हैं। ये इतने निष्कपट हैं कि कुछ भी छिपा नहीं सकते।

पण्डितराज ने जगत् को देखा था तथा प्रकृति के रहस्य और मानव की चित्तवृत्तियों को परखा था। यह सारा ज्ञान और सूक्ष्म परीक्षण इनकी रचनाओं में देखा जा सकता है। जिस नवीन अर्थ को प्राप्ति के लिए कवि साधना करता है, वह पण्डितराज में स्वभावतः विद्यमान है। नवीन अर्थ के साथ ही इनकी मधुर भाषा चलती रहती है। इस प्रकार नवार्थ और भाषा-माधुर्य दोनों सङ्घटित होकर साहित्य में अपूर्व विच्छित्ति की सृष्टि करते हैं। पण्डितराज में पाण्डित्य के प्रकर्ष के साथ भाषा का माधुर्य है और पदों की स्वाभाविक योजना है। जब पण्डितराज लौकिक वस्तु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वर्णन करते हैं, तब लोक का पक्ष पूर्णतः प्रकाशित हो जाता है और जब भगवान् की महिमा का वर्णन करने लगते हैं, तब भगवान् की महिमा पूर्णतः उन्मीलित हो जाती है। ये श्रीकृष्ण में तथा गङ्गा और यमुना की लहरों में परम सौन्दर्य को देखकर आनन्द-निमग्न हो जाते हैं।

पण्डितराज की गर्वोक्तियाँ संस्कृत-साहित्य में अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। ये कहते हैं—'हे सखे, यदि तुम अत्यधिक पक जाने के कारण चूते हुए दाख के मधुर-रस के माधुर्य के मद को दूर करने में समर्थ वाणी के निर्माण में कुशल हो, तो मुझ-जैसे लोगों के समक्ष सुखपूर्वक काव्य सुनाओ, अन्यथा स्वयं किये हुए दुष्कृत की भाँति (अपने काव्य को) अपने हृदय से बाहर मत निकालो—

निर्माणे यदि मार्मिकोऽसि
नितरामत्यन्तपाकद्रव-
न्मृद्वीकामधुमाधुरीमदपरी-
हारोद्धुराणां गिराम्।
काव्यं तर्हि सखे सुखेन कथय
त्वं सम्मुखे मादृशां
नो चेद् दुष्कृतमात्मना कृतमिव
स्वान्ताद् बहिर्मा कृथाः॥

—रसगङ्गाधर, प्रथम भाग

इसी प्रकार दूसरी गर्वोक्ति है, जो विद्यागर्व के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी है—

आमूलाद् रत्नसानोर्मलयवलयिता-
दा च कूलात् पयोधे-
र्यावन्तः सन्ति काव्यप्रणयनपटव-
स्तेऽविशङ्कं वदन्तु।
मृद्वीकामध्यनिर्यन्मसृणरसझरी
माधुरीभाग्यभाजां
वाचामाचार्यतायाः पदमनुभवितुं
कोऽस्ति धन्यो मदन्यः॥

—रसगङ्गाधर, प्रथम भाग

'सुमेरु की तलहटी से लेकर मलय से वेष्टित सागर के तट तक जो काव्य-निर्माण में समर्थ हैं, वे निःशङ्क होकर बतायें कि दाख के भीतर से निकलती हुई मसृण रसधारा की मधुरतारूपी भाग्यवाले वचनों के आचार्य-पद का अनुभव करने के लिए मेरे अतिरिक्त कौन पुरुष धन्य है?'

पण्डितराज जगन्नाथ उत्कृष्ट कोटि के भक्त थे। श्रीकृष्ण, गङ्गा, यमुना आदि की मनोरम स्तुतियों से पण्डितराज का काव्य सुरभित हो रहा है। 'रस-गङ्गाधर' का मङ्गलाचरण श्रीकृष्ण स्तुति-विषयक है—

स्मृतापि तरुणातपं
करुणया हरन्ती नृणा-
मभङ्गुरतनुत्विषां
वलयिता शतैर्विद्युताम्।
कलिन्दगिरिनन्दिनी
तटसुरद्रुमालम्बिनी
मदीयमतिचुम्बिनी
भवतु कापि कादम्बिनी॥

'जो स्मरणमात्र से भी मनुष्यों के तीव्र सन्ताप को दया से दूर कर देती है, जो कभी नष्ट न होने-वाली शरीरप्रभा से समन्वित विद्युन्मालाओं से वेष्टित है, जो कलिन्दगिरि की कन्या यमुना के तट का आश्रय लेकर स्थित रहती है, वह कोई अनिर्वचनीय मेघमाला (घनश्याम श्रीकृष्ण की मूर्ति) मेरी मति का चुम्बन करनेवाली हो (अर्थात् मेरी बुद्धि श्रीकृष्ण की मूर्ति का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो)।'

अधोलिखित श्लोक में अत्यधिक मधुरता से उपदेश दिया गया है—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं
वृन्दावने चारयन्,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो
बन्धुर्न कार्यस्त्वया ।
सौन्दर्याद्भुतमुद्गिरद्भिरभितः,
सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषया-
नाशु क्षयं नेष्यति ॥

—भामिनीविलास

'रे चित्त, तुम्हारे हित की बात बता रहा हूँ। कभी भूलकर भी गायों को चरानेवाले, नव जलद की भाँति श्याम शरीरवाले से मित्रता न कर लेना। अद्भुत सौन्दर्य को बिखेरनेवाली अपनी मन्द मुस्कराहट से मोहित करके वह तुम्हें और तुम्हारे प्रिय विषयों को शीघ्र ही नष्ट कर देगा।' अ० पा०

पद्मराज

पद्मराज नियोगी ब्राह्मण थे। ये लीलाद्रिराव के मन्त्री थे। इनका समय १८वीं शताब्दी का अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ है। ये अम्भोज या वर्णाधिकभोज के नाम से भी जाने जाते थे। पद्मराज ने 'बालभागवत' नामक चम्पू की रचना की है, जिसमें काव्य-सौन्दर्य प्रतिष्ठित है। इनके गद्य का एक सुन्दर उदाहरण अधोलिखित है–

'या सलीलमपुरस्कृतजीमूताः सौदामिन्य इव कामिन्यः कमनीयतरकबरीभराः परिववुरन्तःपुरगतमनवरतमखिलभुवनाधारनिजोदरं क्षीरोदधिप्रणयिनं घनमेनम्। याः सहेलमुपवनविहारिणोर्हरिणा सह हरिणीदृशो लतालूनानूनसूनोपकल्पिताकल्पाः क्रदन्तो द्रुतमनुययुरपह्नियमाणसर्वस्वा इव रोलम्बाः सुकुटुम्बाः'

अ० पा०

इनके 'बालभागवत' की दो टीकाओं का उल्लेख मिलता है—रामस्वामी-कृत तथा राघवाचार्य-कृत।

अ० पा०

परमानन्ददास

परमानन्ददास का 'भक्तिदीप' नामक एक ग्रंथ गोस्वामी रणछोड़लालजी अहमदाबादवालों के निजी संग्रहालय में प्राप्त हुआ है। यह संस्कृत में है और रचना की दृष्टि से प्रौढ़ है। इसकी प्राप्त प्रति कई जगह से खण्डित है। इसमें कुल ९६ पत्र हैं किन्तु केवल ४० पत्र ही प्राप्त होते हैं। अनुमानतः इसमें १२ उल्लास हैं। ग्रन्थ-प्रणेता ने अपना नाम हित परमानन्ददास लिखा है और स्वयं को गोस्वामी वनचन्दजी महाराज का कृपापात्र शिष्य बताया है।

गोस्वामी वनचन्द्रजी के शिष्यत्व के आधार पर इनका विद्यमान-काल वि० सं० १६०० से वि०-सं० १६८० के मध्य में स्थिर होता है।

श्या० बि० ख०

पुरुषोत्तम

पुरुषोत्तम का जन्म वल्लभाचार्य की सातवीं पीढ़ी में संवत् १७२४ में हुआ था। इनके पिता का नाम पीताम्बर था। इन्होंने अपने पितृव्य श्रीकृष्णचन्द्र से शास्त्रों का अध्ययन किया था। बाल्यावस्था में ये अध्ययन में अत्यन्त निमग्न रहते थे, अतः बालकों में 'वेदपशु' के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्होंने अनेक शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त की और अपनी प्रतिभा तथा पाण्डित्य से विद्वानों को प्रभावित किया। इनका प्रारम्भिक जीवन मथुरा में बीता और बाद का जीवन सौराष्ट्र के सूरत नगर में। सूरत में ही रहकर इन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना की। इनके ग्रन्थों की संख्या ४५ बतलाई जाती है। प्रमुख ग्रन्थ अधोलिखित हैं—१ 'भाष्यप्रकाश' ('अणुभाष्य' की टीका)—इसमें प्रमाणपुरःसर शास्त्रीय दृष्टि से भाष्य की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष को प्रस्तुत करते हुए सिद्धान्तों की आलोचना की गयी है। इसमें ग्रन्थकार का वैदुष्य पूर्णतः प्रतिष्ठित हुआ है। २. 'सुवर्णसूत्र'—विट्ठलनाथ द्वारा विरचित विद्वन्मण्डन की यह महत्त्वपूर्ण टीका है। ३. 'सुबोधिनीप्रकाश'–'सुबोधिनी' की यह अनुपम व्याख्या है। ४. 'आवरणभङ्ग'—यह वल्लभाचार्य-कृत 'तत्त्वदीपनिबन्ध' की टीका है। 'आवरणभङ्ग' से ही निबन्ध का रहस्य प्रकाशित हो पाता है। ५. 'प्रस्थानरत्नाकर'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नव्यन्यायशैली में विरचित है। यह शुद्धाद्वैत का अप्रतिम ग्रन्थ माना जाता है। ६. 'षोडशग्रन्थविवृति', ७. 'उत्सवप्रतान' ८. 'द्रव्यशुद्धि' ९. 'पूर्वमीमांसा-भाष्यविवरण' १०. 'अधिकरणमाला' आदि।

पुरुषोत्तम ने कई उपनिषदों की भी टीका की है। इन्होंने अनेक वादों की भी उद्भावना की, जो भारतीय दर्शन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ वाद ये हैं—ख्यातिवाद, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद, प्रतिबिम्बवाद, आविर्भावतिरोभाववाद, भेदाभेदवाद, भक्त्युत्कर्षवाद, भागवतशङ्कानिरासवाद, उपदेशशङ्कानिरासवाद आदि।

अ० पा०

पुरुषोत्तमाचार्य

श्रीपुरुषोत्तमाचार्य श्री विश्वाचार्य के शिष्य और निम्बार्क-पीठ के सप्तम आचार्य थे। अपने 'निजमत-सिद्धान्त' में श्री किशोरदासजी ने इन्हें श्री निवारण भट्ट का पुत्र कहा है। डॉ० रमाबोस ने 'वेदान्त-रत्नमंजूषा' की भूमिका में तेलंगाना प्रदेश को आपकी जन्मभूमि माना है।

श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने निम्बार्क-कृत 'वेदान्तकामधेनु' पर 'वेदान्तरत्नमंजूषा' नामक वृहद् भाष्य की रचना की है। निवासाचार्य-कृत 'रहस्य-प्रबन्ध' की भी सुन्दर व्याख्या इन्होंने की है। डॉ० रमा बोस ने इनके एक ग्रन्थ 'सिद्धान्तक्षीरार्णव' का उल्लेख किया है, जो अप्राप्य है।

श्री पुरुषोत्तमाचार्य अपने समय के धुरंधर पण्डित थे। पूर्वाचार्यों की रचनाओं के ये प्रौढ़ व्याख्याकार हुए हैं, इसलिए सम्प्रदाय में इन्हें 'विवरणकार' के नाम से भी जाना जाता है।

श्री पुरुषोत्तमाचार्य-रचित 'वेदान्तरत्नमंजूषा' में ब्रह्मसूत्र के समान चार कोष्ठ हैं। प्रथमकोष्ठ में तत्त्वत्रयनिरूपण, द्वितीय में अन्य ग्रन्थों में प्रतिपादित भेदाभेद से अपनी मान्यताओं का समाधान, तृतीय में साधना, मुक्ति आदि के उपाय और चतुर्थकोष्ठ में परिणाम आदि का उल्लेख किया गया है। अद्वैत-वाद की आलोचना भी इस ग्रन्थ में द्रष्टव्य है।

आपकी 'रत्नमंजूषा' वेदान्त विषयक ग्रन्थों की वस्तुतः मंजूषा ही है। इसके चारों कोष्ठकों में श्री व्यास-कृत वेदान्तसूत्रों के चारों अध्यायों का सार भर दिया गया है। श्री निम्बार्क-सम्प्रदाय के ग्रन्थों में अन्यान्य मतों की आलोचना का सूत्रपात् इसी मञ्जूषा-ग्रन्थ से हुआ।

आपका पाटोत्सव चैत्र शुक्ल ६ को मनाया जाता है। आपकी एक उक्ति 'तदुक्तं श्री विश्वाचार्यचरणैः' (मञ्जूषा) के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आप विश्वाचार्यजी के साक्षात् शिष्य न होकर उनके परम्परानुवर्त्ती शिष्य-प्रशिष्यों में से एक विशिष्ट प्रभावशाली आचार्य हुए होंगे। रहस्यनामावली में आपका 'उत्तमा' नाम से भी उल्लेख किया गया है।

'निजमत-सिद्धान्त' में आयुधीरजी एवं देवदत्तजी के सम्वाद के अन्तर्गत इनके विषय में उल्लिखित किया गया है कि "एक बार वैशम्पायन ऋषि के श्री विश्वाचार्यजी से पूछे जाने पर कि 'आपका उत्तराधिकारी कौन है?" विश्वाचार्यजी ने उत्तर दिया कि 'कान्यकुब्ज ब्राह्मण निवारण भट्ट का पुत्र ही मेरा उत्तराधिकारी है।'

उधर जब निवारण भट्ट को पुत्र उत्पन्न हुआ, तो उसने (पुत्र ने) माँ का दूध नहीं पिया। जब उस शिशु की जीने की कोई आशा न रही तो दम्पति ने उसे श्री विश्वाचार्यजी को अर्पित कर दिया। तब उन दोनों पति-पत्नी को वैष्णव-धर्म की दीक्षा देकर पुत्र को आज्ञा दी—

आचारज आयसु हँसि दीह्नों।
दुग्धपान अर्भक करि लीह्नों॥

फिर पाँच वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने गुरुशरणागत हो समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया। इनकी आयु सौ वर्ष की मानी जाती है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिन शतवर्ष स्वयं तन धार्‌यौ ।
फिरि अव्यक्त-रूप उपचार्‌यौ ॥
—निजमत-सिद्धान्त, आचार्य-खण्ड, किशोरदास
प्रे० ना० श्री०

प्रबोधानन्द सरस्वती

निकुंज केलि रहस्य-गायकों में स्वामी प्रबोधानन्द का स्थान अन्यतम है। ये महाप्रभु चैतन्य के अनुगत परम विद्वान् संन्यासी थे। सार्वभौम भट्टाचार्य की भाँति इनका भी हृदय-परिवर्तन हुआ था। सम्प्रदाय के प्राचीन उल्लेखों और परम्परागत निष्ठा में ये प्रकाशानन्द से अभिन्न माने जाते हैं। इनका जीवन गौरांग धाम एवं राधा-निष्ठा के प्रति समर्पित था। अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के आधार पर ये चैतन्य-मतानुयायी सिद्ध होते हैं। ये हरित्रयो (स्वामी हरिदास, हितहरिवंश गोस्वामी एवं हरिराम व्यास) से पूर्व वृन्दावन आ चुके थे। हिताचार्यजी का वृन्दावनागमनकाल वि० सं० १५९० माना जाता है। ये श्री गोपाल भट्ट के पितृव्य तथा शिक्षा-गुरु और ये आन्ध्र प्रदेश के वेलंगगुरी के निवासी थे। नरहरि चक्रवर्ती ने 'भक्तिरत्नाकर' नामक बंगला ग्रन्थ में इन्हें गौरचन्द्रप्राणधन बताया है। स्वामी मनोहरदास-कृत 'अनुरागवल्ली' से ज्ञात होता है कि ये गृहस्थ थे। हरिराम व्यास ने भी एक पद में इनके गृही होने का संकेत किया है और अन्तःसाक्ष्य से भी यही ध्वनित होता है। 'चैतन्य-चन्द्रामृतम्' की 'रसास्वादिनी-टीका' में इन्हें वेदान्त, सांख्य, वैशेषिक, मीमांसा, आगमशास्त्र, महापुराण, इतिहास, पांचरात्र, अलंकार, काव्य, नाटकादि सिद्धान्तों में निपुण बताया गया है। 'गीतगोविन्द-व्याख्या', 'श्रुतिस्तुति-व्याख्या', 'कामगायत्री-व्याख्या' तथा अन्य मौलिक रचनाओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है। 'वृन्दावनमहिमामृतम्', 'राधारससुधानिधि', 'संगीतमाधवम्', 'आश्चर्यरासप्रबन्ध' के सहस्राधिक श्लोक इनके भाषा और छन्द-पांडित्य के मूर्तिमन्त प्रतीक हैं। 'गोपालतापनी' की 'कृष्णवल्लभा-टीका' दर्शन-शास्त्र पर इनके सूक्ष्म अधिकार को व्यक्त करती है। जीव गोस्वामी जैसे मूर्द्धन्य शास्त्रकार ने अपनी 'सुखबोधनी-विवृत्ति', 'कृष्णवल्लभा-टीका' के तारतम्य में ही लिखी थी।

काशीस्थ 'बिन्दुमाधव मन्दिर' के निकट एक मठ में वास करते हुए ये सहस्रों शिष्यों को वेदान्त का उपदेश दिया करते थे। रागनिष्ठ भक्ति और कीर्तन से इन्हें प्रारम्भ में वितृष्णा थी, किन्तु महाप्रभु चैतन्य ने इनको रसात्मक बोध के गहनतम शिखरों पर आरोहित कर दिया। फलतः इन्होंने अद्वैत वेदान्त के शुष्कज्ञान से हटकर भक्ति-विज्ञान के मधुरातिमधुर रूपों को स्फूर्जित किया। वृन्दावन आकर इन्होंने भक्ति-ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनमें अद्वैत वेदान्तमूलक शब्दों की गमक विद्यमान है। महाप्रभु चैतन्य ने इन्हें वृन्दावन से लौटने पर काशी में वि० सं० १५७२ के लगभग मंत्रोपदेश दिया था। तभी ये प्रकाशानन्द से भक्तिप्रबोधी प्रबोधानन्द बन गए। महाप्रभु चैतन्य से भेंट करने के उपरान्त इनका अन्तःकरण श्रद्धा-संवलित एवं भाव-विगलित हो उठा और महाप्रभु-की अवतार-महिमा से प्रेरित हो। आत्मनिवेदनात्मक 'चैतन्य-चन्द्रामृतम्' नामक मार्मिक स्तोत्र-काव्य की इन्होंने सृष्टि की। भक्तमाल के प्राचीन प्रख्यात टीकाकर प्रियादासजी ने इनके विषय में लिख—

श्री प्रबोधानन्द बड़े रसिक आनन्दकन्द,
श्री चैतन्यचन्द्रजू के पारषद प्यारे हैं।
राधाकृष्ण कुंज केलि निपट नवेलि कही,
झेलि रसरूप दोउ किए दृगतारे हैं॥

प्रेमसागर में विहार करने की चित्तवृत्ति ने ही इन्हें महाप्रभु के चरणाश्रित किया था।

लोकनाथ, भूगर्भ, मधुपण्डित, रूप, सनातन, सुबुद्धिराय आदि महान् भक्तों को महाप्रभु ने वृन्दावन भेजा था। प्रबोधानन्द को भी उनसे ऐसी प्रेरणा-स्फूर्ति मिली कि इन्होंने अपनी अनन्यधाम निष्ठा से, कहते हैं, सौ शतकों की रचना कर डाली। सम्प्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दाय में ये 'तुंगविद्या' के अवतार रुप मे पूज्य माने जाते हैं।

तुंगविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रविशारदा।
सा प्रबोधानन्दयतिगौरोद्गानसरस्वती॥

प्रबोधानन्द ने स्वयं को 'केलिरसिक' और 'रसिक-सरस्वती' कहा है। साम्प्रयोगिक रसवर्णन में इनकी वृत्ति स्वाभाविक रूप से रमी। उज्ज्वल श्रृंगार के मधुरातिमधुर ऊर्ध्वतम सोपानों का अति सूक्ष्म वर्णन इन्हें हार्द हुआ। स्वामी हरिदास, हितहरिवंश और प्रबोधानन्द की रस-परिपाटी साम्प्रयोगिक निकुंज-विहार की ओर अग्रसर रही। निकुंजरस चैतन्य-सम्प्रदाय में अन्तरंग-उपासना के रूप में प्राचीन काल से चला आ रहा था, किन्तु प्रबोधानन्द ने उसका अति मुखर गान किया जिसके कारण ये एतद्देशीय भक्तों के प्रेरणा-स्रोत हो गए। राधा-निष्ठा और वृन्दावन-निष्ठा का प्रचुर अनुसारी हिन्दी तथा संस्कृत-साहित्य प्रबोधानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर सृजित हुआ। नित्य-बिहार और निकुंज-विहार के वे प्रकृष्ट और मूर्द्धन्य गायक हुए। प्रबोधानन्द दीर्घ-जीवी थे। इनकी समाधि पुराना कालीदह पर स्थित है।

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती की प्रमुख रचना है–'चैतन्य-चन्द्रामृतम्' जो गौरनिष्ठा को व्यक्त करने-वाली कृति हैं। एकनिष्ठ रागचेतना और समर्पण भाव की यह अपूर्व कृति है। 'वृन्दावनमहिमामृतम्' के १७ शतक ही उपलब्ध हुए हैं। सत्रहवें शतक का एक पद्यबद्ध अनुवाद भगवंत मुदित नेवि० सं० १७०७ में प्रस्तुत किया था। धामनिष्ठा का यह अपूर्व ग्रन्थ है। चैतन्य महाप्रभु के प्रति वन्दना, राधानिष्ठा, सखीभाव, मंजरीभाव, प्रेमोपुमर्थो के सान्द्र रसचित्र इसमें भरे पड़े हैं। इसमें चिन्मय प्रेम, रूप-सौन्दर्य और प्रकृति का रसात्मक वर्णन उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ इनकी ख्याति का मूलाधार है। 'राधारससुधानिधि' विवादास्पद रचना मानी जाती है, किन्तु अन्तस्साक्ष्य और प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर यह रचना इन्हींकी ठहरती है। इसका मूलनाम 'राधारससुधानिधि' है, न कि 'राधासुधानिधि'। इसमें २७२ श्लोक हैं। 'गोपाल-तापनी' की 'कृष्णवल्लभा-टीका' कामयायत्री-व्याख्या, श्रुतस्तुति-व्याख्या और 'गीतगोविन्दस्य' व्याख्या इनके टीकाकार होने के प्रमाण हैं। 'गीतगोविन्दव्याख्यान' में रूप गोस्वामी-कृत भक्तिरसामृतसिन्धु' और 'उज्ज्वलनीलमणि' को कई बार उद्धृत किया गया है और इसकी रचना वि० सं० १६०५ में हुई है।

'संगीतमाधवम्' गीतगोविन्द-शैली पर लिखा राग-रागिनियों में निबद्ध सरस काव्य-ग्रन्थ है। इसमें राधा-कृष्ण के नित्य विहारलीला का काव्यात्मक आख्यान हुआ है। परकीया रस का निरूपण भी इसमें हुआ है। 'आश्चर्यरासप्रबन्ध' का वर्णन 'वृन्दावन-महिमामृतम्' के वर्णन के अनुरूप है। रस-वर्णन इसका प्रमुख प्रतिपाद्य है। 'हरिलीला-भागवत-रहस्य' इनकी विशाल अनुपलब्ध कृति है जिसका जीव गोस्वामी ने अपने सूचीपत्र में उल्लेख किया है। उक्त सूची वृन्दावन शोध-संस्थान, वृन्दावन के हस्तलिखित ग्रन्थागार में सुरक्षित है।

इनकी रचना के तीन उदाहरण दिए जाते हैं—

(१)

तृणादपि च नीचतासहजसौम्यमुग्धाकृतिः,
सुधामधुरभाषिता विषयगन्धथूथूत्कृतिः।
हरिप्रणयविह्वला किमपिधीरमालम्बिता,
भवन्ति किल सद्गुणा जगति गौरभाजाममी॥
—चैतन्यचन्द्रामृतम्

'तृण से भी लघुता, स्वभावसिद्ध शीतल मनो-हर मूर्त्ति, अमृत के सदृश मधुरभाषिता, विषय-गन्ध में थूत्कारिता एवं अनन्याश्रित हरि-प्रणाम-विह्वल बुद्धि-विशिष्टता प्रभृति गुण समस्त जगत् में केवल श्री गौरांगदेव के भक्तगण में ही होते हैं।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२)

नमस्तस्मै कस्मैचिदपि पुरुषायाद्भुतमहा-
महिम्ने विभ्राजत्कनकरुचिधाम्ने स्वकृपया ।
असङ्कोचेनैवाश्वपचमखिलेभ्यः स्वयमहो
ददौ यः सद्भक्तिं विमलतरनानारसमयीम् ॥

—वृन्दावनमहिमामृतम्

इस शतक के व्रजभाषा-रूपांतरकार श्री भगवंत मुदित, जिन्होंने विक्रम सम्वत् १७०७ में अनुवाद किया था, का नमूना देखें—

नमो नमो ताको काको पुरुष अभूत जाको,
महिमा अपार जाकी पारहू न पायो है।
कनक रुचिर धाम राजैं छबि अभिराम,
करुणा को ग्राम नाम मंगल को गायो है॥

भक्ति निलंक देत स्वपच ससंक आदि,
बचन मयंक अंक तम को मिटायो है।
वानी हू ते नेति नेति 'भगवंत' गति देत,
जगत में विदित परकास प्रेम आयो है॥

(३)

श्याभामण्डलमौलिमण्डनमणिः श्यामानुरागस्फुर-
द्रोमोद्भेदविभाविताकृतिरहो काश्मीरगौरच्छविः ।
सातीवोन्मदकामकेलितरला मां पातु मन्दस्मिता
मन्दारद्रुमकुञ्जमन्दिरगता गोविन्दपट्टेश्वरी ॥

—राधारससुधानिधिः

'अहो ! जो श्यामा गोपांगनागण के शिरोभूषण-मणिस्वरूपा हैं, जिनके अंग श्यामानुराग-हेतु विकसित रोमाञ्च द्वारा विभाषित हैं, जिनकी कान्ति कुंकुमगौर है एवं जो अत्यन्त उन्मदप्रद कन्दर्पकेलि द्वारा विचलिता हैं, मृदुहास्य, कल्पकुञ्जमन्दिरगता गोविन्द-पट्टेश्वरी श्रीराधा मेरी रक्षा करें।'

न० च० बं०

प्रियादास (रीवाँवाले)

प्रियादासजी रीवाँ के निवासी और प्रसिद्ध वाणीकार गोस्वामी चन्द्रलालजी के शिष्य थे।

चन्द्रलालं गुरुं वन्दे मनसो दैवतं परम् ।
शब्दज्ञानविहीनैर्यः कारयेद् ग्रन्थमुत्तमम् ।

—सु० सि० १।१

इन्होंने अपने ग्रन्थों में, प्रधानतया श्रीमद्भागवत के आधार पर, सामान्य भक्ति-सिद्धान्तों का बड़ा विशद, मौलिक और विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है। इनका एक ग्रंथ 'सुसिद्धान्तोत्तमः' श्री सरयूप्रसाद मिश्र ने सं० १९५७ में प्रयाग से प्रकाशित किया था, किंतु अब वह अलभ्य है। इस ग्रन्थ के 'परमानन्द-प्राप्तिकारणवर्णनम्' नामक पंचम 'विश्राम' की ३४वीं कारिका में श्री प्रियादास ने बतलाया है कि उन्होंने श्रीमद्भागवत के आधार पर चार ग्रन्थों की रचना की है। प्रकाशक ने इस श्लोक पर एक पादटिप्पणी दी है कि प्रियादासजी ने 'वेदान्तसार' की रचना सं० १८६४ में और 'श्रुतितात्पर्यामृत' की रचना सं० १८७० में की थी। प्रस्तुत लेखक ने ये दोनों ग्रंथ नहीं देखे, किंतु उसके पास उपर्युक्त श्लोक में उल्लिखित तीसरे ग्रंथ 'भक्ति-प्रभा' की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति है।

'भक्ति-प्रभा' ग्रंथ सं० १८७१ की आषाढ़ बदी ८ शनिवार को पूर्ण हुआ है। इसमें ४ मयूख हैं। प्रथम मयूख में भक्ति का परत्व और नित्यत्व निरूपित हुआ है। द्वितीय मयूख में परा और अपरा भक्ति का वर्णन, तृतीय मयूख में भागवत-धर्म का परिचय और चतुर्थ मयूख में परमानन्द का वर्णन है।

'सुसिद्धान्तोत्रम' प्रियादासजी का चतुर्थ और सर्वाधिक प्रौढ़ ग्रन्थ है। यह पाँच विश्रामों में विभक्त है। प्रथम विश्राम में विश्व-कारण का निर्णय किया गया है। द्वितीय विश्राम में द्विविध भक्ति का वर्णन है। तृतीय विश्राम में जीव के दासत्व का निरूपण है। चतुर्थ विश्राम में सुमत का निर्णय है और पंचम विश्राम में परमानन्द-प्राप्ति के साधनों का वर्णन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि श्री प्रियादास का भक्ति-ग्रंथों के साथ वेदान्तशास्त्र पर भी पूर्ण अधिकार था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्होंने इस ग्रन्थ में भक्ति के पक्ष में अनेक मौलिक तर्क उपस्थित किये हैं। महामना पं० मदनमोहन मालवीय के पिता श्री व्रजनाथ चतुर्वेदी इस ग्रन्थ पर बहुत प्रीति रखते थे और मालवीयजी ने उन्हीं-के पास से इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति इसके प्रकाशक श्री सरयूप्रसाद मिश्र को उपलब्ध कराई थी।

उपर्युक्त चारों ग्रन्थों पर ग्रन्थकार ने स्वयं टीकायें की हैं। उनसे इनके गम्भीर पांडित्य और विवेचन-शक्ति का परिचय मिलता है।

इन पंक्तियों के लेखक के पास उनके एक अन्य ग्रन्थ 'वैष्णवसिद्धान्त' की प्रतिलिपि है। इसमें ५३ कारिकाएँ हैं, जिनके द्वारा भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है।

ल० च० गो०

प्रियादास शास्त्री

प्रियादास शास्त्री गोस्वामी सनेहीलालजी के शिष्य थे और पटना के रहनेवाले थे। संस्कृत में इनकी छोटी-बड़ी लगभग बीस रचनायें लेखक ने देखी हैं, जिनमें तीन टीकायें हैं और शेष मौलिक ग्रंथ। लगभग तीस वर्षों तक ये लगातार ग्रन्थ-रचना करते रहे। 'सूत्र-विमर्षिणी' सं० १८९५ में और 'उत्सव-निर्णय' सं० १९२४ में रचा गया है। संप्रदाय के इतिहास, भक्ति-सिद्धान्त और रस-रीति पर स्वतन्त्र रचनायें करने के साथ इन्होंने 'ईशावास्योपनिषद्' और 'ब्रह्म-सूत्र' पर विद्वत्तापूर्ण भाष्यों की रचना की है जिनमें मन्त्रों तथा सूत्रों के साधारण अर्थ लिखने के साथ उनके आंतर अथवा गुह्य अर्थ भी दिये गये हैं। यह अर्थ नित्यविहार-परक है। आश्चर्य की बात यह है कि इनमें किसी प्रकार की खींचतान नहीं की गई है।

शास्त्रीजी के प्रधान ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

निज-मत-दर्पण—इस छोटे से ग्रन्थ में पाँचों वेदान्त सिद्धान्तों का विद्वत्तापूर्ण विवेचन करने के बाद श्री हिताचार्य के मत का निरूपण किया गया है। इस मत में प्रेम-लक्षणा भक्ति साध्य और श्रवण-कीर्तनादिक उसके साधन माने गये हैं और ज्ञान-दशा में भी सेव्य-सेवक-सम्बन्ध की स्थिति बतलाई गई है। शास्त्रीजी ने दो प्रकार का द्वैत माना है, वास्तविक और मायाजनित। मायाकृत द्वैत में भय होता है, वास्तविक में नहीं।

सुश्लोक मणिमाला—इसकी रचना सं० १९१४ में हुई है। यह श्रीभगवत्मुदित-कृत रसिक अनन्यमाल का संस्कृत-भाषान्तर है। किन्तु चरित्रों का वर्णन कवित्वपूर्ण ढंग से किया गया है।

हित कथामृत तरंगिणी—इस ग्रन्थ में हितप्रभु का चरित्र वर्णित है। प्रथम तरंग में हित-अवतार का उपक्रम-वर्णन, द्वितीय में वंश-वर्णन, तृतीय में नृसिंहाश्रमजी से वर-प्राप्ति का वर्णन, चतुर्थ में प्रादुर्भाव-वर्णन और पंचम में बाल-लीलाओं का वर्णन है। आरंभ में वृन्दावन का और युगलस्वरूप का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है।

समस्तवेदान्तनितान्तगूढ़-
माहात्म्यमानन्दघनं वरेण्यम्।
ज्योतिःस्वरूपं मनसाप्यचिन्त्यं,
तद् ब्रह्म वृन्दावनमेव साक्षात् ॥

वैकुण्ठलोकादपि यद्गरिष्ठं,
नारायणश्रीमुखगीतकीर्तिः।
विशुद्धशृङ्गाररसप्रधान,
निजानुकम्पाभरमात्रलभ्यम् ॥

निकुञ्जदेवीकुचकुम्भयुग्मं,
संलग्नकश्मीरसुरञ्जितेन।
हरिं तरङ्गेण च रञ्जयन्ती,
रसात्मिका यत्र विभाति कृष्णा ॥

सनातनौ नित्यनवीनरूपौ,
निरस्ततृष्णौ सततं सतृष्णौ।
व्याप्तौ निकुञ्जैकविराजमानौ,
निरस्तभेदौ युगलस्वरूपौ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महोत्सवनिर्णयम्—इसमें हित-पद्धति के अनुसार उत्सवों का निर्णय किया गया है। इसकी रचना सं० १९१२ में हुई है। इसमें हितप्रभु का जन्म सं० १५३० और श्रीवनचन्द्र गोस्वामी का सं० १५५९ लिखा हुआ है।

ईशावास्योपनिषद्भाष्य—आरम्भ में भाष्यकार ने बतलाया है कि वे इस उपनिषद् का काण्वशाखीय पाठ ग्रहण न करके माध्यन्दिनीय शाखा का पाठ स्वीकार करेंगे, क्योंकि संप्रदाय के आचार्य शुक्ल-यजुर्वेद की माध्यंदनीय शाखा को मानने वाले हैं। इस भाष्य में प्रत्येक मंत्र के दो अर्थ किये गये हैं आतन्र और बाह्य। उदाहरण के लिये सातवें मंत्र का आन्तर अर्थ दिया जाता है—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

"पूर्वश्रुत्या श्रीकृष्णस्य अनुकूलनायकत्वं वर्णितम्। इदानीं निकुञ्जे मनागपि तयोर्विरहजो मोहः शोकश्च न भवति इत्याह यस्मिन् इत्याद्यः, विजानतः श्री कृष्णस्य, कथं भूतस्य, एकत्वं प्रियया सह अनुपश्यतः। यस्मिन् यदा निकुञ्जे सर्वाणि भूतानि आत्मा श्री राधिका एव अभूत्, तत्र विरहजो मोहः कः, शोकश्च कः, कोपि नैवेति भावः। .... एतेन अन्यासां व्रजगोप्यादीनां कथंचित् विरहो भवतु नाम, श्रीराधा-कृष्णयोस्तु कदापि विरहो न अस्ति, इति सिद्धान्तः सूचितः। कदाचित् तादृशभानं वैचित्य-मात्रं। यथोक्तं श्रीमदाचार्यचरणैः 'अङ्कस्थितेपि दयिते किमपि प्रलापं हा मोहनेति॥"

'पूर्व श्रुति में श्रीकृष्ण का अनुकूल नायकत्व वर्णित हुआ है। अब निकुंज में राधा-कृष्ण के बीच में विरहज मोह और शोक नहीं है, यह बतलाया जाता है। अपनी प्रिया के साथ एकत्व माननेवाले श्रीकृष्ण के, निकुञ्ज में, सम्पूर्ण देहादिक—आत्मा—श्री राधिका ही बन गये हैं, वहाँ विरहज मोह और शोक कहाँ रह सकते हैं? इससे यह सिद्धांत सूचित किया गया है कि श्रीकृष्ण का अन्य गोपियों से विरह हो सकता है किन्तु श्री राधा से कभी नहीं होता, यदि कभी वैसा प्रतीत होता है तो वह प्रेम-वैचित्य है। जैसा कि राधा-सुधानिधि में श्रीमदा-चार्यचरण ने कहा है, 'निकुंज की सीमा में वे श्यामा-मणि श्री राधा सर्वोत्कर्षरूप से विद्यमान हैं जो प्रियतम के अंकस्थित होने पर भी 'हा मोहन'! इस प्रकार का मधुर प्रलाप अकस्मात् कर उठती हैं।'

श्री व्यासनन्दनभाष्यः—इस भाष्य को प्रिया-दासजी पूर्ण नहीं कर सके। यह ब्रह्मसूत्र के प्रथम अध्याय के केवल तीन पादों पर ही मिलता है। इसको 'त्रिपदी-भाष्य' भी कहते हैं। इसमें भी प्रत्येक सूत्र के दो अर्थ किये गये हैं। चौथे सूत्र का निगूढ अर्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है।

तत्तुसमन्वयात्। १.१.४ ब्र० सू०—निगूढ़पक्षे तु प्रथमाधिकरणे ब्रह्मपदेन 'योसौ परंब्रह्म गोपालः' 'गूढं परंब्रह्म मनुष्य लिङ्गम्' इत्यादिप्रतिपादितं। कृष्णाख्यं ब्रह्म जिज्ञास्य मुक्तं तत्केवलं राधासहितं वा किं? तावत् प्राप्तं केवलमेव तस्मात् 'कृष्ण एव परोदेवस्तं ध्यायेत्तंरसेत्', कृष्णो ह वै परमं दैवतं, इत्यादिश्रुतिषु केवलस्यैव प्रोक्तत्वाद् इति सिद्धान्तमाह 'तत्तु समन्वयात्', तद्राधाख्य तत्त्वसमन्वयात्। यत्सत्वे यत्सत्त्वमन्वयः, सं, सम्य-गन्वयः समन्वयस्तस्मात्, तुकारः समुच्चये। 'एको-देवोनित्यलीलानुरक्तः एकाकी न रमते, द्वितीय-मैक्षत् स पतिः पत्नी चाभवता'मित्यादि। श्रुतिषु पत्नीरूपश्रीराधाख्यतत्त्वसत्त्वे एव तद्देवत्वसत्त्व-मित्यन्वयात्। दिव्धातोः कोडार्थत्वादेकाकिनः क्रीडाया एवाभावादिति। समुपसर्गेणान्वयस्यैव सम्य-क्त्वमुक्तं भवति। राधाया अभावे लीलाया एवाभाव इतिव्यतिरेकसम्भवेपि कदाचिदपि तदभावस्यैव वक्तु-मशक्यत्वेन व्यतिरेकस्यासमीचीनत्वात्।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'अब इस सूत्र का निगूढ़ अर्थ लिखा जाता है। प्रथम अधिकरण में नराकृति परब्रह्म का प्रतिपादन हुआ है। प्रश्न यह होता है कि जिस कृष्णनामक परब्रह्म की जिज्ञासा करने को वहाँ कहा गया है, वह अकेला है या राधासहित है? अनेक श्रुतियों ने अकेले श्रीकृष्ण का ही ध्यान और आस्वाद करने को कहा है। किन्तु सिद्धान्त-पक्ष यह है कि वह कृष्ण-ब्रह्म सदैव राधानामक तत्त्व के समन्वय में ही रहता है। एक की स्थिति के कारण दूसरे की स्थिति को 'अन्वय' कहते हैं और सम्यक् (भली प्रकार से) अन्वय समन्वय कहलाता है। सूत्र में समन्वय शब्द के पहले लगा हुआ 'तु' अक्षर दोनों के (राधा-कृष्ण के) समुच्चय को द्योतित करता है। श्रुति में एक ऐसे लीलानुरक्त देव का वर्णन मिलता है जो अकेला रमण न कर सकने के कारण पति-पत्नीरूप में विभक्त हो गया है। अतः पत्नी-रूप श्री राधानामक तत्त्व की उपस्थिति के कारण उस देव का देवत्व स्थित है—क्योंकि दिव्‌धातु का अर्थ क्रीड़ा है और एकाकी क्रीड़ा करना असंभव है। अन्वय शब्द का यही अर्थ है और 'सं' उपसर्ग के द्वारा उसका सम्यकत्व कहा गया है। राधा के अभाव में लीला का अभाव है, यह व्यतिरेक यद्यपि संभव है, किन्तु कभी इस प्रकार का अभाव होता नहीं है। अतः व्यतिरेक का कथन असमीचीन है।'

हितमतार्थचन्द्रिका—सुन्दर मंगलाचरण से

योऽस्त्यालम्बन रूपोऽपि रसिको रसरूपकः।
हृदयोद्दीपनो मेऽस्तु श्रीराधावल्लभो वरः॥

आरंभ होनेवाले इस ग्रन्थ में अन्य मन्त्रों से वैष्णव-मंत्रों की श्रेष्ठता, वैष्णवगुरु के लक्षण, वैष्णवों के पंचसंस्कार और उन संस्कारों का राधावल्लभ-संप्रदाय में गृहीतरूप, श्री राधा-कृष्ण का परात्परत्व, श्री राधा के स्वरूप का मार्मिक विवेचन, श्री राधा का स्वकीयात्वप्रतिपादन और अन्त में श्री हिताचार्य का सब आचार्यों में श्रेष्ठत्व स्थापित किया गया है। ग्रन्थ की रचना सं० १९०५ में हुई है।

'अध्वविनिर्णय' की टीका—श्री वृन्दावनदास गोस्वामीरचित इक्यावन श्लोकों के छोटे-से ग्रन्थ की शास्त्रीजी ने यह बहुत विस्तृत टीका लिखी है। इसमें संप्रदाय के उपास्य तत्त्व और उपासना का बड़ा विशद और शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इस टीका की रचना सं० १९२१ में हुई है।

लेखक की देखी हुई शास्त्रीजी की अन्य रचनाओं के नाम हैं: १. टीका यमुनाष्टक, २. टीका फुटकर वाणी, ३. सेवा-दर्पणम्, ४. त्रिलक्षण भक्ति-मीमांसा, ५. मतबोध, ६. तिथिनिर्णय, ७. प्रियाचरण चिह्न तात्पर्यम्, ८. उत्सव-निर्णयसारम् और ९. भागवत-प्रथमश्लोक-व्याख्या।

ल० च० गो०

प्रियालाल गोस्वामी

प्रियालाल गोस्वामी प्रवासी विद्वद्वर श्री प्रियतम-लाल गोस्वामी के पुत्र थे। इनका एक ही संस्कृत-ग्रन्थ 'राधा-सिद्धान्ततरंगिणी' लेखक ने देखा है। इसमें चौदह तरंगें हैं। प्रथम तरंग में गुरु-स्वरूप का कथन, द्वितीय में दीक्षा-वर्णन, तृतीय में ऊर्द्ध्वपुण्ड्र और मुद्राओं का माहात्म्य-कथन, चतुर्थ में तुलसी-माला और वैष्णव-संस्कारों का वर्णन, पंचम में प्रसाद-महिमा, षष्ठ में वैष्णव-माहात्म्य, सप्तम में श्री वृन्दावन-महिमा, अष्टम में राधा-कृष्ण का ऐक्य-निरूपण, नवम में स्व-संप्रदाय-कथन, दशम में श्री हिताचार्य का वर्णन, एकादश में श्री हितप्रभु के वंश का वर्णन और श्री किशोरी वल्लभ का प्रादुर्भाव वर्णन, द्वादश में अपने पूर्वजों का वर्णन, त्रयोदश में वार्षिक उत्सवों का वर्णन और चतुर्दश में आह्निक पूजनादिक का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १९१६ में हुई थी।

उक्त ग्रन्थ की एकादश तरंग में जिन श्री ठाकुर किशोरीवल्लभजी के प्रादुर्भाव का वर्णन है, उनका मंदिर श्री राधावल्लभजी के मंदिर के पार्श्व में स्थित है। इस मंदिर की स्थापना श्री मनसालाल ने की थी। ये श्री बनचन्द्र गोस्वामी (श्री हिताचार्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के ज्येष्ठ पुत्र) के तृतीय पुत्र गो० नागरवरजी के पंचम पुत्र श्री केसौराइजी किंवा किशोरराइजी की पुत्री के पुत्र थे। श्री केसौराइजी का परिचय चाचा वृन्दावनदास ने 'रसिक-अनन्य-परचावली' के ७०वें छप्पय में दिया है। श्री मनसालाल का परिचय 'परचावली' के १०२वें छप्पय में मिलता है। चाचा-जी ने कहा है,

सो श्री मनसालाल,
भक्ति कौ भाजन जानौ।
दुखद न वचन अलाप
शांत रस मूरत मानौ ॥
हृदै धीर गंभीर धरैं,
हरि गुरु पद पल्लव।
भावसहित दुलरावता,
सदा किशोरीवल्लभ ॥
केसौराइ सुता सुवन उर,
सब गुनरासि महासुची।
प्रभु सील सुहृद अरु साधुता
मनु आनि एक ठाँही रची ॥

इस छप्पय से अनुमान होता है कि श्री मनसा-लालजी चाचा हितवृन्दावनदासजी के समकालीन थे।

इस वंश में अनेक रससिद्ध रसिक महानुभाव हुए हैं जिन्होंने मुख्यतः संस्कृत में रचनायें करके राधा वल्लभ संप्रदाय के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय योगदान किया है।

ल० च० गो०

बलदेव विद्याभूषण

बलदेव विद्याभूषण उड़ीसा में एक वैश्य-परिवार में उत्पन्न हुए थे। ये १८वीं शताब्दी में जयपुर के राजा जयसिंह के काल में विद्यमान थे। इनका सामान्य नाम गोविन्ददास था। ये दामोदरदास के शिष्य थे। बलदेवजी चैतन्य-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके दो प्रसिद्ध शिष्य थे—नन्दमिश्र और उद्धवदास। इनकी अधोलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—साहित्य-कौमुदी, गोविन्दभाष्य, कृष्णानन्द, सिद्धान्तरत्न, काव्यकौस्तुभ, गीता की टीका, छन्दःकौस्तुभ की टीका, प्रमेयरत्नावली, रूपगोस्वामी के लघुभागवतामृत की टीका, जयदेव-कृत चन्द्रालोक की टीका, तत्त्वसन्दर्भ की टीका, रूप की नाटकचन्द्रिका की टीका।

बलदेवजी की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना गोविन्द-भाष्य है, जो ब्रह्मसूत्र की टीका है। इसकी 'सूक्ष्म' नामक उपटीका है, जिसके लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह बलदेव विद्या-भूषण की ही रचना है। सिद्धान्तरत्न में गोविन्दभाष्य के विषय का संक्षेप में निरूपण हुआ है।

आनन्द की प्राप्ति और दुःख का निरोध—यह मनुष्य का लक्ष्य है। भगवान् का स्वरूप शुद्ध चित् और आनन्द है। वे एक हैं, किन्तु विभिन्न स्थानों पर आविर्भूत होते हैं। वे अपनी अचिन्त्य शक्ति से आत्मलीला की अभिव्यक्ति करते हैं। भक्तों की जैसी मानसिक स्थिति होती है, उसके अनुसार भगवान् अभिव्यक्त होते हैं और भक्तों को आनन्दित करते हैं। बलदेवजी स्वप्नों में देखी गई वस्तुओं को भी असत्य नहीं मानते। वे कहते हैं कि वे सब भगवान् की इच्छा से उत्पन्न होती हैं और जाग्रदवस्था में विलीन हो जाती हैं।

जीव भगवान् से भिन्न हैं। वे प्रकृति के गुणों से सम्बद्ध हैं और भगवान् पर आश्रित हैं। भक्त भगवान् को भक्ति और ज्ञान से जानता है। भगवान् के स्वरूप की अपरोक्षानुभूति साध्यभक्ति के द्वारा होती है। भगवान् का आनन्द जीवों के आनन्द से भिन्न होता है। ब्रह्म जीव और जगत् दोनों से स्वरूपतः भिन्न हैं। जीव और जगत् भगवान् में स्थित हैं। भगवान् जगत् का उपादान कारण और चरमकर्ता दोनों माना जाता है। उनकी चरमशक्ति विष्णुशक्ति, क्षेत्रज्ञशक्ति और अविद्याशक्ति के रूप में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीन मूलभूत शक्तियाँ हैं। अपनी प्रथम शक्ति में वह विकाररहित रहता है। द्वितीय शक्ति में जीवरूप में अवतीर्ण होता है और तृतीय शक्ति में जगत् के रूप में अवतीर्ण होता है। वह जीव और जगत् की सृष्टि करता है और अन्तर्यामी के रूप में उनमें अवस्थित है। मनुष्य की इच्छा के रूप में भगवान् की इच्छा की अभिव्यक्ति है। जगत् के व्यापार भी ईश्वर की इच्छा के अधीन हैं। मानव और जगत् ईश्वर के अधीन हैं। वे स्वतन्त्र नहीं हैं। चेतन जीव भी स्वतः कर्ता नहीं है--

'चेतनस्यापि जीवस्याश्मकाष्ठलोष्टवदस्वातन्त्र्यात् स्वतःकर्तृत्वरूपानपत्तिः।'—गोविन्दभाष्य २।१।२०

ईश्वर हमारे पूर्वकर्मों के अनुसार हमारी क्रिया और इच्छा का निर्धारण करता है। भगवान् जीवों का निर्धारण उनके स्वभाव के अनुसार करता है। जीव विभिन्न स्वभाववाले होते हैं।

भगवान् की इच्छा का कोई उद्देश्य या प्रयोजन नहीं है। उनकी क्रियाएँ आनन्दानुभव के रूप में प्रवृत्त होती हैं। अपने भक्तों के प्रति उनकी विशेष कृपा रहती है।

भक्ति को एक विशेष प्रकार का ज्ञान कहा गया है—'भक्तिरपि ज्ञानविशेषो भवति' (सिद्धान्तरत्न पर टीका।)

भक्ति एक ऐसी शक्ति है, जिससे भगवान् वशीभूत होते हैं। भक्ति भगवान् में उनकी शक्ति के रूप में स्थित है। वह भगवान् के विशेषण के रूप में स्थित है और भक्त के विशेषण के रूप में भी। वह दोनों को आनन्द देनेवाली है--'भगवत्स्वरूपविशेषभूतह्लादिन्यादिसारात्मा भक्तिर्भगवद्विशेषणतया भक्ते च पृथग्विशेषणतया सिद्धा-(सिद्धान्त रत्न।) भगवान् की तीनों शक्तियों में सन्धिनी से श्रेष्ठ संवित् है और संवित् से श्रेष्ठ ह्लादिनी। सन्धिनी शक्ति के द्वारा वह प्राणियों को सत् प्रदान करता है, संवित् के द्वारा ज्ञान और ह्लादिनी के द्वारा आनन्द। भगवान् का स्वरूप परम आनन्द है। जब उसकी अनुभूति जीव को हो जाती है, तब जीव सांसारिक इन्द्रियसुख से विमुख होकर भगवदुन्मुख हो जाता है। सत्यज्ञान से सभी पाप और पुण्य नष्ट हो जाते हैं। जीवन्मुक्त की स्थिति में जीव भगवान् की इच्छा से शरीरधारण करता है।

बलदेव विद्याभूषण ने विशेष प्रत्यय को स्वीकार किया है। विशेष भेद-प्रतिनिधि है। इससे भेद का विधान सम्भव होता है। यद्यपि भगवान् और उनके गुणों में, उनके स्वरूप और उनकी देह में भेद नहीं है, किन्तु विशेष के कारण भेदात्मक विधान किया जाता है। विशेष का प्रत्यय सबसे पहले मध्वाचार्य के दर्शन में मिलता है। बलदेव विद्याभूषण ने उन्हीं से इस प्रत्यय को ग्रहण किया है।

अ० पा०

बालकृष्ण

श्री बालकृष्णजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६०६ आश्विनकृष्ण १३, बुधवार को हुआ था। यह शरीर से बलिष्ठ और श्यामवर्ण के थे तथा इनके नेत्र बहुत बड़े थे। इसलिये इनको घर में 'राजीव-लोचन' नाम से पुकारते थे। यह शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय के तृतीय पीठ के समर्थ तिलकायत हुए हैं। सम्वत् १६१४ में अडैल में इनका यज्ञोपवीत हुआ था। सं० १६२३ में विद्याध्ययन के पश्चात् श्री कमलावती बहूजी के साथ इनका विवाह हुआ था जिनसे सात संतानें हुई थीं। इनमें एक पुत्री और छः बालक थे। बेटी का नाम गोपदेवी था और बालकों का—द्वारकेशजी, ब्रजनाथजी, ब्रजभूषणजी, पीताम्बरजी, ब्रजालंकारजी और पुरुषोत्तमजी था।

यह अडैल में रहकर आचार्य महाप्रभुजी के सेवक श्री दामोदरदास सम्बलवाले (कन्नौज के निवासी) से प्राप्त श्री द्वारकाधीशजी की सेवा प्रेमपूर्वक करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अडैल से जब इनके पिता श्री विट्ठलनाथजी सं० १६१९ में गोकुल चले आये तब यह भी वहाँ आकर इष्टविग्रह की श्रद्धा और भावना से सेवा करने लगे। इनकी निष्ठा श्री द्वारकाधीशजी में ऐसी बढ़ी कि एक रात में स्वप्न में इन्हें श्रीयमुना जी के दर्शन हुए। इन्हें श्री स्वामिनीजी का अभाव खटकने लगा और व्याकुलता बढ़ने लगी। यहाँ तक कि इन्होंने ऐसा निश्चय किया कि जब तक कि स्वामिनीजी के ठीक स्वरूप की प्राप्ति न होगी तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इनके इस निश्चय की सूचना जब इनके योग्य पिता को मिली, तो उन्होंने एक जोड़ी कंगन दिया और कहा—'जिस स्वरूप के हाथ में यह कंगन ठीक आ जायँ उस स्वरूप को ही आप उचित स्वरूप समझना।' उन कंगनों को लेकर ये ब्रज के कई स्थानों पर गये। पर अन्त में, सं० १६३८ में इनको गुंजावन में अभीष्ट स्वरूप की प्राप्ति हुई और उसे वहाँ से लाकर इन्होंने अपने पिता की अनुमति से मंदिर में श्री द्वारकाधीशजी के समीप पधराया। यह घटना सम्भवतः सं० १६३८ माघ कृष्ण चौथ को हुई होगी क्योंकि इस घर में प्रतिवर्ष माघ कृष्ण चौथ को श्री यमुनाजी और श्री स्वामिनीजी का पाटोत्सव मनाया जाता है। सं० १६३७ में माघ कृष्ण १० को अन्य मन्दिरों के साथ श्री द्वारकाधीशजी का भी नया मन्दिर बनवाने की योजना आरम्भ हुई थी। इसलिए श्री स्वामिनीजी का प्रथम पाटोत्सव इस नवीन मंदिर में ही हुआ होगा। ऐसा प्रसिद्ध है कि सेवा के समय इनको अलौकिक भावावेश हो जाया करता था और एक बार नन्द-महोत्सव के दिन इनको यशोदाजी की भाँति नवनीत प्रियजी को पालना झुलाते-झुलाते ऐसा आवेश आया कि इन्होंने स्वरूप को गोद में ले लिया। सं० १६३७ के ऐतिहासिक बँटवारे में इन्हें इनकी व्यक्तिगत निष्ठा के कारण श्री द्वारकाधीशजी का स्वरूप दिया गया था। इस बँटवारे में इनके छोटे भाई यदुनाथजी को बालकृष्ण का स्वरूप मिला था, जो अन्य स्वरूपों की अपेक्षा छोटा था जिसे पीछे से उनके अस्वीकार करने पर इन्होंने ही श्री द्वारकाधीश के समीप रखना स्वीकार कर लिया था।

काँकरौली के इतिहास तथा 'सरस्वती भंडार', काँकरौली से प्राप्त अन्य हस्तलिखित सामग्री के अनुसार ये अत्यंत तेजस्वी विद्वान् प्रतीत होते हैं। इन्होंने अनेक यात्राएँ की थीं और बहुत से सेवक भी बनाये थे। इनके प्रसिद्ध ग्रंथों के नाम काँकरौली विद्या-विभाग से इस प्रकार प्राप्त हुए हैं—

१. स्वप्नदृष्ट-स्वामिनी-स्तोत्र, २. गुप्त-स्वामिनी-स्तोत्र-विवृति, ३. भक्ति-वर्धिनी-स्तोत्र-विवृति, ४. प्रसादवागीश-भाष्य-विवरण, ५. सर्वोत्तम-स्तोत्र-विवृति।

काँकरौली में आपकी नित्यपाठ की श्रीमद्भागवत रखी हुई है जिस पर आपके हस्ताक्षर हैं। उसके साथ ही झूलने का पालना, खेलने की तबकड़ी (खिलौने), कमर की करधनी (सोने की) और गले के आभूषण आदि चार वस्तुएँ स्मृति-चिह्नरूप में सुरक्षित हैं।

आपकी मृत्यु के सम्बन्ध में पहले सं० १६४५ प्रसिद्ध हो गया था पर काँकरौली में सुरक्षित भागवत की पोथी की पुष्पिका में सं० १६४९ फाल्गुन शुक्ल १३ उसका लेखन-काल दिया हुआ है। इसलिए आपका सं० १६४९ तक विद्यमान रहना तो निश्चित ही है। पुस्तक की पुष्पिका इस प्रकार है—'सं० १६४९ वर्षे फाल्गुने मास्यामलपक्षे त्रयोदश्या तिथो भृगुवासरे श्रीमदहमदाबादपत्तनान्तर्गत हरिहरपुरे रचितान्वयेन मेदपाटान्वयोत्पन्न व्यास श्री जयरामात्मजेन रघुनाथेन लिखितमिदं श्रीभागवतं सर्वसिद्धये:।'

तथा—'बालकृष्णस्येदं पुस्तकं। विभागानन्तरे श्री द्वारकेशवारणाय गिरधरस्य च।'

रा० कृ० श०

बालकृष्ण भट्ट

बालकृष्ण भट्ट का समय १७वीं शताब्दी का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्यभाग है। ये लालूभट्ट के नाम से प्रसिद्ध हैं। वल्लभाचार्य की अनेक कृतियों पर इन्होंने व्याख्याएँ लिखीं। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—'अणुभाष्य', 'गूढार्थ-दीपिका', 'शास्त्रार्थप्रकरणयोजना' तथा 'प्रमेय रत्नार्णव'। 'प्रमेयरत्नार्णव' के प्रारम्भ में इन्होंने गोवर्धनेश श्रीकृष्ण की स्तुति की है—

गोपीनूतनरूपयौवनमहामाधुर्यलाभोन्मदं,
वृन्दाकाननिर्मितोज्ज्वलमयस्वच्छन्दरासोत्सवम्।
श्रीमद्वल्लभविट्ठलप्रकटितप्रेमाख्यभक्तिप्रियं,
वेदान्तोक्तरसात्मकं प्रभुमहं गोवर्द्धनेशं भजे॥

'गोवर्द्धनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के भजन में मैं नितान्त संलग्न हूँ। वे गोपिकाओं के नव रूप तथा यौवन-सम्बन्धी महामाधुर्य के उपभोग से अत्यन्त प्रसन्न हैं। वृन्दावन में सम्यक् रूप से सम्पन्न आनन्द-उच्छलित स्वच्छन्द रासलीला के उत्सव के अधिष्ठाता हैं। श्रीमद्वल्लभाचार्य और गोस्वामी विट्ठलदेव द्वारा प्रवर्त्तित प्रेमाभक्ति से प्रसन्न रहनेवाले हैं। अधिक क्या कहें—वेदान्त-प्रतिपादित रस के तो स्वरूप ही हैं। ऐसे प्रभु का मैं भक्त हूँ।'

'प्रमेयरत्नार्णव' में सात विवेक हैं। प्रपञ्चविवेक प्रथम है। प्रपञ्च ब्रह्म से अभिन्न है, अतः सत्य है। जो उत्पत्ति, विनाश आदि धर्म प्रतीत होते हैं, वे मायिक हैं—**"अतः प्रपञ्चस्य ब्रह्माभिन्नत्वात् सत्यत्व-मङ्गीकार्यं श्रुतिशरणैः। ये पुनरुत्पत्तिविनाशकुत्सितत्व-भेदादयो धर्माः प्रतीयन्ते, ते मायिका इति सुधीभि-राकलनीयम्।"** (प्रपञ्चविवेकः) जीवस्वरूपनिरू-पण नामक द्वितीय विवेक में जीव के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। जीव ब्रह्म से अभिन्न है, अणु है और उसका अंश है। उसकी तीन अवस्थाएँ हैं—शुद्ध, संसारी और मुक्त। प्रमेयरत्नार्णव का तृतीय विवेक है—मूलस्वरूपनिरूपण। इसमें निरूपित किया गया है कि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। वे परमानन्द-स्वरूप हैं। चतुर्थ विवेक 'पुष्टिस्वरूपनिरूपण' में पुष्टिभक्ति चार प्रकार की बताई गयी है—प्रवाहपुष्टि-भक्ति, मर्यादापुष्टिभक्ति, पुष्टिपुष्टिभक्ति, शुद्धपुष्टि-भक्ति। पुष्टिभक्त्यधिकार पञ्चम विवेक है। सर्वात्म-भावनिरूपण छठा विवेक है। एकान्तभक्ति ही सर्वात्म-भाव है। सर्वात्मभाव से सभी पदार्थों में भगवान् का ही दर्शन होता है—**"तदेवोक्तं श्रीधरस्वामिभिः—'सर्वात्मभाव एकान्तभक्तिः' इति। 'एकान्तभक्ति-र्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्' इति तल्लक्षणादस्म-दुक्त्या सहैक्यं ज्ञेयम्। तथा सति सर्वस्मिन्नात्मभावः सर्वात्मभाव इति निष्कर्षः।"** पुष्टिफलनिरूपण सातवाँ विवेक है। प्रमेयरत्नार्णव शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय का बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। इसमें सम्प्रदाय के प्रमुख सिद्धान्तों का सरल रीति से प्रतिपादन किया गया है।

अ० पा०

बोपदेव

बोपदेव का समय १३वीं शताब्दी है। ये केशव के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम धनेश था। इनका जन्म आधुनिक दौलताबाद के समीप में हुआ था। ये अपने लिए गोस्वामी-पद का प्रयोग करते थे। ये उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् और लेखक थे।

पाणिनीय व्याकरण को अधिक सुबोध बनाने के लिए बोपदेव ने 'मुग्धबोध' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनका लक्ष्य था कि संक्षेप में सरलता से व्याकरण प्रस्तुत कर दिया जाय। इनके ग्रन्थ में धार्मिक भावना का अभिनिवेश है। इन्होंने हरि, हर और अन्य देवों के नामों का प्रयोगों में संनिवेश किया है।

भट्टोजिदीक्षित ने बोपदेव को महाग्राह कहा है। इससे प्रतीत होता है कि एक समय में बोपदेव के व्याकरण का विशेष प्रचार था—

बोपदेव महाग्राहग्रस्तो वामनदिग्गजः।
कीर्तेरेव प्रसङ्गेन माधवेन विमोचितः॥

बोपदेव के 'मुग्धबोध' का प्रचार धीरे-धीरे सीमित हो गया। रामतर्कवागीश ने 'मुग्धबोध' की टीका लिखी है। बोपदेवकृत व्याकरण-विषयक अन्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थ हैं—कविकल्पद्रुम और कविकामधेनु। बोपदेव ने कविकल्पद्रुम में आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है—

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥

व्याकरण के अतिरिक्त बोपदेव का महत्त्वपूर्ण कार्य भागवत-विषयक है। इन्होंने 'हरिलीलामृत' अथवा 'भागवतानुक्रमणी', 'मुक्ताफल' तथा 'परमहंसप्रिया' की रचना की। 'हरिलीलामृत' में भागवत के अध्यायों की सूची और उनके पारस्परिक सम्बन्ध का मार्मिकता से प्रकाशन किया गया है। 'मुक्ताफल' भागवत के विषय को प्रस्तुत करनेवाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'परमहंसप्रिया' भागवत की टीका कही जाती है। बोपदेव ने धर्मशास्त्र और चिकित्सा पर भी ग्रन्थ लिखे।

अपनी प्रसिद्ध रचना 'मुक्ताफल' के अधोलिखित श्लोक में कृष्ण-भक्त का लक्षण बताते हुए ये लिखते हैं—

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः॥

—मुक्ताफल ११।१

'जिन्होंने एक बार भी कृष्ण के चरणकमलों में अपना मन लगा दिया, उन्हें स्वप्न में भी यमदूतों का दर्शन नहीं होता।'

उक्त श्लोक की हेमाद्रिविरचित व्याख्या इस प्रकार है—

"एवमियता प्रबन्धेन विष्णुं पञ्चात्मकमित्यस्य पादत्रयं विविच्य शिष्टं व्याख्यातुमिदमारभ्यते। अथेति। तत्रापि नागृहीत-विशेषणा बुद्धिर्विशेष्ये चोपजायते। विशेषणमुपसंक्रामतीति न्यायात् सामान्य-परिहारेण विशेषप्रतिपत्त्यसम्भवाद् भक्तसामान्य-लक्षणमवतारयितुमाह। तत्रेति। सकृदिति। सकृदित्यादिष्वपि शब्दः प्रत्येकं सम्बध्यते। सकृदपि किं पुनरभ्यासेन। मनः संशयात्मकमन्तःकरणं किं पुनर्निश्चयात्मिका बुद्धिः। पदारविन्दयोरपि किं पुनः सर्वमूर्तौ निवेशितम्। बलादपि किं पुनः स्वतो निविष्टम्। तद्गुणेष्वपि रागि किं पुनस्तत्स्वरूपे। यैरिहेति सामान्यवाचिभ्यां सर्वनामभ्यां मनोनिवेशने नातिदेश-विशेषानपेक्ष्येति गम्यते। बलादपि यैर्निवेशितं ते भक्ता इति शेषः। तेषां फलमाह। नेति। चकाराद् यमञ्च पाशभृतम्। पाशग्रहणमन्यस्यापि करालदंष्ट्रत्वादेर्भीषणत्वस्योपलक्षणम्। यममपि न पश्यन्ति, किं पुनर्निरयम्। स्वप्नेऽपि किं पुनः प्रत्यक्षेण। न पश्यन्ति किं पुनस्तर्जनादि। कुत एतत्। हि यस्मात् चीर्णनिष्कृता आचरितप्रायश्चित्ताः। पापोपप्लुतानां हि यमदर्शनादि। भक्त्या च सर्वपापक्षय इत्यसकृदुक्तम्। ततश्च भगवन्निविष्टचित्तो भक्त इति लक्षणार्थः।"
—शुकः (भाग० ६।१।१९)

अ० पा०

भट्टनारायण

भट्टनारायण कन्नौज के ब्राह्मण थे। इनका गोत्र शाण्डिल्य था। इनकी उपाधि कविमृगराज थी। राजा आदिसूर ने पाँच ब्राह्मणों को कन्नौज बुलाया। उनमें भट्टनारायण प्रमुख थे। कुछ समय के बाद इनके अधीन अनेक गाँव हो गये और ये राजा की पदवी से विभूषित हुए तथा इन्होंने एक राज्य की स्थापना की। ऐसी भी मान्यता है कि भट्टनारायण कलकत्ता के प्रसिद्ध टैगोर-वंश के पूर्वज थे।

बंगाल के राजा आदिसूर एक यज्ञ करना चाहते थे। चूंकि आदिसूर शूद्र थे, अतः बंगाल का कोई ब्राह्मण यज्ञ कराने के लिए तैयार नहीं हुआ। उन्होंने कान्यकुब्ज के राजा के पास सन्देश भेजा और निवेदन किया कि यज्ञ में निष्णात पाँच ब्राह्मणों को भेजने की कृपा करें। कान्यकुब्ज के राजा ने भट्टनारायण तथा चार अन्य ब्राह्मणों को यज्ञ कराने के लिए बंगाल भेजा। दूसरी कथा के अनुसार एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बार बंगाल में वर्षा नहीं हुई। बंगाल के राजा ने यज्ञ कराने के लिए कान्यकुब्ज के ब्राह्मणों को बुलाया।

आनन्दवर्धन तथा वामन ने अपने ग्रन्थों में 'वेणी-संहार' के उद्धरण दिये हैं, अतः भट्टनारायण का समय ८वीं शताब्दी का प्रारम्भ प्रतीत होता है।

'शार्ङ्गधरपद्धति' में 'वेणीसंहार' के श्लोक उद्धृत किये गये हैं और कवि का नाम नारायणभट्ट दिया गया है। इससे ज्ञात होता है कि नारायणभट्ट नाम भी व्यवहार में प्रयुक्त होता था। भट्टनारायण का एक अन्य नाम निशानारायण भी कहा जाता है।

भट्टनारायण की केवल एक रचना मिलती है—'वेणीसंहार'। कुछ पाण्डुलिपियों में वेणीसंहार को अभिनवकृति कहा गया है। इससे पता चलता है कि वेणीसंहार के पहले इन्होंने अन्य कृतियों की रचना की थी। 'दशकुमारचरित' की पूर्वपीठिका के दो संस्करण मिलते हैं। एक संस्करण भट्टनारायण-विरचित माना जाता है। वल्लभदेव की 'सुभाषितावलि' में भी भट्टनारायण के नाम से श्लोक मिलते हैं।

भट्टनारायण वैष्णव थे। वेणीसंहार की नान्दी में जो तीन श्लोक आये हैं, उनमें दो कृष्ण के विषय में हैं। उक्त ग्रंथ में विष्णुविषयक अनेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं—

(१)

विष्णुता सस्मितेन.......................
....

—१।३

(२)

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ,
ज्ञानोत्सेकाद् विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः।
यं वीक्षन्ते कमपि तमसां ज्योतिषां वा परस्तात्,
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्तु देवं पुराणम्॥

—१।२३

(३)

नाथ, असुरसमराभिमुखस्य हरेरिव मङ्गलं युष्माकं भवतु।

—प्रथम अंक, पृष्ठ २५

(४)

गत्वा च सरस्तीरं परिज्ञायमानसुयोधनपद-लाञ्छनां पदवीमासाद्य भगवता वासुदेवेनोक्तम्।

—षष्ठ अंक, पृष्ठ १५८

(५)

यद्देवो त्रिभुवननाथो भणति
तत् कथमन्यथा भविष्यति।

—षष्ठ अंक, पृष्ठ १६३

भट्टनारायण मीमांसाशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने युद्ध की तुलना यज्ञ से की है—

चत्वारो वयमृत्विजः स भगवान् कर्मोपदेष्टा हरिः,
सङ्ग्रामाध्वरदीक्षितो नरपतिः पत्नी गृहीतव्रता।
कौरव्याः पशवः प्रियापरिभवक्लेशोपशान्तिः फलं,
राजन्योपनिमन्त्रणाय रसति स्फीतं यशोदुन्दुभिः॥

—१।२५

ये सांख्य, योग तथा वेदान्त के भी मर्मज्ञ थे।

इनके चरित्र-चित्रण में भीम, दुर्योधन कर्ण आदि पात्रों का चित्रण प्रभावोत्पादक है। वेणीसंहार में वीर, शृङ्गार, रौद्र, करुण और बीभत्स का विशेष अभिव्यञ्जन हुआ है। नाटक में गौडीरीति का प्राधान्य है। एक उदाहरण दिया जा रहा है—

चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
सञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः॥

—१।२१

वेणीसंहार में शब्द ध्वनि द्वारा पदार्थ को और अनुकूल छन्द विषय के स्वरूप को निश्चित ही प्रकाशित कर देते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदार्थं ध्वनिना शब्दाश्छन्दांस्यनुगुणानि च।
स्वरूपं विषयस्याद्धा भासयन्ति कवेः कृतौ॥

—संस्कृत-कवि-समीक्षा,
अमरनाथ पाण्डेय, पृ० १०९।

कवि ध्वनियों के द्वारा अर्थ के स्वरूप को प्रस्तुत करने में सफल हैं—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहुः।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकन्दरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः॥

—३।४

कहीं-कहीं विस्तृत वर्णनों की योजना की गयी है, जो अनपेक्षित है। चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक ने युद्ध-भूमि का जो वर्णन किया है, वह लम्बा हो गया है। प्रकृति-वर्णन में कवि का अनुराग नहीं है।

वेणीसंहार के मङ्गलाचरण के रूप में कृष्ण के विषय में दो श्लोक मिलते हैं—

निषिद्धैरप्येभिर्लुलितमकरन्दो मधुकरैः
करैरिन्दोरन्तश्छुरित इव सम्भिन्नमुकुलः।
विधत्तां सिद्धिं नो नयनसुभगामस्य सदसः
प्रकीर्णः पुष्पाणां हरिचरणयोरञ्जलिरयम्॥

—१।१

यहाँ कामना की गयी है कि हरि के चरणों में समर्पित पुष्पाञ्जलि सभासदों को आनन्दित करे।

दूसरा श्लोक बहुत ही सुन्दर है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः

—१।२

'श्रीराधिका यमुना के तटों पर क्रीड़ा में कुपित हो गयीं और रास का परित्याग कर रोती हुई चल पड़ीं। कंसारि भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा के चरण-चिह्नों पर अपना पैर रखते हुए उनका अनुगमन करने लगे, जिससे वे पुलकित हो उठे। इसे देखकर प्रिया श्रीराधा प्रसन्न हो उठीं और मान जाता रहा। इस प्रकार श्रीकृष्ण की अखण्डित प्रार्थना आप लोगों को समृद्ध करे।'

अ० पा०

भानुदत्त

भानुदत्त की ख्याति का मूलाधार उनके द्वारा रचित शृंगार-रस की रचना 'रसमंजरी' है। किन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन्होंने विष्णु-भक्ति से सम्बद्ध काव्य की रचना की है। यह संख्या में अत्यल्प होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण को इन्होंने अपना इष्ट माना है।

भानुदत्त के सम्बन्ध में गंगाधर भट्ट के 'रसिक जीवन' में, गोविन्दजित् के 'सभ्यालंकार' में, वेणीदत्त के 'पद्यवेणी' में तथा हरिभास्कर के 'पद्यमित्र' में चर्चा पाई जाती है।

इन्होंने गीत चौरीसा, काव्यदीपिका, रसमंजरी, कुमारमार्गविभा, अलंकार-तिलक तथा शृंगार-दीपिका की रचना की है। इनकी रचनाओं से पता चलता है कि ये संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् थे। 'रस-मंजरी' में इनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का संकेत मिलता है। भानुदत्त और भानुकर नाम की सार्थकता का संकेत 'रसतरंगिणी' से सर्मपित है। मिथिला-पंजी के अनुसार इनके पिता का नाम गणपति था। पद्यवेणी से भी इसकी पुष्टि होती है—

तातो यस्य गणेश्वरः कविकुलालङ्कार चूडामणि-
र्देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित्कल्लोलकिर्मीरिता
पद्येन स्व-कृतेन तेन कविना श्रीभानुना योजिता
वाग्देवी-श्रुति-पारिजात-कुसुमस्पर्धाकरी मञ्जरी॥

इससे यह स्पष्ट है कि इनके पिता कवि-कुलालंकारचूड़ामणि विदेह (मिथिला) के रहने-वाले थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिथिला-पंजी के अनुसार भानुदत्त की वंशावली इस प्रकार है—

रत्नेश्वर मिश्र→सुरेश्वर मिश्र→रविनाथ मिश्र→जीवनाथ मिश्र→भवनाथ मिश्र→देवनाथ मिश्र→शंकर मिश्र→महादेव मिश्र→भासे मिश्र→दासे मिश्र→गणपति मिश्र→भानुदत्त।

भानुदत्त को शेरशाह का समकालीन माना जाता है। इन्होंने आत्मपरिचय के क्रम में शेरशाह का कीर्तिगान किया है। शेरशाह का राजत्वकाल सन् १५४०–१५४५ ईसवी के बीच माना जाता है। इस आधार पर इनका समय सोलहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया जा सकता है। एक छंद में इन्होंने कृष्ण की वन्दना की है। इस पद्य को दक्षिण के शासक कृष्णदेवराय से सम्बद्ध माना जाता है।

कृष्णं समर-सतृष्णं दृष्टवतो विष्टरश्रवसः।
राजन्य जन्म-मूले भुजमूले पुलक-मुकुलानि॥

'कृष्ण (देव) राजा समर में साकांक्ष होकर युद्ध करते थे। राजा को तो अपनी शक्ति पर ही भरोसा रहता है।'

भानुदत्त ने अपने छन्दों में दो निजाम-शाहों की प्रशंसा की है—एक बुरहान निजाम शाह हो सकते हैं और दूसरे निजाम खान। निजाम खान ही आगे चलकर सिकन्दर लोदी बना। इसका समय सन् १४८९–१५१७ ईसवी माना जाता है।

भानुदत्त के पद्यों में जिस कृष्णराज की चर्चा है वह विजयनगर के प्रसिद्ध राजा कृष्णदेवराय ही हैं, किन्तु 'कृष्ण' शब्द का व्यवहार यहाँ उभयार्थक है। इनकी कृष्ण-भक्ति से सम्बद्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

भूयादेव सतां हितावभगवान् कोलावतारो हरिः।

सिन्धोः क्लेशमपास्य यस्य
दशनप्रान्ते नटन्त्या भुवः।
तारा हारति वारिदस्तिलकति,
स्वर्वाहिनी माल्यति।
क्रीडा-दर्पणति क्षपापतिर
हर्देवश्च ताटङ्कति॥

"भगवान ने सज्जनों के हित के लिए वराह का अवतार ग्रहण किया। समुद्र के दुःख को नाश कर दशन से विश्व का कष्ट दूर किया। अनेक विधि से उनक स्वागत होता है। स्वर्ग से माल्यवृष्टि होती है। उनकी क्रीड़ा से अंधकार नष्ट होता है।"

इतना ही नहीं, कवि कहता है कि कुज्ञान से मैंने प्रयाग में नारायण की आराधना नहीं की है :

कुज्ञानेन मया प्रयागनगरे नाऽऽराधि नारायणः।

अन्यत्र एक श्लोक में कृष्ण के चरण की वन्दना करते हुए ये कहते हैं—

नमस्यामो दामोदर तव पदाम्भोरुहरजः।

"मैं नारायण के चरणकमलों की धूल को भी प्रणाम करता हूँ।"

इससे स्पष्ट है कि भानुदत्त कृष्ण के भक्त थे। 'रस मंजरी' में इनकी भक्त सुलभ विनम्रता का उल्लेख है—

आत्मीयं चरणं दधाति
पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि।

इनके देहावसान के सम्बन्ध में निश्चित समय का निर्धारण नहीं हो सका है। फिर भी इतना असंदिग्ध है कि पण्डितराज जगन्नाथ के पूर्व इनकी साहित्यिक प्रतिभा का वर्चस्व समाज में स्थापित हो चुका था।

मो० मि०

भास

टी० गणपति शास्त्री को १९०९ ई० में भास के तेरह नाटक मिले। ये नाटक एक व्यक्ति की रचनाएँ हैं, क्योंकि इनमें अत्यधिक सादृश्य है। भाषा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शैली में समानता है। भावों तथा विचारों की पुनरुक्ति मिलती है। सभी नाटक 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' के निर्देश के साथ प्रारम्भ होते हैं। सभी में प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग मिलता है। कालिदास आदि के नाटकों में प्रस्तावना में नाटककार और उसके नाटक का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन नाटकों में न तो नाटककार का उल्लेख प्राप्त होता है और न उसके नाटक का ही।

भास का समय तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी ई० पू० रहा होगा। ये उत्तर भारत का विशेय रूप से वर्णन करते हैं। इनका मन उज्जयिनो, मथुरा और अयोध्या में विशेष रूप से रमता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये उत्तर भारत के ही निवासी थे। भास ब्राह्मण थे। राम और कृष्ण में इनकी भक्ति थी। इन्होंने राम और कृष्ण के चरित का भक्ति पूर्वक निबन्धन किया है। वैदिक कर्मकाण्ड में इनकी आस्था थी। भास के वर्णनों से प्रतीत होता है कि इनका सम्बन्ध राजकुल से रहा होगा। ये अन्तःपुर, राजप्रासाद आदि का वर्णन बड़ी रुचि से करते हैं। इनके नाटकों के भरतवाक्य में किसी राजसिंह का उल्लेख मिलता है–

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महोमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

दूतवाक्य

भास अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। इन्होंने वेद, इतिहास-पुराण, धर्मशात्र, राजनोतिशात्र आदि का गम्भीर अनुशीलन किया था। इनके नाटकों से इनका वैदुष्य प्रकट होता है।

कालिदास आदि ने भास के नाटकों की प्रशंसा की है।

(१)

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य
वर्तमानकवेः कालिदासस्य
क्रियायां कथं बहुमानः।

—'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना

(२)

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥

—'हर्षचरित' की प्रस्तावना

बाण कहते हैं कि भास के नाटकों का आरम्भ सूत्रधार से होता है, उनमें अनेक प्रकार के पात्र हैं और पताका का प्रयोग हुआ है। भास ने अपने नाटकों से यश प्राप्त किया है।

(३)

भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

—सूक्तिमुक्तावली

'राजशेखर ने स्वप्नवासवदत्त की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भास के नाटकों को अग्नि में डाल दिया गया, किन्तु अग्नि भी स्वप्नवासवदत्त को न जला सकी।'

(४)

प्रसन्नराघव के कर्ता जयदेव ने भास को कविता-कामिनी का हास कहा है—

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।

—प्रसन्नराघव १।२२

भास के तेरह नाटक हैं। उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

१. मध्यमव्यायोग–यह व्यायोग है। मध्यम पाण्डव भीम एक राक्षस से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करते हैं।

२. दूतघटोत्कच–श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजते हैं।

३. कर्णभार–इन्द्र ब्राह्मण के रूप में कर्ण के पास जाते हैं और उनसे कवच-कुण्डल माँगते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४. ऊरुभङ्ग—भीम तथा दुर्योधन का गदा-युद्ध होता है। भीम दुर्योधन की जाँघें तोड़ते हैं।

५. दूतवाक्य—दुर्योधन गुरुओं और राजाओं के साथ मन्त्रणा-गृह में विराजमान है। उसी समय कञ्चुकी आकर कहता है कि पाण्डव-सेना से दूत आया है। दुर्योधन राजाओं से कहता है कि कृष्ण के आने पर कोई आसन छोड़कर न उठे और कृष्ण को बन्दी बना लिया जाय। ऐसा कहकर दुर्योधन द्रौपदी के चीरहरण का चित्र मँगवाता है और उसे देखने लगता है। उसी समय श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं। उन्हें देखकर सभी राजा विचलित होकर खड़े हो जाते हैं और स्वयं दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रभाव से घबड़ाकर आसन से गिर जाता है। श्रीकृष्ण सभी राजाओं को बैठने की आज्ञा देते हैं। उस समय उन्हें दुर्योधन के हाथ में द्रौपदी का चित्र दिखायी पड़ता है। श्रीकृष्ण दुर्योधन से कहते हैं कि चित्र को हटा दो। इस पर दुर्योधन चित्र हटा देता है और कृष्ण से कहता है कि तुम युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि भृत्यों के साथ सकुशल हो। श्रीकृष्ण ने कहा—'यह प्रश्न दुर्योधन के उपयुक्त है। युधिष्ठिर आदि ने निवेदन किया है कि अब तेरह वर्ष पूरे हो गये हैं, अतः हम लोगों का दाय लौटा दो।' दुर्योधन कहता है कि चाचा पाण्डु तो आखेट करते समय मुनि के शाप से ग्रस्त हो गये थे, अतः वे स्त्रीप्रसङ्ग से विरत रहे। अब दूसरे से पैदा हुए पुत्रों का दाय कहाँ ? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पितामह क्षयरोग से ग्रस्त होकर मरे थे। व्यास के सम्पर्क से अम्बिका से तुम्हारे पिता धृत-राष्ट्र उत्पन्न हुए, फिर धृतराष्ट्र का पितृदाय में कहाँ से भाग मिला ? इस पर दुर्योधन ने कहा—'हे कृष्ण ! राज्य का भोग तो बल से होता है, वह याचना से नहीं मिलता। यदि वे लोग राज्य चाहते हैं, तो पौरुष का प्रदर्शन करें अथवा शान्ति के मार्ग का अवलम्बन करते हुए किसी आश्रम में निवास करें। देवपुत्रों और मनुष्यों में मित्रता नहीं हो सकती।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'अर्जुन अत्यधिक पराक्रमी है। उसने किरातवेशधारी शङ्कर को भी अपने युद्ध से सन्तुष्ट किया है, खाण्डव वन में आग लगने पर उसे बाणों से आच्छादित कर दिया, इन्द्र को पीड़ित करने वाले निवातकवचों को मार डाला और अकेले ही भीष्म आदि को पराजित कर दिया। जब चित्रसेन ने तुम्हें बाँध लिया था, तब अर्जुन ने ही छुड़ाया था। यदि तुम पाण्डवों को उनका दाय नहीं दोगे, तो वे तुमसे बलपूर्वक ले लेंगे।'

श्रीकृष्ण के वचनों से आहत होकर दुर्योधन उन्हें 'नीच' कहता है और उनसे बात नहीं करता। फिर उपस्थित लोगों से कहता है कि कृष्ण को बाँध लो। जब कोई तैयार नहीं होता, तब वह बाँधने के लिए स्वयं खड़ा हो जाता है। श्रीकृष्ण के विश्वरूप प्रकट करने पर भी जब दुर्योधन शान्त नहीं होता, तब श्रीकृष्ण सभा को जृम्भित कर देते हैं। श्रीकृष्ण क्रुद्ध होकर सुदर्शनचक्र का आह्वान करते हैं और उससे दुर्योधन का वध करने के लिए कहते हैं। इस पर सुदर्शन बहुत महत्त्वपूर्ण बात कहता है—'यदि आप आज ही दुर्योधन का वध कर दीजियेगा, तो क्षत्रिय युद्ध से विरत हो जायेंगे और आपके कार्य की सिद्धि नहीं होगी।' उसी समय शार्ङ्ग धनुष आदि भी आते हैं, किन्तु सुदर्शन उन्हें लौटा देता है।

अब श्रीकृष्ण पाण्डव-शिविर में जाना चाहते हैं। उसी समय धृतराष्ट्र वहाँ आ जाते हैं और श्रीकृष्ण को मनाते हैं। फिर श्रीकृष्ण उन्हें लौटा देते हैं।

६. बालचरित—इसमें श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन मिलता है। इसमें पाँच अङ्क हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्धरात्रि के समय श्रीकृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव श्रीकृष्ण को लेकर मथुरा से निकलते हैं। अन्धकार के कारण मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता। वह किसी प्रकार यमुना के तट पर पहुँचते हैं। रात्रि में नाव नहीं मिलती, अतः तैर कर यमुना को पार करना चाहते हैं। उसी समय एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित होता है। यमुना का जल दो भागों में विभक्त हो जाता है और वसुदेव को मार्ग मिल जाता है। यमुना को पार करने के बाद वसुदेव विचार करने लगते हैं कि कहाँ जायँ? उसी समय उन्हें नन्द का स्मरण हो आता है। एक बार कंस ने नन्द को सजा दी थी कि उसे बाँधकर कोड़े लगाये जायँ। वसुदेव ने उन्हें बाँध तो दिया था, किन्तु कोड़े नहीं लगाये थे। वसुदेव रात्रि में वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं और प्रातःकाल जाने का निश्चय करते हैं। नन्द की स्त्री यशोदा ने भी उसी रात एक कन्या को जन्म दिया था। यशोदा प्रसव के समय मूर्च्छित हो गयी थीं, अतः उन्हें पता नहीं था कि कन्या उत्पन्न हुई है अथवा पुत्र। कन्या उत्पन्न होते ही मर जाती है। नन्द उसे लेकर यमुना में प्रवाहित करने जाते हैं। वसुदेव नन्द को पहचान लेते हैं। वे नन्द को बुलाते हैं, उन्हें अपनी कथा सुनाते हैं और बालक को ले जाने का प्रस्ताव रखते हैं। जब वसुदेव नन्द के प्रति किये गये उपकार का स्मरण दिलाते हैं, तब नन्द बालक को ले लेते हैं। वसुदेव भी नन्द के हाथ से कन्या को लेकर मथुरा लौटते हैं। कन्या जी जाती है। वसुदेव यमुना को पारकर अपने घर लौट आते हैं।

कंस के भवन में चाण्डाल-युवतियाँ प्रवेश करती हैं। मधूक ऋषि का शाप भी प्रवेश करता है। कंस ज्योतिषियों से पूछता है कि भूमिकम्प आदि का क्या फल हैं। तब वे बताते हैं कि जो अन्तरिक्ष में निवास करता है, वह प्राणियों के कल्याण के लिए मृत्युलोक में उत्पन्न हुआ है। कञ्चुकी से सूचना मिलती है कि देवकी के कन्या उत्पन्न हुई है। कंस उस कन्या को शिला पर पटकता है। उसका एक भाग पृथ्वी पर दिखलायी पड़ता है और दूसरा आकाश में।

श्रीकृष्ण के जन्म के दिन से ही व्रज में सुख और समृद्धि की वृष्टि होने लगती है। श्रीकृष्ण अरिष्ट नामक असुर का वध करते हैं। दामक सूचना देता है कि यमुना में कालिय नाग दिखायी पड़ रहा है। कृष्ण कालिय को वश में कर लेते हैं तथा हल्लीसक नृत्य करते हैं। कालिय धमकी देता है कि मैं अपनी ज्वाला से संसार को भस्म कर दूँगा, किन्तु वह श्रीकृष्ण की भुजा को नहीं जला पाता। कालिय श्रीकृष्ण की प्रभुता से अभिभूत होकर वन्दना करता है तथा अपनी रानियों को लेकर श्रीकृष्ण की शरण में आता है। वह बतलाता है कि मैं गरुड़ के भय से यहाँ रह रहा हूँ। श्रीकृष्ण कहते हैं कि तुम्हारे शिर पर मेरा चरण-चिह्न देखकर गरुड़ तुम्हें छोड़ देंगे। यमुना नदी से कालिय अपने परिवार के साथ चला जाता है।

कंस ध्रुवसेन से श्रीकृष्ण के आगमन की बात पूछता है। ध्रुवसेन बताता है कि कृष्ण और सङ्कर्षण ने उत्पलापीड को मार डाला। श्रीकृष्ण ने राजकुल के द्वार पर स्थित कुब्जा के कुब्जात्व को दूर कर दिया। राजा भट से कहता है कि चाणूर और मुष्टिक को युद्ध के लिए भेजा जाय। युद्ध प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण और बलराम चाणूर और मुष्टिक का वध कर डालते हैं। श्रीकृष्ण कंस को भी मार डालते हैं। उस समय वसुदेव आते हैं तथा श्रीकृष्ण और बलराम का परिचय देते हैं। वे दोनों वसुदेव को प्रणाम करते हैं। वसुदेव उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद देते हैं। वसुदेव भट से कहते हैं कि उग्रसेन को कारागार से निकालकर उनका अभिषेक किया जाय।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उग्रसेन को पुनः राज्य मिलता है। वे श्रीकृष्ण की प्रार्थना करते हैं। नारद गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ श्रीकृष्ण की पूजा के लिए उपस्थित होते हैं। श्रीकृष्ण उनका सत्कार करते हैं। गन्धर्वों और अप्सराओं की स्तुति से श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। इसके बाद वे देवलोक चले जाते हैं।

७. पञ्चरात्र—द्रोण ने दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य देने लिए कहा। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाण्डव पाँच रात के भीतर मिल जाते हैं, तो उन्हें आधा राज्य दे दिया जायगा। समय के भीतर पाण्डवों का पता लग गया और उन्हें आधा राज्य दे दिया गया।

८. अभिषेक—रावण-वध तथा राम के अभिषेक का वर्णन है।

९. प्रतिमा—रामवनवास से रावणवध तक की कथा का वर्णन है।

१०. स्वप्नवासवदत्त—यौगन्धरायण के प्रयत्न से उदयन और पद्मावती का विवाह होता है।

११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यौगन्धरायण की योजना से उदयन तथा वासवदत्ता का विवाह होता है।

१२. अविमारक—कुन्तिभोज की कन्या कुरङ्गी तथा अविमारक के विवाह का वर्णन है।

१३. चारुदत्त—ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्तसेना के प्रेम का वर्णन है।

भास की भाषा सरल है। वह भावों की अभिव्यञ्जना करने में अत्यन्त समर्थ है। बड़े-बड़े समासों का प्रयोग नहीं हुआ है। भाषा में मुहावरों का यथोचित प्रयोग किया गया है, जिससे प्रभावोत्पादकता बनी हुई है। भास नाटकीय तत्त्वों के आधान में कुशल हैं। रस की अभिव्यक्ति पूर्णरूप से हो रही है। हास्य की योजना में भास कुशल हैं। विदूषक की योजना से रोचकता विद्यमान है। भास के नाटकों में पात्रों की समीचीन योजना भी मिलती है। कथानक अनेक स्थलों पर विस्मय की सृष्टि करता है। संवाद संक्षिप्त तथा अनुरूप हैं। अलंकारों का बाहुल्य नहीं है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। मुद्रालङ्कार की भी योजना हुई है। नाटक के मङ्गलाचरण में विशिष्ट योजना के माध्यम से पात्रों की सूचना दी गयी है। स्वप्नवासवदत्त का अधोलिखित श्लोक मुद्रालङ्कार का उदाहरण है—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥

यहाँ बलराम की स्तुति की गयी है। इससे उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक की सूचना मिलती है।

भास ने सायंकाल का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है-

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥

—स्वप्नवासवदत्त १।१६

'पक्षी घोसलों में चले गये, मुनि जल में स्नान कर रहे हैं, प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही हैं, यज्ञ का धुआँ तपोवन में फैल रहा है। दूर की यात्रा से थककर सूर्य भी अपनी किरणों को समेट कर और रथ को मोड़कर धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर जा रहे हैं।'

एक श्लोक में डरी हुई गोपवधुओं का वर्णन है। श्रीकृष्ण कह रहे हैं—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नकम्रस्तनाः
कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयो विस्रस्तकेशस्रजः।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता-
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गनाः॥

—बालचरित ४।१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मत्त चकोरों के बच्चों की तरह नेत्रोंवाली, पूर्ण प्रस्फुटित कुचोंवाली, प्रस्फुरित होते हुए अधरोष्ठों की कान्तिवाली, गिरती हुई केशों की मालाओंवाली, गिरे हुए उत्तरीय वस्त्रोंवाली, भय से व्याप्त वचनोंवाली, कालिय को देखकर डरी हुई सुन्दर गोपाङ्गनाएँ मेरे पीछे आ रही हैं।'

अ० पा०

भुवनेश्वर प्रसाद चौधरी 'भुवनेश'

'भुवनेश' का जन्म भागलपुर जिला के सुल्तानगंज थाना के अन्तर्गत बाथ नामक ग्राम में कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी सन् १८९० ई० में कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० लालजी चौधरी और माता का नाम रमादेवी था।

ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। हिन्दी, बंगला उर्दू तथा अंगिका भाषा का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनमें इनकी बहुत-सी रचनाएँ हैं। ये आशु कवि और श्रीमद्भागवत के एक प्रसिद्ध कथावाचक थे। ये योगिराज भूपेन्द्रनाथ सान्याल (मन्दार, बौंसी आश्रम) के शिष्य थे। अतः राजयोग की साधना इन्हें परंपरागत रूप से प्राप्त थी। किन्तु स्मार्त होने के नाते राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि सभी देवी-देवताओं को मानते थे। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रति इन्हें विशेष आकर्षण था।

एक बार ये जानकीपुर-निवासी श्री कृष्णचन्द्र चौधरी के यहाँ श्रीमद्भागवत की कथा सुना रहे थे। पवित्र व्रजधाम का वर्णन करते-करते ये भाव-विभोर हो गये। इसी तन्मयता की दशा में ये बार-बार कहते गये-'प्रभो! क्या तुम्हारी लीला-भूमि देखने का सौभाग्य मुझ अधम को नहीं होगा ?' किसी तरह उस दिन की कथा समाप्त हुई।

उस दिन की कथा में वे ऐसे आत्मविस्मृत हुए कि भोजन भी नहीं किया। कथा समाप्त होने पर सीधे घर चले गये। वहाँ उन्हें एक सम्मन मिला। उसके अनुसार इन्हें मथुरा के न्यायालय में उपस्थित होना था। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने वहाँ इनके विरुद्ध मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया था। भागलपुर में सोनार लोग यज्ञोपवीत ले रहे थे। इसका विरोध करनेवालों में इनका नाम था। उक्त मुकदमा इसीसे सम्बद्ध था। रायबहादुर देवी प्रसाद ढाढनिया ने इनके मथुरा जाने की व्यवस्था कर दी।

मथुरा पहुँचकर आपने गोविन्ददेव के मन्दिर में जाकर उनसे प्रार्थना की कि भगवन्, मैंने आपकी लीलाभूमि देखने की कामना की थी, किन्तु आपने मुझे कंस की नगरी दिखा दी। उसी दिन शाम को मालूम हुआ कि सोनारवाला मामला वृन्दावन के न्यायालय में चला गया है। प्रभु की इस कृपा पर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ मामले में इनकी विजय हुई। आचार्य चतुरसेनजी हार गये। आनन्द-विह्वल हो इन्होंने वहीं यह पद रचकर आराध्य-युगल को सुनाया था—

महारत्नकान्त्युल्लसत्-कुन्तलायै
मयूराच्छपिच्छोच्छुरच्छेखराय।
तडित्पीत-दीप्त्यै
घनश्यामलाय
नमो राधिकायै
नमो माधवाय ॥ १ ॥

सदोशीर-कर्पूर-लेपार्चितायै
तथा गोपिकाचन्दनार्चाचिताय।
सुबिम्बाधरायै च
वंशीधराय
नमो राधिकायै
नमो यादवाय ॥ २ ॥

भवाब्धौ पतत्मुक्ति-युक्तिप्रदायै,
तथैवाश्रितानां सदा मुक्तिदाय।
वराभीतिदायै
जनोद्धारकाय
नमो राधिकायै
नमो माधवाय ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महामूल नामाम्बुजाधिष्ठितायै
स्वयम्भू-स्वरूपेण संवेष्टिताय
सुषुम्ना-पथेनोच्चलन्त्यायजाय
नमो राधिकायै
नमः केशवाय ॥ ४ ॥

गुरुमहिमापरक इनकी हिन्दी रचना का भी एक उदाहरण दिया जा रहा है—

जो शिवरूप सदा करुणामय
आनन आनन्दपूर्ण सुहावे ।
पार उतार भवाम्बुधि सों पुनि
ब्रह्म सुधानिधि में अह्नवावे ॥
न्ही तल के तमपुंज विनाशक
शान्त महान्त स्वरूप लखावे ।
वा गुरु के पग में प्रणती
जो सुकौशल से भवभीति भगावे ॥

इनका देहावसान १७ मई, १९७६ ई० को हुआ।

त० ना०

भोलानाथ

संस्कृत-साहित्य में भोलानाथ के नाम से एकाधिक भक्त कवियों का उल्लेख मिलता है। 'पांथदूत' के रचयिता भोलानाथजी आधुनिक कवियों में प्रसिद्ध रचनाकार हुए हैं। किन्तु प्रस्तुत महाकवि भोलानाथ सम्भवतः 'पांथदूत' के रचयिता से भिन्न हैं।

ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता नन्दराम शुक्ल भी अच्छे विद्वान् थे। प्रारम्भ में इनके पूर्वज देवकलीपुर से आकर आगरा में बस गये थे। बाद में भरतपुर-नरेश श्री सूर्यमल्ल इनके पिता को अपने यहाँ ले गये। कालान्तर में ये जयपुर चले गये। जयपुर में महाराज प्रतापसिंह (सं० १८४०) के आश्रय में रहकर इन्होंने विभिन्न भाषाओं में अनेक काव्य रचे। इनकी काव्यकला से प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हें 'महाकवि' की उपाधि से विभूषित किया। प्रतापसिंह के राज्याश्रित होने के कारण इनका समय सं० १८४० के लगभग निश्चित किया जा सकता है।

भोलानाथजी सफल कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के भक्त भी थे। ब्रजमण्डल से सम्पर्क रहने के कारण कृष्णानुराग आपके व्यक्तित्व में समाविष्ट था। जयपुर में श्री गोविन्ददेवजी के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी। ब्रजकिशोर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के प्रति आपकी भक्ति-विषयक अनेक जनश्रुतियाँ भी हैं। जयपुर में प्रायः यह माना जाता था कि इन्हें श्री गोविन्ददेवजी के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इनके काव्य-ग्रन्थों के अनुशीलन से भी यह स्पष्ट होता है कि ये अपने समय के विशिष्ट कृष्ण-भक्त कवि थे।

इन्होंने विभिन्न भाषाओं में प्रचुर ग्रंथ लिखे, उनमें कृष्ण-भक्तिपरक रचनाओं की संख्या का आधिक्य है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि आपने प्रायः 'ब्रजनिधि' उपनाम से रचनाएँ कीं। इन्होंने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया।

इनकी रचनाओं से इतना स्पष्ट है कि ये परम वैष्णव तथा जयपुर के राजाओं के कुलदेवता गोविन्द-जी के एकांत भक्त थे। किन्तु ये किस सम्प्रदाय में दीक्षित थे—यह बतलाना कठिन है। इनके भक्त-व्यक्तित्व के सम्बन्ध में रचनाओं के साक्ष्य के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

आपका श्रीमद्भागवत पर आधारित 'श्रीकृष्ण-लीलामृतम्' एकमात्र कृष्णभक्ति-काव्य है, जिसमें कुल १०४ श्लोक हैं। प्रत्येक श्लोक भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

यः सर्वत्र महीतलोऽस्ति विदितो
देवेन कृष्णात्मना ।
स्वीयेनैव करेण पुष्पसदृशः
प्रस्थापितश्छत्रवत् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीगोपजनाश्रयावनपरो
भूभृत्यतापाश्रयः ।
सोऽयं वः किल कान्तिवर्द्धनपरो
गोवर्धनो वर्द्धताम् ।।

'जिस पृथ्वी का कण-कण भगवान् कृष्ण के द्वारा ज्ञात है, उसीको उन्होंने अपने हाथ में पुष्प की भाँति छत्र के रूप में धारण कर लिया। गोप-गोपियों के आश्रयदाता तथा रक्षक, पृथ्वी और आश्रितों के संताप को दूर करनेवाले आप सबकी कांति को बढ़ानेवाले वे गोवर्धन अभ्युदय प्राप्त करें।'

श्या० श० वा०

मठपतिकल्याणभट्ट

पुष्टिमार्गीय आचार्य कल्याणभट्ट ने 'वल्लभ-स्तोत्र' और 'विज्ञप्तिश्लोकाः' की रचना की है। 'वल्लभस्तोत्र' में १० श्लोक और 'विज्ञप्तिश्लोकाः' में ३७ श्लोक हैं। कवि ने विज्ञप्तिश्लोकाः में अपने दैन्य का प्रकाशन किया है।

विज्ञप्तिश्लोकाः के अधोलिखित श्लोक कितने मनोरम हैं—

वियोगो बाधते तावद् यावद्धृद्येव ते स्थितिः ।
यदा बहिस्तदा नेति विचित्रेयं स्थितिः सखे ।।

'जब तक हृदय में ही आपकी स्थिति है, तब तक वियोग पीड़ित करता है। जब बाहर स्थिति रहती है, तब नहीं। हे मित्र, यह विचित्र स्थिति है।'

त्वत्कृपातः पुरा नाथ मया कालादयः प्रभो ।
तुच्छीकृताः साम्प्रतं मां बाधन्ते त्वत्कृपां विना ।।

'हे नाथ, आपकी कृपा के कारण पहले मैंने काल आदि को तुच्छ सिद्ध कर दिया था, (किन्तु) हे प्रभो, आपकी कृपा के अभाव में अब वे मुझे पीड़ित कर रहे हैं।'

अ० पा०

मथुरादास

मथुरादास पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। ये प्रयाग के पास सुवर्णशेखर के निवासी थे। इन्होंने 'वृषभानुजानाटिका' की रचना की है। यह चार अङ्कों की है। इसमें कृष्ण और राधा की प्रणय-क्रीड़ाओं का वर्णन हुआ है। राधा ने कृष्ण के हाथ में किसी नायिका का चित्र देखा, जिससे उन्हें ईर्ष्या हो गयी। उन्हें अन्त में मालूम हुआ कि चित्र मेरा ही है।

अ० पा०

मथुरानाथ शास्त्री भट्ट

भट्टजी का जन्म जयपुर नगर में पं० द्वारकानाथ भट्ट के घर आषाढ़ कृष्ण सप्तमी सं० १९४६ (सन् १८८९ ई०) को हुआ था। पं० सुन्दरलाल भट्ट के निस्संतान दिवंगत होने पर श्री मथुरानाथ शास्त्री दत्तकरूप में उत्तराधिकारी चुने गये। शास्त्रीजी ने दत्तक पुत्र के रूप में जब श्री सुन्दरलाल भट्ट की जागीरदारी का उत्तरदायित्व सँभाला तो इन्होंने अपने पालक पिता के पचीस हजार रुपये ऋण की अदायगी की। इनके पिता श्री द्वारकानाथ भट्ट अपने पारिवारिक जीवन के प्रति उदासीन रहते थे। अतः इनके पितामह पं० लक्ष्मीनाथ भट्ट ने ही इनको संस्कृत विद्या के प्रति आकृष्ट किया। उस समय जयपुर नगर में सवाई रामसिंह (द्वितीय) द्वारा स्थापित संस्कृत पाठशाला थी जिसमें राज्याश्रित संस्कृत विद्वानों के पुत्र-पौत्रों को अनिवार्य रूप से संस्कृत-शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। परम्परानुसार अध्ययन के लिए मथुरानाथजी को भी संस्कृत पाठशाला में प्रवेश दिला दिया गया।

माता श्रीमती जानकीदेवी का इनके बाल्यकाल में ही निधन हो गया था। पारिवारिक कठिनाइयों तथा संघर्षपूर्ण वातावरण में आपने अपना अध्ययन जारी रखा। बाल्यावस्था में ही इन्हें 'अष्टाध्यायी' तथा 'अमरकोष' के तीनों काण्ड कंठस्थ हो गये थे। इन्होंने व्याकरण शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् पं० काशीनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शास्त्री से संस्कृत का अध्ययन कर 'व्याकरण प्रवेशिका' में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त किया। उपाध्याय परीक्षा में भी आपका व्याकरण विषय था। तत्कालीन शिक्षा-निदेशक श्री संजीवन गंगोपाध्याय ने इनकी विद्वत्ता एवं अध्ययनशीलता से प्रभावित होकर इनको साहित्य तथा व्याकरण विषय लेकर स्नातक परीक्षा में प्रवेश हेतु विशेष अनुमति प्रदान की थी। इन्होंने साहित्य-शास्त्र का अध्ययन पं० श्री गोपीनाथ शास्त्री दाधीच नागलिया से और व्याकरण का अध्ययन पं० लक्ष्मीनाथ शास्त्री तथा पं० हरिदत्त झा से किया था।

आपने पंजाब विश्वविद्यालय से सन् १९०६ ई० में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रथम आए। १९०७ ई० में इन्होंनेव्याकरण शास्त्री तथा १९०९ ई० में साहित्याचार्य परीक्षा साहित्य-मर्मज्ञ पं० श्रीकृष्ण शास्त्री के शिष्यत्व में उत्तीर्ण की। आपको महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी के अध्यक्षता काल में संस्कृत कॉलेज में द्वितीय अध्यापक के रूप में नियुक्ति मिली। १९२६ ई० में आप महाराजा कॉलेज में स्थानान्तरित किये गये। आपने अंग्रेजी माध्यम से पढ़नेवाले विद्यार्थियों की संस्कृत-भाषा अध्ययन में कठिनाइयों को देखकर संस्कृत-पाठन की नवीन शैली का आविष्कार किया था। सन् १९३० ई० में आप संस्कृत पाठशालाओं के निरीक्षक नियुक्त हुए। सन् १९३४ ई० में महाराजा संस्कृत कॉलेज में साहित्य-विभाग के अध्यक्ष बने। सन् १९४२ ई० में आप सेवानिवृत्त हुए।

आपने 'संस्कृत-रत्नाकर' तथा 'भारती' नामक संस्कृत की पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

सन् १९३६ ई० में अखिल भारतीय संस्कृत-साहित्य सम्मेलन के २५वें अधिवेशन के अवसर पर आपको 'कविशिरोमणि' की उपाधि से विभूषित किया गया। भारत-धर्म-महामंडल, वाराणसी ने आपको 'साहित्य-वारिधि' उपाधि से विभूषित किया। वेल्लनाटीय तेलुगु सभा ने 'कवि-सार्वभौम' की उपाधि से आपको सम्मानित किया। आप राजस्थान सरकार द्वारा संस्थापित संस्कृत भाषा, शिक्षा-व्यवस्था, समीक्षा एवं नीति-निर्धारिणी समिति के सलाहकार रहे। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षान्त-समारोह पर आयोजित कवि-सम्मेलन में आप सभापति निर्वाचित हुए थे। राजस्थान साहित्य अकादमी के आप संस्थापक सदस्य थे।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने ७६ वर्ष तक साहित्य-साधना की। मूल रूप में आपने संस्कृत-साहित्य का प्रचार, प्रसार व परिवर्धन किया। आप संस्कृत तथा ब्रजभाषा दोनों में ही काव्य-रचना करते थे। इन्होंने संस्कृत में उपन्यास तथा कथा-साहित्य पर लेखनी उठायी। इनके द्वारा रचित साहित्य को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) पद्य-साहित्य :

खण्ड काव्य—	मनोलहरी, सुर-भारती, वियोगिनी, विप्रलापा
ऐतिहासिक काव्य—	जयपुर-वैभव
भक्ति-काव्य—	गोविन्द-वैभव
स्तोत्र-काव्य—	कपिलायाष्टकम्, सती-सप्तदशी, महेन्द्रनीराजनं, मंगल गजल गीति, भगवन्तं प्रति।

(आ) गद्य-साहित्य :

उपन्यास—	आदर्श-रमणी
अलंकार-शास्त्र—	साहित्य-वैभव
व्याकरण-शास्त्र—	धातुप्रयोग पारिजात, व्युत्पत्ति-विलास, संस्कृत-सुबोधिनी।
टीका—	रसगंगाधर, ईश्वरविलास-महाकाव्य, विलासिनी टीका, पद्य-मुक्तावली-गुणगुंफिनी टीका, वृत्त-मुक्तावली, गीत-गोविंद टीका, संस्कृत गाथा सप्तशती व्याख्या, कादम्बरी, चषक-वृत्ति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य-सृजन के साथ-साथ श्री भट्टजी समय-समय पर समस्या-पूर्ति भी किया करते थे। समस्या-पूर्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

१. समस्या—'प्रत्यक्षमीक्षस्व ताम्'

किं वा केवलभारते त्रिभुवनेष्युज्जृम्भते देववाक्,
क्रीडन्तीं कविकौशलेषु पुरतः प्रत्यक्षमीक्षस्व ताम्।
सं० रत्नाकर २।२, पृ० ६१

'केवल भारत में ही नहीं, वाग्देवी समस्त ब्रह्मांड में उल्लसित होती हैं। कवियों के कौशल में (कविताओं में) समक्ष ही प्रत्यक्ष होनेवाली उनका (सारस्वत उत्कर्ष की अनुभूतिमयी) साक्षात्कार करो (किया जा सकता है)।

'गोविन्द-वैभव' शास्त्रीजी का भक्तिपरक संकलित गीति-काव्य है। इस काव्य की स्वयं भट्टजी ने संस्कृत टीका के साथ हिन्दी टीका भी प्रस्तुत की है। कुण्डलिया छन्द में शास्त्रीजी ने भगवान् गोविन्द का स्मरण किया है। एक पद्य में शिखा से चरण तक भगवान् के प्रत्येक अंग का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की शोभा निहारने के लिए मन का वहाँ जाना सार्थक है—

२ कुंडलियाँ छन्द में संस्कृत शिख-नख-रचना का उदाहरण—

कालिन्दीपुलिने पथिक ! तरुणतमालमुपेहि।
शिरसि यस्य बर्हो लसति, तदनु शुकं दृशि देहि ॥
तदनु शुकं दृशि देहि, कपोतस्तदधो राजति।
कुसुमराशिरस्यान्तिके हि सुभृशं विभ्राजति।
विद्युद्द्युतिमुपयाति हंसमुखरे नवनलिने।
मंजुनाथ नय मनः द्रुतं कालिन्दीपुलिने ॥
—१२२।४

'हे पथिक ! ययुना के पुलिन प्रदेश में परिशोभित तमाल तरु तले तुम अवश्य ही जाओ। जिसके शिर पर मोर-पंख शोभा पा रहे हों—उस तमाल श्यामल श्याम को निहारो ! सर्वप्रथम शुक (नासिका) को, फिर कपोल (ग्रीवा) को देखना (शुक के नीचे ही कपोत शोभित है)। उसके बाद कुसुमराशि (कौस्तुभ-मणि और वनमाल तथा कमलवत् कर) का अवलोकन करना। वहीं ये सब विभ्राजमान हैं। पगों में, जो कमल के समान कोमल हैं—हंस के समान शब्दायमान नूपुर हैं। वे विजली के समान चमकते हैं। हे मंजुनाथ ! तू अपना मन उसी कालिन्दीकूल में ले चल !'

विशेष—इस पद्य में मोर, शुक, कपोत और हंस के प्रतीकों में आराध्य के अंगों की आभा का आकलन किया गया है।

पद्धरी छंद में श्रीकृष्ण का शास्त्री जी ने सरल संस्कृत में निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया है—

श्री कृष्णचन्द्र व्रजपतिकिशोर
राधामुखेन्दुचंचल चकोर
अयि सकलसार गुणनीयगाथ
मम मनसि सर्वदा विहर नाथ ॥
—गो० वै० १६८।४

'संस्कृत-रत्नाकर' में श्रीकृष्ण भगवान् का 'शिखनख' वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

वितुलित कुन्तलेषु मुकुटमुदेति मुदे,
सा काचिन्मुखश्रीर्वहेद् राकापतेरल्पताम्।
कण्ठे वनमाला, कर्णमध्ये कर्णपूरं भावि,
केयूरं दधाति भुजे शोभा वधूतल्पताम् ॥
पीताम्बरशोभिनी निवीता रत्नकाञ्ची,
किं च पदयोदिता नूपुरश्रीर्यात्यनल्पताम्।
मनसि मनोभवोपि पूर्णपरिक्षोभावहा,
श्री गोविन्दशोभा मनोलोभायोपकल्पताम् ॥
—२।१

'भगवान् श्रीकृष्ण के उलझे हुए कुन्तल कितने सुन्दर हैं ? उन पर मुकुट की छटा ! श्यामसलोने की मुखश्री के समक्ष राकापति भी तुच्छ प्रतीत हो रहे हैं !

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गले में वनमाला, कानों में कर्णफूल, बाँहों में केयूर ! शोभा की वधू इस सुषमाशय्या पर सो रही है ! इधर पीताम्बर, उधर रत्नों से राजित करधनी और पैरों में नूपुर अनल्प (अत्यन्त) सौन्दर्य के प्रतीक से (दीख रहे) हैं।

मन में मनोभव का पूर्ण परिक्षोभ ! श्री गोविन्द (वासुदेव) की शोभा भक्त के मन में दर्शन की लोलुपता के उद्रेक के लिये उपकल्पित क्यों न हो ?'

वसंत-वर्णन के समय श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करते हुए शास्त्रीजी ने लिखा है—

वनविटपेषु भूरि शोभते कुसुम घटा
रोचते सरोजखण्डसुषमा सरसि सरसि।
—रत्नाकर ११।१

शास्त्रीजी ने संस्कृत में ही नहीं, ब्रजभाषा में भी काव्य-रचनायें की हैं। आपका मत है, 'दच्छन में काव्य गुन रीति निरधारिये।' उदाहरणार्थ कुछ छंद प्रस्तुत हैं—

(१)

लाल के कण्ठ में गुंज की माल,
विसाल भुजान में बाजू खुसाल हैं।
साल हैं सोभित अंसधरे,
बिथुरी अलकें लखि होत विहाल हैं॥

हाल हैं रास-विलास पगे,
उमंगे रस सों सखि ये ब्रजपाल हैं।
पाल हैं या ब्रजमण्डल के,
चलिके लखिये विहरैं नंदलाल हैं।

(२)

ललितनिकुंजन में बंसीधुनि गुंजन वो,
जासो सुधि भूलीं हम देह धन धाम की।
मदन अधीर होय जमुना के तीर जाय,
काम पीर हरियो हूँ बात भई नाम की॥

मथुरा नगरवारी आज उन्हें प्यारी भईं,
हम ब्रजनारी हैं गँवारी कौन काम की।
प्रेम सुध साधे भाव आधे हूँ रहे न कछू,
राधे जिन कहो सुधि आवत है स्याम की॥

शास्त्रीजी की मान्यता है कि श्रीकृष्ण से स्नेह कर अपने कार्य सम्पूर्ण करा लीजिये, अपना जन्म इस संसार में नाहक न गुजारिये—

हारिये कभू न सत्यपच्छ के परीच्छन में,
दच्छन में काव्य गुनरीति निरधारिये।
धारिये सदा ही निज मन में पराये गुन,
औगुन की बानि नित चित सों बिसारिये॥

सारिये सकल काम स्याम सों सनेह करि,
देह धरि नाहक न जनम गुजारिये।
जारिये निखिल दुख दूखन अहमति के,
संमति के आगे अब हिम्मति न हारिये॥

शास्त्रीजी की यह विशेषता थी कि ये संस्कृत-काव्य का सृजन संस्कृत छंदों में, हिन्दी के छंदों में—कवित्त, कुंडलियाँ, छप्पय, चौपाई, दोहा, सवैया दुर्मिल आदि तथा अरबी-फारसी के छंदों में—बहर, हजज, मुसद्दस, महजूम, रमल मुसम्मस, महजूब आदि में करते थे।

आपका देहावसान एक दीर्घ साहित्य-साधना के पश्चात् ४ जून सन् १९६४ ई० को हुआ।

रा० प्र० कु०

मधुसूदन सरस्वती

मधुसूदन सरस्वती का समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १७वीं शताब्दी का प्रारम्भ है। इनके मूल-पुरुष राममिश्र थे। वे बंगाल के फरीदपुर मण्डल के कोटालीपाडा नामक ग्राम में रहते थे। मधुसूदन के पिता प्रमोदन पुरन्दराचार्य थे। उनके चार पुत्र थे—श्रीनाथ चूडामणि, यादवानन्द न्यायाचार्य, कमलनयन और वागीश गोस्वामी। यादवानन्द प्रतापादित्य की सभा के सदस्य थे। राजा ने उन्हें अविलम्बितसरस्वती की उपाधि प्रदान की थी। कमलनयन ने नवद्वीप में न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। कमलनयन ही कालान्तर में मधुसूदन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरन्दर एक बार मधुसूदन को लेकर माधवपाश के दरबार में गये और इनके अद्भुत ज्ञान का प्रदर्शन कराया। पुरन्दर एक स्थान पर झोपड़ी बनाना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने राजा से प्रार्थना की, किन्तु राजा ने अनुमति नहीं दी। इससे मधुसूदन अत्यधिक दुःखित हुए और अपने पिता से आज्ञा लेकर काशी चले आए।

फरीदपुर में एक गाँव है, जिसका नाम पुरन्दर-वाटिका है और वहीं दक्षिणामूर्ति और कालिका का मन्दिर भी है। कहते हैं कि इसे पुरन्दर ने बनवाया था।

मधुसूदन के विद्यागुरु माधवसरस्वती थे और परमगुरु श्रीरामसरस्वती। विश्वेश्वरसरस्वती ने मधुसूदन से कहा कि हम संन्यास देने के पहले छात्र की परोक्षा लेते हैं, अतः तुम कुछ लिखकर दिखाओ। इस पर मधुसूदन ने गीता पर उत्कृष्ट निबन्ध लिखकर दिखाया, जिससे विश्वेश्वर अत्यधिक प्रसन्न हुए। विश्वेश्वरसरस्वती ने संन्यास की दीक्षा दी और इन्हें मधुसूदनसरस्वती नाम से विभूषित किया। विश्वेश्वरसरस्वती के साथ ये चौसट्टी घाट पर गोपालमठ में रहने लगे। मधुसूदन प्रारम्भ से ही चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित कृष्ण-भक्ति से प्रभावित थे और पुरी के श्रीजगन्नाथ द्वारा अपने को अनुगृहीत मानते थे। इन्होंने वेदान्तकल्पलतिका में लिखा है—'भगवता नीलाचलनायकेन नारायणेन अनुगृहीता।'

महाकवि तुलसीदास मधुसूदनसरस्वती के मित्र थे। इन्होंने तुलसीदास की प्रशंसा इस प्रकार की है—

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसी तरुः।
कवितामञ्जरी यस्य रामभ्रमरभूषिता॥

'आनन्दकानन अर्थात् काशी में तुलसी नामक जंगम वृक्ष है, जिसकी कवितामञ्जरी राम-रूपी भ्रमर से भूषित है।'

कहते हैं कि अकबर ने मधुसूदनसरस्वती को अपने दरबार में बुलाया था। वहाँ विद्वानों से इनका शास्त्रार्थ हुआ था, जिससे बादशाह अत्यधिक प्रसन्न हुआ था और इनका सम्मान किया था।

मधुसूदन के सम्बन्ध में ये दो श्लोक अत्यधिक प्रसिद्ध हैं—

नवद्वीपे समायाते मधुसूदनवाक्पतौ।
चकम्पे तर्कवागीशः कातरोऽभूद् गदाधरः॥

मधुसूदनसरस्वत्या वाचं वेत्ति सरस्वती।
वाचं वेत्ति सरस्वत्या मधुसूदनसरस्वती॥

'मधुसूदन के नवद्वीप में आने पर तर्कवागीश काँपने लगे और गदाधर कातर हो उठे। मधुसूदन की वाणी को सरस्वती जानती हैं और सरस्वती की वाणी को मधुसूदन।'

मधुसूदन अत्यधिक विलक्षण विद्वान् थे। इन्होंने माध्व-सम्प्रदाय के श्रीव्यासतीर्थ के न्यायामृत ग्रन्थ का अद्वैतसिद्धि में खण्डन किया है। ये अद्वैतवेदान्त के प्रौढ़ आचार्य थे और साथ ही उच्च कोटि के कृष्ण-भक्त भी। इस सम्बन्ध में ये स्वयं हकते हैं—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः।
स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन
दासीकृता गोपवधूविटेन॥

यही कारण है कि इन्होंने वेदान्त और भक्ति—दोनों के विषय में उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे हैं।

रचनाएँ—अद्वैतसिद्धि, अद्वैतरक्षण, आत्मबोध-टीका आनन्दमन्दाकिनी, कृष्णकुहल नाटक, प्रस्थान-भेद, भगवद्गीताटीका (गूढ़ार्थदीपिका) भगवद् भक्ति-रसायन, भागवतव्याख्या, वेदस्तुतिटीका, वेदान्त-कल्पलतिका, शाण्डिल्यसूत्रटीका, शास्त्रसिद्धान्त-लेशटीका, संक्षेप-शारीरकटीका, सर्वविद्यासिद्धान्त-वर्णन, सिद्धान्तबिन्दु, हरिलीलाव्याख्या, शिव-महिम्नस्तोत्रव्याख्या आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचार्य मधुसूदन ने 'भगवद्भक्तिरसायन' में भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकतां गता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

भगवद्भक्तिरसायन १।३

'भगवान् के गुणों के श्रवण से द्रवावस्था को प्राप्त चित्त की अविच्छिन्न-प्रवाह-युक्त जो सर्वेशविषयक वृत्ति है, वह भक्ति कही जाती है।'

'अद्वैतसिद्धि' से इनकी भक्तिभावना व्यंजक दो श्लोक दिये जा रहे हैं—

अविद्यातत्कार्यात्मकनिबिडबन्धव्यपगमे
यमद्वैतं सत्यं प्रततपरमानन्दममृतम्।
भजन्ते भूमानं भवभयभिदं शव्यमतयो
नमस्तस्मै नित्यं निखिलनिगमेशाय हरये॥

'उत्तम बुद्धिवाले जन अविद्या तथा तत्कार्यात्मक प्रपञ्चरूप बन्धन को तोड़ने के लिए अद्वैत, सत्य, व्यापक परमानन्द, अमृतस्वरूप, भवभय को नष्ट करनेवाले जिस भूमा तत्त्व की आराधना करते हैं, उस सकलवेदप्रतिपाद्य विष्णु को हमारा नमस्कार है।'

अनादिसुखरूपता निखिलदृश्यनिर्मुक्तता
निरन्तरमनन्तता स्फुरणरूपता च स्वतः।
त्रिकालपरमार्थता त्रिविधभेदशून्यात्मता
मम श्रुतिशतार्पिता तदहमस्मि पूर्णो हरिः॥

'मुझमें अनादिसुखरूपता, निखिलदृश्यशून्यता, निरन्तर अनन्तता, स्वतःप्रकाशरूपता, त्रिकालपरमार्थता, त्रिविधभेदशून्यता और सकलश्रुतिशरण्यता है, अतः पूर्ण हरि मैं ही हूँ।'

अ० पा०

मध्वाचार्य

श्री मध्वाचार्य का जन्म दक्षिण में उडुपी के समीप शकाब्द ११६९ में एक ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनका उपनयन सात वर्ष की अवस्था में हुआ। इन्होंने वेदों और शास्त्रों का गहन अध्ययन किया और १६ वर्ष की अवस्था में संन्यास ग्रहण किया। इनके दीक्षागुरु अच्युतप्रेक्ष थे। श्री मध्वाचार्य ने द्वैतमत की प्रतिष्ठा की और अद्वैत का खण्डन किया। इन्होंने दक्षिण-भारत तथा उत्तर-भारत की यात्रा की और अपने मत का प्रचार किया। अपनी यात्राओं में इन्होंने अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया और उन्हें अपने मत में दीक्षित किया। दक्षिण की यात्रा से लौटने के बाद इन्होंने उडुपी में गीता के भाष्य की रचना की।

श्री मध्वाचार्य ने उत्तर-भारत की दो बार यात्रा की। प्रथम यात्रा में पहले हरिद्वार और फिर बदरिकाश्रम गये। वहाँ इन्होंने कुछ समय तक तपस्या की। कहते हैं कि श्री मध्व की तपस्या से व्यासदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए और इन्हें दर्शन देकर बादरायण-सूत्र पर भाष्य लिखने के लिए कहा तथा शालग्राम की तीन मूर्तियाँ दीं। मध्वाचार्य ने व्यासदेव की आज्ञा के अनुसार ब्रह्मसूत्र के भाष्य का प्रणयन किया। फिर बिहार और बंगाल की यात्रा करते हुए उडुपी लौट आये और मठ की स्थापना करके श्रीकृष्ण की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। व्यासदेव से प्राप्त हुई शालग्राम की तीन मूर्तियों को इन्होंने तीन क्षेत्रों में प्रतिष्ठित किया। उत्तर-भारत की दूसरी यात्रा के क्रम में इन्होंने कुरुक्षेत्र, काशी आदि की यात्रा की।

यात्रा से लौटने के बाद मध्वाचार्य ने उडुपी में आठ मन्दिरों का निर्माण कराया, जिनमें सीताराम, लक्ष्मणसीता, द्विभुजकालियदमन आदि की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। आज उडुपी मध्वमतानुयायियों के लिए तीर्थस्थल के रूप में विख्यात है।

मध्वाचार्य का अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ। तेलुगु प्रदेश के अद्वैत-वेदान्ती शोभनभट्ट ने इनको शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। इन्होंने शोभनभट्ट को पराजित किया। शोभनभट्ट ने मध्वाचार्य का मत स्वीकार कर लिया। इन्होंने उसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने मत में दीक्षित किया और उसका नाम पद्मनाभतीर्थ रखा। कलिङ्ग-प्रदेश का प्रधान-मन्त्री अद्वैत-वेदान्ती था। मध्वाचार्य ने उसे पराजित किया और अपना शिष्य बनाया तथा उसका नाम नरहरितीर्थ रखा। इसी स्थान पर रहनेवाले एक दूसरे अद्वैती पद्मतीर्थ से मध्वाचार्य का विवाद हो गया। पराजित होने पर वह मध्वाचार्य की पुस्तकें लेकर भाग गया, किन्तु जयसिंह नामक एक प्रमुख की मध्यस्थता से मध्वाचार्य को पुस्तकें मिल गयीं। मध्वाचार्य ने त्रिविक्रम पण्डित नामक अद्वैत-वेदान्ती को भी पराजित किया और उसे अपना शिष्य बनाया। त्रिविक्रम ने मध्वाचार्य के 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' पर 'तत्त्व-प्रदीप' नामक व्याख्या लिखी और उसके पुत्र नारायण ने मध्वाचार्य का जीवनचरित लिखा।

मध्वाचार्य 'पूर्णप्रज्ञ' और 'आनन्दतीर्थ' नामों से भी प्रसिद्ध हैं। माध्वमत 'ब्रह्मसम्प्रदाय' के नाम से भी अभिहित होता है। श्रीकृष्ण ने चार शिष्यों को वैष्णव-मत का उपदेश दिया। वे शिष्य हैं—श्री, ब्रह्मा रुद्र और सनक—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥

श्रीब्रह्मरुद्रसनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥

—पद्मपुराण

इनमें से ब्रह्मा से जिस सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ, उसके श्रीमध्व प्रतिनिधि आचार्य हुए। चैतन्य-मत माध्वमत की शाखा माना जाता है। बलदेव-विद्याभूषण ने माध्वमत की जो गुरुपरम्परा दी है, उसमें चैतन्य का भी नाम आता है—१. मध्व, २. पद्मनाभ, ३. नरहरि, ४. माधव, ५. अक्षोभ्यतीर्थ, ६. जयतीर्थ, ७. ज्ञानसिन्धु, ८. दयानिधि, ९. विद्यानिधि, १०. राजेन्द्र, ११. जयधर्म, १२. पुरुषोत्तमतीर्थ, १३. ब्रह्मण्यतीर्थ, १४. व्यासतीर्थ, १५. लक्ष्मीपति, १६. माधवेन्द्र, १७. ईश्वर, १८. चैतन्य।

विद्वानों को उक्त सूची की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह है। भण्डारकर ने 'रिपोर्ट आन द सर्च फार संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स' (१८८२-८३ ई०) में माध्वगुरुओं की अधोलिखित सूची दी है—

मध्व, पद्मनाभतीर्थ, नरहरितीर्थ, मध्वतीर्थ, अक्षोभ्यतीर्थ, जयतीर्थ, विद्याधिराजतीर्थ, कवीन्द्रतीर्थ, वागीशतीर्थ, रामचन्द्रतीर्थ, विद्यानिधितीर्थ, रघुनाथतीर्थ, रघुवर्यतीर्थ, रघूत्तमतीर्थ, वेदव्यासतीर्थ, विद्याधीशतीर्थ, वेदनिधितीर्थ, सत्यव्रततीर्थ, सत्यनिधितीर्थ, सत्यनाथतीर्थ, सत्याभिनवतीर्थ, सत्यपूर्णतीर्थ, सत्यविजयतीर्थ, सत्यप्रियतीर्थ, सत्यबोधतीर्थ, सत्यसन्निधानतीर्थ, सत्यवरतीर्थ, सत्यधामतीर्थ, सत्यसारतीर्थ, सत्यपरायणतीर्थ, सत्यकामतीर्थ, सत्येष्टितीर्थ, सत्यपरायणतीर्थ, सत्यवित्तीर्थ।

मध्वविरचित साहित्यसम्पदा विपुल है। मध्वाचार्य ने अपने मत को प्रतिष्ठित करने के लिए अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। उनकी संख्या ३७ है—

१. ऋग्भाष्य, २. कर्मनिर्णय, ३–१२ ईशावास्यादि दश उपनिषदों पर भाष्य, १३. महाभारततात्पर्यनिर्णय, १४. भगवद्गीताभाष्य, १५. भगवद्गीतातात्पर्यनिर्णय, १६. भागवततात्पर्यनिर्णय, १७. ब्रह्मसूत्रभाष्य, १८. ब्रह्मसूत्रानुभाष्य, १९. ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान, २०. न्यायविवरण, २१. प्रमाणलक्षण, २२ कथालक्षण, २३. उपाधिखण्डन, २४. मायावादखण्डन, २५. प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डन, २६. तत्त्वसङ्ख्यान, २७. तत्त्वविवेक, २८. तत्त्वोदय, २९. विष्णुतत्त्वनिर्णय, ३०. तन्त्रसारसङ्ग्रह, ३१. कृष्णामृतमहार्णव, ३२. यतिप्रणवकल्प, ३३. सदाचारस्मृति, ३४. कृष्णजयन्तीनिर्णय, ३५. यमकभारत, ३६. नृसिंहनखस्तोत्र, ३७. कन्दुकस्तुति।

मध्वाचार्य ने शङ्कराचार्य के अद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का खण्डन किया है। माध्वमत में दश पदार्थ माने गये हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभाव। द्रव्य के बीस भेद हैं—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत-आकाश, प्रकृति, गुणत्रय, महत्तत्त्व, अहङ्कार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल तथा प्रतिबिम्ब।

परमात्मा अनन्त गुणों से युक्त हैं। वह सृष्टि, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्धन और मोक्ष—इन आठ गुणों का कर्त्ता हैं—

उत्पत्तिस्थितिसंहारा नियतिर्ज्ञानमावृतिः।
बन्धमोक्षौ च पुरुषाद्यस्मात् स हरिरेकराट्॥

—स्कन्दपुराण

लक्ष्मी परमात्मा की शक्ति है, किन्तु वह परमात्मा से भिन्न है। परमात्मा की अपेक्षा उसमें कम गुण हैं। वह परमात्मा की भाँति नित्यमुक्त है। वह परमात्मा की उपासना करती रहती है। वह परमात्मा की भाँति अप्राकृत शरीर धारण करती है। जीव अज्ञान आदि दोषों से युक्त रहते हैं। वे असंख्य हैं। उनके तीन भेद हैं—मुक्तियोग्य, नित्यसंसारी तथा तमोयोग्य। मुक्तावस्था में भी जीव परस्पर भिन्न रहते हैं और उनमें आनन्दानुभूति का तारतम्य रहता है—

मुक्ताः प्राप्य परं विष्णुं तद्देहं संश्रिता अपि।
तारतम्येन तिष्ठन्ति गुणैरानन्दपूर्वकैः॥

—गीता, माध्वभाष्य

जगत् की उत्पत्ति में परमात्मा निमित्त-कारण है और प्रकृति उपादान-कारण। माध्वमत में पाँच साधन अनिवार्य हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तारतम्यज्ञान और पञ्चभेदपरिज्ञान। पाँच नित्य भेद ये हैं—(१) ईश्वर और जीव में भेद, (२) ईश्वर और जड़ जगत् में भेद, (३) जीवात्मा तथा जड़ जगत् में भेद, (४) एक जीवात्मा और दूसरे जीवात्मा में भेद तथा (५) एक जड़ पदार्थ तथा दूसरे जड़ पदार्थ में भेद। अपरोक्षज्ञान से परम भक्ति का उदय होता है, उससे परमानुग्रह की प्राप्ति होती है और परमानुग्रह से मोक्ष की उपलब्धि। मोक्ष सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है, धर्मार्थकाम अनित्य हैं, मोक्ष नित्य है—"मोक्षो हि सर्वपुरुषार्थोत्तमः, धर्मार्थकामास्त्वनित्याः। मोक्ष एव नित्यः।" मोक्ष की प्राप्ति श्रीविष्णु के प्रसाद के अभाव में नहीं हो सकती। मोक्ष चार प्रकार का होता है—कर्मक्षय, उत्क्रान्तिलय, अर्चिरादिमार्ग, और भोग। भोग भी चार प्रकार का होता है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य। अधोलिखित श्लोक में मध्वाचार्य के मत के प्रमुख तत्त्वों का निर्देश हुआ है—

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतमः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधन-
मक्षादित्रितयं प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः॥

'माध्वमत में श्रीविष्णु ही परम तत्त्व हैं, जगत् सत्य है, भेद वास्तविक हैं। (जैसे ईश्वर का जीव से भेद, जीव का जीव से भेद आदि), सभी जीव हरि के अनुचर हैं और उनमें परस्पर तारतम्य है, स्वसुखानुभूति ही मुक्ति है और निर्मल भक्ति से ही मुक्ति मिलती है। माध्वमत में तीन प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। वेदों के प्रतिपाद्य विष्णु हैं।

मध्वाचार्य ने कुछ लघु काव्यों की भी रचना की है। उनकी 'कन्दुकस्तुति' में दो श्लोक मिलते हैं, जिनमें अनुप्रास की छटा देखी जा सकती है—

अम्बरगङ्गाचुम्बितपादः
पदतलविदलितगुरुतरशकटः।
कालियनागक्ष्वेलनिहन्ता
सरसिजदलविकसितनयनः॥

कालघनालीकर्बुरकायः
शरशतशकलितरिपुशतनिकरः।
सन्ततमस्मान् पातु मुरारिः
सततगसमजवखगपतिनिरतः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आकाशगङ्गा से स्पृष्ट चरणोंवाले, चरणतल से महान् शकट को नष्ट करनेवाले, कालियनाग के विष का विनाश करनेवाले, कमलदल की भाँति विकसित नेत्रोंवाले, काले बादलों की भाँति कृष्ण वर्ण के शरीरवाले, सैकड़ों बाणों से शत्रुओं के समूह को टुकड़े-टुकड़े करनेवाले, वायु के समान वेगवाले तथा गरुड़ को चाहनेवाले मुरारि हमारी सदा रक्षा करें।'

मध्वाचार्य का देहावसान शकाब्द ११९९ में हुआ।

अ० पा०

महाप्रभु चैतन्य

सम्पूर्ण उत्कल और बंग प्रान्त को कृष्ण-भक्ति के अमृत-प्रवाह से रससिक्त करनेवाले महाप्रभु चैतन्य-देव का जन्म बंगाल के नदिया (नवद्वीप) नामक स्थान में १५४२ वि० (१४८५ ई०) की फाल्गुन पूर्णिमा के दिन हुआ था। इनके पिता श्री जगन्नाथ मिश्र अत्यन्त धर्मपरायण ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम शचीदेवी था, जो विद्वान् ज्योतिषी श्री नीलाम्बर चक्रवर्ती की पुत्री थीं। वे अत्यन्त शान्त स्वभाववाली थीं तथा धर्म में गहरी आस्था रखती थीं। पं० जगन्नाथ मिश्र और उनकी पत्नी शचीदेवी ने सन्तानकष्ट की मार्मिक वेदना का अनुभव किया था। उनकी आठ कन्यायें क्रमशः दिवंगत होती गईं और नवीं सन्तान के रूप में उत्पन्न पुत्र विश्वरूप मिश्र १६ वर्ष की अल्पायु में ही संसार से विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर चुका था। दशम सन्तान के रूप में उत्पन्न हुए महाप्रभु चैतन्य ही ऐसी स्थिति में अपने माता-पिता के सर्वस्व थे। इनका नामकरण विश्वम्भर मिश्र किया गया, किन्तु प्यार से इनके दीर्घ जीवन की कामना से सभी कुटुम्बिजन इन्हें 'निमाई' नाम से पुकारते थे। अपने अध्ययन-अध्यापन-काल में संन्यास की दीक्षा लेने से पूर्व तक ये 'निमाई पण्डित' के नाम से ही जाने जाते रहे। गौरवर्ण होने के कारण लोग इन्हें 'गौर' या 'गौरांग' भी कहते थे। संन्यास की दीक्षा लेने के बाद इनका नाम 'कृष्णचैतन्य' रखा गया। कालान्तर में 'कृष्ण चैतन्य' और 'चैतन्य महाप्रभु (महाप्रभु चैतन्य)' नाम ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। इन दो के अतिरिक्त चैतन्य-सम्प्रदाय में इनके अनेक नाम मिलते हैं—निमाई चाँद, चैतन्य गोसाईं, गौरचन्द्र, गौरहरि, गौरसिंह, गौरांग महाप्रभु, नवद्वीपचन्द्र, नादेवासी, नगरवासी, नादेर चाँद, गौड़ेश्वर आदि।

बालक निमाई (विश्वम्भरनाथ मिश्र) ने माता-पिता के सहज स्नेह में पलते हुए नवद्वीप में अपना अध्ययन प्रारम्भ किया। इनके विद्यागुरु नवद्वीप के प्रख्यात विद्वान् पं० गंगादास थे। बालक निमाई अत्यन्त चंचल प्रकृति के थे, किन्तु इनकी बुद्धि बहुत ही प्रखर थी। अपनी कुशाग्र बुद्धि और अद्वितीय अध्ययन-मनन-शीलता के कारण ये अल्पायु में ही व्याकरण और न्यायशास्त्र में निष्णात हो गए। अन्य शास्त्रों में भी इन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की और १५ वर्ष की आयु में ही इनके पाण्डित्य की धाक सर्वत्र जम गई। इन्होंने अनेक प्रख्यात विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। अध्ययन-काल में ही इनके पिता का देहावसान हो गया। १५५८ वि० में निमाई पण्डित ने अपनी पाठशाला खोली और इनके उत्कृष्ट पाण्डित्य तथा अध्यापन-कौशल से आकृष्ट होकर दूर-दूर से विद्यार्थी अध्ययन के लिये इनके चरणों में आने लगे। अपने अध्यापन-काल में इन्होंने कलाप-व्याकरण और न्यायशास्त्र पर पाण्डित्यपूर्ण टीकाएँ लिख डाली थीं। कहा जाता है कि अपने मित्र नैयायिक रघुनाथ पण्डित का भाव जानकर इन्होंने ये टीकाएँ नदी में प्रवाहित कर दी थीं।

निमाई पण्डित की प्रथम पत्नी का देहान्त सर्पदंश के कारण हो गया था। कुटुम्बिजनों के अनुरोध से इन्होंने २० वर्ष की अवस्था में अपना दूसरा विवाह किया। इनकी द्वितीय पत्नी राजपंडित सनातन की कन्या विष्णुप्रिया देवी थीं।

गया में आचार्य ईश्वरपुरी से हुई भेंट इनके जीवन की विलक्षण घटना थी, जिसने इनकी जीवन-धारा ही मोड़ दी। १५६४ वि० में ये अपने दिवंगत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिता का श्राद्ध करने गया गए थे। वहीं आचार्य ईश्वरपुरी से इनका साक्षात्कार हुआ। आचार्य के प्रभाव से इनका पाण्डित्याभिमान विगलित होकर भक्तिरस के रूप में बह चला। ज्ञानोद्धत निमाई पण्डित सरल और विनम्र कृष्णभक्त हो गए। ईश्वर-पुरी से इन्होंने वैष्णव दीक्षा ग्रहण की। गया से नवद्वीप लौटकर ये नितान्त विरक्त आचरण करने लगे तथा सदैव कृष्ण-प्रेम में तन्मय रहने लगे। कभी-कभी रातभर इन्हें नींद न आती और ये कृष्णरस में निमग्न रहते। विद्यार्थियों को उनका पाठ पढ़ाते समय ये उसी तल्लीनता में सूत्र, वृत्ति, टीका आदि सब में हरिनाम ही सिद्ध करने लगते। ये अपने दीक्षागुरु की चरणरज और उनके जन्मस्थान कुमारहट्ट की मिट्टी पोटली में बाँध लाये। अपनी कृष्णवश्यता के कारण अध्यापन के लिए न तो इन्हें अब समय मिलता और न ही इनका मन लगता अतः इन्होंने अपनी पाठ-शाला बन्द कर दी। परिवारवालों को इनके रोग ग्रस्त होने की शंका हुई, किन्तु ये तो अन्य मार्ग के पथिक बन चुके थे। अन्ततः १५६६ वि० (१५०९ ई०) में वृद्धा माँ और तरुणपत्नी का स्नेह और ममत्व छोड़कर इन्होंने प्रायः २४ वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। संन्यास की दीक्षा इन्होंने ईश्वर-पुरी के गुरुभाई केशव भारती से ली और तभी से ये कृष्णचैतन्य के नाम से विख्यात हुए। यहीं से इनका नया जीवन प्रारम्भ हुआ।

कृष्ण-भक्ति के प्रबल प्रवाह में इनकी पूर्व जीवन-पद्धति न जाने कहाँ चली गई। इस नूतन प्रेमोदय के कारण इनका अतःकरण कृष्णलीला के विविध प्रसंगों से आलोकित हो उठा। इनके त्याग, वैराग्य और प्रबल भक्ति-भाव से सम्पूर्ण नवद्वीप आन्दोलित हो उठा। सामान्य जन को कौन कहे, बड़े-बड़े आचार्य भी इनके भक्ति-आन्दोलन में सम्मिलित होने लगे। नित्यानन्द, अद्वैताचार्य और हरिदास आदि आयु में वरिष्ठ होने पर भी इनकी उत्कट भक्ति-साधना से आकृष्ट हो प्रेमभक्ति के सहायक बनकर इनके अनुगत हुए। कृष्णचैतन्य की अध्यक्षता में हरिकीर्तन होता। इनका हरिकीर्तन संगीतमय था। वाद्यों के स्वरों और कीर्तन की मधुर लय से आत्मविभोर होकर चैतन्यदेव नृत्य करने लगते। साश्रुकण्ठ ये कृष्ण-लीला विषयक श्लोकों का भावपूर्ण पाठ करते। इनकी ऐसी सात्त्विक दशा सबको प्रेमाबद्ध कर लेती थी।

भगवद्भक्ति के सभी प्रकारों में इन्होंने संकीर्तन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। संगीतमय संकी-र्तन इनके भक्ति-आन्दोलन का प्रबल आधार था। संकीर्तन के माध्यम से इन्होंने कृष्णप्रेम की ऐसी पीयूष-वर्षा की कि जिस पर उसका एक भी छींटा पड़ जाता, वह चैतन्य-देव के चरणों में लोटने लगता। जगाई-मधाई जैसे दुराचारी दस्यु, मृदंग-भंजक चाँद काजी और क्रूर पठान बिजली खाँ इनके प्रभाव से परम वैष्णव हो गए। चैतन्यदेव को भक्त-जन श्रद्धा से 'महाप्रभु' कहने लगे। इनका सब कुछ कृष्णमय हो गया।

घर तो ये छोड़ ही चुके थे, अब अपने आन्दोलन को सर्वव्यापी बनाने के विचार से इन्होंने नवद्वीप से बाहर जाने का निश्चय किया। फिर भी सत्तर वर्षीया माँ के अनुरोध को ये टाल न सके और भक्तों के आग्रह से नीलाचल-निवास का निश्चय किया। धर्म और भक्ति के अन्य मार्गों से इनका कोई विरोध न था। इन्होंने नीलाचल जाते हुए तथा बाद में दक्षिण-भारत की तीर्थयात्रा करते हुए शैव-शाक्त मन्दिरों का भी दर्शन किया था। भगवान् कृष्ण के विग्रह का दर्शन कर ये आत्म सुधि खो बैठते थे। जगन्नाथ जी का दर्शन कर ये ऐसे प्रेम-विभोर हुए कि उनका आलिंगन करने दौड़ पड़े। वहीं इनकी भेंट 'दीधिति' के प्रणेता रघुनाथपण्डित के गुरु सार्वभौम भट्टाचार्य से हुई, जो कलिंग के महाराज प्रतापरुद्रदेव के राज-पुरोहित थे। चैतन्य महाप्रभु ने न केवल सार्व-भौम भट्टाचार्य के तर्ककर्कश हृदय को कृष्णभक्ति-रस से आप्लावित किया, प्रत्युत इनके विशिष्ट अनुभव का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षात्कार कर परमशास्त्रज्ञ महाराज प्रतापरुद्रदेव भी इनके शिष्य हो गये। महाप्रभु की भक्तमण्डली में इन दोनों के सम्मिलित हो जाने से इनके भक्ति-प्रचार को बहुत बल मिला।

नीलाचल में कुछ मास रहकर ये दक्षिण-भारत की तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। १५६७-६८ वि० में ये दक्षिण-भारत के प्रसिद्ध तीर्थों का दर्शन करते हुए भक्ति-प्रचार करते रहे। कर्मक्षेत्र में इन्होंने गलितकुष्ठरोगी वासुदेव का आलिंगन किया और उसे पीड़ा-मुक्त किया। विद्यानगर के राजा राय रामानन्द महापण्डित, गंभीर कृष्णतत्त्ववेत्ता तथा परम वैष्णव थे। महाप्रभु चैतन्य से उनकी दस दिनों तक राधाकृष्ण-तत्त्वविषयक मार्मिक चर्चा हुई और अन्त में राय रामानन्द महाप्रभु के अनुयायी हो गये। इनकी आज्ञा से वे नीलाचल गए। महाप्रभु श्रीरंगम् में चार महीने रहे। १५६८ वि० में इन्होंने रामानुज-सम्प्रदाय के गोपालभट्ट को अपना शिष्य बनाया। वहाँ से ये पंढरपुर, नासिक आदि तीर्थों से होते हुए गुजरात गये। उधर ही इन्होंने कुख्यात डाकू नौरोजी का उद्धार किया।

दक्षिण-पश्चिम भारत की तीर्थयात्रा करके २ वर्ष बाद ये नीलाचल लौटे और दो वर्ष पर्यन्त वहाँ निवास किया। फिर वृन्दावन जाने की इच्छा से १५७० वि० में वहाँ से प्रस्थान किया, किन्तु रामकेलि से आगे न जा सके और शान्तिपुर होते हुए पुनः नीलाचल आ गए। रामकेलि में गौड़नरेश हुसेनशाह के प्रधान सचिव रूप और मन्त्री सनातन को, जो प्रकाण्ड पण्डित, संस्कृत-कवि और योग्य प्रशासक थे, चैतन्य महाप्रभु ने अपना अनुयायी बनाया। वे लोग इनके आदेश से संसार से विरक्त हो भक्ति-प्रचार तथा पुण्यस्थलों के जीर्णोद्धार हेतु वृन्दावन चले गये।

वर्षा व्यतीत होने पर महाप्रभु ने स्वयं वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। झारखण्ड के वनमार्गों से होते हुए काशी पहुँचे और तपनमिश्र नामक अपने एक पूर्वबंगीय शिष्य के यहाँ रुके। यहाँ भगवान् विश्वेश्वर और बिन्दुमाधव का दर्शन कर दस दिन रुकने के बाद प्रयाग होते हुए ये ब्रजमण्डल में पहुँचे। मथुरा में विश्रामघाट पर यमुना-स्नान कर केशवदेव का दर्शन किया। मथुरा के तीर्थों का दर्शन कर ये गोवर्धन, राधाकुण्ड और वृन्दावन का भ्रमण करते रहे। इनकी भावसमाधि और प्रेमावेश इस यात्रा में इतना बढ़ गया था कि ये करुणक्रन्दन करते हुए मूर्च्छित हो जाते थे, प्रेमविह्वल होकर ब्रजधूलि में लोटने लगते थे। राधाकुण्ड का जीर्णोद्धार कराकर, वृन्दावन में दो मास रहने के बाद ये लौट पड़े और प्रयाग में कुम्भ-स्नान करके काशी आये। यहाँ दो मास ठहरकर सनातन गोस्वामी को भक्ति-शास्त्र का उपदेश दिया तथा स्वामी प्रकाशानन्दसरस्वती को शास्त्रार्थ में पराजित किया। स्वामी जी दुर्धर्ष अद्वैतवेदान्ती थे, किन्तु महाप्रभु से परास्त होकर वे इनके शरणागत हुए तथा परम कृष्ण-भक्त होकर प्रबोधानन्द नाम से विख्यात हुए।

काशी से चैतन्य महाप्रभु पुरी लौट गये। १५७४ वि० से अपने जीवन के अन्त तक १६ वर्ष पर्यन्त ये नीलाचल छोड़कर अन्यत्र नहीं गये। रथयात्रा के अवसर पर इनके यहाँ देशभर के भक्तों का सागर उमड़ पड़ता था। वर्ष के शेष दिनों में भी भक्तजन इनके दर्शन के लिए बराबर वहाँ आते-जाते रहते थे। सदैव भागवत का पाठ, 'कृष्णकर्णामृत' तथा 'गीत गोविन्द' के ललित श्लोकों तथा चण्डीदासविद्यापति की रचनाओं के मधुर पदों का गायन और हरिनाम-संकीर्तन से वहाँ का वातावरण कृष्ण-भक्ति के रस से आप्लावित रहता था। इनके चरणों में रहकर अनेक भक्तकवियों और शास्त्रवेत्ताओं ने अपूर्व साम्प्रदायिक, शास्त्रीय एवं साहित्यिक ग्रन्थों की रचनायें कीं।

चैतन्यदेव जीवन के अन्तिम बारह वर्षों में बाह्य-ज्ञान-शून्य होकर श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न रहा करते थे। इनके नेत्रों से सदैव प्रेमाश्रु छलकता रहता था। श्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिहारी मजुमदार के अनुसार चैतन्य महाप्रभु का तिरोधान १५९० वि० के आषाढ़मास के अन्तिम दिनों में हुआ था। चैतन्य-चरित्र के लेखकों ने असह्य होने के कारण महाप्रभु की इस अन्त्यलीला का उल्लेख नहीं किया है। साम्प्रदायिक अनुश्रुतियों के अनुसार इनका तिरोधान रहस्यमय है। किसीके अनुसार ये जगन्नाथजी के विग्रह में लीन हो गए; किसीके अनुसार समुद्र में जलसमाधि ले ली। जयानन्द के अनुसार इनके पैरों में घाव हो गया था अतः व्रणजन्य ज्वर के कारण इनकी इहलीला समाप्त हुई।

संन्यास लेने के पश्चात् चैतन्य महाप्रभु ने आठ वर्षों तक निरन्तर भारत की तीर्थयात्रा की। ये जहाँ भी गए, कृष्णभक्ति का रससान्द्र सागर वहाँ-वहाँ आन्दोलित हो उठा। ये परम वैराग्य और चरम कृष्ण-भक्ति की साक्षान्मूर्ति थे। इन्होंने स्त्री-सम्पर्क का निषेध किया। प्रेममय हरिनाम-संकीर्तन से युक्त इनका भक्ति आन्दोलन अपूर्व ही था। इनकी भक्त-मण्डली में वर्णभावना और धर्म-वैभिन्य के लिये कोई स्थान न था। वस्तुतः चैतन्य महाप्रभु अद्वितीय भक्त और धर्म-प्रचारक थे। भगवन्नाम-संकीर्तन एक लोक-प्रिय आध्यात्मिक साधन था, जिससे जनसामान्य इस भक्ति-आन्दोलन के प्रति आकृष्ट हुआ। इनके भक्तों ने भक्ति-सन्देश को जन-जन के हृदय तक पहुँचाया।

चैतन्य महाप्रभु भक्ति की परमकोटि में पहुँचे हुए अनन्य साधक थे। इन्होंने अन्य आचार्यों की तरह अपने भक्तिसम्प्रदाय को कोई व्यवस्थित स्वरूप प्रदान नहीं किया, किन्तु इनके भक्त-पार्षदों एवं परवर्ती आचार्यों ने इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। वृन्दावन के षड्गोस्वामियों ने चैतन्य-मत को वैष्णव-सम्प्रदायों के उच्चशिखर पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पोषण और विश्लेषण करने के लिए शास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन किया। उनके आधार पर गौड़ीय सम्प्रदाय का पृथक् तथा गौरवशाली भक्तिरस-सिद्धान्त प्रवर्तित हुआ, दार्शनिक तत्त्वों की चिन्तन-प्रक्रिया आविर्भूत हुई, उपासना और साधना की पद्धतियाँ विकसित हुईं तथा उन्हें स्थायी आधार प्रदान करने वाले बिपुल रस-साहित्य का प्रणयन हुआ।

भक्तों ने चैतन्यदेव के जीवनकाल में ही इन्हें राधाकृष्ण का मिलित विग्रह स्वीकार किया था और नृत्यलीला में इनके अन्तरंग भक्तों का नामकरण भी श्रीकृष्ण के पार्षदों के नाम पर हो चुका था। इनके तिरोधान के पश्चात् भक्त-आचार्यों ने चैतन्य-चरित-विषयक अनेक ग्रंथों की रचना की और उन्हें श्रीकृष्ण का अवतार घोषित किया। शास्त्र तथा प्रमाणबल से महाप्रभु को परमतत्त्व श्रीकृष्ण का अवतार घोषित करना भक्तों की इनमें अपूर्व निष्ठा का प्रमाण है।

चैतन्य महाप्रभु द्वारा विरचित कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता। समय-समय पर अपने भक्तों को उपदेश देते समय कभी-कभी अन्त में ये एकाध श्लोकों का उच्चारण कर देते थे। ऐसे आठ श्लोकों का एक संग्रह उपलब्ध होता है, जो भक्तों में महाप्रभु विरचित 'शिक्षाष्टक' नाम से प्रसिद्ध है। उसके दो श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं,
श्रेयःकैरवचन्द्रिका-वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतं स्वादनं,
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

'चित्तरूपी दर्पण को स्वच्छ बनानेवाला, संसार के ताप का शमन करनेवाला, कल्याणरूपी कैरव-ज्योत्स्ना विकीर्ण करनेवाला, विद्यारूपी वधू का प्राण, आनन्दसागर की वृद्धि करने वाला, प्रतिपद पूर्णामृत का आस्वादन करानेवाला, सर्वात्मना शान्ति प्रदान करनेवाला (जो) श्रीकृष्ण-संकीर्तन है, उसकी जय हो।'

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हे प्रभो! आपका स्मरण करते हुए कब मेरे नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होगी, गद्गद कण्ठ से अवरुद्ध वाणी कब मुख से निकलेगी और कब मेरा सारा शरीर रोमाञ्च से भर उठेगा।'

अ० पा०

माघ

माघ के पिता का नाम दत्तक था। इनके पितामह सुप्रभदेव थे, जो भीनमाल के राजा वर्मलात के प्रधानमन्त्री थे। वसन्तगढ़ के ६८२ संवत् के शिलालेख से वर्मलात के विषय में सूचना मिलती है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इसे विक्रम-संवत् मानते हैं, अतः उनके अनुसार शिलालेख का समय ६२५ ई० है। इससे माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्ध सिद्ध होता है।

शिशुपालवध में एक श्लोक प्राप्त होता है, जिससे माघ के समय के निर्धारण में सहायता मिलती है—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥

—शिशुपालवध २।११२

इसमें 'काशिकावृत्ति' और 'न्यास' इन दो ग्रन्थों का संकेत है। मल्लिनाथ और वल्लभदेव ने भी अपनी टीकाओं में इसका निर्देश किया है। वामन तथा जयादित्य ने 'काशिकावृत्ति' की रचना की। इत्सिंग के अनुसार जयादित्य की मृत्यु लगभग ६६१ ई० में हुई थी। इसके आधार पर भी शिशुपालवध का रचनाकाल सप्तम शताब्दी का उत्तरार्ध समीचीन प्रतीत होता है।

आनन्दवर्धन (९वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) ने 'शिशुपालवध' के दो श्लोक उद्धृत किये हैं। सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू' (रचना—९५९ ई०) में तथा राजशेखर (१०वीं शताब्दी का प्रारम्भ) ने 'काव्यमीमांसा' में माघ का उल्लेख किया है। नृपतुङ्ग (८१४ ई०) के कन्नड़ भाषा के ग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में माघ का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके आधार पर भी माघ का समय ८वीं शताब्दी के बाद नहीं हो सकता।

माघ धनी और दानी थे, किन्तु वृद्धावस्था में निर्धन हो गये थे। इन्हें घण्टामाघ भी कहा जाता था। अधोलिखित श्लोक की कल्पना के कारण इन्हें यह विरुद मिला था—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा-
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा-
द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥

—शिशुपालवध ४।२०

'एक ओर ऊपर फैली हुई किरणोंरूपी डोरीवाले सूर्य के उदित होने पर तथा दूसरी ओर चन्द्रमा के अस्त होने पर यह रैवतक पर्वत दोनों ओर लटकनेवाले दो घण्टोंवाले गजेन्द्र की शोभा धारण कर रहा है।'

माघ के विषय में एक कथा मिलती है। माघ धारा के राजा भोज के आश्रित कवि थे। निर्धनता से दुःखित हो इन्होंने एक श्लोक देकर अपनी पत्नी को राजा की सभा में भेजा, जिसमें उदित होते हुए सूर्य का वर्णन किया गया था, किन्तु प्रकारान्तर से उसमें भाग्य के विचित्र विधान की ओर संकेत था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं,
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं,
हतविधिलसितानां ह्रा विचित्रो विपाकः॥

इस श्लोक से प्रसन्न होकर राजा ने माघ की पत्नी को पर्याप्त धन दिया। जब वे लौट रही थीं, तब उन्हें अनेक भिक्षु मिले और उन्होंने सारी धनराशि भिक्षुओं को दे दी। कुछ भिक्षु इनकी पत्नी के पीछे-पीछे चलते हुए इनके घर पहुँच गये। इस स्थिति को देखकर माघ अत्यन्त दुःखित हुए। इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दारिद्रय की निन्दा में कुछ श्लोकों की रचना की और उसके बाद भूमि पर गिर पड़े। इनके प्राण उसी समय निकल गये। जब राजा को यह दुःखद समाचार मालूम हुआ, तब उन्होंने कवि के दाहादि संस्कार को सम्पन्न कराया। इस कथा से यह प्रतीत होता है कि माघ अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में निर्धन हो गये थे। उसका कारण यह था कि ये अत्यन्त उदार और दानी थे।

माघ-विरचित 'शिशुपालवध' एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी गणना बृहत्त्रयी में होती है। इसमें २० सर्ग और १६४५ श्लोक हैं। शिशुपालवध के अतिरिक्त माघ की कोई अन्य रचना नहीं मिलती। संग्रहों में इनके नाम से कहीं-कहीं स्फुट श्लोक मिल जाते हैं।

शिशुपालवध की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—इन्द्र कृष्ण के पास देवर्षि नारद को भेजते हैं, जो शिशुपाल का वध करने के लिए उन को प्रेरित करते हैं। बलराम प्रस्ताव रखते हैं कि युद्ध प्रारम्भ कर दिया जाय और उद्धव युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाने की बात कहते हैं। कृष्ण अपनी सेना लेकर इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पड़ते हैं। सारथि दारुक रैवतक पर्वत का वर्णन करता है। रात्रि हो जाती है और सेना विश्राम करने के लिए रुक जाती है। यादव अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा तथा विहार करने लगते हैं। प्रातःकाल अपनी सेना के साथ कृष्ण यमुना को पार करते हैं और इन्द्रप्रस्थ पहुँच जाते हैं। युधिष्ठिर कृष्ण की पूजा करते हैं। उसका शिशुपाल विरोध करता है, फलतः युद्ध के लिए सेनाएँ तैयार हो जाती हैं। दोनों सेनाओं में युद्ध होता है। कृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिर काट देते हैं और उसका तेज कृष्ण में विलीन हो जाता है।

'शिशुपालवध' की रचना 'किरातार्जुनीय' के आधार पर हुई है। दोनों महाकाव्य महाभारत की कथा पर आधारित हैं और दोनों का प्रारम्भ 'श्री' शब्द से होता है। 'किरातार्जुनीय' के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया गया है, तो शिशुपालवध के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री' शब्द का। दोनों रचनाओं के प्रथम सर्ग में सन्देश की योजना की गयी है। राजनीति-विषयक चर्चा दोनों में प्राप्त होती है। 'किरातार्जुनीय' में हिमालय का वर्णन किया गया है, तो 'शिशुपालवध' में रैवतक का। दोनों में चित्रबन्धों द्वारा युद्ध का वर्णन हुआ है। सन्ध्या, चन्द्रोदय, ऋतु आदि का वर्णन दोनों में समानरूप से मिलता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समानताएँ भी पाई जाती हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य के नायक यदुवंशी श्रीकृष्ण हैं। वीर उसका अङ्गी रस है, श्रृंगार आदि अङ्ग। कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध फल है। इसमें प्रभात, सन्ध्या, ऋतु आदि का वर्णन मिलता है—

> नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान्,
> वीरः प्रधानो रसः।
> शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते,
> पूर्णा पुनर्वर्णना।
> इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषयै-
> श्चैद्यावसादः फलं।
> धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिन-
> स्तत्सूक्तिसंसेवनात् ॥

शिशुपालवध में उच्चकोटि के काव्य का दर्शन होता है। विविध अलङ्कारों की छटा, वर्णन-वैचित्र्य, ओजगुणमयी भाषा, उदात्त शैली आदि के द्वारा यह रचना संस्कृत-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। विविध शास्त्रों के ज्ञाता माघ का पाण्डित्य रचना में भरा हुआ है। मीमांसा, योग, साङ्ख्य, बौद्धदर्शन, संगीत, राजनीति आदि के समीचीन सन्निवेश से माघकाव्य दीप्तिमान् है। विशिष्ट सन्दर्भों के कारण यह सहृदयों का हार बना हुआ है और पाण्डित्य का निकष भी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लिष्ट पदयोजनाओं में प्रगाढ़ता विराजमान है। उन्नीसवें सर्ग में मुरजबन्ध, सर्वतोभद्र, गोमूत्रिकाबन्ध आदि की योजना उपलब्ध होती है—

श्लिष्टेषु पदबन्धेषु गाढत्वं ननु राजते।
चित्रबन्धचमत्कारः कविना विनियोजितः॥

—संस्कृत-कवि-समीक्षा, पृ० ८३

अलङ्कारों में यमक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा, काव्यलिङ्ग, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति आदि के प्रयोग मिलते हैं। शिशुपालवध में ४९ छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिनमें अनुष्टुप्, उपजाति, स्वागता, वसन्ततिलका, रथोद्धता, प्रमिताक्षरा आदि प्रमुख हैं। व्याकरण के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं—पर्यपूपुजत्, अभिन्यवीविशत्, मध्येसमुद्रम्, पारेजलम् आदि।

प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि कालिदास की उपमा विशिष्ट है, भारवि का अर्थगौरव और दण्डी का पदलालित्य; किन्तु माघ में तीनों गुण हैं अर्थात् उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य का वैशिष्ट्य उनमें एक साथ प्राप्त होता है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

कहा गया है कि भारवि का तेज तभी तक चमकता है, जब तक माघ का उदय नहीं हो जाता। माघ (कवि और माघ मास) के आ जाने पर तो भारवि का तेज सूर्य के तेज की भाँति फीका पड़ जाता है—

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव॥

माघ की काव्य-प्रतिभा तथा भक्ति-भावना के परिचायक दो श्लोक प्रस्तुत हैं।

कृष्ण के प्रति नारद का अधोलिखित वचन भक्ति से ओतप्रोत है—

(१)

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहा-
मुपाजिहीथा न महीतलं यदि।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः
पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम्॥

—शिशुपाल० १।३६

'हे भगवन्, यदि आप अपने तेज से जगद्-द्रोही कंस आदि का वध करने के लिए पृथ्वी पर न आते, तो समाधिस्थ योगियों द्वारा भी अज्ञात आप मुझ-जैसे लोगों की दृष्टि के विषय कैसे बनते ?'

(२)

यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी,
सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।
निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-
स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥

—शिशुपाल० ३।१६

'प्रिय श्रीकृष्ण ने जिस-जिस अङ्गना को देखा, वह-वह चकित नेत्रोंवाली होकर लज्जा से नम्रमुखी हो गयी। (जिनको श्रीकृष्ण ने नहीं देखा था, उन) ईर्ष्यालु अन्य अङ्गनाओं ने उस समय निर्भय होकर एक साथ ही कटाक्षों से उन पर प्रहार किया।'

अ० पा०

माधवेन्द्रपुरी पाद

चैतन्य-सम्प्रदाय में श्री माधवेन्द्रपुरी 'भक्तिकल्प-तरु' के प्रथम अंकुर माने जाते हैं और कवि कर्णपूर के अनुसार–'प्रीतिप्रेयोवत्सलतोज्ज्वलाख्यफलधारिणः'। चैतन्य और वल्लभ-सम्प्रदाय के ग्रंथों में माधवेन्द्रपुरी के जीवन-वृत्त के सूत्र मिलते हैं। इनमें वल्लभ-सम्प्रदाय के सूत्र काफी परवर्ती हैं। वस्तुतः इनके जीवन-वृत्त के विषय में श्रृंखलाबद्ध एवं निष्पक्ष कथन नहीं हुआ है तथापि 'अद्वैतप्रकाश', 'चैतन्यचरितामृत', 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'निजवार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'बैठकचरित्र' आदि से इनके जीवन-चरित्र की सामान्य रूपरेखा बन सकती है।

पुरीजी मध्वाचार्य की शिष्य-परम्परा में लक्ष्मी-पति के शिष्य थे। इनका तैलंग ब्राह्मण होना अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भावित है। ये माध्वमत के मुख्य पीठ उडुपी के प्रधान आचार्य थे। सं० १५०७ वि० में जब अद्वैताचार्य उडुपी गए थे तो इनसे ही इन्होंने भागवत-श्रवण किया था। ईशाननागर अद्वैताचार्य के शिष्य थे और अद्वैताचार्य माधवेन्द्रपुरी के। अतः 'अद्वैतप्रकाश' में प्राप्त इनके सन्दर्भ प्रामाणिक हो सकते हैं। शांतिपुर (बंगाल) में अद्वैताचार्य के घर आकर पुरी महाशय ने उन पर कृपा की थी। आचार्य वल्लभ के पितृचरण श्री लक्ष्मणभट्ट ने वल्लभाचार्यजी को काशी में उपनयन-संस्कार के समय पुरी महाशय के पास शिक्षा के लिए रखा था। कदाचित् लक्ष्मणभट्ट यह बात दक्षिण से ही जानते थे कि ये एक महान् आचार्य और भागवत-तत्त्ववेत्ता हैं। कहा जाता है कि तैलंग देश का राजा इनका शिष्य था। इनका गोलोकवास भी दक्षिण में हुआ था। इन कारणों से हमारे मत में ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके द्वारा विरचित एक 'ब्रजबुलिपद' मिलता है। वह इनकी भ्रमणशीलता का परिचायक माना जा सकता है। बंगाल और ब्रज में दीर्घकाल तक रहने के कारण ही उस 'ब्रजबुलि' पद की रचना इन्होंने की होगी, ऐसा सम्भव है। इस प्रकार श्री माधवेन्द्रपुरी दक्षिण, उत्तर और बंगाल को कृष्ण-भक्ति से एकीकृत करनेवाले महान् भविष्यद्रष्टा आचार्य थे।

ये नवद्वीप की वैष्णव-गतिविधियों के मुख्य स्रोत थे। बंगाल के वैष्णव-धर्म में माधवेन्द्रपुरी का नाम अतिशय महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन्होंने ही निष्काम, अहैतुकी भक्ति और उत्कट प्रेम को प्रधानता देकर भक्ति-सिद्धान्त को नयी दिशा और अर्थ दिया था। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास की रचनाओं में राधाकृष्ण-प्रसंग का वर्णन सौन्दर्यपूर्ण तो था, किन्तु मूलतः वह श्रृंगारी तथा कहीं-कहीं मानवमिथुन की लौकिकता को छूने के कारण अपरिष्कृत भी था। माधवेन्द्रपुरी इस प्रसंग को उज्ज्वल रस के धरातल पर ले गये।

चैतन्य-सम्प्रदाय के ये आद्य-आचार्य हैं। मध्वाचार्य से लक्ष्मीपति तक मध्व-सम्प्रदाय के आचार्य श्रृंगार-रसमयी भक्ति को लेकर नहीं चले। माधवेन्द्रपुरी ही इस रस-भक्ति के प्रवर्तक थे—

> श्रीमांल्लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः।
> तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद् धर्मोऽयं प्रवर्त्तितः॥
> कल्पवृक्षस्यावतारो व्रजधामनि तिष्ठतः।
> प्रीतिप्रेयोवत्सलतोज्ज्वलाख्यफलधारिणः॥

'भक्ति-रस के आश्रय लक्ष्मीपति और उनके शिष्य हैं। लक्ष्मीपति के शिष्य माध्व हुए। उनसे यह धर्म आगे बढ़ा। वे कल्पवृक्ष के अवतार थे। ब्रजधाम में यह कल्पवृक्ष उगा। इसमें प्रीति, प्रेम, वात्सल्य और उज्ज्वल नामक फल लगे।'

माधवेन्द्रपुरी ने उनके पथ का अनुसरण कर कृष्ण-चैतन्य को इस रसोपासना को सौंप दिया था। चैतन्य-देव ने इस भक्ति-धारा में प्लावन ला दिया। बंगाल तथा व्रज में माधुर्य-भक्ति के व्यापक प्रचार का श्रीगणेश इन्हींके सत्प्रयत्नों से हुआ। ये माध्व-सम्प्रदायान्तर्गत राधाभाव के प्रवर्त्तक आचार्य हैं। यही नहीं, चैतन्य-सम्प्रदाय की मूलभूत मान्यताएँ एवं रस-दृष्टि इनके आदर्शों से प्रभावित हैं।

श्री नित्यानन्द प्रभु माधवेन्द्रपुरी में गुरु-बुद्धि रखते थे। ये भक्ति-रस के आदि सूत्रधार थे। रेमुणा में श्री गोपीनाथ के दर्शन कर ये समाधि-अवस्था में लीन हो गये। इस प्रकार कृष्ण-प्रेम में ये प्रायः संज्ञा-शून्य हो जाते थे। उड़ीसा में चैतन्यपूर्व वैष्णव-मत का प्रचलन था। माधवेन्द्रपुरी 'पुरीमहाशय' के नाम से प्रख्यात थे। इन्होंने अद्वैत-वेदान्त के अनेक प्रकृष्ट मायावादी संन्यासियों को अपने भक्ति-दर्शन से प्रभावित किया था।

इनके सात्त्विक जीवन का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये भक्ति-रस में सर्वदा निमग्न रहते थे। ये कृष्ण-प्रेम में कभी रोते, कभी हँसते और कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बादलों को देखकर कृष्ण का स्मरण होने से अचेत तक हो जाते थे। प्रेम की इनमें पराकाष्ठा थी। ये सर्वदा उदासीन और मौन रहते थे। इनमें बड़ा ही उत्कट वैराग्य था। कृष्ण विरह से ये छके रहते थे। इनकी अयाचक-वृत्ति थी। ये कृष्ण-नाम-संकीर्तन बड़े अनन्य-भाव से करते थे। अनाहार और अनिद्र रहकर भी गोपाल-सेवा में ये तन्मय रहते थे। ये विविध शास्त्रों के ज्ञाता तथा परमभक्त संन्यासी थे। इन्होंने अनेक बार विविध स्थानों की यात्राएँ कर कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार किया था।

इनका जन्म सं० १४५७ के लगभग हुआ था। इन्हें 'भक्तिचन्द्रोदय' की उपाधि मिली थी। ज्ञात होता है कि संन्यासियों में भक्ति का प्रचार इनके द्वारा ही हुआ। ईश्वरपुरी, परमानन्दपुरी, रामचन्द्र-पुरी आदि इनके ही शिष्य थे। काशी के विद्यालय का भार श्री माधवसरस्वती को सौंपकर सं० १५३५ में इन्होंने ब्रज की यात्रा की। मथुरा पहुँचकर 'विश्रामघाट' पर इन्होंने यमुना-स्नान किया और केशवदेव के दर्शन किए। 'चैतन्य-चरितामृत' से ज्ञात होता है कि श्रीनाथजी का प्राकट्य इन्हींके द्वारा हुआ था। गिरिराज के पास गोविन्द-कुण्ड पर इन्हें बालकृष्ण भगवान् का साक्षात्कार और गिरिराज की पहाड़ी पर देवविग्रह का प्रादुर्भाव हुआ। इनका नाम माधवेन्द्रजी ने 'गोपाल' रखकर इनकी सेवा का आरम्भिक आयोजन किया जिनकी यथोचित व्यवस्था वल्लभाचार्य एवं गोस्वामी विट्ठलनाथ के द्वारा हुई। आचार्य वल्लभ ने उस विग्रह का नाम 'श्री गोवर्द्धन-नाथजी' और विट्ठल ने 'श्रीनाथजी' रखा। माधवेन्द्र-पुरी ने दो वर्ष तक अहर्निश गोपालदेव की सेवा की। ये अच्छी-अच्छी वस्तुएँ व्रजवासियों से मँगाकर भोग लगाते थे और प्रसाद का तत्काल वितरण कर देते थे। भेंट की कोई भी सामग्री उसी दिन खर्च कर दी जाती थी। यह परम्परा कृष्णदास अधिकारी के विरोध करने से पूर्व तक बनी रही, ऐसा ज्ञात होता है। कृष्णदासजी के बंगाली सेवकों से रुष्ट होने के कारणों में से एक कारण यह भी हो सकता है। श्रीमाधवेन्द्रपुरी अपने दो शिष्यों रामदास तथा नरहरि-दास को सेवा का भार सौंपकर, प्रभु के आदेश से कर्पूरचन्दन लेने नीलाचल चले गए। इन्होंने शान्तिपुर में अद्वैताचार्य के घर पधारने की कृपा की, उन्हें मंत्र दिया और कृष्ण-प्राप्ति का सरल उपाय बतलाया। कहा जाता है कि इन्होंने राधिकाजी का चित्रपट तैयार कराया और युगल-उपासना का उपदेश दिया था। इनके उपदेश का सार था—

श्याम एव परं रूपं पुरी मधुपुरी वरा।
वयः कैशोरकं ध्येयमाद्य एव परो रसः॥

अद्वैत प्रभु के यहाँ से ये उड़ीसा की ओर चले, मार्ग में रेमुना पहुँचे। वहाँ श्री गोपीनाथजी की विशिष्ट पूजा होती थी। उन्हें खीर-भोग लगाया जाता था। कहा जाता है कि भक्त की वांछा पूरी करने के लिए भगवान् ने 'खीरप्रसाद' चुराकर माधवेन्द्रपुरी को तृप्त किया था। तभी से वे 'खीरचोरा गोपीनाथ' नाम से प्रसिद्ध हैं। महाप्रसाद में श्री माधवेन्द्रपुरी की इतनी निष्ठा थी कि खीर-प्रसाद के मृत्तिकापात्र को भी उन्होंने चूर्ण बनाकर अपने साथ रख लिया था।

नीलाचल में जगन्नाथदेव के दर्शन कर प्रेमावेश से ये कभी उठते, कभी गिरते, कभी हँसते-नाचते और कभी गाने लगते थे। अयाचक वृत्ति होने से ये निराहार रहकर भी शताधिक कोस चलकर अपने गोपालदेव के लिए चन्दन और कपूर का संग्रह करने में जुटे रहते थे। पश्चात् गोपीनाथजी के आदेश से ही उनको गोपालदेव से अभिन्न मानकर पुरीजी ने कर्पूरचन्दन समर्पित किया। वहाँ से ये मध्वाचार्य के आश्रम की ओर (दक्षिण) चले गये। अपने परम गुरुदेव व्यासतीर्थ के दर्शन कर पुनः सं० १५४१ के पौष मास में इन्होंने मथुरा की ओर यात्रा प्रारम्भ की। पहले नीलाचल पहुँचकर अपने गुरुदेव लक्ष्मीपति के दर्शन किये और वहाँ श्री नित्यानन्द प्रभु पर कृपा की। इनके शिष्य ईश्वर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरी इन्हें साक्षात् कृष्ण समझते थे। उनके प्रति माधवेन्द्रपुरी का भी विशेष स्नेह था। एक बार इन्होंने अपनी प्रसादी माला देकर ईश्वरपुरी (पुरी महाशय) में शक्ति का संचार कर दिया था। कहा जाता है कि निम्नलिखित श्लोक कहते हुए इन्होंने सं० १५४० में अपनी इहलीला संवरण कर ली—

अयि दीन दयार्द्र ! नाथ हे !
मथुरानाथ कदाऽवलोक्यसे ।
हृदयन्त्वदलोककातरन्दयित
भ्राम्यति किं करोम्यहम् ॥

ऐसा ज्ञात होता है कि नव्य-वैष्णववाद की प्राण-प्रतिष्ठा तथा विग्रह-सेवा श्रीमाधवेन्द्रपुरी के ही प्रयत्नों से हुई। पूर्व-उत्तर तथा दक्षिण की भक्ति को एक तार में अनुस्यूत करने का महाप्रयास इनके द्वारा हुआ था। इसीसे बंगाल का वैष्णव-मतवाद उत्थित हुआ। डॉ० सुकुमार सेन मानते हैं कि चैतन्यपूर्व 'श्रीकृष्ण-विजय' के भावापन्न रचयिता मालाधर वसु (गुण-राजखान), जिन्होंने 'भागवत पुराण' का उक्त ग्रन्थ में भावानुवाद किया था, की माधवेन्द्रपुरी से भेंट हुई थी। महाप्रभु चैतन्य इनकी रचनाओं का भाव-सिक्त आस्वादन करते थे।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी की उपासना में वत्सल तथा मधुर रसों का संगम था। इनके द्वारा रचित 'युगलाष्टक', कुछ स्फुट श्लोक तथा एक बंगलापद ही अद्यावधि प्राप्त है। रूपगोस्वामीकृत 'पद्यावली' में इनके ५ श्लोक संकलित हैं। रघुनाथदास गोस्वामी ने 'अनंग-रसचातुरी' वाला श्लोक 'मनःशिक्षा' में उद्धृत किया है। ये क्रमशः शार्दूलविक्रीडित, पृथ्वी, अनुष्टुप्, औपच्छन्दसिकम् और वियोगिनी छन्दों में विरचित हैं। इन श्लोकों से साधनों की प्रयोजनहीनता, मानसी सेवा, मधुरभाव, उत्कंठा, रास और उत्कट विरह-भाव परिज्ञात होता है। इनका 'युगलाष्टक' चैतन्य-सम्प्रदाय की भक्ति-भावना का प्राण-तत्त्व है। इसमें राधा-कृष्ण-युगल का सच्चिदानन्दत्व, वृन्दावन-विहारत्व, रासक्रीड़ा-परायणत्व, यमुनाजल-विहार-शीलत्व, गोवर्द्धनविलासत्व, परस्पररसाविष्टत्व एवं शोभारूप का उल्लेख हुआ है। 'गोवर्द्धनविलासत्व' आख्या इनके उपास्य गोपालदेव के लिए ही है। ब्रजबुलि का पद बड़ी चारु-शैली में राधा की गत्वर-रूपचेष्टा एवं अभिसार-समुत्कण्ठा का अद्वितीय उदाहरण है। कहने का तात्पर्य यह है कि मधुर-भाव की भक्ति का पूर्ण परिपाक इनकी रचनाओं में उपलब्ध है, भले ही वह सूत्ररूप में हो। यदि माधवेन्द्रपुरी के दृष्टिपथ में आलवार, नायनार, लीलाशुक तथा कृष्णकर्णामृत भी रहे हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। आचार्य वल्लभ में वत्सल और मधुर का जो युगपत्भाव मिलता है उसके संक्रमणकर्त्ता किसी सीमा तक माधवेन्द्रपुरी कहे जा सकते हैं। महाप्रभु चैतन्य से तो इनकी मात्र दो बार भेंट हुई थी।

रूपगोस्वामी ने इनके जिन श्लोकों को संगृहीत किया है वे बड़े ही ललित और भावसिद्ध हैं। दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

(१)

अनंगरसचातुरी-चपल-चारु-नेत्राञ्चल-
श्चलन्मकरकुण्डल-स्फुरितकान्ति-गण्डस्थलः ।
व्रजोल्लसित-नागरीनिकर-रासलास्योत्सुकः
स मे सपदि मानसे स्फुरतु कोऽपि गोपालकः ॥

—पद्यावली, श्लोक ९६

'कामक्रीड़ा के चातुर्य से जिसके चारु लोचन चंचल हो रहे हों, कपोलों पर मकरकुण्डल की कान्ति कलित हो, व्रजबालाओं के साथ रास-लास्य की लालसा में शाश्वत उत्सुक हो, ऐसा कोई गोपिका-वल्लभ मेरे मानस-पटल पर तुरत स्फुरित हो।'

(२)

अधरामृतमाधुरीधुरीणो
हरिलीलामुरलीनिनाद एषः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रततान् मनःप्रभावमुच्चै-
र्हरिणीनां हरिणीदृशां मुनीनाम् ॥
—पद्यावली, श्लोक २८६

'अधरामृत के माधुर्य का आधार, कृष्ण द्वारा बजाई लीला-मुरली का मङ्गल स्वर, हरिणियों, हरिणी के समान नेत्रोंवाली कामिनियों और मुनिजनों के मन को एक साथ ही चुरा ले।'

'युगलाष्टक' से तीन उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१)

वृन्दावनविहाराढ्यौ सच्चिदानन्दविग्रहौ।
मणिमण्डपमध्यस्थौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥
—युगलाष्टक, श्लोक १

'वृन्दावन के विहार में सत्, चित् और आनन्दरूप, मणि-मण्डप के मध्य में विराजमान, राधाकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।'

(२)

भावाविष्टौ सदा रम्यौ रासचातुर्यपण्डितौ।
मुरलीगानतत्त्वज्ञौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥
—युगलाष्टक, श्लोक ३

'रस-भाव-के शाश्वत आवेशवाले, अतीव रमणीय, रास की कला के मर्मज्ञ, मुरली की मादक स्वरसरणी के रहस्यद्रष्टा राधा और कृष्ण को मेरा प्रणाम।'

(३)

परस्पररसाविष्टौ परस्परगुणप्रियौ।
रससागरसम्पन्नौ राधाकृष्णौ नमाम्यहम् ॥
—युगलाष्टक, श्लोक ८

'परस्पर एकात्म्य के आनन्द से आवेशित, एक-दूसरे के गुणों से प्रसन्न, रस के समुद्र राधाकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।'

'पदामृतमाधुरी' से इनका एक ब्रजबुलि पद 'पांचशत्वत्सरेर पदावली' के विद्वान् लेखक श्री विमानविहारी मजूमदार ने उद्धृत किया है—

साजल घनी चन्द्रवदनी, श्याम दरशन आशे।
संगिनीगन रंगिनी सब, घेरलि चारि पाशे ॥

तरुनारुन चरण युगल, मंजीर तँहि शोभे।
भृंगावलि पुंज पुंज गुंजरे मधुलोभे ॥

नवयौवनी चन्द्रवदनी वृन्दावन माझे।
'माधवेन्द्रपुरी' रचित गीत मिलल नागर राजे ॥

श्री माधवेन्द्रपुरी चैतन्य-सम्प्रदाय के परम पूजास्पद आचार्य हैं। इस सम्प्रदाय के समस्त वैष्णव अपनी उपासना में इनकी वन्दना करते हैं। देवकीनन्दन दास ने बंगला ग्रन्थ में जिन आचार्यों की वन्दना की है उनमें श्री माधवेन्द्र एक प्रमुख आचार्य हैं। पामर वृन्दावनदास ने वैष्णव-वन्दना के सम्बद्ध अंश का हिन्दी रूपान्तर भक्तनामावली में इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

परमादर प्रणमहुँ पुरी, माधवेन्द्र रसरास।
पुरी भक्ति भगवंत की, जिन कीनी परकास ॥

न० च० बं०

मानवेदराजा

मानवेद का समय सत्रहवीं शताब्दी है। इन्होंने कृष्णगीति अथवा कृष्णनाटक की रचना की और अनन्तभट्ट के अपूर्ण 'चम्पूभारत' को पूरा किया। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'चम्पूरामायण' की टीका भी लिखी रुद्रदास ने 'चन्द्रलेखा-सट्टक' या 'मानवेदचरित' में चन्द्रलेखा और मानवेदराज के विवाह की कथा निबद्ध की है। इनके 'कृष्णगीति' का प्रणयन जयदेव-कृत गीत-गोविन्द की अनुकृति पर हुआ है। इसमें आठ परिच्छेद हैं, जिनमें कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया गया है। आख्यानों का वर्णन गीतियों और पद्यों में हुआ है। गुरुवायूर के मन्दिर में इसका प्रतिवर्ष अभिनय होता है। विद्वानों की मान्यता है कि इसीके आदर्श पर कथकली का विकास हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानवेद को अपने गुरु बिल्वमङ्गल की कृपा मिली थी, जिससे ये बालकृष्ण को वंशी बजाते देखते थे। जब इन्होंने बालकृष्ण का स्पर्श करना चाहा, तब वे मोरपंख छोड़कर भाग गये। मानवेद उस मोरपंख को मुकुट में जड़वाकर उस बालक के शिर पर रखते थे, जो कृष्ण का अभिनय करता था।

मधुर गीतों और पद्यों से युक्त यह रचना मनोहर है। इसमें भावों के अनुकूल छन्दों की योजना की गयी है। कीर्तन के सौन्दर्य का दर्शन कीजिए—

कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम कृष्ण राम।
कृष्ण राम तव तु नटनमधिकमोहनम् ॥

इसमें नृत्य और गीत का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है।

अधोलिखित गीत में भाषा और भाव का मञ्जुल समन्वय है—

विलसितहृदयविकारं विरहितविविधविचारम्।
विलुलितपृथुकुचभारं मदचलमदनागारम् ॥

मानवेद छोटे-छोटे पद्यों की रचना में भी कुशल थे और सुदीर्घ छंदों की रचना में भी।

अ० पा०

मित्रमिश्र

मित्रमिश्र ओरछा-नरेश वीरसिंहदेव के आश्रित थे। वीरसिंहदेव का शासनकाल १६०५-१६२७ ई० है। वीरसिंहदेव बुन्देला क्षत्रिय थे। वे संस्कृत-भाषा के बहुत प्रेमी थे। वे जहाँगीर के कृपा-पात्र थे। उन्होंने कुल मिलाकर इक्यासी मन सुवर्ण-दान किया था। उन्होंने मथुरा के विश्रामघाट पर भी एक तुलादान किया था, किन्तु अभिमानपूर्वक दान करने के कारण पुरोहित ने उसका परित्याग कर दिया था।

मित्रमिश्र का जन्म ग्वालियर में सनाढ्य ब्राह्मण-वंश में हुआ था। आपके पितामह का नाम हंस था और पिता का परशुराम। परशुराम के गुरु काशी-वासी चण्डेश्वर थे। मित्रमिश्र के ज्येष्ठ भ्राता वीरेश्वर चक्रपाणि थे और कनिष्ठ भ्राता योगादित्य। इनकी एक बहन थी, जिसका नाम सुनीति था।

मित्रमिश्र की कृतियाँ हैं—(१) वीरमित्रोदय (धर्मशास्त्र का ग्रन्थ), (२) याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका, (३) वीरनायक (गणित का ग्रन्थ) और (४) आनन्दकन्दचम्पू। 'आनन्दकन्दचम्पू' में कृष्णचरित की अमृतधारा प्रवाहित हुई है। इसके आठ उल्लासों में श्रीकृष्ण की मथुरा तथा व्रज की लीलाओं का वर्णन है। प्रथम में यमुना का वर्णन है, द्वितीय में श्रीकृष्ण-जन्म का वर्णन किया गया है, वसुदेव के गोकुल-प्रस्थान और मथुरा-प्रत्यागमन की कथा निबद्ध है। तृतीय में नन्दोत्सव और बाललीला की कथा है। चतुर्थ में वृन्दावन-लीला की कथा निबद्ध हुई है, प्रकृति-वर्णन की योजना में रात्रि, चन्द्रोदय तथा प्रातःकाल का वर्णन मिलता है, वत्सासुर, बकासुर आदि के उद्धार की भी कथा है। पञ्चम में ब्रह्मव्यामोह, बालप्रेमादि का वर्णन है। षष्ठ में कालियनाग, इन्द्र-मानभङ्ग और रासलीला की वर्णना मिलती है। सप्तम में राधाभिसार, शङ्खचूडवध, कुब्जालीला आदि की कथा के पश्चात् कंसवध का वर्णन है। अष्टम में देवकी-वसुदेव के हर्ष का वर्णन किया गया है।

'आनन्दकन्दचम्पू' से दो श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं—

कदाचित्कर्पूरैः कुचकलशयोः सीम्नि हरिणा,
विनाकूतं वीणाललितललना कापि लिलिखे।
प्रियस्तां पश्यन्त्या मुकुलितदृगन्तस्मितलवं,
चलत्कर्णोत्तंसं जयति शिरसो धूननविधिः ॥

—१।५

'किसी समय भगवान् कृष्ण ने बिना किसी अभिप्राय के श्री राधाजी के कुचकलशयुगल की सीमा पर कर्पूर (पराग) से वीणा धारण करने के कारण सुन्दर लगनेवाली ललना को चित्रित कर दिया, जिसे देखकर उनके नेत्रप्रान्त मुकुलित हो गये और उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुस्कराहट जाती रही। वे प्रणयकोप से शिर हिलाने लगीं, जिससे कानों के कुण्डल हिलने लगे। उनकी इस शिरःकम्पन-विधि की जय हो।'

द्वितीय श्लोक इस प्रकार है। इसमें श्रीकृष्ण की बाललीला का वर्णन है—

जाता क्षुधा बलवती सविधे न माता,
तातादिकं च न च कश्चिदथालुलोचे।
चक्रन्द मन्दमशृणोन्न च कश्चनेति,
बालः क्रुधा शकटमेव पदा बभञ्ज॥

—३।८०

'उस समय अत्यधिक भूख लगी थी, समीप में माता नहीं थीं, पिता आदि को भी नहीं देखा। वे धीरे-धीरे रोने लगे। जब किसीने नहीं सुना, तब बालक कृष्ण ने क्रोध में आकर पैर से शकट को ही तोड़ डाला।'

अ० पा०

रंगीलाल गोस्वामी

१९वीं शती के उत्तरार्ध में राधावल्लभ-सम्प्रदाय के संस्कृत-साहित्य को जिन दो महानुभावों ने समृद्धि प्रदान की उनमें से एक हैं श्री रंगीलाल गोस्वामी और दूसरे हैं श्री प्रियादास शास्त्री (पटनावाले)। श्री रंगीलाल गोस्वामी संस्कृत के अच्छे विद्वान् और सुकवि होने के साथ ही उच्चकोटि के रसिक सन्त थे। इनका जन्म श्री हिताचार्य की ११वीं पीढ़ी में हुआ था। इनके जीवन का पूर्वार्द्ध वृन्दावन में व्यतीत हुआ। वहाँ रहकर इन्होंने संस्कृत-भाषा का गहराई से अध्ययन किया और इसके साथ श्री हिताचार्य को श्री राधा द्वारा प्रदत्त 'निजमंत्र' का जाप और भावना भी दृढ़तापूर्वक करते रहे। सुना जाता है कि निजमंत्र इनको सिद्ध हो गया था और उसके बल पर इन्होंने अपने जीवन में अनेक लोकोपकारी कार्य किये। वृन्दावन में इनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, किन्तु ये भजन में अहर्निश मस्त रहते थे और बाहर जाकर धर्म-प्रचार द्वारा धनोपार्जन करने के लिये तैयार नहीं होते थे।

जब स्थिति बहुत अधिक बिगड़ने लगी तो परिवारवालों के आग्रह पर ये गुजरात जाने को तैयार हो गये। वहाँ पर ये सर्वप्रथम बड़ौदा में रुके। बड़ौदा राज्य उस समय भयंकर अकाल की चपेट में था। वहाँ दो वर्ष से वर्षा न होने के कारण हाहाकार मचा हुआ था। गोस्वामी रंगीलालजी ने जब अपने आने की सूचना राजा को दी तो उसने कहा कि इस प्रकार के बहुत से महात्मा आते-जाते रहते हैं, किन्तु कोई मेरी प्रजा के संकट को दूर करने में समर्थ नहीं होता। अतः मैं उनसे मिलने को तैयार नहीं हूँ। गोस्वामी रंगीलालजी के मन में राजा की बात चुभ गयी। उनको अपने इष्ट पर पूर्ण विश्वास था। उन्होंने राजा से कहलवा दिया कि आप मेरे पास पाँच ऐसे ब्राह्मण भेजिये जो सच्चरित्र और विद्वान् हों। ब्राह्मणों के आने पर गोस्वामीजी ने उनको 'निजमंत्र' से दीक्षित किया और नगर से बाहर एक स्थान पर 'निजमंत्र' का अनुष्ठान आरंभ कर दिया। ग्यारहवें दिन पूर्णाहुति के तत्काल बाद घनघोर वर्षा आरंभ हो गई और सात दिन तक पानी बरसता रहा। सातवें दिन राजा हाथी पर बैठकर गोस्वामीजी के पास आया और वर्षा बंद करने की प्रार्थना की। दूसरे दिन पानी बंद हो गया।

इस वर्षा से सम्पूर्ण राज्य में सुख-शान्ति फैल गयी। राजा ने गोस्वामीजी से बड़ौदा में ही स्थायी निवास करने की प्रार्थना की और जहाँ उनका डेरा था वह सब भूमि उनको भेंट कर दी। बड़ौदा में वह स्थान 'मदन का झाँपा' कहलाता है और इस समय वह नगर का एक भाग बन गया है। इस स्थान पर गोस्वामीजी ने श्री राधावल्लभजी का मन्दिर बनवाया और सेवाकुंज एवं रासमण्डल की स्थापना की। सेवाकुंज में इन्होंने वृन्दावन से लतायें मँगवाकर लगवायीं जिनमें से कुछ अब भी विद्यमान हैं। गोस्वामीजी के जीवन का उत्तरार्ध बड़ौदा में ही व्यतीत हुआ। वहाँ रहकर इन्होंने हित-सम्प्रदाय का प्रचुर प्रसार किया और संस्कृत के अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थों की रचना की। सम्वत् १९०९ में इनका निकुंजवास हो गया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या ३७ बतायी जाती है। इनके अधिकांश ग्रन्थ महमदाबाद और अहमदाबाद में इनके वंशजों के पास हैं। कुछ ग्रन्थों का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

'द्विदल निर्णय' : सौ श्लोकों के इस छोटे-से ग्रन्थ में गोस्वामीजी ने दो स्थापनायें की हैं। एक तो भगवत्-तत्त्व की सहज युगलात्मकता और दूसरी श्री राधाकृष्ण की एकरूपता एवं श्री राधा के शक्तित्व का निषेध। यह ग्रन्थ गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में लिखा गया है। शिष्य के प्रश्न के उत्तर में गुरु ने बताया है कि जैसे आँखें दो होते हुए भी उनमें दृष्टि एक ही होती है, जैसे जल और तरंग दो होते हुए भी एक हैं, उसी प्रकार श्री राधा-कृष्ण एक ही रस की दो मूर्तियाँ हैं। शिष्य पूछता है कि फिर भी कृष्ण पुरुष हैं और स्त्री का आकारवाली राधा उनकी शक्ति हैं, इन दोनों का अभेद कैसे बन सकता है? गुरु ने उत्तर दिया कि यदि स्त्री के आकारमात्र से शक्ति की कल्पना करोगे तो लीला के लिये मोहिनी रूप धारण करने-वाले श्रीकृष्ण को भी शक्ति मानना होगा।

स्त्र्याकारमात्राद्यदिशक्तिकल्पनां-
करोषि तस्यामिदमप्यसांप्रतम्।
लीलार्थमाविष्कृतदिव्यमोहिनी-
रूपस्य कृष्णस्य कथं नु शक्तिता॥

दूसरी बात यह है कि श्री राधा की रमा, गौरी आदि शक्तियाँ बतलाई गई हैं और शक्ति की शक्ति मानना युक्तियुक्त नहीं है। अतः मुकुन्द से अभिन्न-रूपिणी श्री राधा शक्ति न होकर शक्तिमती हैं। शिष्य ने पूछा कि फिर अनेक वैष्णव श्री राधा को शक्तिरूप में और भक्तरूप में क्यों मानते हैं? गुरु ने उत्तर दिया कि श्री राधा-हरि विभिन्न भक्तों के विभिन्न भावों के अनुकूल लीला करते हैं। कहीं श्री राधा की शक्ति के रूप में और कहीं भक्तरूप में लीला दिखलाई देती है। किन्तु इनमें विरोध नहीं मानना चाहिये, क्योंकि श्री राधा अचिन्त्य-स्वरूपा हैं। भगवान् मुकुन्द के गोवर्धन-पूजा करने पर भी जिस प्रकार उनकी ईश्वरता नष्ट नहीं होती, उसी प्रकार श्री राधा की लीलाओं को भी समझना चाहिये—

मुकुन्दस्य गोवर्धनाराधनादौ,
यथाभक्ततापीश्वरत्वं न हन्ति।
रसं प्रत्युतो जृम्भयत्यद्भुतं सा,
तथा राधिकाया अपीयं स्वलीला॥

'व्रजानन्दामृतम्' : इसमें राधा-कृष्ण की व्रज-लीला का वर्णन है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रंथकर्ता ने बतलाया है कि उनकी बंगालदेशीया धात्री परमेश्वरी ने उनको बाल्यकाल में जो कथायें सुनाई थीं तथा अन्य महानुभावों के मुख से उन्होंने जो कुछ सुना था, उसीको उन्होंने इस ग्रन्थ में लिखा है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १९०७ में हुई थी।

एवं बंगालदेशीया नाम्ना श्रीपरमेश्वरी।
मद्धात्री विपदुद्धर्त्री बाल्ये मां समशिक्षयत्॥
तदेवाद्य मया बुद्धिः स्मृत्वा स्मृत्वा प्रदर्शिता।
तथा महानुभावानां मुखादपि मुहुः श्रुतम्॥

'उत्सवबोध' : इसमें संप्रदाय में मनाये जानेवाले उत्सवों का निर्णय किया गया है। इसकी रचना सं० १९०५ में हुई थी।

इनके अतिरिक्त गोस्वामीजी की 'राधा-सुधानिधि' की 'प्रेम-तरंगिणी टीका', 'सेवा-विचार' की टीका, 'आनन्दचन्द्रोदय नाटक', 'मनःप्रबोध काव्य', 'भक्ति-हंस', 'माहेश्वर-पंचरात्र सार', 'विनय-पंचविंशति' और 'राधा-भक्तिलहरी' नामक रचनायें भी प्राप्त हैं।

ल० च० गो०

रघुनाथ गोस्वामी

रघुनाथजी श्री गुसांई विट्ठलनाथजी के पाँचवें पुत्र थे। इनकी माता का नाम रुक्मिणीदेवी था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका जन्म वि० सं० १६११ में अड़ैल में हुआ था। साम्प्रदायिक ग्रन्थों के अनुसार यह जब पाँच वर्ष के थे तब एक दिन एक ऐसी घटना घटी कि उस दिन से श्रीनाथजी की सेवा में ब्रज-भाषा का व्यवहार होने लगा और उसने संस्कृत का स्थान ले लिया। 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' तथा श्री गिरधरलालजी के बचनामृतों में घटना इस प्रकार लिखी है कि एक बार श्री गुसांईजी श्रीनाथजी के मन्दिर में शृंगार कर रहे थे और ये पाँचों पुत्र वहाँ खड़े थे। उस समय तक श्री गुसांईजी श्रीनाथजी की सेवा में संस्कृत-भाषा का प्रयोग करते थे, अतः उन्होंने संस्कृत में कहा 'मंजूषामानय'। और बालक तो चुप खड़े रहे केवल श्री रघुनाथजी 'जो आज्ञा' कह करके शय्या-मन्दिर में चले आये। यह समझे तो थे नहीं, इसलिए चुपचाप खड़े रहे और विचार करने लगे कि क्या ले जायँ ? इस पर इनको श्री महाप्रभुजी ने बोध दिया और यह शृंगार-मंजूषा लेकर पिताजी के पास उपस्थित हो गये। यह प्रसिद्ध है कि पीछे से श्रीनाथजी ने श्री गुसांईजी को कहा कि सेवा में संस्कृत बोलने से बालकों को कष्ट होता है और मुझे ब्रज-भाषा प्रिय है, आप उसीका व्यवहार कीजिए। इस प्रकार 'मंजूषामानय' की घटना के बाद से सेवा में ब्रज-भाषा का व्यवहार नित्यप्रति बढ़ता ही गया। श्री गुसांईजी अष्टछाप की स्थापना करके ब्रजभाषा-पद्य को तो स्थायी रूप दे ही चुके थे। उन्होंने सेवा-प्रणाली में ब्रज-भाषा-गद्य को स्थान देकर उसके प्रसार के मार्ग का उद्घाटन कर दिया। इससे पूर्व श्री गुसांईजी द्वारा अपने सेवकों के नाम लिखे गये पत्र केवल संस्कृत में प्राप्त होते हैं, परन्तु इस घटना के पश्चात् के (सेवकों को) लिखे गये अनेक पत्र ब्रज-भाषा-गद्य के प्राप्त हैं। ऐसे एक पत्र को हम श्री गुसांईजी के चरित में प्रकट कर चुके हैं।

सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में यह घटना इस प्रकार बताई गई है—

ग्रीष्म ऋतु गिरिधारन को, विट्ठल करत शृंगार।
'मंजूषामानय' कहि, रघुपति पास निहार॥

१५ वर्ष की आयु में सं० १५२६ में श्री गोकुल में इनका विवाह एक स्वजातीय कन्या श्री जानकीजी से हुआ था। इनके पाँच पुत्र व एक कन्या थी। पुत्रों के नाम—१. श्री देवकीनन्दनजी (जन्म सं० १६३४), २. श्री गोपालजी (जन्म सं० १६३१), ३. श्रीजयदेवजी (जन्म सं० १६४५), ४. श्री यशोदानन्दनजी (जन्म सं० १६४६), ५. श्री द्वारिकेशजी (जन्म सं० १६५०) तथा ६. कन्या का नाम श्री जमुनाजी था।

नन्ददासजी की वार्त्ता में (वार्त्ता सं० २४१ चौ० वै० वार्त्ता) प्रसंग ४ में यह लिखा है कि श्री गोस्वामी तुलसीदासजी ब्रज को आए और उन्हें श्री गुसांईजी ने श्री रघुनाथजी के स्वरूप में रामचन्द्रजी के दर्शन कराये। उस समय आपका विवाह हो चुका था। विवाह का सम्वत् लगभग १५२६ है। अतः यह घटना उसके आसपास की ही होगी। सम्प्रदाय-कल्पद्रुम के अनुसार इस घटना का समय सं० १६२८ वि० होना चाहिए, पर 'वचनामृत' के अनुसार यह सं० १६२६ वि० की ही घटना है। वचनामृत की १७९६ वि० सं० की हस्तलिखित प्रति के अनुसार "श्री रघुनाथजी महाराज को विवाह हतो सो ठौर-ठौर आनन्द होय रह्यो हतो''' ''ता समय श्री रघुनाथजी पन्द्रह वर्ष के हे।" ऐसा लिखा है। इसलिए सं० १५२६ ही अधिक प्रामाणिक ठहरता है। यदि यह गुजराती सं० मान लिया जाय, तो सं० १५२७ हो सकता है। उस समय तुलसीदासजी ब्रज आए थे। इनका घर का नाम रामचन्द्रजी था।

इनको बँटवारे में ठाकुर गोकुलचन्द्रमाजी के रूप में मिले थे, जो आज कामवन में पाँचवीं गद्दी के वंशजों के पास हैं। इनका अन्तिम समय सं० १६६० के आसपास माना जाता है। इनका यह नियम था कि प्रातःकाल सबसे पहले श्री गुसांईजी का दर्शन करते थे। एक दिन बैठक में आँख बन्द किए हुए जाते समय इनके चोट लग गई, तब श्री गुसांईजी ने इन्हें अपने हाथ से अपना एक चित्र बनाकर दिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो चन्दावाड़ी बम्बई में सुरक्षित था, परन्तु अब नष्ट हो गया है।

सम्प्रदाय में यह बहुत बड़े ग्रन्थकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' में इनके निम्न-लिखित चौदह संस्कृत के ग्रन्थों का उल्लेख है—नामरत्न, वह्निस्तवन, आराधना-स्तुति, गिरिधराष्टक, गोकुलेश-अष्टक, अष्टपदी, कृष्णचन्द्राष्टक, शयनआर्या, विट्ठलेशाष्टक, षोडश-ग्रन्थ-टीका, नामचन्द्रिका, वल्लभाष्टक, संहित वचन तथा आख्यान-स्तुति।

संस्कृत के उद्भट विद्वान् होते हुए भी इन्होंने व्रजभाषा में सरस काव्य-रचना की है। नीचे इनके द्वारा विरचित व्रजभाषा तथा संस्कृत के छन्द उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

व्रजभाषा का पद

श्रीमदाचार्य के चरन नख चन्द्र को,
ध्यान हिय में सदा रहत जिनके।
कटत सब तिमिर महा दुष्ट कलिकाल के,
भक्ति रस गूढ़ दृढ़ होत तिनके ॥

जन्त्र औ मन्त्र महा तन्त्र बहु भाँति के,
असुर औ सुरन को डर न जिनके।
रहत निरपेक्ष अपेक्षा नहिं काहू की,
भजन आनन्द में गिनेन किनके ॥

छाँड़ि इनकौ सदा औरकौं जे भजे
ते परे संसार माँहि भ्रमके।
धार मन एक श्री वल्लभाधीश पद,
करत मन कामना होत तिनके ॥

मत्त उन्मत्त सौं फिरत अभिमान में,
जन्म खोयौ वृथा रात-दिन के।
कहत श्रुतिसार निरधार निश्चय करि,
सर्वदा शरण 'रघुनाथ' तिनके ॥

'कृष्णचन्द्राष्टक' के अधोलिखित श्लोकों में कृष्ण की शोभा और प्रभाव का वर्णन किया गया है।

(२)

महानीलमेघातिभव्यं सुहासं
शिवब्रह्मदेवादिभिः संस्तुतं च।
रमामन्दिरं देवनन्दापदाहं
भजे राधिकावल्लभं कृष्णचन्द्रम् ॥

'महाकृष्णमेघ की भाँति अतिसुन्दर, सुन्दर हास से युक्त, शिव, ब्रह्मा और देवादि से संस्तुत, वसुदेव और नन्द की विपत्ति को दूर करनेवाले रमानिवास राधिकावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र को भजता हूँ।'

(३)

चलत्कौस्तुभव्याप्तवक्षःप्रदेशं
महावैजयन्तीलसत्पादयुग्मम्।
सुकस्तूरिकादीप्तभालप्रदेशं
भजे राधिकावल्लभं कृष्णचन्द्रम् ॥

'हिलती हुई कौस्तुभ-मणि से व्याप्त वक्षःस्थल-वाले, महावैजयन्ती से शोभित दोनों चरणोंवाले, कस्तूरिका से चमकते हुए ललाटवाले राधिकावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र को भजता हूँ।'

रा० कृ० श०

रघुनाथदास गोस्वामी

रघुनाथदास गोस्वामी कायस्थ जाति के थे। ये सप्तग्राम के जमींदार गोवर्धनदास के एकमात्र पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५५१ में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इनका मन विरक्त होने लगा। चैतन्य का दर्शन करने के लिए ये पुरी गये। महाप्रभु के दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए और घर का परित्याग कर दिया। रघुनाथदास में विरक्ति की पराकाष्ठा थी। इन्हें अपने शरीर की भी चिन्ता नहीं रहती थी। ये चैतन्य की विरहोन्मत्तावस्था में उनके शरीर की रक्षा करते थे। संवत् १५९० में ये वृन्दावन पहुँचे। कहा जाता है कि वहाँ चौबीस घण्टे में ये केवल एक बार थोड़ा-सा मट्ठा पीते थे और प्रेम-विह्वल होकर 'राधे-राधे' चिल्लाते रहते थे। इनकी भजननिष्ठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्भुत थी। राधा-कृष्ण के ध्यान में ये अहर्निश निमग्न रहते थे। इनकी प्रेरणा से कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्यचरितामृत' की रचना की थी।

रघुनाथदास गोस्वामी ने नवाष्टक, राधिकास्तव, उत्कण्ठादशक, विलापकुसुमाञ्जलि, राधाकुण्डाष्टक, दाननिर्वर्तनकुण्डाष्टक, गोवर्धनवासप्रार्थनादशक, मनःशिक्षा, स्वनियमदशक, स्वसंकल्पप्रकाश, प्रार्थनामृत, अभीष्टप्रार्थनाष्टक, अभीष्टसूचन आदि स्तोत्रों की रचना की है।

हित ध्रुवदास ने इनके विषय में लिखा है—

भजनरासि रघुनाथजी, राधाकुण्ड स्थान।
लीन तक्र ब्रज को लयो, परस्यो नहिं कछु आन ॥
बन्दन करिकै चिन्तवन, गौर स्याम अभिराम।
सोवत हू रसना रटै, राधा-कृष्ण सु नाम ॥

—भक्तनामावली

रघुनाथदास गोस्वामी 'स्वसंकल्पप्रकाशस्तोत्र' में राधा के चरणों की रज की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणु-
मनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।
असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान्
कुतः श्यामसिन्धोः रसस्यावगाहः ॥

'राधा के चरणकमलों की धूलि की आराधना के बिना, उनके चरणों के चिह्नों से युक्त वृन्दाटवी के आश्रय के बिना, उनके भाव से गम्भीर चित्तवाले (भक्तों के) साथ सम्भाषण के बिना श्यामसिन्धु के रस का अवगाहन कैसे हो सकता है?'

'विलापकुसुमाञ्जलि' का यह श्लोक कितना मनोरम है—

रासोत्सवे य इह गोकुलचन्द्रबाहु-
स्पर्शेन सौभगभरं नितरामवाप।
ग्रैवेयकेण किमु तं तव कण्ठदेशं
सम्पूजयिष्यति पुनः सुभगे जनोऽयम् ॥

'हे सुभगे, यहाँ पर जिसने रासोत्सव में गोकुलचन्द्र (श्रीकृष्ण) की भुजाओं के स्पर्श से अत्यधिक सौभाग्य प्राप्त किया, क्या वह जन हार से आपके उस कण्ठ-प्रदेश की फिर अर्चना करेगा?'

अ० पा०

रघुनाथ भट्ट

रघुनाथ भट्ट काशीवासी तपन मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १५६२ में हुआ था। जब चैतन्य महाप्रभु नीलाचल से वृन्दावन जा रहे थे, तब तपन मिश्र के घर पर कुछ दिनों तक रुके थे। घर पर चैतन्य की सेवा का जो अवसर मिला, उससे रघुनाथ के हृदय में भक्ति का दृढ़ संस्कार पड़ गया। रघुनाथभट्ट पुरी में आठ महीने तक महाप्रभु के पास रहे। इन्होंने उनसे गृह छोड़ने की आज्ञा माँगी, किन्तु चैतन्य ने निषेध करते हुए कहा कि जब तक माता-पिता जीवित हैं, तब तक संन्यास नहीं लेना है। माता-पिता की मृत्यु के बाद इन्होंने घर छोड़ दिया। रघुनाथ ने भागवत का गम्भीर अध्ययन किया था। गदाधर पण्डित से इन्हें भागवत-कथा की प्रेरणा मिली थी। ये मधुर कण्ठ से कथा कहते थे। इनकी कथा गोविन्ददेवजी के मण्डप में होती थी। ये कथारस से भक्तों को आह्लादित कर देते थे। कहते हैं कि रूप गोस्वामी भी इनकी कथा सुनते थे।

इन्हें चैतन्य से प्रसादरूप में तुलसी की माला प्राप्त हुई थी। अन्तिम समय में उसे धारण कर नामकीर्तन करते हुए ही इन्होंने शरीर का परित्याग किया। इनकी मृत्यु संवत् १६११ में हुई।

भागवत-कथा के कारण षड्गोस्वामियों में रघुनाथ भट्ट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये भागवतकथा की परम्परा के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं।

अ० पा०

रघुपति उपाध्याय

रघुपति उपाध्याय मिथिला के प्रसिद्ध पंडित और कृष्णभक्त सुकवि थे। महाप्रभु चैतन्यदेव से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनकी भेंट हुई थी। उस समय महाप्रभु के आग्रह पर इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में एक श्लोक गाकर सुनाया था, जो इस प्रकार है—

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परब्रह्म॥
कम्प्रति कथयितुमीशे सम्प्रति को वा प्रतीतिमायातु।
गोपतितनयाकुञ्जे गोपवधूटीविटं ब्रह्म॥

'संसार के भय से कुछ लोग वेद की शरण लें, दूसरे स्मृति की शरण लें और अन्य महाभारत की। मैं तो नन्द की वन्दना करता हूँ, जिनके घर में परब्रह्म विराजमान हैं। किससे कहूँ, कौन विश्वास करेगा कि राधा के कुञ्ज में ब्रह्म निवास कर रहा है।'

रा० चौ०

रणवीर सिंह

रणवीर सिंह अमेठी (सुलतानपुर) के राजा लालमावव सिंह 'क्षितिपाल' के पौत्र एवं राजा भगवानबख्श सिंह के द्वितीय पुत्र थे। बचपन से ही आप बड़े प्रतिभाशाली थे। आप उच्चकोटि के कवि, निष्णात वक्ता, चित्रकार तथा वैचारिक निबन्धकार थे। अल्पायु में ही आपने छोटी-बड़ी कुल २६ रचनाएँ कीं। आपके वैचारिक निबन्धों का एक संग्रह १९८१ ई० में 'रणवीर-रत्नाकर' नाम से निकला है। आपने भगवान् कृष्ण की, गीता के योगेश्वर कृष्ण के रूप में, अभ्यर्थना की है, इस विचार से कि ये ही कृष्ण भारत का उद्धार कर सकते हैं। योगेश्वर कृष्ण की अभ्यर्थनापरक इनका एक श्लोक प्रस्तुत है—

कृष्ण-स्तवन

यदुकुलकमलपूषणमदूषणमार्यभूषणमपरम्।
सुस्मितसुवदनं सौख्यसदनं श्यामलं पीताम्बरम्॥
श्रीदीनबन्धुं न्यायसिन्धुं केशवं करुणाकरम्।
वन्दे प्रहर्षविकासनं मुरनाशनं योगेश्वरम्॥

'यदुकुल-कमल को विकसित करनेवाले सूर्य, दूषणरहित, निर्विकार आर्य (श्रेष्ठ) जनों के शोभावर्द्धक, मुस्कानभरे सुन्दर मुखमण्डलवाले सौख्य के सदन, श्यामसुन्दर, पीताम्बरधारी, दीनों के बन्धु, न्याय के सिन्धु, करुणावरुणालय, मुरारि, योगेश्वर केशव कृष्ण का शुभ वन्दन।'

त्रि० ना० चौ०

रमापति उपाध्याय

रमापति उपाध्याय वत्सगोत्रीय ब्राह्मण थे और मिथिला के निवासी थे। इनके पिता कृष्णपति उपाध्याय कवि और वेदज्ञ थे। रमापति दरभंगा के राजा नरेन्द्रसिंह (१७४३—१७६० ई०) के आश्रित थे। इन्होंने 'रुक्मिणी-परिणय' नाटक की रचना श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी। इस नाटक का अभिनय राजा नरेन्द्रसिंह की कमलेश्वरी-स्नान-यात्रा के अवसर पर विद्वानों के अभिनन्दनार्थ हुआ था।

नाटक की कथा इस प्रकार है—

राजा भीष्मक अपनी कन्या रुक्मिणी के स्वयंवर में राजाओं को निमन्त्रित करते हैं। कलहवर्धन रुक्मी के मत का समर्थन करता हुआ कहता है कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से कर दिया जाय। दूसरी ओर हरिवल्लभ भीष्मक के मत का समर्थन करता हुआ कहता है कि रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से किया जाय। इस पर भीष्मक कृष्ण के पास सन्देश भेजते हैं कि मैंने और मेरी महारानी ने यह संकल्प किया है कि हमारी कन्या के पति आप हों।

कृष्ण यादववीरों के साथ कुण्डिनपुर पहुँचे। क्रथकैशिक ने कृष्ण का स्वागत किया। कृष्ण के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने की सूचना कुण्डिनपुर में आए हुए राजाओं को दी गयी। इसमें भीष्मक भी सम्मिलित हुए।

कृष्ण की इच्छा के अनुसार स्वयंवर का कार्यक्रम निरस्त कर दिया गया। कृष्ण ने मथुरा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ओर प्रस्थान किया। इधर रुक्मी की मन्त्रणा से जरासन्ध आदि ने कालयवन के नेतृत्व में मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण ने पहले ही गरुड़ से द्वारका का निर्माण कराकर यादवों को वहाँ भेज दिया था। राजा मुचुकुन्द की नेत्राग्नि से कालयवन भस्म हो गया। कृष्ण ने द्वारका से भीष्मक के पास सन्देश भेजा कि शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह का आयोजन किया जाय। शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने के लिए आता है। रुक्मिणी अत्यन्त दुःखित होती है। नारद रुक्मिणी को समझाते हैं कि कृष्ण गरुड़ से आ रहे हैं। नारद कृष्ण के पास पहुँचे। कृष्ण ने नारद से सन्देश भेजा कि मृगाक्षी के विषाद को दूर करूँगा और राजाओं को पराजित करके रुक्मिणी के साथ विवाह करूँगा—

यथा विषीदत्यनिशं मृगाक्षी,
तथैव तच्छेत्तुमवेहि मामपि।
भूपालवर्गान् परिभूय तत्करं,
हृत्वा ग्रहीष्यामि बलात् प्रभाते॥

रुक्मिणी प्रातःकाल गौरी की पूजा करने के लिए जाती है और वर माँगती है—'भवतु मे धवो माधवः' (माधव मेरे पति हों)। नारद ने कृष्ण को सूचना दी कि रुक्मिणी मन्दिर से बाहर जानेवाली है। कृष्ण गरुड़ पर चढ़कर रुक्मिणी का हरण करने के लिए चल पड़े। वे रुक्मिणी का हाथ पकड़कर उसे रथ पर बैठाकर वहाँ से भागते हैं। कृष्ण रुक्मिणी को लेकर द्वारका पहुँचते हैं। बलराम और जरासन्ध आदि में युद्ध होता है। बलराम सभी को पराजित करते हैं। द्वारका में कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह होता है।

'रुक्मिणी-परिणय' किरतनिया नाटक है। इसमें मैथिली भाषा का भी प्रयोग हुआ है। सभी प्रकार के पात्र मैथिली का प्रयोग करते हैं।

रुक्मिणी कहती है—

किं मे ददातु गिरिजा परिवाञ्छितार्थं,
किं वा हरत्वखिलजीवहरः कृतान्तः।
प्राणांस्तथाप्युभयथा भवितावसानं,
दुःखस्य मेऽद्य सखि तेन हृदि प्रहर्षः॥

—पारिजात० ५।५

'क्या गिरिजा मेरा अभिलषित अर्थ प्रदान करेंगी! क्या सभी जीवों का हरण करनेवाला यम मेरे प्राणों को हर लेगा! हे सखि, दोनों प्रकार से मेरा दुःख समाप्त हो जायगा, अतः हृदय में आनन्द हो रहा है।'

रुक्मिणी कहती है कि क्या किसीने सुना है अथवा देखा है कि हृदय-रोग की शान्ति जल से भींगे हुए पंखे की हवा से, नलिनीदल से, चन्दन से, कर्पूरपराग से अथवा करमार्जन से होती है—

जलार्द्रया किं नलिनीदलेन किं
श्रीखण्डकर्पूररजश्चयेन किम्।
आकर्णितं केन विलोकितं वा
हृद्रोगशान्तिः करमार्जनेन किम्॥

अ० पा०

रसिकोत्तंस

रसिकोत्तंसजी गढा (जबलपुर) के प्रसिद्ध भक्त कवि श्री गदाधर भट्ट के प्रथम पुत्र थे। आपने भक्ति के क्षेत्र में अपने पिताजी से ही दीक्षा ली थी। इन्होंने 'प्रेमपत्तनम्' शीर्षक से एक कृष्ण-भक्ति-विषयक ग्रंथ की रचना की थी। ग्रंथ की भाषा संस्कृत है। इन्हें रसिक कृष्ण-भक्त के रूप में यथेष्ट ख्याति प्राप्त है।

त्रि० ना० शु०

राघवेन्द्र

राघवेन्द्र ने १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'राधा-माधव' नाटक की रचना की थी। इसमें सात अङ्क हैं, जिनमें राधा और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

अ० पा०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजचूडामणिदीक्षित

राजचूडामणिदीक्षित का प्रारंभिक नाम यज्ञनारायणदीक्षित था। 'राजचूडामणि' इनकी उपाधि थी। इनके पिता का नाम श्रीनिवासदीक्षित और माता का नाम कामाक्षी था। इनके माता-पिता का देहान्त इनकी बाल्यावस्था में हो गया था। इनके भाई अर्धनारीश्वर ने इन्हें शिक्षा दी। इनके अन्य गुरु थे वेङ्कटेश्वर, जिन्होंने 'तन्त्रशिखामणि' की रचना के लिए राजचूडामणि को प्रेरित किया था। राजचूडामणि अत्यधिक मेधावी थे। प्रसिद्ध है कि सात वर्ष की अवस्था के पूर्ण होने के पहले ही इन्होंने अनेक शास्त्रों और भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ये तंजौर के राजा रघुनाथ के आश्रित थे। रघुनाथ १६१४ ई० में गद्दी पर बैठे थे।

राजचूडामणिदीक्षित का वंशवृक्ष इस प्रकार है—भवस्वामी →श्रीकृष्ण →कुमारभवस्वामी →श्रीकृष्णार्य→भवस्वामी (पत्नी-लक्ष्मी) →रत्नखेट-श्रीनिवासदीक्षित (पत्नी-कामाक्षी) →केशवदीक्षित, अर्धनारीश्वर, राजचूडामणिदीक्षित अथवा यज्ञनारायण।

राजचूडामणिदीक्षित के पिता श्रीनिवासदीक्षित सुरप्प के सभासद् और कवि थे। वे अद्वैतविद्याचार्य, अभिनवभवभूति आदि उपाधियों से विभूषित थे, अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे तथा षड्भाषासार्वभौम कहे जाते थे। बालयज्ञवेदेश्वर ने श्रीनिवासदीक्षित की अधोलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है—

१. अद्वैतकौस्तुभ, २. वादतारावली, ३. मध्वविध्वंसन, ४. बौद्धतन्त्रमथन, ५. वेदान्तवादावली, ६. मणिदर्पण, ७. समयसर्वस्व, ८. विधिनिर्णय, ९. तत्त्वपरिशुद्धि, १०. रत्नप्रदीप, ११. भावनापुरुषोत्तम, १२. शितिकण्ठजय, १३. साहित्यसञ्जीवनी, १४. भावोद्भेद, १५. रसार्णव।

छन्दःशास्त्र, ज्योतिष, मन्त्र, तन्त्र आदि के विषय में भी इनकी रचनाएँ हैं।

राजचूडामणि की निम्नलिखित कृतियाँ हैं—

१. रुक्मिणीकल्याण, २. उपनिषदों के भाष्य, ३. यजुर्वेदव्याख्या, ४. प्रायश्चित्तप्रदीपिका, ५. तन्त्रशिखामणि, ६. शङ्करमुक्तावली अथवा न्यायमुक्तावली, ७. शास्त्रदीपिकाव्याख्या, ८. मणिदर्पण, ९. न्यायचूडामणि, १०. राघवकृष्णपाण्डवीय, ११. रत्नखेटविजय, १२. भोज-कृत रामायणचम्पू का अवशिष्ट भाग, १३. भारतचम्पू, १४. शङ्कराभ्युदय, १५. वृत्ततारावली, १६. शङ्कराचार्यतारावली, १७. कंसध्वंसन, १८. कमलिनीकलहंस, १९. चित्रमञ्जरी, २०. शृंगारसर्वस्व, २१. आनन्दराघव, २२. रघुनाथभूपविजय, २३. साहित्यसाम्राज्य, २४ काव्यदर्पण, २५. अलङ्कारचूडामणि।

रुक्मिणीकल्याण में १० सर्ग हैं। तेलुगु और तमिल में कल्याण का अर्थ विवाह है, इसीलिए 'कल्याण' शब्द का प्रयोग यहाँ किया गया है। अन्य काव्यों का भी नामकरण इसी प्रकार हुआ है—गिरिजाकल्याण, जाम्बवतीकल्याण आदि। रुक्मिणीकल्याण के मंगलाचरण में शिव की स्तुति की गयी है। प्रारम्भ में वाल्मीकि, व्यास, शुक, कालिदास, भवभूति, माघ, भारवि, बाण, मयूर, क्षेमेन्द्र, वामन आदि कवियों की प्रशंसा की गयी है। राजचूडामणि ने अपने पिता श्रीनिवासदीक्षित और अपने बड़े भाई केशवदीक्षित की प्रशंसा की है।

बालयज्ञवेदेश्वर ने 'रुक्मिणीकल्याण' की 'मौक्तिकमालिका' नामक टीका लिखी है। ये राजचूडामणिदीक्षित के ही वंशज थे। बालयज्ञवेदेश्वर ने टीका की रचना १८३३ ई० में की।

राजचूडामणि ने अलङ्कारों का प्रयोग अत्यधिक कुशलता से किया है। रुक्मिणीकल्याण में लगभग ४० अलङ्कारों का प्रयोग मिलता है। श्लेष, यमक, उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग का बाहुल्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माघ की प्रशंसा इस श्लोक में की गयी है—

माघाय माघं भवतान्मुकुन्द-
केलीकथावर्णनपुण्यभाजे।
स्वर्गावरोधा इव यस्य वाचः
स्वैरं भजन्ते सुरसार्थशय्याः॥

—रुक्मिणी० १।१२

'भगवान् मुकुन्द की केलिकथा के वर्णन के पुण्य को धारण करनेवाले माघ कवि को पाप न लगे, जिनके वचन उसी प्रकार सरस अर्थों की पदशय्या को स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार स्वर्गाङ्गनाएँ देवों की शय्याओं पर स्वयं पहुँच जाती हैं।'

हरि के गुणों के वैशिष्ट्य को प्रकट करनेवाला इनका अधोलिखित श्लोक कितना सुन्दर है—

हरेरपारे गुणवारिराशौ
कणं गृणन्तोऽपि वयं कृतार्थाः।
पृषन्ति सिन्धोः पयसां कियन्ति
घना गृहीत्वा हि घना भवन्ति॥

—रुक्मिणी० १।३२

'भगवान् हरि के अपार गुणसागर के कण को भी धारण करते हुए हम कृतार्थ हो गये। सागर के जल की कुछ बूँदों को ग्रहण करके घन (बादल) घन हो जाते हैं।'

जब रुक्मिणी शयनकक्ष में जाती है, उस समय का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में किया गया है—

सा कथञ्चन सखीजनैस्तदा
प्रापिता शयनधाम कामिनी।
बिम्बितप्रियतमं मणिमय-
स्तम्भमाश्रयितुमप्यलज्जत॥

—रुक्मिणी० ६।८३

'सखियों द्वारा किसी-किसी प्रकार शयनकक्ष में लायी गयी रुक्मिणी श्रीकृष्ण के प्रतिबिम्ब से युक्त मणिमयस्तम्भ को भी पकड़ने में लज्जित हुई।'

अ० पा०

राधाकृष्ण तिवारी

आपका जन्म मेवाड़ के बावलास ग्राम में, वत्स गोत्र के ब्राह्मण पं० छोगालाल के यहाँ हुआ था। इनका जन्म-समय अज्ञात है। इनका बाल्यकाल ग्राम्य वातावरण में व्यतीत हुआ किन्तु बाद में इन्होंने पूना में रहकर अध्ययन किया।

ये बाल्यावस्था से ही परम भावुक एवं भक्त थे। कहा जाता है कि छात्र-जीवन में इन्होंने शतक-श्लोकात्मक 'राधाप्रिय-स्तोत्र' की रचना की थी।

अध्यापन एवं कथा-वाचन आपके जीविकोपार्जन का प्रधान साधन था। श्रीमद्भागवत का प्रायशः पारायण तथा कथा-वाचन करते रहने से आपका सारा जीवन ही भक्ति-भावित हो गया था। 'गीतगोविन्द' के आप अद्भुत गायक थे। प्रतिदिन भगवद्भजन एवं स्वाध्यायमय जीवन व्यतीत करते हुए आपने अनेक भक्तिपूर्ण काव्यों की रचना की। उनमें प्रमुख हैं—मुकुन्दाष्टक, दशावतारस्तवन, राधाप्रिय-स्तोत्र, भगवत्स्तुति, भगवत्करुणावलिः, गजेन्द्रचरित, दशावतारचरित, श्रीकृष्णचरित तथा भागवत-महिमा।

परम सहृदय, भागवत-भक्त तथा भावपूर्ण कथा-वाचक तिवारीजी की सम्पूर्ण जीवन-चर्या भक्ति से ओतप्रोत रहती थी।

आप वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित तथा पुष्टि-मार्गीय साधना के अनुयायी भक्त थे। एक उदाहरण देखें—

समुद्धृता येन वराहरूपिणा,
निहत्य दैत्यं सधराधराधरा।
रदाग्र आस्थाप्य रसातलात् स मां,
भवार्णवादुद्धरतु श्रियः पतिः॥

—दशावतार०

'वराहावतार में हिरण्याक्ष का वध कर रसातल से अपने नुकीले दाँतों के अग्रभाग पर रखकर आपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर्वतोंसहित पृथ्वी का उद्धार किया था, तो हे लक्ष्मी-पति भगवान्! संसार-समुद्र से आप मेरा उद्धार करें।'

श्या० श० वा०

राधामोहनदास

राधामोहनदासजी का जन्म रीवाँ में हुआ था। इनका पहले का नाम बलभद्र था। ये राजा जयसिंह देव के पुत्र थे। इन्होंने अपने द्वितीय ग्रंथ की पुष्पिका में लिखा है—

'श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री जयसिंह-देव सुत अनन्त श्री राधावल्लभस्य कृपापात्रास्या-धिकारी श्री राधामोहनदास अपर नाम श्री बलभद्रः।'

इनके गुरु का नाम चन्द्रलालजी था। इनके गुरुनाम में चन्द्रलालजी के साथ रूपलाल और मोतीलाल का भी नाम मिलता है। इन्होंने अपने ग्रंथ के भाष्य की भूमिका में इसका उल्लेख किया है—

चन्द्रलालं रूपलालं मोतीलालं गुरुं तथा।
प्रियादासाख्यमाचार्यं वन्दे भक्तिप्रबोधकम्॥

श्लोक की अन्तिम पंक्ति से यह भी ज्ञात होता है कि प्रियादासजी (रीवाँवाले) इनके भक्ति-प्रबोधक थे।

राधामोहनदासजी आज भी रीवाँ राज्य के अन्तर्गत ज्ञानी भक्त के रूप में ख्यात हैं। इनके द्वारा विरचित ग्रंथों की संख्या दो है। पहला है—'श्रीमद्भागवतार्थदिग्दर्शनम्'—यह संस्कृत-गद्य में लिखा गया है। इसमें श्रीमद्भागवत के प्रथम से द्वादश स्कन्ध तक की कथाओं का संक्षिप्त वर्णन है। इनका दूसरा ग्रन्थ है—'भाष्य'। यह भाष्य ब्रह्म-सूत्र के चार अध्यायों पर किया गया है और संस्कृत-पद्य में है। इन्होंने इसके प्रथम श्लोक में श्री राधा और द्वितीय में हितहरिवंशजी की वन्दना की है।

रीवाँ राज्य के अन्तर्गत आज भी संस्कृतज्ञ कृष्ण-भक्त कवि के रूप में इनकी ख्याति है। इनका एक श्लोक इस प्रकार है—

हितादिहरिवंशं च वन्दे तद्हितकारणम्।
वंशीस्वरूपिणं गोपीसम्प्रदायप्रचारणम्॥

इनका हिन्दी में कोई भक्तिपरक काव्य उपलब्ध नहीं है।

त्रि० ना० शु०

राधारमणदास गोस्वामी

राधारमणीय गोस्वामियों में राधारमणदास गोस्वामी का नाम विशेष समादर के साथ लिया जाता है। ये भागवत के रससिद्ध विद्वान् और 'दीपिकादीपनी' टीका के रचयिता थे। इनके पिता श्री गोवर्द्धन गोस्वामी एवं पितामह श्री जीवनलाल गोस्वामी भी उच्च कोटि के विद्वान् थे। इनकी माता का नाम किशोरी गोस्वामिनी था—

'किशोरीमातरं वन्दे वृषभानुपुरोद्भवाम्'

—दीपिकादीपनी

इनकी पितामही का नाम कृष्णकुँवरि था। इन्हें 'गीतगोविन्द' कण्ठस्थ था। कृष्णगोविन्द गोस्वामी इनके चचेरे भाई थे जिनसे इनका व्यवहार मित्र-वत् था—

पितामहीं प्रपद्येऽहं श्रीकृष्णकुंवराभिधाम्।
गीतगोविन्दकाव्यं हि यस्याः कण्ठे विराजते॥

राधारमणदासजी के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम था राधाप्रसाद तथा छोटे का गोपीप्रसाद। वृन्दावनस्थ गोस्वामी विश्वम्भर से इनके वंशवृक्ष का पता चलता है जिसके अनुसार वे स्वयं इनकी वंश-परम्परा से सम्बद्ध हैं।

श्री राधारमणदास ने अपने जन्म आदि का उल्लेख नहीं किया है। खोज से पता लगता है कि राधा-रमणदास और ब्रजलाल दोनों भाई थे। इन दोनों की सम्पत्ति का वि० सं० १८८७ में राधारमण मन्दिर वृन्दावन में विभाजन हुआ था। यह विभाजन इनकी माता के समक्ष सम्पन्न हुआ था। गोस्वामी विश्वम्भर-जी के पास इस सम्बन्ध में 'शपथ-पत्र' की प्रतिलिपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मौजूद है। इस कार्य में साक्षी थे—कृष्णगोविन्द। इससे यह निश्चित है कि राधारमणदास वि० सं० १८८७ में वयस्क रहे होंगे। वि० सं० १८१८ से वि० सं० १८५७ पर्यन्त राधारमणदासजी के पितामह एवं पिता को कथा-प्रवचन के लिए नरवर (ग्वालियर) रियासत में जाना पड़ता था। सं० १८१८ में मन्दिर के लिए ५०० रुपये की धनराशि नरवर रियासत से भोग-सामग्री के लिए निश्चित की गई थी। छत्रसिंह ने २५ बीघा भूमि भी इस मन्दिर के लिए दान की थी। विभाजन के पूर्व इनके पिता गोवर्द्धनलाल तथा पितामह जीवनलाल गोस्वामी का तिरोधान हो चुका था, किन्तु यह निश्चित है कि इन्होंने गोस्वामी जीवनलाल से ही दीक्षा ग्रहण की थी। अतः इनका जन्म वि०सं० १८५० से १८६० वि०सं० के मध्य माना जा सकता है। गोपाल कविराय कृत 'वृन्दावनधामानुरागावली' (वि० सं० १९०० लिपिकाल) में इनके सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन मिलता है—

फलाहारी की कुंज समाधिहि तहां महाप्रभु विराजैं।
तोताराम कुंज गंगा संतान समाध सुराजैं॥

गौडियान के ग्रंथ भागवत भयौ करत तहँ जागा।
राधारमनदास आदिक तहँ कहत सहत अनुरागा॥

अति पंडित भजनानंद भारी कथा कीरतन प्रेमी।
है वयवृद्ध सिद्ध संतन मैं परमारथ पथ नेमी॥

सामजही कौ श्रवण विचारन निसदिन ताकौ जाई।
सतसंगी संतन को ताकै रहत समाज सदाई॥

'वृन्दावनधामानुरागावली' की उक्त हस्तलिखित प्रति स्वयं लेखक ने तैयार की है। अतः ये वि० सं० १९०० तक अवश्य विद्यमान थे।

ये भागवत के निगूढ़ अर्थों को अपनी कथा में सरस ढंग से व्यक्त करते थे। इनकी कृतियाँ राधारमणीय गोस्वामियों के ग्रन्थागार में सुरक्षित होनी चाहिए। इनके द्वारा विरचित 'ब्रह्मसूत्र' पर भाष्य की सूचना गोस्वामी विश्वम्भर जी के 'शान्तिकुटीर' पर स्थित एक शिलालेख से मिलती है। इसके अतिरिक्त इनकी भागवत पर एक गूढ़ टीका 'दीपिकादीपनी' अथवा 'दीपकादीपन-विवृत्ति' नाम से प्रसिद्ध है। यह टीका श्रीधरस्वामी-कृत 'भावार्थ-दीपिका' पर लिखी गई है। यह कदाचित् समग्र भागवत पर लिखी गई थी। अभी तक प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं दशम स्कन्ध की 'वेदस्तुति' एवं एकादश स्कन्ध की टीका ही उपलब्ध हो सकी है। इस टीका में 'भावार्थ-दीपिका' के अक्षर-अक्षर का रहस्य दर्पण की भाँति बिम्बित हुआ है। यह टीका चैतन्य-सम्प्रदाय के स्वीकृत दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार लेकर पल्लवित हुई है। टीकाकार ने 'वीर राघव' और 'विजयध्वजी' टीकाओं की आलोचना की है। गोस्वामी मधुसूदन सार्वभौम की एक दैनन्दिनी से ज्ञात होता है कि गोस्वामी राधारमणदासजी ने महाराजा रीवाँ-कृत 'सर्व-सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ पर भी एक सुन्दर टीका लिखी थी। इनके द्वारा प्रणीत कुछ और भी रचनाएँ हो सकती हैं।

न० च० बं०

रामकृष्ण मिश्र

श्री रामकृष्ण मिश्र का परिचय प्रस्तुत करते हुए इन्हें श्री वंशी अलि का सुहृद् बताया गया है जिससे प्रतीत होता है कि मिश्रजी श्री वंशी अलि-जी के समसामयिक थे। मिश्रजी द्वारा रचित 'सद्धर्मभूषण' नामक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है जिसमें सम्प्रदाय की आस्था के अनुसार श्री राधाकृष्ण में पुंभाव की स्थापना के लिए श्रीमद्भागवत की प्रसिद्ध टीका 'सुधर्माध्वबोधिनी' का प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। आचार्य के समसामयिक होने के कारण मिश्रजी का सम्प्रदाय में विशेष उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी इनके द्वारा रचित ग्रन्थ की निम्नलिखित पंक्तियों से भाव, भाषा व विषय-प्रतिपादन की तर्कशील बुद्धि का परिचय मिल जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुंभावदम्पतीभावन्यस्यदेवौभजेद्भाविति।
तदेतद्विवर्चयिष्यामः तदेवमुभयोः सम्प्राधान्येन भजनीयत्वे निर्णीते मन्त्ररत्नद्वयं ग्राह्यमितिस्थितं। नात्र सिद्धसाध्यादिविचारः।

—सद्धर्मभूषण, (रामकृष्ण मिश्र) पृष्ठ १२

'राधाकृष्ण एक उपास्य है। राधाभाव से स्त्रीत्व का बोध स्वाभाविक है। यदि राधाकृष्णरूप एक उपास्य में पुंभाव का दृढ़बोध या दृढ निश्चय हो जाय तो उपासक स्वयं में और उपास्य में दाम्पत्यभाव की कल्पना करे और इसी रूप में राधा-कृष्ण उभय की उपासना करे।'

प्रे० ना० श्री०

रामचन्द्र

बटहर नामक गाँव में पुरोहित के कुल में एक ब्राह्मण चोवरामजी उत्पन्न हुए थे। उनकी ठाकुरी नामक भार्या थी। सन् १९०९ ई० में उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रामचन्द्र रखा गया। चोवरामजी के सन्तान नहीं होती थी। उसके लिए उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की थी जिसके परिणामस्वरूप यह पुत्र उत्पन्न हुआ था यज्ञोपवीत आदि संस्कार के बाद रामचन्द्र को गुरु के पास पढ़ने के लिए भेजा गया। इन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था तक संस्कृत तथा अन्य विषयों का अध्ययन किया। इसी अवधि में इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पढ़ाई में बाधा पड़ गई। इनका चित्त सदा ही भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में लगा रहता था। पढ़ाई की ओर इनकी अधिक रुचि थी। पिताजी से इन्होंने बाहर जाने की अनुमति माँगी किन्तु एकमात्र संतान होने के कारण उन्होंने अनुमति नहीं दी। इनका मन संस्कृत पढ़ने के लिए लालायित था जिससे भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत आदि का मूल संस्कृत में अध्ययन कर सकें। एक बार जब कृष्णभक्त रामचन्द्र ने अध्ययनार्थ बाहर जाने के लिये हठ किया तो पिता ने इनका विवाह हरदेवी नाम की एक ग्यारह वर्षीय कन्या के साथ सम्पन्न कर दिया। परन्तु जिस बन्धन के लिए विवाह किया था वह स्थायी सिद्ध नहीं हुआ। दो वर्ष के उपरान्त घरबार और पत्नी हरदेवी को छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करके ये घर से चुपचाप चले गये।

इन्होंने सुलतानपुर की एक संस्कृत पाठशाला में प्रवेश लिया। वहाँ इनके ताऊ हेगरूराम राजपुरोहित थे। उन्होंने इनको पूर्ण सहायता दी और प्राज्ञ परीक्षा तक पढ़ाया। विशारद के लिए वहाँ कोई सुविधा नहीं थी। अतः पिताजी से इन्होंने फिर ऊना शहर जाने के लिए आज्ञा माँगी। परन्तु पिताजी ने इन्हें इस बात की आज्ञा प्रदान नहीं की और कहा कि वे इतनी दूर इन्हें भेजने के लिए तैयार नहीं हैं। परन्तु रामचन्द्र एक बड़ी प्रतिभा के स्वामी थे। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करेंगे। अतः दशहरा का मेला देखने के बहाने इन्होंने घर से कुछ कुम्हारों के साथ ऊना के लिए प्रस्थान किया। और यह यात्रा पैदल ही पूरी की। सात दिन पर्वतीय क्षेत्रों में से गुजरकर ऊना पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से इन्हें वहाँ पाठशाला में प्रवेश मिल गया। कुछ दिन पढ़ने के उपरान्त वहाँ का वातावरण इनके अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ और ये अमृतसर चले गये। परन्तु दैवयोग से इन्हें वहाँ प्रवेश नहीं मिल पाया। इसलिए ये वहाँ से जम्मूनगर चले गये। वहाँ श्री रघुनाथ-मन्दिर के निकट एक बड़ा रघुनाथ-संस्कृत-विद्यालय था, जिसमें श्रीचन्द्रजी प्राचार्य थे। उन्होंने निर्धन तथा दूर का विद्यार्थी समझकर इन्हें विद्यालय में विलम्ब होने के बावजूद प्रवेश दे दिया। रामचन्द्र ने दत्तचित्त होकर अध्ययन प्रारम्भ किया। दो वर्ष के उपरान्त विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और अगले दो वर्ष शास्त्री परीक्षा में लगाये। परन्तु संयोगवश कुछ अंकों की कमी के कारण उत्तीर्ण नहीं हो सके। प्रतिज्ञा पूरी न होते देखकर भगवान् का स्मरण किया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और लाहौर के लिए चल पड़े। यह घटना सन् १९३२ ई० की है। इन्होंने लाहौर के ओरियन्टल कॉलेज में प्रवेश लिया। दत्तचित्त होकर परीक्षा की तैयारी की और परीक्षा देने पर अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण हुए। यह भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से हुआ। इनकी प्रतिज्ञा इस प्रकार पूरी हुई—

संस्कृतस्य समुन्नत्यै, सदा सर्वत्र सर्वदा।
प्रयत्नं संकरिष्यामि कुल्लूतस्य गृहे गृहे ॥
छात्रानध्यापयिष्यामि स्थापयिष्यामि संस्कृतिम् ॥

यह कठीन संकल्प पूरा करके शीघ्र ये कुल्लू की ओर प्रस्थान कर गये और वहाँ जाकर एक संस्कृत पाठशाला का उद्घाटन किया, जो कई वर्षों से बन्द थी। उसमें इन्होंने हिन्दी और संस्कृत पढ़ाना प्रारम्भ किया। वहाँ ज्योतिष, कर्मकाण्ड के अतिरिक्त इन्होंने संस्कृत की प्राज्ञ परीक्षा में कई छात्रों को उत्तीर्ण कराया। इन्होंने प्रत्येक गाँव और नगर में जाकर संस्कृत के अध्ययनार्थ लोगों को अपने बच्चों को भेजने के लिए प्रेरित किया। यह क्रम अविरल गति से चलता रहा। साथ ही साथ इन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति का भी प्रसार किया। इसी बीच पिता का स्वर्गवास होने के कारण वहाँ का कार्य छोड़कर इन्हें घर आना पड़ा। गृहस्थी का भार इनके कन्धों पर आ पड़ा फिर भी ये चुप नहीं बैठे।

गाँव के समीप ही इन्होंने एक संस्कृत पाठशाला का आयोजन किया जिसका नाम 'व्यास-आश्रम' रखा गया। उसमें विविध प्रकार की शिक्षा दी जाती थी तथा प्राज्ञ-विशारद के छात्रों को भी पढ़ाया जाता था। यह क्रम भी लगभग छः वर्षों तक चलता रहा। तदनन्तर इनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया। संतानें अभी छोटी ही थीं। अतः उनके पालन-पोषण के लिए इन्होंने पत्नी की छोटी बहन से विवाह कर लिया। उसने भी एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम शुकदेव रखा गया। प्रथम धर्मपत्नी से एक पुत्र ओमप्रकाश तथा दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई थीं। उनके पालन-पोषण तथा घर का सारा कार्यभार इनके ऊपर आ पड़ा। परिस्थितिवश इनको पाठशाला छोड़ देनी पड़ी परन्तु कृष्ण-भक्ति नहीं छोड़ी। एक दिन भगवान्जी की स्वप्न में आज्ञा हुई कि 'चिन्ता न करो, सब ठीक हो जायगा। मेरी भक्ति न छोड़ना।' इससे इन्हें शान्ति मिली और ये अपना कार्य करते रहे। इसी बीच भगवान् की अनुकम्पा से घर का कार्य चलाने के लिए एक दासी मिली, जिसने घर का कार्य सँभाल लिया। इसी बीच इन्हें राजकीय पाठशाला (हाईस्कूल, कटराई) में नियुक्ति का पत्र प्राप्त हुआ और कार्य चल पड़ा। यह क्रम १५ वर्ष तक चलता रहा। इन्होंने सैकड़ों विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा प्रदान की। समय मिलने पर ये बच्चों को श्रीमद्भागवत से राधा-कृष्ण की कथा सुनाते रहते थे। ये पन्द्रह वर्ष के उपरान्त सेवा-निवृत्त हो गये। उसके बाद पाँच वर्ष तक भगवान् की भक्ति में लगे रहे। इन पाँच वर्षों में ये छात्रों को संस्कृत पढ़ाते रहे। इसी बीच लाला मदनमोहनजी संस्कृत पाठशाला की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने प्रधानाचार्य का कार्य भार सँभालने के लिए इनसे अनुरोध किया जिसे इन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इस पाठशाला में दस वर्ष (सन् १९७३ ई० से १९८२ ई०) तक तन-मन से कार्य करते रहे। साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति का दीप भी इनके मन-मन्दिर में प्रज्वलित रहा। इन्होंने अपने गाँव में राणा भादर सिंह द्वारा निर्मित १५वीं शती के एक मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। इसमें राधा-माधव की पूजा होती थी—

राधामाधवयोरेतन्मन्दिरं अतिसुन्दरम्।
राज्ञा भादरसिंहेन ह्यासीत निर्मितं पुरा ॥

इन्होंने राधा-माधव की प्रतिमा जयपुर से लाकर इस मन्दिर में पुनः स्थापित की—

षड्वह्निशून्यनेत्राब्दे वैक्रमे मासि माधवे।
संस्थापिता तत्र मूर्ती राधामाधवयोस्तदा ॥

वृद्धावस्था में इन्होंने इष्टदेव के लीला-क्षेत्रों—कुरुक्षेत्र, द्वारका आदि की यात्रा की। इसका विवरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्होंने अपनी 'चतुर्मास-यात्रावर्णन' नामक पुस्तक में संस्कृत में इस प्रकार किया है—

इत्येवं मनसि धावन् प्राप्तो द्वारावतीं पुरीम् ।
यत्र कीटपतंगाद्याः पशवोऽथ सरीसृपाः ॥
विमुक्ताः पापिनः सर्वे द्वारकायाः प्रभावतः ।
किं पुनर्मानवाः नित्यं द्वारकायां वसन्ति च ॥
महापापा विनिर्मुक्ताः स्वर्गलोके वसन्ति ते ।
इत्थं पुराणवचनानि स्मरन्नग्रे गतो यदा ॥
दूरादेव ध्वजा पीता दृश्यते मन्दिरोपरि ।
वायुना कम्पमानायाः चञ्चला चपलानिभा ॥
मदं मन्दं गताः सर्वे रणछोड़स्य मन्दिरे ।
गत्वा दर्शनं पुण्यं जन्म वै सफलं कृतम् ॥
नत्वा प्रार्थितः कृष्णः भक्तियुक्तेन चेतसा ।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो त्राहि मां रणागम् ।।
देहिमे परमां भक्तिं निजपादारविन्दयोः ॥

द्वारका से भगवान् कृष्ण का दर्शन करके जब ये वापस होने लगे तो आराध्य के रूप तथा नाम का चिन्तन करते हुए ये मूर्च्छित हो गये इसका वर्णन इन्होंने एक श्लोक में इस प्रकार किया है—

ध्यायं ध्यायं हृदयकमले सुन्दरां कृष्णमूर्तिम्,
श्रावं श्रावं श्रवणकुहरे कृष्णनामाभिधेयम् ॥
पेयं पेयं वदनपुटके पादपद्मोदकञ्च,
आनन्दाब्धौ सपदि पतितो रामचन्द्राभिधेयः ॥

इन्होंने संस्कृत में 'चतुर्धाम-यात्रा-वर्णन' के अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधा की भक्ति-सम्बन्धी पदों की भी रचना की है।

ब्र० न०

रामचन्द्र गौड़

निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवि श्री रामचन्द्र गौड़ का जन्म कार्तिक शुक्ला १३ सं० १९५७ सन् १९०० ई० को जयपुर में ज्योतिर्विद् पं० गोविन्दराम शर्मा के यहाँ हुआ था। आपने वाराणसी में शिक्षा प्राप्त कर संस्कृत कॉलेज, जयपुर में साहित्योपाध्याय में प्रवेश लिया तथा स्वर्ण-पदक प्राप्त किया। सन् १९४३ ई० से सन् १९५६ ई० तक इन्होंने महाराज संस्कृत कॉलेज, जयपुर में सह प्राचार्य के पद पर कार्य किया। ये संस्कृत तथा हिन्दी दोनों के अच्छे कवि थे। आपका निम्नलिखित प्रकाशित साहित्य उपलब्ध है--

१. भारती संदेश (कविता) भारती पत्रिका (४·३), २. रास रहस्यम् (कविता), ३. सेव्यताम् च, ४. साहित्य माधुरी, ५. श्री हरि-व्यास देवाचार्य चरितम्, ६. श्री केशव काश्मीरिचरितम् ७. श्री भक्तराज ब्रजलाल वोहरा चरितम्, ८. शिवरात्रि-महोत्सवः (कविता), ९. श्री श्रीभट्टचरितम्, १०. श्री हरिभक्त-चरितम्।

आपकी अप्रकाशित कृतियाँ हैं—१. श्री कल्याण करुणाष्टक, २. श्री बाँकेबिहारी-वन्दना, ३. श्री मारुतिवन्दना, ४. श्री निम्बार्क देवाचार्य-चरितम्, ५. श्री परशुराम देवाचार्य-चरितम्, ६. श्री श्याम-चरणदासाचार्य-चरितम्, ७. श्री विहारीदास त्यागी-चरितम्, ८. श्री रामकृष्णस्वामी चरितम्, ९. श्री हरिदास स्वामिवन्दना।

श्री हरिभक्त-चरितम् (सन् १९६५ ई०) की हिन्दी टीका आपके सुयोग्य पुत्र डॉ० राधेश्याम शर्मा ने की है।

यहाँ 'गोपिकाष्टकम्' (१९६९ ई०) से दो श्लोक उद्धृत हैं—

गोपाङ्गना दोहनकर्मलग्नाः,
कृष्णानुरक्ताश्चरितानि तस्य ।
गायन्ति तन्नामयशोकितानि,
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

उलूखले संभृततण्डुलादीन्,
संघट्टयन्त्यो मुसलैर्मनोज्ञाः ।
गायन्ति ताः कृष्णधियः प्रमत्ताः,
गोविन्द दामोदर माधवेति ॥

'रास की महिमा' (१९७६ ई०) की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालिन्दीतटमध्यवर्तिनि निज क्रीडालये पावने,
श्री वृन्दाविपिने समग्रकिरणैः शीतांशुना भ्राजिते।
वंशीनादसमाहूतां सुमुदितामालोक्य रासेश्वरीं,
तद्वीणारवकौतुकी विजयते रासोन्मुखः श्रीहरिः॥

आचार्य रामचन्द्र का भगवान् कृष्ण के डोल-महोत्सव पर रचित एक अप्रकाशित पद तथा कुछ दोहे नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

डोल पर झूलैं दोउ सुकुमार।
श्री वृषभानु लली अरु मोहन करुणा के भंडार॥
होली खेलि परस्पर दोऊ श्रमित भये करतार।
डोल बन्यो अति सुन्दर कोमल अतिशय सुषमागार।
पंचम स्वर में कोकिल बोलै बैठि आम की डार।
विविध विहंगम कलरव करि रहे भूले निज आहार।
युगल स्वरूप छटा सम नाहीं कोटिक रति अरु मार।
झोंका देवें हिलमिल सखियाँ तन मन धन सब वार।
रचि पचि मोद भरी पहिनावें फूलन के बहुहार।
लखि सुर वृन्द अनूपम छवि को करि रहे जैजैकार।
झाँझ मृदंग पखावज बाजें अरु बाजें करतार।
यमुना पुलिन निकुंज भवन में दोऊ करत विहार।
हरि-भक्तों की सुनि सुनि विनती कर रहे सब स्वीकार।
'रामचन्द्र' या छवि को लखि के चरणों पै बलिहार॥

० ० ०

नन्दलाल के लाड़ले, भक्तन प्राण अधार।
रामचन्द्र के उर बसें, यह हरि फूलन हार॥
तिनपर भ्रमर समान नित, अटकि रहे मन तोर।
रामचन्द्र कबहू नहीं, चितये काहू ओर॥

पं० रामचन्द्र मूल रूप में संस्कृत के विद्वान् थे। वह संस्कृत में गद्य तथा पद्य में रचना करते थे, परन्तु व्रज तथा ढूंढाड़ी में भी इनके द्वारा रचित कृष्ण से सम्बद्धित कुछ पद मिलते हैं। राधा-कृष्ण से सम्बद्ध इनकी रचनायें पद, दोहा तथा चौपाई में उपलब्ध होती हैं।

इस असार संसार को मार्च, १९८० ई०में छोड़कर ये स्वर्गलोक को पधार गये।

रा० प्र० कु०

रामचन्द्र वेल्लाल

रामचन्द्र वेल्लाल मैसूर के राजा कृष्णराज द्वितीय (१७३४–१७६६ ई०) के मन्त्री देवराज द्वारा समादृत थे। इन्होंने 'कृष्णविजय-व्यायोग' और 'कुलानन्द-भाण' की रचना की है। 'कृष्णविजय 'व्यायोग श्री में कृष्ण रुक्मिणी को युद्ध द्वारा प्राप्त करते हैं।

अ० पा०

रामनारायण मिश्र

रामनारायण मिश्र का नाम भागवत के भावुक टीकाकारों में आता है। इनके जन्म-संवत् का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता तथापि विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका के प्रमाण से इन्हें उनका परवर्ती मानना चाहिए। विश्वनाथ चक्रवर्ती का जन्म-समय वि० सं० १७२१ है। अतः ये १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ के मध्य विद्यमान रहे होंगे। इनके पिता का नाम सुचेत रामराज और उपनयन-गुरु का नाम भवानीदास शर्मा था। भागवत की, 'रासपंचाध्यायी' की 'भाव-विभाविका टीका' में ऐसा अन्तःसाक्ष्य मिलता है। इसी प्रकार अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनके विद्या-गुरु का नाम रामसिंह एवं दीक्षा-गुरु का नाम हरिनाथ था। हरिनाथ दामोदर के प्रथम पुत्र थे और दामोदर गोपीनाथ के अनुज तथा सहारनपुर मण्डल के अन्तर्गत देववन्द नामक ग्राम के निवासी थे। गोपीनाथ ने चैतन्य मत के उद्भट विद्वान् और आचार्य गोपालभट्ट से दीक्षा ग्रहण की थी। रामनारायण-कृत रासपंचाध्यायी की 'भाव-विभाविका टीका' से धारणा बनती है कि ये साहित्य-शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् थे और षड्दर्शनों का मर्म अच्छी प्रकार समझते थे। 'समस्त विश्व हरिमय है', यह इनका उद्गार था जैसा कि इनके निम्नांकित मंगलाचरण से स्पष्ट है। इन्होंने प्रायः सभी देवताओं एवं आचार्यगणों को नमस्कार किया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रियं श्रीशं गिरां ढुण्ढि शिवां शिवभजं सुरान् ।
गुरून्विप्रानदो भक्तान् विश्वं वन्दे हरेर्वपुः ।
शेषं सनत्कुमारादीन् सांख्यायनपराशरौ ।
नारदं भगवद् व्यासं शुकं सूतं द्विजान् नृपम् ॥

उक्त महानुभावों के अतिरिक्त इन्होंने शंकराचार्य, श्रीधरस्वामी, मध्वाचार्य, कृष्णचैतन्य, केशव, वल्लभाचार्य, नानक, सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी आदि महान् भक्तों और आचार्यों का भी अत्यन्त विनम्र भाव से स्मरण-वन्दन किया है। विद्वानों की मान्यता है कि 'भाव-विभाविका टीका' रस एवं अलंकार-पक्ष की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट टीका है। इस टीका का प्रधान उद्देश्य श्रीराधाकृष्ण के युगल स्वरूप की सत्ता सिद्ध करना था। रामनारायण-कृत अनेक ग्रन्थ राधारमणीय गोस्वामियों एवं राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्तों के निजी ग्रन्थागारों में देखने को मिलते हैं। प्रसिद्ध विदेशी विद्वान् आफ्रैक्ट के 'केटालोगस कैटालोगोरम' में इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों का दो रामनारायणों के नाम से उल्लेख हुआ है। वस्तुतः ये सभी ग्रन्थ इन्हीं रामनारायण द्वारा विरचित हैं।

ये चैतन्य-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके ग्रन्थों के नाम हैं–१. अनुमिति निरूपण, २. तत्त्वबोध-तत्त्वानुसन्धान टीका, ३. पंचदशी टीका, ४. भगवद्गीता-प्रकाशिनी, ५. विज्ञान-नौका टीका, ६. स्फोटवृत्ति, ७. सर्ववेदार्थनिरूपण्य टीका, ८. वनमाली-कीर्तिछन्दोमाला, ९. गुरुचन्द्रोदय-कौमुदी, १०. प्रमिताक्षरामुहूर्तचिन्तामणि टीका। ११. ब्रह्मपुराणोक्त नामगीता, १२. जन्माद्यस्य की व्याख्या, १३. कीर्तिछन्दोमाला, १४. कण्टकोद्धार, १५. भागवतटीका, १६. गुरुचन्द्रोदय-कौमुदी और १७. बुधमोददा टीका। इस प्रकार ये अपने युग के महान् टीकाकार, तत्त्ववेत्ता और प्रखर पण्डित ज्ञात होते हैं। 'गुरुचन्द्रोदय-कौमुदी' नामक ग्रन्थ का वृन्दावनधामानुरागावलीकार गोपाल कविराय ने ब्रजभाषा में सशक्त अनुवाद किया था। श्री रामनारायण के सम्बन्ध में पुष्पिका इस प्रकार है—'इतिचन्द्रभागार्थ्यं विष्णुसख्यापन्न श्रीरामनारायण कृत क्रम विकास गुरुचन्द्रोदय कौमुदी की भाषा टीका सम्पूर्ण समाप्तम्।' अनुवाद अंश में दिया हुआ यह दोहा रामनारायण के रचनाकाल का प्रमाण प्रस्तुत करता है—

अष्टादश संवत् में भयो ।
सतहत्तर तिह ऊपर लयो॥
एकादशी समौ दिन पायौ ।
सुन्दर माघ मास मन भायौ ॥

ऐसा ज्ञात होता है कि सुकवि गोपालराय ने रामनारायण-कृत 'गुरुकौमुदी' नामक ग्रंथका अनुवाद वि० सं० १८७७ में किया था। इससे स्पष्ट है कि ये वि० सं० १८७७ के पूर्व अवश्य विद्यमान थे। 'गुरुचन्द्रोदय कौमुदी' नानकपन्थी ग्रन्थ है। ग्रन्थ के परिशिष्ट में नानक देव के सम्बन्ध में वन्दनात्मक अंश इस प्रकार दिया हुआ है—

वन्दे श्रीनानक गुरुं श्री हरिदास रूपिणं।
विश्वोद्धारावतारं च कलितारं जगद्गुरुं ॥
रामसिंहं गुरुं वन्दे हरिनाथ सदासुखं ।
भवानीदासकं तातं सुचेतोराम भूपतिम् ॥

इनके द्वारा प्रणीत टीकाएँ इनके गम्भीर अध्ययन को प्रमाणित करती हैं। गोपाल कविराय ने 'गुरुचन्द्रोदयकौमुदी' के मूल श्लोकों का सरस भावानुवाद प्रस्तुत किया है। इस अनुवाद का एक अंश प्रस्तुत है जिससे मूल रचना के वर्ण्यविषय का कुछ बोध होता है—

प्रभु नानिक निज पुत्र रूप धरि ।
श्री श्रीचंद नाम अद्भुत करि ॥
योगनिवृत्तिहि विधि अनुसरो ।
विष्णुभक्ति पुनि जगविस्तरो ॥
लक्ष्मीचन्द्र रूप जगपावन ।
रक्षक धर्म प्रवृत्ति सुहावन ॥
वंश प्रशंस्य भूमि मैं राखा ।
जग उद्धार बढ़ाई शाखा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुईहरि आप भए द्विजराजा।
सावित्री उपदेशन काजा॥
नाम भवानिदास सुभकारी।
मुहिद्विज कियौ प्रणाम हमारी॥
श्री हरिनाथ इष्ट गुरुदेव।
तातद्वारजिन करुणाभेव॥
विष्नुमंत्र उपदेस कियौ जिन।
तातरूप गुरु नमोनमः तिन॥
रामसिंघ सोई हरि सद्गुरुवर।
कियौ तत्त्व उपदेस कृपा करि॥
निज स्वरूप माहात्म सुधाम।
कियौ प्रकाशित तिन्है प्रनाम॥
होइ सदा सुख गुरु सुख्याता।
विद्यानिधि विद्या के दाता॥
निज माहात्म कह्यौ समझाई।
तिनके चरण प्रणाम सदाई॥

न० च० बं०

रामप्रताप शास्त्री

रामप्रताप शास्त्री का जन्म राजस्थान के जोला नामक गाँव में हुआ था, किन्तु इनके जीवन का अधिकांश भाग ब्यावर में व्यतीत हुआ। शास्त्रीजी अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न थे। इन्होंने शैशव से ही अपनी लोकोत्तर प्रतिभा से लोगों को चमत्कृत कर दिया था। १८ वर्ष की अल्पायु में ही महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर के प्रधानाचार्य और २५ वर्ष की आयु में गवर्नमेन्ट मेयो कालेज, नागपुर में संस्कृत के प्रोफेसर नियुक्त हो गये। वहाँ कुछ वर्षों तक कार्य करने के बाद ये समय से पूर्व ही कार्यभारमुक्त होकर ब्यावर आ गये और १९३३ से १९५२ ई० तक भागवतकथा, संकीर्तन आदि के द्वारा कालक्षेप करते रहे।

आपका जीवन परम सात्त्विक था। सौम्यमूर्ति शास्त्रीजी निम्बार्क-सम्प्रदाय के अनुयायी और श्री राधाकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनकी प्रवृत्ति आध्यात्मिक और भक्तिमय थी। प्रो० मैकडॉनल, प्रो० हालविन, प्रो० वूलर जैसे विश्व-प्रसिद्ध प्राच्यविदों ने आपकी विद्वत्ता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। ये आजीवन संस्कृत एवं संस्कृति की निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे। इनका गोलोकवास १९५३ ई० में हुआ।

श्रीमद्भागवत पर आपका असाधारण अधिकार था। भागवत-मर्मज्ञ विद्वान् के रूप में आप सर्वप्रसिद्ध थे। श्रीमद्भागवत पर भक्तिभावित प्रवचनों के अतिरिक्त आपने अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख भी लिखे हैं। 'ईशाद्यष्टोपनिषद्', 'भ्रान्तिवादतिमिरभास्कर' तथा 'श्री गोपीगीतरहस्यम्' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। शास्त्रीजी की विद्वत्ता एवं भक्ति-भावना का दर्शन श्रीमद्भागवत के निम्नांकित श्लोक के ४९ छन्दों में इनके द्वारा की गयी व्याख्या में किया जा सकता है।

कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम्॥ १०.२९

श्या० श० वा०

रामप्रपन्नाचार्य

श्री रामप्रपन्नाचार्य का जन्म जौनपुर जिला (उत्तर प्रदेश) के सई जलालपुर गाँव में सन् १८६८ ई० (सं० १९२५) में हुआ था। संस्कार बचपन से ही भक्तिमय था। ये बाल्यावस्था में भगवान् कृष्ण की मूर्ति बनाकर उसका शृंगार तथा पूजा करने और जन्माष्टमी-व्रतानुष्ठान तथा उत्सव मनाने में बड़ी रुचि लेते थे। इनकी प्राथमिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में ही हुई। आगे चलकर संस्कृत का विशेष अध्ययन काशी में पूरा किया। इनके दो बड़े भाई पहले ही विरक्त साधु बनकर घर छोड़ चुके थे। इसलिए माता-पिता ने इन्हें मात्र १४ वर्ष की आयु में ही विवाह-बन्धन में बाँध दिया। किन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और थी। विवाह के कुछ ही दिनों बाद इनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गया। माता-पिता इन्हें पुनर्विवाह करने के लिए विवश कर रहे थे। इसी बीच विरक्त चित्त रामप्रपन्न जी घर छोड़कर नासिक भाग निकले। वहाँ ये अपने ही अग्रज स्वामी रामाचारी के अनुगत हो गये। स्वामी रामाचारी बहुत पहले ही संन्यास लेकर यहाँ विराज रहे थे। रामप्रपन्नजी ने यहीं भक्ति-शास्त्रों का अनुशीलन किया तथा भगवद्-भजन में लीन रहने लगे।

स्वामीजी आरंभ से ही भ्रमणशील प्रकृति के थे। एक स्थान पर अधिक समय तक टिके रहना इनकी रुचि के प्रतिकूल था। स्वभावतः ये नासिक से दक्षिण-भ्रमण को निकल पड़े। ये मद्रास पहुँचे। वहाँ भगवान् की कथा सुनाने लगे। धीरे-धीरे वहाँ इनकी कथा में श्रोता भक्तों की भीड़ जुटने लगी। भक्त-समाज पर अपने व्यापक प्रभाव को लक्ष्य कर आपने एक भव्य मंदिर के निर्माण का संकल्प व्यक्त किया और देखते-देखते श्रद्धालु भक्तों के सहयोग से वहाँ चायना बाजार, रोड नं० १८० पर राधारमण मन्दिर बनकर तैयार हो गया। वहाँ इनके सेवकों में श्री हरदयालजी सेठ, आशाराम मुल्तानी, पूसाराम मूंदड़ा, देवशंकर गुजराती आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

कुछ वर्ष दक्षिण में व्यतीत करके ये उत्तर भारत की यात्रा पर निकल पड़े। घूमते घूमते अंग क्षेत्र के प्रमुख नगर भागलपुर पधारे। कथा-प्रवचन का क्रम आरंभ हुआ। कुछ लोगों ने इनके द्वारा श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के विषय में व्यक्त विचारों का विरोध किया। इनके मन में इससे भीषण प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई और इन्होंने भागलपुर में ही रहकर वैष्णव-संप्रदाय के प्रचार का निश्चय किया। इस संकल्प को पूरा करने में इन्हें विरोधियों से कई बार टक्कर लेनी पड़ी। शास्त्रार्थ छिड़े, किन्तु अपनी प्रतिभा और प्रवचन-पटुता से ये सबको परास्त करते गये। इससे पूरे अंचल में भक्ति की लहर दौड़ गयी। सत्संग, प्रवचन, पूजन आदि का वातावरण जन-जीवन में व्याप्त हो गया। अन्त में, यहाँ भी इन्होंने एक भव्य मन्दिर बनाने का संकल्प किया। वर्तमान चुनिहारी टोला का राधारमण कुञ्ज भवन मोहरी मन्दिर इसीका परिणाम है। इनके सहायक सेवकों में श्री मुकुन्द रामानुज दास, श्री राघव रामानुज दास, श्री संकर्षण रामानुज दास, श्री कमलनयन रामानुज दास, श्री कमला रामानुजदासी तथा श्री रुक्मिणी रामानुजदासी मुख्य हैं। इसके पश्चात् ये मद्रास लौट गये। बाद में श्री संकर्षणाचारी एवं श्री कमला रामानुजदासी ने एक और भव्य श्रीरंग मन्दिर का निर्माण भागलपुर नगर के जोगसर मुहल्ले में कराया। इसका प्रतिष्ठा-समारोह सन् १९५३ ई० में हुआ था।

ये मद्रासवाले अपने स्थान से एक बार फिर जब तीर्थयात्रा पर उत्तर आये तो भ्रमण के क्रम में पुनः भागलपुर पधारे। भक्ति-भावना का ह्रास होते देखकर इन्होंने धर्म-प्रचार हेतु यहाँ डेरा डाल दिया। फलतः गाँव-गाँव में भक्ति की पयस्विनी पुनः प्रवाहित हो गई। इनके सान्निध्य में जो आता वहीं अनुचर बन जाता। इनके शिष्य पं० दामोदर शास्त्री, के अनुसार इनका खान-पान विचित्र था। कई वर्षों तक मात्र बिल्वपत्र और पत्ती साग तथा प्रायः १२ वर्षों तक केवल नमकरहित ओल से भगवान् का भोग लगाकर ये जीवनभर फलाहारी बने रहे।

भागलपुर मन्दिर के निर्माणकाल में इनका स्थापत्य-ज्ञान और अर्चावतार की साज-सज्जा तथा कीर्तन के सम्पूर्ण कर्मों के बीच इनकी संगीतकला-मर्मज्ञता अन्तेवासियों को चकित कर देती थी। भगवान् श्री राधारमण के लिए भागलपुर नगर से ५–७ किलोमीटर दक्षिण गोनूधाम में लगाई गई फुलवारी इनकी सुरुचि की स्मारिका है।

राधारमण-कुञ्ज-भवन के श्रीविग्रह का निर्माण, मन्दिर के निर्माण तथा प्रतिष्ठा समारोह के अवसर पर सविध सम्पन्न कार्यों में देखा गया कि इनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदिक कर्मकाण्ड-सम्बन्धी ज्ञान अद्भुत है। इनसे दीक्षितस्वामी राघवाचार्य एवं संकर्षणाचार्य कर्मकाण्ड में, विशेषकर भगवत्-प्रतिष्ठा-कर्म एवं यज्ञ-कर्म में महान् पण्डित माने जाते हैं। सम्प्रति, इस गद्दी के अधिकारी और परम्परा-निर्वाहक श्री राघवाचार्य हैं।

स्वामीजी के अन्तःकरण में भक्ति की विमल मन्दाकिनी सतत प्रवाहित रहती थी। भगवान् की लीला-माधुरी में ये अहर्निश विभोर रहते थे। लीला की चर्चा छिड़ते ही इनकी आँखों से प्रेम की अविरल अश्रुधारा बहने लगती थी। सत्संग का वह क्षण सारे पापों को धोकर ब्रह्मानन्द और चिर शांति का प्रदायक होता था। इन्हें सूर द्वारा रचित यह पद अत्यन्त प्रिय था—

नाहिन रह्यो हिय में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये हिय और॥
चलत चितवत दिवस जागत स्वप्न सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥
कहत कथा अनेक ऊधो लोक-लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेमपूरित घट न सिन्धु समात॥
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास॥

कई बार देखा गया कि श्री स्वामीजी इस गीत को सुनकर आत्मविभोर हो जाते थे। प्रकृतिस्थ होने पर ये अंतेवासियों को निकट बुलाकर इस पद की विशिष्टताओं को साश्रु-नयन एवं गद्गद कंठ से समझाते थे।

इनकी प्रभु-निर्भरता अद्भुत थी। ऐसे समर्पित भाव के भक्तों की सार-सँभाल भगवान् अपने ऊपर ले लिया करते हैं।

एक समय की बात है कि स्वामीजी मद्रास-वाले स्थान में थे। पचीस-पचास साधु-सन्त वहाँ नित्य प्रसाद पाते थे। एक समय ऐसा आया जब भगवान् के भोग के लिए भी स्थान में कुछ नहीं रहा। भगवान् के चाँदी के बर्तन व दुशाले आदि भी एक-एक करके बिक गये। सायंकालीन पूजा-आरती हो चुकी थी। भगवान् को भोग क्या लगेगा? इसी पर स्वामीजी आज गंभीरता से सोच रहे थे। भोग के सामान की आवश्यकता थी। याचना इनके स्वभाव के प्रतिकूल थी। कठोर परीक्षा की घड़ी थी। एक ओर भगवान् के हठीले भक्त और दूसरी ओर अर्चावतार की भोग-व्यवस्था। अनन्यगति भक्त के सामने उसी समय एक सेवक का तार आया। तार में था—तीन हजार रुपये भगवान् के सेवार्थ।

स्वामीजी में जीव-दया का अदम्य भाव था। एक बार बद्रीनारायण की यात्रा में ऊपर चढ़ते समय एक घोड़ा भयंकर खड्ड में गिर गया। यात्रियों ने उसे मरा जान संतोष कर लिया। पर स्वामीजी को चैन नहीं। इन्होंने दुर्गम पहाड़ी को लाँघकर उस खड्ड में गिरे घोड़े को जीवित पाकर उसे निकालने का भरपूर प्रयत्न किया और कुछ पहाड़ियों को मुँह-माँगा रुपया देकर उसे ऊपर कर लिया। घोड़ावाला और यात्री सामान तथा घोड़े को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। इनके हृदय में पशु तक के प्रति ऐसी अपार करुणा थी।

स्वामीजी का शास्त्रों पर असाधारण अधिकार था। जिज्ञासुओं तथा भक्तों के समाधानार्थ जब ये वेद-शास्त्रों के प्रामाणिक उद्धरण अध्याय और श्लोक-संख्यासहित देने लगते तो श्रद्धालु श्रोता आश्चर्य-चकित हो इन्हें देखते ही रह जाते। इनकी स्मृति भी विलक्षण थी। ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में भी ये नित्य शास्त्रानुशीलन करते पाये गये। एक-एक शंका का उत्तर प्रतिदिन दो घण्टे के क्रम से १०-१० दिनों तक चला करता था। इनका शास्त्र-ज्ञान अपार था। इनकी मान्यता थी कि भारतीय हृदय को समझने के लिए संस्कृत-साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। उसके प्रसार के लिए ही इन्होंने श्री राधारमण संस्कृत पाठशाला खोली थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इधर भागलपुर चुनिहारी टोला स्थित श्री राधारमण कुञ्ज मन्दिर के महात्मा एवं इनके पट्टशिष्य पं० राघवाचार्यजी के पास तमिल के सुप्रसिद्ध भावसाधक आलवार भक्तों परकाल और परांकुश की तमिल प्रबन्धम् की गीतियों पर स्वामी रामप्रपन्नाचार्यजी द्वारा लिखे गये संस्कृत गद्य भाष्य की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। कुल २३२ पृष्ठों की इस साँची पत्राकार पोथी का प्रथम पृष्ठ लुप्त है, पृ० २ से २३३ तक सुरक्षित है। सं० १९३३ फाल्गुन शुक्ल के बृहस्पतिवार को वृन्दावनवासी रामलाल द्वारा यह प्रतिलिपि कराई गई है। इसके पृष्ठ २ के बायें हाशिये में परांकुश के ४ तथा परकाल के ६ प्रबन्धों के बारे में टिप्पणी अंकित है। उसकी कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :

'परमर्षिभिः प्रणीतेषु वेदोपबृंहण स्मृतीतिहास पुराणेषु च सारासार विवेक चातुर्यं अन्तरेण तात्पर्याशयस्य दुर्ज्ञेयत्वात् तदविलक्षणस्य संसारि चेतनोज्जीवन कामेन सर्वेश्वरेण स्वयमाचार्यभूतेन प्रकाशितस्य सकलवेद सारभूतस्य रहस्यत्रयस्यातिसंग्रहनया अतिगूढार्थकत्वात् भागवदाकस्मिक कटाक्षविशेषेण ज्ञानशून्य परम भक्ति रूपापन्न ज्ञानप्राप्तेः सकल वेदशास्त्र तात्पर्याणि करतलामलकवत् साक्षात्कुर्वद्भिः परांकुश परकालादि दिव्यसूरभिः प्रणीतानां द्राविड वेदतदंगोपांगानाम् दिव्यज्ञानमूलक प्रवन्धानामार्थ दर्शनस्य परिमितानां दुष्करत्वाच्च चेतनानां स्वरूपच्युतिरेव स्यादिति····।'

ऐसे विद्वान् एवं भक्त महात्मा की अन्य रचनाओं का यदि संरक्षण हो पाता तो वे भी लोकचक्षुगोचर होकर असंख्य भक्तों का मार्गदर्शन करतीं।

स्वामीजी की स्मृति-धरोहर के रूप में हमारे पास दो ही मूर्त चिह्न शेष हैं। एक तो राधारमण कुञ्ज तथा उसमें विराजमान शेषछत्रधारी भगवान् श्यामसुन्दर, उनके वामांग में विराजमान परम सुन्दरी पराह्लादिनी और उनकी लीला-सहचरी राधादेवी का स्फटिक विग्रह और दूसरा उनके द्वारा रचित परकाल और परांकुश की प्रबन्ध-गीतियों का गद्य-भाष्य। कहना न होगा कि मंदिर, मूर्ति और भाष्यरूपी रामप्रपन्नाचार्य की इन अमर कृतियों में वास्तु, शिल्प और काव्य-कला सार्थक हुई है। पत्थर गा उठे और क्षर अक्षर हो गये हैं। इन सबके मूल में स्वामीजी की अगाध भक्ति तथा अपरिमित ज्ञान रहा है।

त० ना०

रामवर्मा

रामवर्मा का जन्म १७५७ ई० में हुआ था और मृत्यु ३८ वर्ष की अवस्था में १७९५ ई० में। इनके पिता का नाम रविवर्मा था। रामवर्मा के गुरु थे आचार्य शङ्करनारायण और रघुनाथ। रामवर्मा की रचनाएँ हैं–रुक्मिणी-परिणय, शृङ्गार-सुधाकर, कार्तवीर्यविजय-प्रबन्धचम्पू, वञ्चिमहाराजस्तव, सन्तानगोपालप्रबन्ध और दशावतारदण्डक। इन्होंने मलयालम में रुक्मिणी-स्वयंवर पूतनामोक्ष, नरकासुर-वध आदि की रचना की।

रुक्मिणी-परिणय में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह की कथा निबद्ध हुई है। उद्धव ने पत्र द्वारा कृष्ण को सूचित किया कि मैंने रुक्मिणी और आपके विवाह की योजना बना ली है, किन्तु उसका भाई रुक्म उसे शिशुपाल को देना चाहता है। आप अविलम्ब आ जाएँ। कृष्ण रथ से विदर्भ देश पहुँचे और कात्यायनी के मन्दिर में रुक गये।

वहाँ रुक्मिणी कात्यायनी की पूजा के लिए जाती है।

वह अपनी सखी नवमालिका से कहती है कि मैं एक बार कृष्ण का दर्शन करके प्राण छोड़ देना चाहती हूँ। कृष्ण ने रुक्मिणी की बात सुनी। उसी समय रुक्मिणी का अपहरण हो गया। सुदर्शन ने रुक्मिणी को बचा लिया। फिर कृष्ण तथा रुक्मिणी का समागम हुआ। इसके बाद दोनों अपने-अपने स्थान पर चले गये। रुक्मिणी कामपीड़ित होती है। उसे कृष्ण का मौक्तिक-हार मिलता है। सूचना मिलती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि रुक्मिणी और शिशुपाल के विवाह के लिए नगर सजाया जा रहा।

रुक्मिणी सुन्दरियों के साथ स्वयंवर के लिए प्रस्थान करती है। वह कात्यायनी के मन्दिर में जाकर देवी की पूजा करने लगती है। इसके बाद गर्भगृह में चली जाती है, जहाँ मणिस्तम्भ में उसे कृष्ण का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है। उसी समय कृष्ण मिलते हैं। नवमालिका दोनों का विवाह करा देती है। अनङ्गसेना को रुक्मिणी का अलङ्कार आदि पहनाकर लौटा दिया जाता है। फिर अनङ्गसेना और शिशुपाल का विवाह होता है।

वाराणसी के विषय में वर्णन है—

मुक्तिक्षेत्रमिति प्रशान्तमतिभिर्व्युत्पत्सुभिर्बालकैः
विद्याभूरिति चाप्सरःपुरमिति व्याप्तं विटश्रेणिभिः।
लीलाताण्डवसाक्षिणीं भगवतः खण्डेन्दुचूडामणे-
रेणाक्षि द्रुतमादरेण शिरसा वन्दस्व वाराणसीम्॥

—रुक्मिणी० ५/११

'हे मृगाक्षि, शान्त-बुद्धिवाले (योगियों) द्वारा मुक्तिक्षेत्र के रूप में, विद्याभिलाषी बालकों द्वारा विद्या की भूमि के रूप में तथा विटश्रेणियों द्वारा अप्स-राओं की नगरी के रूप में समादृत, चन्द्रचूडामणि भगवान् शिव के लीलाताण्डव की साक्षिणी वाराणसी की आदरपूर्वक शिर से शीघ्र वन्दना करो।'

रुक्मिणी के विषय में अधोलिखित श्लोक मनोरम है—

याने हंसमयीव सारसमयीवात्यायते लोचने
वर्णे स्वर्णमयीव कर्णमधुरे वीणामयीव स्वरे।
मध्ये शून्यमयीव मुग्धहसिते जातीमयीव श्रुता
कण्ठे कम्बुमयीव सा प्रियतमा चित्ते वरीवर्ति मे॥

—रुक्मिणी० ११९

'गति में हंसमयी-सी, अत्यधिक विस्तृत लोचन में कमलमयी-सी, रंग में स्वर्णमयी-सी, कर्णप्रिय स्वर में वीणामयी-सी, कटिप्रदेश में शून्यमयी-सी, मुग्धहास में जातीमयी-सी, कण्ठ में शङ्खमयी-सी सुनी जाने-वाली प्रियतमा मेरे चित्त में विद्यमान है।'

अ० पा०

रामानन्दराय

रामानन्दराय का समय १६वीं शताब्दी है। इनके पिता का नाम भवानन्दराय था। ये उत्कल के राजा गजपति प्रतापरुद्र देव के आश्रित थे। रामानन्द-राय की कृति 'जगन्नाथवल्लभ नाटक' है। इसमें पाँच अङ्क हैं।

'जगन्नाथवल्लभ' की कथा इस प्रकार है—'कृष्ण विदूषक के साथ वृन्दावन के कुञ्ज में जाते हैं। वहाँ राधा आ जाती है। कृष्ण राधा को देखते हैं। राधा कृष्ण के विरह में पीड़ित होती है। कृष्ण को राधा का प्रेम-पत्र मिलता है। कृष्ण ने राधा के हृदय की परीक्षा लेने के लिए दूसरों से कहा कि मैं राधा के प्रेम के चक्र में पड़नेवाला नहीं हूँ। उन्होंने राधा की दूती से कहा कि राधा को सदाचार के पथ पर चलना चाहिए, अतः उसे इस प्रेम से विरत होना चाहिए।

माधवी कृष्ण का चित्र लेकर राधा के पास आती है। चित्र के नीचे कृष्ण ने लिखा था कि 'मेरे मन में तुम विद्यमान हो, केवल वाणी से तुम्हारा तिरस्कार किया है।

मदनिका राधा को कुञ्ज में लाती है तथा राधा और कृष्ण का मिलन होता है।'

नाटक में कृष्ण की मनोहर लीलाओं का वर्णन हुआ है। नाटक के प्रारम्भ में ही कहा गया है—

मधुरिपुपदलीलाशालितत्तद्गुणाढ्यं
सहृदयहृदयानां काममामोदहेतुम्।
अभिनवकृतिमन्यच्छायया नो निबद्धं
समभिनयनटानां वयं कञ्चित् प्रबन्धम्॥

रामानन्दराय कहते हैं कि 'मेरे नाटक में चाहे और कोई गुण भले न हो, इसमें कृष्ण के चरणकमल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का वर्णन विद्यमान है, जो सहृदयों को आनन्दित करनेवाला है, अतः यह प्रयास निष्फल नहीं है'—

न भवतु गुणगन्धोऽप्यत्र नाम प्रबन्धे
मधुरिपुपदपद्मोत्कीर्तनं नस्तथापि।
सहृदयहृदयस्यानन्दसन्दोहहेतु-
र्नियतमिदमतोऽयं निष्फलो न प्रयासः॥

यह सङ्गीतनाटक कहा गया है—'रामानन्दसङ्गीत-नाटकं निर्माय समर्पितमभिनेष्यामि।'

जगन्नाथवल्लभ नाटक में पारसी-नाटकों की भाँति योजना की गयी है। रामानन्दराय ने अनेक रागों में गीतों को निबद्ध किया है। ये वैष्णव-भक्त थे अतः इनकी रचना में भक्ति का उल्लास विद्यमान है।

रामानन्दराय के आश्रयदाता गजपति प्रतापरुद्र देव को जगन्नाथवल्लभ नाटक आनन्दित करता था—

गजपतिरुद्रनराधिपचेतसि जनयति मुदमनुवारम्।
रामानन्दरायकविभणितं मधुरिपुरूपमुदारम्॥

यह नाटक रसिकजनों के लिए सुन्दर विधान है—

सुखयतु गजपतिरुद्रमनोहरमनुदिनमिदमभिधानम्।
रामानन्दरायकविरचितं रसिकजनं सुविधानम्॥

राधा के केलिवन में प्रवेश का सरस वर्णन देखिए—

केलिविपिनं प्रविशति राधा।
प्रतिपदसमुदितमनसिजबाधा॥
विनिदधती मृदुमन्थरपादम्।
रचयति कुञ्जरगतिमनुवादम्॥

'राधा केलिवन में प्रवेश कर रही हैं। उनमें पद-पद पर काम की बाधा उत्पन्न हो रही है। वे कोमलता से धीरे-धीरे पैर रख रही हैं और गज की गति का अनुगमन कर रही हैं।'

सखी राधा को समझाती है कि हीन पति को भी रमणी स्वीकार कर लेती है। क्या हरिणी सिंह को स्वीकार करती है? हे राधे! माधव के प्रति अनुराग छोड़ दो। कुमुदिनी क्या क्षीण चन्द्रमा के प्रति प्रियभाव नहीं रखती—

हीनं पतिमपि भजते रमणी।
केशरिणं किमु कुलयति हरिणी॥
राधिके परिहर माधवरागमये
क्षीणे शशिनि च कुमुदवनीयं।
भजति न भावं किमु रमणीयम्॥

अ० पा०

रामेश्वर शास्त्री दाधीच

श्री रामेश्वर शास्त्री दाधीच देवास (सीकर-राजस्थान) नामक स्थान के निवासी थे। आपके पिता पं० रामानन्दजी निष्ठावान् वैष्णव, परम तपस्वी एवं योगनिष्ठ विद्वान् थे। उन्होंने इनकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था की और अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध विद्वान् पं० रामावतार शास्त्री के सान्निध्य में अध्ययन करने के लिए भेजा। उनके व्यक्तित्व का इनके बाल-मानस पर अमिट प्रभाव पड़ा।

विद्याध्ययन के बाद इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन गुरु के आदर्श पर गीता-भागवत के प्रवचन, भगवद्-भजन, संस्कृत-भाषा-प्रचार, धर्म-प्रसार तथा साधु-सेवा में बिताया। संस्कृत का अध्ययन करते हुए और आदर्श वैष्णव के रूप में सनातन धर्म की सेवा करते हुए जीवन के उत्तरार्द्ध में ये वृन्दावन चले गये और यमुना-तट पर निवास करते हुए अपनी ऐहिक लीला संवरण की।

राजस्थान के नागौर, जायल आदि स्थानों में फैली हुई अपनी विशाल शिष्य-मण्डली में ये आज भी ऋषि के रूप में स्मरण किये जाते हैं।

श्या० श० वा०

रुद्रधर

रुद्रधर के लिखे कई संस्कृत ग्रंथ मिलते हैं लेकिन पद नहीं। वैसे आपका एक पद विद्यापति पदावली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की नेपाली प्रति में विद्यापति के नाम पर संगृहीत है जिससे ज्ञात होता है कि आपने कृष्ण-सम्बन्धी कुछ पदों की रचना की थी। इनका समय ई० सन् की पन्द्रहवीं शती है।

अ० अ०

रूपगोस्वामी

श्री रूपगोस्वामी षड्गोस्वामियों में प्रमुख हैं। अन्य आचार्य हैं—सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथभट्ट, गोपालभट्ट तथा जीव। रूपगोस्वामी के पूर्वज जगद्गुरु सर्वज्ञ कर्णाटक देश के राजा थे। सर्वज्ञ ने १३८१ ई० से १४१४ ई० तक शासन किया। सर्वज्ञ के पुत्र अनिरुद्ध की दो पत्नियाँ थीं, जिनसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—रूपेश्वर और हरिहर। रूपेश्वर प्रौढ़ विद्वान् हुए, किन्तु हरिहर अपने मार्ग से च्युत हो गये। हरिहर ने अपने बड़े भाई रूपेश्वर से राज्य छीन लिया। राज्य से च्युत होने पर रूपेश्वर कर्णाटक प्रदेश छोड़कर गौड़ देश चले गये और गौड़ के राजा के दरबार में शरण ली। गौड़ के राजा अनिरुद्ध के मित्र थे। उन्होंने रूपेश्वर को मन्त्री का पद दिया, जिस पर रूपेश्वर अपनी मृत्यु तक बने रहे। रूपेश्वर के बाद उनके पुत्र पद्मनाभ मन्त्री बने। पद्मनाभ यजुर्वेद के ज्ञाता थे। वे भागीरथी के तट पर स्थित नवहट्ट नामक ग्राम में रहने लगे। उनके पाँच पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटा मुकुन्द था। मुकुन्द को कुमार नामक पुत्र हुआ। कुमार नवहट्ट छोड़कर फतेहाबाद में रहने लगे। उन्होंने रेवती नामक कन्या से विवाह किया, जिससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—सनातन, रूप और अनुपम। रूपगोस्वामी का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

जगद्गुरु सर्वज्ञ→अनिरुद्ध→रूपेश्वर तथा हरिहर→पद्मनाभ →पुरुषोत्तम-जगन्नाथ - नारायण - मुरारि, मुकुन्द→कुमारदेव→सनातन (अमर), रूप (सन्तोष), अनुपम→जीव।

रूप का जन्म १४९० ई० में हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी मृत्यु १५६३ ई० में हुई और कुछ के अनुसार १५९१ ई० में।

कुमार ने अपने पुत्रों की शिक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया। सनातन और रूप ने नवहट्ट के प्रसिद्ध विद्वान् सर्वानन्द विद्यावाचस्पति से संस्कृत का अध्ययन किया और सतगाँव के जमींदार सैयद फकीरुद्दीन से अरबी-फारसी का। रूप और सनातन की प्रतिभा से गौड़ के बादशाह हुसेनशाह अत्यधिक प्रभावित हुए और इन्हें अपना मन्त्री बना लिया। बादशाह ने रूप का नाम शाकिर मल्लिक रखा और सनातन का दबिर-खास रखा। रूप का बाल्यावस्था का नाम सन्तोष था और सनातन का अमर। रूप और सनातन दोनों गौड़ के समीप ही रामकेलि नामक ग्राम में रहने लगे। इन्होंने कर्णाटक से ब्राह्मणों को बुलाकर वहाँ बसाया। ये उनसे धार्मिक विषयों पर चर्चा किया करते थे। रूप और सनातन ने रामकेलि में चैतन्य महाप्रभु का पहली बार दर्शन किया था और उनसे वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली थी। चैतन्य ने वैष्णव-धर्म में दीक्षित करके इन दोनों भाइयों का नाम रूप और सनातन रखा। चैतन्य के सम्पर्क में आने पर इन दोनों में अद्भुत परिवर्तन हुआ। अब इनका समय साधु-संगति में बीतने लगा।

चैतन्य के दर्शन की बलवती इच्छा रूप को प्रेरित करने लगी। रूप को मालूम हुआ कि चैतन्य वृन्दावन जा रहे हैं। ये चैतन्य से मिलने के लिए चल पड़े और दारागंज (प्रयाग) में चैतन्य का दर्शन किया। चैतन्य को देखकर ये उनके चरणों पर गिर पड़े। महाप्रभु ने इन्हें छाती से लगा लिया। चैतन्य के आदेश के अनुसार रूप अपने छोटे भाई अनुपम के साथ १० दिनों तक चैतन्य के पास रहे। चैतन्य ने रूप को भक्ति का रहस्य समझाया और जगत् की नश्वरता का प्रतिपादन किया। महाप्रभु के उपदेशों से रूप का अन्तःकरण निर्मल हो गया और इनके जीवन में नव ज्योति का संचार हुआ। जब चैतन्य ने रूप की इस स्थिति को देखा, तब इन्हें बुलाकर कहा—"तुमने भक्ति के रहस्य को समझ लिया है। अब तुम्हें मेरे पास रहने की आवश्यकता नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय तुम वृन्दावन जाओ और लुप्त तीर्थों को खोजकर उनका उद्धार करो। फिर गौड़ होते हुए पुरी में मुझसे मिलना।" चैतन्य का आदेश पाकर रूप अनुपम के साथ मथुरा पहुँचे। वहाँ इन्हें गौड़ के भूतपूर्व राजा सुबुद्धिराय मिले। सुबुद्धिराय रूप और अनुपम के साथ व्रज के वनों और उपवनों में घूमते रहे। रूप कुछ दिनों तक वृन्दावन में इसी प्रकार रहे और फिर चैतन्य के आदेश के अनुसार अनुपम को साथ लेकर पुरी के लिए चल पड़े। मार्ग में अनुपम को ज्वर हो आया और उनकी मृत्यु हो गयी। इससे रूप अत्यन्त दुःखित हुए। ये किसी प्रकार पुरी पहुँचे। पुरी में इन्हें चैतन्य का दर्शन हुआ। वहाँ रूप ने 'विदग्धमाधव' और 'ललितमाधव' की रचना की। चैतन्य के आदेश से रूप ने अपने नाटक भक्तों को सुनाये, जिन्हें सुनकर भक्त आनन्द-विभोर हो उठे। कुछ दिनों तक रूप पुरी में रहे और चैतन्य के दर्शन का लाभ उठाया। चैतन्य ने रूप को वृन्दावन में रहने का आदेश दिया। चैतन्य की आज्ञा को शिरोधार्य कर रूप गौड़ होते हुए वृन्दावन चले गये।

रूप वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड और नन्दग्राम के समीप रहते थे और भजन में निरन्तर निमग्न रहते थे। एक समय अद्‌भुत घटना घटी। रूप भजन कर रहे थे। इन्हें भूख लगी, किन्तु ये भिक्षाटन नहीं करना चाहते थे, क्योंकि भजनानन्द में डूबे हुए थे। भगवान् इनके इस भाव से अत्यधिक प्रसन्न हुए और ग्वालबाल के रूप में आकर इन्हें दर्शन दिया और दूध दिया।

एक रात में रूप को स्वप्न में गोविन्ददेव का दर्शन मिला। गोविन्द ने कहा कि मैं अमुक स्थान पर भूमि में पड़ा हुआ हूँ। एक गाय प्रतिदिन आती है और मुझे दूध पिलाती है। तुम गाय का अनुसरण करते हुए मुझे बाहर निकालो और मेरी पूजा करो। रूप ने भगवान् की मूर्ति निकाली। बाद में जयपुर के महाराज मानसिंह ने १५९० ई० में गोविन्ददेव का लाल पत्थरों का विशाल मन्दिर बनवाया, जो हिन्दू-कला का कमनीय निदर्शन माना जाता है।

रूप वृन्दावन में भक्ति का प्रचार करते हुए ग्रन्थों का प्रणयन करते रहे। चैतन्य के सिद्धान्तों को शास्त्रीय आधार पर प्रतिष्ठित करने का बहुत श्रेय इन्हींको है। भक्तों की मण्डली में रूप का अत्यधिक सम्मान था। रूप तथा सनातन के निवास के कारण वृन्दावन भक्तों की दृष्टि में अधिक पवित्र हो गया। ये भक्तों के प्रेरक थे और उनके लिए आनन्द के स्रोत थे। जो यात्री वृन्दावन से पुरी पहुँचते थे, उनसे पुरी के भक्त रूप और सनातन के विषय में पूछते थे। तीर्थयात्री प्रशंसा करते हुए कहते थे—'दे प्रायः वृक्ष के नीचे सोते हैं। वे प्रत्येक रात्रि किसी नये वृक्ष के नीचे सोते हैं। वे सूखी रोटी और कच्चे अनाज खाते हैं, कभी भी स्वादिष्ट भोजन ग्रहण नहीं करते। उनके पास भिक्षा के पात्र हैं और फटे हुए कपड़े। वे कृष्ण के ही विषय में चर्चा करते हैं। वे लगभग दो घण्टा सोते हैं। अवशिष्ट समय में कृष्ण का गुणगान करते रहते हैं अथवा भक्ति-विषयक ग्रन्थों का निर्माण करते रहते हैं।'

रूप ने अधोलिखित ग्रन्थों की रचना की—१. हंस-सन्देश और २ उद्धव-सन्देश—ये रूप की प्रारम्भिक रचनाएँ हैं।

३. विदग्धमाधव—यह सात अङ्कों का नाटक है। इसमें राधा-कृष्ण की केलिकथा का चित्रण हुआ है। इसके अङ्कों के नाम इस प्रकार हैं—वेणुनादविलास, मन्मथलेख, राधासङ्ग, वेणुहरण, राधाप्रसादन, शरद्विहार और गौरीविहार। विदग्धमाधव की रचना संवत् १५८९ (१५३२ ई०) में हुई थी—

नन्दसिन्धुरबाणेन्दुसंख्ये संवत्सरे गते।
विदग्धमाधवं नाम नाटकं गोकुले कृतम्॥

इस नाटक में वृन्दावन की लीलाओं का अत्यन्त कमनीय चित्रण हुआ है। राधा तथा कृष्ण के प्रेम की विविध भङ्गिमाओं का उन्मीलन कवि का ध्येय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। कथावस्तु का विन्यास इसी दृष्टि से किया गया है। नाटक के मङ्गलश्लोक में कहा गया है कि भगवान् की लीला वह शिखरिणी (एक प्रकार का पेय) है, जिसमें माधुर्य और सौरभ है और जो त्रिविध तापों को नष्ट करनेवाली है—

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माददमनो
दधाना राधादिप्रणयघनसारैः सुरभिता।
समन्तात् सन्तापोद्गमविषयसंसारसरणि-
प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीलाशिखरिणी॥

४. ललितमाधव—यह दश अङ्कों का नाटक है। अङ्कों के नाम इस प्रकार हैं—सायमुत्सव, शंखचूड-वध, उन्मत्तराधिका, राधाभिसार, चन्द्रावलीलाभ, ललिताप्राप्ति, नववृन्दावनसङ्गम, वृन्दावनविहार, चित्रदर्शन तथा पूर्णमनोरथ। इस नाटक में कृष्ण की लीलाओं के माध्यम से शृंगार के शास्त्रीय पक्ष का उद्घाटन हुआ है।

उक्त नाटकों में आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण हुआ है।

५. अष्टादशछन्दस्—ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें नन्दोत्सव से लेकर कंसवध तक की कृष्ण-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

६. दानकेलिकौमुदी—इस नाटक में राधा और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन हुआ है।

७ भक्तिरसामृतसिन्धु—इसमें भक्तिरस का शास्त्रीय विवेचन किया गया है। रूप ने भक्तिरस को मूलरस माना है। इस प्रौढ़ ग्रन्थ में भक्तिरस के सभी पक्षों की विस्तृत मीमांसा प्राप्त होती है। वैष्णवधर्म के भाव-सौन्दर्य को प्रस्तुत करनेवाला यह अद्भुत ग्रन्थ है।

८. उज्ज्वलनीलमणि—इसमें मधुर-शृङ्गार तथा नायक-नायिकाओं के भेदोपभेदों का निरूपण किया गया है।

९. मथुरामहिमा—इसमें मथुरा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

१०. पद्यावली—इसमें राधाकृष्ण-विषयक प्राचीन पद्यों का संग्रह किया गया है।

११. नाटकचन्द्रिका—इसमें नाटक के शास्त्रीय लक्षण का विवेचन किया गया है। रूप ने साहित्य-दर्पण की प्रक्रिया को स्वीकार नहीं किया है—

वीक्ष्य भरतमुनिशास्त्रं रसपूर्वसुधाकरञ्च रमणीयम्।
लक्षणमतिसंक्षेपाद् विलिख्यते नाटकस्येदम्॥
नातीवसङ्गतत्त्वाद् भरतमुनेर्मतविरोधाच्च।
साहित्यदर्पणीया न गृहीता प्रक्रिया प्रायः॥

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त रूपगोस्वामी ने उत्क-लिकावल्लरी, संक्षेपभागवतामृत, गणोद्देशदीपिका, कृष्ण-जन्मतिथि, निकुञ्जरहस्यस्तव आदि की भी रचना की है।

विदग्धमाधव के अधोलिखित श्लोक में कृष्ण की महिमा का वर्णन किया गया है—

प्रपन्नमधुरोदयः स्फुरदमन्दवृन्दाटवी-
निकुञ्जमयमण्डपप्रकरमध्यबद्धस्थितिः।
निरङ्कुशकृपाम्बुधिर्व्रजविहाररज्यन्मनाः
सनातनतनुः सदा मयि तनोतु तुष्टिं प्रभुः॥

—१।७

'जिनके आश्रित होकर शृङ्गार-रस का उदय हुआ है, जो वृन्दावन के प्रकाशमान तथा समृद्ध कुञ्जों के मण्डपों में निवास करते हैं, जो निर्बाध कृपा के सागर हैं, जिनका मन व्रजविहार में अनुरक्त रहता है, वे सनातन शरीर धारण करनेवाले प्रभु मुझमें सन्तोष की सदा वृद्धि करें।'

निकुञ्जरहस्यस्तव के अधोलिखित श्लोक में राधा और कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन है—

ललितनवकिशोरौ नव्यलावण्यपुञ्जौ
सकलरसिकचूडालङ्कृतौ मुग्धवेशौ।
मधुरमधुरमूर्तौ विद्युदम्भोदकान्ती
स्मर निभृतनिकुञ्जे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सुन्दर और नव किशोरावस्थावाले, नव लावण्य की राशि, सभी रसिकों के चूडालङ्कार, सुन्दर वेशवाले, अत्यधिक मधुर मूर्तिवाले, विद्युन्मय जलद की कान्तिवाले, एकान्त निकुञ्ज में विद्यमान राधा-कृष्ण का स्मरण करो।'

अ० पा०

लक्ष्मणसेन

बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन अत्यधिक विद्यानुरागी थे। ये अनेक कवियों के आश्रयदाता थे। इनकी सभा को जयदेव, उमापति, गोवर्धन और शरण जैसे महाकवि अलंकृत कर रहे थे। लक्ष्मणसेन का समय १२वीं शताब्दी ई० का प्रारम्भ है, क्योंकि १११६ ई० इनका एक शिलालेख मिलता है।

लक्ष्मणसेन स्वयं भी कवि थे। इनके श्लोक श्री रूपगोस्वामी द्वारा संगृहीत 'पद्यावली' में मिलते हैं, जिनके विषय हैं—मुग्धबालवाक्य, साकूतवाक्य आदि। श्रीकृष्ण के विषय में इनका अधोलिखित श्लोक कितना मनोरम है—

तिर्यक्कन्धरमंसदेशमिलितश्रोत्रावतंसं स्फुरद्
बर्होत्तंसितकेशपाशमनृजुभ्रूवल्लरीविभ्रमम्।
गुञ्जद्वेणुनिवेशिताधरपुटं साकूतराधानन-
न्यस्तामीलितदृष्टि गोपवपुषो विष्णोर्मुखं पातु वः॥

—सदुक्तिकर्णामृत ५७।२

कृष्ण की आनन-छवि का एक सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत करते हुए ये लिखते हैं—

'गरदन टेढ़ी कर खड़े श्रीकृष्ण के कान के आभूषण (कर्णफूल) उनके कंधों का स्पर्श कर रहे हैं। केशराशि के ऊपर मोरपंख सुशोभित हैं। टेढ़ी भौंहों की लता अपनी विलास-लीला से कृष्ण के लावण्य को विलक्षणता से व्यक्त कर रही है। अधरों पर वंसरी नाद-सौन्दर्य का उन्मुक्त विस्तार कर रही है। राधा की आँखें सौन्दर्य-सुधा के पान में निमग्न हैं। यद्यपि वेष तो गोप का ही है—पर वस्तुतः ये विष्णु ही हैं। ऐसी मुखच्छवि हमारा कल्याण करे।'

लक्ष्मणसेन का अधोलिखित पद्य 'सदुक्तिकर्णामृत' में प्राप्त होता है—

कृष्ण त्वद्वनमालया सहकृतं केनापि कुञ्जान्तरे,
गोपीकुन्तलबर्हदाम तदिदं प्राप्तं मया गृह्यताम्।
इत्थं दुग्धमुखेन गोपशिशुना ख्याते त्रपानम्रयो,
राधामाधवयोर्जयन्ति वलितस्मेरालसा दृष्टयः॥

'हे कृष्ण, किसीने दूसरे कुञ्ज में तुम्हारी वनमाला के साथ गोपी के केश के मयूरपिच्छ को रख दिया था। मैं इसे ले आया हूँ। इसे ले लो। इस प्रकार दुधमुँहे गोपशिशु के कहने पर राधामाधव की लज्जा से झुकी हुई चञ्चल, मुस्कराहट से युक्त अलसाई हुई दृष्टियों की जय हो।'

अ० पा०

लच्छीराम प्राणाचार्य

जयपुर में वृन्दावनधाम से समागत श्री गोविन्ददेवजी महाराज की स्थापना जब से हुई उसका आध्यात्मिक स्वरूप ही बदल गया। इसके पश्चात् नाथयोगियों एवं निर्गुणमार्गी सन्तों के प्रभाव से मुक्त होकर वह गोविन्दजी की भक्ति की पावन धारा से ओतप्रोत हो गया। इसके फलस्वरूप दादूपन्थी श्री लच्छीरामजी जैसे निर्गुण निराकारोपासक सगुणोपासक बनकर भगवान् के लीलारस का आस्वादन करने लगे।

ये जयपुर के एक विशिष्ट वैद्य हुए हैं। इनका जन्म श्रावण कृष्णा षष्ठी सम्वत् १९३० को जयपुर राज्य के मांग्यास नामक छोटे-से गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री भूरामलजी गौड़ ब्राह्मण थे। लच्छीराम बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न थे। दादूपंथी सन्त चन्दनदासजी ने आपके अन्दर छिपी प्रतिभा को पहचान लिया। इन्हें मातापिता से याचना करके अपनाया तथा योग्य शिष्य बनाया। आगे चलकर दादूपन्थी विद्वान् वैद्य के रूप में इन्होंने असाधारण यश अर्जित किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयपुर में निवास करने के कारण श्री गोविन्दजी की कृपा से आपका अन्तःकरण वीतराग होने के बावजूद रागानुगाभक्ति से ओतप्रोत हो गया। दादूपन्थी होने पर भी सांप्रदायिक संकीर्णता से दूर रहते हुए लच्छीरामजी गोविन्दजी के भक्त हो गये। ये स्वभाव से अत्यन्त सरल थे। आयुर्वेद के देश-प्रसिद्ध आचार्य होने के कारण ये अपने व्यस्त जीवन से काव्य-रचना के लिए अपेक्षित समय निकाल नहीं पाते थे। इससे काव्य-रचना के रूप में इनके द्वारा श्री गोविन्दजी महाराज की स्तुति में निर्मित कुछ फुटकर छन्द ही मिलते हैं।

गोविन्ददेवजी का स्तुति-विषयक इनका एक छंद प्रस्तुत है—

वृन्दारक वृन्दावृतचरणं वृन्दारण्ये विहरन्तं।
मानवकुलदावानलदानवदुष्टकुलानि प्रहरन्तम् ॥
अम्भोदाधिपजम्भारिभ्रमवारणकारण कुरुविन्दम्।
वन्दामो नन्दात्मजमेनममन्दानन्दम् गोविन्दम् ॥

'देववन्दित पदारविन्द, वृन्दाविपिन में विहरणशील, मानवमात्र को दग्ध करने के लिये दावानल के समान दानवों और दुष्टों के कुल के संहारक तथा इन्द्र के भ्रम को निवारण करनेवाले नन्दनन्दन गोविन्द आनन्दकन्द की हम वन्दना करते हैं।'

श्या० श० वा०

लीलाशुक

लीलाशुक या बिल्वमङ्गल ११वीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये दामोदर के पुत्र थे। ये 'तन्त्रपद्धति' के लेखक ईशानदेव के शिष्य थे। ये कृष्ण के ऐसे भक्त थे कि उनके विषय में गाते-गाते तन्मय हो जाते थे। एक बार जब लीलाशुक भगवान् के गुणों के वर्णन में लीन थे, तब कृष्ण स्वयं इनकी प्रशंसा में गान करने लगे। कृष्ण द्वारा लीलाशुक की प्रशंसा में कहे गये श्लोकों में अन्तिम श्लोक इस प्रकार हैं—

यस्य दक्षिणकैलासलीलापरिणतं महः।
चर्चाचन्दनगन्धेन सुगन्धयति मानसम् ॥

'दक्षिण कैलास की लीला से ललित जिस भक्त का क्षण और उत्सव अर्थात् सारा समय कृष्ण-चर्चा में व्यतीत हो रहा है। चन्दन की गन्ध के समान यह मानस को पवित्र करता है।'

कृष्णलीलाशुकस्यास्य किशोरमधिदैवतम्।
स्तुतिरत्नमिदं ब्रूते वेणुवादिमुखेन्दुना ॥

'लीलाशुक नामक कवि के उपास्यदेव किशोर श्रीकृष्ण हैं। स्तुति-साहित्य में रत्न के समान यह रचना वंशीवादक आनन्दकन्द श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र के माध्यम से ही उनका (श्रीकृष्ण का) स्तुति-गीत गा रहा है।'

जब लीलाशुक साधु हो गये, तब इनका नाम बिल्वमङ्गल पड़ा। इन्होंने एक मठ की स्थापना की। उसके अधिकारी बिल्वमङ्गल कहे जाते हैं। सम्प्रदाय-कुलदीपिका में उल्लेख मिलता है—"तीन वैष्णव भक्त थे। एक तमिल प्रदेश में रहते थे, दूसरे काशी में और तीसरे उड़ीसा में। जो भक्त काशी में पैदा हुए थे, वे अपने प्रथम जन्म में माधवनल नाम से प्रसिद्ध थे, दूसरे जन्म में बिल्हण नाम से, तीसरे जन्म में बिल्वमङ्गल नाम से और चतुर्थ जन्म में जयदेव नाम से।" कुछ लोगों का कथन है कि लीलाशुक दक्षिण में कृष्णा नदी के तट पर रहते थे। उड़ीसा में कथा प्रचलित है कि ये जगन्नाथपुरी में रहते थे। इनके घर में बिल्व का एक वृक्ष था, इसलिए ये बिल्वमङ्गल नाम से प्रसिद्ध हुए।

लीलाशुक सम्भवतः आन्ध्रप्रदेश के रहनेवाले थे। 'कृष्णकर्णामृत' का अनुवाद तेलुगु में मिलता है, जिससे पता चलता है कि तेलुगु लोगों में इसका विशेष आदर था। दूसरी बात यह है कि लीलाशुक का चिन्तामणि नामक गणिका से प्रेम था। आन्ध्र-प्रदेश की देवदासियों में चिन्तामणि नाम प्रचलित है। इससे भी ज्ञात होता है कि लीलाशुक आन्ध्र के रहने-वाले थे।

कहा जाता है कि चिन्तामणि नामक वेश्या इनकी प्रेयसी थी। एक बार बिल्वमङ्गल एक सर्प की पूंछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पकड़कर उसके घर की दीवाल लाँघ गये, उक्त सर्प ने इन्हें काट लिया, जिससे ये अचेत होकर गिर पड़े। चिन्तामणि ने इनकी परिचर्या की। जब इनकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह विकृत वस्त्र धारण करके इनके सामने उपस्थित हुई तथा इन्हें उपदेश दिया कि विषय-सुख का परित्याग कीजिए और कृष्ण से प्रेम कीजिए। इस पर लीलाशुक ने अपने गुरु सोमगिरि से कृष्णमन्त्र की दीक्षा ली और साधु हो गये। वृन्दावन में इनका शरीर छूटा। इन्होंने 'कृष्णकर्णामृत' के प्रथम श्लोक में चिन्तामणि और सोमगिरि का उल्लेख किया है—

चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे,
शिक्षागुरुश्च भगवाञ्छिखिपिच्छमौलिः।
यत्पादकल्पतरुपल्लवशेखरेषु,
लीलास्वयंवररसं लभते जयश्रीः॥

'चिन्तामणि की जय हो। शिक्षा-गुरु सोमगिरि की जय हो। मोरपंख धारण करनेवाले श्रीकृष्ण की जय हो, जिनके चरणरूपी कल्पतरु के पल्लवों के अग्रभागों में जयश्री लीला-स्वयंवर-रस को प्राप्त करती है।'

लीलाशुक पहले शैव थे। इन्होंने पञ्चाक्षरीमन्त्र का पर्याप्त जप किया था। बाद में श्रीकृष्ण में इनकी अनुरक्ति हो गयी। ये एक निर्धन ब्राह्मण थे और अपनी जीविका के लिए अन्य लोगों पर आश्रित थे, जिसका संकेत इनके अधोलिखित श्लोक में मिलता है—

शैवा वयं न खलु तत्र विचारणीयं,
पञ्चाक्षरीजपपरा नितरां तथापि।
चेतो मदीयमतसीकुसुमावभासं,
स्मेराननं स्मरति गोपवधूकिशोरम्॥

—कृष्णकर्णामृत २।२४

'हम शैव हैं—इसमें विचार करने की कोई बात नहीं। हम नित्य पञ्चाक्षरी मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) के जप में निरन्तर लगे रहते हैं। फिर भी मेरा मन तीसी के फूल के समान नीलवर्ण हँसमुख गोपवधुओं के प्रिय कृष्ण का मन स्मरण करता रहता है।'

लीलाशुक कवि के अतिरिक्त दार्शनिक और वैयाकरण भी थे। इनकी रचनाएँ हैं—कृष्णकर्णामृत, त्रिभुवनसुभग, गणपतिस्तुति, रामचन्द्रस्तुति, कृष्णस्तुति, सुमङ्गलस्तोत्र, कृष्णबालक्रीडा, क्रमदीपिका, शङ्करहृदयाङ्गण आदि।

वृन्दावन-स्तुति में रासक्रीड़ा का वर्णन है। इसमें अत्यन्त ललित श्लोक हैं। गोविन्दाभिषेक ८ सर्गों की रचना है। इसमें प्राकृत व्याकरण के नियमों को सोदाहरण समझाया गया है।

'कृष्णकर्णामृत' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके प्रथम सर्ग के १–५३ श्लोकों के गान की परम्परा है। इन ५३ श्लोकों की इकाई है। यह परम्परा १३वीं शताब्दी से चली आई है। यह सामूहिक गान के लिए अभिप्रेत है। यह अंश भक्तिगान के लिए निर्धारित है और व्यक्तिगत साधना के लिए प्रयुक्त स्तुतियों से भिन्न है—

'कृष्णकर्णामृत' के अधोलिखित श्लोकों में कवि की कृष्णविषयक अनुरक्ति प्रकाशित हुई है—

सन्ध्यावन्दन भद्रमस्तु भवते भोः स्नान तुभ्यं नमो,
भो देवाः पितरश्च तर्पणविधौ नाहं क्षमः क्षम्यताम्।
यत्र क्वापि निषीद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः,
स्मारं स्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे॥

'हे सन्ध्यावन्दन, तुम्हारा कल्याण हो, हे स्नान, तुम्हें नमस्कार है, हे देव, हे पितर, मैं तर्पण की विधि में समर्थ नहीं हूँ, अतः क्षमा करो। मैं कहीं भी (एकान्त में) बैठकर यादव-कुल के भूषण, कंस के शत्रु श्रीकृष्ण का बार-बार स्मरण करके अपना पाप दूर करना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि इतना पर्याप्त है। अन्य वस्तु की मुझे क्या चिन्ता?'

कोई व्यक्ति रास्ता पूछ रहा है। निम्नांकित श्लोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में कृष्ण का पता बताया गया है और कहा गया है कि वे समीचीन मार्ग दिखा देंगे—

अग्रे दीर्घतरोऽयमर्जुनतरुस्तस्याग्रतो वर्त्मनी,
सा घोषं समुपैति तत्परिसरे देशे कलिन्दात्मजा।
तस्यास्तीरतमालकाननतले चक्रं गवां चारयन्,
गोपः क्रीडति दर्शयिष्यति सखे पन्थानमव्याहतम् ॥

—कृष्ण० २।४३

'आगे अर्जुन का ऊँचा वृक्ष है, उसके आगे रास्ता है। वह अहीरों के गाँव तक जाता है। यमुना के तट के तमाल वृक्षों के नीचे गायों को चराता हुआ गोप (श्रीकृष्ण) रक्षक खेल रहा है। हे मित्र, वह (तुम्हें) ठीक रास्ता दिखा देगा।'

कवि श्रीकृष्ण की एक विशेष छवि का ध्यान करता है—

प्रातः स्मरामि दधिघोषविनीतनिद्रं
निद्रावसानरमणीयमुखारविन्दम्।
हृद्यानवद्यवपुषं नयनाभिराम-
मुन्निद्रपद्मनयनं नवनीतचौरम् ॥

—कृष्ण० ३।८८

'दधिमन्थन की ध्वनि से निद्रा का परित्याग करनेवाले, निद्रा की समाप्ति पर सुन्दर मुखारविन्दवाले, मनोहर तथा निर्दोष शरीरवाले, नयनों के लिए सुन्दर, खिले हुए कमल की भाँति नेत्रोंवाले, मक्खन की चोरी करनेवाले (श्रीकृष्ण) का स्मरण करता हूँ।'

बिल्वमंगल के नाम से कुछ अन्य रचनाओं का भी पता चला है। उनका परिचय नीचे दिया जा रहा है—

१. श्री गोविन्द दामोदर-स्तोत्र—बिल्वमंगल-विरचित इस स्तोत्र में ७१ श्लोक हैं। इस पुस्तक के अन्त में रचयिता का नाम श्री बिल्वमंगलाचार्य दिया हुआ है, साथ ही पादटिप्पणी में श्री मधुमंगलाचार्य का भी नाम है। इस स्तोत्र में आद्योपान्त 'दामोदर माधवेति' नाम का गान है।

२. बिल्वमंगल-स्तोत्र—इस स्तोत्र में कृष्ण के विभिन्न अवतारों से सम्बद्ध स्तुतियाँ तथा लीलाओं का वर्णन है। यह स्तोत्र कृष्ण-चरित पर आधृत कई अध्यायों में विभक्त है जैसे—कृष्ण-स्तोत्र, शैशव-चरित्र, पौगण्ड-चरित्र, किशोर-केलि, तारुण्य-केलि, मथुरा-चरित्र आदि। इस स्तोत्र में श्लोकों की संख्या प्रायः ३६९ मिलती है।

३. बिल्वमंगल-नाम-कोष्ठ—इसके श्लोकों की संख्या १०१ है। इसमें 'कृष्णकर्णामृत' के प्रथम शतक का एक भी श्लोक नहीं है। इसके ८१ श्लोक समान रूप से कृष्ण-स्तोत्र में भी मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त 'कृष्ण क्रीड़ा-काव्य', 'वृन्दावन-स्तुति', 'कृष्णाह्निक-कौमुदी' आदि बिल्वमंगल-रचित ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है। १३वीं शताब्दी में कृष्ण-लीलाशुक नामक एक व्याकरणाचार्य भी हुए हैं। इनकी 'दैव' व्याकरण पर 'पुरुषाकार' नाम्नी टीका वैयाकरणों में प्रसिद्ध है। इनका सम्भवतः एक 'श्रीकृष्ण-काव्य' संज्ञक ग्रन्थ भी है।

वस्तुतः बिल्वमंगल नाम के एकाधिक व्यक्ति होने के कारण उनका स्थितिकाल एवं रचनाओं का प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। किन्तु यह निर्विवाद है कि मधुरा-भक्ति के प्रवर्तक लीलाशुक बिल्वमंगल महान् कवि के अतिरिक्त महान् भक्त भी थे। इनके द्वारा रचित 'कृष्णकर्णामृत' भक्ति-साहित्य की अनमोल निधि है। इसके संबंध में चैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने लिखा है—

कर्णामृत समबस्तु नाहि त्रिभुवने।
जाते हैले ह्य शब्द कृष्णप्रेम-जाने ॥
सौंदर्य माधुर्य कृष्णलीलार अवधि।
ते जाने जे कृष्णामृत पढ़े निरवधि ॥

—चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला,
परिच्छेद ९, पृ० १६८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिन्तामणि नाम्नी गणिका के विरह में व्याकुल लीलाशुक बिल्वमंगल का चित्त जब व्रजेन्द्रनन्दन श्याम-सुन्दर की विरह-वेदना से तड़प उठा, तब कृष्णकर्णा-मृत के रूप में भक्ति-रस की जो गंगा प्रवाहित हुई उसमें सतत अवगाहन कर कृष्ण-प्रेमी कृतार्थ हो गये। श्रीकृष्ण के विरह की धधकती ज्वाला में जलते हुए गोपी-भावभावित भक्त कवि के मुख से निःसृत उद्गारों ने ही श्लोक का रूप ले लिया। यह रुदन, वेदना और तड़पन 'कृष्णकर्णामृत' के अनेक श्लोकों में विद्यमान है। दिव्य शृङ्गार-रस से पूरित, व्रज-वनिताओं से आवृत्त रास-विलासी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य-माधुर्य-मंडित रूप का अनेकविध अंकन एवं उस अनुपम रूप-माधुरी के दर्शन की तीव्र उत्कंठा का सजीव चित्रण 'कृष्णकर्णामृत' में दर्शनीय है। इसके उदाहरणस्वरूप कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं—

यावन्न मे निखिलमर्मदृढाभिघात-
निःसन्धिबन्धनमुदेति नवोपतापः।
तावद्विभो भवतु तावकवक्त्रचन्द्र-
चन्द्रातपद्विगुणिता मम चित्तधारा ॥

—१।३७

'जब तक मेरे सारे मर्मों को दृढ़तापूर्वक चूर्ण कर देनेवाले कठोर बन्धनों से नयी-नयी व्याधियाँ उत्पन्न न हो जायँ, तब तक ही हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर कृष्ण! मेरे चित्त की धारा तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा की अमृत ज्योत्स्ना से भरपूर हो उठे!'

हे देव हे दयित हे जगदैकबन्धो
हे कृष्ण हे चपल हे करुणैकसिन्धो।
हे नाथ हे रमण हे नयनाभिराम
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे ॥

—१।४०

'हे दिव्यशक्तिसम्पन्न, हे प्रिय, हे जगत् के एक-मात्र बन्धु! हे कृष्ण, हे चपल (स्फूर्ति के प्रतीक) हे, करुणावरुणालय! नाथ! मैं तुझमें ही रम रहा हूँ! हे रमण! हे मेरे नेत्रों के उत्सव, तुम्हारा साक्षात् चाक्षुषप्रत्यक्ष कब होगा?'

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि,
हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो
हा हन्त! हा हन्त! कथं नयामि?

—१।४१

'हे अनाथनाथ, करुणा के समुद्र श्रीकृष्ण! तुम्हारे बिना, तुम्हारे दर्शन के बिना, मैं विरह के इन अधन्य बुरे दिनों को कैसे बिता सकूँगा?'

कस्त्वं बाल? बलानुजः, किमिह ते?
मन्मन्दिराशंकया
युक्तं तन्नवनीतपात्रविवरे
हस्तं किमर्थं न्यसेः।
मातः कंचन वत्सकं मृगयितुं,
मा गा विषादं क्षणा-
दित्येवं वतवल्लवीप्रतिवचः
कृष्णस्य पुष्णातु नः ॥

—२।८१

'बालक! तुम कौन हो? मैं बलभद्र का अनुज हूँ। यहाँ तुम्हारा क्या प्रयोजन? यह अपना ही घर है—इसी भ्रम में यहाँ आ गया! अच्छी बात है! तो इस माखन-पात्र में हाथ क्यों डाला? अरे हाँ, मैं इसमें प्रिय वत्स की तलाश करना चाहता था! अच्छा कृष्ण! घबड़ा मत! इस प्रकार व्रजबाला के प्रश्नोत्तर में प्रवीण वचन मेरी भक्ति को पुष्ट करें।'

राधा पुनातु जगदच्युतदत्तचित्ता
मन्थानमाकलयती दधिरिक्तपात्रे।
तस्याः स्तनस्तबकचंचललोलदृष्टि-
र्देवोऽपि दोहनधिया वृषभं निरुन्धन् ॥

—२।२५

'राधा कृष्ण में तन्मय है। पात्र में दही नहीं है यह भी भूल रही है और उसीमें मथनी चला रही है। इधर कृष्ण की दशा भी विचित्र है! आँखें तो राधा के स्तनों के उच्चावच स्फुरण में लगी हैं—इधर दुहने की इच्छा से गाय की जगह बैल को ही रोक रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी पारस्परिक तन्मयता को प्राप्त राधा और कृष्ण मेरे अस्तित्व को पवित्र करें।'

अ० पा०
वि० कु० जा०

लोकनाथ भट्ट

लोकनाथ भट्ट का समय सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। इनके पिता का नाम वरदार्य या कवि-शेखर था। लोकनाथ भट्ट ने 'कृष्णाभ्युदय' नामक प्रेक्षणक की रचना की है। विश्ववेदिनी वसुदेव के घर जाती है और गर्भिणी देवकी का हाथ देखकर कहती है कि आपके हाथ में अपत्य-रेखा है, जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह पृथ्वी के भार को दूर करनेवाला, धुरीण, विश्व का अतिक्रमण करनेवाला और विश्व के विधान में दक्ष होगा—

विश्वम्भराभारहरो धुरीणो,
विश्वातिगो विश्वविधानदक्षः।

कृष्ण का जन्म हुआ, मङ्गलवाद्य बजने लगे और पुष्पों की वर्षा हुई।

वसुदेव ने कृष्ण को गोद में लेकर कहा—हे पुत्र, अपने अमृतोपम स्पर्श से मेरे अङ्ग-अङ्ग को आनन्दित करो, अमृत की वर्षा से शीतल, सन्ताप को दूर करनेवाले अङ्गों से युक्त होकर बढ़ो—

अङ्गमङ्गममृतोपमेन मे
स्पर्शनेन सुखयस्व पुत्रक।
अङ्गकैरमृतवृष्टिशीतलै-
रेधितापहरणाभिलाषुकैः॥

इस प्रेक्षणक के भरत-वाक्य में कहा गया है कि भगवान् श्रीपति वासुदेव में लोगों की भक्ति हो।

अ० पा०

लोलिम्बराज

लोलिम्बराज दिवाकर के पुत्र थे। भोजराज का समकालिक सूर्यनामक राजा का पुत्र हरिहर (राजा) था। हरिहर की सभा में अनेक विद्याओं में कुशल दिवाकरसूरि-पुत्र लोलिम्बराज रहते थे—

आयुर्वेदवचोविचारसमये
धन्वन्तरिः केवलं
सोमागानविदां दिवाकरसुधा-
म्भोधित्रियामापतिः।
उत्तंसः कवितावतां मतिमतां
भूभृत्सभाभूषणं
कान्तोक्त्या कृतवैद्यजीवनमिदं
लोलिम्बराजः कविः॥

—वैद्यजीवन ५।२१

'रत्नकला-चरित' के अधोलिखित पद्य से कोई यवन सुलतान भी लोलिम्बराज का आश्रयदाता प्रतीत होता है—

सदर दौलतताज बिबीफती।
मखदुमा यमुना बिजलीमती॥
सबहिकूं सुलतान पठावना,।
तुरत लोलिमराज बुलावना॥

—रत्नकला-चरित, ५

'वैद्यावतंस' में लोलिम्बराज ने अपने लिए 'समस्तपृथिवीपतिपूजनीय' लिखा है।

लोलिम्बराज के बड़े भाई ने इनका पुत्रवत् पालन किया। ये युवावस्था तक दुर्व्यसनी, विक्षिप्त और मूर्ख रहे। इनका बड़ा भाई धनोपार्जन के लिए दूसरे देशों में घूमता रहता था। पति के दुःख से दुःखी उसकी पत्नी ने एक दिन लोलिम्बराज के हाथ से थाली छीनकर कहा—'जा मूर्ख, तुझे इतने समय तक व्यर्थ ही पाला।' इससे लोलिम्बराज को कष्ट हुआ। ये दक्षिण देश में जाकर पर्वत के ऊपर विराजमान अष्टादश भुजाओंवाली महिषासुरमर्दिनी सप्तश्रृङ्गी देवी की उपासना में लग गये। देवी ने इन्हें वरदान दिया। तब एक घड़ी में एक सौ पद्य बनाने की क्षमता इनमें आ गयी।

लोलिम्बराज दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। ये शाक्त, सुगायक और चतुर वैद्य थे। ये श्यामवर्ण के थे। इनका उपनाम जोशी था। किसी यवन सूबेदार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की लड़की से लोलिम्बराज का प्रेम था। इन्होंने उसका नाम रत्नकला रखा था।

लोलिम्बराज का समय १५३८ ई०-१६०८ ई० के बीच माना जाता है। जब इनकी अवस्था ५० वर्ष की थी, तब इनकी पत्नी रत्नकला की मृत्यु हो गई। इन्होंने उसके बाद बीस वर्ष तक तपस्या की। तदनन्तर साधु के रूप में इनकी प्रसिद्धि हुई। उद्धव-चिद्धन, रङ्गनाथ आदि साधुओं की परम्परा में लोलिम्बराज को भी प्रणाम किया गया है। श्री देवदास कहते हैं कि लोलिम्बराज ने स्तुति करने के बाद ब्रह्मरन्ध्रभेदन के द्वारा प्राण त्यागे।

लोलिम्बराज की ये रचनाएँ हैं—हरिविलास-काव्य, वैद्यजीवन, वैद्यावतंस, चमत्कार-चिन्तामणि तथा रत्नकला-चरित। 'हरिविलासकाव्य' में हरिलीला का वर्णन हुआ है। यह उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से विभूषित है। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में यह श्लोक मिलता है—

नानागुणैरवनिमण्डलमण्डनस्य
श्रीसूर्यसूनुहरिभूमिभुजो नियोगात्।
त्रैलोक्यकौतुककरं क्रियते स्म काव्यं
लोलिम्बराजकविना कविनायकेन॥

'वैद्यावतंस' का अधोलिखित पद्य अत्यन्त रमणीय है—

अनुकृतमरकतवर्णा
शोभितकर्णा कदम्बकुसुमेन।
नखमुखमुखरितवीणा
मध्ये क्षीणा शिवा शिवं कुर्यात्॥

'मरकत का अनुकरण करनेवाली, कदम्बपुष्पों से शोभित कर्णोंवाली, नखाग्र से मुखरित वीणा-वाली, क्षीण कटिप्रदेशवाली शिवा कल्याण करें।'

'हरिविलास' का यह पद्य कितना सुन्दर है—

पप्रच्छ काचन वधूरिति कृष्णसारं
कृष्णः सरोजनयनो भवता न दृष्टः।
तस्या विलोचनविलासपराजितोऽसौ
दुःखीव किञ्चिदपि नोत्तरयाञ्चकार॥

—हरिविलास २।१६,

'किसी गोपी ने कृष्णसार मृग से पूछा कि तुमने कमलनयन श्रीकृष्ण को देखा है। उस हरिणाक्षी के नयनविलास से पराजित होने के कारण दुःखी मृग ने कोई उत्तर नहीं दिया।'

अ० पा०

वंशीलाल गोस्वामी

वंशीलाल गोस्वामी श्री बनचन्द्र गोस्वामी के तृतीय पुत्र श्री नागरवर गोस्वामी की पुत्री के यशस्वी वंश में उत्पन्न हुए थे। इनका केवल एक ही ग्रन्थ 'राधेयसिद्धान्त' लेखक ने देखा है। यह अत्यन्त प्रौढ़ संस्कृत-गद्य में लिखा हुआ है और इसमें श्री राधा का परात्परत्व स्थापित किया गया है। इसकी रचना सं० १९०९ में हुई है।

ल० च० गो०

वत्सराज

वत्सराज प्रसिद्ध नाटककार थे। इनका समय १२वीं शताब्दी का उत्तरार्ध और १३वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। ये कालिञ्जर के राजा परमर्दि-देव और त्रैलोक्यमल्ल के मन्त्री थे। ये धर्म की रक्षा के लिए प्रेरणा प्रदान करते थे—

एकः करः कलयति स्फटिकाक्षमालां
घोरं धनुस्तदितरश्च बिभर्ति हस्तः।
धर्मः कठोरकलिकालकदर्थ्यमानः
सत्क्षत्रियस्य शरणं किमिवानुयातः॥

'घोर कलिकाल से कदर्थित धर्म सच्चे क्षत्रिय की शरण में क्योंकर आ गया? इसका एकमात्र कारण है—रक्षा का संकल्प! सच्चा क्षत्रिय दुःखों से क्षत-विक्षत की रक्षा के लिये एक हाथ में कठोर धनुष धारण करता है। परमेश्वर की उपासना के लिये उसके दूसरे हाथ में स्फटिक-अक्षमाला रहती है।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वत्सराज के द्वारा विरचित निम्नांकित रूपक मिलते हैं—किरातार्जुनीय (व्यायोग), रुक्मिणीहरण (ईहामृग), त्रिपुरदाह (डिम), कर्पूरचरित (भाण), हास्यचूडामणि (प्रहसन) और समुद्र-मन्थन (समवकार)। रुक्मिणीहरण में कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। इसकी कथा हरिवंश तथा श्रीमद्भागवत से ली गयी है, किन्तु उसमें अनेक परिवर्तन किये गये हैं। कृष्ण रुक्मिणी के विषय में कहते हैं—

उपरचितकलङ्कं कुन्तलैर्लम्बमानैः
कनकरुचिकपोलं कौङ्कुमीभिः प्रभाभिः।
उदयगिरिदरीतः प्रोल्लसद्बिम्बमिन्दो-
रनुहरति सुदत्याः पीनलावण्यमास्यम् ॥

'राधा की लम्बी केशराशि मानो चन्द्रमा में छाया की तरह शोभित है। स्वर्णवर्णी कपोलपाली कुंकुम की प्रभा से भास्वर है। लगता है—उदयगिरि की कन्दराओं से निकलनेवाला शशाङ्कसुन्दर शशि इसी कृष्णप्रिया सुदती राधा के लावण्यललाम आस्य (मुख) का अनुकरण कर रहा है।'

अ० पा०

वल्लभाचार्य

स्वामी वल्लभाचार्य के पिता लक्ष्मणभट्ट आन्ध्रप्रदेश के कांकरवाड़ ग्राम के निवासी थे। इनकी माता का नाम इल्लमागारु था। इनके पूर्वज यज्ञनारायण भट्ट थे। वे कृष्ण के उपासक थे। जब उन्होंने बत्तीस सोमयज्ञों का सम्पादन किया, तो भगवान् वासुदेव प्रसन्न हुए और प्रकट होकर उनसे वर माँगने के लिए कहा। उन्होंने भगवान् को ही पुत्ररूप में प्राप्त करने का वर माँगा। भगवान् ने कहा कि जब सौ सोमयज्ञ पूरे हो जायेंगे, तब मैं प्रकट होऊँगा। लक्ष्मणभट्ट के पहले ९५ सोमयज्ञ पूरे हो चुके थे। लक्ष्मणभट्ट ने अवशिष्ट पाँच सोमयज्ञों को पूरा किया।

लक्ष्मणभट्ट आन्ध्रप्रदेश से आकर काशी में रहने लगे थे। यवनों के आक्रमणों की आशङ्का से वे काशी से स्वदेश के लिए चल पड़े। जब वे मध्य-प्रदेश के रायपुर जिले के चम्पारण्य नामक वन में पहुँचे, तब इल्लमागारु ने सप्तमासीय वल्लभाचार्य को जन्म दिया। वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ में वैशाख कृष्ण एकादशी गुरुवार को हुआ था। लक्ष्मण-भट्ट बालक को मृत समझकर उसे शमी वृक्ष के नीचे छोड़कर चौंड़ा नगरी में जा पहुँचे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि काशी में उपद्रव शान्त हो गया है। इस समाचार से वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और काशी के लिए चल पड़े। जब वे चम्पारण्य में पहुँचे, तब देखा कि शमी वृक्ष के नीचे पड़ा हुआ बालक अँगूठा चूस रहा है और मुसकरा रहा है। इससे पति-पत्नी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। लक्ष्मणभट्ट बालक को लेकर सपत्नीक काशी पहुँचे।

बाल्यावस्था में ही वल्लभाचार्य की बुद्धि का प्रकाश फैलने लगा। पिता ने इनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया और वल्लभाचार्य शास्त्राभ्यास करने लगे। कुछ ही समय के बाद लक्ष्मणभट्ट का गोलोकवास हो गया। पिता का पारलौकिक कृत्य करके वल्लभाचार्य अध्ययन में लग गये और स्वल्प समय में ही अंगों के साथ वेदों का अध्ययन पूरा कर लिया और व्याकरण, व्याससूत्र, गौतम-काणाद-कापिल-पातञ्जलसूत्रों का व्याख्याओं के साथ अनुशीलन किया। उसके बाद वैष्णवतन्त्र-शैवतन्त्र-प्राभाकर-कौमारिल-मौद्गलशास्त्रों का अध्ययन किया और रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क आदि के भाष्यों के सिद्धान्तों का अवगाहन किया।

इसके पश्चात् शास्त्रार्थ के लिए ये काशी से चल पड़े। दक्षिण के तीर्थस्थलों का दर्शन करते हुए विद्यानगर पहुँचे। वहाँ का राजा कृष्णदेव था। उसके दरबार में उस समय मायावादियों और तत्त्व-वादियों में शास्त्रार्थ चल रहा था। मध्वाचार्यमता-नुयायी व्यासतीर्थ नामक संन्यासी विराजमान थे। दोनों पक्षों में छः दिनों तक शास्त्रार्थ चलता रहा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवें दिन वल्लभाचार्य भी शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हुए। इन्होंने मायावादियों का युक्तिपूर्वक खण्डन किया और ब्रह्मवाद की स्थापना की। इनकी विजय से प्रसन्न होकर राजा कृष्णदेव ने इनका कनकाभिषेक किया। राजा ने एक सहस्र सुवर्ण-मुद्रा से भरी सोने की एक थाल इनको समर्पित की। वल्लभाचार्य ने उसमें से केवल सात मुद्रायें ही लीं।

ये विद्यानगर से प्रयाग गये और वहाँ से काशी पहुँचे। काशी से ये बदरिकाश्रम गये। वहाँ से कुरुक्षेत्र और फिर स्थानेश्वर नगर गये। यात्रा पूरी करके ये स्थानेश्वर से काशी लौट आये और मधुमङ्गल नामक ब्राह्मण की कन्या लक्ष्मी से विवाह किया।

अपने मत का प्रचार करने के लिए वल्लभाचार्य काशी से चलकर व्रजमण्डल की यात्रा करते हुए वृन्दावन पहुँचे और भागवत का सप्ताह-पारायण किया। इसके अनन्तर इन्होंने पण्ढरपुर, पुरी, द्वारका आदि की यात्रा की। इस प्रकार इन्होंने तीन बार तीर्थों की यात्रा की और अपनी विद्या तथा निष्ठा से असंख्य जीवों का उपकार किया। वल्लभाचार्य की यात्राएँ 'पृथ्वी-परिक्रमा' और 'दिग्विजय' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्री वल्लभाचार्य को अनेक बार श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। एक दिन ये गोकुल में अपने सदन के बाहर चत्वर पर बैठे हुए थे। उस समय इन्हें सहसा यमुना के तट पर भगवान् कृष्ण के दर्शन हुए। हाथ का सङ्केत पाकर वल्लभाचार्यजी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे गोवर्धन पर्वत तक चले गये। श्रीनाथजी के मन्दिर के समीप पहुँचने पर भगवान् ने कहा कि 'कलियुग में जब तक गङ्गा का प्रवाह रहेगा और गोवर्धनाचल विद्यमान रहेगा, तब तक मैं श्रीनाथ के रूप में पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की सेवा ग्रहण करता रहूँगा। इस समय यह गिरिराज ही मेरा विहार-स्थल है। यहाँ रहते हुए मैं तुम्हारे माध्यम से जीवों का उद्धार करूँगा।'

एक समय जीवों को भगवदभिमुख करने के लिए वल्लभाचार्यजी विचार कर रहे थे। इन्हें चिन्ता-निमग्न देखकर भगवान् कृष्ण इनके सम्मुख प्रकट हुए और इनको ब्रह्म-सम्बन्ध-दीक्षा का रहस्य बताया। वल्लभाचार्यजी की कृपा से कभी-कभी अधिकारी वैष्णवों को भगवद्दर्शन हो जाता था। एक वैष्णव-भक्त के हृदय में भगवद्-दर्शन की उत्कट अभिलाषा थी। वह उन्मत्त की भाँति वृन्दावन की गलियों में घूमता रहता था और श्रीकृष्ण के नाम का उच्चारण करता रहता था। जब वह वल्लभाचार्यजी के सम्मुख आया, तो इन्होंने उसे पञ्चाक्षर मन्त्र का उपदेश दिया, जिससे उसे भगवान् का दर्शन हो गया।

वल्लभाचार्यजी ने वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा के पालन के लिए एक दिन अपनी पत्नी से संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा माँगी, किन्तु इन्हें आज्ञा न मिल सकी। एक बार ये अरैल में अपनी अग्निहोत्रशाला में विराजमान थे। उस समय आश्रम के चारों ओर अग्नि का प्रकोप फैल गया। इस प्रकोप से डरकर इनकी पत्नी ने इनसे घर से बाहर निकल जाने की प्रार्थना की। पत्नी के इस वचन को इन्होंने संन्यास ग्रहण करने की अनुमति के रूप में स्वीकार किया और गङ्गा के तट पर आकर संन्यास ग्रहण किया।

वल्लभाचार्यजी प्रयाग से काशी आये और हनुमान् घाट पर रहते हुए भगवद्भजन करने लगे। एक दिन मध्याह्न के समय ये गङ्गा की धारा में उतरे और भगवान् के चरणारविन्दों का स्मरण करते हुए अन्तर्हित हो गये। एक क्षण के बाद ही भागीरथी के जल से एक अलौकिक ज्योति निकली, जिसके दर्शन से जनसमुदाय कृतकृत्य हो उठा।

वल्लभाचार्यजी के दो पुत्र हुए--गोपीनाथ और विट्ठलनाथ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वल्लभाचार्यजी ने जिन स्थानों पर भागवत का पारायण किया, वे बैठक के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये बैठकें ८४ हैं, जिनमें प्रमुख हैं—काशी, जगन्नाथपुरी, हरिद्वार, सिद्धपुर, विद्यानगर, द्वारका, चरणाद्रि, पण्ढरपुर आदि।

वल्लभाचार्य के ८४ शिष्य प्रमुख हैं। इन्होंने अपने शिष्यों के घरों में श्रीकृष्ण के स्वरूप की स्थापना की।

आचार्यश्री ने ८४ ग्रन्थों की रचना की, जिनमें कुछ ग्रन्थ ये हैं—अणुभाष्य, तत्त्वार्थदीपनिबन्ध, सुबोधिनी-श्रीमद्भागवत पर टीका, पूर्वमीमांसाभाष्य, यमुनाष्टक, मधुराष्टक, सिद्धान्तमुक्तावली, सिद्धान्त-रहस्य, बालबोध, अन्तःकरणप्रबोध, श्रीकृष्णाश्रय, पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, नवरत्नस्तोत्र, विवेकधैर्याश्रय, चतुःश्लोकी, भक्तिवर्धिनी, जलभेद, संन्यासनिर्णय, निरोधलक्षण, सेवाफल, परिवृढाष्टक, पत्रावलम्बन, शिक्षाश्लोक आदि।

इन्होंने शुद्धाद्वैत-सिद्धान्त की स्थापना की। इसके अनुसार शुद्ध ब्रह्म ही अद्वैत तत्त्व है। शुद्ध का तात्पर्य है, माया के सम्बन्ध से रहित—

मायासम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धब्रह्म न मायिकम्॥

—शुद्धाद्वैतमार्तण्ड

वल्लभाचार्यजी के अनुसार जीव भी ब्रह्म है, जगत् भी ब्रह्म है। इन्होंने पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद से तीन मार्गों का उल्लेख किया है—मर्यादामार्ग, प्रवाहमार्ग तथा पुष्टिमार्ग। वेदों तथा शास्त्रों में बताये गये मार्ग को मर्यादामार्ग कहा गया है। प्रवृत्तिमूलक साधनों का सम्पादन करते हुए जीवन-निर्वाह करना प्रवाहमार्ग है। भगवान् के अनुग्रह का मार्ग है—पुष्टिमार्ग। भगवान् ने इच्छामात्र से मन के द्वारा प्रवाहमार्ग की सृष्टि की है, वाणी के द्वारा मर्यादामार्ग की और शरीर के द्वारा पुष्टिमार्ग की—

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः।
वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः॥

—पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद

श्रीहरिराय ने 'श्रीपुष्टिमार्गलक्षणानि' में पुष्टिमार्ग का परिचय दिया है। इसके अनुसार भगवदनुग्रह से ही लौकिक और वैदिक सिद्धि होती है, अन्य साधन से नहीं। जब सभी प्रकार से सभी विषयों का परित्याग हो जाय और देहादि का समर्पण हो जाय, तब वह पुष्टिमार्ग कहा जाता है—

अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विघ्नः पुष्टिमार्गः स कथ्यते॥

• • •

समस्तविषयत्यागः सर्वभावेन यत्र वै।
समर्पणं च देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते॥

भागवत (२।१०) में पुष्टि का अर्थ अनुग्रह बताया गया है—'पोषणं तदनुग्रहः'। भक्ति से भगवान् की प्राप्ति होती है। भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् भक्त पर अनुग्रह करते हैं।

श्री वल्लभाचार्य के अनुसार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, जो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं—

परं ब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं महत्।

श्रीकृष्ण का सदा चिन्तन करना चाहिए। इसीसे मनुष्य का कल्याण होता है। श्रीकृष्ण ही अशक्य को शक्य करनेवाले हैं।

जो ब्रह्मरूप में श्रीकृष्ण का चिन्तन करता है, वह मुक्त हो जाता है—

अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम्।

• • •

तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः।

—सिद्धान्तमुक्तावली

वल्लभाचार्यजी ने शास्त्रीय ग्रन्थों तथा स्तोत्रों की रचना की है। इनका यमुनाष्टक अत्यन्त कमनीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। उसके अधोलिखित श्लोक में कैसा मधुर भाव है—

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न तु यमयातना भवति ते पयःपानतः।
यमोऽपि भगिनीसुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः॥

'हे यमुने, तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम्हारा चरित्र अत्यन्त अद्भुत है। तुम्हारे जल के पान से यमकृत पीड़ा नहीं होती। यम भी अपनी बहन (यमुना यम की बहन हैं) के पुत्रों को कैसे पीड़ित कर सकता है! तुम्हारे सेवन से भक्तों का सदा प्रिय होता है, जैसे हरि के सेवन से गोपियों का।'

इनका 'मधुराष्टक' एक अनूठी कृति है। उसका अधोलिखित श्लोक देखें—

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः
पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

'(श्रीकृष्ण की) वंशी मधुर है, (पदपंकज की) धूलि मधुर है, हाथ मधुर हैं, नृत्य मधुर है, सख्य मधुर है। मधुराधीश श्रीकृष्ण का सब कुछ मधुर है।'

अ० पा०

वासुदेव

वासुदेव केरल के निवासी थे। इनका समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इन्होंने 'वासुदेव-विजय' नामक काव्य की रचना की। यह शास्त्रकाव्य है। इसमें पाणिनीय सूत्रों के अनुसार उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें ७ सर्ग हैं, जिनमें तीन सर्ग प्रकाशित हो चुके हैं। इस काव्य में कृष्ण का चरित निबद्ध हुआ है। एक वासुदेव 'युधिष्ठिर-विजय' के कर्ता हैं। वे भी केरल के निवासी थे। कुछ लोग 'वासुदेव-विजय' के कवि और 'युधिष्ठिर-विजय' के कवि को अभिन्न मानते हैं। वासुदेव नामक एक अन्य कवि भी हुए हैं, जिन्होंने 'गोविन्दचरित', 'संक्षेप-भारत', 'संक्षेपरामायण' आदि की रचना की थी। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनमें से ये वासुदेव कौन थे?

अ० पा०

विजयध्वज

विजयध्वज ने मध्वाचार्य के मत के अनुसार भागवत की टीका लिखी है। इस टीका का नाम 'पद-रत्नावली' है। यह टीका नितान्त सुबोध और प्रामाणिक है।

अ० पा०

विट्ठलनाथ

गोस्वामी विट्ठलनाथ का जन्म काशी के पास चरणाद्रि (चुनार) में सं० १५७२ में हुआ था। इन्होंने प्रयाग-निवासी पण्डित माधवसरस्वती से विद्याध्ययन किया। वेद, मीमांसा, वेदान्त आदि दर्शनों तथा भागवत आदि पुराणों का इन्होंने विशेष अध्ययन किया था। रानी दुर्गावती की प्रार्थना को स्वीकार करके ये मध्यप्रदेश के गढ़ा नामक स्थान में तीन वर्ष तक रहे। जब इन्होंने व्रज को अपना निवास-स्थान बनाया, तो रानी दुर्गावती ने इनके लिए मथुरा में सतघरा बनवा दिया। उसमें विट्ठलनाथ और उनके सातों पुत्र रहते थे।

सम्राट् अकबर और उनके दरबारी बीरबल, टोडरमल आदि विट्ठलनाथजी के मित्र थे। अकबर ने न्यायाधीश का अधिकार दिया था और गोसाइँ की पदवी से अलंकृत किया था। एक समय आगरा में अकबर ने व्रज के विद्वानों की सभा का आयोजन किया, जिसमें विट्ठलनाथ के पाण्डित्य से हमीदाबानू अत्यधिक प्रभावित हुईं। उसने एक आदेश प्रसारित कराया, जिससे गायों को सर्वत्र चरने की सुविधा प्रदान की गयी।

विट्ठलनाथजी ने छः बार द्वारका की यात्रा की। इन्होंने व्रज की अनेक बार परिक्रमा की और कई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थानों पर भागवत का पारायण किया। इन्होंने जिन स्थानों पर भागवत का पारायण किया, वहाँ बैठकें स्थापित हो गयीं। सम्प्रदाय में इनकी २८ बैठकें प्रसिद्ध हैं।

पुष्टिमार्ग के प्रचार में विट्ठलनाथजी का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने छः बार गुजरात की यात्रा की, जिससे वल्लभ-सम्प्रदाय गुजरात में विशेष प्रतिष्ठित हुआ। इन्होंने अपने सातों पुत्रों को भगवान् के सात रूपों की सेवा का अधिकार दिया। उनकी सात गद्दियाँ स्थापित हुईं, जिनका विवरण इस प्रकार है-

पुत्र	स्वरूप	स्थान
१. गिरधर	श्री मथुरेशजी	कोटा
२. गोविन्दराय	श्री विट्ठलनाथजी	नाथद्वारा
३. बालकृष्ण	श्री द्वारिकाधीशजी	काँकरोली
४. गोकुलनाथ	श्री गोकुलनाथजी	गोकुल
५. रघुनाथ	श्री गोकुलचन्द्रमाजी	कामवन
६. यदुनाथ	श्री बालकृष्णजी	सूरत
७. घनश्याम	श्री मदनमोहनजी	कामवन

विट्ठलनाथजी ने यात्राओं के प्रसङ्ग में प्राप्त सारी सम्पत्ति श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित कर दी। उससे राजभोग और श्रृङ्गार से युक्त सेवा-पद्धति का प्रारम्भ हुआ। इनके समय में श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध अनेक उत्सवों का प्रचलन हुआ। इन्होंने ब्रजभाषा के उन्नयन के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया। इनकी प्रेरणा से ब्रजभाषा का साहित्य समृद्ध हुआ। इन्होंने श्री वल्लभाचार्यजी के चार शिष्यों (सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास तथा कृष्णदास) और अपने चार शिष्यों (चतुर्भुजदास, नन्ददास, छीतस्वामी तथा गोविन्दस्वामी) को लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की और श्रीनाथजी की आठ झाँकियों के लिए आठ कीर्तनकारों की नियुक्ति की।

विट्ठलनाथजी त्याग और औदार्य की मूर्ति थे। इनका हृदय भगवान् की भक्ति से आप्लावित था। ये सं० १६४७ की माघ शुक्ला सप्तमी को राजभोग के पश्चात् गोवर्धन की गुफा में लीन हो गये। इनके पुत्र गोवर्धन ने इन्हें रोका, किन्तु वे रोक न सके। उस समय इनके शिष्य, अष्टछाप के कवि श्री चतुर्भुजदास वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने इनकी नित्य-लीलाप्रवेश का चित्रण बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है—

श्री विट्ठलेस से प्रभु
भये न ह्वैहैं।
पाछे सुने न देखे आगे,
वह संग फिर न बनैहैं।
को फिर नन्दराय को बैभव,
ब्रजवासिन बिलसैहैं।
श्रीवल्लभसुत दरसन कारन,
अब सब कोइ पछितैहैं।
'चतुर्भुजदास' आस इतनी,
जो सुमिरत जनम सिरैहैं॥

विट्ठलनाथजी की अधोलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—

१. अणुभाष्य—इन्होंने वल्लभाचार्यकृत अणुभाष्य की पूर्ति की।

२. विद्वन्मण्डन—यह अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। इसमें पूर्वपक्ष प्रस्तुत करके उत्तरपक्ष का उपन्यास किया गया है। इनके ज्येष्ठपुत्र गिरिधरजी पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते थे और ये उसका खण्डन करके उत्तरपक्ष। इस ग्रन्थ में अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से दार्शनिक तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है।

३. श्रृङ्गारमण्डन—इसमें रसात्मक-पद्धति से परब्रह्म के स्वरूप का निरूपण हुआ है।

इनकी अन्य रचनाएँ हैं—वल्लभाष्टक, कृष्ण-प्रेमामृतस्तोत्र, यमुनाष्टपदी, भुजङ्गप्रयाताष्टक, राधाप्रार्थनाचतुःश्लोकी, श्रीगोकुलाष्टक, श्रीस्वामिन्यष्टक, दानलीलाष्टक, प्रेमामृतभाष्य, भागवततत्त्वदीपिका, सिद्धान्तमुक्तावली पर टीका, भक्तिहेतु, भक्तिहंस आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विट्ठलनाथजी की मान्यता है कि ईश्वर की कृपा स्वतन्त्र है। उसके लिए किसी विशेष प्रयास की अपेक्षा नहीं होती। भगवदनुग्रह के सम्बन्ध में कार्य-कारण-सिद्धान्त नहीं लगता। पता नहीं कि भक्ति की प्राप्ति कब हो जायगी। निर्धारित नियमों का पालन न करने पर भी भक्ति की प्राप्ति हो जाती है और भगवदनुग्रह की वर्षा होने लगती है। इनका मत है कि जो कार्य हो चुके हैं या हो रहे हैं अथवा होनेवाले हैं उन सभी के कारणरूप में भगवदिच्छा ही है–'यदा यदा यद् यत्कार्यं भवति भावि अभूद्वा तत्तत्कालोपाधौ क्रमिकेणैव तेन तेन हेतुना तत्तत्कार्यं करिष्य इति ततः पूर्वं भगवदिच्छास्त्यासीद्वेवि मन्तव्यम्।' (द्रष्टव्य—सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी, भाग ४, सं० १९६१, पृ० ३७९) भगवदिच्छा ही सभी कार्यों का परम कारण है। जिस प्रकार भगवदिच्छा सभी कार्यों का कारण है, उसी प्रकार भक्ति की उत्पत्ति का कारण भी भगवदिच्छा ही है।

इन्होंने अत्यन्त सुन्दर श्लोकों की रचना की है। इनके 'स्वामिन्यष्टक' के अधोलिखित श्लोक में भक्ति की पराकाष्ठा देखी जा सकती है—

न मे भूयान् मोक्षो न पुनरमराधीशसदनं
न योगो न ज्ञानं न विषयसुखं दुःखकदनम्।
तदुच्छिष्टं भोज्यं तव पदजलं पेयमपि तद्
रजो मूर्ध्नि स्वामिन्यनुसवनमस्तु प्रतिदिनम्॥

'मुझे मोक्ष नहीं चाहिए और न इन्द्र का भवन ही चाहिए। न योग, न ज्ञान, न विषयसुख (और) न दुःखक्षय की ही इच्छा है। हे स्वामिनि! इच्छा है कि प्रत्येक जन्म में आपकी जूठन खाने को मिले, आपका वह चरणोदक मेरा पेय हो (और) आपके चरण की रज को प्रतिदिन स्नान के पश्चात् शिर पर धारण करूँ।'

विट्ठलनाथजी की भक्ति का कैसा समुज्ज्वल निदर्शन है। राधा की भक्ति के सामने सभी भोग फीके पड़ गये हैं, मोक्ष का आकर्षण समाप्त हो गया है। राधा के चरणों की धूलि से जो आनन्द मिलेगा, वह मोक्ष, स्वर्ग, ज्ञान, योग आदि से नहीं मिल सकता।

'यमुनाष्टपदी' के अधोलिखित श्लोक में गोस्वामीपाद अपने मनोरथ का उन्मीलन करते हैं—

वृन्दावने चारुबृहद्वने
मन्मनोरथं पूरय सूरसूते।
दृग्गोचरः कृष्णविहार एव
स्थितिस्त्वदीये तट एव भूयात्॥

'हे सूर्यपुत्रि यमुने! सुन्दर और विस्तृत वृन्दावन में मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। कृष्ण का विहार ही दृग्गोचर हो और तुम्हारे तट पर ही मेरा वास हो।'

अ० पा०

विद्याधर शास्त्री

श्री विद्याधर शास्त्री का जन्म चूरू (राजस्थान) में १९०१ ई० में गौड़ ब्राह्मण-वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० देवीप्रसाद तथा पितामह का पं० हरनामदत्त शास्त्री था। इनके जीवन पर पितामह का अधिक प्रभाव पड़ा। ये संस्कृत भाषा और विभिन्न शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान् थे। इन्होंने संस्कृत में विपुल साहित्य-रचना की है। उनमें से कुछ काव्य एवं स्तोत्र बहुत ही लोकप्रिय हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—लीलालहरी, पूर्णानन्द, हरिनामामृतम् आदि। इसके साथ ही व्यक्तिगत रूप में ये साधुस्वभाव तथा कृष्ण के अनन्य भक्त थे।

श्या० श० वा०

विद्यावागीश

विद्यावागीशजी असम के निवासी थे। इनके पिता का नाम आचार्य पञ्चानन था। ये असम के राजा प्रमत्तसिंह (१७४५–१७५१ ई०) के मन्त्री गंगाधर बड़फूकन द्वारा समादृत थे। इन्होंने 'श्रीकृष्ण-प्रयाण' नाटक की रचना की है। इसमें कृष्ण के दौत्य की कथा निबद्ध हुई है। गीत असमी भाषा में हैं।

अ० पा०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वनाथ चक्रवर्ती

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती चैतन्य-सम्प्रदाय के मान्य आचार्य थे। इन्होंने रूपगोस्वामिकृत 'उज्ज्वल-नीलमणि' की टीका लिखी तथा भागवत की महत्त्वपूर्ण टीका 'सारार्थदर्शिनी' की रचना की। यह टीका श्लोकों का तात्पर्य प्रकाशित करने में अत्यन्त समर्थ है। श्री विश्वनाथ ने 'स्तवामृत' की भी रचना की, जिसमें श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है।

अ० पा०

वीरराघवाचार्य

श्री वीरराघवाचार्य वत्सगोत्रीय ब्राह्मण और श्री शैलगुरु के पुत्र थे। ये सुदर्शनसूरि के अनुयायी थे। इनका समय १४वीं शताब्दी है। इन्होंने आचार्य रामानुज के मत के अनुसार भागवत के रहस्य को प्रकाशित करने के लिए 'भागवत-चन्द्रिका' नामक टीका लिखी है।

अ० पा०

वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी

चाचा वृन्दावनदास ने श्री वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी के सम्बन्ध में लिखा है—

श्री वृंदावन चंद चंद सौं भये उजागर।
जगे नरन के भाग प्रगट भये जिहि छिन नागर॥

कियौ ग्रन्थ रस सार इष्ट सेवा विधि निरनौं।
कल्पवृक्ष भागौत नन्द-नन्दन फल बरन्यौ॥

लक्षण अभूत चातुर्य हद,
धनि जननी जिन जने नग।
श्री कृष्णदास के सुत सुघर,
पण्डितराज प्रवीन जग॥

—रसिक अनन्य परचावली

ये श्री कृष्णचन्द्र गोस्वामी के पुत्र थे और अपने पिता के समान ही कवि-हृदय, विद्वान् और अनुभवी महात्मा थे। इनका एक ही ग्रन्थ 'अध्वविनिर्णय' मिलता है, जिसमें केवल ५१ श्लोक हैं। यह प्रकाशित हो चुका है। 'अध्वविनिर्णय' में गोस्वामीजी ने अपने एक अन्य ग्रन्थ 'सेवा-विवेक' का भी उल्लेख किया है—

ग्रन्थे सेवा विवेकाख्ये विशिष्य लिखितो मया।
परिचर्य्याप्रकारस्तु गुरुचर्य्या समानुगः॥

—अ० वि०, २६

किन्तु वह अब नहीं मिलता। ऊपर उद्धृत चाचा वृन्दावनदास के छप्पय में भी श्री वृंदावनचंद्रजी द्वारा रचित 'इष्टसेवा-विधि' से सम्बद्ध एक ग्रन्थ का संकेत किया गया है। ऐसा लगता है कि चाचाजी के समय में उक्त ग्रन्थ प्राप्त था।

'हित-मालिका' नामक एक अन्य ग्रंथ भी इनका रचा बताया जाता है, किन्तु वह जिस रूप में प्राप्त है उसको प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। वृन्दावन के एक संग्रहालय में प्रस्तुत लेखक ने दो अन्य ग्रन्थ 'महागूढ-ध्यानम्' और 'रहस्यात्मक-ध्यानम्' देखे हैं, जो श्री वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी-रचित ही बताये जाते हैं, किन्तु इनकी भाषा और रचना-शैली अत्यन्त शिथिल तथा दोषयुक्त है। अतः इनकी भी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

'अध्वविनिर्णय' की रचना-शैली सुन्दर और भाषा प्रसादगुणयुक्त है। इस छोटे-से ग्रंथ में राधावल्लभीय उपासना मार्ग का सम्पूर्ण दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गयी है। उपासना-क्रम में 'भावना' को सर्वोपरि स्थान दिया गया है और राधावल्लभीय प्रकार की भावना का बड़ा मनोरम वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है। विषयासक्त होने के कारण यदि मन भावना में न लगे तो प्रकट सेवा की व्यवस्था दी गई है। धनोपार्जन की कठिनता के कारण या चित्त की कलुषता के कारण, अपनी असमर्थता के कारण या देश-काल की विषमता के कारण यदि प्रकट सेवा न बन सके तो नामस्मरण की शरण लेने का आदेश दिया गया है। विषयावेश के कारण अशान्त बने हुए मन को शान्ति प्रदान करने के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन श्री मद्भागवत बतलाया गया है। गोस्वामीजी ने सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अवतारों के चरित्ररूपी शाखाओंवाले उस श्रीमद्भागवत कल्पवृक्ष की वन्दना की है जिसका फल नन्दनन्दन हैं—

सर्वावतारचरितं बहुशाखं सुरद्रुमम् ।
श्रीमद्भागवतं वन्दे यत्फलं नन्दनन्दनः ॥

—अ० वि०, ३८

ग्रन्थकर्ता की राय में श्रीमद्भागवत को राधावल्लभीय भावना के विरुद्ध नहीं समझना चाहिए। जिस प्रकार कभी दाहिने और कभी बायें मार्ग से चलनेवाली गंगा समुद्र की ओर ही जाती है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत की कथा भी केवल श्रीकृष्णगामिनी है—

सव्यापसव्यतो यान्तीत्यपि गंगाब्धिगा यथा ।
श्रीमद्भागवतीयापि कथैवं कृष्णगामिनी ॥

—अ० वि०, ४३

सब अवतारों की लीलाओं को सुनकर और उनके तात्पर्य को समझकर अवतारी (श्री राधावल्लभलाल) की निकुंज-रसमयी लीलाओं का ही ध्यान करना चाहिये—

श्रुत्वा सर्वावतारेहां तस्यास्तात्पर्यमुद्धरन् ।
नित्यं स्वारसिकीमेव ध्यायेत्तामवतारिणः ॥

—अ० वि०, ४५

श्रीमद्भागवत की वन्दना के साथ गोस्वामीपाद ने उन अनन्य रसिकों को भी नमस्कार किया है जिनको पूर्वसंस्कारों के बल से अथवा महत् पुरुषों के अनुग्रह से अपने इष्ट श्री नित्यविहारी-विहारिणी के रस-चरित्रों के अतिरिक्त अन्य कुछ अच्छा नहीं लगता—

यस्मै संस्कारवशतो यद्वा महदनुग्रहात् ।
न रोचते निजेष्टस्य वृत्तादन्यन्नमामि तम् ॥

—अ० वि०, ४६

'अध्वविनिर्णय' के मंगलाचरण से मालूम होता है कि ग्रन्थकार स्वयं उपर्युक्त अनन्यपथ के ही पथिक थे। मंगलाचरण में उन्होंने उसी शोभाशाली युगलस्वरूप को अपना एकमात्र आश्रय बताया है जिनके नेत्र परस्पर मिले हुए हैं, जिनके वक्ष परस्पर मिले हुए हैं जिनकी बाहुएँ परस्पर मिली हुई हैं, प्रेमाधिक्य के कारण जिनकी वाणी स्खलित हो रही है और शरीर प्रेमांकों से मंडित हैं—

मीलदक्षि मिलद्वक्ष सजब्दाहु स्थगद्वचः ।
कृताङ्कपाली श्रीशाली हर्षिताली श्रये द्वयम् ॥

ल० च० गो०

वेङ्कटनाथ

वैष्णव-भक्तों में श्री वेङ्कटनाथ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य और अनेक काव्यों के रचयिता के रूप में इन्हें महती ख्याति प्राप्त हुई। इनका जन्म १७ सितम्बर १२६८ ई० को दक्षिण भारत में काञ्ची के समीप टुप्पूल नामक स्थान पर हुआ था। बचपन से ही इन्हें श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। इनके मामा आत्रेय रामानुज श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध आचार्य थे। वेङ्कटनाथ ने उनसे शिक्षा प्राप्त की। अनुश्रुति है कि आत्रेय रामानुज इन्हें पाँच वर्ष की अवस्था में ही वात्स्य वरदाचार्य के पास ले गये थे। उस अवस्था में ही इनकी विलक्षण प्रतिभा से प्रभावित होकर वरदाचार्य ने भविष्यवाणी की थी कि ये विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदाय के एक गौरवस्तम्भ सिद्ध होंगे और समस्त मिथ्यादर्शनों का खण्डन करेंगे—

प्रतिष्ठापितवेदान्तः प्रतिक्षिप्तबहिर्मतः ।
भूयास्त्रैविद्यमान्यस्त्वं भूरिकल्याणभाजनम् ॥

लगभग २० वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हो गया। तब तक इन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था। इनका वैवाहिक जीवन बहुत सुखमय था। वर्तमान अर्काट जिले के तिरुवहीन्द्रपुरम नामक स्थान पर बहुत समय तक अध्यात्म-साधना करते हुए इन्होंने श्री हयग्रीव और गरुड़ के प्रसाद से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अद्‌भुत शक्तियाँ प्राप्त कर लीं। वहीं पर इन्होंने देवनायक और हयग्रीव की स्तुतियाँ लिखीं और 'श्रीभाष्य', 'भगवद्‌गीता' तथा विशिष्टाद्वैत के सिद्धान्तों का प्रवचन किया। अपने असाधारण वैदुष्य के कारण इन्हें 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्र' की उपाधि मिली।

श्री वेङ्कटनाथ ने गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी वैराग्य का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत किया। अपनी जीवन-यात्रा के लिए उञ्छवृत्ति का आश्रय लेते हुए ये चावल की भिक्षा माँगते थे। तिरुवहीन्द्रपुरम में लगभग २० वर्ष तक रहने के पश्चात् ये तीर्थाटन के लिए निकले। पहले काञ्ची गये। मार्ग में इन्होंने तिरुकोहिलूर मन्दिर का दर्शन किया और वहीं पर 'देहलीश-स्तुति' की रचना की। काञ्ची में ये कुछ समय के लिए ही रुके। वहीं पर इन्होंने 'वरदराज-पञ्चाशत्' की रचना की। काञ्ची से चलकर ये तिरुपति पहुँचे, जहाँ उन्होंने 'दयाशतक' लिखा। वहाँ से ये श्रीशैल, अहोबिलम आदि होते हुए उत्तर भारत के प्रसिद्ध तीर्थों—मथुरा, वृन्दावन और अयोध्या आदि में भी गये।

तीर्थाटन से काञ्ची लौटते ही इन्हें एक अद्वैतवादी विद्वान् से शास्त्रार्थ करने के निमित्त श्रीरंगम जाना पड़ा। शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करके ये 'वेदान्ताचार्य' के विरुद से विभूषित हुए। अब ये श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य हो गये। इन्होंने श्राभाष्य और गीताभाष्य पर टीकाएँ लिखकर विशिष्टाद्वैत-साहित्य की अभिवृद्धि की। अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की व्याख्या-पद्धति का आश्रय लेकर इन्होंने वैदिक, पाञ्चरात्र और आलवार-परम्पराओं का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया। श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के आचार्यों की व्याख्या-पद्धति को परिपूर्णता प्रदान करने के कारण इन्हें 'वेदान्तदेशिक' की उपाधि मिली।

श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय में मुक्ति के लिए 'प्रपत्ति' का मार्ग स्वीकार किया गया है। परन्तु 'प्रपत्ति' के स्वरूप के विषय में मतभेद है। मुख्यतः इसी मतभेद के आधार पर उस समय श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय दो वर्गों में विभक्त था—वडकलै तथा तेङ्कलै। श्री वेङ्कटनाथ वडकलै-शाखा के पुरस्कर्ता थे और पिल्लै लोकाचार्य तेङ्कलै-शाखा के। बाद में सौम्यजामातृमुनि तेङ्कलै-शाखा के प्रमुख हुए। यद्यपि श्री वेङ्कटनाथ अतीव उदारचेता और साधु-स्वभाव के थे तथा दूसरे वर्ग के प्रमुख से इनका सौमनस्य था, परन्तु दोनों के अनुयायियों में निरन्तर संघर्ष होता रहा। विरोधियों के असंख्य उत्पीड़नों और अपमानों से उबकर इन्हें श्रीरंगम छोड़ना पड़ा और १३१९ ई० के आसपास ये मैसूर की सीमा पर स्थित सत्यमंगलम् स्थान पर चले गए। यहीं उन्होंने 'पादुकासहस्रम्' की रचना की जिससे प्रभावित होकर विद्वत्समाज ने इन्हें 'कवितार्किकसिंह' की उपाधि प्रदान की।

कुछ वर्षों के बाद पुनः किसी अद्वैतवादी आचार्य से शास्त्रार्थ करने के निमित्त श्री वेङ्कटनाथ को श्रीरंगम आना पड़ा। यहीं इन्होंने 'शतदूषणी' की रचना की। इस बार भी ये श्रीरंगम में अधिक समय तक रह न सके। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने दक्षिण भारत के विजय-अभियान के अन्तर्गत १३२६ ई० में श्रीरंगम पर आक्रमण किया और नगर तथा मन्दिर को लूटा। उसकी सेना ने वहाँ भीषण नरसंहार किया। श्री वेङ्कटनाथ किसी प्रकार नगर से निकलकर मैसूर चले गए। ये अपने साथ श्री रंगनाथ की मूर्ति और श्रीभाष्य पर सुदर्शन सूरि की टीका 'श्रुतप्रकाशिका' भी ले आए, जिसे वृद्धावस्था में सुदर्शन सूरि ने इन्हें सौंपा था। मैसूर में तिरुनारायणपुरम नामक स्थान पर कुछ समय तक रहने के बाद १३३५ ई० में ये अपने प्राचीन स्थान सत्यमंगलम आ गए। कहते हैं कि श्री वेङ्कटनाथ के पुराने मित्र विद्यारण्यस्वामी ने इन्हें विजयनगर के राजदरबार में रहने के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु इन्होंने नम्रतापूर्वक उनका निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्यमंगलम में श्री वेङ्कटनाथ ने शान्तिपूर्वक २५ वर्ष बिताये। यहीं पर इन्होंने 'अभीति-स्तव' लिखा। १३६१ ई० में विजयनगर राज्य के सेनापति गोपन ने श्रीरंगम से मुस्लिम आक्रमणकारियों को खदेड़ दिया। यह समाचार पाते ही श्री वेङ्कटनाथ श्रीरंगम लौट आए और श्रीरंगम की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। सौ वर्षों से अधिक जीवित रहकर सुदीर्घ आध्यात्मिक और साहित्यिक साधना के द्वारा इन्होंने श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय की अद्वितीय सेवा की। १३६९ ई० के कार्तिक मास में इनका वैकुण्ठवास हो गया।

श्री वेङ्कटनाथ ने लगभग ११८ ग्रन्थों की रचना की। उनकी रचनाएँ संस्कृत और तमिल दोनों भाषाओं में हैं। इनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं—'यादवाभ्युदय', 'हंससन्देश', 'सुभाषितनीवी' और 'सङ्कल्पसूर्योदय'। इनमें से 'यादवाभ्युदय' एक महाकाव्य है। इसकी रचना 'रघुवंश' की शैली में हुई है। इसकी महत्ता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अप्पय दीक्षित जैसे प्रतिष्ठित आचार्य ने इस पर टीका लिखी। 'हंससन्देश' एक सन्देश-काव्य है। 'सङ्कल्प-सूर्योदय' दस अंकों का प्रतीक नाटक है और 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का दार्शनिक उत्तर। 'सुभाषितनीवी' एक नीति-काव्य है। इनकी दार्शनिक कृतियों में श्रीभाष्य पर 'तत्त्वटीका', 'तत्त्वमुक्ताकलाप', 'अधिकरणसारावलि', 'न्यायपरिशुद्धि', न्यायसिद्धाञ्जन', 'परमतभङ्ग', 'सेश्वरमीमांसा', 'शतदूषणी', 'वादित्रयखण्डन', गीताभाष्य पर 'तात्पर्यचन्द्रिका' तथा 'ईशावास्योपनिषद्भाष्य' आदि प्रमुख हैं।

यादवाभ्युदय के अधोलिखित श्लोक मनोरम हैं—

धुरन्धरः स्वर्गनिकेतनानां
धुर्योत्थितैर्धूसरितो रजोभिः।
रराज मध्ये रथयूथपानां
गोष्ठे पशूनामिव गोपवेषः॥

—यादवाभ्युदय २३।२५

'स्वर्ग में निवास करनेवाले देवों में धुरन्धर, रथ के घोड़ों से उठी हुई धूलि से धूसरित, श्रीकृष्ण पशुओं के गोष्ठ में गोपवेशधारी श्रीकृष्ण की भाँति महारथियों के बीच शोभित हुए।'

श्रीकृष्ण की परिचर्या करनेवाली सुन्दरियों की महिमा की तुलना में योगियों की अणिमादि सिद्धियाँ भी तुच्छ कही गई हैं—

हरिपरिचरणेन तोषितानां
हरिणदृशां विभवं विभावयन्तः।
अपजहसुरवाप्तसंयमाः स्वान्
अपरिमितानणिमादिसिद्धिभेदान्॥

—यादवाभ्युदय, २४।६८

'हरि (श्रीकृष्ण) की परिचर्या से सन्तुष्ट मृगाक्षियों की महिमा की विभावना करते हुए संयम-युक्त योगियों ने अपरिमित अणिमादि सिद्धियों का उपहास किया।'

अ० पा०

वेङ्कटवरद

वेङ्कटवरद का समय १८वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। वे मद्रास-प्रदेश के अर्काट जनपद के निवासी थे। इनके पिता का नाम अप्पलाचार्य था और पितामह का वरदाचार्य। अप्पलाचार्य ने ८० वर्ष की अवस्था तक ग्रन्थों की रचना की। अप्पलाचार्य के पितामह श्रीनिवास थे। श्रीनिवास महान् कवि थे। उनके विषय में प्रसिद्धि है—

त्रय एव हि लोकेऽस्मिन् कवयो बुधसम्मताः।
प्राचेतसमुनिर्व्यासः श्रीनिवासगुरूत्तमः॥

'इस लोक में विद्वत्सम्मत तीन ही कवि हैं—वाल्मीकि, व्यास और श्रीनिवास।'

श्रीनिवास ने 'अम्बुजवल्लीपरिणय', 'अनङ्गमङ्गल', 'वराहचम्पू', 'गीतापरिणय', 'सीतादिव्यचरित', 'भारतचन्द्रिकासारसङ्ग्रह', 'मीमांसासारसङ्ग्रह', श्रीवराहचूर्णिका', 'ध्यानचूर्णिका', 'श्रीरङ्गराजचरित' आदि ग्रन्थों की रचना की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वरदाचार्य ने 'लक्ष्मीनारायणचरित', 'रघुवीर-विजय', 'कमलनयनचर्या', 'रामायणसङ्ग्रह', 'गद्य-रामायण', 'अम्बुज-वल्लीशतक', 'वराहशतक', 'प्राकृतरत्नाकर', 'स्मृतिसार', 'रहस्यरत्न' आदि ग्रन्थों की रचना की है।

वेङ्कटवरद ने 'श्रीकृष्णविजय', 'श्रीनिवासचरित्र', 'श्रीनिवासकुलाब्धिचन्द्रिका', 'श्रीदिव्यदम्पतिवरस्तव', 'श्रीनिवासामृतार्णव' और 'अत्रिकामकल्पवल्ली', की रचना की है।

'श्रीकृष्णविजय' एक डिम है। इसकी कथा इस प्रकार है—अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि मुझे आपकी बहन सुभद्रा से अत्यधिक प्रेम है। कृष्ण ने कहा कि मैं मिला दूँगा। अर्जुन से पुनः मिलकर कृष्ण ने कहा कि आपसे मिलने के लिए बलराम आदि आ रहे हैं। आप संन्यासी का वेष धारण कर लें और पर्वत की गुहा में चले जायँ। कृष्ण और बलराम कुछ समय के बाद आये। बलराम ने कहा कि यह संन्यासी हमारे प्रमदवन में रहे। सेवा करने के लिए सुभद्रा की नियुक्ति हुई। अर्जुन और सुभद्रा का विवाह हुआ।

यद्यपि श्रीकृष्णविजय में अर्जुन और सुभद्रा का विवाह निबद्ध हुआ है, किन्तु श्रीकृष्ण की भूमिका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए श्रीकृष्णविजय नाम रखा गया है।

अ० पा०

वेङ्कटाचार्य

वेङ्कटाचार्य मैसूर के निवासी थे। इनके पिता का नाम अण्णयाचार्य था। ये सुरपुरम् के राजा वेङ्कटनायक (१७७३–१८०२ ई०) के आश्रित थे। इनकी रचनाएँ हैं-'श्रीकृष्णशृङ्गारतरङ्गिणी', 'कृष्ण-भावशतक', 'शृङ्गारलहरी', 'दशावतारस्तोत्र' 'हयग्रीवदण्डकस्तोत्र', 'यतिराजदण्डक', 'गजसूत्रार्थ' और 'झंझामारुत'।

'श्रीकृष्णशृङ्गारतरङ्गिणी' नाटक है। इसमें कृष्ण और सत्यभामा की कथा निबद्ध है।

अ० पा०

वेङ्कटाध्वरि

वेङ्कटाध्वरि का समय सत्रहवीं शताब्दी है। ये रघुनाथ और सीताम्बा के पुत्र और रामानुज के शिष्य प्रणतार्तिहर के वंशज थे। वेदान्तदेशिक के गुरु वादिहंसाम्बुद इनके पूर्वज थे। वेङ्कटाध्वरि का जन्म काञ्ची के पास हुआ था। ये कुछ समय के लिए प्रलयकावेरी-दरबार के प्रधान पण्डित थे। इनकी मुख्य रचना 'विश्वगुणादर्शचम्पू' है। इस ग्रन्थ पर कुरविराम और प्रभाकर की टीकाएँ हैं। इन्होंने 'लक्ष्मीसहस्र' और 'श्रीनिवाससहस्र' की भी रचना की, जिनमें इनकी अपूर्व शब्द-योजना और काव्य-कल्पना के दर्शन होते हैं।

'उत्तरचरित' में सीता के निर्वासन और कुश तथा लव की उत्पत्ति का वर्णन है। 'यादवराघवीय' में रामायण और भागवत की कथा एक साथ दी गयी है। 'वरदाभ्युदय' में काञ्ची के देवराजमन्दिर के गौरव का वर्णन किया गया है। 'श्रवणानन्द' में विभिन्न विषयों से सम्बद्ध श्लोक हैं। 'सुभाषित-कौस्तुभ' के पाँच अध्यायों में सुभाषितसङ्ग्रह है। 'प्रद्युम्नानन्द' छः अंकों का एक नाटक है, जिसमें शम्बर की कन्या के साथ प्रद्युम्न के विवाह का वर्णन किया गया है। 'शृङ्गारदीपिका' भाण है। 'सुभद्रा-परिणय' नाटक है। इन रचनाओं से ज्ञात होता है कि वेङ्कटाध्वरि एक प्रतिभाशाली कवि थे।

अ० पा०

वेल्लङ्कोण्डरामराय कवीन्द्र

वेल्लङ्कोण्डरामराय कवीन्द्र आन्ध्रप्रदेश के प्रतिष्ठित कवि थे। ये आन्ध्र के गुन्टूर नामक जिले के पमिडिपाडु नामक स्थान में १८७५ ई० में उत्पन्न हुए थे। इनका कुल परंपरया विशिष्टाद्वैत वेदान्त का अनुयायी था। जब इनकी अवस्था छः वर्ष की थी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। ये बाल्यावस्था से ही हयग्रीव शालिग्राम की पूजा करते थे। इन्होंने रमावल्लभ नामक मन्दिर में उनकी प्रतिष्ठा की। रामराय ने सीतारमय्या से संस्कृत का अध्ययन किया। कहा जाता है कि भगवान् हयग्रीव ने स्वयं प्रकट होकर रामराय को हयग्रीव मन्त्र की दीक्षा दी थी। कुछ दिनों के बाद इन्होंने स्वतः संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। इनकी प्रतिभा इतनी विलक्षण थी कि संस्कृत के उत्कृष्ट ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन करते थे और तत्काल छात्रों को पढ़ा देते थे। सुब्रह्मण्य शास्त्री और रामशास्त्री ने इन्हें क्रमशः व्याकरण और तर्कशास्त्र पढ़ाया। इन्होंने स्वल्प काल में ही व्याकरण में प्रौढ़ता प्राप्त करके 'अष्टाध्यायी' की टीका लिख दी। अपने गुरुओं के निर्देश पर इन्होंने चिदम्बर कवि के 'भागवतचम्पू' पर मन्थर नामक टीका लिखी। वेदान्त के अध्ययन में इनकी रुचि बढ़ी और इन्होंने गीता के 'शाङ्करभाष्य' और 'पञ्चदशी' का अध्ययन किया। रामराय ने अनेक ग्रन्थों की मौलिक व्याख्या की। इन्होंने पञ्चदशी के अधोलिखित श्लोक की ऐसी व्याख्या की, जिससे आन्ध्रप्रदेश के प्रसिद्ध अद्वैत वेदान्ती नरसिंह शास्त्री ने इनकी बड़ी प्रशंसा की—

विकल्पो निर्विकल्पस्य सविकल्पस्य वा भवेत्।
आद्ये व्याहतिरन्यत्रानवस्थात्माश्रयादयः॥

—पञ्चदशी, १।५०

ये गीता पर प्रवचन किया करते थे। इनके प्रवचनों का संकलन 'भगवद्गीताभाष्यार्कप्रकाशिका' के नाम से प्रकाशित हुआ। ये शङ्कर के अद्वैत वेदान्त के इतने प्रशंसक थे कि इनके कई मित्रों को बड़ा आश्चर्य होता था। गुरुओं के द्वारा दीक्षा लेने के लिए कहने पर इन्होंने अष्टाक्षर मन्त्र की दीक्षा लेने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी, किन्तु तप्तचक्राङ्कन की मुद्रा को अपने शरीर पर धारण करना स्वीकार नहीं किया तथा श्रुति और स्मृति से प्रमाण दिया कि द्विज के लिए यह निर्देश कहीं नहीं मिलता—

वेदैश्च स्मृतितः पुराणनिवहैस्तत्तप्तमुद्राङ्कनं
वेदाध्वानुगतद्विजातिविततेः पापावहं कीर्तितम्।
शूद्राणां ननु धर्म एष गदितो मा वा न मे रोचते
ब्रूह्यस्तीह यदि श्रुतिस्मृतिरपि श्रीमन्निति प्रोचिवान्॥

—रामरायकवीन्द्रजीवितोदन्त, श्लोक ७०

रामराय कवीन्द्र ने योग का भी अध्ययन किया था। ये अनेक आसनों का अभ्यास किया करते थे। इन्होंने विजयवाड़ा के लक्ष्मी-नरसिंह मन्दिर के सामने तपस्या की और अनेक मन्त्रों का लाखों की संख्या में जप भी किया। इन्होंने आसनों के द्वारा बहुत से रोगों को दूर किया। आन्ध्र में उन दिनों तिरुपति-वेङ्कट-ये यमज कवि अत्यधिक प्रसिद्ध थे। वे तत्काल काव्य का निर्माण कर देते थे। जब वे रामराय के पास आये, तब लोगों ने रामराय से समस्या रखने के लिए प्रार्थना की। बहुत संकोचवश रामराय ने समस्या रखी—'पश्यापश्यौ न पश्यतः'। उन दोनों कवियों ने कहा कि इसमें व्याकरण की अशुद्धि है। इस पर रामराय ने प्रमाण देकर उसे शुद्ध बताया और समस्या की पूर्ति अठारह प्रकार से की। बाद में यमज कवियों ने इनकी प्रतिभा की अत्यधिक प्रशंसा की। इनकी काव्य-निर्माण-प्रतिभा अद्भुत थी और अनेक शास्त्रों का ज्ञान भी विलक्षण था। टीकाओं से इनके अद्भुत पाण्डित्य का प्रकाशन होता है। इनकी मृत्यु ३९ वर्ष की अवस्था में १९१४ ई० में हुई।

इन्होंने लगभग ५० ग्रन्थों की रचना की है। उनमें प्रमुख ये हैं—

१. कृष्णलीलातरङ्गिणी—यह एक काव्य है। इसमें कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन और गोपियों के साथ उनकी क्रीड़ा का वर्णन है। इन्होंने समासों तथा अलङ्कारों का विपुल प्रयोग किया है। यह रचना आठ तरंगों में विभक्त है। अनुप्रास की योजना कवि का विशिष्ट गुण है। इन्होंने तेलुगु की शैली के अनुकरण पर अनुप्रास के प्रकारों का प्रयोग किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. समुद्रमंथनचंम्पू—समुद्रमंथन की कथा को चम्पू में निबद्ध किया गया है। कवि ने इसकी 'हृदयानन्दिका' नामक टीका की रचना की है।

३. रुक्मिणीपरिणयचम्पू—भागवत के आधार पर रुक्मिणी और कृष्ण के परिणय का वर्णन है। उसके अष्टमविलास में विवाहमङ्गलाष्टक की योजना की गई है। चित्रबन्ध तथा यतिप्रास का भी प्रयोग किया गया है। इसकी शैली गौडीरीति है और भाषा नारिकेलपाकोपम।

४. मन्थर—यह चिदम्बर कवि-कृत 'भागवतचम्पू' की टीका है। यह टीका अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण है। अनेक अर्थों से सम्पृक्त इस टीका में कई आकर-ग्रन्थों से प्रमाण दिये गये हैं।

५. हयग्रीवशतक—इसके प्रत्येक श्लोक का प्रारम्भ 'ह' से होता है।

६. विष्णुसहस्रनाम—इसमें प्रत्येक नाम का प्रारम्भिक अक्षर 'वि' है।

७. 'वेदान्तसङ्ग्रह' और ८. 'अद्वैतमाला' प्रकरण-ग्रन्थ हैं।

इनकी रचनाओं में अद्वैतवेदान्त, न्यायशास्त्र तथा रामानुज-दर्शन की महत्त्वपूर्ण और गम्भीर बातें मिलती हैं।

यहाँ 'कृष्णलीलातरङ्गिणी' से दो श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

त्राताखिलस्य जगतो हरिरेव तातः
तातेति नन्दमुदनन्दयदालपन् सः।
यो मायया शिशुरभूत् पुरुषः पुराणः
किं तस्य तातमतिरस्तु न नन्दगोपे॥

—३।७२

'हरि सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हैं अतः वस्तुतः तात हैं, किन्तु हरि ने ही नन्द को तात कहकर आनन्दित किया। जो पुराणपुरुष माया से ही शिशुरूप में उत्पन्न हुए, क्या उनकी नन्दगोप में तातबुद्धि न होगी?'

हा कृष्ण हा प्रणतरक्षणबद्धदोक्ष
दुःशासने स्पृशति मां किमुपेक्षसे त्वम्।
श्रुत्वेति दीनवचनं द्रुपदात्मजायाः
प्रोवाच योऽक्षयमिति प्रणतोऽस्मि तस्मै॥

'हे कृष्ण, हे प्रणतों की रक्षा का व्रत लेनेवाले, दुःशासन के स्पर्श करने पर मेरी क्यों उपेक्षा कर रहे हो? द्रौपदी के इस दीन वचन को सुनकर जिन्होंने कभी न टलनेवाला रक्षा का वचन दिया, उन कृष्ण के प्रति प्रणत हूँ।'

अ० पा०

वैद्यनाथ

वैद्यनाथ का जन्म तत्सत्-कुल में वाराणसी में हुआ था। इन्होंने १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 'श्रीकृष्ण-लीला नाटिका' की रचना की थी। इसमें राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन हुआ है।

अ० पा०

व्रजभूषणशरणदेव

महन्त श्री व्रजभूषणशरणदेवजी का श्री निम्बार्क-साहित्य-प्रचारकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा 'स्वधर्मामृत-सिंधु', 'श्रीविष्णुसहस्रनाम-भाष्य', 'मुण्डकोपनिषद्-भाष्य' आदि कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। ये परम विद्वान् थे। सांप्रदायिक साहित्य-ग्रंथों से आपका बहुत प्रेम था। इन्होंने चौदह वर्ष की अल्पायु में ही उखड़ा के महंत श्री राम-नारायणशरणदेव से दीक्षा प्राप्त की थी। दीक्षा-प्राप्ति के दो माह पश्चात् ही ये विद्याध्ययन-हेतु काशी चले गये। अध्ययन-हेतु ये वहाँ से वृन्दावन पहुँचे। इन स्थानों पर आपने व्याकरण, वेदान्त एवं न्यायशास्त्र का अध्ययन किया। अध्ययन के पश्चात् आप वर्द्धमान के राजगंज स्थान में जाकर रहने लगे। वहाँ के महंत श्री मधुसूदनशरणदेव इनके पाण्डित्य से बहुत प्रभावित हुए तथा सम्मानपूर्वक अपने यहाँ रखा। इतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही नहीं, उन्होंने आपको अपने स्थान का अधिकारी भी नियुक्त कर दिया। अपने अधिकार-पद का आपने बड़ी कुशलतापूर्वक निर्वाह किया। वि० सं० १९२८ में आपके गुरुदेव उखड़ा के महन्तश्री का देहावसान हो जाने पर सर्वसम्मति से आपको ही वहाँ के महन्त-पद पर अभिषिक्त किया गया। इस अवसर पर कई नगरों से संत-महंत आमंत्रित किये गये थे।

महंत श्री व्रजभूषणशरणदेव श्री ठाकुरजी के भोगराग-सेवा एवं अतिथि-अभ्यागत संत-सेवा में विशेष रुचि रखते थे। वैष्णवजनों का जमघट आपके स्थान पर लगा ही रहता था। आप वस्त्र और धन से सभी की यथाशक्ति सेवा करते थे। किसी दुःखी का दुःख देखकर आप अश्रु-प्रवाह करने लगते थे। आगन्तुक जन-समुदाय आपके दर्शन से आनन्दित हो उठता था। आप वार्षिक उत्सव जैसे झूलनोत्सव, जन्माष्टमी, अन्नकूट-महोत्सव, डोलोत्सव आदि बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाते थे। श्री ठाकुरजी को मन्दिर के भीतर बनाये गये पदार्थों का ही भोग आप लगाते थे। बाहर के पदार्थों का भोग ठाकुरजी के लिए स्वीकार नहीं करते थे। मंदिर के सभी कर्मचारी मंदिर के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करते थे। बंगाल प्रान्तान्तर्गत वर्द्धमान नगर श्री ठाकुरजी एवं संत-सेवा के लिए प्रसिद्ध रहा है। श्री महंतजी महाराज का इस दृष्टि से सर्वोपरि सेवाभाव रहा, जिसकी प्रशंसा आज भी लोग करते हैं। ये साम्प्रदायिक ग्रन्थों का प्रकाशन करवाकर श्रद्धालु जनों में वितरित करते रहते थे। इस प्रकार भगवत्-भागवत के प्रीत्यर्थ कार्य करते हुए आपका देहावसान हुआ।

प्रे० ना० श्री०

व्रजराजशरणदेवाचार्य

श्री व्रजराजशरणदेवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्कशरणदेवजी के पश्चात् निम्बार्काचार्य-पीठ पर विराजमान हुए थे। यह भी अपने समय के प्रतिभा-सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके द्वारा रचित अनेक संस्कृत के श्लोक प्राप्त होते हैं। आप प्रभु के स्मरण को ही सब व्याधियों का विनाश करनेवाला मानते थे। चारों ओर से निराश होकर मनुष्य आपकी शरण में आया करते थे एवं इनके स्पर्शमात्र से ही वे कृतार्थ हो जाया करते थे।

आपका पाटोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला ५ (पञ्चमी) को मनाया जाता है। आपकी चरण-पादुकाएँ श्री निम्बार्काचार्य-पीठ (सलेमाबाद) में आज भी विद्यमान हैं।

आप बड़े ही तेजस्वी महात्मा थे। एक बार एक वैश्य आपके पास आया। सम्पत्तिशाली होते हुए भी उसका हृदय बड़ा ही अशान्त था। कारण कि उसके हृदय में हमेशा अशुभ आशङ्काएँ पैदा होती रहती थीं। अनिष्ट की आशङ्का के कारण वह निरन्तर त्रस्त रहता था। परिवार के किसी भी सदस्य के शिर में यदि दर्द भी होता तो उसको विश्वास हो जाता कि वह अब न बचेगा। घर से बाहर निकलता तो उसे दुर्घटनाओं की आशंका आ घेरती। दूकान बंद करके आता तो चोरी की संभावना बनी रहती। इस प्रकार वह चारों ओर से अनिष्ट की संभावनाओं से घिरा हुआ था और दुःस्वप्न एवं अपशकुन उसे और भी त्रस्त किये दे रहे थे।

अनेक डॉक्टरों से इलाज करवाने पर भी उसे कोई लाभ न हुआ, वरन् धन का अपव्यय ही हुआ। कुछ ग्रहदशा आदि बतानेवाले ढोंगी ज्योतिषियों ने उसकी हालत और भी बिगाड़ दी। इन सब उपायों से उसका रोग दूर होना तो दूर और भी निराशा बढ़ने लगी। अन्ततः वह सब तरफ से निराश होकर आचार्यश्री के चरणों में आया।

आचार्यश्री ने उसकी करुण दशा को देखकर कहा, "क्या तुम धन से ही सब कुछ खरीदना चाहते हो? तुम दूसरों से कार्य करवाकर फल खुद प्राप्त करना चाहते हो? ऐसा सम्भव नहीं। इसके लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हें खुद कार्य करना होगा। ईश्वर के निमित्त यदि तुम धन अर्पण करोगे तो धन की, तन दोगे तो स्वास्थ्य की और मन दोगे तो शान्ति की प्राप्ति होगी।" वणिक् ने कहा, "प्रभो! आप जैसा आदेश देंगे, मैं वैसा ही करूँगा।" तब आचार्यश्री ने कहा कि "कल से ही आप भगवद्-सेवा शुरू करें। राधा-माधव के मन्दिर के सामने सोहनी सेवा करके भगवन्नाम की एक माला का नित्यप्रति जाप करें।"

वैश्य ने उसी दिन से प्रभु-सेवा और भजन का व्रत धारण कर लिया। परिणामस्वरूप उसके हृदय की समस्त आशंकाओं एवं अशान्ति का विनाश हो गया।

आप वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित थे। बहुत से विद्वान् आपके पास अपनी शंकाओं के समाधानार्थ आया करते थे। ये उनकी शंकाओं एवं दार्शनिक उलझनों का अनायास ही समाधान कर दिया करते थे। आपको ब्रह्म, जीव और जगत्—इन तीनों तत्त्वों की अनन्त और अनादि सत्ता का प्रतिपादन करने में अद्भुत कुशलता प्राप्त थी। आप इन तीनों का प्रतिपादन इतनी कुशलता से करते थे कि निम्बार्क-सम्प्रदाय का समस्त दार्शनिक सिद्धान्त हस्तामलकवत् प्रतीत होता था। आपके द्वारा रचित 'श्रीसर्वेश्वर-प्रशस्त पद्यावलि' नामक स्तोत्र बड़ा ही सुललित है जिसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है—

श्रीमच्छालं पीतफालं सुमालं,
तेजोजालं दीप्तभालं सतालम्।
गोत्रापालं कंसकालं सुचालं,
गोपीलालं नन्दबालं नमामि॥

सुखसागरनागरनन्दसुतं,
सकलेश्वरमीप्सितदं सततम्।
श्रुतिसंघदुरूहगुणौघयुतं,
प्रणमामि यशोमतिसंगगतम्॥

मणिनूपुरशोभितपादयुगं,
वलयांकितसुन्दरपाणियुगम्।
मणिराजिविराजितबाहुयुगं,
प्रणमामि नटाकृतिनेत्रयुगम्॥

व्रजयोषिदनंगसुखाब्धिविधुं,
विधुकोटिसमप्रभवक्त्रविधुम्।
विधुशेखरहृत्कुमुदस्य विधुं,
प्रणमामि किशोरविमुग्धविधुम्॥

वनिताननचुम्बनदानमनः,
स्मितशंसितगोपवधूवदनः।
चलचैलतडिद्युतिनीलघनः,
हृदि मे वसतान्मुरलीवदनः॥

जगदुद्भवपालननाशकरं,
करुणाब्धिगुणत्रयरूपधरम्।
भजनप्रिय साधुजनैकगतिं,
प्रणमामि मदीयमनोवसतिम्॥

धृतवंशिनुता वनमालिसता,
व्रजराज सराधहरिं भजता।
नतिपद्यसुमौक्तिकपंक्तिरियं,
रचिता व्रजराज मुदे भवतात्॥

प्रे० ना० श्री०

शङ्करकवि

शङ्करकवि केरल के निवासी थे। ये कोल के राजा केरलवर्मा के आश्रित थे। केरलवर्मा का समय पन्द्रहवीं शताब्दी है। अतः शङ्करकवि का समय १५ वीं शताब्दी निश्चित है। केरलवर्मा ने शङ्करकवि से श्रीकृष्ण के विषय में काव्य लिखने के लिए कहा था। इन्होंने 'श्रीकृष्ण-विजय' की रचना की, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसमें १२ सर्ग हैं। यह काव्य भागवत-पुराण की कथा का आश्रय लेकर लिखा गया है।

शङ्कर के गुरु राघव थे, जो केरलवर्मा के सभासद् थे। 'मलयालम-काव्य-चन्द्रोत्सवम्' के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुसार राघव और शङ्कर–दोनों कवि पल्लिक्कुन्नु के निवासी थे। शङ्कर के कुलदेवता शिव थे, जो कण्व-पुरम् में प्रतिष्ठित थे। ये भगवती के भक्त थे, जिनकी कृपा से इन्हें काव्य-रचना की शक्ति मिली थी। केरल में यह मान्यता है कि शङ्कर का अपने बड़े भाई से झगड़ा हो गया, जिसके कारण ये दूसरे स्थान पर रहने के लिए चले गये। कालान्तर में वह स्थान शङ्करनन्दी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यद्यपि शङ्कर ने अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है, किन्तु इनकी रचना से इनके सम्बन्ध में कुछ सङ्केत मिलता है। ये अत्यन्त विनम्र थे, इसीलिए इन्होंने लिखा है कि 'मेरी कविता में परिपक्वता नहीं है। मेरी बुद्धि का अंकुर मेरे गुरु राघव की कृपा के जल से प्रवृद्ध हुआ है।' शङ्कर को अपने जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए। इसके प्रमाण इनकी रचना में मिलते हैं।

इनकी भाषा सरल है। इन्होंने इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों का प्रयोग किया है। भाषा की सरलता का उदाहरण अधोलिखित है—

त्वामेव दीनः शरणं प्रपद्ये
का मे गतिस्त्वच्चरणं विहाय।
क एव रक्षां कलयेत लोके
चन्द्रं विना नाथ चकोरिकायाः॥

—श्रीकृष्णविजय, १।६३

उद्धव गोपियों को श्रीकृष्ण का सन्देश देते हैं। गोपियों के उत्तर बड़े हृदयस्पर्शी होते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि मथुरा नगरी की स्त्रियों तथा व्रजवनिताओं का एक साथ ही सौभाग्य तथा दुर्भाग्य कैसे उपस्थित हो गया–

मथुरानगरीनितम्बिनीनां
पुनरासां व्रजयोषितामकस्मात्।
युगपत्कथमेवमाविरासीद्
गुरु भाग्यं बत तद्विपर्ययश्च॥

—श्रीकृष्णविजय, ८।६३

काव्य में प्रसाद और माधुर्य विद्यमान है। लालित्य, सौकुमार्य और गाम्भीर्य के कारण यह काव्य अत्यन्त आकर्षक हो गया है। यद्यपि शङ्कर वैदर्भी रीति के कवि हैं, किन्तु इनकी रचना में पाञ्चाली रीति भी मिलती है।

शङ्कर की रचना में शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ मिलती हैं। ये कुटुम्बिनी के स्थान पर कुडुम्बिनी, कुड्मल के स्थान पर कुग्मल, मरकत के स्थान पर मरतक और रुक्मी के स्थान पर रुग्मी पद का प्रयोग करते हैं—

(१)

अथ गर्भं गते देवे वसुदेवकुडुम्बिनी। —२।१

(२)

मुक्तानि यानि हरिणा करकुग्मलेन। —६।२७

(३)

मरतकमणिनीलं मञ्जुलापाङ्गलीलम्। —५।५१

(४)

रुग्मी तु धन्यां नरपालकन्याम्। —६।५५

शङ्कर की कविता पर मलयालम का प्रभाव है। उद्दण्डशास्त्री अपने कोकिल-सन्देश में इनकी प्रशंसा करते हैं—

कोलानेलावनसुरभिलान् याहि यत्र प्रथन्ते
वेलातीतप्रथितयशसः शङ्कराद्याः कवीन्द्राः।

'श्रीकृष्णविजय' के अधोलिखित श्लोक में श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन प्राप्त होता है—

मन्दं च यानं मधुरं च हासं
रूपं च तापिच्छसहोदरं ते।
सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य तदीयमन्यत्
किञ्चिन्न सञ्चुम्बति हन्त चेतः॥

—६।६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उनकी मन्द गति, मधुर हास और तमाल की भाँति रूप का बार-बार ध्यान करके मेरा चित्त अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं कर पा रहा है।'

गोपियाँ कहती हैं कि हम लोग तो श्रीकृष्ण के वियोग में खिन्न हैं, उन कमलनयन श्रीकृष्ण की तो कोई हानि नहीं है। चन्द्रमा के विरह में कुमुदिनियाँ विषादयुक्त हो जाती हैं, तो क्या चन्द्रमा दुःखित होता है—

वयमेव तु तद्वियोगखिन्नाः
कमलाक्षस्य न तस्य कापि हानिः।
विरहे शशिनो विषादपूर्णाः
कुमुदिन्यः कुरुते स किं स्म खेदम्॥

—८।६१
अ० पा०

शङ्कराचार्य

अद्वैतवाद के प्रवर्तक प्रसिद्ध शङ्कराचार्य से भिन्न किसी शङ्कराचार्य द्वारा निर्मित 'गोविन्दाष्टक' तथा 'कृष्णाष्टक' नामक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। उनमें उनकी कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ भक्ति व्यंजित होती है। इनके जीवन-सम्बन्धी कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। नीचे उक्त दोनों रचनाओं से एक-एक श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं—

वृन्दावनभुवि वृन्दारकगण वृन्दाराध्यं वन्देऽहं
कुन्दाभामलमन्दस्मेरसुधानन्दं सुहृदानन्दम्।
वन्द्याशेषमहामुनिमानसवन्द्यानन्दपदद्वन्द्वं
वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्॥

—गोविन्दाष्टक

कदम्बसूनुकुण्डलं सुचारुगण्डमण्डलं
व्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम्।
यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम्॥

—कृष्णाष्टक
अ० पा०

शिव

शिव यमुना-तट पर स्थित रानेर नगर के निवासी थे—

वाणी यस्य मुखे च कर्णसुखदा देवीप्रसादोद्गता
रानेरं नगरं दिनेशतनयातीर्थं यथा जाह्नवी।
तेनैवाद्य शिवेन साधुकविना काव्यप्रियाणां कृते
किं जानासि न राजनीतिनिपुणज्ञानं कृतं नाटकम्॥

रानेर नगर संभवतः व्रजप्रदेश में रहा होगा। शिव का समय १८वीं शताब्दी है। इन्होंने 'विवेक-चन्द्रोदय' की रचना १७६३ ई० में की थी।

'विवेकचन्द्रोदय' की कथा इस प्रकार है—'वृद्ध-श्रवा रुक्मिणी का पत्र लेकर द्वारका जाता है। वहाँ उसे उद्धव मिलते हैं। उद्धव कृष्ण के अनुरूप कन्या ढूँढ़ने के लिए घूम रहे हैं। उद्धव की दृष्टि में रुक्मिणी कृष्ण के योग्य ठहरती है। वे रुक्मिणी का सन्देश कृष्ण को देना चाहते हैं। कृष्ण के मिलने पर उद्धव ने बताया कि इन्द्र विन्ध्यवासिनी देवी की पूजा करने के लिए आये थे। जब वे दर्शन करके लौट रहे थे, तब इन्द्र की सभा के सामने दुर्विनय ने धर्म से कहा कि मुझे अधर्म ने भेजा है और मैं कुछ पूछना चाहता हूँ। धर्म ने अपने मन्त्री विवेक को निर्देश दिया कि देखो, क्या बात है? विवेक के पूछने पर दुर्विनय ने बताया कि मैं आपके भाई अविवेक का पुत्र हूँ। अधर्म का यह पत्र है, इसे पढ़ें। पत्र में लिखा था कि धर्म मिथ्या है, अतः वह राज्य छोड़कर चला जाय। विवेक ने अपने पुत्र विनय से कहा कि तुम दुर्विनय को समझाओ। विनय ने बताया कि जिसका पराक्रम देशकालोचित होता है, जो विना अपराध के शत्रु का वध नहीं करता, शत्रुओं के विनाश से जिसे नित्य फल मिलता है, अपनी स्त्री में जिसकी अनुरक्ति है, वह राजा राजाओं का राजा है—

सदा देशकालोचितं यस्य शौर्यं
विनैवापराधं न शत्रोर्वधोऽपि।
फलेच्छा रिपुध्वंसतो यस्य नित्यं
रतिः स्वस्त्रियां राजराजः स राजा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसने पुनः कहा कि 'जहाँ धर्म राजा है, विवेक मन्त्री है, श्रद्धा रानी है, निर्णय राजपुत्र है, सन्तोष कोष है, संयम आदि सैनिक हैं, वहाँ काम के विनाश से मोक्षरूपी साम्राज्य की प्राप्ति होती है—

राजा धर्मो यत्र मन्त्री विवेकः
श्रद्धा राज्ञी निर्णयो राजपुत्रः।
कोषस्तोषः सैनिकाः संयमाद्याः
कामध्वंसान्मोक्षसाम्राज्यलब्धिः॥

उद्धव ने कृष्ण को बताया कि रुक्मिणी आप पर अनुरक्त है, किन्तु रुक्मिणी का भाई रुक्म उसका विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता है। रुक्मिणी का पत्र लेकर वृद्धश्रवा आया है।

कृष्ण वृद्धश्रवा के साथ कुण्डिनपुर जाते हैं। वृद्धश्रवा ने बताया कि रुक्मिणी अभी पूजा करने के लिए आयेगी। जब रुक्मिणी पूजा करके लौट रही थी, उसी समय कृष्ण ने उसे अपने रथ पर बैठा लिया। वे रुक्मिणी के साथ द्वारका पहुँचे। वहाँ दोनों का विवाह हुआ।'

नाटक की मुख्य कथा कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह है। विवेकचन्द्रोदय नाम प्रतीकात्मक है। मुख्य कथा के साथ विवेक आदि की योजना के द्वारा कवि बताना चाहता है कि कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह एक धार्मिक अनुष्ठान था।

अ० पा०

शुकदेव

शुकदेव निम्बार्कमतानुयायी थे। इन्होंने भागवत की टीका लिखी, जिसका नाम 'सिद्धान्तप्रदीप' है।

अ० पा०

शेषकृष्ण

शेषकृष्ण शेषनृसिंह के पुत्र थे। नृसिंह सोलहवीं शताब्दी में गोदावरी-प्रदेश से आकर काशी में बस गये थे। वहाँ इन्हें काशी के राजा गोविन्द का आश्रय मिला। गोविन्द की प्रेरणा से इन्होंने 'गोविन्दार्णव' की रचना की। नृसिंह व्याकरण के विशिष्ट विद्वान् थे। उनसे काशी में वैयाकरणों की जो परम्परा चली, उसमें भट्टोजि, नागोजि आदि विद्वान् हुए।

शेषकृष्ण का समय १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। इनके भाई चिन्तामणि थे, जिन्होंने 'रुक्मिणी-हरण' तथा 'रसमञ्जरी-परिमल' नामक ग्रन्थों की रचना की। शेषकृष्ण काशिराज गोवर्धनधारी के आश्रित थे। गोवर्धनधारी नाना कलाओंवाली विदग्धगोष्ठियों के अधिष्ठाता थे—

नानाकलाकुलगृहं स विदग्धगोष्ठी-
मेकोऽधितिष्ठति गुरुर्गिरिधारिनामा।

शेषकृष्ण के दो पुत्र थे—वीरेश्वर तथा नारायण। वीरेश्वर पण्डितराज जगन्नाथ, भट्टोजिदीक्षित और अन्नम्भट्ट के गुरु थे। शेषकृष्ण ने कंसवध नामक नाटक की रचना की है—

पृथ्वीमण्डलमौलिमण्डनमणिः श्रीमन्नृसिंहात्मजः
कृत्वा कृष्णकविः कुतूहलवशादस्मासु यन्न्यक्षिपत्।
नाट्यं कंसवधाभिधानमधुना तस्य प्रयोगोद्यमं
विद्वद्राजसमाजमानसमहानन्दाय विन्दामहे॥

—कंसवध १।१६

'कंसवध' के अतिरिक्त इन्होंने 'मुरारिविजय', 'मुक्ताचरित', 'सत्यभामापरिणय', 'पारिजातहरण', उषापरिणय', 'सत्यभामाविलास' तथा 'क्रियागोप-नरामायण', की रचना की।

कंसवध महत्त्वपूर्ण नाटक है। इसमें कृष्ण द्वारा कंस के वध की कथा निबद्ध हुई है। कृष्ण कंस का वध कर अपने माता-पिता को कारागार से मुक्त करते हैं तथा कंस के पिता उग्रसेन को राजा बनाते हैं।

कवि ने संसार की असारता, जीवन की चञ्चलता, शरीर की विनश्वरता आदि का उपदेश दिया है—

असारे संसारे विषविषमपाके नृपसुखे
कृतान्तेनाक्रान्ते प्रकृतिचपले जीवितबले।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवापाये काये विषयमृगतृष्णाहृतहृदः ।
परप्राणैः प्राणानहह परिपुष्णन्ति कुधियः ।।

कंसवध ३।१

शेषकृष्ण वैयाकरण थे। इन्होंने कहा है कि कवि के लिए व्याकरण का ज्ञान भूषण है, दूषण नहीं–

भूषणमेतन्न दूषणं कवीनां व्याकरणकोविदता ।

अधोलिखित श्लोक में क्रिया के विशिष्ट प्रयोग मिलते हैं—

त्वं क्षीराम्बुनिधिं ममन्थिथ जगत्-
त्रातुं जगन्धासुरान्
दंष्ट्राग्रेण समुज्जहर्थ धरणिं
सुष्वप्थ शेषे सदा ।
दूरे तस्थिथ किं च वाङ्मनसयोः
किं त्वेष नः प्राक्तनैः
पुण्यैरद्य पचेलिमैः किल बलात्
पुम्भावमालम्बसे ।।

—कंसवध ३।३१

अनुप्रास की योजना से भाषा सङ्गीतमय हो गयी है—

चम्पे चन्दनि चन्द्रिके चमरिके
चन्द्रावलि श्यामले
गङ्गे गोमति गौरि गीतरसिके
गायत्रि गोदावरि ।
धीरे धीवरि धूसरे धवलिके
कालाक्षि कालीति च
व्याहाराः परितो हरन्ति हृदयं
हम्बारवाश्राविणः ।।

—कंसवध ३।२२

कृष्ण और बलराम का सौन्दर्य-वर्णन दर्शनीय है—

राकासुधाकरसुधाकरचारुवक्त्र-
मिन्दीवरोदरसहोदरमेदुराङ्गम् ।
कृष्णं बलं च घनसारपरागगौरं
दृष्ट्वा सुधाम्बुधिनिमज्जनमेति चेतः ।।

—कंसवध ६।३५

'पूर्णिमा के चन्द्रमा को फीका करनेवाले सुन्दर मुख से युक्त, नील कमल के आभ्यन्तर भाग की भाँति स्निग्ध अंगोंवाले कृष्ण तथा कर्पूरपराग की भाँति गौर बलराम को देखकर चित्त सुधा-सागर में डूब जाता है।'

कृष्ण ब्रह्मतत्त्व हैं। उनकी अपूर्व शोभा का वर्णन देखिए—

कुवलयदलदामश्यामकान्तिः कलावा-
न्नयनचुलुकनीयः कोऽपि पीयूषराशिः ।
व्रजपरिसरधूलीकेलिलोलः किशोरा-
कृतिकृतिपरिचेयो द्रक्ष्यते ब्रह्मसारः ।।

—कंसवध ३।७

'कुवलयदल की भाँति श्याम कान्तिवाला, कलाओं से युक्त, नेत्रों से निपीत कोई अनिर्वचनीय सुधाराशि, व्रज-परिसर की धूलि में क्रीड़ा करने से चञ्चल, किशोर आकृति से पहचान में आनेवाला कोई ब्रह्मतत्त्व दिखलायी पड़ रहा है।'

कृष्ण के वियोग में घोष की स्थिति का वर्णन है–

नार्यो रुदन्ति न रुवन्ति पतङ्गसङ्घा,
गावस्तृणानि न चरन्ति न वान्ति वाताः ।
भृङ्गाः पिबन्ति न मधूनि हरौ प्रयाते
निर्जीविता इव दिशः प्रतिभान्ति शून्याः ।।

—कंसवध ४।२०

'कृष्ण के चले जाने पर नारियाँ रो रही हैं, पक्षी कलरव नहीं कर रहे हैं, गायें घास नहीं चर रही हैं, पवन नहीं बह रहा है, भौंरे मधु का पान नहीं कर रहे हैं और निर्जीव-सी दिशाएँ सूनी लग रही हैं।'

अ० पा०

श्रीदेवाचार्य

श्रीदेवाचार्य श्रीनिवासाचार्यजी के शिष्य थे। सैद्धान्तिक ग्रन्थ-रचना की दृष्टि से श्रीनिवासाचार्य से लेकर श्रीदेवाचार्य तक के पीठाधीश्वर 'द्वादशाचार्य' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीदेवाचार्य का जन्म तेलंगाना प्रदेश में हुआ था। इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्वानों में मतभेद है। 'निजमतसिद्धान्तकार' ने इनको सारस्वत ब्राह्मण-कुलोत्पन्न बताया है तथा काश्मीर, काठियाबाढ़ एवं वृन्दावन को इनका निवासक्षेत्र कहा है। इन्होंने निम्बार्क-सम्प्रदाय का भारतव्यापी प्रचार किया था।

'निजमतसिद्धान्तकार' ने इनके चरित का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से किया है—

श्रीदेवाचार्य कश्यपपुर (काश्मीर) में सारस्वत-कुल में उत्पन्न हुए थे। गुरु-कृपा-प्राप्ति के उपरान्त आपने १२ वर्ष वृन्दावनवास किया। गुरुदेव के गोलोकवासोपरान्त आप काठियाबाढ़ की एक गुफा में एकान्तवास करने लगे। एक बार विवाद होने पर कि कौन-सा मत श्रेष्ठ है एक ब्राह्मण ने सुझाव दिया, 'सब मतों के नाम भिन्न-भिन्न पत्रों पर लिखकर गणपति की मूर्ति के आगे रखा जाय। जो मतपत्र सबसे पहले हाथ आ जाय वही मत सर्वश्रेष्ठ है।' इसे कार्यरूप में परिणत करने पर हरिभक्तों (वैष्णव-धर्म) का पत्र ही सर्वप्रथम हाथ लगा। फलस्वरूप वैष्णव-धर्माचार्य की खोज प्रारम्भ हुई। अन्वेषक उसी काष्टवाड़ (काठियाबाढ़) की गुफा से श्रीदेवाचार्य-जी को काश्मीर लिवा लाये। श्रीदेवाचार्यजी के मन्दिर में प्रवेश करते ही श्रीगणपतिजी ने उठकर उनका स्वागत किया।

आपके द्वारा अनेक चामत्कारिक कार्य सम्पन्न हुए। कमण्डलु के जल से इन्होंने कूकरजाग स्थल में एक सरिता का आविर्भाव किया। अमरनाथ में आपकी कृपा से लाखों लोगों को शिवदर्शन हुए। देवों ने भी आपका सम्मान किया, जिससे आपका नाम 'देवाचार्य' चरितार्थ हुआ।

एक बार कुछ विद्वेषियों ने विचार किया कि हम आचार्य के सन्निकट जाकर जोर-जोर से ऐसी क्लिष्ट संस्कृत में बोलें कि उनकी समझ में न आये। जैसे ही यह विचार कर वे इनके पास पहुँचे, उनकी वह क्लिष्ट संस्कृत की भाषा कौए की काँव-काँव में बदल गयी। तब उन्होंने लज्जित होकर क्षमा-याचना की। क्षमा दान करने पर पुनः उन्हें उनकी प्रकृत वाणी प्राप्त हो गई। इसके पश्चात् आप पुनः काठियावाड़ गये। वहाँ के राजा ने आपके प्रभाव को जानकर अपने राज्य में केशर की उपज की प्रार्थना की। उस पर अत्यधिक प्रसन्न होकर इन्होंने उसे आशीष दिया कि यहाँ से जहाँ तक दृष्टि पहुँचती है उतनी भूमि में केशर उत्पन्न होती रहेगी। इसके बाद आप पुनः वृन्दावन आकर निवास करने लगे।

आपके द्वारा रचित मात्र एक ग्रन्थ 'सिद्धान्त-जाह्नवी' है, जिसकी दो तरंगें ही उपलब्ध हैं। ब्रह्मसूत्र के 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र की व्याख्या करते हुए श्रीदेवाचार्यजी ने 'सिद्धान्तजाह्नवी' में सर्व-प्रथम भट्टभास्कर (नवीं शताब्दी) का पक्ष उद्धृत किया है। तदनन्तर अद्वैतवाद और भेदवाद का उल्लेख करते हुए विशिष्टाद्वैतवाद की भी चर्चा की है। इन सभी मतवादों में अद्वैतवाद की आलोचना प्रमुख रूप से की गयी है।

इनका पाटोत्सव माघशुक्ला पंचमी को मनाया जाता है। इन्हें भगवान् के हस्त-कमलाश्रित पद्म का अवतार माना जाता है—

माघे सिते पञ्चदिनेऽवतीर्य,
विनिर्जिता येन दिशश्च सर्वाः।
निराकृताः शास्त्रविरुद्धतर्काः,
देवार्यकं तं शरणं प्रपद्ये ॥

पद्मावतारः पुरुषोत्तमस्य,
यद्वायुगन्धेन नशंति तापाः।
तनोति सौख्यं परतत्त्वबोधा-
न्नमामि तं देवमाचार्यरूपम् ॥

प्रे॰ ना॰ श्री॰

श्रीधरस्वामी

श्रीधरस्वामी का समय १४वीं शताब्दी प्रतीत होता है। उसका आधार अधोलिखित है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१. श्रीधर ने बोपदेव का उल्लेख अपनी टीका में किया है और उनके भागवत प्रणेतृत्व का खण्डन किया है। फलतः ये १३वीं शताब्दी के पहले नहीं हो सकते।

२. श्रीधर के कतिपय पद्यों को रूपगोस्वामी ने अपनी पद्यावली में दिया है, अतः श्रीधर १६वीं शताब्दी के पूर्ववर्ती हैं।

३. श्रीधर ने विष्णुपुराण पर जो 'स्वप्रकाश' नामक व्याख्या लिखी है, उसके उपलब्ध हस्तलेखों में प्राचीनतम हस्तलेख का समय १५११ ई० है, अतः १५०० ई० श्रीधर के समय की उत्तरी अवधि है।

श्रीधरस्वामी का जो सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह उनकी भावार्थदीपिका नामक भागवत-व्याख्या है। इस व्याख्या के सम्बन्ध में प्रसिद्धि है—

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः॥

भागवत का मर्म व्यास जानते हैं और शुकदेव जानते हैं। राजा परीक्षित् के सम्बन्ध में सन्देह है कि वे जानते हैं अथवा नहीं, किन्तु श्रीधर निश्चित रूप से जानते हैं।

चैतन्यमहाप्रभु की श्रीधर की टीका में इतनी आस्था थी कि वे कहा करते थे कि जैसे स्वामी की प्रतिकूल भार्या पतिव्रता नहीं हो सकती, उसी प्रकार स्वामी (श्रीधरस्वामी) का प्रतिकूल व्यक्ति भागवत का मर्म नहीं समझ सकता। टीका की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में नाभादासजी ने भक्तमाल में एक प्राचीन आख्यान का निर्देश किया है। श्रीधर के गुरु का नाम परमानन्द था, जिनकी आज्ञा से उन्होंने काशी में भागवत की टीका लिखी। टीका की परीक्षा के निमित्त यह ग्रन्थ बिन्दुमाधवजी की मूर्ति के सामने रख दिया गया। एक प्रहर के बाद पट खोलने पर लोगों ने देखा कि माधवजी ने इस व्याख्या-ग्रन्थ को अन्य ग्रन्थों के ऊपर रखकर इसकी उत्कृष्टता सिद्ध कर दी थी। नाभादासजी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है—

तीन काण्ड एकत्व सानि कोउ अज्ञ बखानत।
कर्मठ ज्ञानी ऐंचि अर्थ को अनरथ आनत॥
परमहंससंहिताविदित टीका विस्तार्यौ।
षट् शास्त्रनि अविरुद्ध वेद-सम्मतहिं विचार्यौ॥
परमानन्द प्रसाद तें माधौ सुकर सुधर दियौ।
श्रीधर श्रीभागौत मैं परम धरम निरनै कियौ॥

श्रीधर ने गीता पर भी टीका लिखी है, जिसका नाम 'सुबोधिनी' है। इन्होंने प्रारम्भ में लिखा है—

श्रीमाधवं प्रणम्योमाधवं विश्वेशमादरात्।
तद्भक्तियन्त्रितः कुर्वे गीताव्याख्यां सुबोधिनीम्॥

श्री माधव तथा विश्वेश्वर शिव को प्रणाम करके उनकी भक्ति के वश में होकर गीता की सुबोधिनी नामक व्याख्या का निर्माण कर रहा हूँ।

व्याख्या के अन्त में यह श्लोक मिलता है—

तेनैव दत्तया मत्या तद्गीताविवृतिः कृता।
स एव परमानन्दस्तया प्रीणातु माधवः॥

उन्हींके द्वारा प्रदत्त मति से उनकी गीता की व्याख्या मैंने की है। वे परमानन्द माधव उससे प्रसन्न हों।

यहाँ भागवत का एक श्लोक प्रस्तुत किया जा रहा है और उसके बाद श्रीधर की टीका, जिससे पाठक श्रीधर की शैली का आस्वादन कर सकें।

श्लोक इस प्रकार है—

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥

—भागवत १०।२९।३२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पति, अपत्य और मित्र का अनुवर्तन ही स्त्रियों का स्वधर्म है, यह धर्मज्ञ आपके द्वारा कहा गया। गोपियाँ कहती हैं कि उपदेशों के विषय आपमें ही यह सब हो, क्योंकि आप सभी प्राणियों के प्रियबन्धु और आत्मा हैं।

श्रीधर की टीका इस प्रकार है—

"अपि च यदुक्तं यत्पत्यपत्येत्यादि त्वया धर्मविदेति सोपहासमेवमेतदुपदेशानां पदे विषये त्वय्येवास्तु उपदेशपदत्वे हेतु ईश इति। विविदिषावाक्येन सर्वोपदेशानामीशपरत्वावगमादिति भावः। ईशत्वे हेतुः आत्मा किल भवानिति भोग्यस्य हि सर्वस्य भोक्ता आत्मैवेश इत्यतः प्रेष्ठो बन्धुश्च भवानेवेति सर्वबन्धुषु करणीयं त्वय्येवास्त्वित्यर्थः। अथवा धर्मोपदेशानां पदे स्थाने धर्मोपदेष्टरि त्वयि सत्यस्मासु च धर्म जिज्ञासमानीषु सतीषु त्वया धर्मविदा यदुक्तमेवमेतदस्तु न तु त्वं धर्मोपदेष्टा किन्तु भवानात्मेति अथवा यदुक्तमेतदुपदेशपदे तद्गोचरे पुरुषेऽस्तु नाम, त्वयि तु ईशे स्वामिनि सत्येवं कक्ष्वा नैवमित्यर्थः। यस्तनुभूतां त्वमात्मा फलरूप इति। यद्वा, यदुक्तं पत्यादिशुश्रूषणं धर्म इति एवमेतत्त्वय्येवास्तु कुतः उपदेशपदे शुश्रूषणीयत्वेनोपदिश्यमानानां पत्यादीनां पदेऽधिष्ठाने कुत ईशे नहीश्वरमधिष्ठानं विना कोऽपि पतिपुत्रादिनमिति। अन्यत्समानम्। अलमतिविस्तरेण।"

अ० पा०

श्रीनिवासाचार्य

श्रीनिम्बार्काचार्य के साक्षात् शिष्यों में श्रीनिवासाचार्य प्रधान थे। ये भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीपाञ्चजन्य शंख के अवतार माने जाते हैं। श्री पुरुषोत्तमाचार्य-प्रणीत 'आचार्यचरित' नामक ग्रन्थ में इन्हें मथुरा-नरेश वज्रनाभ का समकालीन बताया गया है। इनके पिताश्री का नाम आचार्यपाद और माता का नाम लोकमती था। ये दोनों श्री निम्बार्काचार्य से प्रभावित हो उनके आश्रम में निवास करने लगे थे। वहीं माघ शुक्ला वसन्तपंचमी के दिन श्रीनिवासाचार्य का जन्म हुआ था। ये भी तैलंग ब्राह्मण थे। श्रीनिवासाचार्य की तपस्या-स्थली व्रजमंडलान्तर्गत राधाकुंड यही है जो वर्तमान में गिरिगोवर्धन के सन्निकट अवस्थित है। यह स्थान श्रीनिवासाचार्यजी की बैठक के नाम से सुप्रसिद्ध है। इस स्थान पर आपकी चरण-चौकी स्थापित है, जिसकी नियमित रूप से सेवा-पूजा होती है।

श्रीनिवासाचार्य द्वारा रचित पाँच ग्रन्थ हैं—(१) वेदान्तकौस्तुभ (श्रीनिम्बार्कप्रणीत 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' पर लिखा गया विशद भाष्य), (२) लघुस्तवराज (इसके चालीस छन्दों में श्री निम्बार्काचार्य के प्रभाव का वर्णन मिलता है), (३) ख्यातिनिर्णय, (४) रहस्य-प्रबन्ध और (५) कठोपनिषद्-भाष्य। पिछले तीनों ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। इनकी प्रामाणिकता श्री सुन्दरभट्टाचार्य-कृत 'सेतुटीका' ग्रंथ में मिलती है। निकुंजोपासना में आप श्रीराधा-कृष्ण की नित्यसहचरी श्री नव्यवासा के अवतार माने जाते हैं। आपके शंखावतार होने का प्रमाण आप ही के पट्टशिष्य श्री विश्वाचार्य-विरचित निम्न श्लोक में मिलता है—

> शंखावतारः पुरुषोत्तमस्य
> यस्य ध्वनिः शास्त्रमचिन्त्यशक्तिः।
> यत्स्पर्शमात्राद् ध्रुवमाप्तकाम-
> स्तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये॥

'वेदान्तकौस्तुभ' श्रीनिवासाचार्यजी की रचनाओं में प्रधान है। यह वेदान्तसूत्रों पर की हुई श्री निम्बार्काचार्य-कृत 'वेदान्त-पारिजात-सौरभ' नामक एक वृत्ति का ही विशद भाष्य है। इस दार्शनिक विवेचनात्मक ग्रन्थ में जीव, प्रकृति और परम ब्रह्म इन तीनों तत्त्वों का स्वरूप तथा सम्बन्ध और सृष्टि, विज्ञान, जगत् का स्वरूप, उसकी व्यवस्था एवं प्रलय आदि का सुन्दर विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ में आपने अपने जीवन की किसी घटना का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु आरम्भिक वन्दनाओं में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा (श्री हंस भगवान् से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निम्बार्काचार्य तक) का उल्लेख एवं उपास्यदेव श्री राधा-कृष्ण का स्मरण किया है—

श्रीहंसं सनकादीन्देवर्षि निम्बभास्करं च भजे।
कृपयैषां परमात्मनि नो भवतु भक्तिः॥

प्रे० ना० श्री०

श्रीवरजी शास्त्री चतुर्वेदी

श्रीवरजी शास्त्रीजी का जन्म अक्षयतृतीया सं० १९५० को मथुरा में श्री पं० बन्नाजी पौराणिक के गृह में हुआ था। आप अपने पिता के चतुर्थ पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही श्री पं० बन्नाजी ने अपने पुत्र को श्रीमद्भागवत की कथा कहने में पारंगत कर दिया था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, मथुरा में पं० मुकुन्ददेवजी द्वारा सम्पन्न हुई। ये अपने गुरुदेव के इतने निष्ठावान भक्त थे कि उन्हें एवं परमगुरु दण्डी विरजानन्दजी को प्रतिदिन तर्पण के समय जलाञ्जलि दिया करते थे। आपने न्यायग्रन्थों का अध्ययन पण्डित अमोलकरामजी शास्त्री (वृन्दावन-निवासी) एवं शास्त्री परीक्षा के ग्रन्थों का श्री गयादत्तजी चतुर्वेदी काव्यतीर्थ से किया। ये अपने पूर्वपुरुषों के समान ही निम्बार्कमतावलम्बी थे।

ये बाल्यावस्था से ही अत्यन्त मेधावी थे। मथुरा में न्यायशास्त्र के अच्छे विद्वान् न होने के कारण इनको पं० अमोलकरामजी शास्त्री से पढ़ने प्रतिदिन वृन्दावन आना पड़ता था। रात्रि में ये सरकारी विद्युत्-प्रकाश में बैठकर स्वयं अध्ययन करते एवं अपने सहपाठियों को भी ग्रन्थाभ्यास कराते थे। इस प्रकार आपने आचार्य परीक्षा के तीन खण्डों का अध्ययन किया। सन् १९१९ ई० में पं० गयादत्तजी के स्वर्गवास के उपरान्त इन्होंने प्रधानाचार्य के पद को सुशोभित किया। स्वयं परीक्षा उत्तीर्ण न होने के कारण आरंभ में इनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु गुणग्राही अधिकारियों ने इनके गुणों के आगे डिग्री को नगण्य मानकर अन्ततः विद्यालय को व्याकरणाचार्यपर्यन्त अध्यापन की अनुमति दे दी। तदुपरान्त इन्हें साहित्याचार्य पढ़ाने की भी स्वीकृति मिल गई। उस समय काशी में इस विषय की बहुत चर्चा थी, क्योंकि ऐसा उदाहरण विरला ही था कि जहाँ प्राध्यापक उस परीक्षा को बिना पास किये छात्रों को पढ़ाने में अनुमत किया गया हो।

सदैव स्वाध्यायरत रहना आपका एक विशेष गुण था। इसके साथ ही ये शास्त्रार्थ में भी प्रवीण थे। इनके शास्त्रार्थ-विजय की उस समय समस्त भारतवर्ष के विद्वानों में धूम थी। यह शास्त्रार्थ मदनमोहनजी मन्दिर, मथुरा के शिलान्यास-प्रकरण पर हुआ था और विवाद खड़ा किया था तत्कालीन याज्ञिक पं० अमृतराजजी पण्ड्या ने। श्री अमृतराजजी पं० बन्नाजी को काका कहा करते थे, अतः श्रीवरजी के उनसे अच्छे सम्बन्ध थे। किन्तु परम्परा का निर्वाह करते हुए आप शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो गये एवं विजयश्री प्राप्त की। श्लोक-रचना में भी आप सिद्धहस्त थे। आपके पद्य बड़े ही मार्मिक होते थे। उदाहरणस्वरूप कुछ श्लोक द्रष्टव्य हैं :

(१)

अव्यक्तं श्रुतिभिर्न्यगादि मुनिभिः
स्वान्ते व्यचारि व्रतम्।
ब्रह्मैतन्निखिलं जगन्निज धिया
न्यध्यायि सद्योगिभिः।
सत्तादार्शनिकैरभाणि यदहो
बुद्धिश्च बौद्धादिभि-
स्तत्साक्षादवलोक्यते व्रजभुवि
प्रेमास्पदं धेनुपः॥

'श्रुतियों ने जिसे अव्यक्त प्रतिपादित किया है, मुनियों ने जिसे ध्यान में धारण करने का व्रत लिया है, योगविद्या में पारङ्गत पुरुष अपनी बुद्धि के आधार पर निखिल सृष्टि को ही ब्रह्म कहते हैं। अनेक दार्शनिकों ने सत्ता में उसीका साक्षात्कार किया है। बौद्ध आदि मतवादियों के अनुसार वह बुद्धि का अधिष्ठाता है। किन्तु कृष्ण-भक्त के लिये तो व्रज की भूमि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में ही वह परम प्रेमास्पद प्रत्यक्ष गोचारण करते-कराते ही दृष्टिगोचर हो रहा है।'

एक उदाहरण चित्र-काव्य का भी देखिए—

(२)

तारताण्डवतावादेदेवातात्त्विकरूपता।
तापरूपरवतालेखेखेलेता कृष्णतारता॥

'उद्दाम ताण्डव में देवत्व का तात्त्विक रूप स्पष्ट ही उल्लसित था। त्रितापों से तप्त इस जगत् में व्याप्त कृष्ण की रूप-उपासना ही खेल-खेल में भी श्रेय को सिद्ध करती है।'

आप बड़े ही परोपकारी महापुरुष थे। प्रातः-सायं भगवद् आराधना के साथ ही छात्रों का उपकार करना तथा उनके लिये भोजन, वस्तु एवं अन्य वस्तुओं की व्यवस्था करना आपका एक अनिवार्य नियम था। छात्रों की सुविधा के लिए आप अपने कार्य-कलापों का भी परित्याग कर देते थे, यहाँ तक कि आर्थिक हानि भी उठा लेते थे। इन्हें विद्यालय एवं विद्यार्थियों की किसी प्रकार की क्षति कदापि सहन न थी।

ये बड़े ही परोपकारी थे। इस विषय में आप अपनी प्रशंसा पसंद नहीं करते थे। इन्होंने अनेक व्यक्तियों की गुप्तरूप से सहायता की। एक सज्जन ने आपसे कई हजार रुपये उधार लिये, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न रही। उनके गिड़गिड़ाने पर इन्होंने व्याज तो सब छोड़ ही दिया, नकद भी जो कुछ वे दे सके, स्वीकार कर लिया। एक सज्जन ने मन्दिर के निर्माण में ५०० रुपये आप से प्राप्त किये और आपके नाम का पत्थर लगवा दिया। जब आपको मालूम हुआ तो पत्थर निकलवा दिया और उसकी चर्चा तक का निषेध कर दिया।

आप विद्वान् होते हुए भी परम विनोदी स्वभाव के थे। एक बार एक अपढ़ सज्जन ने पण्डितजी के सप्ताह-पारायण में बहुत-सा माल चढ़ा देखकर विचार किया कि क्यों न मैं भी अपने पुत्र को जो पहलवानी करता है, पण्डित बनाऊँ। किसी सेठ ने इनसे कह भी दिया था कि 'चौबेजी! जब आपका पुत्र भागवत की कथा कहने लगे तो हमसे कहना। हम कथा कहल-वायेंगे।' बस, चौबेजी को वही बात लग गयी। चौबेजी से किसीने कहा था कि आपको अपने पुत्र को पहले लघुकौमुदी पढ़वानी होगी फिर यह भागवत पर चल सकेगा। चौबेजी ने तत्काल पं० श्रीवरजी के पास आकर कहा, 'गुरुजी! आप इसे लघुकौमुदी आज ही दिखा दें और भागवत पर चला दें।' गुरु-जी ने कहा, 'आप इसे छोड़ जाइये, मैं जल्दी ही चला दूंगा।' पर चौबेजी को धैर्य कहाँ था। उन्होंने कहा कि 'आप इसे मेरे सामने ही चला दीजिए, यह मेरे बिना कोई कार्य नहीं करता।' फलतः चौबेजी किसी छात्र से लघुकौमुदी और भागवत माँग लाये और गुरुजी से आकर बोले कि 'अब आप इसे जल्दी चला दीजिये, क्योंकि इसे सेठजी बुला गये हैं।'

अब गुरुजी ने लड़के से कहा कि 'ले बेटा! तेरे पिता जैसा कह रहे हैं वैसा कर यानी इस लघुकौमुदी को देख और भागवत को लेकर चल दे।' लड़के ने वैसा ही कर दिया। फिर क्या था? पिताजी खुश हो गये, क्योंकि बेटे ने भागवत उठा ली। पण्डितजी ने भी कह दिया, 'लो चौबेजी! आपका लड़का बड़ा ही चतुर है।' वे प्रणाम कर बाहर जाकर पुत्र की प्रशंसा करते हुए घर चले गये और पण्डितजी चौबे-जी के भोलेपन पर मुस्कराते हुए कार्य में व्यस्त हो गये।

आप गृहस्थ होते हुए भी सन्तों के सभी गुणों से विभूषित थे।

प्रे० ना० श्री०

श्रीहरि

श्रीहरि महान् कवि और भक्त थे। ये काश्यप-गोत्रीय ब्राह्मण और गोदावरी-तट के निवासी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। इनकी भागवत की टीका का नाम 'हरिभक्ति-रसायन' है। यह टीका दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध पर है और पद्यात्मक है। यह एक मौलिक रचना है। श्रीहरि का कथन है कि भगवान् का प्रसाद ग्रहण करके ही मैं रचना में प्रवृत्त हुआ।

अ० पा०

सनातन गोस्वामी

श्री सनातन गोस्वामी रूप गोस्वामी के बड़े भाई थे। इनका बाल्यावस्था का नाम अमर था। इनका जन्म १४९२ ई० में हुआ था। कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी परधाम-यात्रा १५५९ ई० में हुई और कुछ विद्वानों के अनुसार १५९१ ई० में। इन्होंने संस्कृत, अरबी और फारसी का अच्छा अध्ययन किया था। गौड़ के बादशाह ने उन्हें अपना मन्त्री बनाया और इनका नाम दबिर-खास रखा। इन्हें रामकेलि नामक ग्राम में चैतन्य महाप्रभु का दर्शन मिला और उनसे वैष्णव-धर्म की दीक्षा ली। चैतन्यदेव ने इनका नाम सनातन रखा। उनकी आज्ञा से ये वृन्दावन चले आये और यहाँ अपना समय भगवद्‌गुणगान में व्यतीत करने लगे। चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा के अनुसार इन्होंने 'हरिभक्तिविलास' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें मन्दिरों और मूर्तियों के निर्माण की विधियों का निरूपण तथा वैष्णवों के विविध कर्मों का उल्लेख किया गया है। महाप्रभु चैतन्य ने इनको आदेश दिया था कि ग्रन्थ में ऐसा कोई उल्लेख न हो, जिसका समर्थन शास्त्रों से न होता हो। इसके लिए इन्होंने वैष्णव-साहित्य का गम्भीर अनुशीलन किया और शास्त्रों की मान्यताओं के अनुसार वैष्णवों की जीवनचर्या का निरूपण किया। इस ग्रन्थ में वैष्णवों की जीवनचर्या के विषय में बड़े रोचक उल्लेख मिलते हैं।

सनातन गोस्वामी की अन्य महत्त्वपूर्ण रचना 'बृहत्तोषिणी' है। यह भागवत की व्याख्या है। इसमें दशम स्कन्ध के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग लिये गये हैं और उनकी अत्यन्त गम्भीर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इसके अन्तर्गत गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय के अनेक सूक्ष्म तत्त्वों का उन्मीलन किया गया है। इनकी एक अन्य रचना 'भागवतामृत' है। इसमें भागवत के रहस्य का प्रतिपादन किया गया है। 'श्रीकृष्णलीलास्तव' भी इनकी एक प्रसिद्ध कृति है।

सनातन गोस्वामी अत्यन्त विनम्र, निःस्पृह और विरक्त प्रकृति के थे। यहाँ भक्तमाल की एक कथा दी जा रही है, जिससे इनके वैराग्य और साधुत्व का प्रमाण मिलता है-कहा जाता है कि सनातन गोस्वामी के पास एक स्पर्शमणि थी, जिसे इन्होंने भूमि में गाड़ दिया था। इनकी इच्छा थी कि यदि कोई निर्धन व्यक्ति सहायता के लिए आयेगा, तो उसे स्पर्शमणि दे दूँगा। बर्दवान जिले में जीवन नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वैभव पाने के लिए सदा ईश्वर की प्रार्थना करता रहता था। एक बार उसने स्वप्न में देखा कि भगवान् महादेव उसके पास आये और कहा, "यदि तुम सनातन के पास जाओ, तो वह तुम्हें स्पर्शमणि देगा। सनातन वृन्दावन में रह रहा है।" जीवन वृन्दावन पहुँचा। उसने देखा कि सनातन गोस्वामी यमुना के तट पर बैठे हुए हैं और प्रार्थना में तल्लीन हैं। उसने वैभव की प्राप्ति के लिए सनातन से सहायता माँगी। सनातन ने विनम्रता से कहा कि मैं एक भिखारी हूँ, अतः दूसरों को कुछ भी नहीं दे सकता। उस समय वे स्पर्शमणि की घटना भूल गये थे। ब्राह्मण ने कहा कि महादेव ने मुझे स्वयं मणि की बात बतायी है। यदि भगवान् की यह बात सत्य नहीं होगी, तो मैं आत्म-हत्या कर लूँगा। तब सनातन ने उँगली से सङ्केत करते हुए कहा कि वहाँ खोदो, उसी स्थान पर मणि है। उस निर्धन ब्राह्मण ने भूमि को खोदा और स्पर्श-मणि दिखायी पड़ी। उसने सनातन से कहा कि "इसे बाहर निकालने में मेरी सहायता कीजिए।" सनातन ने कहा, "अब मैं ऐसी तुच्छ वस्तु का स्पर्श नहीं करूँगा।" जीवन ने स्पर्शमणि को निकाला। वह स्पर्शमणि से जिस वस्तु को छू देता था, वह सोना बन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती थी। वह प्रसन्नता से अपने घर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसके मन में विचार आया कि इस साधु के पास कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसके कारण उसने इस अनर्घ मणि का परित्याग कर दिया है। वह लौट-कर सनातन के पास आया। उसने कहा—"आपके पास कौन-सा ऐसा वैभव है, जो इस स्पर्शमणि से उत्कृष्ट है।" सनातन कुछ नहीं बोले, केवल मुस्कराते रहे। वह ब्राह्मण सनातन की परम तृप्ति से विस्मय में पड़ गया। उसने कहा, "आपने कहा था कि मैं ऐसी तुच्छ वस्तुओं का स्पर्श नहीं करता, तो मैं भी आज से ऐसी तुच्छ वस्तुओं का स्पर्श नहीं करूँगा। आपके पास जो है, उसमें से थोड़ा-सा मुझे भी दे दीजिए। विगत वर्षों में मुझे शान्ति नहीं मिली। मैं जानता हूँ कि इस स्पर्शमणि से मेरा कष्ट बढ़ेगा ही, कम नहीं होगा।" ऐसा कहकर उसने स्पर्शमणि को यमुना के जल में फेंक दिया और सनातन का शिष्य हो गया।

इस कथा से यह भी मालूम होता है कि जब अकबर ने इस महत्त्वपूर्ण मणि की चर्चा सुनी, तब उसने उसे ढूँढ़ने के लिए लोहे की जंजीरों से बँधे हाथी भेजे। कहा जाता है कि यमुना के जल में हाथियों की सहायता से स्पर्शमणि की खोज की गयी, किन्तु वह नहीं मिली। हाँ, जो जंजीरें स्पर्शमणि के सम्पर्क में आयीं, वे सोना बन गयीं।

सनातन के गोस्वमी 'श्रीकृष्णलीलास्तव' के निम्न-लिखित भक्तिभाव पूर्ण श्लोकों का आस्वादन करें—

यमुनातटसञ्चारिन् कालियह्लदतीरग।
नमस्ते ऽतिसुधादृष्टे विषार्तव्रजजीवन॥
अतिविस्मितगोपालकुलानुमितचेष्टित।
जय स्वजनरक्षार्थनिगूढैश्वर्यदर्शक॥

'हे यमुना के तट पर विचरण करनेवाले, कालिय-ह्लद के तीर पर गमन करनेवाले, अमृत से भी अधिक (मधुर) दृष्टिवाले, विष से पीड़ित व्रज के जीवन, आपको नमस्कार है। अत्यन्त आश्चर्य में पड़े हुए गोपालों से अनुमित चेष्टाओंवाले, अपने जनों की रक्षा के लिए छिपे हुए ऐश्वर्य को प्रकाशित करने-वाले, आपकी जय हो।'

अ० पा०

सुदर्शनसूरि

आचार्य रामानुज के 'श्रीभाष्य' पर 'श्रुतप्रकाशिका' के रचयिता सुदर्शनसूरि विशिष्टाद्वैत के प्रतिष्ठित आचार्य हैं। इन्होंने भागवत की 'शुकपक्षीया' टीका लिखी। इनका समय १४वीं शताब्दी है। कहा जाता है कि दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने जब १३६७ ई० में श्रीरंगम् पर आक्रमण किया था, तब सुदर्शनसूरि युद्ध में मारे गये थे। इनकी भागवत की टीका परिमाण में स्वल्प है, किन्तु भाव-प्रकाशन में अत्यन्त समर्थ है।

अ० पा०

सुन्दर भट्टाचार्य

श्रीदेवाचार्यजी के बाद निम्बार्क-सम्प्रदाय दो शाखाओं में विभक्त हो गया। एक शाखा श्री सुन्दर भट्टाचार्य की एवं द्वितीय श्री ब्रजभूषणदेव-जी की है। श्री सुन्दर भट्टाचार्य ने आचार्य-सिंहासन को विभूषित किया।

इनका उपस्थिति-काल १२वीं शताब्दी निश्चित होता है। आपका पाटोत्सव मार्गशीर्ष शु० २ को मनाया जाता है। रहस्य-परम्परा में आपका 'सुन्दरी' नाम उल्लिखित है। अनन्तरामजी ने एक पद्य द्वारा आपकी वन्दना की है एवं आपकी विद्वत्ता का दिग्दर्शन कराया है—

भटति परमरूपं सुन्दरं रुक्मवर्णं,
द्यति च कुमतिपक्षाँस्तर्कमूलान्महात्मा।
नयति पदमजस्रं विष्णुमार्गेण स्वीयान्,
स जयति परमौजाः सुन्दराख्यो हि भट्टः॥

आपके ग्रन्थों में से केवल तीन उपलब्ध हैं—

१. प्रपन्न सुरतरुमञ्जरी (प्रपन्न कल्पवल्ली की विस्तृत टीका)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. सेतुका (सिद्धान्तजाह्नवी की टीका)

३. मन्त्रार्थरहस्य (रहस्यषोडशी की व्याख्या)

सेतुका ग्रन्थ में इनके अन्य तीन ग्रन्थों का उल्लेख और मिलता है, वे हैं—

४. गोपालोपनिषद् का भाष्य

५. कालनिर्णय सन्दर्भ

६. प्रपन्नवृत्तिनिर्णय-सन्दर्भ।

किन्तु ये तीनों ही अप्राप्य हैं।

उक्त तीनों ग्रन्थों में 'सिद्धान्त-जाह्नवी-सेतुका' ही दर्शनपरक ग्रन्थ है। शेष सभी उपासना-ग्रन्थ हैं। श्रीदेवाचार्यजी ने जिन-जिन हेतुओं द्वारा द्वैताद्वैत-दर्शन का समर्थन किया है, उन हेतुओं को आपने शास्त्रप्रमाणादि से विशद रूप में व्यक्त किया है। द्वैताद्वैत-दर्शन का गम्भीरतापूर्वक समर्थन ही इसका मुख्य प्रतिपाद्य है। श्री निम्बार्क की 'मंत्ररहस्य-षोडशी' पर आपने 'मन्त्रार्थरहस्य' नामक विस्तृत भाष्य-रचना की है। इसमें श्रीगोपाल-अष्टादशाक्षर मंत्र की विशद व्याख्या तथा गुरुशरणागति-महत्त्व आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

श्री निम्बार्क-कृत 'प्रपन्नकल्पवल्ली' की भी आपने 'प्रपन्नसुरतरुमंजरी' नाम से विस्तृत व्याख्या की है। इसमें पांचरात्रिक श्री मुकुन्द अष्टादशाक्षर (शरणागति) मंत्र का विशद विवेचन देखने को मिलता है। इसके अन्तर्गत उपास्य और परमप्राप्यधाम, उपासक और साध्यसाधनरूपा भक्ति आदि उपासना-पद्धतियों का भी वर्णन मिलता है।

प्रे० ना० श्री०

सोमनाथ

नाभादासजी ने अपने भक्तमाल में सोमनाथ का एक भक्त के रूप में उल्लेख किया है, किन्तु इनके व्यक्तित्व का परिचय विस्तार से ज्ञात नहीं होता।

'राजस्थान-पुरातत्त्व-ग्रन्थमाला' के षोडश पुष्प के रूप में प्रियबालाशाह के सम्पादकत्व में आपके एकमात्र संस्कृत गीतिकाव्य 'कृष्णगीतिः' का प्रकाशन हुआ है, उसमें दिए परिचय से केवल इतना ज्ञात होता है कि सोमनाथजी जन्मना ब्राह्मण थे और इन्होंने जयदेव-कृत 'गीतगोविन्द' के आदर्श पर 'कृष्ण-गीति' की रचना की थी, अतः इनका समय १४वीं शती के बाद का होना चाहिए।

श्री सोमनाथ अपने समय में एक समर्पित तथा भावप्रवण भक्त के रूप में प्रसिद्ध थे। इसीलिए नाभादासजी ने इन्हें उल्लेख्य माना। आप स्वभावतः अनन्य कृष्ण-भक्त थे। प्रेमाभक्ति ही आपका साधना-पथ था अतएव इन्होंने श्रीकृष्ण के लीला-विलास को अत्यन्त मधुर पदावली में अभिव्यक्त किया है। इनके काव्य से ज्ञात होता है कि ये सिद्धहस्त संगीतज्ञ भी थे। गीतों का विभिन्न रागों से निबद्ध होना स्वयं इसका प्रमाण है। श्रीकृष्ण-गीति से स्पष्ट होता है कि आप श्री जयदेव के समान ही उच्चकोटि के भक्त, साधक एवं कवि थे। इन्हें राजस्थान का जयदेव मानना असंगत न होगा। रचना के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१)

गोपस्त्रीवशकारिणी शशधरज्योत्स्नातिरस्कारिणी
सर्वामङ्गलहारिणी स्मररसप्रख्यातिसञ्चारिणी।
राधा जीवितधारिणी व्रजकुलस्यानन्दविस्तारिणी
हासश्रीर्व्रजसुन्दरस्य विशदा भूयात्मम श्रेयसे॥

'गोपबालाओं को वश में करनेवाली, शशि की ज्योत्स्ना का तिरस्कार करनेवाली, समस्त अमङ्गल की नाशिका, काम की कमनीयता का संचार करनेवाली, व्रजवासियों के आनन्द का विस्तार करनेवाली और राधिका के जीवन की आधार-रूपा, श्यामसलोने की विशद हँसी मेरे लिये मङ्गलमयी बने।'

(२)

बहु विलपति विरहे तव राधा।
मदनबाणकृत बहुविधबाधा॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशव किं चिरयसि चल कुञ्जम् ।
मुञ्चति कुसुमशरः शरपुञ्जम् ॥
इच्छति तव मधुराधरपानम् ।
सा विदधाति मनसि बहुमानम् ॥
ध्यायति तव मृदुवदनसरोजम् ।
शमयति मनसि न तेन मनोजम् ॥
पश्यति तव हृदयागतरूपम् ।
युवतीजनमनसामनुरूपम् ॥

व्रजसुन्दरी कोई सखी श्रीकृष्ण को राधिका की मनोदशा सुना रही है—

'हे कृष्ण ! तुम्हारे वियोग-विरह में तड़पती राधा बहुत विलाप कर रही है। वह कामशर से सर्वथा पीड़ित है। केशव ! विलम्ब मत कर। राधिका-कुञ्ज में चल। काम निरन्तर बाणों की वर्षा करता जा रहा है। वहाँ जा उसकी रक्षा कर। वह तेरे अधरों का अमृत पीना चाह रही है। मानवती का मान भी उन्मन हो रहा है। वह तुम्हारे अरविन्द सुन्दर शरीर का ध्यान कर रही है। इस तरह मनोभव-विकारों का शमन भी असम्भव हो रहा है। बारम्बार अपने हृदय में ही तुम्हारे रूप को निहारती है। तुम्हारा रूप तो युवतियों के मन के आकर्षण का केन्द्र ही है। सो तुरत चलकर राधिका रसमयी को निहाल कर।'

श्या० श० वा०

स्फुलिङ्ग (मल्लिकार्जुन)

स्फुलिङ्ग का दूसरा नाम मल्लिकार्जुन था। इनके पिता का नाम लक्ष्मण और माता का नाम सावित्री था। इनका विवाह कुमारडिण्डिम की कन्या से हुआ था। इनका समय सोलहवीं शताब्दी है। इन्होंने 'सत्यभामा-परिणय-नाटक' की रचना की है। इसके पाँच अङ्कों में कृष्ण तथा सत्यभामा के विवाह की कथा निबद्ध की गयी है।

अ० पा०

स्वामी ब्रह्मानन्द

स्वामी ब्रह्मानन्द ने 'गोविन्दाष्टक' की रचना की है। इसकी भाषा सरल है। एक श्लोक उद्धृत किया जा रहा है—

महामायाजालं विमलवनमालं मलहरं,
सुभालं गोपालं निहतशिशुपालं शशिमुखम् ।
कलातीतं कालं गतिहतमरालं मुररिपुं,
सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥

'मायारूपी महाजालवाले, निर्मल वनमालावाले, मल को दूर करनेवाले, सुन्दर भालवाले, शिशुपाल का वध करनेवाले, चन्द्रमा की भाँति मुखवाले, कलातीत, कालरूप, गति से हंस को भी पराजित करनेवाले मुरारि, परमानन्दकन्द उस गोविन्द का भजन करो।

अ० पा०

हरिकृष्णजी 'कमलेश'

आपका जन्म व्रजमण्डल के लठावन (डीग, भरतपुर) के एक मध्यमवर्गीय गौड़ ब्राह्मण-परिवार में १ दिसम्बर १८९३ ई० को हुआ था। प्रारंभ से ही आपको ऐसे वातावरण में रहना पड़ा कि जीवन की धारा ही कृष्ण-प्रेम से जुड़ गयी। वंश-परम्परा से आप रामानुज-संप्रदाय के अनुयायी और भरतपुर में अधिकारी जगन्नाथदासजी के परम कृपापात्र थे। उनके साथ रहते हुए इनका तोताद्रि मठ से भी सम्पर्क हुआ। बाद में काम्यवन के पुष्टिमार्गीय आचार्य श्री देवकीनन्दनजी गोस्वामी के सम्पर्क में आये और उनके द्वारा संचालित आलवद्री स्थित चिकित्सालय में प्रमुख चिकित्सक के रूप में काफी दिनों तक कार्य किया। गोस्वामीजी से प्रगाढ़ सम्बन्ध होने के कारण इनके मन पर पुष्टिमार्ग का गहरा संस्कार पड़ गया। इसके अनंतर स्वतन्त्र चिकित्सा-कार्य करने तथा श्री गिरिराजजी की पाक्षिक परिक्रमा का क्रम चलने पर ये अनेक बंगीय साधुओं के सम्पर्क में आये। विशेषतः परमहंस पंखावाले महाराज, पं० रामकृष्ण पंडित, महात्मा माधवदास, महात्मा गौर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोविन्ददास, महन्त उद्धारणदास, बाबा नृसिंहदास प्रभृति कृष्ण-भक्तों के प्रभाव से आप चैतन्य-मत की ओर उन्मुख हुए और अन्ततः उसीमें दीक्षित हो गये।

नवद्वीप-निवासी बाबा श्री हरिदास तथा कुसुम सरोवर के बाबा कृष्णदास से आपका नियमित सम्पर्क रहता था। बाबा कृष्णदास तो इन्हें अपना ज्येष्ठ गुरुभाई ही मानते थे। इन संतों की कृपा से ये अनन्य कृष्ण-भक्त बन गये। ये भक्ति-चर्चा चलते ही गद्‌गद एवं रोमांचित हो उठते थे। स्वाध्याय, भगवद्-भजन एवं श्री गोपालजी की अर्चना दिनचर्या बन गई।

अब चिकित्सा का काम भी ये सेवाभाव से ही करते थे। अनेक साधु-महात्मा भक्ति-चर्चा एवं मार्ग-दर्शन के लिए आपके पास आते थे। साधुओं और विद्वानों की सेवा तथा मंदिरों के जीर्णोद्धार के लिए आप मुक्तहस्त से दान देते थे।

छात्रों को भागवत पढ़ाना, संस्कार करके उन्हें भक्ति की ओर उन्मुख करना तथा भागवत-जीवन का उच्च आदर्श प्रस्तुत करके सद्‌गृहस्थ बनाना इनका व्यसन बन गया था। इस महान् गृहस्थ सन्त का गोलोकवास ७४ वर्ष की आयु में १२ जनवरी १९६७ ई० को हुआ।

आपकी अधिकांश रचनाएँ ब्रजभाषा में है। खड़ी बोली हिन्दी में बंगीय भक्तों की संस्कृत एवं बंगला की रचनाओं के कुछ अनुवाद भी किये हैं। उनमें प्रमुख हैं—प्रेमानन्द-कृत 'मनःशिक्षा', श्री रूपगोस्वामी-कृत 'हंसदूत', कर्णपूर-कृत 'चैतन्यचन्द्रोदय' तथा वृन्दावन-शतक एवं प्रेमसम्पुट। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में आपने संस्कृत में अष्टकों की शैली में कुछ स्फुट रचनाओं तथा 'गोविन्दगोवर्धन' नामक बृहत् काव्य-ग्रन्थ की भी रचना की, किन्तु यह अभी अप्रकाशित है। इसका एक उदाहरण देखिये—

वन्देऽहं व्रजगौरवं गिरिवरं
सौन्दर्यरत्नाकरं
श्रीमद्गोकुलचन्द्रकेलिनिलयं
वल्लीद्रुमालङ्कृतम्।
नानारङ्गविहङ्ग सङ्गललितं
चिह्नैः शुभैरद्भुतं
यस्यां मामवलोक्य लोकललना
तेने गिरो गद्‌गदाः॥

श्या० श० वा०

हरिराय

वार्त्ता-साहित्य के निर्माताओं में श्री हरिरायजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने श्री गोकुलनाथजी की उपस्थिति में ही उनके वचनामृतों का सम्पादन करते हुए समस्त वार्त्ता-साहित्य पर भाव-टीकाएँ लिखी हैं, जिनसे उसके समझने में सुविधा होती है और उसका महत्त्व प्रकट होता है।

इनका जन्म सं० १६४७ विक्रमी की भाद्र कृष्ण पंचमी को गोकुल में श्री विट्ठलनाथजी के मन्दिर में, जहाँ इनके प्रपितामह श्री गोविन्दराय रहते थे और उसके प्रथम अधिष्ठाता थे, हुआ था। इस मन्दिर में आज भी श्री हरिरायजी की बैठक है। इनके पिता का नाम श्री कल्याणरायजी था। हरिरायजी के प्राकट्य के सम्बन्ध में सम्प्रदाय के ग्रन्थों में यह प्रसिद्ध है कि जब श्री कल्याणरायजी दस वर्ष के थे, तब एक दिन श्री आचार्यजी के छोटे भाई केशवपुरी, जो संन्यासी हो गए थे और दक्षिण भारत के किसी बड़े मठ के अधिपति थे, वहाँ आए और उन्होंने श्री गुसांईजी से अपनी गद्दी के लिए एक बालक माँगा। इस पर आपने कहा कि जिस बालक के पास ठाकुरजी नहीं होंगे, उसे दे दिया जाएगा। श्री कल्याणरायजी के पास ठाकुरजी नहीं थे। इसलिए उन्हें देना निश्चित हुआ। इस पर प्रातःकाल ही आप बीन बजाकर रो-रोकर गाने लगे—

हौं ब्रज मांगनों जू ब्रज तजि अनत न जाऊँ॥
बड़े-बड़े भूपत भूतल महियाँ दाता सूर सुजान।
कर न पसारों सीस न नाऊँ या ब्रज के अभिमान॥
सुरपति नरपति नागलोकपति मेरे रंक समान।
भाँति-भाँति मेरी आसा पूजी हौं ब्रज जन जिजमान॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं व्रत करि-करि देव मनाये अपनी घरनी संयूत ।
दियो विधाता सब सुख दाता गोकुलपति के पूत ॥
हौं अपनौ मन भायो लैहों कित बौरावत बात ।
औरन कौं घन-घन ज्यों बरसत मों देखत हंसि जात ॥
अष्ट सिद्धि नव निधि मेरे मन्दिर तुव प्रताप ब्रजईस ।
कहत 'कल्यान' मुकुन्द तात कर कमल धरो मम सीस ॥

इस पर श्री विट्ठलनाथजी ने आपको न देना निश्चित किया और आपको अपने श्रीमुख का उगार दिया तथा आशीर्वाद दिया जिसके फलस्वरूप ही श्री हरिरायजी का प्राकट्य माना जाता है और आपको 'श्रीप्रभुचरण' नाम से सम्बोधित किया जाता है। श्री विट्ठलनाथजी स्वयं भी 'प्रभुचरण' के नाम से प्रसिद्ध थे। हरिरायजी को साम्प्रदायिक दीक्षा इनकी आठ वर्ष की आयु में ही गोकुलनाथजी ने दी थी। तब से यह श्री गोकुलनाथजी के पास ही रहते थे। इन्होंने सेवा-पद्धति और साम्प्रदायिक भावनाओं का ज्ञान श्री गोकुलनाथजी द्वारा प्राप्त किया था। गोकुलनाथजी को इन्होंने अपनी '१०८ नामावली' में गुरुरूप में स्वीकार किया है। गोकुल में मुसलमानी उपद्रव होने के कारण विक्रम संवत् १७२५ के लगभग ये वहाँ से खिमनौर (श्री नाथद्वारा से ६ मील दूर, उदयपुर राज्य) चले गये थे और अपने ठाकुरजी को भी साथ लेते गए थे जहाँ इन्होंने उनकी प्रतिष्ठा की थी। यहाँ आज भी वह मन्दिर और बैठक विद्यमान है। इसकी पुष्टि आपके 'श्रीकृष्ण-चरण-विज्ञप्ति' नामक ग्रन्थ के इस श्लोक से होती है–

यवनारण्यसंजातवह्निःभीता विशेषतः ।
कृपावर्षणेनैव निजाः कार्या अमी यतः ॥

पुष्टि-सम्प्रदाय में एक चित्र सुरक्षित है जिसमें महाराणा राजसिंह इनके सामने हाथ जोड़कर बैठे हैं। 'श्रीनाथजी की प्राकट्य की वार्त्ता' से यह विदित होता है कि आप श्रीनाथजी की सेवा का बड़ा ध्यान रखते थे। ये बार-बार खिमनौर से 'श्रीनाथद्वारा' आते थे और तिलकायत को सेवा की त्रुटियों की सूचना देते रहते थे। आपके चरित्र की एक बड़ी विशेषता यह थी कि आप आचार्य होते हुए भी एक साधारण वैष्णव जैसी दीनता का भाव रखते थे। सम्प्रदाय में प्रचलित है कि आप खिमनौर में प्रतिदिन श्रीमद्-भागवत की कथा कहते थे। आपकी वाणी में ऐसा रस था कि जो वैष्णव दूर-दूर से सुनने आते थे वे रस-मग्न होकर लौटते समय मार्ग में उसीकी चर्चा करते थे। उनमें से कुछ एक चौतरे पर बैठकर जोर-जोर से कीर्तन व नृत्य करते थे, जिससे वहाँ के जैनियों की नींद में प्रतिदिन बाधा पड़ती थी। जब उन्होंने श्री हरिरायजी से अपना संकट कहा तो इन्होंने सामान्य वेष में वहाँ जाकर वैष्णवों के भावों को देखा और ये स्वयं उनकी तल्लीनता देखकर अपने-आपको भूल-से गए। प्रसिद्ध है कि उस मण्डली में इन्हें श्रीनाथजी के भी दर्शन हुए, तब इन्होंने यह पद गाया—

हौं वारी इन वल्लभियन पर ।
मेरे तन को करौ बिछौना,
सीस धरौं इनके चरननतर ॥
भाव भरी देखो मेरी अँखियन,
मंडल मध्य विराजत गिरधर ।
वे तो मेरे प्राण जिवन धन,
दान दिये हैं श्री वल्लभ वर ॥
माया वाद खंड खंडन कौं,
प्रकट भये श्री विट्ठल द्विज वर ।
रसिक कहें आस इनकी करि,
वल्लभियन की चरणरज अनुसर ॥

इस पर जैनियों के मन में भी वैष्णव होने की इच्छा हुई और उन्होंने उपदेश माँगा। आपने उनको अष्टाक्षर-मंत्र देकर उनको कंठी बाँधी और उन्हें निम्नलिखित पद द्वारा जीवन के कर्त्तव्य का बोध कराया—

जीवन जो ऐसे बनि आवे ।
श्री वल्लभ श्री विट्ठल प्रभु की,
शरणागति जो पावे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादश-तिलक सहित मुद्राधर,
तुलसी कण्ठ धरावै।
प्रेम सहित जो नन्दनन्दन के,
जन्म कर्म गुण गावे॥

श्री भागवत मुख्य रस टीका,
अपने श्रवन सुनावे।
भूषन वसन विचित्र बहुत रंग,
प्रभु को लाड़ लड़ावे॥

भली भाँति सामग्री करिके,
प्रभु को भोग लगावे।
प्रभु के भक्तन सो हिल मिलिके,
यह प्रसाद जो पावे॥

श्री गोकुल श्री गोवर्धन बसिके,
सेवा दृढ़ मन लावे।
श्यामा-श्याम संगम की लीला,
ध्यान हृदय में आवे॥

श्री यमुनाजी सौं अधिक सनेह करि,
मुख जलपान करावे।
'रसिक' कहे पग बाँधि घूंघरू,
अपनौ अंग नचावे॥

हरिरायजी शरीर से बहुत सुन्दर थे और बड़े संयमी थे। आपने लगभग सवा सौ वर्ष की लम्बी आयु पायी थी। आपकी वाणी में वैसा ही रस था जैसा आपके गुरुदेव श्री गोकुलनाथजी की वाणी में था।

एक दिन खिमनौर में एक स्त्री आप पर आपकी वाणी के रस के कारण आसक्त हो गयी, तब आपने उसे यशोदा की गोद में खेलते हुए कृष्ण के रूप में दर्शन दिये और 'कामाख्य-दोष-विवरण' नाम के एक संस्कृत-ग्रन्थ की रचना करके उसको समझाया कि काम भक्ति-मार्ग में एक महान् बन्धन है। 'कल्प-द्रुम' के अनुसार आपके चार पुत्र थे, जिनका नाम श्री गोविन्दरायजी, श्री विट्ठलरायजी, श्री छोटाजी तथा श्री गोराजी था। आपके एक छोटे भाई भी थे, जिनका नाम श्री गोपेश्वरजी था। 'शिक्षापत्र' नामक ग्रन्थ आपको परदेश से लिखे गये पत्रों का संग्रह है। वैष्णवों पर इनकी अपार श्रद्धा थी। इसलिए आपने वैष्णवों की वार्त्ताओं पर भाव-टीका रची है। उनके सम्बन्ध में आप सदैव सतर्क रहते थे और उनकी सेवा और सत्संग के लिए सदा इच्छुक रहते थे। आपके एक अनन्य कृपापात्र हरिजीवनदास नाम के सेवक थे, जो रमण-रेती में घूमा करते थे और जिन्हें मानसी सेवा सिद्ध थी। हरिरायजी ने अपने अनुगत सभी वैष्णवों को आदेश दे रखा था कि जिस समय उनको जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसकी पूर्ति यथा-शक्ति होनी चाहिये और उसकी सूचना उन्हें भी मिल जानी चाहिए। काका वल्लभजी के 'बावन-वचनामृत' के अनुसार एक दिन श्री हरिजीवनदास एक बुढ़िया के यहाँ गये, जहाँ उसने उनको श्री ठाकुरजी के लिए तैयार होनेवाली खीर भेंट कर दी। इस पर श्री हरिरायजी ने उस बुढ़िया से कहा कि तूने मार्ग का सिद्धान्त पहचान लिया है। समकालीन वैष्णवों के प्रति आपके क्या भाव थे, यह आपके द्वारा विरचित 'दास्याष्टक' से प्रकट हो जाता है—

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ
श्रीवल्लभस्वामिनो।
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा
ये सन्निधिस्थायिनः॥

ये वा तद्गतभावभादितमनो
मोदान्विताः सन्ततं।
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं
किं वा फलं जन्मनः॥

'जो श्री वल्लभाधीश के चरणों का ध्यान करते हैं, जो उनके गुणगान और सेवा में तत्पर हैं, जो उनके सान्निध्य में रहते हैं और जो उनकी भाव-भावना से अपने तन-मन में नित्य आनन्दयुक्त हैं, ऐसे भगवदीयों का दास्य मुझे सदा प्राप्त हो। जन्म का दूसरा और क्या फल है?'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये कृष्णस्य कृपायुताः प्रतिदिनं
तन्मार्गचिन्तापराः ।
ये वा लौकिक-वैदिकादि सकलं
तत्कर्तृकं मन्वते ।।
येषामन्यदुपास्यमेव न परं
चित्ते समारोहति ।
स्वीयत्वेन वृतास्त एव सततं
मद्रक्षका भूतले ।।

'जो श्रीकृष्ण के मुखारविन्द के अवतार महाप्रभुजी की कृपा से युक्त हैं, प्रतिदिन उनके मार्ग का विचार करने में तत्पर हैं, जो लौकिक, वैदिक सभी कार्यों में उनका कर्तृत्व मान रहे हैं, जिनके चित्त में अन्य कोई उपास्य है ही नहीं, जिनको प्रभु ने स्वकीय रूप से अंगीकार किया है, वे ही भूतल में मेरे रक्षक हों।'

ये तद्वाक्यविचारमात्रचतुरा
गूढार्थबोधे रताः ।
ये विश्वासयुताः कृतौ च कथिते
श्रीवल्लभस्वामिनः ।।
ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा
तप्ता विरक्ताः सुखे ।
तद्दास्यं प्रतिजन्म मे फलतु किं
सिद्धैः फलैरन्यतः ।।

'जो श्री वल्लभाधीश की कृति में और कथन में विश्वास करनेवाले हैं, जो उनके मुखारविन्द के दर्शन की इच्छा से सदा तृप्त रहते हैं, जो संसार-सुखों से विरक्त हैं, ऐसे भगवदीयों का दास्य प्रतिजन्म मुझे फलित हो। इसके अतिरिक्त अन्य फलों से क्या प्रयोजन ?'

ये श्री वल्लभपादसेवनकृते
दीना स्वदेहादिको-
पेक्षास्तत्परचेतनास्तदुदितं
सर्वं स्वतः कुर्वते ।।
येषां बुद्धिरहर्निशं समधिकां
तत्तोषणे सादरा-
स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः
पातः परं मे फलम् ।।

'जो श्री वल्लभ के चरण-सेवन के लिए दैन्य लिए हुए हैं, अपने देहादिकों की उपेक्षा करते हैं ऐसे महाप्रभुजी में परायण बुद्धिवाले हैं, उनका सब कार्य आप स्वतः करते हैं। जिनकी बुद्धि उन महाप्रभु को प्रसन्न करनेवाली है, उन सत् पुरुषों के चरणों में गिरना ही मेरे लिए परम फल है।'

ये वा तत्प्रियनन्दसूनुचरणा-
सक्ताः पुनः स्वामिनो
दास्यं शुद्धतथातदीयहृदया-
भिप्रायमातन्वते ।
ये जीवत्फलमेतदेव निखिलं
बुद्धचा सदा मन्वते
तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः
सेवा फलं जायताम् ।।

'जो उन महाप्रभुजी के प्रिय नन्द-नन्दन के चरणों में आसक्त हैं, श्री ठाकुरजी का दास्य उनके हृदय के अभिप्राय को जानकर शुद्ध रूप से करते हैं, और जो बुद्धि से इसीको जीवन का परम फल मानते हैं, उन भगवदीयों के चरण-कमलों में मुझे सेवा का फल प्राप्त हो।'

ते तद्बोधनचातुरीकलनतः
सन्तुष्टचित्ताः सदा
ये वा मानससेवनां तदुदितां
मुख्यां परां जानते ।
ये 'दोषाः सकलो निवृत्त' इति त-
द्विश्वासतो मन्वते
तेषामेव ममास्तु पादकमल-
द्वन्द्वे परा रेणुता ।।

'जो श्री महाप्रभुजी के समझाने की चातुरी के विचार से सदा सन्तुष्टचित्त है, जो उनके द्वारा की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गई मानसी सेवा को मुख्य मानते हैं, जो 'मेरा सब दोष निवृत्त हुआ' ऐसा उन पर विश्वास करके मानते हैं, उन भगवदीयों के चरण कमलों की रज मैं होऊँ।'

ये गोपीपतिपादरेणुभजने
श्रीवल्लभेकाश्रिता
ये वा दास्यपरम्परामुपगताः
प्राप्ताः परां दीनताम्।
ये 'स्वीयं सकलं तदीयमि'ति हृ-
द्यन्तस्थितं मन्वते
तेषामस्मि जनोऽथ दासपदवीं
प्राप्तः सदा जन्मनि॥

'जो श्री गोपीपति श्रीकृष्ण के चरण की रेणु के भजन में श्री वल्लभाधीश के आश्रयवाले हैं, जो दास्य की परम्परा को प्राप्त हुए हैं, श्रेष्ठ दीनता को प्राप्त हैं, जो अपने हृदय में ऐसा मानते हैं कि 'सब कुछ प्रभु का है', उनका दास मैं जन्म-जन्म में होना चाहूँगा।'

ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये
तापात्मकं सुन्दरं
साकारं सरसं रसात्मकतया
ख्यातं हि जातं भुवि।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सततं
संकीर्त्तयन्त्यादरात्
तेषां दैन्यभरेण ये प्रतिभवं
दास्यं हि भूयात्फलम्॥

'जो तापात्मक, सुन्दर, सरस, रसात्मक रूप से पृथ्वी में प्रकट हुए हैं और प्रसिद्ध हैं, ऐसे महाप्रभुजी के स्वरूप का जो रात-दिन चिन्तन करते हैं और जो आदर से सदा गाते हैं, ऐसे भगवदीयों का दास्य ही दीनता के भाव से प्रतिजन्म में मुझे प्राप्त हो।'

वैष्णव को ये भगवान् के समान मानते थे। इसके लिए 'शिक्षा-पत्र' के यह तीन श्लोक प्रामाणिक सिद्ध होंगे—

तदीयेषु च तद्बुद्धया भरः स्थाप्यो विशेषतः।
यथा दूतीषु भवति विषयीणां मतिस्तथा॥

धनं गृहं यथा कृष्णे तथा भक्तिस्थिते हि च।
विनयो व्यक्तमेवं हि प्रभोर्भावो भविष्यति॥

तदीयस्नेहतस्तुष्टास्तुष्टः कृष्णो न संशयः।
तदीयास्तु निजाचार्यचरणैकपरायणाः॥

—शिक्षा-पत्र, श्लोक १९, २०, २१

डाकोर में आपकी एक बैठक है। यहाँ पर आपने श्री रणछोड़जी की पुनःप्रतिष्ठा की थी। रणछोड़जी को पहले-पहल पन्द्रहवीं शताब्दी में बोडाना-भक्त द्वारका से डाकोर लाये थे। औरंगजेब के समय में उन्हें एक बावली में छिपा दिया गया था, हरिरायजी ने उन्हें पुनः आज जो मंदिर है, उसमें स्थापित किया था। यहाँ वल्लभ-कुल के आचार के अनुसार सेवा होती है।

हरिरायजी की एक महान् लेखक के रूप में प्रसिद्धि है। इनकी निम्नांकित कृतियाँ मिलती हैं—१. ब्रह्मवाद, २. श्री गोकुलेश-सेवा-आह्निक, ३. सेवा-पद्धति, ४. पुष्टिमार्गीय ध्यान-प्रकार-विवेचन, ५. शिक्षा-पत्र, ६. गुणसागर, ७. सहस्रश्लोकी-भावना, ८. सप्तश्लोकी की टीका, ९. षट्षष्ठिका, १०. श्रीमद्प्रभो-चिन्तनप्रकार, ११. मूल-निरूपण, १२. कृष्ण-शब्दार्थ-निरूपण, १३. मार्गस्वरूप-निर्णय, १४. स्वमार्गीय-कर्तव्य-निरूपण, १५. पुरुषोत्तम-आविर्भाव-निर्णय, १६. भक्ति-द्वैविध्य-निरूपण, १७. स्वमार्गीय-भक्ति-द्वैविध्य-विवेक, १८. स्वमार्गीय-मुक्ति-द्वैविध्य-निरूपण, १९. सर्वात्मभाव-निरूपण, २०. प्रभु-प्रादुर्भाव-विचार, २१. स्वमार्गीय-रहस्य, २२. भक्तिमार्ग-पुष्टिमार्गत्व-निश्चयः, २३. स्वमार्गीय-सेवायत्त-रूप-निर्णय, २४. पुष्टिमार्गीय-स्वरूप-निरूपण, २५. स्वमार्गीय-स्वरूपस्थापन-प्रकार, २६. स्वमार्गीय-शरणसमर्पण-सेवादिनिरूपण, २७. पुष्टिपथ-मर्मनिरूपण, २८. पुष्टिमार्ग-लक्षणानि, २९. ब्रह्म-सम्बन्ध-वाक्य-कठिनांश-विवेचनं, ३०. अष्टाक्षरमंत्र-पूर्वपक्ष-निरास, ३१. स्वमार्ग-मर्यादानिरूपण, ३२.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वमार्ग-रहस्यनिरूपण, ३३. मधुराष्टक-तात्पर्य, ३४. निवेदन-तात्पर्यार्थ, ३५. स्वमार्ग-मूलनिरूपण, ३६. मूलरूप-संशयनिराकरण, ३७. श्रीमहाप्रभु-प्राकट्य, ३८. स्वमार्गीय-भावनास्वरूप-निरूपण, ३९. स्वरूप-तारतम्य-निर्णय, ४०. अन्तरंग-बहिरंगप्रपंच-विवेक, ४१. भाव-साधक-बाधकनिरूपण, ४२. श्रीमद्-प्रभो-सर्वान्तर-निरूपण, ४३. श्रीमद्प्रभो प्रादुर्भाव-निरूपण, ४४. भगवद्प्रादुर्भाव-सिद्धान्त, ४५ प्रभु-प्रादुर्भाव-विचार, ४६. प्रभुप्राकट्य-विचार, ४७. श्रीमद्प्रभोर्वयो-निरूपण ४८. अष्टाक्षर-मन्त्रार्थः, ४९. गद्यार्थ, ५०. जपस्वरूप-ध्यान, ५१. स्वमार्गशरण-द्वै-निरूपण, ५२. स्वमार्गीय-संन्यास-वैलक्षण्यनिरूपणम्, ५३. जन्मवैफल्य-निरूपणाष्टक, ५४. दुःसंगविज्ञान-प्रकार-निरूपण, ५५. कामाख्य-दोष-विवरण, ५६. निष्काम-लीला, ५७ बहिर्मुखत्व-निरूपण, ५८. बहिर्मुखत्व-निवृत्तिः, ५९. भगवद्प्रकृतिवर्णन, ६०. कथा-श्रवण-बाधक-निर्णय, ६१. सत्संग-निर्णय, ६२. गवां-स्वरूपवर्णनं, ६३ कार्पण्योक्ति, ६४. मदत्यागहेतु, ६५. मार्गशिक्षा, ६६. निजाचार्याष्टक, ६७ वल्लभ-पंचाक्षर-स्तोत्र, ६८ वल्लभाष्टक, ६९. प्रभाताष्टक, ७०. गोकुलचन्द्राष्टक, ७१. श्री नवनीतप्रियाष्टक, ७२. भुजंगप्रयाताष्टक, ७३. स्मरणाष्टक, ७४. स्वप्रभु-विज्ञप्ति, ७५ द्वितीय-स्वयंप्रभु-विज्ञप्ति, ७६. श्रीकृष्ण-चरण-विज्ञप्ति, ७७. विज्ञप्ति, ७८. दैन्याष्टकं, ७९. षोडशस्तोत्र, ८०. श्रीकृष्णशरणाष्टकं, ८१. द्वितीय श्रीकृष्णाष्टकं, ८२. पंचाक्षरमंत्र-गर्भ-स्तोत्र, ८३. भगवत्-चरणचिह्नवर्णनं, ८४. वैविध्य-स्तोत्र, ८५. मध्याह्नलीला, ८६. श्री गोकुलेश-प्रवेशलीला, ८७. प्रामाणिकाष्टक, ८८. श्री गिरधराष्टकम्, ८९. प्रार्थना-ष्टकं, ९०. श्रीगोपजनवल्लभाष्टकं, ९१. प्रातः-युगलस्मरणं, ९२. श्री नागरी-नागर-स्तोत्र, ९३. विपरीत-शृंगार-फलकं, ९४. राधाष्टकं, ९५. मुख्य-शक्ति-स्तोत्रं, ९६. स्वामिनी-प्रार्थनाष्टकं, ९७ यमुना-विज्ञप्ति, ९८. श्री वल्लभशरणाष्टकं, ९९ श्री वल्लभ-चरण-विज्ञप्ति, १००. दैन्याष्टकम्, १०१. हाहा दैन्या-ष्टकं, १०२. श्री वल्लभाष्टकं, १०३. वैश्वानराष्टकं, १०४. श्रीमदाचार्य-सकलावतार-साम्यरूपम्, १०५. श्री महाप्रभु-अष्टोत्तरशतनामानि, १०६. श्रीमदा-चार्यचिन्तन, १०७. प्रातःस्मरणम्, १०८. विट्ठलेश-अष्टाक्षर-शतनामानि, १०९. श्रीगोकुलेश-अष्टाक्षरशत-नामानि, ११०. श्री गुरुदेवाष्टकम्, १११. प्रभुस्वरूप-निरूपणाष्टकम्, ११२. स्वप्रभुविज्ञप्ति, ११३. रसात्मक-भावस्वरूप-निरूपणं, ११४. चतुश्लोकी, ११५. भगव-दीय-परीक्षणम्, ११६. तदीयनाम, ११७. सिद्धान्त-संक्षेप-निरूपण, ११८. स्वमार्ग-सर्वस्वं, ११९. गर्वापहा-राष्टकं, १२०. राजभोग-भावना, १२१. वाटिकासमर्पण-भाव-निरूपणं, १२२. स्वतन्त्र लेख, १२३. फलविवेक, १२४. भगवद्-शास्त्रनिर्णय, १२५. वाक्चक्षुमुख्यत्व-निरूपणम्, १२६. सर्वाभोग्य-सुधाधिकारनिरूपणं, १२७. चतुर्भुज-स्वरूपविचार, १२८. भावपोषकं, १२९. गोपीवचन-दिननिर्वाहकं, १३०. दास्याष्टकं, १३१. श्री नृसिंह - वामन - जयन्त्युत्सव - व्रत-वैशिष्ट्यानि, १३२. श्री भागवत पुस्तक-नित्यपूजनविधि, १३३. अष्टपदीद्वय, १३४. पदानिद्वय, १३५. पद्यद्वय, १३६. शिक्षापत्र, १३७. अनेक अष्टपदिका, १३८. अनेक संस्कृतपद, १३९. सेवापद्धति, १४०. वल्लभप्रादुर्भाव, १४१. दाम्पत्योरेक - गुरुशिष्यत्वे-दोषाभाव-विचार, १४२. विट्ठलनाथाष्टकं, १४३. गोविन्दाष्टकं, १४४. त्वदीयाष्टकं, १४५. निरूपणाष्टकं, १४६ शून्यवाद, १४७ हरिशरणाष्टकं, १४८. सर्वोत्तम की टीका, १४९. षष्ठीपूजन, १५०. मार्गानुक्रमध्यान, १५१. गोकुलेश-विज्ञप्ति, १५२. गोकुलेशअष्टकं, १५३. सेव्य-असेव्य-स्वरूपभेद-निरूपणं, १५४. ममोत्तम श्लोक की व्याख्या, १५५. निजसिद्धान्त-रहस्य, १५६. श्री कल्याणराय-अष्टोत्तरशतनामानि, १५७ छप्पनभोग-विधान।

हिन्दी की रचनाएँ

१. स्वरूपभावना, २. लीलाभावना, ३. भावभावना, ४. श्रीनाथद्वार की भावना, ५. श्री महाप्रभुजी के स्वरूप की भावना, ६. श्री गुसांईजी के स्वरूप की भावना, ७. सात बालकों की भावना, ८ चरण-चिह्न की भावना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९. श्री स्वामिनीजी के चरण-चिह्न की भावना, १०. पुष्टि-दृढ़ाव, ११. छप्पन भोग की भावना, १२. भाषा-शिक्षापत्र, १३. ख्याल, १४. रेखता, १५. धोल, १६. चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता पर भावप्रकाश, १७. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता पर भावप्रकाश, १८. महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्त्ता पर भावप्रकाश, १९. होरी की भावना, २०. छाक की भावना, २१. चिन्तन को धोल, २२. नवगृह की भावना, २३. नित्यलीला, २४. स्नेहलीला, २५. दामोदरलीला-वनमाला, २६. नवरात्रि-हुलास, २७. कलिचरित्र (संदिग्ध, कांकरौली सरस्वती भंडार बंध संख्या ६२।६।२), २८. मार्गशिक्षा, २९. दानलीला, ३०. नवगृह-आकार, ३१. जयप्रकार, ३२. दशमर्म, ३३. भावनालय, ३४. मार्ग-स्वरूप-सिद्धान्त, ३५. श्रीगोकुलनाथजी के रास को प्रसंग, ३६. द्विदलात्मक-स्वरूपविचार, ३७. धमार, ३८. यमुनाजी के धोल, ३९. ग्रन्थात्मक-भगवत्स्वरूप-निरूपण, ४०. समर्पणगद्यार्थ, ४१. बालकन को स्वरूप, ४२. श्याम-सगाई, ४३. दीनता-आश्रय और बधाई के पद। संस्कृत तथा हिन्दी-रचनाओं के अतिरिक्त हरिरायजी ने गुजराती, पंजाबी और मारवाड़ी भाषा में भी पद लिखे हैं। ये अप्रकाशित हैं। कांकरौली सरस्वती भंडार में इनकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं। शेष प्रकाशित हैं। वे भी उसी भंडार में संगृहीत हैं। सम्प्रदाय से सम्बद्ध ऐसा कोई विषय नहीं है जिस पर आपने कुछ लिखा न हो। इनका एक पद पंजाबी और एक पद मारवाड़ी भाषा का प्रकाशित हो चुका है।

इन ग्रन्थों की संख्या और विविधता के कारण आपका अत्यन्त प्रतिभाशील होना सिद्ध है। ये संस्कृत और हिन्दी में समानाधिकार से रचना करते थे।

वैष्णव को भगवान् से भी अधिक महत्त्व देने के कारण तथा पुष्टि-दर्शन के पूर्ण पंडित होने के कारण ही आपने वार्त्ताओं का संकलन किया था और जहाँ कहीं वार्त्ता में आये हुए विषय अपनी गम्भीरता के कारण अथवा सैद्धान्तिक महत्त्व के कारण बोधगम्य प्रतीत नहीं हुए वहाँ आपने उन पर 'भाव-प्रकाश' लिखकर, मूल में कुछ प्रसंग बढ़ाकर, कुछ का विवेचन करके पीछे से उसका एक अलग संस्करण प्रस्तुत किया।

आपकी बहू का नाम 'सुन्दरवन्ता' था। उनकी भी कुछ रचनाएँ ब्रजभाषा और गुजराती में मिलती हैं। बाँसवाड़ा के महाराजाधिराज महारावल श्री कुशलसिंहजी ने आपको वि० सं० १७६२ में मिति असाढ़ शुक्ल पटेवा को एक पत्र खिमनौर भेजा था जो 'पुष्टिभक्तिसुधा' (बम्बई से प्रकाशित मासिक) वर्ष चार के पृष्ठ ८६ पर छपा हुआ है। इससे हरिरायजी की महानुभावता, शास्त्रीय ज्ञान और प्रतिष्ठा स्पष्टरूपेण प्रकाश में आ जाती है। हरिरायजी पुष्टिमार्गीय साहित्य के प्राण हैं। इनके ग्रन्थों के अध्ययन बिना कोई भी पुष्टिमार्ग के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है और न उसके निर्णय निःसंशयात्मक ही हो सकते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वार्त्ता-साहित्य का संकलन इनके समय में हुआ है और भावनावाले संस्करण के प्रणेता भी यही हैं।

रा० कृ० श०

श्री रूपगोस्वामिकृत 'पद्यावली' (पद्या०) तथा अन्य स्रोतों में निर्दिष्ट संस्कृत-वाङ्मय के कुछ अज्ञातवृत्त राधाकृष्ण-भक्तों और उनकी कृतियों की सूची

१. अंगद	पद्यावली, एक श्लोक—दूती के प्रति राधा का वाक्य
२. अखिलानन्द	कृष्णचन्द्र-चरित्र
३. अनन्तदेव	कृष्णभक्ति-चन्द्रिका
४. अनन्ताचार्य	पद्या०, एक श्लोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५. अनन्यदासस्वामी	रसकृष्णमाधुरी
६. अपराजित	पद्या०, एक श्लोक—राधा का विरहजन्य गीत
७. अभिनन्दन	पद्या०, एक श्लोक—श्रीकृष्ण के माता-पिता का विस्मय
८. अविलम्बित सरस्वती	पद्या०, एक श्लोक—मङ्गलाचरण
९. आनन्द	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
१०. कविकेसरी	हरिकेलि लीलावती
११. कविचन्द्र	सारलहरी, काव्यचन्द्रिका, धातुचन्द्रिका
१२. कविरत्न	पद्या०, एक श्लोक—श्रीकृष्ण-माहात्म्य-सम्बन्धी
१३. कविराज मिश्र	पद्या०, एक श्लोक—भक्त-निष्ठा और निर्जन-क्रीड़ा-सम्बन्धी
१४. कविशेखर	पद्या०, हरिविलास, एक श्लोक—मथुरा-महिमा से सम्बद्ध
१५. कविसार्वभौम	पद्या०, एक श्लोक—श्रीकृष्ण के शैशव से सम्बद्ध
१६. किशोर-विलास	गोपाल-चम्पू
१७. कुमार	पद्या०, एक श्लोक
१८. कृष्णदत्त	राधा-रहस्य
१९. कृष्णदास	सारंगरंगदा ('कृष्णकर्णामृत' की टीका)
२०. कृष्णभट्ट	ईश्वर-विलास
२१. कृष्णमिश्र	कृष्णलीला
२२. कृष्णशरण	गोपिका-विरह-गीत
२३. केशव	आनन्द-वृन्दावन-चम्पू
२४. केशव क्षत्री	पद्या०, एक श्लोक—गोचारणादि लीला-सम्बन्धी
२५. केशव भट्टाचार्य	पद्या०, एक श्लोक—उद्धव द्वारा राधा के लिए हरि-सन्देश
२६. केशवार्क	कृष्णक्रीडित
२७. क्षमाराव पण्डिता	मीरा-लहरी, तुकाराम-चरितम्, रामदास-चरितम्
२८. क्षेमेन्द्र	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
२९. गंगाधर भट्ट	पद्या०, गाथासप्तशती
३०. गर्वकवीन्द्र	पद्या०, एक श्लोक—भक्तनिष्ठा-सम्बन्धी
३१. गिरिसुन्दरदास	गोपाल-विजय
३२. गोवर्धन	मधुकेलिवल्ली
३३. गोवर्धनभट्ट	राधाकुण्डस्तव
३४. गोविन्द	कृष्णचन्द्रोदय
३५. गोविन्द	पद्या०, एक श्लोक—औत्सुक्य-प्रार्थना-सम्बन्धी
३६. गोविन्ददास	सङ्गीत-माधव
३७. गोविन्द भट्ट	पद्या०, एक श्लोक
३८. गोविन्द मिश्र	पद्या०, एक श्लोक—वंशीचौर्य-सम्बन्धी राधा का कथन
३९. घनश्यामदास	गोविन्दरतिमञ्जरी
४०. चक्रपाणि	पद्या०, एक श्लोक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४१. चतुर्भुज	हरिचरितकाव्य
४२. चन्द्रगोपालदेव गोस्वामी	माधवाष्टक
४३. चन्द्रदास	प्रेमामृत-चम्पू
४४. चित्रभानु	भागवतोद्योत
४५. चिरंजीव	पद्या०, एक श्लोक—गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण का भाव
४६. चैतन्यचन्द्र	राधारसमञ्जरी
४७. चैतन्यदास	सुबोधिनी (कृष्णकर्णामृत की टीका), वंशी-शिक्षा
४८. जगदानन्द राय	पद्या०, एक श्लोक—नौकाक्रीड़ा-सम्बन्धी
४९. जगन्नाथ सेन	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
५०. जयदेव गोस्वामी	मङ्गलगीत और दशावतारस्तोत्र
५१. जीवदासवाहिनीपति	पद्या०, दो श्लोक—रासलीला-सम्बन्धी
५२. जेठालाल चीमनलाल	अक्षरपुरुषोत्तम-चरित्र, प्रभा-चरित्रम्
५३. तैरभुक्त कवि	पद्या०, दो श्लोक—राधा-विलाप व राधा-स्मृति में कृष्ण का कथन
५४. त्रिविक्रम	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
५५. दत्तात्रेय	कृष्णलीलाभूषण
५६. दशरथ	पद्या०, एक श्लोक
५७. दामोदर	पद्या०, एक श्लोक—राधा के प्रति चन्द्रावली का कथन
५८. दिनेश	राधाविनोद
५९. दिवाकर	पद्या०, एक श्लोक—राधा-तारुण्य के विषय में
६०. दीनानाथ	कृष्णावतार-लीला
६१. दीपक	पद्या०, एक श्लोक—चन्द्रावली सखी का वचन
६२. देवकीनन्दन	रासाब्धिमहाकाव्य (१४ सर्ग)
६३. धन्यकवि	पद्या०, एक श्लोक—राधाविलाप
६४. नन्दकिशोर गोस्वामी	गोविन्दाष्टक
६५. नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी	शुकदूत
६६. नन्दकुमार शर्मा	राधामानतरङ्गिणी
६७. नन्ददास	गोवर्धन-लीला
६८. नाथोक	पद्या०, एक श्लोक—राधा-सौभाग्य-सम्बन्धी
६९. नारायण तीर्थ	'कृष्णलीला-तरङ्गिणी'
७०. नारायण भट्टाचार्य	प्रेमाङ्कुर नाटक, व्रजचन्द्रिका, व्रजोत्सव-चन्द्रिका, व्रजमहोदधि, व्रजोत्सवह्लादिनी, बृहद्-व्रजगुणोत्सव, रसिकाह्लादिनी
७१. नील	पद्या०, एक श्लोक—व्रजदेवी का सन्देश
७२. नीलकण्ठ	मुकुन्दविलास
७३. पद्मनाभ	हरिविलासकाव्य
७४. पद्मनाभ भट्ट	गोपाल-चरित
७५. पुरुषोत्तम	पद्या०, एक श्लोक—ध्यान के विषय में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७६. पुरुषोत्तम देव	पद्या०, खण्डिता, मानिनी आदि के विषय में कुछ श्लोक
७७. पुरुषोत्तमाचार्य	पद्या०, एक श्लोक—भक्त-निष्ठा के विषय में
७८. पुष्कराक्ष	पद्या०, एक श्लोक—श्री राधा का पूर्वराग
७९. पुष्पकोटि	कृष्णविलास
८०. प्रभाकर	कृष्णविलास
८१. बहेचरलाल त्रिकमजी पटेल	वृत्तविहारिणी-गीता, श्रीकृष्णशरणम्, गीताभुवनम्,
८२. बाल	भागवत-पुष्पाञ्जलि, प्रेमलक्षणाभक्ति, संगीत-गीता-पुष्पाञ्जलि
८३. भवानन्द	पद्या०, नाम-माहात्म्य और औत्सुक्य-प्रार्थना के विषय में एक श्लोक
८४. भास्कर	कृष्णोदन्त
८५. भीमभट्ट	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
८६. मंगल	पद्या०, एक श्लोक—कृष्ण-शैशव के विषय में
८७ मंगलजी हरजीवन ओझा	श्रीभगवत्शरणम्
८८. मदन	कृष्णलीला
८९. मनोहर	पद्या०, नौका-क्रीड़ा-सम्बन्धी कुछ श्लोक
९०. मयूर	पद्या०, एक श्लोक—कृष्ण द्वारा स्वप्न-दर्शन
९१. माधव	पद्या०, एक श्लोक—भक्तनिष्ठा-सम्बन्धी
९२. माधव चक्रवर्ती	पद्या०, एक श्लोक—रासलीला-सम्बन्धी
९३. माधव भट्ट	प्रणयिमाधव-चम्पू तथा दानलीला
९४. माधव सरस्वती	पद्या०, एक श्लोक
९५. माधवानन्द	आनन्द-वृन्दावन-चम्पू
९६. मानसिंह	वृन्दावन-मञ्जरी
९७. मुकुन्द भट्टाचार्य	पद्या०, दो श्लोक—राधा का पूर्वराग व नौका-क्रीड़ा
९८. मूलचंद तुलसीदास तेलीवाला	पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा-भेद, भागवत सुबोधिनी टीका, शृंगाररस-मंडनम्
९९. मोटक	पद्या०, एक श्लोक
१००. मोतीराम	कृष्णविनोद
१०१. मोहनानन्द	रसकल्पलता
१०२. यदुनन्दनदास	विलाप-कुसुमाञ्जलि
१०३. यादवेन्द्र पुरी	पद्या०, श्रीकृष्ण-कथा-माहात्म्य तथा भक्तनिष्ठा-सम्बन्धी कुछ श्लोक
१०४. योगेश्वर	पद्या०, दो श्लोक—गोचारणादि के विषय में तथा मंगलाचरण
१०५. रघुनाथ	पद्या०, एक श्लोक—राधाविलाप-सम्बन्धी
१०६. रघूत्तम तीर्थ	मुकुन्द-विलास
१०७. रङ्क	पद्या०, उत्कण्ठिता, विप्रलब्धा तथा श्रीकृष्ण-दूती-वाक्य-सम्बन्धी कुछ श्लोक
१०८. रसिकानन्द गोस्वामी	निकुञ्ज-केलिस्तोत्र
१०९. राधाकृष्ण गोस्वामी	दशश्लोकी भाष्य
११०. राधिकानाथ गोस्वामी	सुरतस्मरणाष्टक और राधिकाष्टक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१११. रामचन्द्र (प्रथम)	राधाविनोद
११२. रामचन्द्र	गोविन्दलीला, कृष्णविजय
११३. रामचन्द्र भट्ट	गोपाललीला
११४. रामानन्द	पद्या०, एक श्लोक—नाम-माहात्म्य विषयक
११५. रुद्र	पद्या०, राधाविलाप, राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
११६. रुद्र न्यायवाचस्पति	वृन्दावन-विनोद
११७. लक्ष्मीधर	पद्या०, नाम-माहात्म्य तथा संकीर्तन-सम्बन्धी कुछ श्लोक
११८. लक्ष्मीनारायण	कृष्णाष्टक (प्रथम, द्वितीय), गोपालाष्टक स्तोत्र, गोविन्ददशक
११९ लोकनाथ भट्ट	कृष्णाभ्युदय नाटक
१२०. वनमाली	पद्या०, एक श्लोक—चन्द्रावली सखी का वचन
१२१. वरददेशिक	कृष्णाभ्युदय
१२२ वसुदेव	पद्या०, एक श्लोक—श्रीकृष्ण द्वारा प्रदत्त स्वप्न-दर्शन
१२३. वासव	पद्या०, एक श्लोक
१२४. विश्वनाथ	पद्या०, एक श्लोक—खण्डिता के विषय में
१२५. विश्वनाथ	कृष्णभावनामृत
१२६. विश्वनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य	कृष्णभावनामृत, ऐश्वर्यकादम्बिनी, माधुर्य-कादम्बिनी, प्रेमसम्पुट
१२७. विश्वनाथ सिंह	गोपालचम्पू
१२८. विष्णु शर्मा	एक श्लोक—व्रजदेवी का सन्देश
१२९. वीर सरस्वती	पद्या०, एक श्लोक
१३०. वृन्दावनदास	रासकल्पसारतत्त्व
१३१. वेङ्कटेश	श्रीनिवासविलासचम्पू, कृष्णामृत-तरंगिका
१३२. वेणीदत्त	वासुदेवचरित
१३३ शंकर नारायण	बालहरिवंश
१३४. शंकरलाल माहेश्वर शास्त्री	श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम्, पांचाली-चरितम्, केशवकृपालेश-लहरी, गोपालचिंतामणि-विजयम्, बालचरितम्, अरुन्धती-विजयम्
१३५. शंकरलाल शास्त्री	श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय
१३६. शङ्कर	पद्या०, दो श्लोक—राधा-विलाप तथा सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
१३७. शङ्कराचार्य	कृष्णविजय
१३८. शचीपति	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
१३९. शम्भु	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
१४०. शरण	पद्या०, गोदोहन तथा गोवर्द्धनोद्धार-सम्बन्धी कुछ श्लोक
१४१. शान्तिकर	पद्या०, एक श्लोक—राधा की सखी द्वारा कृष्ण को सन्देश
१४२. शारदाकार	पद्या०, एक श्लोक—विषय-ध्यान
१४३. शुकदेव गोस्वामी	द्वादशाक्षर वासुदेवस्तोत्र
१४४. शुभाङ्ग	पद्या०, दो श्लोक—विषय, भक्त के प्रति आशीर्वाद गोवर्धनोद्धार
१४५. शुभ्र	पद्या०, एक श्लोक—कुरुक्षेत्र में वृन्दावनाधीश्वरी की चेष्टा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१४६. शेषदीक्षित	कृष्णविलास
१४७ शौद्धोदक	पद्या०, एक श्लोक—गोवर्द्धनोद्धार
१४८. श्रीकराचार्य	पद्या०, एक श्लोक—औत्सुक्य-प्रार्थना
१४९. श्रीकृष्ण भट्ट	ईश्वर-विलास, पद्य-मुक्तावली
१५०. श्रीकृष्णशरण गोस्वामी	श्रीकृष्ण-विरुदावली
१५१. श्रीधर	पद्या०, दो श्लोक—विषय : प्रेम-सौभाग्य, नाम-माहात्म्य
१५२. श्रीनिवास राघव	कृष्णाभ्युदय
१५३. श्रीरंग कवि	पद्या०, श्रीराधा के पूर्वराग व अनुराग-सम्बन्धी कुछ श्लोक
१५४. श्रीवैष्णव	पद्या०, एक श्लोक—भक्त-माहात्म्य
१५५. षष्ठिवरदास	पद्या०, राधाविलाप तथा राधा के प्रति उद्धव के कथन
१५६. षाण्मासिक	दो श्लोक—राधाभिसार, राधाविलाप
१५७ सञ्जय कविशेखर	पद्या०, नौकाविहार, राधा-विलाप आदि विषयक श्लोक
१५८. सदानन्द	व्रजेन्द्रचरित
१५९. सर्वज्ञ	पद्या०, एक श्लोक—भक्त-माहात्म्य-विषयक
१६०. सर्वविद्या विनोद	पद्या०, भक्तों की उत्कण्ठा, गोपियों का प्रेमोत्कर्ष, श्रीराधाभिसार आदि विषयक कुछ श्लोक
१६१. सर्वानन्द	पद्या०, एक श्लोक
१६२. सर्वानन्द	पद्या०, भक्त-माहात्म्य तथा वसुदेव-देवकी के विस्मय-विषयक श्लोक
१६३. सारंग	पद्या०, दो श्लोक—भक्त के प्रति आशीर्वाद तथा चन्द्रावली के वचन
१६४. सुकुमार	कृष्ण-विलास
१६५. सुबन्धु	पद्या०, एक श्लोक—गोवर्द्धनोद्धार-विषयक
१६६. सुबल चन्द्राचार्य	राधासौन्दर्यमञ्जरी
१६७. सूर्यदास	पद्या०, एक श्लोक—नौका-क्रीड़ा-सम्बन्धी
१६८. हर	पद्या०, एक श्लोक
१६९. हरि	पद्या०, एक श्लोक—व्रजदेवी का सन्देश
१७०. हरिदास	पद्या०, एक श्लोक—भक्तों की उत्कण्ठा
१७१. हरिभट्ट	पद्या०, एक श्लोक—राधा-विलाप
१७२. हरिहर	पद्या०, दो श्लोक—राधा का अनुराग, श्रीराधाकृष्ण के उत्तर-प्रत्युत्तर

डॉ० अमरनाथ पाण्डेय

डॉ० मणिभाई ई० प्रजापति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

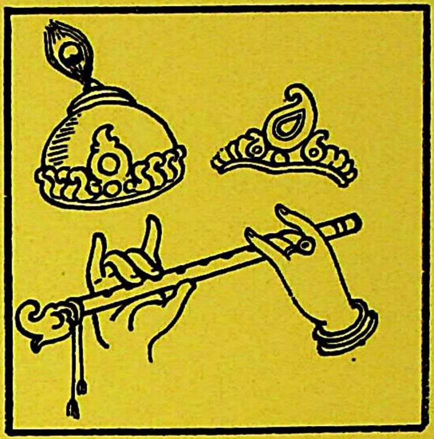

सिन्ध में कृष्णभक्ति का विकास

—डा० घनश्याम तोलानी

सिन्ध के राधाकृष्ण-भक्त

—डा० घनश्याम तोलानी

—डा० दयाल आशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिन्ध में कृष्ण-भक्ति का विकास

सिन्ध प्रदेश आर्य-संस्कृति के उद्भव तथा आरम्भिक विकास का क्षेत्र माना जाता है। ऋग्वेद में अत्यन्त विकसित तथा समृद्ध भूभाग के रूप में इसका उल्लेख है (द्रष्टव्य, ऋग्वेद, १०।७५।८) तथा भागवत में सिद्धों और मुनियों की साधना-स्थली 'नारायण' तीर्थ की पुण्यभूमि के रूप में इसका गुणगान किया गया है। भारतीय इतिहास के आदिकाल में इसकी सम्पन्नता सामान्य राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद अक्षुण्ण बनी रही और सिन्धु-प्रदेश राष्ट्र की मूलधारा से अविनाभावेन संपृक्त रहा। किन्तु अरब देशों में इस्लाम के उदय और द्रुतगति से विकास के साथ ही सहसा स्थिति बदल गई। ७१२ ई० में मुहम्मद बिन कासिम के सिन्ध पर आक्रमण एवं विजय के बाद नरसंहार, बलात् धर्म-परिवर्तन, आर्थिक-शोषण तथा अकल्पनीय अत्याचार का जो सिलसिला आरम्भ हुआ वह महमूद ग़ज़नवी, मुहम्मद ग़ोरी तथा गुलाम एवं खिलजो-वंश के सुलतानों के शासन-काल तक अनवरत रूप से चलता रहा। इस दीर्घकालव्यापी विधर्मी शासन ने सिन्ध की परम्परागत संस्कृति एवं सभ्यता के विशाल प्रासाद को ध्वस्त कर खंडहरों में परिवर्तित कर दिया और उसके स्थान पर इस्लामी धर्मदर्शन पर आधारित एक नई सभ्यता का शिलान्यास किया। यहाँ के प्राचीन निवासी विजित हिन्दू अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उसके बहुत से तत्त्व अपनाने को बाध्य हुए। इनमें सर्वप्रमुख था इस प्रदेश की लोक-व्यवहृत भाषा व्राचड़ अपभ्रंश के स्थान पर राज्यभाषा के रूप में फारसी का ग्रहण। इसके परिणामस्वरूप सिन्धी भाषा में अरबी-फारसी शब्दावली और अरबी लिपि का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया और इस प्रदेश की परम्परागत भाषा तथा लिपि उपेक्षित होती गई। यह संयोग ही था कि व्यापारियों और धर्मपरायण हिन्दुओं के द्वारा देवनागरी, गुरुमुखी आदि लिपियों और सिरेली, विचोली, लाड़ी, थरेलो, कच्छी, लासी प्रभृति उपभाषाओं के माध्यम से पृथ्वीपुत्रों ने संस्कृत भाषा की विरासत की रक्षा करते हुए अपनी सांस्कृतिक अस्मिता का लोप नहीं होने दिया।

उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों की तरह यहाँ भी मुस्लिम-शासन स्थापित हो जाने के बाद धर्म-प्रचार के लिए विजेताओं के ही देश से सूफी फकीरों का आगमन हुआ। इन उदारमना साधकों ने इस प्रदेश की धार्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं को समादर प्रदान करते हुए संतों और नाथपंथी योगियों से सम्पर्क स्थापित किया और धार्मिक दुराग्रह से विरत रहते हुए अपनी साधना में योग तथा वेदान्त-दर्शन को समुचित स्थान दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने फारसी का मोह त्यागकर हिन्दी शब्दावली-बहुल सिन्धी भाषा और हिन्दी के छन्दों को भी उत्तरी भारत के सूफ़ियों और संतों—मुल्ला दाऊद, जायसी और कबीर की भाँति अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

वेदान्त के 'तत्त्वमसि' महावाक्य के प्रतिपादक शाह लतीफ़ का एक छन्द देखिए—

पाणही जल जलालह, पाणही जानि जमालु।
पाणही सूरत पिरीअ जी, पाणहो हुस्न कमालु॥

'हे जीव ! तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो, प्रकाश और सौन्दर्य का केन्द्र हो।'

इसी प्रकार 'गीता' में प्रतिपादित जीव के अमरत्व-सम्बन्धी सिद्धान्त के हामी सिन्धी सूफी सन्त सामी की निम्नांकित पंक्तियाँ उनकी निर्मल दृष्टि की परिचायक हैं—

नको जीउ मरे, नको अचे गर्भ में, नको बुडे जल में, नको अग्नि जरे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे अलेपु अकास जां तोड़े रूप धरे, संतन सही करे, सारख डिनी सामी चए ।।

इन सूफी फकीरों ने सिंधी भाषा में रचित अपने सलोकों (श्लोकों) में वेदों, उपनिषदों, भागवत तथा गीता का सार अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया है। (द्रष्टव्य—सिन्धी कवियों की हिन्दी साधना—डॉ० दयाल आशा।

सूफियों की इस समन्वयवादी उदार भावना के कारण हिन्दू भी उनकी ओर आकृष्ट हुए जिसके फलस्वरूप आपसी समझदारी बढ़ी। मुसलमानों ने भी उनकी बहुत सी धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं का समर्थन ही नहीं ? ग्रहण भी किया और हिन्दू लोग मंदिरों में सूफी सन्त सामी के श्लोक श्रद्धापूर्वक सुनने लगे।

अकबर के शासन-काल में स्थापित शान्ति तथा सुव्यवस्था के कारण सिन्धी संतों तथा जनता का देश के अन्य भागों से सम्पर्क बढ़ा। इससे उत्तरी भारत के भक्ति-आन्दोलन की लहरों से उसके अभिसिक्त होने का द्वार खुल गया। तत्कालीन हिन्दू तथा मुसलमान सूफी सन्तों—शाह लतीफ़ रोहल, दलपत, सामी, शाह अब्दुल करीम, काजी काजन की कृतियों में कबीर, नानक, मीरा, सूर और तुलसी की रचनाओं की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। इनमें से पड़ोसी होने के कारण पंजाब के नानकपंथ और 'गुरुवाणी' का सिन्धी हिन्दुओं पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ा। सगुण भक्ति-धारा का इस प्रदेश में प्रवेश बहुत देर से, अठारहवीं शताब्दी में, हुआ। इसका मुख्य कारण था—स्थानीय परिस्थितियाँ और निर्गुण निराकारवादी इस्लामी संस्कृति का जनमानस पर व्यापक प्रभाव।

इस प्रकार सिन्ध में सूफी, निर्गुण और सगुण भक्ति की जो आध्यात्मिक त्रिवेणी प्रवाहित हुई उसकी प्रत्येक धारा में प्रचुर संख्या में सिद्ध संतों और फकीरों का आविर्भाव हुआ। यहाँ सगुण भक्ति-धारा के अन्तर्गत कृष्ण-भक्ति-शाखा के कतिपय राधा-कृष्ण भक्तों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और उनकी रचनाओं के नमूने प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

सिन्ध प्रदेश के राधा-कृष्णोपासक प्रायः स्वतंत्र थे। साधक किसी सम्प्रदायविशेष से जुड़े हुए नहीं थे। इसलिए सामान्यतया वे साम्प्रदायिक रूढ़ियों से मुक्त थे। सिन्धी कृष्ण-भक्त विभिन्न मत-मतान्तरों की अतिवादिताओं, सैद्धान्तिक मतभेदों तथा बाह्याडंबरों से दूर थे। इनका दृष्टिकोण समन्वयवादी था। इन्होंने प्रायः कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों के सामंजस्यवाली हरि-भक्ति का अनुसरण किया है।

सिन्ध के अधिकांश कृष्ण-भक्त गृहस्थाश्रमी थे। इनमें से बहुतों ने स्फुट पद-रचनायें की हैं। अपनी मातृ-भाषा सिन्धी के अतिरिक्त अनेक भक्तों ने हिन्दी में भी छंद लिखे हैं। परमभागवत स्वामी बसंतरामजी ने तो व्रजभाषा में 'कृष्णायन' जैसा बृहद् प्रबन्ध-काव्य ही रच डाला है। अन्य भक्तों ने भी हिन्दी में कृष्ण-भक्तिपरक पद लिखे हैं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि इन रचनाकारों में से अधिकांश महानुभाव मूलतः साधक और भक्त थे, कवि नहीं। उन्होंने साहित्य-सृजन अथवा काव्य-रचना के उद्देश्य से ये पद नहीं रचे थे अपितु इन पदों के माध्यम से अपने इष्ट को रिझाने के लिए श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका स्तवन एवं गुणानुवाद किया है। निश्चय ही इनकी सर्जना के मूल में लोक-मंगल की कामना भी अन्तर्निहित थी।

अत: कला और काव्य-सौष्ठव के विचार से भले ही इनमें से कुछ की रचनायें साधारण कोटि की प्रतीत हों परन्तु उनकी अनुभूतियाँ तथा भक्ति-भाव अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं महत्त्वपूर्ण है।

—डॉ० घनश्याम तोलानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिन्ध के राधाकृष्ण-भक्त

कँवरराम (भगत)

श्री कँवरराम सिन्ध प्रदेश के अत्यंत प्रसिद्ध हरिभक्त तथा कीर्तनकार हुए हैं। इन्हें सिन्ध का 'संत तुकाराम' माना जाता है। इनकी विशुद्ध संत-वृत्ति, विलक्षण निःस्पृहता एवं भावपूर्ण भक्ति-संगीत ने सिन्धी लोक-मानस पर अत्यंत व्यापक एवं गहरी छाप डाली है।

इनका आविर्भाव सिन्ध के सक्खर-जनपद के अंतर्गत 'जड़वार' ग्राम में संवत् १९४२ के वैशाख मास में एक गरीब वैश्य श्री ताराचंद के घर में हुआ था। इनके दीक्षा-गुरु थे संत सतरामदासजी और संगीत-विद्या के आचार्य थे श्री हासारामजी। इनका कण्ठ कोकिल जैसा मधुर और हृदय भक्ति-रस से सराबोर था। इनकी भक्ति-संगीत-सभा (जिसको सिन्ध में 'भगति' कहते हैं) बड़ी लोकप्रिय थी। विभिन्न नगरों में ऐसी 'भगति' का आयोजन होता था। इसमें सारंगी, तबला आदि संगीत-उपकरणों के साथ, नृत्यसहित भक्तिपूर्ण पद-गायन हुआ करता था। भगत कँवररामजी के दर्शन पाने और उनके द्वारा संत-वाणी का मधुर गान सुनने के लिए आस-पास के हजारों लोग निर्धारित स्थान पर एकत्र होते थे। जब आप पैरों में घुँघरू बाँधकर संतों द्वारा प्रणीत भजन एवं कृष्ण-पद सुमधुर स्वर से गाते और नृत्य करते, तब लोग मन्त्रमुग्ध हो झूमने लगते थे। विशेषतः भगवान् कृष्ण की बाल-लीला का गान बड़ा ही भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी होता था। कुछ बाल-लीलाओं का तो ये अभिनय भी करते थे।

आपकी 'भगति' (संकीर्तन-सभा) की एक विशेषता यह भी थी कि उसमें जो भी चढ़ावा अथवा उपहार-राशि आती, उसे आप पूरी की पूरी दीन-दुखियों, अन्धों-लँगड़ों और असहायों की सेवा में लगा देते थे। इसलिए पचासों पंगु, अन्धे, दीनजन सदा आपके संग रहते थे। इनके अतिरिक्त उस क्षेत्र के सैकड़ों गरीब तथा संकट-ग्रस्त लोग आपकी भक्ति-संगीत-सभा में पहुँच जाते थे। आप बड़ी नम्रता व श्रद्धा के साथ उन सबका सेवा-सत्कार तथा सहायता करते थे। दीन-दुखियों में आप प्रभु का दर्शन करते थे। 'भगति'-समारोहों में प्राप्त धन-वस्तु आप कभी भी निजी उपयोग में नहीं लाते थे, घर-गृहस्थी का निर्वाह ये अपनी एक छोटी-सी दूकान द्वारा करते थे।

आप सादगी, सरलता और दीनता की प्रतिमूर्ति थे। साथ में रहनेवाले अन्धे-लँगड़े कभी-कभी विचित्र हठ पकड़ते और अकारण इन्हें खूब डाँटते-फटकारते, परन्तु आप नम्रतापूर्वक उनसे क्षमा माँगते और उनकी अनुचित बातें भी मान लेते थे। कभी-कभी ये उनकी टट्टी-पेशाब भी उठाते थे। इनके संत-हृदय का परिचय दो-एक घटनाओं से भी भली-भाँति मिल जाता है।

एक समय आपकी 'भगति' में एक श्रद्धालु ढेढ़ (हरिजन) पहुँचा। कई लोग उसके स्पर्श से संकोच कर रहे थे। वह बेचारा भगत कँवररामजी को नमस्कार कर कुछ दूर खड़ा होकर भगतजी की अमृतवर्षिणी वाणी का श्रवण करने लगा। भगत कँवररामजी भक्ति-पद गाते-गाते और नृत्य करते-करते कुछ दूर खड़े ढेढ़ के समीप पहुँचे और बड़े प्रेम से उसका आलिंगन किया। श्रोतागण आपकी सम-दर्शिता, सहृदयता और दयालुता से बहुत प्रभावित हुए।

एक बार सिन्ध के शहदादकोट नगर में आपकी 'भगति' चल रही थी। उस समय एक मुसलमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याचक ने खड़े होकर आपसे कहा—"मेरे बच्चे भूखे हैं, कुछ सहायता करो।" आपने झट अपने झोले में हाथ डालकर उसमें से एक मुट्ठी भरकर उसे दे दी, जिसमें अधिकांश (चाँदी के) रुपये ही थे। वह प्रसन्न होकर चला गया। यह देखकर एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ और भगतजी से याचना की कि उसे भी एक मुट्ठी झोले में से दी जाए। भगतजी ने उसे भी झोले में से मुट्ठीभर द्रव्य निकालकर दे दिया। संयोगवश उसमें रुपये बहुत कम और ताँबे के सिक्के ही अधिक थे। यह देखकर वह याचक क्रोध में भर गया और उसने बड़े वेग से वे सिक्के भगतजी के मुँह पर फेंक दिये, जिससे आपको बड़ी चोट लगी। सभा में उपस्थित लोग क्षुब्ध हो उठे परन्तु भगत कँवर-रामजी ने हाथ जोड़कर उस मारनेवाले भिखारी से कहा—"भैया, देनेवाले भी प्रभु थे और लेनेवाले भी प्रभु ही थे, लेकिन आपने तो बीच में मुझ मध्यस्थ पर ही प्रहार कर दिया।" ऐसा कहते हुए आपने एक दूसरी मुट्ठी झोले में से भरकर उसे दे दी। उसे लेकर वह संतुष्ट होकर चला गया।

आपने असंख्य परोपकार के कार्य किये, सैकड़ों गरीब परिवारों की कन्याओं के विवाह के लिए आर्थिक सहायता की और अनुगतों से अनेक गौ-शालाएँ, धर्मशालाएँ, मन्दिर, गुरुद्वारे आदि के निर्माण एवं संचालन में सहायक हुए। आपकी भक्ति-भावना और कीर्तन-निष्ठा जैसी अनुपम थी, वैसी ही दरिद्र-नारायण की सेवा-भावना भी अपूर्व थी। वास्तव में ये महान् भागवत थे।

ऐसे परम संत और परोपकारी महापुरुष की कुछ धर्मान्ध मुसलमानों ने १ नवम्बर १९३९ ई० को गोली मारकर हत्या कर दी। सारा सिन्ध प्रदेश इस बर्बरतापूर्ण घटना से मर्माहत व शोकनिमग्न हो गया। आप सिन्धी भक्त-हृदय के आदर्श थे। विभाजन के पूर्व सिन्ध के प्रायः हर घर में आपका चित्र लगा हुआ मिलता था। आज भी अनेक नगरों में आपकी पुण्यतिथि मनायी जाती है। आपकी स्मृति में अनेक विद्यालय, औषधालय, धर्मशालाएँ, मन्दिर, वृद्धाश्रम तथा सेवा-समितियाँ विभिन्न नगरों में बनाई गई हैं।

आपने स्वयं कोई काव्य-रचना नहीं की, प्राचीन संतों-भक्तों की वाणी ही गाया करते थे। अपनी 'भगति' (संकीर्तन-समारोहों) में आप जिन सरस कृष्ण-पदों का प्रायः गान करते थे, उनमें से मीराँ बाई द्वारा रचित उनका एक परमप्रिय पद यह है—

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति,
नैंणा बने बिसाल॥
अधर-सुधारस मुरली राजत,
उर बैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित,
नूपुर सबद रसाल॥
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई,
भगत-बछल गोपाल॥

घ० तो०

कलाचन्द (स्वामी)

स्वामी कलाचन्द का जन्म ६ अप्रैल, १८६७ ई० को हैदराबाद (सिन्ध) नगर में हुआ था। पिता का नाम रामचन्द गिदवानी था। ये जब बालक थे तब एक योगी ने इनको देखकर इनकी माता से कहा था कि यह बालक पूर्वजन्म का योगभ्रष्ट महात्मा है। किशोर-अवस्था में कराची नगर में एक नाटक (भक्त-चरित्र) देखने पर इनमें बड़ा परिवर्तन आ गया। १४ वर्ष की अवस्था में ही इनका मन संसार से हट गया। एकान्त इन्हें बहुत प्रिय था। कई बार पाठशाला जाने के लिये घर से निकलने पर ये स्कूल में न जाकर जंगल में चले जाते थे और वहाँ एकान्त में बैठकर भगवद्-स्मरण करते थे।

इनके घर में भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना होती थी। ये पूजा-गृह में श्यामसुन्दर की प्रतिमा के सामने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठकर इतना ध्यान-मग्न हो जाते थे कि इन्हें अपने शरीर का भी भान नहीं रहता था। कभी-कभी गाते-गाते खड़े होकर नृत्य करने लग जाते और तब नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगता था। कालांतर में इन्हें खान-पान, मिलने-जुलने से अरुचि हो गई और उदास रहने लगे। माताजी इनकी ऐसी वैराग्य-भावना देखकर चिन्तित हो उठीं। उन्होंने सोचा कि शीघ्र विवाह करा दिया जाय तो सम्भव है इनका चित्त संसार में रम जाय। परन्तु कलाचन्दजी ने माता से स्पष्ट कह दिया कि मैं विवाह कदापि न करूँगा और यदि जबरदस्ती मेरी शादी कराने की चेष्टा की गई तो मैं अपना यह शरीर नहीं रखूँगा। फलतः विवाह का विचार त्याग दिया गया और ये आजन्म ब्रह्मचारी बने रहे।

पश्चात् इन्हें संत केशवदासजी का अनुग्रह प्राप्त हुआ। दीक्षा लेने के बाद इनका वैराग्य अधिक तीव्र हो गया। घर में दिनभर अपने कमरे का दरवाजा बन्द करके भजन करते थे और रात में बाहर जंगल में जाकर साधना करते थे। प्रायः मौन रहते थे। कुछ काल के उपरान्त ये अपना घर छोड़कर एक पुरानी कोठी में एकान्त-वास करते हुए भजन करने लगे। मकान का दरवाजा भीतर से बन्द करके ये दिन-रात कृष्ण-चिन्तन किया करते थे। दो-दो, तीन-तीन दिन लगातार भोजन छूट जाता था। सन् १८९० ई० तक अर्थात् २४ वर्ष की अवस्था तक, इस प्रकार ये एकान्तवास और तीव्र साधना में रहे। इनकी वेशभूषा अतिशय सादी रहती थी। ये अल्पखर्च से अपना गुजारा करते थे और प्रपंच से सदा दूर रहते थे।

श्रद्धालुओं के अनुरोध पर इनके स्थान में रात को नित्य कथा होने लगी। कुछ काल के पश्चात् नगर के बाहर कूवलसिंह के बगीचे में भी सत्संग होने लगा, जिसमें सैकड़ों भक्त सम्मिलित होते थे और सामूहिक पद-कीर्तन का आनन्दप्रद आयोजन होता था। कलाचन्दजी कृष्ण-प्रेम में छके हुए थे। कृष्ण की रूपमाधुरी का चिन्तन करते-करते ये भाव-विभोर हो जाते थे। श्रीराधा तथा गोपियों की वियोगज्वाला का स्मरण कर ये फूट-फूटकर रोने और विलाप करने लगते थे। कभी-कभी बहुत देर तक प्रेम-मूर्च्छा में पड़े रहते थे। ये श्यामसुन्दर के सच्चे आशिक थे।

स्वामी कलाचन्द संगीत-विद्या के मर्मज्ञ और सिद्धहस्त गायक थे। इनका कण्ठ अति मधुर था। गर्मी में हर शनिवार की रात को ये जागरण, सामूहिक पद-गान और नाम-कीर्तन का आयोजन करते थे और जाड़े की ऋतु में रविवार की संध्या को ऐसा ही सामूहिक कार्यक्रम रहता था। सब सत्संगी आपके साथ अथवा आपके पीछे-पीछे गाते थे। ये भगवान् कृष्ण की मूर्ति के सामने खड़े होकर, हाथ में एकतारा लेकर और पैरों में घुंघरू बाँधकर कृष्ण-रस में उन्मत्त हो घण्टों तक पद-कीर्तन करते हुए नृत्य करते थे। उस समय सब भक्तगण एक अलौकिक आनन्द का अनुभव करते थे।

ये प्रेमा-भक्ति की प्रतिमूर्ति थे। इन्होंने हैदराबाद (सिन्ध) में हरि-भक्ति, सामूहिक पद-कीर्तन और नाम-धुन का बड़ा प्रसार किया। ये अपने अनुगतों को नाम-जप, हरि-यश-गान और नित्य सत्संग करने का उपदेश दिया करते थे। वास्तव में भक्त कलाचन्दजी त्याग, वैराग्य, दीनता, भक्ति और प्रेम के मूर्तिमान् आदर्श थे।

इन्होंने भक्ति के साथ लोक-सेवा का भी सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया। दीन-दुखियों की सेवा भगवद्-सेवा तुल्य मानते थे। सन् १८९७ ई० में जब हैदराबाद में प्लेग का आतंक फैला तब आपने प्लेग-ग्रस्त रोगियों के घरों में जाकर उनकी तन, मन, धन से सेवा-शुश्रूषा की। रोगियों को ये अपने हाथ से खिलाते, औषध देते और परिचर्या करते थे। जो रोगी मर जाते उनकी दाह-क्रिया आदि की सारी व्यवस्था ये स्वयं करते थे। जितना भी द्रव्य-साधन इनको उपलब्ध होता था, सब परोपकार व सेवा में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगा देते थे। अनेक गरीब गृहस्थों की कन्याओं के विवाह में आपने सहायता की और करवाई। दहेज आदि सामाजिक कुप्रथाओं के निवारणार्थ भी आपने स्तुत्य प्रयास किया था।

जीवन की सांध्यवेला में इनका शरीर अत्यंत रुग्ण हो गया था। गुरदा का शूल, श्वास-रोग, छाती में दर्द आदि रोगों ने इन्हें घेर लिया था। इस कष्टपूर्ण स्थिति में भी इनके चेहरे पर एक हलकी-सी मुस्कान खेलती रही। प्रभु का प्रसाद मानकर ये सारी यातनाएँ आनन्दपूर्वक झेलते रहे। इनका अन्तर्मन अन्तिम काल तक कृष्ण-प्रेम में निमग्न रहा। ११ मई १९११ ई० को छाती में तीव्र वेदना हुई। आप उठकर खड़े हो गये और खड़े-खड़े ही भगवन्नाम का अनवरत उच्चारण करते हुए देह त्यागकर प्रियतम का नित्य सान्निध्य प्राप्त किया। इस समय आपकी आयु केवल ४४ वर्ष की थी।

स्वामी कलाचन्दजी कविता में 'कल्याण' छाप रखते थे। इन्होंने हिन्दी तथा सिन्धी में अनेक पद विविध राग-रागिनियों में रचे थे किन्तु अनुगतों की असावधानी के कारण उनमें से अधिकांश पद लुप्त हो गये। इस समय इनके केवल २७ हिन्दी और २१ सिन्धी पद मिलते हैं। इनका एक हिन्दी और एक सिन्धी पद नमूने के रूप में नीचे दिया जाता है—

हिन्दी पद

श्रीपति श्यामसुन्दर मोरे प्यारे
तुम जीते हम हारे।
जिय के जानी प्रानपति गिरिधर
चरन-रेनु लगे माथे हमारे॥

आँगन हमरे आओ पिय मोहन
बन में राधा पुकारे।
बेगि मिलीजे विलम्ब न कीजे
मेरे मोहन मुरली वारे॥

बन भयानक देखि डरत हूँ
पिया मोहि काहे बिसारे।
दास 'कल्याण' को दरस दिखाओ
हारि पर्‌यो तव द्वारे॥

सिन्धी पद

आऊं तोतां आहियां बलिहारी।
मूंते करि तूं माहेर मुरारी॥
तूं आहीं मुंहिंजो साईं,
सारे जग जो मालिकु आहीं।
ब्यो तो जहड़ो को नाहे,
मुंहिंजा कृष्ण देव बिहारी॥
गज गोतमनारि उद्धारी,
अजामेल गनिका तारी।
दियो कुबिजा को पद भारी,
मुंहिंजा गोबिंद लाल गिरिधारी॥
चवे 'कल्याण' दासन-दासा,
बी नाहे मूंखे का आसा।
तुहिंजे चरननिजी आहे प्यासा,
मुंहिंजा दीननाथ दातारी॥

'हे मुरारी! मैं तुम पर बलिहारी जाता हूँ, मेरे ऊपर कृपा करो। तुम मेरे स्वामी हो और सम्पूर्ण जगत् के अधीश्वर हो। हे मेरे बिहारी कृष्णदेव! तुम्हारे समान तो कोई है नहीं। तुमने गज तथा अहिल्या का उद्धार किया, अजामिल और गणिका का निस्तार किया। हे मेरे गोविन्द गिरधारी! तुमने कुब्जा को भी उच्च पद प्रदान किया। दासों के दास 'कल्याण' का निवेदन है कि हे मेरे दीनानाथ! मुझे और कोई भी अभिलाषा नहीं है, केवल तुम्हारे चरण-कमलों के दर्शन की ही प्यास है।'

घ० तो०

किशनचन्द 'बेबस'

महाकवि किशनचन्द 'बेबस' बालकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इन्होंने अपनी विमल भक्ति और अनुपम निष्ठा को लोगों से सदा छिपाकर रखा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनका जन्म २५ फरवरी सन् १८८५ ई० को सिन्ध के ऐतिहासिक नगर लरकाना के एक क्षत्रिय-परिवार में हुआ था। पिता का नाम था तीरथदास खत्री जो एक कुशल वैद्य थे। जब किशनचन्दजी की अवस्था १२ वर्ष की थी तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। दो छोटे भाइयों सहित परिवार के भरण-पोषण का दायित्व इनके ऊपर पड़ गया। अर्थ-संकोच के कारण ये अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके। सिन्धी-अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय की परीक्षाएँ पास कर अपने नगर में ही प्राथमिक स्कूल के अध्यापक बन गये और बाद में प्रधान अध्यापक हो गये। इनकी मुखाकृति जैसी भोली-भाली थी वैसे ही स्वभाव भी अत्यंत सरल और निर्मल था। इनका यह बालकवत् भोला स्वभाव वृद्धावस्था तक बना रहा। इनकी वेशभूषा अत्यन्त सादी और विचार बहुत ऊँचे थे। ये भारतीय संस्कृति, परम्परा और आदर्शों के महान् समर्थक थे। विनय और शील के तो मूर्तरूप थे। जीवन में मर्यादा का पालन ये अत्यावश्यक मानते थे। ये सात्त्विक वृत्ति-सम्पन्न साधु पुरुष थे।

किशनचन्दजी बड़े गोभक्त थे। घर पर एक-दो गौ अवश्य रखते थे, जिनकी सेवा ये स्वयं बड़े चाव से करते थे। इन्होंने गो-महिमा, गो-पालन और गो-दुग्ध के अमृततुल्य गुणों के विषय में एक पुस्तक भी प्रकाशित की थी। ये एक आदर्श पिता, आदर्श पति और आदर्श आचार्य (शिक्षक) थे। विद्यार्थियों को अपनी संतान के समान स्नेह देते थे और उनके चरित्र-निर्माण पर विशेष ध्यान रखते थे। रोगियों की होम्योपैथिक औषधियों द्वारा सेवा करते थे और प्राणिमात्र में अपने आराध्य का दर्शन करते थे। इनका हृदय प्रेममय, कोमल और मधुर था। एक बार देखा गया कि ये गली के एक घायल कुत्ते को मरहम लगाकर उसे पट्टी बाँध रहे थे। भगवद्-भक्ति के साथ कर्मनिष्ठा इनके स्वभाव का अभिन्न अंग थी।

साहित्य एवं कला के क्षेत्र में आप 'आधुनिक युग की सिंधी कविता के सम्राट्' माने जाते हैं। सिन्धी काव्य-क्षेत्र में आप 'नये युग' के प्रवर्तक थे। आपने फारसी काव्य-प्रणाली व शब्दावली का अनुकरण त्यागकर स्वदेशी परिपाटी का अनुसरण करते हुए विविध विषयों पर उत्कृष्ट सिन्धी कविताएँ रचीं। इनके द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय भावापन्न नयी कविता-शैली उत्तरोत्तर अधिकाधिक मान्य एवं लोकप्रिय होती गयी। इसके फलस्वरूप सिन्धी काव्य-क्षेत्र में इनके आदर्श पर एक नया 'बेबस-स्कूल' ही प्रचलित हो गया। आप सिन्धी-साहित्य-सम्मेलन के कराची-अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे। उस अवसर पर आपका सात्त्विक संकोच, संतोचित शील तथा आदर्श आचरण देखते ही बनता था।

आपकी कुछ कविताओं के हिन्दी-अनुवाद का संग्रह राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा प्रकाशित हुआ था। आपके देहान्त के सात-आठ वर्षों के बाद आपकी कुछ कविताएँ अमेरिका में अंग्रेजी में अनूदित होकर 'पोयट्री शिकागो' द्वारा प्रकाशित हुई थीं। आपकी एक विशेष कविता ब्रिटिश म्यूजियम में भी सुरक्षित बतायी जाती है।

ऐसे लब्धप्रतिष्ठ कवि, महान् दार्शनिक, प्रखर भाषा-पंडित एवं प्रतिभाशाली विद्वान् होते हुए भी आप इन सबमें अपना निजी कर्तृत्व कुछ भी नहीं मानते थे। ये कहा करते थे कि "मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, एक कठपुतली मात्र हूँ। मैं तो केवल लेखनी पकड़े रहता हूँ, लिखवानेवाले सर्वेश्वर ही रहते हैं। मेरी कविता वस्तुतः मेरी नहीं, उसी 'दाता का दान' है।" एक सिंधी पद्य में इन्होंने स्पष्ट कहा है—"कैसे लिखूँ, क्या लिखूँ, यह तू ही बता। बाँसुरी होठ पर धरी है, परन्तु फूंक तो तेरी ही होगी। मैं पग उठाने को तो उद्यत हूँ, किन्तु मार्ग पर तो तू ही ले चलेगा, क्योंकि इस 'बेबस' और निर्बल का बल तो एकमात्र तू करुणामय ही है।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम भक्त 'बेबस' जी आनन्दकन्द व्रजचन्द्र के बालरूप के उपासक थे। इनके घर में एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ था जिसमें श्यामसुन्दर की प्रतिमा स्थापित थी। उसके साथ श्रीमद्भगवद्गीता की भी नित्य पूजा तथा आरती होती थी। ये जन्माष्टमी का उत्सव बड़े हर्ष-हुलास के साथ मनाते थे।

इनके जीवन-दर्शन और अध्यात्म-साधना का स्वरूप 'बेबस' (विवश, निरुपाय) उपनाम में स्पष्टतया परिलक्षित होता है। वास्तव में इनकी यह 'बेबस' छाप इनके आन्तरिक प्रपत्ति-भाव का परिचायक और इनके पूर्ण समर्पण की द्योतक हैं। ये यथार्थ में आजीवन अपने गोपाल के ही आश्रित होकर रहे। स्वयं को केवल उसीका यन्त्र और उसे यन्त्र मानकर, अपने को निमित्तमात्र और उसीको वास्तविक कर्ता जानकर, पूर्ण विश्वासपूर्वक मन, वचन और कर्म से अपने को उसी गोपाल के चरण-कमलों में समर्पित किये हुए उसकी कृपा पर ही सर्वथा निर्भर रहकर एवं प्रियतम के हर विधान में प्रसन्न रहकर इन्होंने प्रभु-परायण-जीवन व्यतीत किया। इस भक्त-कवीश्वर की उल्लेखनीय विशेषता थी भगवत्कृपा पर पूर्ण निर्भरता और अपनी कर्तृत्वहीनता का यथार्थ बोध।

सिन्ध के ये भक्त-कविरत्न २३ सितम्बर सन् १९४७ को अपनी जन्मभूमि लरकाना में ही परमपद को प्राप्त हुए।

आपकी 'गंगाजूं लहरूं' (गंगा की लहरें), 'सामुंडी सिपू' (समुद्र की मुक्ताशुक्तियाँ) आदि उत्कृष्ट काव्य-रचनाएँ हैं, जिनमें अध्यात्म तथा रहस्यवाद की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है। आपने अनेक कृष्ण-कवित्त रचे हैं, जिनमें 'बाँसरी', 'रासनृत्य', 'व्रज-बल्लभ', 'गीता-जयन्ती' आदि साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च कोटि की रचनाएँ हैं, जिनका हिन्दी भाषा में अनुवाद होना वांछनीय व आवश्यक है। यहाँ नमूने के रूप में इनके तीन सिन्धी गीत दिये जाते हैं—

(१)

कृष्ण-जन्म (प्रभाती)

आनन्दु नन्दभवन में आहे
कृष्ण कन्हैयो आयो आ।
हली डिसोरी नन्द किशोरी
मात यशोदा जायो आ॥

गगन मंडल मां गुलफुल बरसिया
आनन्दु इन्द्र लगायो आ।
पन-पन में छा छननन छिम-छिम
कुदरत रंगु लगायो आ॥

गोकल-वास्युनि गोप गुवालनि
गद-गद थी गुनु गायो आ।
घर-घर माण्हुनि मौज मचाई
मंगलाचरन मनायो आ॥

श्याम सन्दी सुन्दर छबि पसन्दे
शिव जोगीअ जसु गायो आ।
हरि दर्शन सां सिरु चरननि ते
भोलानाथ निवायो आ॥

ऊजलु जलु जमुना जो चढंदो
चरन चुमण लाइ आयो आ।
प्रेम डिसी तहीं खे परमेश्वर
कोमल चरनु चुमायो आ॥

नासु करण अज्ञान-अंधारो
जगत-उजालो आयो आ।
वक्त जरूरत नाथ अचण लाइ
गीता में फ़रमायो आ॥

'नन्दबाबा के भवन में आनन्द भर गया है, वहाँ कृष्ण कन्हैया आ गया है। अरी गोपियो! चलकर देखो, माता यशोदा ने लाला जायो है। गगन मंडल से पुष्पवर्षा हो रही है। इन्द्र आनंद मना रहे हैं। एक-एक पत्ते से छननन छिम-छिम की ध्वनि निकल रही है, प्रकृति ने क्या रंग रचा रखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। गोकुलवासी गोप और ग्वाल गद्गद होकर गुन गा रहे हैं, घर-घर में लोगों ने मौज मचा रखी है और मंगलाचार मना रहे हैं। श्यामसुन्दर की छवि देखकर जोगी शिवजी यशगान कर रहे हैं। हरि के दर्शन करते ही भोलानाथ ने उनके चरणों पर मस्तक नवा लिया है। यमुना का उज्ज्वल जल उनके चरन चूमने के हेतु चढ़ने लगा, उसका प्रेम पहचानकर परमेश्वर ने अपना कोमल चरन उसे चूमने दिया। अज्ञान-अंधकार नाश करने के लिये जगत् का प्रकाशक पधारा है। गीता में नाथ ने आवश्यकता पड़ने पर पधारने की बात कह दी है।'

(२)

वंशी-माधुरी

बन्सी श्यांम जी बृज में धूम मचाए,
बृज में धूम मचाए।
जीअं जीअं रागु रचे नन्द-नन्दनु।
रचना नाथु रचाए, बृज में धूम मचाए ॥

मधुर मधुर सुर सां मधुसूंदन,
चेतकु चित खे लाए, बृज में धूम मचाए।
होश हवास गवांए साजनु,
हिरदो मस्तु बणाए, बृज में धूम मचाए॥

'श्याम की वंशी ब्रज में धूम मचा रही है। जैसे-जैसे राग नन्दनन्दन रचते हैं वैसी ही रचना वह रचाती है और ब्रज में धूम मचा रही है। मधुसूदन मधुर-मधुर स्वर से चित को जादू लगा रहे हैं और ब्रज में धूम मचा रहे हैं। प्रियतम वंशी-ध्वनि द्वारा हमारी सुधि-बुधि खोकर हृदय मस्त बना रहे हैं और ब्रज में धूम मचा रहे हैं।'

(३)

श्रीकृष्ण-स्तुति

जय मोहन मुकुन्द मुरारी।
जय मुरलीधर गिरधारी॥

जय जगपति जगत उजाला।
जय परमेश्वर प्रतिपाला॥

जय गौअन जा रखपाला।
जय बृजनाथ बनवारी॥

जय सत-चित-आनन्द स्वामी।
जय घट-घट अंतर्यामी॥

जय अजर अगाध अनामी।
जय केशव कुंजबिहारी॥

जय दुखभंजन सुख दाता।
जय जगत पिता जग माता॥

जय विश्वनाथ विरधाता।
जय संतन जा हितकारी॥

घ० तो०

किशोरदास

भक्त किशोरदास का जन्म सुसंस्कृत ब्राह्मण-परिवार में हैदराबाद (सिन्ध) जनपद के अन्तर्गत टण्डा-अल्हयार नगर में सन् १८८१ ई० के लगभग हुआ था। पिता का नाम मूरजराम शर्मा और माता का देवीबाई था।

ये जब १४ वर्ष के थे तभी पिता का देहान्त हो गया था, अतः परिवार के भरण-पोषण का दायित्व इन पर आ गया। कुलपरंपरानुसार पौरोहित्य वृत्ति से परिवार का पालन करने लगे। ये कर्मकांडी, सदाचारी एवं धर्मनिष्ठ थे। इन्हें ज्योतिष का भी अच्छा ज्ञान था और हिन्दी-संस्कृत के विद्वान् थे।

२२ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ किन्तु ४ वर्ष के बाद धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। इन्हें एक पुत्र भी हुआ था परन्तु वह दो वर्ष का होकर चल बसा। इन्होंने फिर विवाह नहीं किया और भजन-साधन में प्रवृत्त हो गये।

इन्होंने तत्कालीन भक्तों, स्वामी बसंतराम, महाराज नयनाराम एवं महाराज भगवानदास का सत्संग प्राप्त किया। उनके साथ इनकी घनिष्ठता हो गई। उनके सत्संग से इनके मन में विरक्त-भाव सुदृढ़ हो गया और भगवान् कृष्ण के चरण-कमलों में निष्काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति का उदय हुआ। ये एकान्त-वास करते हुए तीव्र साधना करने लगे। दिन-रात में केवल दो बार प्रसाद पाने के समय ये घर को जाते थे, अन्यथा पूरा समय मन्दिर की एकान्त कोठरी में भगवद्-भजन करते थे।

किशोरदासजी बड़े ही शान्तचित, मितभाषी और साधु-चरित भक्त थे। इनके व्यक्तित्व की विशेषता थी इनका शुद्ध निष्काम भाव। जीवन की सांध्यवेला में इन्हें लकवा मार गया था। देश-विभाजन के पश्चात् ये जयपुर चले आये थे। फिर सन् १९४९ ई० में बम्बई (कांदिविली) में आकर रहने लगे। यहीं इन्होंने सितम्बर १९५२ ई० में स्थूल देह त्यागकर परमधाम-यात्रा की।

इनका समर्पित जीवन प्रचार, प्रसिद्धि और प्रभाव-विस्तार के प्रलोभन से सदैव अछूता रहा।

ये श्री राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। अपने आराध्य की उपासना करते हुए इन्होंने सिन्धी भाषा में अनेक पद विविध राग-रागिनियों में रचे हैं जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि के उत्कृष्ट भाव भरे हुए हैं। कविताओं में ये 'किशोर' छाप का प्रयोग करते थे।

इनके दो सिन्धी गीत नीचे दिये जाते हैं –

(१)

अजब रंगु आहे कृष्णु मुरारी,
गोबरधन जो धारी, अचरज बिहारी ॥ टेक ॥

ब्रह्मा बछड़ा ब्यो चोराए,
मोहन खे थो मानुषु भांए।
माया मति आहे मारी, ब्यो लाचारी ॥

ऊखल में जहिं पाणु बधाए,
बृक्ष पाड़खां विधांइ केराए।
देहि देवनिजी धारी, शकल मोचारी ॥

सकटासुर खे हेठि केराए,
बकासुर जो पेटु फराए।
पापीन पूतना मारी, दैतनि नारी ॥

नींहुं नेणनि सां 'किशोरु' लाए,
मनमें वेठा मुहबत पाए।
भव सागर मां तारी, पारि उकारी ॥

'गोवर्धन पर्वत को धारण करनेवाले कृष्ण मुरारी विलक्षण विभूति हैं। वे बिहारी आश्चर्य में डालनेवाले हैं। ब्रह्मा ने उनको साधारण मनुष्य जानकर बछड़े चुरा लिये, अपनी बुद्धि प्रभु की माया द्वारा अपहृत होने के कारण वे भी विवश हो गये। उन्होंने अपने को ऊखल से बँधवाकर वृक्षों को मूल सहित उखाड़ गिराया, जिनमें से सुन्दर देवशरीर-धारी पुरुष प्रकट हो गये। जिसने शकटासुर को मार गिराया, बकासुर का पेट फाड़ डाला और दैत्यनारी पूतना का विनाश किया, उसीके साथ 'किशोरदास' ने प्रेमभरे अंतःकरण से स्नेह किया है। अब वे उसको भवसागर से पार उतार ही देंगे।'

(२)

हीउ मनु मुंहिंजो मस्तानु रहे,
भगवान कृष्ण जे चरणनि में ॥ टेक ॥

रहे अन्दर में आश सदा,
कडहिं भजन खां ध्यांन जुदा,
सभि कौल गरभ जा थियनि अदा,
भगवान कृष्ण जे चरणनि में ॥

थी संसार खां दिलड़ी खटी,
जीआं तुंहि जो नामु वठी,
थिए शुभु गुणनि जी पुंजी कठी,
भगवान कृष्ण जे चरणनि में ॥

रूप में अखियूं मस्तु रहिन,
प्रेम में से भरपुर रहनि,
हरदम ध्यान में लगीयूं रहनि,
भगवान कृष्ण जे चरणनि में ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्त कँवरराम, पृ० ६०१

स्वामी कलाचंद, पृ० ६०२

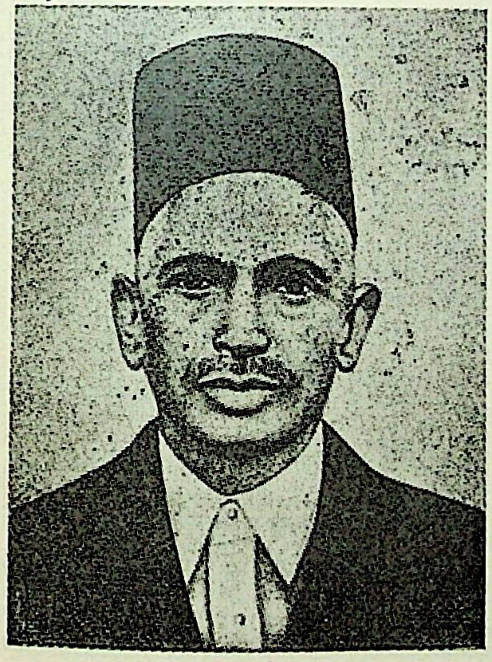

श्री किशनचन्द 'बेबस', पृ० ६०४

भक्त किशोरदास, पृ० ६०७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

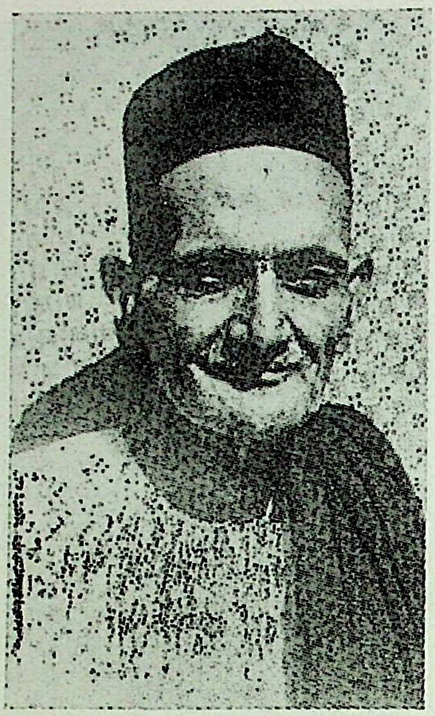

पं० दामोदर शर्मा, पृ० ६२५

पं० नयनाराम शर्मा, पृ० ६२९

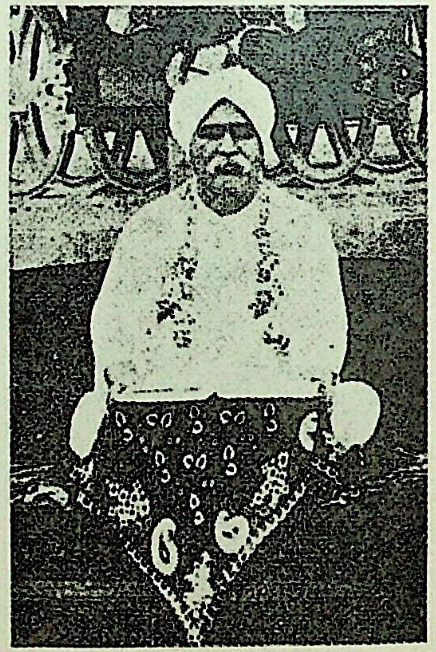

स्वामी नारायणदास 'हंस', पृ० ६३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुधो 'किशोर' जी होअ अरजी,
आहियां मां अधीन गरजी,
रखु मोहन मुहिंजी मरिजी,
भगवान कृष्ण जे चरणनि में ॥

'हे श्रीकृष्ण ! मेरा यह मन तुम्हारे चरण-कमलों में मस्त हो जाय। मेरे हृदय में यही अभिलाषा है कि मैं कभी भी भजन से अलग न होऊँ और गर्भ में की हुई प्रतिज्ञाओं का पूर्णतया निर्वाह करूँ। जगत् से मन ऊब गया है। अब मैं तुम्हारा नाम जपते हुए ही जीऊँगा और सद्गुणों की पूँजी ही एकत्र करूँगा। प्यारे मोहन ! याचक 'किशोरदास' की यह विनय सुनकर अवश्य स्वीकार करें कि मेरी आँखों में तो तुम्हारी रूप-माधुरी बस जाय और मेरा मन तुम्हारे प्रेम से सराबोर होकर निरन्तर तुम्हारे चरण-कमलों के ध्यान में ही निमग्न रहे।'

घ० तो०

कुन्दोबाई (माता)

माता कुन्दीबाई का जन्म हैदराबाद (सिन्ध) क्षेत्र के टण्डा-ममदखां नगर में संवत् १९५४ (१८९७ ई०) में १७ सितम्बर को एक प्रतिष्ठित वैश्यकुल में हुआ था। पिता का नाम श्री उद्धवदास था। इनका पालन-पोषण बड़े प्यार-दुलार से हुआ। ये स्वभाव की मधुर तथा विनयशील थीं और सदा प्रसन्नमुख रहती थीं। इनको सिन्धी, हिंदी और पंजाबी भाषा की शिक्षा दी गयी। लड़कपन से ही दान-धर्म, पूजा-पाठ और कथा-कीर्तन में इनकी बहुत रुचि थी।

ये जब १६ वर्ष की हुईं तब इनका विवाह श्री हेमनदासजी के साथ सम्पन्न हुआ। पतिदेव बड़े सद्-गुणी, परोपकारी एवं संतसेवी थे, परन्तु विधाता का विधान ऐसा कि विवाह के डेढ़ वर्ष के बाद ही वे पर-लोक सिधार गए। कुन्दीबाई पर मानो वज्रपात हो गया। इनके एक कन्या हुई थी पर वह भी अपने पिता के देहान्त के १६वें दिन चल बसी। इस आपत्तिपूर्ण स्थिति में दुःसह अंतर्व्यथा से पीड़ित होकर कुन्दीबाई ने मन में आर्तभाव से भगवान् की शरण ली और मन ही मन अपने-आपको उनके भव-भय-हारी चरणों में समर्पित कर दिया। भगवत्कृपा से शीघ्र ही इनके अन्तःकरण में शान्ति का प्रकाश छा गया और एक अलौकिक आश्वासन मिल गया।

अब ये रात-दिन भगवान् का स्मरण करने लगीं। इनके मन में यह बात बैठ गयी थी कि संसार अनित्य तथा असार है और भगवद्-भजन में ही जीवन की सार्थकता है। इनकी भगवान् श्रीकृष्ण में अगाध श्रद्धा थी, अतः उनके स्तवन-आराधन में संलग्न हुईं। भगवान् में आसक्त होने से अब ये वैधव्य के दुःख से व्यथित नहीं रहती थीं। जब कभी इनकी वृद्धा सास विशेष दुःखी होकर रोने लगती थीं तो कुन्दीबाई समझाती थीं और ढाढ़स बँधाते हुए उन्हें भी कृष्ण-भजन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देती थीं। ये अपनी सास तथा अन्य स्वजनों की चाव से सेवा करके सबको प्रसन्न रखती थीं।

कुछ समय के बाद, सास की आज्ञा प्राप्त कर इन्होंने महान् भक्त स्वामी गिरधारीलालजी से दीक्षा ले ली और अपने घर में ही साधनामय जीवन व्यतीत करने लगीं। ये घर के छोटे-बड़े सब तरह के काम करती थीं अतः घरवालों ने इनकी साधना में कोई बाधा नहीं डाली वरन् सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया। भजन-कीर्तन में इनका मन खूब लगा। अपने प्राणाराम श्रीकृष्ण में ये पूर्णतया अनुरक्त हो गयीं। संसार की किसी भी चीज की इच्छा नहीं रही। श्रीकृष्ण ही इनकी चाह के एकमात्र लक्ष्य थे। इस प्रकार ये जाग्रत तथा स्वप्न दोनों ही स्थितियों में कृष्ण-प्रेम का रसास्वादन करने लगीं। आखिर एक दिन इन पर विशेष कृपा बरसी और इन्हें दिव्यानुभूति प्राप्त हुई। भक्तिपरायणा कुन्दीबाई कृतार्थ हो गयीं। उस समय इनकी अवस्था केवल २५ वर्ष की थी।

माता कुन्दीबाई वैराग्य की जीती-जागती प्रतिमा थीं। ये मोटी एवं साफ सफेद साड़ी पहनती थीं और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिना मसाले का सादा स्वल्प भोजन करती थीं। लोकहित की कामना से प्रेरित होकर और अपनी सास की आज्ञा लेकर इन्होंने अपने घर पर 'नारी-सत्संग' आरम्भ किया। इनकी कथा और कीर्तन में धीरे-धीरे नगर की सैकड़ों स्त्रियाँ आने लगीं। प्रातःकाल ये कई स्त्रियों तथा कन्याओं को हिन्दी पढ़ातीं तथा गीता-पाठ सिखाती थीं। शाम को हरि-कथा और नाम-कीर्तन होता था। इनकी सच्ची भक्ति-भावना और परम पवित्र तथा तेजस्वी जीवन से प्रभावित होकर अनेक महिलाएँ और कन्याएँ भगवान् की ओर लग गयीं। कई महिलाओं ने इन साध्वी माता से नाम का उपदेश लिया और भक्ति के पावन पथ पर चलने लगीं।

भक्तिमती माता कुन्दीबाई दया की साक्षात् मूर्ति थीं। ये कई दुःखी और गरीब बहनों का सहारा बन गयी थीं। एक बार इन्होंने कच्छ प्रदेश की एक असहाय क्षय-रोग-ग्रस्त अबला को अपने घर में आश्रय देकर उसका औषध-उपचार कराया था। उसकी सारी सेवाएँ—कपड़े धोना, पीकदान साफ करना आदि ये बड़े प्रेम से अपने हाथ से करतीं और सभी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करती थीं। वह स्त्री धीरे-धीरे स्वस्थ हो गयी और बार-बार आशीर्वाद देकर अपने घर चली गयी।

माता कुन्दीबाई की भक्ति-भावना ने इनके हृदय में काव्य-शक्ति का संचार किया और ये भगवान् के नाम-रूप तथा लीला-विषयक पद रचने लगीं, जो बहुत भावपूर्ण होते थे। पाकिस्तान बनने के बाद ये माहीम (बम्बई) में आ गयीं। यहाँ भी इन्होंने सत्संग और हरि-कीर्तन की विमल गंगा प्रवाहित की। भक्तिमती कुन्दीबाई के परम सात्त्विक, संयमित, तपोमय और साधना-सम्पन्न वैयक्तिक जीवन तथा सदुपदेश से सहस्रों प्राणियों का जीवन पवित्र और भक्तिमय बन गया। इन्होंने स्वयं भी आजीवन भक्तिरस का पान किया और दूसरों को भी उसका रसास्वादन कराया। वास्तव में माता कुन्दीबाई आदर्श भक्ता थीं।

संवत् २०३१ अर्थात् १९७४ ई० की २५ अप्रैल को इन्होंने गोलोकवास प्राप्त किया। इनका चलाया हुआ 'नारी सत्संग' आज भी पूर्ववत् चल रहा है।

अपनी कविताओं में ये 'दासी' छाप का प्रयोग करती थीं। इनका एक सिन्धी पद नमूने के रूप में दिया जाता है—

मुंहिजा कृष्ण कन्हैया नन्दलाल,
दाढा तो डींह लगाया ॥

मात यशोदा तोखे सँभाले,
सुरत तुंहिजी दिल में धारे,
गोड़हा अखियुनि मां गारे,
तहिंखे दर्शनु दई करि निहाल ॥

गायूं गोकुल जूं गाहु न खाइनि,
मोहन मिठिड़े लाइ वाझाइनि,
वणनि टिणनि खां पेयूं पुछाइन,
तनि ते महिर कयों नन्दलाल ॥

गोपियूं बृज जूं आहिन उदासी,
तुंहिजे मिलण जी अथनि आसी,
सदिड़ा कनि थ्यूं प्रेम पियासी,
कयो तनि सां भलायूं भाल ॥

पलि-पलि मोहन पेई पुकारियां,
घाट घिटयूं ऐं रस्ता निहारियां,
खिन पलु तो खे कोन बिसारियां,
अची बुधो 'दासी' अजो हाल ॥

'मेरे कृष्ण कन्हैया! तुमने वहाँ बहुत दिन लगा दिये। माता यशोदा हृदय में तुम्हारी मुखाकृति का स्मरण करती हुई नेत्रों से अश्रु बहा रही हैं, उनको दर्शन देकर निहाल करो। ब्रज की गौएँ चारा इत्यादि छोड़कर तुम्हारे लिए चारों ओर लता-पौधों में भी ताकती रहती हैं। हे नन्दलाल! उन पर दया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करो। प्रेम-प्यासी ब्रज-गोपियाँ तुमसे मिलने की आशा से व्याकुल होकर निरन्तर तुम्हें बुला रही हैं, उन पर भी तो कृपा करनी चाहिए। प्यारे मोहन! मैं एक क्षण भी तुम्हें न भुलाकर सब गली, घाट और सड़कें खोजती हुई तुम्हें पुकार रही हूँ। तुम आकर जरा इस 'दासी' की दशा को तो देखो।'

घ० तो०

गिरधारीलाल

श्री गिरधारीलाल का जन्म संवत् १९३५ (१८७८ ई०) की विजयादशमी को सिन्ध के प्राचीन नगर नसरपुर में एक संस्कारी ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम चंदीराम शर्मा था। इनसे बड़े तीन भाई और थे। ये जब बालक थे तभी पिता परलोक पधार गये। माता का इन पर विशेष स्नेह था। उन्होंने इनके अध्ययन की समुचित व्यवस्था की किन्तु साधु-संतों की संगति में अधिक रुचि होने से इनका मन पढ़ने-लिखने में कम लगा। किसी सन्त के आगमन की बात सुनते तो पाठशाला की उपेक्षा कर उसका दर्शन करने चले जाते थे।

ये जब १७ वर्ष के थे तब एक दिन एकाएक घर छोड़कर हैदराबाद (सिंध) चले आये और यहाँ प्रसिद्ध 'कोटूमल-बाग' के सन्त-निवास आश्रम में ठहरे हुए महात्माओं का सत्संग-लाभ करने लगे। इनके मन में विरक्ति-भाव था अतः सद्गुरु की तलाश में थे। उस समय वहाँ प्रसिद्ध वयोवृद्ध महात्मा स्वामी आलाराम सागर भी आये हुए थे। उनके सत्संग से इनको स्फूर्ति मिली और इन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर भजन करने का संकल्प किया। स्वामीजी से दीक्षा ले ली और उनके सान्निध्य में रहकर साधना करने लगे।

कुछ समय के पश्चात् ये अपने गुरु महाराज के साथ पंजाब चले गये और लगातार २५ वर्ष तक उनके साथ रहे। इस बीच इन्होंने भारत के विभिन्न धर्मस्थानों तथा पुण्य-क्षेत्रों का भ्रमण एवं संत-समागम-लाभ किया। गुरुजी ने इनकी त्याग-वृत्ति, वैराग्य और भक्ति-भावना से संतुष्ट होकर इन्हें सिंध लौट जाने की आज्ञा दी। तदनुसार सं० १९७७ में ये सिंध आ गये। उस समय इनकी अवस्था ४२ वर्ष की थी। ये केवल एक वस्त्र, कमण्डल तथा मृगछाल रखते थे और भिन्न-भिन्न स्थानों में पर्यटन करते रहते थे।

इन्हीं दिनों इनकी वृद्धा माता अत्यधिक बीमार पड़ गयीं और विह्वल होकर इनका स्मरण करने लगीं। एक दिन भगवद्-प्रेरणा से ये अकस्मात् घर पहुँचे और मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई माता का अन्तिम दर्शन कर उनको अपनी पहचान दी। माता ने संतोष व्यक्त किया और कुछ ही दिनों में शरीर त्याग दिया।

इसके बाद टण्डाममदखाँ नगर के एक पुराने एकान्त स्थान में निवास करते हुए ये तपस्यापूर्ण जीवन बिताने लगे। लगभग इसी समय भक्तिमती कुन्दीबाई ने आपसे उपदेश लिया था। कुछ समय के बाद नगर के पञ्चों की ओर से आपके निवास और भजन-साधन के लिए आश्रम, श्रीकृष्ण-मन्दिर और दुर्गा-मन्दिर का निर्माण कराया गया, तब से आप वहीं रहने लगे और भक्तों के अनुरोध पर सायंकाल का सत्संग आरम्भ किया।

स्वामीजी भगवान् कृष्ण के परम भक्त थे। सिन्ध के भक्ति-क्षेत्र में इनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। भगवद्गीता में इनकी अगाध निष्ठा थी और ये सबको गीता का स्वाध्याय करने की सलाह देते थे। ये बड़े गो-भक्त थे और गोरक्षा तथा गो-सेवा पर बहुत बल देते थे। ये जन्माष्टमी का बहुत बड़ा उत्सव करते थे, जिससे जनता में आध्यात्मिक चेतना आती थी और कृष्ण-भक्ति का व्यापक प्रचार होता था। आपके जीवन में कई अलौकिक घटनाएँ घटी थीं। भगवती (आदि-शक्ति) की उपासना में भी इनकी बड़ी आस्था थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देश-विभाजन के पश्चात् ये भगवान् कृष्ण तथा दुर्गाजी के विग्रह किसी तरह सिन्ध के अपने स्थान से जोधपुर ले आये। कालान्तर में भक्तों ने इनके लिए जोधपुर में आश्रम बनवा दिया और उसमें सत्संग-प्रवचन के लिए 'वंशीधर हाल' का भी निर्माण हो गया। भक्तों के अतिशय आग्रह करने पर अंततोगत्वा १९६३ ई० में इन्होंने उस आश्रम में निवास करना स्वीकार कर लिया। आपके प्रवचन सुनने के लिए जनता बहुत उत्सुक रहा करती थी। नाम-जप के माहात्म्य और संकीर्तन पर प्रवचन करते समय आपमें जो तन्मयता आ जाती थी, उसे देखते ही बनता था।

अपने जीवन के अन्तिम दो-तीन वर्षों में ये निरंतर अस्वस्थ रहे। इस प्रकार ९७ वर्ष की आयु भोगकर और भगवद्-भक्ति से ओतप्रोत जीवन बिताकर ये ६ अप्रैल १९७५ ई० को परमधाम पधारे।

इनके कई फुटकर पद प्राप्त हैं, उनमें इन्होंने 'गिरधारी' छाप रखी है। आपका एक सिन्धी पद नमूने के रूप में नीचे दिया जाता है—

अजबु कृष्ण जो दीदारु,
नऊं नितु रोजु दिसां थी।
मुकुट मथे ते कुंडल काननि में,
बन्सीअजो झनकार,
आऊं रोजु बुधां थी॥
जमुना किनारे गायूं चारे,
मोहनु मिठो मनठार,
सुरति साफु दिसां थी॥
वृन्दावन में रास रचाए,
गोपियुनि साण मुरार,
तहिंजो मां ध्यानु धरियां थी॥
कृष्ण मुहिंजे जूं मिठिड्यूं गाल्हियूं,
बेअन्त बेशुमार,
पहिंजे दिलि में रखां थी॥
सुहिणी सूरत मोहिणी मूरत,
जीअंत गुलनि जो हार,
तहिंजो वासु वठां थी॥
अनन्य उपकारी गोबिंद 'गिरधारी',
तहिंतां वंञा बलिहार,
लख अहिसान मंञा थी॥

'मैं नित्य श्रीकृष्ण की नयी-नयी झाँकी का दर्शन करती हूँ। माथे पर किरीट, कानों में कुंडल और बंशी की नयी-नयी तान सुना करती हूँ। यमुना किनारे गाएँ चराते हुए मन को शीतल करनेवाली प्यारे मोहन की झाँकी का अवलोकन करती हूँ। उस मुरली-मनोहर की वृन्दावन में गोपियों के साथ रास करने की झाँकी का मैं ध्यान-दर्शन करती हूँ। मैं अपने हृदय में उस प्यारे की अगणित मीठी-मीठी बातों का भी मधुर स्मरण करती हूँ। उसकी अति सुन्दर और मनोहर छबि के पद्महार की मैं सुगंध लेती हूँ। 'गिरधारी' कहते हैं कि मैं उस अहैतुक कृपालु गोविन्द के कोटि-कोटि उपकार मानती हूँ और उन पर बलिहारी जाती हूँ।'

घ० तो०

गुड़ीबहन

महाभागा गुड़ीबहन का जन्म हैदराबाद (सिन्ध) नगर के एक समृद्ध तथा सुशिक्षित परिवार में सन् १९०३ ई० में हुआ था। पिता का नाम उद्धाराम मल्कानी था। वे जमींदार थे। कन्या सुन्दर व रूपवती थी इसीलिए माता-पिता ने लाड़ से उसका नाम 'गुड़ी' (गुड़िया) रख लिया। ये जब बालिका थीं तब से ही जो गीत सुनती थीं उसे स्वयं मधुर स्वर में गाने लगती थीं। कण्ठ भी बहुत अच्छा था। जब कुछ बड़ी हुईं, हार्मोनियम बजाना सीख लिया। पाठशाला से घर आने पर हार्मोनियम पर भक्ति-गीत गाने का अभ्यास करती थीं। उस समय आसपास से स्त्रियों और बच्चों का समूह इनका मधुर पद-गायन सुनने को एकत्र होता था। बाद में ये सितार बजाना भी सीख गयीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनकी फुआ श्रीमती चतुरीबाई बड़ी भक्तिमती थीं। उनकी प्रेरणा से ये भगवान् कृष्ण के एक सुन्दर विग्रह की प्रेम से पूजा करने लगीं। उसके समक्ष ये नित्य पदगान करती थीं। इनको मीरा के पद अत्यन्त प्रिय थे। आगे चलकर मीरा के वे पद इनके जीवन-धन बन गये। उन्हें तन्मयता के साथ गाकर ये अपना जीवन सफल करती थीं।

हैदराबाद के प्रसिद्ध महापुरुष-द्वय–साधु हीरानन्द तथा साधु नवलराय का सुसंग एवं प्रोत्साहन प्राप्त कर इनकी भक्ति-भावना दृढ़ हो गई। दीन-दुखियों की सेवा-सहायता तथा सादा, पवित्र और साधनामय जीवन व्यतीत करने की सत्प्रेरणा इनको उन्हींसे मिली थी। इनका भजन-कीर्तन दिनोंदिन बढ़ता गया।

१८ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह श्री चंद्रभान थधानी के साथ सम्पन्न हुआ। वे वकील थे और इनके श्वसुर न्यायाधीश थे। विवाह के पश्चात् भी इनके भजन, कीर्तन तथा सत्संग का क्रम पूर्ववत् चलता रहा, उसमें कोई बाधा अथवा न्यूनता नहीं आयी। साधु-महात्माओं में इनकी बड़ी श्रद्धा थी, विशेषतः प्रेम-मार्गी सन्तों द्वारा हैदराबाद के प्रसिद्ध 'एनीबेसेन्ट-हाल' में हर शनिवार को आयोजित सत्संग में गुड़ीबहन का सितार पर मीरा के पदों का सुमधुर गायन हुआ करता था, जिससे सुनने-वाले नर-नारियों के हृदय में श्रीकृष्ण-प्रेम उमड़ने लगता था।

सन् १९४७ ई० में देश-विभाजन के बाद ये सिन्ध छोड़कर अपने परिवार के साथ बँगलोर में आकर रहने लगीं। वहाँ भी इनकी प्रेम-साधना चलती ही नही, अपितु बढ़ गयी। कभी-कभी ये बहुत उदास रहती थीं और भावावेश में बेसुध भी हो जाती थीं। अनेक बार इन्हें विलक्षण दृश्य दिखायी पड़े और अन्य दिव्य अनुभव हुए। उस समय हर्षातिरेक से इन्हें प्रेमाश्रु बहने लगते थे। ये कुछ समय काशी में अपने एक सगे-सम्बन्धी के यहाँ रही थीं और वहाँ भी सत्संग-लाभ किया था। कुछ काल ये लखनऊ में भी रहीं। यहाँ इनकी साधना तीव्रगति से चली। प्रातः ४ बजे अपने कमरे के पट बन्द करके भगवान् की मूर्ति के सामने करताल लेकर नामोच्चार करती हुई फेरे देती थीं और भावोन्मत्त होकर नृत्य करती थीं।

बँगलोर लौटने पर इनका भजन-कीर्तन और भी बढ़ने लगा। ये रात-दिन श्यामसुन्दर के रूप-माधुर्य का चिन्तन एवं रसास्वादन करती रहतीं थीं। इन्हीं दिनों इन्होंने अपने हाथ से भगवान् कृष्ण का एक कलापूर्ण रंगीन चित्र तैयार किया। इससे ज्ञात होता है कि इन्हें चित्रकारी का भी अच्छा ज्ञान था।

बँगलोर में रहते हुए इन्होंने नित्यप्रति कीर्तन का आयोजन किया जिसमें अन्यान्य सत्संगी स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं। वहाँ भगवान् कृष्ण का एक अत्यन्त मनोहर चित्रपट विराजित करती थीं। उसके समक्ष सामूहिक नामकीर्तन तथा पद-गान का कार्यक्रम होता था। इन्हें मीरा के पद, विशेषतः 'म्हाने चाकर राखोजी' तथा 'श्री गिरधर आगे नाचूँगी' बहुत प्रिय थे। उनका गान करते-करते ये भाव-विभोर हो जाती थीं। जब आवेश आ जाता तो करताल लेकर नृत्य करने लगती थीं और उपस्थित भक्त-मंडली को भी साथ-साथ गाने के लिए आह्वान करती थीं। उस समय सारा वातावरण भगवद्-माधुरी से परिव्याप्त हो जाता था।

इनकी भक्ति का प्रवाह उत्तरोत्तर तीव्र होता गया। ये प्रायः श्याम के वियोग में व्यथित रहती थीं और सिसक-सिसककर रोया करती थीं। सन् १९५८ ई० के मई (वैशाख) मास में बँगलोर में स्वामी चिन्मयानन्दजी के व्याख्यानों का क्रम समाप्त होने पर उनके कई सत्संगियों और अनुयायियों ने दक्षिण भारत के तिरुवनमलाई आदि तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा बस से करने का कार्यक्रम बनाया। भक्तिपरायणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुड़ीबहन भी अपने घरवालों की अनुमति लेकर अन्य सत्संगियों के साथ उस तीर्थ-यात्रा के लिए चल दीं। यात्रा के दौरान पुण्य-स्थलों में सत्संग-कीर्तन आदि का क्रम जारी रहा। यह यात्रा प्रायः समाप्त ही होनेवाली थी तब ये लोग बँगलोर लौटते हुए मार्ग में 'कृष्णगिरि' नामक नगर के निकट आये और वहाँ के प्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर में दर्शन करने गये।

उस समय भला कौन ऐसी कल्पना कर सकता था कि जैसे प्रेमोन्मत्त मीरा ने अन्त में द्वारका के द्वारकाधीश मन्दिर में इष्टदेव की आराधना करते हुए संसार से बिदा ले ली थी, अथवा जैसे गुजरात की प्रसिद्ध कृष्ण-भक्ता मंगलागौरी ने पाटन के कृष्ण-मन्दिर में हरिनाम-कीर्तन की तुमुल ध्वनि के बीच प्राण त्याग दिये थे, वैसे ही कृष्णगिरि के कृष्ण-मन्दिर में सिन्ध की यह श्याम-दीवानी भी अपने आराध्य का भावपूर्ण स्तवन-कीर्तन करते हुए प्राणों को न्योछावर कर देगी !

सब सत्संगियों ने मन्दिर पहुँचकर श्रद्धापूर्वक दर्शन किया। तदनंतर वे सब वहाँ भगवान् के श्रीविग्रह के सामने बैठ गये और धूमधाम से कीर्तन और पद-गान आरम्भ हुआ। दिशाएँ भगवद्-भाव से गुंजित हो उठीं। गुड़ीबहन आज एक अनोखी मस्ती में थीं। किसी विशिष्ट धुन में डूबी हुई थीं। वे 'मैं गिरधर के घर जाऊँ' यह मीरा का पद प्रेम में मग्न होकर गाने लगीं। गाते-गाते भावोन्मत्त होकर नाचने लगीं। नेत्रों से अजस्र जल-धारा प्रवाहित थी। शरीर का कुछ भी भान नहीं था। अन्य भक्त-गण भी प्रेम-विमुग्ध होकर उनके अलौकिक भक्तिरस से भीगकर सुधि-बुधि खो चुके थे। सभी आँखें मूँदे हुए झूम रहे थे।

देखते-देखते विरह-कातरा गुड़ीबहन की दशा विचित्र हो गयी। उनके पैर लड़खड़ाने लगे। शरीर ठंडा होता गया। प्रियतम के सामने मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं और भगवन्नामोच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिये। 'मैं गिरधर के घर जाऊँ' गाती-गाती वे सचमुच ही अपने 'गिरधर के घर' पहुँच गयीं।

सब लोग आश्चर्यचकित और स्तब्ध हो गये। यह घटना २७ मई १९५८ ई० को बँगलोर से ८० कि० मी० दूर 'कृष्णगिरि' में घटित हुई।

इनकी तीन कन्यायें थीं, जिनमें से दो का विवाह तो इनके जीवन-काल में ही हो गया था। तीसरी का बाद में पिता ने कराया। वास्तव में गुड़ीबहन महान् भक्तात्मा थीं। इनका अन्तर्मन अनवरत रूप से, अन्तिम काल तक, कृष्ण-प्रेम में निमग्न रहा। इनका रचित कोई छंद देखने में नहीं आया।

घ० तो०

चेलाराम (दादा)

दादा चेलाराम का जन्म ३ मई १९०४ ई० को हैदराबाद (सिन्ध) में श्री टेकचन्द मनसुखानीजी के घर हुआ था। वयस्क होने पर ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कराची गये। वहाँ बी० ए०, एल० एल० बी० पास किया और कराची में ही वकालत करना शुरू किया। ये बड़े ईमानदार और सात्त्विक वृत्ति के थे। झूठ और मिथ्याचार का आश्रय लेना इन्हें बिलकुल नापसन्द था, अतः वकालत छोड़ दी और कराची हाईकोर्ट में नौकरी करने लगे। महत्त्वाकांक्षा और पदलोलुपता जैसे दुर्गुणों से ये कोसों दूर थे।

गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए भी ये भगवद्-भजन को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। प्रारम्भिक काल में ये नियमित रूप से नाम-जप तथा ध्यान करते थे। इन्हें 'गुरुवाणी' में भी बड़ी आस्था थी और संगीत से विशेष लगाव था। ये जब ३० वर्ष के हुए तब इनके मन में भगवत्प्राप्ति के लिये तीव्र अभिलाषा जाग्रत हुई। इसके फलस्वरूप इनके जीवन में बड़ा परिवर्तन आ गया। जागतिक पदार्थों से चित्त हट गया और भगवद्-भजन की ओर वृत्ति विशेष रूप से मुड़ गयी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये नित्यप्रति कराची के 'गुरु-मन्दिर' में जाकर बड़े प्रेम से हरि-कीर्तन करते थे। इनका कण्ठ मधुर था और हार्मोनियम बजाने में भी प्रवीण थे, अतः इनके भक्तिरसपूर्ण कीर्तन में एक विलक्षण मिठास और आकर्षण रहता था। जब ये तन्मय होकर मधुर स्वर में पद-गायन करते थे तो प्रेम का प्रवाह-सा बह जाता था।

एक बार इन्होंने 'गुरुबानी' का एक पद गाया, 'मेरी लालन सों प्रीति बनी है, छोड़ी ना छूटै, तोड़ी ना तूटै, ऐसी माधव खैंच तनी है' और इनका हृदय घायल हो गया। इस पद के भाव का मनन करते-करते जो भाव-तरंगें इनके मन में उठीं उन्होंने इनको सदा के लिए श्यामसुन्दर के पदारविंद का भौंरा बना दिया।

अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण को रिझाने के लिये ये कभी-कभी घण्टों एकान्त में बैठकर आराधना करते तथा उनसे बातें करते, तो कभी महीनों मौन रहकर उनकी मधुर लीलाओं का चिन्तन और रसास्वादन करते थे। ये अपने को एक 'निर्गुण बालक' मानते थे। कविता में भी इन्होंने 'निर्गुण' छाप का प्रयोग किया है।

दादा चेलारामजी ने कराची में जन्माष्टमी का पहला सार्वजनिक महोत्सव किया तब सैकड़ों भक्त उसमें इनके साथ हो गये और रातभर कृष्ण-लीला-गान की अमृत-वर्षा होती रही। उस अवसर पर इनके गहरे प्रेमरंग और भाव-गाम्भीर्य को देखकर सब मुग्ध हो गये और कृष्ण-भक्ति की ओर आकृष्ट हुए। इसके बाद कराची में हरि-कीर्तन का प्रचार बहुत बढ़ा, विशेषतः शिक्षित तरुण-वर्ग इनके निर्मल भक्तिभाव से अत्यधिक प्रभावित हुआ। फलतः अनेक स्थानों और घरों में हरि-कीर्तन होने लगा। इनके सत्संगी और अनुयायी आदर तथा स्नेहवश इन्हें 'दादा' कहते थे।

भारत-विभाजन के पश्चात् दादा चेलारामजी दिल्ली में आ गये। यहाँ इन्होंने और भी अधिक उत्साह के साथ हरि-कीर्तन-यज्ञ का आरम्भ किया। प्रेमा-भक्ति तथा हरि-कीर्तन के प्रसार के लिए 'निर्गुण बालक सत्संग मण्डल' की स्थापना की और दिल्ली, बम्बई आदि नगरों में आश्रम स्थापित कर भक्ति के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश में शिमला के निकट 'सोलन' के एकान्त और रम्यस्थान में साधकों के लिए इन्होंने एक आदर्श 'भक्ति-आश्रम' स्थापित किया जिसमें साधनामय जीवन बिताने के इच्छुक भक्तों के लिए बड़ी सुन्दर व्यवस्था की गयी है। वास्तव में इनका प्रयास, प्रचार, उपदेश सभी कुछ भगवत्प्रेम के लिए ही होता था।

दादा चेलारामजी नित्यप्रति एक पत्र अपने आराध्य 'प्रानपति श्याम' को लिखा करते थे जिसमें इनके भक्त-हृदय की व्यथा एवं विमल प्रेम के उद्‌गार भरे रहते थे। श्यामसुन्दर के प्रति लिखे हुए उनके ये पत्र भक्ति-साहित्य की एक अमूल्य निधि हैं।

इनका श्याम-अनुराग दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। १९६४ ई० में होली के अवसर पर ये वृन्दावन गये। वहाँ चैतन्य महाप्रभु की लीला देखने जाते थे। यह लीला देखते हुए इनके नेत्रों से अनवरत जल-धारा बहती रहती थी। इससे श्याम-वियोग का घाव अधिक गहरा हो गया। वृन्दावन से लौटने पर इनकी विरह-वेदना उद्दीप्त हो उठी। अब इनके लिये 'प्रानपति-श्याम' का बिछोह असह्य हो गया। चार-पाँच दिन के अन्दर ही ७ मार्च १९६४ ई० को श्याम के इस सच्चे आशिक ने अपने 'प्रानपति-श्याम' की चिद्विलास-लीला में प्रवेश किया।

इन्होंने सिन्धी भाषा में कई पद रचे हैं, जो 'प्रानपति-श्याम' शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित हुए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे। इसके छंदों में 'निर्गुण' छाप रखी गई है। यहाँ इनके दो सिन्धी पद नमूने के रूप में दिये जाते हैं—

(१)

मन में सदा बसे बृजनाथ।
मोर मुकुट पीताम्बर धारी,
गिरधर नागर कृष्ण मुरारी,
छत्रपति गिरिवर गिरधारी,
नन्दनन्दन जगन्नाथ॥

राधा प्रीतम नन्द-दुलारो,
गोपन-गोपिनि प्रान-अधारो,
मोहन मधुर मुरलिआ वारो,
जगदीश्वर श्रीनाथ॥

'निर्गुन' बालक महिर बसाई,
नाम अलखजो जापु जपाई,
रोम-रोम में शान्ति बसाई,
गोबिन्द गोपीनाथ॥

'मेरे मन में सदा ब्रजनाथ बस रहे हैं जो मोर-मुकुट और पीताम्बर धारण किये हुए हैं। वे गिरधर-नागर कृष्ण-मुरारी गोवर्धन पर्वत को धारण करने-वाले हैं। वे नन्दनन्दन ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। वे राधा के प्रियतम, नन्दबाबा के दुलारे और गोप-गोपियों के प्राणों के आधार हैं। वे मधुर बंसी बजानेवाले मोहन ही श्रीनाथजी एवं जगदीश्वर हैं। वे गोविन्द-गोपीनाथ इस 'निर्गुण' बालक पर कृपावृष्टि करके उससे अपने नाम का जाप करायेंगे तथा मेरे रोम-रोम में अनुपम शान्ति का संचार करेंगे।'

(२)

सिघो श्याम अची मिलु तूं कान्ह कन्हैया।
लहु सार सजण मूं, घनश्याम कन्हैया॥

गोकुल जूं गायूं तो बिनु वेगाणियूं।
कनि दर्द मां दाहूँ मिङु श्याम कन्हैया॥

राधा जा प्यारा यशोदा जा दुलारा।
नेणनि जा तारा तूं कान्ह कन्हैया॥

नर-नारी पुकारे तो लाइ निहारे।
सिक सोज मां सारे तो श्याम कन्हैया॥

तो बिनु मुरारी, आहे घोर अँधारी।
'निर्गुण' बलिहारी, दे दरस कन्हैया॥

'हे कान्ह, हे कन्हैया, हे घनश्याम! तुम शीघ्र आकर मिलो और मेरी सुध लो। तुम्हारे बिना गोकुल की गौएँ अतिशय उदास हैं और दुःख से पुकार रही हैं, अतः तुम शीघ्र आकर मिलो। हे कन्हैया, तुम राधा के प्रेमास्पद हो, यशोदा के दुलारे हो और आँखों के तारे हो। हे श्यामसुन्दर! सब नर-नारी बड़ी उत्कण्ठा से तुम्हारा स्मरण करते हुए बाट देख रहे हैं। हे मुरारी! तुम्हारे बिना चारों ओर घोर अन्धकार है। प्यारे कन्हैया! यह 'निर्गुण' बलिहारी जाता है, उसे दर्शन दे दो।'

घ० तो०

जयकृष्णदास

भक्त जयकृष्णदास का जन्म हैदराबाद (सिंध) के निकटवर्ती गिद्दूबंदर-क्षेत्र में १३ नवम्बर सन् १९६१ ई० को एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० स्थाउँराम शर्मा था जो बड़े सुशील, सदाचारी और उच्च कोटि के साधक थे। उन दिनों 'पं० स्थाउँराम की कुटिया' प्रसिद्ध थी और संत-समागम का केन्द्र बनी हुई थी। घर के धार्मिक वातावरण का बालक जयकृष्ण पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

पिता ने इनको विद्याध्ययन के लिये काशी भेजा। कई वर्षों तक अध्ययन करने के पश्चात् ये वहाँ से एक उत्कृष्ट विद्वान् बनकर सिन्ध लौटे। ये षट्दर्शन के प्रकांड पंडित थे और ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने कराची में बम्बई-बाजार के निकट अपना निवास-स्थान बनाया। उसके तलघर में एक बड़ा हाल था। इन्होंने उस हाल में नियमित रूप से सत्संग का आयोजन किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

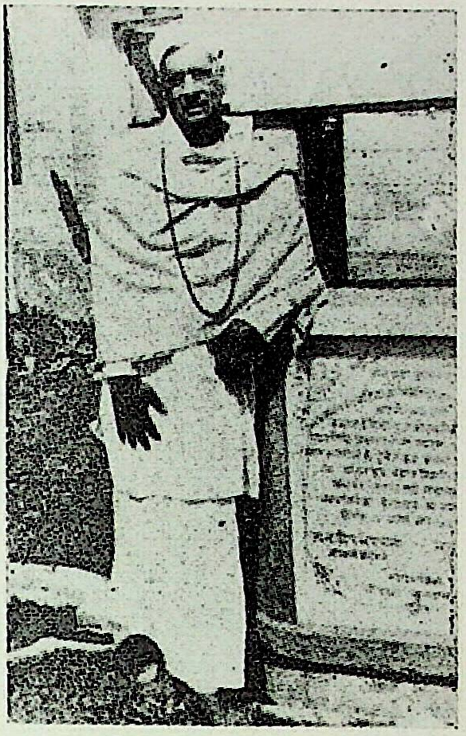

श्री परसराम सहाणी, पृ० ६३३

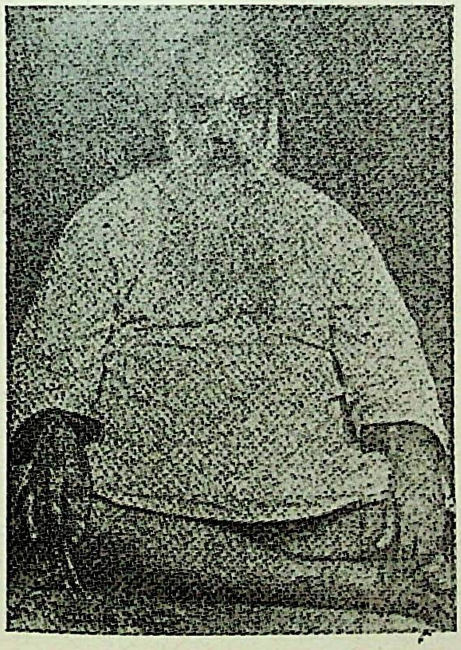

स्वामी प्रहलादराम, पृ० ६३५

पं० प्रियतमदेव शर्मा, पृ० ६३६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाराज भगवान दास, पृ० ६४२

स्वामी प्रेमदास, पृ० ६३८

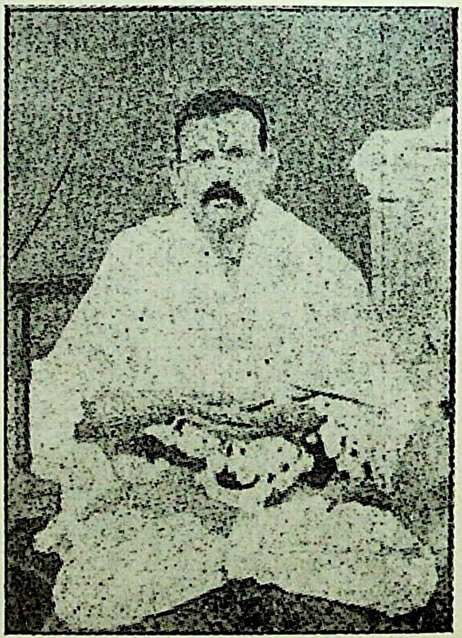

स्वामी बसन्तराम, पृ० ६४०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

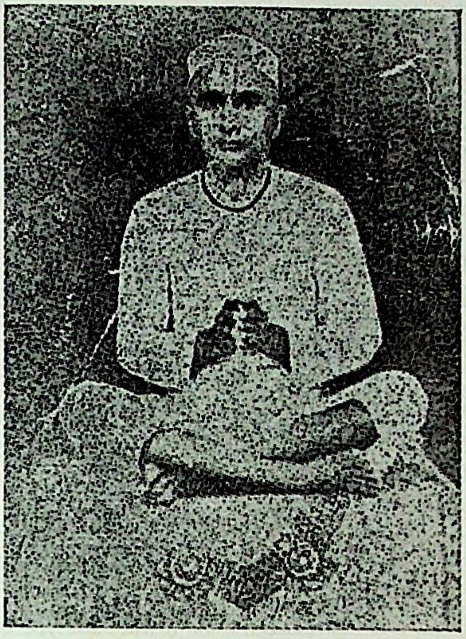

भक्त मेवाराम, पृ० ६४४

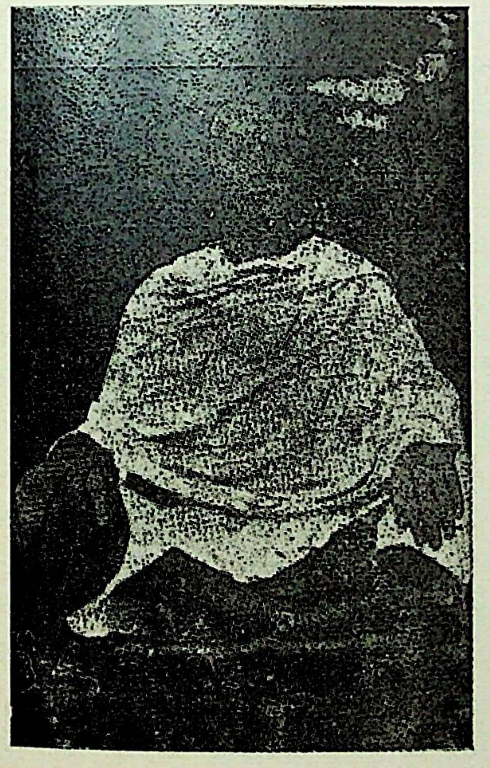

स्वामी रसिकादास, पृ० ६४६

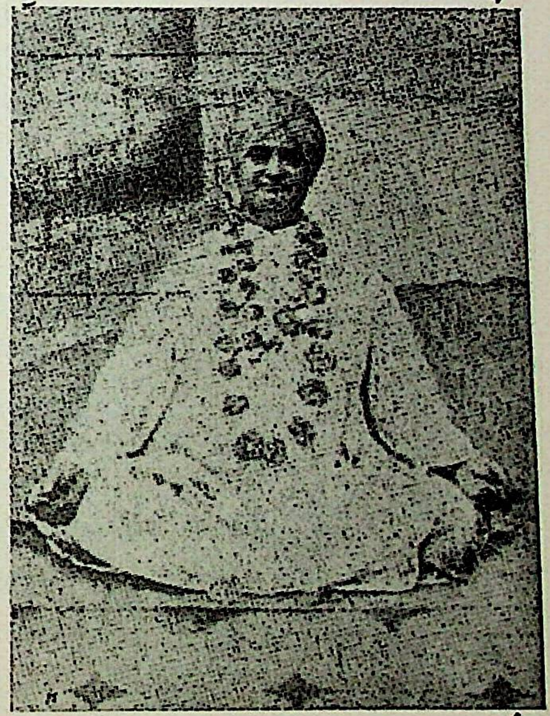

बाबा रामदास, पृ० ६४८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

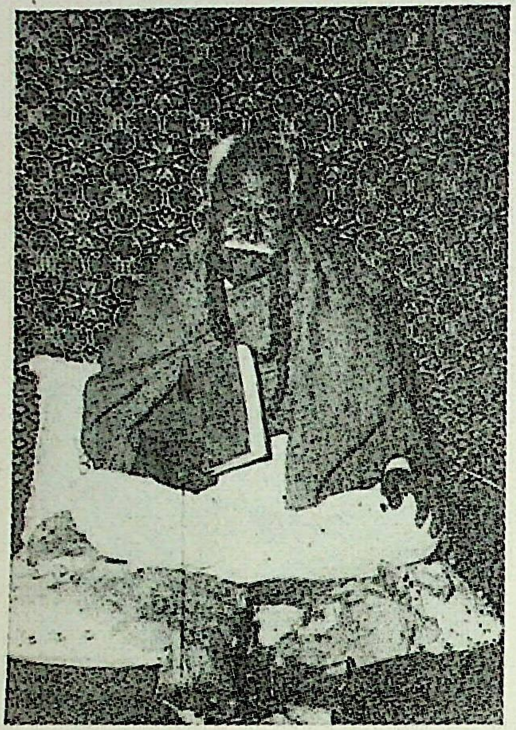

भक्त शीतलदास, पृ० ६५०

श्री श्यामदास, पृ० ६५१

श्री श्यामसनेही श्यामाशरण, ६५३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपकी अमृतवर्षिणी वाणी में प्रवाहित कथा से जनता बहुत प्रभावित हुई। इनके ओजस्वी और भावपूर्ण प्रवचन सुनने के लिये हजारों की संख्या में लोग आते, जिनमें पारसी, मुसलमान तथा कुछ अंग्रेज अधिकारी भी रहते थे।

पं० जयकृष्णदास बड़े ही प्रतिभाशाली पुरुष थे। आप 'भागवत-धर्म' के प्रबल समर्थक और प्रचारक थे। परम भागवत स्वामी बसन्तराम तथा पं० नयनाराम शर्मा के साथ इनका बड़ा सौहार्द था। इन दोनों के साथ आपने तत्कालीन सिंधी हिन्दू-समुदाय में विलक्षण आध्यात्मिक चेतना का निर्माण किया और लोक-मानस में सनातन धर्म, वैदिक-संस्कृति एवं भगवद्-भक्ति का गौरव प्रस्थापित किया। इनके प्रगाढ़ शास्त्रज्ञान और अद्भुत वाग्शक्ति की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। राजस्थान के राजाओं-महाराजाओं द्वारा भी धर्मोपदेश के लिये आप आमंत्रित किये जाते थे और उनके द्वारा यथोचित रीति से सम्मानित होते थे। इस प्रकार भक्त होने के साथ ही ये अपने समय में एक प्रकांड विद्वान् तथा दार्शनिक के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। योगाभ्यास करने के कारण उन्हें श्रद्धालुओं द्वारा 'योगिराज' की संज्ञा से विभूषित किया गया।

भगवान् के सम्बन्ध में उपदेश देते-देते कहीं आत्माभिमान अथवा धर्माभिमान न जाग उठे, इसके लिये ये सदा सावधान रहते थे। ये भगवान् कृष्ण के परम भक्त थे। नित्य एकान्त में अन्तरङ्ग-साधना करते थे। अपने आराध्य की लीलामाधुरी का चिन्तन करते-करते भाव-विभोर हो जाते थे। एक समय विरह-ताप से संतप्त होकर ये कातर भाव से बोल उठे, "कन्हैया! अब दीन पर दया कर, शीघ्र मिलकर मेरी विरहाग्नि शांत कर।" कहा जाता है कि एक बार इनकी रुग्णावस्था में स्वयं ठाकुरजी ने अपने कर-कमलों से इन्हें औषधि-पान कराया था।

इनके अनेक शिष्य हुए जिनमें पं० सुखरामदास, पं० दयाराम और पं० रेवाचंद-प्रेमचंद प्रमुख थे। आप प्रसिद्ध सिन्धी संत स्वामी सच्चिदानन्दजी के भी दीक्षागुरु थे। सैकड़ों परमार्थ-पथिकों और साधकों का मार्गदर्शन करते हुए आपने आजीवन भगवद्-भक्ति तथा धर्म का प्रचार किया। ६ मार्च सन् १९१३ ई० को इन्होंने अपने गिद्रूबंदर के आश्रम में स्थूल देह त्यागकर गोलोकवास प्राप्त किया।

इन्होंने सिन्धी तथा हिन्दी में अनेक पद रचे हैं। कविता में 'जयकृष्णा' छाप का प्रयोग करते थे। आपके कुछ हिन्दी और सिन्धी छंद नमूने के रूप में नीचे दिये जाते हैं—

(हिन्दी)

(१)

गोपति यदुपति बृज गोकुलपति
गिरि गोवर्धन धारी।
पूतन केशि अरिष्ट अघासुर
बक धेनुक संहारी॥
बछिड़ा धेनु अवर ब्रज बालक
तिन मिल बनहिं बिहारी।
मुरली मधुर मनोहर माधो
फूंकि मोहि नर-नारी॥

(२)

धन्य धन्य प्रभु तुमरी दाया।
हमरी विपति मेरु सदृश भी
तुमने फूंक उड़ाया॥
शरण हौं शरण शरण पुनि
शरणपाल तोहि पाया।
'जयकृष्णा' सुत निठुर तुमारो
चाहत कर कमलन की छाया॥

(सिन्धी)

(१)

वञई थो हाणे हल्यो,
वक्तु राम विचार जो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बधु कमरि होश्यारु थी,
छदि संगु विषय विकार जो ॥

छो आहीं घर में गतो,
(भाई) छदि खणो मेड़ो मतो।
हाणे गोले लहु पतो,
वाटवठु संतनि संदी ॥

माउ-पीऊ तुहिंजा जे हुआ,
मुंहुं साम्हूं तुहिंजे मुआ।
तूं बि वेंदें तनि पोआं,
थींदे, वंजी ढिगु छारु जो ॥

माण्हूँ, थियणु मुश्किल अदा,
छो न थींदे तूं सदा।
'जयकृष्णा' श्याम मथां फिदा,
पाणु पाए छो वंजी ॥

'अरे भाई! अब तुम्हारा राम-भजन का समय निकला जा रहा है। अतः सावधान होकर कमर कसो और विषय-विकारों का संग त्याग दो। घर-प्रपंच में क्यों फँसे हो, वह जंजाल वैसे ही छोड़ दो और संतों का मार्ग खोजो। तुम्हारे जो माता-पिता थे वे तुम्हारी आँखों के सामने ही मर गये। तुम भी उनकी तरह राख का ढेर बन जाओगे। मानव-देह बड़ी दुर्लभ है, तुम उसको क्यों नहीं सार्थक करते? 'जयकृष्ण' तो श्यामसुन्दर पर ही आसक्त है।'

(२)

मोटु करि मोहन मिलणजी,
महिर का मिस्कीन ते।
आउ अखियुनि में ओताकूं,
शौंक मां दियांइ श्रीपते ॥

शरणि तुहिंजे शरण पालक,
रखु दया हिन दीनते।
'जयकृष्णा' खे नाहि भरोसो,
तो बिना श्रीयदुपते ॥

'हे मोहन! इस अधीन पर कृपा करके तुम वापस आकर मिलो। हे श्रीपते! मैं तुझे सहर्ष अपने नेत्रों में स्थान दूंगी। हे शरणागत पालक! मैं तुम्हारी शरण में हूँ, तुम मुझ दीन पर दया करो। हे यदुपते! 'जय-कृष्ण' को तुम्हारे सिवा और किसी का भरोसा नहीं है।'

घ० तो०

जवाहरलाल शर्मा

पं० जवाहरलाल शर्मा का जन्म सिन्ध-प्रदेश के हैदराबाद नगर में १८६५ ई० में हुआ था। धार्मिक वातावरण में इनका पालन-पोषण हुआ। हिन्दी और संस्कृत का इन्होंने गहन अध्ययन किया। शास्त्रों का अनुशीलन करने के लिए ये काशी गये। ये गृहस्थ थे। इन्हें तीन पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हुईं। ये सनातन-धर्मसभा के अध्यक्ष-पद पर रहे।

अपने समय के ये प्रकाण्ड पंडित थे। 'दयाराम-गिदूमल-पाठशाला' के ये प्रमुख कार्यकर्ता थे। जब लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हैदराबाद में आये थे तब इन्होंने ही उनके स्वागत में संस्कृत भाषा में सम्मानपत्र पढ़ा था। श्री तिलक ने इनकी विद्वत्ता की प्रशंसा की थी। सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार तथा भगवद्-भजन इनके जीवन के दो प्रमुख उद्देश्य थे।

इन्होंने सिन्धी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में कृष्ण-भक्तिपरक भजनों की रचना की है। उनसे इनके संगीतशास्त्र-ज्ञान का पता चलता है। इनके दो ही कृष्ण-पद उपलब्ध हैं। उनका कुछ अंश प्रस्तुत है—

मोरा मन कृष्ण कहो दिन राती।
मोहन मुकुन्द मुरली मनोहर
सुमर-सुमर बहुभाँती।
गोविन्द गिरिधर गोपाल कन्हैया
कंस-केशि विघाती ॥

• • •

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूरख मन सुमिरो हरिनाम और छोड़ दे काम।
तुम करो भजन हरि चरणन में लगा के लगन ॥
द० आ०

जीवतसिंह (साईं)

साईं जीवतसिंह का जन्म १८३१ ई० में लरकाना नगर के समीप 'कम्बर' नामक ग्राम के एक सम्पन्न क्षत्रिय-परिवार में हुआ था। पिता का नाम था शेवाराम और माता का मोहिनीबाई। पिता जमींदार थे। बाल्यावस्था में ही इन्हें पिता का बिछोह हो गया। इनका पालन-पोषण माता तथा बड़े भाइयों ने किया। इनका रूप सुन्दर और बुद्धि तीव्र थी। ये पढ़ने-लिखने में कुशाग्रबुद्धि थे।

अध्ययन पूरा करने पर ये पुलिस-विभाग में कर्मचारी हो गये। अब इनके विषय-विलासपूर्ण जीवन का प्रारम्भ हो गया। इनका विवाह हुआ उसके बावजूद ये खूब शान-शौकत से विलासी जीवन बिताने लगे। भोग-पिपासा से प्रेरित होकर इन्होंने अनाचार-दुराचार का मार्ग अपनाया और अनेक लोगों पर अन्याय-अत्याचार किये। इस दुष्प्रवृत्ति से इनकी माता तथा भाई अत्यंत दुःखी रहते थे। वे इन्हें बहुत समझाते-बुझाते, परन्तु उसका इन पर कोई असर नहीं होता था। इनकी साध्वी माता पुत्र की ऐसी गतिविधियों से अत्यन्त खिन्न रहती थीं और इनकी बुद्धि में परिवर्तन लाने के लिये भगवान् से पुनः-पुनः प्रार्थना करती थीं। अन्त में प्रभु ने माता की कातर पुकार सुन ही ली।

जब अकारण कृपालु भगवान् दया करते हैं और जीव के कल्याण का समय आ पहुँचता है, तभी उसे सच्चे संत का सम्पर्क प्राप्त होता है। जीवतसिंहजी ने ३४ वर्ष की आयु तक भोग-विलासपूर्ण जीवन व्यतीत किया और लाख समझाने पर भी ये सन्मार्ग पर नहीं आये।

इसी समय एक विशेष घटना घटी। दैवयोग से इनके गाँव कम्बर में एक सिद्ध संत साईं विलायतराय का आगमन हुआ। जीवतसिंह के अग्रज श्री श्यामदास उन महापुरुष के पास जाते थे और सत्संग-लाभ करते थे। कुछ समय बाद उन्होंने महात्मा से अपने छोटे भाई की दुष्प्रवृत्ति का जिक्र किया और गद्गद कंठ से प्रार्थना की कि उन पर कृपा हो। संत विलायतराय ने आज्ञा दी कि उस पथ-भ्रष्ट तरुण को मेरे पास लाया जाय, परन्तु जीवतसिंह एक संत के यहाँ क्यों जाने लगे? आखिर एक दिन इनके भाई श्यामदास किसी तरह बहाना बनाकर इन्हें महात्मा के यहाँ ले ही गये।

साईं विलायतराय ने इन्हें समीप बुलाया और कुछ देर तक इनकी आँखों में दृष्टि लगाये देखते रहे। सहसा भगवत्कृपा का समुद्र उमड़ा। जीवतसिंह के हृदय में विवेक की अग्नि प्रज्वलित हो गई और इनके जीवन-नाटक की यवनिका का परिवर्तन हो गया। एक क्षण में मोह के सारे बन्धन टूट गये। इनकी आँखों से अश्रु की अजस्र धारा बहने लगी और ये स्वयं चिल्लाकर बोल उठे—"हाय-हाय रे जीवत, तुमने क्या किया? सारा जीवन नष्ट कर दिया।" ऐसा कहकर ये मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। दो घंटे के बाद सचेत होने पर रोते-रोते ये संत से कहने लगे—"स्वामी, मैं अब जाग गया, अब मैं वह जीवत नहीं हूँ जो आज तक रहा। अब मैं आपका गुलाम बनकर रहूँगा। मुझे क्षमा करो, मुझ पर कृपा करो।"

तदुपरान्त ये इन सद्गुरु के चरणों में ही रहने लगे। करीब एक वर्ष तक ये मस्ती की स्थिति में प्रायः मूक रहते थे। कभी-कभी आवेश आने पर चिल्ला उठते थे, "हाय-हाय रे जीवत, तुमने क्या किया?" इनकी गुरु-निष्ठा व आत्मसमर्पण अपूर्व था और गुरु-सेवा भी अद्भुत थी। गुरु ने इन्हें भजन की रीति बताई। ये भजन-साधन में लीन हो गयेऔर कुछ ही दिनों में सच्चे साधु व परम भक्त बन गये।

साईं जीवतसिंह के परवर्ती जीवन में विमल भक्ति का झरना फूट निकला। विरह-व्यथा बढ़ने पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये निरन्तर अश्रु बहाते रहते थे। खाने-पीने-सोने की तो सुधि ही नहीं रहती थी। कहा जाता है कि इन्हें भगवान् का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था। इस घटना का संकेत इनके दो सिन्धी छंदों में मिलता है जिनकी ये पंक्तियाँ हैं—'चवे जीवत थ्यो दर्शनु तदहिं थ्युसि आं परसन' (जब मुझे दर्शन मिला तब मैं कृतकृत्य हो गया) और 'देई दर्शनु दोस्त जानी, कयुव मांखे मस्तु चरी' (हे परम प्रियतम! तुमने मुझे दर्शन देकर बावला ही बना दिया है।)

इसके उपरान्त ये सर्वत्र अपने 'यार कृष्ण कन्हैये' को ही देखने लगे ('हर जाइ दिसांथो यार कृष्ण कन्हैये श्याम खे' तथा 'जिति किथि कृष्ण साँवरो, मांब्यो नथी जाणां')। इन्हें जहाँ-तहाँ उसीका दिव्य-स्वरूप दिखने लगा ('जाते काथे दिठुमि जानब, तुहिंजो नुरु जहूर')। साईं जीवतसिंह के जीवन में अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ हुईं। इन्हें अपने आराध्य-देव का नित्य सान्निध्य प्राप्त था। इनके कई शिष्य और अनुयायी हुए, जिन्हें ये 'मित्र' मानते थे और उनसे कहा करते थे कि "विनम्रता और दीनता से ही प्रियतम की प्राप्ति होती है, भगवान् को किसी भी प्रकार का अभिमान-अहंकार अत्यन्त अप्रिय है, अतः 'खुदी का पड़दा तोड़ दो और दैन्य धारण करो।'

शाम को नित्य कथा होती थी, तत्पश्चात् सब सत्संगी एकतारे और मटके बजाते हुए पद-गान करते थे। इस सामूहिक भजन-कीर्तन में एक अनोखी मस्ती और तन्मयता रहा करती थी। इनके स्थान पर दिन-रात सत्संगी आते रहते थे।

सन् १८९८ ई० के दिसम्बर मास में साईं जीवतसिंहजी ने अपने भक्तों को बताया कि (आगामी मास के) जिस दिन और जिस समय मेरे गुरुदेव ने देह-त्याग किया था (१५ जनवरी प्रातः ४ बजे) उसी दिन और उसी समय मुझे भी शरीर छोड़ने का विचार है, अतः प्रमुख अनुगतों और प्रेमियों को यह सूचना भेजी जाय। तदनुसार कई पत्र लिखे गये और १४ जनवरी १८९९ ई० तक प्रायः सभी प्रमुख भक्त कम्बर पहुँच गये। आपका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक था। कुछ अनुयायियों ने आपसे सविनय अनुरोध किया कि परधाम-यात्रा का विचार स्थगित कर दें किन्तु आपने यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

१४ जनवरी सायंकाल को आप एक चारपाई पर विराजमान थे और सत्संगियों की बड़ी भीड़ आपके सामने बैठी हुई थी। बहुत से भक्तों के मन में यह शंका थी कि एक पूर्ण स्वस्थ और बातचीत करता हुआ व्यक्ति कैसे कुछ ही घण्टों में चल बसेगा। आपने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर सबसे बिदा ली। उन लोगों ने भी एक-एक करके आपको प्रणाम किया। आपने सबको आशीर्वाद दिया। फिर कमरे के एक कोने में भूमि पर गोबर की पोताई करवाकर 'आसन' रखवाया। सब सत्संगी तथा नगर के पंच उस रात को वहीं डटे रहे और साईं जीवतसिंह भी रातभर सामान्य रीति से भगवच्चर्चा तथा शंका-समाधान करते रहे। जब प्रातः ४ बजने में २० मिनट शेष रह गया तब आपने कहा, "अब नीचे लेटना है।" फिर स्नान किया, पुरोहित देवदास मिश्र के हाथों गंगाजल लेकर पान किया और भूमि पर बिछे 'आसन' पर लेटकर अपने प्रियतम का ध्यान करते हुए चादर ओढ़ ली और ठीक ४ बजे प्राण त्याग दिया। यह ऐच्छिक गो-लोक-यात्रा आपने १५ जनवरी १८९९ ई० को प्रातः कम्बर में की।

साईं जीवतसिंह-विरचित लगभग १६५ छंदों का संग्रह दो-तीन बार प्रकाशित हुआ था, जिनमें अधिकांश सिन्धी भाषा में हैं। कविता में आपने 'जीवत' छाप का प्रयोग किया है। आपके दो सिन्धी छंद नमूने के रूप में दिये जाते हैं—

(१)

कृष्ण कृष्ण थी करियां, आहे कृष्ण मुंहिंजो जीउ।
सिक कृष्णजी जंहिंखे जेदियूं, तंहिंखे कहिड़ो सीउ।
हिन निमाणी निधरि जी, पति रखंदो पीउ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असुलों दरगाह जो जेदियूं, गोलो गुलाम होउ।
समुझी सअलम मुर्शिद जो, 'जीवत' रची लालु थीउ ॥

'मैं कृष्ण-कृष्ण पुकार रही हूँ क्योंकि कृष्ण ही मेरे प्राण हैं। अरी सखियो! जिसको श्रीकृष्ण की प्यास है उसमें भला उदासीनता कैसे रहेगी? इस दीन अबला की लाज तो वे मेरे पिया ही रखेंगे। अरी सखियो! यह दासी तो आदिकाल से ही उस दरबार की किंकरी है। गुरुदेव का संकेत प्राप्त कर 'जीवत' अब प्रेमरंग में रँगकर पूरा लाल हो गया है।'

(२)

सुन्दर स्वामी कृष्ण मुहिंजा,
आऊं तोलाइ बेठी निहारियां।
उथंदे विहंदे तलबत तुहिंजी,
सदा तो खे थी सारियां।
गाल्हियूं गुण कृष्ण तुहिंजूं,
दम दम दिल में धारियां॥

मिलु मुहिंजा तूं सुहिणल साईं,
मिली तोसां मौजूं माणियां।
आहे 'जीवत' खे आस इहाई,
थी रिलमिल तोसां घारियां॥

'हे मेरे स्वामी श्यामसुन्दर! मैं यहाँ बैठकर तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही हूँ। उठते-बैठते सदा सर्वदा तुम्हारी ही लालसा और स्मरण कर रही हूँ। मेरे हृदय में निरन्तर तुम्हारे ही गुणों और लीलाओं की याद बनी रहती है। हे मेरे सुन्दर स्वामी! अब मुझसे शीघ्र मिलिये, तुमसे मिलकर मैं परमानन्द प्राप्त करूँगी। 'जीवत' की बस एक यही आकांक्षा है कि तुम्हारा नित्य-सान्निध्य प्राप्त करे।'

घ० तो०

टउँरराम शर्मा

श्यामसुन्दर के अनन्य उपासक भक्तवर टउँरराम का जन्म वि० सं० १९२० (१८६३ ई०) में सिन्ध के 'भिडशाह' ग्राम के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम चेलाराम शर्मा था। टउँररामजी अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण पौरोहित्य वृत्ति से करते थे।

इनकी रुचि भगवद्-भक्ति में थी अतः ये अधिक समय सत्संग और स्वाध्याय में बिताते थे। इनके दीक्षा-गुरु कौन थे, इसका पता नहीं चलता। बड़े होने पर ये प्रेमोपासना में प्रवृत्त हो गये। इनके गाँव के पश्चिम में एक नीचे स्तर का भू-भाग था जिसे 'बोदा-सरोवर' कहा करते थे, यद्यपि उसमें जल केवल वर्षा ऋतु में ही रहता था। ये नित्य उस निर्जन एकान्त स्थान में जाकर भजन-ध्यान करते थे। वर्षा होने पर जब उसमें जल भर जाता था तब तो ये दिनभर वहीं रहकर भजन करते थे। उस रम्य, लता-वृक्षों से सज्जित स्थान में इनकी वृन्दावन की भावना रहती थी। सायंकाल को घर लौटकर प्रसाद पाते और रात को फिर जागरण कर भजन करते। बीच में कभी घण्टा-आध घण्टा लेट जाते थे।

एक बार की बात है। ये बिना कुछ घर में कहे, गाँव से दूर एक सूने खंडहर में जाकर भजन में लीन हो गये। न घर लौटने की सुधि रही, न खाने-पीने की। तीन दिन तक इनके पुत्र इन्हें ढूंढ़ते रहे किन्तु कहीं पता न लग सका। चौथे दिन गाँव के दो व्यक्ति उस भग्न स्थान के पास से गुजरे तो देखा कि ये वहाँ बड़ी मस्ती में पद-गान कर रहे थे। पता लगने पर इनके पुत्र वहाँ गये और अनुनय-विनय करके इन्हें घर लिवा लाए।

इनके एक अन्तरंग मित्र ने एक बार इनसे जिज्ञासा की, "कल उस सूने बोदा-सरोवर के पास आप तल्लीन-से बैठे हुए टकटकी लगाकर क्या देख रहे थे?" यह सुनते ही ये पुलकित हो गये और इनकी आँखों से जलधारा बह चली। गद्गद कण्ठ से कहा, "मैंने जो देखा उसका भला तुम्हें क्या पता, साक्षात् व्रजराज कुँवर सामने खड़े हुए बाँसुरी बजा रहे थे, मैं उनकी मधुर तान सुनने में ही तल्लीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था।" यह उत्तर देकर इन्होंने एक ठण्डी साँस ली, फिर मौन हो गये।

सामान्य लोग इन्हें प्रायः प्रेमोन्मत्त या अलमस्त भक्त समझते थे। वास्तव में इनकी आध्यात्मिक स्थिति बहुत ऊँची थी। हैदराबाद (सिन्ध) के प्रसिद्ध रसिक भक्त स्वामी बसन्तरामजी अपने सत्संगियों और अनुगतों को इनके दर्शन-सत्संग करने की प्रेरणा देते थे।

आपने १५ नवम्बर १९१९ ई० (वि० सं० १९७६) की संध्या को गोलोक-यात्रा की। अन्त समय में भी आप पूरे शान्त और सावधान थे। शरीरान्त से १५-२० मिनट पूर्व पुत्रों से कहा, "कोई भजन सुनाओ।" उन्होंने 'मेरो मन ओट लियो हरि नाम' यह भजन गाया। इन्होंने उनसे इसकी प्रथम पंक्ति पुनः गाने को कहा, तदनन्तर १० मिनट नामध्वनि करवायी और फिर स्वयं भगवन्नाम का उच्चारण करते हुए देह-त्याग किया। उस समय एक आश्चर्यजनक बात देखी गई। शरीरांत के पश्चात् करीब एक घण्टे तक इनके मृत शरीर में से एक अति मधुर ध्वनि निकलती सुनाई पड़ती थी, मानो कोई कुशल गवैया सितार से अत्यन्त सुरीली तान निकाल रहा हो। उस समय आपके मुख पर विराजमान विलक्षण कान्ति और तेज देखते ही बनता था। वास्तव में ये प्रेमाभक्ति के दिव्य रस में छके हुए एक उच्चकोटि के अनुरागी भक्त थे। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

घ० तो०

टी० एल० वास्वानी (साधु)

सुप्रसिद्ध मनीषी, कवि, दार्शनिक, आध्यात्मिक साहित्य प्रणेता एवं महान् प्रेमयोगी साधु वास्वानीजी श्यामसुन्दर के परम अनुरागी भक्त थे। इनकी प्रेम-साधना की आदर्श थीं प्रेमयोगिनी मीराँ।

साधु वास्वानी का जन्म कार्तिक एकादशी, २५ नवम्बर १८७९ ई० को हैदराबाद (सिन्ध) में लीलाराम वास्वानी के घर में हुआ था। इनका जन्म का नाम था थाँवरदास। माता-पिता दोनों ही भक्तिभावापन्न थे। इसका इनके भावी जीवन-विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। संयोगवश इन्हें साधु हीरानन्दजी जैसा आदर्श अध्यापक मिला जिन्होंने इनमें सादगी, पवित्रता, परोपकार और ईश्वरनिष्ठा के बीज बोये। फलतः इनके चित्त की वृत्तियाँ लड़कपन से ही भगवान् की ओर झुक गयीं।

ये जब कराची कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तभी से इनकी (इनके ही शब्दों में) "श्रीकृष्ण के साथ दिल-लगी थी।" वहाँ से एम० ए० पास करने के बाद ये कलकत्ता में विद्यासागर कॉलेज के प्रिन्सिपल हो गए। इनका रहन-सहन सादा और विचार तथा आदर्श ऊँचे थे। परमार्थ-सम्पादन की सच्ची चाह थी, अतः वहाँ संत नालूदाजी से दीक्षा प्राप्त कर साधना करने लगे। पिता का देहांत हो चुका था। माता ने विवाह की चर्चा की किन्तु इन्होंने मना कर दिया। फिर ये आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे। माता के देहावसान के पश्चात् प्रिन्सिपल-पद से त्यागपत्र दे दिया और पूरा समय अध्यात्म-साधना और स्वाध्याय में बिताने लगे।

बर्लिन (जर्मनी) के विश्व-धर्म-सम्मेलन में इन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक वैशिष्ट्य-सम्बन्धी बड़े ही सार-गर्भित, ओजस्वी एवं विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिये जिससे वहाँ उपस्थित सभी प्रतिनिधि बहुत प्रभावित हुए।

हैदराबाद (सिन्ध) में इन्होंने कन्याओं की समुचित शिक्षा के लिये प्रसिद्ध 'मीराँ-विद्या-मन्दिर' की स्थापना की जिसमें भारतीय संस्कृति के अनुरूप धार्मिक शिक्षा और चरित्र-निर्माण पर विशेष बल दिया जाता था। इससे शिक्षा-क्षेत्र में अपूर्व चेतना आई और उसके आदर्श पर अन्य नगरों में भी अनेक विद्यालय खुल गये। इनके द्वारा प्रवर्तित इस 'मीराँ-विद्या-आन्दोलन' का मूलमंत्र था—सादगी, सत्य, स्नेह, सेवा और प्रार्थना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने उत्कट त्याग, तपस्या और भगवद्-परायणता के कारण ये 'साधु-वास्वानी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इन्होंने हैदराबाद में 'उपासना-वर्ग' और 'मीराँ-सत्संग' की स्थापना की जिसके प्रभाव से सैकड़ों लोगों का जीवन ही बदल गया। ये अपने सहयोगियों के साथ प्रातःकाल नगर-संकीर्तन निकालते थे। सिन्ध में इन्होंने जीवदया का भी व्यापक प्रचार किया। पशु-पक्षी आदि मूक जीवों के प्रति मानव की क्रूरता से इनका दयार्द्र हृदय द्रवित हो जाता था। गरीब, दुःखी, अभावग्रस्त प्राणियों का दुःख इन्हें अपने दुःख से बढ़कर लगता था। इनके नेत्रों से करुणा टपकती थी।

साधु वास्वानी वैराग्य और अनुराग के मूर्तरूप थे। अधिकांश समय एकान्त में ही विताते थे और भगवदाराधन करते थे। ये सदा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते थे एवं सदाचार पर बल देते थे।

पाकिस्तान बनने पर ये सिन्ध छोड़कर पूना में आ गये। कुछ काल के उपरान्त इन्होंने पूना में भी अपनी बहुमुखी लोकोपकारिणी क्रियाएँ तथा सत्संग आरम्भ किया। धीरे-धीरे वहाँ 'साधु-वास्वानी मिशन' के तत्त्वावधान में शैक्षणिक संस्थाएँ–बाल मन्दिर, शालाएँ, बहनों के लिये 'मीराँ-स्कूल' और 'मीराँ-कॉलेज' तथा नारीशाला, दवाखाना आदि की स्थापना हुई। इनके द्वारा स्थापित इस मिशन की धार्मिक तथा आध्यात्मिक गतिविधियाँ उत्तरोत्तर बढ़ती गयीं और सत्साहित्य का प्रकाशन भी प्रचुर मात्रा में होने लगा।

साधु वास्वानीजी ने पूना में भी नित्य सत्संग का क्रम जारी रखा जहाँ सैकड़ों लोग एकत्र होकर परमार्थ-लाभ करते थे। आपके विषय-प्रतिपादन की शैली अनूठी थी। इनके प्रवचन बड़े ही मार्मिक, भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी होते थे। इस प्रेमयोगी भक्तात्मा की अनुराग-रँगी सुललित बानी श्रोताओं के हृदयों को बेध देती थी। वास्तव में इनकी अद्‌भुत भगवद्-निष्ठा, अलौकिक भक्तिभावना और अपूर्व प्रवचन-शैली का बड़ा ही गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ता था।

इन्होंने भक्त-महात्माओं, ऋषि-मुनियों तथा विश्व-भर के परमार्थ-साधक महापुरुषों का पुनीत सन्देश प्रसारित करने के उद्देश्य से अंग्रेजी भाषा में 'मीराँ' और 'ईस्ट ऐण्ड वेस्ट' तथा सिन्धी में 'संतमाला' और 'श्याम' नामक मासिक पत्रिकाओं का प्रवर्तन किया। आपकी चमत्कारी लेखनी द्वारा असंख्य भव-संतप्त जीवों को सुशीतल शान्ति प्राप्त हुई, अगणित भूले-भटके नर-नारियों का पथ-प्रदर्शन हुआ और वे परमार्थ-पथारूढ़ होकर सच्चे भगवद्-भक्त बन गये।

देश-विदेश के अनेक विद्वान्, विचारक तथा जिज्ञासु आपके दर्शन-सत्संग के लिए पूना की 'मीराँ-भूमि' में आते रहते थे। भारत के राष्ट्रपति तथा विश्व-प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ॰ राधाकृष्णन् जब पूना में आये थे तब वास्वानीजी से मिलने के लिए आश्रम पर पधारे थे। उस अवसर पर उन्होंने कहा था, "मैं तीर्थयात्री के रूप में यहाँ आया हूँ। यह स्थल मेरे लिए एक पवित्र तीर्थस्थान है। साधु वास्वानी भारत के ऐसे महापुरुष हैं जिनके द्वारा सहस्रों जनों को सद्-प्रेरणा प्राप्त हुई और हो रही है।" इससे इनकी आध्यात्मिक गरिमा का अनुमान किया जा सकता है।

साधनात्मक उपलब्धियों की दृष्टि से साधु वास्वानी सिन्ध की अनोखी आध्यात्मिक विभूति थे। इनकी साधना प्रेममूलक थी। ये प्रेम को ही सर्वस्व और साक्षात् भगवद्रूप मानते थे—'प्रेम ही श्याम मोहन मुरारी, प्रेम ही ज्योति धाम अवतारी।' इनका त्याग, वैराग्य, तपस्या, ज्ञान आदि सब प्रेममूलक था। इन पर सूफ़ी उपासना का गहरा प्रभाव पड़ा था। ये एक बड़े दार्शनिक और महान् ज्ञानी थे। पर इनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान ने सदा 'श्याम-शरण' की ही प्रेरणा दी। इन्होंने समस्त जगत् में प्रेमावतार श्रीकृष्ण की सरस परिव्याप्ति पायी। ये कहा करते थे, 'श्याम ही मेरी आशा है, श्याम ही मेरा भरोसा है, श्याम ही मेरा परम-धन है और श्याम ही मेरी जीवन-ज्योति है।'

वास्वानी महाशय श्यामसुन्दर के सच्चे आशिक थे। ये श्याम को प्रायः 'जादूगर' की संज्ञा देते थे। इनका कहना था, श्याम ने अपने इस 'जादू' द्वारा शताब्दियों से लाखों हिन्दू-मुसलमान-ईसाई स्त्री-पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट किया है।

सौंदर्य-सुधा-सागर श्रीकृष्ण को ये 'सूरत जो सरदार' कहते थे और आकांक्षा करते थे कि 'मुझे करोड़ नेत्र प्राप्त हो जायँ जिनसे मैं श्याम की इस अलौकिक रूप-माधुरी का निरन्तर रसास्वादन करता रहूँ।'

'शरणागति' और 'प्यास' इन दो तत्त्वों पर आप बहुत बल देते थे। इनका कहना था कि 'सत्कर्म भी ठीक हैं किन्तु सत्कर्मों का भी सत्कर्म है 'शरणागति' और गीता का सार १८वें अध्याय के ६६वें श्लोक 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' में ही है, अतः श्याम की शरण लो।' अन्तिम समय में तो आपके प्रवचनों का एकमात्र विषय 'श्यामशरण' ही रह गया था। श्याम के लिये प्यास बढ़ाने के विषय में ये कहते थे, 'पतंग (परवाना) की तरह प्रेम की अग्नि में कूद पड़ो।' गोपी-प्रेम को ये 'अत्यन्त निर्मल और परम उज्ज्वल भक्ति' की संज्ञा देते थे और अभिलाषा करते थे कि 'गोपी-प्रेम का एक कण कहीं इस दास को प्राप्त हो जाय।' आपका मंत्र था 'कृष्ण कृपा हि केवलम्'।

श्यामसुन्दर के परम भक्त और अनन्य उपासक होते हुए भी इनका दृष्टिकोण समन्वयवादी था। ये सभी देवों, अवतारों, आचार्यों और संतों में समान आस्था रखते थे। भगवान् बुद्ध, महावीर, गुरुनानक, महात्मा ईसा, सूफ़ी संतों तथा विश्व के अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रवर्तकों के प्रति भी इनके हृदय में असीम आदर और अपार श्रद्धा थी। इनका सभी सम्प्रदायों के अनुयायियों से समान सौहार्द और प्रेम था। इन्हें श्याम-दीवानी मीराँ और सूरदास जितने निकटस्थ और प्रिय लगते थे, उतने ही मुस्लिम कृष्ण-भक्त ताज और रसखान भी आत्मीय और प्यारे लगते थे। वास्तव में ये समस्त धर्माचार्यों और सभी सम्प्रदायों के संतों तथा भक्तों को परम-पूज्य और वंदनीय मानते थे। मीराँ तो इनका आदर्श ही थी।

साधु वास्वानी भारत-भूमि को धर्म और आध्यात्मिकता की स्वर्ण-खान समझते थे और गीता को 'सार्वभौम-शास्त्र' मानते थे। इनका कहना था कि 'भगवान् कृष्ण का सन्देश' केवल भारत के लिये ही नहीं परन्तु सारे जगत् के लिये है। एक बार इन्होंने कहा था, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस समय सब देशों और सब धर्मों को इस दिव्य सन्देश की परम आवश्यकता है और यह 'कृष्ण-सन्देश' ही आज के विश्व की विनाश से रक्षा कर सकता है।"

भारत के आध्यात्मिक क्षितिज का यह देदीप्यमान नक्षत्र १६ जनवरी १९६६ ई० को पूना में भगवत्स्वरूप में लीन हो गया। आपकी गणना आधुनिक भारत के विशिष्ट महापुरुषों में होती है। भारत सरकार ने आपके सम्मान में इनके जन्म-दिवस पर २५ नवम्बर १९६९ ई० को एक विशिष्ट डाक-टिकट जारी किया था।

आपने अंग्रेजी तथा सिंधी में अध्यात्म-विषयक पचासों पुस्तकें और सहस्रों कविताएँ रची हैं। कविता में ये 'नूरी' छाप का प्रयोग करते थे। आपका समस्त सिंधी काव्य १८०० पृष्ठों के बृहदाकार 'नूरी-ग्रंथ' में संग्रहीत होकर प्रकाशित हुआ है।

विविध विषयों पर लिखी इन फुटकर कविताओं में उच्च कोटि के भक्तिभाव, आध्यात्मिक अनुभव, दार्शनिक विचार एवं रहस्यवाद की दुर्लभ झाँकियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलती हैं। वस्तुतः 'नूरी-ग्रंथ' इनकी अनुपम भक्तिनिष्ठा का अमूल्य तथा स्थायी कोष है। इन्होंने सिन्धी गद्य में गीता पर विस्तृत टीका लिखी है तथा उसका सरल सिन्धी पद्यानुवाद भी किया है। 'सुखमनी' जैसे भक्ति-ग्रंथों पर भी आपने उत्कृष्ट भाष्य लिखे हैं। वास्तव में सिन्धी भक्ति-साहित्य में आपका सर्वाधिक योगदान रहा है।

आपका एक सिन्धी पद नमूने के रूप में प्रस्तुत है—

गली-गली आं गोकुल में,
सुरंदा साज़ वजाईंद्यसि।
घुंघरु पैरे पाकर प्यारा,
नेहँ विचूं त नचाईंद्यसि॥

घिटयूं घुंमी थी फकीरियाणी,
मुरल्यूं मस्त मचाईंद्यसि।
रो रो राधा राह में राणल,
नेणनि नीरु वहाईंद्यसि॥

नेहँ नियारे तुहिं जे में,
बदनामी दागु लगाईंद्यसि।
सिक तुहिंजे में 'नूरी' सुहिणा,
पहिंजो पाणु जलाईंद्यसि॥

'हे श्याम! तेरे लिये मैं ब्रज की गली-गली में जाकर सारंगी (वाद्य) बजाऊँगी। पैरों में घुँघरू पहनकर मैं तेरे प्यार में नाचूंगी। भिखारिन बनकर गलियों में बिचरती हुई मैं श्रीराधाजी की तरह खूब रोऊँगी, नेत्रों से जल-सरिता बहाऊँगी। तेरे विलक्षण प्रेम के लिये मैं बदनामी और कलंक भी सहर्ष अपने सर पर लूंगी। 'नूरी' कहती है कि हे सौन्दर्यनिधि! मैं तेरे प्रेम में अपने-आपको दग्ध ही कर डालूंगी।'

घ० तो०

ठाकुरदास शर्मा

ठाकुरदासजी शर्मा का जन्म सिंध प्रदेश के हाला तालुका के अजन ग्राम में विक्रम सं० १९२५ (१८६८ ई०) में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लखीराम शर्मा था। ब्राह्मण-कुल में जन्म लेने के कारण इन्होंने शास्त्रों का विधिवत् अनुशीलन किया था। ये गृहस्थ थे।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र तथा रामचन्द्र दोनों में इनकी समान रूप से आस्था थी। प्रभु के प्रति इनके अंतःकरण में जो अनुराग था वह भजनों में प्रवाहित हुआ है। इन्होंने सिन्धी और हिन्दी दोनों भाषाओं में पदों की रचना की है। इनके पद 'भजन-कल्पतरु' में १९०५ ई० में प्रकाशित हुए। इनके पुत्र पण्डित लालचंद ने भी इनके भजनों का एक संकलन 'भजन-महातरंगिणी' नाम से प्रकाशित किया है। इनका देहावसान १९०६ ई० में हुआ।

इनकी कृष्णभावापन्न रचनाओं से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

नन्द के गोपाललाल बंसरी बजा।
यमुना के तीर भई भीर गोपनार की,
नीर के बहाने कोई खीर बेचन जा॥

• • •

साँवरी सूरत चतुर्भुजधारी।
मोर मुकुट माथे पर सोहे,
मुख मुरली तो बजाव वो प्यारे॥

दे० आ०

दामोदर शर्मा

पं० दामोदर शर्मा का जन्म सिन्ध प्रदेश के हैदराबाद नगर के एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में संवत् १९५९ मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी को हुआ था। पिता का नाम पं० बगाराम तथा माता का यमुनादेवी था।

अभी छोटी अवस्था ही थी कि आपके माता-पिता परलोकवासी हो गए। उनके वियोग के फलस्वरूप बालक दामोदर संसार से उदासीन हो गये। अब ये श्रीकृष्ण को ही अपना माता, पिता तथा सखा मानने लगे और उनका ही आश्रय ग्रहण करने का निश्चय कर लिया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक दिन घर छोड़कर ये अपने आराध्य की खोज में वृन्दावन चले गये। वहाँ एक विचित्र घटना घटी। श्यामसुन्दर को ढूंढ़ते हुए एक बार ये जंगल में बहुत आगे निकल गये। भूख-प्यास से व्याकुल हो एक पेड़ के नीचे अचेत होकर गिर पड़े। कुछ देर बाद आँखें खुलीं तो देखा कि कोई उन्हें अपनी गोद में रखे हुए ताजा दुहा हुआ दूध पिला रहा है। इन्हें इस प्रकार सचेत कर वह अजनबी अपनी गौओं के साथ कुछ आगे जाकर गायब हो गया। निर्जन वन में घटित इस घटना ने इनको विभोर कर दिया। इससे इष्टदेव में इनका विश्वास और प्रेम अधिक दृढ़ हो गया।

इनके बड़े भाई पं० विष्णुदत्तजी इनको खोजते हुए मथुरा-वृन्दावन पहुँचे। वहाँ न मिलने पर ढूँढ़ते ढूँढ़ते हरिद्वार गये। अन्त में इन्हें वहाँ गंगा-तट पर पाया और समझा-बुझाकर घर वापस ले आये। घरवालों ने आग्रहपूर्वक इनका विवाह कर दिया, जिससे इनका चित्त संसार में लग जाय। दैवयोग से इनकी पत्नी यशोदादेवी भी भक्तिमती थीं। उनके माता-पिता वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। पं० दामोदरजी श्रीमद्भागवत, गीता, रामायण आदि भक्ति-ग्रंथों का खूब स्वाध्याय करते थे। आजीविका के लिए इन्होंने एक अनाथाश्रम में नौकरी कर ली किन्तु आपकी अन्तर्वृत्ति भजन में ही लगी रहती थी।

अब आपके हृदय में सद्गुरु पाने की तीव्र उत्कंठा पैदा हुई। शीघ्र ही इन्हें परमहंस श्री नारायण स्वामीजी (टाटवाले बाबा) का अनुग्रह प्राप्त हुआ। गुरुदेव के साथ आपने दो बार श्रीबद्रीनाथजी की पैदल यात्रा की। प्रारम्भ-काल में आप गुरुदेव की बतायी 'श्री हरि नारायण नारायण नारायण, बद्री नारायण नारायण नारायण' नाम-ध्वनि को रटते हुए आराध्य युगल का ध्यान करते थे। ये बड़े भजनशील थे। सतत राधा-माधव के भक्ति-रस में छके रहते थे। आपका दृढ़ विश्वास था कि इस कलिकाल में हरिनाम-कीर्तन ही कल्याण का सर्वोपरि साधन है। भागवत-धर्म में आपकी अगाध निष्ठा थी। ये बार-बार कहा करते थे कि भगवान् ने गीता में केवल 'भक्त' के लिये ही यह आश्वासन प्रदान किया है—'न मे भक्तः प्रणश्यति'। आपकी दृढ़ मान्यता थी कि कोई भी, कैसा भी व्यक्ति यदि १२ कोटि नाम-जप करेगा तो उसे भगवत्साक्षात्कार अवश्य ही होगा।

भारत-विभाजन के बाद आप सिन्ध से बम्बई आकर कोलाबा में रहने लगे। यहाँ भी सत्संग व भगवद्-भजन में ही लगे रहे। ये साधु-संतों के बड़े प्रेमी थे, अतः समय-समय पर इनके निवास-स्थान पर संत-महात्मा आया करते थे। परमपूज्य श्री हरिबाबा, पू० स्वामी अखण्डानन्दजी, 'इस्कान' (श्रीकृष्ण-संचेतना) के संस्थापक श्री भक्ति वेदान्त प्रभुपाद प्रभृति महापुरुष आपकी कुटिया पर पधारते थे।

वृन्दावन धाम में आपकी विशेष प्रीति थी, अतः वर्ष में २-३ बार वृन्दावन-बरसाने अवश्य जाते थे। आपकी यह उत्कट अभिलाषा थी कि मैं वृन्दावन में ही देह-त्याग करूँ और अन्त समय यमुना-किनारे मेरे शरीर पर वृज-रज लगी हो, युगल किशोर का ध्यान हो और राधाकृष्ण-नाम की रट हो। आपने इस भाव का एक पद भी रचा था, जिसे ये बार-बार गाते रहते थे।

संवत् २०३४ (१९७७ ई०) के श्रावण (जुलाई १९७७) में आप (बम्बई से) वृन्दावन जाने के लिए उद्यत हुए। अपने परिवार तथा मित्रों से स्पष्ट कहा कि अबकी बार वृन्दावन से लौटकर नहीं आयेंगे। आपने यह निश्चय किया था कि प्रथम श्रावण के पश्चात् आनेवाले पूरे पुरुषोत्तम मासभर मौन रहेंगे और अखण्ड नाम-कीर्तन चालू रहेगा। इसी संकल्प के साथ आप धर्मपत्नी सहित वृन्दावन आ गये, परन्तु पुरुषोत्तम मास आरम्भ होने से दो दिन पूर्व ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपको एक दिव्य स्वप्न हुआ। स्वप्न में आपने यह देखा कि राधारानी की दो सखियाँ दिव्य विमान लायी हैं और कह रही हैं कि 'आपको राधारानी ने गोलोक में बुलाया है।' आपने उनसे अनुरोध किया कि 'मैं संकल्पानुसार अखण्ड नामकीर्तन आदि का एक मास का आयोजन सम्पन्न कर लूँ, तब तक की अवधि मुझे दी जाय।' यह सुनकर वे दोनों सखियाँ चली गईं, किन्तु दूसरे दिन वे फिर आयीं और कहने लगीं कि 'दूसरा कोई अधिकारी यहाँ नहीं मिल सका, अतः आपको ही इस विमान में बैठकर चलना होगा।' जागने पर आपने इस स्वप्न का वृत्तान्त अपनी पत्नी से कहा किन्तु उन्हें इनके तत्काल गोलोक-गमन की बात पर विश्वास नहीं हुआ। परन्तु हुआ वही। दूसरे दिन श्रावण कृष्ण अमावस्या (१६ जुलाई १९७७) को प्रातः जब आप अपने कमरे में बैठे हुए थे तो अकस्मात् कोई दृश्य देखकर सहसा चारपाई से उठकर तेजी से दरवाजे की ओर दौड़े और बाहर बरामदे में आकर आकाश की ओर देखते हुए वहीं अचेत होकर गिर पड़े। आपकी पत्नी, जो उस समय कमरे के एक कोने में रसोई बना रही थीं, इनकी ऐसी विचित्र चेष्टा देखकर तुरन्त पीछे लगी हुई बाहर पहुँचीं, किन्तु तब तक इनकी आत्मा सखियों के साथ विमान में आरूढ़ होकर गोलोक को प्रस्थान कर चुकी थी। भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु श्री राधारानी ने इस प्रकार आपकी वृन्दावन-धाम में देह-त्याग करने की अभिलाषा भी पूरी कर दी। आपकी ऐसी अलौकिक मृत्यु पर महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्दजी आदि अनेक सन्त-महात्माओं ने आश्चर्य व्यक्त किया और आपको भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

आपने हिन्दी तथा सिंधी भाषा में 'युगल-सनेही' छाप से कुछ भावपूर्ण पद रचे हैं उनमें से एक हिंदी और एक सिंधी रचना नमूने के रूप में नीचे दी जाती है—

(हिन्दी)

वही दिल दो मोहन, जो दिल तुझको पावै।
वही जाप जपावो जो तुझसे मिलावै॥

वही दो हृदय जिसमें मूरत तुमारी।
वही नयन दो देखें, बाँके बिहारी॥

वही दे दो रसना रटे श्यामबिहारी।
रोम-रोम से निकलें श्री राधे पियारी॥

वही कान दो सुनै मुरली तुमारी।
वही याद दो याद निस दिन तुमारी॥

वही प्राण दो सूँघे दिव्य गन्ध तेरी।
चरणों में लग जाय वृत्ति यह मेरी॥

वही सिर दो झुक जाय चरणों में तेरे।
कटि जाय बन्धन सभी आज मेरे॥

वही हाथ दो करैं पूजा तुमारी।
वही पांय दो करै प्रक्रमा बिहारी॥

वही काम दो कामना हो तुमारी।
वही क्रोध जल जाएँ विषयें हमारी॥

वही लोभ निसदिन नाम-धुन कमाऊँ।
वही मोह मन को मैं चरनै लगाऊँ॥

वही गर्व, 'रक्षक है श्रीनाथ मेरा'।
धरकर कृपा-हाथ कह दो 'तू मेरा'॥

'युगल स्नेही' शरण में कृपा नाम गाऊँ।
वही प्रेम दो प्रीति से तुमको पाऊँ॥

(सिन्धी)

श्वासों श्वास जपींदो रहु
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे।

तन-बेरीअ जो ही वंझु अथई।
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे॥

संसार में सारु इहोई अथई।
संसारु सजो इनमें ई अथई॥

साकार निराकार इहो अथई।
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संतनि जो हीउ आधारु अथई ।
मीराँ जे दिलि जो हारु अथई ॥
नारद वीणा जो तारु अथई ।
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे ॥
सब श्रेष्ठ कर्म भंडारु अथई ।
काशी मथुरा हरद्वार अथई ॥
गंगा यमुना जी धार अथई ।
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे ॥
प्रेमियुनि जो इहोई प्रानु अथई ।
शरणागत सांनितु साणु अथई ॥
'युगल सनेही' जो त्राणु अथई ।
श्रीकृष्ण हरे गोपाल हरे ॥

'तुम प्रत्येक श्वास के साथ 'श्रीकृष्ण हरे, गोपाल हरे' यह नाम-मंत्र जपते रहो। यह तुम्हारे शरीररूपी नौका का डाँड़ा है। इस जगत् में यही सार है और सम्पूर्ण विश्व इसीमें समाविष्ट है। साकार-निराकार दोनों रूप भी यही हैं। यह नाम ही सन्तों का आधार है, मीराँ के हृदय का हार है और नारद की वीणा की तान है। यह नाम ही सर्व सत्कर्मों का कोष है। यही काशी, मथुरा और हरिद्वार है तथा गंगा-यमुना की पावन धारा है। यह 'श्रीकृष्ण हरे, गोपाल हरे' प्रेमी भक्तों का प्राण-धन है, शरणागतों का नित्यसाथी और 'युगल-सनेही' का परमाश्रय है।'

घ० तो०

देवीदिनाराम

महापुरुष देवीदिनाराम का आविर्भाव सिन्ध के दादूनगर के निकट कान्हरे नामक गाँव में एक सदाचारी ब्राह्मण श्री रामदिनारामजी के घर में वि० सं० १८९८ (१८४१ ई०) में हुआ था। किशोर-अवस्था से ही ये गम्भीर प्रकृति और एकान्त-प्रिय थे। नित्य-क्रिया करने के पश्चात् ये गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठ जाते थे और नाम-जप करते थे। इन्होंने घर में ही संस्कृत का अभ्यास और सद्शास्त्रों का अनुशीलन किया था।

मन में विरक्ति-भाव था अतः पौरोहित्य-वृत्ति से इन्हें घृणा थी। जब २० वर्ष के हुए तब पिता ने इनकी सगाई-विवाह की चर्चा चलायी। ये गृहस्थी के बन्धन में पड़ना नहीं चाहते थे, अतः एक दिन चुपके से घर से निकल भागे। परिवारवालों ने खोज की और इन्हें दादूनगर में पाया। बहुत उपाय किये, किन्तु इन्होंने घर लौटना स्वीकार नहीं किया। अकेले रहकर साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए ये अन्तिम काल तक दादू में ही रहे।

इनके दीक्षा-गुरु कौन थे, यह जानने के साधन अब अवशिष्ट नहीं रहे। ये भगवान् कृष्ण के जगन्नाथ स्वरूप के उपासक थे। इन्होंने दादूनगर के उत्तरी भाग में एकान्त स्थान पर श्री जगन्नाथजी का नया मन्दिर बनवाया। अपना प्रातःकालीन नियम-भजन पूरा करने के पश्चात् ये नित्य उस मन्दिर में जाकर इष्टदेव का दर्शन-स्तवन करते थे। मन्दिर में प्रतिमास दो-तीन बार 'जगन्नाथजी का हाँडा' तथा अन्य उत्सव होते रहते थे, जिनमें बहुत से नगरवासी भी सम्मिलित होते थे। इस प्रकार दादूनगर का वातावरण उत्तरोत्तर भक्तिमय बनता गया।

इनकी जीवन-पद्धति प्राचीन ऋषियों जैसी थी। ये बाल-ब्रह्मचारी थे। प्रातः ढाई-तीन बजे उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर संध्या-गायत्री-प्राणायाम आदि करते थे। फिर एकान्त कक्ष में जाकर भजन में बैठ जाते थे। मध्याह्न १½ बजे तक साधनारत रहते थे। तत्पश्चात् पंचमहाभूत यज्ञ करते थे। इससे निवृत्त होने के बाद अपने हाथ से प्रसाद बनाते थे। इस प्रकार इनके आश्रम का किवाड़ दिन में ३ बजे तक बन्द रहता था। ये हर एकादशी को निर्जल उपवास करते थे और द्वादशी के दिन ब्राह्मणों को बुलाकर, उनका पद-प्रक्षालन करते और भोजन कराते थे तब स्वयं अन्न-ग्रहण करते थे। ये दिन में एक ही बार सादा तथा सात्त्विक भोजन करते थे। शरीर पर खद्दर की एक छोटी धोती, कन्धे पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गमछा और पाँवों में खड़ाऊँ धारण करते थे। ये बड़े जितेन्द्रिय, तपोनिष्ठ व भजनानन्दी थे।

आपकी गौ, ब्राह्मण, कन्याओं, बालकों और साधु-संतों की सेवा में बड़ी आस्था थी। प्रायः बालकों व कन्याओं के सामुदायिक भोजन का आयोजन करते रहते थे। इन्होंने अनेक बार भारत के विभिन्न तीर्थों का पर्यटन किया और वहाँ संत-महात्माओं का सत्संग प्राप्त किया। आपने चारों धाम की पैदल यात्रा की। अपने समय में ये एक पहुँचे हुए भक्त के रूप में ख्यात थे। इनके सैकड़ों शिष्य और अनुयायी हुए। इनके पट्टशिष्य श्री भगतरामजी बहुत अच्छे संत हुए। अनेक साधु-संत तथा विद्वान् दर्शन-सत्संग के लिए आपके यहाँ आते रहते थे।

इनकी साधन तथा लोक-हितकारी प्रवृत्ति-सम्बन्धी अनेक विचित्र घटनायें और चमत्कार प्रसिद्ध हैं। किंतु आप स्वयं यही कहते थे कि 'मैं तो श्री जगन्नाथजी का एक तुच्छ सेवक हूँ।' इनके आश्रम पर शाम को नित्य सत्संग होता था और भागवत-कथा के अनंतर भजन-कीर्तन का कार्यक्रम रहता था।

महात्मा देवीदिनारामजी संगीत के भी अच्छे जानकार थे। जब ये सितार पर मीराँ और सूरदास के पदों का मधुर ध्वनि से गान करते थे तब बिलकुल तल्लीन हो जाते थे और अन्य सत्संगी भी मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। वास्तव में आपके द्वारा इस क्षेत्र में भागवत-धर्म का व्यापक प्रचार हुआ।

हैदराबाद (सिन्ध) के महाराज नयनाराम शर्मा एवं 'कृष्णायन'-रचयिता स्वामी बसन्तरामजी उस समय सिन्ध के कृष्ण-भक्तों में अग्रगण्य थे। ये दोनों महानुभाव, महात्मा देवीदिनारामजी से सत्संग करने के लिए दादूनगर आया करते थे। ये भी बीच-बीच में उनसे मिलने व सत्संग करने के लिए हैदराबाद जाते और उनके यहाँ रहते थे। ऐसे अवसरों पर वहाँ भजन-कीर्तन तथा सत्संग के विशेष समारोह आयोजित होते थे, जिससे जनता में भक्ति और नाम-कीर्तन का खूब प्रचार होता था। इन तीनों कृष्ण-प्रेमी सन्तों की परस्पर घनिष्ठता तथा समान प्रवृत्तियों के कारण तत्कालीन सिन्ध में यह 'कृष्ण-भक्त-त्रिमूर्ति' बहुत प्रसिद्ध थी। इन तीनों ने अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व द्वारा सिन्ध प्रदेश में प्रेमा-भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित की थी।

महात्मा देवीदिनारामजी ने भाद्रपद की अमावस्या सं० १९६५ (१९०८ ई०) को प्रातःकाल में अपनी ऐहिक लीला संवरण की। आपकी किसी रचना का अब तक पता नहीं चल सका है।

घ० तो०

नयनाराम शर्मा

पं० नयनाराम शर्मा का जन्म वि० सं० १९३१ (१८७५ ई०) कार्तिक एकादशी को हैदराबाद सिन्ध के एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम पं० दरियानाराम शर्मा था। किशोर-अवस्था प्राप्त होते ही इनको संस्कृत-विद्या के अध्ययन के लिए काशी भेजा गया। वहाँ ये ७ वर्ष रहे और शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। इस बीच इन्होंने ज्योतिष शास्त्र का भी अच्छा अभ्यास किया। तत्पश्चात् हैदराबाद (सिन्ध) लौट आये जहाँ इनका विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। ये पौरोहित्य-वृत्ति करने लगे परन्तु मन में उपरति का भाव था इसलिए भजन-साधन करने की इच्छा उत्तरोत्तर बलवती होती गयी।

इन्हें जितना भी समय मिल पाता था उसे भगवद्-स्मरण तथा ध्यान में बिताते थे। सत्संग में इनकी विशेष रुचि थी। तत्कालीन संत-भक्तों से इनका निकट का सम्पर्क था। दादू के महात्मा देवी-दिनाराम, कराची के भक्तप्रवर पं० जयकृष्णदास जैसी आध्यात्मिक विभूतियों के साथ इनकी घनिष्ठता थी। प्रसिद्ध महापुरुष राजर्षि दयाराम से भी इनका स्नेह-सम्बन्ध था। हैदराबाद की श्री गिदूमल संस्कृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठशाला के संचालन में आपने सक्रिय भाग लिया था।

एक बार ये अपने घर में भजन-ध्यान में तल्लीन थे। उसी समय एक यजमान आया और इनके भजन में बाधा डालते हुए आग्रह करने लगा कि तुरन्त उसके घर चलकर पिंड-कर्म करवा दें। भगवद्-भजन में इस प्रकार अप्रत्याशित व्यवधान आने पर इनका मन पौरोहित्य-वृत्ति से और भी अधिक उपराम हो गया और इन्होंने उसी दिन से उसे छोड़ने का संकल्प कर लिया। कहने लगे, 'जिससे भजन में विक्षेप होता हो, उसका त्याग ही कर देना चाहिए।'

इस घटना का पता लगने पर इनके कई यजमान आपके पास आकर साग्रह अनुरोध करने लगे कि आप ऐसा न करें, परन्तु ये अपने निर्णय पर दृढ़ रहे और तीर्थयात्रा को चल दिये। वहाँ एक वर्ष तक संत-समागम का आनन्द-लाभ करते हुए साधनामय जीवन व्यतीत किया।

हैदराबाद (सिंध) लौटने पर आप निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण करते हुए नगर के बाहर फुलेली नहर के तट पर एकान्तवास करने लगे। ये भगवान् कृष्ण के परम भक्त थे। इन्होंने अपना शेष जीवन इष्टदेव की उपासना और चिन्तन में व्यतीत किया। 'श्रीकृष्णायन' के प्रणेता स्वामी बसन्तरामजी के साथ इनका बड़ा सौहार्द था। उनके साथ इनका घण्टों तक सत्संग और भगवद्-चर्चा होती थी। महाराज नयनाराम के जीवन में वैराग्य, भक्ति और ज्ञान का सुन्दर सामंजस्य था।

भक्त होने के साथ ही ये उत्कृष्ट कवि और संगीतज्ञ भी थे। इन्होंने हिन्दी तथा सिन्धी भाषा में फुटकर पद एवं 'सलोक' संगीतशास्त्रानुसार विविध राग-रागिनियों में रचे हैं, जो वैराग्य, ज्ञान, भक्ति एवं प्रेम के उत्कृष्ट भाव से ओतप्रोत हैं। इनके पदों में निर्गुण तथा सगुण-उपासना का अत्यन्त मधुर समन्वय हुआ है। वास्तव में आप बड़े उच्च कोटि के ज्ञानी-भक्त थे, जिनसे सैकड़ों साधकों को पारमार्थिक प्रेरणा मिली थी।

इन्होंने वि० सं० १९७५ (१९१८ ई०) की कार्तिक एकादशी को, ४४ वर्ष की अवस्था में, स्थूल देह त्यागकर आराध्य की दिव्यलीला में प्रवेश किया।

इनके कुछ सिन्धी छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कृष्ण खेन बिसारि, मोगा मुंझी मोह में।
बुधी सुधी चटु छोथीएँ, गोलि हिरदे का धार।
श्वासों श्वास संभार, 'नयना' तँहि नन्दलाल खे॥

'अरे गाफिल! मोह से भ्रमित होकर तू श्रीकृष्ण का विस्मरण मत कर। सुन-समझकर भी तुम मूढ़ क्यों बनते हो? अपना हृदय खोजो। नयनारामजी कहते हैं कि उस नन्दलाल का स्मरण तुम प्रत्येक श्वास के साथ करते रहो।'

(२)

'नयना' सोनी खणि, कृष्ण नाम खे जाणु तूं।
संभालीं जे सिक सां, त लही वजई सभि काणि।
मुक्ति थीउ तूं साणि, अलख अखुट भंडार खे॥

नयनारामजी कहते हैं कि 'तुम कृष्ण-नाम को स्वर्ण-खान ही जानो। यदि प्रेमसहित कृष्ण-नाम का स्मरण करोगे तो तुम्हारी सब गरज मिट जायगी और तुम मुक्त होकर उस अनन्त सुख-भण्डार को प्राप्त कर लोगे।'

(३)

'नयना' ध्यानु धरे, निरखिजि कृष्ण सरूप खे।
त्यागे कृष्ण सरूप खे, दृष्टि कजि न परे।
डींदो महिर करे, दर्शन-दानु गरीब खे॥

नयनारामजी कहते हैं कि 'श्रीकृष्ण के स्वरूप का ध्यान करो और अपनी दृष्टि इस स्वरूप से हटने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत दो। फिर वे कृपा करके तुम्हें अपने दिव्य दर्शन का दान दे देंगे।'

(४)

कृष्ण डे दीदारु, दिलिघुर्यनि खे सेघ मां।
'नयना' नुइरत खे धरे, कनि जे प्रेम पुकार।
पाईनि सुख अपार, मिली सुन्दर श्याम सां॥

'हे श्रीकृष्ण! जो दीन बनकर तुम्हें प्रेम से पुकारते हैं ऐसे प्रेमियों को तो तुम शीघ्र ही दर्शन दो। नयनारामजी कहते हैं कि वे श्यामसुन्दर से मिलकर असीम सुख प्राप्त करते हैं।'

(५)

नाहै मुंखे सुख जी इच्छा, नाहिन कुटम्बी प्यारा।
यशोदा श्याम लाइ 'नयना',
वाहे थो अखियुनि मां धारा॥

'न मुझे सुख की कोई इच्छा है और न अपने कुटुम्ब में ही आसक्ति है। नयनाराम केवल यशोदा-नन्दन श्यामसुन्दर के लिए ही आँसुओं की धारा बहा रहा है।'

घ० तो०

नारायणदास हंस (स्वामी)

स्वामी नारायणदास का जन्म कार्तिक शुक्ला एकादशी सं० १९४३ (१८८६ ई०) को सिन्ध के खैरपुर क्षेत्रांतर्गत टण्डा मस्तीखाँ गाँव के एक प्रसिद्ध भक्त-कुल में हुआ था। पिता का नाम क्षमाराम था। इनके दादा भक्त वासूरामजी प्रख्यात संत थे। नारायणदासजी १० वर्ष की अवस्था में ही अपने वृद्ध दादा द्वारा दीक्षित हो गये और नाम-जप करने लगे। इस प्रकार इनको भक्ति-मार्ग कुल-परम्परा से उपलब्ध था और बाल्यावस्था से ही इनके हृदय में भगवद्-भक्ति की निर्झरिणी प्रवाहित थी।

इन्होंने खैरपुर के प्रसिद्ध संत तथा विद्वान् स्वामी केशवदासजी से संस्कृत पढ़ा और सद्शास्त्रों का अभ्यास किया। इनकी बुद्धि बहुत प्रखर थी, अतः १७ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने शास्त्रों तथा अध्यात्म-विद्या का तत्त्व ग्रहण कर लिया। ये बड़े विनयशील और सात्त्विकवृत्ति-सम्पन्न थे। संत-महात्माओं में इनकी अगाध श्रद्धा थी। संत-दर्शन तथा सत्संग को ये सर्वाधिक महत्त्व देते थे। सं० १९६३ (१९०६ ई०) के माघ मास में प्रयाग में कुम्भ का मेला था। वहाँ संत-समागम का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से ये तीर्थयात्रा के लिये चल दिये। पहले आप काशी गये। यहाँ महात्मा अमरदासजी की उच्च आध्यात्मिक स्थिति और विलक्षण जीवन-पद्धति से ये बहुत प्रभावित हुए। तत्पश्चात् प्रयाग गये जहाँ कुछ दिन रहकर अपूर्व सत्संग-लाभ किया।

तीर्थयात्रा से लौटने पर ये 'पीर-गोठ' गाँव के गुरुद्वारे में निवास करने लगे और भगवद्-भजन में प्रवृत्त हुए। यही गाँव इनकी साधना-स्थली बन गया। यहाँ ये प्रायः एकान्त में भगवच्चिन्तन में रत रहते थे। सायंकाल में कथा करते थे जिसमें गाँव के अनेक लोग आते थे। धीरे-धीरे सत्संगियों की संख्या बढ़ने लगी। समय-समय पर साधु-संत भी आते, जिनका ये बहुत स्वागत-सत्कार और प्रेम से सेवा करते थे।

इस स्थिति में भी ये गृहस्थाश्रमी बने रहे। इनका हृदय भक्तिरस से सराबोर था। ये एकान्त में भगवद्-प्रेम में खूब रोया करते थे और विरह के पद गुनगुनाते थे। नम्रता, शील और करुणा के तो विग्रह थे। ये सब प्राणियों में भगवद्-दर्शन करते थे। संत-सेवा में इनकी अनन्य निष्ठा थी। इनकी प्रेरणा से उस नगर में साधु-संतों के निवास तथा भोजनादि की समुचित व्यवस्था के लिये दो आश्रम बनाये गये थे, जहाँ संत-भक्त आते रहते थे और सत्संग की धूम मची रहती थी। सं० १९८२ में स्वामी गंगेश्वरानन्दजी तथा शान्तानन्दजी ने वहाँ दो मास तक निवास कर भक्तिरस की सरिता प्रवाहित कर दी थी। वास्तव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में उन दिनों 'पीर-गोठ' संत-समागम का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था।

स्वामी नारायणदास, प्रतिभा और अभ्यास के द्वारा कालांतर में भगवद्गीता के अपूर्व व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध हो गये। इनके उच्च कोटि के सत्संग एवं कथा की ख्याति चारों ओर फैल गयी। इन्हें बार-बार रोहड़ी, शिकारपुर, सक्खर, कराची आदि नगरों में बुलाया जाता था, जहाँ इनके सत्संग और प्रवचनों का भव्य आयोजन होता था और सहस्रों लोग इनकी अमृतवर्षिणी वाणी में प्रवाहित कथा सुनकर मुग्ध हो जाते थे। कराची के सत्संग-प्रेमियों द्वारा तो हर वर्ष गर्मी में तीन-चार मास आपके सत्संग-प्रवचन की सुन्दर व्यवस्था होती थी, जिसमें दोनों समय हजारों नगरवासी सम्मिलित होकर आपकी अमृतकथा का पान करते थे।

कथाक्रम में भगवान् श्रीकृष्ण के रूप-लीलागुण, प्रभाव आदि का वर्णन करते-करते ये प्रायः भावविभोर हो जाते थे। उस समय इनके नेत्रों से प्रवाहित अश्रु-धारा श्रोताओं को आनन्दमग्न कर देती थी। कराची में जन्माष्टमी-उत्सव के अवसर पर आयोजित आपकी कथा में मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी लोगों की भी अपार भीड़ हो जाती थी, अतः आप हिन्दी में प्रवचन करते थे।

आपके सत्संग के प्रभाव से हजारों लोगों ने मांस-मदिरा का परित्याग किया, अनेक सरकारी कर्मचारियों ने घूस लेना छोड़ दिया, अगणित परिवारों में यज्ञोपवीत आदि संस्कारों तथा सनातनधर्म के प्रति पुनः आस्था उत्पन्न हुई, असंख्य लोगों के जीवन में आमूल परिवर्तन आ गया और वे भक्ति-मार्ग में प्रविष्ट होकर पवित्र तथा साधनामय जीवन बिताने लगे। वस्तुतः इनके माध्यम से हजारों विमुख लोग भगवद्-अभिमुख हुए और बहुत बड़ा लोक-कल्याण हुआ।

सन् १९३३ ई० में ये पुनः तीर्थ-सेवन करने निकले। वृन्दावन, हरिद्वार, प्रयाग, काशी और जगन्नाथपुरी होकर दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा पर चले गये। श्रीरंगम् में भगवान् रंगनाथजी का दर्शन करने पर तो आपकी दशा कुछ और हो गयी। भगवान् की अद्भुत लीलाओं का स्मरण कर ये अनुराग के सागर में डूब गये और इनकी आँखों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी। इसी प्रकार रामेश्वर तथा तिरुपति बालाजी के दर्शन करने पर भी इनकी विलक्षण स्थिति हो गयी। तीर्थयात्रा समाप्त होने पर ये सिंध में अपने निवास-स्थान पर लौट आये।

सन् १९३९ ई० के दिसम्बर में आपने अपने सत्संगियों और भक्तों से स्पष्ट कह दिया कि अब शेष जीवन किसी तीर्थ-स्थान पर एकान्त-वास में व्यतीत करना है। फिर सभी प्रेमियों से बिदा लेकर सपरिवार सिन्ध से प्रस्थान कर दिया। पहले नाथद्वारा आकर श्रीनाथजी का दर्शन किया, तदनंतर द्वारकापुरी पहुँचकर द्वारकाधीश का दर्शन-स्तवन किया और उसके बाद डाकोरजी में 'रणछोड़जी' का दर्शन किया। यहाँ ये कुछ अधिक दिन ठहरे। तत्पश्चात् ये बम्बई गये और वहाँ से गोदावरी-तट पर नासिक आकर अपना आसन जमाया। पंचवटी की पावन भूमि और शान्त वातावरण में निवास कर ये आनन्दपूर्वक भजन करने लगे। यहीं १९४० ई० की पहली मार्च शुक्रवार को प्रातः वेला में ये भगवत्स्वरूप में लीन हो गये।

आपका सिन्धी भाषा में विरचित केवल एक विरह-पद प्राप्त हो सका है जिसे एकान्त में गुनगुनाकर ये रोने लग जाते थे, वह नीचे दिया जाता है—

कृष्ण व्यो मनड़ो खसे, मुंहड़ो पंहिजो डेखारे।
दिलड़ी लुटे व्यो दिल्बरु, सिक पंहिजीअ में सारे॥
कयां कीअं मां हाणे सरत्यूं, बिना घनश्याम प्यारे।
छडे व्यो बन में हेखलु, बाहि बिरहिजी बारे॥
कयो कृपा मूंते सरत्यूं, वञीचओ श्याम सुन्दर खे।
मरे थी बिरिह में राधा, दर्शनु डई दिलिअची ठारे॥

'श्रीकृष्ण अपना मुखारविंद दिखाकर और मेरा मन चुराकर चले गये। वह दिलवर मेरा दिल लूट-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर और मुझे अपना वियोग देकर चला गया। अरी सखियो! प्यारे घनश्याम बिना अब मैं क्या करूँ? मुझे वन में अकेला छोड़कर और विरह की आग लगाकर वे चल दिये। सखियो! मुझ पर कृपा कर तुम लोग श्यामसुन्दर के पास जाकर उनसे कह दो कि राधा विरह से मर रही है, अतः शीघ्र आकर दर्शन दो और जलते हुए हृदय को शीतल करो।'

घ० तो०

परसराम शहाणी

श्री परसराम शहाणी का जन्म हैदराबाद (सिंध) नगर में ८ मई १९०३ ई० को एक सुशिक्षित और सम्पन्न परिवार में हुआ था। पिता का नाम श्री कीरतराय शहाणी था। परसरामजी ने पहले हैदराबाद में शिक्षा ली, तदनन्तर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कराची चले गये। वहीं बी० ए०, एल० एल० बी० पास करके सरकारी नौकरी करने लगे और सिन्ध के उच्च न्यायालय में अधिकारी-पद पर भी काम किया।

२२ वर्ष की उम्र में इनका विवाह हो गया था। इनका स्वभाव सरल, मधुर और पवित्र था। ये सद्गुण और सद्विचारों से सम्पन्न थे। अच्छे-अच्छे सरकारी पदों पर रहते हुए भी इन्होंने कभी घूस नहीं लिया। इनके एक पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। विवाह के ८ वर्ष बाद जब ये ३० वर्ष के थे तभी इन्होंने अपनी धर्मपत्नी की सम्मति से ब्रह्मचर्य का पालन करने का संकल्प कर लिया और इस व्रत को अन्त तक निभाया।

ये गीताप्रेस, गोरखपुर का सत्साहित्य ध्यानपूर्वक पढ़ते थे। धीरे-धीरे इनके हृदय में कृष्ण-भक्ति जागृत हुई। कुछ समय के बाद भगवान् ने इनके लिए उपयुक्त संत-समागम की व्यवस्था भी कर दी। १९४५ ई० के उत्तरार्ध में कराची में गौड़ीय वैष्णव साधुओं की एक मण्डली आयी थी। वे लोग नगर के बाहर कराची-जेल के पास एक आश्रम में ठहरे थे और वहाँ नित्य सत्संग और नाम-संकीर्तन करते थे। यह ज्ञात होने पर शहाणीजी अपने कार्यालय का काम पूरा करके नित्य सायकिल से दो मील दूर उस आश्रम में पहुँचते, श्री राधा-कृष्ण की प्रेमाभक्ति पर प्रवचन सुनते और संकीर्तन में सम्मिलित होते थे। उनके प्रवचन सुनकर ये मुग्ध हो जाते थे। इस सत्संग के प्रति इनका आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इन्होंने एक दिन के लिये भी उसे नहीं छोड़ा।

इसी बीच सहसा एक दिन इनके पिता का देहान्त हो गया, अतः उस दिन ये गौड़ीय भक्तों के सत्संग-संकीर्तन में नहीं जा सके। इससे इनके मन में बड़ी बेचैनी हुई। सायं काल में पिता के दाह-संस्कार के अनन्तर स्नानादि से निवृत्त होते ही ये रात में उन वैष्णव संतों के यहाँ गये और उस दिन सत्संग में अनुपस्थित रहने के लिए खेद प्रकट किया। तदुपरान्त घर लौट आये और फिर निरन्तर प्रवचन-कीर्तन सुनने को जाते रहे। जब तक वह मण्डली कराची में रही तब तक ये सत्संग-लाभ करते रहे।

इस संत-समागम से शहाणीजी के हृदय में राधाकृष्ण-प्रेम का भाव विशेष रूप से जाग उठा और ये युगल-उपासना में तन्मय रहने लगे। इनके घर पर श्री राधाकृष्ण के विग्रह प्रतिष्ठित थे। उनकी सेवा-पूजा और राग-भोग में शहाणीजी तथा उनकी साध्वी धर्मपत्नी का बड़ा अनुराग था। प्रत्येक वस्तु पहले ठाकुरजी को अर्पण करके ही प्रसादरूप में ग्रहण की जाती थी। घर में नित्य संकीर्तन का आयोजन होता था। उसमें ये कभी-कभी प्रेम-मग्न होकर नृत्य भी करते थे। सिन्ध में रहते समय इन्होंने प्रसिद्ध प्रेमी सन्त साधु वास्वानीजी का सत्संग-लाभ किया था। भक्तवर दादा चेलारामजी के साथ भी इनकी घनिष्ठता थी। दोनों घण्टों तक आपस में कृष्ण-चर्चा का आनन्द उठाते थे।

देश-विभाजन के पश्चात् भक्त शहाणीजी बम्बई आ गये। यहाँ भी सरकारी नौकरी करते हुए ये पूर्ण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तया साधनामय जीवन बिताते थे। बम्बई में ये पं० दलीलीजी के संकीर्तन-मण्डल में सम्मिलित हुए। इनका भजन-कीर्तन उत्तरोत्तर बढ़ता गया। नौकरी के अन्तिम चरण में ये हैदराबाद (दक्षिण) में भारत सरकार के विधि-मंत्रालय के 'रजिस्ट्रार आफ कम्पनीज' के पद पर थे। इनकी भक्ति-भावना से प्रभावित होकर कार्यालय के कई कर्मचारी और चपरासी भी 'राधे-राधे' जपने लगे थे। कार्यालय में भी काम से थोड़ी-सी फुरसत पाने पर ये सुमिरनी पर नामजप करने लगते थे। इनके मन में वृन्दावन-वास की उत्कण्ठा सदा बनी रहती थी। इन्होंने निश्चय कर लिया था कि सेवा-निवृत्त होते ही वृन्दावन जाकर स्थायी रूप से वहाँ रहेंगे।

ये ५५ वर्ष की उम्र में मार्च १९५९ ई० में सेवा-निवृत्त हुए और मई १९५९ में धर्मपत्नी सहित वृन्दावन आ गये। फिर जीवन के शेष २४ वर्ष वहीं बिताये। वृन्दावन में इन्होंने कालीदहवाले महात्मा किशोरीदासजी का सत्संग-लाभ किया। तत्पश्चात् ये आधुनिक काल में रसिक-जगत् के जाज्वल्यमान रत्न पू० बाबा प्रियाशरणजी के सम्पर्क में आये और उनके साधक-शिष्य बन गये। बाबा प्रियाशरणजी का दुर्लभ सत्संग और मार्गदर्शन प्राप्त कर ये श्रीयुगलकिशोर के रंग में पूरे रँग गये।

वृन्दावन में इनकी दिनचर्या प्रातः ३ बजे से आरम्भ होती थी। अहर्निश अष्टयाम-सेवा में रत रहते थे। ये हार्मोनियम और सितार बजाने में भी कुशल थे। नित्य सायंकाल ठाकुरजी के सामने सितार पर पद-गान करते थे। संकीर्तन में बिना संकोच प्रेमावेश से नाचने लग जाते थे। इनकी वृन्दावन-धाम-निष्ठा अनूठी थी। यहाँ रहते हुए नेत्र-रोग होने पर डॉक्टरों ने सलाह दी कि बम्बई जाकर आँखों का ऑपरेशन करावें परन्तु इन्हें वृन्दावन से बाहर जाना स्वीकार्य नहीं था, अतः नहीं गये। इनकी बम्बई में विवाहित दो पुत्रियों में से एक डॉक्टर थीं, दैवयोग से वे दोनों पुत्रियाँ कैन्सर-ग्रस्त थीं, किन्तु ये उन्हें देखने के लिये वृन्दावन से बम्बई नहीं गये। १९७७ और १९८१ ई० में क्रमशः उनके देहान्त हो जाने पर भी ये नहीं गये। संसारी वृत्ति के कुछ लोगों ने आपके इस आचरण की निन्दा की। दामाद ने भी उलाहना दिया परन्तु इस वीतराग महापुरुष पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

भक्त शहाणीजी के वृन्दावन-वासवाले जीवन-काल में श्यामाश्याम के चिन्तन और उनके प्रति समर्पण के सिवा अन्य किसी बात को कोई स्थान ही नहीं रह गया था। ये वृषभानुनन्दिनी की रूप-रस-माधुरी में सदा डूबे रहते थे। 'राधे-राधे' कहते ही नेत्रों में अनुराग के आँसू आ जाते थे। इनकी धर्मपत्नी ने वृन्दावन में ही जून १९७७ में देह-त्याग किया। उसके छः वर्ष बाद २४ जनवरी १९८३ को 'राधेश्याम-राधेश्याम' उच्चारते हुए इन्होंने स्थूल देह का त्यागकर नित्य वृन्दावनवास प्राप्त किया। ब्रज के अनेक रसिक भक्त-महात्माओं की मान्यता है कि इन पर किशोरीजी की विशिष्ट कृपा रहती थी।

सिन्धी भाषा में 'राधा-गीत' नामक इनकी एक रचना प्रकाशित है। नीचे नमूने के रूप में उससे एक छंद प्रस्तुत है—

बरसाने में प्रगटी आहे राधा रानी।
कीर्ति रानी आहि आनंद समानी॥

नगर जूं नारियूं भवन में अचनि।
राधा खे दिसी थ्यूं नींह में नचनि॥

मुखरो थो चमके पूर्णचंद्र समान।
शोभा वर्णनु न करे सधे जबान॥

जो सुखु बृज-गोप्यूं थ्यूं पाइन।
सो सुखु उमा रमा पिणि चाहिन॥

'श्री किशोरीजी बरसाने में प्रकट हुई हैं, उनकी माता कीर्तिरानी आनन्द से फूली नहीं समातीं। नगर की महिलाएँ वृषभान-भवन में पधारकर और राधाजी का दर्शन कर प्रेम में नाचने लगती हैं। किशोरीजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का मुख पूर्ण-चन्द्र के समान चमक रहा है। उनकी शोभा का वर्णन करने की शक्ति वाणी में नहीं है। उनका दरस-परसकर ब्रज-गोपियाँ जिस सुख का अनुभव करती हैं, उसे प्राप्त करने के लिये लक्ष्मी, पार्वती आदि भी अभिलाषा कर रही हैं।'

घ० तो०

प्रहलाद

भक्त-कवि प्रहलाद का जन्म सिन्ध प्रान्त के सक्खर जिलांतर्गत 'खाही' ग्राम में, सन् १८९३ ई० में, मुखी मदनलालजी के घर में हुआ था। ये अभी बालक ही थे कि माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद आप अपनी विवाहिता बहन के यहाँ रहने लगे। उस गाँव में एक संत-स्थान था, जहाँ साधु-महात्मा आते रहते थे। वहाँ आप अनेक संतों के सम्पर्क में आये। बाद में हरिद्वार (कनखल) जाकर स्वामी श्यामानन्द भारती के शिष्य हो गये। फिर वहीं रहकर विद्याध्ययन करने लगे। वहाँ सात वर्ष रहने के बाद आपने स्वामी श्यामानन्दजी से ही साधुवेश ले लिया। कुछ समय ऋषिकेश में एकान्त में रहकर साधन किया। सन् १९२२ ई० में आप सिन्ध लौट आये।

आपके ऊपर सरस्वती देवी की विशेष कृपा थी, अतः उच्च कोटि के कवि हुए। आपने भगवान् श्रीकृष्ण की ब्रज-लीला तथा और कई पौराणिक आख्यान सिन्धी कविता व पदों में रचे, जो बहुत लोकप्रिय हुए। इनका कण्ठ अत्यन्त मधुर था। जब अपनी रचनायें हार्मोनियम पर गाकर सुनाते थे तो श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। आपके रचे कृष्ण-पद व भक्ति-गीत सिन्ध प्रान्त के नगरों और ग्रामों में व्यापक रूप से गाये जाते थे। इन्होंने लीला और भक्तिपरक सैकड़ों पद व कवित्त रचे हैं जिनमें अधिकांश सिन्धी भाषा में ही हैं। भगवान् कृष्ण के प्रति इनकी अगाध आस्था थी। इन्होंने आजीवन उनके लीला-गान से अपनी मधुर वाणी को कृतार्थ किया। आप १९६८ ई० में देवलाली कैम्प में परम-धाम सिधार गये।

भक्त-कवि प्रहलाद का सिन्धी काव्य १५ भागों में 'श्री पहिलाज वाणी' नाम से प्रकाशित हुआ था। आपके रचे अधिकांश कृष्ण-लीलापरक पद 'कृष्ण-विलास' तथा 'ब्रज-विलास' में संकलित हैं। कविता में इन्होंने 'पहिलाज' और 'प्रहलाद' छाप का प्रयोग किया है। नीचे आपका एक हिन्दी और एक सिन्धी पद नमूने के रूप में प्रस्तुत है—

(हिन्दी पद)

कृष्णा कृष्णा कृष्णा,
चुनरी मोरी दे दे दे दे ॥

मैं हूँ नारी जल में उघारी,
देख रही है दुनिया सारी।
नंगी खड़ी जल-धार में,
कृष्णा कृष्णा कृष्णा ॥

हाथ जोड़ करूँ बिनती प्यारा,
दे दे चुनरी नन्द-दुलारा।
हँसी न हो संसार में,
कृष्णा कृष्णा कृष्णा ॥

'सब सखी मिल बाहर आओ,
यमुना-जल में नंगी न न्हावो।
पाप न करो अज्ञान में',
कृष्णा कृष्णा कृष्णा ॥

सब सखी जब बाहर आईं,
चुनरी तब 'प्रहलाद' पहनाई।
गोपी गई घर-द्वार में,
कृष्णा कृष्णा कृष्णा ॥

(सिन्धी पद)

ए मिठा मोहन तूं मुरली ना बजाइ।
जोश में जेरो असांजो ना जलाइ ॥

हिक तरफखां सखिनि जो सींगारु व्यो,
मस्तु मुरलीअ ते भुली घरु बारु व्यो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाज शरम जो तजि वटां बीचारु ब्यो,
सोज में सीनो सखिनि जो ना सताई ॥

ब्यो वरी ना गाहु थ्यूं गायूं चरनि,
खीरु भी बचिड़ा खुशीअ सां ना पीअनि ।
ऐं पखी पिञरे पतंग जां था पचनि,
था करनि नींगर नंढा भी हाय-हाय ॥

ट्यो वरी थी छाहु छोल्युनि खे अचे,
जणु नंगो थी नीरु जमुना जो नचे ।
मछ कछनिजे मन अंदरि मचु थो मचे,
छा करियूं जीअण संदी नाहि जाइ-जाइ ॥

बसि खणी करि बन्दि इन आवाज खे,
थी पवे कल कान का 'पहिलाज' खे ।
मञु निमाणिनि जे सिधो इन न्याज खे,
मुल्क में मुरलीअ मचाई हाय-हाय ॥

'हे प्यारे मोहन ! कृपा करके अपनी वह मुरली मत बजाओ और हमारे अंतःकरण में भीषण क्षोभ और दाह मत उत्पन्न करो। इस मुरली की विलक्षण तान के कारण, एक तो सखियाँ अपना शृंगार तथा घर-बार भूल जाती हैं और उनका कुल-मर्यादा का विचार भी लुप्त हो जाता है। अतः मुरली बजाकर तुम उनका हृदय विरह-व्यथा से पीड़ित मत करो। दूसरे, इस मुरली की तान सुनकर न गौएँ चारा चरती हैं, न छोटे बालक दूध पीने की इच्छा करते हैं, पिंजरे के पंछी भी तड़पने लगते हैं और छोटे किशोर 'हाय-हाय' करने लग जाते हैं । तीसरे, यमुना के जल में बड़ी हलचल मच जाती है, उसकी लहरें उन्मत्त हो नृत्य करने लगती हैं, यहाँ तक कि उसमें रहनेवाली मछलियाँ और कछुए भी बड़े आन्दोलित हो उठते हैं। कैसी स्थिति है, जीना भी मुश्किल हो रहा है। 'पहिलाज' कहते हैं कि मुझे स्वयं भी कुछ नहीं सूझ रहा है, मोहन की मुरली ने समस्त व्रज-मण्डल में हाहाकार मचा दिया है, इसलिये हे श्यामसुन्दर ! हमारी विनम्र प्रार्थना स्वीकार करके अब यह मुरली की तान बन्द करिये।'

घ० तो०

प्रियतमदेव शर्मा

सिन्ध, पंजाब तथा बलोचिस्तान प्रदेश में सनातन धर्म एवं भगवद्-भक्ति के महान् प्रचारक पं० प्रियतम-देव का जन्म सिन्ध के ऐतिहासिक नगर लरकाना के एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में, संवत् १९१९ (१८६२ ई०) में हुआ था। पिता का नाम श्री हासाराम शर्मा था। जब इनकी उम्र १२ वर्ष की थी तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इस घटना के पश्चात् ये बहुत उदास हो गये। घण्टों तक एक स्थान पर बैठे हुए सोचते रहते थे। इन्हें यह जगत् असार व नश्वर प्रतीत होने लगा। दो वर्ष तक ये इसी अवस्था में रहे। उसके बाद विद्या-ध्ययन में प्रवृत्त हो गए।

लरकाना से ये अमृतसर गये जहाँ पं० गिरधर-लाल शर्मा से व्याकरण, काव्य, मीमांसा एवं वेदान्त पढ़ा तथा गीता और उपनिषदों का भी अनुशीलन किया। ये बड़े ही सदाचारी, वैराग्य-सम्पन्न तथा निष्ठावान् भगवद्-भक्त थे। उन दिनों पंजाब में आर्यसमाज का प्रबल प्रचार हो रहा था और सनातन-धर्म पर चारों ओर से आघात हो रहे थे। जनता में बड़ा भ्रम फैलने लगा था। इससे ये बहुत दुःखी व क्षुब्ध हुए। इन्होंने पंजाब सिन्ध तथा बलोचिस्तान में अनेक बार भ्रमण करके धर्मोपदेश के साथ-साथ विमल भगवद्-भक्ति का भी प्रचार किया। सं० १९४५ (१८८८ ई०) में आपने शिकारपुर (सिन्ध) में प्रसिद्ध 'धर्मसभा' की स्थापना की जिसके द्वारा सेवा, परोपकार तथा धर्म-प्रचार के अनेकानेक कार्य सम्पन्न होते रहे। इस धर्मसभा के तत्त्वावधान में शिकारपुर तथा कराची में अनेक विद्यालय खोले गये जिनमें हिन्दी-संस्कृत के अध्ययन तथा सदाचार एवं धार्मिक शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। इन्होंने शिकारपुर में एक बड़ी गोशाला भी स्थापित की जिसमें आदर्श गो-सेवा होती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपने शिकारपुर में श्री राधा-कृष्ण की उपासना का विशेष प्रचार किया। ये स्वयं श्री राधाकृष्ण की भक्ति-सुधा में निरंतर सराबोर रहते थे। अपने आराध्य का लीला-चिन्तन व नाम-कीर्तन करते-करते ये भाव-समाधि में चले जाते थे। इनकी विरहावस्था के वे पद बड़े मार्मिक व हृदयस्पर्शी हैं। इनका जीवन मुरलीमनोहर के चरणों में पूर्णरूप से समर्पित था, अतः ये सर्वदा निश्चिन्त व निर्भय रहते थे।

कुछ धर्मान्ध दुर्जन लोगों ने आपकी हत्या करवाने का षड्यंत्र रचा और एतदर्थ एक पठान कसाई को यह काम सौंपकर पूरी तैयारी कर ली। इस षड्यंत्र का संकेत नगर के एक उदासीन साधु को मिल गया। उन्होंने तुरन्त सभा-मन्दिर में जाकर एकान्त में ध्यानस्थ बैठे हुए पण्डितजी को सब वृत्तांत सुना दिया और परामर्श दिया कि आज रात आप यहाँ शयन कदापि न करें, बड़ा खतरा है। परन्तु ये बोले, "मेरे रक्षक तो मेरे साथ हैं, वे सर्व-समर्थ हैं, मैं कहीं नहीं जाऊँगा, नित्य की भाँति यहीं शयन करूँगा।" ये रात में वहीं पड़े रहे। श्यामसुन्दर ने विचित्र लीला करके इनकी प्राण-रक्षा की। उस रात उस पठान के हाथ-पाँव एकाएक जकड़ गये। इससे वह बहुत भयभीत हो गया और सबेरा होते ही आकर भक्तराज के चरणों में गिरकर क्षमा-याचना की।

आपका त्याग तथा निःस्पृहता आदर्श थी। पंजाब के कपूरथला राज्य की राजमाता ने आपके धर्मोपदेश व सत्संग-लाभ से अनुग्रहीत होकर इन्हें एक असली मोतियों का हार, मूल्यवान् वस्त्र एवं धन-राशि भेंट की। इन्होंने ये सब वस्तुएँ लाकर शिकारपुर में धर्म-सभा को अर्पित कर दीं। वास्तव में उन्होंने अपना सर्वस्व, लरकानावाले अपने पैतृक मकान सहित, 'धर्मसभा' को अर्पण कर दिया।

इनकी कथा-शैली अत्यंत सरस व आकर्षक थी। ये जब अपनी मधुर तथा ओजस्वी वाणी से भगवद्-गुणानुवाद करते थे तब पाषाण-हृदय व्यक्तियों की भी आँखों में अनायास ही अश्रु आने लगते थे।

संवत् १९४९ में आप धर्मप्रचार-हेतु सिब्बी (बलोचिस्तान) गये। वहाँ की भीषण गर्मी से आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया। शिकारपुर में लौट आने पर औषधोपचार करवाया किन्तु कोई सुधार न हुआ। उसी बीच मधुमेह भी हो गया। फलतः ज्येष्ठ कृष्ण दशमी संवत् १९५२ (१८९४ ई०) को, केवल ३२ वर्ष की अवस्था में इस धर्म-मूर्ति परम भक्त का गोलोकवास हो गया। इन्होंने अपना सारा जीवन कृष्ण-भजन व धर्म-सेवा में ही विताया। इनके देहावसान के पश्चात् 'धर्मसभा' वालों ने इनके आराध्य, श्रीराधाकृष्ण का भव्य मन्दिर निर्माण कराया और कृतज्ञतापूर्वक 'धर्म-सभा' का नाम भी 'प्रियतम धर्मसभा' रख दिया।

इनके ११३ फुटकर गीत व भजनों का संग्रह सन् १९१७ ई० में पुनः प्रकाशित हुआ था। आपकी भक्ति-भावना के परिचायक दो हिन्दी गीत नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कहो मैं कैसे तरउँ मुरारी हो जी।

चित चाहत है चरण-कमल को,
माया फाँसी डारी रे।
काम-क्रोध के वश में पड़ा हूँ,
हरि की भक्ति बिसारी रे॥

लोभ मोह अहंकार न छोड़त,
मेरा मन यह विकारी रे।
हरि-भक्तन सों विरोध करत है,
वाम लगी है प्यारी रे॥

नरक अग्नि से जिय काँपत है,
पाप किये बहु भारी रे।
झूंठ दगा हिंसा कृतघ्नता,
पुन चोरी अरु यारी रे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन हित पाप किये वे 'प्रियतम',
देत नहीं दिलदारी रे।
प्रयोजन हीन चोन मुझसे वे,
बात करते हैं खारी रे॥

(२)

कृष्ण नाम का कर स्मरण अब
जो चाहे निस्तार रे।

द्रौपदी की जिन लज्जा राखी,
इसी बात का सब कोइ साखी,
हृदय में राखो नाम उसीका,
गज का किया उद्धार रे॥

मोर मुकुट पीताम्बरधारी,
मकराकृत कुंडल बनवारी,
भज लो भज लो कृष्ण मुरारी,
फिर न मिलेगी वार रे॥

जिसने उसका नाम भुलाया,
वह पापी क्यों जग में आया,
मूरख अपना जन्म गवाँया,
आप भी हुआ खुवार रे॥

दिन का भूला निशि घर आवे,
मात-पिता के मन को भावे,
ऐसे जो भूले कृष्ण-नाम से,
ले फिर जन्म सुधार रे॥

घ० तो०

प्रेमदास (स्वामी)

स्वामी प्रेमदास का जन्म सिन्ध के दादू जनपद के अन्तर्गत मेहर नामक गाँव में सन् १८७६ ई० में हुआ था। इनके गृहस्थाश्रम के व्यावहारिक नाम का पता नहीं चलता।

मेहर के सन्निकट महान् संत स्वामी मोदीदासजी द्वारा स्थापित प्रसिद्ध 'थल्हा-दरबार' नामक आश्रम था, जिसकी परम्परा में अनेक अच्छे-अच्छे भजनानन्दी संत हो गये हैं। इस आश्रम में साधु-सन्तों और विद्यार्थियों के अतिरिक्त अपंग तथा नेत्रहीन भी रहते थे। लगभग एक सौ मूर्तियों का भण्डारा नित्य होता था। आश्रम में संस्कृत विद्या पढ़ाने तथा संगीत सिखाने की भी समुचित व्यवस्था थी, अतः अनेक विद्यार्थी वहाँ रहकर संस्कृत और संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे।

प्रेमदासजी कुमार-अवस्था में ही इस स्थान में आकर स्वामी टहल्यारामजी के शिष्य बन गये और उनके सान्निध्य में भजन-साधन तथा स्वाध्याय करने लगे। ये विनम्र, सरल और शान्त स्वभाव के थे। स्थान में रहनेवाले संतों, विद्यार्थियों, सूरदासों और अपंगों की सेवा बड़ी श्रद्धा के साथ किया करते थे। गर्मी के दिनों में मध्याह्न-काल में जब वे लोग विश्राम करते थे तब ये एक बड़े पंखे द्वारा उन सब पर हवा करते थे। इनकी साधुता, सेवा और प्रेमपूर्ण व्यवहार से सब आश्रमवासी बहुत सन्तुष्ट रहते थे।

इनकी गुरु-निष्ठा और गुरु-सेवा अद्भुत थी। वृद्धावस्था में गुरु महाराज के रोग-ग्रस्त होने पर ये दिन-रात उनकी परिचर्या में जुटे रहते थे। अपनी सुख-सुविधा का तनिक भी विचार न करके ये मन-वचन-कर्म से उनकी सेवा में संलग्न रहते थे। एक बार गुरुजी की खाँसी बढ़ गयी थी। जब वे कफ निकालने का प्रयत्न करते हुए खखारने लगे उस समय पीकदान समीप न देखकर प्रेमदासजी ने झट से अपने हाथ में ही उनका थूक ले लिया। इनका यह अद्भुत सेवाभाव देखकर गुरुजी के नेत्र डबडबा आये और उन्होंने हृदय से आशीर्वाद दिया।

गुरु के दिवंगत होने पर प्रेमदासजी उस स्थान के महन्त बन गये तब भी ये पूर्ववत् अपने हाथों से गोशाला का गोबर उठाते, बगीचे में झाड़ू लगाते, पौधों-वृक्षों को सींचते और आश्रम-निवासियों तथा यात्रियों की छोटी-मोटी सभी प्रकार की सेवा करने को उद्यत रहते थे। इनकी वेश-भूषा अत्यन्त सादी रहती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी। प्रायः छोटी सफेद धोती और कुर्ता पहनते थे। कहते थे, "मैं सन्त नहीं हूँ, अतः भगवा वस्त्र नहीं धारण करता, आवश्यकता मन रँगने की है, कपड़े रँगने की नहीं।" विनय के तो ये मूर्तरूप थे। सदा अपने को 'सेवक' ही मानते थे। ये किसीको भी अपने पैर छूने नहीं देते थे। कई विद्यार्थियों और साधकों को गीता, श्रीमद्भागवत और रामायण ये स्वयं पढ़ाते थे।

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण में इनकी अगाध निष्ठा थी। ये नित्य एकान्त में आराध्य का ध्यान व लीला-चिन्तन करते थे। नाम-जप और ध्यान इनकी साधना के प्रमुख अंग थे। उपास्यदेव के नाम-रूप-लीला और धाम चारों को सच्चिदानन्दरूप मानते थे। इन्होंने जीवनभर अपनी कृष्ण-भक्ति का निर्वाह किया। वृन्दावन से इनका बड़ा प्रेम था। इसलिए ये सिन्ध से प्रायः वृन्दावन आया करते थे। देश-विभाजन के पश्चात् ये सीधे वृन्दावन आ गये और इष्टदेव की लीला-भूमि में निवास करते हुए भजन-साधन में संलग्न रहे। यहाँ रसिक भक्तों के सत्संग में आपको विशेष आनन्द मिलता था। स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज से भी आपका बड़ा प्रेम था और दोनों में भगवच्चर्चा और सत्संग होता रहता था। वृन्दावन में आपने भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का रसास्वादन करते हुए बहुत साधु-सेवा भी की।

तदुपरान्त आप बड़ोदा में निवास करते थे किन्तु बीच-बीच में वृन्दावन आते रहते थे। साधु-संतों तथा व्रजभूमि की यात्रा करने-वाले भक्तों की सुविधा के लिए आपने वृन्दावन में 'तुलसी-निवास' आश्रम का निर्माण कराया जहाँ सब प्रकार की सुन्दर व्यवस्था है। बड़ोदा में भी आपने सत्संग और कीर्तन का नियमित आयोजन किया और सैकड़ों 'प्राणियों' को ईश्वराभिमुख किया। इन्होंने वहाँ 'सेवा-निकेतन' की स्थापना कर अभावग्रस्त विद्यार्थियों को पुस्तकों और गरीब बहनों को अन्न, वस्त्र, औषधि आदि की सहायता देने की उत्तम व्यवस्था की जो अब तक चल रही है।

वास्तव में आपके जीवन का आदर्श था 'भगवद्-स्मरण और सेवा'। ये अन्त तक भगवान् श्रीकृष्ण के भजन के साथ-साथ लोकोपकारी कार्य भी करते रहे। अपने अनुगतों से भी यही कहा करते थे कि 'भगवद्-भक्ति करो और दीन-दुखियों की सेवा भी करो।' आपने ९४ वर्ष की अवस्था में, २९ जुलाई १९७० ई० को परमगति प्राप्त की।

हिन्दी तथा सिन्धी में इनके कुछ फुटकर पद मिलते हैं। नमूने के रूप में इनका एक हिन्दी और एक सिन्धी छंद नीचे दिया जाता है—

(हिन्दी पद)

ओ मेरे श्याम साँवरे !
तुम बिनु चैन न आए।
तुम गये दूर सजनवा,
अब कैसे तुमे मनाए ॥

जब से गये तुम नींद न आई,
अँखियाँ नीर बहाए, तेरी याद सताए।
मोहन से ऊधव यह कहना,
तुम बिनु तड़फत हैं ये नयना।
काहे को देर लगाए ॥

व्रज में आकर रास रचावें,
दही लुटावें बंसी बजावें।
इतना क्यों तड़फाए ॥

(सिन्धी पद)

नेणनि में बसु श्याम पियारे नेणनि बसो सदारे।
तो विनु तरसत नेणही मुंहिजा राहूँ रोजु निहारे ॥
नेणनि में मां मन्दरु ठाहे बे न वञा कहिं द्वारे।
तुंहिजी अर्चा तुंहिजी पूजा तुंहिजी तार तंवारे ॥
नेणनि में मां सेजा ठाहे सांवलु छदियां सुम्हारे।
पलकन जा दरवाजा पाए वारसु छदियां विहारे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूं नेणनि में घरु करि मिठड़ा बो छदि वाट विसारे ।
'प्रेमु' पको हिन दास खे आहे श्याम लइ हंजूं हारे ॥

'प्यारे श्याम ! तुम सदा मेरे नेत्रों में ही निवास करो, अन्यथा मेरे ये नेत्र लगातार तुम्हारी राह जोहते-जोहते अतिशय तरसने लगते हैं। मैं इन नेत्रों में ही तुम्हारे लिये भव्य मन्दिर बना लूँगी और वहीं तुम्हारी सारी पूजा-अर्चा तथा निरन्तर आराधना करूँगी। मैं इन नेत्रों में ही तुम्हारे लिए एक सुन्दर सेज बिछाकर उस पर तुम्हें विश्राम कराऊँगी और फिर अपनी पलकों के किवार बन्द कर लूँगी जिससे कि मेरा स्वामी बाहर न जा पाये। मेरे प्रीतम ! तुम अन्य स्थलों को सर्वथा भुलाकर मेरे नेत्रों में ही अपना स्थायी निवास बना लो। 'प्रेमदास' किंकर की प्रीति पक्की है, वह साँवरे श्याम के लिये सदा अश्रु-धारा बहाता रहता है।'

घ० तो०

बसन्तराम (स्वामी)

स्वामी बसन्तरामजी सिन्ध की कृष्ण-भक्ति-शाखा की उच्चतम विभूति और कृष्ण-काव्य-धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इन्हें 'सिन्ध के सूरदास' की संज्ञा दी जाती है।

इनका जन्म हैदराबाद (सिन्ध) जनपद के अजन ग्राम में फाल्गुन शुक्ला एकादशी वि० सं० १९२९ को एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम पं० लखीराम शर्मा था। माता-पिता के हरि-भक्त होने के कारण घर में ठाकुर-सेवा और श्री राधा-कृष्ण-कीर्तन हुआ करता था। इस पवित्र परम्परा और भक्तिमय वातावरण का बालक बसन्त पर गहरा प्रभाव पड़ा।

किशोर-अवस्था प्राप्त होने पर ये संस्कृत-विद्याध्ययन के लिए हैदराबाद नगर में रहने लगे। आजीविका के साधनस्वरूप ये पौरोहित्य-वृत्ति करते रहे। इनका विवाह सं० १९५० में हुआ। ये बड़े सदाचारी और सद्गुण-सम्पन्न थे। परमार्थ में इनकी गहरी रुचि थी। एक बार नाभादास-कृत 'भक्तमाल' का पाठ करते हुए उसमें परम भागवतों की वार्ताएँ पढ़ने पर इनके हृदय में वैराग्य जाग उठा और उसी दिन घर त्यागकर भजन में प्रवृत्त होने का निश्चय कर लिया। इनके पिता का स्वर्गवास हो चुका था। अतः इन्होंने बड़े भाइयों से कहा कि अब यह पौरोहित्य-कार्य आप ही सँभालें, मैं एकान्तवास करते हुए भगवद्-भजन करूँगा। भाइयों ने इन्हें बहुत समझाया-बुझाया किन्तु ये अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

नगर के बाहर फुलैली नामक नदी के तट पर पर्णकुटी बनाकर ये भजन-साधन करने लगे। एक ही समय रूखा-सूखा अल्पाहार करते थे। किसीसे मिलते-जुलते नहीं थे। इस प्रकार कई वर्षों तक अहर्निश भजन-साधन करके इन्होंने भगवद्-अनुग्रह प्राप्त किया। तत्पश्चात् दैवी संकेतानुसार हैदराबाद नगर में आकर श्रीमद्भागवत की कथा और नाम-कीर्तन का आयोजन किया। आपकी कथा में नर-नारियों की अपार भीड़ होने लगी। धीरे-धीरे आपके सदुपदेश से सहस्रों जन प्रभावित हुए और मांस-मदिरा का परित्याग कर सात्त्विक और साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे।

स्वामी बसन्तरामजी भगवान् श्रीकृष्ण के परमभक्त थे। संकीर्तन व नामजप में इनकी विशेष अभिरुचि थी, अतः प्रेमा-भक्ति पर ही बल देते थे। आपके सत्संग से हजारों प्राणियों का कल्याण हुआ और कई नास्तिक तथा विमुखजीव धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु और भगवद्-भक्त बन गये। आपने सिन्ध प्रदेश के अनेक नगरों और ग्रामों में सनातनधर्म और भगवद्-भक्ति का सन्देश पहुँचाया, संकीर्तन का व्यापक प्रचार किया एवं असंख्य विपथगामियों को सन्मार्ग दर्शाया।

कुछ काल के उपरान्त इनके चित्त में अत्यधिक वैराग्य उत्पन्न हुआ, फलतः सब कुछ छोड़कर आप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फुलैली नदी के तट पर पुनः उसी कुटिया में सर्वथा एकान्त-सेवन करते हुए तीव्र साधना में जुट गये। कठोर तपस्या एवं विरह-व्यथा के कारण आपका शरीर कृश हो गया किन्तु आपका तेज और उत्साह बढ़ता ही गया। अपने आराध्य के दर्शन की तीव्र लालसा से आपके नेत्रों से अहर्निश अश्रु-धारा बहने लगी और परम व्याकुलता तथा विरहोन्माद के चिह्न प्रकट हो गये। उसी लोकोत्तर अवस्था में जब दर्शन की प्यास इतनी बढ़ गयी कि प्राण धारण करना भी मुश्किल हो गया, तब वह पावन क्षण भी आ ही गया और भक्त बसन्तरामजी आराध्य का दर्शन-लाभ कर कृतकृत्य हो गये।

इसके पूर्व ये केवल श्यामसुन्दर की उपासना करते थे। अब इन्हें रसिक-साधना की प्रक्रिया का बोध हो गया और युगल-स्वरूप के परम अनुरागी हो गये। श्यामाश्याम के प्रेमरस का हृदय में पूर्णोदय हो गया। स्वामी बसन्तरामजी की रचनाओं से उनकी प्रगाढ़ रूपासक्ति, अद्‌भुत लीला-प्रेम, अटल नाम-निष्ठा और गहरी धाम-प्रीति स्पष्ट झलकती है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सिन्ध प्रदेश में राधाकृष्ण की मधुरोपासना के प्रतिपादन, प्रचार व प्रसार का श्रेय मुख्यतः इन महाभागवत को ही है।

स्वामी बसन्तरामजी वैराग्य और प्रेमाभक्ति के जीते-जागते विग्रह थे। कनक, कामिनी और कीर्ति को ये भगवद्-प्राप्ति में प्रमुख बाधा मानते थे और उनसे बहुत दूर रहते थे। द्रव्यादि पदार्थों का संग्रह कदापि नहीं करते थे। अपने अनुगतों को भी सदा सावधान करते थे कि इन तीनों का त्याग परमावश्यक है। सन्त-भक्तों में बड़ी श्रद्धा रखते थे और तन, मन, धन से उनका सेवा-सत्कार करते थे। सदा युगल-प्रेमार्णव में निमग्न रहते थे।

वि० सं० १९७० में गोपीश्वरीस्वरूप में भगवान् शंकर ने आपको स्वप्नादेश दिया कि "प्रिया-प्रीतमजू का गुण-गान करो और उस हिन्दी प्रबन्ध-काव्य का नाम 'श्रीकृष्णायन' रखना।' इस स्वप्न के बावजूद इनका ऐसी रचना करने का साहस नहीं हुआ, कारण कि ये अपने को इस कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य व असमर्थ अनुभव करते थे। परन्तु आठवें दिन सायंकाल एक 'योगी महापुरुष' आपके सामने उपस्थित हुए और स्वप्नादेश के पालन का आग्रह करके तथा आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गए। तदनुसार आपने श्रावणी पूर्णिमा शनिवार को 'श्रीकृष्णायन' की रचना दोहा-चौपाई छन्द में आरम्भ की जिसकी समाप्ति चैत्र रामनवमी सं० १९७४ को हुई। ठीक चौथे दिन, चैत्र शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार को आपने गोलोक-यात्रा की, मानो यह भगवद्-कार्य सम्पन्न करने के लिए ही शरीर-धारण किये हुए थे।

आपकी बृहद् रचना 'श्रीकृष्णायन' हिन्दी-प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें नव द्वार हैं: १. श्री राधाकृष्ण-द्वार, २. श्री गोलोक-द्वार, ३. श्री वृन्दावन-द्वार, ४. श्री गिरिराज-द्वार, ५. श्री गोपिका-द्वार, ६. श्री मधुपुरी-द्वार, ७. द्वारावती-द्वार, ८. बलदेव-द्वार तथा ९. विज्ञान-द्वार। १६०० पृष्ठों के इस विशाल ग्रन्थ में सरस लीलाओं का भावपूर्ण वर्णन, भक्ति की सर्वश्रेष्ठता का निरूपण, वृन्दावन-महिमा आदि वर्णित हैं। आपकी अन्य मुख्य कृतियाँ हैं—१. भक्ति-पथ, २. सत्संग-सतसई, ३. श्यामसुन्दर-लीलास्तोत्र, ४. बसंत-भजन-बहार, ५. कान्ता-कण्ठाभरण, ६. प्रेम-रसायन, ७. अनुभव-विलास इत्यादि। सिन्ध के भक्ति-साहित्य-प्रणेताओं में आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इनके दो छन्द नीचे दिये जाते हैं—

(१)

श्रीकृष्ण-जन्म (श्रीकृष्णायन से)

नन्दब्रजपति के भवन भो
प्रकट लाल ललाम है।
तेज हत कन्दर्प कोटिन
निरख छबि छबि-धाम है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदन दुति तट उडुप द्युति बहु
लाग फीकी वाम है।
श्यामता घन-वृन्द लख अति
चकित अस घनश्याम है॥

शिर सुडौल सुहात अलकें
लोल मन थिरता गहे।
भाल परम विशाल अतिहि
रसाल रसिकन चित चहे॥

कमल लोचन भव बिमोचन
अरुणता तिहुँ को कहे।
शुक विलोक सुनासिका
लज्जित सतत मन में रहे॥

बिंबफल सम अधर-युग जिन
अरुणता मन मोहही।
मंद मुसकन सहज मनहर
बेर इक जो जोहही॥

कान युग्म महान सुन्दर
कण्ठ छबि बड़ सोहही।
वक्ष पे जब लक्ष ह्वै तब
भासकर किल छोहही॥

उदर त्रिवली नाभि सुन्दर
निरख मन ठहरे तहाँ।
जङ्घ रचना जो विलोकी
रुक रह्यो मो हिय वहाँ॥

चरण पंकज की मृदुलता
नाँहि देखी अस कहाँ।
अंग-अंग अनूप रचना
किम कहौं तुम पै यहाँ॥

है प्रतीत हिये मनहु बृज
छबि समुद्रहि वपु धर्‍यो।
याहिते सब सोहहीं रवि
चन्द रतिपति लखपर्‍यो॥

भाग्य हम बृजवासि-वृन्दन
उदय भै संशय हर्‍यो।
जाउ जाउ बसन्त अति द्रुत
दरस कर मन मुद भर्‍यो॥

(२)

(फुटकर पद)

किम मिल शोभा गौर रु श्याम।
राधाकृष्ण मंगल-मूरति,
रसिकन के रस धाम॥
नील पीत पट पहिर सुशोभित,
हरैं गर्व रति काम।
मुकुट चंद्रिका सिर पै सोहैं,
जन मन हर छबिग्राम॥
श्रीबन माहीं दे गर बाहीं,
गावैं गीत ललाम।
चहूँ ओर धेनूं गण घेरैं,
आप उच्चारैं नाम॥
सुनि बंसीधुनि बन में आतुर,
आईं सब बृजबाम।
ऋतु 'बसन्त' फूली अति सुखमय,
गुरु अनुग्रह बसुयाम॥

घ० तो०

भगवानदास

भगवानदासजी का जन्म सन् १८७२ ई० के लगभग हैदराबाद (सिन्ध) के निकट टण्डा-अल्हयार नगर में सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम पं० जेतूराम था। ये बाल्यावस्था से ही बहुत सरल, सत्यवादी, संयमी तथा शांत प्रवृत्ति के थे। हिन्दी और संस्कृत का इन्हें अच्छा ज्ञान था। आचरण में कर्मठ थे। नित्य संध्या, गायत्री, हवन आदि श्रद्धापूर्वक करते थे। सद्शास्त्रों का स्वाध्याय नियमित रूप से एवं भक्तिपूर्वक करना इनका नियम था।

इनका विवाह हुआ था किन्तु दो ही वर्षों के बाद पत्नी का देहांत हो गया। बहुत आग्रह करने पर भी इन्होंने दूसरा विवाह करना स्वीकार नहीं किया। सांसारिक प्रपंच से हटकर इनकी प्रवृत्ति सत्संग और भगवद्-भजन की ओर मुड़ गई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्होंने पुष्कर-निवासी स्वामी ब्रह्मानन्दजी (प्रसिद्ध ब्रह्मानन्द-भजनमाला के प्रणेता) से दीक्षा ली और साधनामय जीवन बिताने लगे। पहले ये गाँव के बाहर एक छोटे-से कच्चे मकान में अकेले रहते थे। इन्होंने कुलपरम्परागत पौरोहित्य का कार्य छोड़ दिया था और आकाश-वृत्ति से ही जीवन-निर्वाह करते थे। ये बड़े त्यागी व निःस्पृह भक्त थे। सब प्रकार के प्रपंच से दूर रहकर रात-दिन भजन-साधन में निमग्न रहते थे।

कुछ काल के अनन्तर गाँव के मुखिया श्री सूरजमल ने इनके लिये गाँव के भीतर ही एक मन्दिर बनवाया और ये वहीं रहकर भजन करने के लिए इन्हें प्रार्थना-पूर्वक मना लिया। उस आश्रम में इनके रहने के लिए जो स्थान बना था उसीके अन्दर एक छोटी कोठरी इनके एकान्तिक भजन-ध्यान के लिए बनी थी। पास के तीन कक्षों में से एक में भगवान् श्रीकृष्ण का विग्रह प्रतिष्ठित था, दूसरे में लक्ष्मी-नारायण का और तीसरे में श्रीमद्भागवत-ग्रन्थ पधराया गया था। उस मन्दिर के हाल में आप शाम को नित्य श्रीमद्-भागवत की कथा कहने लगे जिसमें नगर के अनेक श्रद्धालु उपस्थित रहते थे।

नाम-जप और सदाचार पर ये विशेष बल देते थे। अपने गृहस्थ-अनुयायियों में आपने प्रत्येक अमा-वस्या को हवन-यज्ञ करने तथा पक्षियों को नित्य अन्न देने की परिपाटी का प्रवर्तन किया। इन नियमों का ये स्वयं भी आजीवन निर्वाह करते रहे। ये गरीबों एवं अभावग्रस्त गृहस्थों को भी गुप्त रूप से सहायता किया करते थे। आयुर्वेदिक चिकित्सा के भी ये अच्छे जानकार थे और रोगियों को आयुर्वेदिक औषधियाँ मुफ्त दिया करते थे।

इनके आश्रम पर संत-महात्मा आते रहते थे। पुष्कर से स्वामी ब्रह्मानन्दजी हर साल आते और कुछ काल इनके यहाँ ठहरते थे। स्वामी बसंतराम, पं० जयकृष्णदास तथा महाराज नयनारामजी से आपका स्नेह-सम्बन्ध था। अमरकोट के प्रसिद्ध भक्त पं० लालचंद शर्मा भी आपके यहाँ निवास कर भागवत का अभ्यास और सत्संग-लाभ करते थे।

वि० सं० १९८२ में आप तीर्थाटन को निकले और बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की। वहाँ से लौटकर तीन मास एकान्तवास किया।

भगवानदासजी त्याग, तपस्या, निरभिमानता और भगवत्प्रेम के प्रतीक थे। इन्होंने सन् १९३५ ई० के जनवरी मास में परधाम की यात्रा की।

आपके फुटकर पद सिन्धी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में मिलते हैं। नीचे दो सिन्धी छंद नमूने के रूप में दिये जाते हैं—

(१)

कृष्ण कन्हैये रास रचाई,
रूप गोप्युनि जो ठाहचो
सब खे भुलायो ॥ कृष्ण कन्हैये…
मुहबत्त मच्चु मच्यो सखियुनि में।
गोलण लगियूं झंगल बन में ॥
नींहु नऊं तनि लायो,
पेरु बधायो ॥ कृष्ण कन्हैये….
पूरण प्रेम में राधा प्यारी।
पलि-पलि पई वजे बलिहारी ॥
तदंहि मोहन रुपु छिपायो,
चेटकु लायो ॥ कृष्ण कन्हैये…
ग्राम में ग्ररकु थियूं सभि गोप्यूं।
बन में कौल करे सभि कोप्यूं ॥
नेणनि नीरु बहायो,
झरड़ो लायो। कृष्ण कन्हैये….
कृष्णु मिलन्दो मुरलीअ वारो।
करियो तब्हीं सभि तहिन्दे लारो ॥
हरदमु तहिखें ध्यायो,
देरि न लायो ॥ कृष्ण कन्हैये….

'श्रीकृष्ण कन्हैया ने एक बार रासलीला रची। गोपियों का रूप धारण कर सबको भ्रमित कर लिया। उनको न देखकर गोपियों के हृदय में प्रेम-विरह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की ज्वाला उत्पन्न हुई और वे उनको वन-वन में खोजने लगीं। इस प्रकार वे प्रेम-पथ पर अग्रसर हुईं। श्री राधाजी का प्रेम तो पूर्ण और असीम है, वह पग-पग पर बलिहारी जाती हैं। तब मोहन अकस्मात् अंतर्धान हो गये। उनके मन को जादू-सा ही लगा दिया था। सब गोपियाँ दुःख के सागर में डूबकर वन में विलाप करने लगीं। उनके नेत्रों से अश्रुओं की निर्झरणी प्रवाहित हो चली। मुरलीवाले श्रीकृष्ण अवश्य ही मिलेंगे किन्तु तुम अविलम्ब उन्मुख होकर निरन्तर उनका ध्यान-चिन्तन करो।'

(२)

कृष्ण तोखे शरण पए जो नंगु।
मां गुणहीन मलीनमहा मति
कीअं लगें तुंहिंजो रंगु।
जप तप तीरथ दान न कयो
न कयो कदी सत्संगु॥
तो समान न को पतित उद्धारनु
मां पापिन में उमंगु।
'भगवान' तोखे करे नित विनती
दे सदा पंहिंजो संगु॥

'हे श्रीकृष्ण! शरणागत को सँभालने का तो तुम्हारा बाना है। मैं सद्गुणों से वंचित और अत्यन्त मलिन बुद्धिवाला हूँ, फिर मुझ पर तुम्हारा रंग कैसे चढ़े? मैंने न कभी जप-तप-तीर्थ-दान किया है, न सत्संग-लाभ ही किया है, किन्तु तुम्हारे समान पतितों का उद्धार करनेवाला और कोई नहीं है और मैं तो पापियों में अग्रगण्य हूँ। 'भगवानदास' की यही बिनती है कि तुम उसे अपना नित्य सान्निध्य प्रदान करो।'

घ० तो०

मेवाराम

महाराज मेवाराम का जन्म वि० सं० १९४३ में सिन्ध के लाड़-क्षेत्र में बदीन नगर के पास, तराई नामक गाँव में एक सारस्वत ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। पिता का नाम था खजूराम शर्मा और माता का शीतलबाई। ये उनके इकलौते पुत्र थे। इनका विवाह २१ वर्ष की अवस्था में कर दिया गया। इसके बाद इनके पिता का देहान्त हो गया। कुछ समय के पश्चात् माता का भी लोकान्तरण हो गया।

कालान्तर में इन्हें दो पुत्र हुए। तब तराई गाँव छोड़कर ये परिवारसहित 'बदीन' नगर चले आए और पौरोहित्य-वृत्ति से जीवन-निर्वाह करने लगे। किन्तु इनकी रुचि पहले से ही भगवद्-भजन में थी। बदीन नगर में आए कुछ ही समय बीता था कि सामान्य बीमारी से पत्नी दिवंगत हो गई। तब इनकी अवस्था लगभग ३०-३२ वर्ष की थी। इस घटना के पश्चात् ये स्वामी केशवदास के सम्पर्क में आये और उनके उपदेशानुसार भजन-साधन में लग गए। इनकी बड़ी बहन नाथीबाई एक उत्तम साधिका और वात्सल्य-निष्ठा की उपासिका थीं। अब वे ही इनके दोनों पुत्रों की देखरेख करने लगीं। उन्होंने इनसे आग्रह किया कि बच्चों के पालन-पोषण की उचित व्यवस्था के लिये ये पुनः विवाह कर लें, जिससे गृहस्थी सुचारु रूप से चलती रहे। ये बोले, "बहनजी, मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करता रहा कि वे मेरे सांसारिक बन्धन काट दें ताकि मैं सब प्रपंच छोड़कर आपके साथ वृन्दावन-वास करूँ, और अब आप ही मुझे पुनः विवाह के बन्धन में डालने की बात कह रही हैं। यदि इसके लिए आग्रह किया गया तो मैं लोटा-डोरी लेकर जंगल में चला जाऊँगा।"

अंततोगत्वा बड़े पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का भार अपने सुहृद् पं० लालचंद शर्मा को सौंपकर और छोटे पुत्र को उसके ननिहाल में रखकर ये बहन नाथीबाई को साथ लेकर वृन्दावन की यात्रा पर चले गये। यहाँ इन्होंने ब्रज के भक्तों के सत्संग में भगवद्-रस का आस्वादन किया। दो मास वृन्दावन-निवास करने के पश्चात् इनकी इच्छा उत्तराखंड की यात्रा करने की हुई। अतः बहन को साथ लेकर गंगोत्री,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यमुनोत्री, केदार तथा बद्रीनाथ का दर्शन करने चल दिये।

इस यात्रा के दौरान इन्होंने उत्तराखंड के जंगलों में तीव्र साधना की। उन दिनों इन्हें अपने शरीर अथवा भोजन-विश्राम आदि की कोई सुधि ही नहीं रहती थी। वहाँ इन्हें कई अलौकिक अनुभव हुए। गंगोत्री में वृद्धा बहन नाथाबाई का स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण ये उक्त चार पर्वतीय तीर्थों की यात्रा समाप्त होते ही सिन्ध में अपने निवास-स्थान को लौट आये। कुछ दिनों के बाद नाथीबाई का देहावसान हो गया। अब ये पूर्णतया बन्धन-मुक्त होकर बदीन-नगर के अपने राधाकृष्ण मन्दिर में रहकर साधन-भजन में लीन रहने लगे। इनके नित्य-सत्संग व नाम-संकीर्तन के कार्यक्रम में अनेक लोग सम्मिलित होते थे। जन्माष्टमी का उत्सव चार दिन तक बड़ी धूम-धाम से होता था। उस अवसर पर राधा-कृष्ण-भक्ति की सरिता प्रवाहित हो जाती और चारों दिशाएँ 'राधे-राधे' के नाम-घोष से गूँज उठती थीं। आपने विभिन्न नगरों में श्रीमद्भागवत के सप्ताह, प्रवचन तथा संकीर्तन का आयोजन करके समूचे लाड़-क्षेत्र में श्री राधाकृष्ण की मधुरोपासना की गंगा बहायी।

कुछ समय के बाद ये हैदराबाद (सिन्ध) के प्रसिद्ध रसिक-भक्त स्वामी बसंतरामजी के सम्पर्क में आये। उनके सत्संग से ये प्रेमोपासना की ओर अधिक आकृष्ट हुए। इनके मन में विरक्ति का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। वृन्दावन-वास की इच्छा उत्कट हो चली। अतः ये वृन्दावन आ गये और निम्बार्क-सम्प्रदाय के स्वामी विहारीदासजी त्यागी से दीक्षा लेकर माधुर्य-साधना में रत हो गये। साधु-सेवा में इनकी अगाध आस्था थी। गो-सेवा भी ये बड़ी श्रद्धा के साथ करते थे। प्रायः भजन की मस्ती में डूबे रहते थे।

कुछ काल के पश्चात् सिन्ध से इनके ३-४ शिष्य वृन्दावन आये और सूचित किया कि आपके ज्येष्ठ पुत्र का विवाह निश्चित हो गया है अतः इस अवसर पर आपकी वहाँ उपस्थिति अत्यावश्यक है, अन्यथा पुत्र को और अन्य स्वजनों तथा भक्तों को भी अत्यन्त कष्ट होगा। इन लोगों के विशेष आग्रह पर ये मान गये। किन्तु कुछ शर्तें रखीं कि ये वहाँ आँखों पर पट्टी बाँधे हुए रहेंगे और यमुना-जल इत्यादि सामग्री समाप्त होने के पूर्व ही वृन्दावन लौट आयेंगे। वे लोग सब शर्तें मान गये। तब इन्होंने एक कनस्टर यमुना-जल तथा यमुना-रज की गोलियाँ साथ में लेकर सिंध के लिए प्रस्थान किया। बदीननगर पहुँचने पर पूरे निवास-काल में ये आँखों पर पट्टी बाँधे रहे। पुत्र के विवाह के अनन्तर सत्संगी और प्रेमीजनों के संतोष के लिए कुछ दिन वहाँ रहे, किन्तु केवल भगवच्चर्चा ही करते थे और उस समय भी इनकी आँखों पर पट्टी बँधी रहती थी।

तत्पश्चात् ये वृन्दावन लौट आये और संकल्प कर लिया कि अब वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। इसके बाद ये वृन्दावन के बाहर कभी नहीं गये, छोटे पुत्र के विवाह के अवसर पर भी नहीं। कालान्तर में इनकी भक्ति-भावना बहुत बढ़ गयी और ये रात-दिन भाव-साधना में लीन रहते थे।

एक दिन इन्हें स्वप्न में एक संत ने आदेश दिया कि बरसाने जाकर वहाँ गहबरबन में किशोरीजी की आराधना करो। प्रातः होते ही नित्य-नियम से निवृत्त होकर ये बरसाने चले गये और वहाँ गहबरबन में भजन-ध्यान करने लगे। कहा जाता है कि एक दिन सायंकाल के समय एक छोटी बालिका लहँगाचुँदरी पहने हुए इनके निकट आकर बोली, "बाबा, तुम इस जंगल में क्यों पड़े हो? यहाँ बिच्छू, साँप, हिंसक प्राणी तुम्हें काट खायेंगे, तुम यहाँ से चले जाओ।" छोटी-सी बालिका द्वारा इस प्रकार डराये जाने पर ये पहले तो कुछ चकित-से हुए किन्तु शीघ्र ही सावधान होकर उस कन्या के चरण पकड़कर रोने लगे और कहा, "बेटी, अब मैं तुझे छोड़कर कहाँ जाऊँ?" तब वृषभानुदुलारी ने प्रकट रूप से दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया। ये मूर्च्छित हो गये। बाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में इन्हें वृन्दावन जाने की आज्ञा हुई और ये वृन्दावन को लौट आये। वृन्दावन में इनका शेष जीवन आराध्य-युगल के चिन्तन और अनुराग में ही व्यतीत हुआ।

संवत् २००८ (१९५१ ई०) में आप अधिक अस्वस्थ हो गये। शय्या पर पड़े-पड़े भी इनका नामोच्चारण चलता रहा। मुख पर अलौकिक आभा और प्रसन्नता थी। कार्तिक कृष्ण नवमी के दिन अन्त समय में मरणासन्न मेवारामजी ने मन्द स्वर में यह पद गाया—

(हिन्दी पद)

राधिका श्याम सुन्दर कौं प्यारी।
नखसिख अंग अनूप विराजत
कोटिचंद दुति वारी ॥ राधिका ...
इक छिन संग न छाँड़त मोहन
निरखि-निरखि बलिहारी।
मेवाराम गिरिधर बस जाके
सो वृषभानु दुलारी ॥ राधिका ...

इसके पश्चात् पंचभौतिक शरीर छोड़कर इन्होंने प्रिया-प्रीतम का नित्य-कैंकर्य प्राप्त किया।

आपके फुटकर सिन्धी तथा हिन्दी पद 'मेवाराम-भजनमाला' और 'भजनावली' नामक पुस्तिकाओं में प्रकाशित हुए थे। उनमें 'मेवादासी' और 'मेवाराम' छाप का प्रयोग हुआ है। आपका एक हिन्दी पद ऊपर उद्धृत है। एक सिन्धी पद नमूने के रूप में नीचे दिया जाता है—

(सिन्धी पद)

मिठा मोहन मुंखे दर्शनु दियो।
मुँहिजी निन्ड फिटी आरामु वियो ॥
तलब अन्दर में तुँहिजी अथमि,
तुँहिजे कुरब कयो कतलामु अथमि,
दिल दाहूं करे न आरामु अथमि,
मनु मुहबत में मस्तानु थियो।
खाइणु छदियुमि खाधा खोराकूं,
पहिरणु छदियुमि पट पोशाकूं,
माड़ियूं महल छदियमि अदा ओताकूं,
आहि वेसु फकीरी तोलाइ कयो ॥
हिति तो बिनु कीअं गुज़ारीदसि,
हीअ मानुष देही सुधारीदसि,
पिया-प्रीतम खे रीझाईदसि,
श्री राधेश्याम पुकारे पियो।
प्रभु पँहिजो पाणु पसाईदा,
इहा आश अन्दर जी पुजाईदा,
चितु चरननि में ही लाईन्दा,
घरु 'मेवाराम' जो तो पाल्यो ॥

'हे प्यारे मोहन ! अब मुझे दर्शन दो। मेरी नींद चली गयी है और मुझे तनिक भी आराम नहीं है। मेरे हृदय में तेरे लिये तीव्र उत्कंठा है, तेरे प्रेम ने मुझे मतवाला कर दिया है, मेरा दिल पुकार उठता है, मुझे जरा भी चैन नहीं है, मेरा मन तेरी मुहब्बत में मस्त हो गया है। मैंने अच्छे पदार्थ खाना छोड़ दिया, अच्छे वस्त्र पहनना त्याग दिया, महल-माड़ियों में रहना भी छोड़ दिया है और तेरे लिए फ़क़ीरी भेष ग्रहण कर लिया है। मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, अपना जीवन सार्थक कैसे करूँगी, प्रिया-प्रीतम को कैसे रिझाऊँगी, अतः मैं निरन्तर 'राधे-श्याम' 'राधे-श्याम' पुकार रही हूँ। मेवाराम कहते हैं कि मेरे हृदय की लालसा पूर्ण करके प्रभु मुझे अपना दर्शन करायेंगे और मेरा चित्त अपने चरणों में लगायेंगे।'

घ० तो०

रसिकाशरण

श्री रसिकाशरण का जन्म सिन्ध के लरकाना जनपदान्तर्गत रतेदेरे गाँव में सन् १९०५ ई० के आसपास हुआ था। इनका मूल नाम मोतीराम था। बाद में जब ये स्वामी श्यामसनेही श्यामाशरणजी के शरणागत हुए तब गुरु द्वारा इनको 'रसिका-शरण' नाम दिया गया था।

हैदराबाद (सिन्ध) के प्रसिद्ध रसिक महात्मा 'कृष्णायन'-प्रणेता स्वामी बसंतरामजी की भजन-कुटी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नगर के बाहर फुलेली नहर के तट पर स्थित थी। ये कई वर्ष इस स्थान में रहकर भजन-साधन करते रहे। प्रातः ३ बजे उठकर भजन में बैठ जाते थे। ठाकुर-सेवा, मंगला, शृंगार, राजभोग, शयन, उत्थापन, आरती आदि अत्यन्त भावपूर्वक करते थे। नाम-कीर्तन में इनकी विशेष रुचि थी। चित्त में विरक्त-भाव बराबर बना रहा। ये आजीवन ब्रह्मचारी रहे।

इन्होंने स्वामी बसन्तरामजी के प्रमुख कृपापात्र स्वामी श्यामसनेही-श्यामाशरणजी से दीक्षा एवं साधुवेश ले लिया और मधुरोपासना करने लगे। सन् १९४७ ई० में भारत-विभाजन के पश्चात् ये ब्रज चले आये। कुछ समय वृन्दावन में रहे। तत्पश्चात् ब्रज के लीला-स्थलों के दर्शन तथा एकान्त प्रदेशों में लीला-चिन्तन करने के उद्देश्य से निकल पड़े। ये प्रायः ब्रज के गाँवों, कुण्डों और जंगलों में ही विचरण करते थे और अपनी भावना में मस्त रहते थे।

ब्रज-लीला में मगन मन, और ठौर नहिं जाय।
'रसिका' बिन जल मीन जिम, बिछुड़े प्रान नसाय॥

ये कुछ समय गनेशरा नामक गाँव के एक मन्दिर में भी रहे थे। वर्ष में एक बार दादा-गुरु स्वामी बसन्तरामजी के जयन्ती-महोत्सव के अवसर पर वृन्दावन आते और स्थान में रहकर सेवा करते, उत्सव-समाप्ति के बाद फिर गाँवों में चले जाते थे। इस प्रकार ८-९ वर्ष ये ब्रज के गाँवों और वनों में ही विचरते रहे। भिक्षा-वृत्ति से रहते थे। इनका यह काल एकांत साधन-परायणता का था।

सन् १९५६ ई० के लगभग, विशेष अनुरोध करने पर, ये वृन्दावन के गुरुस्थान 'बसन्त-कुंज' के मन्दिर की सेवा-पूजा करने तथा आश्रम की देखभाल के लिये वृन्दावन में स्थायी रूप से निवास करने लगे और अन्तिम समय तक वृन्दावन में ही रहे।

रसिकाशरणजी सखाभाव के अलबेले भक्त थे। ये अपने को एक अहीर बालक और श्रीकृष्ण का प्रिय सखा मानते थे। ब्रज-रज में इनकी अगाध आस्था थी। सेवा-कुंज का नित्य दर्शन करने का इनका अडिग नियम था। बड़े सीधे-सादे और शुद्ध अंतःकरण के भक्त थे। सिन्ध के कृष्ण-भक्तों में सख्य-निष्ठा के ये अकेले भक्त ठहरते हैं।

सन् १९७१ ई० की १ फरवरी को वृन्दावन में स्थूल देह त्यागकर इन्होंने गोलोक-वास प्राप्त किया।

इन्होंने हिन्दी में कुछ फुटकर पद रचे हैं जिनमें 'रसिका' तथा 'रसिकाशरण' छाप पायी जाती है। इनके तीन पद नमूने के रूप में नीचे दिये जाते हैं—

(१)

कीजै वृन्दाविपिन-विलासी।
प्रेम-विभोर सदा मैं सेवौं
पदसरोज सुखरासी।
हो उन्मतचित विचरों नितहो
कुंज-कुंज छबि-रासी॥
श्रीराधे श्रीराधे रटौं नित
होउँ अनन्य उपासी।
'रसिकाशरण' की विनय सुनीजे
नन्दनन्दन रस-रासी॥

(२)

जय जय श्री वृन्दावन धाम।
अचल अनादि एकरस अद्भुत
बिहरत श्यामा श्याम।
निज सम सखी सहेली हिलमिल
करत रास रस धाम॥
योग-यज्ञ-बल कउ कछु नाहीं
प्रेम-प्रीति को ठाम।
'रसिका' गुरू बसन्द शरण गहु
ह्वै श्रीबन विश्राम॥

(३)

दरसन दो मोहिं आज बिहारी।
यमुना-पुलिन में वंशी बजावत
संग श्रीराधा प्यारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब सखियन की सेवा लेवत
कुंजनि आप पधारी ॥
रसिकन रसवर्द्धन ब्रज प्रकटत
करत केलि मनहारी ।
'रसिका' रस अभिलाषा पूरहु
जय जय बसंत बिहारी ॥

घ० तो०

रामदास

बाबा रामदास का जन्म एक गरीब-परिवार में कार्तिक शु० १० सं० १९४० (१८८३ ई०) को शिकारपुर नगर के पास हुआ था। पिता का नाम था मलसिंह और माता का पसंदिबाई। इनका मूल नाम 'चूहरसिंह' था। बाल्यावस्था से ही इनकी रुचि भगवद्-भजन में थी। स्वभाव शान्त, गम्भीर और दयालु था। ये नियमित रूप से कुत्तों को रोटियाँ खिलाते, चींटियों को चीनी और पक्षियों को दाना देते थे। जब रास्ते पर चलते तो दृष्टि धरती में लगाये रखते कि कहीं किसी जीव पर अपना पैर न पड़ जाए।

इनके मन में प्रारम्भ से ही विरक्ति-भाव था अतः इन्होंने आजीवन विवाह न करने का निश्चय कर लिया और भजन-साधन में लग गए। ये संगीत के मर्मज्ञ थे और इनका कण्ठ भी बहुत मधुर था। श्यामसुन्दर के उपासक होने से उनके भक्तिपरक पद बड़े भाव से गाते थे। तरुणावस्था में प्रवेश करते ही इन्होंने अपना घर छोड़ दिया और नगर की एक मढ़ी में रहते हुए एकान्त में तीव्र साधना करने लगे। प्रायः कई दिनों तक अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकलते थे, दिन-रात भजन में लीन रहते थे।

धीरे-धीरे इनकी भक्ति-भावना इतनी बढ़ गयी कि कभी मुरली-मनोहर की प्रतिमा से बातें करने लगते, कभी खूब रोने लगते, कभी उन्हें उलाहना देते और कभी उनसे रुष्ट भी हो जाते थे। भक्त चूहरसिंह जब हार्मोनियम पर अपने इष्टदेव के अनुराग में तन्मय होकर पद गाने लगते तब इनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की सरिता-सी बह चलती थी। इन्हें प्रायः भाव-समाधि लग जाती थी और घण्टों तक बाह्य-ज्ञान-शून्य स्थिति में पड़े रहते थे। सामान्य स्थिति में भी ये सदा कृष्ण-प्रेम में छके रहते थे। इनके हृदय में तो श्यामसुन्दर की छबि विराजती थी और जिह्वा पर निरन्तर कृष्ण-नाम नृत्य करता था। इस काल (२०वीं शती के पहले दशक) में इनके हृदय के सहज उद्गार सहस्रों छंदों के रूप में, विविध राग-रागिनियों में निकले थे, जिनमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि के सुन्दर भाव भरे हुए हैं। इन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता की भाषा-टीका उसी समय लिखी थी।

इनकी साधुता, प्रगाढ़ भक्ति और उच्च आध्यात्मिक स्थिति की ख्याति होने पर शिष्यों तथा जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ने लगी। ये उनको नाम-जप और ध्यान करने का उपदेश देते थे। सत्संग में ये गीता तथा उपनिषदों के गूढ़ रहस्य बड़ी सुगम और सरस शैली में समझा देते थे जिसे श्रवण कर सत्संगी गद्गद हो जाते थे। भक्त चूहरसिंह उस समय शिकारपुर की एक विशिष्ट आध्यात्मिक विभूति के रूप में प्रख्यात हो गये थे।

इन्हीं दिनों शिकारपुर के प्रसिद्ध पीठ 'खटवाली-धर्मशाला' के तत्कालीन महन्त के दिवंगत हो जाने से गद्दी रिक्त हो गयी। नगर के पञ्चों तथा उस स्थान के न्यासीगणों ने इनसे अनुरोध किया कि उस प्रतिष्ठित गद्दी पर विराजमान होवें किन्तु इन्होंने स्वीकार नहीं किया। जब विशेष आग्रह हुआ और पञ्चों द्वारा इनकी शर्तें भी स्वीकार कर ली गयीं तब ये मान गये। अतः वैशाख शु० ७ सं० १९८६ को इन्होंने विधिवत् भेष लेकर 'रामदास' नाम धारण किया और 'खटवाली-धर्मशाला' स्थान की महन्ती का गुरुतर दायित्व लोकमंगल की भावना से प्रेरित होकर ग्रहण कर लिया।

गद्दी पर विराजमान होते ही इन्होंने अपनी सन्त-प्रवृत्ति के अनुरूप वहाँ स्थायी रूप से 'लंगर' शुरू कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया जिसमें नित्य सैकड़ों गरीब लोग आकर भोजन पाते थे। इतना ही नहीं, ये अनेक अभावग्रस्त गृहस्थों के यहाँ भी गुप्त रूप से सीधा भेजा करते थे और उनकी कन्याओं के विवाह के लिए गुप्त सहायता दिया करते थे। विधवाओं, अनाथ बालकों, वृद्धों, अन्धों, अपंगों तथा दीन-दुखियों के लिये इनके हृदय में अपार करुणा का सागर उमड़ता रहता था और तन-मन-धन से उनकी सेवा-सहायता करते थे। वे यथार्थ में उन सबके 'बाबा' थे।

इनके गौरवमय व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी इनकी दीनवत्सलता।

बाढ़, भूकम्प, हैजा आदि दैवी विपत्तियों के अवसर पर बाबा रामदासजी ने संकट-ग्रस्तों की जैसी सेवा की वह सर्वथा अवर्णनीय है। ये दया की प्रतिमूर्ति थे। गोसेवा में भी इनकी अगाध आस्था थी। एक बार अकाल के समय हर रोज सैकड़ों गौएँ मण्डी में बिकने को लायी जाती थीं जिन्हें कसाई लोग खरीद करने लगे थे। यह ज्ञात होते ही ये अपने कुछ सत्संगियों के साथ नित्यप्रति मण्डी में जाकर ऐसी सब गौएँ खरीद लेते थे और उन्हें गोशाला में रखवा देते थे। इस प्रकार इन्होंने हजारों गौओं की कसाई की छुरी से रक्षा की।

देश-विभाजन के पश्चात् बाबा रामदास सिन्ध छोड़कर बम्बई में आ गये। उस समय हजारों की संख्या में सिन्धी हिन्दू निर्वासित होकर जहाज एवं रेल द्वारा बम्बई पहुँच रहे थे। उनकी दीन दशा को देखते हुए बाबा रामदासजी ने महीनों तक बम्बई बन्दर तथा रेलवे-स्टेशन पर उनके भोजन आदि की उचित व्यवस्था की। उन दिनों ये स्वयं अपने सहयोगियों को साथ लेकर बन्दर पर जाते, दुखियों तथा आपद्ग्रस्तों को सान्त्वना देते, रोगियों के उपचार का प्रबन्ध तथा अन्य आवश्यक सहायता करते और उन्हें विश्वासपूर्वक राम-नाम का अवलंब लेने का सदुपदेश दिया करते थे।

इनके पास बैठने से ही हृदय में शान्ति और सात्त्विकता आ जाती थी। जरा भी मालूम नहीं होता था कि ये इतने बड़े गद्दीधर हैं।

बाबाजी वास्तव में आदर्श भक्त और गीता के कथनानुसार प्राणिमात्र में वासुदेव का दर्शन करनेवाले दुर्लभ महात्मा थे। इन्होंने सं० २०१२ (१९५५ ई०) की माघ कृष्ण १५ को अपनी ऐहिक लीला संवरण कर करुणावरुणालय का नित्य-सान्निध्य प्राप्त किया।

सिन्धी कविता में ये प्रायः 'चूहर' और हिन्दी रचनाओं में 'सचदानन्द' छाप का प्रयोग करते थे। इन्होंने सिन्धी तथा हिन्दी में हजारों फुटकर छंद व भजन लिखे थे। वे इनके एक भक्त श्री जयरामदास छाब्रिया द्वारा 'सच्चिदानन्द-भजनमाला' के नाम से, नागरी लिपि में, १२ भागों में, बम्बई से बहुत पहले प्रकाशित हुए थे। दुर्भाग्यवश वे अब अप्राप्य हैं। इससे इनका कोई कृष्ण-पद उपलब्ध न हो सका। अतः यहाँ इनका राम-नाम-महिमा का एक हिन्दी पद और एक सिन्धी छन्द नमूने के रूप में दिया जाता है—

(हिन्दी पद)

साधो राम-नाम चित धारो।
काया मंदिर खोज निहारो
चेतन राम उजारो॥
ऊठत-बैठत सोवत-जागत
श्वासों-श्वास चितारो।
छिन-छिन राम सरूप सँभारो
मन को मैल उतारो॥
सीतल होय बिराजो जग में,
सकल कलेश निवारो।
'सचदानन्द' सर्व जग पूरन,
रामहीका विस्तारो॥

(सिन्धी छन्द)

'चूहर' माया मातु, साथ संबंधी जेतरा।
बिना भजन भगवान जे,
हले नको हिकु साणु॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तहिं करे तूं सभिनी खों, मोरे पहिंजो पाणु ।
जोड़े रखु जीउ प्राणु, दुख भंजन भगवान सां ।।

"चूहर" कहते हैं कि जितने भी साथी और सम्बन्धी हैं, उन सबको तुम माया का ही विस्तार मानो। भगवान् के भजन के अतिरिक्त, इनमें से एक भी तुम्हारे साथ नहीं जाएगा। इसीलिए तुम इन सबसे मुंह मोड़कर अपना मन और प्राण उन दुःख-भंजन भगवान् से ही जोड़ो।'

घ० तो०

शीतलदास

भक्तवर शीतलदास का जन्म मार्गशीर्ष पूर्णिमा संवत् १९६७ (१९१० ई०) को सिन्ध के हैदराबाद जनपदान्तर्गत 'महिड़ा' नामक ग्राम में हुआ था। पिता का नाम मंगनराम था और माता का धर्मबाई। यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् ये संस्कृत का अध्ययन करने लगे। इनके बड़े भाई सूरजरामजी उच्च कोटि के साधक और सत्संगी गृहस्थ थे। ये घर में भी सायंकाल को नियमित रूप से सत्संग करते थे। शीतलदासजी उनके सत्संग तथा संत-वृत्ति से बहुत प्रभावित हुए और बाल्यकाल में ही इनकी भगवद्-भक्ति में रुचि उत्पन्न हो गई।

बड़े होने पर शीतलदासजी ने टण्डा-आदम नगर के प्रसिद्ध संत स्वामी टेऊंरामजी का कई वर्षों तक सत्संग-लाभ किया। उन महात्मा की आज्ञानुसार इन्होंने विवाह भी कर लिया किन्तु इनकी भक्तिनिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। इन्होंने स्वामी ग्वाला-नन्दजी से दीक्षा ली और घर पर ही भजन-साधन करने लगे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी इनकी जीवन-चर्या बड़ी ही पवित्र और आदर्श थी। ये आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे। उनका मधुर नाम-कीर्तन करते-करते इनके नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा बह चलती थी।

भगवद्गीता में इनकी अपार श्रद्धा थी। गीता का पारायण, गीता की पूजा-आरती, गीता का मनन, गीता का प्रवचन और गीता का सर्वत्र प्रचार-यही इनके जीवन की अक्षुण्ण निधि थी। हैदराबाद में गुरुनगर-मन्दिर में इनका नित्यप्रति सत्संग होता था। इन्होंने अपने आचरण और प्रवचनों द्वारा भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता और नाम-कीर्तन की दिव्यता का प्रतिपादन किया। आपने श्री गीता-जयन्ती-महोत्सव का आरम्भ इसी मन्दिर में १९४१ ई० में किया और उसे आजीवन अधिकाधिक भाव और उत्साह के साथ करते रहे। उसमें गीता के कम-से-कम १०८ पारायण तो होते ही थे। इसके साथ अनेक संत-महापुरुषों के प्रवचन, लीला-कथा, नाम-कीर्तन आदि का भी आयोजन होता था।

पाकिस्तान बनने पर ये सिन्ध छोड़कर अजमेर में आकर रहे। यहाँ भी इनका कृष्ण-भजन और दोनों समय सत्संग, गीता-प्रवचन तथा नाम-कीर्तन चलता रहा। गीता-जयन्ती का महोत्सव हर वर्ष ५ दिन तक करते थे जिसमें गीता के २१६ पारायण होते थे और संत-महात्माओं द्वारा प्रातः ६ बजे से रात्रि १२ बजे तक सत्संग, प्रवचन, नाम-कीर्तन और श्रीकृष्णलीला-गान का कार्यक्रम रहता था। जन्माष्टमी का उत्सव ये विशेष उत्साह के साथ करते थे।

कुछ समय के बाद इन्होंने अजमेर में 'गीता-मन्दिर' का निर्माण कराया जो श्रीकृष्ण-भक्ति का एक सजीव केन्द्र बन गया। उसमें नित्य प्रातः और सायं सत्संग, नाम-कीर्तन तथा भगवान् कृष्ण और गीता की आरती हुआ करती थी। रविवार के दिन 'गीता-क्लास' चलता था जिसमें अनेक स्त्री-पुरुष और विद्यार्थी गीता पढ़ने आते और नित्य गीता-पाठ और पूजा-आरती की दीक्षा लेते थे। गीता-मन्दिर में सदा संत-महात्मा आते रहते और भगवद्-भक्ति की मन्दाकिनी अनवरत प्रवाहित रहती थी। १९६३ ई० की गोपाष्टमी के दिन स्वामी गंगेश्वरानन्दजी के कर-कमलों से गीता-मन्दिर में 'वेद-भगवान्' की स्थापना हुई। भक्त शीतलदासजी समय-समय पर गीता-मन्दिर में विशेष अनुष्ठानों का आयोजन करते रहे। कई बार अखण्ड नाम-कीर्तन-सप्ताह, गीता-ज्ञान-यज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समारोह, रामचरितमानस का सामूहिक पारायण आदि का आयोजन हुआ। १९६६ ई० में ४८ दिन का अखण्ड-यज्ञ-समारोह हुआ जिससे सारा वातावरण भगवन्मय हो गया था।

आपकी साधु-संतों तथा दरिद्र-नारायण की सेवा में बड़ी निष्ठा थी। १९६३ ई० की अक्षय तृतीया से आपने गीता-मन्दिर की ओर से 'श्रीकृष्ण-भण्डारा' अन्नक्षेत्र शुरू किया जिसमें नित्यप्रति अनेक गरीब तथा वृद्ध नर-नारी एवं कन्याएँ भोजन पाते थे। उनको नारायणरूप मानकर ये बड़े आदर से उनकी सेवा करते थे। समय-समय पर उन्हें वस्त्र भी दिया जाता था। भक्त शीतलदासजी ने अन्यान्य नगरों में भी गीता और श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। उनकी प्रेरणा और प्रयास से उल्हासनगर (महाराष्ट्र) में भी हर वर्ष गीता-ज्ञान-यज्ञ का बृहद् आयोजन होने लगा। इसके अतिरिक्त कई अन्य स्थानों में भी गीता-सत्संग आरम्भ हुआ।

अपनी लोकयात्रा के अन्तिम दो वर्षों में ये प्रायः अस्वस्थ रहते थे। फिर भी आत्मबल और उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा। कहते थे, "मेरा शरीर रहे या जाय, श्रीकृष्ण-भक्ति और गीता का प्रचार होता रहे।" इन्होंने फाल्गुन कृष्ण एकादशी सं० २०३८ (१ अप्रैल १९८१ ई०) को अजमेर में दिव्यधाम के लिए प्रस्थान किया।

शीतलदासजी ने लगभग ३००० फुटकर पद और भजन रचे थे। कविता में ये 'शीतल' छाप रखते थे। इनके सिन्धी तथा हिन्दी के पदों का एक संग्रह 'शीतल-भजन-माला' नाम से चार भागों में प्रकाशित हुआ है। आपका एक सिन्धी छंद नमूने के रूप में नीचे दिया जाता है—

(भैरवी)

श्याम तुंहिंजे सोज़ में मां वेन्दसि शाल मरी।
सारे सारे गोड़हा गारे वेन्दस नेठ गरी॥
दम दम तुंहिंजी मूरत मुहिणी
अखियुनि अगियां थी फिरे।
घणो झुलायां कोन थी भुलिजे
अहियां चारई पहिर चरी॥
मण्डु हणी बिएं मुहिंजे मन खे
पोइ छो पासे भज़ी।
कीन कमीणीअ ऐब विचारिज
वारिस अचु त वरो॥
तोरीअ हीलो कोन वसीलो
मूं त निमाणीअ ज़ी।
हेकर आउ हलो तूं हुब मां,
प्यारिज प्रेम ज़री॥
जीअरे जुदा रहण खां जग में,
जेकर कोन हुआं मां।
यां त मिलां या मरी वञां,
इहा 'शीतल' गाल्हि खरी॥

'हे श्यामसुन्दर! मैं तुम्हारे वियोग की पीड़ा से पीड़ित होकर अत्यंत कृश हो चली और रो-रोकर आखिर मर ही जाऊँगी। तुम्हारी मोहनी सूरत क्षण-क्षण में मेरे नेत्रों के सामने आ जाती है। उस छबि को भुलाने का प्रयास करती हूँ किन्तु वह भुलायी नहीं जाती, फलतः मैं सारा समय बावरी बनी रहती हूँ। तुमने मेरे मन को ऐसा जादू लगा दिया है फिर दूर क्यों रहते हो? मुझ कमीनी के दोषों का विचार मत करो, शीघ्र वापस लौटो। तुम्हारे बिना इस अधीन का कोई अवलम्ब नहीं है। अतः एक बार अपने प्रेमामृत का पान करा दो। वियोग में जीने की अपेक्षा तो मैं न रहती तो अच्छा। 'शीतल' की याचना यही है कि या तो मेरा तुमसे मिलन हो या मेरी मृत्यु हो जाय।'

घ० तो०

श्यामदास

श्यामदासजी भिटशाह के प्रसिद्ध भक्त टउँरराम शर्मा के आत्मज थे। इनके चरित्र-विकास पर पिताजी की वैराग्यपूर्ण तथा भक्तिमय जीवन-पद्धति का गहरा प्रभाव पड़ा था। श्रीकृष्ण-भक्ति इन्हें कुल-परम्परा से ही प्राप्त थी, जो 'कृष्णायन'-प्रणेता स्वामी बसंत-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामजी का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद इनकी रस-साधना का प्रसाद पाकर परिपुष्ट हुई।

श्यामदासजी के व्यक्तित्व में बाल्यावस्था से ही सरलता, शील, समता आदि सद्‌गुणों का समावेश था। ये हैदराबाद (सिन्ध) के प्रसिद्ध रसिक सन्त स्वामी बसंतरामजी के दर्शन-सत्संग से इतने प्रभावित हुए कि तत्काल उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली और भजन में प्रवृत्त हो गये। भगवन्नाम में इनकी अगाध निष्ठा थी। इन्होंने 'राधेश्याम'-नाम को अपना कण्ठहार बना लिया। ये सारा समय साधना और स्वाध्याय में लगाते थे।

अपने सद्‌गुरु स्वामी बसन्तरामजी में इनकी बड़ी आस्था थी। १९१७ ई० में गुरुदेव की गोलोक-यात्रा करने पर ये बहुत मर्माहित हुए। इनके मन में कुछ पारमार्थिक शंकाएँ रह गयी थीं जिनके कारण ये कभी-कभी बहुत खिन्न रहते थे। थोड़े ही समय में गोलोकवासी गुरुदेव ने इन्हें स्वप्न में दर्शन देकर इनकी उन सब शंकाओं का पूर्णतः निवारण कर दिया जिससे ये अति संतुष्ट और प्रसन्न हुए और भजन का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया।

आप युगलस्वरूप की उपासना करते थे। सदा मानसिक अष्टयामसेवा में रत रहते थे। आपकी उपासना 'सखीभाव' की थी। कविता में भी इन्होंने 'श्यामासखी' और 'श्यामादासी' छाप रखी है। ये श्री युगल साकार के प्रेम में विह्वल हो जाते थे। श्यामाश्याम की रूप-माधुरी का चिन्तन करते हुए घण्टों निश्चल बैठे रहते थे। श्यामदासजी दैन्य के मूर्त्तरूप थे। अपने भजन-साधन को ये सदा गुप्त रखते थे।

आप प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन करते थे और भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता पर विशेष बल देते थे। इनका यह सुनिश्चित मत था कि जीव का परम कल्याण जैसा प्रेमाभक्ति द्वारा, हरियश-गान करने से और भगवान् के लिये व्याकुल होकर रोने से होता है, वैसा ज्ञान, ध्यान, योग तथा अन्य किसी भी मार्ग से संभव नहीं है। इन्होंने अपने एक सिन्धी छंद में निजी अनुभव बताते हुए कहा है, 'रोई रोई पहिंजो रांझनु रिझायुमि' (मैंने रो-रोकर अपने प्रीतम को रिझा लिया है)। इनका जीवन प्रेमाभक्ति का आदर्श बन गया था।

भक्त श्यामदास प्रियाप्रियतम के रंग में पूर्णतया रँग गये थे। इनके आठों पहर भजन-कीर्तन में बीतते थे। कभी-कभी प्रेमी सत्संगियों के आग्रह पर जब किशोरीजी की अनन्त महिमा का बखान करते थे तो प्रेम से अभिभूत होकर भाव-समाधि में चले जाते थे। इस प्रकार इन्होंने आजीवन श्यामा-श्याम के नाम-रूप-लीला-माधुर्य का रसास्वादन किया।

वि० सं० १९७९ (१९२२ ई०) के कार्तिक मास में ये धराधाम को त्यागकर गोलोक सिधार गये। इनकी अनन्त गुणावली में विनम्रता, समता, उत्साह-शीलता, समर्पण, भावुकता, नाम-निष्ठा, गुरुपद-प्रीति, परम सहृदयता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने सिन्धी भाषा में कई पद रचे हैं और कुछ हिन्दी में भी। इन सभी में इन्होंने 'श्यामादासी' अथवा 'श्यामासखी' छाप का प्रयोग किया है। आपका एक हिन्दी और एक सिन्धी पद नीचे दिया जाता है—

(हिन्दी पद)

जय बोलो राधा प्यारी की,
वृषभानू कीर्ति दुलारी की।
जो पल न बिसारे राधा,
ताकी कटि जावे सब बाधा,
त्रयताप मिटावन हारी को॥
राधा नाम रटे नित मन में,
ताको कृष्ण मिले इक छन में,
श्रीकृष्ण मिलावन हारी की।
शिव गौरी के प्रति खोल्यो,
राधा बिन कृष्ण न बोलो,
यह महिमा अपरम्पारी की॥
जो तीनहु लोक रमावै
ब्रह्मादिक देव नचावै,
ताहिं नचावनहारी की।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेरे शीश चन्द्रिका सोहै,
नकबेसर अतिशय मोहै,
बसन बसंतीधारी की ॥
यह बिनय आप सुन लीजे,
मोहि भक्ति आपनो दीजे,
मोहि तृष्णा भक्ति तुमारी की ।
मैं शरण स्वामिनी तेरी,
तेरे सखियनि की चेरी,
सुधि लीजै दासि भिखारी की ॥
गुरु बसन्त कृपा पाई,
श्री राधा-रहस्य लखाई,
'दासी श्यामा' के हितकारी की ॥

(सिन्धी पद)

सद्गुरु न जे महिरसां,
आजु आयोरी मोहन ।
आयो री मोहन आहियां,
बेहद मां प्रसन्न ॥
सूं ह वाणीअ सां चई सधां ना,
रूह में रहां मगन ।
नाज नेणनि जे कयाई घायल,
रहीन सुधि घर बन ॥
रग-रग रमी रही सा सूरत,
भासे ब्योना मन ।
'श्यामा सखी' श्री बसंत गुरुअ तां,
घोरियां तन-मन-धन ॥

'श्री सद्गुरु की कृपा से आज श्यामसुन्दर मेरे यहाँ पधारे। इसीलिये मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। उनके सौन्दर्य का वर्णन करने का वाणी में सामर्थ्य नहीं है। अतः मैं अपने अन्तर्मन में ही उस छबि में मग्न हूँ। उनकी तिरछी चितवन ने मुझे घायल कर दिया है और घर या वन का कुछ भी भान मुझे नहीं रहा है। मेरे-रोम में वह रूपमाधुरी समा गयी है और अब मेरे मन को और कुछ भी नहीं सूझता है। 'श्यामासखी' का कहना है कि ऐसी असीम कृपा करनेवाले अपने गुरुदेव बसन्तरामजी पर मैं अपना तन-मन-धन न्योछावर कर दूँगा।'

घ० तो०

श्यामसनेही श्यामाशरण

श्री श्यामसनेही श्यामाशरणजी का जन्म संवत् १९३८ की आश्विन कृष्ण सप्तमी को सिन्ध प्रदेश के प्रख्यात नगर कराची में हुआ था। पिता का नाम श्री केशवदास एवं माता का नाम कुँवरिबाई था। इनका मूल नाम कानजीदास था। इनके भक्त-हृदय पिता की यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनका पुत्र प्रभु का परम भक्त बने। बचपन से ही आपकी वृत्ति व्यवहार में नहीं लगती थी, अतः पिता ने इन्हें प्रसिद्ध महापुरुष श्री जयकृष्णदासजी की छत्र-छाया में रख दिया। आपकी युवावस्था हुई तब तक आपका विद्याध्ययन समाप्त हो चुका था। आप हिन्दी, संस्कृत एवं गुजराती के अच्छे ज्ञाता थे।

भक्तराज श्री जयकृष्णदासजी के देहावसान के पश्चात् आप हैदराबाद (सिन्ध) के प्रसिद्ध रसिक महात्मा स्वामी श्री बसंतरामजी के शरणागत हो गये। मन्त्र-दीक्षा लेने के पश्चात् उनके सान्निध्य में रहकर भगवद्-भजन करने लगे। कुछ वर्षों के बाद गुरु-आज्ञा प्राप्त कर तीर्थाटन को चले गये। यात्रा के दौरान इन्हें भगवद्कृपा तथा दैवी सहायता के अनेक विलक्षण अनुभव हुए।

गुरुचरणों में आपकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। उसे आपने जीवनपर्यन्त निभाया। सिन्ध प्रदेश में इन्होंने श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन का व्यापक प्रचार किया। आपके प्रयासों के फलस्वरूप हैदराबाद, कराची, सक्खर, शिकारपुर, लरकाना, टंडाआदम, नसरपुर आदि नगरों में 'राधाकृष्ण-गोपालकृष्ण' की नाम-धुन का मधुर गुंजार होने लगा था। आपने पंजाब के गुजरानवाला आदि नगरों में जाकर नाम-कीर्तन का प्रचार किया और भक्ति-रस की सरिता बहाई। आप करताल लेकर नाम-धुनि करते-करते विभोर हो जाते थे। नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगती थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस समय मुसलमान भी आपके हरि-नाम-संकीर्तन में सम्मिलित हो जाते थे।

स्वामी श्यामसनेहीजी सखीभाव के उपासक थे। ये बड़े रसिक सन्त थे। संवत् १९८४ से आप वर्ष में ८ मास वृन्दावन-वास करने लगे। शेष चार मास हैदराबाद (सिन्ध) में बिताते थे। हैदराबाद में रहते समय आपका नियम था कि प्रातःकाल 'श्री कृष्णायन' की कथा करते थे एवं सायंकाल रामायण-कथा तथा सदुपदेश करते थे। ये मांसाहार का तीव्र निषेध करते थे। आपके उपदेश और वक्तृत्व से प्रभावित होकर अनेक लोगों ने आजीवन शाकाहारी रहने का व्रत लिया। ये प्रत्येक एकादशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या को मण्डली के साथ नगर-कीर्तन करते थे। एकादशी को रात्रिभर जागरण कर भजन-कीर्तन करते थे। प्रतिवर्ष आचार्य-जयन्ती-महोत्सव मनाते थे। ग्यारह दिन का वह उत्सव हैदराबाद नगर को ब्रज-भूमि बना देता था और समूचा नगर 'राधेश्याम' नामघोष से गूंज उठता था।

भारत-विभाजन के बाद आप अपने ठाकुरजी को लेकर श्रीधाम वृन्दावन आये। यहाँ अहीरपाड़ा में 'वसंत-कुञ्ज' स्थान का निर्माण कराकर श्री ठाकुरजी को पधराया और वहीं रहने लगे। भगवान् के नाम, रूप, लीला तथा धाम का रसास्वादन करते-कराते हुए सारा जीवन परमार्थ में लगाकर और हजारों नर-नारियों को भक्ति-रस का अनमोल लाभ देकर, संवत् २०१० की भाद्रपद कृष्णा ७ रविवार की रात्रि को, ७२ वर्ष की अवस्था में आपने वृन्दावन में ही भौतिक देह का त्यागकर निकुञ्जवास प्राप्त किया।

आपने हिन्दी तथा सिन्धी भाषा में अनेक भक्ति-रसपूर्ण पद रचे हैं जिनमें 'श्यामसनेही' छाप का प्रयोग किया है। यहाँ आपके दो हिन्दी और एक सिन्धी पद नमूने के रूप में दिये जाते हैं—

(हिन्दी पद)

(१)

कर मन श्याम सनेहिन प्रीत।
नित्य अडोल अभय पद पावै,
नासै भव की भीत।
श्यामा-श्याम रहस तू पावै,
अरु रसिकन की रीत॥
श्री निकुंज-केलि-माधुरि-रस,
स्रवै सदा तुव चीत।
गुरु बसन्त जो 'श्यामसनेही',
कर तिन वचन प्रतीत॥

(२)

(राग प्रभाती)

दीनानाथ दयाल युगल वर
ऐसी भक्ति दीजिए।
सुर दुर्लभ ब्रजबास होय नित
श्री कालिन्दी तीर ये।
बिचरहुँ राधाकृष्ण रटत मैं
प्रति पल ऐसो कीजिए॥
जगत पदारथ भान भुलैं प्रभु
ध्यान रहे दृढ़ आपको।
अन्य संकल्प न मन में ऊठे
मानि बिनय यह लीजिए॥
यमुना निकट सु बंसीबट-तट
गल बाँही दे गावते।
चहुँ दिशि ठाढ़े गोपि-गऊगण
ध्यानामृत अस पोजिए॥
जिह बंसीधुनि सुनि मोहे
अज शिव नारद आदिले।
'श्यामसनेही' सुनाइए वह धुनि
विरह-फाँस मम छीजिए॥

(सिन्धी पद)

मिले मुंखे राधा जू प्यारो।
अखियूं जंहिजू कमलनि जहिरियूं
ककरनि ज्यां कारो॥
मोर मुकुट मस्तक ते धारियलु
मुखु मुरलीअ वारो।
झलकनि कुंडल बिन्ही कननि में
बिजु जां चमकारो॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाजूबंद बांहुनि में सूंहनि
मोतिनि माल वारो।
पीत पाटम्बर पहिरे सदाइँ
सब जो मन हारो॥
चरन-कमल में दमिदमि थ्ये थो
नूपुर टनकारो।
शोभा कहिड़ी कथ्यां उन्हींअजी
सबखे कयो लजारो॥
यमुना-तट ऍं बन्सीबट वटि
खेले खेल खेलारो।
दुध मटिक्यूं फोड़े गोप्युनिजूं
चोरीअ सां लारो॥
कंस-निकंदन यशोदा-नन्दन
भगतनि रखवारो।
'श्यामसनेही' जींह बिना
नितु वरते बेचारो॥

'श्रीराधाजू के प्रेमास्पद मुझे कब मिलेंगे? जिनका मेघ जैसा श्याम वर्ण है और जिनके नयन कमलों के सदृश हैं। उनके मस्तक पर मोर-मुकुट और होठों पर मुरली सुशोभित है। दोनों कानों के कुंडल विद्युत् के समान चमक रहे हैं। मनोहर पीला पीताम्बर पहने हुए हैं, दोनों भुजाओं में बाजूबंद और गले में मोतियों का हार सुशोभित है। उनके नूपुरों की झंकार सतत सुनाई पड़ती है। उनका सबको लज्जित करनेवाला अलौकिक सौन्दर्य अकथनीय है। वे यमुना-तट पर बंसीबट के निकट क्रीड़ा करते हैं, गोपियों की दही की मटकियाँ फोड़ डालते हैं और उनकी चोरी की ओर भी कुछ प्रवृत्ति है। भक्तों के रक्षक वे यशोदानन्दन कंस का नाश करनेवाले हैं। उनके बिना 'श्यामसनेही' बेचारा-सा होकर बिचरता है।'

घ० तो०

सूरतसिंह

भक्तवर सूरतसिंह का जन्म हैदराबाद (सिन्ध) नगर में एक प्रतिष्ठित आमिल (क्षत्रिय) परिवार में सन् १८३२ ई० में हुआ था। पिता का नाम हिम्मत-सिंह था। छोटी उम्र से ही इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। इन्हें सिन्धी, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू और फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था।

इनकी साधु-संतों की संगति में बड़ी रुचि थी। ये संत-महात्माओं तथा गरीबों की सेवा भक्तिभाव से करते थे। मन के बहुत उदार थे। कभी-कभी तो घर की वस्तुएँ बेचकर भी संतों का स्वागत-सत्कार करते थे और उन्हें बड़े प्रेम से भोजन कराते थे। संत-संसर्ग से इनके जीवन में आमूल परिवर्तन आ गया। इन्होंने संत श्री किशनदास मसन्द से दीक्षा ली थी। माझन्द दरबार के बाबा गोविंददासजी का भी इन्होंने खूब सत्संग किया। इन पर भक्ति का रंग चढ़ गया और भजन-ध्यान में प्रवृत्त हो गये।

ये भगवान् कृष्ण के उपासक थे। अन्य देवों में भी इनकी निष्ठा थी और 'गुरुबानी' में भी बड़ी आस्था थी। महादेव, गणेश, भगवान् श्रीराम, गुरु नानकदेव आदि के सम्बन्ध में इनके अनेक पद मिलते हैं, किन्तु इनके हृदय को श्यामसुन्दर ने अपनी ओर पूर्णतया आकृष्ट कर लिया था। इन्होंने सिन्धी, हिन्दी और फारसी में भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम, शंकरजी आदि की स्तुति में पद, कवित्त व गजलों की रचना की है। भक्त-कवि होने के साथ ही ये संगीतशास्त्र के भी पंडित थे और स्वयं भी बहुत अच्छे गायक थे। जब उमंग में आकर चौतारे (तम्बूरा) पर स्वरचित पदों का गान करते थे तो श्रोतागण भाव-विभोर होकर अश्रु बहाने लगते थे।

भक्त सूरतसिंहजी गृहस्थाश्रमी थे फिर भी गृहस्थी की झंझटों से विरत ही रहे। ये अपना सारा समय भजन-कीर्तन और सत्संग में लगाते थे। इनके एक भक्त भाई रामदास सराफ ने अपने बगीचे में इनके लिए एक कुटिया बनवा दी थी जहाँ ये नित्य सत्संग और कथा-कीर्तन किया करते थे। इनकी वेश-भूषा एवं रहन-सहन अत्यंत सादी और वृत्ति निःस्पृह थी। योग-क्षेम सब ठाकुरजी पर छोड़ रखा था। इनका जीवन भक्तिप्लावित हो उठा। इनकी निष्काम भक्ति-भावना एवं आदर्श त्याग के प्रभाव से अनेक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग भगवद्-परायण हुए और सैकड़ों ने कीर्तन-भक्ति की सद्-प्रेरणा प्राप्त की।

ये अत्यन्त सरल-हृदय, विनम्र और अमानी थे। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम में छके हुए थे। मार्ग में जाते हुए यदि किसीने कह दिया कि "भगतजी, एक-दो भजन सुनाइये" तो तुरन्त वहीं रुक जाते और अपने चौतारे पर हाथ चलाकर मधुर स्वर में कृष्ण-पद गाने लग जाते। ये घण्टों तक भावमग्न होकर श्यामसुन्दर के रूप-लीलागुण-प्रभाव के ललित पद गाते रहते। अनेक लोग आपको चारों ओर से घेरे हुए सड़क पर ही खड़े होकर इनके भक्ति-रस-पूर्ण भजन-कीर्तन सुनते और अश्रु बहाने लगते। इनके रचे हुए कृष्ण-भक्ति-गीत पर्याप्त लोकप्रिय हुए।

सूरतसिंहजी प्रेम-मार्गी भक्त थे। ये वृजवल्लभ के 'आशिक' थे। प्रेमाभक्ति के मूर्तरूप थे। अपने इष्ट का लीला गान करते तो भाव-विह्वल हो जाते और नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा प्रवाहित हो जाती। इन्होंने ४५ वर्ष की अवस्था में सन् १८७७ में गोलोक-यात्रा की।

इनका पद-संग्रह विविध राग-रागिनियों का सुंदर समुच्चय है। कविता में ये 'सूरत' और 'सूरत-बहार' छाप का प्रयोग करते थे। इनकी सिन्धी व हिन्दी वाणी तथा फारसी में रचित ग़ज़ल, मसनवी आदि प्रथम बार १८८६ ई० में उर्दू और गुरुमुखी लिपि में लाहौर से प्रकाशित हुए थे। तदनन्तर इनकी वाणी सन् १९३५ ई० में अरबी-सिन्धी लिपि में हैदराबाद (सिन्ध) से 'दीवान-सूरत-बहार' नाम से प्रकाशित हुई। इन्होंने राधा-कृष्ण-भक्ति-परक सैकड़ों पद सिन्धी तथा हिन्दी भाषा में रचे हैं जिनमें लीला के और होली के गीत अत्यन्त सरस हैं। इनके पदों में कहीं-कहीं भक्त-शिरोमणि सूरदास-जी के पदों की छटा मिलती है। इनकी रचना के कुछ नमूने निम्नांकित हैं—

(हिन्दी पद)

(१)

(भैरवी)

साँवरिया तोसों लागी प्रीत।
अजब भाँति को प्रीति बनी है,
नई-नई दिखावत रीत।
सब हमसें कछु तुमसें नाहीं,
हम हारे तुम जीत॥
और को मीत होवे नहीं होवे,
तुम हमरो है मीत।
'सुरत' श्याम बहार करो अब,
गाऊँ तुमरे गीत॥

(२)

(भैरवी)

माखन चोर माई तेरो किशोर।
नींद जगावे आके खिझावे,
छिप आवे उठि भोर।
माखन खावै दही लुटावै,
देवै मटकियाँ फोर॥
जब पकडूँ तब हाथ न आवे,
भाग जाय फिर दोर।
आप खावै औरन को खवावैं,
उलटा मचावैं शोर॥
किसकी कानि न राख कन्हैया,
अपना जनावै जोर।
'सुरत' श्याम बिहारी की बतियाँ,
समझ गई सब तोर॥

(३)

(कामोद)

अब गऊ चार आए मदन गोपाल।
पीत-पीताम्बर लाल कमलिया,
टेढ़ी पगरी मधुरी चाल॥
मन्द-मन्द मुसकावत आवत,
पग-पग नूपुर करत निहाल।
लटपटि चाल, सोहै कर लकड़ी,
गऊ रज भरे नवल विशाल॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बछरे मेलि सब गौवां मिलावे,
देत घास गौअनि प्रतिपाल।
ग्वाल-बाल घर अपने आए,
ग्वालिनि पूछे कृष्ण के हाल॥
चलरी चल अब नन्द-महलको,
देखें नन्दनन्दन बृजलाल।
चरन परस लें बिहारी जू के,
'सुरत' श्याम है सदा दयाल॥

(४)
(प्रभाती)

आली कृष्ण कन्हैया कहाँ,
जा जा बुलाओ जहाँ हो तहाँ, री आली।
नन्दनन्दन बिनु नींद न आवे,
बिनु देखे न रहाँ, री आली॥
गली-गली गोकुल की ढूंढूं,
बृज बन ढूँढ़ लहाँ, री आली।
हरि बिनु निसदिन व्याकुल भई हूँ,
इतना शूल न सहाँ, री आली॥
अलक-पलक मोहि चैन न आवे,
किससे हाल कहाँ, री आली।
'सुरत' श्याम बिहारी दरस की,
मन में लोच महां, री आली॥

घ० तो०

हरनामदास (स्वामी)

स्वामी हरनामदास का जन्म पौष कृष्ण दशमी सं० १९३७ (१८८१ ई०) को सिन्ध के सक्खर नगर में श्री आवतरामजी के घर में हुआ था। माता का नाम कृष्णाबाई था। इनका मूल नाम नारायण था।

सक्खर के पास सिन्ध नदी की मध्य-धारा में स्थित द्वीप पर सुशोभित 'साधुबेला-पीठ' बहुत ही प्रसिद्ध रमणीय आश्रम है। उस समय वहाँ स्वामी जयरामदासजी महन्त थे। श्री अवतरामजी ने स्वामी जयरामदासजी को दिये हुए वचन के अनुसार ७ वर्ष के बालक नारायण को लाकर स्वामीजी के चरणों में अर्पित कर दिया। स्वामीजी ने उदासीन सम्प्रदाय में दीक्षित करके उसका नाम 'हरनामदास' रखा और उसको समुचित रीति से विद्याध्ययन कराया। आगे चलकर वह हिन्दी तथा संस्कृत के उद्भट विद्वान् के रूप में विख्यात हुआ।

वि० सं० १९५० में स्वामी जयरामदासजी के दिवंगत होने पर साधुबेला-पीठ के आचार्य-पद का गुरुतर भार इन्हीं १३ वर्षीय स्वामी हरनामदास के कन्धों पर पड़ा। उसे इन्होंने भलीभाँति निभाया। आध्यात्मिक साधना एवं स्वाध्याय करते हुए ये अपने दायित्व और कर्त्तव्य की ओर सदैव सावधान रहे। साधुबेला आश्रम को इन्होंने खूब विकसित किया। नये भव्य मन्दिर बनवाकर देवी-देवताओं को प्रतिष्ठित किया, साधु-सन्त-सेवा की सुन्दर व्यवस्था की, गीता-भवन, वेद-भवन, संत-निवास, संस्कृत-पाठशाला, पुस्तकालय, औषधालय आदि का भी निर्माण कराया।

स्वामी हरनामदासजी ने अनेक बार तीर्थाटन कर भारतवर्ष के महापुरुषों, सन्त-महात्माओं एवं धर्म-प्राण विद्वानों से निकट का सम्पर्क स्थापित किया। ये हरिद्वार तथा प्रयाग के कुम्भ के अवसर पर वहाँ अन्नक्षेत्र खोलते थे और 'साधुबेला-शिविर' लगाते थे, जहाँ भजन, कीर्तन, प्रवचन, धर्म-प्रचार तथा सन्त-सेवा की उत्कृष्ट व्यवस्था रहती थीं। ये सनातन धर्म एवं हिन्दू-संस्कृति के कट्टर पुरस्कर्ता तथा धार्मिक आदर्शों के महान् पुजारी थे। आपने समूचे सिन्ध प्रदेश में अपूर्व धार्मिक चेतना उत्पन्न की, हिन्दी और संस्कृत-शिक्षा का व्यापक प्रचार किया, हिन्दी विद्यापीठ, गौशाला, साधु-मण्डल, सनातन धर्म युवक सभा आदि लोकोपकारी संस्थाओं की स्थापना की एवं सिन्ध के विभिन्न नगरों में धर्म-प्रचारक सन्त-महात्माओं को भेजकर अपूर्व धार्मिक-आध्यात्मिक जाग्रति उत्पन्न की।

कर्मनिष्ठ और कर्म-संलग्न रहने पर भी ये कर्मा-सक्ति से विरत विलक्षण महात्मा थे। आपके पवित्र आध्यात्मिक व्यक्तित्व तथा बहुमुखी सांस्कृतिक व सामाजिक सेवा-कार्य ने तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं को भी आकृष्ट किया था। लोकमान्य तिलक,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महात्मा गांधी, महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, पं० जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, विनायक दामोदर सावरकर, पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे वरिष्ठ नेताओं ने यथासमय साधुबेला आश्रम में पधारकर स्वामीजी का दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त किया था।

आपने सं० १९९९ में विश्वकल्याण के हेतु साधुबेला आश्रम में महान् यज्ञ का आयोजन किया था। इन्होंने भदैनी (काशी) में भी साधुबेला आश्रम की एक शाखा स्थापित करके वहाँ संस्कृत-विद्याध्ययन तथा छात्रों के निवास-भोजन आदि की समुचित व्यवस्था की थी। आपके हृदय में लोकहित की भावना इतनी प्रबल थी कि देश में कहीं भी कोई आकस्मिक विपत्ति, दुर्भिक्ष या भूकम्प का समाचार मिलता तो ये तत्काल आश्रम की ओर से वहाँ यथेष्ट सहायता पहुँचाते थे। ये अतिशय परदुःखकातर और सेवा-निष्ठ संत थे।

स्वामी हरनामदासजी मूलतः एक परम भक्त और आध्यात्मिक विभूति थे। ये भजन-साधन को ही सर्वाधिक महत्त्व देते थे। ये साक्षीगोपाल के उपासक थे। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नानादि के पश्चात् आप अपने आराध्य के भजन-ध्यान में बैठ जाते थे। आपके जीवन में भक्ति का उज्ज्वल आदर्श आलोकित होता था। भक्ति-मार्ग को ये परम श्रेयस्कर और परमानन्द-प्रदाता मानते थे। आपकी सत्संग-गोष्ठियों से अनेक साधकों का पथ-प्रदर्शन होता था। वास्तव में आपकी प्रेरणा से सैकड़ों नर-नारियों का लोक-परलोक सुधरा।

स्वामीजी स्वभाव के अत्यंत मृदु और विनम्र थे। ऐसे महान् पीठ के आचार्य होते हुए भी ये पंगत के समय अभ्यागत साधु तथा गृहस्थ यात्रियों के साथ पंक्ति में बैठकर प्रसाद पाते थे। आप साधु-सन्तों और विद्वानों का बहुत आदर करते थे। देश-विभाजन के पश्चात् आप सिन्ध छोड़कर काशी पधारे। यहाँ भी ये साधना-रत और लोकोपकारिणी क्रियाओं में संलग्न रहे। इस प्रकार जीवनभर भक्ति-मार्ग एवं धर्म-सेवा का स्वयं अनुसरण कर और सर्वसाधारण में भी उसका प्रचार कर इन्होंने पौष कृष्ण अष्टमी सं० २००६ (१९४९ ई०) को काशी में ही देह त्यागकर गोलोक-वास प्राप्त किया।

इनकी भक्ति-भावना के स्वरूपव्यंजक तीन हिन्दी पद नीचे दिये जाते हैं—

(१)

मैं हूँ कृष्ण उपासी रे।
निर्गुन सगुन इनको मानूँ,
जल-तरंग सहबासी रे।
श्याम बरन सिर मोर मुकुट है,
मुख मुरली सुखरासी रे॥
कानन कुण्डल गल में माला,
वृन्दाबन के बासी रे।
कहै 'हरनाम' यही है सर्वस,
जगत करे चाहे हाँसी रे॥

(२)

कृष्ण-कृपा बड़भागी पावे।
कृष्ण-कृपा जब होवे तब ही
जग अद्वैत लखावे।
पाप, ताप, सन्ताप नास हो
कृष्ण-नाम जब गावे॥
सुख-दुख, मान-अपमान सहन कर
हिय से द्वन्द्व भगावे।
कहै 'हरनामदास' सुख से रहिकै
हरि ही माँहि समावे॥

(३)

अब तो कृष्ण-नाम रस आवै।
गुरु जयरामदास की कृपा ते यह रस हिये समावै।
इस रस की महिमा है भारी, वेद शास्त्र सब गावै॥
सप्तसिन्धु के बीच बैठकर, पीवे और पिलावै।
कहै 'हरनामदास' रस पीवो, जनम-मरन कट जावै॥

घ० तो०

●

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

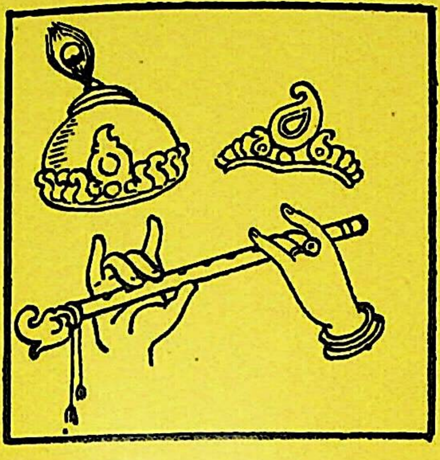

नामानुक्रमणिका

ग्रन्थानुक्रमणिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नामानुक्रमणिका

अंगद ५९३
अंजनगाँव २२२,२२४,२२५
अंडमान-निकोबार ७०
अंपलप्पुषा ३०४,३१५,३१८,३४६
अंबरीष १९०
अकबर ३७६,५६२
अक्कलकोट २८३
अक्षोभ्यतीर्थ ५१३
अखण्डानन्द ६२६,६३९
अखिबा पाला २
अखिलानन्द ५९३
अगस्त्य ४२९
अङोदेवी १००
अङोसना ६९,१०७
अङोहलसिंह शोराम १०२
अच्चादीक्षित ४८०
अच्युत नायक ४४४
अच्युत पिषारोटि ४७६
अजन ६२५,६४०
अजमेर ८७
अजितशाह ४,७६,७७
अटाट् ३२०
अणयाचार्य ५६९
अतिरात्रयज्वा ४८०
अतोमसिंह १०२
अतोम बापू शर्मा ६५,६६
अत्यागुरु शिदवा १,२
अत्रीनाथ २२४
अद्वैताचार्य ५४,५१६,५२२
अद्वैतानन्द १७०
अनन्तजी : रामदास-शिष्य १४८
अनन्त दामोदर आठवले २२३
अनन्तदेव ४२९,५९३
अनन्तफन्दी १३५,१६९
अनन्तभट्ट ४३२,५२५
अनन्त भागवतर ३२२
अनन्तशाह ५,१९,२९,४१,४६,७७,८५
अनन्ताचार्य ५९३
अनन्यदास स्वामी ५९४
अनादिमिश्र ४३२
अनिरुद्ध ५४९
अनुपम ५४९
अनूपराय ३७६
अपराजित ५९४
अप्पय्यदीक्षित ४८०,४८१
अप्पलाचार्य ५६८
अब्दाली (अहमदशाह)२१७
अमर ५८३
अमरकोट ६४३
अमरदास ६३१
अमरावती १९२,२२४
अमियकर ३८८
अमूबीदेवी १०२,१११
अमृतराज पण्ड्या ५८१
अमृतराय १४७,१६४,१६६,१६९
अमृतसर १८९,२३२,६३६
अमेरिका ६०,६१
अमोघवर्ष १२८
अमोलकराम शास्त्री ४३३,५८१
अमोलनेर २२३
अम्बरखान २७५
अम्बलप्पुषा ४७६
अम्बाजीपन्त २७५
अम्बाला २३२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अम्बिका १२,७८,८६
अम्बिका सरस्वती १७०
अयाचित २२८
अयोध्या २८९,४५५
अरणभेंडो २९२
अरणी १७७
अरिबम लैक्राई ४०
अरुण ऋषि ४७७
अर्वाचीन बागलण (बागुल प्रदेश) १९०
अलवर २३२
अलाउद्दीन खिलजी ११८,५८४
अलीपुर ७०
अलीवर्दी खाँ ३९९
अलोका १९२
अविलम्बित-सरस्वती ५९४
अश्वति तिरुनाल ३१५
असम ५६,८३
असहमती देवी ४०६
असेम चनु पदनीदेवी ९७
अहमदनगर ११८,२२३,२८९
अहमदाबाद ५२८
अहिल्याबाई होलकर १६९
आंबाजोगाई १८७,२८४
आऊजी २५४
आजरेकर बाबासाहेब १७७
आजरे ग्राम १७७
आण्डाल कोदै १२८,१२९
आदिनाथ १४९,२२४,२४४,२५३,३९८
आदिनाथ शंकर २८४
आदिसूर ४९७
आनन्द ५९४
आनन्दतनय १७७
आनन्ददेवी ४५२
आनन्द पण्डित १७७
आनन्दराव १७७
आनन्दवर्धन ४२२,४९८,५१९
आन्द्रो २१
आन्ध्रप्रदेश ३०३,४८७
आपेगांव २१०
आम्पाड़ी कुंजुकृष्ण पुतुवाल ३१७
आर० एम० नाथ ७६
आर० के० झलजीत सिंह २३,६८
आर० के० सनाहल सिंह ३
आरती ८४
आरन्मुला ३५२
आलन्दी १९३,२०१,२०९,२११,२१२,२९४
आलप्पुषा ३५२
आलवणे २१७
आलवा ३३४
आलाराम सागर ६११
आलुवाय् ३५७
आवडीबाई २७८,२७९
आवतराम ६५७
आवा ७४
आशाराम मुल्तानी ५४४
इंदूर २८९
इत्सिग ५१९
इन्द्रदेवी ४०६
इन्द्रभट १५०
इन्द्रराज ४६८
इबोचौबा ९९
इबोतोन सिंह ११२
इम्फाल १,५,४०,४३,४८,६०,६८,७८,८८,९९,१०८
इम्फाल नदी ३
इरयिम्मन तंपी ३१५
इराई लैमा ३
इरिंजालकुडा ३१४,३३३
इला ४४९
इल्लमागारु ५५९
ईशानदेव ५५२
ईशाननागर ५२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईश्वरपुरी ३९३,४३४,५१५,५२३
उज्जैन २१७,२६५,३०१
उत्कल ३६७
उत्तमश्लोक १८७
उदयपुर ४०
उदयवर्मन ३२४
उद्दण्डशास्त्री ३१७,३३४,३४४,३५८
उद्धव २८९
उद्धव चिद्घन १६४,१७९
उद्धवदास ४९३,६०९
उद्धाराम मल्कानी ६१२
उण्णायिवार्यर ३१४
उभयकर २७६
उमानन्द ओझा ३६९
उमापति १२८,३६५,३६६,३६७,४६३,५५२
उमापति उपाध्याय ३७०,४३६
उमापतिधर ४३८
उमाबाई १६९
उमेश मिश्र ३७०,३८३
उरूप ८४
उल्लूर ३०७,३१६
एकनाथ ११८,१२६,१३५,१३७,१४३,१४४,१४५,१४७,
१४८,१५५,१५६,१५७,१६०,१६३,१६४,१६५,
१७९,२०८,२१८,२५८,२७६
ए० के० मणि सिंह ५९
एच० रणवीर सिंह १०९
एन० खेलचन्द सिंह ३
एन० तोम्बी सिंह ९,३९
एफ० बावर्स २
एम० कीर्तिसिंह १,४
एम० नियोग ८,३१
एम० नीलमणि सिंह ६०
एम० सूरचन्द्र सिंह ६०
ए० मिनिकेतन सिंह २३
एल० इबुङ्गोहल सिंह २,३,६८
एल० कुलविधु सिंह ५९,६०,६२
एलम्बकर १९८
एल्हण १८४
एषुत्तच्छन ३१३,३३०,३४५
ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामी ५८
ओंगबी अङांगजा ओबीदेवी १०८
ओटूर उण्णिनंपूरी ३१६
ओट्टपालम ३५५
ओनामचा प्रजानन्द २३
औदुम्बराचार्य ४७८
औरंगाबाद १६९,१९९,२८९
कंबर ३३०
कँवरराम (भगत) ६०१
कंसनारायण ३७१,३८६,४०५
कचेश्वर १८४
कछार ४४,८८
कटत्तनाट्टु वासुनम्पी ३१७
कणाद-गौतम ४५५
कण्णशन् परंपु ३४९
कण्णश्श ३०५
कण्हेरखेड २६४
कनकाई २१८
कन्हाड १९१
कपूरथला ६३७
कबीर १६९,५९९,६००
कमळजा १९०
कमलनयन ५१०
कमलनयन रामानुजदास ५४४
कमलाकर ४६१
कमलादत्त ३६६
कमला रामानुजदासी ५४४
कमलावती ४०६
कमलावती बहूजी ४९४
कम्बर ६१९
कयम्बा १४,४०,४७,६७
कराची ६३३,६५३
कराडक्षेत्र १८७,२१७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करुणाकरन एषुत्तच्छन ३१२,३१३
करुणेशन् ३४१
करुण्ड २०५
कर्णपूर कविराज ४३८,४४०,४४२
कर्नाटक १२१,१७७,२७६,५४९
कर्ममेला १८५,३००
कलकत्ता ५९
कलाचन्द (स्वामी) ६०२
कलाघर ४७०
कलिगौरव १४६
कल्याण २१७
कल्याणस्वामी २८९
कविकेसरी ५९४
कविचन्द्र ५९४
कविडिण्डिम जीवदेवाचार्य ४४३
कवि निरंजन २३९,३८९
कविरत्न ५९४
कविराज घोयी ४६३
कविराज मिश्र ५९४
कविशेखर ५९४
कविशेखर बदरीनाथ झा ३८६
कविसार्वभौम ५९४
कवीन्द्रतीर्थ ५१३
कांकरवाड़ ५५९
काँकरोली ५६३
कांची २३९,४५४
कांचीपुरम ५,२९,८५,३५९
कांटी २५७
काकरोरी भट्टतिरि ३४४
काक्शेरी ३१७
काकावल्लभ ५८९
काक्कशेरी भट्टतिरि ३१७,३४४
काङला ७२
काजी काजन ६००
काञ्चनपल्ली ४३१
काञ्चीनाथ झा ३७८
काटोल १९६
काट्टमाडत्तुमना नम्पूतिरि ३३९
काठमांडू ४०४
काठियावाड़ १२२
कानजीदास ६५३
कानोले २००
कान्हरे ६२८
कान्हुपात्रा १८५
कान्होपाठक १३९,१८६
कान्होबा १८६
कापडी ३०१
कामरूप ३९६
कामलाइसा १९६
कामवन ५६३
कामाइसा २६२
कामाक्षी ५३४
कारंजे २८९
कारवार २७६
काळदासभट १५०
कालिकट ३४४,३५८,३६१
कालिदास ३०८
काशी १७,४४,२२५,३४६,३६२,५६१,६५८
काशीनाथ २४३,३७१,३८६
काशीनाथशास्त्री ५०७
काशीपुरी ४५५
काह्लोपात्रा ११६
किंटड्डूर ३१८
किन्दुबिल्व ४६२
कियाम्बा १,६७
किल्लिक्कुरिशिमंगलम् ३१७,३१८
किशनचन्द 'बेबस' ६०४
किशनदास मसन्द ६५५
किशोरदास ४८६,६०७,६३४
किशोर-विलास ५९४
किशोरी गोस्वामिनी ५३६
कीरतराय शहाणी ६३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीर्तिचन्द्र लाईरिकयेंबा २३
कीर्तिध्वज (कालराजा) ५
कीर्तिनारायण ४०५
कुंकुमठाण १८९
कुंचन नंपियार ३१५,३१७,३१८,३२८
कुंजदास ८९
कुँवरिबाई ६५३
कुटल्लूर नारायणन ३२०
कुण्डा ३८१
कुन्दीबाई (माता) ६०९
कुमार ५९४
कुमार गुणेश्वर सिंह ६३
कुमारडिण्डिम ५८६
कुमारताताचार्य ४४४
कुमारदेव ४६५,५४९
कुमारन आशान ३१६
कुमार नवानन्द २२
कुमारभवस्वामी ५३४
कुमारहट्ट ४३४
कुमुदिनी देवी ७७,९३
कुरुक्षेत्र ४३३,४७८
कुलचन्द्र ६९,८७,१०७,१०९
कुलशेखर आलवार ४४५
कुलीनमयुम ९३
कुसुमौल ३९९
कृष्णगोविन्द ५३७
कृष्णगोसावी २७६,२७७
कृष्णचन्द्र ९६
कृष्णचन्द्र गोस्वामी ५६५
कृष्णचन्द्र चौधरी ५०५
कृष्णचन्द्र राय ११
कृष्णचन्द्र रे ८६
कृष्णचैतन्य ५४२
कृष्णदत्त ४५२,५९४
कृष्णदयार्णव १४७,१६७,१८७
कृष्णदास २४,७६,१८७,१८८,१८९,२८७,५८७,५९४
कृष्णदास कविराज ४१६,४६५,५३१
कृष्णदास सामा १८९
कृष्णदेव ५५९
कृष्णदेवराय ३४४
कृष्णनगर ८६
कृष्णन नम्पूरी ३२०
कृष्णनाट्टम् सामूतिरीप्पाडु ३२१
कृष्णनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य ४५२
कृष्णनारायण प्रसाद मागध ३
कृष्णपति उपाध्याय ५३२
कृष्णप्पिषारडी ३२१
कृष्णभट १९०,५९४
कृष्णमाचार्य ४६१
कृष्णमिश्र ४४३,५९४
कृष्णमुनि १८७,१९०
कृष्ण याज्ञवल्की १९०,२८५
कृष्णराज द्वितीय ५४१
कृष्णलाल द्विज ४५३
कृष्णलाल शास्त्री 'कान्हजी' ४५३
कृष्ण-शरण ५९४
कृष्णस्वामी अय्यंगार ४४९
कृष्णाचार्य १,८२
कृष्णाजी गोसावी २७६
कृष्णानन्द २२४
कृष्णानन्द निमग्न १९०
कृष्णाबाई १७०,२९४,६५७
कृष्णा महाराज गारवडेकर १९१
कृष्णामाता २८९
कृष्णावती ४५७
केरल ३०३,३४४,५६२
केरलवर्मा ५७३
केलोसी १८९
के० वी० सिंह ८३
केशव ४९६,५४२,५९४
केशव काश्मीरि भट्टाचार्य ४५४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशव-क्षत्री ५९४
केशवदास ६३१,६४४,६५३
केशवदास चांगा २८५
केशवदास देशमुख १९२
केशवदीक्षित ५३४
केशव पाध्ये २७३
केशव भट्टाचार्य ५९४
केशव भारती ३६,५१६
केशवराज २८५
केशवराज सूरि १३९
केशवराव देशमुख १९१
केशवसेन ४५७
केशवस्वामी १६४
केशवस्वामी नागानगरकर १९२
केशवार्क ५९४
के० सी० केशवपिल्लै ३२०
केसो कलाधारी २३२
केसोवास २६२
केसौराइजी ४९३
कैना ५,८४
कैलिफोर्निया ६०
कोंकण २७३,२७६,२८९
कोंबा ५
कोइराङ १०७
कोइलख ४३६
कोचीन ३१४,३४६
कोन्चुगोविन्द वारियर ३२१
कोटा ५६३
कोटालीपाडा ५१०
कोट्टुङल्लूर कुञ्जिक्कुट्टन तंपुरान ३५७
कोट्टक्कल ३२२
कोट्टप्पडिक्कल गोदवर्मन निरुमुलपाड् ३१५
कोट्टयत्तु केरलवर्मा तंपुरान ३१४
कोट्टारक्करा तंपुरान ३१३
कोड्डुङल्लूर विद्वान् इलयतंपुरान ३२१
कोनजेंलेकाई ८१
कोनथौजम ओझा २५
कोलत्तुनाट्टु ३२४
कोलदेश ३२४
कोलाबा ६२६
कोलेगांव १९१
कोल्लम ३०४, ३२१
कोल्हापुर २१७,२१८,२५४,२७३
कोषिक्कोट् (कालिकट) ३४४,३४६
कोषिक्कोट्टु मानवेदराजा ३२१
क्वाकैथेल ५९
क्वाकैथेल थौनाओजम् लैकाई १००
क्षमाराम ६३१
क्षमाराव पण्डिता ५९४
क्षेमेन्द्र ५९४
खजूराम शर्मा ६४४
खटाव २१७
खण्डदेव ४८१
खण्डेराव महाराज २६९
खण्डोपन्त २१८
खरौआ ३७२
खाङजयङबा १०१
खाही ६३५
खेचर २५३
खेम सामन्त ३००
खैरपुर ६३१
खोमदोन १०२
खोमद्रोम गुलामजात सिंह १०३
ख्वाइराकपम शीरा सिंह ८१
गंगभट २१७
गंगादास ५१५
गंगाधर २८८
गंगाधरदास २७६
गंगाधर बड़फूकन ५६४
गंगाधर भट्ट ४९९,५९४
गंगाधर सरस्वती ११८
गंगानाथ झा ३९६
गंगाबाई २८३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगेश्वरानन्द ६२७
गजपति प्रतापरुद्रदेव ४४३,५४७
गजरथपुर ३९२
गर्जसिंह ३७९,४०६
गढ़ा ५३३,५६२
गणपति ४९९
गणपति मिश्र ५००
गणेश दत्तात्रेय सहस्रबुद्धे २२३
गणेश पाध्ये २७३
गदाधर ४७०
गदाधर भट्ट ५३३
गम्भीर सिंह ९,२१,२२,३५,३९,४२,४३,४४,४९,५१,७०,
७२,९०,९२,१०१
गयादत्त ५८१
गरगांव ८
गरीबनिवाज २,४,६,१०,१९,२१,३९,४४,६२,६८,७६,
८३,८८,९१,९३
गरुडनारायण ४०६
गर्वकवीन्द्र ५९४
गहिनीनाथ १४९,१५२,२१०,२४४,२५३
गांगल भट्टाचार्य ४५४
गावबा २२४
गिटूबंदर ६१६,६१७
गिरधरलाल ५२९
गिरधरलाल शर्मा ६३६
गिरधारीलाल ६०९,६११
गिरिजाबाई १८१
गिरिधर १६७,५६३
गिरिधर गोस्वामी ४५७,४५८
गिरिसुन्दरदास ५९४
गीर्वाणेन्द्रदीक्षित ४८०
गुंज २७९
गुजरात १२२, २२३
गुड़ीबहन ६१२
गुणवन्त लालदास ३७२
गुरु अरिबामलैकाई १
गुरु गोपालदास ७४
गुरुदासपुर २३२
गुरु बोरिबा ४४
गुरुवायूर ३१०,३२०,३२३,३४६
गुलाबराव महाराज १६८,१९१,१९२,१९३,१९४,२५६
गैबीनाथ २२७,३००
गोंदा २३२
गोंदूजी १९२
गोकुल २८९,५६३
गोकुलनाथ ५६३
गोकुलनाथ गोस्वामी ४५९
गोकुल बाउल ४१६
गोणाई २२९,२३०
गोनारखान ४९,७१
गोपक ४५९
गोपदेवी ४९४
गोपाल उभयकर २७९
गोपाल-एषुत्तच्छन ३१२,३१३
गोपाल कविराय ५३७
गोपाल गोसावी २७६
गोपालजी ५२९
गोपालदास २,९३
गोपालनाथ २२४
गोपाल पण्डित १८९
गोपालपन्त २१७
गोपालपुर २२७
गोपालभट्ट ४५९,४८७,५१७,५४१,५४९
गोपाल याज्ञवल्क्य २८५
गोपालराय ५४२
गोपाललाल ४५७,४५८
गोपालसिंह ७६
गोपालस्वामी ३१३
गोपाल हरि देशमुख १९१
गोपालिकानन्दन ३३४
गोपीनाथ ८५,५४१,५६०
गोपीनाथ कविराज ४१६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपीनाथ गोस्वामी ४६०
गोपीनाथ शास्त्री दाधीच नागलिया ५०८
गोपीप्रसाद ५३६
गोपीराजबाबा १९८
गोपीराम पचाह्नानबा ४३
गोपीलाल ४७४
गोपीश्वर ३९८
गोपेश्वर योगी ४६०
गोमंतक २८९
गोरखनाथ १४९,१५२,२४४,२५२,२८४
गोरखपुर ६३३
गोरा कुम्हार ११६,१३९,१९५
गोराजी ५८९
गोरोबा काका १९५
गोवर्द्धन ५५१,५९४
गोवर्द्धन गोस्वामी ५३६
गोवर्द्धन भट्ट ५९४
गोवर्द्धनलाल ५३७
गोवर्धनदास ५३०
गोवर्धन शर्मा ४६०
गोवर्धनाचार्य ४६३
गोवा १८९
गोविन्द ३६६,३७१,३८६,४०६,५९४
गोविन्द अधिकारी ५१
गोविन्दचन्द्र ७०
गोविन्दजित् ४९९
गोविन्द ठाकुर ३८६,३९७
गोविन्ददत्त ३६६,३९५
गोविन्ददास २४,३६२,३६७,३७३,४९३,५८७,५९४
गोविन्ददास (प्रथम) ३७३
गोविन्ददास (द्वितीय) ३७४
गोविन्ददास कायस्थ ३७३
गोविन्ददास ठाकुर ३७३,३७५
गोविन्दनाथ २२२,२२४
गोविन्दनाथन ३२२
गोविन्दपन्त २१०,२४५
गोविन्द भट्ट ५९४
गोविन्दराय ५६३,५८९
गोविन्द सामन्तराय ४६०
गोविन्दस्वामी १८७
गोविन्दाग्रज १४९
गोसाइं मयुम ९३
गोसावी नन्दन १६४
गौडराज ४४३
गौडवासुदेव शास्त्री ३६२
गौरमुखाचार्य ४७८
गौरशाह २८,८३
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ५१९
गौहाटी ५९,८८
ग्रिमवुड १०७
ग्रियर्सन ३६८,३८०,३८३,३८८
ग्वालियर २६५,३०१
घनश्याम ५६३
घनश्यामदास ५९४
घाडगेबुआ १९१
घुमान २३२
ङोमपोक पांथोइबी ३
ङ्गोपोक निंथौ २
चंगा २०१
चंडप्पुषा ३१६
चंदीराम शर्मा ६११
चंद्रभान थधानी ६१३
चक्रधर ११५,१२३,१३०,१३१,१६९,१९६,२२८
चक्रपाणि १७९,२८४,२८९,३६८,५९४
चक्रपाणि यलम्बकर १९८
चण्डीदास २४,३८२,५२२
चण्डेश्वर ठाकुर ३६६,४०५,५२६
चतुर चतुर्भुज ३७५,३७६
चतुरीबाई ६१३
चतुर्भुज ४६०,५९५
चन्दनक्काव् ३४५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चन्दनदास ५५२
चन्दा झा ३९८
चन्दूलाल रायराजा २२२
चन्द्रकला ३६५,३७८
चन्द्रकीर्ति ४,९,११,२२,२४,२७,३४,३९,४३,४४,६९,७७,
७८,९२,१०२,१०७
चन्द्रगोपालदेव गोस्वामी ५९५
चन्द्रदत्त ४६३
चन्द्रदास ५९५
चन्द्रनाथ ३८६
चन्द्रपुर २५६
चन्द्रभागा २४३
चन्द्रलाल ४८९,५३६
चन्द्रशेखर वारियर ३२२
चमू वैष्णवी ८०
चरणाद्रि ५६१
चराईरौङ्बा १,२,३,४,९,१४,१८,२५,४०,६२,७३,
७४,८२
चरेगाँव २१७
चलाम्बा ४
चांगदेव १३९,२०१,२०२,२१२,२५०,२७२
चांगदेव राऊल १९६
चांगदेव वटेश्वर २७१
चांगा २०१
चाँद काजी ५१६
चाकण १८४
चाचा वृन्दावनदास ४९३
चाफल २८९
चालीसगांव २०८
चिंगाबम याइमा सिंह ८१
चिंचणेर २१८
चिथंखोबा २८,८३
चिट्टूर ३३०
चितशाह ७७
चित्रभानु १,५९५
चित्रांगदा १
चित्रापुर २७७
चिद्घन १७९
चिन्तामणि ४६१,५७६
चिन्मयानन्द ६१३
चिरञ्जीव ५९५
चीरकुषि भवदासन नम्पूतिरि ३२२
चीरामन ३०४
चुरू ५६४
चूडाचाँद ३५,४१,४३,६६,६८,७६,८७,८८,९५,१००,
१०३,१०९
चूहरसिंह ६४८
चेंगन्नूर ३२९
चेंबै ३२३
चेंबै वैद्यनाथ भागवतर ३२३
चेन्नास नंपूतिरि ३४४
चेन्नास नारायणन नंपूतिरिपाट ३२३
चेरनाडु ३०४
चेरुश्शेरी ३०८,३१२
चेरुश्शेरी नंपूतिरि ३०७,३१७,३२४
चेलाराम (दादा) ६१४
चेलाराम शर्मा ६२१
चैतन्यचन्द्र ५९५
चैतन्यदास ५९५
चैतन्य महाप्रभु १२,१५,१९,२४,३८,६७,८१,१३७,२१३,
२२०,३६५,३६७,४२१,५१५,
चैतन्याश्रम २११
चैथरोल कुमबाबा ४७
चोखामेला ११६,१३९,१६१,१८५,२०२,२०३,२५३
चोलनाडु ३०४
चोवराम ५३८
चौका ढोखोम्बा ६७
चौबीयाइमा ८७
चौरजीतसिंह ११,४४,७०,८९,९०,९३,९६,९८
छत्तीसगढ़ १३४
छर्दोबा १९७
छोगालाल ५३५
छोटाजी ५८९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगज्योतिर्मल्ल ४०३
जगत्प्रकाशमल्ल ४०३
जगदानन्द राय ५९५
जगदीशपुर हीरा भंड़ोखर ४६१
जगन्नाथ ४७७,५४९
जगन्नाथपुरी १७,५७,१९३,२८९,५६१
जगन्नाथ मिश्र ३६,५१५
जगन्नाथ सेन ५९५
जगन्माता ४०६
जगमित्रनागा २०४
जगाई ३६,५१६
जड़वार ६००
जदुसिंह ९१
जनकराज नृसिंह २८५
जनकोजी शिंदे २६४
जनाबाई ११६,१३९,१९१,१९५,२०५
जनार्दनपन्त एरण्डे २१७
जनार्दनप्रसाद चौधरी (भोलाबाबू) ४६१
जनार्दन स्वामी ११८,१८०,२०८,२२४
जमसम ३८३
जमुनाजी ५२९
जयकान्त मिश्र ३७६,३७८
जयकृष्णदास ६१६,६२९,६४३
जयकृष्णनाथ २२३
जयतीर्थ ५१३
जयदेव २४,३३,४९,१२३,१२९,१३३,३३३,३३४,
३६६,४३८,४६२,४९३,५०१,५२२,५२९,५५२,
५५३,५९५
जयधर्म ५१३
जयन्तीदेवी ४७७
जयपुर २३२,५३९,६०८
जयरामदास ६५७
जयरामदास छाब्रिया ६४९
जयलाल हरगूलाल ४५९
जयसिंह ८,११,२२,२३,२८,३१,१०१,४८२,५३६
जयसिंह (भाग्यचन्द्र) ३,३८
जयादित्य ५१९
जरंडेश्वर २९४
जवाहरलाल नेहरू ६५८
जवाहरलाल शर्मा ६१८
जहाँगीर ३७६,५२६
जांब २७९,२८८
जान साहब ३८७
जायसी, मलिक मुहम्मद ५९९
जालन्धर २३२
जाल्लो बढ़ई २३२
जावा द्वीप ४०
जिरिबाम ७९
जिलाङ्बा १०७
जिवबा दादा बक्षी ३०१
जीवगोस्वामी २३,३६८,३७३,४६५,४६६,५४२,५४९
जीवतसिंह (साईं) ६१९
जीवदास बाह्निनीपति ५९५
जीवनजी ४६८
जीवनलाल गोस्वामी ५३६,५३७
जीवनाथ मिश्र ५००
जीवराम याज्ञिक ४६८
जूनागढ़ ४६०
जेठालाल चीमनलाल ५९५
जेतूराम ६४२
जेम्स ग्रैंट १२९
जोग महाराज २२९,२५३
जोगा १३९
जोगाई २०४
जोगिन्द्रसिंह ९३
जोधपुर २३२
जोरहाट ८८
जोला ५४३
जौनपुर ५४३
ज्ञाननाथ ११३
ज्ञानसिन्धु ५१३
ज्ञानेन्द्रभिक्षु ४८१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानेश्वर ११३,११५,११८,१३०,१३१,१३७,१३९,१४४, १४५,१४९,१५४,१५८,१६१,१६२,१७९,१८१, १८६,१९५,२०१,२०२,२१०,२११,२१३,२१८, २२७,२२८,२३०,२४४,२४६,२५०,२५३,२८३ २८४,२९२,२९३
ज्योतिपन्त दादा महाभागवत २१७,२१८
ज्योतिरीश्वर ठाकुर ३९३
ज्वालापुर २३२
टँउरराम शर्मा ६२१,६५०,६५१
टण्डा-अल्हयार ६०७
टण्डा-आदम ६५०,६५३
टण्डा-मम्मदखाँ ६०९,६११
टण्डा मस्तीखाँ ६३१
टाकली २८८,२८९
टिकेन्द्रजीत सिंह ६९,१०७
टी० एल० वास्वानी (साधु) ६२२
टी० गणपति शास्त्री ५००
टी० दामोदर सिंह ६०
टेकचन्द मनसुखानी ६१४
टोडरमल ५९२
ठाकुर किसोरीवल्लभ ४९२
ठाकुरदास शर्मा ६२५
ठाकुरी ५३८
ठाणे २१७
ठोसर २८८
डंब्रज २१७
डब्ल्यु० माधवराम सिंह २३
डब्ल्यु० युमुजाओ सिंह २३
डरिपोक ह्याओबम देवान लेकाइ १०८
डिंभमुनि १८७
डोमगाँव २८९
ढाका ८६,९२,१००
तंजाउर २८९,३६१
तकरपुरम् ३२२
तखैल लैकाई ८०
तपनमिश्र ५१७, ५३१
तमिलनाडु ३०३
तम्पाकसना १०३
तरक्कल वारियर ३२८
तरें कोम्बा ९२
तरौनी ३९३
तलेगाँव २१७
तानाशा १९२
तारा २३०
ताल्लपाक अण्णम्माचार्य १३०
ताषमण परमेस्वर भट्टतिरि ३२९
तिमाभट ११८
तिरुनावाय् ३४५
तिरुप्पर नंपूतिरि ३४४
तिरुमलैनायक ४८०
तिरुवञ्चिकलं ४४५
तिरुवनन्तपुरम् ३०४,३१५,३१९,३४२,३४९,३६२
तिरुवनमलाई ६१३
तिरुवल्ला ३४९
तिरुवहीन्द्रपुरम ५६६
तिरुवितांकूर ३१४,३१५,३२९,३४९,३५१,३५४,३६४
तीरथदास खत्री ६०५
तुंचत्तु आचार्य ३२९
तुंचत्तु एषुत्तच्छन ३१७,३२९
तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन ३११
तुंचन्परंप् ३१२,३२९,३३०
तुकाराम ११३,१२०,१२६,१३०,१३२,१३५,१३७,१४३, १४४,१४५,१४७,१४९,१५७,१५८,१६३,१६४, १८४,१८५,१८६,२१८,२६६,२८१,२९४
तुकोपन्त २७५
तुकोबा २४३
तुलजापुर २५७,२८३
तुलसी १६९,३०८,३३०,३३५,३५४,३६८,४३१,४७४,६००
तुलसी नारायण २३
तूक्कंटियूर ३२९
तूक्कटीरि ३५५
तृश्शूर ३१७,३२०,३५५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृश्शिनाप्पल्ली ३५५
तेखाओ ३
तेजपुर ७०
तेरढोकी १९५
तैरभुक्त कवि ५९५
तोताद्रि ४५४
त्रामठीय ४५२
त्रिक्कंड्यिूर ३१२
त्रिपुरा ४०,४४
त्रिपुरानन्द ओझा ३८१
त्रिभुवन सिंह ९३
त्रिमल २८४
त्रिविक्रम ५९५
त्रिविक्रम पण्डित ५१३
त्रिविक्रमभट्ट ४६८
त्रैलोक्यमल्ल ५५८
त्र्यम्बकपन्त २१०
त्र्यम्बकराज ११९
त्र्यम्बकेश्वर १९३,२११,२१७
थांगल ६९
थाँवरदास ६२२
थाङजम १०३
थाङ्ल, जनरल ४०,४२
थावनाथाबा ४
थोइबी ३
थौबाल-पाला २५,५९
दक्षिण मलाबार ३२२
दक्षिणामूर्ति २८३
दत्तनाथ बुआ २६४
दत्तात्रेय १४३,२२४,२८६,२९५
दबिर-खास ५४९,५८३
दमा २०५
दयानिधि ५१३
दयाराम ६१७,६२९
दयाल आशा ६००
दयालनाथ १६६,२२२,२२३,२२४
दरभंगा ५३२
दलपत ६००
दलीली ६३४
दशरथ ५९५
दाओजी १०१
दादा महाराज सातारकर २९३
दादू ६३८
दादूनगर ६२८
दादेगाँव २८९
दादोस १९७
दामाजी पंत १४२
दामाशेटी २२९
दामोदर ३१७,५४१,५५३,५९५
दामोदरदास ६२,४९३
दामोदरदास सम्बलवाले ४९४
दामोदर पण्डित १३९,१५१,१९७
दामोदर पिषारटी ३४५
दामोदर शर्मा ६२५
दामोदर शास्त्री ५४४
दामोदर स्वामी श्रीपाद ५९
दाराशिकोह ४८१
दालम्यपुर २७६
दासगणु २२३
दासे मिश्र ५००
दासोपंत ११९
दिनेश ५९५
दिनेशचन्द्र सेन ३९४
दिवाकर ५७,५९५
दिवाकर मित्र ४१०
दीनानाथ २२७,५९५
दीपक ५९५
दीमापुर ५७
दुर्गादास चक्रवर्ती ४५२
दुर्गावती ५६२
दृढ़व्रत ४४५,४४९
देवकलीपुर ५०६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवकीनन्दन ४६९,५२९,५९५
देवकीनन्दन गोस्वामी ५८६
देवकीनन्दन दास ४३५,५२५
देवगढ़ २०८
देवगाँव २५४
देवगिरि ११८,२२७,२२८,२७१,२८५
देवघर ३८१
देवजना देवी ४०६
देवदास २८९
देवन एषुत्तच्छन ३१३
देवनाथ १४७,१६६,२२३,२२४
देवनाथ मिश्र ५००
देवनारायण ३१८,४७६
देवनारायणन ३३२,३६१
देवराज ५४१
देववन्द ५४१
देवव्यास १३९
देवशंकर गुजराती ५४४
देवसिंह ४०६
देवानन्द ३६६,३८०
देवास ५४८
देवीदत्त ४७०
देवीदिनाराम ६२८,६२९
देवीप्रसाद ५६४
देवीबाई ६०७
देवेन्द्रसिह ९२
देशमुख १९१
देहरादून २५३
देहू १४४,२१८,२५४
दौलताबाद ४९६
द्रुमसिंह १०३
द्वारका १२५,२२५,२८९,५६१
द्वारकानाथ ४७२
द्वारकेशजी ४९४,५२९
द्वारावती १२५,२६०
द्वारिकानाथ शर्मा ४५७
धनेश ४९६
धन्य कवि ५९५
धरणीधर ३६५
धर्मबाई ६५०
धांदरफले २८३
धुलिया १९९,२८९,२९०
नदिया ५२,८६,५१५
ननू लालदास ३७२,३९०
नन्दकिशोर गोस्वामी ५९५
नन्दकिशोरचन्द्र गोस्वामी ४७४,५९५
नन्दकुमार शर्मा ५९५
नन्ददास ५९५
नन्दमिश्र ४९३
नन्दराम शुक्ल ५०६
नन्दीपति ३६६,३६७,३८०,४००,४७५
नम्पूतिरि ३२०
नम्बोल अवांजिरि ९७
नयनाराम शर्मा ६०७,६१७,६२९,६४३
नरनारायण ३७६
नरसिंह ९,२१,२५,२७,३९,४१,४८,५१,७०,७७,८७,
९१,९२,९४,२२०
नरसिंहदास ७५
नरसीब्राह्मणी २२९
नरसी मेहता १३७
नरहरशास्त्री जोशी खरशीकर २८३
नरहरि १८७,५१३
नरहरि गोसावी २७६
नरहरि चक्रवर्ती ४८७
नरहरितीर्थ ५१३
नरहरिदास २२८
नरहरि सुनार ११६,१३९,२२७
नरहरी १६४
नरेन्द्र १५१,१९७
नरेन्द्रकवि १२७,२२८
नरेन्द्रसिंह ३८५,३९८,५३८
नरोत्तम ठाकुर १२,२४,८३,८६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नरोत्तमदास १७१,४६६
नवकिशोर गोसांई ७२
नवचन्द्रसिंह ११०
नवद्वीप १७,२३,५७,७८,८६,८८,१०१
नवद्वीपचन्द्र ११
नवलराय ६१३
नवीनसिंह ९३
नसरपुर ६११,६५३
नांदेड २२३
नागदेवाचार्य ११५,१९७
नागनाथ १८६
नागपुर १३४,१९६,२१७,२२५,२२८
नागरवर गोस्वामी ५५८
नागाम्बिका १९७
नागालैण्ड ५६
नागुबाई १९६
नागेश १६६
नाझरे २८५
नाथद्वारा ५६३
नाथीबाई ६४४,६४५
नाथोक ५९५
नानक ५४२,६००
नाना महाराज साखरे २०९,२२९,२८३
नानासाहेब पेशवा १७०
नामदेव ११६,११८,१२१,१३०,१३१,१३२,१३५,१३९,
१४१,१४४,१४५,१५५,१५६,१५९,१६१,१६३,
१६४,१७९,१९५,२०२,२१८,२२०,२२९,२३०,
२३१,२३४,२३७,२५०,२५३,२५७,२६२,
२७१,२९३
नामयाची जनी २०५
नामा पाठक १८६
नारायण २६०,२८८,३२३,५१३,५४९,५७६,६५७
नारायण अप्पा २७६
नारायणडोह २०१
नारायण तीर्थ ५९५
नारायणदास ३
नारायणदासहंस (स्वामी) ६३१
नारायणदीक्षित ४८०
नारायण नंपूतिरि ३३२
नारायणबुआ २८९
नारायण बोवा २४३
नारायणभट्ट ४७५,४७६,४९८
नारायण भट्टतिरि ३३२,३४५,३४८
नारायण भट्टाचार्य ५९५
नारायणमंगराज ४३३
नालप्पाट्टु बालामणियम्मा ३१६
नासिक १९३,२११,२१७,२८८
निंथेम-पुखरी ३,४,७७
निंथौखौं ५
निङथिन चाइबी ७३
निङ्थेम पुखरी वाङ् खैलैकाई २
नित्यानन्द ५४,६७,७२,८५,२२४,२८५,४४०,५१६
नित्यानन्ददास ४६६
निधिराम आचार्य ७२
निनगुर २५३
निम्बार्काचार्य १२८,४७७,४८६
नियमानन्द ४७७
निरंजन माधव २३९
निरंजन योगी २३९
निरंजन रघुनाथ १६८
निरणं (कण्णशकवि) ३०४,३३२,३४२,३४९
निरणं माधव पणिक्कर ३६०
निराई २१०,२४५
निरा नरसिंगपुर २१७
निर्मला २५३
निर्मलाबाई २४१,२९९
निलोबा २८३
निलोबा पिंपलनेरकर २४३
निलोबाराय १४४,१४९,१५७,१५८,१६३,१९१,२४३
निवारणभट्ट ४८६
निवासाचार्य ४८६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवृत्तिनाथ १३९,१४९,१५१,१९५,२०१,२११,२१२, २१५,२३०,२४४,२४८,२५०,२५३,२७२,२९७
निशानसिंह ८१
नील ५९५
नीलकंठ ३३०,३३५,५९५
नीलकंठन नंपूरी ३१०
नीलकण्ठदीक्षित ४८०
नीलभट भाण्डारकर १९६
नीलाम्बर चक्रवर्ती ५१५
नूतनेश्वर शर्मा ६५
नृपतुङ्ग ५१९
नृसिंह ठाकुर ३६६
नृसिंहदास ५८७
नृसिंह सरस्वती ११८
नृसिंहानन्द ४१६
नेन्मेनी ३३५
नेमादित्य ४६८
नेवासा २११
नैमिषारण्य ४५५
नौथिखों १
नौरोजी ५१७
न्यहालासिंग २५३
न्यूयार्क ५९
पंजाब २३२
पञ्चानन ५६४
पट्टत्तुकुंजुण्णी नम्पियार ३३३
पण्डितराज जगन्नाथ ४८१
पण्डितराज नन्दन शंकर ३९५
पण्ढरपुर ११३,१३९,१८५,१८९,१९१,१९२,२०२,२०३, २०५,२०९,२१७,२२९,२५०,२६१,२८३
पदुमा ३९२
पद्मनाथ २८९,५१३,५४९
पद्मनाभ ५९५
पद्मनाभतीर्थ ५१३
पद्मनाभभट्ट ५९५
पद्मनाभ स्वामी ३६२
पद्मराज ४८५
पद्मसिंह ३९२
पद्मादेवी ४०६
पद्मावती ३८८,४६३
पन्नियूर ३२०,३३३
पन्नियूर कृष्णन नंपूतिरि ३३३
पन्हालगढ़ २७३
पमिडिपाडु ५६९
पय्यन्नूर ३५९
पय्यूर पट्टेरी ३४४
परमर्दिदेव ५५८
परमानन्द २८५,३८४
परमानन्द तली १३९
परमानन्ददास ३८१,४८५
परमानन्ददाससेन ४३९
परमानन्दपुरी ५२३
परमेश्वरन् नंपूतिरिप्पाट् ३५७,३५८
परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (प्रथम) ३३३
परमेश्वरन् पय्यूर पट्टेरी (द्वितीय) ३३४
परमेश्वर मंगलत्तु चन्द्रशेखरवार्यर ३३४
परम्परया अवाम ३८०
परली २०४
परवूर ३२१
परशुराम १३५,५२६
परशुरामतीर्थ २८९
परसरमा ३८७
परसराम शहाणी ६३३
परसी ब्राउन ४०
पल्लवनाडु ३०४
पसंदिवाई ६४८
पांथोइबी २,३
पाटण २१७
पाडयनाडु ३०४
पाणिनि ४०७
पाण्डोबा मल्ल २०९
पाथरी ११८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पामर वृन्दावनदास ५२५
पामहैबा २,२१,७३
पारमाण्डल्य आम्नाय १८९
पारिजात २३
पार्वती २८६
पालक्काट् ३१७,३२३
पालामड़ई ४८०
पिंपलनेर १८७,१९१,२९४
पीताम्बर ४८५,४९४
पीताम्बर सिंह १
पीर-गोठ ६३१
पुणे २०९,२१७,२१८,२२५,२२९,२५३
पुत्तनचिश ३५४
पुनं नंपूतिरि ३०८,३४४
पुया ७५
पुरादित्य ३६५
पुरी ७८
पुरुषोत्तम ४८५,४९४,५४९,५९५
पुरुषोत्तमतीर्थ ५१३
पुरुषोत्त मदास टण्डन ६५८
पुरुषोत्तमदेव ४४३,५९६
पुरुषोत्तमाचार्य ४८६,५८०,५९६
पुष्कर २६५,६४३
पुष्कराक्ष ५९६
पुष्पकोटि ५९६
पुष्पदन्त ४६८
पूंतानं नंपूतिरि ३१०,३३५,३४५
पूंतीट्टम महन नंपूरि ३१५
पूंतोट्टनु अच्छन नंपूतिरि ३१५
पूना ६२३
पूर्ण सरस्वती ३३९
पूसाराम मूंदड़ा ५४४
पेटूक पगोडा पागन (बर्मा) ४०
पेरुभट्ट ४८१
पैठण १५०,१७९,१८७,१९६,२१०
पोङ १,६५,६९
पोन्नानी ३१७,३२३,३२९
प्रकाशानन्द ३६९
प्रकाशानन्दसरस्वती ४८७,५१७
प्रणतार्तिहर ५६९
प्रतापनारायणदेव ३८२
प्रतापमल्लदेव ४०३,४०५
प्रतापरुद्रदेव ४२९
प्रतापसिंह ३८१,५०६
प्रतिष्ठानपुर १९६
प्रद्युम्न ४५८
प्रबोधानन्द सरस्वती ४८७,४८८
प्रभाकर १३५,५९६
प्रभावती ४०६
प्रमत्तसिंह ५६४
प्रमोदन पुरन्दराचार्य ५१०
प्रयाग १७,५७
प्रह्लाद ६३५
प्रियतमदेव शर्मा ६३६
प्रियतमलाल गोस्वामी ४९२
प्रियादास ३९४,४८९
प्रियादास शास्त्री ४९०,५२७
प्रियालाल गोस्वामी ४९२
प्रियाशरण ६३४
प्रेमदास (स्वामी) ६३८
प्रेमपत्तनम् ५३३
प्रेमानन्द ५८७
प्रेमाबाई १६४,२५०
प्लाटिनस १२९
फतेहअली ११८
फत्तेखेरडा १६९
फयेङ् ३
फलटण २१७
फलटणी २९४
फागा ३८२
फुराइलातपम निकुञ्जबिहारी शर्मा ६५
बंकटस्वामी २१०,२५३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बंका २४१,२५३
बंका महार ११६
बंगाली हरिदास ३६२
बगाराम ६२५
बटहर ५३८
बड़ोदा २२३,२२५
बदामी १२२
बदीन नगर ६४४
बद्रीकेदार २८९
बद्रीनाथ ६४३
बन्धु श्री मनोहर महाराज २६९
बन्नाजी ५८१
बभ्रुवाहन १
बयाम्मा २६९
बरार ११८
बर्मा २८,३९,४४,६५,७०,८३,८८
बलदेव विद्याभूषण ४९३,४९४,५१३
बलभद्र १२३,५३६
बसंतराम ६००,६०७,६१७,६२२,६२९,६३०,६४०,
६४१,६४३,६४५,६४६,६४७,६५१,६५२,६५३
बहादुरपुर ४४२
बहिणाबाई १५७,१५८,२५४
बहिरा जातवेद १६५,१६६
बहिरा पिसा १३९,१४२,१७९
बहिरामजी गोरे २९४
बहेचरलाल त्रिकमजी पटेल ५९६
बहोरदास २३२
बांकी ४६०
बांदे ३००
बागुल प्रदेश १९०
बाजीराव पेशवा १३५,२३९,२६४
बाणभट्ट ४१०
बाथ ५०५
बापजी पण्डित २४०
बाबाजी महाराज पण्डित २५६
बाबूजी नाईक २७३
बारामती १६७,२७३
बालकृष्ण ४९४,५६३
बालकृष्ण भट्ट ४९५
बालमुकुन्द मिश्र २६५
बालयज्ञवेदेश्वर ५३४
बालाजी विश्वनाथ २६४
बालापुर २१७
बावलास ५३५
बासर-क्षेत्र २८३
बिजली खाँ ५१६
बिम्बावती मंजुरी ७,१२,२४,२९,८५,८६,८९,९०,
१०५,१०६
बिल्वमंगल ३३५,३३६,३४४,५१८,५५३,५५५
बिल्हण ५५३
बिशनपुर ६५
बीकानेर २३२
बीड २५३
बीम्स ३८८
बीरबल ५६२
बुद्धचन्द्र सिंह १००
बुलढाना १६९
बेदर १४३
बेनीमाधव शर्मा ४४
बेलगांव २१७
बोणेबाई १५०,१९७
बोधचन्द्र सिंह ८८,९५
बोपदेव ४९६
बोरकर १४९
बोल्होबा २१८
बौद्ध गया ४०
ब्रजनाथ ४९४
ब्रजनाथ चतुर्वेदी ४९०
ब्रजभूषण ४९४
ब्रजराजदेव ४७०
ब्रजालंकार ४९४
ब्रह्मण्यतीर्थ ५१३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मदेव २२४
ब्रह्मानन्द २८५,६४३
ब्रह्मानन्दपुरी ७९
ब्राज़ील ६१
भक्तिचारु स्वामी ६०
भगतराम ६२९
भगवत मुदित ४८९
भगवतीपुर ३८५.४०६
भगवन्तराव पैंने ३०१
भगवानदास ३,७५,६०७,६४२
भगवानबख्श सिंह ५३२
भटिवाल २३२
भट्टतिरि ३४६
भट्टनारायण ४९७,४९८
भट्टोजिदीक्षित ४८३
भट्टोजी दीक्षितर ३४६
भड़ोंच १२३,१९६
भड्डु ४७०
भण्डारकर ५१३
भण्डारा २९४
भदैनी ६५८
भद्र ४३
भरत ४२२
भरतपुर २३२
भरतशाह ४
भरवस १२३,१९६
भराम ३८३
भवनाथ मिश्र ५००
भवप्रीतानन्द ३६५
भवप्रीतानन्द ओझा (अभिनव विद्यापति) ३८१
भवस्वामा (पत्नी-लक्ष्मी) ५३४
भवानन्द ५९६
भवानन्दराय ५४७
भवानीदास शर्मा ५४१
भाऊसाहेब काटकर महाराज २५७
भाऊसाहेब धाराशिवकर २५७
भागबंगोला ८६
भागलपुर ५०५
भागानगर १९२
भागीरथी २३९
भाग्यचन्द्र ४,५,६,९,१२,१९,२१,२२,२४,२७,३७,३९,
४२, ४४,५२,६२,६७,७०,८०,८६,८९,९६,९८,
१०१,१०५
भाग्यचन्द्र जयसिंह कर्त्ता ८४
भाग्यवती देवी ६५
भातगाँव ४०४
भानखेड़ा २६२
भानुदत्त ४९९,५००
भानुदास १४३,१६१,१७९,२५७,२५८
भानुनारायण ६८
भारतप्पुषा ३३३
भालगाँव २८९
भालचन्द्रनाथ २२३
भालेराव २६५
भावे १३९
भावे व्यास ११५,१२७
भास ५००
भासे मिश्र ५००
भास्कर १३९,५९६
भास्करपन्त २५७
भास्करभट्ट १२७
भास्करभट्ट बोरीकर १५१,१९७
भास्कराचार्य ४६८
भिटशाह ६५१
भिडशाह ६२१
भिवबा २४३
भिवानी २३२
भोतरगाँव ४०
भीनमाला ५१९
भीमभट्ट ५९६
भुवनेश्वरप्रसाद चौधरी 'भुवनेश' ५०५
भूपतीन्द्रमल्ल ४०३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूपेन्द्रनाथ सान्याल ५०५
भूमिदेवी ४८०
भूरामल ५५२
भैरव कुलकर्णी ११८
भैरवदेव २७३
भोलन कवि ३८३
भोलानाथ ५०६
भ्रमरसन्देशकार (अज्ञातनाम) ३४०
मंगनराम ६५०
मंगरौनी ३८३
मंगलवेढ़ा १८५, २०२
मंगलागौरी ६१४
मंसूरशाह बिडकर २६५
मकासरे २४३
मङ्नीराम ४००
मङ्गल ५९६
मङ्गलजी हरजीवन ओझा ५९६
मठपतिकल्याण भट्ट ५०७
मड्ङाट्टच्चन ३३८
मणिकर्णेश्वर ३
मणिपुर ११,१४,२८,३९,५६
मतिराम ४७०
मत्स्येन्द्रनाथ १४९,२४४,२५३,२८४
मथुरा २६५,२८९,४७८
मथुरानाथ ४१६
मथुरानाथ शास्त्री भट्ट ५०७
मदन ५९६
मदनमोहन ८५,४५८
मघाई ५१६
मधुकर १९०
मधुचन्द्र ९८
मधुचन्द्र सिंह ९६
मधुबनी ३७०,४३६
मधुमंगलाचार्य ५५५
मधुमती ४०६
मधुसूदन ३६५,४५८
मधुसूदन सरस्वती ४२९,५१०
मध्वतीर्थ ५१३
मध्व मुनीश्वर १६६,२६०,२८६
मध्वाचार्य ३,४,४११,५१२,५१३,५४२
मनिकर्णिका १९२
मनबोध ३६८,३८३,४००
मनबोध नन्दीपति ३६५
मनसालालजी ४९२
मनोहर २८६,५९६
मनोहरदास ४८७
मनोहर नायक २६९
म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री ३७६
म० म० परमेश्वर झा ३७६
मम्मट १२९,४००
मयंकराज १८७
मयूर ५९६
मयूरेश्वर रामाजीपन्त पराडकर २७३
मयँगा वृन्दावन २२
मराठवाड़ा १९८,२००,२८४
मर्ढेकर १४९
मलयिनकीष् ३४२
मलसिंह ६४८
मलाई रोम्बा ९३
मलाबार ३१०,३१२,३१७,३२९,३३५
मलाया ८८
मलिक काफूर ११८
मल्लापुर २७६,२७८
मल्लाप्पा बासकर २६४
मल्लिकार्जुन १२२,५८६
मल्लिनाथ ५१९
मषमंगलत्तु नारायणन नम्पूतिरि ३४१
मषमंगलम् ३०९,३१०
महदम्बा ११५,२६२
महदाइसा १९७
महदासिया २६२
महन्त उद्धारणदास ५८७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महमदाबाद ५२८
महात्मा गांधी ६५८
महात्मा गौर ५८६
महात्मा नागनाथ १७९
महात्मा माधवदास ५८६
महादजी शिंदे २६३,३०१
महादेव ४६२
महादेव मिश्र ५००
महादेवी ४०६
महाबलेश्वर २८९
महामना पं० मदनमोहन मालवीय ६५८
महाराज-कुमार कामा ८०
महाराज-कुमार गन्धारसिंह ८०
महाराष्ट्र २१७,२७९
महावीर ११४
महाशय ठाकुर ७२
महिड्रा ६५०
महिपतराव २१७
महिपति बाबा २०५
महीन्द्र १३९
महीपति २७९
महेन्द्र ४८१
महेश ठाकुर ३७६
मांग्यास ५५२
मांडले १००
माइमोम तोम्बासिंह ९७
माइमोम थानिलसिंह ९७
माघ ५१९
माडगूलकर १४९
माणिक प्रभु १६८,२६९
मातापुर २८३
मातृदत्त ३४२,४७६
मातृदत्त भट्टतिरि ३४५
माधव २३९,२६५,५१३,५९६
माधव चक्रवर्ती ५९६
माधव चाक्यार ३४५
माधवदास १७९
माधवदेव ४२
माधव नंदन २३९
माधव पटनायक ४४४
माधव पणिक्कर ३०५,३३३,३४२,३४९
माधव भट्ट ५९६
माधव सरस्वती ५११,५६२,५९६
माधवानन्द ५९६
माधवेन्द्र ५१३,५२५
माधवेन्द्रपुरी ३९३,४३४,५२२
माधान १९२
मानपुरी २८६
मानविक्रम ३१७,३२३,३४४
मानवेद राजा ३४४,५२५
मानसिंह ५९६
मायम्बा ७३
मारजीत २७,४४,७०,९०,९३,९६,९८
मारुतिनाथ २२३
मार्तण्ड माणिक २६९
मार्तण्डवर्मा ३१४,३१८,३५१
मालतीदेवी ६५
मालवण २९४
मालाधर वसु ५२४
मालाबार ३१७
माल्हाइसा १९६
माहीम ६१०
माहुर २८३
माहुली २१७
माहेश्वरी ४०६
मित्रमिश्र ५२६
मिथिला ३६५
मीनच्चील ३५१
मीनाञ्चल ३१४
मीरपुरखास ४०
मीरा १३७,२६६,३६५,६००,६२९
मुकुन्द २४३,२७४,४३२,४६५,५४९

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकुन्ददेव ४१६,५८१
मुकुन्द भट्टाचार्य ५९६
मुकुन्दराज ११३,१२४
मुकुन्दरामदास ४१६
मुकुन्द रामानुज दास ५४४
मुक्ताई २०१,२१२,२९७
मुक्ताबाई १३९,१४१,१९५,२०१,२०३,२१२,२३०,२५०,
२७१,२८४,२८७
मुक्तेश्वर ११९
मुखी मदनलालजी ६३५
मुड्याम्बा ७२
मुत्तुस्वामि दीक्षितर ३६१
मुदितमाधव ४३२
मुम्बई २१७,२९४
मुरजराम शर्मा ६०७
मुरलीधर जालान ६१
मुरारनाथ २२४
मुरारि ५४९
मुरारिगुप्त ४४०
मुरारि मिश्र ३७६
मुर्तिजापुर २२२
मुलोजी गाजरे पाटिल २४३
मुल्लप्पिलली भट्टतिरि ३४४
मुल्ला दाऊद ५९९
मुल्हेरगड १९०
मुहम्मद बिन कासिम ५९९
मूलचन्द तुलसीदास तेलीवाला ५९६
मेंगनाथ १८४
मेकडॉनल ५४३
नेदिनीगढ़ ३७६
मेनकादेवी ४०६
मेलांखोम्बी देवी ८१
मेल्पत्तूर नारायण भट्टतिरि ३१०,३३०,३३५,३४४,३४५
मेल्पत्तूर मातृदत्त भट्टतिरि ३४८
मेल्युत्तूर भट्टतिरि ३३९
मेवाराम ६४४,६४६
मेहकर १६९,१९८
मेहर ६३८
मेहुणा बाँका १३९
मैतै-धर्म १
मैनाबाई २४३
मैसूर २७६
मोइराङ २८
मोटक ५९६
मोतीराम ५९६,६४६
मोतीलाल ५३६
मोदीदासजी ६३८
मोरापन्त १४५,१४६,१४७,१४९,१६४,१६७,१७०
मोरोपन्त बारामतीकर २७३
मोहनानन्द ५९६
मोहिनीबाई ६१९
मौरा ३९३
म्हाइंभट १९७
य० खु० देशपाण्डे ११५,१९८
यज्ञनारायण ५३४
यज्ञनारायणदीक्षित ५३४
यज्ञनारायण भट्ट ५५९
यदुनन्दनदास ५९६
यदुनाथ ४५८,५६३
यदुनाथचरितकार ३४८
यदुशेट २२९
यदुसिंह ३६५
यमुनादेवी ६२५
यमुनावल्लभ ४७४
यलम्बकर १९८
यशोदादेवी २८५,६२६
यशोदानन्दन ५२९
यशोधर २६५
यशोधरा ४०६
यादवानन्द न्यायाचार्य ५१०
यादवेन्द्रपुरी ५९६
युमखाइबाम चन्द्रसिंह २२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युम्नाम नातूम सिंह ९९,१००
युम्नाम लैकाई लाइरेम्बी ९९
येवले २१७
योगेश्वर ५९६
रंगनाथ २८६
रंगीलाल गोस्वामी ५२७
रघुनन्दन ३९८
रघुनाथ ५४६,५६३,५६९,५९६
रघुनाथ गोस्वामी ५२८
रघुनाथतीर्थ ५१३
रघुनाथदास ५४९
रघुनाथदास गोस्वामी ४१६,५२४,५३०
रघुनाथ पंडित ५१५
रघुनाथ भट्ट ५३१,५४९
रघुनाथ राय ४५२
रघुपति उपाध्याय ३६६,५३१
रघुबर ३६६
रघुबर गोसाइँ ३८७
रघुवर्यतीर्थ ५१३
रघूत्तमतीर्थं ५१३,५९६
रङ्क ५९६
रञ्जीतदेव ४७०
रणजीतमल्ल ४०३
रणजीतसिंह ३५९
रणवीर सिंह ५३२
रतिधर ३९३
रतिपति भगत ३८४
रते झा ३८७
रतेदेरे ६४६
रत्नखेट ५३४
रत्नपाणि ३६७,३९८
रत्नपाणि झा ३८४
रत्नाकर पाठक २५४
रत्नागिरि २१७
रत्नेश्वर मिश्र ५००
रम्नादेवी २५३
रबिनचन्द्र ९२
रमादेवी ५०५
रमानाथ ३९८
रमानाथ झा ३८३
रमापति ३६७
रमापति उपाध्याय ३८४,५३२
रमाबोस ४८६
रमावल्लभदास ११९,१४५,१६४,१६६
रमावल्लभपुर २७६
रविचन्द्र १०१
रविनाथ मिश्र ५००
रविवर्मन तंपी ३४९
रविवर्मा ५४६
रवीन्द्रनाथ ठाकुर १२९
रसिकानन्द गोस्वामी ५९६
रसिकाशरण ६४६
रसिकोत्तंस ५३३
रहिमतपुर २१८,२५४,२८३
रांजणगाव २४३
राक्षस भुवन २६४
राघव ५७३
राघव गोसावी २७७
राघवदास २७६,२७७,२७९
राघव रामानुजदास ५४४
राघव वारियार ३५८
राघवसिंह ३९८
राघवाचार्य ५४५
राघवेन्द्र ५३३
रा० चिं० ढेरेजी २००
राजचूड़ामणि दीक्षित ५३४
राजपत राजा १९०
राजराज रविवर्मा ३५७
राजराजेश्वर राव ४२
राजर्षि ५,६
राजशेखर ५१९
राजसिंह ५८८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजाराम प्रासादी २७९
राजेन्द्र ५१३
राजेश्वर सिंह स्वर्गदेव ५,२८
राजोपन्त २२४
राणा भादरसिंह ५३९
राणूबाई २८८
राणोजी शिंदे २६४
राधाकान्त झा 'अनूप' ३८५
राधाकृष्ण गोस्वामी ५९६
राधाकृष्ण चौधरी ३८६ ३९५,३९६
राधाकृष्ण तिवारी ५३५
राधाकृष्णन् (सर्वपल्ली) ६२३
राधाचरण गोस्वामी ४७४
राधादेवी ४६३
राधाप्रसाद ५३६
राधाबाई २८३
राधामोहन ठाकुर ३७४
राधामोहनदास ५३६
राधारमण ४१६
राधारमणदास गोस्वामी ५३६
राधावल्लभ २७६
राधावल्लभ चक्रवर्ती ७७
राधावल्लभदास २७५
राधिकानाथ गोस्वामी ५९६
राधेश्याम शर्मा ५४०
रानेर ५७५
रामकृष्णनाथ २२३
रामकृष्णपंडित ५८६
रामकृष्ण मिश्र ५३७
रामकेलि ४६०,५४९,५८३
रामगोपाल बैरागी ४,८३
रामचन्द्र ४६०,५३८,५९७
रामचन्द्र (प्रथम) ५९७
रामचन्द्र गिदवानी ६०२
रामचन्द्र गौड़ ५४०
रामचन्द्र जैन ४२२
रामचन्द्रतीर्थ ५१३
रामचन्द्र पन्त २५७
रामचन्द्रपुरी ५२३
रामचन्द्र भट्ट ५९७
रामचन्द्र वेल्लाल ५४१
रामजीवन ४५२
रामजोशी १३५
राम तर्कवागीश ४९६
रामतीर्थ ४२९
रामदास १२५,१६१,३६५,३६६,३६७,६४८,६४९
रामदास झा ३८५
रामदास, बाबा ८६
रामदास बैरागी ७४
रामदास स्वामी १९९,२८७
रामदासी लक्ष्मण महाराज शिरगांवकर २६४
रामदेव झा ३७१,३९४
रामदेवराय यादव ११८,१८८,२८८
रामदेव राव ११३
रामदेव विद्यापन्त १९७
रामधन ४७०
रामनगर २१७
रामनाथ ३७१,३८६
रामनाथ झा ३९३
रामनारायण ५४२
रामनारायण मिश्र ५४१
रामनारायणशरणदेव ५७१
रामनारायणशिरोमणि ८३
राम पणिक्कर ३०५,३३३,३४९,३५०
रामपदी ३९६
रामपाणिवादर ३१८
रामपुरत्तु वारियर ३१४,३५०,३५१
रामपुरम् ३५१
रामप्रताप शास्त्री ५४३
रामप्रपन्नाचार्य ५४३,५४६
राममिश्र ५१०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामयोगी १७०
रामरघुनन्दन ३७६
रामरायप्रभु ४७४
रामवर्मा ५४६
रामसिंह ९३,५०७,५४१
रामाचार्य ३३०
रामादेवी ४६३
रामानन्द १६४,५४८,५९७
रामानन्दराय ३६७,५४७
रामाश्रम ४५४
रामीरामदास २८८
रामेश्वरम् २११,२२५,२८९
रामेश्वर शास्त्री दाधीच ५४८
राय बनमाली १,८२
रायरामानन्द, महापण्डित ५१७
रालेरासकर २७५
रावजी २८३
रावस २६२
रासबिहारी ८६
रितपुर १९६
रिद्धपुर १९६
रुक्मिणी २९७
रुक्मिणीदेवी १७९,२११,५२८
रुक्मिणी रामानुजदासी ५४४
रुद्र ५९७
रुद्रदास ५२५
रुद्रधर ५४८
रुद्र न्यायव ाचस्पति ५९७
रुद्रभट १२२
रूपगोस्वामी २३,३६८,३७३,४१५,४१६,४२७,४४०,
४६५,४६६,४८८,४९३,५२४,५४९,५५२,५८७
रूपनारायण ३७६
रूपनारायण, राजा रामभद्र ३७१
रूपनारायण सरस्वती ४६६
रूपमती-राजमती ४०५
रूपलाल ५३६
रूपाई २६२
रूपेश्वर ४६५,५४९
रेवाचद-प्रेमचंद ६१७
रोहतक २३२
रोहिणी १२३
रोहिणीदत्त ३६६
रोहिणीस्वामी १२३
लक्ष्मण ५८६
लक्ष्मणदास १
लक्ष्मणभट जोशी १९३
लक्ष्मणभट्ट ४७८,५५९
लक्ष्मणशास्त्री द्रविड़ २८३
लक्ष्मणसेन ४५७,५५२
लक्ष्मी ४८१
लक्ष्मीधर ५९७
लक्ष्मीधरदास २७५
लक्ष्मीधर बर्वे शास्त्री २३९
लक्ष्मीनाथ ३६६,३६८,३७१
लक्ष्मीनाथ भट्ट ५०७
लक्ष्मीनाथ शास्त्री ५०८
लक्ष्मीनारायण १,३७६,५९७
लक्ष्मीपति ५१३
लक्ष्मीपति गोसाइं ३८७
लक्ष्मीबाई २७६,२८३
लक्ष्मीवती ४०६
लखिमा ठकुराइन ४०५
लखिमारानी ३८८
लखीराम शर्मा ६२५,६४०
लङ् थबाल २९,७१,८५,९१,१०५
लच्छीराम प्राणाचार्य ५५२
लच्धा खत्री २३२
लमांदों ६५
लमाङदोङ ५,६८.८४
लम्बनाथ स्वामी ३८७
लरकाना ६०५ ६३६,६५३
ललितपुर ४०४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लांथवाल ५,७
लाई (देव) पूजा १
लाखोनदास १
लाङोल २०
लाडवन्ती २६९
लायलपुर २३२
लॉर्ड वेलेज़्ली ८६
लालकवि ३६७,४००
लालचंद ६२५
लालचंद शर्मा ६४३,६४४
लालजी चौधरी ५०५
लालदास ३८९
लालमती ४०५
लालमाधव सिंह ५३२
लालूभट्ट ४९६
लावण्यचन्द्र ८६,९६,१०१
लास-ऐन्जिल्स ६०.
लाहौर २३२,३५९
लिलौंग ७५,८४
लीलाशुक ५५२,५५३,५५४
लुधियाना २३२
लेखीनराल १
लैंपाकमचा २५
लैबाक-पाला २५
लैमारेन शिदाबी २
लोंजाम परशुराम २२
लोकनाथ भट्ट ५५७,५९७
लोकमती ५८०,
लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक २१०,२२९,६१८,६५७
लोचन ३६५,३७८
लोलिम्बराज ४६१,५५७,५५८
वंशीलाल गोस्वामी ५५८
वटेश्वर चांगा २८४
वट्टपल्ली भास्करन मूसत् ३५२
वडकरा ३०७
वडकुंकूर ३४६
वत्सराज ५५८,५५९
वनचन्द्र ४८५,४९२,५५८
वनमाली ५९७
वनविष्णुपुर ४६६
वरददेशिक ५९७
वरदाचार्य ५६८,५६९
वर्मलात ५१९
वल्लत्तोल नारायण मेनन ३१६,३३८
वल्लभदेव ५१९
वल्लभाचार्य ३६६,४१२,४२१,४६५,४८५,४९१,५४२,
५५९,५६१
वल्लुवनाडु ३१०
वसई २१७
वसव ११४
वसुदेव ५९७
वाई २१७
वाखैं ४३
वागीश गोस्वामी ५१०
वागीशतीर्थ ५१३
वाग्देवता २८९
वाचस्पति मिश्र ३७७,४०५
वात्स्य वरदाचार्य ५६६
वादरि ३८०
वादिहंसाम्बुद ५६९
वामदेव ४७०
वामन दाजी १६९
वामन पण्डित १४५,१४७,१४९.१६६,१६७,२८१,४९८,
५१९
वामनराव इस्लामपुरकर २२३
वायेनायक २६२
वारंगल ४२९
वाराणसी २०१,२८९
वारी २२४
वासव ५९७
वासुदेव ४७६,५६२
वासुदेव परमेश्वरन ३५३
वासुदेव, यमक कवि ३५३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वासुदेवस्तवकार ३५३
वासूराम ६३१
वास्वानी, टी० एल० ६२२,६३३
वास्वानी, लीलाराम ६२२
वाहेंबाम माधोराम २२
विक्रमादित्य १२२
विजयध्वज ५६२
विजयनगर ३४४
विजयबहादुर सिंह ४७४
विटे २१७
विट्ठलदास ४१४
विट्ठलनाथ १६६,२९२,२९७,४५८,४८५,४९४,५२८,५६०, ५६२,५६३
विट्ठलपन्त २१०,२४५
विट्ठल बिडकर १६४
विट्ठलरायजो ५८९
विठा १६१
विदर्भ १६६,१९१,२२४,२५६,२८९
विद्याधर ५६४
विद्याधिराजतीर्थ ५१३
विद्यानगर ५६१
विद्यानिधि ४७०,५१३
विद्यानिधितीर्थ ५१३
विद्यापति २४,१२८,१३३,३६५,३६६,३६७,३८२,३९०, ५२२
विद्यारण्यस्वामी ५६७
विद्यावागीश ५६४
विद्वान् किलिमानूर राजराजवर्मा ३५४
विनयमोहन शर्मा १७१
विनायक दामोदर सावरकर ६५८
विनायकबुवा साखरे दादा महाराज २८३
वि० भि० कोलते ११५
विमलानन्द २८४
विमानबिहारी मजुमदार ५२५
विराट्देश १८७
विरूपाक्ष लोकेश्वर १२२
विलायतराय ६१९
विल्वमंगलम् स्वामियार ३५४
वि० वि० मजूमदार ३८८
विशालदेव १२३,१९६
विशुनपुर ५
विश्वनाथ १२९,४६०,५९७
विश्वनाथ कविराज ४२५,४४०
विश्वनाथ चक्रवर्ती ५६५
विश्वनाथ चक्रवर्ती भट्टाचार्य ५९७
विश्वनाथ न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य ४२२
विश्वनाथ सिंह ५९७
विश्वम्भरनाथ २२४
विश्वम्भरबुआ २१८
विश्वरूप मिश्र ५१५
विश्वाचार्य ४८६
विश्वासदेवी ३०२
विश्वेश्वर २८५
विश्वेश्वर सरस्वती ५११
विष्णुदत्त ६२६
विष्णुदास २८३
विष्णुदास माहुरकर १६८,२८३
विष्णुपुर १,६८
विष्णुपुरी ३६५,३६६,३९३,३९४
विष्णुबोवा जोग २०९
विष्णु शर्मा ५९७
विष्णुसिंह ३८०
विष्णुस्वामी ४,४०,८४,९६,१११,१२८,२३२,४१२
विसामोरो १६९
विसोबा खेचर ११६,१३९,२३०
वी० के० गोविन्दन नायर ३५५
वीर टिकेन्द्रजीत सिंह ४२,१०७
वीर नारायण ३७६
वीरराघवाचार्य ५६५
वीर सरस्वती ५९७
वीरसिंहदेव ५२६
वीर हाम्बीर ४६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीरेश्वर ५७६
वीरेश्वर चक्रपाणि ५२६
वूलर ५४३
वृन्दावन १७ ५७,७८ ८८,२६५,२८९
वृन्दावनदास ३८४,५९७
वेङ्कटगुरु ४४४
वेङ्कटनाथ ५६६
वेङ्कटनायक ५६९
वेङ्कटवरद ५६८,५६९
वेङ्कटाचार्य ५६९
वेङ्कटाध्वरिं ५६९
वेङ्कटेश ५१७
वेङ्कटेश्वर ५३४
वेङ्कटेश्वरमखी ४८०
वेट्टत्तुनाट्टु रविवर्मत्तंपुरान ३५७
वेट्टत्तु पुतियङ्ङाडि ३१२
वेणीदत्त ४९९,५९७
वेण्मणि अच्छन् ३५८
वेण्मणि कदम्बन् नंपूतिरिप्पाड ३५८
वेण्मणि महन् ३५७
वेण्मणी अच्छन नंपूनिरिप्पाड ३१५,३५७
वेण्मणी महन नपूनिरिपाड ३१५,३५८
वेदनाथ झा ३७८
वेदनिधितीर्थ ५१३
वेदव्यासतीर्थ ५१३
वेलंगगुरी ४८७
वेलोपिल्ली ३१६
वेल्लङ्कोण्डरामराय कवीन्द्र ५६९,५७०
वैदूर्यपत्तन ४५२,४७७
वैद्यनाथ ५७१
वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग ३६९
व्यंकम्मा २६९
व्यासजी २१७
व्यासतीर्थ ५१३
व्रज १७
व्रजनाभ ५८०
व्रजभूषणशरणदेव ५७१
व्रजराजशरणदेवाचार्य ५७२
शंकर १६९,३९८,५९७
शंकर कवि ३५८,५७३
शंकर गोसावी २८९
शंकरदत्त ३६५,३९५
शंकरदेव ३,८,३१,४२,३६६,३६७,३९५
शकरनाथ ज्योत्स्य ३५९
शंकरनारायण ५४६,५९७
शकर पणिक्कर ३०५,३३३,३४०,३६०
शंकर माणिक २६९
शंकर मिश्र ३९६,५००
शंकरराव १९९
शकरराव देव २९०
शकर शष्य ३६०
शंकराचार्य ११४,१२१,१२३,१२६, २९,२५७,२३३,४०७,
५४२,५७५,५९७
शं० वा० दाण्डेकर २१०
शकुन्तला ४०६
शङोइ १७
शङ्करलाल माहेश्वर शास्त्री ५९७
शचीदेवी ३६,५१५
शचीपति ५९७
शतञ्जीव ४३२
शम्भु ५९७
शम्भुमणि १८७
शरंभोजी ३६१
शरण ४६३,५५२,५९७
शल्यकवि २२८
शहदादकोट ६०१
शहागड़ १९९
शाकिर मल्लिक ५४९
शान्तिकर ५९७
शान्तिदास २,२१,३९
शान्तिदास अधिकारी ३,७४,७६
शामशाह ७६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शारदाकार ५९७
शालिग्राम उपाध्याय ४३३
शाह अब्दुल करीम ६००
शाहजहाँ ४८१
शाहजी-कंकोजी १७७
शाह लतीफ़ रोहल ६००
शाहू महाराज १८४,१८५
शिऊर २५४
शिकारपुर ६३६,६४८,६५३
शिग्डी २२३
शिराली २७७
शिरुर २४३
शिरोडा २९४
शिरोमणि ठाकुर ३६९
शिव ५७५
शिवकल्याण ११९,१४७,१६६,२८४,२८५
शिवनाथ ३६७
शिवयोगी १७०
शिवराम २९०
शिवसिंह ३९२
शिवसेवक ४७०
शिवाजी १८४,२८७
शिवानन्द सेन ४३८
शीतलदास ६५०
शीतलबाई ६४४
शुकदेव ४७४
शुकदेव पंजाबी रामार्जुन ३६२
शुकदेव वैद्य २६५
शुक्राचार्य २१७
शुबालसिंह ९१
शुभाङ्ग ५९७
शुभ्र ५९७
शूलपाणिवारियर ३३५
शेरशाह ५००
शेवाराम ६१९
शेषदीक्षित ५९८
शेषनृसिंह ४६१
शेषवीरेश्वर ४८१,४८३
शेषाचल २८९
शैलगुरु ५६५
शैलमल्लिकार्जुन २८९
शैलेन्द्रमोहन झा ३७६
शोभनभट्ट ५१२
शोराम अङाहल सिंह १०४,१०५
शौद्धोदक ५९८
श्यामकन्हाई २३
श्यामदास ६१९,६५१
श्यामनारायणसिंह ३८०
श्यामलाल चौधरी ३९६
श्यामशाह ३,२८,७५,८३,१०५
श्यामसनेही-श्यामाशरणजी ६४७,६५३
श्यामसुन्दर आचार्य ४३४
श्यामसुन्दर दास ३९६
श्यामानन्द प्रभु ४६६
श्यामानन्द भारती ६३५
श्रीकण्ठवारियर ३६१
श्रीकराचार्य ५९८
श्रीकान्त ४००
श्रीकान्तगणक ३६६,३९७
श्रीकुमारन नंपूरि ३६१
श्रीकृष्णचन्द्र ४८५
श्रीकृष्णचन्द्र गोस्वामी ४३२
श्रीकृष्णदास २७९
श्रीकृष्ण भट्ट ५९८
श्रीकृष्ण महाराज गारवडेकर २९४
श्रीकृष्णशरण गोस्वामी ५९८
श्रीकृष्णार्य ५३४
श्रीक्षेत्र २८३
श्री गोविन्द १८९
श्रीदत्त आलमा १९९
श्रीदेवाचार्य ५७७
श्रीदेवी अंतर्जनम् ३५८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीधर १२३,१४७,३७१,३८३,३९३,४६८,५९८
श्रीधरदास ३६६,४३८,४५९
श्रीधर नाझरेकर १४७,१६७,२८५
श्रीधरस्वामी ५३७,५७८,५७९
श्रीनगर १८९
श्रीनाथ चूड़ामणि ५१०
श्रीनाथाचार्य ४३९,४४०,४४२,४६६,४७८,५७७,५८०
श्रीनिवास ५६८
श्रीनिवासगुरु ४४४
श्रीनिवासदीक्षित ५३४
श्रीनिवास राघव ५९८
श्रीपति-क्षेत्र ८६
श्रीपति खेतरी १०७
श्रीमद्वल्लभाचार्य ४५८
श्रीरंग कवि ५९८
श्री रंगनाथ २२४
श्रीरङ्गवेंकटाचल ४५४
श्रीरामसरस्वती ५११
श्रीवर शास्त्री चतुर्वेदी ५८१
श्रीवास ४४०
श्रीवेंकटभट्ट ४५९
श्रीशैल २८३
श्रीहरि ५८२
श्रीहर्ष ४३२
षष्ठिवरदास ५९८
संकर्षण रामानुजदास ५४४
संकर्षणाचार्य ५४५
संजीवन गंगोपाध्याय ५०८
सई जलालपुर ५४३
सक्खर ६३५,६५३,६५७
सखालाल ४७४
सखोवाल २३२
सगोल बन्द ५
सगोलबन्द अखाम लैंकाई ९९
सच्चिदानन्द ६१७
सजन कसाई ११५
सज्जनगढ़ २९०
सञ्जयरङ्ग ३५
सञ्जय कविशेखर ५९८
सतारा २१७,२१८,२६४
सत्यकामतीर्थ ५१३
सत्यनाथतीर्थ ५१३
सत्यनिधितीर्थ ५१३
सत्यपरायणतीर्थ ५१३
सत्यपूर्णतीर्थ ५१३
सत्यप्रियतीर्थ ५१३
सत्यबोधतीर्थ ५१३
सत्यवरतीर्थ ५१३
सत्यविजयतीर्थ ५१३
सत्यव्रततीर्थ ५१३
सत्यसन्निधानतीर्थ ५१३
सत्यसारतीर्थ ५१३
सत्याभिनवतीर्थ ५१३
सत्येष्टितीर्थ ५१३
सदानन्द ३९७,५९८
सदाराम ४५२
सदाशिव २८९,४३३
सदुपाध्याय भवप्रीतानन्द ओझा ३८३
सनातन ४६५,५४९
सनातन गोस्वामी २३,४५९,५४२,५८३
सनामही लाईहुई ७९
सनाहल मुरली २
सनाहल मुरारी ७५
सनेहीलाल ४९०
सन्ताजी पवार २४३
सन्तोषमुनि १८९
सरदार पण्डा ३६८
सरयूप्रसाद मिश्र ४८९
सरस्वती २०९,४७७
सरोज नलिनी पैराट १८
सर्वज्ञ ४६५,५४९,५९८
सर्वविद्या विनोद ५९८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वानन्द ५९८
सर्वानन्द विद्यावाचस्पति ५१९
सवाई माधवराव १६९
सविता २६५
ससतारा २१७
सहजराम ३८४
सहारनपुर ५४१
सांगोता तालुका २८५
साइंनाथ २२३
सातपुते २८३
सातारकर दादा महाराज २९३
सातारा २१८,२२५,२८३,२९३
सापम लक्ष्मणसिंह ८४
सामराज १४८,१६७
सामी ६००
सामूतिरि ३४४
सायखेड़े १७०
सारंग पण्डित १५०,१९७,५९८
सालवर्डी १९६
सावंतवाडी २१७,२८९,२९४,३००
सावजी २१८
सावता माली ११६,१३९,२९२
सावित्री २२३,२८५,५८६
सावित्रीबाई २५७
सासवड २९७
साहेबराम ३६८
साहेब रामदास ३६६,३६८,३९८
सिंहनारायण ४०५
सिकन्दराबाद २९४
सिजा लैइरौबी बिम्बावती मंजुरी (देवप्रिया) १२,२२,१०६
सिद्धपुर ५६१
सिद्धमुकुन्ददेव ४१६
सिद्धिनरसिंहमल्ल ३७५,४०३
सिद्धेश्वर १८४,२७९
सिद्धोपन्त कुलकर्णी २१०
सिन्ध ६५७
सिब्बी ६३७
सिलचर ५७
सिलहट ८३,८८
सीताम्बा ५६९
सीताराम ३
सीना २८९
सुकुमार ५९८
सुकुमार सेन ५२४
सुखदेव गोस्वामी ५९७
सुखमादेवी ४०६
सुखरामदास ६१७
सुगतकुमारी ३१६
सुगोलबंद ८५
सुचेत रामराज ५४१
सुदर्शनसूरि ५६५,५६७,५८४
सुधाकर ३९५
सुन्दर ठाकुर ३७३
सुन्दरभट्टाचार्य ४७८,५८०,५८४
सुन्दरलालदास ३७२,३९०
सुन्दरवन्ता ५९३
सुन्दरानन्द ४१६
सुप्रभदेव ५१९
सुबन्धु ५९८
सुबलचन्द्राचार्य ५९८
सुबुद्धिराय ५५०
सुब्राव २७७,२७९
सुभाषचन्द्र बोस ६५८
सुमतिजितामित्रमल्ल ४०३
सुमित्रा ४६२
सुमित्रादेवी ३८१
सुरेन्द्रनाथ झा 'सुमन' ३७१
सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त ५६४
सुरेश डोलके २२८
सुरेश्वर मिश्र ५००
सुल्तानगंज ५०५
सुवर्णशेखर ५०७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर ११७,१६९,२६६,३०७,३६४,६००
सूरचन्द्र सिंह ६९,१०७
सूरजमल ६४३
सूरजराम ६५०
सूरत २८९,४८५,५६३
सूरतसिंह ६५५
सूरति मिश्र २६५
सूरदास १३७,३१०,३३७,४२१,६२९,६५६
सूर्यदास ५९८
सूर्यनारायण-एषुत्तच्छन ३१२
सूर्यनारायणन ३१३,४७०
सूर्यमल्ल ५०६
सूर्याजीपन्त २८८
सेगारोड तेखेलमवम लैकाई १०२
सैनानाई ११६,१३९,१६१,२९४
सोनारी २७३
सोपान २११,२३०
सोपानदेव १३९,२३१,२५०,२९७
सोमगिरि ३५४
सोमतिरि ३२२
सोमदेवसूरि ४६८
सोयराबाई १८५,२४१,२५३,२९९
सोरमदेवी ४०५
सोलपुर २५७
सोलापुर २७३
सोहिरोबा ३०२
सोहिरोबा आंबिये २६४,२६६,३००
सौंदल २७३
सौबोन लैइरेमा ३
स्थाउँराम शर्मा ६१६
स्फुलिङ्ग (मल्लिकार्जुन) ५८६
स्वप्रकाशानन्द २८३,
स्वर्गदेव ५,४२
स्वर्गदेव राजेश्वर सिंह ८३
स्वाति तिरुनाल ३२१,३५९,३६४
स्वाति तिरुनाल रामवर्मा ३६१
स्वामिर्नाशरणदेव ४३३
स्वामी चक्रधर ११४,१२३
स्वामी ब्रह्मानन्द ५८६
हंगोइबाम चूरा शर्मा ५
हंपी २८३
हंसाम्बा १९६
हजारा १८९
हजारीप्रसाद द्विवेदी १३४
हमीदाबानू ५६२
हमोम तोम्बासिंह १०३
हरकूड २६९
हरदयाल सेठ ५४४
हरदेवी ५३८
हरनामदत्त शास्त्री ५६४
हरनामदास (स्वामी) ६५७
हरपति ३७८
हरपालदेव ११८,१२३
हरिकृष्ण 'कमलेश' ५८६
हरिदत्त झा ५०८
हरिदास १२२,३६५,४२१,४८७,५१६,५८७,५९८
हरिदास स्वामी २८५
हरिदेव पण्डित १४९
हरिद्वार ५७,५६१
हरिनाथ ५४१
हरिनाथ उपाध्याय ४०५
हरिपालदेव १९६
हरिपुर १८९
हरिप्यारीदेवी ४३३
हरिप्रसाद स्वामी २५३
हरिबाबा ६२६
हरिभट्ट ५९८
हरिभास्कर ४९९
हरिया २२२
हरिराम व्यास ४८७
हरिराय_५६१,५८७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिलाल व्यास ४१४
हरिव्यासदेव ४७८
हरिशेट २२९
हरिसिंहदेव ३७०,३९५,४०३
हरिहर ४६५,५४९,५५७,५९८
हरिहरदेव ४३६
हर्षनाथ ३६७
हर्षवर्द्धन ७४
हलायुध ४६८
हवाइबम थाबलसिंह १०८
हवाइबम नवद्वीप चन्द्रसिंह १०८
हाओमोम इबोतोन सिंह १११
हाओमोम तोयाहमा सिंह १११
हाओबम अकोङ ७५
हालविन ५४३
हाल, सातवाहन १३६
हालातालुका ६२५
हासाराम शर्मा ६००,६३६
हासिनीदेवी ३७९,४०६
हितहरिवंश, गोस्वामी ४१४,४१५,४२१,४३२,४८७
हिम्मतसिंह ६५५
हिरंभट २५४
हिसार २३२
हीरानन्द ६१३
हुमणाबाद २६९
हुसेनशाह ५४९
हेमराज १७९
हेमाडपन्त १८८
हेमाद्रि ११३,११४,१२४
हैदराबाद १९२,२१७,२२३,२८९,६०२,६०७,६०९,६१८,
६२९,६४०,६४५,६५३
हैबतराव १७७
हैबोकचीङ ४७
होनाजी १३५
हौजाई ४४
हृदयानन्द २८५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रन्थानुक्रमणिका

अक्षयबोध ३०१
अक्षरपुरुषोत्तम-चरित्र ५९५
अग्निपुराण ४०७
अग्निपुराणस्थ-गायत्री भाष्य ४६७
अच्युतलीला ३५३
अजामिलोपाख्यान ३६२
अणुभाष्य ४९६,५६१,५६३
अणुभाष्यटिप्पण ४६०
अणुभाष्यविवृति ४५९
अत्रिकामकल्पवल्ली ५६९
अद्वैतकौस्तुभ ५३४
अद्वैतप्रकाश ५२१
अद्वैत-मकरन्द २८३
अद्वैतमाला ५७१
अद्वैतरक्षण ५११
अद्वैतसिद्धि ५११
अधिकरणमाला ४८६
अधिकरणसारावलि ५६८
अध्यात्मरामायण ३१२,३३०,३३१
अध्वविनिर्णय ४९२,५६५
अनङ्गमङ्गल ५६८
अनर्घ राघव ३४४
अनुभव-विलास ६४१
अनुभवशतक १७९
अनुभवामृत २८४
अनुभवामृत-टीका २८५
अनुभूतिलेश २८१
अनुमिति निरूपण ५४२
अनुरागवल्ली ४८७
अनेक-अष्टपदिका ५९२
अनेक-कविकृत-पद-संग्रह २७९
अन्तःकरणप्रबोध ५६१
अन्तरंग-बहिरंग-प्रपंचविवेक ५९२
अन्यापदेश-शतक ३६२,४८०
अपरोक्षानुभूति २८१
अपाणिनीयप्रामाण्यसाधनम् ३४६
अभंगगाथा १९३
अभिनय-दर्पण ८,३१
अभिषेक ५०४
अभीति-स्तव ५६८
अभीष्टप्रार्थनाष्टक ५३१
अभीष्टसूचन ५३१
अमरकोष ५०७
अमरुशतक की टीका ३७७
अमृतरत्नावली ४१८
अमृतलहरी ४८२
अमृतवियोग ४७१
अमृतानुभव ११६,२०९,२१०,२१२,२२९,२५३,२५६,२८३
अमृतानुभव-कौमुदी २५६
अम्बरीष-चरितं ३१५
अम्बिका-उदय २८६
अम्बुजवल्ली-परिणय ५६८
अम्बुज-वल्लीशतक ५६९
अरुन्धती-विजयम् ५९७
अर्जुन-बभ्रुवाहन-युद्ध २२
अलंकारकौस्तुभ ४४०
अलंकार-चूड़ामणि ५३४
अलंकार-तिलक ४९९
अलक्षनिधान १७९
अलौकिक व्याख्यानमाला १९३
अविनाशसन्देहहरण १७०
अविमारक ५०४
अविल्प्योति ३५६
अश्वमेधयज्ञ २२
अष्टकाल-लीला २२
अष्टपति ३३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टपदी ४६९,५३०
अष्टपदीद्वय ५९२
अष्टमी चम्पू-काव्य ४७६
अष्ट-विवाह १८४
अष्टाक्षरमंत्र-पूर्वपक्ष-निरास ५९१
अष्टाक्षर-मन्त्रार्थः ५९२
अष्टादशछन्दस् ५५१
अष्टाध्यायी ५०७
अष्टोत्तरशत-रामायण २७३
अहल्यामोक्षम् ३२१
अहल्याशापमोक्ष ४७६
आख्यान २२५
आचार्यचरित ५८०
आत्मपरमात्म-तत्त्वादर्श ४३४
आत्मबोध टीका ५११
आत्मानुभूतिपरक अभंग २३३
आदर्श-रमणी ५०८
आद्यसरस्वतीकारिका ४१६
आनन्दकन्दचम्पू ५२६
आनन्दचन्द्रोदय नाटक ५२८
आनन्दनृत्तम् ३३७
आनन्दराघव ५३४
आनन्दलतिका ४५२
आनन्दलहरी १८१
आनन्द-विजय नाटक ३६६,३८५
आनन्दवृन्दावनचम्पू ४३८,४४०,५९४,५९६
आनन्दसागरस्तव ४८०
आराधना-स्तुति ५३०
आर्याशतक ४४०
आवडोमल १६६
आवरणभङ्ग ४८५
आश्चर्यरासप्रबन्ध ४८७,४८८
आश्वलायनक्रियाक्रम ३४६
आसफविलास ४८२
इंदुमतीराघवम् नाटक ३१७
इण्ट्रोडक्सन टु मणिपुर ६८
इन्दुमती-स्वयंवरम् ३२१
ईशाद्यष्टोपनिषद् ५४३
ईशावास्यबोधिनी २२३
ईशावास्यादि-उपनिषद्-भाष्य ५१३
ईशावास्योपनिषद् ४९०
ईशावास्योपनिषद्भाष्य ४९१,५६८
ईश्वर-विलास ५९४,५९८
ईश्वरविलास महाकाव्य ५०८
उज्ज्वलनीलमणि २३,४३५,४६७,४८८,५५१
उज्ज्वलनीलमणि-किरण ६७
उत्कण्ठादशक ५३१
उत्तरचरित ५६९
उत्तररामायणचम्पू ३४१
उत्सवनिर्णय ४९०
उत्सवनिर्णय टिप्पणी ४६०
उत्सवनिर्णयसारम् ४९२
उत्सवप्रतान ४८६
उत्सवबोधः ५२८
उत्सव-वर्णन-प्रबन्ध ३६२
उत्साहवती ४४३
उदयवर्मा चरित ३३३
उद्धव-गीता १२७,१५१,१९७
उद्धव-गोपी-प्रसंग १६७
उद्धव-सन्देश ५५०
उद्धवागमन २२३
उद्धवागमन काव्य २२४
उपाधिखण्डन ५१३
उमा-रमा-संवाद १७७
उलूखल-बन्धन १६७
उषापरिणय ५७६
उषाहरण ३८०,३८४
उषाहरण-नाटक ३६६,४०५
ऊरुभङ्ग ५०२
ऋग्भाष्य ५१३
ऋग्वेद-संहिता ६७
ऋजुलघ्वी ३४०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऋद्धपुर-वर्णन १२७
ऋद्धिपुर-माहात्म्य १८८
एकनाथ-चरित्र २२३
एकनाथी भागवत १३९,१४३,१८२
एकादश स्कन्ध १५१,२२८
एकादशी चरित्र १९२
ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी ५६४
ऐश्वर्यकादम्बिनी ५९७
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय-स्तोत्र २४०
ओट्टनतुल्लल ३१५
ओट्टनतुल्लल भगवतदूत ३३३
औदुम्बरसंहिता ४७८
कंसध्वंसन ५३४
कंस-वध ३१०,४६१,५७६
कठोपनिषद्-भाष्य ५८०
कण्टकोद्धार ५४२
कण्णश-भागवतम् ३०५,३५०
कण्णश-भारतम् ३५०
कण्णश रामायणम् ३०५,३४९,३५०
कथकली ३१४
कथाकल्पतरु १९०
कथालक्षण ५१३
कथाश्रवण-बाधक-निर्णय ५९२
कदम्ब-केलिमाला ३८०,४७५
कन्दुकस्तुति ५१३,५१४
कन्दुकाख्यान १७७
कपिलायाष्टकम् ५०८
कबीरचरित्र २२३
कबीर-भजनावली २१९
कमलनयनचर्या ५६९
कमलनेत्रस्तोत्र ४७१
कमलिनीकलहंस ५३४
करुणालहरी ४८२
कर्णभार ५०१
कर्णामृतम् ३३५,३३६
कर्पूरचरित ५५९
कर्मनिर्णय ५१३
कलिचरित्र ५९३
कलिविडम्बना ४८०
कल्पद्रुम ५८९
कल्याण-नैषध ३५७
कल्याण-सोगांधक ३१३
कविकल्पद्रुम ४९७
कविकामधेनु ४९७
कविरहस्य ४६८
कविराजमार्ग ५१९
कादम्बरी ५०८
कान्ता-कण्ठाभरण ६४१
कामगायत्री-व्याख्या ४८७
कामसन्देश ३४२
कामाख्य-दोष-विवरण ५८९,५९२
कारिकावली ४२२
कार्तवीर्यविजयप्रबन्धचम्पू ५४६
कार्पण्योक्ति ५९२
कालकेयवध ३१३
कालनिर्णय सन्दर्भ ५८५
कालिकापुराण ३
कालियमर्दनम् ३१७,३१९
काव्यकौस्तुभ ४९३
काव्यचन्द्रिका ५९४
काव्यदर्पण ५३४
काव्यदीपिका ४९९
काव्यप्रकाश ४२४
काव्यमीमांसा ५१९
काशिकावृत्ति ५१९
काशीखण्ड ३६०
किम्मीरवध ३१३
किरातम् ३४६
किरातार्जुनीय ५२०,५५९
किलिप्पाट्टु ३३१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीर्तिछन्दोमाला ५४२
कुचेल-गोपालं ३५८
कुचेलवृत्तं ३१०,३१४,३५१
कुचेलवृत्तं-वंचिप्पाट्टु ३५१,३५२
कुमारमार्गविभा ४९९
कुमारविहारशतक ४२२
कुलानन्द-भाण ५४१
कुलोपाख्यान ३६२
कुशाभ्युदयम् काव्यम् ३५७
कूर्मदास २२३
कृत्यरत्नाकर ३६६
कृष्णकर्णामृत ५१७,५५३,५५४
कृष्णकुतूहल नाटक ५११
कृष्ण-केलि-माला ३६६,३६७,४७५
कृष्णकेलिमाला-नाटिका ३८०
कृष्ण क्रीडा-काव्य ५५५
कृष्णक्रीडित ५९४
कृष्णगाथा ३०७,३२४,३२५,३२७
कृष्णगीतिः ५८५
कृष्णगीति (कण्णगीति) ३२१,३४४
कृष्णचन्द्र-चरित ५९३
कृष्णचन्द्राष्टक ५३०
कृष्णचन्द्रोदय ५९४
कृष्ण-चरित्र १७७,१८९,३८१,४२९
कृष्ण-चरित्र-नाटक ३७५,४०४
कृष्ण-जन्म १६७,३६८,३८३
कृष्णजन्माष्टमी १८८
कृष्णजयन्तीनिर्णय ५१३
कृष्णनाट्टम् ३२१,३४४
कृष्ण-नृत्य १७१
कृष्णप्पाट्टु ३०७,३२५
कृष्ण-प्रेमामृतस्तोत्र ५६३
कृष्णबालक्रीडा ५५४
कृष्णभक्ति-चन्द्रिका ५९३
कृष्णभावनामृत ५९७
कृष्णभावशतक ५६९
कृष्णमहिम्नस्तोत्र ४७१
कृष्ण-लीला १७०,१७१,३७३,५१४,५९६
कृष्ण-लीलातरंग १६७
कृष्णलीलातरङ्गिणी ५७०,५९५
कृष्णलीला-भूषण ५९५
कृष्णवल्लभा-टीका ४८७
कृष्णविजय १६७,२७३,३५८,५९७
कृष्णविजय-व्यायोग ५४१
कृष्णविनोद ५९६
कृष्णविलास ५९६,५९८,६३५
कृष्ण-शब्दार्थ-निरूपण ५९१
कृष्णस्तुति ५५४
कृष्णानन्द ४९३
कृष्णाभ्युदय ३६०,५५७,५९७,५९८
कृष्णामृत-तरंगिका ५९७
कृष्णामृतमहार्णव ५१३
कृष्णायन ६२९,६४६,६५१
कृष्णार्चा ४६०
कृष्णार्पण ४७६
कृष्णावतार ३१७
कृष्णावतारम् ३१०
कृष्णावतार-लीला ५९५
कृष्णाष्टक ४७१,५७५
कृष्णाष्टक (प्रथम, द्वितीय) ५९७
कृष्णाष्टकम् ३२१
कृष्णाह्निककौमुदी ४४०,५५५
कृष्णोदन्त ५९६
केलिकल्लोलिनी ४३३
केशवकृपालेश-लहरी ५९७
केशवीयम् ३२०
केशीवध ३१७
कैकोट्टिकलिप्पाट्टु ३२१
कैटालोगस कैटालोगोरम ५४२
कैयटव्याख्यान ४८०
कैलासवर्णनम् ३४६
कैलासशैलवर्णना ४७६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोकिल-सन्देश ३५८
कौन्तेयाष्टकं ३४६,४७६
कौमारियलयुक्तिमाला ३५३
कौमुदीमित्रानन्द ४२२
कौशल्या-शोक १७७
कौस्तुभप्रभा ४३४
क्रमदीपिका ४५४,५५४
क्रमसन्दर्भ ४६७
क्रियागोपन रामायण ५७६
खोमजिनबा रचनाओं में शैरेङ ११०
ख्यातिनिर्णय ४७८,५८०
ख्याल ५९३
गंगाजूं-लहरूँ ६०६
गंगालहरी ४८२
गंगावाक्यावली ३९२
गङ्गाद्विपदी ४६८
गङ्गावतरण ४८०
गजसूत्रार्थ ५६९
गजानन महाराज २२३
गजेन्द्रचरित ५३५
गजेन्द्रमोक्ष १८५
गजेन्द्रमोक्षम् ३१०,३५८
गणपति स्तुति ५५४
गणिकोद्धार १७७
गद्यरामायण ५६९
गद्यार्थ ५९२
गरीबनिवाज-चरित २३
गरुड-गर्वहरण २२३
गर्भकाण्ड २६२
गर्भगीता १७७
गर्वापहाराष्टकम् ५९२
गवां स्वरूपवर्णनम् ५९२
गाथासप्तशती १३६
गिरिजा-कल्याणम् ३१४
गिरिधराष्टक ५३०
गिरिवज्र ४३४
गीतगोपाल ३७६,४६१
गीतगोविन्द २२,१२९,३१३,३४४,३५१,३८४,४३८,४६२, ५१७,५३५
गीतगोविन्द-टीका ५०८
गीतगोविन्द-व्याख्या ४८७
गीतगोविन्द-व्याख्यान ४८८
गीतचौतीसा ४९९
गीत-रत्नाकर ३९६
गीत-सप्तदशी ३७६
गीता १५,२३,२५३
गीता की टीका ४९३
गीता-जन्मकथा २२३
गीतापरिणय ५६८
गीताभुवनम् ५९६
गीतार्थमञ्जरी १७९
गीतावाक्यार्थं ४७८
गीतासार १८६
गुणलेशसूचक ४०२
गुणसागर ५९१
गुप्त-स्वामिनी-स्तोत्र-विवृति ४९५
गुरुगीता २६९
गुरु-ग्रन्थ-साहेब २३२,२९०
गुरु चन्द्रोदय-कौमुदी ५४२
गुरु-चरित्र ११८
गुरुतत्त्वमालिका ४८०
गुरुवदी २७६
गुरुवाणी ६१४
गुरुवायूपुरेश-स्तोत्र ३४६
गूढार्थदीपिका ४९६
गोकुलचन्द्राष्टक ५९२
गोकुललीला १६७
गोकुलेश-अष्टकम् ५३०,५९२
गोकुलेश-विज्ञप्ति ५९२
गोदा-माहात्म्य २२३
गोदा-स्तोत्र २२३
गोपालचम्पू ४६७,५९४,५९७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपाल-चरित ५९५
गोपालचिंतामणि-विजयम् ५९७
गोपालतापनी ४८७
गोपालतापनीटीका ४६७
गोपाल-लीला ५९७
गोपाल-विजय ५९४
गोपालसहस्रनाम १५,६७
गोपालोपनिषद्-भाष्य ५८५
गोपिकाविरहगीत ५९४
गोपिकाष्टकम् ५४०
गोपिकोन्मादम् ३२२
गोपीप्रेमोद्गार १६७
गोपीवचनदिननिर्वाह्नकम् ५९२
गोपीविलास १६७
गोरसक्रीड़ा १७७
गोरसहरण १६७
गोराकुंभार-चरित्र २२३
गोवर्धनलीला ५९५
गोवर्धनवासप्रार्थनादशक ५३१
गोविन्द-गोवर्धन ५८७
गोविन्दचरित ३५७,५६२
गोविन्ददशक ५९७
गोविन्द-निरूपण २३
गोविन्दभाष्य ४९३
गोविन्दमानसोल्लास ३६६
गोविन्दरतिमञ्जरी ५९४
गोविन्द-लीला ५९७
गोविन्द-लीलामृत २६,३३
गोविन्दवल्लभ ४७२
गोविन्दविरुदावली ४६६
गोविन्द-वैभव ५०८
गोविन्द-संगीत-लीला-विलास २२,२४
गोविन्दार्णव ५७६
गोविन्दाष्टक ५७५,५८६,५९२,५९५
गोश्रीनगरवर्णन ३४६
गौर-गणोद्देश्य-दीपिका ३९४,४४०
गौरप्रेमोल्लास ४७५
गौरीकल्याणम् यमककाव्य ३२२
गौरीतंत्र ३६०
गौलणी २१२,२३७
ग्यानतिस्सा १९९
ग्रन्थात्मक-भगवत्स्वरूप-निरूपण ५९३
घटकर्पर ४६१
घनसंघम् ३३५
घन-संघ-स्तोत्रं ३३७
घैरा संगीत ३८२
चकोर-सन्देश ३५३
चण्डीरहस्य ४८०
चतुःश्लोकी ५६१,५९२
चतुःश्लोकी भागवत १८०,१८१
चतुर्भुजस्वरूपविचार ५९२
चतुर्मासयात्रावर्णन ५४०
चतुर्वर्गचिन्तामणि ११४,१२४
चन्द्रलेखा-सट्टक ५२५
चन्द्रालोक ४६२
चन्द्रालोक की टीका ४९३
चन्द्रावल १३५
चमत्कार-चिन्तामणि ५५८
चमत्कारी २७६
चमत्कारी टीका ११९
चम्पूभारत ५२५
चम्पूरामायण ५२५
चरणचिह्न की भावना ५९२
चर्मण्वती-चरितं ३४०
चषक-वृत्ति ५०८
चांगदेव पासष्टी २१२
चारुदत्त ५०४
चिंतारत्नं ३१२
चिंतासंतानम् ३३१
चिंथांकोम्बा गंगा चत्पा २३
चिंथांकोम्बा वृन्दावन चत्पा २३
चित्रमञ्जरी ५३४
चित्रमीमांसाखण्डन ४८२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रमीमांसादोषधिक्कार ४८०
चिद्बोध-रामायण २४०
चिन्तन को घोल ५९३
चिन्मयानन्द-बोध १८७
चेरुश्शेरीपाट्टु ३२५
चेरुश्शेरी-भारतं ३०७,३०८,३२७
चैतन्यचन्द्रामृतम् ४८७,४८८
चैतन्य चन्द्रोदय ४४०,५८७
चैतन्य-चरितामृत २२,४४०,४६५,५२१,५२३,५३१
चैतन्य-चरितामृत-श्लोक-माला ६७
चैतन्य-भागवत ४३४
चैथरोल कुमबाबा २,३,४,५,८,१९,३१,४९,७१,७४,७७, ८२,८९
चोखा महार २२३
चोखोबा-कर्ममेला १८५
चौरासी वैष्णवन की वार्ता ५२१
चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर भावप्रकाश ५९३
छन्दःकौस्तुभ की टीका ४९३
छप्पनभोग की भावना ५९३
छप्पनभोग विधान ५९२
छाक की भावना ५९३
जगदाभरण ४८२
जगन्नाथवल्लभ नाटक ५४७
जनमेजय-सर्पयज्ञ २२
जन्मवैफल्य-निरूपणाष्टक ५९२
जन्माद्यस्य की व्याख्या ५४२
जपस्वरूप-ध्यान ५९२
जयपुर-वैभव ५०८
जयप्रकार ५९३
जलक्रीडा १६७
जलभेद ५६१
जानकी-रामायण ३७२,३८९
जानकी-स्वयंवर २०८
जोहार १८५
ज्ञानप्पाना ३१०,३३५,३३७
ज्ञान-प्रबोध १२७
ज्ञानमार्तण्ड २६९
ज्ञानवासिष्ठ ३६०
ज्ञानशिखा २६९
ज्ञानेश्वर-चरित्र २२३,२८६
ज्ञानेश्वर-विजय २४०
ज्ञानेश्वरी ११५,११९,१३९,१९१,२०९,२१०,२११,२१९, २३०,२४६,२५३,२५६,२५७,२८२,२९४
ज्योतिष-प्रकाश ४७१
झंझामारुत ५६९
झूमर-पारिजात ३८२
झूमर-रस-तरंगिनी ३८२
झूमर-रस-मंजरी ३८२
झूमर-शिरोमणि ३६९
टीका-फुटकर-वाणी ४९२
टीका-यमुनाष्टक ४९२
ट्वेन्टी वन वैष्णव हिम्स ३७६
तंत्रसमुच्चय ३२३
तत्त्वटीका ५६८
तत्त्वदीपनिबन्ध ४८५
तत्त्वपरिशुद्धि ५३४
तत्त्व-प्रकाशिका ४५५
तत्त्वप्रदीप ५१३
तत्त्वबोध-तत्त्वानुसंधान-टीका ५४२
तत्त्वमाला २८१
तत्त्वमुक्ताकलाप ५६८
तत्त्वविवेक ५१३
तत्त्वसङ्ख्यान ५१३
तत्त्वसन्दर्भ की टीका ४९३
तत्त्वार्थदीपनिबन्ध ५६१
तत्त्वोदय ५१३
तदीयनाम ५९२
तन्त्रपद्धति ५५३
तन्त्रशिखामणि ५३४
तन्त्रसारसङ्ग्रह ५१३
तन्मयानन्द-बोध १८७
ताड़कावध १७७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तात्पर्यचन्द्रिका ५६८
तिथिनिर्णय ४९२
तीर्थमालिका १८८
तीर्थावली २८९
तुकाराम-गाथा २०९
तुकाराम-चरितम् ५९४
तुकाराम महाराज की सार्थ गाथा २१०
तुलसीदासचरित्र २२३
तुल्लल गीतालाप ३१५
तुल्लल-प्रस्थान ३१५
तोनुलाईजिंगलेम्बी १०९
त्यागराजस्तव ४८०
त्यावरी प्रेमाची बोल १४३
त्रिपुरदहनं ३२१
त्रिपुरदहन ३४६
त्रिपुरदाह ५५९
त्रिभुवनसुभग ५५४
त्रिलक्षण-भक्ति-मीमांसा ४९२
त्वदीयाष्टकं ५९२
दक्षयज्ञ ३४६
दत्त-ग्रन्थावली ४७०
दत्तसंग्रह ४७१
दत्तात्रेय-स्तुति २७७
दयाशतक ५६७
दर्शक-निर्धार २७६
दश-उपनिषद् ४३४
दशकुमारचरित ४९८
दशमर्म ५९३
दशश्लोकी ४७८
दशश्लोकी भाष्य ५९६
दशावतारचरित ५३५
दशावतारदण्डक ५४६
दशावतार-दशकम् ३२१
दशावतारस्तवन ५३५
दशावतारस्तोत्र ५६९,५९५
दानकेलि-कौमुदी ५५१
दाननिवर्तनकुण्डाष्टक ५३१
दानलीला ५९३,५९६
दानलीलाष्टक ५६३
दामोदरलीला-वनमाला ५९३
दाम्पत्योरेक-गुरुशिष्यत्वे-दोषाभाव-विचार ५९२
दासबोध २८७,२८८,२९०
दास्याष्टक ५८९,५९९
दि रिलीजन ऑव मनीपुर १८
दिव्य-प्रबन्धम् ४४९
दीनता आश्रय और बधाई के पद ५९३
दीपिकादीपन-विवृत्ति ५३७
दीपिका-दीपनी ५३६,५३७
दीवान-सूरत-बहार ६५६
दुःसंगविज्ञानप्रकार-निरूपण ५९२
दुर्गमसंगमनी ४६७
दूतघटोत्कच ५०१
दूतवाक्य ५०२
दूतवाक्यप्रबन्ध ४७६
दूतवाक्यम् ३४६
देवीचरितं ३५३
देवीभागवतपुराण ४०७
देवी-भागवतम् ३५९
देवीभाष्य ३६०
देवी माहात्म्य १९०
देहलीश-स्तुति ५६७
दैन्याष्टकम् ५९२
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता ५२१
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता पर भावप्रकाश ५९३
द्रव्यशुद्धि ४८५
द्रव्यालंकार ४२२
द्रौपदी-वस्त्रहरण १७०
द्वादशमास प्रबन्ध ४७५
द्वादशाक्षर-वासुदेवस्तोत्र ५९७
द्वितीय श्रीकृष्णाष्टकं ५९२
द्वितीय-स्वयंप्रभु-विज्ञप्ति ५९२
द्विदलनिर्णयः ५२८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्विदलात्मक-स्वरूपविचार ५९३
धनञ्जय लाइवुङिम्बा २३
धमार ५९३
धरणी-संहिता २२
धवले २६२
धातुकाव्य ४७६
धातुकाव्यम् ३४६
धातुचन्द्रिका ५९४
धातुप्रयोग पारिजात ५०८
धातुसंग्रह ४६७
धोल ५९३
ध्यानचूर्णिका ५६८
ध्रुव-आख्यान १७९
ध्रुवचरित्र १७०
नमन २९७
नरकासुर-वध ५४६
नरसीमेहता-चरित्र २२३
नर्मदापंचक २२३
नलचम्पू ४६८
नलचरितं ३१४,३२१,३७३
नलचरित-नाटक ३६६,४८०
नल दमयन्ती-स्वयंवर १७७
नलविलास ४२२
नलोपाख्यान २२८
नवग्रह-आकार ५९३
नवग्रह की भावना ५९३
नवभक्तमाल ४७४
नवरत्नस्तोत्र ५६१
नवरस-चरित्र १७७
नवरात्र-हुलास ५९३
नवाष्टक ५३१
नाटकचन्द्रिका की टीका ४९३
नाट्यदर्पण ४२२
नाट्य-शास्त्र ८,३१
नाथभागवत २१९
नामचन्द्रिका ५३०
नामदेव-गाथा २१९
नामदेव-चरित्र २२३
नामनिरूपणसंज्ञा ४६०
नामभाष्य ३६०
नाममहिमा १८१
नामरत्न ५३०
नामसुधा १६७
नारद-भक्तिसूत्र १९१
नारदभक्तिसूत्रबोधिनी २२३
नारायणीयं ३३०,३३६,३४४,३४६,३६२,३७६
नालामनी चरितम् ३४६
निकुञ्जकेलि-स्तोत्र ५९६
निगमसार २८१
निजमतदर्पण ४९०
निजमतसिद्धान्त ४८६
निजवार्ता ५२१
निजसिद्धान्त-रहस्य ५९२
निजाचार्याष्टक ५९२
नित्यलीला ५९३
नित्यानन्ददीपिका १६६
नित्यानन्दैक्यदीपिका ११९,२८४,२८५
निबन्धप्रकाशावरणभङ्गटीका ४६०
निमाइ-संन्यास १०९
निम्बार्कविक्रान्ति ४७८
निम्बार्कसहस्रनाम ४७८
निरूपणाष्टकं ५९२
निरोधलक्षण ५६१
निर्भयभीमकायोग ४२२
निवेदन तात्पर्यार्थं ५९२
निष्कलंकाध्याय ब्रह्माण्डगोलक १९०
निष्कामलीला ५९२
नीलकण्ठविजयचम्पू ४८०
नुक्तक वनसुधा १६७
नूट्टेट्टुहरो ३३५,३३६
नूरीग्रन्थ ६२४
नृगमोक्ष प्रबन्ध ४७६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृगमोक्षम् ३४६
नृसिंहनखस्तोत्र ५१३
नैषधचरित ४३२
नैषधीय-चरित ४६१
नौका-क्रीडा १६७
नौका-चरित्र १७७
नौकाविहार ५९८
न्यायचूड़ामणि ५३४
न्यायपरिशुद्धि ५६८
न्यायवाक्यावली ३९२
न्यायविवरण ५१३
न्यायसिद्धाञ्जन ५६८
न्यास ५१९
पंचदशी टीका ५४२
पंचसंताकेकोट्टिकलीप्पाट्टु-अष्टपति ३३३
पंचाक्षर मंत्र-गर्भ-स्तोत्र ५९२
पण्ढरी-माहात्म्य १८१
पत्र-व्यवहार (भाग १,२) १९३
पत्रावलम्बन ५६१
पदरत्नावली ५६२
पदाङ्कदूत ४५२
पदानिद्वय ५९२
पदामृत-माधुरी ५२५
पदामृत-समुद्र ३७४
पदार्थदिव्यचक्षु ४३६
पदावली १९३
पद्मनाभ-कीर्तन ३१४
पद्मपुराण ४०७
पद्यद्वय ५९२
पद्ममित्र ४९९
पद्य-मुक्तावली ५९८
पद्य-मुक्तावली-गुणगुंफिनी टीका ५०८
पद्यवेणी ४९९
पद्यावली ४२७,५२४,५५२
परमतभङ्ग ५६८
परमहंसप्रिया ४९७
परमामृत ११४
परशुरामावतार २२३
परिपक्ष ४३४
परिवृढाष्टक ५६१
पहिलाज-वाणी ६३५
पांचशत्वत्सरेरपदावली ५२५
पांचाली-चरितम् ५९७
पांचाली-स्वयंवरम् ३४६,३५८,४७६
पांडवचरित ३३४
पांथदूत ५०६
पाञ्चरात्र ५०४
पाण्डव-प्रताप २८६,२८७
पाण्डुरङ्ग-माहात्म्य २८६
पारिजातकौस्तु-भभाष्य ४७८
पारिजातहरण ३६६,३६७,४३६,४३८,४४०,५७६
परिजातहरण-चम्पू ३२८
परिजातहरण-नाटक ३७०,४४४
पार्थसारथीस्तव ३११,३३७
पालालोइसं २४
पीप्स इनटु मणिपुर ६८
पुराण-संग्रह ३९२
पुरुषोत्तम-आविर्भाव-निर्णय ५९१
पुरुषोत्तमसहस्रनाम ४२१
पुष्टि-दृढ़ाव ५९३
पुष्टिपथ-मर्मनिरूपण ५९१
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ५६१,५९६
पुष्टिमार्गलक्षणानि ५९१
पुष्टिमार्गीय घ्यान-प्रकार-विवेचन ५९१
पुष्टिमार्गीय-स्वरूप-निरूपण ५९१
पुष्पोद्भेद ४७६
पूजारत्नाकर ३६६
पूजावसर ११५
पूतनामोक्षं ३१०,३१५,५४६
पूतना-वध १७१,१७७
पून्तानत्तिन्टे कृतिकल ३३५
पूरप्रबन्धं ३५८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्णाक्षरी ३०१
पूर्णानन्द ५६४
पूर्वभारतं-चम्पू ३२१,३४९
पूर्वमीमांसाभाष्य ५६१
पूर्वमीमांसाभाष्यविवरण ४८६
पृथुकोपाख्यान १४६
पेरुमाल-तिरुमोलि ४४९
पौंड्रक-वधं ३१५
प्रकाशिका : दशोपनिषद् भाष्य ४५४
प्रक्रियाकौमुदी ४८३
प्रक्रियाप्रकाश ४८३
प्रक्रियासर्वस्व ४७६
प्रक्रियासर्वस्वम् ३४६
प्रणयिमाधव-चम्पू ५९६
प्रतिज्ञायौगन्धरायण ५०४
प्रतिमा (नाटक) ५०४
प्रद्युम्नानन्द ५६९
प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डन ५११
प्रपञ्चसारभेद ४५९
प्रपत्तिचिन्तामणि ४७८
प्रपन्नकल्पवल्ली ४७८
प्रपन्नगीतम् ४५३
प्रपन्नवृत्तिनिर्णय-सन्दर्भ ४८५
प्रपन्नसुरतमञ्जरी ५८४
प्रबोधचन्द्रिका २७७
प्रबोधचन्द्रोदय ४४३
प्रभा-चरित्रम् ५९५
प्रभाताष्टक ५९२
प्रभुप्राकट्य-विचार ५९२
प्रभु-प्रादुर्भाव-विचार ५९१,५९२
प्रभुस्वरूपनिरूपणाष्टकम् ५९२
प्रमाणलक्षण ५११
प्रमिताक्षरामुहूर्तचिन्तामणि टीका ५४२
प्रमेयरत्नार्णव ४९६
प्रमेयरत्नावली ४९३
प्रवृत्ति-निवृत्ति-रत्नावलि २१८
प्रसन्नराघव ४६२,५०१
प्रसाद-मालिका १९९
प्रसादवागीश-भाष्य-विवरण ४९५
प्रस्थानभेद ५११
प्रस्थानरत्नाकर ४८५
प्राकृतरत्नाकर ५६९
प्राणाभरण ४८२
प्रातःयुगलस्मरणं ५९२
प्रातःस्मरणम् ५९२
प्रामाणिकाष्टक ५९२
प्रायश्चित्तप्रदीपिका ५३४
प्रार्थनामृत ५३१
प्रार्थनाष्टकं ५९२
प्रियाचरण चिह्न तात्पर्यम् ४९२
प्रेम-तरंगिणी टीका ५२८
प्रेमनिकुंज १९३
प्रेम-रसायन ६४१
प्रेमलक्षणाभक्ति ५९६
प्रेमविलास ४३४,४६६
प्रेमसम्पुट ५८७,५९७
प्रेमाङ्कुर नाटक ५९५
प्रेमामृत-चम्पू ५९५
प्रेमामृतभाष्य ५६३
प्रौढमनोरमा ४८३
फलटण-माहात्म्य १८८
फलविवेक ५९२
बकवध ३११
बसंत-भजन-बहार ६४१
बहिरबी टीका १६५
बहिर्मुखत्व-निरूपण ५९२
बहिर्मुखत्व-निवृत्तिः ५९२
बाण-युद्ध ३०९,३१४
बामन खुङ् थोकलोन १,९३
बारहखड़ी-महिमा ४७५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बारामाह ४७१
बालकन को स्वरूप ५९३
बालकाण्ड ३४६
बालकृष्णशरणाष्टक ४६८
बालकृष्णाष्टक ४६८
बाल-क्रीड़ा १६७,२८३
बालगोविन्द-टीका ४७५
बालचरित ५०२
बालचरितम् ५९७
बाल-चरित्र १७७
बालप्रबोधिनी ४५८
बालबोध ११९,५६१
बालभागवत ४८५
बालहरिवंश ५९७
बावन-वचनामृत ५८९
बिल्वमंगल २२३
बिल्वमंगल-नाम-कोष्ठ ५५५
बिल्वमंगल-स्तोत्र ५५५
बुधमोददा टीका ५४२
बुरंजी ५
बृहत्कृष्णगणोद्देशदीपिका ४४०
बृहत्क्रमसन्दर्भ ४६७
बृहत् झूमर-रस-मंजरी ३८२
बृहत्तोषिणी ५८३
बृहद्दशम २७३
बृहद्वाक्यटीका २७७
बृहद्-व्रजगुणोत्सव ५९५
बैठकचरित्र ५२१
बौद्धतन्त्रमथन ५३४
ब्रजराजपंचासिका ४७१
ब्रज-विलास ६३५
ब्रह्मज्ञान सखोल १४३
ब्रह्मपुराण ४०७
ब्रह्मपुराणोक्तनामगीता ५४२
ब्रह्मवाद ५९१
ब्रह्मवैवर्तपुराण ३६५,४०७
ब्रह्मसम्बन्ध-वाक्य-कठिनांश-विवेचनं ५९१
ब्रह्मसूत्र ४७८,४९०,५३७
ब्रह्मसूत्रभाष्य ५१३
ब्रह्मसूत्रानुभाष्य ५१३
ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान ५१३
ब्रह्मस्तुति ११९,२८५
ब्रह्माण्डगोलक १९०
ब्रह्मोत्तर-खण्ड २७३
भक्तकथामृतसार १७९
भक्तनामावली ५२५
भक्तमंजरी-माला २७९
भक्तमाल ३९४,४६३
भक्तिदीप ४८५
भक्ति-द्वैविध्य-निरूपण ५९१
भक्तिपथ ६४१
भक्तिप्रभा ४८९
भक्ति-भागवत ४४३
भक्ति भागवतमहाकाव्य ४४३
भक्ति-मंजरी ३६२
भक्तिमार्ग-पुष्टिमार्गत्व-निश्चयः ५९१
भक्तिमार्तण्ड ४६०
भक्ति-रत्नाकर ३९४,४६५,४८७
भक्ति-रत्नावली ३९४
भक्ति-रसामृत २२३
भक्तिरसामृतशेष ४६६
भक्ति-रसामृत-सिन्धु २३,४६६,४८८,५५१
भक्ति-लीलामृत २२३
भक्तिवर्धिनी ५६१
भक्ति-वर्धिनी-स्तोत्र-विवृति ४९५
भक्तिवैभव नाटक ४४३
भक्ति-संवर्द्धन-शतक ३४८
भक्तिसारामृत २५७
भक्तिहंस ५२८,५६३
भक्तिहेतु ५६३
भगवत्करुणावलिः ५३५
भगवत्-चरणचिह्नवर्णनं ५९२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत्रहस्य १९३
भगवत्स्तुति ५३५
भगवदीय-परीक्षणम् ५९२
भगवद्गीता ११३,२६६,२७६,२८१,३४२
भगवद्गीताटीका (गूढार्थदीपिका) भगवद्भक्तिरसायन ५११
भगवद्गीतातात्पर्यनिर्णय ५१३
भगवद्गीता-प्रकाशिनी ५४२
भगवद्गीताभाष्य ५१३
भगवद्गीता-माहात्म्य १८८
भगवद्गीता-संग्रह ३४३
भगवद्दूत ३१९
भगवद्प्रकृतिवर्णन ५९२
भगवद्प्रादुर्भाव-सिद्धान्त ५९२
भगवद्-शास्त्रनिर्णय ५९२
भगवन्तं प्रति ५०८
भजनकल्पतरु ६२५
भजनमहातरंगिणी ६२५
भजनावली ६४६
भद्रदीपं ३५६
भरत-शोक १७७
भरवस-मालिका १९९
भवप्रीतानन्द पदावली ३८२
भवान्यष्टक २४०
भविष्यपुराण ४०७
भागवतं इरुपत्तिनालुवृत्तं ३१९
भागवत ११८,१२७,१६५,१७७,१८१,१९०,२७३,३३६
भागवत-चन्द्रिका ५६५
भागवत-टीका ५४२
भागवत-टीका-समुच्चय ३५७
भागवतत्त्वदीपिका ५६३
भागवततात्पर्यनिर्णय ५१३
भागवतपुराण ३,४,८,२२,३१,१२८,१३१,४०७
भागवत-पुष्पाञ्जलि ५९६
भागवतप्रथमश्लोक-व्याख्या ४९२
भागवत-महापुराण ३६६
भागवत-महिमा ५३५
भागवतम् ३३१,३५०
भागवतव्याख्या १११
भागवत-सन्दर्भ ४६७
भागवतानुक्रमणी ४९७
भागवतामृतम् २३
भागवतोद्योत ५९५
भाग्यचन्द्र-चरित ७४,८६
भाण-रसरत्नाकरम् ३३३
भामाविलास १६७
भामिनीविलास ४८२
भारतं चंपू ३०८-३०९,५३४
भारतकथा ३०७
भारतगाथा ३०८,३२४,३२७
भारतचन्द्रिकासारसङ्ग्रह ५६८
भारतमाला ३६०
भारतम्-पाट्टु ३२७
भारतीसंदेश (कविता) भारतीपत्रिका ५४०
भावगीत-संग्रह ३७१
भावनापुरुषोत्तम ५३४
भावनालय ५९३
भावपोषकं ५९२
भावभावना ५९२
भावविभाविका टीका ५४१
भाव-साधक-बाधकनिरूपण ५९२
भावार्थदीपिका २८१,५३७,५७९
भावार्थमञ्जरी २२३
भावार्थ-रामायण ११८,१८१
भावोद्भेद ५३४
भाषा-कर्णामृतं ३१०,३३५
भाषा-गीत-संग्रह ३७१,३७५,३७६,३७७,३८६,३९७,४०४
भाषाशिक्षापत्र ५९३
भाषाष्टपदी ३५१
भाष्य ५३६
भाष्यप्रकाश ४८५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाष्यप्रकाशरश्मि ४६०
भाष्यविवरण ४५८
भीष्मप्रतिज्ञा १७१
भीष्मविजयम् ३२१
भुजङ्गप्रयाताष्टक ५६३,५९२
भूपवियोग ४७१
भूपाली १८८
भृङ्गरत्नावली ४१६
भोज-चंपू ३१२
भ्रमरसन्देश ३४०
भ्रान्तिवादतिमिरभास्कर ५४३
मंगल गजल-गीति ५०८
मंत्ररामचरित २४०
मङ्गलगीत ५९५
मणिदर्पण ५३४
मणिमाला ४३३
मतबोध ४९२
मत्स्यावतार ४७६
मत्स्यावतारम् ३४६
मत्स्येन्द्रनाथ-चरित्र २२३
मथुरागमन १६७
मथुरामहिमा ५५१
मथुरा-विरह २२
मदत्यागहेतु ५९२
मदालसाचम्पू ४६९
मदुरामीनाक्षी-प्रार्थना २२३
मधुकेलिवल्ली ५९४
मधुराष्टक ५६१
मधुराष्टक-टीका ४५९
मधुराष्टक-तात्पर्य ५९२
मध्यमव्यायोग ५०१
मध्याह्नलीला ५९२
मध्वविध्वंसन ५३४
मनःप्रबोध काव्य ५२८
मनःशिक्षा ५३१,५८७
मनाचे श्लोक २९०
मनोनुरञ्जन ४३०
मनोरमाकुचमर्दन ४८२
मनोल्हरी ५०८
मन्त्रप्रदीप ३७१
मन्त्रभागवत १४६,१६७,२७३,२७४
मन्त्ररहस्यषोडशी ४७८
मन्त्ररामायण २७३
मन्त्रार्थरहस्य ४७८,५८५
ममोत्तम श्लोक की व्याख्या ५९२
मलयालम-काव्य-चन्द्रोत्सवम् ५७३
मल्लारि-माहात्म्य २८६
मल्लिकामकरन्द ४२२
महदनुभवेश्वरी ३०१
महागूढ-ध्यानम् ५६५
महादेव-प्रयाण-वर्णन १७१
महानुभावांचे तत्त्वज्ञान ११५
महानुभावीय मराठी वाङ्मय ११५
महाप्रभुजी के प्राकट्य की वार्ता पर भावप्रकाश ५९३
महाबल-चरित्र १६७
महाभारत ३,४,२१,२२,११९,१३३,१७७,२७३,४०७
महाभारत की टीका ३७७
महाभारततात्पर्यनिर्णय ५१३
महाभारतम् ३३१
महिषमंगलभाण ३४१
महेन्द्रनीराजन ५०८
महोत्सवनिर्णयम् ४९१
माडमहीशप्रशस्ति ३४६
मातृकी २६२
माधव-महोत्सव ४६६
माधवविलास २६५,२६६
माधवानन्द-नाटिका ४०५
माधवानल ३६७
माधवाष्टक ५९५
माधुर्य-कादम्बिनी ५९७
मानपरिच्छेदम् ३४६
मानमेयोदय (मानभाग) ४७६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानवेदचरित ५२५
मानसोल्लास ३९५
मायावादखण्डन ५१३
मारुतशक्ति ४६०
मार्कण्डेय-चण्डी ६७
मार्कंडेय-पुराण १७७
मार्गशिक्षा ५९२,५९३
मार्गस्वरूप-निर्णय ५९१
मार्ग-स्वरूप-सिद्धान्त ५९३
मार्गानुक्रमध्यान ५९२
मालती-माधव ३३९
माहेश्वर-पांचरात्र-सार ५२८
मिथिला-तत्त्व-विमर्श ३७६
मीमांसासारसङ्ग्रह ५६८
मीराबाई २२३
मीरा-लहरी ५९४
मुकुन्द-विलास १६७,१८७,५९५,५९६
मुकुन्दाष्टक ५३५
मुक्तक-संग्रह ३५६
मुक्ताचरित ५७६
मुक्ताफल ४९७
मुख्यशक्ति-स्तोत्र ५९२
मुग्धबोध ४९६
मुण्डकोपनिषद्-भाष्य ५७१
मुरलीनवरत्नमालिका १६७
मुरलीपंचक १६७
मुरारिपुस्तोत्रम् ३२१
मुरारिविजय ४६८,५७६
मूल-निरूपण ५९१
मूलरूप-संशयनिराकरण ५९२
मृगीचरित्र १७७
मृत्तिका भक्षण १७०
मेघ-सन्देश ३३९
मेवाराम-भजन-माला ६४६
मैत्रायणी संहिता १३३
मैथिल-भक्तिप्रकाश ३८४
मैथिली-गीतरत्नावली ३८६
मैथिली-साहित्य का इतिहास ३७६
मोक्षदायक-प्रकरण ३१४
मोक्षसिद्धि-प्रकरण ३१४
मौक्तिकमालिका ५३४
यजुर्वेदव्याख्या ५३४
यतिप्रणवकल्प ५१३
यतिराजदण्डक ५६९
यथार्थदीपिका २८१
यदुनाथचरित ३४८
यदुनाथचरितम् ३२०
यमकभारत ५१३
यमुनाचतुष्पदी ४६८
यमुनाजी के धोल ५९३
यमुनावर्णन ४८२
यमुनाविज्ञप्ति ५९२
यमुनाष्टक ४६९,४७५,५६१
यमुनाष्टपदी ५६३
यमुनास्तोत्र ४५४
यशस्तिलकचम्पू ४६८,५१९
याकाइरोल १०९
याज्ञवल्क्यस्मृति की टीका ५२६
यादवराघवीय ५६९
यादवाभ्युदय ४२२,५६८
युगलाष्टक ४६७,५२४
युद्धकाण्ड २९०
युधिष्ठिर-विजय ५६२
योगिनीतन्त्र ३
रघुचन्द्रिका ४७१
रघुनाथभूपविजय ५३४
रघुवंश ३१२,५६८
रघुविलास ४२२
रघुवीरविजय ५६९
रणवोर-रत्नाकर ५३२
रण्डिकास्तोत्र १८८
रत्नकला-चरित्र ५५८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नखेटविजय ५३४
रत्नप्रदीप ५३४
रमावल्लभदास-महिमा २७७
रमावल्लभदास-विरुदावलि २७७
रसकल्पद्रुम ३७७
रसकल्पलता ५९६
रसकुल्याटीका ४१४
रसकृष्णमाधुरी ५९३
रसगङ्गाधर ४८२,५०८
रसतरंगिणी ४९९
रसमंजरी ४९९
रसमञ्जरीपरिमल ४६१,५७६
रससदन-भाण ३२१
रसात्मकभावस्वरूप-निरूपणं ५९२
रसार्णव ५३४
रसास्वादिनी-टीका ४८७
रसिक-अनन्य-परचावली ४९३
रसिकजीवन ४९९
रसिकाह्लादिनी ५९५
रहस्यप्रबन्ध ४७८,४८६,५८०
रहस्यरत्न ५६९
रहस्यात्मक-ध्यानम् ५६५
रागतरंगिणी ३७१,३७६,३९७
राग-भजन-संग्रह ३७६,३९७
राघवकृष्णपाण्डवीय ५३४
राजभोग-भावना ५९२
राजसूयं ३४६
राजसूय-प्रबन्ध ४७६
राधाकुण्डस्तव ५९४
राधाकुण्डाष्टक ५३१
राधाकृष्णमिलन-लीला ४०५
राधाकृष्णार्चनदीपिका ४६७
राधा-गीत ६३४
राधागोविन्द-संगीतसार ३८१
राधाचन्द्रोदय १६७
राधाप्रार्थनाचतुःश्लोकी ५६३
राधाप्रियस्तोत्र ५३५
राधाभक्तिलहरी ५२८
राधाभिसार ५९८
राधाभुजंग १६७
राधामाधव ५३३
राधामानतरङ्गिणी ५९५
राधारसमञ्जरी ५९५
राधारससुधानिधि ४८७,४८८
राधारहस्य ४५२,५९४
राधाविनोद ५९५,५९७
राधाविलास १६७,१७७,१९०,१९१,१९३,५९८
राधाविहारचम्पू ४७५
राधाष्टक ५९२
राधा-सिद्धान्ततरंगिणी ४९२
राधासुधानिधि ४१४,४९१,५२८
राधासौन्दर्यमञ्जरी ५९८
राधिकाष्टक ५९६
राधिकास्तव ५३१
राधेयसिद्धान्त ५५८
राधोपनिषद् ४१०
रामकथा ४७६
रामचन्द्रस्तुति ५५४
रामचरितमानस १८२
राम-जन्म १७०
रामनाट्टं ३४४
रामपंचशती ३१४
रामप्रकाश की टीका ३७७
रामविजय २८६,२८७
रामायणं ३५०
रामायण ४,२१,१७७,२२८,२७३
रामायणं चंपू ३०९
रामायणचम्पू का अवशिष्ट भाग ५३४
रामायण-संग्रह ५६९
रामायणसारसंग्रह (रघुवीरस्तव) ४८०
रामेश्वर चरित्र मिथिला रामायण ३७२,३८९
रासकल्पसारतत्त्व ५९७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रास की महिमा ५४०
रासक्रीड़ा १६७,१७१,३०९
रासक्रीड़ाकाव्य ३४१
रासक्रीड़ा तिस्सा १९९
रासपञ्चाध्यायी ६७,११९,२८४,४७५
रासरहस्यम् ५४०
राससङ्गोष्ठी ४३३
रासाब्धिमहाकाव्य ५९५
रिपोर्ट आन द सर्च फार संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स ५१३
रुक्मिणोकल्याण ५३४
रुक्मिणी-गीत ६७४
रुक्मिणी परिणय ३१५,३६७,३८५,५३२,५४६
रुक्मिणीपरिणयचम्पू ५७१
रुक्मिणी-विलास १६७
रुक्मिणी स्वयंवर ११८,१२७,१४८,१५१,१७१,१८१,१८८,
१८९,१९७,१९९,२२८,२६२,३१५,३१९,४७५,५४६
रुक्मिणी-हरण १६७,४६१,५५९,५७६
रुक्मिणी-हरण तिस्सा १९९
रेखता ५९३
रेणुकास्तव २२३
लंकावर्णन १७१
लक्ष्मणा-स्वयम्वर १८८
लक्ष्मोचरित ४
लक्ष्मीनारायणचरित ५६९
लक्ष्मीनारायणहृदय ६७
लक्ष्मीलहरी ४८२
लक्ष्मीसहस्र ५६९
लघुभागवतामृत की टीका ४९३
लघुस्तवराज ५८०
लघुस्तवराज-भाष्य ४७८
ललितमाधव ५५०,५५१
लीलाचरित्र १९७
लीलाचरित्र-ग्रन्थ १४९
लीलाभावना ५९२
लीलालहरी ५६४
लोचनरोचनी ४६७
वंशी-शिक्षा ५९५
वचनामृत ४५९
वच्छहरण १९७,२२८
वछाहरण १५१
वह्निमहाराजस्तव ५४६
वत्सला-हरण २२३
वत्सहरण १२७,१७०
वनमालीकीर्तिछन्दोमाला ५४२
वरदराज-पञ्चाशत् ५६७
वरदाभ्युदय ५६९
वराहचम्पू ५६८
वराहशतक ५६९
वर्णरत्नाकर ३९३
वल्लभपंचाक्षर-स्तोत्र ५९२
वल्लभप्रादुर्भाव ५९२
वल्लभ-स्तोत्र ५०७
वल्लभाष्टक ४६०,४६९,५३०,५६३,५९२
वल्लभाष्टक टीका ४५९
वसुमतीमानविक्रम नाटक ३१७
वह्निस्तवन ५३०
वाक्चक्षुमुख्यत्व-निरूपणम् ५९२
वाक्यवृत्ति-टीका २७६
वाक्यावली ३५३
वाटिकासमर्पणभाव निरूपण ५९२
वादतारावली ५३४
वादविनोद ३९६
वादित्रयखण्डन ५६८
वामनचरित्र १४६
वामनावतार २२३
वाल्मीकि-चरित्र १७१
वाल्मीकीय रामायण १३३,२३३
वासुदेवचरित ५९७
वासुदेवविजय ४७६,५६२
विक्रमीयं ३४४
विचारसागर २२९,२८३
विजयपांचाली ३,२३,८९,९४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विज्ञप्ति ५९२
विज्ञप्तिश्लोकाः ५०७
विज्ञाननौका टीका ५४२
विज्ञानरत्न ३१३
विट्ठलनाथाष्टक ५९२
विट्ठलेश अष्टाक्षर-शतनामानि ५९२
विट्ठलेशाष्टक ५३०
विठ्ठल माहात्म्य १८१
विठ्ठल-स्तोत्र २२३
विदग्धमाधव ५५०
विद्याकर सहस्रकम् ३७७
विद्वन्मण्डन ५६३
विद्वन्मण्डन की हृत्तितोषिणी टीका ४५८
विधिनिर्णय ५३४
विनय-पंचविंशति ५२८
विपरीत-शृंगार-फलकं ५९२
विप्रलापा ५०८
बिभीषणोपदेश १७७
वियोगिनी ५०८
विरहिणी २१२
विरोधलक्षण टीका ४५९
विलापकुसुमाञ्जलि ५३१,५९६.
विवेकचन्द्रोदय ५७५
विवेकदर्पण २०२
विवेकधैर्याश्रय ५६१
विवेकसिन्धु ११४,१२४
विश्वगुणादर्शचम्पू ५६९
विश्वामित्रयज्ञ-रक्षण १७७
विश्वामित्राभिगमन १७७
विषण्डमायाचरितं ३०९
विष्णुतत्त्वनिर्णय ५१३
विष्णुपादादिशकेशस्तव ३३९
विष्णुपुराण २२,४०७
विष्णुसहस्रनाम ५७१
विष्णुसहस्रनामबोधिनी २२३
वीरनायक (गणित का ग्रन्थ) ५२६
वीरमित्रोदय ५२६
वीरविलास ४७१
वृत्ततारावली ५३४
वृत्तमुक्तावलि २४०,५०८
वृत्तवनमाला २४०
वृत्तविहारिणी गीता ५९६
वृत्तावतंस २४०
वृत्तिप्रभाकर २५३,२८३
वृन्दावन-मञ्जरी ५९६
वृन्दावनमहिमामृतम् ४८७,४८८
वृन्दावनविनोद ५९७
वृन्दावनशतक ५८७
वृन्दावनस्तुति ५५५
वृषभानुजा नाटिका ५०७
वेणीसंहार ४९८
वेणुसुधा १६७,२८२
वेणमणी-प्रस्थानं ३२१
वेदस्तुति २१८,२८५
वेदस्तुतिटीका ५११
वेदान्तकल्पलतिका ५११
वेदान्तकामधेनु ४११,४८६
वेदान्तकौस्तुभ ४७८,५८०
वेदान्तकौस्तुभप्रभा ४५४
वेदान्तचिन्तामणि ४६०
वेदान्तपारिजातसौरभ ४७८,५८०
वेदान्तप्रकरण २७७
वेदान्तरत्नमंजूषा ४३४,४८६
वेदान्तरत्नमाला ३३२,४३४
वेदान्तवादावली ५३४
वेदान्तसंग्रह ५७१
वेदान्तसार ३१३,४८९
वेदान्तसूर्य २८६
वैद्यजीवन ५५८
वैद्यनाथक्षेत्र सर्वस्व ३८२
वैद्यावतंस ५५८
वैराग्य-चन्द्रोदय ३१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैराग्यशतक ४८०
वैविध्य-स्तोत्र ५९२
वैश्वानराष्टक ५९२
वैष्णवतोषिणी ४६७
वैष्णव-वन्दना ४३५
वैष्णवसिद्धान्त ४९०
व्यंकटेश-माहात्म्य २८६
व्यंकटेशस्तोत्र १९३
व्यंकटेशाष्टक २२३
व्यवहारधर्मबोध १९३
व्युत्पत्ति-विलास ५०८
व्रजचन्द्रिका ५९५
व्रजमहोदधि ५९५
व्रजानन्दामृतम् ५२८
व्रजेन्द्रचरित ५९८
व्रजोत्सवचन्द्रिका ५९५
व्रजोत्सवाह्लादिनी ५९५
व्रतखण्ड १२४
शंकरदेव ऐण्ड हिज़ टाइम्स ८,३१
शंकरमुक्तावली अथवा न्यायमुक्तावली ५३४
शंकराचार्य-चरितं ३२२
शंकराचार्य-चरित्र (१-३) २२३
शङ्करहृदयाङ्गण ५५४
शङ्कराचार्यतारावली ५३४
शङ्कराभ्युदय ५३४
शतदूषणी ५६७,५६८
शबरी-आख्यान १७७
शयनआर्या ५३०
शाखावर्णन-स्तोत्र ४०२
शाण्डिल्यसूत्रटीका ५११
शान्तिविलास ४८०
शारीरकभाष्य २०९
शार्ङ्गधरपद्धति ४९८
शास्त्रदीपिका व्याख्या ५३४
शास्त्रसिद्धान्तलेशटीका ५११
शास्त्रार्थप्रकरणयोजना ४९६
शिक्षापत्र ५९१,५९२
शिक्षाश्लोक ५६१
शिक्षाष्टक ५१८
शितिकण्ठजय ५३४
शिल्परत्न ३६१
शिवतत्त्वरहस्य ४८०
शिवमहिम्नस्तोत्रव्याख्या ५११
शिवरात्रिपूजा-माहात्म्य १७७
शिवरात्रिमहोत्सव: ५४०
शिवरात्रि-माहात्म्यम् ३१३,३५०
शिवलीलामृत १९३,२८६
शिवलीलार्णव महाकाव्य ४८०
शिविकथा १७७
शिवोत्कर्षमञ्जरी ४८०
शिवोदय ३५३
शिशुपाल-वध १२७,१५१,१९७,२२८,५१९,५२०
शुकगणिका १९३
शुकदूत ५९५
शुकदूत महाकाव्य ४७५
शुकपक्षीया ५८४
शुक-रम्भा-संवाद १७९
शुकशारदेन्दु ५१
शुकाष्टक १८१
शुद्धाद्वैतचन्द्रोदय ४६०
शुद्धाद्वैतमार्तण्ड ४५८
शुद्धिनिर्णयसन्दर्भ ३७७
शुभकर्म निर्णय ३७६
शून्यवाद ५९२
शूर्पणखा-प्रलाप ४७६
शृङ्गारकोशभाण ४८०
शृङ्गारदीपिका ४९९,५६९
शृङ्गारमण्डन ५६३
शृङ्गाररस-मंडनम् ५९६
शृङ्गारलहरी ५६९
शृङ्गार-सर्वस्व ५३४
शृङ्गार-सुधाकर ५४६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शैलाब्धीशप्रशस्ति ३४६
शैव-सर्वस्वसार ३९२
श्यामसगाई ५९३
श्यामसुन्दर-लीलास्तोत्र ६४१
श्रवणानन्द ५६९
श्रीअमृतानुभव १९२
श्रीकल्याणकरुणाष्टक ५४०
श्रीकल्याणराय-अष्टोत्तरशतनामानि ५९२
श्रीकृष्णः शरणं मम ४५३
श्रीकृष्ण-कथा १८९
श्रीकृष्णकर्णामृतं ३१०,३३५,३३६,३५४
श्रीकृष्णकाव्य ५५५
श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम् ५९७
श्रीकृष्ण-चरण-विज्ञप्ति ५८८,५९२
श्रीकृष्णचरितं ३१५,३२२
श्रीकृष्णचरितंमणिप्रवालं ३१९
श्रीकृष्णचरिताख्यानं ३३४
श्रीकृष्ण-चरित्र २३३,५३५
श्रीकृष्णचैतन्यसहस्रनामस्तोत्र ४४०
श्रीकृष्णजन्म-रहस्य ३६७,३९७
श्रीकृष्ण जयन्ति व्रतोत्सव भजन १६६,२७७
श्रीकृष्णपुराण ३३३
श्रीकृष्णपुराणम् ३२०
श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषद् ४१०
श्रीकृष्णप्रयाण ५६४
श्रीकृष्ण-बालक्रीड़ा १८१
श्रीकृष्णभक्तिचन्द्रिका ४३०-४३१
श्रीकृष्ण-माहात्म्य १५६
श्रीकृष्ण-रस-संगीत ७२
श्रीकृष्ण-रससंगीत-संग्रह २२,२४
श्रीकृष्ण-लीला १८१,२२३
श्रीकृष्ण-लीला नाटिका ५७१
श्रीकृष्णलीलामृत ४३५
श्रीकृष्णलीलामृतम् ३२१,५०६
श्रीकृष्णलीलास्तव ५८३
श्रीकृष्णविजय २७४,५२४,५६९,५७३
श्रीकृष्णविजयमणिप्रवालं ३१८
श्रीकृष्णविरुदावली ५९८
श्रीकृष्णशरणम् ५९६
श्रीकृष्णशरणाष्टकं ५९२
श्रीकृष्णशृंगारतरगिणी ५६९
श्रीकृष्णस्तवराज ४७८
श्रीकृष्णायन ६३०,६४१,६५४
श्रीकृष्णोदन्तम् ३५२
श्रीकेशवकाश्मीरिचरितम् ५४०
श्रीगिरधराष्टकम् ५९२
श्रीगुरुचरित्र २८३
श्रीगुरुदेवाष्टकम् ५९२
श्रीगुसांईजी के स्वरूप की भावना ५९२
श्रीगोकुलनाथजी के रास को प्रसंग ५९३
श्रीगोकुलाष्टक ५६३
श्रीगोकुलेश-अष्टाक्षरशतनामानि ५९२
श्रीगोकुलेश-प्रवेशलीला ५९२
श्रीगोकुलेश-सेवा-आह्निक ५९१
श्रीगोदावरी-मानसपूजा २४०
श्रीगोपजनवल्लभाष्टकं ५९२
श्रीगोपीगीतरहस्यम् ५४३
श्रीगोविन्दगुणार्णव नाटक ४७५
श्रीगोविन्द दामोदर-स्तोत्र ५५५
श्रीगोविन्दाष्टक ४७५
श्रीचांगदेवपासष्टी १९२
श्रीज्ञानेश्वराष्टक २४०
श्रीज्ञानेश्वरी १९२
श्रीज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका २५६
श्रीतुलसीस्तोत्र २४०
श्रीदिव्यदम्पतिवरस्तव ५६९
श्रीनवनीतप्रियाष्टक ५९२
श्रीनागरी-नागर-स्तोत्र ५९२
श्रीनाथद्वार की भावना ५९२
श्रीनारायणाष्टक २४०
श्रीनिम्बार्क देवाचार्य-चरितम् ५४०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीनिवासकुलाब्धिचन्द्रिका ५६९
श्रीनिवासगुणलेशसूचक ४०२
श्रीनिवासचरित्र ५६९
श्रीनिवासविलासचम्पू ५९७
श्रीनिवाससहस्र ६९
श्रीनिवासामृतार्णव ५६९
श्रीनृसिंह-वामन-जयन्त्युत्सव-व्रत-वैशिष्ट्यानि ५९२
श्रीपद्मनाथकीर्तन ३१५
श्रीपद्मनाभशतकं ३६२
श्रीपरशुराम देवाचार्य-चरितम् ५४०
श्रीपादसप्तति ३४६
श्रीपुष्टिमार्गलक्षणानि ५६१
श्रीबाँकेबिहारी-वन्दना ५४०
श्रीभक्तराज व्रजलाल बोहरा-चरितम् ५४०
श्रीभगवत्शरणम् ५९६
श्रीभट्टचरितम् ५४०
श्रीभागवतपुस्तक-नित्यपूजनविधि ५९२
श्रीभागीरथी-स्तोत्र २४०
श्रीमदाचार्यचिन्तन ५९२
श्रीमदाचार्य-सकलावतार-साम्यरूपम् ५९२
श्रीमद्दासबोध २९१
श्रीमद्प्रभोचिन्तनप्रकार ५९१
श्रीमद्प्रभोप्रादुर्भावनिरूपण ५९२
श्रीमद्प्रभोर्वयो-निरूपण ५९२
श्रीमद्प्रभों-सर्वान्तर-निरूपण ५९२
श्रीमद्भगवद्गीता १२७,१३९,४६०,६४८
श्रीमद्भागवत ४२,१३३,१५६,१५८,१८७,२४४,३४६,
३५३,३६५,३६७,४६७
श्रीमद्भागवत टीका ४४०,४५४
श्रीमद्भागवत दर्पण ४७५
श्रीमद्भागवत पुराण ६७
श्रीमद्भागवत महापुराण ७,२९
श्रीमद्भागवतार्थदिग्दर्शनम् ५३६
श्रीमहाप्रभु-अष्टोत्तरशतनामानि ५९२
श्रीमहाप्रभु-प्राकट्य ५९२
श्रीमहालक्ष्मीस्तोत्र २४०
श्रीमारुतिवन्दना ५४०
श्रीयाल-चरित्र १७९
श्रीरङ्गराजचरित ५६८
श्रीरमावल्लभांची गाथा २७७
श्रीरसिकभक्तमाल ४७४
श्रीराधाकृष्णस्वामीचरितम् ५४०
श्रीराधानुनयविनोद ४३२
श्रीराधारमणाष्टक ४७५
श्रीरामकर्णामृत २४०
श्रीरामचरितम् महाकाव्य ३२१
श्रीरामजन्माख्यान २२३
श्रीवनशंकरीस्तोत्र २४०
श्रीवराहचूर्णिका ५६८
श्रीवल्लभचरण-विज्ञप्ति ५९२
श्रीवल्लभशरणाष्टकं ५९२
श्रीवल्लभाष्टकं ५९२
श्रीवासुदेवस्तवं ३५३
श्रीविट्ठल-स्तोत्र २४०
श्रीविष्णुसहस्रनाम-भाष्य ५७१
श्रीविहारीदासत्यागी-चरितम् ५४०
श्रीव्यासनन्दनभाष्यः ४९१
श्रीश्यामचरणदासाचार्य-चरितम् ५४०
श्रीसमर्थगाथा २९१
श्रीसर्वेश्वरप्रशस्ति पद्यावलि ५७३
श्रीस्वयंवरं ३२२
श्रीस्वामिनीजी के चरण-चिह्न की भावना ५९२
श्रीस्वामिन्यष्टक ५६३
श्रीहरिदासस्वामिवन्दना ५४०
श्रीहरिभक्त-चरितम् ५४०
श्रीहरिव्यासदेवाचार्य-चरितम् ५४०
श्रुतप्रकाशिका ५६७
श्रुतितात्पर्यामृत ४८९
श्रुतिरहस्य ४५८
श्रुतिसिद्धान्तमञ्जरी ४७८
श्रुतिस्तुति-व्याख्या ४८७
श्रुत्यन्तकल्पवल्ली ४७८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुत्यन्तसुरद्रुम ४७८
श्वेतारण्य-स्तुति ३५७
षट्षष्ठिका ५९१
षट्सन्दर्भ ४६७
षष्ठीपूजन ५९२
षोडश-ग्रन्थ-टीका ५३०
षोडशग्रन्थविवृति ४८६
षोडशस्तोत्र ५९२
संकल्पकल्पद्रुम ४६७
संक्षेप भारत ३५७,५६२
संक्षेपरामायणं ३५७,५६२
सक्षेप-शारीरक टीका ५११
संगीत-गीता-पुष्पाञ्जलि ५९६
संगीतदामोदर २६
संगीतमाधवम् ४८७,४८८
संन्यासनिर्णय ५६१
संस्कृतगाथासप्तशती-व्याख्या ५०८
संस्कृतरत्नाकर ५०९
संस्कृत सुबोधिनी ५०८
संहित वचन तथा आख्यान-स्तुति ५३०
सकल-सन्त-गाथा २९३
सङ्कल्पसूर्योदय ५६८
सङ्गीतमाधव ५९४
सच्चिदानन्द-भजनमाला ६४९
सती-सप्तदशी ५०८
सत्य तपः कथा ३५३
सत्यभामा तिरसा १९९
सत्यभामापरिणय ५७६
सत्यभामाविलास ५७६
सत्यहरिश्चन्द्र ४२२
सत्संगनिर्णय ५९२
सत्संग-सतसई ६४१
सत्सिद्धान्त मार्तण्ड ४६०
सत्स्नेहभाजन ४६०
सदाचारप्रकाश ४७८
सदाचारस्मृति ५१३
सदाशिवी ३२१
सदुक्तिकर्णामृत ४२६,४३८,४५७
सद्गुरु-महिमा-उपदेश १८१
सद्धर्मभूषण ५३७
सन्तकथामृत २२३
सन्तचरित्र २३३
सन्तमाल १७९
सन्त सखू २२३
सन्तानगोपालं ३१०,३१५
सन्तानगोपालंपाना ३३५,३३७
सन्तानगोपालप्रबन्ध ५४६
सप्तश्लोकी की टीका ५९१
सभाप्रवेशं ३१०,३१९
सभारञ्जनशतक ४८०
सम्यालंकार ४१९
समयसर्वस्व ५३४
समर्पण गद्यार्थ ५९३
समुद्रमन्थन ५५९
समुद्रमन्थनचम्पू ५७१
सम्प्रदायकल्पद्रुम ५२९
सम्प्रदायपरिमल २४०
सम्प्रदाय-सुरतरु १९३
सर्वभोग्य सुधाधिकारनिरूपणं ५९२
सर्वविद्यासिद्धान्तवर्णन ५११
सर्ववेदार्थनिरूपण टीका ५४२
सर्वसंवादिनी ४६७
सर्वात्मभाव-निरूपण ५९१
सर्वात्मभावविवरण ४५९
सर्वोत्तम की टीका ५९२
सर्वोत्तम-स्तोत्र टीका ४५९
सर्वोत्तम-स्तोत्र विवृति ४९५
सहस्रश्लोकी भावना ५९१
सह्याद्रि-वर्णन १२७
सांवतामाली-चरित्र २२३
सात बालकों की भावना ५९२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधनामृत स्रोत १८८
साधुबोध १९३
सान्द्रकुतूहल ४५२
सामान्यविरुदावलीलक्षण ४६६
सामुंडी सिंपू ६०६
साम्बशिवाष्टक २४०
सायंपंचक ४७१
सारंगरंगदा ५९४
सारलहरी ५९४
सारार्थदर्शिनी ५६५
सार्थ-अभंगगाथा २८३
सार्थ गौळणी २८३
सार्थ ज्ञानेश्वरी २२९,२८३
सार्थ तुकाराम-गाथा २२०
सावित्री-सत्यवान नाटक ३७२,३८९
साहित्यकौमुदी ४९३
साहित्यदर्पण ४२५
साहित्य-माधुरी ५४०
साहित्य-विलास ३७७
साहित्य-वैभव ५०८
साहित्य-सञ्जीवनी ५३४
साहित्यसाम्राज्य ५३४
साहेबराम पदावली ३९८
सिद्धान्तक्षीरार्णव ४८६
सिद्धान्तजाह्नवी ५७८
सिद्धान्तदीपक ४६०
सिद्धान्तप्रदीप ५७६
सिद्धान्तबिन्दु ५११
सिद्धान्तमुक्तावली ५६१
सिद्धान्तमुक्तावली टीका ४५९
सिद्धान्तमुक्तावली पर टीका ५६३
सिद्धान्तरहस्य ५६१
सिद्धान्तविजय २८१
सिद्धान्तसंहिता ३०१
सिन्धी कवियों की हिन्दी साधना ६००
सीतादिव्यचरित ५६८
सीता-स्वयंवर १७७
सुंदोपसुंदोपाख्यानम् ३४६
सुखबोधिनी-विवृत्ति ४८७
सुखमनी ६२५
सुदामा-चरित्र १४६,१६९,१७१,१७७,१८५,२२३
सुधर्माध्वबोधिनी ५३७
सुधानन्द लहरी ३२१
सुधालहरी ४८२
सुन्दरकाण्ड २९०
सुन्दरसन्देश ३४२
सुबोधिनी ४८५,५९५
सुबोधिनी प्रकाश ४८५
सुबोधिनी:श्रीमद्भागवत पर टीका ५६१
सुभगसन्देशं ३५७
सुभद्राचम्पू २४०
सुभद्रापरिणय ५६९
सुभद्रार्जुन-विवाह २४०
सुभद्राहरण ३२०,४७६
सुभद्राहरणम् ३४६
सुभद्राहरणाख्यान २७३
सुभाषित कौस्तुभ ५६९
सुभाषितनीवी ५६८
सुभाषितसुधानिधि ४२७
सुभाषितावलि ४९८
सुमङ्गलस्तोत्र ५५४
सुमनोरमणोद्धारचरित काव्य ३३३
सुरतस्मरणाष्टक ५९६
सुवर्णसूत्र ४८५
सुश्लोक मणिमाला ४९०
सुसिद्धान्तोत्तम ४८९
सूत्रमालिका ४६७
सूत्रविमर्षिणी ४९०
सूर-भारती ५०८
सेतुका ५८५
सेतुबन्ध १७७
सेवादर्पणम् ४९२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सेवापद्धति ५९१,५९२
सेवाफल ५६१
सेवाविचार ५२८
सेवाविधि ४६०
सेवाविवेक ५६५
सेव्य-असेव्य-स्वरूपभेद-निरूपणं ५९२
सेश्वरमीमांसा ५६८
सोनामानिक २३
स्कन्दपुराणं ३१३
स्तवामृत ५६५
स्तवावली ४४०
स्नेहलीला ५९३
स्फोटवृति ५४२
स्फोटसिद्धि ३३४
स्मरणाष्टक ५९२
स्मृतिशास्त्र २२
स्मृतिसार ५६९
स्यमंतकं ३१९
स्यानंदूरपुरवर्णन-प्रबन्ध ३६२
स्वधर्मामृतसिंधु ५७१
स्वनियमदशक ५३१
स्वप्नदृष्ट-स्वामिनी-स्तोत्र ४९५
स्वप्नवासवदत्ता ५०४
स्वप्रकाश ५७९
स्वप्रभुविज्ञप्ति ५९२
स्वमार्ग-मर्यादानिरूपण ५९१
स्वमार्ग-मूलनिरूपण ५९२
स्वमार्ग-रहस्यनिरूपण ५९२
स्वमार्गशरणद्वै-निरूपण ५९२
स्वमार्ग-सर्वस्त्रं ५९२
स्वमार्गीय-कर्तव्य-निरूपण ५९१
स्वमार्गीय-भक्ति-द्वैविध्य-विवेक ५९१
स्वमार्गीय भावनास्यरूप-निरूपण ५९२
स्वमार्गीय-मुक्ति-द्वैविध्य निरूपण ५९१
स्वमार्गीय-रहस्य ५९१
स्वमार्गीय-शरणसमर्पण-सेवादिनिरूपणं ५९१
स्वमार्गीय-संन्यास-वैलक्षण्यनिरूपणम् ५९२
स्वमार्गीय-सेवायत्तरूपनिर्णय ५९१
स्वमार्गीयस्वरूपस्थापनप्रकार ५९१
स्वरूपतारतम्यनिर्णय ५९२
स्वरूपभावना ५९२
स्वसंकल्पप्रकाश ५३१
स्वात्मसुख १८१
स्वामिनीप्रार्थनाष्टकं ५९२
स्वामिन्यष्टक ५६४
स्वाहासुधाकर ४७६
हंसदूत ५८७
हंसवध ३१७
हंससन्देश ३४०,५५०,५६८
हयग्रीवदण्डकस्तोत्र ५६९
हयग्रीवशतक ५७१
हरगौरी-विवाह नाटक ३९७
हरिकेलि लीलावती ५९४
हरिचरित ४६१
हरिचरित्रकाव्य ५९५
हरितोषिणी ४५७
हरिनाम-कीर्तन ३१२
हरिनाम कीर्तनम् ३३१
हरिनामामृतम् ५६४
हरिनामामृत व्याकरण ४६६
हरिपाठ २१२,२५६,२९७
हरिपाठ-रहस्य २५६
हरिभक्ति ४२१
हरिभक्तिचन्द्रिका ४२९
हरिभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु ६७
हरिभक्तिरसायन ५८३
हरिभक्तिबिलास ४५९,५८३
हरिलीला १६७
हरिलीला-भागवत-रहस्य ४८८
हरिलीलामृत ४९७
हरिलीलाव्याख्या ५११

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरिवंश पुराण १३७,२७३,२७५,३६५,३६७,३६८,३८१,
३८३
हरिवरदा १४७,१६७,१८७
हरिविजय १४७,१६७,२८६
हरिविलास १६७
हरिविलासकाव्य ४६१,५५८,५९५
नरिशरणाष्टकं ५९२
हर्षचरित ४१०
हस्तामलक १८१
हास्यचूडामणि ५५९
हाहा दैन्याष्टकं ५९२
हितकथामृत-तरंगिणी ४९०
हितमालिका ५६५
हिन्दी को मराठी सन्तों की देन १७१
हिन्दी शब्दसागर ५२
हिन्दुस्तानी रुक्मिणी-स्वयंवर १९९
हिस्ट्री ऑव क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर ४६१
हिस्ट्री ऑव तिरहुत ३८०
होरी की भावना ५९३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi